મળવાનું ઠેકાણું :
શ્રી અ. ભા. શ્વેસ્થાનકવાસી
જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ
ઠે. ગરેડિયા કૂવા રોડ,
રાજકોટ, (સૌરાષ્ટ્ર)

Published by :
Shri Akhil Bharat S.S.
Jain Shastroddhar Samiti
Garedia kuva Road RAJKOT
(Saurashtra), W. Ry. India



ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञा,
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः ।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा,
कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी ॥१॥



हरि गीतच्छन्दः

करते अवज्ञा जो हमारी यत्न ना उनके लिये ।
जो जानते हैं तत्त्व कुछ फिर यत्न ना उनके लिये ॥
जनमेगा मुझसा व्यक्ति कोई तत्त्व इससे पायगा ।
है काल निरवधि विपुल पृथ्वी ध्यानमें यह लायगा ॥१॥

मूल्य रु. ३०-००

प्रथम आवृत्ति प्रति १०००
वीर. सवत् २४९९
विक्रम ,, २०२९
ईसवी सन् १९७३

मुद्रक-श्रीरामानन्द प्रिन्टिंग प्रेस,
कांकरिया रोड,
अहमदाबाद-२२

श्रीमान् सेठ श्रीभैरोंदानजी सेठिया की संक्षिप्त जीवनी

जैन समाज के महान स्तम्भ एवं अमूल्यरत्न श्री भैरोदानजो सेठिया का सम्पूर्ण जीवन शिक्षा प्रसार एवं समाज सेवा में हि व्यतीत हुआ। युवक सा साहस, संतों के सदृश समभाव एवं उदार दानवीरता के गुणों की त्रिवेणो उनके स्वभाव का अंग थी। मानव जीवन को सार्थक बनाकर आपने सेवा और त्यागमय जीवन का आदर्श समाज के सन्मुख प्रस्तुत किया। आपका जीवन पूरा इतिहास है और आप द्वारा स्थापित " श्री अगरचन्द भैरोंदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था बीकानेर" एक "प्रकाश-स्तम्भ" ज्ञान की विलुप्त रश्मियाँ पुनः प्रतिष्ठित कर यह संस्था चिरकाल तक समाज की सेवा करती रहेगी।

श्री भैरोंदान जी सेठिया का जन्म वीसा ओसवाल कुल में विक्रम संवत् १९२३ विजया-दशमी को बीकानेर रियासत के कस्तूरिया नामक गाँव में हुआ। आपके पिता का नाम श्री मान् सेठ धर्मचन्द जो था। आप चार भाई थे। श्री प्रतापमल जो और श्री अगर चन्द जो आप से बड़े और श्री हजारीमल जो आपसे छोटे थे। दो वर्ष की अल्पायु में ही आपके पिताजी का स्वर्गवास हो गया।

सात वर्ष की आयु में बीकानेर के बड़े उपाश्रय में साधुजी नामक यति के पास आपकी शिक्षा का आरम्भ हुआ। दो वर्ष पढ़ कर वि. स. १९३२ में कलकत्ते की यात्रा की और लौटकर बीकानेर के निकट शीवबाड़ी गाँव में रहे। स. १९३६ में आपने बम्बई की यात्रा की। वहाँ अपने बड़े भई श्रीअगर चन्द जो के पास रहकर व्यापारिक एवं व्यावहारिक शिक्षा पाई। साथही आपने हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती भाषाएँ सीखी।

सं. १९४० में बम्बई से लौटे। इसो वर्ष में आपका विवाह बोकानेर राज्य के आड़सर गाँव के श्रीमान् दुलीचन्द जी नाहर को सुपुत्री रूपकुंवर के साथ हुआ। भाईयों में सम्पत्ति आदि का विभाजन होने पर आपने स्वावलम्बी जीवन में प्रवेश किया। सं. १९४१ में आप पुनः बम्बई के लिए रवना हुए और वहाँ एक फर्म मुनीम नियुक्त हुए। इसी वर्ष आपकी मातेश्वरी गंगाबाई का बम्बई में स्वर्गवास हो गया पर आपने धैर्यपूर्वक इस कष्ट को सहन किया।

बम्बई में आप सात वर्ष रहकर संवत १९४८ में कलकत्ते गये। कार्यकुशल, धर्म परायण एवं मितव्ययो पत्नी के सहयोग से आपने बम्बई में ३०००. रु० एकत्र कर लिये थे। इस पूंजी से मनिहारी और रंग की दुकान खोली और गोली सूता का कारखाना शुरू किया। अध्यवसाय, परिश्रम, नम्रता, ईमानदारी, व्यापारिकज्ञान आदि गुणों के कारण आपके व्यापार

में आशातीत विस्तार हुआ। श्रीमान् अगर चन्द को भी अपनी फर्म में सम्मिलित कर लिया और अब फर्म का नाम "ए. सी. बी सेठिया एन्ड कम्पनी रख दिया। वेल्जियम, स्विटजरलैण्डबर्लिन् के रंग के कारखानों की तथा गाँवलाँज gablan आष्ट्रिया के मनिहारी कारखाने की सोल एजेन्सियाँ प्राप्त करली। आपने हावड़ा में 'धी सेठिया कलर एन्ड केमिकल वर्क्स लिमिटेड" नामक रंग का कारखाना खोला जो भारत वर्ष का सर्व प्रथम रंग का कारखाना था रंग विश्लेषण के फार्मुले सीखने केलिए आपने एक जर्मन विशेषज्ञ को दैनिक पाँच मिनट के लिए ३००. रुपये मासिक पर नियुक्त किया था। स. १९७१ (सन् १९१४) के प्रथम विश्व-युद्ध में रंगों के भाव बढ़ जाने से रंग के कारखानेसे आशातीत लाभ हुआ।

होमियपैथी चिकित्सा पद्धति को आपने सं. १९६५ में अपनाया और उसकी अनुकूलता, सुगमता से प्रभावित हुए। फलस्वरूप आपने प्रख्यात डाक्टर जतीन्द्रनाथ मजमूदारके पास होमियो पैथी का अभ्यास किया और प्रवीणता प्राप्त की। इसका साकार रूप आज "सेठिया जैन होमियोपैथिक औषधालय" है, जहां वार्षिक५५००० की संख्या में जनता निःशुल्क चिकित्सा पा रही है। वि.सं. १९६९ (१९१३) में बीकानेर में महात्मा गांधी रोड (पूर्व नाम किंग एडवर्ड—मेमोरियल रोड) पर "बी. सेठिया एन्ड सन्स" नाम से दुकान खोली वह आज भी बीकानेर की प्रथम श्रेणी की विश्वस्त जो जनरल एवं फेन्सी सामान के लिए प्रसिद्ध है।

सं. १९७०, में बीकानेर में स्कूल स्थापित की जहां बच्चों को व्यावहारिक शिक्षा के साथ साथ धार्मिक शिक्षा भी दी जाती थी। इससे भी पहले आपने शास्त्र भण्डार का काम शुरू करा दिया था। सं. १९७२ (१९१६) से पुस्तक प्रकाशन का काम शुरू किया, लागत मूल्य और उससे भी कम मूल्य पर साहित्य उपलब्धकर, जैन समाज के विकास में, आपने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। संस्थाने अब तक अर्थात् सं.२०२८ तक १४० ग्रन्थ प्रकाशित किए हैं जिनमें किसी किसी की १८ आवृत्ति तक छप चुकी है। कतिपय महत्वपूर्ण ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं:—

जैन-सिद्धान्त बोल संग्रह भाग १ से ८,

दशवैकालिक सूत्र

जैन दर्शन

उत्तराध्ययन सूत्र

अर्हित प्रवचन

प्रश्न व्याकरण सूत्र

नवतत्त्व (विस्तार सहित)

आचारांग सूत्र प्र. श्रुत स्कंध

भगवती सूत्र एवं पन्नवणा सूत्र के थोकड़े.

शब्दार्थ, अन्वयाथ भावार्थ सहित

संवत् १९७८ में श्री अगरचन्द जी एवं आपने मिलकर समाज में शिक्षा एवं धर्म प्रचार के लिए अगरचन्द भैरोदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्थाएँ स्थापित की जिसका नवीन ट्रस्ट-डीड २१ सितम्बर १९४४ ई० को कलकत्ते में (सं. २००१ आसोज सुदी ६) कराया गया। संस्था में उस समय भी चल और अचल पांच लाख रुपये की संपत्ति थी। २१. ३. ४६ को व्याख्यन भवन (सेठिया कोठड़ी) एवं ता. २८. ३. ४६ को संस्था को संस्था के कार्यालय बीकानेर में ट्रस्टडीड रजिस्टर्ड कराया । औषधालय, कन्यापाठशाला, छात्रावास, पुस्तकालय, का सिद्धान्तशाला आदि विभागों के माध्यम से संस्था समाज की सेवा कर रही है।

सं. १९७९ श्रावण वदी १० पन्द्रह वर्ष की उम्रमें आपके पुत्र उदयचन्द जी का आसामयिक निधन हो जाने के कारण आपके मन पर संसार की असारता का गहरा प्रभाव पडा। आपने कलकत्ते का व्यापार समेट लिया और धार्मिक ज्ञान प्रसार ओर लगे। सं. १९९४ में आपने "ज्ञान इकावनी" की रचना की जो सं १९९८ में प्रकाशित हुई । सन्. १९२६ में आप अ. भा. श्वे. स्था. जैन कान्फ्रांस के प्रथम अधिवेशन के सभापति बने ।

बीकानेर नगर और राजा के लिए की गई आपकी सेवाएं अविस्मरणीय है:—

१० वर्ष तक बीकानेर म्युनिसिपल बोर्ड के कमिश्नर रहे ।

सन् १५२९ में सबसे पहले जनता में से आप ही सर्व सम्मति से बोर्ड के वाइस-प्रेसिडेन्ट चुने गये ।

सन् १५३१ में राज्य ने आपको ऑनरेरी मजिस्ट्रेट बनाया । दो वर्ष तक आप बेंच ऑफ ऑनरेरी मजिस्ट्रेट्स में कार्य करते रहे । आपके फैसले किये हुए मामलों की प्रायः अपीलें नहीं हुई ।

सन् १५३८ में म्युनिसिपल बोर्ड की ओर से आप बीकानेर लेजिस्लेटिव एसेंबली के सदस्य चुने गये ।

मई १५४९ में महिला जागृति परिषद्, बीकानेर की स्थापना के समय मुक्तहाथ से दान दिया ।

सन् १९३० में बीकानेर ऊलन प्रेस खरीदा और ऊल बरिंग फैक्टरी (Wool Burring Factory) खरीदी । यहां की बंधी गांठे अमेरिका, लीवरपूल आदि स्थानों को जाती हैं । बिकानेर में ऊनव्यवसाय की प्रगति में ऊन प्रेस का भी हाथ है ।

गायगोधों के घास, कबूतरों के चुगे के लिए एवं अन्य सहायता के लिए पृथक् पृथक् फंड स्थापित कर सेठिया जी ने परोपकार भावना का सुन्दर उदाहरण उपस्थित किया है।

सेठिया नाइट कॉलेज की स्थापना करके आपने ज्ञान के नये आयाम प्रदान किये। रात्रि को हाईस्कूल इन्टर बी. ए., एम. ए. एवं संस्कृत व हिन्दी की परीक्षाओं के लिए यहां नियमित कक्षाएं लगती थी। रात्रि में आशुलिपि (शोर्ट हेन्ड) की कक्षा भी खोली गई थी।

उल्लेखनीय है कि उस समय बीकानेर में मेट्रिक से आगे की पढ़ाई नहीं थी और दिन को अर्थोपार्जन कर रात्रि को विद्याध्ययन कर अपनी उन्नति कर सके इसी दृष्टि से नाइट कॉलेज खोला गया था। उस समय बीकानेर में शिक्षा की चेतना कम थी उसे जागृत कर जो सेवा सेठिया जी ने की है उसे बीकानेर भूलेगा नहीं।

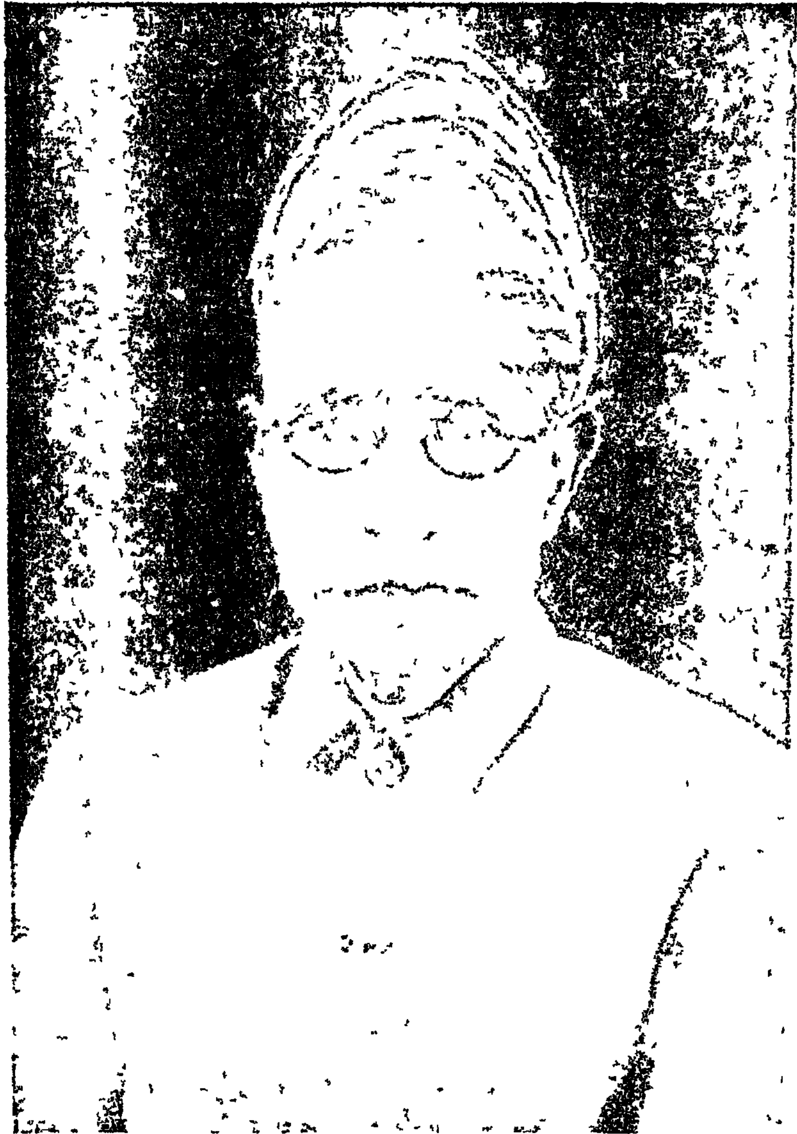
सेठिया जी स्वनिर्मित महापुरुष थे। गरीबी और अभाव की परिस्थितियों से उठकर उन्होंने अध्यवसाय, साहस एवं अथाक परिश्रम से अपने परिवार को ही समृद्धिशाली नहीं बनाया, समाज की सेवा भी की। वे स्वावलम्बी थे और अहंकार उनसे कोसों दूर था।

मुनि न होते हुए भी आपका त्यागमय जीवन देखकर सबका मस्तक झुक जाता था। सदा साधक रहकर नवीन ज्ञान सीखते रहे और आपने अपने व्यवसायिक अनुभवों के आधार पर अनेक व्यापारी बनाये।

दिनांक २०-८-६१ को प्रातः दस बजकर पचास मिनिट पर संथारा पूर्वक आपने पार्थिव शरीर छोड़ा पर उनके कार्य अमर हैं। सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था आज चहुंमुखी प्रगति पर है और समाज की सेवा कर रही है। संस्था ने शताधिक विद्वान तैयार किए हैं जो विविध क्षेत्रों में महत्वपूर्ण पदों पर हैं।

आप सदा स्वावलम्बी, साहसी, अध्यवसायशील एवं कर्मठ रहे।

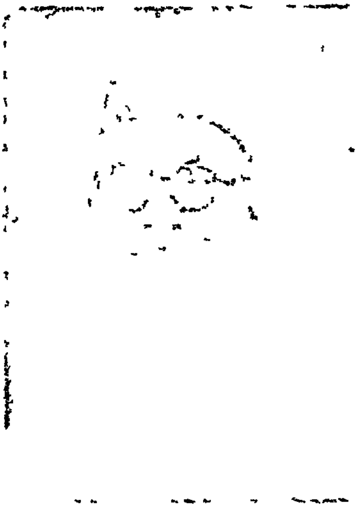
———×———



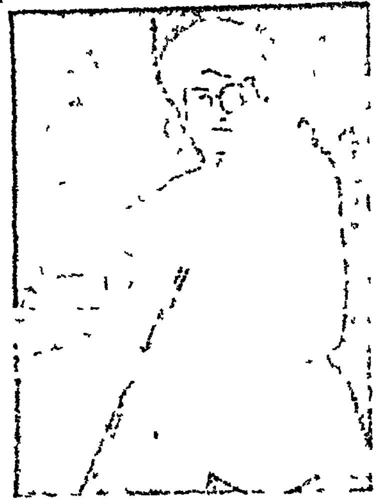
श्रीमान सेठश्री

अगरचन्दजी भैरूंदानजी सेठिया :- बीकानेर

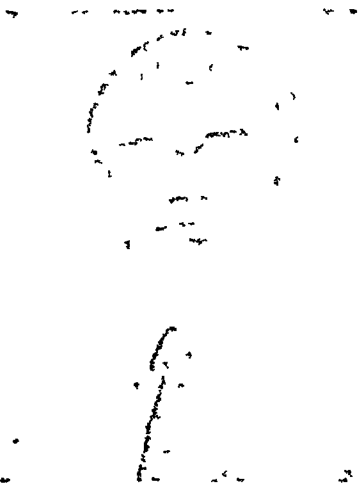
આદ્યમુરબ્બીશ્રીઓ



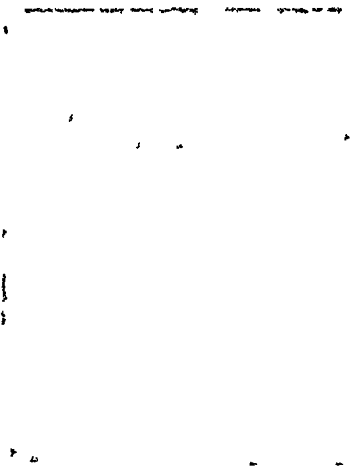
શેઠ શ્રી શાંતિલાલ મંગળદાસભાઈ
અમદાવાદ



(સ્વ.) શેઠશ્રી શામજીભાઈ વેલજીભાઈ
વીરાણી–રાજકોટ



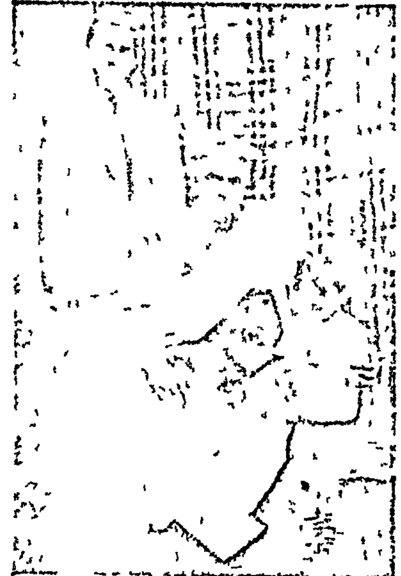
સ્વ. સુધીરભાઈ જયંતીલાલ ઝવેરી
મુંબઈ.



(સ્વ.) શેઠશ્રી છગનલાલ શામળદાસ
ભાવસાર અમદાવાદ.

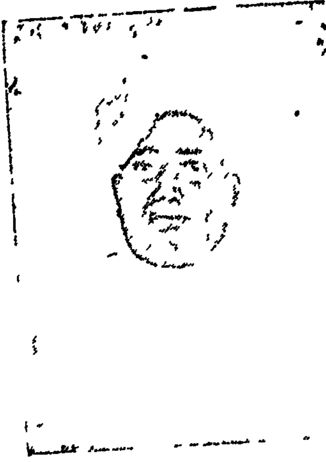


શેઠશ્રી રામજીભાઈ શામજીભાઈ
વીરાણી–રાજકોટ.



वच्चे बेठेला–लालाजी किशनचंदजी सा. जौहरी
उभेला–सुपुत्र चि. महेतावचन्दजी सा.
नाना–अनिलकुमार जैन दोयत्ता दिल्ही

આત્રમુરબ્બીશ્રીઓ



(સ્વ.) શેઠશ્રી હરખચંદ કાલીદાસ વારિઆ
ભાણવડ



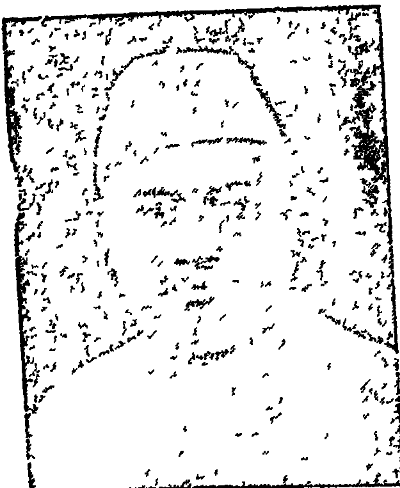
(સ્વ.) શેઠ રંગજીભાઈ મોહનલાલ શાહ
અમદાવાદ.



(સ્વ.) શેઠશ્રી દિનેશભાઇ કાંતિલાલ શાહ
અમદાવાદ.



સ્વ. શેઠશ્રી જીવરાજભાઈ મૂલચંદભાઇ
ધ્રાંગધ્રા



શેઠશ્રી જેસિંગભાઈ પોચાલાલભાઈ
અમદાવાદ



સ્વ. શેઠશ્રી આત્મારામ માણેકલાલ
અમદાવાદ

આદ્યમુરબ્બીશ્રીઓ

પટેલ ડાહ્યાભાઈ ગોપાલદાસ
મુ. સાણંદ (જી. અમદાવાદ)

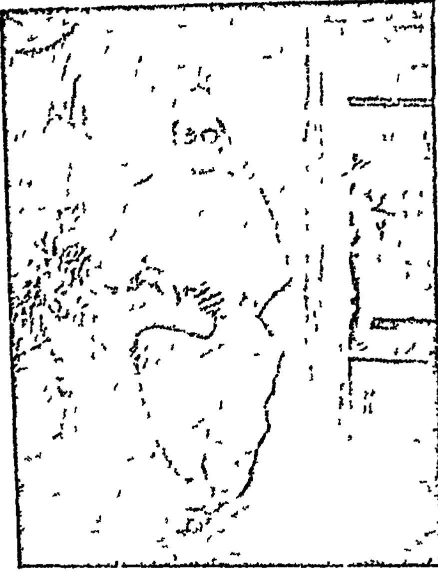
૧ અમીચંદભાઈ તથા
૨ ગીરધરભાઈ બાંટવિયા મુ. બેંગલોર

शाहजी श्री मोतीलालजी गलुन्डिया
मुः उदयपुर

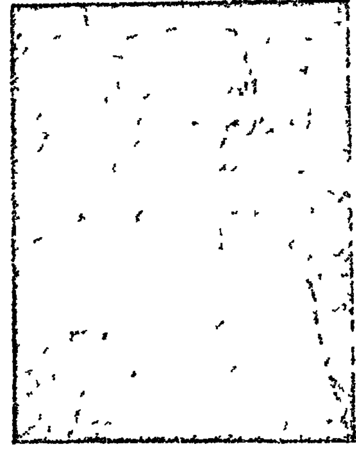
મદ્રાસવાલા સ્વર્ગસ્થ ન્યાયમૂર્તિ
રતીલાલભાઈ ભાયચંદભાઈ મહેતા

સ્વ. શેઠ માણેકચંદ નેમચંદ
મુ. માંગરોલ

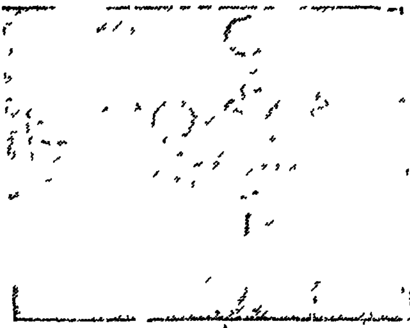
श्रीमान् शेठ कानुगा
श्री गींगडमलजी-अहमदावाद



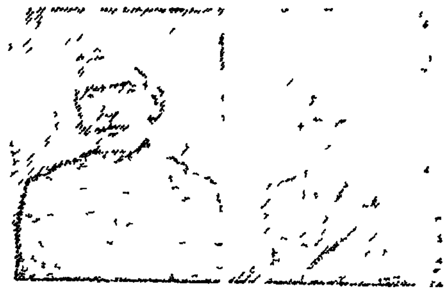
સ્વ. શેઠશ્રી હરિલાલ અનોપચંદ શાહ
ખંભાત.



स्व. शेठ श्री ताराचंदजी साहेब गेलडा
मद्रास.



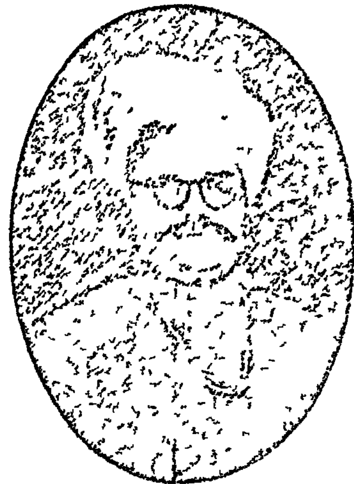
श्रीमान् शेठ सा. चीमनलालजी सा.
ऋखभचंदजी सा. अजीतवाले (सपरिवार)



शेठ श्री कीशनलालजी फुलचंद सा०
बेंगलोरवाले

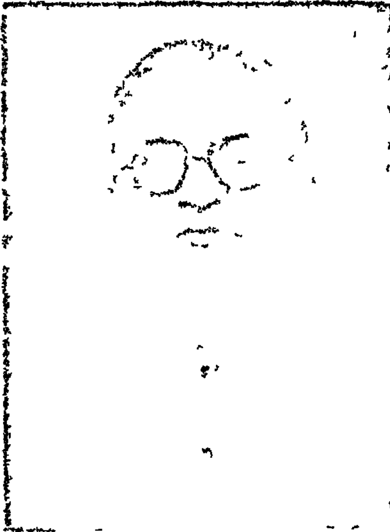


वच्चे बेठेला-मोटाभाई श्रीमान् मूलचंदजी
जवाहीरलालजी वरडिया
बाजुमां बेठेला-भाई मिश्रीलालजी वरडिया
उभेला-सौथी नानाभाई पूनमचंदजी वरडिया

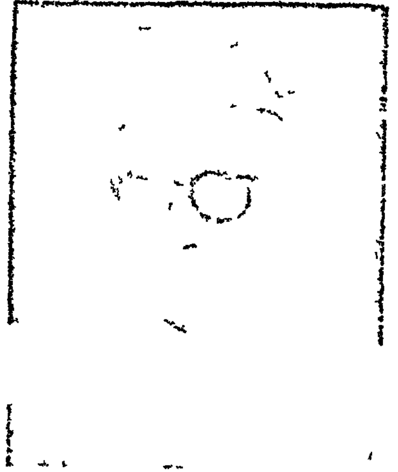


श्रीमान् सेठश्री
खींवराजजी सा. चोरडिया
मु० मद्रास

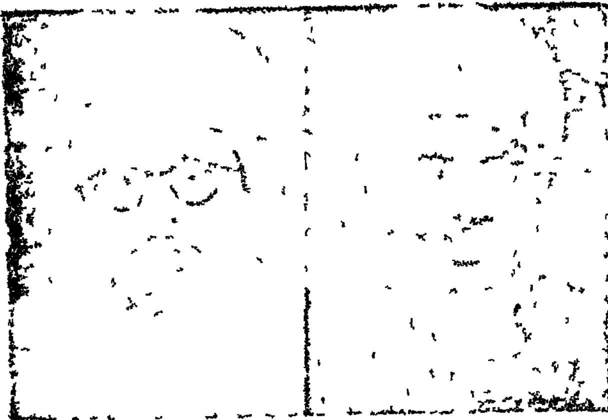
आद्यगुरुश्रीओ



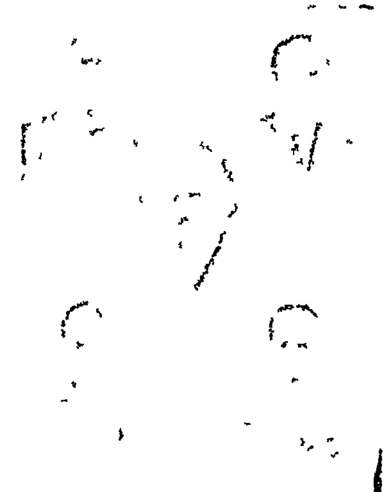
શ્રીમાન્ શેઠ પોપટલાલ માવજીભાઇ
મહેતા, જામજોધપુર



श्रीमान् शेठ धनराजजी पन्नालालजी
जांगडा, मु. जालना



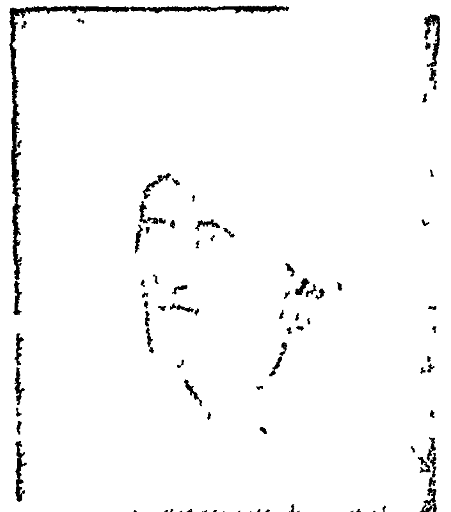
शेठश्री मिश्रीलालजी लालचंदजी सा. लुणिया
तथा शेठश्री जेवतराजजी अमदावाद



શેઠ પ્રભુદાસભાઇ મૂલજીભાઈ દોશી
રાજકોટ

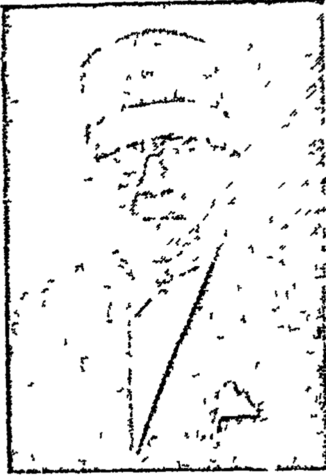


ઝવેરી રસીકલાલ મણીલાલ મહેતા
મદ્રાસ

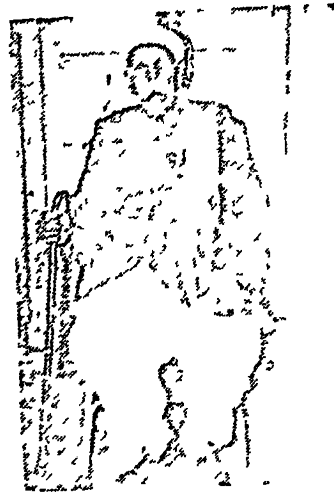


स्व. श्रीमान् शेठश्री मुकनचंदजी सा०
बालिया पाली मारवाड

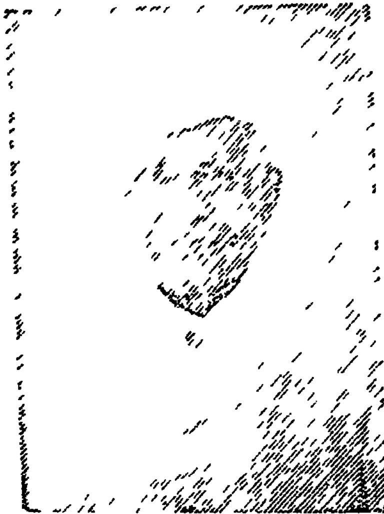
आद्यमुरब्बीश्रीओ



શ્રીમાન્ શેઠ મણીલાલ પોપટલાલ વોરા
અમદાવાદ, જન્મ તા. ૧૦-૬-૧૯૦૪



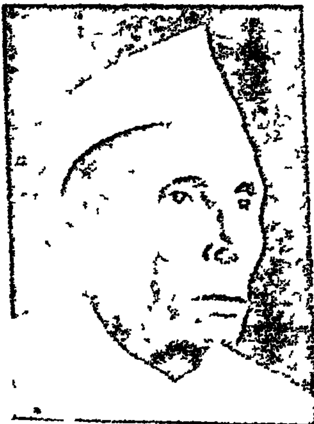
श्रीमान् शेठ लालाजी कपूरचन्दजी
नाहटा, मु॰ देहली



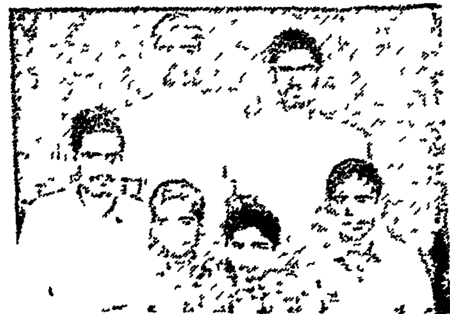
શ્રી વ્રજલાલ દુર્લભજી પારેખ
રાજકોટ.



કોઠારી હરગોવિંદ જેચંદભાઈ
રાજકોટ.

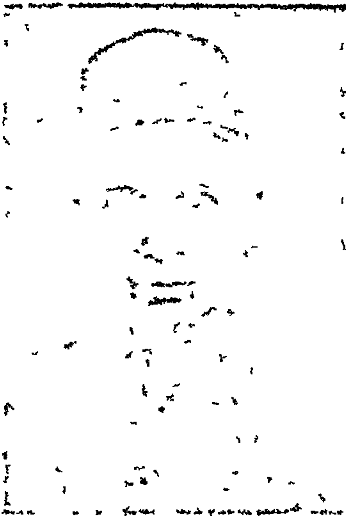


શેઠશ્રી મણીલાલ જેઠાભાઈ
પાલનપુરવાળા

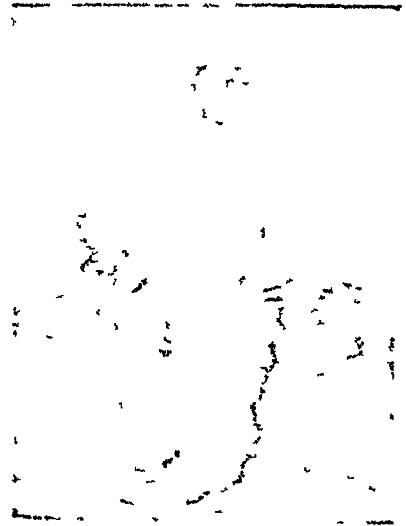


શ્રીમાન્ લાલાજી કપુરચંદજી-નાહટા
દિલ્હી

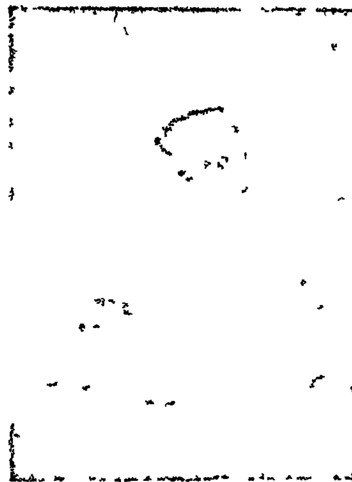
आद्यमुरब्बीश्रीओ



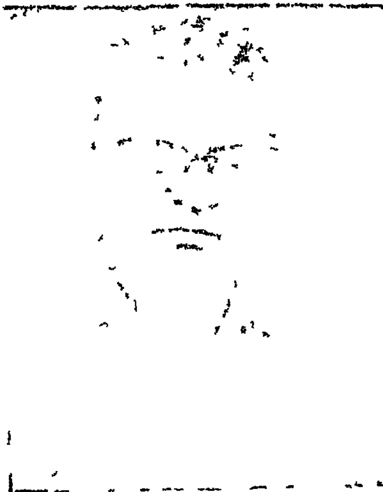
(સ્વ.) શેઠશ્રી [illegible]શીભાઇ [illegible]
[illegible]



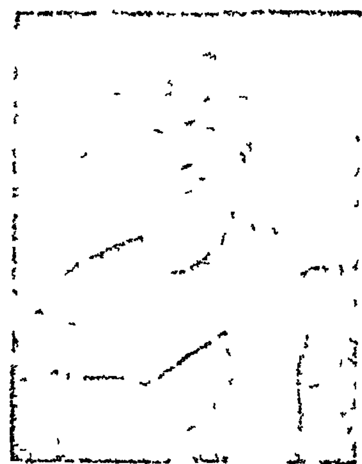
श्रीमान् शेठ जगजीवनभाई रतनसीभाई
वगडिया. मु. [illegible]नगर



શ્રી વિનોદકુમાર
વિરાણી
રાજકોટ



शेठश्री देवचदभाई फोजीलालभाई
वलाणी-सुरत



શેઠ શ્રી અમુલખભાઈ મલુકચંદ
પાલનપુરવાલા

श्री

चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्रस्य विषयानुक्रमणिका

प्रथमं प्राभृतम्

द्वितीयं प्राभृतम्

समाप्त

। श्रीवीतरागायनमः ।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर—पूज्य-श्री-घासीलालव्रतिविरचितया
चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिकाख्यया व्याख्यया समलङ्कृतम्-

श्री-चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रम् ।

मङ्गलाचरणम्

नम्रीभूतपुरन्दरादिमुकुट,-भ्राजन्मणिच्छायया,
चित्रानन्दकरी सदा भगवती यस्याङ्घ्रिलक्ष्मीः परा ।
सद्विज्ञान-निरन्तसिन्धुलहरी,-मग्नाः स्वकर्मक्षयं,
कृत्वाऽनन्तसुखस्य धाम भविनः प्रापुः श्रये तं जिनम् ॥१॥

विमलः केवलाऽऽलोक,-प्रभासंभारभासुरः ।
त्रिजगन्मुकुरो धीरो, वीरो विजयतेतराम् ॥२॥

श्रीसुधर्मा महावीर-लब्धरत्नोज्ज्वलो गणी ।
निबबन्ध तदुक्तार्थं, नमस्तस्मै दयालवे ॥३॥

अथैतत्करुणालब्ध,-विवेकामृतबिन्दुना ।
तन्यते घासिलालेन, 'चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिका' ॥४॥

पूज्य ईश्वरलालश्च, गणिवर्यो हि विश्रुतः ।
चन्द्रप्रज्ञप्तिवृत्तिश्च, तत्स्मृत्यर्थं विरच्यते ॥५॥

अथ सूत्रकारोऽविघ्नेन शास्त्रसमाप्त्यर्थम् इष्टसिद्ध्यर्थं च प्रथममिष्टदेवताप्रीत्यर्थं तत्स्तवमाह-'जयइ' इत्यादि ।

मूलम्—जयइ नवनलिणकुवलय-वियसियसयवत्तपत्तलदलच्छो।
वीरो गइंदमयगलसललियगयविक्कमो भयवं ॥१॥

छाया—जयति नवनलिनकुवलयविकसितशतपत्रपत्रलदलाक्षः ।
वीरो गजेन्द्रमदकलसललितगतविक्रमो भगवान् ॥१॥

व्याख्या—अत्र स्तवो द्विविधः-गुणोत्कीर्त्तनरूपः, साक्षात्प्रणामरूपश्च । तत्र साक्षात्प्रणामरूपः स्तवः साम्प्रतकाले नैव संपद्यते, सम्प्रति तीर्थकरस्याविद्यमानत्वात् । यत् स्थापनातीर्थकरस्य

साक्षात्प्रणामरूपः स्तवः कर्त्तुं शक्यते, इति कथ्यते तन्मिथ्यात्वविलसितम् , स्थापनायां तन्निस्सारत्वेन तत्र तीर्थंकरत्वस्यासंभवात् । एतद्विषये विस्तरतो मत्कृतायामनुयोगद्वारस्यानुयोगचन्द्रिकाटीकायां विलोकनीयम् ।

गुणोत्कीर्तनरूपः स्तवश्चात्र प्रस्तूयते—'जयइ' जयति विजयवान् भवति रागादिशत्रुजेतृत्वात्, कः ? इत्याह—वीरो, वीरः श्रीमहावीरश्चरमतीर्थंकर इत्यर्थः । अत्र 'जयति' इति वर्त्तमानप्रयोगः कथम् ? नैवात्र संप्रतिकाले भगवान् वीरो विद्यते ? इति न, तीर्थंकराणां ज्ञानसत्तायाः सर्वत्र सर्वदा कालत्रयेऽपि विद्यमानत्वात् तेषां सदैव वर्त्तमानत्वमेवेति न किमपि शङ्कनीयम् ।

अथवा रागादिशत्रवस्तु पूर्वमेव निर्मूलीकृताः किन्तु तत्फलभूतं सिद्धत्वमद्याप्यप्रतिहतमेव तिष्ठति, इति सिद्धत्वफले हेतुत्वेन उपचारात् 'जयतीत्युक्तम् । अथवा सम्प्रत्यपि भक्त्या ध्यानगोचरीभूतो ध्यातॄणां रागादिशत्रून् अपाकरोति उक्तञ्च—**'भत्तीइ जिणवराणं, खिप्पंति पुव्वसंचिया कम्मा । आयरियणमोक्कारे, विज्जा मंता य सिज्झंति ॥'** भक्त्या जिनवराणां क्षिप्यन्ते पूर्वसंचितानि कर्माणि । आचार्यनमस्कारे विद्या मन्त्राणि च सिध्यन्ति, इति वचनात्, ततो जयतीति प्रयोगो युक्त एव । यद्वा जयति सर्वानपि सुरासुरादीन् अतिशेते धातूनामनेकार्थत्वात्, यो हि सुरासुरेभ्योऽपि स्वगुणैरतिशायी वर्त्तते स प्रेक्षावतां नमस्करणीयो भवत्येव गुणाधिक्यात् ततो जयतीति युक्तमेव । कोऽसौ ? इत्याह-वीरो—वीरः, **'शूर—वीर विक्रान्तौ'** इति धातोः वीरयति कषायादिशत्रून् प्रति विक्रामतीति वीरः । अस्य वीर इति नाम न यादृच्छिकं किन्तु यथावस्थितमेव परीषहोपसर्गादिजेतृत्वविषयं वीरत्वमाश्रित्य सुरैः कृतमिदं नामानन्यसाधारणमिति । अनेन अपायापगमरूपोऽतिशयो ध्वन्यते । अथवा **'ईर् गतिप्रेरणयोः'** इति धातोः वि—विशेषेण ईरयति—प्रेरयति अपुनर्भावरूपेण आत्मनः सकाशात् अष्टविधकर्माणि च्यावयतीति वीरः, यद्वा ईर्धातुर्गत्यर्थकोऽपि, अतः वि—विशेषेण शीघ्रतया ईरयति गच्छति शिवमिति वीरः, अत्र भगवतोऽपायावगमातिशयप्रतिपत्तिः सूचिता सूत्रकारेणेति । किंविशिष्टो वीरः ? इत्याह—**'नवनलिण—कुवलय—वियसिय—सयवत्त—पत्त लदलच्छो'** नवनलिन—कुवलय—विकसित—शतपत्र—प्रतलदलाक्षः, तत्र नवं-नूतनम्—अल्पकालिकं—यत् नलिनम्—ईषद्रक्तं कमलम् तथा कुवलयं नीलोत्पलम्, तथा विकसितं—प्रफुल्लितं शतपत्रं—सामान्यकमलं तस्य प्रतले—अस्थूले ये दले—पत्रे तद्वत् अक्षीणि=नेत्रे यस्य स तथा, यस्य भगवतो नेत्रद्वयम् उपान्ते रक्ताभायुक्तत्वेन ईषद्रक्तं, नीलाभायुक्तत्वेन ईषन्नीलम् प्रफुल्लितत्वेन आयतम् कोमलं—मनोहारि च वर्तते इति भावः । पुनः कीदृशो वीरः ? इत्याह—**'गइंदमयगलसललियगयविक्कमो'** गजेन्द्रमदकलसललितगतविक्रमः, अत्र—'मइकल' शब्दस्य परनिपातः प्राकृतत्वात् तेन मदकलः मदेन सुन्दरः तरुण इत्यर्थः, एतादृशो यो गजेन्द्रः गजानां मध्ये इन्द्र इव इन्द्रः शेषगजेभ्यो गुणातिशयित्वात्,

तस्य सललितं लालित्यसहितं मनोज्ञलीलासहितत्वात् एतादृशं यत् गतं=गमनं तद्वत् विक्रमः पदन्यासो यस्य स तथा मदोन्मत्तगजेन्द्रवत् मनोहारिगतियुक्त इत्यर्थः, पुनः कीदृशो वीरः? इत्याह–'भयवं' भगवान्–भगः ऐश्वर्यादिरूपः, उक्तञ्च–

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य, रूपस्य यशसः श्रियः।
धर्मस्याथ प्रयत्नस्य, षण्णां भग इतीङ्गना ॥१॥

सोऽस्यास्तीति भगवान् । भगवच्छब्दस्य विस्तृतव्याख्या आचाराङ्गसूत्रे प्रथमश्रुतस्कन्धस्य मत्कृतायामाचारचिन्तामणिटीकायां विलोकनीया । अनेन वागतिशयः पूजातिशयश्च सूच्यते । पूजाऽत्र सुरासुरनरनिकरकृततीर्थकरादरसत्कारलक्षणा विज्ञातव्येति । आभ्यां द्वाभ्यामतिशयाभ्यां ज्ञानातिशयो लभ्यते, ज्ञानातिशये सति अपायापगमातिशयस्यावश्यम्भावात् अपायापगमातिशयोऽपि सिध्यति । तीर्थकराणां अपायाऽपगम–पूजा–वाणी–ज्ञानातिशयभेदात् चत्वारो मूलातिशया भवन्ति। एते चत्वारोऽतिशयाः–'अवट्ठियकेसमंसुरोमनहे' अवस्थितकेशश्मश्रुरोमनखः, इत्यादिचतुस्त्रिंशदतिशयानामुपलक्षणम्, उपरोक्तमूलातिशयचतुष्टयमन्तरेण शेषाणां चतुस्त्रिंशदतिशयानामसम्भवात्, ततश्च चतुस्त्रिंशदतिशयोपेतो भगवान् वीरो जयतीति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ गा० १॥

पूर्वं वर्तमानतीर्थंकरश्रीवर्धमानस्वामिनं प्रणम्य साम्प्रतं सामान्येन पञ्चपरमेष्ठिनां नमस्कारमाह–'नमिऊण' इत्यादि ।

मूलम्—नमिऊण असुरसुरगरुलभुयगपरिवंदिए गयकिलेसे। अरिहे सिद्धायरिए, उवज्झाए सव्वसाहू य ॥२॥

छाया— नत्वा असुरसुरगरुडभुजगपरिवन्दितान् गतक्लेशान् ।
अर्हतः सिद्धाचार्यान्, उपाध्यायान् सर्वसाधूंश्च ॥२॥

व्याख्या—'असुरसुरगरुलभुयगपरिवंदिए' असुरसुरगरुडभुजगपरिवन्दितान् तत्र–असुरा=असुरकुमाराः, सुराः–वैमानिकदेवाः गरुडाः=सुवर्णकुमारदेवाः, भुजगाः=नागकुमारदेवाः उपलक्षणात् शेषाणां–विद्युत्कुमारादीनामपि ग्रहणं भवति, तैः परिवन्दितान्=नमस्कृतान् **'गयकिलेसे'** गतक्लेशान् अपगतजन्ममरणादिक्लेशान् एतादृशान् अर्हतः=तीर्थकृतः, तथा **'सिद्धायरिए'** सिद्धाचार्यान् सिद्धान् आचार्यांश्च, तत्र सिद्धान्=व्यपगतसकलकर्ममलत्वेन सिद्धिगतिनामधेयं स्थानं प्राप्तान्, आचार्यान् स्वयं पञ्चविधज्ञानाद्याचारं परिपालयन्तः सन्तः परान् प्रति तदुपदेश-

दानतत्परान् 'उवज्झाए' उपाध्यायान् स्वयं द्वादशाङ्गाध्ययनं कुर्वन्तः परान् तदध्ययनमानसान् कारयन्तस्तान् 'सव्वसाहू य' सर्वसाधूंश्च ज्ञानक्रियातो मोक्षसाधनप्रवणान् अर्द्धतृतीयद्वीपस्थितान् मुनीन् 'नमिऊण' नत्वा–नमस्कृत्य, किम् ? इत्याह—

मूलम्—फुडवियडपागडत्थं, वोच्छं पुव्वसुयसारनीसंदं ।
सुहुमगणिणोवइट्ठं, जोइसगणरायपण्णत्तिं ॥२॥

छाया—स्फुटविकटप्रकटार्थां, वक्ष्ये पूर्वश्रुतसारनिस्यन्दं ।
सूक्ष्मगणिनोपदिष्टां, ज्योतिर्गणराजप्रज्ञप्तिम् ॥२॥

व्याख्या—'फुडवियडपागडत्थं' स्फुटविकटप्रकटार्थाम्–स्फुटः स्पष्टो यथावस्थितो विमलबोधविषयत्वात्, विकटः=गम्भीरार्थः कुशाग्रबुद्धिगम्यत्वात्, प्रकटः=साक्षादक्षरेष्वेव परिस्फुरणशीलः, एतादृशोऽर्थो यस्यां सा तथा ताम् 'पुव्वसुयसारनीसंदं' पूर्वश्रुतसारनिस्यन्दम्–पूर्वगतं श्रुतं पूर्वश्रुतं तस्य सारः सारभूतं निस्यन्दं सारस्यापि सारभूताम्, अनेन–इयं चन्द्रप्रज्ञप्तिः पूर्वेभ्य उद्धृतेति ध्वन्यते। ननु इयं च न पूर्वाणि स्वयमधीत्य तत उद्धृता किन्तु गुरूपदेशानुसारतः, इत्यत्राह–'सुहुम' इत्यादि 'सुहुमगणिणोवइट्ठं' सूक्ष्मगणिनोपदिष्टाम्, सूक्ष्म इति सूक्ष्मबुद्धियुक्तो यो गणी=आचार्यः, तेनोपदिष्टाम्, गुरुणा पूर्वाणि यथाव्याख्यातानि तान्यधीत्य तेभ्य उद्धृतामिति भावः, 'जोइसगणरायपण्णत्तिं' ज्योतिर्गणराजप्रज्ञप्तिम्, तत्र ज्योतींषि-ग्रहनक्षत्रताराऱूपाणि, तेषां गणः=समूहस्तस्य राजा=चन्द्रः, तस्य प्रज्ञप्तिम्–प्रज्ञाप्यते प्ररूप्यतेऽनयेति प्रज्ञप्तिः तत्स्वरूपप्रतिपादिका वचनपद्धतिः, ताम् 'वोच्छं' वक्ष्ये=प्रतिपादयिष्यामि प्ररूपयिष्यामीत्यर्थः ॥२॥

पूर्वेषु चन्द्रादिवक्तव्यता गौतमप्रश्नभगवन्निर्वचनरूपैव वर्तते तत इयं चन्द्रप्रज्ञप्तिरपि तथैव प्ररूपणीयेति प्रथमं गौतमप्रश्नस्योपक्षेपं निरूपयति—'नामेण' इत्यादि ।

मूलम्—नामेण इंदभूइ-त्ति गोयमो वंदिऊण तिविहेणं ।
पुच्छइ जिणवरवसहं, जोइसरायस्स पण्णत्तिं ॥४॥

छाया—नाम्ना इन्द्रभूतिरिति गौतमो वन्दित्वा त्रिविधेन ।
पृच्छति जिनवरवृषभं, ज्योतीराजस्य प्रज्ञप्तिम् ॥४॥

व्याख्या—'नामेण' नाम्ना 'इंदभूइत्ति' इन्द्रभूतिरिति इन्द्रभूतिरिति नाम्ना प्रसिद्धः, 'गोयमो' गौतमः गौतमगोत्रोत्पन्नः, सः 'तिविहेण'—त्रिविधेन मनोवाक्कायेन 'वंदित्ता' वन्दित्वा 'जिणवरवसहं' जिनवरवृषभं जिनवरेषु श्रेष्ठं श्रीवर्धमानस्वामिनं 'पुच्छइ' पृच्छति । किमित्याह—'जोइसरायस्स' ज्योतिराजस्य चन्द्रस्य उपलक्षणात् सूर्यादीनां च 'पण्णत्तिं' प्रज्ञप्तिम् प्रज्ञाप्यते—प्ररूप्यते—चन्द्रसूर्यादीनां चारस्य यथावस्थितिर्यत्र सा प्रज्ञप्तिस्तां पृच्छतीति सम्बन्धः ॥४॥

एवं गौतमेन पृष्टः सन् भगवान् प्रथमं तत्सम्बद्धं विंशतिसंख्यकेषु प्राभृतेषु यद् वक्तव्यं तद् गाथापञ्चकेनाह—'कइ मंडलाइ' इत्यादि ।

मूलम्—कइ मंडलाइ वच्चइ १, तिरिच्छा किं व गच्छई २ ।
ओभासइ केवइयं ३, सेयाए किं ते संठिती ४ ॥ गा० ५॥
कहिं पडिहया लेस्सा ५, कहं ते ओयसंठिती ६ ।
के सूरियं वरयंति ७, कहं ते उदयसंठिती ८ ॥ गा ६ ॥
कइकट्ठा पोरिसी-छाया ९ जोगेत्ति किं ते आहिए १० ।
के ते संवच्छराणाई ११, कइ संवच्छराइ य १२ ॥ गा० ७॥
कहिं चंदमसो वुड्ढी, १३, कया ते जोसिणा बहू १४ ।
के य सिग्घगई वुत्ते १५ किं ते जोसिणलक्खणं १६॥गा०८॥
चयणोववाय १७ उच्चत्तं १८, सूरिया कइ आहिया १९ ।
अणुभावे केरिसे वुत्ते, २०, एवमेयाइ वीसई ॥ गा०९ ॥

छाया—कति मण्डलानि व्रजति १, तिर्यक् किं च गच्छति २ ।
अवभासयति कियत्कं, ३ श्वेतायाः किं ते संस्थितिः ४ ॥ गा० ५ ॥
कुत्र प्रतिहता लेश्या ५, कथं ते ओजःसंस्थितिः ६ ।
के सूर्यं वरयन्ति ७, कथं ते उदयसंस्थितिः ८ ॥ गा० ६ ॥
कतिकाष्ठा पौरुषीछाया ९, योग इति किं ते आख्यातः १० ।
कस्ते संवत्सराणामादिः ११, कति संवत्सरा इति च १२ ॥ गा ०७ ॥
कुत्र चन्द्रमसो वृद्धिः १३, कदा ते ज्योत्स्ना बह्वी १४ ।
कश्च शीघ्रगतिरुक्तः १५, किं ते ज्योत्स्नालक्षणम् १६ ॥ गा० ८ ।
च्यवनोपपातौ १७, उच्चत्वं १८, सूर्याः कति आख्याताः १९ ।
अनुभाव कीदृश उक्त २०, एवमेतानि विंशतिः ॥ गा० ९ ॥

व्याख्या— 'कइ मंडलाइ वच्चइ' कति मण्डलानि व्रजति चतुरशीत्यधिकशतमण्डलेषु सूर्यो वर्षमध्ये कति मण्डलानि एकवारं, कति वा मंडलानि द्विःकृत्वो व्रजतीत्येतन्निरूपणाविषयकं प्रथमं प्राभृतमस्ति। अस्मिन् अष्टावन्तरप्रभृतानि, चतुर्थान्तरप्राभृतादारभ्याष्टमान्तरप्राभृत-पर्यन्तमेकोनत्रिंशत् प्रतिपत्तयश्च सन्ति१। 'तिरिच्छा किं व गच्छइ' तिर्यक् किं वा गच्छति सूर्यस्तिर्यग् दिशि कथं चलति, इति विषयकं द्वितीयं प्राभृतं वर्त्तते, अस्मिन् त्रीणि अन्तरप्राभृ-तानि चतुर्दश प्रतिपत्तयश्च सन्ति २। 'ओभासइ केवइयं' अवभापते कियत्कम्, चन्द्रः सूर्यश्च कियत्प्रमाणकं क्षेत्रं प्रकाशयतीतिविषयकं तृतीयं प्राभृतम्, अत्रान्यतैर्थिकप्ररूपणारूपा द्वादश प्रतिपत्तयः सन्ति ३। 'किं ते संठिती' का ते संस्थितिः, ते मते चन्द्रसूर्ययोः किदृशं संस्थानं वर्त्तते? इति विपकं चतुर्थं प्राभृतमस्ति। अत्रान्यतैर्थिकप्ररूपणारूपा षोडश षोडशचेति द्वात्रिंशत् प्रति-पत्तयः सन्ति। अत्र तापक्षेत्रस्यान्धकारक्षेत्रस्यापि च प्ररूपणा उर्ध्वमधस्तिर्यक् च कियत्तप-तीत्यपि च प्ररूपणा वर्त्तते ४॥ गा० ५॥

'कहिं पडिहया लेस्सा' कुत्र प्रतिहता लेश्या, सूर्यस्य लेश्या=तेजः कुत्र प्रतिहता भवतीतिनिरूपकं पञ्चमं प्राभृतम्। अस्मिन् अन्यतैर्थिकप्ररूपणारूपा विंशतिः प्रतिपत्तयः सन्ति ५। 'कहं ते ओयसंठिती' कथं ते ओजःसंस्थितिः, ते तव मते कथं केन प्रकारेण सर्वदा एकरूपाऽवस्थायिनी ओजसः प्रकाशस्य संस्थितिः=संस्थानम्, अथवा-अन्यथा वा संस्थिति-र्नानाप्रकारेण वा भवतीतिप्ररूपकं षष्ठं प्राभृतम्। अस्मिन् अन्यतैर्थिकप्ररूणारूपाः पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तयः सन्ति ६। 'के सूरियं वरयंति' के सूर्यं वरयन्ति, सूर्यं दूरस्थिताः के पुद्गलाः सूर्यं सूर्यतेजः वरयन्ति=सूर्यलेश्यां प्राप्तुमिच्छन्ति स्पृशन्तीत्यर्थः, इतिप्रतिपादकं सप्तमं प्राभृतम्। अत्रान्यतैर्थिकप्ररूपणारूपाः विंशतिः प्रतिपत्तयः सन्ति ७। 'कहं ते उदयसंठिती' ते तव मते कथं केन प्रकारेण सूर्यस्य-उदयस्य उपलक्षणात् अस्तस्य च संस्थितिः प्रकारः यत्र दिवसो रात्रि र्वा भवति तत्र कः प्रकारः १, यदा दक्षिणोत्तरयोः प्रथमसमयो भवति तदा पूर्वपश्चिमयोः तस्माद् द्वितीये समये प्रथमः समयो भवति। अत्र जम्बूद्वीपादर्धपुष्करद्वी-पपर्यन्तस्य वर्णनमस्ति, इतिनिरूपकमष्टमं प्राभृतम्। अस्मिन् अन्यतैर्थिकप्ररूणारूपास्तिस्रः प्रतिपत्तयः सन्ति ८॥ गा० ६॥

'कइकट्ठा पोरिसीछाया' कतिकाष्ठा पौरुषीछाया कतिकाष्ठा=कियत्प्रकर्षप्रमाणा पौरुषीछाया पौरुषीकालस्य किंप्रमाणा छाया भवतीति प्ररूपकं नवमं प्राभृतम्, तत्रान्य-तैर्थिकप्ररूपणारूपास्तिस्रः प्रतिपत्तयः सन्ति। अत्र सूर्यतेजसः स्वरूपं वर्णितम्। यस्मिन्

समये सूर्यः स्वतेजसा पुरुषस्य छायां निर्वर्त्तयति तद्वर्णनेऽन्यतैर्थिकप्ररूपणारूपाः पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तयः सन्ति । पौरुषीच्छायानिर्वर्त्तने द्वे प्रतिपत्ती स्तः, सूर्यः कतिकाष्ठां पौरुषीच्छायां निर्वर्त्तयतीतिविषये षण्णवतिः प्रतिपत्तयोऽपि सन्ति, एवं सर्वमेलने षड्विंशत्यधिकं शतमेकं (१२६) प्रतिपत्तयः सन्ति । तथा पौरुष्यामर्धपौरुष्यां देहपौरुष्यां च कति दिनानि व्यतीयन्ते ? कति दिनानि अवशिष्यन्ते ? तथा पुरुषच्छायायां कति दिनानि गच्छन्ति ? कति दिनानि अवशिष्यन्ते ? इति, तथा छाया पञ्चविंशतिविधा भवतीतिनिरूपकं च नवमं प्राभृतम् ९ । 'जोएत्ति किं ते आहिए' योग इति किं ते आख्यातः, ते तव मते योग इति किम् ? किंस्वरूपो योगः ? इति, चन्द्रसूर्याभ्यां सह कतिनक्षत्राणां योगो भवतीतिप्रतिपादकं दशमं प्राभृतम्, अत्रान्यतैर्थिकप्ररूपणारूपाः पञ्च पञ्चेति दश प्रतिपत्तयः सन्ति १० । 'के ते संवच्छराणाई' कस्ते संवत्सराणामादिः, ते तव मते संवत्सराणामादिरन्तश्च कः कतिसंख्यकाः संवत्सराः ? इतिप्रतिपादकमेकादशं प्राभृतम् ११ । 'कइ संवच्छराइ य' कति संवत्सरा इति च, संवत्सराः कति सन्ति ?, पञ्च संवत्सरा सन्ति, तेषां मासा दिनानि मुहूर्त्ताश्च कति ?. तथा एकस्मिन् युगे चन्द्रऋतोः सूर्यऋतोश्च कथनम् दशविधयोगानां कथनं च, तथा कस्मिन् नक्षत्रे छत्रपरच्छत्रयोर्योगो भवति ? इत्येतद्विषयकं द्वादशं प्राभृतम् १२ ॥ गा० ७॥

'कहं चंदमसो वुड्ढी' कथं चन्द्रमसो वृद्धिः, उपलक्षणात् हानिश्च कथम् ? कृष्णपक्षे-चन्द्रस्य विमानं राहुविमानसंयोगेन रक्तो भवति तदा प्रतिदिनं क्रमश उद्योतस्य हानिर्जायते, शुक्लपक्षे राहुविमानेन विरक्तो भवति तदा क्रमश उद्योतस्य वृद्धिर्भवति, एवममावास्यायाश्चरमसमये चन्द्रो रक्तो भवति, पूर्णिमायाश्चरमसमये चन्द्रो विरक्तो भवति, शेषसमये रक्तो विरक्तश्च भवति, मुहूर्त्तादीनां मानं. चन्द्रो युगादौ कुतः प्रविशति, अथ नक्षत्रस्य मासार्धे चन्द्रस्यार्धमण्डलानि कति चलन्ति ? एवं चन्द्रस्य मासार्धे चन्द्रमण्डलानि कति चलन्ति ? नक्षत्रस्य—मासार्धादारभ्य चन्द्रस्य मासार्धपर्यन्तं चन्द्रस्य मण्डलार्धानि कतिसंख्यकान्यधिकानि चलन्ति, चन्द्रस्य स्वस्य कानि मण्डलानि सन्ति ? तथाऽन्यस्य ग्रहादेः कानि मण्डलानि सन्ति ? इत्यादिविषयप्रतिपादकं त्रयोदशं प्राभृतम् १३ 'कया ते जोसिणा बहू' कदा ते ज्योत्स्ना बह्वी, ते तव मते ज्योत्स्ना चन्द्रिका बह्वी प्रभूता कदा वर्त्तते ? उपलक्षणात् अल्पा वा कदा ? इत्यादिविषयकं चतुर्दशं प्राभृतम् १४, 'के य सिग्घगई वुत्ते' कश्च शीघ्रगतिरुक्तः, चन्द्रादीनां पञ्चानां ज्योतिष्काणां मध्ये कः शीघ्रगतिः कश्च मन्दगतिरस्ति, चन्द्रः सूर्यो नक्षत्रं वा एकस्मिन् मण्डले कति भागान् चलति ?, पञ्चानां युगानामेकैकस्मिन् मासे चन्द्रः सूर्यो नक्षत्रं च कति कति मण्डलानि चलन्ति ? तथा एकस्मिन् अहोरात्रे चन्द्रसूर्यनक्षत्राणि कति कति मण्डलानि चलन्ति ? सूर्यस्य नक्षत्रस्य

वा एकस्मिन् मण्डले कति कति अहोरात्राणि भवन्ति ?, एकस्मिन् युगे प्रत्येकस्य कति मण्डलानि भवन्ति, इत्यादिविषयकं पञ्चदशं प्राभृतम् १५ । 'किं ते जोसिणलक्खणं' किं ते ज्योत्स्नालक्षणम्, ते तव मते ज्योत्स्नायाः चन्द्रसूर्यप्रकाशरूपायाः किं लक्षणम , उपलक्षणात् छायायाः= अन्धकारस्य किं लक्षणम् ? इत्यादिविषयकं षोडशं प्राभृतम् १६ ॥ गा० ८ ॥

'चयणोववायं' च्यवनोपपातौ चन्द्रसूर्ययो श्च्यवनमुपपातश्चेतिविषयकं सप्तदशं प्राभृतम्, अत्रान्यतैर्थिकप्ररूपणारूपा. पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तयः सन्ति १७ । 'उच्चत्तं' उच्चत्वम्, चन्द्रसूर्यादीनां समभूमिभागात् कियत्प्रमाणकमुच्चत्वम्? इत्येतत्प्रतिपादकमष्टादशं प्राभृतम् । अत्रान्यतैर्थिकप्ररूपणारूपाः पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तयः सन्ति १८। 'सूरिया कति आहिया' सूर्याः कति आख्याताः, द्वीपसमुद्रेषु चन्द्रसूर्यादयः कति=कतिसंख्यकाः कथिताः ? इत्येतत्प्रतिपादकमेकोनविंशतितमं प्राभृतम्, अत्रान्यतैर्थिकप्ररूपणारूपा द्वादश प्रतिपत्तयः सन्ति १९ । 'अणुभावे केरिसे वुत्ते' अनुभावः कीदृश उक्तः ? चन्द्रसूर्ययोरनुभावः=प्रभावः सुखमित्यर्थः स कीदृशः किंस्वरूपकः उक्तः=कथितः ? चन्द्रसूर्ययोः सुखस्य वर्णनं युवकपुरुषदृष्टान्तेन तस्मादुत्तरोत्तरमनन्तगुणविशिष्टतरं सुखं वानव्यन्तरादारभ्यासुरकुमारपर्यन्तं वर्णितम्, तेभ्योऽनन्तगुणविशिष्टतरं सुखं ग्रहगणनक्षत्रताराररूपाणां कथितम्, तेभ्योप्यनन्तगुणविशिष्टतरं सुखं चन्द्रसूर्ययोः प्रतिपादितम् । चन्द्रसूर्ययोर्ग्रसनविषये राहुवर्णनम्—अत्रान्यतैर्थिकप्ररूपणारूपे द्वे द्वे चेति चतस्रः प्रतिपत्तयः सन्ति, अष्टाशीतिग्रहनामप्रतिपादनम्, चन्द्रप्रज्ञप्तेर्ज्ञानदानादिवर्णनं चेत्यादिविषयकं विंशतितमं प्राभृतम् २० । 'एवमेताणि वीसई' एवमेतानि विंशतिः प्राभृतानि चास्यां चन्द्रप्रज्ञप्त्यां सन्ति ।

एषु विंशतिसंख्यकेषु प्राभृतेषु मध्ये त्रिषु प्रथम—द्वितीय—दशमरूपेषु प्राभृतेषु क्रमशोऽष्ट—त्रि—द्वाविंशति—रूपाणि त्रयस्त्रिंशद् अन्तरप्राभृतानि सन्ति, शेषेषु सप्तदशसु प्राभृतेषु अन्तरप्राभृतानि न सन्ति । अत्रान्यतैर्थिकप्ररूपणारूपाः प्रतिपत्तयः सर्वा मिलित्वा सप्तपञ्चाशदधिकशतत्रयसंख्यकाः (३५७) भवन्ति ।

अथ प्राभृतशब्दस्य कोऽर्थः ? उच्यते—इह प्राभृतं नाम यन्महापुरुषाय देशकालौचित्येन परिणामसुखदं विशिष्टं वस्तु उपनीयते तत् प्राभृतनाम्ना लोके प्रसिद्धम् । प्राभ्रियते=पोष्यते महापुरुषस्यान्तर्गतं मनो येन तत् प्राभृतम्—उपहारः (भेट) इति भाषाप्रसिद्धम्, अनया व्युत्पत्त्या वक्ष्यमाणा शास्त्रपद्धतयोऽपि परमदुर्लभाः परिणामसुखदाश्च ता विनयादिगुणसंपन्नेभ्यः शिष्येभ्यो देशकालौचित्येन समुपनीयन्तेऽत एताः शास्त्रपद्धतयः प्राभृतानीव प्राभृतानि सन्ति तत एताः शास्त्रपद्धतयोऽपि प्राभृतशब्देन प्रोच्यन्ते । एषु चान्तर्गतानि प्राभृतानि प्राभृतप्राभृतानीति कथ्यन्ते ॥गा० ९॥

तदेवं विंशतेरपि प्राभृतानामर्थाधिकाराः प्रदर्शिताः, अथ विंशतेरपि प्राभृतानामपान्तर्गत-प्राभृतप्राभृतानां विषयान् वर्णयन पूर्वं प्रथमप्राभृतगताष्टप्राभृतप्राभृतानां विषयान् वर्णयति-'वुड्ढो-वुड्ढी' इत्यादि ।

मूलम्—वुड्ढो-वुड्ढी मुहुत्ताणं, अद्धमंडलसंठिई,
के ते चिण्णं पडियरइ, अंतरं किं चरंति य ॥१०॥
ओगाहइ केवइयं, केवइयं च विकंपई ।
मंडलाण य संठाणे विक्खंभे अट्ठ पाहुडा ॥११॥

छाया—वृद्ध्यपवृद्धी मुहूर्त्तानां अर्धमण्डलसंस्थितिः ।
कस्ते चीर्णं प्रतिचरति अन्तरं किं चरन्ति च ॥१०॥
अवगाहते कियत्कं, कियत्कं च विकम्पते ।
मण्डलानां च संस्थानं, विष्कम्भः अष्ट प्राभृतानि ॥११॥

व्याख्या-'वुड्ढो-वुड्ढी मुहुत्ताणं' वृद्ध्यपवृद्धी मुहूर्त्तानाम् प्रथमस्य प्राभृतस्याष्टौ प्राभृत-प्राभृतानि सन्ति, तेषु प्रथमे प्राभृतप्राभृते=अन्तरप्राभृते अहोरात्रगतानां मुहूर्त्तानां वृद्धिः—वर्ध-नम्, अपवृद्धिः=हानिः, इत्येतद्विषयवक्तव्यता वर्त्तते १ । 'अद्धमंडलसंठिई' अर्धमण्डलसंस्थितिः, दक्षिणोत्तरयोः संचरतोर्द्वयोः सूर्ययोर्यन्मण्डलार्धं, तस्य प्रत्यहोरात्रं या संस्थितिः=संस्थानम्=आकृतिः तस्या वर्णनं द्वितीयेऽन्तरप्राभृते वर्त्तते २ । 'के ते चिण्णं पडियरइ' कस्ते चीर्णं प्रतिचरति, भग-वन् ! ते तव मते द्वयोः सूर्ययोर्मध्ये कः सूर्यः कियत्क्षेत्रं स्पृष्ट्वा पुनः अपरेण सूर्येण चीर्णम्=पूर्वसं-क्रान्तं क्षेत्रं प्रतिचरति=संचरतीति। तथा जम्बूद्वीपे द्वौ सूर्यौ स्तः तन्मध्ये कः सूर्यो भरतक्षेत्रस्य, कश्च ऐरवतक्षेत्रस्यास्ति, स्वं प्रति स्वस्य कानि मण्डलानि, कानि चान्यस्य मण्डलानीत्यादिविषयकं तृतीयमन्तरप्राभृतम् ३ । 'अंतरं किं चरंति य' अन्तरं किं चरतश्च, द्वावपि सूर्यौ परस्परं किय-त्परिमितस्य क्षेत्रस्यान्तरं कृत्वा चारं चरतः ? इतिविषयकं चतुर्थमन्तरप्राभृतम् , अत्र विषये-ऽन्यतैर्थिकप्ररूपणारूपाः षट् प्रतिपत्तयः सन्ति ४ । 'ओगाहइ केवइयं' अवगाहते कियत्कं एकैकेन रात्रिन्दिवेन एकैकः सूर्यः कियत्कं=कियत्प्रमाणकं क्षेत्रमवगाहते-अवगाह्य चारं चरतीति-विषयकं पञ्चममन्तरप्राभृतम्, अत्र परमतरूपाः पञ्च प्रतिपत्तयः सन्ति ५, 'केवइयं च विकंपई' कियत्कं च विकम्पते, कियत्कं-कियत्प्रमाणकं च क्षेत्रं विकम्पते-विमुञ्चति विमुच्य चारं चरतीतिविषयकं षष्ठमन्तरप्राभृतम् , अत्र परमतरूपाः सप्त प्रतिपत्तयः सन्ति ६ । 'मंडलाण य संठाणे' मण्डलानां च संस्थानम्, सूर्यादीनां मण्डलानि कीदृशसंस्थानयुक्तानि वर्त्तन्ते ? इतिविषयकं सप्तममन्तरप्राभृतम् , अत्रान्यतैर्थिकप्ररूपणारूपा अष्ट प्रतिपत्तयः सन्ति ७ ।

वा एकैकस्मिन् मण्डले कति कति अहोरात्राणि भवन्ति ?, एकस्मिन् युगे प्रत्येकस्य कति मण्डलानि भवन्ति, इत्यादिविषयकं पञ्चदशं प्राभृतम् १५ । 'किं ते जोसिणलक्खणं' किं ते ज्योत्स्ना-लक्षणम्, ते तव मते ज्योत्स्नायाः चन्द्रसूर्यप्रकाशरूपायाः किं लक्षणम , उपलक्षणात् छायायाः= अन्धकारस्य किं लक्षणम् ? इत्यादिविषयकं षोडशं प्राभृतम् १६ ॥ गा० ८ ॥

'चयणोववायं' च्यवनोपपातौ चन्द्रसूर्ययो श्च्यवनमुपपातश्चेतिविषयकं सप्तदशं प्राभृतम् , अत्रान्यतैर्थिकप्ररूपणारूपा. पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तयः सन्ति १७ । 'उच्चत्तं' उच्चत्वम्, चन्द्रसूर्यादीनां समभूमिभागात् कियत्प्रमाणकमुच्चत्वम् ? इत्येतत्प्रतिपादकमष्टादशं प्राभृतम् । अत्रान्यतैर्थिकप्ररूपणारूपाः पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तयः सन्ति १८ । 'सूरिया कति आहिया' सूर्याः कति आख्याताः, द्वीपसमुद्रेषु चन्द्रसूर्यादयः कति=कतिसंख्यकाः कथिताः ? इत्येतत्प्रति-पादकमेकोनविंशतितमं प्राभृतम्, अत्रान्यतैर्थिकप्ररूपणारूपा द्वादश प्रतिपत्तयः सन्ति १९ । 'अणुभावे केरिसे वुत्ते' अनुभावः कीदश उक्तः ? चन्द्रसूर्ययोरनुभावः=प्रभावः सुखमित्यर्थः स कीदृशः किंस्वरूपकः उक्तः=कथितः ? चन्द्रसूर्ययोः सुखस्य वर्णनं युवकपुरुषदृष्टान्तेन तस्मादुत्त-रोत्तरमनन्तगुणविशिष्टतरं सुखं वानव्यन्तरादारभ्यासुरकुमारपर्यन्तं वर्णितम्, तेभ्योऽनन्त-गुणविशिष्टतरं सुखं ग्रहगणनक्षत्रताराह्रूपाणां कथितम्, तेभ्योऽप्यनन्तगुणविशिष्टतरं सुखं चन्द्रसूर्ययोः प्रतिपादितम् । चन्द्रसूर्ययोर्ग्रसनविषये राहुवर्णनम्–अत्रान्यतैर्थिकप्ररूपणारूपे द्वे द्वे चेति चतस्रः प्रतिपत्तयः सन्ति, अष्टाशीतिग्रहनामप्रतिपादनम्, चन्द्रप्रज्ञप्तेर्ज्ञानदानादिवर्णनं चेत्यादिविषयकं विंशतितमं प्राभृतम् २० । 'एवमेताणि वीसई' एवमेतानि विंशतिः प्राभृतानि चास्यां चन्द्रप्रज्ञप्त्यां सन्ति ।

एषु विंशतिसंख्यकेषु प्राभृतेषु मध्ये त्रिषु प्रथम–द्वितीय–दशमरूपेषु प्राभृतेषु क्रमशोऽष्ट–त्रि–द्वाविंशति–रूपाणि त्रयस्त्रिंशद् अन्तरप्राभृतानि सन्ति, शेषेषु सप्तदशसु प्राभृतेषु अन्तरप्राभृतानि न सन्ति । अत्रान्यतैर्थिकप्ररूपणारूपाः प्रतिपत्तयः सर्वा मिलित्वा सप्तपञ्चाशदधिकशतत्रय-संख्यकाः (३५७) भवन्ति ।

अथ प्राभृतशब्दस्य कोऽर्थः ? उच्यते–इह प्राभृतं नाम यन्महापुरुषाय देशकालौचित्येन परिणामसुखदं विशिष्टं वस्तु उपनीयते तत् प्राभृतनाम्ना लोके प्रसिद्धम् । प्राभ्रियते=पोष्यते महा-पुरुषस्यान्तर्गतं मनो येन तत् प्राभृतम्–उपहारः (भेट) इति भाषाप्रसिद्धम् , अनया व्युत्पत्त्या वक्ष्य-माणा शास्त्रपद्धतयोऽपि परमदुर्लभाः परिणामसुखदाश्च ता विनयादिगुणसंपन्नेभ्यः शिष्येभ्यो देश-कालौचित्येन समुपनीयन्तेऽत एताः शास्त्रपद्धतयः प्राभृतानीव प्राभृतानि सन्ति तत एताः शास्त्रपद्ध-तयोऽपि प्राभृतशब्देन प्रोच्यन्ते । एषु चान्तर्गतानि प्राभृतानि प्राभृतप्राभृतानीति कथ्यन्ते ॥गा० ९॥

तदेवं विंशतेरपि प्राभृतानामर्थाधिकाराः प्रदर्शिताः, अथ विंशतेरपि प्राभृतानामपान्तर्गत-प्राभृतप्राभृतानां विषयान् वर्णयन् पूर्वं प्रथमप्राभृतगताष्टप्राभृतप्राभृतानां विषयान् वर्णयति—'वुड्ढो-वुड्ढी' इत्यादि ।

मूलम्—वुड्ढो-वुड्ढी मुहुत्ताणं, अद्धमंडलसंठिई,
के ते चिण्णं पडियरइ, अंतरं किं चरंति य ॥१०॥
ओगाहइ केवइयं, केवइयं च विकंपई ।
मंडलाण य संठाणे विक्खंभे अट्ठ पाहुडा ॥११॥

छाया—वृद्ध्यपवृद्धी मुहूर्त्तानां अर्धमण्डलसंस्थितिः ।
कस्ते चीर्णं प्रतिचरति अन्तरं किं चरन्ति च ॥१०॥
अवगाहते कियत्कं, कियत्कं च विकम्पते ।
मण्डलानां च संस्थानं, विष्कम्भः अष्ट प्राभृतानि ॥११॥

व्याख्या—'वुड्ढो-वुड्ढी मुहुत्ताणं' वृद्ध्यपवृद्धी मुहूर्त्तानाम् प्रथमस्य प्राभृतस्याष्टौ प्राभृत-प्राभृतानि सन्ति, तेषु प्रथमे प्राभृतप्राभृते=अन्तरप्राभृते अहोरात्रगतानां मुहूर्त्तानां वृद्धिः—वर्धनम्, अपवृद्धिः=हानिः, इत्येतद्विषयवक्तव्यता वर्त्तते १ । 'अद्धमंडलसंठिई' अर्धमण्डलसंस्थितिः, दक्षिणोत्तरयोः संचरतोर्द्वयोः सूर्ययोर्यन्मण्डलार्धं, तस्य प्रत्यहोरात्रं या संस्थितिः=संस्थानम्=आकृतिः तस्या वर्णनं द्वितीयेऽन्तरप्राभृते वर्त्तते २ । 'के ते चिण्णं पडियरइ' कस्ते चीर्णं प्रतिचरति, भगवन् ! ते तव मते द्वयोः सूर्ययोर्मध्ये कः सूर्यः कियत्क्षेत्रं स्पृष्ट्वा पुनः अपरेण सूर्येण चीर्णम्=पूर्वसंक्रान्तं क्षेत्रं प्रतिचरति=संचरतीति । तथा जम्बूद्वीपे द्वौ सूर्यौ स्तः तन्मध्ये कः सूर्यो भरतक्षेत्रस्य, कश्च ऐरवतक्षेत्रस्यास्ति, स्वं प्रति स्वस्य कानि मण्डलानि, कानि चान्यस्य मण्डलानीत्यादिविषयकं तृतीयमन्तरप्राभृतम् ३ । 'अंतरं किं चरंति य' अन्तरं किं चरतश्च, द्वावपि सूर्यौ परस्परं कियत्परिमितस्य क्षेत्रस्यान्तरं कृत्वा चारं चरतः ? इतिविषयकं चतुर्थमन्तरप्राभृतम्, अत्र विषये ऽन्यतैर्थिकप्ररूपणारूपाः षट् प्रतिपत्तयः सन्ति ४ । 'ओगाहइ केवइयं' अवगाहते कियत्कं एकैकेन रात्रिन्दिवेन एकैकः सूर्यः कियत्कं=कियत्प्रमाणकं क्षेत्रमवगाहते—अवगाह्य चारं चरतीति-विषयकं पञ्चममन्तरप्राभृतम्, अत्र परमतरूपाः पञ्च प्रतिपत्तयः सन्ति ५, 'केवइयं च विकंपई' कियत्कं च विकम्पते, कियत्कं—कियत्प्रमाणकं च क्षेत्रं विकम्पते—विमुञ्चति विमुच्य चारं चरतीतिविषयकं षष्ठमन्तरप्राभृतम्, अत्र परमतरूपाः सप्त प्रतिपत्तयः सन्ति ६ । 'मंडलाण य संठाणे' मण्डलानां च संस्थानम्, सूर्यादीनां मण्डलानि कीदृशसंस्थानयुक्तानि वर्त्तन्ते ? इतिविषयकं सप्तममन्तरप्राभृतम्, अत्रान्यतैर्थिकप्ररूपणारूपा अष्ट प्रतिपत्तयः सन्ति ७ ।

'विक्खंभे' विष्कम्भ.—तेषामेव सूर्यादिमण्डलानां विष्कम्भः कियत्प्रमाण इति, उपलक्षणात् बाहल्यस्य आयामस्य परिधेश्च ग्रहणं भवति, इतिविषयकमष्टममन्तरप्राभृतम् , अत्र परमतरूपास्तिस्रः प्रतिपत्तयो वर्त्तन्ते ८। 'अट्ठ पाहुडा' अष्ट प्राभृतानि प्रथमे प्राभृते एतानि पूर्वोक्तानि अष्टसंख्यकानि अन्तरप्राभृतानि सन्ति। एतेषु अष्टस्वपि प्राभृतप्राभृतेषु परमतरूपाः सर्वा एकोनत्रिंशत् प्रतिपत्तयः सन्तीति ॥१०-११॥

पूर्वमष्टानामन्तरप्राभृतानां निरूपणं कृतम्, सम्प्रति तेषु कुत्र कति कति परमतरूपाः प्रतिपत्तयः सन्तीति संग्रहगाथामाह—'छप्पंच य' इत्यादि।

मूलम्—छप्पंच य सत्तेव य, अट्ठ य तिन्नि य हवंति पडिवत्ती
पढमस्स पाहुडस्स उ, हवंति एयाओ पडिवत्ती ॥१२॥

छाया—षट् पञ्च च सप्तैव च अष्ट च तिस्रश्च भवन्ति प्रतिपत्तयः।
प्रथमस्य प्राभृतस्य तु, भवन्ति एताः प्रतिपत्तयः ॥१२॥

व्याख्या—अत्राद्येषु त्रिषु अन्तरप्राभृतेषु प्रतिपत्तयो न सन्ति, चतुर्थमारभ्याष्टमपर्यन्तं प्रतिपत्तयः सन्ति, ता इमाः—'छ' इति षट् चतुर्थे प्राभृतप्राभृते परमतरूपाः षट् प्रतिपत्तयो वर्त्तन्ते ४। 'पंच य' इति पञ्च च पञ्चमे पञ्चसंख्याकाः प्रतिपत्तयः सन्ति ५। 'सत्तेव य' सप्तैव च षष्ठे सप्त ६। 'अट्ठ य' अष्ट च सप्तमेऽष्ट ७। 'तिन्नि य हवंति पडिवत्ती' तिस्रश्च भवन्ति प्रतिपत्तयः, अष्टमे तिस्रः प्रतिपत्तयः सन्ति ८। एवम् 'पढमस्स पाहुडस्स उ' प्रथमस्य प्राभृतस्य तु प्रथमस्य प्राभृतस्य मूलप्राभृतस्य चतुरादिषु पञ्चसु प्राभृतप्राभृतेषु सर्वा एकोनत्रिंशत्संख्यका 'भवंति पडिवत्ती' भवन्ति प्रतिपत्तयः, भवन्ति सन्ति प्रतिपत्तयः—अन्यतैर्थिकप्ररूपणारूपा इति सर्वेषु प्राभृतप्राभृतेषु परमतमुपप्रदर्श्य पश्चात् स्वमतमपि प्रकटीकृतं भगवतेति ॥१२॥

अथ विंशतिमूलप्राभृतेषु द्वितीयमूलप्राभृतगतानां त्रयाणां प्राभृतप्राभृतानामर्थाधिकारानाह—'पडिवत्तीओ' इत्यादि।

मूलम्—पडिवत्तीओ उदए, अदुवऽत्थमणेसु य।
भेयघाए कण्णकला, मुहुत्ताण गई इय ॥१३॥

छाया—प्रतिपत्तय उदये अथवाऽस्तमयनेषु च।
भेदघातः कर्णकला मुहूर्त्तानां गतिरिति ॥१३॥

व्याख्या—'पडिवत्तीओ उदए अदुवऽत्थमणेसु य' प्रतिपत्तय उदये अथवाऽस्तमयनेषु च द्वितीयप्राभृतस्य प्रथमेऽन्तरप्राभृते सूर्यस्य उदये अथवा अस्तमयनेषु च सूर्यः कुत्रोदेति कुत्रास्त-

मेतीत्येवंरूपाः प्रतिपत्तयः परमतरूपाः प्रतिपादिताः सन्ति १। द्वितीयेऽन्तरप्राभृते 'भेयघाए कण्ण-कला' भेदघातः कर्णकला, तत्र भेदः—मण्डलस्यापान्तरालं, तत्र घातो—गमनम् 'हन हिंसागत्योः इतिवचनात्' स केषाञ्चिन्मतेनात्र प्रतिपादनीयः, यथा विवक्षितमण्डलं सूर्यः पूरयित्वा तत्पश्चाद् अपरमनन्तरं मण्डलं संक्रामतीत्येवंरूपो भेदघातोऽत्र वर्णनविषयो वर्त्तते। तथा कर्णकलेति—कर्णः कोटिभागः अग्रभाग इत्यर्थः, तमधिकृत्यान्येषां मतेन कला वर्णनीयाः, यथा विवक्षितमण्डले द्वावपि सूर्यौ प्रथमक्षणे प्रविष्टौ सन्तौ पूर्वापरस्थितं कोटिद्वयं लक्षीकृत्य बुद्धिद्वारा सम्पूर्णस्य यथावस्थित-मण्डलस्य विवक्षितत्वादपरमण्डलस्य कर्णकोटिभागं संमुखीकृत्य एकैकया कलया मात्रयेत्यर्थः अपर-मण्डलाभिमुखं गच्छन्तौ चारं चरतः, इत्येवंविषयोऽपि चात्र द्वितीयेऽन्तरप्राभृते वर्त्तत इति२। तृतीयेऽ-न्तरप्राभृते च 'मुहुत्ताणं गई इय' प्रतिमण्डलं मुहूर्त्तानां गतिरिति गतिपरिमाणं वर्णनीयमस्ति, इति—एवं पूर्वोक्ताः द्वितीयप्राभृतस्य त्रयाणां प्राभृतप्राभृतानां विषयाः कथिता इति ॥१३॥

सूर्यः कदा शीघ्रगतिर्भवति कदा मन्दगतिश्चेति प्रतिपादयिषुराह—'निक्खममाणे' इत्यादि।

मूलम्—निक्खममाणे सिग्घगई, पविसंते मंदगई इय।
चुलसीइसयं पुरिसाणं, तेसिं च पडिवत्तीओ ॥१४॥

छाया—निष्क्रामन् शीघ्रगतिः, प्रविशन् मन्दगतिरिति।
चतुरशीतिशतं पुरुषाणां, तेषां च प्रतिपत्तयः ॥१४॥

व्याख्या—'निक्खममाणे' निष्क्रामन् सर्वाभ्यन्तरमण्डलाद् बहिर्दक्षिणाभिमुखं निर्गच्छन्, उत्तरोत्तरमण्डलं संक्रामन् सूर्यः 'सिग्घगई' शीघ्रगतिः शीघ्रगतिमान् भवति। अस्मिन् समये उत्तरोत्तरं दिनप्रमाणस्य हानिः, रात्रिप्रमाणस्य च वृद्धिर्भवतीति भावः। तथा 'पविसंते' प्रविशन् सर्वबाह्यमण्डलादभ्यन्तरमण्डलाभिमुखं गच्छन् सूर्यः 'मंदगई' मन्दगतिः अन्तोऽन्तो मण्डलमागच्छन् उत्तरोत्तरं मन्दमन्दतरादिना मन्दगतिः मन्दगतिमान् भवति। अस्मिन् समये उत्तरोत्तरं दिनप्रमाणस्य वृद्धिः रात्रिप्रमाणस्य च हानिर्भवतीति भावः। 'तेसिं च' तेषां च मण्डलानां 'चुलसीइसयं' चतुरशीतिशतं—चतुरशीत्यधिकं शतमेकं मण्डलानां वर्त्तते, सूर्यस्य तानि मण्डलानि चतुरशीत्यधिकशतसंख्यकानि सन्ति, तेषां च मण्डलानां विषये सूर्यस्य प्रतिमुहूर्त्त-गतिपरिमाणवक्तव्यतायां 'पुरिसाणं' पुरुषाणाम् अन्यतैर्थिकजनानां 'पडिवत्तीओ' प्रति-पत्तयः—मतान्तररूपाः सन्ति ॥१४॥

सम्प्रति द्वितीयमूलप्राभृतगतानां पूर्वोक्तानां त्रयाणां प्राभृतप्राभृतानां मध्ये कस्मिन् कस्मिन् प्राभृतप्राभृते कति कति प्रतिपत्तयः सन्तीति निरूपयन्नाह—'उदयंमि' इत्यादि।

मूलम्—उदयम्मि अट्ठ भणिया, भेयग्घाए दुवे च पडिवत्ती।
चत्तारि मुहुत्तगईए, होंति त्तिइयम्मि पडिवत्ती ॥१५॥

छाया—उदये अष्ट भणिताः, भेदघाते द्वे च प्रतिपत्ती ।
चतस्रः मुहूर्त्तगतौ, भवन्ति द्वितीये प्रतिपत्तय ॥१५॥

व्याख्या—'उदयम्मि' उदये उदयशब्दोपलक्षिते प्रथमे प्राभृतप्राभृते 'अट्ठ' अष्टौ अष्टसंख्यका प्रतिपत्तयः 'भणिया' भणिताः कथिताः तीर्थंकरगणधरैरिति गम्यते १, 'भेयग्घाए' भेदघाते भेदघातोपलक्षिते द्वितीये प्राभृतप्राभृते 'दुवे च' द्वे च द्विसंख्यके 'पडिवत्ती प्रतिपत्ती-वर्तेते २, 'चत्तारि' चतस्रः चतुःसंख्यकाः प्रतिपत्तयः, कुत्र ? 'मुहुत्तगईए' मुहूर्त्तगतौ 'मुहुत्ताणगई' इतिशब्दोपलक्षिते तृतीये प्राभृतप्राभृते सन्ति ३ । इत्येवं द्वितीयप्राभृतस्य त्रिपु प्राभृतप्राभृतेपु सर्वाश्चतुर्दशसंख्यकाः प्रतिपत्तयो भवन्तीति ॥१५॥

साम्प्रतं विंशतिमूलप्राभृतेपु मध्ये दशममूलप्राभृतगतद्वाविंशतिसंख्यकान्तरप्राभृतानामर्थाधिकारान् वर्णयितुं गाथाचतुष्टयमाह—'आवलिया' इत्यादि ।

मूलम्—आवलिया १ मुहुत्तग्गे २ एवं भागो ३ य जोगस्स ४ ।
कुला ५ य पुण्णमासी ६ य, संनिवाए ७ य संठिई ८॥१६॥
तारग्गं ९ च णेता इ १०, चंदमग्गत्ति ११ यावरे।
देवाण य अज्झयणा १२, मुहुत्ताणं नामया १३ इय ॥१७॥
दिवसा राई य वुत्ता १४ य, तिहि-गोत्ता १६ भोयणाणि य १७
आइच्च चार १८ मासा १९ य, पंच संवच्छरा २० इय ॥१८॥
जोइसस्स य दाराइं, २१ नक्खत्तविसए २२ इय।
दसमे पाहुडे एए, बावीसं पाहुडपाहुडा ॥१९॥

छाया—आवलिका १ मुहूर्त्ताग्रं २-एवं भागाश्च ३ योगस्य ४ ।
कुलाश्च ५ पूर्णमासी ६ च, संनिपातश्च ७ संस्थितिः ८ ॥१६॥
ताराग्रं ९ च नेता १० इति, चन्द्रमार्ग ११ इति चापरस्मिन् ।
देवानां च अध्ययनानि, १२ मुहूर्त्तानां नामकानि १३ इति च ॥१७॥
दिवसा रात्रयश्च उक्ताश्च १४ तिथिः-१५ गोत्राणि १६ भोजनानि १७च ।
आदित्यचारः १८ मासाश्च १९ संवत्सरा २० इति ॥१८॥
ज्योतिपश्च द्वाराणि, २१ नक्षत्रविपय २२ इति ।
दशमे प्राभृते पते, द्वाविंशतिः प्राभृतप्राभृतानि ॥१९॥

व्याख्या—दशमे मूलप्राभृते द्वाविंशतिसंख्यकानि प्राभृतप्राभृतानि सन्ति, तेषामर्थाधिकारान् दर्शयति—तत्र प्रथमे प्राभृतप्राभृते 'आवलिया' इति—आवलिकाक्रमो वर्णनीयो वर्त्तते, यथा—अभिजिदादीनि नक्षत्राणि भवन्तीति, अत्र पञ्च प्रतिपत्तयः सन्ति १, 'मुहुत्तग्गे' इति मुहूर्त्ताग्रम् नक्षत्रविषयकं मुहूर्त्तप्रमाणं द्वितीये प्राभृतप्राभृते वर्त्तते, अर्थात् चन्द्रेण सह नक्षत्राणां कतिमुहूर्त्तपर्यन्तं योगो भवति, तथा सूर्येण सह कति अहोरात्रिपु योगो भवतीति २, 'एवं' एवम्—अनेन प्रकारेण 'भागा' इति भागाः पूर्वपश्चिमादिप्रकारेण तृतीये प्राभृतप्राभृते वक्तव्या इति ३, 'जोगस्स' योगस्य. चतुर्थे प्राभृतप्राभृते योगस्यादिर्वर्णनीयः, यथा वक्ष्यति च—"कहं ते जोगस्स आदी आहियत्ति वएज्जा" इति रूपः, इदमुक्तं भवति-युगस्यादौ चन्द्रेण सह प्रातः सायंकाले च नक्षत्रस्य योगो भवतीति कथनमत्र वर्त्तते ४, 'कुला य' कुलानि च पञ्चमे प्राभृते कुलानि, च—शब्दात् उपकुलानि कुलोपकुलानि चाधिकृत्य नक्षत्राणां चन्द्रेण सह योगो भवतीति वर्णनं विद्यते ५, 'पुण्णमासी य' पौर्णमासी च, षष्ठे प्राभृतप्राभृते पूर्णमासीवक्तव्यता, च-शब्दाद् अमावास्याया अपि वक्तव्यता विज्ञेया, पूर्णिमायां यस्य नक्षत्रस्य योगो भवति तन्नक्षत्रसत्कस्य कुलस्य कुलोपकुलस्य च वर्णनं वर्त्तते, एवममावास्यायामपि विज्ञेयम् । एकस्मिन् युगे द्वाषष्टि६२संख्यकाः पौर्णमास्यः, द्वाषष्टिसंख्यका एवामावास्या इति सर्वाः संमिलिताः चतुर्विंशत्यधिकशत(१२४)संख्यकाः पर्वाणि कथ्यन्ते, इयत्परिमितानामेव नक्षत्राणां चन्द्रेण सह योगो भवतीति ६, 'संनिवाए य' संनिपातश्च, संनिपातः संयोग इति, यस्यां पूर्णिमायां यस्य नक्षत्रस्य चन्द्रेण सह योगो भवति तस्यैव नक्षत्रस्य अमावास्यायां कस्मिन् मासे चन्द्रेण सह योगो भवतीति सप्तमे प्राभृतप्राभृते विद्यते ७, 'संठिई' संस्थितिः, अष्टमे प्राभृतप्राभृते अष्टाविंशतिनक्षत्राणां संस्थानकथनं वर्त्तते८, ॥ १६ ॥ 'तारग्गं च' ताराग्रं च, नवमे प्राभृतप्राभृते अष्टाविंशतिनक्षत्राणां तारापरिमाणं, कस्य नक्षत्रस्य कति ताराः ? इति वर्णयिष्यते ९, 'णेता इ' नेता इति, दशमे प्राभृतप्राभृते 'नेता' इति नायकः रात्रेरधिष्ठायकः' यन्नक्षत्रं यस्मिन् मासे स्वस्योदयेन अस्तमयनेन चाहोरात्रस्य समाप्तिं नयति, तथा यन्नक्षत्रमाश्रित्य यस्यां तिथौ रात्रेः पौरुषीभागः क्रियते तस्य वर्णनमत्र वर्त्तते १०, 'चंदमग्गत्ति यावरे' चन्द्रमार्ग इति चापरस्मिन्, अपरस्मिश्च-अन्यस्मिन् एकादशे प्राभृतप्राभृते, इत्यर्थः चन्द्रमार्ग इति चन्द्रमार्गस्य उपलक्षणात् सूर्यमार्गस्य च नक्षत्राणि समधिकृत्य कथनं वर्त्तते, यथा चन्द्रमण्डलस्य कानि कानि नक्षत्राणि दक्षिणोत्तरभागेन योगं योजयन्तीति, चन्द्रस्य यस्मिन् मण्डले नक्षत्रमण्डलानि संक्रामन्ति यस्मिंश्च न संक्रामन्ति, इति, सूर्यचन्द्रमण्डलेषु नक्षत्राणां मण्डलानि संक्रामन्ति इति, सूर्यचन्द्रयोर्विकम्पनक्षेत्रं चेत्यादि

वर्णनमस्ति ११, 'देवाणं अज्झयणा' देवानामध्ययनानि, द्वादशे प्राभृतप्राभृते देवानां नक्षत्राधिष्ठायकदेवानाम् अध्ययनानि—अधीयन्ते ज्ञायन्ते एभिरिति व्युत्पत्त्या अध्ययनानि अभिधेयानि नामानि वर्णनीयत्वेन सन्ति १२,'मुहुत्ताणं नामया इय' मुहूर्त्तानां नामकानीति च त्रयोदशे प्राभृतप्राभृते एकाहोरात्रसम्बन्धिनां त्रिंशन्मुहूर्त्तानां किं किं नामेति वर्णनम् १३॥ १७॥ 'दिवसा राई य वुत्ता य' दिवसा रात्रयश्च उक्ताश्च—चतुर्दशे प्राभृतप्राभृते एकस्य पक्षस्य दिवसानां रात्रीणां च प्रकरणात् नामानि उक्तानीति १४, 'तिही' तिथयः, पञ्चदशे प्राभृतप्राभृते 'तिहि'—इति पञ्चदशतिथीनां नामान्युक्तानि १५, 'गोत्ता' गोत्राणि, षोडशे प्राभृतप्राभृते 'गोत्ता' इति—अष्टाविंशतिनक्षत्राणां गोत्राणि प्रोक्तानि १६, 'भोयणाणि य' भोजनानि च, सप्तदशे प्राभृतप्राभृते 'भोयणाणि' इति—अष्टाविंशतिनक्षत्राणां भोजनान्युक्तानि, यथा—अमुकस्मिन् नक्षत्रे अमुक वस्तु भुक्त्वा गमनं शुभाय भवतीति १७, 'आइच्चचार' आदित्यचारः अष्टादशे प्राभृतप्राभृते आदित्यस्य सूर्यस्य, उपलक्षणात् चन्द्रस्य च चारः—चरणं संचरणलक्षणं कथितम् १८, 'मासा य' मासाश्च—एकोनविंशतितमे प्राभृतप्राभृते एकस्य संवत्सरस्य कति मासाः, तेषां च कानि लौकिकनामानि ? कानि च लोकोत्तरनामानीति कथनम् १९, 'पंच संवच्छरा इय' पञ्च संवत्सरा इति। पञ्च संवत्सरा इति पञ्चेति पञ्चसंख्यकाः—नक्षत्र—युग—प्रमाण—लक्षण—शनैश्चरसंज्ञकाः संवत्सराः, तेषां वक्तव्यताऽत्र विंशतितमे प्राभृतप्राभृते वर्त्तते २०॥१८॥'जोइसस्स य दाराइं, ज्योतिषश्च द्वाराणि—एकविंशतितमे प्राभृतप्राभृते ज्योतिषः—नक्षत्रचक्रस्य द्वाराणि वाच्यानि यथा—अष्टाविंशतिनक्षत्राणि पूर्वपश्चिमादिप्रकारेण किंकिंद्वाराणि—कस्य नक्षत्रस्य किं द्वारमिति वर्णनम्, अत्र पञ्च प्रतिपत्तयः सन्ति २१, 'नखत्तविसए इय' नक्षत्रविषय इति—द्वाविंशतितमे प्राभृतप्राभृते नक्षत्राणाम् उपलक्षणात् चन्द्रसूर्ययोगादीनां च—विषयः—निर्णयोऽत्र वक्तव्यत्वेन वर्त्तते २२। 'दसमे पाहुडे' दशमे मूलप्राभृते 'एए' एते पूर्वप्रदर्शिताः 'बावीसं' द्वाविंशतिः द्वाविंशतिसंख्यकाः 'पाहुडपाहुडा' प्राभृतप्राभृतानि सन्तीति। इदमुक्तं भवति—प्रथमप्राभृतादारभ्य दशमप्राभृतपर्यन्तम् (२९—१४—१२—३२—२०—२५—२०—३—१२६—१०) एकनवत्यधिकशतद्वय (२९१) परिमिताः प्रतिपत्तयः सन्ति। तदग्रे एकादशप्राभृतादारभ्य षोडशप्राभृतपर्यन्तं प्रतिपत्तयो न सन्ति। पुनः सप्तदशाद् विंशतिपर्यन्तं चतुर्षु प्राभृतेषु क्रमशः पञ्चविंशति-पञ्चविंशति-द्वादशचतुःसंख्यकप्रतिपत्तिसंमेलनेन सर्वाः षट्षष्टि' (६६) प्रतिपत्तयः सन्ति। एवं सर्वेषु विंशतिसंख्यकेषु प्राभृतेषु सर्वाः प्रतिपत्तयो मिलित्वा सप्तपञ्चाशदधिकशतत्रय(३५७)संख्यका भवन्तीति कोष्ठके प्रदर्शितम् अत्र तृतीयमूलप्राभृतादारभ्य नवममूलप्राभृतपर्यन्तं, तथा एकादशादारभ्य विंशतितममूलप्राभृतपर्यन्तं च प्राभृतप्राभृतानि न सन्तीति ॥१९॥

मूलप्राभृतान्तरप्राभृत–प्रतिपत्तीनां काष्ठकमिदम्—

मूलप्राभृत-क्रमाङ्काः	अन्तरप्राभृत सख्या	प्रतिपत्ति-संख्या	मूलप्राभृत-क्रमाङ्काः	अन्तरप्राभृत-संख्या	प्रतिपत्ति-संख्या
१	८	२९	११	०	०
२	३	१४	१२	०	०
३	०	१२	१३	०	०
४	०	३२	१४	०	०
५	०	२०	१५	०	०
६	०	२५	१६	०	०
७	०	२०	१७	०	२५
८	०	३	१८	०	२५
९	०	१२६	१९	०	१२
१०	२२	१०	२०	०	४

पूर्वं मूलप्राभृतान्तरप्राभृत–तदन्तर्गतप्रतिपत्तिसंख्या, तदधिकाराश्चाभिहिताः । साम्प्रतं प्रथमप्राभृतस्य प्रथमेऽन्तरप्राभृते यदुक्तम् 'वुड्ढो–वुड्ढी मुहुत्ताणं' इति तदेव विवेचयितुं प्रथमं सूत्रमाह 'तेणं कालेणं' इत्यादि ।

मूलम्—तेणं कालेणं तेणं समएण मिहिला णामं णयरी होत्था, वण्णओ। तीसे णं मिहिलाए णयरीए वहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं मणिभद्दे णामं चेइए होत्था चिराईए वण्णओ। तीसे णं मिहिलाए णयरीए जियसत्तूणामं राया, धारणी देवी, वण्णओ। तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे, परिसा णिग्गया, धम्मो कहिओ, परिसा पडिगया जाव राया जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई णामं अणगारे गोयमगोत्ते सत्तुस्सेहे जाव पज्जुवासमाणे एवं वयासी–ता कहं ते मुहुत्ताणं वुड्ढोवुड्ढी य आहिएत्ति वएज्जा 'गोयमा'! ता अट्ठ एगूणवीसे मुहुत्तसयाइं सत्तावीसं च सत्तसट्ठिभागा मुहुत्तस्स आहिएत्ति वएज्जा ॥ सू० १॥

छाया—तस्मिन् काले तस्मिन् समये मिथिलानाम नगरी आसीत्, वर्णकः। तस्याः खलु मिथिलाया नगर्या वहिः उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे, अत्र खलु मणिभद्रं नाम चैत्यमासीत् चिरातीतं वर्णकः। तस्यां खलु मिथिलायां नगर्यां जितशत्रुर्नाम राजा, धारणी देवी वर्णकः। तस्मिन् काले तस्मिन् समये स्वामी समवसृतः परिषत् निर्गता, धर्मः कथितः, परिषत् प्रतिगता, यावत् राजा यामेव दिशं (आश्रित्य) प्रादुर्भूतः तामेव-

दिशं प्रतिगतः। तस्मिन् काले तस्मिन् समये श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य ज्येष्ठः अन्तेवासी इन्द्रभूतिर्नाम अनगार गौतमगोत्रः सप्तोत्सेध यावत् पर्युपासीन- एवमवादीत्-तावत् कथं ते मुहूर्त्तानां वृद्ध्यपवृद्धी च आख्याते इति वदेत्, गौतम! तावत् अष्टौ एकोनविंशतिः मुहूर्त्तशतानि, सप्तविंशतिश्च सप्तषष्टिभागाः मुहूर्त्तस्य आख्याता इति वदेत् ॥ सू० १॥

व्याख्या—'तेणं कालेणं' तस्मिन् काले भगवद्विहरणकाले 'तेणं समएणं' तस्मिन् समये हीयमानलक्षणे चतुर्थारकरूपे 'मिहिला णामं णयरी होत्था' मिथिला नाम नगर्यासीत्। सा तदा कीदृशी आसीत्? इत्याह—'वण्णओ' वर्णकः वर्णनप्रकार,: तस्या नगर्या अत्र वर्णनं वक्तव्यम्, तच्च वर्णनम् औपपातिकसूत्रोक्तचम्पानगरीवत् 'ऋद्धत्थिमियसमिद्धा' इत्यादिनगरी-वर्णनं सर्वमत्र वाच्यम्। 'तीसे णं' तस्याः खलु 'मिहिलाए णयरीए' मिथिलाया नगर्या 'वहिया' वहिः वहिर्भागे 'उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए' उत्तरपौरस्त्ये दिग्भागे उत्तरपूर्वयोरन्तराले ईशान-कोणे इत्यर्थः 'एत्थ णं' अत्र खलु अत्रैव नान्यत्र 'मणिभद्दे णामं चेइए' मणिभद्रं नाम चैत्यं यक्षा-यतनम् 'होत्था' आसीत्, कीदृग्? इत्याह—'चिराईए' चिरातीतम् अत्यन्तातीतकालिकम् अति-पुरातनम् 'वण्णओ' वर्णकः, अस्यापि वर्णनम् औपपातिकसूत्रोक्तपूर्णभद्रचैत्यवद्विज्ञेयम्। 'तीसे णं मिहिलाए णयरीए' तस्यां खलु मिथिलायां नगर्याम् 'जियसत्तू णामं राया' जितशत्रुर्नाम राजा, 'धारणी देवी' धारणी देवी—धारणीनाम्नी पट्टराज्ञी आसीत्। 'वण्णओ' वर्णकः वर्णनमत्र वक्तव्यमिति। राजराज्ञी वर्णनमत्रौपपातिकसूत्रोक्तो वाच्यः। 'तेणं कालेणं' तस्मिन् काले जित-शत्रुशासनकाले 'तेणं समएणं' तस्मिन् समये तदुपलक्षितवर्त्तमानसमये 'सामी' स्वामी श्रीमहावीरः 'समोसढे' समवसृतः सुखसुखेन विहरन् ग्रामानुग्रामं द्रवन् यथारूपमव-ग्रहमवगृह्य संयमेन तपसा आत्मानं भावयन् तस्मिन् मणिभद्रे चैत्ये समागतः। 'परिसा णि-ग्गया' परिषन्निर्गता, भगवदागमनं श्रुत्वा मिथिलानगरीतो जनसमूहो भगवद्वन्दनार्थं तद्देशनाश्रव-णार्थं च निर्गत-इत्यर्थः। 'धम्मो कहिओ' धर्मः कथितः अगारानगाररूपः श्रुतचारित्ररूपश्च धर्मो भगवता प्रतिपादितः, अत्रापि औपपातिकसूत्रोक्ता 'अत्थि लोए अत्थि अलोए' तथा 'जह जीवा वज्झंति' इत्यादिरूपा सर्वा धर्मदेशनाऽत्र वक्तव्या। 'परिसा पडिगया' परिषत् प्रतिगता, धर्म-देशनां श्रुत्वा परिषद् यस्या दिशाया प्रादुर्भूता तस्यामेव दिशायां प्रतिगता—गतवती। 'जाव राया जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए' यावत् राजा यामेव दिशमाश्रित्य प्रादुर्भूतः ता मेव दिशं प्रतिगतः, जितशत्रुराजाऽपि भगवतोऽन्तिके धर्मं श्रुत्वा निशम्य हृष्टतुष्टः प्रीतिमना हर्षवश-विसर्पद्धृदयः श्रमणं भगवन्तं महावीरं प्रश्नानि पृष्ट्वा अर्थान् गृहीत्वा श्रमणं भगवन्तं महावीरं वन्दित्वा नमस्यित्वा मणिभद्राच्चैत्यात् प्रतिनिष्क्रम्य यामेव दिशमाश्रित्य प्रादुर्भूतः समागतः तामेव

दिशं प्रतिगतः। 'तेणं कालेणं' तस्मिन् काले परिषत्प्रतिगमनानन्तरं 'तेणं समएणं' तस्मिन् समये परिषद्गमनानन्तरं तदुपलक्षितसमये 'समणस्स भगवओ महावीरस्स' श्रमणस्य भगवतो महावीरस्य 'जेट्ठे अंतेवासी' ज्येष्ठोऽन्तेवासी प्रधानशिष्यः, अनेन गौतमस्य प्रथमागमनं सकलसंघाधिपतित्वं च सूच्यते। 'इंदभूई णामं अणगारे'। इन्द्रभूतिर्नाम—इन्द्रभूतिनामकः अनगारः बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहवर्जितः, 'गोयमगोत्ते' गौतमगोत्रः—गोत्रेण गौतमः गौतमगोत्रोत्पन्न इत्यर्थः, किं विशिष्टः ? इत्याह— 'सत्तुस्सेहे' सप्तोत्सेधः सप्तहस्तोच्छ्रेययुक्तशरीरधारी 'जाव' यावत्, अत्र याव त्पदेन 'समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसहनारायसंघयणे' इत्यारभ्य 'सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं' इत्यादि संग्राह्यम्, तद्व्याख्यानं च श्रीभगवतीसूत्रस्य प्रथमशतकेऽस्मत्कृतायां प्रमेयचन्द्रिकाटीकायां विलोकनीयम्। 'पज्जुवासमाणे' पर्युपासीनः मनोवाक्कायरूपया त्रिविधया पर्युपासनया सेवां कुर्वन् 'एवं वयासी' एवमवादीत्—एवम्—वक्ष्यमाणप्रकारेण अवादीत्—कथितवान्। किं कथितवान् ? इत्याह—'ता कहं ते' इत्यादि। 'ता कहं ते' तावत् कथं ते तावत् प्रथमम् सन्त्यप्यन्येऽस्यां चन्द्रप्रज्ञप्त्यां बहवो विषया प्रष्टव्यत्वेन, किन्तु आसतां ते, साम्प्रतं पूर्वं त्वेतावदेव पृच्छामि यत्—हे भगवन् ते—तव मते तव ज्ञानविषये कथं केन प्रकारेण 'मुहुत्ताणं' मुहूर्त्तानाम् नक्षत्रसूर्यचन्द्रऋतुमाससम्बन्धिनाम् अहोरात्रविषयाणां 'वुड्ढोवुड्ढी य' वृद्ध्यवृद्धी च चकारोऽत्र पृथक्पदापेक्षया, तेन वृद्धिरपवृद्धिश्चेति ज्ञातव्यम्। वृद्धिः दिवसरात्रिगतमुहूर्त्तानां वर्धनम्, अपवृद्धिः—तेषामेव हानिश्च 'आहिएत्ति' आख्याते—कथिते इति 'वएज्जा' वदेत् एतद्विषयं यदि कोऽपि मां पृच्छेत् तदाऽहं किमुत्तरं ददामीति हे भगवन्! कृपया भवान् वदतु कथयतु। एवमग्रेऽपि विज्ञेयम्। भगवानाह—हे गौतम! 'ता' तावत् प्रथमम् यथा त्वया यत् प्रथमं पृष्टं तदेव तदुत्तरमाश्रित्य प्रथमं कथयामि, तथाहि—'अट्ठ एगूणवीसं मुहुत्तसयाइं' अष्टौ एकोनविंशतिर्मुहूर्त्तशतानि, एकस्य नक्षत्रमासस्य एकोनविंशत्यधिकान्यष्टशतानि(८१९) मुहूर्त्तानाम्, तथा 'मुहुत्तस्स' मुहूर्त्तस्य एकस्य च मुहूर्त्तस्य 'सत्तावीसं च' सप्तविंशतिश्च 'सत्तसट्ठिभागा' सप्तषष्टिभागाः, एकस्य मुहूर्त्तस्य यदि सप्तषष्टिर्भागाः क्रियन्ते तेषु सप्तविंशतिभागा गृह्यन्ते ($८१९\frac{२७}{६७}$) एतावन्मुहूर्त्तपरिमितो नक्षत्रमासो भवतीति 'आहिए त्ति' आख्यातम् इति 'वएज्जा' वदेत् एवं पृच्छकस्य कथ्यतामिति। एतदेव स्पष्टयति—इह चन्द्र-चन्द्रा-ऽभिवर्द्धित-चन्द्रा-ऽभिवर्द्धितरूपपञ्चसंवत्सरात्मके युगे सप्तषष्टिर्नक्षत्रमासा (६७) भवन्ति, अहोरात्ररूपाणि दिनानि च त्रिंशदधिकानि अष्टादशशतानि (१८३०) भवन्ति, एतेषां सप्तषष्टिसंख्यकनक्षत्रमासैर्भागे हृते लब्धानि सप्तविंशतिरहोरात्राणि (२७) शेषा तिष्ठत्येकविंशतिः। सा मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुणने जातानि त्रिंशदधिकानि षट् शतानि ६३०। एतेषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा नव९ मुहूर्त्ताः,

शेषा सप्तविंशतिरवतिष्ठते २७, आगतोऽयं नक्षत्रमासः सप्तविंशतिरहोरात्रा नव मुहूर्त्ताः, एकस्य मुहूर्त्तस्य च सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागाः २७-९$\frac{२७}{६७}$। तत्र सप्तविंशत्यहोरात्रा मुहूर्त्तानयनार्थम् एकस्याहोरात्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्ता भवन्तीति त्रिंशता गुण्यन्ते जातानि दशोत्तराणि अष्टौ शतानि ८१० तेषां मध्ये उपरिप्रदर्शितनवमुहूर्त्तप्रक्षेपणेन जातानि पूर्वप्रदर्शितानि एकोनविंशत्यधिकाष्टशतानि ८१९। आगतमेतत् नक्षत्रमासस्य मुहूर्त्तपरिमाणम्—एकोनविंशत्यधिकानि अष्टौ शतानि एकस्य मुहूर्त्तस्य च सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागाः ८१९-$\frac{२७}{६७}$ इति। अस्योपलक्षणत्वादेव सूर्यादिमासानामप्यहोरात्रसंख्यां परिभाव्य मुहूर्त्तपरिमाणं यथासूत्रं परिभावनीयम्। तदपि प्रदर्श्यते—सूर्यमासस्य पञ्चदशोत्तरनवशतानि ९१५ मुहूर्त्तानां भवन्ति, तथाहि—एकस्मिन् युगे सूर्यमासाः षष्टिर्भवन्ति ६०, अहोरात्राणि च त्रिंशदधिकानि अष्टादश शतानि १८३०। एतेषां सूर्यमासरूपया षष्ट्या भागो ह्रियते तदा लब्धाः त्रिंशदहोरात्राः, शेषं षष्ट्या अर्धं त्रिंशदवतिष्ठते, तच्चाहोरात्रस्यार्धं भवति, एतावत् सार्धं त्रिंशदहोरात्रं (३०॥) सूर्यमासपरिमाणमायातम्। त्रिंशन्मुहूर्त्तश्चाहोरात्रो भवतीति सार्धत्रिंशत् त्रिंशता गुणने कृते जातानि मुहूर्त्तानां नव शतानि अर्धं चाहोरात्रस्य पञ्चदश मुहूर्त्तास्तत आयातं पूर्वप्रदर्शितं सूर्यमासस्य मुहूर्त्तानां परिमाणम् पञ्चदशोत्तराणि नव शतानीति ९१५।

अथ चन्द्रमासमुहूर्त्तपरिमाणं प्रदर्श्यते—एकस्मिन् युगे चन्द्रमासा द्वाषष्टिर्भवन्ति, त्रिंशदुत्तराष्टादशशतानि १८३० चाहोरात्रा भवन्ति। एतेषामहोरात्राणां १८३० चन्द्रमाससंख्यारूपया द्वाषष्ट्या भागे हृते लब्धानि एकोनत्रिंशदहोरात्राः एकस्य चाहोरात्रस्य द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः २९$\frac{३२}{६२}$ अथवा—सार्धैकोनत्रिंशदहोरात्राणि—एकश्च—द्वाषष्टिभागः २९॥-$\frac{१}{६२}$। एते द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते तेन जातानि षष्ट्युत्तराणि—नव शतानि ९६०। एतेषां द्वाषष्ट्या भागे हृते लब्धाः पञ्चदश मुहूर्त्ताः, शेषाश्च त्रिंशत् ३०। एकोनत्रिंशत् २९ अहोरात्राश्च मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते ततो जातानि सप्तत्युत्तराणि अष्टौ शतानि ८७०, ततः पूर्वप्रदर्शितानां पञ्चदशमुहूर्त्तानामेषु प्रक्षेपणे समागतं चन्द्रमासे मुहूर्त्तपरिमाणम् पञ्चाशीत्युत्तराणि अष्टौ शतानि, एकस्य मुहूर्त्तस्य च त्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः ८८५—$\frac{३०}{६२}$ इति।

अथ ऋतुमासमुहूर्त्तपरिमाणं प्रदर्श्यते—एकस्मिन् युगे त्रिंशद् ऋतवो भवन्ति। ऋतुमासश्च त्रिंशदहोरात्रपरिमितो भवति। अस्य नव शतानि मुहूर्त्तानां भवन्ति ९००, तथाहि—युगस्याहोरात्रा

त्रिंशदुत्तराष्टादशशतानि १८३० भवन्ति। अस्याः १८३० संख्यायास्त्रिंशता भागे हृते एकस्या ऋतोः षष्टिरहोरात्रा भवन्ति ६०। एषां मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिशता गुणने जातानि अष्टादश शतानि १८००। एकस्या ऋतोर्द्वौ मासौ भवतोऽतोऽष्टादशशतानि द्वाभ्यां विभज्यन्ते ततो जातानि एकस्य ऋतुमासस्य नव शतानि (९००) परिपूर्णानि मुहूर्त्तानामिति ॥

एतत्सुखावबोधार्थं यन्त्रं प्रदर्श्यते—

मासनाम	युगमासाः	१ मासस्याहोरात्राः	१ मासस्य मुहूर्त्ताः
नक्षत्रमास-माश्रित्य,	६७	२७ दि. ९ मु. $\frac{२७}{६७}$	८१९ $\frac{२७}{६७}$
सूर्यमासमश्रित्य	६०	३० दि. १५ मु. (३०॥)	९१५
चन्द्रमास-माश्रित्य,	६२	२९ दि. $\frac{३२}{६२}$ अथवा२९दि.१५मु.२९॥-$\frac{१}{६२}$	८८५-$\frac{३०}{६२}$
ऋतुमास-माश्रित्य	६१	३०	९००

अथ युगमासानयनविधिः—पञ्चसंवत्सरात्मकस्य युगस्य त्रिंशदुत्तराष्टादशशत—१८३०—संख्यका अहोरात्रा भवन्ति, ते च यस्याः संख्याया नक्षत्रादिमासस्याहोरात्रैर्गुणने त्रिंशदुत्तराष्टादशशत१८३०संख्या पूर्यते, ते एव नक्षत्रादिमासमाश्रित्य युगमासा भवन्ति, तथाहि—नक्षत्रमासस्याहोरात्राः सप्तविंशतिर्नवमुहूर्त्तयुक्ता (अहो०२७ मु. ९)तथा सप्तविंशतिः सप्तषष्टि $\frac{२७}{६७}$ भागाः, इयं संख्या सप्तषष्ट्या गुण्यते तदा जायन्ते युगदिनानि पूर्वोक्तानि त्रिंशदुत्तराष्टादशशतसंख्यकानि १८३०, ततो नक्षत्रमासमाश्रित्य जाता युगमासाः सप्तषष्टिः ६७। एवं सूर्यादिमासविषयेऽपि विज्ञेयम्, तच्चोपरितनकोष्ठके प्रदर्शितं ततोऽवसेयम्। तदेवं माससम्बधिनं मुहूर्त्तपरिमाणं प्रदर्शितम्, एतदनुसारेण चन्द्रादिसंवत्सरसम्बन्धिनं युगसम्बन्धिनं च मुहूर्त्तपरिमाणं स्वयमूहनीयमिति ॥ सू० १ ॥

पूर्वं मुहूर्त्तपरिमाणं प्रदर्शितम्, साम्प्रतं प्रत्ययनं या दिवसरात्रिविषया मुहूर्त्तानां वृद्धिरपवृद्धिश्च भवति तां प्रदर्शयितुमाह—'ता जया णं' इत्यादि।

मूलम्—ता जया णं ते सूरिए सव्वब्भंतराओ मंडलाओ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, सव्वबाहिराओ मंडलाओ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ

एसा णं अद्धा केवइएणं राइंदियग्गेणं आहिएत्ति वएज्जा ? ता तिण्णि छावट्ठे राइंदियसयाइं राइंदियग्गेणं आहिएत्ति वएज्जा ॥ सू० २॥

छाया— तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरात् मण्डलात् सर्वबाह्यं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति, सर्वबाह्यात् मण्डलात् सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति एषा खलु अद्धा कियता रात्रिंदिवाग्रेण आख्यातेति वदेत् । तावत् त्रीणि षट्षष्टिः रात्रिन्दिवशतानि रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातेति वदेत् ॥ सू० २ ॥

व्याख्या—'ता' तावत् तावच्छब्दार्थः पूर्ववदेव सर्वत्र भावनीयः, यत्—अन्येषु प्रष्टव्यविषयेषु सत्स्वपि प्रथमं सूर्यचारादिविषयं पृच्छामीति गौतमवाक्यम्, हे भगवन्, 'जया णं' यदा खलु यस्मिन् काले 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतराओ मंडलाओ' सर्वाभ्यन्तरात् सर्वेषां मण्डलानां मध्ये यद् आभ्यन्तरं मण्डलं नहि तदग्रे आभ्यन्तरत्वं मण्डलानाम्, तस्मात् निस्सृत्येतिशेषः 'सव्वबाहिरं मंडलं' सर्वबाह्यं मण्डलं, सर्वेषां मण्डलानां मध्ये यद् बाह्यं मण्डलं, नहि तदग्रे मण्डलानां बाह्यत्वम्, बाह्यत्वेन सर्वान्तिमं मण्डलं 'संकमित्ता' उपसंक्रम्य—आक्रम्य-तत्रागत्येत्यर्थः 'चारं चरइ' चारं चरति—गतिं करोति, तथा यदा च 'सव्वबाहिराओ मंडलाओ' सर्वबाह्यात् मण्डलात् प्रतिक्रम्य प्रतिनिवर्त्य 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं 'उवसंकमित्ता' उपसंक्रम्य 'चारं चरइ' चारं चरति तदा 'एसा णं' एषा खलु 'अद्धा'—एषः कालः सर्वाभ्यन्तरमण्डलान्निस्सृत्य सूर्यः सर्वबाह्यमण्डले गत्वा पुनस्तत्रैव सर्वाभ्यन्तरमण्डले समागच्छति, एतद्विषयकोऽन्तरकालः 'केवइएणं राइंदियग्गेणं' कियता रात्रिन्दिवाग्रेण कतिसंख्यकेनाहोरात्रप्रमाणेन 'आहिए' आख्यातः—कथितः पूर्वतीर्थंकरगणधरैः ? 'त्ति' इति 'वएज्जा' वदेत् कथयतु भवान् इति गौतमप्रश्नः । भगवानाह—हे गौतम ! 'ता' तावत् प्रथमं शृणु, यत् यदा सर्वाभ्यन्तरमण्डलान्निस्सृत्य सर्वबाह्यमण्डलं प्राप्य चारं चरति, एवं सर्वबाह्यमण्डलात्प्रतिनिवर्त्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलमभिव्याप्य चारं चरति, एतद्विषयकोऽन्तरकालः 'तिण्णि छावट्ठी राइंदियसयाइं' त्रीणि षट्षष्टिः रात्रिन्दिवशतानि षट्षष्ट्युत्तरत्रिशताहोरात्राणि (३६६) 'आहिएत्ति' आख्यातः इयद्दिवसप्रमाणोपेतः सूर्यसंवत्सरः कथित इति 'वएज्जा' वदेत् स्वशिष्यादिभ्य इति ॥सू० २ ॥

पुनः प्रश्नयति—'ता एयाए णं' इत्यादि ।

मूलम्—ता एयाए णं अद्धाए सूरिए कइ मंडलाइं चरइ ? कइ मंडलाइं दुक्खुत्तो चरइ ? कइ मंडलाइं एगखुत्तो चरइ ? । ता चुलसीइं मंडलसयं चरइ, बेयासीइं च मंडलसयं दुक्खुत्तो चरइ, तं जहा—निक्खममाणे चेव पविसमाणे चेव । दुवे य खलु मंडलाइं एगक्खुत्तो चरइ, तं जहा-सव्वब्भंतरं चेव मंडलं, सव्वबाहिरं चेव मंडलं ॥ सू०३॥

छाया—तावत् एतया खलु अद्धया सूर्यः कति मण्डलानि चरति ? कति मण्डलानि द्विःकृत्वश्चरति ? कति मण्डलानि एककृत्वश्चरति ? । तावत् चतुरशीतिर्मण्डलशतं चरति, द्व्यशीतं च मण्डलशतं द्विःकृत्वश्चरति, तद्यथा-निष्क्रामन् चैव प्रविशन् चैव । द्वे च खलु मण्डले एककृत्वश्चरति, तद्यथा-सर्वाभ्यन्तरं चैव मण्डलं, सर्वबाह्यं चैव मण्डलम् ।। सू० ३ ।।

व्याख्या—'ता' तावत् प्रथमम् 'एयाए' एतया-'सर्वाभ्यन्तरमण्डलात् सर्वबाह्यमण्डले गत्वा पुनस्ततो निवर्त्य सर्वाभ्यन्तरमण्डले समागच्छति एतद्रूपया 'अद्धाए' अद्धया-कालेन 'सूरिए' सूर्यः 'कइ मंडलाइं' कति मण्डलानि कतिसंख्यकानि मण्डलानि 'चरइ' चरति-भ्रमणविषयीकरोति ? तेषु पुनः 'कइ मंडलाइं' कति मण्डलानि 'दुक्खुत्तो' द्विःकृत्वः-द्विवारं 'चरइ' चरति ? तथा 'कइ मंडलाइं' कति मण्डलानि 'एगखुत्तो' एककृत्वः-एकवारं 'चरइ' चरति ? भगवान् नाह—हे गौतम ! 'ता' इति इति तावत् 'चुलसीइं' चतुरशीतिः 'मण्डलसयं' मण्डलशतं च चतुरशीत्यधिकं शतमेकं १८४ मण्डलानां 'चरइ' चरति भ्रमणविषयीकरोति ततोऽधिकस्य सूर्यसम्बन्धिमण्डलस्याऽसद्भावात् । तथा 'तेयासीइं' द्व्यशीतिः 'मंडलसयं' मण्डलशतं च द्व्यशीत्यधिकं शतमेकं १८२ मण्डलानां 'दुक्खुत्तो' द्विःकृत्वः द्विवारं 'चरइ' चरति 'तं जहा' तद्यथा-'णिक्खममाणे चेव पविसमाणे चेव' निष्क्रामन् चैव सर्वाभ्यन्तर मण्डलाद्बहिर्निस्सरन्, प्रविशन् चैव सर्वबाह्यमण्डलात्सर्वाभ्यन्तरमण्डलं प्रापयंश्चेति द्विवारं चरतीति। 'दुवे य खलु मंडलाइं' द्वे च खलु मण्डले सर्वाभ्यन्तरसर्वबाह्यरूपे 'एगक्खुत्तो' एकवारं एकैकवारम् 'चरइ' चरति-'तं जहा' तद्यथा-'सव्वब्भंतरं चेव मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं चैव मण्डलम् तथा 'सव्वबाहिरं चेव मंडलं' सर्वबाह्यं चैव मण्डलम् एकवारं सर्वाभ्यन्तरमण्डलम्, एकवारं च सर्वबाह्यमण्डलमिति भावः ।। सू० ३।।

अथादित्यसंवत्सरस्य दिवसरात्रिमुहूर्त्तविषये प्रश्नयति-'जइ खलु' इत्यादि ।

मूलम्—जइ खलु तस्सेव आइच्चसंवच्छरस्स सइं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, सइं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, सइं दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, सइं दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। से पढमे छम्मासे अत्थि अट्ठारसमुहुत्ता राई, नत्थि अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे, अत्थि दुवालसमुहुत्ते दिवसे, नत्थि दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। दोच्चे छम्मासे अत्थि अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे, णत्थि अट्ठारसमुहुत्ता राई, अत्थि दुवालसमुहुत्ता राई, णत्थि दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ। पढमे वा छम्मासे दोच्चे वा छम्मासे णत्थि पणरसमुहुत्ते दिवसे भवइ णत्थि पणरसमुहुत्ता राई भवइ तत्थ को हेउत्ति वएज्जा ?।। सू० (४)१।।

छाया—यदि खलु तस्यैव आदित्यसंवत्सरस्य सकृद् अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, सकृद् अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, सकृद् द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, सकृद् द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। अथ प्रथमे षण्मासे अस्ति अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिः, नास्ति अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसः, अस्ति द्वादशमुहूर्त्तो दिवसः, नास्ति द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। द्वितीये षण्मासे अस्ति अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसः नास्ति अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिः, अस्ति द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, नास्ति द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। प्रथमे वा षण्मासे द्वितीये वा षण्मासे नास्ति पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, नास्ति पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति तत्र को हेतुरिति वदेत्? ॥ सू० ४(१)॥

व्याख्या—'जइ खलु' यदि खलु सूर्यस्य सामान्यतया परिभ्रमणस्य चतुरशीत्यधिकैकशतसंख्यकानि सर्वाणि मण्डलानि(१८४)सन्ति, तत्र षट्षष्ट्यधिकशतत्रय(३६६)रात्रिन्दिवपरिमितायामद्धायां मध्यगतानि द्व्यशीत्यधिकैकशत(१८२)मण्डलानि द्विःकृत्वश्चरति, प्रथमान्तिममण्डलयोश्चैकैकवारं चरतीत्येवं भगवता प्ररूपितम् 'तस्सेव' तस्यैव षट्षष्ट्यधिकशतत्रयरात्रिन्दिवपरिमाणस्य (३६६) 'आइच्चसंवच्छरस्स' आदित्यसंवत्सरस्य 'सइं' सकृत् एकवारम् 'अट्ठारसमुहुत्ते' अष्टादशमुहूर्त्तः अष्टादशमुहूर्त्तपरिमितः 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति, तथा 'सइं' सकृत् एकवारम् 'अट्ठारसमुहुत्ता' अष्टादशमुहूर्त्ता अष्टादशमुहूर्त्तपरिमिता 'राई भवई' रात्रिर्भवति पुनश्च 'सइं' सकृत् एकवारं 'दुवालसमुहुत्तो' द्वादशमुहूर्त्तः द्वादशमुहूर्त्तपरिमितः 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति, तथा 'सइं' सकृत्–एकवारं 'दुवालसमुहुत्ता' द्वादशमुहूर्त्ता द्वादशमुहूर्त्तपरिमिता 'राई भवइ' रात्रिर्भवति 'से' अथ तत्रापि 'पढमे छम्मासे' प्रथमे षण्मासे यदा सूर्यः चतुरशीत्यधिकैकशततमरूपेऽन्तिमे सर्वबाह्यमण्डले चरति तद्रूपे प्रथमे षण्मासे इत्यर्थः 'अत्थि' अस्ति 'अट्ठारसमुहुत्ता राई' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिः, किन्तु 'नत्थि' नास्ति 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसः, तथा–'अत्थि' अस्ति 'दुवालसमुहुत्तो दिवसे' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसः, किन्तु 'नत्थि' नास्ति 'दुवालसमुहुत्ता राई' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। एवम्–'दोच्चे छम्मासे' द्वितीये षण्मासे सूर्यस्य चतुरशीत्यधिकैकशत (१८४) संख्यकेषु मण्डलेषु प्रथममण्डलोपरि परिभ्रमणरूपे द्वितीये षण्मासे सर्वाभ्यन्तरमण्डरूपे इत्यर्थः 'अत्थि' अस्ति 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसः किन्तु 'णत्थि' नास्ति 'अट्ठारसमुहुत्ता राई' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिः, तथा 'अत्थि' अस्ति 'दुवालसमुहुत्ता राई' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः किन्तु 'णत्थि' नास्ति 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। पुनश्चैवमपि भवति यत् 'पढमे वा छम्मासे' प्रथमे वा षण्मासे अन्तिममण्डलोपरि सूर्यसंचरणसमये, तथा 'दोच्चे वा छम्मासे' द्वितीये वा षण्मासे प्रथममण्डलोपरि स्थिते सूर्ये 'णत्थि' अत्र 'णत्थि' निनकारवाचकोऽव्ययः 'पण्णरसमुहुत्ते दिवसे' पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसः 'भवइ' भवति, 'णत्थि' न 'पण्णरसमुहुत्ता राई' पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिः 'भवइ' भवति 'तत्थ'

तत्र एतादृश्यां स्थितौ 'को हेऊ' को हेतुः-किं कारणम्? 'त्ति वएज्जा' इति वदेत् इति कथ्यतामिति गौतमप्रश्नः सू० ४ (१) ॥

पूर्वं गौममेन दिवसरात्रिपरिमाणविषये प्रश्नः कृत इति प्रदर्शितम्, साम्प्रतं भगवता किमुत्तरं दत्तमिति प्रदर्शयन् उत्तरवाक्यमाह-'ता अयं णं' इत्यादि ।

मूलम्-ता अयं णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं सव्वब्भंतराए जाव विसेसाहिए परिक्खेवेणं पण्णत्ते । ता जयाणं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। निक्खममाणे सूरिए नवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भितराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । ता जया णं सूरिए अब्भितराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ दोहि एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया । से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भतर तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । ता जया णं सूरिए अब्भितरं तच्चं मंडलं उवंसकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, चउहिं एगसट्ठिभागमुत्तेहिं अहिया । एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे दो दो एगसट्ठिभागमुहुत्ते एगमेगे मंडले दिवसखेत्तस्स विव्वुड्ढेमाणे २ रयणिखेत्तस्स अभिवुड्ढेमाणे२ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं सव्वब्भंतरमंडलं पणिहाय एगेणं तेयासीएणं राइंदियसएणं तिण्णि छावट्ठे एगसट्ठिभागमुहुत्तसयाइं दिवसखेत्तस्स निव्वुड्ढित्ता राइखेत्तस्स अभिवुड्ढित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ । एस णं पढमे छम्मासे । एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे ॥सू० ४ (२) ॥

से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए । से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । ता जया णं सूरिए बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं

ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए । एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे२ दो दो एगसट्ठिभागमुहुत्ते एगमेगे मंडले राइखेत्तस्स निव्वुड्ढेमाणे२ दिवसखेत्तस्स अभिवुड्ढेमाणे२ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । ता जया णं सूरिए सव्वबाहिराओ मंडलाओ सव्वब्भंतर मंडलं उवसंकमित्ता-चारं चरइ तया णं सव्वबाहिरं मंडलं पणिहाय एगेणं तेयासीएणं राइंदियसएणं तिण्णि छावट्ठिएगसट्ठिभागमुहुत्त-सयाइं राइखेत्तस्स निव्वुड्ढित्ता दिवसखेत्तस्स अभिवुड्ढित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ । एस णं दोच्चे छम्मासे । एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे । एस णं आइच्च-संवच्छरे । एसणं आइच्चसंवच्छरस्स पज्जवसाणे ॥ सू० ४(३)॥

इति खलु तस्सेवं आइच्चसंवच्छरस्स सइं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, सइं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ । सइं दुवालसमुहुत्तो दिवसे भवइ, सइं दुवालसमुहुत्ता राई भवइ । पढमे छम्मासे अत्थि अट्ठारसमुहुत्ता राई, णत्थि अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, अत्थि दुवालसमुहुत्ते दिवसे, णत्थि दुवालसमुहुत्ता राई भवइ । दोच्चे छम्मासे अत्थि अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे, णत्थि अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, अत्थि दुवालसमुहुत्ता राई, णत्थि दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ । पढमे वा छम्मासे दोच्चे वा छम्मासे णत्थि पण्णरसमुहुत्ते दिवसे, णत्थि पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ, णण्णत्थ राइंदियाणं वुड्ढोवुड्ढीए मुहुत्ताणं चयोवचएणं, णण्णत्थ वा अणुवायगईए ॥ सू० ४ ॥

॥ पढमस्स पाहुडस्स पढमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥ १-१ ॥

छाया तावत् अयं खलु जम्बूद्वीपो द्वीपः सर्वद्वीपसमुद्राणां सर्वाभ्यन्तरः यावत् विशेषाधिकः परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः । तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । अथ निष्क्रामन् सूर्यः नव संवत्सरं अयन् प्रथमे अहोरात्रे अभ्यन्तरानन्तरं मण्डलं उपसंक्रम्य चारं चरति । तावत् यदा खलु सूर्यः अभ्यन्तरानन्तरं मण्डलं उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति द्वाभ्याम् एकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यामूनः, द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति द्वाभ्याम् एकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यामधिका, अथ निष्क्रामन् सूर्यो द्वितीये अहोरात्रे अभ्यन्तरं तृतीयं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति । तावत् यदा खलु सूर्यः अभ्यन्तरं तृतीयं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैरूनः, द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैरधिका । एवं खलु एतेन उपायेन निष्क्रामन् सूर्यः तदनन्तरात्

मण्डलात् तदनन्तरं मण्डलं संक्रामन्२ द्वौ द्वौ एकषष्टिभागमुहूर्त्तौ एकैकस्मिन् मण्डले दिवसक्षेत्रस्य निर्वर्धयन्२ रजनीक्षेत्रस्य अभिवर्धयन्२ सर्वबाह्यं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वबाह्यं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं प्रणिधाय एकेन त्र्यशीतिकेन रात्रिन्दिवशतेन त्रीणि षट्षष्टिः एकषष्टिभागमुहूर्त्तशतानि दिवसक्षेत्रस्य निर्वर्ध्य, रात्रिक्षेत्रस्य अभिवर्ध्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, जघन्यको द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। एतत् खलु प्रथमं षण्मासम्। एतत् खलु प्रथमस्य षण्मासस्य पर्यवसानम्।

अथ प्रविशन् सूर्यो द्वितीयं षण्मासम् अयन् प्रथमेऽहोरात्रे बाह्यानन्तरं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः बाह्यानन्तरं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यामूना, द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यामधिकः। अथ प्रविशन् सूर्यो द्वितीयेऽहोरात्रे बाह्यं तृतीयं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यो बाह्यं तृतीयं मण्डमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्तैरूना, द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैरधिकः। एवं खलु एतेन उपायेन प्रविशन् सूर्यः तदन्तरात् मण्डलात् तदनन्तरं मण्डलं संक्रामन्२ द्वौ द्वौ एकषष्टिभागमुहूर्त्तौ एकैकस्मिन् मण्डले रात्रिक्षेत्रस्य निर्वर्धयन्२ दिवसक्षेत्रस्य अभिवर्धयन्२ सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वबाह्यात् मण्डलात् सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु सर्वबाह्यमण्डलं प्रणिधाय एकेन त्र्यशीतिकेन रात्रिंदिवशतेन त्रीणि षट्षष्टिः एकषष्टिभागमुहूर्त्तशतानि रात्रिक्षेत्रस्य निर्वर्ध्य, दिवसक्षेत्रस्याभिवर्ध्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। एतत् खलु द्वितीयं षण्मासम्, एतत् खलु द्वितीयस्य षण्मासस्य पर्यवसानम्, एष खलु आदित्यसंवत्सरः। एतत् खलु आदित्यसंवत्सरस्य पर्यवसानम् ॥ सू० ४ ॥

इति खलु तस्यैवम् आदित्यसंवत्सरस्य सकृत् अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, सकृत् अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, सकृत् द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, सकृत् द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। प्रथमे षण्मासे अस्ति अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिः, नास्ति अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति; अस्ति द्वादशमुहूर्त्तो दिवसः, नास्ति द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। द्वितीये षण्मासे अस्ति अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसः, नास्ति अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, अस्ति द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिः, नास्ति द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। प्रथमे वा षण्मासे द्वितीये वा षण्मासे नास्ति पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसः, नास्ति पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति–नान्यत्र रात्रिन्दिवानां वृद्ध्यपवृद्धिभ्यां मुहूर्त्तानां चयोपचयेन, नान्यत्र वा अनुपातगत्या ॥ सू० ४ ॥

॥ प्रथमस्य प्राभृतस्य प्रथमं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥ १–१ ॥

व्याख्या—'ता' तावत् 'अयं णं' अयं खलु प्रत्यक्षोपलभ्यमानः 'जम्बूद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपो द्वीपः जम्बूद्वीपाभिधानो मध्यजम्बूद्वीपः, स कीदृशः ? इत्याह–'सव्वदीवसमुद्दाणं' सर्वद्वीपसमुद्राणाम् एतदतिरिक्तावशिष्टानां सर्वेषां द्वीपानां समुद्राणां च मध्ये 'सव्वब्भंतराए' सर्वाभ्यन्तरः सर्वथाऽभ्यन्तरवर्ती 'जाव विसेसाहिए' यावत् विशेषाधिकः, अत्र यावत्पदेन "सव्व-खुड्डागे वट्टे, तेल्लापूयसंठाणसंठिए वट्टे, रहचक्कवालसंठाणसंठिए वट्टे, पुक्खरवरकण्णि-यासंठाणसंठिए वट्टे, पडिपुण्णचंदसंठाणसंठिए जोयणसयसहस्समायामविक्खंभेणं तिन्नि जोयणसयसहस्साइं सोलस सहस्साइं दोन्नि य सत्तावीसे जोयणसए तिन्नि कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं, तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचि" इति पाठः संग्राह्यः । तथा च छाया–सर्वक्षुल्लको वृत्तः, तैलापूपसंस्थानसंस्थितो वृत्तः, रथचक्रवालसंस्थानसंस्थितो वृत्तः, पुष्करवर-कर्णिकासंस्थानसंस्थितो वृत्तः, प्रतिपूर्णचन्द्रसंस्थानसंस्थितः योजनशतसहस्रमायामविष्कम्भेन, त्रीणि योजनशतसहस्राणि षोडश सहस्राणि द्वे च सप्तविंशतिर्योजनशते (३१६२२७) त्रयः क्रोशाः, अष्टाविंशतिश्च धनुःशतम्, त्रयोदश च अङ्गुलानि, अर्धाङ्गुलं च किञ्चिद् इति विशेषाधिक इति सम्बन्धः 'परिक्खेवेण पण्णत्ते' परिक्षेपेण परिधिना प्रज्ञप्तः । स च–आयामविष्कम्भाभ्यां लक्षयो-जनप्रमाणत्वात् सर्वेभ्यो लघुः, 'वट्टे' त्ति वृत्तः गोलाकारः, तत्परिधिश्च–सप्तविंशत्यधिकद्विशतो-त्तरषोडशसहस्राधिकं लक्षत्रयं (३१६२२७) योजनानाम्, तदुपरि क्रोशत्रयम्, अष्टाविंशत्युत्तर-मेकं शतं १२८ धनुषाम् पुनश्च त्रयोदशाङ्गुलानि किञ्चिद्विशेषाधिकमर्धमङ्गुलं चेतिपरिमिता । अस्य विशेषव्याख्याऽन्यत्र विज्ञेया । अस्मिन् जम्बूद्वीपे द्वीपे 'ता' इति तावत् 'जया णं' यदा खलु यस्मिन् काले 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतरमंडलं' सर्वाभ्यन्तरमण्डलम् सूर्यसंचरणस्य सर्वमण्डलानि चतुरशीत्यधिकैकशत (१८४) संख्यकानि भवन्ति, तत्र यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तर-मिति मेरोः पार्श्वस्य मण्डलं सर्वप्रथमं मण्डलमित्यर्थः 'उवसंकमित्ता' उपसंक्रम्य तत्रागत्य 'चारं चरइ' चारं चरति-संचरति सायनकर्कसंक्रान्तिपूर्वदिवसे इति भावः 'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तम-काष्ठाप्राप्तः पराकाष्ठाप्राप्तः, अत्र काष्ठाशब्दः प्रकर्षार्थवाचकस्तेन परमप्रकर्षप्राप्तः इत्यर्थः, अत-एव 'उक्कोसए' उत्कर्षकः उत्कृष्टः यतोऽधिकोऽन्यो दिवसो न भवति स इति भावः 'अट्ठा-रसमुहुत्ते' अष्टादशमुहूर्त्तः अष्टादशमुहूर्त्तपरिमितकालयुक्तः षट्त्रिंशद्घटिकायुक्त इत्यर्थः 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलघ्वी 'दुवालसमुहुत्ता' द्वादशमुहूर्त्ता द्वादश-मुहूर्त्तपरिमिता चतुर्विंशतिघटिकायुक्तेत्यर्थः 'राई भवइ' रात्रिर्भवति जम्बूद्वीपे क्षेत्रविशेषे इति भावः । एष अहोरात्रः पाश्चात्यसूर्यसंवत्सरस्य पर्यवसानम् ।

अथ सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलात् निष्क्रमणविषये प्राह––'से निक्खममाणे' इत्यादि, 'से' सः 'निक्खममाणे' निष्क्रामन् सर्वाभ्यन्तररूपप्रथममण्डलाद्बहिर्गमन-

मार्गं प्रति गच्छन् 'सूरिए' सूर्यः 'नवं' नवं पूर्वसंवत्सरादन्यं 'संवच्छरं' संवत्सरं 'अयमाणे' अयन् प्राप्नुवन् तत्र प्रवर्त्तमान इत्यर्थः 'पढमे' प्रथमे तद्विषयके आद्ये 'अहोरत्तंसि' अहोरात्रे 'अब्भितराणंतरं' अभ्यन्तरानन्तरं सर्वाभ्यन्तरमण्डलात् द्वितीयं 'मंडलं' मण्डलम् 'उवसंकमित्ता' उपसंक्रम्य तत्र स्थित्वा 'चारं चरइ' चारं चरति परिभ्रमति गतिं करोतीत्यर्थः । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'अब्भितराणंतरं मंडलं' अभ्यन्तरानन्तरं मण्डलं पूर्वोक्तं द्वितीयं मण्डलं 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु-'अट्ठारसमुहुत्ते' अष्टादशमुहूर्त्तः 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति किन्तु सः 'दोहिं' द्वाभ्यां 'एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' एकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यां 'ऊणे' ऊनः न्यूनो भवति($१७\frac{५९}{६१}$)तथा 'राई' रात्रिः 'दुवालसमुहुत्ता' द्वादशमुहूर्त्ता भवति, सा च 'दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यामधिका भवति ($१२\frac{२}{६१}$)कथमेतदित्याह-इह चैकं मण्डलमेकेनाहोरात्रेण सूर्यद्वयद्वारा परिसमाप्यते, प्रत्यहोरात्रं मण्डलस्य त्रिंशदधिकाऽष्टादशशतसंख्यका (१८३०) भागाः परिकल्प्यन्ते, तेषु एकैकः सूर्य एकैकं भागं दिवसक्षेत्रस्य रात्रिक्षेत्रस्य वा यथाकालं ह्रापयिता वर्धयिता वा भवति, स च मण्डलगत एको भागस्त्रिंशदधिकाष्टादशशततमोऽन्तिमो भागो मुहूर्त्तैकषष्टिभागेषु द्विभागरूपो भवति($\frac{२}{६१}$) तच्चेत्थम्-मण्डलस्य ते त्रिंशदधिकाष्टादशशतभागाः (१८३०) सूर्यद्वयमाश्रित्य एकेनाहोरात्रेण प्राप्यते, एकोऽहोरात्रश्च त्रिंशन् मुहूर्त्तप्रमाणो भवति, ते च त्रिंशन्मुहूर्त्ता एकैकसूर्याश्रयणेन सूर्यद्वयापेक्षया षष्टिर्मुहूर्त्ता भवन्ति, ततस्त्रैराशिकगणितक्रमावसरः प्राप्तः, तथा च-यदि षष्टिमुहूर्त्तेषु त्रिंशदधिकाष्टादशशतभागा लभ्यन्ते तदा एकस्मिन् मुहूर्त्ते कति भागा लभ्यन्ते ? एवं भाजक-भाज्य-गुणकरूपराशित्रयस्थापना यथा-

मुहू०	भागाः-	मुहू०
६०	१८३०	१
भाजक राशिः	भाज्य राशि.-	गुणक-राशिः

अत्रान्त्येन एककरूपेण गुणकराशिना मध्यगतभाज्यराशिर्गुण्यते, जातानि तान्येव त्रिंशदधिकाष्टादशशतानि (१८३०) एषामाद्येन षष्टिरूपेण भाजकराशिना भागो ह्रियते तदा लब्धाः सार्धत्रिंशद्भागाः (३०॥), एतावन्तो भागा एकस्मिन् मुहूर्त्ते लभ्यन्ते । स चैको मुहूर्त्त एकषष्टिभागीक्रियते, ते एकषष्टिभागाः सार्द्धत्रिंशता विभाज्यते तत आगतौ द्वौ । एवमेको भाग आगतः-द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्याम् ($\frac{२}{६१}$)

अथ प्रकारान्तरमेतत्-त्र्यशीत्यधिकैकशताहोरात्रैः(१८३)षण्णा मुहूर्त्तानां हानिर्वृद्धिर्वा भवति,

अत्र पृच्छ्यते—यदि त्र्यशीत्यधिकैकशताहोरात्रैः षड् मुहूर्त्ता हानौ वृद्धौ वा भवन्ति तदा एकेनाहोरात्रेण किं लभ्यते ? अत्रापि राशित्रयं भवति, स्थापनाच—

अहो०	मु०	अहो०
१८३	६	१

अत्रापि अन्त्येन राशिना एककरूपेण मध्यराशिः षट्संख्यारूपो गुण्यते जातास्त एव षट्, एते त्र्यशीत्यधिकैकशतेन भागहरणं प्राप्यते किन्त्वत्रोपरितनस्य भाज्यराशेः स्तोकत्वेन भागो न ह्रियते ततो भाज्यभाजकराश्योस्त्रिकेनापवर्त्तना क्रियते तेन जात उपरितनो राशिर्द्विकरूपः २, अधस्तनो राशिश्च—एकषष्टिरूपः । आगतौ द्वौ मुहूर्त्तैकषष्टिभागौ $\frac{२}{६१}$ तौ चैकस्मिन्नहोरात्रे वृद्धिरूपेण हानिरूपेण वा प्राप्यते इति ।

'से' सः **'णिक्खममाणे'** निष्क्रामन् बहिर्निस्सरन् **'सूरिए'** सूर्यः **'दोच्चंसि'** द्वितीये प्रथमस्यायनस्य द्वितीये **'अहोरत्तंसि'** अहोरात्रे **'अब्भंतरं'** आभ्यन्तरं **'तच्चं'** तृतीयं सर्वाभ्यन्तरमण्डलापेक्षया तृतीय **'मंडलं'** मण्डलम् **'उवसंकमित्ता'** उपसंक्रम्य प्राप्य **'चारं चरइ'** चारं चरति । **'ता'** तावत् **'जया णं'** यदा खलु **'सूरिए'** सूर्यः **'अब्भितरं तच्चं मंडलं'** आभ्यन्तरं तृतीयं मण्डलं **'उवसंकमित्ता'** उपसंक्रम्य **'चारं चरइ'** चारं चरति **'तया णं'** तदा खलु **'अट्ठारसमुहुत्ते'** अष्टादशमुहूर्त्तः **'दिवसे भवइ'** दिवसो भवति किन्तु सः **'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं'** चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः **'ऊणे'** ऊनः हीनो भवति, तथा **'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ'** द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति किन्तु सा च **'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं'** चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः **'अहिया'** अधिका भवति, प्रत्यहोरात्रं प्रतिमण्डलं द्वाभ्यामेकषष्टिभागाभ्यां हीनत्वाधिकत्वसद्भावात् **'एवं खलु'** एवं खलु, एवम् अनेनैव प्रकारेण खलु-निश्चितम् **'एएणं'** एतेन पूर्वप्रदर्शितेन प्रत्यहोरात्रं प्रतिमण्डलमेकषष्टिभागेषु द्विभागरूपहानिवृद्धिरूपेण **'उवाएणं'** उपायेन अनया रीत्या इत्यर्थः **'णिक्खममाणे'** निष्क्रामन् मण्डलपरिभ्रमणगत्या शनैः शनैः सर्वबाह्यमण्डलरूपदक्षिणाभिमुखं गच्छन् **'सूरिए'** सूर्यः **'तयाणंतराओ'** तदनन्तरात् विवक्षितात् पूर्वस्थानरूपात् **'मंडलाओ'** मण्डलात् **'तयाणंतरं'** तदनन्तरं तदग्रेतनं **'मंडलं'** मण्डलं **'संकममाणे'** संक्रामन् प्राप्नुवन् प्रत्यहोरात्रं **'दो दो'** द्वौ द्वौ **'एगसट्ठिभागमुहुत्ते'** एकषष्टिभागमुहूर्त्तौ **'एगमेगे मंडले'** एकैकस्मिन् मण्डले प्रतिमण्डलमित्यर्थः **'दिवसखेत्तस्स'** दिवसक्षेत्रस्य दिवसभागस्य **'निव्वुड्ढेमाणे२'** निर्वर्धयन्२ ह्रापयन्२ दिवसं न्यूनं कुर्वन्नित्यर्थः, तथा **'रयणिखेत्तस्स'** रजनीक्षेत्रस्य रात्रिभागस्य **'अभिवुड्ढेमाणे २'** अभिवर्धयन् २ रात्रिभागमधिकं कुर्वन्नित्यर्थः क्रमेण **'सव्वबाहिरं'** सर्वबाह्यं चतुरशीत्यधिकशततमम् यत् त्र्यशीत्यधिकशततमे अहोरात्रे प्रथमषण्मास-

पर्यवसानभूतं भवति तत् सर्वमण्डलेभ्यो बाह्यमन्तिममण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति । इदमुक्तं भवति-सूर्यस्य सर्वाणि मण्डलानि चतुरशीत्यधिकशतसंख्यकानि (१८४) भवन्ति, तेषु सूर्यस्य भ्रमणं तु सर्वाभ्यन्तररूपं विहाय शेषत्र्यशीत्यधिकशतसंख्यकेष्वेव मण्डलेषु भवति ततस्त्र्यशीत्यधिकशततमेऽहोरात्रे चतुरशीत्यधिकशततमं मण्डलं प्राप्नोत्येवेति । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वबाहिरं मंडलं' सर्वबाह्यं मण्डलं 'उवसंकमित्ता' उपसंक्रम्य 'चारं चरइ' चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'सव्वब्भंतरमंडलं' सर्वाभ्यन्तरमण्डलं 'पणिहाय' प्रणिधाय आश्रित्य तत्र सूर्यस्य स्थितत्वात्तमपरिगणय्य द्वितीयमण्डलादारभ्येत्यर्थः 'एगेणं' एकेन 'तेयासीएणं' त्र्यशीतिकेन त्र्यशीत्यधिकेन 'राइंदियसएणं' रात्रिन्दिवशतेन त्र्यशीत्यधिकशतसंख्यकैरहोरात्रैरित्यर्थः 'तिन्नि छावट्ठी एगसट्ठिभागमुहुत्तसयाइं' त्रीणि षट्षष्टिः एकषष्टिभागमुहूर्तशतानि षट्षष्टयधिकशतत्रयसंख्यकमुहूर्तैकषष्टिभागान् $\left(\frac{366}{61}\right)$ दिवसक्षेत्रस्य 'निव्वुड्ढित्ता' निर्वर्ध्य हापयित्वा 'राइखेत्तस्स' रात्रिक्षेत्रस्य तानेव भागान् 'अभिवुड्ढित्ता' अभिवर्ध्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ता' उत्तमकाष्ठाप्राप्ता परमप्रकर्षप्राप्ता अत एव 'उक्कोसिया' उत्कर्षिका सर्वोत्कृष्टा ततः परमाधिक्याभावात् 'अट्ठारसमुहुत्ता' अष्टादशमुहूर्त्ता षट्त्रिंशद्घटिकापरिमिता 'राई भवइ' रात्रिर्भवति तथा 'जहण्णए' जघन्यकः सर्वन्यूनः ततः परं न्यूनत्वाभावात् 'दुवालस-मुहुत्ते' द्वादशमुहूर्त्तः चतुर्विंशतिघटिकापरिमितः 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति । 'एस णं' एतत् खलु 'पढमे छम्मासे' प्रथमं षण्मासम् । सूत्रे आर्षत्वात्पुंस्त्वम् एवमग्रेपि 'एस णं' एतत् खलु त्र्यशीत्यधिकैकशततमाहोरात्रे 'पढमस्स छम्मासस्स' प्रथमस्य षण्मासस्य 'पज्जवसाणे' पर्य-वसानम् अन्तिममहोरात्रमित्यर्थः ।

अथ द्वितीयम् उत्तराभिमुखं षण्मासं प्रदर्श्यते–'से पविसमाणे' इत्यादि । 'से' इति सः अथवा 'से' अथ–दक्षिणाभिमुखसूर्यचारानन्तरं 'पविसमाणे' प्रविशन् सर्वबाह्यमण्डलात्सर्वाभ्य-न्तरं मण्डलं प्रविशन् उत्तराभिमुखं गच्छन् 'सूरिए' सूर्यः 'दोच्चं' द्वितीयं 'छम्मासं' षण्मासं उत्तरदिक्सम्बन्धि 'अयमाणे' अयन् प्राप्नुवन् 'पढमंसि' प्रथमे 'अहोरत्तंसि' अहोरात्रे द्वितीय-षण्मासस्य प्रथमे रात्रिन्दिवे 'बाहिराणंतरं' सर्वबाह्यमण्डलादनन्तरं 'मंडलं' मण्डलं पश्चानुपूर्व्या सर्वबाह्यमण्डलात् द्वितीयं–चतुरशीत्यधिकशततममण्डलात् त्र्यशीत्यधिकशततमं मण्डलं 'उवसंकमित्ता' उपसंक्रम्य 'चारं चरइ' चारं चरति । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'बाहिरा-णंतरं मंडलं' बाह्यानन्तरं मण्डलं सर्वबाह्यमण्डलादर्वाक्तनमभ्यन्तरं मण्डलं 'उवसंकमित्ता' उपसंक्रम्य 'चारं चरइ' चारं चरति । 'तया णं' तदा खलु 'अट्ठारसमुहुत्ता' अष्टादशमुहूर्त्ता 'राई भवइ'

रात्रिर्भवति, सा च 'दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यां 'ऊणा' ऊना न्यूना भवति, तथा 'दुवालसमुहुत्ते' द्वादशमुहूर्त्तः 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति स च 'दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यां 'अहिए' अधिको भवति अत आगम्य-रात्रेर्हान्यभिमुखत्वात् दिवसस्य च वृद्धयभिमुखत्वात् । 'से' अथ पुनश्च 'पविसमाणे' प्रविशन् अभ्यन्तरं गच्छन् 'सूरिए' सूर्यः 'दोच्चंसि' द्वितीये 'अहोरत्तंसि' अहोरात्रे 'बाहिरं' बाह्यं पश्चानुपूर्व्या बाह्यमार्गतः समापतन्तं सर्वबाह्यमण्डलादर्वाक्तनं 'तच्चं मंडलं' तृतीयं मण्डलं 'उव-संकमित्ता' उपसंक्रम्य 'चारं चरइ' चारं चरति । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'बाहिरं' बाह्यं पूर्वोक्तरूपं 'तच्चं मंडलं' तृतीयं मण्डलं 'उवसंकमित्ता' उपसंक्रम्य 'चारं चरइ' चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रि-र्भवति, सा च 'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः 'ऊणा' ऊना भवति, प्रतिरात्रि द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यां हीनत्वक्रमसद्भावात्, 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादश-मुहूर्त्तो दिवसो भवति, स च 'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः 'अहिए' अधिको भवति प्रतिदिवसं द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यां वृद्धित्वक्रमसद्भावात् । 'एवं' एवम् अनया-रीत्या 'खलु' निश्चितं 'एएणं' एतेन अव्यवधानप्रदर्शितेन 'उवाएणं' उपायेन प्रकारेण 'पवि-समाणे' प्रविशन् एकतो द्वितीयमभ्यन्तरं मण्डलं प्रति गच्छन् 'सूरिए' सूर्यः 'तयाणंतराओ' तदनन्तरात् एकस्मादनन्तरभूतात् 'मंडलाओ' मण्डलात् 'तयाणंतरं' तदनन्तरं एकस्मादर्वाक्तनं द्वितीयं 'मंडलं' मण्डलं 'संकममाणे' संक्रामन् प्राप्नुवन् 'दो दो' द्वौ द्वौ 'एगसट्ठिभागमुहुत्ते' एकषष्टिभागमुहूर्त्तौ 'एगमेगे मंडले' एकैकस्मिन् मंडले 'राइखेत्तस्स' रात्रिक्षेत्रस्य रात्रिभागस्य 'निव्वुड्ढेमाणे२' निर्वर्धयन्२ ह्रापयन्२, तथा 'दिवसखेत्तस्स' दिवसक्षेत्रस्य दिवस-भागस्य 'अभिवुड्ढेमाणे२' अभिवर्धयन्२ 'सव्वब्भंतरमंडलं' स वाभ्यन्तरमण्डलं तृतीया-च्चतुर्थं चतुर्थात्पञ्चममिति क्रमेण सर्वेभ्यो मण्डलेभ्यो यदभ्यन्तरं पश्चानुपूर्व्या चतुरशीत्यधिकश-ततमं त्र्यशीत्यधिकशतसंख्यकाहोरात्रैर्गम्यमानं पूर्वानुपूर्व्या च सर्वप्रथमं मण्डलं 'उवसंकमित्ता' उपसंक्रम्य 'चारं चरइ' चारं चरति । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्व-बाहिराओ मंडलाओ' सर्वबाह्यात् मण्डलात् 'सव्वब्भंतरमंडलं' सर्वाभ्यन्तरमण्डलं 'उवसं-कमित्ता' उपसंक्रम्य 'चारं चरइ' चारं चरति 'तया णं तदा' खलु 'सव्वबाहिरं मंडलं' सर्व-बाह्यं मण्डलं 'पणिहाय' प्रणिधाय आश्रित्य अभ्यन्तरप्रयाणसमये तत्र सूर्यस्य स्थितत्वात्तम-परिगणय्यतदर्वाक्तनद्वितीयमण्डलादारभ्येत्यर्थः 'एगेणं' एकेन 'तेयासीएणं' त्र्यशीतिकेन त्र्यशीत्यधिकेन 'राइंदियसएणं' रात्रिन्दिवशतेन त्र्यशीत्यधिकशतसंख्यकैरहोरात्रैरित्यर्थः 'तिण्णि' त्रीणि 'छावट्ठी' षट्षष्टिः 'एगसट्ठिभागमुहुत्तसयाइं' एकषष्टिभागमुहूर्त्तशतानि षट्षष्टयधि

कशतत्रयसंख्यकमुहूर्त्तैकषष्टिभागान् $\left(\frac{366}{61}\right)$ 'राइखेत्तस्स' रात्रिक्षेत्रस्य रात्रिभागस्य 'निव्वुड्ढित्ता' निर्वर्ध्य हापयित्वा तथा 'दिवसखेत्तस्स' दिवसक्षेत्रस्य दिवसभागस्य 'अभिवुड्ढित्ता' अभिवर्ध्य 'चारं चरइ' चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठाप्राप्तः परमप्रकर्षप्राप्तः अत एव 'उक्कोसए' उत्कर्षकः सर्वोत्कृष्टः ततः परमाधिक्याभावात् 'अट्ठारसमुहुत्ते' अष्टादशमुहूर्त्तः 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति, तथा 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलघ्वी ततः परं लघुत्वाभावात् 'दुवालसमुहुत्ता' द्वादशमुहूर्त्ता 'राई भवइ' रात्रिर्भवति, 'एस णं' एतत् खलु–'दोच्चे छम्मासे' द्वितीयं षण्मासं जातम् । 'एस णं' एतत् खलु 'दोच्चस्स छम्मासस्स' द्वितीयस्य षण्मासस्य 'पज्जवसाणं' पर्यवसानम् अन्तिममहोरात्रमिति । साम्प्रतमुपसंहरति–'इइ खलु' इत्यादि । 'इइ' इति–यस्मादेवं तस्मात् कारणात् 'खलु' निश्चितं 'तस्स' तस्य षट्षष्ट्यधिकशतत्रयाहोरात्रपरिमितस्य 'आइच्चसंवच्छरस्स' आदित्यसंवत्सरस्य मध्ये 'एवं' इति अनेन पूर्वोक्तप्रकारेण 'सइं' सकृत् एकवारं 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, तथा 'सइं' सकृत् एकवारं 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहुर्त्ता रात्रिर्भवति । 'सइं' सकृत् एकवारं 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति सइं सकृत एकवारं 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । तथा 'पढमे छम्मासे' प्रथमे षण्मासे 'अत्थि अट्ठारसमुहुत्ता राई' अस्ति अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिः सर्वाभ्यन्तरमण्डलाद्बाह्यमण्डलं प्राप्ते सूर्ये रात्रेर्वृद्धिसद्भावात्, सा च प्रथमषण्मासस्य अन्तिमेऽहोरात्रे भवति किन्तु 'नत्थि अट्ठारस मुहुत्ते दिवसे भवइ' नत्वष्टादशमुहुर्त्तो दिवसो भवति तदा दिवसस्य हानिसद्भावात् । तथा तस्मिन्नेव षण्मासे 'अत्थि दुवालसमुहुत्ते दिवसे' अस्ति द्वादशमुहुर्त्तो दिवसः, स च प्रथमषण्मासस्य अन्तिमेऽहोरात्रे भवति, किन्तु 'नत्थि दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' न तु द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । एवम्–'दोच्चे छम्मासे' द्वितीयस्मिन् षण्मासे सूर्यस्य पुनः सर्वबाह्य मण्डलात् सर्वाभ्यन्तरमण्डलं प्रति गमनलक्षणे 'अत्थि अट्ठारमुहुत्ते दिवसे' अस्ति अष्टादशमुहुर्त्तो दिवसः तदा दिवसस्य वृद्धिसद्भावात्, किन्तु 'णत्थि अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' न त्वष्टादश मुहुर्त्ता रात्रिर्भवति तदा रात्रेर्वृद्ध्यसद्भावात् । तथा 'अत्थि दुवालसमुहुत्ता राई' अस्ति द्वादश मुहूर्त्ता रात्रिः तदा रात्रेर्हानिसद्भावात्, किन्तु 'नत्थि दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' न तु द्वादश मुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा दिवसस्य हान्यसद्भावात् । तथा 'पढमे वा छम्मासे दोच्चे वा छम्मासे' प्रथमे वा षण्मासे द्वितीये वा षण्मासे प्रथमद्वितीयरूपोभयोरपि षण्मासयोः 'णत्थि पण्णरसमुहुत्ते दिवसे' नास्ति पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसः, एवमेव 'णत्थि पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ' नैव पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, 'णण्णत्थ' नान्यत्र 'राईदियाणं वड्ढोवड्ढीए' रात्रिन्दिवानां

वृद्ध्यपवृद्धिभ्यां, रात्रिन्दिवानां वृद्धिमपवृद्धिं च विहाय अन्यत्र न भवति, वृद्धिरपवृद्धिश्च रात्रिन्दिवानां मर्यादया भवति मर्यादामतिक्रम्य वृद्ध्यपवृद्धी कदापि न भवतः. अतो मर्यादया षण्मासद्वयेऽपि न पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, न च पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। ते वृद्ध्यपवृद्धी च कथं भवेताम्? तत्राह—'मुहुत्ताणं चओवचएणं' मुहूर्त्तानां पञ्चदशसंख्यकानां चयेन—अधिकत्वेन वृद्धिः, अपचयेन—हीनत्वेन अपवृद्धिः कदाचित् किञ्चिद्हीनपञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, कदाचित्, किञ्चिदधिकपञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, एवं रात्रिविषयेऽपि विज्ञेयम्, किन्तु परिपूर्णपञ्चदशमुहूर्त्तो न दिवसो भवति, न च परिपूर्णपञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति दिवसरात्र्योरेवमेव क्रमसद्भावात्, पञ्चदशमुहूर्त्तानां हीनाधिकत्वेन दिवसरात्री भवतः। एवम् 'णण्णत्थ वा अणुवायगईए' नान्यत्र वा अनुपातगत्या, अनुपातगतिं विहायान्यत्र न भवति, अनुपातगतिः—अनुसारगतिः, सा चैवम्—सूर्यसंवत्सरस्य सर्वे अहोरात्राः षट्षष्ट्यधिकशतत्रयसंख्यका (३६६) भवन्ति, षण्मासे च तदर्धं रात्रिन्दिवानां त्र्यशीत्यधिकशतं (१८३) भवति, त्र्यशीत्यधिकशततमे मण्डले षड् मुहूर्त्ता हानिवृद्धित्वेन प्राप्यन्ते तदा तदर्धे कृते त्रयो मुहूर्त्ता हानिवृद्धित्वेन लभ्यन्ते। इतश्च त्र्यशीत्यधिकशतसंख्यकाहोरात्राणामर्धं क्रियते तदा लभ्यते सार्धा एकनवतिः (९१॥) ततः एकनवतिसंख्यकेषु पूर्णतया समाप्तेषु सत्सु तदुपरि द्विनवतितमस्य मण्डलस्य चार्धे गते पञ्चदश मुहूर्त्ता लभ्यन्ते, अहोरात्रस्य त्रिंशन्मुहूर्तप्रमाणत्वात्, ततो मण्डलस्यार्धकल्पनायां पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसः पञ्चदशमुहूर्त्ता च रात्रिर्लभ्यते। सा च मण्डलार्धकल्पना कर्त्तुं न शक्यते यतः सूर्यस्य मण्डलान्मण्डलान्तरगमनं शास्त्रसंमतं नत्वर्धमण्डलस्य विवक्षाऽपि। इयमत्र भावना—सूर्यस्य प्रत्यहोरात्रं द्वाभ्यामेकषष्टिभागाभ्यां गतिर्भवति ततः सर्वाभ्यन्तरमण्डले गते सूर्ये अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, द्वादशमुहूर्त्ता च रात्रिर्भवति, एवं सर्वबाह्यमण्डले गते सूर्ये अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति द्वादशमुहूर्त्तश्च दिवसो भवति, तदनन्तरं सूर्यः प्रतिमण्डलमेकषष्टिभागेषु द्विभागपरिमितेन कालेन चारं चरति, एतावत्प्रमाणकालेन मण्डलात् मण्डलान्तरं गच्छति, न त्वर्धमण्डलम्, एवं द्वितीयेऽहोरात्रे सर्वाभ्यन्तरमण्डलात् द्वितीयं बाह्यसम्बन्धिमण्डलं गच्छति तदा, तथा सर्वबाह्यमण्डलात् द्वितीयमाभ्यन्तरसम्बन्धिमण्डलं गच्छति तदा च द्वाभ्यामेकषष्टिभागाभ्यामहोरात्रस्य हानिर्वृद्धिर्वा भवति। एवं क्रमेण कृतायां योजनायां सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलाद्बहिर्गमनसमये एकनवतितमे मण्डले गते सूर्ये त्रिभिरेकषष्टिभागैरधिकः पञ्चदशमुहूर्त्तो ($१५\frac{३}{६१}$) दिवसो भवति, अष्टपञ्चाशद्भिरेकषष्टिभागैरधिका चतुर्दशमुहूर्त्ता ($१४-\frac{५८}{६१}$) रात्रिर्भवति। एवं द्विनवतितमे मण्डले गते सूर्ये एकेनैकषष्टिभागेनाधिकः पञ्चदशमुहूर्त्तो ($१५-\frac{१}{६१}$) दिवसो भवति, षष्टिसंख्यकैरेकषष्टि-

भागैरधिका चतुर्दशमुहूर्त्ता (१४-$\frac{६०}{६१}$) रात्रिर्भवति, एवं सर्वबाह्यमण्डालात् सर्वाभ्यन्तरमण्डलाभिमुखगमनसमये दिवसस्य वृद्धिः, रात्रेश्च हानिः कर्त्तव्या। तथा च सूर्यस्य बाह्यादभ्यन्तरगमनसमये एकनवतितमे मण्डले गते सूर्ये अष्टपञ्चाशद्भिरेकषष्टिभागैरधिकश्चतुर्दशमुहूर्त्तो (१४-$\frac{५८}{६१}$) दिवसो भवति, रात्रिश्च त्रिभिरेकषष्टिभागैरधिका पञ्चदशमुहूर्त्ता (१५-$\frac{३}{६१}$) भवति एवं द्विनवतितमे मण्डले गते सूर्ये षष्टिसंख्यकैरेकषष्टिभागैरधिकश्चतुर्दशमुहूर्त्तो (१४$\frac{६०}{६१}$) दिवसो भवति, रात्रिश्च एकेनैकषष्टिभागेनाधिका पञ्चदशमुहूर्त्ता (१५ $\frac{१}{६१}$) भवति।

एवं करणे पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसः पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिश्च कदापि न लभ्यते। एकनवतितममण्डलादुपरि द्विनवतितमं मण्डलमर्धं स्थाप्यते तदा दिवसस्य रात्रेश्च पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकं समानत्वं लभ्यते नान्यथा, तच्च भगवता न विवक्षितम् अतः पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसः, पञ्चदशमुहूर्त्ता च रात्रिः परिपूर्णत्वेन कदापि न भवतीत्यवधारणीयमिति। 'पाहुडियागाहाओ' प्राभृतिका गाथाः पूर्वोक्तार्थसंग्राहिका गाथाः अत्र 'भाणियव्वाओ' भणितव्याः वक्तव्याः। एता गाथाः साम्प्रतं क्वापि पुस्तके न लभ्यन्तेऽतो व्युच्छिन्ना जाता इत्यनुमीयते ॥ सू० ४ ॥

इति प्रथमस्य प्राभृतस्य प्रथमं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१-१॥

पूर्वं प्रथमस्य प्राभृतस्य प्रथमं मुहूर्त्तवृद्ध्यपवृद्धिप्रतिपादकं प्राभृतप्राभृतं प्रतिपादितम्, साम्प्रतमर्द्धमण्डलसंस्थितिनिरूपकं द्वितीयं प्राभृतप्राभृतं प्रतिपादयन्नाह-'ता कहं ते अद्धमंडलसंठिई' इत्यादि।

मूलम्-'ता कहं ते अद्धमंडलसंठिई आहितेति वदेज्जा? तत्थ खलु इमा दुविहा अद्धमंडलसंठिई पण्णत्ता, तं जहा-दाहिणा चेव अद्धमंडलसंठिई, उत्तरा चेव अद्धमंडलसंठिई २। ता कहं ते दाहिणा अद्धमंडलसंठिई आहितेति वदेज्जा? ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवसमुद्दाणं जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ते। ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं दाहिणं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। से निक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि दाहिणाए अंतराए भागाए तस्सादिपएसाए अब्भितराणंतरं उत्तरं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए अब्भितराणंतरं उत्तरं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया।

से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि उत्तराए अंतराए भागाए तस्सादिपएसाए अब्भिंतरं तच्चं दाहिणं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए अब्भिंतरं तच्चं दाहिणं अद्धमण्डलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया। एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ तयाणंतरंसि तंसि २ देसंसि तं तं अद्धमंडलसंठिइं संकममाणे२ दाहिणाए अंतराए भागाए तस्सादिपएसाए सव्ववाहिरं उत्तरं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए सव्ववाहिरं उत्तरं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ। एस णं पढमे छम्मासे। एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे।

से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि उत्तराए अंतराए भागाए तस्सादिपएसाए वाहिराणंतरं दाहिणं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए वाहिराणंतरं दाहिणं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए। से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि दाहिणाए अंतराए भागाए तस्सादिपएसाए बाहिराणंतरं तच्चं उत्तरं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए वाहिराणंतरं तच्चं उत्तरं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए। एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ तयाणंतरं तंसि २ देसंसि तं तं अद्धमंडलसंठिइं संकममाणे२ उत्तराए अंतराए भागाए तस्सादिपएसाए सव्वब्भंतरं दाहिणं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं दाहिणं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। एस णं दोच्चे छम्मासे। एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे। एस णं आइच्चे संवच्छरे। एस णं आइच्चसंवच्छरस्स पज्जवसाणे ॥सू० ५॥

॥ दाहिणा अद्धमंडलसंठिई समत्ता ॥

छाया— तावत् कथं ते अर्धमण्डलसंस्थितिः आख्यातेति वदेत्? तत्र खलु इयं द्विविधा अर्धमण्डलसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, तद्यथा—दाक्षिणात्या चैव अर्धमण्डलसंस्थितिः १

औतरा चैव अर्धमण्डलसंस्थितिः २। तावत् कथं ते दाक्षिणात्या अर्धमण्डलसंस्थितिः आख्याते्ति वदेत्? तावत् अयं खलु जम्बुद्वीपो द्वीपः सर्वद्वीपसमुद्राणां यावत्-परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः। तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरां दक्षिणाम् अर्धमण्डलसंस्थितिम् उपक्रम्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। अथ निष्क्रामन् सूर्यः नवं संवत्सरं अयन् प्रथमे अहोरात्रे दाक्षिणात्यात् अन्तरात् भागात् तस्यादिप्रदेशात् आभ्यन्तरानन्तराम् औत्तराम् अर्धमण्डलसंस्थितिम् उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः आभ्यन्तरानन्तराम् औत्तरां अर्द्धमण्डलसंस्थितिम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति द्वाभ्याम् एकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् ऊनः, द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति द्वाभ्याम् एकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् अधिका। अथ निष्क्रामन् सूर्यः द्वितीये अहोरात्रे औत्तरात् अन्तरात् भागात् तस्यादिप्रदेशात् आभ्यन्तरां तृतीयां दाक्षिणात्यां अर्धमण्डलसंस्थितिं उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः आभ्यन्तरां तृतीयां दाक्षिणात्याम् अर्धमण्डलसंस्थितिम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति चतुर्भिः एकषष्टिभागमुहूर्त्तैः ऊनः, द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः अधिका। एवं खलु एतेन उपायेन निष्क्रामन् सूर्यः तदनन्तरात् तदनन्तरस्मिन् तस्मिन् २ देशे तां तां अर्धमण्डलसंस्थितिं संक्रामन् २ दाक्षिणात्यात् अन्तरात् भागात् तस्यादिप्रदेशात् सर्वबाह्याम् औत्तराम् अर्धमण्डलसंस्थितिमुपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वबाह्याम् औत्तराम् अर्धमण्डलस्थितिम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। एतत् खलु प्रथमम् षण्मासम्। एतत् खलु प्रथमस्य षण्मासस्य पर्यवसानम्।

अथ प्रविशन् सूर्यः द्वितीयं षण्मासम् अयन् प्रथमे अहोरात्रे औत्तरात् अन्तरात् भागात् तस्यादिप्रदेशात्-बाह्यानन्तरां दाक्षिणात्याम् अर्धमण्डलसंस्थितिम् उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः बाह्यानन्तरां दाक्षिणात्याम् अर्धमण्डलसंस्थितिम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति द्वाभ्याम् एकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् ऊना, द्वाशमुहूर्त्तो दिवसो भवति द्वाभ्याम् एकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् अधिकः। अथ प्रविशन् सूर्यः द्वितीये अहोरात्रे दाक्षिणात्यात् अन्तरात्भागात् तस्यादिप्रदेशात् बाह्यानन्तरां तृतीयाम् औत्तराम् अर्धमण्डलसंस्थितिम् उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः बाह्यां तृतीयाम् औतराम् अर्धमण्डलसंस्थितिम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति चतुर्भिः एकषष्टिभागमुहूर्त्तैः ऊना, द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति चतुर्भिः एकषष्टिभागमुहूर्त्तैः अधिकः। एवं खलु एतेन उपायेन प्रविशन् सूर्यः तदनन्तरात् तदनन्तरां तस्मिन् २ देशे तां ताम् अर्धमण्डलसंस्थितिं संक्रामन् २ औतरात् अन्तरात् भागात् तस्यादिप्रदेशात् सर्वाभ्यन्तरां दक्षिणात्याम् अर्धमण्डलसंस्थितिम् उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सर्वाभ्यन्तरां दाक्षिणात्याम् अर्धमण्डलसंस्थितिम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्त अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। एतत् खलु द्वितीयं षण्मासम्। एतत् खलु द्वितीयस्य षण्मासस्य पर्यवसानम्। एष खलु आदित्यसंवत्सरः। एतत् खलु आदित्यसंवत्सरस्य पर्यवसानम् ॥ सू० ५॥

व्याख्या—हे भदन्त ! 'ता' तावत् पूर्ववत् 'कहं' कथं 'ते' तव मते 'अद्धमंडलसंठिई' अर्धमण्डलसंस्थितिः अर्धमण्डलव्यवस्था 'आहिया' आख्याता 'ति' इति 'वएज्जा' वदेत् वदतु इति भावः । 'अर्धमण्डलसंस्थितिः' इत्यस्य क आशयः ?—अर्धमण्डलस्य मण्डलार्धस्य संस्थितिः सूर्यपरिभ्रमणव्यवस्था सा अर्धमण्डलसंस्थितिरुच्यते, तथा च–इह यत् एकैकः सूर्यः एकैकाहोरात्रेण एकैकस्य मण्डलस्यार्धभागमेव भ्रमणेन परिपूरयति अत्र कथमेकैकस्य सूर्यस्य प्रत्यहोरात्रं प्रत्येकार्धमण्डलपरिभ्रमणव्यवस्था वर्त्तते इति प्रश्नः । भगवानाह—'तत्थ खलु' इत्यादि । 'तत्थ खलु' तत्र अर्धमण्डलसंस्थितिविचारे खलु निश्चयेन 'इमा' इयं वक्ष्यमाणा 'दुविहा' द्विविधा द्विप्रकारा 'अद्धमंडलसंठिई' अर्धमण्डलसंस्थितिः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ता मया अन्यतीर्थकरैश्च 'तं जहा' तद्यथा सा यथा–'दाहिणा चेव' दाक्षिणात्या चैव दक्षिणदिक्चारिसूर्यविषया 'अद्धमंडलसंठिई' अर्धमण्डलसंस्थितिः तथा 'उत्तरा चेव' औत्तरा चैव उत्तरदिक्चारिसूर्यविषया 'अद्धमडलसंठिई' अर्धमडलसंस्थितिः २ । पुनः प्रश्नयति–'ता 'कहं' ते' इत्यादि, ज्ञाता द्विविधा अर्धमण्डलसंस्थितिः किन्तु तत्र 'ता' तावत् प्रथमं द्वयोर्मध्ये 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'ते' तव मते 'दाहिणा' दाक्षिणात्या दक्षिणदिग्भवा दक्षिणदिक्चारिसूर्यविषया 'अद्धमंडलसंठिई' अर्धमण्डलसंस्थितिः 'आहिता' आख्याता कथिता 'ति' इति 'वएज्जा' वदेत् वदतु भवान् । भगवानाह–'ता अयण्णं' इत्यादि, 'ता' तावत् अयण्णं अयं खलु प्रत्यक्षं दृश्यमानोऽयं 'जंबुद्दीवे दीवे' जंबूद्वीपो द्वीपः मध्यजम्बूद्वीपः 'सव्वदीवसमुद्दाणं' सर्वद्वीपसमुद्राणां 'जाव' यावत् यावत्पदेन 'सव्वब्भंतराए सव्वखुड्डाए' इत्यादि जम्बूद्वीपवर्णनं संक्षेपतः पूर्वं प्रथमप्राभृतस्य प्रथमेऽन्तरप्राभृते कृतं तत्र विलोकनीयम् 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण परिधिना 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तः। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतरं' सर्वाभ्यन्तरां सर्वाभ्यन्तरमण्डलसम्बन्धिनीम् 'दाहिणं' दाक्षिणात्यां दक्षिणदिग्भवां 'अद्धमंडलसंठिइं' अर्धमण्डलसंस्थितिम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठाप्राप्तः परमप्रकर्षप्राप्तः 'उक्कोसए' उत्कर्षकः सर्वोत्कृष्टः ततः परमाधिक्याभावात् अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलघ्वी ततः परं हीनत्वाभावात् 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतदाक्षिणात्यार्धमण्डलसंस्थितिमुपसंक्रान्तः सन् प्रथमक्षणादूर्ध्वं सर्वाभ्यन्तरानन्तरद्वितीयमण्डलाभिमुखं शनैः शनैः तथा कथञ्चिदपि मण्डलगत्या परिभ्रमति येनाहोरात्रपर्यन्तभागे ये सर्वाभ्यन्तरमण्डलगता अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागास्तान्, अपरं च योजनद्वयमतिक्रम्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलानन्तरं द्वितीयं यद् उत्तरार्धमण्डलं तस्य सीमां प्राप्नोति, तदेवाह 'से' अथ तदनन्तरं 'निक्खममाणे' निष्क्रामन् सर्वाभ्यन्तरदाक्षिणात्यार्धमण्डलसंस्थितितः प्रथमक्षणादूर्ध्वं शनैः शनैर्निस्सरन् 'सूरिए' सूर्यः अहोरात्रेऽतिक्रान्ते सति 'णवं' नवं नूतनं स्थितसंवत्सरा-

दपरं 'संवच्छरं' संवत्सरं 'अयमाणे' अयन् प्राप्नुवन् 'पढमंसि अहोरत्तंसि' प्रथमेऽहोरात्रे नूतनसंवत्सरस्य आदिमेऽहोरात्रे 'दाहिणाए' दाक्षिणात्यात् दक्षिणदिग्भवात् 'अंतराए' अन्तरात् अपान्तरालभागात् सर्वाभ्यन्तरमण्डलगताष्टचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागाधिकयोजनद्वयप्रमाणरूपात् विनिर्गत्य 'तस्स' तस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलानन्तरं यद् उत्तरार्धमण्डलं तस्य 'आइपएसाए' आदिप्रदेशात् आदिप्रदेशमाश्रित्येत्यर्थः 'अब्भिंतराणंतरं' आभ्यन्तरानन्तरां सर्वाभ्यन्तरमण्डलाग्रेऽनुपदं वर्त्तमानां 'उत्तरं' औत्तरां उत्तरदिग्भवां 'अद्धमंडलसंठिइं' अर्धमण्डलसंस्थितिं 'उवसंकमित्ता' उपसंक्रम्य 'चारं चरइ' चारं चरति विचरति परिभ्रमतीत्यर्थः। स चात्रापि पूर्ववदादिप्रदेशादूर्ध्वं शनैः शनैरग्रेतनापरमण्डलाभिमुखं यथाकथञ्चनापि चरति येन तस्याहोरात्रस्यान्तिमे भागे तदपि मण्डलमष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागरूपम् अन्यच्च योजनद्वयं परित्यज्य दक्षिणदिग्भवस्य तृतीयमण्डलस्य सीमायां वर्त्तते। 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'अब्भिंतराणंतरं' आभ्यन्तरानन्तरां द्वितीयां 'उत्तरं' औत्तरां 'अद्धमंडलसंठिइं' अर्धमण्डलसंस्थितिं 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहुर्त्तो दिवसो भवति किन्तु 'दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहुर्त्ताभ्यां 'ऊणे' ऊनः हीनो भवति तथा 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति किन्तु 'दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यां 'अहिया' अधिका भवति। 'से' अथ–अनन्तरं द्वितीयस्यामुत्तरार्धमण्डलसंस्थितौ परिभ्रमणानन्तरं 'निक्खममाणे' निष्क्रामन् तत्स्थानात् पूर्वोक्तप्रकारेण निस्सरन् 'सूरिए' सूर्यः तस्यैवाभिनवसंवत्सरस्य 'दोच्चंसि अहोरत्तंसि' द्वितीयेऽहोरात्रे 'उत्तराए' औत्तरात् उत्तरदिग्भवात् 'अंतराए' अन्तरात् द्वितीयोत्तरार्धमण्डलगतात् पूर्वप्रदर्शितप्रमाणोपेतापान्तरालरूपात् विनिर्गत्य 'तस्स' तस्य दक्षिणदिग्भावितृतीयार्धमण्डलस्य 'आइपएसाए' आदिप्रदेशात् आदिप्रदेशमाश्रित्येत्यर्थः 'अब्भिंतरं तच्चं' आभ्यन्तरां तृतीयां सर्वाभ्यन्तरमण्डलापेक्षया तृतीयां 'दाहिणं' दाक्षिणात्यां 'अद्धमंडलसंठिइं' अर्धमण्डलसंस्थितिं 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसक्रम्य चारं चरति। अत्रापि पूर्ववदेव तस्याहोरात्रस्य पर्यन्ते पूर्वोक्तविधिनैव चतुर्थोत्तरार्धमण्डस्य सीमायां समागत्य सूर्योऽवतिष्ठते। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः अब्भिंतरं' आभ्यन्तरां 'तच्चं' तृतीयां 'दाहिणं' दाक्षिणात्यां 'अद्धमंडलसंठिइं' अर्धमण्डलसंस्थितिं 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति किन्तु 'चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः 'ऊणे' ऊनो हीनो भवति तथा 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति किन्तु 'चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः 'अहिया' अधिका भवति एवं' एवमेव 'खलु' निश्चयेन 'एएणं' एतेन पूर्वप्रदर्शितार्धमण्डलसस्थितित्रय-

रूपेण 'उवाएणं' उपायेन क्रमेण प्रत्यहोरात्रं तत्तन्मण्डलगताष्टचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागतदनन्तरयोजनद्वयोल्लङ्घनपूर्वकं तत्तदग्रेतनानन्तरस्थितप्रत्येकार्धमण्डलसंस्थितिपरिभ्रमणरूपेण विधिना 'णिक्खममाणे' निष्क्रामन् पूर्वस्थानादनन्तरस्थानं गच्छन् 'सूरिए' सूर्यः 'तयाणंतराओ' तदनन्तरादर्धमण्डलात् 'तयाणंतरं' तदनन्तरां तदनन्तरस्थितां 'तंसि तंसि' तस्मिन् तस्मिन् 'देसंसि' देशे प्रदेशे दक्षिणपूर्वभागे उत्तरपश्चिमभागे वा 'तं तं' तां तां 'अद्धमंडलसंठिइं' अर्धमण्डलसंस्थितिं 'संकममाणे २' संक्रामन् संक्रामन् एकस्या अर्धमण्डलसंस्थितेरपरामर्धमण्डलसंस्थितिं स्वगत्या गच्छन् २ प्रथमस्य षण्मासस्य द्व्यशीत्यधिकशत(१८२) तमाहोरात्रस्य पर्यन्तभागे गते सति 'दाहिणाए' दाक्षिणात्यात् दक्षिणदिग्भवात् 'अंतराए' अन्तरात् सर्वाभ्यन्तरमण्डलमधिकृत्य द्व्यशीत्यधिकशत–(१८२)–तममण्डलगताष्टचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागतदनन्तरबाह्ययोजनद्वयप्रमाणोपेतापान्तरालरूपात् 'भागाए' भागात् निस्सृत्य 'तस्स' तस्य सर्वबाह्यमण्डलगतस्योत्तरार्धमण्डलस्य 'आइपएसाए' आदिप्रदेशात् अदिप्रदेशमाश्रित्य 'सव्वबाहिरं' सर्वबाह्यां 'उत्तरं' औत्तराम् उत्तरदिग्भवां 'अद्धमंडलसंठिइं' अर्धमण्डलसंस्थितिं 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वबाहिरं' सर्वबाह्यां 'उत्तरं' औत्तराम् उत्तरदिग्भवां 'अद्धमंडलसंठिइं' अर्धमण्डलसंस्थितिं 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ता' उत्तमकाष्ठाप्राप्ता परमप्रकर्षप्राप्ता 'उक्कोसिया' उत्कर्षिका सर्वगुर्वी–तत आधिक्याभावात् 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्ता रात्रिर्भवति, तथा 'जहण्णए' जघन्यकः सर्वलघुः ततो हीनत्वाभावात् 'दुवालसमुहुत्ते' द्वादशमुहूर्तः 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति। उपसंहरन्नाह–'एस णं' इत्यादि, 'एस णं' एतत् खलु पढमे छम्मासे' प्रथमं षण्मासम्। 'एस णं' एतत् खलु 'पढमस्स छम्मासस्स प्रथमस्य षण्मासस्य 'पज्जवसाणे' पर्यवसानं पर्यन्तभागः॥

अथार्धमण्डलसंस्थितिविषये द्वितीयं षण्मासं विवृणोति–से पविसमाणे' इत्यादि।

'से' अथानन्तरं निष्क्रमणानन्तरं प्रथमषण्मासस्य अन्तिमेऽहोरात्रेऽतिक्रान्ते सतीत्यर्थः 'पविसमाणे' प्रविशन अभ्यन्तरं गच्छन् 'सूरिए' सूर्यः 'दोच्चं' द्वितीयं 'छम्मासं' षण्मासं 'अयमाणे' अयन् प्राप्नुवन् 'पढमंसि अहोरत्तंसि' प्रथमे अहोरात्रे 'उत्तराए' औत्तरात् उत्तरदिग्भागस्थितसर्वबाह्यमण्डलसम्बन्धिनः 'अंतराए भागाए' अन्तराद् भागात् सर्वबाह्यानन्तरस्थितार्धमण्डलगताष्टचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागतदनन्तरपूर्वभावियोजनद्वयप्रमाणापान्तरालरूपाद् भागात् विनिर्गत्य 'तस्स' तस्य दक्षिणदिग्भाविसर्वबाह्यानन्तरदक्षिणार्धमण्डलस्य 'आइपएसाए' आदिप्रदेशात् आदिप्रदेशमाश्रित्य 'बाहिराणंतरं' बाह्यानन्तरं सर्वबाह्यमण्डलादनन्तरभूता-

माभ्यन्तरां 'दाहिणं' दाक्षिणात्यां 'अद्धमण्डलसंठिइं' अर्धमण्डलसंस्थिति 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति । अत्रापि स्वचारगत्या सूर्यस्याग्रेतनसीमायामागमनं पूर्ववदेव भावनीयम् । एवमग्रेऽपि विज्ञेयम् । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'बाहिराणंतरं' बाह्यानन्तरां पूर्वोक्तरूपां 'दाहिणं' दाक्षिणात्यां 'अद्धमंडलसंठिइं' अर्धमण्डलसंस्थितिं 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति किन्तु सा 'दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यां 'ऊणा' ऊना पूर्वगतरात्र्यपेक्षया हीना भवति, तथा 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति किन्तु सः 'दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यां 'अहिए' अधिकः पूर्वगतदिवसापेक्षयाऽधिको भवति । 'से' अथ प्रथमाहोरात्रादनन्तरं 'पविसमाणे' पूर्ववत् प्रविशन्नेव 'सूरिए' सूर्यः 'दोच्चंसि अहोरत्तंसि' द्वितीयेऽहोरात्रे 'दाहिणाए' दाक्षिणात्यात 'अंतराए भागाए' अन्तराद् भागात् पूर्वप्रदर्शितप्रमाणापान्तरालरूपभागान्निस्सृत्य 'तस्स' तस्य सर्वबाह्यादभ्यन्तरतृतीयोत्तरार्धमण्डलस्य 'आइपएसाए' आदिप्रदेशात् आदिप्रदेशमाश्रित्य 'बाहिराणंतरं' बाह्यानन्तरां बाह्यादनन्तरभूतामाभ्यन्तरां 'तच्चं' तृतीयां सर्वबाह्यार्धमण्डलसंस्थितिमपेक्ष्य तृतीयां 'उत्तरां' औत्तरां 'अद्धमंडलसंठिइं' अर्धमण्डलसंस्थितिं 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु सूर्यः 'बाहिराणतरं' बाह्यानन्तरां पूर्वोक्तां 'तच्चं' तृतीयां पूर्वोक्तरूपां 'उत्तरं' औत्तरां 'अद्धमंडलसंठिइं' अर्धमण्डलसंस्थितिं 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति,, सा च 'चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः 'ऊणा' ऊना हीना भवति, तथा 'दुवालसमुहुत्तो दिवसो भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति स च 'चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः 'अहिए' अधिको भवति 'एवं' पूर्वोक्तरीत्या 'खलु' निश्चयेन 'एएणं' एतेन पूर्वप्रदर्शितेन अर्धमण्डलसंस्थितित्रयरूपेण 'उवाएणं' उपायेन क्रमेण विधिना 'पविसमाणे' प्रविशन् अभ्यन्तरं गच्छन् 'सूरिए' सूर्यः 'तयाणंतराओ' तदनन्तरात् अर्धमण्डलात् 'तयाणंतरं' तदनन्तरां तदग्रेस्थितां 'तंसि तंसि'-तस्मिन् तस्मिन् 'देसंसि' देशे-प्रदेशे दक्षिणपूर्वभागे उत्तरपश्चिमभागे वा 'तं तं' तां तां 'अद्धमंडलसंठिइं' अर्धमण्डलसंस्थितिं 'संकममाणे२' संक्रामन्२ एकस्यार्धमण्डलसंस्थितेरपरामर्धमण्डलसंस्थितिं स्वगत्या गच्छन् गच्छन् द्वितीयस्य षण्मासस्य द्व्यशीत्यधिकशत-(१८२)-तमाहोरात्रस्य पर्यन्तभागे गते सति 'उत्तराए' औत्तरात् उत्तरदिग्भवात् 'अंतराए भागाए' अन्तरात् भागात् सर्वबाह्यमण्डलापेक्षया द्व्यशीत्यधिकशततममण्डलगताष्टचत्वारिंशद्योजनैकषष्टिभागतदनन्तराभ्यन्तर-

योजनद्वयप्रमाणापान्तरालरूपभागात् 'तस्स' तस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतदक्षिणार्धमण्डलस्य 'आइपएसाए' आदिप्रदेशात् आदिप्रदेशमाश्रित्य 'सव्वब्भंतरं' सर्वाभ्यन्तरां 'दाहिणं' दाक्षिणात्यां 'अद्धमंडलसंठिइं' अर्धमण्डलसंस्थितिं 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति, सूर्यस्य चारविधिना सीमायामागमनं पूर्ववदेवावसेयम्। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतरं' सर्वाभ्यन्तरां 'दाहिणं' दाक्षिणात्यां 'अद्धमंडलसंठिइं' अर्धमण्डलसंस्थितिं 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठाप्राप्तः परमप्रकर्षगतः 'उक्कोसए' उत्कर्षकः सर्वोत्कृष्टः तत आधिक्याभावात्, 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलध्वी ततो लाघवाऽभावात् 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। उपसंहरन्नाह—'एस णं' इत्यादि। 'एस णं' एतत् खलु 'दोच्चे छम्मासे' द्वितीयं षण्मासम्। 'एस णं' एतत् खलु 'दोच्चस्स छम्मासस्स' द्वितीयस्य षण्मासस्य 'पज्जवसाणे' पर्यवसानं सर्वान्तिमभागो वर्त्तते। 'एस णं' एष खलु 'आइच्चे संवच्छरे' आदित्यः संवत्सर 'एस णं' एतत् खलु 'आइच्चसंवच्छरस्स' आदित्यसंवत्सरस्य 'पज्जवसाणे' पर्यवसानं पर्यन्तभागः ॥सू०५॥

॥ इति दाक्षिणात्या अर्धमण्डलसंस्थितिः समाप्ता ॥

गता दाक्षिणात्या अर्धमण्डलसंस्थितिः, साम्प्रतमौत्तरामर्धमण्डलसंस्थितिं विवृण्वन्नाह—'ता कहं ते उत्तरा अद्धमंडलसंठिई' इत्यादि।

मूलम्—ता कहं ते उत्तरा अद्धमंडलसंठिई आहितेति वदेज्जा? ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वदीवजावपरिक्खेवेणं पण्णत्ते। ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं उत्तरं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। से निक्खममाणे णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि उत्तराए अंतराए भागाए तस्साइपएसाए अब्भंतराणंतरं दाहिणं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए अब्भंतराणंतरं दाहिणं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिंएगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया। सेणिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि दाहिणाए अंतराए भागाए तस्साइपएसाए अब्भितराणंतरं तच्चं उत्तरं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जयाणं सूरिए अब्भंतराणंतरं तच्चं उत्तरं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगट्ठिभाग-

मुहुत्तेहिं अहिया । एवं खलु एएणं उवाएणं निक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ तयाणं-तरं तंसि तंसि देसंसि तं तं अद्धमंडलसंठिइं संकममाणे २ उत्तराए अंतराए भागाए तस्साइपएसाए सव्ववाहिरं दाहिणं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ । ता जयाणं-सूरिए सव्ववाहिरं दाहिणं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ । एस णं पढमे छम्मासे । एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे ।

से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि दाहिणाए अंतराए भागाए तस्साइपएसाए वाहिराणंतरं उत्तरं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जयाणं सूरिए वाहिराणंतरं उत्तरं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए । से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि उत्तराए अंतराए भागाए तस्साइपएसाए वाहिरं तच्चं दाहिणं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ । ता जयाणं सूरिए वाहिरं तच्चं दाहिणं अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालस-मुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए । एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ तयाणंतरं तंसि तंसि देसंसि तं तं अद्धमंडल-संठिइं संकममाणे २ दाहिणाए अंतराए भागाए तस्साइपएसाए सव्वब्भंतरं उत्तर अद्धमंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ । ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं उत्तरं अद्ध-मंडलसंठिइं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहन्निया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ । एस णं दोच्चे छम्मासे । एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे एस णं आइच्चे संवच्छरे । एस णं आइच्चसंवच्छरस्स पज्जवसाणे ॥ सूत्र ६ ॥

॥ उत्तरा अद्धमंडलसंठिई समत्ता ॥

पढमस्स पाहुडस्स वीयं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥ १-२ ॥

छाया—तावत् कथं ते औत्तरा अर्धमण्डलसंस्थितिः आख्यातेति वदेत्? तावत् अयं खलु जम्बूद्वीपो द्वीप सर्वद्वीप-यावत्-परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः । तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्य-न्तरां औत्तराम् अर्धमण्डलसंस्थितिम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । अथ निष्का-

मन् सूर्यः नवं संवत्सरं अयन् प्रथमे अहोरात्रे औत्तरात् अन्तराद् भागात् तस्यादिप्रदेशात् अभ्यन्तरानन्तरं दाक्षिणात्यां अर्धमण्डलसंस्थितिम् उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः अभ्यन्तरानन्तरां दक्षिणात्यां अर्धमण्डलसंस्थितिं उपसंक्रम्य चारं चरति-तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति द्वाभ्याम् एकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यां ऊनः, द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति द्वाभ्यां एकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यां अधिका। अथ निष्क्रामन् सूर्यः द्वितीये अहोरात्रे दाक्षिणात्यात् अन्तराद् भागात् तस्यादिप्रदेशात् अभ्यन्तरानन्तरां तृतीयां औत्तरां अर्धमण्डलसंस्थितिम् उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः अभ्यन्तरानन्तरां तृतीयां औत्तरां अर्धमण्डलसंस्थितिं उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः ऊनः, द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैरधिका। एवं खलु एतेन उपायेन निष्क्रामन् सूर्यः तदन्तरात् तदनन्तरां तस्मिन् तस्मिन् देशे तां तां अर्धमण्डलसंस्थितिं संक्रामन् २ औत्तरात् अन्तरात् भागात् तस्यादिप्रदेशात् सर्वबाह्यां दाक्षिणात्यां अर्धमण्डलसंस्थितिं उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सर्वबाह्यां दाक्षिणात्यां अर्धमण्डसंस्थितिं उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति एतत् खलु प्रथमं षण्मासम्। एतत् खलु प्रथमस्य षण्मासस्य पर्यवसानम्।

अथ प्रविशन् सूर्यः द्वितीयं षण्मासं अयन् प्रथमे अहोरात्रे दाक्षिणात्यात् अन्तराद् भागात् तस्यादिप्रदेशात् बाह्यानन्तरां औत्तरां अर्धमण्डलसंस्थितिं उपसंक्रम्य चारं चरति तावत् यदा खलु सूर्यः बाह्यानन्तरां औत्तरां अर्धमण्डलसंस्थितिं उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् ऊना, द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यामधिकः। अथ प्रविशन् सूर्यः द्वितीये अहोरात्रे औत्तरात् अन्तराद् भागात् तस्यादिप्रदेशात् बाह्यां तृतीयां दाक्षिणात्यां अर्धमण्डलसंस्थितिं उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु बाह्यां तृतीयां दाक्षिणात्यां अर्धमण्डलसंस्थितिं उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः ऊना, द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैरधिकः। एवं खलु एतेन उपायेन प्रविशन् सूर्यः तदनन्तरात् तदनन्तरां तस्मिन् तस्मिन् देशे तां तां अर्धमण्डलसंस्थितिं संक्रामन् २ दाक्षिणात्यात् अन्तराद् भागात् तस्यादिप्रदेशात् सर्वाभ्यन्तरां औत्तरां अर्धमण्डलसंस्थितिं उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सर्वाभ्यन्तरां औत्तरां अर्धमण्डलसंस्थितिं उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। एतत् खलु द्वितीयं षण्मासम्। एतत् खलु द्वितीयस्य षण्मासस्य पर्यवसानम्। एष खलु आदित्य संवत्सरः। एतत् खलु आदित्यसंवत्सरस्य पर्यवसानम्" ।सू० ६।

॥ औत्तरा अर्धमण्डलसंस्थितिः समाप्ता ॥

'प्रथमस्य प्राभृतस्य द्वितीयं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१-२॥

व्याख्या– 'ता तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'ते' तव मते उत्तरा' औत्तरा

'अद्धमंडलसंठिई' अर्द्धमण्डलसंस्थितिः 'आहिया' आख्याता 'त्तिवएज्जा' इति वदेत् एतद् वदतु भगवान् इति-प्रश्नः। भगवानाह-'ता' तावत् 'अयण्णं' अयं खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपो द्वीपः मध्यजम्बूद्वीपः 'सव्वदीव जाव परिक्खेवेणं' सर्वद्वीप यावत् परिक्षेपेण सर्वद्वीपसमुद्राणां मध्ये सर्वाभ्यन्तरः सर्वेभ्यो द्वीपसमुद्रेभ्यः क्षुल्लकः एकलक्षयोजनायामविष्कम्भ-परिमाणवत्त्वात्, परिक्षेपेण परिधिना पूर्वप्रदर्शितप्रमाणेन 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तः। 'ता' तावत् 'जयाण' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतरं' सर्वाभ्यन्तरं सर्वाभ्यन्तरस्थितां 'उत्तरं' औत्तरां उत्तरदिग्भाविनीं 'अद्धमंडलसंठिइं' अर्धमण्डसंस्थितिं 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उक्कोसए' उत्कर्षकः 'अट्ठा-रसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्तो दिवसो भवति, 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलघ्वी 'दुवाल-समुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। अग्रे प्रथमे षण्मासे, द्वितीये षण्मासे इति परिपूर्णे आदित्यसंवत्सरे यथा दाक्षिणात्यायाः अर्धमण्डलसंस्थितेर्व्याख्या कृता तथैवास्या औत्तराया अर्धमण्डलसंस्थितेरपि सर्वा व्याख्याऽत्रसेया, विशेषस्तु एतावानेव यद् दाक्षिणात्यार्धमण्डलसंस्थितौ 'दाहिणं दाहिणाए' दाक्षिणात्यां दाक्षिणात्यात्' इति दाक्षिणात्यशब्देन व्याख्यातं तदत्र औत्तरायामर्धमण्डसंस्थितौ सर्वत्र 'उत्तरं उत्तराए' 'औत्तरां औतरात्' इति शब्देन व्याख्ये-यम्, शेषं सर्वं दाक्षिणात्यार्धमण्डसंस्थितिवदेव विज्ञेयमतोऽत्र विस्तरभयान्न व्याख्या कृता। मूलार्थः सर्वोऽपि छायागम्यत्वात् सुगम एवेति विरम्यते ॥ सू० ६ ॥

॥ इत्यौत्तरा अर्धमण्डलसंस्थितिः समाप्ता ॥

॥ इति प्रथमस्य प्राभृतस्य द्वितीयं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥

गतं प्रथमस्य मूलप्राभृतस्य द्वितीयं प्राभृतप्राभृतम्, साम्प्रतं 'किं ते चिण्णं पडिचरइ'। इति चीर्णप्रतिचरणाधिकारविषयकं तृतीयं प्राभृतप्राभृतं व्याख्यायते-'ता किं ते चिण्णं' इत्यादि।

मूलम्—ता किं ते चिण्णं पडिचरइ आहितेति वदेज्जा ?, तत्थ खलु इमे दुवे सूरिया पण्णत्ता तं जहा-भारहे चेव सूरिए ?, एरवए चेव सूरिए। ता एते णं दुवे सूरिया पत्तेयं २ तीसाए २ मुहुत्तेहिं एगमेगं अद्धमंडलं चरइ सट्ठीए सट्ठीए मुहुत्तेहिं एगमेगं मंडलं संघाएंति। ता णिक्खममाणा खलु एते दुवे सूरिया णो अण्णमण्णस्स चिण्णं पडिचरंति, पविसमाणा खलु एते दुवे सूरिया अण्ण-मण्णस्स चिण्णं पडिचरंति, तत्थ णं को हेउ-त्ति वदेज्जा ? ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ते। तत्थ णं अयं भारहे चेव सूरिए जंबुद्दीवस्स दीवस्स पाईणपडीणाययाए उदीणदाहिणाययाए जीवाए मंडलं चउवीसएणं सएणं

छेत्ता दाहिणपुरत्थिमिल्लंसि चउभागमंडलंसि बाणउइं सूरियमयाइं जाइं सूरिए अप्पणा चेव चिण्णाइं पडिचरइ, उत्तरपच्चत्थिमिल्लंसि चउभागमंडलंसि एक्काणउइं सूरियमयाइं जाइं सूरिए अप्पणा चेव चिण्णाइं पडिचरइ। तत्थ अयं भारहे सूरिए एरवयस्स सूरियस्स जंबुद्दीवस्स दीवस्स पाईणपडीणाययाए उदीणदाहिणाययाए जीवाए मंडलं चउवीसएणं सएणं छेत्ता उत्तरपुरत्थिमिल्लंसि चउभागमंडलंसि बाणउइं सूरियमयाइं जाइं सूरिए परस्स चिण्णाइं पडिचरइ, दाहिणपच्चत्थिमिल्लंसि चउब्भागमंडलंसि एक्काणउइं सूरियमयाइं जाइं सूरिए परस्स चेव चिण्णाइं पडिचरइ। तत्थ अयं एरवए सूरिए जंबुद्दीवस्स दीवस्स पाईणपडीणाययाए उदीणदाहिणाययाए जीवाए मंडलं चउवीसएणं सएणं छेत्ता उत्तरपच्चत्थिमिल्लंसि चउब्भागमंडलंसि बाणउइं सूरियमयाइं जाइं सूरिए अप्पणा चेव चिण्णाइं पडिचरइ, दाहिण पुरत्थिमिल्लंसि चउब्भागमंडलंसि एक्काणउइं सूरियमयाइं जाइं सूरिए अप्पणा चेव चिण्णाइं पडिचरइ। तत्थ णं अयं एरवए सूरिए भारहस्स सूरियस्स जंबुद्दीवस्स दीवस्स पाईणपडीणाययाए उदीणदाहिणाययाए जीवाए मंडलं चउवीसएणं सएणं छित्ता दाहिणपच्चत्थिमिल्लंसि चउब्भागमंडलंसि बाणउइं सूरियमयाइं जाइं सूरिए परस्स चिण्णाइं पडिचरइ, उत्तरपुरत्थिमिल्लिंसि चउब्भागमंडलंसि एक्काणउइं सूरियमयाइं जाइं सूरिए परस्स चेव चिण्णाइं पडिचरइ। ता निक्खममाणा खलु एते दुवे सूरिया णो अण्णमण्णस्स चिण्णं पडिचरंति,। पविसमाणा खलु दुवे सूरिया अण्णमण्णस्स चिण्णं पडिचरंति। सयमेगं चोत्तालं॥ गाहाओ ॥ सू० ७॥

॥ पढमपाहुडस्स तइयं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥ १-३ ॥

छाया—तावत् किं ते चीर्णं प्रतिचरति आख्यातमिति वदेत्? तत्र खलु इमौ द्वौ सूर्यौ प्रज्ञप्तौ तद्यथा-भारतकश्चैव सूर्यः ? ऐरवतिकश्चैव सूर्यः २। तावत् एतौ खलु द्वौ सूर्यौ प्रत्येकं २ त्रिंशता २ मुहूर्त्तैः एकैकमर्धमण्डलं चरतः, षष्ट्या षष्ट्या मुहूर्त्तैः एकैकं मण्डलं संघातयतः। तावत् निष्क्रामन्तौ खलु एतौ द्वौ सूर्यौ नो अन्योन्यस्य चीर्णप्रतिचरतः, प्रविशन्तौ खलु एतौ द्वौ सूर्यौ अन्योन्यस्य चीर्णं प्रतिचरत, तत्र को हेतुः ? इति वदेत्। तावत् अयं खलु जम्बूद्वीपो द्वीपः यावत् परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः। तत्र खलु अयं भारतकश्चैव सूर्यः जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य प्राचीप्रतीच्यायतया उदीचीदक्षिणायतया जीवया मण्डलं चतुर्विंशतिकेन शतेन छित्वा दक्षिणपौरस्त्ये चतुर्भागमण्डले द्वानवतिं सूर्यमतानि यानि सूर्यः आत्मनैव चीर्णानि प्रतिचरति, उत्तरपाश्चात्ये चतुर्भागमण्डले एकनवतिं सूर्यमतानि यानि सूर्य आत्मनैव चीर्णानि प्रतिचरति। तत्रायं भारतकः सूर्यः ऐरवतिकस्य सूर्यस्य जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य प्राचीप्रतीच्यायतया उदीचीदक्षिणायतया जीवया

मण्डलं चतुर्विंशतिकेन शतेन छित्वा उत्तरपौरस्त्ये चतुर्भागमण्डले द्वानवतिं सूर्यमतानि यानि सूर्यः परस्य चीर्णानि प्रतिचरति, दक्षिणपाश्चात्ये चतुर्भागमण्डले एकनवतिं सूर्यमतानि यानि सूर्यः परस्यैव चीर्णानि प्रतिचरति। तत्रायम् ऐरवतिकः सूर्यः जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य प्राचीप्रतीच्यायतया उदीचोदक्षिणायतया जीवया मण्डलं चतुर्विंशतिकेन शतेन छित्वा उत्तरपाश्चात्ये चतुर्भागमण्डले द्वानवतिं सूर्यमतानि यानि सूर्य आत्मनैव चीर्णानि प्रतिचरति, दक्षिणपौरस्त्ये चतुर्भागमण्डले एकनवतिं सूर्यमतानि यानि सूर्यः आत्मनैव चीर्णानि प्रतिचरति। तत्र खलु अयम्-ऐरवतिकः सूर्यः भारतकस्य सूर्यस्य जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य प्राचीप्रतीच्यायतया उदीचीदक्षिणायतया जीवया मण्डलं चतुर्विंशतिकेन शतेन छित्वा दक्षिणपाश्चात्ये चतुर्भागमण्डले द्वानवतिं सूर्यमतानि यानि सूर्यः परस्य चीर्णानि प्रतिचरति, उत्तरपौरस्त्ये चतुर्भागमण्डले एकनवतिं सूर्यमतानि यानि सूर्यः परस्यैव चीर्णानि प्रतिचरति ततो निष्क्रामन्तौ खलु एतौ द्वौ सूर्यौ नो अन्योन्यस्य चीर्णं प्रतिचरतः। "शतमेकं चतुश्चत्वारिंशम्"। गाथा। सूत्र ॥७॥

॥ प्रथमप्राभृतस्य तृतीयं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥ १-३ ॥

व्याख्या—'ता' तावत् 'किं' किम् कथं केन प्रकारेण 'ते' तव मते 'चिण्णं पडिचरइ' 'किं चीर्णं प्रतिचरति' इति 'आहिय' इति आख्यातं कथितम्? इति—एतद्विषयं 'वएज्जा' वदेत् बदतु कथयतु भगवान्? इति प्रश्नः—उत्तरमाह—'तत्थ खलु' इत्यादि। 'तत्थ खलु' तत्र खलु 'इमे' इमौ शास्त्रप्रसिद्धौ 'दुवे' द्वौ 'सूरिया' सूर्यौ 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तौ कथितौ पूर्वतीर्थकरगणधरैरिति, 'तं' जहा' तद्यथा तौ यथा—भारहए चेव सूरिए' भारतकश्चैव यः सर्वबाह्यमण्डलस्य दक्षिणात्येऽर्धमण्डले चारं चरितुं समारभते स भरतक्षेत्रप्रकाशकत्वाद् भारतः सूर्यः, 'एरवए चेव सूरिए' ऐरवतश्चैव यस्तस्यैव सर्वबाह्यमण्डलस्य औत्तरेऽर्धमण्डले चारं चरति स ऐरवतक्षेत्रप्रकाशकत्वाद ऐरवतः सूर्यः २। 'ता' ततः 'एते णं' एतौ भरतैरवतक्षेत्रे चारिणौ खलु 'दुवे सूरिया' द्वौ सूर्यौ पत्तेयं २ प्रत्येकं २ एकैकत्वमाश्रित्य 'तीसाए तीसाए' त्रिंशता त्रिंशता मुहुत्तेहिं' मुहूर्तैः 'एगमेगं' एकैकं 'अद्धमंडलं' अर्धमण्डलं 'चरंति' चरतः परिभ्रमतः 'सट्ठीए सट्ठीए षष्ट्या षष्ट्या—षष्टिषष्टिसंख्यकैः 'मुहुत्तेहिं' मुहूर्तैः 'एगमेगं' एकैकं 'मंडलं' मण्डलं 'संघाएंति' संघातयतः सार्द्धमेव परिपूरयतः, न तु पूर्वापरेण 'तो' तत्र—एकसूर्यसंवत्सरमध्ये 'निक्खममाणा खलु' निष्क्रामन्तौ सर्वाभ्यन्तरमण्डलान्निस्सरन्तौ खलु "एते दुवे सूरिया' एतौ द्वौ सूर्यौ 'णो' नौ नैव 'अण्णमण्णस्स' अन्योन्यस्य परस्परस्य 'चिण्णं' चीर्णं तत्तद्वारा पूर्वं सेवितं क्षेत्रं 'पडिचरंति' प्रतिचरतः अपरोऽपरेण चीर्णे क्षेत्रे, अन्योऽन्येन च चीर्णे क्षेत्रे तौ न परिभ्रमतइत्यर्थः, (इदं जम्बूद्वीपचित्रवशादवसेयम्) किन्तु 'पविसमाणा' प्रविशन्तौ सर्वबाह्यमण्डलादभ्यन्तरं चतुरशीत्यधिकशततमं मण्डलं गच्छन्तौ खलु-'एते दुवे सूरिया एतौ द्वौ सूर्यौ 'अण्णमण्णस्स' अन्योन्यस्य 'चिण्णं चीर्णं तत्तद्वारा पूर्वं सेवितं क्षेत्रं

'पडिचरंति' प्रतिचरतः परिभ्रमतः। गौतमः पृच्छति-'तत्थ णं' तत्र एवंविधव्यवस्थायां 'को हेऊ' को हेतुः किं कारणम् ? 'त्तिवएज्जा' इति वदेत् इति भगवन् ! कथयतु। भगवानाह-'ता' तावत् श्रूयताम् 'अयण्णं' अयं खलु 'जंबूद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपो द्वीपः 'जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ते' यावत् परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः जम्बूद्वीपपरिमाणं पूर्वं प्रतिपादितं ततो विज्ञेयम्। 'तत्थ णं' तत्र खलु 'अयं' प्रत्यक्षं दृश्यमानः 'भारहे चेव' भारतश्चैव भरतक्षेत्रप्रकाशकत्वाद् भारतः 'सूरिए' सूर्यः 'जंबुद्दीवस्स दीवस्स' जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य 'पाईणपडीणायययाए' प्राचीप्रतीच्यायततया पूर्वदिशातः पश्चिमदिशापर्यन्तं या दीर्घा तया तथा-'उदीणदाहिणायययाए' उदीचीदक्षिणायततया उत्तरदिशातो दक्षिणदिशापर्यन्तं या दीर्घा तया 'जीवाए' जीवया जीवासा-

पू.
दृश्याज्जीवा प्रत्यश्चा, तथा उ.+द. ते द्वे अपि जीवे अधिकृत्येत्यर्थः 'मंडलं' मण्डलं यस्मिन्
प.

यस्मिन् मण्डले सूर्यः परिभ्रमति तत्तन्मण्डलं 'चउवीसएण सएणं' चतुर्विंशतिकेन चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन (१२४) 'छित्ता' छित्वा विभज्य तस्य तस्य मण्डलस्य चतुर्विंशत्यधिकशतसंख्यकान् भागान् परिकल्प्य, तेषां चतुर्दिक्त्वात् चतुर्भिर्भागो हर्त्तव्यः, तेनागताः प्रतिदिक् एकैकमण्डलस्य एकत्रिंशद् एकत्रिंशद्भागाः, ततस्तेषु 'दाहिणपुरत्थिमिल्लंसि' दक्षिणपौरस्त्ये दक्षिणपूर्वदिक् स्थिते आग्नेय्यां दिशि वर्तमाने 'चउब्भागमंडलंसि' चतुर्भागमण्डले चतुर्भागीकृते मण्डले मण्डलस्य चतुर्भागे तस्य तस्य चतुर्विंशत्यधिकशतसंख्यकत्वेन परिकल्पितस्य मण्डलस्य चतुर्थे भागे एकत्रिंशत्संख्यकरूपे इत्यर्थः सूर्यसंवत्सरसम्बन्धिनि द्वितीये षण्मासे 'बाणउइं' द्विनवतिं द्व्यधिकनवतिसंख्यकानि मण्डलानि चतुर्भागरूपाणि 'सूरियमयाइं, सूर्यमतानि सूर्येण भारतसूर्येण पूर्वं मतानि अतएव 'जाइ' यानि 'अप्पणा चेव' आत्मनैव स्वयं 'चिण्णाइं' चीर्णानि पूर्वं सर्वाभ्यन्तरमण्डलाद्वहिर्निष्क्रमणसमये आसेवितानि तानि 'सूरिए' सूर्यः 'पडिचरइ' प्रतिचरति तेषु परिभ्रमतीत्यर्थः।

तानि न परिपूर्णचतुर्भागमात्राणि किन्तु स्व स्वमण्डलगतचतुर्विंशत्यधिकशतसम्बन्ध्यष्टादशाष्टादशभागप्रमितानि। ते चाष्टादशाष्टादशभागा न सर्वेष्वपि मण्डलेषु भवन्ति, प्रतिनियतदेशे एव भवन्ति, किन्तु क्वापि मण्डले कुत्रापि, केवल दक्षिणपौरस्त्यस्य चतुर्भागमध्ये भवन्ति तत आह-दाहिणपुरत्थिमिल्लंसि' इति। तथा स एव भारतः सूर्यः तस्यैव द्वितीयषण्मासस्य मध्ये 'उत्तरपच्चत्थिमिल्लंसि' उत्तरपाश्चात्ये वायव्यकोणे 'चउभागमंडलंसि' चतुर्भागमण्डले मण्डलस्य चतुर्भागे 'एक्काणउइं' एकनवतिं एकनवतिसंख्यकानि मण्डलानि पूर्ववत् स्वस्वमण्डलगतचतुर्विंशत्यधिकशतसम्बन्ध्यष्टादशाष्टदशभागप्रमितानि 'सूरियमयाइं' सूर्यमतानि

सर्वाभ्यन्तरमण्डलान्निष्क्रमणकाले मतानि, एतदेव स्पष्टयति–'जाइं अप्पणा चेव' यानि–आत्मनैव स्वयं पूर्वं 'चिण्णाइं' चीर्णानि तानि 'सूरिए'सूर्यः भारतः सूर्यः 'पडिचरइ' प्रतिचरति। अत्र चतुरशीत्यधिकशतसंख्यकेषु सर्वेषु मण्डलेषु सर्वबाह्यमण्डलात् शेषाणि त्र्यशीत्यधिकशतसंख्यकानि मण्डलानि सन्ति, तानि च प्रत्येकं द्वितीयषण्मासमध्ये द्वाभ्यामपि सूर्याभ्यां परिभ्रम्यन्ते, अर्थात् द्वितीयषण्मासे तेषां त्र्यशीत्यधिकशतसंख्यकमण्डलानां मध्ये एकस्मिन् एकस्मिन् मण्डले द्वावपि सूर्यौ परिभ्रमतः। सर्वेष्वपि दिग्विभागेषु प्रत्येकस्मिन् दिग्विभागे एकस्मिन् मण्डले एक एव सूर्यः परिभ्रमति, द्वितीये तु अपरः सूर्यः। एवं सर्वान्तिममण्डलपर्यन्तमपि परिभावनीयम्। तत्र द्वितीयषण्मासे दक्षिणपौरस्त्ये दिग्विभागे भारतः सूर्यो द्विनवतिसंख्यकानि मण्डलानि परिभ्रमति, ऐरवतश्च सूर्यएकनवतिसंख्यकानि मण्डलानि परिभ्रमति। उत्तरपाश्चात्ये दिग्विभागे च ऐरवतः सूर्यो द्विनवतिसंख्यकानि मण्डलानि परिभ्रमति भारतः सूर्यश्च–एकनवतिसंख्यकानि मण्डलानि परिभ्रमति। एवं त्र्यशीत्यधिकशतसंख्यकेषु सर्वेष्वपि मण्डलेषु द्वयोः सूर्ययोः परिभ्रमणं भवतीति। एतच्च पट्टिकादौ मण्डलानि विलिख्य परिभावनीयम्। अतएवोक्तम्–दक्षिणपौरस्त्ये द्विनवतिसंख्यकानि मण्डलानि, उत्तरपाश्चात्ये च एकनवतिसंख्यकानि मण्डलानि भारतः सूर्यः स्वयं पूर्वं चीर्णानि प्रतिचरतीति। तदेवं भारतसूर्यस्य स्वचीर्णप्रतिचरणपरिमाणं प्रदर्शितम् अथ च तस्यैव भारतसूर्यस्य परचीर्णप्रतिचरणपरिमाणं प्रदर्शयति– 'तत्थ णं अयं भारहे' इत्यादि। 'तत्थ' तत्र मध्यजम्बूद्वीपे 'अयं' अयं प्रस्तुत प्रकरणोल्लिखितो जम्बूद्वीपसम्बन्धीभरतक्षेत्रप्रकाशकारित्वाद् भारतः सूर्यः 'जंबुद्दीवस्स दीवस्स' जंबूद्वीपस्य द्वीपस्य 'पाईणपडीणायययाए' प्राचीप्रतीच्यायतया पूर्वपश्चिमदीर्घया, तथा 'उदीणदाहिणाययाए' उदीचीदक्षिणायतया उत्तरदक्षिणदीर्घया 'जीवाए' जीवया जीवासादृश्यात जीवा तया दवरिकयेत्यर्थः 'मंडलं' मण्डलं चतुर्भिर्विभक्तं तत्तन्मण्डलं 'चउवीसएणं सएणं' चतुर्विंशतिकेन चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन शतभागेन 'छेत्ता' छित्वा–हत्वा 'उत्तरपुरत्थिमिल्लंसि' उत्तरपौरस्त्य उत्तरपूर्वदिग् विभागे ईशानकोणे इत्यर्थः 'चउब्भागमंडलंसि' चतुर्भागमण्डले मण्डलस्ये चतुर्थे भागे तेषामेव द्वितीयानां षण्णां मासानां मध्ये 'एरवयस्स सूरियस्स' ऐरवतस्य सूर्यस्य 'बाणउइं' द्वानवति द्विनवतिसंख्यकानि 'सूरियमयाइं' सूर्यमतानि ऐरवतसूर्येण पूर्वं निष्क्रमणकाले मतानि मती कृतानि–जाइं' यानि 'सूरिए' सूर्यः भारतः सूर्यः 'परस्स चिण्णाइं' परस्य ऐरवतस्य सूर्यस्य द्वारा चिण्णाइं' चीर्णानि निष्क्रमणकाले तानि 'पडिचरइ' प्रतिचरति, तथा 'दाहिणपच्चत्थिमिल्लंसि' दक्षिणपाश्चात्ये नैऋतकोणे च 'चउब्भागमंडलंसि' चतुर्भागमण्डले मण्डलस्य चतुर्थे भागे 'एक्काणउइं' एकनवतिं एकनवतिं संख्यकानि 'सूरियमयाइं सूर्यमतानि एरवतसूर्यमतानि ऐरवतसूर्यसम्बन्धीनि 'जाइं' यानि 'सूरिए' सूर्यः

-भारतः सूर्यः 'परस्स चेव' परस्यैव ऐरवतसूर्यस्यैव द्वारा 'चिण्णाइं' चीर्णानि 'पडिचरइ' प्रतिचरति। एकस्मिन् भागे द्विनवतिरेकस्मिन् भागे च एकनवतिरित्यत्रापि भावनीयम्। इत्थं च भारतः सूर्यो दक्षिणपौरस्त्ये भागे द्विनवतिसंख्यकानि, उत्तरपाश्चात्ये भागे च एकनवति संख्यकानि स्वयं चीर्णानि प्रतिचरति, उत्तरपौरस्त्ये भागे द्विनवतिसंख्यकानि दक्षिण–पाश्चात्ये भागे च एकनवतिसंख्यकानि परचीर्णानि ऐरवतसूर्यचीर्णानि प्रतिचरतीति-भावः। साम्प्रतमैरवतसूर्यविषयं प्रतिपादयति–'तत्थ' तत्र जम्बूद्वीपमध्ये 'अयं' अयं प्रत्यक्षतउपलभ्यमानः जम्बूद्वीपसम्बन्धी 'एरवए सूरिए' ऐरवतक्षेत्रप्रकाशकारित्वात् ऐरवतः सूर्यः 'जंबुद्दीवस्स दीवस्स' जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य पाईणपडीणाययाए प्राचीप्रतीच्यायतया पूर्वपश्चिमदीर्घया 'उदीणदाहिणाययाए' उदीचीदक्षिणायतया उत्तरदक्षिणदीर्घया 'जीवाए' जीवया 'मंडलं' मण्डलं चतुर्भिर्विभक्तं तत्तन्मण्डलं 'चउवीसएणं सएणं' चतुर्विंशकेन शतेन चतुर्विंशत्यधिकैकशतेन 'छेत्ता' छित्वा 'उत्तरपच्चत्थिमिल्लंसि' उत्तरपाश्चात्ये भागे 'चउब्भाग मंडलंसि' चतुर्भागमण्डले मण्डलस्य चतुर्थे भागे 'बाणउइं'—द्विनवतिं द्विनवतिसंख्य कानि 'सूरियमयाइं' सूर्यमतानि–ऐरवतसूर्येणैवमतानि मतीकृतानि 'जाइं' यानि 'सूरिए' सूर्यः ऐरवतसूर्यः 'अप्पणा चेव' आत्मनैव स्वयं 'चिण्णाइं' चीर्णानि 'पडिचरइ' प्रतिचरति, तथा 'दाहिणपुरत्थिमिल्लंसि' दक्षिणपौरस्त्ये भागे 'चउब्भागमंडलंसि' चतुर्भागमण्डले मण्डलचतुर्थभागे 'एक्काणउइं' एकनवतिं एकनवतिसंख्यकानि सूरियमयाइं' सूर्यमतानि ऐरवतसूर्येणैव मतानि 'जाइं' यानि सूरिए' सूर्यः ऐरवतसूर्यः 'अप्पणाचेव' आत्मनैव स्वयं 'चिण्णाइं' चीर्णानि 'पडिचरइ' प्रतिचरति। 'तत्थ णं' तत्र खलु जम्बूद्वीपे 'अयं' अयं पूर्वप्रदर्शितः 'एरवए सूरिए' ऐरवतः सूर्यः' जंबूदीवस्स दीवस्स' जम्बूद्वीपस्य जम्बूद्वीपनामकस्य द्वीपस्य 'पाईणपडिणाययाए' प्राचीप्रतीच्यायतया पूर्वपश्चिमदीर्घया 'उदिणदाहिणाययाए' उदीची दक्षिणायतया उत्तरदक्षिणदीर्घया जीवया 'मंडलं' मण्डलं तत्तन्मण्डलं'चउवीसएणं सएणं' चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन'छित्ता' छित्वा विभज्य 'दाहिणपच्चत्थिमिल्लंसि' दक्षिणपाश्चात्ये भागे 'चउब्भागमंडलंसि' चतुर्भागमण्डले मण्डलचतुर्भागे 'भारहस्स सूरियस्स' भारतस्य सूर्यस्य भारतसूर्यसम्बन्धीनि 'बाणउइं' द्वानवति द्वानवतिसंख्यकानि 'सूरियमयाइं' सूर्यमतानि भारत सूर्यमतानि 'जाइं' यानि 'सूरिए' सूर्यः ऐरवतः सूर्यः 'परस्स' परस्य भारतसूर्यस्य द्वारा 'चिण्णाइं' चीर्णानि 'पडिचरइ' प्रतिचरति, तथा 'उत्तरपुरत्थि–मिल्लंसि' उत्तरपौरस्त्ये भागे 'चउब्भागमंडलंसि' चतुर्भागमण्डले मण्डलचतुर्थभागे तस्यैव भारतसूर्यस्य'एक्काणउइं' एकनवतिं एकनवतिसंख्यकानि 'सूरियमयाइं' सूर्यमतानि भारतसूर्यप्रतिसेवितानि 'जाइं' यानि 'सूरिए' सूर्यः ऐरवतसूर्यः 'परस्स चेव' परस्यैव द्वारा'चिण्णाइं'चीर्णानि 'पडिचरइ' प्रतिचरति। अयं भावः–ऐरवतः सूर्यः उत्तरपश्चिमे भागे द्वीनवतिसंख्यकानि मण्डलानि, दक्षिणपूर्वे

भागे च एकनवति संख्यकानि मण्डलानि स्वयं चीर्णानि प्रतिचरति, दक्षिणपश्चिमे भागे द्विनवति संख्यकानि मण्डलानि उत्तरपूर्वे च एकनवति संख्यकानि मण्डलानि परचीर्णानि अर्थात् भारतसूर्य चीर्णानि प्रतिचरतीति। उपसहारमाह–'ता' इत्यादि 'ता' तावत् 'निक्खममाणा' निष्क्रामन्तौ खलु 'एते' एतौ शास्त्रप्रसिद्धौ 'दुवे' द्वौ भारतैरवतसम्बन्धिनौ 'सूरिया' सूर्यौ 'णो' नो नैव 'अण्णमण्णस्स' अन्योन्यस्य परस्परस्य 'चिण्णं' चीर्णं क्षेत्रं 'पडिचरंति' प्रतिचरतः,किन्तु 'पविसमाणा' प्रविशन्तौ सर्वाभ्यन्तरमण्डलाभिमुखं गच्छन्तौ खलु 'एते दुवे सूरिया' एतौ द्वौ सूर्यौ 'अण्णमण्णस्स' अन्योन्यस्य परस्परस्य 'चिण्णं' चीर्णं क्षेत्रं 'पडिचरंति' प्रतिचरतः, किन्तु 'पविसमाण' प्रविशन्तौ सर्वाभ्यन्तरमण्डलाभिमुखं गच्छन्तौ खलु 'एते दुवे सूरिया' एतो द्वौ सूर्यौ 'अण्णमण्णस्य' अन्योन्यस्य 'चिण्णं' चिर्णं क्षेत्रं पडिचरंति' प्रतिचरतः। अत्र 'सयमेगं चोतालं' शतमेकं चतुश्चत्वारिंशं, एवम्भूतादिपदगर्भिताः 'गाहाओ' गाथाः संग्रह गाथा पठितव्याः। ताश्च नोपलभ्यन्तेऽतः कथयितुं न शक्यन्ते। अस्य सूत्रस्यायमाशयः–

अत्र भारतः सूर्यः अभ्यन्तरं प्रविशन् प्रत्येकं मण्डलं द्वौ चतुर्भागौ स्वयं चीर्णौ प्रतिचरति, द्वौ च परचीर्णौ अर्थात् ऐरवतसूर्यचीर्णौ प्रतिचरति। एवम् ऐरवतः सूर्योऽपिअभ्यन्तरं प्रविशन् प्रत्येकं मण्डलं द्वौ चतुर्भागौ स्वयं चीर्णौ चरति, द्वौ च परचीर्णौ अर्थात् भारतसूर्यचीर्णौ-प्रतिचरति इत्येवं प्रतिमण्डलमेकं केनाहोरात्रद्वयेन उभय सूर्यचीर्णप्रतिचरणविवक्षायां सर्वेऽष्टौ चतुर्भागाः प्रतिचीर्णा लभ्यन्ते, ते च चतुर्भागाश्चतुर्विंशत्यधिकशतसम्बन्ध्यष्टादशभागप्रतिता भवन्ति, तच्च प्राक प्रदर्शितमेव, तत एतेऽष्टौ चतुर्भागा अष्टादशभिर्गुणिताभवन्ति चतुश्चत्वारिंशधिकैकशतसंख्यकाः। (१४४) इति ॥सू० ७॥

। इति प्रथमस्य प्राभृतस्य तृतीयं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१-३॥

गतं प्रथमस्यमूलप्राभृतस्य तृतीयं प्राभृतप्राभृतम्' साम्प्रतम् 'अंतरं किं चरंति य' द्वौ 'सूर्यौ परस्परं कियदन्तरेण चारं चरतः, इत्यधिकार विषयकं चतुर्थं प्राभृतां विव्रयते–'ता केवइयं ते' इत्यादि।

मूलम्—ता केवइयं ते एए दुवे सूरिया अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति आहितेति वएज्जा ! तत्थ खलु इमाओ छ पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–तत्थ एगे एवमाहंसु–ता एगं जोयणसहस्स एगं च तेत्तीसं जोयणसयं, अण्णमण्णस्स। अंतरं कट्टु सूरिया चारं चरंति, एगे एवमाहंसु।१। एगे पुण एवमाहंसु ता एगं

जोयणसहस्सं एगं चउतीसं जोयणसयं अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु सूरिया चारं चरंति, एगे एवमाहंसु ।२। एगे पुण एवमाहंसु- ता एगं जोयणसहस्सं एगं च पणतीसं जोयणसयं अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु सूरिया चारं चरंति, एगे एवमाहंसु ।३। एगे पुण एवमाहंसु ता एग दीव एगं समुद्दं अण्णमण्णस्स अतरं कट्टु सूरिया चारं चरंति, एगे एवमाहंसु ।४। एगे पुण एवमाहंसु—ता दो दीवे दो समुद्दे अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु सूरिया चारं चरंति, एगे एवमाहंसु ।५। एगे पुण एवमाहंसु—ता तिण्णि दीवे तिण्णि समुद्दे अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु सूरिया चार चरंति, एगे एवमाहंसु ।६। एयं पुण एवं वयामो ता पंच पंच जोयणाइं पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले अण्णमण्णस्स अंतरं अभिवुड्ढेमाणा वा निव्वुड्ढेमाणा वा सूरिया चारं चरंति । तत्थ णं को हेऊ आहि तेति वएज्जा ! ता अयण्णं जम्बुद्दीवे दीवे जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ते, ता जया णं एते दुवे सूरिया सव्वब्भंतर मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति तया णं णवणउइं जोयणसहस्साइं छच्च चत्ताले जोयणसयाइं अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति तया णं उक्कमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। से निक्खममाणा सूरिय णवं संवच्छरं अयमाणा पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भिंतराणं तरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति । ता जयाणं एते दुवे सूरिया अब्भिंतराणं तरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति तया णं णवणवइं जोयणसहस्साइं छच्चापणताले जोयणसयाइं पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया । से निक्खममाणा सूरिया दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भितरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति । ता जयाणं एते दुवे सूरिया अब्भितरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति तया णं णवणवइं जोयणसहस्साइं छव्व इक्कावण्णे जोयणसयाइं नव य एगट्ठिभागे जोयणस्स अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहि ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया । एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणा एते दुवे सूरिया तया णं तराओ मंडलाओ, तया णं तरं मंडलं संकममाणा २ पंच-पंच जोयणाइं पणतीसं च एगट्ठिभागे जोयणस्स एग मेगे मंडले अण्णमण्णस्स अंतरं अभिवड्ढेमाणा २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति । ता जयाणं एते दुवे सूरिया सव्वबाहिरं मडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति तया णं एगं जोयणसयसहस्स छच्चसट्ठे जोयणसयाइं अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति, तया णं उत्तमकट्ठपत्ता

उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ । एसणं पढमे छम्मासे । एसणं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे ॥ सूत्रम् ८॥

छाया--तावत् कियत्कं ते एतौ द्वौ सूर्यौ अन्योन्यस्य अन्तरं कृत्वा चारं चरतः ! असंख्यातमिति वदेत् तत्र खलु इमाः षट् प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्तः. तद्यथा-तत्र एके एवमाहुः-तावत् एकं योजनसहस्त्रम् एकं च त्रयस्त्रिंशत् योजनशतम् अन्योन्यस्य अन्तरं कृत्वा सूर्यौ चारं चरतः, एके एवमाहुः ।१।

एके पुनरेवमाहुः तावत् एकं योजनसहस्त्रम् एकं चतुस्त्रिंशद् योजनशतम् अन्योन्यस्य अन्तरं कृत्वा सूर्यौ चारं चरतः, एके एवमाहुः ।२। एके पुनरेव माहुः-तावत् एकं योजनसहस्त्रम् एकं च पञ्चत्रिंशत् योजनशतम् अन्योन्यस्य अन्तरं कृत्वा सूर्यौ चारं चरतः, एके एवमाहुः ।३। एके पुनरेवमाहु'-तावत् एक द्वीपं एकं समुद्रं अन्योन्यस्य अन्तरं कृत्वा सूर्यौ चारं चरतः, एके एवमाहुः ।४। एके पुनरेवमाहुः-तावत् द्वौ द्वीपौ द्वौ समुद्रौ अन्योन्यस्य अन्तरं कृत्वा सूर्यौ चारं चरतः, एके एवमाहुः ५। एकेपुनरेवमाहुः-तावत् त्रीन् द्वीपान् त्रीन् समुद्रान् अन्योन्यस्य अन्तरं कृत्वा सूर्यौ चारं चरतः, एवमाहुः ।६। वयं पुनरेवं वदामः-तावत् पञ्च पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्च एकषष्टिभागान् योजनस्य एकैकस्मिन् मण्डले अन्योन्यस्य अन्तरं अभिवर्धयन्तौ वा निर्वर्धयन्तो वा सूर्यौ चारं चरतः । तत्र खलु को हेतुराख्यातः ? इति वदेत् । तावत् अयं खलु जम्बूद्वीपो द्वीपः यावत् परिक्षेपेण प्रज्ञप्त । तावत् यदा खलु एतौ द्वौ सूर्यौ सर्वाभ्यन्तरमण्डलं उपसंक्रम्य चारं चरतः तदा खलु नवनवर्ति योजनसहस्त्राणि षट् च चत्वारिंशत् योजनशतानि अन्योन्यस्य अन्तरं कृत्वा सूर्यौ चारं चरतः तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसोभवति, जघन्यिका द्वादशमुहुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । तौ निष्क्रामन्तौ सूर्यौ नवं संवत्सरं अयन् प्रथमे अहोरात्रे अभ्यन्तरानन्तरं मंडलं उपसंक्रम्य चारं चरतः तावत् यदा खलु एतौ द्वौ सूर्यौ अभ्यन्तरानन्तरं मंडलं उपसंक्रम्य चारं चरतः तदा खलु नवनवति योजनसहस्त्राणि षट् च पञ्च चत्वारिंशत् योजनशतानि पञ्चत्रिंशच्च एक षष्टि भागान् योजनस्य अन्योन्यस्य अन्तरं कृत्वा चारं चरतः तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति द्वाभ्यामेकषष्टि भागमुहूर्त्ताभ्यां ऊनः, द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यामधिका । तौ निष्क्रामन्तौ सूर्यौ द्वितीये अहोरात्रे अभ्यन्तरं तृतीयं मण्डलं उपसंक्रम्य चारं चरतः । तावत् यदा खलु एतौ द्वौ सूर्यौ अभ्यन्तरं तृतीयं मण्डलं उपसंक्रम्य चारं चरत तदा खलु नवनवति योजनसहस्त्राणि षट् च एक पञ्चशत् योजनशतानि नव च एकषष्टिभागान् योजनस्य अन्योन्यस्य अंतरं कृत्वा चारं चरत तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैरूनःद्वादशमुहूर्ता रात्रिर्भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्तैरधिका । एवं खलु एतेन उपायेन निष्क्रामन्तौ द्वौ सूर्यौ तदनन्तरात् मण्डलात् तदनन्तरं मडलं संक्रामन्तौ २ पञ्चपञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्च एकषष्टिभागान् योजनस्य एकैकस्मिन् मण्डले अन्योन्यस्य अन्तरं अभिवर्धयन्तौ २ सर्वं वाह्यंमण्डलं उपसंक्रम्य चारं चरतः । तावत् यद खलु एतौ द्वौ सूर्यौ सर्वबाह्यं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरत तदा खलु एकं योजना

शतसहस्त्रं पट्र च पष्टि योजनशतानि अन्योन्यस्य अंतरं कृत्वा चारं चरत तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, जघन्यक द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। एतत् खलु प्रथमं षण्मासम् । एतत् खलु प्रथमस्य षण्मास्य पर्यवसानम् ॥सू० ८॥

व्याख्या—'ता' तावत् ते तव ते **'केवइयं'** कियत्कं **'एए'** एतौ भारतैरवतसम्बन्धिनौ **'दुवे सूरिया'** द्वौ सूर्यौजम्बूद्वीपगतौ **'अण्णमण्णस्स'** अन्योन्यस्य परस्परस्य **'अंतरं'** अन्तरं **'कट्टु'** कृत्वा **'चारं-चरंति'** चारंचरतः इति **'आहितं'** आख्यातम् **'त्ति'** इति **'वदेज्जा'** वदेत् वदतु हे भगवन् ॥ अथ भगवान् अस्मिन् विषये अन्यतैर्थिकमतरुपाः षट्र प्रतिपत्तीः प्रदर्शयति—**'तत्थ खलु'** इत्यादि, **'तत्थ खलु'** तत्र खलु तस्मिन् चास्यान्तरविषये **'इमाओ'** इमाः वक्ष्यमाणस्वरुपाः **'छ'** षट् **'पडिवत्तीओ'** प्रतिपत्तयः परमतमान्यताविषयाः **'पण्णत्ताओ'** प्रज्ञप्ताः पूर्वतीर्थंकरगणधरैः ता एव प्रदर्शयति—**'तत्थ एगे'** इत्यादि । **'तत्थ'** तत्र तत्तत्प्रतिपत्तिप्ररुपकाणां मध्ये **'एगे'** एके केचन प्रथमाः 'एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण **'आहंसु'** आहुः स्वशिष्यान् परान् वा प्रतिकथयन्ति, तदेव दर्शयति—**'ता'** तावत् **'एगं जोयणसहस्सं'** एकं योजनसहस्त्रं सहस्त्रयोजनं **'च'** तथा **'एगं तेत्तीसं जोयणसयं'** एकं त्रयस्त्रिंशत् योजनशतं त्रयस्त्रिंशदधिकैकशतसंख्यकं (११३३) **'अण्णमण्णस्य' अन्योन्यस्य 'अंतरं कट्टु'** अन्तरं व्यवधानं कृत्वा जम्बूद्वीपे **'सूरिया'** सूर्यौ द्वौ सूर्यौ **'चारं चरंति'** चारं चरतः, उपसंहारमाह **'एगे एवमाहंसु'** एके एवमाहुः एके केचन एवं पूर्वोक्त प्रकारेण कथयन्ति । इति प्रथमा प्रतिपत्तिः १ । अथ द्वितीयामाह—**'एगे पुण एवमाहंसु'** एके पुनरेवमाहुः अर्थः पूर्वोक्तवद् भावनीयः, एवं सर्वत्रापिभावना कार्या । **'ता'** तावत् **'एगं जोयणसहस्सं'** एकं योजनसहस्त्रं तदुपरि **'एगं उत्तीसं जोयणसयं'** एकं चतुस्त्रिंशदयोजनशतं चतुस्त्रिंशदधिकं शतमेकं योजनानां (११३४) **'अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु'** अन्योन्यस्यान्तरं कृत्वा **'सूरिया'** सूर्यौ **'चारं चरंति'** चारं चरतः । पूर्वोक्तप्रकारेण **एगे एवमाहंसु** एवं एवमाहुः इति द्वितीयां प्रतिपत्तिः । अथ तृतीयामाह—**'एगे पुण एवमाहंसु'** एके पुनरेवमाहुः—**'ता'** तावत् **'एगं जोयणसहस्सं'** एकं योजनसहस्त्रं **'एगं च पणतीसं जोयणसयं'** एकं च पञ्चत्रिंशद् योजनशतं पञ्चत्रिंशदधिकैकशतं (११३५) **'अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु'** अन्योन्यस्यान्तरं कृत्वा **'सूरिया'** द्वौ सूर्यौ **'चारं चरंति'** चारं चरतः । **एगे एवमाहंसु'** एके एवमाहुः । इति तृतीया प्रतिप्रत्तिः ३॥ अथ चतुर्थी माह **'ता'** तावत् **'एगे पुण एवमाहंसु'** एकेपुनरेवममाहुः—**एगं दीवं एगं समुद्दं'** एकं द्वीपमेकं समुद्रं **'अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु'** परस्परस्य अन्तरं कृत्वा **'सूरिया'** सूर्यौ **'चारं चरंति'** चारं चरतः **'एगे एवमाहंसु'** एके एवमाहुः इति चतुर्थी प्रतिपत्तिः ४॥ अथ पञ्चमीमाह—**'ता'** तावत् **'एगे पुण एवमाहंसु'** एके पुनरेवमाहुः **'ता'** तावत् **'दो दीवे'** दो समुद्दे' द्वौ द्वीपौ द्वौ समुद्रौ

'अण्णमण्णस्स' अन्योन्यस्य 'अंतर कट्टु' अन्तरं कृत्वा 'सूरिया' सूर्यौ 'चारं चरंति' चारं चरत.। 'एगे एवमाहंसु' एक-एवमाहुः। इति पञ्चमीप्रतिपत्तिः ५॥ अथ षष्ठीमाह-'एगे पुण एवमाहंसु' एके पुनरेवमाहुः-एके केचन षष्ठाः पुनः परमतवादिन एवं वक्ष्यमाण प्रकारेण आहुः कथयन्ति-'ता' तावत् 'तिण्णि दीवे तिण्णि समुद्दे' त्रीन् द्वीपान् त्रीन् समुद्रान् 'अण्णमण्णस्स' अन्योन्यस्य 'अंतरं कट्टु' अन्तरं व्यवधानं कृत्वा 'सूरिया' सूर्यौ 'चारं चरंति' चारं चरतः। 'एगे एवमाहंसु' एके एवमाहुः षष्ठतमाः परमतवादिनः पूर्वोक्त प्रकारेण प्रति पादयन्ति। इति षष्ठी प्रतिप्रत्तिः ६॥ एते पूर्वोक्ता अन्यतैर्थिका यथावस्थितवस्तुतत्त्वज्ञानाभावात् मिथ्यावादिनः सन्ति। अथ भगवान् पूर्वपूर्वतीर्थंकरान् आश्रित्यबहुवचनेन स्वमतं प्रकटयति-'वयंपुण' इत्यादि। 'वयं पुण' वयं पुनः अद्यावधि अस्मत्पर्यन्तं येऽनन्तस्तीर्थंकरा पूर्वं जाता वर्तमाने च पूर्वं वर्तमाने च पूर्वा महाविदेहक्षेत्रेसन्तिस्तानपेक्ष्य वयं सर्वे इतिभावः 'एवं' एव वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयामो' वदामः कथयामः प्ररूपयामइत्यर्थः। तदेवदर्शयति-'ता' इत्यादि। 'ता' तावत् द्वावपिसूर्यौ सर्वाभ्यन्तरमण्डलान्निष्क्रामन्तौ प्रतिमण्डलं 'पंच पंच जोयणाइं' पञ्च पञ्च योजनानि तदुपरि 'पणतीसं च एगाट्ठिभागे जोयणस्स' पञ्चत्रिंशच्च एकषष्टिभागान् योजनस्य, एकस्य योजनस्य पञ्चत्रिंशत्संख्यकान् भागान् 'एगमेगेमडले' एकैकस्मिन् मण्डले प्रत्येकस्मिन् मण्डले 'अण्णमण्णस्स' अन्योन्यस्य परस्परस्य भारतः सूर्यः ऐरवतस्य, ऐरवत सूर्यो भारतस्य पूर्वपूर्वमण्डलगतान्तरापेक्षयाऽग्रेऽग्रे 'अंतरं' अन्तरं अन्तरपरिमाणं 'अभिवुड्ढेमाणा वा' अभिवर्धयन्तौ वा, 'वा' अथवा निवुड्ढेमाण' निर्वर्धयन्तौ हापयन्तौ सर्ववाह्यमण्डलादभ्यन्तरं प्रविशन्तौ प्रतिमण्डलं पूर्वोक्त प्रमाण न्यूनं कुर्वन्तौ 'सूरिया' द्वावपि सूर्यौ 'चारं चरंति' चारं चरतः परिभ्रमतः इत्युत्तरम्। कथमेतावत्प्रमाणं प्रतिमण्डलमन्तरं लभ्यते ? इति चेदुच्यते-इह एकः सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतान् अष्टचत्वारिंशद् एकषष्टि भागान् योजनस्य तथा-अपरे च द्वे योजने स्पृष्ट्वा सर्वाभ्यन्तरादनन्तरं यदग्रेतनं द्वितीयं मण्डलं, तस्मिन् द्वितीये मण्डले चारं चरति, एवं द्वितीयोऽपि सूर्यः पूर्वोक्त प्रमाणमेव क्षेत्रं स्पृष्ट्वा सर्वाभ्यन्तरादनन्तरे द्वितीयेमण्डले चारं चरति, एवं द्वे योजने अष्टचत्वारिंशच्च एकषष्टिभागा योजनस्येति द्वयोः सूर्ययोः संमेलने जाताः पञ्चयोजनानि पञ्चत्रिंशच्च एक षष्टिभागा योजनस्य तथा चाङ्कस्थापना {२-४८, २-४८} संमेलने जाता ४-९६ चतुरग्रेतना। षटशीति संख्याचैकषष्ट्या ६१ विभाज्यते तदालब्धमेकम् १ तच्च चतुः संख्यायां योजने जाताः पञ्च, शेषाः पञ्चत्रिंशत् तत आगतं पूर्वोक्त प्रमाणं-पञ्चयोजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागाः $५-\frac{३५}{६१}$

योजनस्य एतावत्प्रमाणाद्वयोः सूर्ययोरन्तरे वृद्धिर्हानिर्वा अग्रेऽग्रे प्रत्येकस्मिन्नहोरात्रे भवतीति सर्वत्र-भावनीयम् । एवं श्रुत्वा भगवान् गौतम पुनः पृच्छति-'तत्थ णं' इत्यादि । 'तत्थ णं' तत्र तस्यां भवत्प्रदर्शितव्यवस्थायां खलु हे भदन्त ! 'को हे उ' को हेतुः किं कारणं, तदवगमेका उपपत्ति ? 'त्ति' इति 'वएज्जा' वदेत्, प्रसादं कृत्वा कथयतु हे भगवनिति । एवं गौतमेन पृष्टे भगवान् पूर्वोक्त विषयं स्पष्टयति—'ता अयण्णं' इत्यादि । 'ता' तावत् प्रथमं जम्बूद्वीपपरिमाणं श्रूयताम् 'अयण्णं' अयं प्रत्यक्षं दृश्यमानः खलु 'जंबुदीवो दीवो' जम्बूद्वीपो द्वीपः मध्यजम्बूद्वीपः 'जाव' यावत्—यावत्पदेन पूर्वप्रदर्शितं सर्वमपि जम्बूद्वीपपरिमाण प्रतिपादकं वाक्यमत्रापि भावनीयम । 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण अयं पूर्वप्रदर्शितपरिमाणेन परिधिना 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तः कथितः । 'ता' तावत् 'जयाणं' यदा खलु 'एते दुवे सूरिया' एतौ द्वौ सूर्यौ 'सव्वब्भंतर मंडलं' सर्वाभ्य-न्तरमण्डमं 'उवसंकमित्ता' उपसंक्रम्य 'चारं चरंति' चारं चरतः 'तया णं' तदा खलु 'णवणउइं जोयणसहस्साइं' नवनवति योजनसहस्राणि नवनवति सहस्रसंख्यकानि योजनानि तदुपरि 'छच्च' षट् 'चत्ताले' चत्वारिंशत् 'जोयणसयाइं' योजनशतानि चत्वारिंशदधिक षट् शतसंख्याकानि (९९६४०) योजनानि 'अण्णमण्णस्स' अन्योन्यस्य 'अंतरं कट्टु' अन्तरं कृत्वा 'सूरिया' सूर्यौ 'चारं चरंति' चारं चरतः अतएव 'तया णं तदा खलु 'उत्तमकट्ठ-पत्ते उत्तमकाष्ठा प्राप्तः परमप्रकर्षप्राप्तः 'उक्कोसए' उत्कर्षकः ततः परमुत्कर्षाभावात् 'अट्ठा-रसमुहुत्ते' अष्टादशमुहूर्त्तः षट् त्रिंशद् घटिकायुक्तः 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलघ्वी ततः परं लाघवाभावात् 'दुवालसमुहुत्ता' द्वादशमुहूर्त्ता द्वादशमुहूर्त्तवती चतुर्विंशति घटिका युक्ता 'राई भवइ' रात्रिर्भवति । अत्राह—सर्वाभ्यन्तरे मण्डले द्वयोः सूर्ययोः परस्परं 'णवणउइं जोयणसहस्साइं' इत्यादि कथितप्रमाणकमन्तरे कथमुपलभ्यते ? इति चेदाह—इह जम्बूद्वीपो द्वीपः आयामविष्कम्भाभ्यामेकलक्ष योजनप्रमाणः (१०००००) तत्रैकः सूर्यो जम्बूद्वीपस्य मध्ये अशीत्यधिकमेकं शतं योजनानि समवगाह्य सर्वाभ्यन्तरमण्डले 'चारं चरति' एवं द्वितीयोऽपि अशीत्यधिकमेकं शतं योजनानां समवगाह्य चारं चरति अशीत्यधिकं शतमेकं द्वाभ्यां गुणितं द्वयोः सूर्ययोः संमिलितं जातं षष्टयधिकं शतत्रयम् (३६०) एतत् जम्बूद्वीपस्य लक्षयोजनप्रमाणादपनीयते तत आगतं पूर्वोक्तमन्तरपरिमाणं चत्वारिंशदधिक षट्शतोत्तरनवनवति सहस्रयोजनरूपम् (९९६४०) । तथा च कोष्ठकम्—

जम्बूद्वीपप्रमाणम्—१००००० -लक्षमेकम् , एष अपनेय राशिः सूर्य द्वयावगाह्यक्षेत्रम् ३६०—षष्टयधिकं शतत्रयम्, एष अपनयन सूर्यद्वयान्तरक्षेत्रम्—९९६४०—चत्वा-रिंशदधिक षट् शतोत्तरनवनवति सहस्रराशिः संख्यकम् एष अपनीत राशिः सूर्यः द्वयान्तरम् ।

'ता' तौ द्वौ 'निक्खममाणा' निष्क्रामन्तौ सर्वाभ्यन्तरमण्डलाद् वहिर्गच्छन्तौ 'सूरिया' सूर्यौ णवं संवच्छरं' नवं संवत्सरं सूर्यसंवत्सरं 'अयमाणा' अयन्तौ प्राप्नुवन्तौ तस्यैव नवसंवत्सरस्य 'पढमंसि अहोरत्तंसि' प्रथमेऽहोरात्रे 'अब्भितराणं तरं मंडलं' अभ्यन्तरानन्तरं अभ्यन्तराग्रेतनं मण्डलं 'उवसंकमित्ता चारं चरंति' उपसंक्रम्य चारं चरतः। 'ता' तावत् 'जयाणं' यत्रा खलु 'एते दुवे सूरिया' एतौ द्वौ सूर्यौ 'अब्भितराणं तरं मंडलं' अभ्यन्तरानन्तरं मण्डलं 'उवसंकमित्ता चारं चरति' उपसंक्रम्य चारं चरतः 'तया णं' तदा खलु 'नवनवइं जोयणसहस्साइं' नवनवतिं योजनसहस्राणि तदुपरि 'छच्च' षट् 'पणताले' पञ्च चत्वारिंशत् जोयणसयाइं' योजनशतानि पञ्च चत्वारिंशदधिकानि षट् शतानि (९९६४५) योजनानिमिति भावः पुनः 'पणतीसं च' पञ्चत्रिंशच्च 'एगट्ठिगभागे' एकषष्टिभागान् 'जोयणस्स' योजनस्य, तथा चाङ्कतः–९९६४५ $\frac{३५}{६१}$, एतावत्प्रमाणं अण्णमण्णस्स' अन्योन्यस्स परस्यरस्य एकतो द्वितीयस्य 'अंतरं' अन्तरं व्यवधानं 'कट्टु' कृत्वा चारं चरंति' चारं चरतः अतएव 'तया णं' तदा तस्मिन् काले खलु 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति किन्तु सः 'दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यां 'ऊणे' ऊनः हीनो भवति, तथा 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, सा च 'दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यां 'अहिया' अधिका भवति, यावत्प्रमाणेन दिवसो न्यूनो भवति तावत्प्रमाणेनैव रात्रेर्वृद्धिसद्भावात्। पुनरपि 'ते णिक्खममाणा सूरिया' तौ निष्क्रामन्तौ द्वितीयमण्डलान्निस्सरन्तौ सूर्यौ नवस्य सूर्य संवत्सरस्य 'दोच्चंसि अहोरत्तंसि' द्वितीये अहोरात्रे 'अब्भितरं' आभ्यन्तरं सर्वाभ्यन्तरं 'तच्चं मंडलं' तृतीयं मंडलं 'उवसंकमित्ता चारं चरंति' उपसंक्रम्य चारं चरतः 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलुं 'एते दुवे सूरिया' एतौ द्वौ सूर्यौ 'अब्भितरं तच्चं 'मंडलं' आभ्यन्तरं तृतीयं मण्डलं 'उवसंकमित्ता चारं चरंति' उपसंक्रम्य चारं चरतः 'तया णं तदा खलु 'नवनवइं' नवनवतिं 'जोयणसहस्साइं' योजनसहस्राणि 'छच्च एक्कावण्णे जोयणसयाइं' षट् एक पञ्चाशत् योजनशतानि एक पञ्चाशदधिकानि षट्शत्योजनानि 'नव य एगट्ठिभागे जोयणस्स' नव च एक षष्टिभागान् योजनस्य 'अण्णमण्णस्य' अन्योन्यस्य 'अंतरं कट्टु चारं चरंति' अन्तरं कृत्वा चारं चरतः, अतएव 'तया णं' तदा तस्मिन् समये खलु 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, किन्तु सः 'चउहि एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः 'ऊणे' ऊनः हीनो भवति, तथा 'दुवालसमुहुत्ताराईभवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, किन्तु सा 'चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः 'अहिया' अधिका भवति। द्वयोः सूर्ययोरेतावदन्तरं कया रीत्या समुपलभ्यते! अत्रोच्यते–

एतौ द्वौ सूर्यौ यदा सर्वाभ्यन्तरमण्डले चारं चरतः तदा चत्वारिंशदधिकषट्शतोत्तरनवनवतिसहस्रसंख्यक (९९६४०) योजनानि द्वयोः सूर्ययोः परस्परमन्तरं भवतीति प्रतिपादितम्। ततोऽग्रे निष्क्रमणसमये वृद्धेःप्राप्तत्वात् प्रत्यहोरात्रं पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागान् योजनस्य संवर्ध्य सूर्या गतिं कुरुतः, इति पूर्वं सिद्धान्तरूपेण प्ररूपितम्। तदनुसारेण सूर्यौ यदा सर्वाभ्यन्तरमण्डलादग्रेतनं मण्डलमुपसंक्रामतः, तदा तस्मिन् प्रथमेऽहोरात्रे पूर्वं प्रदर्शितप्रमाणे(९९६४०) पञ्चत्रिंशदेक षष्टिभागोत्तरपञ्चयोजनानां($५-\frac{३५}{६१}$) संमेलने निष्क्रामणावसरत्वादन्तरमध्ये-वृद्धिमाश्रित्य आगतं (९९४५ $\frac{३५}{६१}$) प्रथमाहोरात्रप्रमाणम्। एवं द्वितीयेऽहोरात्रे गताहोरात्र संख्यायां (९९६४५ $\frac{३५}{६१}$) पञ्चत्रिंशदेकषष्टिभागाधिकपञ्चयोजनानांसंमेलने आगतं (९९६५१ $\frac{९}{६१}$) द्वितीयाहोरात्रप्रमाणाम्। एवमग्रेऽपि संवर्धनक्रमः परिभावनीयः यावत् प्रथम षण्मासस्यान्ते सर्वबाह्यमण्डलचारसमये षष्ट्यधिकषट्शतोत्तरमेकं लक्षं योजनानां (१००६६०) द्वयोः सूर्ययोः परस्परमन्तरं लभ्यते तावत्पर्यन्तं योजनीयमिति।

तदेव सक्षेपेण दर्शयति–'एवं खलु' इत्यादि। 'एवं' इति अनेनपूर्वोक्तेन 'उवाएणं' उपायेन विधिना तथा च एकतएकः सूर्यः प्रतिमण्डलं द्वे योजने अष्टचत्वारिंशच्च एकषष्टिभागान् ($२\frac{४८}{६१}$) योजनस्यविकम्प्य (उपभुज्य) चारं चरति, अपरतो द्वितीयोऽपिसूर्यएवमेव अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागयुतं योजनद्वयं ($२-\frac{४८}{६१}$ विकम्प्य चारं चरति, एवं द्वयोर्मेलने जातं पञ्चयोजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागाः ($५-\frac{३५}{६१}$) परिमाणम्, एवं रूपेण निष्क्रामन्तौ तौ द्वावपि जम्बूद्वीपगतौ सूर्यौ पूर्वपूर्वस्मात् तदनन्तरस्थितात् मण्डलात् तदनन्तर स्थितं मण्डलं संक्रामन्तौ एकैकस्मिन् मण्डले पूर्वपूर्वमण्डलगतान्तरपरिमाणापेक्षयापञ्च पञ्च योजनानि पञ्चैत्रिंशच्चैकषष्टि भागान् ($५-\frac{३५}{६१}$) योजनस्यपरस्परमभिवर्धयन्तौ २ नवसूर्यसंवत्सरस्य त्र्यशीत्यधिकशत(१८३)तमेऽहोरात्रे प्रथम षण्मास पर्यवसानभूते सर्वबाह्यमण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरतः, तस्मिन् समये द्वयोः सूर्ययोरन्तरं षष्ट्युत्तर षट् शताधिकं लक्षमेकं (१००६६०) योजनानां प्राप्यते, इत्यग्रे स्पष्टी भविष्यति। एतेन विधिना 'निक्खममाणा' निष्क्रामन्तौ 'एते दुवे सूरिया' एतौ द्वौ सूर्यौ 'तया णं तराओ' तदनन्तरात् यत्र सूर्यौ स्थितौ तस्मात् 'मंडलाओ' मण्डलात् 'तयाणं तरं' तदनन्तर तदग्रे स्थितं 'मंडलं' मण्डलं 'संकममाणा, २ संक्रामन्तौ २ पंच

पंच जोयणाइं' पञ्च पञ्च योजनानि 'पणतीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स' पञ्चत्रिंशच्च एकषष्टिभागान् ($५\frac{३५}{६१}$) योजनस्य 'एगमेगे मंडले' एकैकस्मिन् मण्डले 'अण्णमण्णस्स, अन्योन्यस्य परस्परस्य भारतः सूर्य ऐरवतस्य, ऐरवतश्च सूर्यो भारतस्य 'अंतरं' व्यवधानं 'अभिवुड्ढेमाणा २' अभिवर्धयन्तौ २ 'सव्ववाहिरं मंडलं' सर्ववाह्यं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता' उपसंक्रम्य 'चारं चरंति' चारं चरतः 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'एते दुवे सूरिया' एतौ द्वौ सूर्यौ 'सव्ववाहिरं मंडलं' सर्वबाह्यं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरंति' उपसंक्रम्य चारं चरतः 'तया णं' तदा खलु 'एगं जोयणसहस्सं' एकं योजनशतसहस्रं लक्षमेकं योजनानां, तथा 'छच्च सट्ठे जोयणसयाइं' षट् च षष्टिः षष्ट्यधिकानि योजनशतानि षष्ट्यधिकषट्शतोत्तरैक-लक्षयोजनपरिमितम् (१००६६०) 'अण्णमण्णस्स' अन्योन्यस्य 'अंतरं कट्टु' अन्तरं व्यवधानं कृत्वा 'चारं चरंति' चारं चरतः। अतएव 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ता' उत्तम-काष्ठाप्राप्ता परमप्रकर्षप्राप्ता 'उक्कोसिया' उत्कर्षिका सर्वाधिकपरिमाणा ततः परमाधिक्याभावात् 'अट्ठारसमुहुत्ता' अष्टादशमुहूर्त्ता 'राई भवइ' रात्रिर्भवति, तथा 'जहण्णए' जघन्यकः सर्वलघु प्रमाणः ततः परं लाघवाभावात् 'दुवालसमुहुत्ते' द्वादश मुहूर्त्तः 'दिवसे भवइ' दिवसो भव-तीति। यदा द्वौ सूर्यौ सर्ववाह्यमण्डले चारं चरतस्तदा तयोरन्तरं षष्ट्यधिकषट्शतोत्तरैकलक्ष-योजन (१००६६०) परिमितं भवतीति यत् प्रतिपादितं तत् कथमुपलभ्यते ? इति तदेव प्रदर्शयामः—एतयोर्द्वयोः सूर्ययोर्मध्ये एकैकस्य सूर्यस्य प्रतिमण्डलं योजनद्वयमष्टचत्वारिंशच्च एक-षष्टिभागाः—($२\frac{४८}{६१}$) योजनस्य संचरणक्षेत्रं भवति, ततः एतत्क्षेत्रप्रमाणमेकस्य सूर्यस्य भवेत् तत् द्वयोः सूर्ययोः क्षेत्रपरिमाणद्वयं संमेल्यते तदा जातं पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्च एकषष्टिभागा योजनस्य ($५\frac{३५}{६१}$) इति पूर्वं प्रदर्शितम्, तच्चात्र द्वयोः सूर्ययोर्निष्क्रम-णावसरत्वादभिवर्धमानं गृह्यते। सर्वाभ्यन्तरमण्डलाच्च सर्ववाह्यं मण्डलं त्र्यशीत्यधिकशततमं (१८३) वर्तते, ततः पूर्वप्रदर्शितं यदभिवर्धनक्षेत्रं पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टि-भागाः ($५\frac{३५}{६१}$ एतद्रूपं तत् त्र्यशीत्यधिकेन शतेन गुण्यते। तत्र पञ्चानां योजनानां त्र्यशीत्यधिकशतेन गुणने समागतं गुणनफलं पञ्चदशोत्तरनवशत (९१५) संख्यकम्। ततः शेषा एकषष्टिभागसंख्या पञ्चत्रिंशत् (३५) इयमपि त्र्यशीत्यधिकशतेन गुण्यते प्राप्तं गुणनफलं पञ्चोत्तर चतुःषष्टिशत (६४०५) संख्यकम्। एषः शशिरेकषष्ट्याराधिकत्वादेकषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धं

पञ्चोत्तरमेकं शतम् (१०५)। एषा संख्या—पूर्वगुणिते योजनराशौ पञ्चोत्तरनवशत (९१५) रूपे प्रक्षिप्यते तदा जातं विंशत्यधिकदशशत (१०२०) संख्यकम्। एष राशिः सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतोक्तपरिमाणे चत्वारिंशदधिकषट्शतोत्तरनवनवतिसहस्रयोजनरूपे (९९६४०) प्रक्षिप्यते ततः समागतं यथोक्तं षष्टयधिकषट्शतोत्तरैकलक्ष (१००६६०) संख्यकं सर्वबाह्यमण्डले चारं चरतोर्द्वयोः सूर्ययोरन्तरपरिमाणमिति। उपसंहरन्नाह—'एस णं पढमे छम्मासे' एतत् खलु प्रथमं षण्मासम्। 'एस णं' एतत् खलु 'पढमस्स छम्मासस्स' प्रथमस्य षण्मासस्य 'पज्जवसाणे' पर्यवसानम्—अन्तिममहोरात्रमिति" ॥सूत्रम् ८॥

उक्तं चतुर्थप्राभृतप्राभृतस्य सूर्यान्तरविषयं प्रथमं षण्मासम्, अथ तस्यैव तदेव द्वितीयं षण्मासं प्रस्तौति-'ते पविसमाणा' इत्यादि।

मूलम्—ते पविसमाणा सूरिया दोच्चं छम्मासं अयमाणा पढमंसि अहोरत्तंसि वाहिराणंतरं मडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति। ता जया णं एते दुवे सूरिया वाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति तया णं एगं जोयणसयसहस्सं छच्चउप्पण्णे जोयणसयाइं छत्तीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवई दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए। ते पविसमाणा सूरिया दोच्चंसि अहोरत्तंसि वाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति। ता जया णं एते दुवे सूरिया वाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति तया णं एगं जोयणसयसहस्सं छच्च अडयाले जोयणसयाइं वावण्णं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए। एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणा एते दुवे सूरिया तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणा २ पंच पंच-जोयणाइं पणतीसे एगसट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले अण्णमण्णस्स अंतरं निव्वुड्ढेमाणा २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति. ता जया णं एते दुवे सूरिया सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति तया णं णवणउइं जोयणसहस्साइं छच्च चत्ताले जोयणसयाइं अण्णमण्णस्स अंतरं कट्टु चारं चरंति, तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। एस णं दोच्चे छम्मासे। एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे। एस णं आइच्चे संवच्छरे। एस णं आइच्चसंवच्छरस्स पज्जवसाणे ॥सूत्रम् ९॥

पढमस्स पाहुडस्स चउत्थं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥१-४॥

छाया—तौ प्रविशन्तौ सूर्यौ द्वितीयं षण्मासम् अयन्तौ प्रथमे अहोरात्रे बाह्यानन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरतः। तावत् यदा खलु एतौ द्वौ सूर्यौ बाह्यानन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरतः तदा खलु एकं योजनशतसहस्रं षट् च चतुष्पञ्चाशद् योजनशतानि षट्त्रिंशच्च एकषष्टिभागान् योजनस्य अन्योन्यस्य अन्तरं कृत्वा चारं चरतः तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् ऊना, द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् अधिकः। तौ प्रविशन्तौ सूर्यौ द्वितीये अहोरात्रे बाह्यं तृतीयं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरतः। तावत् यदा खलु एतौ द्वौ सूर्यौ बाह्यं तृतीयं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरतः तदा खलु एकं योजनशतसहस्रं षट् च अष्टचत्वारिंशद् योजनशतानि द्विपञ्चाशच्च एकषष्टिभागान् योजनस्य अन्योन्यस्य अन्तरं कृत्वा चारं चरतः तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः ऊना, द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैरधिकः। एवं खलु एतेन उपायेन प्रविशन्तौ एतौ द्वौ सूर्यौ तदनन्तरात् मण्डलात् तदनन्तरं मण्डलं संक्रामन्तौ २ पञ्च पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशद् एकषष्टिभागान् योजनस्य एकैकस्मिन् मण्डले अन्योन्यस्य अन्तरं निर्वर्धयन्तौ निर्वर्धयन्तौ सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरतः तावत् यदा खलु एतौ द्वौ सूर्यौ सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरतः तदा खलु नवनवतिं योजनसहस्राणि षट् च चत्वारिंशद् योजनशतानि अन्योन्यस्य अन्तरं कृत्वा चारं चरतः तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। एतत् खलु द्वितीयं षण्मासम्। एतत् खलु द्वितीयस्य षण्मासस्य पर्यवसानम्। एष खलु आदित्यः संवत्सरः। एतत् खलु आदित्यसंवत्सरस्य पर्यवसानम् ॥सू० ९॥

॥ प्रथमस्य प्राभृतस्य चतुर्थं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१-४॥

व्याख्या—'ते' तौ तावेव भारतैरवतसम्बन्धिनौ 'पविसमाणा' प्रविशन्तौ सर्वबाह्याद् मण्डलात् सर्वाभ्यन्तरमण्डलाभिमुखं गच्छन्तौ 'सूरिया' सूर्यौ 'दोच्चं छम्मासं' द्वितीयं षण्मासम् 'अयमाणा' अयन्तौ प्राप्नुवन्तौ तस्यैव 'पढमंसि अहोरत्तंसि' प्रथमेऽहोरात्रे 'बाहिराणंतरं' बाह्यानन्तरं सर्वबाह्यमण्डलादभ्यन्तराभिमुखं द्वितीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता' उपसंक्रम्य 'चारं चरंति' चारं चरतः। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'एते दुवे सूरिया' एतौ द्वौ सूर्यौ 'बाहिराणंतरं मंडलं' बाह्यानन्तरं बाह्यभागतोऽन्तःस्थितं द्वितीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरंति' उपसंक्रम्य चारं चरतः 'तया णं' तदा खलु 'एगं जोयणसयसहस्सं' एकं योजनशतसहस्रं 'छच्च चउपण्णे जोयणसयाइं' षट्चतुष्पञ्चाशद्योजनशतानि चतुष्पञ्चाशधिकषट्शतोत्तरमेकं लक्षम् 'छव्वीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स' षड्विंशतिं चैकषष्टिभागान् योजनस्य (१००६५४ $\frac{२६}{६१}$) अत्र सूर्ययोरभ्यन्तरप्रवेशकाले प्रथमषण्मासप्रदर्शितविधिना षष्ट्यधिकषट्शतोत्तरैकलक्षरूपात् (१००६६०) सर्वबाह्यमण्डलस्थित-

सूर्यान्तरपरिमाणात् पञ्चत्रिंशदेकषष्टिभागयुक्तयोजनपञ्चक (५–$\frac{३५}{६१}$) प्रमाणस्य प्रतिमण्ड-लं हानेरवसरत्वात् हानिकरणादेतावत्प्रमाणम् 'अण्णमण्णस्स' अन्योन्यस्य 'अंतरं कट्टु' अन्तरं कृत्वा चारं चरंति' चारं चरतः 'तया णं' तदा खलु 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादश-मुहूर्त्ता रात्रिर्भवति किन्तु सा 'दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यां 'ऊणा' ऊना हीना भवति। 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति किन्तु सः 'दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् 'अहिए' अधिको भवति, अहो-रात्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तप्रमाणत्वेन रात्रेर्यावत्प्रमाणमूनत्वं भवेत् तावत्प्रमाणेनैव दिवसाधिकत्वस्या-वश्यम्भावात् 'ते' तौ द्वौ 'पविसमाणा' प्रविशन्तौ सर्वाभ्यन्तरमण्डलाभिमुखं गच्छन्तौ 'सूरि-या' सूर्यौ 'दोच्चंसि अहोरत्तंसि' द्वितीयेऽहोरात्रे 'बाहिरं' बाह्यं सर्वबाह्यभागात्प्राप्तम् 'तच्चं मंडलं' तृतीयं मण्डलं 'उवसंकमित्ता चारं चरंति' उपसंक्रम्य चारं चरतः। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'एते दुवे सूरिया' एतौ द्वौ सूर्यौ 'बाहिरं' बाह्यं 'तच्चं मंडलं' तृतीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरंति' उपसंक्रम्य चारं चरतः 'तया णं' तदा खलु 'एगं जोयणसयसहस्सं' एकं योजनशतसहस्रं 'छच्च अडयाले जोयणसयाइ' षड् अष्टचत्वारिंशद्योजनशतानि अष्टचत्वारिंशदधिकषट्शतोत्तरमेकं लक्षं (१००६४८) तथा 'बाव-ण्णं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स' द्विपञ्चाशच्च एकषष्टिभागान् योजनस्य (१००४८ $\frac{५२}{६१}$ 'अण्ण-मण्णस्स' अन्योन्यस्य 'अंतरं कट्टु' अन्तरं कृत्वा 'चारं चरंति' चारं चरतः 'तया णं' तदा खलु 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति किन्तु सा 'चउहिं एग-सट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः 'ऊणा' ऊना हीना भवति' तथा 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति किन्तु सः 'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतु-र्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः 'अहिए' अधिको भवति। 'एवं' अनेन प्रकारेण 'खलु' निश्चितम् 'एएण' एतेन पूर्वमनुपदर्शितेन प्रतिमण्डलं पञ्चयोजनपञ्चत्रिंशदेकषष्टिभाग (५–$\frac{३५}{६१}$) हायनरूपेण 'उवाएणं' उपायेन विधिना 'पविसमाणा' प्रविशन्तौ सर्वाभ्यन्तरमण्डलं प्रति गच्छन्तौ 'एए दुवे सूरिया' एतौ द्वौ सूर्यौ 'तयाणंतराओ मंडलाओ' तदनन्तरान्मण्डलात् स्वस्थानरूपात् 'तयाणंतरं मंडलं' तदनन्तरं तदग्रेऽनुपदं वर्तमानं मण्डलं 'संकममाणा २' संक्रामन्तौ २ 'पंच पंच जोयणाइं' पञ्च पञ्च योजनानि 'पणतीसे एगसट्ठिभागे जोयणस्स' पञ्चत्रिंशदेकषष्टिभागान् योजनस्य 'एगमेगे मंडले' एकैकस्मिन् मण्डले 'अण्णमण्णस्स'

अन्योन्यस्य 'अंतरं' अन्तरं व्यवधानं 'निव्वुड्ढेमाणा २' निर्वर्धयन्तौ २' हापयन्तौ २ 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरंति' उपसंक्रम्य चारं चरतः मण्डलान्मण्डलं गच्छत इति भावः। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'एए दुवे सूरिया' एतौ द्वौ सूर्यौ 'एवंरीत्या' संचरन्तौ 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरंति' उपसंक्रम्य चारं चरतः 'तया णं' तदा खलु 'नवनवइं जोयणसहस्साइं' नवनवतियोजनसहस्राणि छच्च' षट् 'चत्ताले' चत्वारिंशत् 'जोयणसयाइं' योजनशतानि चत्वारिंशदधिकानि षट् शतानि योजनानां च (९९६४०) 'अण्णमण्णस्स' अन्योन्यस्य 'अंतरं कट्टु' अन्तरं व्यवधानं कृत्वा 'चारं चरंति' चारं चरतः 'तया णं' तदा तस्मिन् काले खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठाप्राप्तः परम प्रकर्षसंपन्नः 'उक्कोसए' उत्कर्षकः सर्वोत्कृष्टः ततः परमाधिक्याभावात् 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, तथा 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलघ्वी ततः परं हीनत्वाभावात् 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। अयं भावः द्वयोः सूर्ययोः सर्वाभ्यन्तरमण्डलस्थितौ चत्वारिंशदधिकषट् शतोत्तरैनवनवतिसहस्रं योजन (९९६४०) संख्यकं-सर्वजघन्यमन्तरं भवति तथा सर्वबाह्यमण्डलस्थितौ षष्ट्यधिकषट्शतोत्तरैकलक्षयोजन (१००६६०) संख्यकं सर्वोत्कृष्टमन्तरं भवति। अत्र सर्वाभ्यन्तरमण्डलतः सर्वबाह्यमण्डलगमनार्थं निष्क्रमणकाले द्वयोः सूर्ययोरन्तरस्य वृद्धिः, सर्वबाह्यमण्डलतः सर्वाभ्यन्तरमण्डलगमनार्थं प्रवेशकाले च हानिर्भवतीति। उपसंहरन्नाह-'एस णं' इत्यादि। 'एस णं' एतत् पूर्वोक्तं खलु 'दोच्चे छम्मासे' द्वितीयं षण्मासम्। 'एस णं' एतत् खलु 'दोच्चस्स छम्मासस्स' द्वितीयस्य षण्मासस्य 'पज्ज-वसाणे' पर्यवसानम् अन्तिममहोरात्रम् 'एस णं' एष खलु 'आइच्चे संवच्छरे' आदित्यः संवत्सरः षण्मासद्वयरूपो वर्त्तते। 'एस णं' एतत् खलु 'आइच्च संवच्छरस्स' आदित्यसंवत्स-रस्य 'पज्जवसाणे' पर्यवसानम्-अन्तभागः ॥सू० ९॥

॥प्रथमस्य मूलप्राभृतस्य चतुर्थं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१-४

गतं प्रथमस्य मूलप्राभृतस्य चतुर्थं प्राभृतप्राभृतम्। अथ तद्गत पञ्चमं प्रारभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः पूर्वम् 'ओगाहइ केवइयं' कियन्तं द्वीपं समुद्रं वा सूर्योऽवगाहत इति यत् संग्रहगाथायां प्रोक्तं तदेवात्र प्रदर्शयिष्यते, इति सम्बन्धेनायातस्यास्य पञ्चमप्राभृतप्राभृतस्येद-मादिमं सूत्रम् ' ता केवइयं ' इत्यादि।

मूलम्—ता केवइयं ते दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ आहितेति वदेज्जा? तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तंजहा-तत्थेगे एवमाहंसु ता एगं जोयणसहस्सं एगं च तेत्तीसं जोयणसयं दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए

चारं चरइ, एगे एवमाहंसु १। एगे पुण एवमाहंसु–ता एगं जोयणसहस्सं एगं चउत्तीसं जोयणसयं दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु २। एगे पुण एवमाहंसु–ता एगं जोयणसहस्सं एगं च पणतीसं जोयणसयं दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु ३। एगे पुण एवमाहंसु–ता अवड्ढं दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु ४। एगे पुण एवमाहंसु–ता नो किंचि दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ एगे एवमाहंसु ५।

तत्थ जे ते एवमाहंसु ता एगं जोयणसहस्सं एगं तेत्तीसं जोयणसयं दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ ते एवमाहंसु–जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं जंबुद्दीवं दीवं एगं जोयणसहस्सं एगं तेत्तीसं जोयणसयं ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं लवणसमुद्दं एगं जोयणसहस्सं एगं च तेत्तीसं जोयणसयं ओगाहित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ १। एवं चोत्तीसं जोयणसयं २। पणतीसे वि एवं चेव भाणियव्वं ३। तत्थ णं जे ते एवमाहंसु–ता अवड्ढं दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ ते एवमाहंसु–जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं अवड्ढं जंबुद्दीवं दीवं ओगाहित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, एवं सव्वबाहिरे वि, णवरं अवड्ढं लवणसमुद्द तया णं राइं दियं तहेव ४। तत्थणं जे ते एवमाहंसु–ता णो किंचि दीवं वा समुद्दं वा ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ, ते एवमाहंसु–ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं णो किंचि जंबुद्दीवं दीवं ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तहेव एवं सव्वबाहिरए मंडले, णवरं णो किंचि लवणसमुद्दं ओगाहित्ता चारं चरइ, राइं दियं तहेव. एगे एवमाहंसु ॥५॥

वयं पुण एवं वयामो ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं जंबूद्दीवं दीवं असीई जोयणसयं ओगाहित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुत्ता राई भवइ। 'ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं लवणसमुद्दं

तिण्णि तीसंजोयणसयाइं ओगाहित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ ॥ सूत्र ॥ १०

"पढमस्स पाहुडस्स पंचमं पाहुडं समत्तं" १-५ ॥

छाया तावत् कियत्कं ते द्वीपं वा समुद्रं वा अवगाह्य सूर्यः चारं चरति आख्यातमिति वदेत् ?। तत्र खलु इमाः पञ्च प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-एके एवमाहुः तावत् एकं योजनसहस्रम् एकं च त्रयस्त्रिंशद् योजनशतं द्वीपं वा समुद्रं वा अवगाह्य सूर्यः चारं चरति, एके एवमाहुः १। एके पुनरेवमाहुः-तावत् एकं योजनसहस्रम् एकं चतुस्त्रिंशद् योजनशतं द्वीपं वा समुद्रं वा अवगाह्य सूर्यः चारं चरति एके एवमाहुः २। एके पुनरेवमाहुः तावत् एकं योजनसहस्रम्, एकं च पञ्चत्रिंशद् योजनशतं द्वीपं वा समुद्रं वा अवगाह्य सूर्यः चारं चरति, एके एवमाहुः ३। एके पुनरेवमाहुः-तावत् अपार्द्धं द्वीपं वा समुद्रं वा अवगाह्य सूर्यः चारं चरति, एके एवमाहुः-४। एके पुनरेवमाहुः-तावत् नो कञ्चित् द्वीपं वा समुद्रं वा अवगाह्य सूर्यः चारं चरति, एके एवमाहुः ५।

तत्र ये ते एवमाहुः तावत् एकं योजनसहस्रम्, एकं त्रयस्त्रिंशद् योजनशतं द्वीपं वा समुद्रं वा अवगाह्य सूर्यः चारं चरति, ते एवमाहुः-यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु जम्बूद्वीपं द्वीपम् एकं योजनसहस्रम्, एकं च त्रयस्त्रिंशद् योजनशतम् अवगाह्य सूर्यः चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। तावत्-यदा खलु सूर्यः सर्वबाह्यं मण्डम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु लवणसमुद्रम् एकं योजनसहस्रम् एकं च त्रयस्त्रिंशद् योजनशतम् अवगाह्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति १। एवं चतुस्त्रिंशद् योजनशतम् २। पञ्चत्रिंशत्यपि एवमेव भणितव्यम् ३। तत्र खलु ये ते एवमाहुः-तावत् अपार्द्धं द्वीपं वा समुद्रं वा अवगाह्य सूर्यः चारं चरति, ते एवमाहुः-यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु अपार्द्धं जम्बूद्वीपं द्वीपम् अवगाह्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादश मुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। एवं सर्वबाह्येऽपि; नवरं अपार्द्धं लवणसमुद्रं। तदा खलु रात्रिन्दिवं तथैव ४। तत्र खलु ये ते एवमाहुः-तावत् नो किञ्चित् द्वीपं वा समुद्रं वा अवगाह्य सूर्यः चारं चरति, ते एवमाहुः-तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु नो कञ्चित् जम्बूद्वीपम् द्वीपम् अवगाह्य सूर्यः चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षक अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, तथैव। एवं सर्वबाह्ये मण्डले, नवरं नो कञ्चित् लवणसमुद्रम् अवगाह्य चारं चरति। रात्रिन्दिवं तथैव एके एवमाहुः ५।

वयं पुनरेवं वदामः तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु जम्बूद्वीपं द्वीपम् अशीतिः योजनशतं अवगाह्य चारं चरति, तदा खलु

उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वबाह्यं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु लवणसमुद्र त्रीणि त्रिंशद्योजनशतानि अवगाह्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठा-प्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति ॥सूत्र १०॥

प्रथमस्य प्राभृतस्य पञ्चमं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१-५॥

व्याख्या—'ता' तावत् 'केवइयं' कियत्कं कियत्प्रमाणं 'ते' तव मते दीवं वा समुद्दं वा' द्वीपं वा समुद्रं वा 'ओगाहित्ता' अवगाह्य उल्लङ्घ्य 'सूरिए' सूर्यः 'चारं चरइ'—चारं चरति एतद्विषये 'आहितेति' किम् आख्यातम् ? इति 'वएज्जा' वदेत् वदतु हे भगवन् ! इति गौतमस्य प्रश्नानन्तरमेतद्विषये भगवान् प्रथमं परमतरूपाः पञ्च प्रतिपत्तीः सामान्यत उपदर्शयति—हे गौतम ! 'तत्थ' तत्र सूर्यस्य द्वीपसमुद्रावगाहविषये खलु 'इमाओ' इमाः अनुपदं वक्ष्यमाणाः 'पंच' पञ्च पञ्च संख्यकाः 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः परतीर्थिकमान्यतारूपाः 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ताः कथिताः। ताः काः १ इत्याह—'तं जहा' तद्यथा ता यथा—'एगे' एके केचन पञ्चसु प्रथमाः परतीर्थिकाः 'एवमाहंसु' एवमाहुः एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः कथयन्ति—'ता' तावत् प्रथमम् अन्यबहुवक्तव्यतासु प्रथमं श्रूयताम्—'एगं जोयणसहस्सं' एकं योजनसहस्रम् एकसहस्रयोजनानि 'एगं च तेत्तीसं जोयणसयं' एकं च त्रयस्त्रिंशत् योजनशतम् एकं शतं योजनानां तदुपरि त्रयस्त्रिंशच्च योजनानि त्रयस्त्रिंशदधिकैकशतोत्तरैकसहस्रं (११३३) योजनानीत्यर्थः, एतावत्प्रमाणं 'दीवं वा समुद्दं वा' द्वीपं वा समुद्रं वा 'ओगाहित्ता' अवगाह्य 'सूरिए' सूर्यः 'चारं चरइ' चारं चरति, उपसंहरन्नाह—'एगे' एके केचन प्रथमाः परतीर्थिकाः 'एवं' एवं—पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्तीति प्रथमा प्रतिपत्तिः १। अथ द्वितीयामाह—'एगे पुण' एके केचन प्रथमतोऽन्ये द्वितीयाः पुनः 'एवमाहंसु' एवमाहुः वक्ष्यमाणप्रकारेण कथयन्ति—'ता' तावत् 'एगं जोयणसहस्सं 'एगं चउतीसं जोयणसयं' एकं योजनसहस्रमेकं चतुस्त्रिंशत् योजनशतं चतुस्त्रिंशदधिकैकशतोत्तरैकसहस्रं (११३४) योजानानि 'दीवं वा समुद्दं वा' द्वीपं वा समुद्रं वा 'ओगाहित्ता' अवगाह्य 'सूरिए' सूर्यः 'चारं चरइ' चारं चरति, उपसंहारमाह—'एगे एवमाहंसु' एके पूर्वोक्ता द्वितीयाः एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः। इति द्वितीया प्रतिपत्तिः २। अथ तृतीयामाह—'एगे' एके केचन पूर्वोक्तद्वयादन्ये तृतीया परतीर्थिकाः 'एवमाहंसु' एवमाहुः वक्ष्यमाणप्रकारेण कथयन्ति—'ता' तावत् 'एगं जोयणसहस्सं एगं च पणतीसं जोयणसयं' एकं योजनसहस्रम् एकं च पञ्चत्रिंशद् योजनशतम्—पञ्चत्रिंशदधिकैकशतोत्तरैकसहस्रं (११३५) योजनानि 'दीवं वा समुद्दं वा' द्वीपं वा समुद्रं वा 'ओगा-

हित्ता' अवगाह्य 'सूरिए' सूर्यः चारं चरइ' चारं चरति 'एगे एवमाहंसु' एके एवं पूर्वोक्त-प्रकारेण आहुः। इति तृतीया प्रतिपत्तिः ३। अथ चतुर्थीमाह—'एगे' एके केचन पूर्वोक्त त्रयादन्ये चतुर्थाः परतीर्थिकाः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति—'ता' तावत् 'अवड्ढं' अपार्द्धम्—अपगतम् अर्द्धं यस्मात् तदपार्द्धं शेषीभूतमर्द्धम्—अर्द्धमात्रमित्यर्थः 'दीवं वा समुद्दं वा' द्वीपं वा समुद्रं वा 'ओगाहित्ता' अवगाह्य 'सूरिए' सूर्यः 'चारं चरइ' चारं चरति। 'एगे एवमाहंसु' एके एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः। इति चतुर्थी प्रतिपत्तिः ४। अथ पञ्चमीमाह—'एगे' एके केचन पूर्वोक्तचतुष्टयादन्ये पञ्चमाः परतीर्थिकाः एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः- कथयन्ति—'ता' तावत् 'नो' नैव 'किंचि' किञ्चित् किञ्चित्प्रमाणमपि 'दीवं वा समुद्दं वा' द्वीपं वा समुद्रं वा 'ओगाहित्ता' अवगाह्य 'सूरिए' सूर्यः 'चारं चरइ' चारं चरति, 'एगे एवमाहंसु' एके एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः-कथयन्ति। इति पञ्चमा प्रतिपत्तिः ॥५॥

एताः पूर्वप्रदर्शिताः पञ्चसंख्यकाः परमतरूपाः प्रतिपत्तय एतद्विषये सन्ति ताः संक्षेपेण प्रदर्शिताः, अथ ता एव परतीर्थिकमान्यतारूपाः पञ्च प्रतिपत्तीः एकैकशः स्पष्टीकरोति—'तत्थ जे ते' इत्यादि। 'तत्थ' तत्र तासु पञ्चसु प्रतिप्रत्तिषु 'जे ते' ये ते पूर्वोक्ताः प्रथमाः परतीर्थिकाः 'एवमाहंसु' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः—'ता' तावत् 'एगं जोयणसहस्सं एगं तेत्तीसं जोयणसयं' एकं योजनसहस्रम् एकं त्रयस्त्रिंशद्योजनशतम्—त्रयस्त्रिंशदधिकैकशतोत्तरैकसहस्रं (११३६) योजनानि 'दीवं वा समुद्दं वा' द्वीपं वा समुद्रं वा 'ओगाहित्ता' अवगाह्य 'सूरिए' सूर्यः 'चारं चरइ' चारं चरति ये एवं कथयन्ति 'से' ते प्रथमाः 'एवं' एवम् अनेन वक्ष्यमाणेन आशयेन 'आहंसु' आहुः कथयन्ति, तदाशयं प्रदर्शयति—'जया णं' इत्यादि 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'जंबुद्दीवं दीवं' जम्बूद्वीपं द्वीपं मध्यजम्बूद्वीपं 'एगं' इत्यादि—त्रयस्त्रिंशदधिकैकशतोत्तरैकसहस्रयोजनप्रमाणं (११३३) 'ओगाहित्ता सूरिए चारं चरइ' अवगाह्य सूर्यः चारं चरति अतएव 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठाप्राप्तः 'उक्कोसए' उत्कर्षकः सर्वोत्कृष्टः 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, तथा 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलध्वी 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। अथ 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलान्निष्क्रामन् अग्रेऽग्रे गच्छन् 'सव्वबाहिरं मंडलं' सर्वबा-

ह्यम् अन्तिमं त्र्यशीत्यधिकशततमं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'लवणसमुद्दं' लवणसमुद्रम् 'एगं' इत्यादि—त्रयस्त्रिंशदधिकैकशतोत्तरैक सहस्रं (११३३) योजनपरिमितं 'ओगाहित्ता' अवगाह्य 'चारं चरइ' चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ता' उत्तमकाष्ठाप्राप्ता परमप्रकर्षप्राप्ता 'उक्कोसिया' उत्कर्षिका सर्वोत्कृष्टा 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, तथा 'जहण्णए' जघन्यकः सर्वलघुः 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। इति प्रथमप्रतिपत्तिस्पष्टीकरणम् ॥१॥

अथ द्वितीयप्रतिपत्तिस्पष्टीकरणमतिदेशेनाह—'एवं' इत्यादि 'एवं चोत्तीसं जोयणसयं' एवं चतुस्त्रिंद् योजनशतं चतुस्त्रिंशदधिकमेकं शतम्। एवम् प्रथमप्रतिपत्तिस्पष्टीकरणवदेव द्वितीयप्रतिपत्तिस्पष्टीकरणं सर्वं पठनीयं, विशेषस्त्वयम् तत्र—प्रथमप्रतिपत्तौ त्रयस्त्रिंशदधिकैकशतोत्तरैकसहस्रयोजनपरिमितं जम्बूद्वीपं सर्वाभ्यतरमण्डलोपसंक्रमणसमये, एतावदेव सर्वबाह्यमण्डलोपसंक्रमणसमये लवणसमुद्रमवगाह्य सूर्यस्य चारं चरणमुक्तम्, अत्र द्वितीयप्रतिपत्तौ तु चतुस्त्रिंशदधिकैकशतोत्तरैकसहस्रयोजनपरिमितं (११३४) जम्बूद्वीपं लवणसमुद्रं चावगाह्य सूर्यस्य चारं चरणं परिभावनीयम्। इति द्वितीयप्रतिपत्तिस्पष्टीकरणम् २, अथ तृतीयप्रतिपत्तिस्पष्टीकरणमप्यतिदेशेनाह—'पणत्तीसे वि' इत्यादि। 'पणतीसे वि' पञ्चत्रिंशत्यपि—पञ्चत्रिंशदधिकैकशतोत्तरैकसहस्रयोजनपरिमितजम्बूद्वीपलवणसमुद्रावगाहनविषयेऽपि सर्वं सूत्रम् 'एवं चेव' एवमेव प्रथमप्रतिपत्तिस्पष्टीकरणसूत्रवदेव 'भाणियव्वं' भणितव्यं कथितव्यम्। द्वयोरपि सूत्रालापकः स्वयमूहनीयः स्पष्टत्वान्नोल्लिखितः। इति तृतीयप्रतिपत्तिस्पष्टीकरणम् ३, अथ चतुर्थी प्रतिपत्तिस्पष्टीकरणमाह—'तत्थ जे ते' इत्यादि। 'तत्थ' तत्र पञ्चसु प्रतिपत्तिषु 'जे ते' ये ते चतुर्थप्रतिपत्तिवादिनोऽन्यतीर्थिकाः 'एवमाहंसु' एवम् अनेन वक्ष्यमाणेन प्रकारेण आहुः कथयन्ति 'ता' तावत् 'अवड्ढं' अपार्द्धम् अपगर्द्धम्' अर्द्धमात्रं "दीवं वा समुद्दं वा' द्वीपं वा समुद्रं वा 'ओगाहित्ता' अवगाह्य 'सूरिए' सूर्यः 'चारं चरइ' चारं चरति, एवं कथयन्ति 'ते' ते चतुर्थास्तीर्थान्तरीयाः 'एवं' एवम् अनेन वक्ष्यमाणेन आशयेन 'आहंसु' आहुः कथयन्ति, तथाहि—'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'अवड्ढं' अपार्द्धम् अपगतार्द्धम्। अर्द्धमात्रं 'जंबूदीवं दीवं' जम्बूद्वीपं दीपं मध्यजम्बूद्वीपम् 'ओगाहित्ता चारं चरइ' अवगाह्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठाप्रासः 'उक्कोसए' उत्कर्षकः 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, तथा 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलघ्वी 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, 'एवं सव्ववाहिरे वि' एवं अनेनैव प्रकारेण सर्वबाह्येऽपि

सर्वबाह्यमण्डलविषयेऽपि वाच्यम् । 'नवरं' नवरं केवलं, विशेषस्त्वयम् यदत्र 'अवड्ढं लवणसमुद्दं' अपार्द्धं लवणसमुद्रम् इति वाच्यम् तथाहि—यदा सूर्यः सर्वबाह्यमण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु अपार्द्धं लवणसमुद्रमवगाह्य चारं चरतीति । तथा—'तया णं राइंदियं तहेव' तदा खलु रात्रिन्दिवं तथैव रात्रिदिवसप्रमाणं तथैव प्रथमप्रतिपत्तिस्पष्टीकरणे सूर्यस्य सर्वबाह्यमण्डलसंचरणसमये यथा कथितं तथैवात्रापि वाच्यम् । यथा—यदा सूर्यः सर्वबाह्यमण्डलमुपसंक्रम्यापार्द्धलवणसमुद्रं वाऽवगाह्य चारं चरति तदा उत्तमकाष्ठाप्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, तथा जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवतीति । संपूर्ण आलापकप्रकारस्तु स्वयमूहनीयः । इति चतुर्थप्रतिपत्तिस्पष्टीकरणम् ॥४॥

अथ पञ्चमप्रतिपत्तिस्पष्टीकरणमाह—'तत्थ जे ते' इत्यादि 'तत्थ' तत्र पञ्चसु प्रतिपत्तिषु 'जे ते' ये ते पञ्चमाः परतीर्थिकाः 'एवमाहंसु' एवमाहु— एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण कथयन्ति—'ता' तावत् 'णो' नो नैव 'किंचि' किञ्चित् किञ्चिन्मात्रमपि 'दीवं वा समुद्दं वा' द्वीपं वा समुद्रं वा 'ओगाहित्ता' अवगाह्य 'सूरिए' सूर्यः 'चारं चरइ' चारं चरति ते पञ्चमाः परतीर्थिकाः 'एवं' वक्ष्यमाणाशयेन 'आहंसु' आहुः कथयन्ति । तदेव प्रदर्शयति—'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'णो' नो नैव 'किंचि' किञ्चित् किञ्चिन्मात्रमपि 'जंबुदीवं दीवं' जम्बूद्वीपं द्वीपम् 'ओगाहित्ता' अवगाह्य 'सूरिए' सूर्यः 'चारं चरइ' चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठाप्राप्तः परमप्रकर्षवान् 'उक्कोसए' उत्कर्षकः सर्वोत्कृष्टः सकलसूर्यसंवत्सरदिवसमानप्रमाणादन्तिमगुरुप्रमाणयुक्तः 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, 'तहेव' तथैव पूर्ववदेव रात्रिरपि विज्ञेया तथा च 'जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता' राई भवइ' इति पाठं संयोज्य, जघन्यिका सर्वलध्वी सकलसूर्यसंवत्सररात्रिमानप्रमाणादन्तिमलघुप्रमाणयुक्ता द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवतीति । एवं पूर्वोक्तप्रकारेणैव 'सव्वबाहिरे मंडले' सर्वबाह्ये मण्डले भावना कर्त्तव्या 'नवरं' केवलं विशेष एतावानेव यत् सूर्यः 'णो' नो नैव 'किंचि' किञ्चित् किञ्चिन्मात्रमपि लवणसमुद्दं' लवणसमुद्रम् 'ओगाहित्ता' अवगाह्य 'चारं चरइ' चारं चरति । अयं भावः—पञ्चमास्तीर्थान्तरीया एवं कथयन्ति यत्—सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलोपसंक्रमणकालेऽपि न किञ्चिदपि जम्बूद्वीपमवगाहते किं पुनः शेषमण्डलपरिभ्रमणकाले । एवं सर्वबाह्यमण्डलोपसंक्रमणकालेऽपि सूर्यो लवणसमुद्रमपि न किञ्चिदवगाहते किं पुनः शेषमण्डलपरिभ्रमणकाले । तर्हि कथं चारं चरति ? इत्याशङ्कायां श्रृणु-द्वीपसमुद्रयोरपान्तराल एव सकलेष्वपि मण्डलेषु चारं चरतीति । 'राइंदियं तहेव' रात्रिन्दिवं तथैव रात्रिदिवसप्रमाणं पूर्वोक्तवदेव, तथा च—सूर्यो यदा सर्व-

बाह्यमण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा न किञ्चिल्लवणसमुद्रमवगाहते, तदा च उत्तमकाष्ठाप्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति जघन्यः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, इति पञ्चमप्रतिपत्तिस्पष्टीकरणम् ५, उपसंहारमाह–'एगे एवमाहंसु' एके एवमाहुः एके केचन पञ्चमप्रतिपत्तिवादिनः एवं पूर्वप्रदर्शितप्रकारेण आहुः कथयन्तीति ५ ।

पूर्वं परतीर्थिकानां पञ्च प्रतिपत्तयः प्रतिपादिताः, साम्प्रतं भगवान् तेषां मिथ्याभावप्रदर्शनार्थं स्वमतमुप्रदर्शयति–'वयं पुण' इत्यादि ।

'वयं पुण' वयं पुनः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयामो' वदामः कथयामः तच्छृणु 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु ''जंबुद्दीवं दीवं' जम्बूद्वीपम् द्वीपं 'असीई जोयणसयं' अशीतिः योजनशतं च अशीत्यधिकमकं शतं योजनानाम् 'ओगाहित्ता' अवगाह्य उल्लङ्घ्य 'चारं चरइ' चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठाप्राप्तः परमप्रकर्षसंपन्नः 'उक्कोसए' उत्कर्षकः सर्वोत्कृष्टः 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलघ्वी 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः सव्वबाहिरं मंडलं' सर्वबाह्यं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता' उपसंक्रम्य 'चारं चरइ' चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'लवणसमुद्दं' लवणसमुद्रं 'तिण्णि तीसं जोयणसयाइं' त्रीणित्रिंशत् योजनशतानि त्रिंशदधिकानि त्रीणि शतानि (३३०) योजनानाम् 'ओगाहित्ता' अवगाह्य 'चारं चरइ' चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ता' उत्तमकाष्ठाप्राप्ता परमप्रकर्षवती 'उक्कोसिया' उत्कर्षिका सर्वगुर्वी 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति 'जहण्णए' जघन्यकः सर्वलघुः 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवतीति । 'गाहाओ भाणियव्वाओ अत्र सूत्रार्थसंग्रहविषया गाथा भणितव्याः ता नोपलभ्यन्ते । इति ॥सूत्र १०॥

॥ प्रथमस्य मूलप्राभृतस्य पञ्चमं प्राभृतप्राभृतम् ॥१–५॥

अथ प्रथमस्य प्राभृतस्य षष्ठं प्राभृतप्राभृतम् ।

गतं प्रथमस्य मूलप्राभृतस्य पञ्चमं प्राभृतप्राभृतम्, अथ षष्ठमारभ्यते, तस्य चायमभिसम्बन्धः पूर्वं संग्रहगाथायां यदुक्तम् 'केवइयं च विकंपइ' कियत्कं च विकम्पते सूर्य एकेन रात्रिन्दिवेन कियन्मात्रं क्षेत्रं चलति ? इत्यत्र प्रदर्शयिष्यते, इति सम्बन्धेनायातस्यास्य षष्ठप्राभृतप्राभृतस्येदमादिसूत्रम्–'ता केवइयं' इत्यादि,

मूलम्—ता केवइयं ते एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरइ आहितेति वदेज्जा ? । तत्थ खलु इमाओ सत्त पडिवत्तीओ, पण्णत्ताओ तं जहा–तत्थेगे एवमाहंसु -ता दो जोयणाइं अद्धदुचत्तालीसे तेसीइं सयभागे जोयणस्स एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु ।१। एगे पुण एवमाहंसु–ता अड्ढाइज्जाइं जोयणाइं एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु ।२। एगे पुण एवमाहंसु–ता तिभागूणाइं तिन्नि जोयणाइं, एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु ।३। एगे पुण एवमाहंसु –ता तिण्णि जोयणाइं अद्धसीतालीसं च तेसीइसयभागे जोयणस्स एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु ।४। एगे पुण एवमाहंसु–ता अद्धुट्ठाइं जोयणाइं एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु ।५। एगे पुण एवमाहंसु–ता चउब्भागूणाइं चत्तारि जोयणाइं एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु ।६। एगे पुण एवमाहंसु–ता चत्तारि जोयणाइं अद्धबावण्णं च तेसीइंसयभागे जोयणस्स एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरइ, एगे एवमाहंसु ।७।

वयं पुण एवं वयामो ता दो जोयणाइं अडयालीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगं मंडलं एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता २ सूरिए चारं चरइ । तत्थ णं को हेऊ ? इति वदेज्जा । ता अयण्णं जंबुदीवे दीवे जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ते, ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ । से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भितराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । ता जया णं सूरिए अब्भितराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं दो जोयणाइं अडयालिसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स एगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता२। चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया । से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भितरं तच्चं मंडलं उवसंकमिता चारं चरइ । ता जया णं सूरिए अब्भितरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं पंच जोयणाइं पणतीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स दोहिं राइंदिएहिं विकंपइत्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया । एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए

तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे २ दो जोयणाइं अडयालीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगं मंडलं एगमेगेणं राइं दिएहिं विकंपमाणे २ सव्व बाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतराओ मंडलाओ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं सव्वब्भंतरं मंडलं पणिहाय एगेणं तेसीएणं राइंदियसएणं पंचदसुत्तरजोयणसए विकंपइत्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ। एस णं पढमे छम्मासे । एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे ॥सूत्र ११॥

छाया – तावत् कियत्कं ते एकैकेन रात्रिन्दिवेन विकम्प्य विकम्प्य सूर्यः चारं चरति ? आख्यातमिति वदेत्। तत्र खलु इमाः सप्त प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–तत्रैके एवमाहुः तावत् द्वे योजने अर्द्धद्विचत्वारिंशतः त्र्यशीतिशतभागान् योजनस्य एकैकेन रात्रिन्दिवेन विकम्प्य २ सूर्यः चारं चरति, एके एवमाहुः ।१। एके पुनरेवमाहुः–तावत् अर्द्धतृतीयानि योजनानि एकैकेन रात्रिन्दिवेन विकम्प्य २ सूर्यः चारं चरति, एके एवमाहुः ।२। एके पुनरेवमाहुः–तावत् त्रिभागोनानि त्रीणि योजनानि एकैकेन रात्रिन्दिवेन विकम्प्य २ सूर्यः चारं चरति, एके एवमाहुः ।३। एके पुनरेवमाहुः–तावत् त्रीणि योजनानि अर्द्धसप्तचत्वारिंशतश्च त्र्यशीतिशतभागान् योजनस्य एकैकेन रात्रिन्दिवेन विकम्प्य २ सूर्यः चारं चरति, एके एवमाहुः ।४। एके पुनरेवमाहुः—तावत् अर्द्धचतुर्थानि योजनानि एकैकेन रात्रिन्दिवेन विकम्प्य २ सूर्यः चारं चरति एके एवमाहुः ।५। एके पुनरेवमाहुः-तावत् चतुर्भागोनानि चत्वारि योजनानि एकैकेन रात्रिन्दिवेन विकम्प्य २ सूर्यः चारं चरति, एके एवमाहुः ।६। एके पुनरेवमाहुः—तावत् चत्वारि योजनानि अर्द्धद्विपञ्चाशतश्च त्र्यशीतिशतभागान् योजनस्य एकैकेन रात्रिन्दिवेन विकम्प्य २ सूर्यः चारं चरति, एके एवमाहुः । ७

वयं पुनरेवं वदामः–तावत् द्वे योजने अष्टचत्वारिंशतश्च एकषष्टिभागान् योजनस्य एकैकं मण्डलम् एकैकेन रात्रिन्दिवेन विकम्प्य २ सूर्यः चारं चरति । तत्र खलु को हेतुः ! इति वदेत् तावत् अयं खलु जम्बूद्वीपो द्वीपः यावत् परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः। तावद् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । स निष्क्रामन् सूर्यः नवं संवत्सरम् अयन् पढमे अहोरात्रे अभ्यन्तरानन्तरं मण्डलम् उवसंक्रम्य चारं चरति। तावद् यदा खलु सूर्यः अभ्यन्तरानन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु द्वे योजने अष्टचत्वारिंशतश्च एकषष्टिभागान् योजनस्य एकेन रात्रिन्दिवेन विकम्प्य २ चारं चरति तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् ऊनः, द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभागमहूर्त्ताभ्याम् अधिका । स निष्क्रामन् सूर्यः द्वितीये अहोरात्रे अभ्यन्तरं तृतीयं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति । तावत् यदा खलु सूर्यः अभ्यन्तरं तृतीयं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्च एकषष्टिभागान् योजनस्य द्वाभ्यां रात्रिन्दिवाभ्यां विकम्प्य चारं चरति

तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति चतुर्भिः एकषष्टिभागमुहूर्त्तैः ऊनः, द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति चतुर्भिः एकषष्टिभागमुहूर्त्तैः अधिका । एवं खलु एतेन उपायेन निष्क्रामन् सूर्यः तदनन्तरात् मण्डलात् तदनन्तरं मण्डलं संक्रामन् २ द्वे योजने अष्टचत्वारिंशतश्च एकषष्टिभागान् योजनस्य एकैकं मण्डलम् एकैकेन रात्रिन्दिवेन विकम्पमानः २ सर्वबाह्यं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तराद् मण्डलात् सर्वबाह्यं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं प्रणिधाय एकेन त्र्यशीतिकेन रात्रिन्दिवशतेन पञ्चदशोत्तरयोजनशतानि विकम्प्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, एतत् खलु प्रथमं षण्मासम्। एतत् खलु प्रथमस्य षण्मासस्य पर्यवसानम् ।सू०११

व्याख्या—'ता' तावत् 'केवइयं' कियत्कं कियत्परिमितं क्षेत्रं 'ते' तवमते 'एगमेगेणं राइं दिएणं' एकैकेन रात्रिन्दिवेन अहोरात्रेण 'विकंपइत्ता २' विकम्प्य २ अवष्टभ्य २ विकम्पनं नाम स्व स्वमण्डलाद्बहिः शनैर्गत्या निस्सरणमभ्यन्तरप्रवेशनं वा शनैर्गत्या स्पृष्ट्वा २ चेत्यर्थः 'सूरिए' सूर्यः 'चारं चरइ' चारं चरति, इति 'आहितेति' आख्यातमिति 'वदेज्जा' वदेत् वदतु हे भगवन् इति प्रश्नः । भगवान् एतद्विषयेऽन्यतैर्थिकमतरूपाः सप्त प्रतिपत्तीः प्रदर्शयति— 'तत्थ खलु' इत्यादि । 'तत्थ' तत्र सूर्यविकम्पनविषये खलु 'इमाओ' इमाः वक्ष्यमाणाः 'सत्त' सप्त—सप्त संख्यकाः 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः परतीर्थिकमान्यता रूपाः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ताः कथिताः । ताः काः ? इत्याह 'तं जहा' तद्यथा ता यथा—ता एव प्रदर्शयति 'तत्थेगे' इत्यादि 'तत्थ' तत्र सप्तसु प्रतिपत्तिप्रतिपादकेषु मध्ये 'एगे' एके केचन प्रथमप्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति, किमाहुरित्याह— 'ता दो जोयणाइं' इत्यादि 'ता' तावत् 'दो जोयणाइं' द्वे योजने 'अद्धदुचत्तालीसे' अर्द्धद्विचत्वारिंशतः, अर्द्धो द्विचत्वारिंशदिति द्विचत्वारिंशत्तमो भागो यत्र संख्यायां ते अर्द्धद्विचत्वारिंशतस्तान् अर्द्धाधिकैकचत्वारिंशत्संख्यकान् 'तेसीइसयभागे' त्र्यशीतिशतभागान् त्र्यशीत्यधिकशतसम्बन्धिभागान् 'जोयणस्स' योजनस्य त्र्यशीत्यधिकशतसंख्यकै (१८३) भार्गैर्योजने विभक्ते सति ये शेषा अर्द्धाधिकैकचत्वारिंशत्संख्यका भागाः [२ $\frac{४१॥}{१८३}$] तान् एतावद्योजनप्रमाणं क्षेत्रमित्यर्थः 'एगमेगेणं' एकैकेन 'राइंदिएणं' रात्रिन्दिवेन एकैकाहोरात्रकालेन 'विकंपइत्ता २, विकम्प्य २ शनैः शनैरुल्लङ्घ्येत्यर्थः 'सूरिए' सूर्यः 'चारं चरइ' चारं चरति, अथोपसंहारमाह—'एगे एवमाहंसु' एके एवमाहुः. एके केचन प्रथमप्रतिपत्तिवादिनः एवं पूर्वकथितप्रकारेण आहुः कथयन्ति । इति प्रथमा प्रतिपत्तिः ।१। 'एगे पुण' एके केचन द्वितीयप्रतिपत्तिवादिनः पुनः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति तदेवाह—'ता' तावत् 'अड्ढाइज्जाइं' अर्द्धतृतीयानि सार्द्धद्विसंख्यकानि

'जोयणाइं' योजनानि सार्द्धद्विसंख्यकयोजनप्रमाणं क्षेत्रम् 'एगमेगेणं' एकैकेन 'राइंदिएणं' रात्रिन्दिवेन अहोरात्रेण 'विकंपइत्ता' २ विकम्प्य २ 'सूरिए चारं चरइ' सूर्यः चारं चरति, 'एगे एवमाहंसु' एके द्वितीया एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः कथयन्ति। इति द्वितीया प्रतिपत्तिः २ 'एगे पुण एवमाहंसु' एके पुनरेवमाहुः 'ता' तावत् 'तिभागूणाइं' त्रिभागोनानि तृतीयो भाग ऊनो येषु तानि त्रिभागोनानि 'तिण्णि जोयणाइं' त्रीणि योजनानि 'एगमेगेणं राइंदिएणं' एकैकेन रात्रिन्दिवेन 'विकंपइत्ता' २, विकम्प्य २ 'सूरिए चारं चरइ' सूर्यः चारं चरति, 'एगे एवमाहंसु' एके तृतीया एवं पूर्वोक्तरीत्या आहुः कथयन्ति। इति तृतीया प्रतिपत्तिः ३ 'एगे पुण एवमाहंसु' एके केचन चतुर्थाः पुनः एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः कथयन्ति 'ता' तावत् 'तिण्णि जोयणाइं' त्रीणि योजनानि 'अद्धसीतालीसे च' अर्द्धसप्तचत्वारिंशतश्चेति सार्द्धषट्चत्वारिंशतश्च (४६॥.) 'तेसीतिसयभागे' त्र्यशीतिशतभागान् त्र्यशीत्यधिकशत-संख्यक (१८३) भागान् 'जोयणस्स' योजनस्य [३ $\frac{४६॥.}{१८३}$] एतावत्परिमितक्षेत्रे 'एग-मेगेण राइंदिएणं' एकैकेन रात्रिन्दिवेन एकेन एकेन—अहोरात्रेणेत्यर्थः 'विकंपइत्ता' विकम्प्य २ 'सूरिए' चारं चरइ' सूर्यः चारं चरति, 'एगे एवमाहंसु' एके केचन चतुर्थाः एवं पूर्वोक्त-प्रकारेण आहुः कथयन्ति। इति चतुर्थी प्रतिपत्तिः ४ 'एगे पुण एवमाहंसु' एके केचन पञ्चमाः पुनः एवं वक्ष्यमाणरीत्या आहुः कथयन्ति—'ता' तावत् 'अद्धुट्ठाइं' अर्द्धचतुर्थानि सार्द्धत्रीणि (३॥.) 'जोयणाइं' योजनानि 'एगमेगेणं राइंदिएणं' एकैकेन रात्रिन्दिवेन 'विकंपइत्ता २' विकम्प्य २ 'सूरिए' सूर्यः 'चारं चरइ' चारं चरति, 'एगे एवमाहंसु' एके केचन पञ्चमाः एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः कथयन्ति। इति पञ्चमी प्रतिपत्तिः ५ 'एगे-पुण एवमाहंसु' एके केचन षष्ठाः पुनः एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः कथयन्ति 'ता' तावत् 'चउभागूणाइं' चतुर्भागोनानि चतुर्थो भाग ऊनो येषु तानि भागत्रयसहितानि 'चत्तारि जोयणाइं' चत्वारि योजनानि (३॥.) एगमेगेणं राइंदिएणं' एकैकेन रात्रिन्दिवेन 'विकं-पइत्ता २' विकम्प्य 'सूरिए चारं चरइ' सूर्यः चारं चरति 'एगे एवमाहंसु' एके केचन षष्ठाः एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः कथयन्ति। इति षष्ठी प्रतिपत्तिः ६ 'एगे पुण' एके केचन सप्तमाः पुनः एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः कथयन्ति—'ता' तावत् 'चत्तारि जोयणाइं' चत्वारि योजनानि 'अद्धबावण्णे च' अर्द्धद्विपञ्चाशतश्च अर्द्धो द्विपञ्चाशत्तमो भागो यत्र तान् सार्द्धैकपञ्चाशतश्च 'तेसीतिसयभागे' त्र्यशीतिशतभागान् त्र्यशीत्यधिकशतसंख्यकभागान् 'जोयणस्स' योजनस्य [४ $\frac{५१॥.}{१८३}$] एतत्परिमितं क्षेत्रं 'एगमेगेणं राइंदिएणं' एकैकेन रात्रि-

न्दिवेन 'विकंपइत्ता २' विकम्प्य २ 'सूरिए चारं चरइ' सूर्यः चारं चरति, 'एगे एव-माहंसु' एके केचन सप्तमाः एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः कथयन्ति। इति सप्तमा प्रतिपत्तिः ७

पूर्वं परमतवादिनां सप्तप्रतिपत्तीः प्रदर्श्य साम्प्रतं भगवान् स्वमतं प्ररूपयति—'वयं पुण' इत्यादि। 'वयं पुण' वयं पुनः पूर्वपूर्वतीर्थंकरानुद्दिश्य वयं पुनः एवं वक्ष्यमाण—प्रकारेण 'वयामो' वदामः केवलालोकेनाऽऽलोक्य कथयामः—'ता' तावत्—'दो जोयणाइं' द्वे योजने 'अडयालीसं च एगसट्ठिभागे' अष्टचत्वारिंशतश्च एकषष्टिभागान् [$२-\frac{४८}{६१}$] 'जोयणस्स' योजनस्य, अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागसहितयोजनद्वयपरिमितम् 'एग-मेगं मंडलं' एकैकं मण्डलम् 'एगमेगेणं राइंदिएणं' एकैकेन रात्रिन्दिवेन अहोरात्रेण 'विकं-पइत्ता' २' विकम्प्य २ 'सूरिए चारं चरइ' सूर्यः चारं चरति। सूर्य एकेन अहोरात्रेण द्वे योजने अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागान् एकैकं मण्डलं स्पृष्ट्वा २ चारं चरतीति भावः। गौतमः पुनः पृच्छति—'तत्थ णं' तत्र भवत्प्रतिपादितपूर्वोक्तविषये खलु 'को हेऊ' को हेतुः किं कारणं का तत्र व्यवस्थेत्यर्थः 'इति' इति—एवं तां व्यवस्थां 'वदेज्जा' वदेत् हे भगवन्! कथयतु, इति प्रश्नः। भगवानाह—'ता अयण्णं' इत्यादि 'ता' तावत् 'अयण्णं' अयं खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपो द्वीपः मध्यजम्बूद्वीपः पूर्वप्रतिपादितस्वरूपः पूर्वप्रदर्शितप्रमाणः 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण परिधिना 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तः कथितः। तत्र 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठापत्ते' उत्तमकाष्ठाप्राप्तः परमप्रकर्षप्राप्तः सर्वथा वृद्धिं-गतः 'उक्कोसए' उत्कर्षकः उत्कृष्टः अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, तथा 'जहण्णया' जघन्यिका सर्वलघ्वी 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रि भवतीति। 'ता' तावत् तत्पश्चात् 'से' सः 'निक्खममाणे सूरिए' निष्क्रामन् सूर्यः 'णवं संवच्छरं अयमाणे' नवं संवत्सरमयन् प्राप्नुवन् 'पढमंसि अहोरत्तंसि' प्रथमेऽहोरात्रे 'अब्भं-तराणंतरं' अभ्यन्तरानन्तरं सर्वाभ्यन्तरमण्डलानन्तरस्थितं 'मंडलं' द्वितीयं मण्डलं 'उवसंक-मित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'अब्भितराणंतरं' अभ्यन्तरानन्तरं द्वितीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'दो 'जोसणाइं' द्वे योजने 'अडयालीसं च एगसट्ठिभागे' अष्ट-चत्वारिंशतं च एकषष्टिभागान् 'जोयणस्स' योजनस्य—[$२-\frac{४८}{६१}$]'एगेणं राइंदिएणं' एकेन

रात्रिन्दिवेन एकाहोरात्रेण 'विकंपइत्ता २' विकम्प्य २ उल्लङ्घ्य २ 'चारं चरइ' चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति किन्तु सः 'दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यां 'ऊणे' ऊनः हीनो भवति न तु परिपूर्णोऽष्टादशमुहूर्त्तो भवति, तथा 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति सा च 'दोहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यां 'अहिया' अधिका भवति यावन्मात्रा दिवसस्य हानिर्भवति तावन्मात्राया रात्रेर्वृद्धिसद्भावात्। 'से निक्खममाणे सूरिए' स निष्क्रामन् सूर्यः 'दोच्चंसि अहोरत्तंसि' द्वितीयेऽहोरात्रे 'अब्भितरं' अभ्यन्तरम् अभ्यन्तरसम्बन्धिनं 'तच्चं मंडलं' तृतीयं मण्डलं 'उवसंकमित्ता' उपसंक्रम्य 'चारं चरइ' चारं चरति। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'अब्भितरं' अभ्यन्तरम् अभ्यन्तरगतं 'तच्चं मंडलं' तृतीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता' उपसक्रम्य 'चारं चरइ' चारं चरति। 'तया णं' तदा खलु 'पंच जोयणाइं' पंच योजनानि 'पणतीसं च एगसट्ठिभागे' पञ्चत्रिंशतं च एकषष्टिभागान् योजनस्य 'दोहिं राइंदिएहिं' द्वाभ्यां रात्रिन्दिवाभ्याम् अहोरात्रद्वयेन 'विकंपइत्ता' विकम्प्य २ 'चारं चरइ' चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति किन्तु सः 'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः 'ऊणे' ऊनः हीनो भवति, तथा 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, सा च 'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः 'अहिया' अधिका भवति, दिवसहान्यां रात्रेराधिक्यस्य स्वभावात्। अग्रेऽतिदेशेनाह—एवं इत्यादि 'एवं' एवम्—अनया रीत्या खलु 'एएणं' एतेन पूर्वोक्तेन 'उवाएणं' उपायेन विधिना 'णिक्खममाणे सूरिए' निष्क्रामन् सूर्यः 'तयाणंतराओ मंडलाओ' तदनन्तरात् तृतीयादेर्मण्डलात् 'तयाणंतरं मंडलं' तदनन्तरं चतुर्थादिकं मण्डलम् यत्र सूर्यः स्थितस्ततोऽग्रेऽग्रेतनं मण्डलं 'संकममाणे २' संक्रामन् २ चरन् चरन् 'दो जोयणाइं' द्वे योजने 'अडयालीसं च एगसट्ठिभागे' अष्टचत्वारिंशतं च एकषष्टिभागान् 'जोयणस्स' योजनस्य 'एगमेगं मंडल' एकैकं मण्डलम् 'एगमेगेणं राइंदिएणं' एकैकेन रात्रिन्दिवेन 'विकंपमाणे २' विकम्पमानः २ स्पर्शन् स्पर्शन् प्रथमषण्मासस्य अन्तिमे त्र्यशीत्यधिकशततमेऽहोरात्रे 'सव्वबाहिरं मंडलं' सर्वबाह्यं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतराओ मंडलाओ' सर्वाभ्यन्तरात मण्डलात् 'सव्वबाहिरं मडलं' सर्वबाह्यं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं 'पणिहाय' प्रणिधाय अवधीकृत्य तत आरभ्येत्यर्थः 'एगेणं तेसीएणं राइंदियसएणं' एकेन त्र्यशीत्यधिकेन रात्रिदिवशतेन त्र्यशीत्यधिकैकशत (१८३) संख्यकैः अहोरात्रैः 'पंचदसुत्त-

राइं जोयणसयाइं' पञ्चदशोत्तराणि योजनशतानि दशोत्तराणि पञ्चशतयोजनानि (५१०) 'विकंपइत्ता' विकम्प्य 'चारं चरइ' चारं चरति। कथमेतदुपलभ्यते ? इति प्रदर्शयामः—एकैकस्मिन् रात्रिन्दिवे द्वे द्वे योजने तदुपर्यष्टचत्वारिंशद् एकषष्टिभागा योजनस्येत्येतत्प्रमाणं क्षेत्रं सूर्यश्चलति तत्र पूर्वं योजनद्वयं त्र्यशीत्यधिकेन शतेन गुण्यते, जातानि षट्षष्ट्यधिकानि त्रीणि शतानि (३६६) तत्पश्चादष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागा' त्र्यशीत्यधिकेन शतेन गुण्यन्ते, जातास्ते चतुरशीत्यधिकसप्ताशीतिशत (८७८४) संख्यकाः। एषा संख्या योजनानयनार्थमेकषष्ट्या विभज्यते, लब्धं चतुश्चत्वारिंशदधिकं शतमेकम् (१४४)। एषा संख्या पूर्वं या योजनसंख्या (३६६) जाता तस्यां प्रक्षिप्यते, ततो जातानि दशोत्तराणि पञ्चशतानि (५१०) इति। एतावत्प्रमाणं क्षेत्रं सूर्यो विकम्प्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ता' उत्तमकाष्ठाप्राप्ता परमप्रकर्षसपन्ना 'उक्कोसिया' उत्कर्षिका सर्वोत्कृष्टा सर्वगुर्वीत्यर्थः 'अट्ठारसमुहुत्ता' अष्टादशमुहूर्ता 'राई भवइ' रात्रिर्भवति, तथा 'जहण्णए' जघन्यकः सर्वलघुः 'दुवालसमुहुत्ते' द्वादशमुहूर्त' 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति। अथ प्रथमषण्मासस्य उपसंहारमाह—'एस णं' एतत् खलु 'पढमे छम्मासे' प्रथमं षण्मासम्—'एस णं' एतत् खलु 'पढमस्स छम्मासस्स' प्रथमस्य षण्मासस्य 'पज्जवसाणे' पर्यवसानम्—अन्तिममहोरात्रम् ॥सू० ११॥

पूर्वं प्रथमषण्मासपर्यन्तभूताहोरात्रिपर्यन्ते सर्ववाह्यमण्डलगतयोजनाष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागयुक्तयोजनद्वयमतिक्रम्य सूर्यः सर्ववाह्यानन्तरद्वितीयमण्डलसीमायां वर्त्तते, इति प्रदर्शितम्, साम्प्रतं ततो द्वितीयस्य षण्मासस्य अनन्तरे प्रथमेऽहोरात्रे प्रथमक्षणे सर्ववाह्यानन्तरमभ्यन्तरं द्वितीयं मण्डलं सूर्यः प्रविशतीति प्रदर्शयन्नाह—'से पविसमाणे' इत्यादि।

मूलम्—से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि वाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए वाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तयाणं दो जोयणाइं अडयालीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स एगेणं राइंदिएणं विकंपइत्ता चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए, से पविसमाणे सूरिए, दोच्चंसि अहोरत्तंसि वाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए वाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं पंचजोयणाइं पणतीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स दोहिं राइंदिएहिं विकंपइत्ता २ चारं चरइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए

तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे २ दो जोयणाइं अडयालीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगं मंडलं एगमेगेणं राइंदिएणं विकंपमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए सव्वबाहिराओ मंडलाओ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं सव्वबाहिरं मंडलं पणिहाय एगेणं तेसीएणं राइंदियसएणं पंचदसुत्तरे जोयणसए विकंपइत्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवादसमुहुत्ता राई भवइ। एस णं दोच्चे छम्मासे। एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे। एस णं आइच्चे संवच्छरे। एस णं आइच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे ॥सू० १२॥

पढमस्स पाहुडस्स छट्ठं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥१-६॥

छाया—स प्रविशन् सूर्यः द्वितीयं षण्मासम् अयन् प्रथमे अहोरात्रे बाह्यानन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः बाह्यानन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु द्वे योजने अष्टचत्वारिंशतं च एकषष्टिभागान् योजनस्य एकेन रात्रिन्दिवेन विकम्प्य चारं चरति तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् ऊना, द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् अधिकः। स प्रविशन् सूर्यः द्वितीये अहोरात्रे बाह्यं तृतीयं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः बाह्यं तृतीयं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु पञ्चयोजनानि पञ्चत्रिंशतं च एकषष्टिभागान् योजनस्य द्वाभ्यां रात्रिन्दिवाभ्यां विकम्प्य२ चारं चरति तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः ऊना, द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः अधिकः। एवं खलु एतेन उपायेन प्रविशन् सूर्यः तदनन्तरात् मंडलात् तदनन्तरं मण्डलं संक्रामन् २ द्वे योजने अष्टचत्वारिंशतं च एकषष्टिभागान् योजनस्य एकैकं मण्डलं एकैकेन रात्रिन्दिवेन विकम्पमान· २ सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वबाह्यात् मण्डलात् सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु सर्वबाह्यं मण्डलं प्रणिधाय एकेन त्र्यशीतेन रात्रिन्दिवशतेन पञ्चदशोत्तराणि योजनशतानि विकम्प्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठा प्राप्तः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। एतत् खलु द्वितीयं षण्मासम्। एतत् खलु द्वितीयस्य षण्मासस्य पर्यवसानम्। एषः खलु आदित्यः संवत्सरः। एतत् खलु आदित्यस्य संवत्सरस्य पर्यवसानम् ॥१२॥

॥ प्रथमस्य प्राभृतस्य षष्ठं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥ १-६॥

व्याख्या—'से' सः 'पविसमाणे' प्रविशन् सर्वाभ्यन्तरमण्डलाभिमुखं गच्छन् 'सूरिए' सूर्यः 'दोच्चं छम्मासं' द्वितीयं षण्मासम् 'अयमाणे' अयन् प्राप्नुवन् 'पढमंसि अहोरत्तंसि' प्रथमेऽहोरात्रे 'बाहिराणंतरं मंडलं' बाह्यानन्तरं मण्डलं सर्वबाह्यमण्डलादनन्तरमभ्यन्तरं द्वितीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता' उपसंक्रम्य 'चारं चरइ' चारं चरति। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'बाहिराणंतरं' बाह्यानन्तरं सर्वबाह्यमण्डलादनन्तरं यत् अभ्यन्तरं द्वितीयं

मण्डलं तत् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'दो जोयणाइं' द्वे योजने 'अडयालीसं च एगसट्ठिभागे' अष्टचत्वारिंशतं च एकषष्टिभागान् 'जोयणस्स' योजनस्य 'एगेणं राइंदिएणं' एकेन रात्रिन्दिवेन 'विकंपइत्ता' विकम्प्य 'चारं चरइ' चारं चरति, 'तया णं' तदा खलु 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, किन्तु सा 'दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् 'ऊणा' ऊना हीना भवति, तथा 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, स च 'दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् 'अहिए' अधिको भवति । 'से' सः 'पविसमाणे' प्रविशन् सर्वाभ्यन्तरमण्डलं प्रति गच्छन् 'सूरिए' सूर्यः 'दोच्चंसि' अहोरत्तंसि' द्वितीयस्य षण्मासस्य द्वितीयेऽहोरात्रे 'बाहिरं तच्चं' बाह्यं तृतीयं बाह्यभागाद् गमनसम्बन्धित्वाद् बाह्यं सर्वबाह्यमण्डलादभ्यन्तरं तृतीयं 'मंडलं' मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'बाहिरं तच्चं' बाह्यं तृतीयं बाह्यात् तृतीयं वा 'मंडलं' मण्डलम् 'उवसंकमित्ता' उपसंक्रम्य 'चारं चरइ' चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'पंच जोयणाइं' पञ्च योजनानि 'पणतीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स' पञ्चत्रिंशतं च एकषष्टिभागान् योजनस्य 'दोहिं राइंदिएहिं' द्वाभ्यां रात्रिन्दिवाभ्यां 'विकंपइत्ता' विकम्प्य 'चारं चरइ' चारं चरति, 'तया णं' तदा खलु 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति किन्तु सा 'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः 'ऊणा' ऊना हीना भवति, तथा 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, सच 'चउहिं एगट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः 'अहिए' अधिको भवति। 'एवं' एवम्—अनेन प्रकारेण खलु 'एएणं' एतेन पूर्वप्रदर्शितेन 'उवाएणं' उपायेन 'विधिना 'पविसमाणे' प्रविशन् सर्वाभ्यन्तरमण्डलाभिमुखं गच्छन् 'सूरिए' सूर्यः 'तयाणंतराओ मंडलाओ' तदनन्तरात् यत्र सूर्यो वर्त्तते तस्मात मण्डलात् 'तयाणंतरं मंडलं' तदनन्तरं तदग्रे स्थितं मण्डलं 'संकममाणे २' संक्रामन् २ 'दो जोयणाइं' द्वे योजने 'अडयालीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स' अष्टचत्वारिंशतं च एकषष्टिभागान् योजनस्य 'एगमेगेणं राइंदिएणं' एकैकेन रात्रिन्दिवेन अहोरात्रेण 'विकंपमाणे २' विकम्पमानः २ 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यिन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता' उपसंक्रम्य 'चारं चरइ' चारं चरति । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वबाहिराओ मंडलाओ' सर्वबाह्यात् मण्डलात 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'सव्वबाहिरं मंडलं' सर्वबाह्यं मण्डलं 'पणिहाय' प्रणिधाय अवधीकृत्य तत आरभ्येत्यर्थः 'एगेणं तेसीएणं राइंदियसएणं' एकेन त्र्यशीतिकेन रात्रिन्दिवशतेन त्र्यशीत्यधिकशतसंख्यकैः रात्रिन्दिवैः 'पंचदसुत्तरे जोयणसए' पंचद-

शोत्तराणि योजनशतानि दशोत्तरपञ्चशतसंख्यकयोजनानि (५१०) 'विकंपइत्ता' विकम्प्य 'चारं चरइ' चारं चरति। कथमेतद् जायते इति प्रकारः प्रथमषण्मासव्याख्यायां प्रदर्शित इति ततोऽवसेयः। 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठाप्राप्तः परमप्रकर्षयुक्तः 'उक्कोसए' उत्कर्षकः सर्वोत्कृष्टः 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, तथा 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलघ्वी 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवतीति। उपसंहारमाह-'एस णं' इत्यादि 'एस णं' एतत् खलु 'दोच्चे छम्मासे' द्वितीयं षण्मासम्। 'एस णं' एतत् खलु 'दोच्चस्स छम्मासस्स' द्वितीयस्य षण्मासस्य 'पज्जवसाणे' पर्यवसानम्-अन्तिममहोरात्रम्। 'एस णं' एष खलु 'आइच्चे संवच्छरे' आदित्यः संवत्सरः। 'एस णं' एतत् खलु 'आइच्चस्स संवच्छरस्स' आदित्यस्य संवत्सरस्य 'पज्जवसाणे' पर्यवसानं-पर्यन्तमहोरात्रम् ॥सू० १२॥

प्रथमस्य मूलप्राभृतस्य षष्ठं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१-६॥

। अथ प्रथमस्य प्राभृतस्य सप्तमं प्राभृतप्राभृतम्।

गतं षष्ठं प्राभृतप्राभृतम्, अथ सप्तममारभ्यते, अस्य चायमभिसम्बन्धः-पूर्वं द्वारगाथायां 'मंडलाणं य संठाणं' मण्डलानां च संस्थानम्, इत्युक्तं तदेवात्र प्रदर्शयिष्यते, इति सम्बन्धेनायातस्यास्येदमादिसूत्रम्-'ता कहं ते मंडलसंठिई' इत्यादि।

मूलम्— ता कहं ते मंडलसंठिई आहितेति वदेज्जा ?। तत्थ खलु इमाओ अट्ठ पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ तं जहा-तत्थेगे एवमाहंसु-ता समचउरंससंठाणसंठिया मंडलसंठिई आहितेति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु।१। एगे पुण एवमाहंसु ता विसमचउरंससंठाणसंठिया मंडलसंठिई आहितेति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु।२। एगे पुण एवमाहंसु-ता समचउक्कोणसंठिया मंडलसंठिई आहितेति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु।३। एगे पुण एवमाहंसु ता विसमचउक्कोणसंठिया मंडलसंठिई आहितेति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु।४। एगे पुण एवमाहंसु-ता समचक्कवालसंठिया मंडलसंठिई आहितेति वदेज्जा एगे एवमाहंसु।५। एगे पुण एवमाहंसु ता-विसमचक्कवालसंठिया मंडलसंठिई आहितेति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु।६। एगे पुण एवमाहंसु-ता चक्कद्धचक्कवालसंठिया मंडलसंठिई आहितेति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु।७। एगे पुण एवमाहंसु-ता छत्तागारसंठिया मंडलसंठिई आहितेति वदेज्जा, एगे एवमाहंसु।८। तत्थ जे ते एवमाहंसु-ता छत्तागारसंठिया मंडलसंठिई आहितेति वदेज्जा एएणं णएणं णायव्वं,णो चेव णं इयरेहिं ॥सू० १३॥

पढमस्स पाहुडस्स सत्तमं पाहुडं समत्तं। १-७

छाया— तावत् कथं ते मण्डलसंस्थितिः आख्याता ? इति वदेत्, तत्र खलु इमा अष्टौ प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा–तत्र एके एवमाहुः तावत्–समचतुरस्रसंस्थानसंस्थिता मण्डलसंस्थितिः आख्याता इति वदेत्, एके एवमाहुः ।१। एके पुनरेवमाहुः-तावत् विषमचतुरस्रसंस्थानसंस्थिता मण्डलसंस्थितिः आख्याता इति वदेत् एके एवमाहु ।२। एके पुनरेवमाहुः-तावत् समचतुष्कोणसंस्थिता मण्डलसंस्थितिः आख्याता इति वदेत् एके एवमाहुः ।३। एके पुनरेवमाहुः तावत् विषमचतुष्कोणसंस्थिता मण्डलसंस्थितिः आख्याता इति वदेत् एके एवमाहुः ।४। एके पुनरेवमाहुः तावत् समचक्रवालसंस्थिता मण्डलसंस्थितिः आख्याता इति वदेत् एके एवमाहुः ।५। एके पुनरेवमाहुः–तावत् विषमचक्रवालसंस्थिता मण्डलसंस्थितिः आख्याता इति वदेत्, एके एवमाहुः ।६। एके पुनरेवमाहुः–तावत् चक्रार्द्धचक्रवालसंस्थिता मण्डलसंस्थितिः आख्याता इति वदेत्, एके एवमाहुः ।७। एके पुनरेवमाहुः–तावत् छत्राकारसंस्थिता मण्डलसंस्थितिः आख्याता इति वदेत् एके एवमाहुः ।८। तत्र ये ते एवमाहुः—तावत् छत्राकारसंस्थिता मण्डलसंस्थिति आख्यातेति वदेत् एतेन नयेन ज्ञातव्यम्, नैव खलु इतरैः ॥सू० १३॥

॥ प्रथमस्य प्राभृतस्य सप्तमं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥ १–७

व्याख्या – 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण कीदृशीत्यर्थः 'ते' तवमते 'मंडलसंठिई' मण्डलसंस्थितिः मण्डलानां चन्द्रादिमण्डलानां संस्थितिः संस्थानम् आकृतिरित्यर्थः 'आहिता' आख्याता कथिता 'इति वदेज्जा' इति वदेत्–वदतु हे भगवन् । इति गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह–'तत्थ' तत्र मण्डलसंस्थितिविषये खलु निश्चितम् 'इमाओ' इमाः अग्रेऽनुपदं प्रदर्शयिष्यमाणा 'अट्ठ' अष्टौ अष्टसंख्यकाः 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः मिथ्यात्वगर्भिताः परतीर्थिकमतरूपाः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ताः तैस्तीर्थान्तरीयै रिति । 'तं जहा' तद्यथा–'ता' यथा–ता एव प्रदर्शयति–'एगे एवमाहंसु' इत्यादि, 'एगे' एके केचन प्रथमास्तीर्थान्तरीयाः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति । तदेव प्रदर्शयति–'ता' इत्यादि । 'ता' तावत् 'समचउरंससंठाणसंठिया' समचतुरस्रसंस्थानसंस्थिता समाः तुल्या चतस्रः अस्रयो भागाः यत्र तत् समचतुरस्रं तादृशं संस्थानम्-आकृतिः समचतुरस्रसंस्थानं तेन संस्थिता तदाकारेण स्थिता सा तथा, एतादृशी 'मंडलसंठिई' मण्डलसंस्थितिः चन्द्रादिमण्डलसंस्थानम् 'आहिता' आख्याता कथिता 'इति' इति अनेन प्रकारेण 'वदेज्जा' वदेत् कथयेत् इति वक्तव्यं सर्वैरिति भावः । उपसंहारमाह–'एगे' एके केचन प्रथमाः 'एवं' एवं पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्तीति प्रथमा प्रतिपत्तिः ।१। एवमग्रेऽपि व्याख्यानव्यम् ।

तथा च द्वितीया, विषमचतुरस्रसंस्थानसंस्थिता मण्डलसंस्थितिरिति वदन्ति ।२। तृतीयाः–समचतुष्कोणसंस्थिता समत्वेन चतुष्कोणा मण्डलसंस्थितिरिति वदन्ति ।३। चतुर्थाः विषमचतुष्कोणसंस्थिता यत्र चतुष्कोणे सत्यपि समत्वं न वर्त्तते एतादृशी मण्डलसंस्थितिरिति वदन्ति

[illegible] मण्डलसंस्थितिरिति वदन्ति ।५। एताः- [illegible] निर्दिष्टेन [illegible] वर्णितं एतादृशी मण्डलसंस्थिति- [illegible] —[illegible] अर्धकपाटकाग मण्डलसंस्थितिरिति ।७। [illegible] मण्डलसंस्थितिरिति वदन्ति [illegible] वर्णिता, तत्र भगवान् स्वमतं प्रकट [illegible] प्रतिपादितम् भणे 'जे ते' ये ते केचित् आत्मा [illegible] 'ता' तावत् छत्रागारसं- [illegible] 'मंडलसंठिई' मण्डलसंस्थितिः 'आहितेति' [illegible] 'एएणं' एतेन पूर्वमनुपदं प्रदर्शितेन [illegible] 'ज्ञातुरभिप्रायो नयः' इति वच- [illegible] 'उत्तानीकृतछत्राकारसंस्थिता मण्डलसंस्थितिर्वर्तते' एवं [illegible] 'णो चेव णं' नैव [illegible]—निषेधेन न खलु 'इयरेहिं' [illegible] वाचावादित्ववर्णनम् ॥

॥ प्रथमस्य प्राभृतस्य [illegible] प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१–७॥

॥ अथ प्रथमस्य प्राभृतस्याष्टमं प्राभृत प्राभृतं प्रारभ्यते ॥

[illegible] 'विक्खंभ' [illegible] प्रमाणं प्रदर्श- [illegible] 'मंडलवया' [illegible] ।

[illegible] सव्वा वि णं मंडलवया केवइया बाहल्लेणं, केवइया आयामवि- क्खंभेणं केवइया परिक्खेवेणं आहिया ? त्ति वएज्जा । तत्थ खलु इमा तिण्णि पडि- [illegible] पण्णत्ताओ, [illegible] एगे एवमाहंसु–ता सव्वा वि णं मंडलवया जोयणं बा- [illegible] जोयणसहस्सं [illegible] आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयण- [illegible] परिक्खेवेणं पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ।१। एगे पुण एवमाहंसु–ता सव्वा वि णं मंडलवया जोयणं बाहल्लेणं, एगं जोयणसहस्सं एगं [illegible] आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसहस्साइं चत्तारि बिउत्तराइं [illegible] परिक्खेवेणं पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ।२। एगे पुण एवमाहंसु ता सव्वा वि णं मंडलवया जोयणं बाहल्लेणं, एगं जोयणसहस्सं एगं च पणतीसं जोयणसयं [illegible], तिण्णि जोयणसहस्साइं चत्तारि [illegible] जोयणसयाइं परिक्खेवेणं पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ।३।

वयं पुण एवं वयामो-ता सव्वावि णं मंडलवया अडयालीसं एगसट्ठिभागे जोयणस्स वाहल्लेणं, अणियया आयामविक्खंभपरिक्खेवेणं आहियाति वदेज्जा। तत्थ णं को हेऊ? त्ति वदेज्जा। ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ते। ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं सा मंडलवया अडयालीसं एगसट्ठिभागे जोयणस्स वाहल्लेणं, णवणउइजोयणसहस्साइं छच्च चत्ताले जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं पण्णरसजोयणसहस्साइं एगूणणउई जोयणाइं किंचिविसेसाहिया परिक्खेवेणं, तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवई। से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भितराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ता जया णं सूरिए अब्भितराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं सा सव्वावि मंडलवया अडयालीसं एगसट्ठिभागा जोयणस्स वाहल्लेणं, णवणवइजोयणसहस्साइं छच्च पणयाले जोयणसयाइं, पणतीसं च एगसट्ठिभागा जोयणस्स आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं पण्णरसं च सहस्साइं एगं सत्तुत्तरं जोयणसयं किंचि विसेसूणं परिक्खेवेणं, तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया। से निक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भितरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए अब्भितरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं सा मंडलवया अडयालीसं एगसट्ठिभागा जोयणस्स वाहल्लेणं, णवणवइजोयण-सहस्साइं छच्च एकावन्ने जोयणसयाइं णव य एगसट्ठिभागा जोयणस्स आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं पण्णरस य सहस्साइं एगं च पणवीसं जोयणसयं परिक्खेवेणं पण्णत्ता, तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहि अहिया। एवं खलु एएणं उवाएणं निक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं उवसंकममाणे २ पंच जोयणाइं पणतीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले विक्खंभवुड्ढिं अभिवुड्ढेमाणे २ अट्ठारस २ जोयणाइं परिरयवुड्ढिं अभिवड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जयाणं सूरिए सव्ववाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं सा सव्वा वि मंडलवया अडयालीसं एगसट्ठिभागा जोयणस्स वाहल्लेणं, एगं जोयणसयसहस्सं छच्चसट्ठी जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं अट्ठारससहस्साइं तिण्णि य पण्णरसुत्तरे जोयणसयाइं परिक्खेवेणं,

तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ। एस णं पढमे छम्मासे। एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे ॥ सू० १४ ॥

छाया—तावत् सर्वाण्यपि खलु मण्डलपदानि कियत्कानि बाहल्येन कियत्कानि आयामविष्कम्भेण ? कियत्कानि परिक्षेपेण आख्यातानि इति वदेत्, तत्र खलु इमाः तिस्रः प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तत्रैके एवमाहुः—तावत् सर्वाण्यपि खलु मण्डलपदानि योजनं बाहल्येन एकं योजनसहस्रम् एकं त्रयस्त्रिंशद्योजनशतम् आयामविष्कम्भेण त्रीणि योजनसहस्राणि त्रीणि च नवनवतियोजनशतानि परिक्षेपेण प्रज्ञप्तानि, एके एवमाहुः ।१। एके पुनरेवमाहुः—तावत् सर्वाण्यपि खलु मण्डलपदानि योजनं बाहल्येन, एकं योजनसहस्रम् एकं च चतुस्त्रिंशद् योजनशतम् आयामविष्कम्भेण, त्रीणि योजनसहस्राणि चत्वारि [illegible] योजनशतानि परिक्षेपेण प्रज्ञप्तानि, एके एवमाहुः ।२। एके पुनरेवमाहुः—तावत् सर्वाण्यपि मण्डलपदानि योजनं बाहल्येन, एकं योजनसहस्रम् एकं च पञ्चत्रिंशद् योजनशतम् आयामविष्कम्भेण, त्रीणि, योजनसहस्राणि चत्वारि पञ्चोत्तराणि योजनशतानि परिक्षेपेण प्रज्ञप्तानि, एके एवमाहुः ।३।

वयं पुनरेवं वदामः—तावत् सर्वाण्यपि खलु मण्डलपदानि अष्टचत्वारिंशद् एकषष्टिभागा योजनस्य बाहल्येन, अनियतानि आयामविष्कम्भपरिक्षेपेण आख्यातानि; इति वदेत्। तत्र खलु को हेतुरिति वदेत् ? तावत् अयं खलु जम्बूद्वीपो द्वीपः यावत् परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः। तावत् यदा खलु, सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु तानि मण्डलपदानि अष्टचत्वारिंशत् एकषष्टिभागा योजनस्य बाहल्येन, नवनवतियोजनसहस्राणि षट् चत्वारिंशद् योजनशतानि आयामविष्कम्भेण, त्रीणि योजनशतसहस्राणि पञ्चदश योजनसहस्राणि एकोननवतियोजनानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। स निष्क्रामन् सूर्यः नवं संवत्सरम् अयन् प्रथमे अहोरात्रे अभ्यन्तरानन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तावत् यदा खलु सूर्यः अभ्यन्तरानन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु तानि सर्वाण्यपि मण्डलपदानि अष्टचत्वारिंशत्—एकषष्टिभागा योजनस्य बाहल्येन, नवनवतिं योजनसहस्राणि षट् च पञ्चचत्वारिंशद् योजनशतानि पञ्चत्रिंशच्च एकषष्टिभागा योजनस्य आयामविष्कम्भेण, त्रीणि योजनशतसहस्राणि पञ्चदश [illegible] योजनसहस्रं किञ्चिद्विशेषोनं परिक्षेपेण, तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो [illegible] द्वाभ्याम् एकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् ऊनः द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति द्वाभ्यामेकषष्टि- [illegible] स निष्क्रामन् सूर्यः द्वितीये अहोरात्रे अभ्यन्तरं तृतीयं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति, तावत् यदा खलु सूर्यः अभ्यन्तरं तृतीयं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति, तदा खलु तानि मण्डलपदानि अष्टचत्वारिंशद् एकषष्टिभागा योजनस्य बाहल्येन, नवनवतिं योजनसहस्राणि षट् च [illegible] योजनशतानि नव च एकषष्टिभागा योजनस्य आयामविष्कम्भेण त्रीणि योजनशतसहस्राणि पञ्चदश सहस्राणि एकं च [illegible] परिक्षेपेण प्रज्ञप्तानि, तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति चतुर्भि-

रेकषष्टिभागामुहूर्तैरूनः, द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्तैरधिका। एवं खलु एतेन उपायेन निष्क्रमन् सूर्यः तदनन्तरात् मण्डलात् तदनन्तरं मण्डलम् उपसंक्रामन् २ पञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्च एकषष्टिभागा योजनस्य एकैकस्मिन् मण्डले विष्कम्भवृद्धिम् अभिवर्धयन् २ अष्टादश योजनानि परिरयवृद्धिम् अभिवर्धयन् २ सर्वबाह्यं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वबाह्यं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु तानि सर्वाण्यपि मण्डलपदानि अष्टचत्वारिंशद् एकषष्टिभागा योजनस्य बाहल्येन, एकं योजनशतसहस्रं षट् षष्टिः योजनशतानि आयामविष्कम्भेण, त्रीणि योजनशतसहस्राणि अष्टादशसहस्राणि त्रीणि च पञ्चदशोत्तराणि योजनशतानि परिक्षेपेण, तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। एषा खलु प्रथमा षण्मासी। एतत् खलु प्रथमायाः षण्मास्या पर्यवसानम् ॥१४॥

व्याख्या—'ता' तावत् 'सव्वा वि णं' सर्वाण्यपि खलु 'मंडलवया' मण्डलपदानि मण्डलरूपाणि पदानि सूर्यमण्डलस्थानानीत्यर्थः 'केवइयं' कियत्कानि कियत्प्रमाणानि 'बाहल्लेणं' बाहल्येन स्थौल्येन तथा 'केवइयं' कियत्कानि कियत्प्रमाणानि 'आयामविक्खंभेणं' आयामविष्कम्भेण' आयामः दैर्घ्यं विष्कम्भः विस्तारः तयोः समाहारे आयामविष्कम्भं, तेन आयामविष्कम्भेणेत्यर्थः दैर्घ्येण विस्तारेण च कियत्प्रमाणानि सर्वाण्यपि मण्डलपदानीति भावः, तथा 'केवइयं' कियत्कानि कियत्प्रमाणानि 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण परिधिना, कियत्प्रमाणा तेषां परिधिरिति भावः आहिता' आख्यातानि कथितानि तीर्थंकरैः 'इति' इति—एतद्विषयं 'वदेज्जा' वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् इति गौतमस्य प्रश्नः। भगवानाह—'तत्थ' तत्र खलु निश्चयेन 'इमा' इमा वक्ष्यमाणाः 'तिण्णि' तिस्रः 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः परमतरूपाः 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ताः कथिता अन्यैरन्यैस्तीर्थान्तरीयैरिति, 'तं जहा' तद्यथा-ता यथा—'तत्थ' तत्र तिसृषु प्रतिपत्तिषु-मध्ये 'एगे' एके केचन प्रथमास्तीर्थान्तरीयाः 'एवं' वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति। किमाहुरित्यत्राह—'ता' इत्यादि 'ता' तावत् 'सव्वावि णं' सर्वाण्यपि खलु 'मंडलवया' मण्डलपदानि, 'मंडलवया' इति सूत्रे स्त्रीत्वं प्राकृतत्वात्, तानि सर्वाण्यपि मण्डलपदानि प्रत्येकं 'जोयणं' योजनमेकं 'बाहल्लेणं' बाहल्येन स्थौल्येन, तथा 'एगं जोयणसहस्सं' एकं योजनसहस्रम् एकसहस्रयोजनम्, 'एगं' एकं 'तेत्तीसं' त्रयस्त्रिंशत् 'जोयणसयं' योजनशतम्, त्रयस्त्रिंशदधिकमेकं शतं योजनानाम् 'आयामविक्खंभेणं' आयामविष्कम्भेण दैर्घ्यविस्तारेण, 'तिण्णि जोयणसयसहस्साइं' त्रीणि योजनशतसहस्राणि सहस्रत्रययोजनानि 'तिण्णि य नवनवईजोयणसयाइं' त्रीणि च नवनवतियोजनशतानि नवनवत्यधिकशतत्रयं योजनानां 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण परिधिना 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि कथितानि मण्डलपदानि। उपसंहारमाह—'एगे एवमाहंसु' एके केचन प्रथमाः एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः—कथयन्तीति प्रथमा प्रतिपत्तिः।१। एषामेवं कथनं मिथ्याभावगर्भितं वर्तते, कथमित्याह—एषां प्रथमास्तीर्थान्तरीया स्वमते आयामविष्कम्भप्रमाणं

त्रयस्त्रिंशदधिकशतोत्तरैकसहस्र (११३३) योजनपरिमितं प्रतिपादयन्ति परिधिपरिमाणं च ते वृत्तपरिमाणात् परिपूर्णं त्रिगुणमेव समिच्छन्ति न तु विशेषाधिकं तेन तेषां मते आयामविष्कम्भ-परिमाणं त्रिगुणितं जायते नवनवत्यधिकत्रिशतोत्तरसहस्रत्रययोजनपरिमितं (३३९९) समा-गच्छति, इदं परिधिपरिमाणं **'विक्खंभवग्गदहगुणकरणे वट्टस्स परिरओ होइ"** विष्कम्भवर्ग-दशगुणकरणे वृत्तस्य परिरयो भवति, इति परिधिगणितेन तन्न समीचीनम् । एवं करणे परिधिमाणं द्व्यशीत्यधिकपञ्चशतोत्तरसहस्रत्रययोजनपरिमितं (३५८२) किञ्चित्समधिकमायाति. तथा हि–त्रयस्त्रिशदधिकशतोत्तरैकसहस्र (११३३) योजनानि आयामविष्कम्भपरिमाणं स्थाप्यते, एतेषां वर्गो विधीयते तदा द्वादशलक्षाणि त्र्यशीतिसहस्राणि एकोननवत्यधिकानि षट् शतानि च (१२८३६८९) । एषा दशभिर्गुण्यते तदा एका कोटिः अष्टाविंशतिर्लक्षाणि षट्त्रिंशत् सहस्राणि नवत्यधिकाष्टशतानि च (१२८३६८९०) जायन्ते, एतेषाँ वर्गमूलानयने यथोक्तं द्व्यशीत्यधिकपञ्चशतोत्तरसहस्रत्रयं (३५८२) किञ्चिद्विशेषाधिकमित्यतः परिधिपरिमाणमसमीचीन-त्वान्न सिध्यति । एवं करणादपरमपि मतद्वयं परिधिपरिमाणमसङ्गतमेवेति । अथ द्वितीयां प्रति-पत्तिमाह–**'एगे पुण'** इत्यादि, **'एगे पुण'** एके केचन द्वितीयाः पुनः **'एवं'** वक्ष्यमाणप्रकारेण **'आहंसु'**कथयन्ति–**'ता'** तावत् **'सव्वावि णं मंडलवया'** सर्वाण्यपि खलु मण्डलपदानि प्रत्येकं **'जोयणं'** योजनमेकं **'बाहल्लेणं'** बाहल्येन, तथा **'एगं जोयणसहस्सं'** एकं योजनसहस्रम् **'एगं च चउतीसं जोयणसयं'** एकं च चतुस्त्रिंशद् योजनशतं चतुस्त्रिंशदधिकशतोत्तरैकसहस्र-(११३४) योजनपरिमितानि **'आयामविक्खंभेणं'** आयामविष्कम्भेण, तथा **'तिण्णि जोयण-सहस्साइं'** त्रीणि योजनसहस्राणि, **'चत्तारि बिउत्तराइं जोयणसयाइं'** चत्वारि द्व्युत्तराणि योजनशतानि द्व्यधिकचतुःशत (४०२) योजनपरिमितानि **'परिक्खेवेणं'** परिक्षेपेण, **'एगे एवमाहंसु'** एके द्वितीया एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः–कथयन्तीति द्वितीया प्रतिपत्तिः ।२। एषाऽपि मिथ्याभावप्रदर्शनगर्भिता प्रथमप्रतिपत्तिप्रदर्शितरीत्या गणिते कृते सति परिधिपरिमाणस्या-सङ्गतत्वदर्शनात् ॥ अथ तृतीयां प्रतिपत्तिमाह–**'एगे पुण'** एके केचन तृतीयाः परमतवादिनः पुनः **'एवं'** एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण **'आहंसु'** आहुः–कथयन्ति–**'ता'** तावत् **'सव्वावि मंडलवया'** सर्वाण्यपि मण्डलपदानि प्रत्येकं **'जोयणं'** योजनमेकं **'बाहल्लेणं'** बाहल्येन. तथा **'एगं जोयणसहस्सं'** एकं योजनसहस्रम् **'एगं च पणतीसं जोयणसयं'** एकं च पञ्चत्रिंशद् योजन-शतम्–पञ्चत्रिंशदधिकशतोत्तरैकसहस्र (११३५) परिमितानि **'आयामविक्खंभेणं'** आयाम-विष्कम्भेण, तथा **'तिण्णि जोयणसहस्साइं'** त्रीणि योजनसहस्राणि **'चत्तारि पंचुत्तराइं जोय-णसयाइं'** चत्वारि पञ्चोत्तराणि योजनशतानि पञ्चोत्तरचतुःशताधिकसहस्रत्रय (३४०५) परिमितानि **'परिक्खेवेणं'** परिक्षेपेण, उपसंहरति–**'एगे एवमाहंसु'** एके केचन तृतीयाः एवं–

पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः—कथयन्तीति तृतीया प्रतिपत्तिः ।३। एषाऽपि मिथ्याभावपोषिका पूर्ववदेव गणितरीत्या परिधिपरिमाणस्यासाङ्गत्यगर्भितत्वात् । इति तिस्रोऽपि प्रतिपत्तयो मिथ्याभाव-प्ररूपकत्वादनादरणीयाः ।

साम्प्रतं भगवान् स्वमतं प्रदर्शयति—'वयं पुण' इत्यादि 'वयं पुण' वयं पुनः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयामो' वदामः—कथयामः. कथमित्याह—'ता' तावत् 'सव्वावि मंडल-वया' सर्वाण्यपि मण्डलपदानि प्रत्येकम् 'अडयालीसं एगसट्ठिभागा जोयणस्स' अष्टचत्वारिंशद् एकषष्टिभागा ($\frac{४८}{६१}$) योजनस्य 'वाहल्लेणं' वाहल्येन एतद् वाहल्यपरिमाणं नियतं सर्वत्र बाहल्यपरिमाणस्यैतावत एव सद्भावात्, किन्तु 'अणियया' अनियतानि 'आयामविक्खंभेणं' आयामविष्कम्भेण, तथा 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण च. आयामविष्कम्भपरिक्षेपैः पुनरनियतानि सर्वाण्यपि मण्डलपदानि वर्त्तन्ते तत्र सर्वेषां पृथक्त्वेन लाभात् अत आयामविष्कम्भपरिक्षेपैरनियतानि सर्वाण्यपि मण्डलपदानि 'अहिया' आख्यातानि कथितानि 'इति वदेज्जा' इति वदेत् गौतमः पुनः पृच्छति 'तत्थ णं' इत्यादि 'तत्थ णं' तत्र खलु एवं मण्डपदानामनियतत्वप्रतिपादने 'को हेऊ' को हेतुः किं कारणं का व्यवस्था ? 'इति वदेज्जा' इति वदेत् कथयतु हे भगवन् ! ततो भगवानाह—'ता' तावत् अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे' अयं खलु जम्बुद्वीपो द्वीपः 'जाव' यावत् अत्र यावत्पदेन जम्बूद्वीपपरिमाणं पूर्ववद् वोध्यम् पूर्वप्रदर्शितप्रकारः 'परिक्खेवेणं' परि-क्षेपेण परिधिना 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तः कथितः । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ, उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'सा मंडलवया' तानि मण्डलपदानि मण्डलस्थानानि 'अडयालीसं एगसट्ठिभागजोयणस्स' अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य 'बाहल्लेणं' वाहल्येन पृथुत्वेन,बाहल्यपरिमाणस्य नियतत्वेनाग्रे सर्वत्र एतावत्प्रमाणत्वेनैव व्याख्यातव्यम् । तथा 'नवनवइजोयणसहस्साइं' नवनवतियोजनसहस्राणि 'छच्च चत्ताले जोयणसयाइं' षट् च चत्वारिंशद् योजनशतानि चत्वारिंशदधिक षट् शतोत्तरनवनवतिसहस्र (९९६४०) योजनपरि-मितानि 'आयामविक्खंभेणं' आयामविष्कम्भेण आयामेन निष्कम्भेण च, तथा 'तिण्णि जोय-णसयसहस्साइं' त्रीणि योजनशतसहस्राणि 'पण्णरसजोयणसहस्साइं' पञ्चदशयोजनसहस्राणि 'एगूणणवईजोयणाइं' एकोननवतियोजनानि एकोननवत्यधिकपञ्चदशसहस्रोत्तरलक्षत्रय (३१-५०८९) परिमितानि 'किंचिविसेसाहियाइं' किञ्चिद्विशेषाधिकानि 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण वर्त्तन्ते 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठाप्राप्तः परमप्रकर्षसम्पन्नः तदग्रे प्रकर्षताया अभावात् 'उक्कोसए' उत्कर्षक सर्वोत्कृष्ट ततोऽनन्तरमुत्कर्षाभावात 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे

भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, तथा 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति इदं सूत्रोक्तमायामविष्कम्भपरिमाणं कथं लभ्यते इति प्रदर्शयामः, तथाहि—सर्वाभ्यन्तरमण्डलमेकतो-ऽशीत्यधिकमेकं शतं (१८०) जम्बूद्वीपमवगाह्य स्थितम् एवमपरतोऽपि—अशीत्यधिकमेकं शतं (१८०) जम्बूद्वीपमवगाह्य स्थितमिति तयोः समेलने जातं षष्ट्यधिकं शतत्रयम् (३६०) एषा संख्या लक्षयोजनरूपज्जम्बूद्वीपपरिमाणम् शोध्यते ततो जातं यथोक्तपरिमाणमायामविष्कम्भयोः चत्वारिं-शदधिकषट् शतोत्तरनवनवतिसहस्रयोजनपरिमितम् (९९६४०)। परिक्षेपपरिमाणानयनं यथा सर्वाभ्यन्तरमण्डलस्य विष्कम्भो नवनवतियोजनसहस्राणि चत्वारिंशदधिकषट्शतोत्तराणि (९९-६४०) अस्याः संख्याया वर्गो विधीयते जातः सः नवनवति. अष्टाविंशतिः, द्वादश, षण्णवतिः, द्वे च शून्ये (९९२८ १२९६००) इत्येवं रूपः, ततो दशभिर्गुणने एकशून्याधिका पूर्वोक्ता संख्या (९९२८१२९६०००), अस्या वर्गमूलानयने लब्धं यथोक्तं त्रीणि लक्षाणि नवाशीत्यधिक पञ्चदशसहस्रोत्तराणि(३१५०८९) परिक्षेपपरिमाणमिति, शेषं द्वेलक्षे एकोनाशीत्यधिकाष्टादश-सहस्रोत्तरे (२१८०७९) एतावत्प्रमाणं स्थितं तत्त्यक्तमिति भगवन्मतं केवलालोकालोकितत्वेन समीचीनं सिद्धमिति। 'से' सः 'णिक्खममाणे' निष्क्रामन् 'सूरिए' सूर्यः 'णवं संवच्छरं अयमाणे नवं संवत्सरम् अयन् प्राप्नुवन् सन् 'पढमंसि अहोरत्तंसि' प्रथमेऽहोरात्रे 'अब्भितराणंतरं मंडलं' अभ्यन्तरमण्डलादनन्तरं स्थितं द्वितीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'अब्भितराणंतरं मंडलं' आभ्य-न्तरानन्तरं सर्वाभ्यन्तरानन्तरंद्वितीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'सा सव्वा वि मंडलवया' तानि सर्वाण्यपि मण्डलपदानि प्रत्येकम् 'अडयालीसं एगसट्ठिभागा जोयणस्स' अष्टचत्वारिंशद् एकषष्टिभागा योजनस्य 'बाहल्लेणं' बाहल्येन वर्त्तन्ते, तथा 'णवणवइजोयणसहस्साइं' नवनवतियोजनसहस्राणि 'छच्च पणताले जोयणसयाइं' षट्च पञ्चचत्वारिंशद् योजनशतानि'पणतीसं च एगसट्ठिभागा जोयणस्स' पञ्च-त्रिंशच्च एकषष्टिभागा योजनस्य (९९६४५ ३५/६१) 'आयामविक्खंभेणं' आयामविष्कम्भेण सन्ति तथा 'तिण्णि जोयणसयसहस्साइं' त्रीणि योजनशतसहस्राणि 'पण्णरसं च सहस्साइं' पञ्चदश च सहस्राणि 'एगं सत्तुत्तरं जोयणसयं' एकं सप्तोत्तरं योजनशतम्—सप्तोत्तरशताधिक-पञ्चदशसहस्रोत्तरलक्षत्रयम् (३१५१०७) 'किंचिविसेसूणं' किञ्चिद्विशेषोनं किञ्चिद् त्रयोविं-शत्येकषष्टिभागहीनत्वात्। व्यवहारनयमतेन लोकेऽपि किञ्चिन्न्यूनसंख्याया अपि परिपूर्णत्वेन विवक्षा लभ्यते। निश्चयनयमतेन तु एतावती संख्या भवति तथा च (३१५१०६—२८।६१) इति एतावत्परिमितानि सर्वाण्यपि मण्डलपदानि परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण परिधिना वर्त्तन्ते। अत्र यत् 'किंचिविसेसूणं' इति कथितं तत् अन्तिमाङ्कसप्तसंख्यायाः परिपूर्णाभावात् कथितम्।-'तया णं'

तदा पूर्वोक्तपरिस्थितौ खलु 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति किन्तु सः 'दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् 'ऊणे' ऊनः हीनो भवति, तथा 'दुवालसमुहुत्ता राई भवई' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति सा च 'दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् 'अहिया' अधिका भवतीति ।

कथमेतदायामविष्कम्भयोः परिधेश्च परिमाणं लभ्यते इति तदेव प्रदर्शयामः, तत्र प्रथममायामविष्कम्भयो. परिमाणं प्रदर्श्यते, तथाहि—एकः सूर्यो द्वे योजने एकस्य योजनस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलगताष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागांश्च—(२—४८।६१) वहिरवष्टभ्य द्वितीये मण्डले चारं चरति । एवमेव द्वितीयोऽपि सूर्यो द्वे योजने, सर्वाभ्यन्तरमण्डलगताष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागांश्च (२—४८।६१) वहिरवष्टभ्य पुनर्द्वितीये मण्डले चारं चरति ततो द्वयोः संमेलने जातानि पञ्चयोजनानि तदुपरि योजनस्य पञ्चत्रिंशदेकषष्ठिभागाश्च (५—३५।६१) भवन्ति । एषा संख्या प्रथममण्डलायामविष्कम्भपरिमाण (९९६४०) मध्येऽधिकत्वेन प्रक्षिप्यते ततो जातं यथोक्तमायामविष्कम्भपरिमाणं पञ्चचत्वारिंशदधिकपट्शतोत्तरनवनवतिसहस्रयोजनानि, पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य (९९६४५—३५।६१) इति । इदमायाविष्कम्भपरिमाणं लब्धम् । परिधिपरिमाणमेवं लभ्यते, तथाहि—पञ्चयोजनानि, पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य, इत्यस्य सर्वे-एक षष्टिभागाः क्रियन्ते तदर्थं पञ्च योजनानि एकषष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि पञ्चोत्तराणि त्रीणि शतानि (३०५) एषु एकषष्टिभागेषु उपरितनाः शेषाः ये पञ्चत्रिंशत् (३५) एकषष्टिभागास्ते प्रक्षिप्यन्ते ततो जातानि चत्वारिंशदधिकानि त्रीणि शतानि (३४०) एतेषां वर्गकरणात् जातं षट् शताधिकपञ्चदशसहस्रोत्तरमेकं लक्षम् (११५६००) एषोऽङ्कसमुदायो दशभिर्गुण्यते ततो जाता एकशून्याधिका पूर्वोक्ता संख्या (११५६०००) । एषां वर्गमूलानयने लभ्यते पञ्चसप्तत्यधिकमेकं सहस्रम् (१०७५) । अस्य योजनकरणार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते तदा लब्धानि सप्तदशयोजनानि अष्टत्रिंशच्च एकषष्टिभागा योजनस्य (१७—३८।६१) शेषाऽष्टत्रिंशद्रूपासंख्या तिष्ठति सा त्यक्ता । एतत् (१७—३८।६१) पूर्वमण्डलपरिधिपरिमाण (३१५०८९) मध्येऽधिकत्वे प्रक्षिप्यते ततो जातं यथोक्तं परिधिपरिमाणं सप्तोत्तरशताधिकपञ्चदशसहस्रोत्तरं लक्षत्रयम् (३१५१०७) किञ्चिद्विशेषोनं—किञ्चिदूनत्रयोविशत्येकषष्टिभागानां हीनत्वादिति । 'से णिक्खममाणे सूरिए' स निष्क्रामन् सूर्यः 'दोच्चंसि अहोरत्तंसि' द्वितीयेऽहोरात्रे अब्भिंतरं मंडलं' अभ्यन्तरम् अभ्यन्तरसम्बन्धित्वादभ्यन्तरं तृतीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'अब्भिंतरं तच्चं मंडलं' अभ्यन्तरं तृतीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति । 'तया णं' तदा खलु 'सा मंडलवया' तानि मण्डलपदानि 'अडयालीसं एगसट्ठिभागा जोयणस्स' अष्टचत्वारिं-

शदेकषष्टिभागा योजनस्य 'बाहल्लेणं' बाहल्येन, 'णवणवइजोयणसहस्साइं' नवनवतियोजनसहस्राणि 'छच्च एकावण्णे जोयणसयाइं' षट् च एकपञ्चाशद् योजनशतानि 'णव य एगसट्ठिभागा जोयणस्स' नव च एकषष्टिभागा योजनस्य एकपञ्चाशदधिकषट्शतोत्तरनवनवतिसहस्रयोजनानि योजनस्य नवैकषष्टिभागसमधिकानि (९९६५१-९।६१) 'आयामविक्खंभेणं' आयामविष्कम्भेण वर्त्तन्ते, ।

कथमेतत्परिमाणं लभ्यते ? इति प्रदर्श्यते—पूर्ववदत्रापि प्रतिमण्डलचारं वृद्धिमर्यादया पञ्चयोजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य ($५-\frac{३५}{६१}$) पूर्व मण्डलायामविष्कम्भपरिमाणादधिकत्वेन प्राप्यन्ते ततो भवति यथोक्तमायामविष्कम्भपरिमाणं ($९९५१ \frac{९}{६१}$). तथा च—पूर्वमण्डलायामविष्कम्भपरिमाणं पञ्चचत्वारिंशदधिकषट्शतोतरनवनवतिसहस्रयोजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागाः ($९९६४५\frac{३५}{६१}$) तन्मध्ये पञ्चयोजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य ($५-\frac{३५}{६१}$) संयोज्यन्ते यथा

$$\left\{\begin{array}{r} ९९६४५-३५ \\ ५-३५ \\ ९९६५०-७० \end{array}\right\}$$

संयोजनेन समागताः सप्ततिसंख्यका (७०) एक षष्टिभागास्ते एकषष्ट्या ६१ विभज्यते लब्धमेकं योजनं तद् योजनसंख्यायां प्रक्षिप्यते शेषाः नव- एक षष्टिभागाः स्थिता इति जातं यथोक्तं परिमाणम् ($९९६५१\frac{९}{६१}$) इति ।

'तिण्णि जोयणसयसहस्साइं' त्रीणि योजनशतसहस्राणि 'पण्णरस य सहस्साइं' पञ्चदश च सहस्राणि 'एगं च पणवीसं जोयणसयं' एकं च पञ्चविंशतिः योजनशतम्—पञ्चविंशत्यधिकशतोत्तरपञ्चदशसहस्राधिकं—लक्षत्रयं योजनानाम् (३१५१२५) 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण परिधिना वर्त्तन्ते सर्वाणि मण्डलपदानीति ।

कथमेतत् परिधिपरिमाणमुपलभ्यते ? इति प्रदर्श्यते तथाहि पूर्वमण्डलपरिधिपरिमाण—(३१५१०७) मध्ये अष्टादशयोजनानि अधिकत्वेन प्रक्षिप्यन्ते ततो भवति सूत्रोक्तमेतन्मण्डलपरिधिपरिमाणं पञ्चविंशत्यधिकशतोत्तरपञ्चदशसहस्राधिकत्रिलक्षयोजनपरिमितं (३१५१२५) भवतीति । अत्र निश्चयनयमतेन तु सप्तदशयोजनानि अष्ट त्रिंशच्चैकषष्टिभागाः ($१७\frac{३८}{६१}$) एष

प्रक्षेपकराशिरस्ति किन्तु सूत्रकृता व्यवहारनयमनुसृत्य परिपूर्णाऽष्टादशयोजनानि कथितानि लोके हि व्यवहारनयेन किञ्चिदूनराशेरपि परिपूर्णत्वेन व्यवह्रियमाणत्वात्। पूर्वमण्डलपरिमाणे 'किंचिविसेसूणं' इति प्रोक्तं तदपि व्यवहारनयमतेन परिपूर्णमिव विवक्ष्यते। तथाचोक्तम्—

''सत्तरसजोयणाइं अट्ठतीसं च एगसट्ठिभागा, एवं निच्छएणं, सववहारेण पुण अट्ठारसजोयणाइं'' इति 'सप्तदशयोजनानि अष्टत्रिंशच्च एकषष्टिभागा एतत् निश्चयेन, सव्यवहारेण पुनः अष्टादशयोजनानि'' इति छाया।

''तया णं' तदा खलु 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति किन्तु सः 'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्तैः 'उणे' उनः हीनो भवति, तथा 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, सा च 'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतुर्भिरेकषष्ठिभागमुहूर्त्तैः 'अहिया' अधिका भवति। 'एवं' एवम् अनेनैव प्रकारेण खलु 'एएणं' एतेन पूर्वोक्तेन 'उवाएणं' उपायेन विधिना 'णिक्खममाणे सूरिए' निष्क्रामन् सूर्यः 'तयाणंतराओ मंडलाओ' तदनन्तरात् पूर्वमण्डलादनन्तरस्थितात् यत्र सूर्यो वर्त्तते तस्मादित्यर्थः मण्डलात 'तयाणंतरं मंडलं' तदनन्तरं मण्डलं तदग्रे स्थितं मण्डलम् 'उवसंकममाणे २, उपसंक्रामन् २ 'पंच जोयणाइं' पञ्च योजनानि 'पणतीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स' पञ्चत्रिंशतं च एकषष्टिभागान् योजनस्य ($५\frac{३५}{६१}$) 'एगमेगे मंडले' एकैकस्मिन् मण्डले प्रत्येकमण्डले इत्यर्थः 'विक्खंभवुड्ढिं' विष्कम्भवृद्धिम् 'अभिवुड्ढेमाणे २' अभिवर्धयन २ तथा 'अट्ठारस २ जोयणाइं' अष्टादश २ योजनानि 'परिरयवुड्ढिं' परिरयवृद्धिं परिधिवृद्धिम् 'अभिवड्ढेमाणे २' अभिवर्धयन्२ 'सव्वबाहिरं मंडलं' सर्वबाह्यं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वबाहिरं मंडलं' सर्वबाह्यं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं सा मंडलवया' तदा खलु तत् मण्डलपदम् 'अडयालिसं एगसट्ठिभागा जोयणस्स' अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य 'बाहल्लेणं' बाहल्येन सन्ति 'एगं जोयणसहस्सं' एकं योजनसहस्रं 'छच्च सट्ठी जोयणसयाइं' षट् षष्टिः योजनशतानि षष्ट्यधिकानि षट् शतानि योजनानां षष्ट्याधिकषट्शतोत्तरैकलक्षयोजनानि (१००६६०) 'आयामविक्खंभेणं' आयामविष्कम्भेण तथा 'तिन्नि जोयणसयसहस्साइं' त्रीणि योजनशतसहस्राणि 'अट्ठारससहस्साइं' अष्टादशसहस्राणि 'तिण्णि य पण्णरसुत्तराइं जोयणसयाइं' त्रीणि च पञ्चदशोत्तराणि योजनशतानि—पञ्चदशाधिकत्रिशतोत्तराष्टादशसहस्राधिकत्रिलक्षयोजनानि (३१८३१५) 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण परिधिना वर्त्तन्ते।

कथमायामविष्कम्भयोः परिधेश्च परिमाणमेतावत्परिमितमुपलभ्यते ? इति प्रदर्शयामः, तत्र पूर्वमायामविष्कम्भपरिमाणं प्रदर्श्यते, तथाहि-सर्वाभ्यन्तरमण्डलात् सर्वबाह्यं मण्डलं त्र्यशीत्यधिकैकशततमं (१८३) वर्तते, प्रत्येकस्मिन् मण्डले च विष्कम्भे २ पञ्चपञ्च योजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागाः ($५\frac{३५}{६१}$) योजनस्य वर्द्धन्ते ततः एतत् त्र्यशीत्यधिकैकशतेन गुण्यते, तत्र पञ्च योजनानां त्र्यशीत्यधिकशतेन गुणने जातानि पञ्चदशोत्तरनवशतानि योजनानि (९१५) एकषष्टिभागानां त्र्यशीत्यधिकशतेन गुणने जातानि पञ्चाधिकचतुःशतोत्तराणि षट् सहस्राणि, (६४०५) एतावन्त एक षष्टिभागाः जाताः, एषां योजनानयनार्थमेकषष्ट्या ६१ भागो ह्रियते, लब्धं पञ्चोत्तरं शतम् (१०५) एषा योजनसंख्या लब्धा, एतां पूर्वलब्धयोजनराशौ पञ्चदशाधिकनवशत (९१५) रूपे प्रक्षिप्यते तदा जातं विशत्यधिकमेकं सहस्रम् (१०२०) एषोऽङ्कसमुदायः सर्वाभ्यन्तरमण्डलायामविष्कम्भपरिमाणे (९९६४०) ऽधिकत्वेन प्रक्षिप्यते ततो जायते यथोक्तं षष्ट्यधिक षट् शतोत्तरैकलक्ष (१००६६०) रूपं परिमाणमायामविष्कम्भयोर्भवतीति । अथ परिधिपरिमाणं कथं लभ्यते ? इति प्रदर्श्यते, तथाहि—परिक्षेपपरिमाणे यत् 'पञ्चदशोत्तराणि' इति कथितं तानि पञ्चदशोत्तराणि किञ्चिन्न्यूनानि ज्ञातव्यानि । तथाहि—अस्य मण्डलस्यायामविष्कम्भपरिमाणं षष्ट्यधिकषट्शतोत्तरमेकं लक्षम् (१००-६६०), अस्य वर्गकरणात् जातम् एककः शून्यमेककस्त्रिको द्विकश्चतुष्कस्त्रिकः पञ्चकः षट्को द्वे शून्ये (१०१३२४३५६००) इति ततो दशभिर्गुणने जातमेकं शून्यमधिकम् (१०१३२-४३५६०००) अस्य वर्गमूलानयने लब्धानि—चतुर्दशोत्तरशतत्रयाधिकाष्टादशसहस्रोत्तरलक्षत्रयम् (३१८३१४), शेषमवतिष्ठते—चतुरुत्तरचतुःशताधिकत्रिपञ्चाशत्सहस्रोत्तरं लक्षपञ्चकम् (५५३-४०४) छेदराशिः अष्टाविंशत्यधिकषट्शतोत्तरषट्त्रिंशत्सहस्राधिकं लक्षषट्कम् (६३६६२८)। एवं रीत्या पञ्चदशतमं योजनं किंचिदूनं प्राप्यते तथापि व्यवहारनयमतेन सूत्रकृता परिपूर्ण विवक्षाया पञ्चदशोत्तराणीत्युक्तम् । अथवा द्वितीयप्रकारेण प्रदर्श्यन्ते—पूर्वपूर्वमण्डलमधिकृत्याऽग्रेऽग्रे प्रतिमण्डले परिधिवृद्धौ सप्तदश सप्तदश योजनानि अष्टत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य($१७\frac{३८}{६१}$) प्राप्यन्ते तत एते त्र्यशीत्यधिकशतेन गुण्यन्ते, तत्र पूर्वं योजनानां गुणने जातानि—एकादशोत्तरैकशताधिकानि त्रीणि सहस्राणि (३१११), ततो येऽष्टत्रिंशदेकषष्टिभागास्तेऽपि त्र्यशीत्यधिकशतेन गुण्यन्ते, जातानि चतुष्पञ्चाशदधिकनवशतोत्तराणि षट् सहस्राणि (६९५४), एतेषां योजनकरणार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते, तेन लब्धं चतुर्दशोत्तरमेकं शतम् (११४), एतानि योजनानि लब्धानि, तानि पूर्वोक्ते गुणनफलभूते योजनराशौ ($\frac{३१११}{-११४}$) प्रक्षिप्यन्ते ततो जातानि

पञ्चविंशत्यधिकद्विशतोत्तराणि त्रीणि सहस्राणि (३२२५) एषोऽङ्कसमुदायः सर्वाभ्यन्तरमण्डल-परिमाणे नवाशीत्यधिकपंचदशसहस्रोत्तरत्रिलक्ष (३१५०८९) रूपेऽधिकत्वेन प्रक्षिप्यते, तेन जातानि चतुर्दशोत्तरत्रिशताधिकाष्टादशसहस्रोत्तराणि त्रीणि लक्षाणि (३१८३१४) इति सूत्रोक्तं परिधिपरिमाणमुपलब्धम् ।

तथा सप्तदशयोजनानाम्, अष्टत्रिंशदेकषष्टिभागानामुपरि पञ्चसप्तत्यधिकानि त्रीणि-शतानि (३७५) शेषत्वेनोद्धरन्ति तानि त्र्यशीत्यधिकशतेन गुणनात् जातानि पञ्चविंशत्यधिक-षट्शतोत्तराणि अष्टषष्टिसहस्राणि (६८६२५)एतेषां पञ्चाशदधिकशतोत्तरसहस्रद्वयरूपेण (२१-५०) छेदराशिना भागो ह्रियते तदा लब्धा एकत्रिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य, शेषमल्पत्वात्त्य-क्तम्। परं सूत्रकृता व्यवहारनयमतेन परिपूर्णयोजनविवक्षया 'पञ्चदशोत्तराणि" इत्युक्तम् ।

एवं यदाऽऽयामविष्कम्भपरिधिपरिमाणं भवति 'तया णं' तदा खलु **'उत्तमकट्ठपत्ता'** उत्त-मकाष्ठा प्राप्ता परमप्रकर्षसम्पन्ना **'उक्कोसिया'** उत्कर्षिका सर्वोत्कृष्टा सर्वगुर्वीयतोऽनन्तरमा-धिक्याभावात् **'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ'** अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, तथा **'जहण्णए'** जघ-न्यकः सर्वलघुः यतोऽनन्तरं लाघवाभावात् **'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ'** द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवतीति। **'एस णं'** एतत् खलु **'पढमे छम्मासे'** प्रथमं षण्मासम् । **'एस णं'** एतत् खलु **'पढमस्स छम्मासस्स'** प्रथमस्य षण्मासस्य **'पज्जवसाणे'** पर्यवसानम्—अन्तिममहोरात्रम् । यतोऽग्रे सूर्यस्य चारक्षेत्राभावात् ॥सू०१४॥

॥ एतत् रात्रिवृद्धिरूपं प्रथमं षण्मासम् ॥

गतं सूर्यसंवत्सरस्य मण्डलपदरूपं प्रथमं षण्मासम् साम्प्रतं तत्सम्बद्धमेव द्वितीयं षण्मासं प्ररूप्यते, तस्येदमादिसूत्रम्–**'से पविसमाणे सूरिए'** इत्यादि ।

मूलम्—से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं सा मंडलवया अडयालीसं एगसट्ठिभागा जोयणस्स बाहल्लेणं, एगं जोयणसयसहस्सं छच्च चउप्पण्णे जोयणसयाइं छव्वीसं च एगसट्ठि-भागा जोयणस्स आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं अट्ठारससहस्साइं दोण्णि य सत्ताणउए जोयणसयाइं परिक्खेवेणं, तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए । से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । ता जया णं सूरिए बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ

तया णं सा मंडलवया अडयालीसं एगसट्ठिभागा जोयणस्स वाहल्लेणं, एगं जोयण-सयसहस्सं छच्च अडयाले जोयणसयाइं वावण्णं च एगसट्ठिभागा जोयणस्स आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं अट्ठारससहस्साइं दोण्णि च एगूणासीईं जोयणसयाइं परिक्खेवेणं, तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगसट्ठिभाग-मुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए। एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ मंडलाओ तयाणंतरं मंडलं संकममाणे २ पंच पंच जोयणाइं पणतीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले विक्खंभवुड्ढि निव्वुड्ढे माणे २ अट्ठारसजोयणाइं परिरयवुड्ढिं णिव्वुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं सा मंडलवया अडयालीसं एगसट्ठिभागा जोयणस्स वाहल्लेणं, णवणवइं जोयणसहस्साइं छच्च चत्ताले जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं, तिण्णि जोयणसयसहस्साइं पण्णरससहस्साइं एगूणणउईं च जोयणाइं किंचिविसेसाहि-याइं परिक्खेवेणं, तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। एस णं दोच्चे छम्मासे। एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे। एस णं आइच्चे संवच्छरे। एस णं आइच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे॥सू० १५॥

छाया—स प्रविशन् सूर्यः द्वितीयं षण्मासम् अयन् प्रथमे अहोरात्रे बाह्यानन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तद्यदा खलु सूर्यः बाह्यानन्तरं मण्डलं उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु तानि मण्डलपदानि अष्टचत्वारिंशद् एकषष्टिभागा योजनस्य बाहल्येन, एकं योजनशतसहस्रं षट् च चतुष्पञ्चाशत् योजनशतानि षड्विंशतिश्च एकषष्टिभागा योजनस्य आयामविष्कम्भेण, त्रीणि योजनशतसहस्राणि अष्टादशसहस्राणि द्वे च सप्त-नवतियोजनशते परिक्षेपेण, तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभाग-मुहूर्त्ताभ्याम् ऊना, द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभागमूहूर्त्ताभ्याम् अधिकः।

स प्रविशन् सूर्यः द्वितीये अहोरात्रे बाह्यं तृतीयं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः बाह्यं तृतीयं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु तानि मण्डपदानि अष्टचत्वारिंशद् एकषष्टिभागा योजनस्य बाहल्येन, एकं योजनशतसहस्र षट् च अष्टचत्वारिंशद् योजनशतानि द्विपञ्चाशच्च एकषष्टिभागा योजनस्य आयामविष्कम्भेण त्रीणि योजनशतसहस्राणि अष्टादशसहस्राणि द्वे च एकोनाशीतिः योजनशतानि परिक्षेपेण तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः ऊना, द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः अधिकः। एवं खलु एतेन उपायेन प्रविशन् सूर्यः तदनन्तरात् मंडलात् तदनन्तरं मण्डलं संक्रामन् २ पञ्च पञ्च योजनानि पञ्चत्रिं-शतमेकषष्टिभागान् योजनस्य एकैकस्मिन् मण्डले विष्कम्भवृद्धिं निवर्धयन् २ अष्टादश-

योजनानि परिरयवृद्धिं निर्वर्धयन् २ सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति । तावद् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु तानि मण्डलपदानि अष्टचत्वारिंशद् एकषष्टिभागा योजनस्य बाहल्येन, नवनवतियोजनसहस्राणि षट् चत्वारिंशद् योजनशतानि आयामविष्कम्भेण, त्रीणि योजनशतसहस्राणि पञ्चदश च सहस्राणि एकोननवतिश्च योजनानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण । तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्ता रात्रिर्भवति एतत् खलु द्वितीयं षण्मासम् । एतत् खलु द्वितीयस्य षण्मासस्य पर्यवसानम् । एष खलु आदित्यः संवत्सरः । एतत् खलु आदित्यस्य संवत्सरस्य पर्यवसानम् ।।सू० १५।।

व्याख्या—ततः 'से पविसमाणे सूरिए' स प्रविशन् सर्वाभ्यन्तरमण्डलाभिमुखं गच्छन् 'दोच्चं छम्मासं' द्वितीयं षण्मासम् दिवसवृद्धिरूपम् 'अयमाणे' अयन् प्राप्नुवन् 'पढमंसि अहोरत्तंसि' प्रथमे अहोरात्रे 'बाहिराणंतरं मंडलं' सर्वबाह्यानन्तरमभ्यन्तरमार्गगतद्वितीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'बाहिराणंतरं मंडलं' बाह्यानन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'सा मंडलवया' तानि मण्डपदानि 'अडयालीसं एगसट्ठिभागा जोयणस्स' अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः योजनस्य बाहल्येन वर्त्तन्ते, 'एगं जोयणसयसहस्सं' एकं योजनशतसहस्रं 'छच्च चउप्पण्णे जोयणसयाइं' षट् च चतुष्पञ्चाशद् योजनशतानि 'छव्वीसं च एगसट्ठिभागा जोयणस्स' षड्विंशतिश्च एकषष्टिभागा योजनस्य चतुष्पञ्चाशदधिकषट्शतोत्तरैकलक्षयोजनानि योजनस्य षड्विंशत्येकषष्ठिभागसहितानि ($१००६५४-\frac{२६}{६१}$ 'आयामविक्खंभेणं' आयामविष्कम्भेण वर्त्तन्ते । कथमेतत्परिमाणमुपलभ्यते ? इति विशदी क्रियते, तथाहि—मण्डलमेतत् एकतो द्वे योजने सर्वबाह्यमण्डलगतानष्टचत्वारिंशतमेकषष्टिभागांश्च ($२-\frac{४८}{६१}$) योजनस्य मुक्त्वाऽभ्यन्तरमवस्थितम्, 'अपरतोऽपि द्वे योजने सर्वबाह्यमण्डलगतानष्टचत्वारिंशतमेकषष्टिभागांश्च ($२-\frac{४८}{६१}$) योजनस्य मुक्त्वाऽभ्यन्तरमवस्थितमिति तयोर्द्वयोः सम्मेलने जातानि पञ्चयोजनानि पंचत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य ($५-\frac{३५}{६१}$) त्ति' एतत् सर्वबाह्यमण्डलगतायामविष्कम्भपरिमाणात् (१००६६०) शोध्यते ततो जातं यथोक्तं चतुष्पञ्चाशदधिकषट्शतोत्तरैकलक्षयोजनानि षड्विंशतिश्चैकषष्टिभागाः ($१००६५४-\frac{२६}{६१}$ आयामविष्कम्भपरिमाणमिति । तथा 'तिण्णि जोयणसयसहस्साइं' त्रीणि योजनशतसहस्राणि 'अट्ठारस-

सहस्साइं' अष्टादशसहस्राणि 'दोण्णि य सत्ताणउए जोयणसयाइं' द्वे च सप्तनवतिःयोजनशते सप्तनवत्यधिकद्विशतोत्तराष्टादशसहस्राधिकत्रिलक्षयोजनानि (३१८२९७) 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण वर्त्तन्ते। कथमेतदवसीयते? इत्याह पूर्वमण्डलात् अस्य मण्डलस्य आयामविष्कम्भपरिमाणे पंच योजनानि पंचत्रिंशच्च एकषष्टिभागा योजनस्य न्यूनत्वेन भवितुमर्हन्ति सूर्यस्याभ्यन्तरगतिकत्वात् पंचत्रिंशदेकषष्टिभागसहितानां पंचानां योजनानां $(5-\frac{35}{61})$ परिरये निश्चयनयमतेन सप्तदशयोजनानि अष्टत्रिंशच्चैकषष्टिभागा योजनस्य लभ्यन्ते किन्तु सूत्रकृता व्यवहारनयमाश्रित्य परिपूर्णानि अष्टादश योजनानि कथितानि। प्रागुक्तात् सर्वबाह्यमण्डलपरिधिपरिमाणात् पंचदशोत्तरशतत्रयाधिकाष्टादशसहस्रोत्तरत्रिलक्ष(३१८३१५) रूपात् अष्टादशयोजनानि शोध्यन्ते ततो जातं यथोक्तं सप्तनवत्यधिकद्विशतोत्तराष्टादशसहस्राधिकत्रिलक्षयोजन (३१८२९७) परिमितपरिधिपरिमाणं भवतीति। 'तया णं' तदा खलु 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति किन्तु 'सा दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् 'ऊणा' ऊना हीना भवति तथा 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, स च 'दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् 'अहिए' अधिको भवतीति।

'से पविसमाणे' ततः 'से' सः 'पविसमाणे' प्रविशन् 'सूरिए' सूर्यः दोच्चंसि अहोरत्तंसि' द्वितीयेऽहोरात्रे 'बाहिरं' बाह्यं बाह्यमार्गात्प्राप्तं 'तच्चं मंडलं' तृतीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसक्रम्य चारं चरति। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ' बाह्यं तृतीयं मण्डलम् उपसंक्रम्य चार चरति। 'तया णं' तदा खलु तद् मण्डलपदम् 'अडयालीसं एगसट्ठिभागा जोयणस्स' अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य 'बाहल्लेणं' बाहल्येन। एगं जोयणसयसहस्सं' एकं योजनशतसहस्रम् एकलक्षयोजानानि 'छच्च अडयाले जोयणसयाइं' षट् च अष्टचत्वारिंशद्योजनशतानि अष्टचत्वारिंशदधिकषट्शतयोजनानि 'बावण्णं च एगसट्ठिभागा जोयणस्स' द्विपञ्चाशच्च एकषष्टिभागा योजनस्य $(100648(\frac{52}{1})$ एतावत्परिमितम् 'आयामविक्खंभेणं' आयामविष्कम्भेण, एतत्परिमाणं कथं लभ्यते? तत्प्रदर्श्यते, तथाहि—अस्मात् प्राक्तनमण्डलस्यायामविष्कम्भपरिमाणं लक्षमेकं चतुष्पञ्चाशदधिकषट्शतोत्तरम्, षड्विंशतिश्चैकषष्टिभागा योजनस्य $(100654\frac{26}{61})$वर्त्तते, एतत्परिमाणात् पूर्वमण्डलात् पञ्चयोजनानि पञ्चत्रिंशच्चैकषष्टिभागाः $(5-\frac{35}{61})$ शोध्यन्ते तत आगतं पूर्वोक्तमायामविष्कम्भपरिमाण तृतीयमण्डलपद-

स्येति । तथा 'तिण्णि जोयणसयसहस्साइं' त्रीणि योजनशतसहस्राणि त्रिलक्षयोजनानि, 'अट्ठारससहस्साइं' अष्टादशसहस्राणि 'दोण्णि य एगूणासीई जोयणसयाइं' द्वे च एकोनाशीतिः योजनशते एकोनाशीत्यधिके द्वेशते च योजनानाम् (३१८२७९) 'परिक्खेवेण' परिक्षेपेण परिधिना विद्यते । तथाहि—अस्मात्—प्राक्तनमण्डलस्य परिधिपरिमाणम् (३१८२९७) इत्येवं रूपम् । प्राक्तनमण्डलविष्कम्भपरिमाणादिदं मण्डलं योजनस्य पञ्चत्रिंशदेकषष्टिभागसहितैः पञ्चभिर्योजनैर्विष्कम्भतो न्यूनमस्ति, विष्कम्भन्यूनत्वे परिक्षेपन्यूनत्वस्यावश्यंभावात् पञ्चानां योजनानां पञ्चत्रिंशदेकषष्टिभागसहितानां परिधिप्रमाणं व्यवहारतोऽष्टादशयोजनानि लभ्यन्ते, तानि च पूर्वमण्डलपरिमाणात् (३१८२९७) इत्येवं रूपात् अष्टादश हीनाः क्रियन्ते तत आगतं यथोक्तं (३१८२७९) परिधिपरिमाणम् । 'तया णं' तदा तस्मिन काले खलु एतद्रूपपरिक्षेपपरिधिपरिमाणसमये इत्यर्थः, 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति किन्तु 'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैरूना हीना भवति । तथा 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादश मुहूर्त्तो दिवसो भवति, स च 'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैरधिको भवतीति ।

'एवं खलु' इत्यादि 'एवं' एवम् अनेन प्रकारेण खलु—निश्चितम् 'एएणं' एतेन पूर्वोक्तेन 'उवाएणं' उपायेन युक्तिना 'पविसमाणे' प्रविशन् सर्वाभ्यन्तरमण्डलं प्रतिगच्छन् 'सूरिए' सूर्यः 'तयाणंतराओ मंडलाओ' तदनन्तराद् मण्डलाद् 'तयाणंतरं मंडलं' तदनन्तरं तदग्रेतनं मण्डलं 'संकममाणे २' संक्रामन् २ 'पंच पंच जोयणाइं' पञ्च पञ्च योजनानि 'पणतीसं च एगसट्ठिभागे जोयणस्स' पञ्चत्रिंशच्च एकषष्टिभागान् योजनस्य 'एगमेगे मंडले' एकैकस्मिन् मण्डले 'विक्खंभवुड्ढिं' विष्कम्भवृद्धिं 'निव्वुड्ढेमाणे २' निर्वर्धयन् २ 'हापयन् २' हीनां कुर्वन् २ इत्यर्थः, तथा 'अट्ठारसजोयणाइं' अष्टादशयोजनानि 'परिरयवुड्ढिं' परिरयवृद्धिं परिधिपरिमाणवृद्धिं 'निव्वुड्ढेमाणे २' निर्वर्धयन् २ हापयन् २ 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति सर्वाभ्यन्तरमण्डले परिभ्रमतीत्यर्थः । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'सा मंडलवया' तन्मण्डलपदम् 'अडयालीसं एगसट्ठिभागा जोयणस्स' अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागा योजनस्य 'बाहल्लेणं' बाहल्येन, तथा 'णवणवइजोयणसहस्साइं' नवनवतियोजनसहस्राणि 'छच्च चत्ताले जोयणसयाइं' षट् च चत्वारिंशद् योजनशतानि चत्वारिंशदधिकषट्शतयोजनानि (९९६४०) 'आयामविक्खंभेणं' आयामविष्कम्भेण । तथा 'तिण्णि जोयण-

सयसहस्साइं' त्रीणि योजनशतसहस्राणि त्रीणि लक्षाणि 'पण्णरस य सहस्साइं पञ्चदशसहस्राणि 'एगूणणवई य जोयणाइं' एकोननवतिश्च योजनानि (३१५०८९) 'किंचिविसेसाहियाइं' किञ्चिद्विशेषाधिकानि 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण वर्त्तते 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्त. मकाष्ठाप्राप्तः परमप्रकर्षप्राप्तः 'उक्कोसए' उत्कर्षकः सर्वोत्कृष्टः 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, तथा 'जहण्णिया' जघन्या सर्वलध्वी 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवतीति। 'एस णं दोच्चे छम्मासे' एतत् खलु द्वितीयं षण्मा. सम्। 'एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे' एतत् खलु द्वितीयस्य षण्मासस्य पर्यव. सानम् अन्तिममहोरात्रम्। 'एस णं आइच्चे संवच्छरे' एष खलु आदित्यः संवत्सर.। 'एस णं आइच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे' एतत् खलु आदित्यस्य संवत्सरस्य पर्यवसानं— पर्यन्तभागः ॥सू० १५॥

अथ प्रथममूलप्राभृतगताष्टमप्राभृतप्राभृतकथितविषयवक्तव्यतामुपसंहरन्नाह—'ता सव्वा वि णं इत्यादि।

मूलम्—ता सव्वा वि णं मंडलवया अडयालीसं च एगसट्ठिभागा जोयणस्स बाह-ल्लेणं, सव्वा वि णं मंडलंतरिया दो जोयणाइं विक्खंभेण, एस णं अद्धा एगे तेयासीई जोयणसए सपडिपुण्णा पंचदसुत्तराइं जोयणसयाइं आहितेति वदेज्जा। ता अब्भंतराओ मंडलवयाओ बाहिरा मंडलवया बाहिराओ मंडलवयाओ अब्भितरा मंडलवया एस णं अद्धा पंचदसुत्तराइं जोयणसयाइं, अडयालीसं च एगसट्ठिभागा जोयणस्स आहिया। ता अब्भितराओ मंडलवयाओ बाहिरा, मंडलवया बाहिराओ मंडलणयओ अब्भितरा मंडलवया, एस णं अद्धा पंचनवुत्तराइं जोयणसयाइं तेरस एगसट्ठिभागा-जोयणस्स आहितेति वदेज्जा। अब्भितराओ मंडलवयाओ, बाहिराओ मंडलवयाओ बाहिरा मंडलवया अब्भितरा मंडलवया, एस णं अद्धा केवइया आहितेति वदेज्जा ?, ता पंचदसुत्तराइं जोयणसयाइं आहितेत्ति वदेज्जा ॥ सू०॥ १६

"इय चंदपण्णत्तीए पढमस्स पाहुडस्स अट्ठमं

पाहुडपाहुडं समत्तं ॥ १-८ ॥

"इय पढमं पाहुडं समत्तं ॥ १ ॥

छाया--तानि सर्वाण्यपि खलु मण्डलपदानि अष्टचत्वारिंशच्च एकषष्टिभागा योजनस्य बाहल्येन, सर्वाण्यपि खलु मण्डलान्तराणि द्वे योजने विष्कम्भेण। एष खलु अध्वा एकं त्र्यशीतिः योजनशतम् सप्रतिपूर्णानि पञ्चदशोत्तराणि योजनशतानि आख्याता इति वदेत्। तावत् अभ्यन्तराद् मण्डलपदाद् बाह्यं मण्डलपदं बाह्याद् मण्डलपदाद् अभ्यन्तरं मण्डलपदम् एष खलु अध्वा पञ्चदशोत्तराणि योजनशतानि अष्टचत्वारिंशच्च एक षष्टिभागा योजनस्य आख्याता। तावद् आभ्यन्तराद् मण्डलपदाद् बाह्यं मण्डलपदं बाह्याद् मण्डलपदाद् आभ्यन्तरं मण्डलपदम्, एष खलु अध्वा पञ्चनवोत्तराणि योजनशतानि, त्रयोदश एकषष्टिभागा योजनस्य आख्यात इति वदेत्। अभ्यन्तरेभ्यः मण्डलपदेभ्यः, बाह्येभ्यः मण्डलपदेभ्यश्च बाह्यानि मण्डलपदानि, अभ्यन्तराणि मण्डलपदानि, एष खलु अध्वा कियत्क· आख्यात इति वदेत्? तावत् पंचदशोत्तराणि योजशतानि आख्यात इति वदेत् ॥सूत्र १६॥

इति चन्द्रप्रज्ञप्त्यां प्रथमस्य प्राभृतस्य अष्टमं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१-८॥

॥ इति प्रथमं प्राभृतं समाप्तम् ॥१॥

व्याख्या--'ता सव्वा वि णं' तानि सर्वाण्यपि खलु 'मंडलवया' मण्डलपदानि प्रत्येकम् 'अडयालीसं च एगसट्ठिभागा जोयणस्स' अष्टचत्वारिंशच्च एकषष्टिभागा योजनस्य 'बाहल्लेणं' बाहल्येन नियतानि सन्ति। बाहल्यस्योपलक्षणत्वात् आयामविष्कम्भपरिक्षेपैर्यथासम्भवं प्रत्येकमनियतानि सन्तीति वाच्यम्। तथा 'सव्वा वि णं मंडलंतरिया' सर्वाण्यपि मण्डलान्तरकाणि मण्डलान्तराणि प्रत्येकमण्डलमाश्रित्य व्यवधानानि 'दो दो जोयणाइं' द्वे द्वे योजने 'विक्खंभेणं' विष्कम्भेण सन्ति। 'एस णं' एष खलु योजनस्याष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागयुक्त-योजनद्वयरूपः 'अद्धा' अध्वा सूर्यमार्गः 'एगं तेयासीई जोयणसयं' एकं त्र्यशीतिः योजनशतं त्र्यशीत्यधिकमेकं योजनशतं (१८३) त्र्यशीत्यधिकैकशतयोजनसमुत्पन्नः 'सपडिपुण्णाइं' स प्रतिपूर्णानि संपूर्णानि न न्यूनाधिकानि 'पंचदसुत्तराइं जोयणसयाइं' पञ्चदशोत्तराणि योजन-शतानि दशोत्तराणि पञ्चशतयोजनानि (५१०) 'आहिए' आख्यातः मार्गः 'इति वएज्जा' इति वदेत् तानि दशोत्तरपञ्चशतयोजनानि कथं भवेदिति प्रदर्श्यते सूर्यस्य प्रत्यहोरात्रं प्रतिमण्ड-लभ्रमणं योजनस्याष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागयुक्तयोजनद्वयेन (२-४८ ६१) भवति। मण्ड-लानि च त्र्यशीत्यधिकमेकं शतमतो द्वयोर्गुणनं कर्त्तव्यम्, तथाहि प्रथमं द्वे योजने त्र्यशी-त्यधिकशतेन गुण्येते जातानि षट्षष्टयधिकानि त्रीणि शतानि (३६६) पुनश्च अष्टचत्वारिंशदेक-षष्टिभागास्त्र्यशीत्यधिकेन शतेन गुण्यन्ते ते च जाताः चतुरशीत्यधिकसप्ताशीतिशत (८७८४) संख्यकाः। एते च योजनानयनार्थमेकषष्ट्या विभज्यन्ते लब्धं चतुश्चत्वारिंशदधिकमेकं शतम् (१४४) तच्च पूर्वप्राप्तयोजनराशौ (३६६) प्रक्षिप्यते जातानि दशोत्तराणि पञ्चशतानि (५१०) अस्यैवार्थस्य स्पष्टीकरणार्थं पुनराह-'ता' इत्यादि।

'ता' तावत्-तत्र 'अब्भितराओ मंडलवयाओ' अभ्यन्तरात् सर्वाभ्यन्तरात् मण्डलपदात् सर्वाभ्यन्तरमण्डलमध्यभागचरमान्तरूपात् सर्वाभ्यन्तरमण्डलमध्यभागचरमान्तमवधीकृत्येत्यर्थः यावत् 'बाहिरा मंडलवया' बाह्यं सर्वबाह्यं मण्डलपदम्, सर्वबाह्यमण्डलबहिर्भागचरमान्तरूपम् एवं 'बाहिराओ मंडलवयाओ' बाह्यात् सर्वबाह्यात मण्डलपदात् सर्वबाह्यमण्डलबहिर्भागचरमान्तरूपात् सर्वबाह्यमण्डलबहिर्भागचरमान्तमवधीकृत्येत्यर्थः यावत 'अब्भितरा मंडलवया' आभ्यन्तरं सर्वाभ्यन्तरं मण्डलपदम् सर्वाभ्यन्तरमडलमध्यभागचरमान्तरूपम् 'एस णं' एषः अभ्यन्तरमध्यभागचरमान्तबाह्यबहिर्भागचरमान्तरूपयोः बाह्यबहिर्भागचरमान्ताभ्यन्तरमध्यभागचरमान्तरूपयोश्च मण्डलपदयोर्व्यवधानरूपः 'अद्धा' अध्वा सूर्यसंचरणमार्गः 'पंचदसुत्तराइं योजनसयाइं' पञ्चदशोत्तराणि योजनशतानि दशोत्तरपञ्चशतयोजनानि, तदुपरि 'अडयालीसं च एगसट्ठिभागजोयणस्स' अष्टचत्वारिंशच्च एकषष्टिभागयोजनस्य 'आहिए' आख्यातः। पूर्वस्मादध्वपरिमाणादस्याध्वपरिमाणस्य सर्वबाह्यमण्डलगतबाहल्यपरिमाणेनाधिक्यसद्भावात्। तथा-'ता' तावत् 'अब्भितराओ मंण्डलवयाओ' अभ्यन्तरात् मण्डलपदात् सर्वाभ्यन्तरमण्डलबहिर्भागचरमान्तरूपात् 'बाहिरा मंडलवया' बाह्यं मण्डलपदं सर्वबाह्यमण्डलमध्यभागचरमान्तरूपम्, तथा 'बाहिराओ मंडलवयाओ' बाह्यात् मण्डपदात् सर्वबाह्यमध्यभागचरमान्तरूपात् 'अब्भितरा मंडलवया' अभ्यन्तरं मण्डलपदं सर्वाभ्यन्तरमण्डलबहिर्भागचरमान्तरूपम् 'एस णं' एषः द्वयो द्वयो मण्डलयोर्मध्यगतव्यवधानरूपः खलु 'अद्धा' अध्वा सूर्यमार्गः 'पंच नवुत्तराइं जोयणसयाइं' पञ्चनवोत्तराणि योजनशतानि नवोत्तरपञ्चशतयोजनानि तदुपरि 'तेरसएगट्ठिभागा जोयणस्स' त्रयोदश एकषष्टिभागा योजनस्य (५०९-१३, ६१) एतत्परिमितो मार्गः 'आहिते' आख्यातः अस्याध्वपरिमाणस्य पूर्वस्मादध्वपरिमाणात् एकं योजनं पञ्चत्रिंशच्च एकषष्टिभागा योजनस्य (१-३५।६१) इत्येवंरूपेण सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतसर्वबाह्यमण्डलगतबाहल्यपरिमाणेन हीनत्वात् इति 'वएज्ज' इति वदेत्। तथा-अब्भितराओ मंडलवयाओ' अभ्यन्तरात् मण्डलपदात् सर्वाभ्यन्तरमण्डलमध्यभागचरमान्तरूपात्' एवं 'बाहिराओ मंन्डलवयाओ' बाह्यात् मण्डलपदात् सर्वबाह्यमण्डलमध्यभागचरमान्तरूपाच्च 'बाहिरा मंडलवया' बाह्यं मण्डलपदं सर्वबाह्यमण्डलबहिर्भागचरमान्तरूपम् एवम् 'अब्भितरा मंडलवया' अभ्यन्तरं मण्लपदं सर्वाभ्यन्तरमण्डलबहिर्भागचरमान्तरूपं च 'एस णं' एषः द्वयो द्वयोर्मण्डलयोर्व्यवधानरूपः खलु 'अद्धा' अध्वा सूर्यमार्गः 'केवइया' कियत्कः कियत्परिमितः किंपरिमाणः 'आहितेति वदेज्ज' आख्यातइति वदेत्। भगवानाह-'ता' इत्यादि 'ता' तावत् स मार्गः 'पंचदसुत्तराइं जोयणसयाइं' पञ्चदशोत्तराणि योजनशतानि दशोत्तरपञ्चशत

योजनानि (५१०) दशोत्तरपञ्चशतयोजनपरिमितः 'आहितेति वदेज्ज' आख्यात इति वदेत्" सूत्र ॥१६॥

इति श्री–विश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचक पञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापक–प्रविशुद्ध-गद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–श्रीशाहुछत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त "जैनशास्त्राचार्य" पदभूषित-कोल्हापुर राजगुरु बालब्रह्मचारी–जैनशास्त्राचार्य–जैनधर्मदिवाकर श्रीघासीलालव्रति–विरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रप्रज्ञप्तिप्रकाशिका-ख्यायां व्याख्यायां प्रथमं मूलप्राभृतप्राभृतं सम्पूर्णम् ॥१–८॥



॥ अथ द्वितीयं प्राभृतं प्रारभ्यते ॥

गतं विंशतिमूलप्राभृतेषु प्रथ ' मूलप्राभृतम्, अथ, द्वितीतं प्राभृतं प्रारभ्यते, अत्र त्रीणि प्राभृतप्राभृतानि सन्ति तेषु प्रथमं प्राभृतप्राभृतं प्रोच्यते, तत्र चायमर्थाधिकारः—'कथं सूर्यस्तिर्यक् परिभ्रमति" इति एतद्विषये प्रथमं सूत्रमाह—'ता कहं ते तिरिच्छगई' इत्यादि

मूलम्—ता कहं ते तिरिच्छगई आहितेति वएज्जा ? तत्थ खलु इमाओ अट्ठ पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा तत्थेगे एवमाहंसु—ता पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ पाओ मरीची आगासंसि उत्तिट्ठइ, से णं इमं लोयं तिरियं करेइ, करित्ता पच्चत्थिमिल्लंसि लोयंतंसि सायं आगासंसि विद्धंसइ एगे एवमाहंसु ।१। एगे पुण एवमाहंसु—ता पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ पाओ सूरिए आगासंसि उत्तिट्ठइ से णं इमं लोयं तिरियं करेइ, करित्ता पच्चत्थिमिल्लंसि लोयंतंसि सायं सूरिए आगासंसि विद्धंसइ, एगे एवमाहंसु ।२। एगे पुण एवमाहंसु—ता पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ पाओ सूरिए आगासंसि उत्तिट्ठइ, से णं इमं लोयं तिरियं करेइ, करिता पच्चत्थिमिल्लंसि लोयंतंसि सायं आगासं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता· अहे पडियागच्छइ पडियागच्छित्ता पुणरवि अवरभूपुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ पाओ सूरिए आगासंसि उत्तिट्ठइ, एगे एवमाहंसु ।३। एगे पुण एवमाहंसु—ता पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ पाओ सूरिए पुढविकायंसि उत्तिट्ठइ, से णं इमं लोयं तिरियं करेइ, करित्ता पच्चत्थिमिल्लंसि लोयंतंसि सायं सूरिए पुढविकायंसि विद्धंसइ, एगे एवमाहंसु ।४। एगे पुण एवमाहंसु ता पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ पाओ सूरिए पुढविकायंसि उत्तिट्ठइ, से णं इमं लोयं तिरियं करेइ करित्ता पच्च, त्थिमिल्लंसि लोयंतंसि सायं सूरिए पुढविकायंसि अणुपविसइ, अणुपविसित्ता अहे पडियागच्छइ, पडियागच्छित्ता पुणरवि अवरभूपुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ पाओ सूरिए पुढविकायंसि उत्तिट्ठइ, एगे एवमाहंसु ।५। एगे पुण एवमाहंसु ता पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ पाओ सूरिए आउकायंसि उत्तिट्ठइ, से णं इमं लोयं तिरियं करेइ, करित्ता पच्चत्थिमिल्लंसि लोयंतंसि सायं सूरिए आउकायंसि विद्धंसइ एगे एवमाहंसु ।६। एगे पुण एवमाहंसु—ता पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ पाओ सूरिए आउकायंसि उत्तिट्ठइ, से णं इमं लोयं तिरियं करेइ करिता पच्चत्थिमिल्लंसि लोयतंति सायं सूरिए आउकायंसि पविसइ, पविसित्ता अहे पडियागच्छइ, पडियागच्छित्ता पुणरवि अवरभूपुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ पाओ सूरिए आउकायंसि उत्तिट्ठइ, एगे एव माहंसु ।७। एगे पुण एवमाहंसु—ता पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ बहूइं जोयणाइं, बहूइं जोय-

णसयाइं, बहूइं जोयणसहस्साइं, उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं पाओ सूरिए आगासंसि उत्तिट्ठइ, से णं इमं दाहिणड्ढं लोयं तिरियं करेइ, करित्ता उत्तरड्ढलोयं तमेव राओ, से णं इमं उत्तरड्ढलोयं तिरियं करेइ, करित्ता दाहिणड्ढलोयं तमेव राओ से णं इमाइं दाहिणउत्तरड्ढलोयाइं तिरियं करित्ता पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ बहूइं जोयणाइं बहूइं जोयणसयाइं, बहूइं जोयणसहस्साइं उड्ढं दूरं उप्पइत्ता एत्थ णं पाओ सूरिए आगासंसि उत्तिट्ठइ, एगे एवमाहंसु ।८।

वयं पुण एवं वयामो—जंबूद्दीवस्स तादीवस्स पाईणपडीणायय—उदीणदाहिणाययाए जीवाए मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता दाहिणपुरत्थिमिल्लंसि उत्तरपच्चत्थिमिल्लंसि य चउब्भागमंडलंसि इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ अट्ठ-जोयणसयाइं उड्ढं उप्पइत्ता एत्थ णं पाओ दुवे सूरिया उत्तिट्ठंति, ते णं इमाइं दाहिणु-त्तराइं जंबूद्दीवभागाइं तिरियं करेंति, करित्ता पुरत्थिमपच्चत्थिमाइं जंबूद्दीवभागाइं तामेव राओ, ते णं इमाइं पुरत्थिमपच्चत्थिमाइं जंबुद्दीवभागाइं तिरियं करेंति, करित्ता दाहिणुत्तराइं जंबूद्दीवभागाइं तामेव राओ, ते णं इमाइं पुरत्थिमपच्चत्थिमाइं जंबूद्दीव-भागाइं तिरियं करेंति, करित्ता दाहिणुत्तराइं जंबूद्दीवभागाइं तामेव राओ, ते णं इमाइं दाहिणुत्तराइं पुरत्थिमपच्चत्थिमाइं य जंबुद्दीवभागाइं तिरियं करेंति, करित्ता जंबूद्दीवस्स दीवस्स पाईणपडीणायय—उदीण दाहिणाययाए जीवाए मंडलं चउव्वीसएणं सएणं छेत्ता दाहिणपुरत्थिमिल्लंसि उत्तरपच्चत्थिमिल्लंसि य चउब्भागमंडलंसि इमीसे रयण, प्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ अट्ठ जोयणसयाइं उड्ढं उप्पइत्ता, एत्थ णं पाओ दुवे सूरिया आगासंसि उत्तिट्ठंति ॥सू० १॥

बितियस्स पाहुडस्स पढमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥२-१

छाया—तावत् कथं ते तिर्यग्गतिराख्यातेति वदेत् ? । तत्र खलु इमा अष्टप्रति-पत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तत्रैके एवमाहुः—तावत् पौरस्त्यात् लोकान्तात् प्रातः मरीचिः आकाशे उत्तिष्ठति, स खलु इमं लोकं तिर्यक् करोति, कृत्वा पाश्चात्ये लोकान्ते सायम् आकाशे विध्वंसते, एके एवमाहुः ।१। एके पुनरेवमाहुः—तावत् पौरस्त्यात् लोकान्तात्म् प्रातः सूर्यः आकाशे उत्तिष्ठति, स खलु इमं लोकं तिर्यक् करोति, कृत्वा पाश्चात्ये लोकान्ते सायं सूर्यः आकाशे विध्वंसते, एके एवमाहुः ।२। एके पुनरेवमाहुः—तावत् पौरस्त्यात् लोकान्तात् प्रातः सूर्यः आकाशे उत्तिष्ठति, स खलु इमं लोकं तिर्यक् करोति, कृत्वा पाश्चात्ये लोकान्ते सायम् आकाशम् अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य अधः प्रत्यागच्छति, प्रत्या-गत्य पुनरपि अपरभूपौरस्त्यात् लोकान्तात् प्रातः सूर्य आकाशे उत्तिष्ठति, एके एवमाहु ।३। एके पुनरेवमाहुः—तावत् पौरस्त्यात् लोकान्तात् प्रातः सूर्यः पृथिवीकाये उत्तिष्ठति,

स खलु इमं लोकं तिर्यक् करोति, कृत्वा पाश्चात्ये लोकान्ते सायं सूर्यः पृथिवीकायं विध्वंसते, एके एवमाहुः-।४।

एके पुनरेवमाहुः-तावत् पौरस्त्यात् लोकान्तात् प्रातः सूर्यः पृथिवीकाये उत्तिष्ठति, स खलु इमं लोकं तिर्यक् करोति, कृत्वा पाश्चात्ये लोकान्ते सायं सूर्यः पृथिवीकाये अनुप्रविशति, अनुप्रविश्य अधः प्रत्यागच्छति प्रत्यागत्य, पुनरपि अपरभूपौरस्त्यात् लोकान्तात् प्रातः सूर्यः पृथिवीकाये उत्तिष्ठति, एके एवमाहुः ।५ एके पुनरेवमाहुः-तावत् पौरस्त्यात् लोकान्तात् प्रातः सूर्यः अप्काये उत्तिष्ठति स खलु इमं लोकं तिर्यक् करोति, कृत्वा पाश्चात्ये-लोकान्ते सायं सूर्यः अप्काये विध्वंसते, एके एवमाहु ।६। एके पुनरेवमाहुः-तावत् पौरस्त्यात् लोकान्तात् प्रातः सूर्यः अप्काये उत्तिष्ठति, स खलु इमं लोकं तिर्यक् करोति, कृत्वा पाश्चात्ये लोकान्ते सायं सूर्यः अप्काये प्रविशति, प्रविश्य अधः प्रत्यागच्छति, प्रत्यागत्य पुनरपि अपरभूपौरस्त्यात् लोकान्तात् प्रातः सूर्यः अप्काये उत्तिष्ठति, एके एवमाहुः ।७। एके पुनरेवमाहुः-तावत् पौरस्त्यात् लोकान्तात् बहूनि योजनानि, बहूनि योजनशतानि, बहूनि योजनसहस्राणि ऊर्ध्वं दूरम् उत्पत्य अत्र खलु प्रातः सूर्यः अकाशे उत्तिष्ठति, स खलु इमं दक्षिणार्धं लोकं तिर्यक् करोति कृत्वा उत्तरार्धलोकं तस्यामेव रात्रौ स एव इमं उत्तरार्धलोकं तीर्यक् करोति कृत्वा दक्षिणार्धलोकं तस्यामेव रात्रौ स खलु इमा दक्षिणोत्तरार्धलोकौ तिर्यक् कृत्वा पौरस्त्यात् लोकान्तात् बहूनि योजनानि बहूनि योजनशतानि बहूनि योजनसहस्राणि ऊर्ध्वं दूरम् उत्पत्य अत्र खलु प्रातः सूर्यः आकाशे उत्तिष्ठति; एके एवमाहुः ।८।

वयं पुनरेवं वदामः तावत् जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य प्राचीप्रतीच्यायतोदीची दक्षिणायतया जीवया मण्डलं चतुर्विंशतिकेन शतेन छित्त्वा दाक्षिणपौरस्त्ये उत्तरपाश्चात्ये च चतुर्भागमण्डले अस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्याः बहुसमरमणीयात् भूमिभागात् अष्टयोजनशतानि ऊर्ध्वम् उत्पत्य अत्र खलु प्रातः द्वौ सूर्यौ उत्तिष्ठतः, तौ खलु इमौ दक्षिणोत्तरौ जम्बूद्वीपभागौ तिर्यक् कुरुतः, कृत्वा पौरस्त्यपाश्चात्यौ जम्बूद्वीपभागौ तस्यामेव रात्रौ, तौ खलु इमौ पौरस्त्यपाश्चात्यौ जम्बूद्वीपभागौ तिर्यक् कुरुतः, कृत्वा दक्षिणोत्तरौ जम्बूद्वीपभागौ तस्यामेव रात्रौ, तौ खलु इमौ दक्षिणोत्तरौ पौरस्त्यपाश्चात्यौ च जम्बूद्वीपभागौ तिर्यक् कुरुतः, कृत्वा जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य प्राची प्रतीच्यायतोदीचीदक्षिणायतया जीवया मण्डलं चतुर्विंशतिकेन शतेन छित्वा दक्षिणपौरस्त्ये उत्तरपाश्चात्ये च चतुर्भागमण्डले अस्याः रत्नप्रभाया पृथिव्याः बहुसमरमणीयात् भूमिभागात् अष्ट योजनशतानि ऊर्ध्वम् उत्पत्य, अत्र खलु प्रातः द्वौ सूर्यौ आकाशे उत्तिष्ठत ॥सू० १॥

॥ द्वितीयस्य प्राभृतस्य प्रथमं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥२-१॥

व्याख्या—'ता' तावत्-प्रथमप्रष्टव्यप्रभूते विषये सत्यपि प्रथममेतावदेव पृच्छामि यत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'ते' भवतो मते 'तिरिच्छगई' तिर्यग्गतिः तिर्यक्कृतया परिभ्रमणं सूर्यस्य 'आहिता' आख्यता ? 'इति वदेज्जा' इति वदेत् वदतु हे भगवन् !, गौतमेन एवं पृष्टे भगवन् प्रथममेतद्विषये परतीर्थिकमिथ्याभावोपदर्शनाय तेषां मान्यतारूपा अष्टप्रतिपत्तीः प्रदर्शयति 'तत्थ खलु' इत्यादि । 'तत्थ' तत्र सूर्यस्य तिर्यग्गतिविषये खलु 'इमाओ' इमाः वक्ष्यमाणाः

'अट्ठ' अष्टौ अष्टसंख्यकाः 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः परतैर्थिकमान्यतारूपाः 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ताः 'तं जहा' तद्यथा—ता एव क्रमेणाह—'तत्थेगे' इत्यादि। 'तत्थ' तत्र तेषु अष्टसु परतीर्थिकेषु मध्ये 'एगे' एके केचन प्रथमाः परतीर्थिकाः 'एवं' एवम्—वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः—कथयन्ति—'ता' तावत् 'पुरत्थिमिल्लाओ' लोयंताओ' पौरस्त्यात् पूर्वदिग्भागवर्तिनः लोकान्तात् लोकान्तिमभागात् ऊर्ध्वमितिशेषः पूर्वस्यां दिशीत्यर्थः 'मरीची' इति मरीचिसंघातः किरणसमूह इत्यर्थः 'आगासंसि उत्तिट्ठइ' आकाशे उत्तिष्ठति उत्पद्यते एतेनायमाशयः—नैतद्विमानं, न रथः, न च कोऽपि देवता रूपः सूर्यः किन्तु तथाविधलोकस्वाभाव्यात् एष किरणसङ्घात एव वर्तुल गोलाकारः प्रतिदिनं पूर्वे दिग्विभागे प्रातराकाशे समुत्पद्यते येन सर्वत्र प्रकाशः प्रसरति। 'से णं' स खलु एवम्भूतः मरीचिसंघातः समुत्पन्नः सन् 'इमं' इमं दृश्यमानं 'लोयं' लोकं तिर्यक् लोकं 'तिरियं करेइ' तिर्यक्कू करोति तिर्यक् परिभ्रमन् एष मरीचिसंघात इमं तिर्यग्लोकं प्रकाशयतीतिभावः, 'करित्ता' कृत्वा तिर्यक् कृत्वा च 'पच्चत्थिमिल्लंसि लोयंतंसि' पाश्चात्ये लोकान्ते पश्चिमदिग्वर्त्तिलोकान्तिमभागे 'सायं' सन्ध्यासमये 'विद्धंसइ' विध्वंसते तथाविधलोकानुभावात्तत्राकाश एव ध्वंसमुपयाति विलीनो भवतीति भावः। एवं सकलकालमेव भवतीति, अत्रोपसंहारमाह—'एगे एवमाहंसु' एके प्रथमास्तीर्थान्तरीयाः एवं—पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः—कथयन्तीति। एषा प्रथमा प्रतिपत्तिः।१॥ द्वितीयामाह—'एगे पुण' एके केचन द्वितीया पुनः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहंसु' आहुः कथयन्ति। किं कथयन्तीत्याह-'ता' इति वाक्यालङ्कारे 'पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ' पौरस्त्यात् लोकान्तात् पुर्वदिग्विभागात् उर्ध्वं 'पाओ' प्रातः 'सूरिए' सूर्यः लोकप्रसिद्धो देवतारूपः 'आगासंसि उत्तिट्ठइ' आकाशे उत्तिष्ठति उदेति तथाविधलोकस्वाभाव्यात् आकाशे उत्पद्यते 'से' स खलु उत्पन्नः सन् सूर्यः 'इमं लोयं' इमं तिर्यगलोकं 'तिरियं करेइ' तिर्यक्करोति तिर्यक् परिभ्रमन् प्रकाशयतीति भावः।' करित्ता' कृत्वा तिर्यक् कृत्वा 'पच्चत्थिमिल्लंसि लोयंतंसि' पाश्चात्ये लोकान्ते पश्चिमायां दिशि 'सायं' सायं सन्ध्याकाले 'सूरिए' सूर्यः 'आगासंसि' आकाशे एव 'विद्धंसइ' विध्वंसते विलीयते इति भावः। उपसंहारमाह—'एगे एवमाहंसु' एके केचन पूर्वप्रदर्शिता द्वितीयप्रतिपत्तिवादिनः एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः कथयन्ति। इति द्वितीया प्रतिपत्तिः।२॥ अथ तृतीयां प्रतिपत्तिमाह—'एगे पुण' एके पुनः तृतीयास्तीर्थान्तरीयाः 'एवमाहंसु' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः—कथयन्ति, तदेव प्रदर्श्यते 'ता' तावत् 'पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ' पौरस्त्यात् लोकान्तात् उर्ध्वं 'पाओ' प्रातः 'सूरिए' सूर्यः देवतारूपः तथाविध पुराणशास्त्रप्रसिद्धः सदावस्थायी 'आगासंसि उत्तिट्ठइ' आकाशे उत्तिष्ठति 'से णं' स खलु उत्थितः सन् 'इमं लोयं तिरियं करेइ' इमं मनुष्यलोकं तिर्यक् करोति 'करित्ता' कृत्वा च 'पच्चत्थिमिल्लंसि लोयंतंसि' पाश्चात्ये लोकान्ते—लोक

चरमभागे 'सायं' सायं सन्ध्याकाले 'आगासं अणुपविसइ' आकाशमनुप्रविशति 'अणुपविसित्ता' अनुप्रविश्य 'अहे पडियागच्छति' अधः अधोभागेन प्रत्यागच्छति अधोलोकं प्रकाशयन् प्रतिनिवर्त्तते। एषां मते पृथिवी गोलाकाराऽत एव लोकोऽपि गोलाकार एव। इदं च मतं तीर्थान्तरीयेषु सम्प्रतिकालेऽपि विद्यते ततस्तद्गतपुराणशास्त्रादेव सम्यक् ज्ञातव्यम्॥ अस्मिन् मतेऽपि त्रयो भेदा वर्त्तन्ते, तथाहि—एके मन्यन्ते सूर्य आकाशे प्रातरुद्गच्छति १, अन्ये कथयन्ति पर्वतशिरसि उद्गच्छति २, अपरे मन्यन्ते समुद्रादुत्तिष्ठति।३। अत्र तु प्रथमानां मतमुपन्यस्तमिति। 'पडियागच्छित्ता' प्रत्यागत्य अधोलोकात्प्रतिनिवर्त्य 'पुणरवि' पुनरपि यथा पूर्वदिने तथैव भूयोऽपि 'अवरभूपुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ' अपरभूपौरस्त्यात् लोकान्तात् पृथिव्या अधोभागात् विनिर्गत्य—पूर्वदिग्वर्तिलोकान्ताद् ऊर्ध्वम् 'पाओ' प्रातः प्रभातकाले 'सूरिए' सूर्यः 'आगासंसि' आकाशे 'उत्तिट्ठति' उत्तिष्ठति उदयमेति। एवमेव सर्वदैव—इयं व्यवस्था वर्त्तते तथाविधलोकस्व भाव्यात्। उपसंहारे—'एगे' एके तृतीयाः परतीर्थिका 'एवमाहंसु' एवं पूर्वोक्तरीत्या आहुः—कथयन्तीति तृतीया प्रतिपत्तिः।३। अथ चतुर्थीमाह—'एगे पुण' एके पुनः चतुर्थाः 'एवमाहंसु' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः कथयन्ति, तथाहि—'ता' तावत् पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ' पौरस्त्यात् लोकान्तात् 'पाओ' प्रातः 'सूरिए' सूर्यः देवतारूपः 'पुढवीकायंसि' पृथिवीकाये पृथिकायमध्ये उदयाचलाभिधपर्वतशिरसीत्यर्थः 'उत्तिट्ठइ' उत्तिष्ठति उदयमेति 'से णं' स खलु सूर्यः 'इमं लोयं तिरियं करेइ' इमं लोकं मनुष्यलोकं तिर्यक्करोति तिर्यक् परिभ्रमन् मनुष्यलोकं प्रकाशयतीत्यर्थः। एवमग्रेऽप्यर्थो वाच्यः। 'करित्ता' कृत्वा तिर्यक् कृत्वा 'पच्चत्थिमिल्लंसि लोयंतंसि' पाश्चात्ये लोकान्ते 'सायं' सायं सन्ध्यासमये 'सूरिए' सूर्यः 'पुढवीकायंसि' पृथिवीकाये अस्ताचलाभिधपर्वतशिरसि 'विद्धंसइ' विध्वंसते विलयमेति। एवं प्रतिदिनं भवति एवंविधजगत्स्थितिस्वाभाव्यादिति। उपसंहारः—'एगे' एके चतुर्थाः 'एवं' एवम् पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्तीति चतुर्थी प्रतिपत्तिः।४। अथ पञ्चमीं प्रतिपत्तिमाह—'एगे पुण' एके पञ्चमाः पुनः 'एवं' वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः—कथयन्ति—'ता' तावत् 'पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ' पौरस्त्याल्लोकान्तात् उर्ध्वं 'पाओ' प्रातः 'सूरिए' सूर्यः देवतारूपः 'पुढवीकायंसि' पृथिवीकाये 'उत्तिट्ठइ' उत्तिष्ठति उदयाचलपर्वतशिरसि उद्गच्छति 'से णं' स खलु 'इमं लोयं' इमं मनुष्यलोकं 'तिरियं करेइ' तिर्यक् करोति 'करित्ता' तिर्यक् कृत्वा 'पच्चत्थिमिल्लंसि लोयंतंसि' पाश्चात्ये लोकान्ते 'सायं' सन्ध्याकाले 'सूरिए' सूर्यः 'पुढवीकायंसि' पृथिवीकाये अस्ताचलपर्वतमस्तके 'अणुपविसइ' अनुप्रविशति 'अणुपविसित्ता' अनुप्रविश्य 'अहे' अधः अधोभागवर्त्तिनं लोकं प्रकाशयन् 'पडियागच्छइ' प्रत्यागच्छति प्रतिनिवर्त्तते 'पडियागच्छित्ता' प्रत्यागत्य 'पुणरवि' पुनरपि द्वितीयदिवसे भूयो-

ऽपि 'अवरभूपुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ' अपरभूपौरस्त्यात् लोकान्तात् अधः पृथिवीसम्बन्धिपूर्वदिग्भागात् 'पाओ' प्रातः 'सूरिए' सूर्यः 'पुढवीकायंसि' पृथिवीकाये पुनरुदयाचलपर्वतमस्तके 'उत्तिट्ठइ' उत्तिष्ठति उदयमेति उपसंहारमाह—'एगे' एके पञ्चमाः परतीर्थिका 'एवं' पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्तीति पञ्चमी प्रतिपत्तिः ।५। अथ षष्ठीमाह—'एगे पुण' एके केचन षष्ठमतवादिनः पुनः 'एवमाहंसु' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः कथयन्ति, तदेवाह—'ता' तावत् 'पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ' पौरस्त्यात् लोकान्तात् 'पाओ' प्रातः 'सूरिए' सूर्यः 'आउकायंसि' अप्काये पूर्वदिग्वर्त्तिसमुद्रे 'उत्तिट्ठइ' उत्तिष्ठति 'से णं' स खलु सूर्यः 'इमं लोयं' इमं लोकं मनुष्यलोकं 'तिरियं करेइ' तिर्यक् करोति 'करित्ता' कृत्वा 'पच्चत्थिमिल्लंसि लोयंतंसि' पाश्चात्ये लोकान्ते 'सायं' सायं सन्ध्यासमये 'आउकायंम्मि' अप्काये पश्चिमदिग्वर्त्तिसमुद्रे विद्धंसइ' विध्वंसते ध्वंसमेति । उपसंहारः 'एगे' एके षष्ठाः षष्ठप्रतिपत्तिवादिनः 'एवमाहंसु' एवं पूर्वोक्तरीत्या आहुः कथयन्तीति षष्ठी प्रतिपत्तिः ।६। अथ सप्तमीमाह—'एगे पुण' एके सप्तमाः पुन 'एवमाहंसु' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः कथयन्ति, किं कथयन्तीत्याह—'ता' तावत् पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ' पौरस्त्यात् लोकान्तात् ऊर्ध्वं 'पाओ' प्रातः 'सूरिए' सूर्यः 'आउकायंसि' अप्काये पूर्वसमुद्रे उत्तिट्ठइ' उत्तिष्ठति उद्गच्छति 'से णं' स खलु उद्गतः सन् 'इमं लोयं' इमं लोकं 'तिरियं करेइ' तिर्यक् करोति प्रकाशयति 'करित्ता' कृत्वा 'पच्चत्थिमिल्लंसि लोयंतंसि' पाश्चात्ये लोकान्ते 'सायं' सायं सन्ध्यायां 'सूरिए' सूर्यः 'आउकायंसि' अप्काये पश्चिमीयसमुद्रे 'पविसइ' प्रविशति 'पविसित्ता' प्रविश्य 'अहे' अधः अधोलोके गत्वा तं प्रकाश्य 'पडियागच्छइ' प्रत्यागच्छति पुनरायाति 'पडियागच्छित्ता' प्रत्यागत्य अधोभागात्पुनरागत्य 'पुणरवि' पुनरपि द्वितीयदिने 'अवरभूपुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ' अपरभूपौरस्त्यात् लोकान्तात अधः पृथिव्याः पूर्वदिग्भागात् 'पाओ' प्रातः 'सूरिए' सूर्यः आउकायंसि' अप्काये पूर्वसमुद्रे 'उत्तिट्ठइ' उत्तिष्ठति उपसंहरमाह—'एगे' एके पूर्ववर्णिताः सप्तमाः परतीर्थिकाः 'एवमाहंसु' एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः कथयन्तीति सप्तमी प्रतिपत्तिः ।७। अथाष्टमीं प्रदर्शयति—'एगे पुण' एके अष्टमाः पुनः 'एवमाहंसु' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः कथयन्ति 'ता' तावत् 'पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ' पौरस्त्यात् लोकान्तात् प्रथमं 'बहुइं जोयणाइं' बहूनि योजनानि, ततः क्रमशः 'बहुइं जोयणसयाइं' बहूनि योजनशतानि, तदनु पुनः क्रमेण 'बहुइं जोयणसहस्साइं' बहूनि योजनसहस्राणि 'उड्ढं दूरं' ऊर्ध्वं दूरम्—ऊर्ध्वत्वेन दूरम् 'उप्पइत्ता' उत्पत्य उपरि गत्वा 'एत्थ णं' अत्र खलु 'पाओ' प्रातः प्रभातसमये 'सूरिए' सूर्यः देवतारूपः 'आगासंसि'

आकाशे पूर्वदिगाकाशभागे 'उत्तिट्ठइ' उत्तिष्ठति उदयमेतिः 'से णं' स उदितः सन् खलु 'इमं' इमं प्रसिद्धं 'दाहिणड्ढं लोयं' दक्षिणार्द्धं दक्षिणदिक्स्थितमर्द्धं लोकं 'तिरियं करेइ' तिर्यक् करोति स्वतेजसा प्रकाशयति 'करित्ता' कृत्वा दक्षिणार्द्धलोकं प्रकाश्य 'उत्तरड्ढलोयं' उत्तरार्द्धलोकम् उत्तरदिक् स्थितं लोकं 'तमेव राओ' तस्यामेव रात्रौ करोति 'दक्षिणार्द्धे दिनसद्भावे उत्तरार्धे रात्रेरवश्यम्भावात् 'से णं' स खलु सूर्यः तिर्यक् परिभ्रमन् 'इमं उत्तरड्ढलोयं' इममुत्तरदिक्स्थितं लोकार्द्धं 'तरियं करेइ' तिर्यक् करोति 'करित्ता' कृत्वा पुनः 'दाहिणड्ढलोयं' दक्षिणार्द्धलोकं दक्षिणदिग्भवमर्द्धं लोकं 'तमेव राओ' तस्यामेव रात्रौ करोति उत्तरार्द्धे दिनसत्वे दक्षिणार्द्धे रात्रिसद्भावात् । एवं 'से णं' स खलु सूर्यः 'इमाइं दाहिणुत्तरड्ढलोयाइं' इमौ दक्षिणोत्तरार्द्धलोकौ दक्षिणदिक्स्थितमर्द्धं लोकम् उत्तरदिक्स्थितमर्द्धं लोकं चेति द्वावपि लोकौ 'तिरियं करित्ता' तिर्यक् कृत्वा पुनः 'पुरत्थिमिल्लाओ लोयंताओ' पौरस्त्यात् लोकान्तात् पूर्ववदेव "बहूइं जोयणाइं' बहूनि योजनानि 'बहूइं जोयणसयाइं' बहूनि योजनशतानि 'बहूइं जोयणसहस्साइं' बहूनि योजनसहस्राणि 'उड्ढंदूरं' ऊर्ध्वं दूरं उर्ध्वत्वेन दूरम् 'उप्पइत्ता' उत्पत्य उपरिगत्वा 'एत्थ णं' अत्र खलु अस्मिन् स्थाने 'पाओ' प्रातः प्रभातकाले 'सूरिए' सूर्यः 'आगासंसि' आकाशे 'उत्तिट्ठइ' उत्तिष्ठति उद्गच्छति । उपसंहारमाह—'एगे' एके अष्टमाः परतीर्थिकाः 'एवमाहंसु' एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः कथयन्तीत्यष्टमी प्रतिपत्तिः ।८।

एवमष्टापि प्रतिपत्तीः प्रदर्श्य भगवान् स्वमतं प्रदर्शयति—'वयं पुण' इत्यादि ।

'वयं पुण' वयं पुनः अत्र पुनः शब्दः 'तु' इत्यस्यार्थवाचकः, तेन वयं तु 'एवं' वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयामो' वदामः कथयामः, तदेवाह 'ता' इत्यादि 'ता' तावत् 'जंबुद्दीवस्स' जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य मध्यजम्बूद्वीपस्य 'पाईण पडीणायय—उदीणदाहिणाययाए' प्राचीप्रतीच्यायतोदीचीदक्षिणायतया जीवया दवरिकया 'मंडलं' मण्डलं सूर्यमण्डलं 'चउव्वीसएणं' चतुर्विंशतिकेन शतेन चतुर्विंशत्यधिकैकशतेन (१२४) छेत्ता' छित्वा विभज्य मण्डलस्य चतुर्विंशत्यधिकैकशतसंख्यकान् भावान् परिकल्प्य तन्मण्डलं पुनः पूर्वोक्तजीवया चत्वारो भागाः क्रियन्ते दक्षिणपूर्वोत्तरपश्चिमरूपाः अतस्तत्राह—'दाहिणपुरत्थिमिल्लंसि' दक्षिण—पौरस्त्ये, 'उत्तरपच्चत्थिमिल्लंसि' उत्तरपौरस्त्ये च एतद्रूपे 'चउब्भागमंडलंसि' चतुर्भागमण्डले मण्डलचतुर्भागे एकत्रिंशत्प्रमाणरूपे 'इमीसे' अस्याः शास्त्रप्रसिद्धायाः 'रयणप्पभाए पुढवीए' रत्नप्रभायाः पृथिव्याः 'बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ' बहुसमरमणीयात् भूमिभागात् रत्नप्रभापृथिवीसमतलभागात् 'अट्ठजोयणसयाइं' अष्ट योजनशतानि—अष्टशतसंख्यकयोजनानि; 'उड्ढं' ऊर्ध्वं उपरि 'उप्पइत्ता' उत्पत्य—गत्वा रत्नप्रभापृथिवीसमतलभागादुपरि अष्टशतयोजनातिक्रमणानन्तरमित्यर्थः 'एत्थ णं' अत्र खलु अस्मिन् स्थाने 'पाओ' प्रातः 'दुवे

'सूरिया' द्वौ सूर्यौ 'उच्चिट्ठंति' उत्तिष्ठतः उद्गच्छतः, तत्रैको भारतः सूर्यो दक्षिणपौरस्त्ये मण्डलचतुर्भागे, अपर ऐरवतः सूर्यश्च उत्तरपौरस्त्ये मण्डलचतुर्भागे उद्गच्छति, एवं क्रमेण द्वावपि सूर्यौ तत्र तत्र स्थाने उदयं प्राप्नुत इतिभावः 'ते णं, ता खलु द्वौ सूर्यौ यथाक्रमम् 'इमाइं' इमौ 'दाहिणुत्तराइं' दक्षिणोत्तरौ जंबुदीवभागाइं' जम्बद्वीपभागौ 'तिरियं करेंति' तिर्यक् कुरुतः प्रकाशयतः। अयमाशयः–दक्षिणपौरस्त्ये मण्डलचतुर्भागे भारतः सूर्य उद्गत्य तिर्यक् परिभ्रमन् मेरोर्दक्षिणभागं प्रकाशयति, उत्तरपाश्चात्ये मण्डलचतुर्भागे ऐरवतः सूर्य उद्गत्य तिर्यक् परिभ्रमन् मेरोरुत्तरभागं प्रकाशयतीति, 'द्वीकरित्ता' कृत्वा जम्बूद्वीपस्य दक्षिणोत्तरभागौ प्रकाश्य 'पुरत्थिमपच्चत्थिमाइं' पौरस्त्यपाश्चात्यौ 'जंबुदीवभागाइं' जम्बूद्वीपभागौ जम्बूद्वीपस्य पूर्वपश्चिमभागौ पूर्वपश्चिमभागद्वयं 'तमेव राओ' तस्यामेव रात्रौ कुरुतः तत्तद्दिवसस्य रात्रिभागौ कुरुतः जम्बूद्वीपस्य दक्षिणोत्तरभागयोः सूर्यद्वयस्य संचरणसमये पूर्वपश्चिमभागे रात्रिर्भवति, तदा नैकोऽपि सूर्य. पूर्वभागं पूर्वपश्चिमभागं वा प्रकाशयितुं शक्यतेऽतस्तदा पूर्वपश्चिमजम्बूद्वीपभागे रात्रि र्भतीति भावः। द्वौ सूर्यौ दक्षिणोत्तरभागयोस्तिर्यक्करणानन्तरं पूर्वपश्चिमभागौ तिर्यक् कुरुत इतिक्रमप्रदर्शनार्थं 'करित्ता' इत्युच्यते। पुनश्च 'ते णं' तौ खलु द्वावपि सूर्यौ दक्षिणोत्तरभागदिवससमाप्त्यनन्तरम् 'इमाइं' इमौ प्रसिद्धौ 'पुरत्थिमपच्चत्थिमाइं पौरस्त्यपाश्चात्यौ पूर्वपश्चिमरूपौ 'जंबुदीवभागाइं' जम्बूद्वीपभागौ 'तिरियं करेंति' तिर्यक् कुरुतः पूर्वपश्चिमभागौ प्रकाशयतः। अयं भावः–मेरोरुत्तरभागे ऐरवतः सूर्यस्तिर्यक् परिभ्रम्य तत्पश्चात् मेरोरेव पूर्वदिशि तिर्यक्परिभ्रमति, भारतः सूर्यश्च पूर्वं मेरोर्दक्षिणभागे तिर्यक्परिभ्रम्य तत्पश्चात् मेरोः पश्चिमभागे तिर्यक्परिभ्रमतीति। 'करिता' कृत्वा जम्बूद्वीपपूर्वपश्चिमभागौ तिर्यक् कृत्वेत्यर्थः 'दाहिणुत्तराइं' दक्षिणोत्तरौ 'जंबुदीवभागाइं' जम्बूद्वीपभागौ जम्बूद्वीपस्य दक्षिणभागम् उत्तरभागं च 'तामेव राओ' तस्यामेव रात्रौ कुरुतः। अयं भावः–यदा द्वौ सूर्यौ क्रमेण.पूर्वपश्चिमभागौ प्रकाशयतस्तदा दक्षिणभागे उत्तरभागे च रात्रिर्भवेत्, सूर्ययोः पूर्वपश्चिमभागसंचरणसमये उत्तरदक्षिणभागयोरेकोऽपि सूर्यः प्रकाशं न करोतीति। एवं 'ते णं' तौ खलु सूर्यौ 'इमाइं' इमौ पूर्वप्रदर्शितौ दाहिणुत्तराइं' दक्षिणोत्तरौ, तथा 'पुरत्थिमपच्चत्थिमाइं य' पौरस्त्यपाश्चात्यौ च 'जंबुदीवभागाइं' जम्बूद्वीपभागौ 'तिरियं करेंति' तिर्यक् कुरुतः प्रकाशयतः 'करित्ता' कृत्वा जम्बूद्वीपस्य दक्षिणोत्तरभागौ पूर्वपश्चिमभागौ च क्रमेण प्रकाश्य 'जंबुदीवस्स दीवस्स' जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य 'पाईणपडिणायय–'उदीचीणदाहिणाययाए' प्राची प्रतीच्यायतोदीचीदक्षिणायतया पूर्वात् पश्चिमपर्यन्तमायतया दीर्घया उत्तरात् दक्षिणपर्यन्तमायतया दीर्घया 'जीवाए' जीवया जीवाः प्रत्यञ्चा तत्सदृशत्वात् जीवा तया जीवया दवरिकयेत्यर्थः 'मंडलं' सूर्यमण्डलं 'चउव्वीसएणं सएणं' चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन 'छेत्ता' विभज्य मण्डलस्य चतुर्विंशत्यधिकसंख्यकान् भागान्

परिकल्प्येत्यर्थः 'दाहिणपुरत्थिमिल्लंसि' दक्षिणपौरस्त्ये तथा 'उत्तरपच्चत्थिमिल्लंसि' उत्तर-पाश्चात्ये च 'चउभागमंडलंसि' चतुर्भागमण्डले मण्डलस्य चतुर्भागे एकत्रिंशद्भागपरिमिते 'इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए' अस्याः शास्त्रप्रसिद्धाया रत्नप्रभायाः पृथिव्याः 'बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ' बहुसमरमणीयात् समतलभूमिभागात् 'अट्ठ जोयणसयाइं' अष्ट योजनशतानि अष्टशतयोजनानि 'उड्ढं' उर्ध्वम् उपरिभागे 'उप्पइत्ता' उत्पत्य गत्वा उपर्यष्टशतयोजनगमनानन्तरं य आकाशभागो वर्त्तते 'एत्थ णं' अत्र खलु 'पाओ' प्रातः 'दुवे सूरिया' द्वौ सूर्यौ, तत्र यो भारतः सूर्यः स उत्तरपश्चिममण्डलचतुर्भागे, ऐरवतसूर्यश्च दक्षिणपौरस्त्यगतमण्डल चतुर्भागे 'आगासंसि' आकाशे उत्तिट्ठंति' उत्तिष्ठतः स्वस्वक्रमेण उदयमासादयतः ।

पूर्वस्मिन्नहोरात्रे य उत्तरभागं प्रकाशितवान् स दक्षिणपौरस्त्ये दक्षिणपूर्वदिग्गतमण्डल-चतुर्भागे उदयमेति, यश्च दक्षिणभागं प्रकाशितवान् स उत्तरपश्चिमदिग्गतमण्डलचतुर्भागे उदयमासादयति सर्वकालं, तथाविधजगत्स्वाभाव्यादिति ।।सू० १ ।।

।। इति द्वितीयस्य प्राभृतस्य प्रथमं प्राभृतप्राभृतं सम्पूर्णम् ।। २-१ ।।

गतं द्वितीयस्य मूलप्राभृतस्य प्रथमं प्राभृतप्राभृतम्, तत्र भरतैरवतसूर्ययोस्तिर्यक् परिभ्रमणवक्तव्यता प्रोक्ता । साम्प्रतं द्वितीयं प्राभृतप्राभृतं प्रारभ्यते, अस्यायमर्थाधिकारः-'कथं सूर्यौ मण्डलान्मण्डलान्तरं संक्रामति' इत्येतद्विषयकं प्रथमं सूत्रमाह-'ता कहं ते मंडलाओ मंडलं इत्यादि ।

मूलम्— ता कहं ते मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए चारं चरइ आहिएति वएज्जा, तत्थ खलु इमाओ दुवे पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-तत्थेगे एवमाहंसु-ता मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए भेयघाएणं संकामइ, एगे एवमाहंसु ।१। एगे पुण एवमाहंसु-ता मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए कण्णकलं निव्वेढेइ, एगे एवमाहंसु ।२।

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु-ता मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए भेयघाएणं संकामइ तेसि णं अयं दोसे ता जेणंतरेणं मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए भेयघाएणं संकमइ एवइयं च णं अद्धं पुरओ न गच्छइ, पुरओ, अगच्छमाणे मंडलकालं परिहवेइ, तेसि णं अयं दोसे ।१। तत्थ णं जे ते एवमाहंसु ता मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए कण्णकलं णिव्वेढेइ, तेसि णं अयं विसेसे-ता जेणंतरेणं मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए कण्णकलं णिव्वेढेइ, एवइयं च णं अद्धं पुरओ गच्छइ, पुरओ गच्छमाणे मंडलकालं ण परिहवेइ, तेसि णं अयं विसेसे ।२। तत्थ जे ते एवमाहंसु-मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए कण्णकलं णिव्वेढेइ, एएणं णएणं णेयव्वं णो चेव णं इयरेणं ।।सु० १।।

।। वितियस्स पाहुडस्स वितियं पाहुडपाहुडं समत्तं ।।२-२।।

छाया—तावत् कथं ते मण्डलात् मण्डलं संक्रामन् सूर्य चारं चरति आख्यात इति वदेत् तत्र खलु इमे द्वे प्रतिपत्ती प्रज्ञप्ते, तद्यथा-तत्रैके एवमाहुः-तावत् मण्डलात् मण्डलं संक्रामन् सूर्यः भेदघातेन संक्रामति, एके एवमाहुः ।१। एके पुनः एवमाहुः—तावत् मण्डलात् मण्डलं संक्रामन् सूर्य कर्णकलां निर्वेष्टयति, एके एवमाहुः ।२। तत्र खलु ये ते एवमाहुः-तावत् मण्डलात् मण्डलं संक्रामन् सूर्यः भेदघातेन संक्रामति तेषां खलु अयं दोषः-तावत् येनान्तरेण मण्डलात् मण्डलं संक्रामन् सूर्यः भेदघातेन संक्रामति, एतावती च खलु अद्धां पुरतः न गच्छति, पुरतः अगच्छन् मण्डलकालं परिभवति, तेषां खलु अयं दोषः ।१। तत्र खलु ये ते एवमाहुः-तावत् मण्डलात् मण्डलं संक्रामन् सूर्यः कर्ण कलां निर्वेष्टयति, तेषां खलु अयं विशेषः तावत् येनान्तरेण मण्डलात् मण्डलं संक्रामन् सूर्यः कर्णकलां निर्वेष्टयति, एतावती च खलु अद्धां पुरतो गच्छति, पुरतः गच्छन् मण्डल कालं न परिभवति, तेषां खलु अयं विशेषः ।२। तत्र ये ते एवमाहुः-मण्डलात् मण्डलं संक्रामन् सूर्यः कर्णकलां निर्वेष्टयति, एतेन नयेन ज्ञातव्यम् नो चैव खलु इतरेण ॥सू०१॥

॥द्वितीस्य प्राभृतस्य द्वितीयं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥२-२॥

व्याख्या—'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण हे भगवान् ? 'ते' ते तव भवन्मते 'मंडलाओ मंडलं' मण्डलात् एकस्मात् मण्डलात् 'मंडलं' अपरं मण्डलं 'संकममाणे' संक्रामन् 'सूरिए' सूर्यः 'चारं चरइ' चारं चरति परिभ्रमति केन प्रकारेण सूर्यश्चारं चरन् 'आहितेति वदेज्जा' आख्यातः कथितः इति वदेत् कथयतु हे भगवन् ? अत्र हि सूर्यस्य एकस्मान्मण्डलादन्यस्मिन् मण्डले संक्रमणमेव वक्तव्यमस्ति, अतस्तदेव प्रधानं कृत्वा वाक्यस्य भावार्थभावना कर्त्तव्या । भगवानाह-हे गौतम 'तत्थ' तत्र एवंविधसंक्रमणविषये खलु 'इमे' इमे वक्ष्यमाणस्वरूपे 'दुवे' द्वे 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्ती परतीर्थिकमान्यतारूपे 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ते कथिते 'तं जहा' तद्यथा ते द्वे प्रतिपत्ती यथा-तदेव दर्शयति-'तत्थ' तत्र मण्डलान्मण्डलसंक्रमणविषये 'एगे' एके केचन परमतवादिनः 'एवमाहंसु' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः—कथयन्ति । किं कथयन्तीत्याह-'ता मंडलाओ मंडलं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'मंडलाओ मंडलं' मण्डलात् यत्रस्थितस्तस्मात् मण्डलात् मण्डलम्—अग्रेतनमपरमण्डलाभिमुखं 'संकममाणे' संक्रामन् गतिं कुर्वन् 'सूरिए' सूर्यः 'भेयघाएणं' भेदघातेन, तत्र भेदः प्रतिमण्डलस्यापान्तरालभागः, तत्र घातः गमनं तेन मण्डलस्य नाम मण्डलाऽपान्तरालगमनपूर्वकमित्यर्थ· 'संकामइ' संक्रामति स्वचारगत्या गच्छति, विवक्षितं मण्डलं पूरयित्वा तदनन्तरमपान्तरालगमनेनापरं द्वितीयं मण्डलं संक्रम्य च तत्र मण्डले चारं चरति, उपसंहारमाह-'एगे' एके पूर्वोक्ताः प्रथमास्तीर्थान्तरीयाः 'एवं' पूर्वप्रदर्शितप्रकारेण आहुः कथयन्तीति प्रथमा प्रतिपत्तिः ।१। अथ द्वितीयां दर्शयति-'एगे पुण' एके द्वितीयाः पुनः 'एवमाहंसु' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः कथयन्ति, तदेवाह-'ता' तावत् 'मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए' मण्डलान्मण्डलं सक्रामन्-सक्रमितुमिच्छन् सूर्यः यत्र गन्तुमिच्छति

परिकल्प्येत्यर्थः 'दाहिणपुरत्थिमिल्लंसि' दक्षिणपौरस्त्ये तथा 'उत्तरपच्चत्थिमिल्लंसि' उत्तरपाश्चात्ये च 'चउभागमंडलंसि' चतुर्भागमण्डले मण्डलस्य चतुर्भागे एकत्रिंशद्भागपरिमिते 'इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए' अस्याः शास्त्रप्रसिद्धाया रत्नप्रभायाः पृथिव्याः 'बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ' बहुसमरमणीयात् समतलभूमिभागात् 'अट्ठ जोयणसयाइं' अष्ट योजनशतानि अष्टशतयोजनानि 'उड्ढं' उर्ध्वम् उपरिभागे 'उप्पइत्ता' उत्पत्य गत्वा उपर्यष्टशतयोजनगमनानन्तरं य आकाशभागो वर्त्तते 'एत्थ णं' अत्र खलु 'पाओ' प्रातः 'दुवे सूरिया' द्वौ सूर्यौ, तत्र यो भारतः सूर्यः स उत्तरपश्चिममण्डलचतुर्भागे, ऐरवतसूर्यश्च दक्षिणपौरस्त्यगतमण्डल चतुर्भागे 'आगासंसि' आकाशे उत्तिट्ठंति' उत्तिष्ठतः स्वस्वक्रमेण उदयमासादयतः ।

पूर्वस्मिन्नहोरात्रे य उत्तरभागं प्रकाशितवान् स दक्षिणपौरस्त्ये दक्षिणपूर्वदिग्गतमण्डलचतुर्भागे उदयमेति, यश्च दक्षिणभागं प्रकाशितवान् स उत्तरपश्चिमदिग्गतमण्डलचतुर्भागे उदयमासादयति सर्वकालं, तथाविधजगत्स्वाभाव्यादिति ॥सू० १ ॥

॥ इति द्वितीयस्य प्राभृतस्य प्रथमं प्राभृतप्राभृतं सम्पूर्णम् ॥ २-१ ॥

गतं द्वितीयस्य मूलप्राभृतस्य प्रथमं प्राभृतप्राभृतम्, तत्र भरतैरवतसूर्ययोस्तिर्यक् परिभ्रमणवक्तव्यता प्रोक्ता । साम्प्रतं द्वितीयं प्राभृतप्राभृतं प्रारभ्यते, अस्यायमर्थाधिकारः-'कथं सूर्यौ मण्डलान्मण्डलान्तरं संक्रामति' इत्येतद्विषयकं प्रथमं सूत्रमाह-'ता कहं ते मंडलाओ मंडलं इत्यादि ।

मूलम्—ता कहं ते मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए चारं चरइ आहिएति वएज्जा, तत्थ खलु इमाओ दुवे पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-तत्थेगे एवमाहंसु-ता मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए भेयघाएणं संकामइ, एगे एवमाहंसु ।१। एगे पुण एवमाहंसु-ता मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए कण्णकलं निव्वेढेइ, एगे एवमाहंसु ।२।

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु-ता मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए भेयघाएणं संकामइ तेसि णं अयं दोसे ता जेणंतरेणं मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए भेयघाएणं संकमइ एवइयं च णं अद्धं पुरओ न गच्छइ, पुरओ, अगच्छमाणे मंडलकालं परिहवेइ, तेसि णं अयं दोसे ।१। तत्थ णं जे ते एवमाहंसु ता मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए कण्णकलं णिव्वेढेइ, तेसि णं अयं विसेसे-ता जेणंतरेणं मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए कण्णकलं णिव्वेढेइ, एवइयं च णं अद्धं पुरओ गच्छइ, पुरओ गच्छमाणे मंडलकालं ण परिहवेइ, तेसि णं अयं विसेसे ।२। तत्थ जे ते एवमाहंसु-मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए कण्णकलं णिव्वेढेइ, एएणं णएणं णेयव्वं णो चेव णं इयरेणं ॥सु० १॥

॥ वितियस्स पाहुडस्स वितियं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥२-२॥

छाया—तावत् कथं ते मण्डलात् मण्डलं संक्रामन् सूर्यः चारं चरति आख्यात इति वदेत् तत्र खलु इमे द्वे प्रतिपत्ती प्रज्ञप्ते, तद्यथा-तत्रैके एवमाहुः-तावत् मण्डलात् मण्डलं संक्रामन् सूर्यः भेदघातेन संक्रामति, एके एवमाहुः ।१। एके पुनः एवमाहुः—तावत् मण्डलात् मण्डलं संक्रामन् सूर्य कर्णकलां निर्वेष्टयति, एके एवमाहुः ।२। तत्र खलु ये ते एवमाहुः-तावत् मण्डलात् मण्डलं संक्रामन् सूर्यः भेदघातेन संक्रामति तेषां खलु अयं दोषः-तावत् येनान्तरेण मण्डलात् मण्डलं संक्रामन् सूर्यः भेदघातेन संक्रामति, एतावती च खलु अद्धां पुरतः न गच्छति, पुरतः अगच्छन् मण्डलकालं परिभवति, तेषां खलु अयं दोषः ।१। तत्र खलु ये ते एवमाहुः-तावत् मण्डलात् मण्डलं संक्रामन् सूर्यः कर्ण कलां निर्वेष्टयति, तेषां खलु अयं विशेषः तावत् येनान्तरेण मण्डलात् मण्डलं संक्रामन् सूर्यः कर्णकलां निर्वेष्टयति, एतावती च खलु अद्धां पुरतो गच्छति, पुरतः गच्छन् मण्डल कालं न परिभवति, तेषां खलु अयं विशेषः ।२। तत्र ये ते एवमाहुः-मण्डलात् मण्डलं संक्रामन् सूर्यः कर्णकलां निर्वेष्टयति, एतेन नयेन ज्ञातव्यम् नो चैव खलु इतरेण ॥सू०१॥

॥द्वितीस्य प्राभृतस्य द्वितीयं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥२-२॥

व्याख्या—'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण हे भगवान् ? 'ते' ते तव भवन्मते 'मंडलाओ मंडलं' मण्डलात् एकस्मात् मण्डलात् 'मंडलं' अपरं मण्डलं 'संकममाणे' संक्रामन् 'सूरिए' सूर्यः 'चारं चरइ' चारं चरति परिभ्रमति केन प्रकारेण सूर्यश्चारं चरन् 'आहितेति वदेज्जा' आख्यातः कथितः इति वदेत् कथयतु हे भगवन् ? अत्र हि सूर्यस्य एकस्मान्मण्डला-दन्यस्मिन् मण्डले संक्रमणमेव वक्तव्यमस्ति, अतस्तदेव प्रधानं कृत्वा वाक्यस्य भावार्थभावना कर्त्तव्या । भगवानाह-हे गौतम 'तत्थ' तत्र एवंविधसंक्रमणविषये खलु 'इमे' इमे वक्ष्यमाण-स्वरूपे 'दुवे' द्वे 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्ती परतीर्थिकमान्यतारूपे 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ते कथिते 'तं जहा' तद्यथा ते द्वे प्रतिपत्ती यथा-तदेव दर्शयति—'तत्थ' तत्र मण्डलान्मण्डलसंक्रमण-विषये 'एगे' एके केचन परमतवादिनः 'एवमाहंसु' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः—कथयन्ति । किं कथयन्तीत्याह—'ता मंडलाओ मंडलं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'मंडलाओ मंडलं' मण्डलात् यत्रस्थितस्तस्मात् मण्डलात् मण्डलम्—अग्रेतनमपरमण्डलाभिमुखं 'संकममाणे' संक्रामन् गतिं कुर्वन् 'सूरिए' सूर्यः 'भेयघाएणं' भेदघातेन, तत्र भेदः प्रतिमण्डलस्यापान्तरालभागः, तत्र घातः गमनं तेन मण्डलस्य नाम मण्डलाऽपान्तरालगमनपूर्वकमित्यर्थः 'संकामइ' संक्रामति स्वचारगत्या गच्छति, विवक्षितं मण्डलं पूरयित्वा तदनन्तरमपान्तरालगमनेनापरं द्वितीयं मण्डलं संक्रम्य च तत्र मण्डले चारं चरति, उपसंहारमाह—'एगे' एके पूर्वोक्ताः प्रथमास्तीर्थान्तरीयाः 'एवं' पूर्वप्रदर्शितप्रका-रेण आहुः कथयन्तीति प्रथमा प्रतिपत्तिः ।१। अथ द्वितीयां दर्शयति—'एगे पुण' एके द्वितीयाः पुनः 'एवमाहंसु' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः कथयन्ति, तदेवाह—'ता' तावत् 'मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए' मण्डलान्मण्डलं संक्रामन्—सङ्क्रमितुमिच्छन् सूर्यः यत्र गन्तुमिच्छति

तदधिकृतमग्रेतनं मण्डलं प्रथमक्षणादूर्ध्वमारभ्य कर्णकलां यथास्यात्तथा क्रियाविशेषणमेतत् 'निव्वेढेइ' निर्वेष्टयति मुञ्चति तथा चात्रेयं भावना—भारतो वा ऐरवतो वा सूर्यः स्वस्वस्थाने उदितः सन् अपरमण्डलगतं कर्णं मण्डलस्य प्रथमकोटिभागलक्षणं लक्ष्यीकृत्याधिकृतमण्डलं प्रथमक्षणादुपरि प्रतिक्षणं कलयातिक्रान्तं यथास्यात्तथा निर्वेष्टयतीति द्वितीया प्रतिपत्तिः ।२। अथात्र प्रतिपत्तिद्वये भगवान् वस्तुतत्त्वं प्रदर्शयति—'तत्थ णं' इत्यादि, 'तत्थ णं' तत्र प्रतिपत्तिद्वयमध्ये खलु **'जे ते एवमाहंसु'** ये ते एवमाहुः यत् 'ता' तावत् **मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए'** मण्डलान्मण्डलं संक्रामन् सूर्यः **'भेयघाएणं'** भेदघातेन **'संकामइ'** संक्रामति स्वगत्या गच्छति **'तेसि णं'** तेषां प्रथमप्रतिपत्तिवादिनां खलु मते **'अयं'** अयं वक्ष्यमाणस्वरूपः **'दोसे'** दोषो वर्त्तते, को दोषः ? इति दर्शयति—**'ता जेणंतरेणं'** इत्यादि **'ता'** तावत् **'जेण'** येन कालेन यावत्परिमितं कालमाश्रित्येत्यर्थः **'अंतरेण'** अन्तरेण अपान्तरालेन **'मंडलाओ' मंडलं संकममाणे सूरिए'** मण्डलान्मण्डलं संक्रामन् सूर्यः **'भेयघाएणं'** भेदघातेन-**'संकामइ'** संक्रामतीति यदुक्तं तन्न सम्यक् यतः **'एवइयं च णं अद्धं'** एतावती च खलु अद्धाम् आश्रित्य एतावत्कालेनेत्यर्थः सूर्यः **'पुरओ'** पुरतः अग्रेतने द्वितीये मण्डले **'न गच्छइ'** न गच्छति ! न गन्तुं शक्नोतीत्यर्थः । कथं न गच्छति ? इति प्रदर्श्यते-एकस्मात् मण्डलादपरस्मिन् मण्डले संक्रमणं कुर्वन् सूर्यः यावता कालेनापान्तरालं गच्छति तावत्परिमितकालानन्तरं परिभ्रमितुमिच्छति तदा द्वितीयमण्डलसम्बन्ध्यहोरात्रमध्यात् त्रुटयति ततो द्वितीये परिभ्रमन् तत्पर्यन्ते तावत्परिमितं कालं परिभ्रमितुं न शक्नोति तद्गताहोरात्रस्य परिपूर्णीभूतत्वात्, यतो हि **'पुरक्ते अगच्छमाणे'** पुरतः अगच्छन् द्वितीयमण्डलपर्यन्ते च न गच्छन् **'मंडलकालं'** मण्डलकालं मण्डलपरिभ्रमणकालं यावत्परिमितकालेन परिपूर्णमण्डले भ्रम्यते तत् कालं **'परिहवेइ'** परिभवति—हापयति न्यूनीकरोति तस्य कालस्य हानिरुपजायते, एवं सति सर्वजगत्प्रसिद्ध प्रतिनियताहोरात्रपरिमाणव्याघातः प्रसज्येताऽतो न तेषामिदं मतं समीचीनम् तस्माद्धेतोराह— **'तेसि णं'** तेषां प्रथमानां खलु मते **'अयं'** अयं पूर्वप्रदर्शितः **'दोसे'** दोषोऽस्ति अथ द्वितीयप्रतिपत्तिविषये कथयति **'तत्थ णं जे ते'** इत्यादि । **'तत्थ णं'** तत्र खलु प्रतिपत्ति द्वयमध्ये **'जे ते'** ये ते **'एवमाहंसु'** एवमाहुः—**'ता'** तावत् **'मंडलाओ मंडलं'** मण्डलान्मण्डलं **'संकममाणे सूरिए'** संक्रामन् सूर्यः **'कण्णकलं'** कर्णकलं पूर्वोक्तस्वरूपं यथास्यात्तथा **'निव्वेढेइ'** निर्वेष्टयति अधिकृतमण्डलं मुञ्चति **'तेसि णं'** तेषां खलु **'अयं'** अयं वक्ष्यमाणप्रकारकः **'विसेसे'** विशेषः गुणः अस्ति, तमेवाह—**'ता'** तावत् **'जेणंतरेण'** येन यावत्परिमितेन कालेन अंतरेण—अपान्तरालेन **'मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए'** मण्डलान्मण्डलं संक्रामन् सूर्यः **'कण्णकलं'** कर्णकलं कलयाऽतिक्रान्तं मण्डलस्य प्रथमकोटिभागरूपं कर्णं यथास्यात्तथाऽधि-

कृतमण्डलं 'निव्वेढेइ' निर्वेष्टयति मुञ्चति, 'एवइयं च णं अद्धं' एतावतीं च खलु अद्धां यावत् एतावता कालेनेत्यर्थः 'पुरओ गच्छइ' पुरतो द्वितीयमण्डलपर्यन्ते गच्छति तथा च 'पुरओ गच्छमाणे' पुरतो गच्छन् द्वितीयमण्डलपर्यन्तं प्राप्नुवन् 'मंडलकालं' मण्डलकालं मण्डलापान्तरालसमयं 'न परिहवेइ' न परिभवति न ह्रापयतीति, तथा च अधिकृतमण्डलस्य किल कर्णकलापूर्वकं निर्वेष्टितत्वात अपान्तरालकालोऽधिकृतमण्डलसम्बन्धिन्येवाहोरात्रेऽन्तर्भूतः, एवं च द्वितीयमण्डले सूर्यस्य संक्रमणे सति तद्गतकालस्य मनागपि हानिर्नस्यात् ततो यावता कालेनापान्तरालं गम्यते तावत्प्रमाणेन कालेन सूर्यः पुरतो गच्छति एवं च मण्डलकालं न ह्रापयति–प्रसिद्धेन यावत्परिमितेन कालेन तन्मण्डलं परिसमाप्यं भवेत् तावत्परिमितेन कालेन तन्मण्डलं पूर्णतया समापयति न तु किञ्चिन्मात्रापि मण्डलकालहानिर्भवति ततो जगद्विदितप्रतिनियताहोरात्रपरिमाणे न कोऽपि व्याघातः प्रसज्येत । 'तेसि णं' तेषां खलु द्वितीयानाम् 'अयं' अयं पूर्वप्रदर्शितः 'विसेसे' विशेषः गुणो वर्त्तते । पुनरस्यैव मतस्य समीचीनतां प्रदर्शयति–'तत्थ' इत्यादि, तत्थ' तत्र 'जे ते एवमाहंसु' ये ते एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः कथयन्ति यत्–'मंडलाओ मंडलं संकममाणे सूरिए' मण्डलान्मण्डलं संक्रामन् सूर्यः 'कण्णकलं निव्वेढेइ' कर्णकलां निर्वेष्टयति इति, 'एएणं' एतेन द्वितीयप्रतिपत्तिवादिकथितेन 'णएणं' नयेन-अभिप्रायेण अस्माकं मतेऽपि मण्डलान्मण्डलान्तरसंक्रमणं 'णेयव्वं' ज्ञातव्यम् किन्तु 'नो चेव णं' नैव खलु 'इयरेणं' इतरेण प्रथमप्रतिपत्तिवादिकथितेन, अन्यैर्वा कैश्चित् कथितेन नयेन । नत इदमेव मतं ज्ञातव्यम् इतरमते दोषसद्भावेन अस्यैव मतस्य समीचीनत्वात तीर्थंकरसंमतत्वाच्चेति ॥

॥ इति द्वितीयस्य मूलप्राभृतस्य द्वितीयं प्राभृतप्राभृतं सम्पूर्णम् ॥२–२॥

द्वितीयस्य प्राभृतस्य तृतीयं प्राभृतप्राभृतम् ।

तदेवमुक्तं द्वितीयमूलप्राभृतस्य द्वितीयं प्राभृतप्राभृतम्,

अथ तृतीयमाह अस्यायमर्थाधिकारः—"मण्डले २ प्रतिमुहूर्त्ते सूर्यस्य गतिर्वक्तव्या" इत्येतद्विषयकं सूत्रमाह– 'ता केवइयं' इत्यादि ।

मूलम् ता केवइयं खेत्तं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ ? आहितेति वएज्जा । तत्थ खलु इमाओ चत्तारि पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-तत्थ एगे एवमाहंसु–ता छ छ जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, एगे एवमाहंसु ।१। एगे पुण एवमाहंसु ता पंच पंच जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, एगे एव-

माहंसु ।२। एगे पुण एवमाहंसु—ता चत्तारि चत्तारि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, एगे एवमाहंसु ।३। एगे पुण एवमाहंसु ता छवि पंचवि चत्तारि वि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेण मुहुत्तेणं गच्छइ एगे एवमाहंसु ।४। तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—ता छ छ जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, ते एवमाहंसु—ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, तंसि च णं दिवसंसि एगं जोयणसयसहस्सं अट्ठ य जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते। ता जया णं सूरिए सव्ववाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहन्नए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ, तंसि च णं दिवसंसि बावत्तरिं जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते तया णं छ छ जोयणसहसाइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ ॥१॥

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—ता पंच पंच जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ ते एवमाहंसु—ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ तंसि च णं दिवसंसि नउइजोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते जया णं सव्ववाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ तंसि च णं दिवसंसि सट्ठिं जोयण सहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते तया णं पंच पंच जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ ॥२॥

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु—चत्तारि चत्तारि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ ते एवमाहंसु ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं दिवस-राई तहेव, तंसि च णं दिवसंसि बावत्तरिं जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते, ता जया णं सूरिए सव्ववाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं राइंदिवं तहेव, तंसि च णं दिवसंसि अडयालीसं जोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते, तया णं चत्तारि चत्तारि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ ॥३॥

तत्थ णं जे ते एवमाहंसु छवि पंचवि चत्तारि वि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं

मुहुत्तेणं गच्छइ ते एवमाहंसु ता सूरिए उग्गमणमुहुत्तंसि अत्थमणमुहुत्तंसि य सिग्घगई भवइ तया णं छ छ जोयणसहस्साइं एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, मज्झिमं तावक्खेत्तं समासाएमाणे २ सूरिए मज्झिमगई भवइ तया णं पंच पंच जोयणसहस्साइं एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, मज्झिमं तावक्खेत्तं संपत्ते सूरिए मंदगई भवइ तया णं चत्तारि चत्तारि जोयणसहस्साइं एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ । तत्थ को हेऊ ? त्ति वएज्जा, ता अयण्णं जंबद्दीवे दीवे जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ते । ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता-राइ भवइ, तंसि च णं दिवसंसि एक्काणउइजोयणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते ।

ता जया णं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ तंसि च णं दिवसंसि एगसट्ठिजोगणसहस्साइं तावक्खेत्ते पण्णत्ते तया णं छ वि पंच वि चत्तारि वि जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, एगे एवमाहंसु ।४। सू० १॥

छाया—तावत् कियत्कं क्षेत्रं सूर्यः एकैकेन मुहूर्तेन गच्छति आख्यातम् इति वदेत् तत्र खलु इमाः चतस्रः प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः तद्यथा तत्र एके एवमाहुः-तावत् षट् षड्योजनसहस्राणि सूर्यः एकैकेन मुहूर्तेन गच्छति, एके एवमाहुः ।१। एके पुनः एवमाहुः-तावत् पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, एके एवमाहुः ।२। एके पुनरेवमाहुः तावत् चत्वारि चत्वारि योजनसहस्राणि सूर्यः एकैकेन मुहूर्तेन गच्छति, एके एवमाहुः ।३। एके पुनः एवमाहुः-तावत् षडपि पञ्चापि चत्वार्यपि योजनसहस्राणि सूर्यः एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति ।४।

तत्र खलु ये ते एवमाहुः तावत् षट् षड्योजनसहस्राणि सूर्यः एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, ते एवमाहुः-यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठा प्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, तस्मिंश्च खलु दिवसे एकं योजनशतसहस्रम् अष्टयोजनसहस्राणि तापक्षेत्रं प्रज्ञप्तम् । तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वबाह्यं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो-दिवसो भवति, तस्मिंश्च खलु दिवसे द्वासप्तति योजनसहस्राणि तापक्षेत्रं प्रज्ञप्तम् तदा खलु षट् षड्योजनसहस्राणि सूर्यः एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति ।१।

तत्र खलु ये ते एवमाहुः-तावत् पञ्च पञ्चयोजनसहस्राणि सूर्यः एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, ते एवमाहुः-तावद् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति

तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादश-मुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, तस्मिंश्च खलु दिवसे नवतिं योजनसहस्राणि तापक्षेत्रं प्रज्ञप्तम् । यदा खलु सर्वबाह्यं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठा प्राप्ता अष्टादश-मुहूर्त्ता रात्रिर्भवति जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, तस्मिंश्च खलु दिवसे षष्टि योजनसहस्राणि तापक्षेत्रं प्रज्ञप्तम् तदा खलु पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि सूर्यः एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति ।२।

तत्र खलु ये ते एवमाहुः-तावत् चत्वारि चत्वारि योजनसहस्राणि सूर्यः एकैकेन मुहू-र्त्तेन गच्छति ते एवमाहुः-तावद् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु दिवस-रात्री तथैव, तस्मिंश्च खलु दिवसे द्वासप्तति योजनसहस्राणि ताप-क्षेत्र प्रज्ञप्तम्, तावद् यदा खलु सूर्यः सर्वबाह्यं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा रात्रिन्दिवं तथैव, तस्मिंश्च खलु दिवसे अष्टचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि तापक्षेत्रं प्रज्ञ-प्तम्, तदा खलु चत्वारि चत्वारि योजनसहस्राणि सूर्यः एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति ।३।

तत्र खलु ये ते एवमाहुः-षडपि पञ्चापि चत्वार्यपि योजनसहस्राणि सूर्यः एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति,ते एवमाहुः तावत् सूर्य उद्गममुहूर्ते च अस्तमयनमुहूर्त्ते च शीघ्रगतिर्भवति तदा खलु षट् षड्योजनसहस्राणि एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति। मध्यमं तापक्षेत्रं समासादयन् २ सूर्यः मध्य-मगतिर्भवति तदा खलु पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि एकैकेन मुहूर्तेन गच्छति । मध्यमं ताप-क्षेत्रं संप्राप्तः सूर्यः मन्दगतिर्भवति तदा खलु चत्वारि चत्वारि योजनसहस्राणि एकै-केन मुहूर्त्तेन गच्छति । तत्र को हेतुः ? इति वदेत्—तावद् अयं खलु जम्बूद्वीपो द्वीपः यावत् परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः । तावद् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसम्क्रम्य चारं चरति तदाखलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति तस्मिंश्च खलु दिवसे एकनवतिं योजनसहस्राणि ताप-क्षेत्रं प्रज्ञप्तम् ।

तावद् यदा खलु सूर्यः सर्वबाह्यं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु उत्तमका-ष्ठाप्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तस्मिंश्च खलु दिवसे एकषष्टियोजनसहस्राणि तापक्षेत्रं प्रज्ञप्तम्, तदा खलु षडपि पञ्चापि चत्वार्यपि योजनसहस्राणि सूर्यः एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, एके एवमाहुः ।४॥ सू० १ ॥

व्याख्या—'ता केवइयं' इत्यादि । 'ता' इति तावत् 'केवइयं' कियत्कं कियत्परिमितं 'खेत्तं' क्षेत्रं परिभ्रमणमार्गं 'सूरिए' सूर्यः 'एगमेगेणं' एकैकेन 'मुहुत्तेणं' मुहूर्त्तेन 'गच्छइ' गच्छति ? एतद्विषये हे भगवन् भवता किम् 'आहिए' आख्यातम् ? 'ति वएज्जा' इति वदेत् इति वदतु कथयतु । गौतमेन एवमुक्ते सति भगवान् प्रथमं परमतस्य मिथ्याभावप्रदर्शनाया न्यतैर्थिकानां प्रतिपत्तीः प्रदर्शयति—'तत्थ' इत्यादि । 'तत्थ खलु' तत्र सूर्यस्य परिभ्रमणमार्ग-विषये खलु निश्चयेन 'इमाओ' इमाः वक्ष्यमाणाः 'चत्तारि' चतस्रः 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः परमताभिप्रायरूपाः 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ताः 'तं जहा' तद्यथा ता यथा—'तत्थ' तत्र चतुर्षु प्रति-प्रत्तिवादिषु मध्ये 'एगे' एके केचन प्रथमाः परतीर्थिकाः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु'

आहुः कथयन्ति—यत् 'ता' तावत् 'सूरिए' सूर्यः 'छ छ जोयणसहस्साइं' षट् षड्योजनसहस्राणि षट् षट् सहस्रयोजनपरिमितं क्षेत्रं 'एगमेगेणं मुहुत्तेणं' एकैकेन मुहूर्त्तेन 'गच्छइ' गच्छति पारयतीत्यर्थः, 'एगे' एके प्रथमाः 'एवं' एवं पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति । १ । 'एगे पुण' एके द्वितीयप्रतिपत्तिवादिनः पुनः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति—'ता' तावत् 'सूरिए' सूर्यः पंच पंच जोयणसहस्साइं' पञ्च पञ्चयोजनसहस्राणि 'एगमेगेणं मुहुत्तेणं' एकैकेन मुहूर्त्तेन 'गच्छइ' गच्छति 'एगे' एके द्वितीयाः 'एवं' पूर्वकथितप्रकारेण 'आहंसु' आहुः ।२। 'एगे पुन' एके केचन तृतीयप्रतिपत्तिवादिनः पुनः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति—'ता' तावत् 'सूरिए' सूर्यः 'चत्तारि चत्तारि जोयणसहस्साइं' चत्वारि चत्वारि योजनसहस्राणि 'एगमेगेणं मुहुत्तेणं' एकैकेन मुहूर्त्तेन 'गच्छइ' गच्छति, 'एगे' एके तृतीयाः परतीर्थिकाः 'एवं' एवं पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति ।३। 'एगे पुण' एके पुनश्चतुर्थाः परतीर्थिकाः पुनः 'एवं' वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति—'ता' तावत् 'सूरिए' सूर्यः 'छ वि पंच वि चत्तारि वि जोयणसहस्साइं' षडपि पञ्चापि चत्वार्यपि योजनसहस्राणि 'एगमेगेणं मुहुत्तेणं' एकैकेन मुहूर्त्तेन 'गच्छइ' गच्छति 'एगे' एके चतुर्थाः 'एवं' पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति ।४। चतुर्थस्यायं भावः—सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन षट्सहस्रयोजनानि पञ्चसहस्रयोजनानि चतुः सहस्रयोजनान्यपि च गच्छतीति । भगवान् तेषां यथाक्रमं स्वरूपं प्रदर्शयति 'तत्थ णं जे ते' इत्यादि । 'तत्थ णं' तत्र चतुर्षु प्रतिपत्तिवादिषु मध्ये खलु 'जे ते एवमाहंसु' ये ते प्रथमाः परमतवादिनः एवमाहुः एवं कथयन्ति यत् 'ता' तावत् 'छ छ जोयणसहस्साइं' षट् षड्योजनसहस्राणि षट् षट् सहस्रयोजनानि 'सूरिए' सूर्यः 'एगमेगेणं मुहुत्तेणं' एकैकेन मुहूर्त्तेन 'गच्छइ' गच्छतीति 'ते' ते एवं वक्तारः 'एवं' एवं अनेन वक्ष्यमाणेन अभिप्रायेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति, तदेव प्रदर्शयति 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्य. 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति "तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठाप्राप्तः परमप्रकर्षप्राप्तः 'उक्कोसए' उत्कर्षकः सर्वाधिकप्रमाणकः 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलघ्वी 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलसंचरणसमये अष्टादशमुहूर्त्तेभ्यो न न्यूनो नाधिको दिवसो भवति, न च द्वादशमुहूर्त्तेभ्यो न्यूनाऽधिका वा रात्रिर्भवतीति भावः । 'तंसि च णं दिवसंसि' तस्मिंश्च खलु दिवसे 'एगं जोयणसयसहस्सं' एकं योजनशतसहस्रम् एकलक्षयोजनं तदुपरि 'अट्ठ य जोयणसहस्साइं' अष्ट च योज-

नरहस्राणि अष्टसहस्रयोजनानि अष्टसहस्राधिकैकलक्षयोजनपरिमितं 'तावक्खेत्ते' तापक्षेत्रं 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तम् ।

अयं भावः—सूर्यो यदा सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चारं चरति तदा दिवसोऽष्टादशमुहूर्त्तो भवति एकेन मुहूर्त्तेन च षट्सहस्रयोजनानि सूर्यो गच्छतीति कथितं ततोऽष्टादशसंख्या षट्सहस्रैर्गुण्यते ततो जातमेकं लक्षमष्टसहस्राधिकं (१०८०००) तापक्षेत्रप्रमाणम् । एवमग्रेऽपि मण्डले मण्डले निष्क्रमणकाले तत्तन्मण्डलसत्कहीनदिवसपरिमाणं प्रतिमुहूर्त्तगतिपरिमाणेन षट्सहस्रयोजन-रूपेण गुणनात् तापक्षेत्रपरिमाणं हानिरूपेण प्रत्येकमण्डलस्य स्वयमूहनीयम् । एवं क्रमेण वहिर्निष्क्रामन् 'सूरिए' सूर्यः 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सव्ववाहिरं मंडलं' सर्वबाह्यं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति, सूर्यो यदा सर्वबाह्यं मण्डलं प्राप्नोति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ता' उत्तमकाष्ठा प्राप्ता 'उक्कोसिया' उत्कर्षिका सर्वोत्कृष्टा 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, 'जहण्णए' जघन्यकः सर्वलघुः 'दुवालस-मुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, 'तंसि च णं दिवसंसि' तस्मिन् च खलु दिवसे 'बावत्तरिं जोयणसहस्साइं' द्वासप्तर्ति योजनसहस्राणि द्वासप्तति (७२०००) सहस्रयोजनपरिमितं 'तावक्खेत्ते पण्णत्ते' तापक्षेत्रं प्रज्ञप्तम् । 'तया णं' तदा खलु 'छ छ जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ' षट् षड्योजनसहस्राणि षट् षट् सहस्रयोजनानि एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति । अत्रापि पूर्ववद् विभावनीयम् यथा—तापक्षेत्रं तु दिवसे एव भवति ततो दिवस-परिमाणं गृह्यते सूर्यस्य सर्वबाह्यमण्डलसंचरणसमये दिवसस्य द्वादशमुहूर्त्ता भवन्ति, एक मुहूर्त्तस्य गमनकालः षट्सहस्रयोजनपरिमितस्तेनात्र द्वादशमुहूर्त्ताः षट्सहस्रैर्गुण्यन्ते जातं द्वासप्ततिसहस्रयोजनपरिमितं तापक्षेत्रमिति । एवमेव सर्वबाह्यमण्डलादभ्यन्तरं सूर्यस्य गमनकाले क्रमेण प्रतिमण्डलस्य तापक्षेत्रपरिमाणं वृद्धित्वेन स्वयं भावनीयम्, अनेन क्रमेण प्रवि-शन् सूर्यो यदा सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं प्राप्नोति तदा तदेव अष्टसहस्राधिकलक्षपरिमितं तापक्षेत्रं भविष्यतीति । अनेनाभिप्रायेण ते प्रथमास्तीर्थान्तरीया एवं कथयन्तीतिभाव. ।१।

अथ भगवान् द्वितीयप्रतिपत्तिवादिनामभिप्रायं प्रदर्शयति—'तत्थ णं' इत्यादि 'तत्थ णं' तत्र चतुर्षु मध्ये खलु 'जे ते' ये ते द्वितीयप्रतिपत्तिवादिनः 'एवमाहंसु' एवमाहुः—'ता' तावत् 'पंच-पंच जोयणसहस्साइं' पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि पञ्चसहस्रयोजनानि 'सूरिए' सूर्यः एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ' एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, इति ये वदन्ति 'ते एवमाहंसु' ते द्वितीयास्तीर्थान्तरीयाः एवम्—अनेन वक्ष्यमाणेन अभिप्रायेण आहुः—कथयन्ति, तमेवाभिप्रायं प्रदर्शयति—'ता जया णं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता

चारं चरइ' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए' उत्तमकाष्ठाप्राप्त उत्कर्षकः सर्वोत्कृष्टः 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादश मुहूर्त्तो दिवसो भवति 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलघ्वी 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादश मुहूर्ता रात्रिर्भवति, 'तंसि च णं दिवसंसि' तस्मिश्च खलु दिवसे अष्टादशमुहूर्त्तप्रमाणे 'नउइं जोयणसहस्साइं' नवतिं योजनसहस्राणि नवतिसहस्रयोजनपरिमितमित्यर्थः 'तावखेत्ते पण्णत्ते' तापक्षेत्रं प्रज्ञप्तम् कथमेतदित्याह--एषां मते सूर्यः एकैकेन मुहूर्त्तेन पञ्च पञ्चसहस्रयोजनानि गच्छति सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलसंचरणसमये दिवसः अष्टादशमुहूर्त्तो भवति ततः पञ्चसहस्रसंख्या अष्टादशभिर्गुण्यते तत आयाति तापक्षेत्रस्य यथोक्तं परिमाणं नवतिसहस्रयोजनपरिमितं (९००००) तस्मिन् दिवसे, इति एवमग्रे सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलात् सर्वबाह्यमण्डलाभिमुखगमने मध्ये मध्ये प्रतिमण्डले दिवसपरिमाणस्य पञ्चसहस्रैर्गुणने तत्तन्मण्डलस्य दिवसस्य हीनत्वेन हीनं हीनं तापक्षेत्रमायाति। एवं सर्वबाह्यमण्डलाभिमुखं सचरन् 'जया णं' यदा खलु 'सव्वबाहिरं मंडलं' सर्वबाह्यं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति सर्वबाह्यमण्डले आयाति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ता' उत्तमकाष्ठाप्राप्ता परमप्रकर्षसम्पन्ना 'उक्कोसिया' उत्कर्षिका सर्वगुर्वी 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति 'जहण्णए' जघन्यकः सर्वलघुः 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'तंसि च णं' तस्मिश्च द्वादशमुहूर्त्तपरिमिते खलु 'दिवसंसि' दिवसे 'सट्ठिजोयण सहस्साइं' षष्टियोजनसहस्राणि षष्टिसहस्रयोजनपरिमितं' 'तावखेत्ते पण्णत्ते' तापक्षेत्रं प्रज्ञ-प्रज्ञप्तम्। अत्रापि दिवसमुहूर्त्तसंख्यां द्वादशपरिमितां पञ्चसहस्रैर्गुणयित्वा यथोक्तपरिमाणं षष्टि-सहस्रयोजनरूपं परिभावनीयम् तत एवाह--'तया णं' तदा खलु 'पंच पंच जोयणसहस्साइं' पञ्चपञ्चयोजनसहस्राणि 'सूरिए' सूर्यः 'एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ' एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति अनेनाभिप्रायेण ते द्वितीयास्तीर्थान्तरीयाः सूर्यस्य एकैकमुहूर्त्तगम्यमार्गं पञ्च पञ्च सहस्रयोजन-परिमितं कथयन्तीति। एवं यदा सर्वबाह्यमण्डलात् सर्वाभ्यन्तरमण्डलाभिमुखं सूर्यो गन्तुमार-भते तदा मध्ये मध्ये तत्तन्मण्डलगतदिवसमुहूर्त्तसंख्यायाः पञ्चसहस्रैर्गुणने तत्तन्मण्डलस्य ताप-क्षेत्रं वृद्धित्वेनायाति, एवं यदा सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं सूर्यः प्राप्नोति तदा यथोक्तं नवतिसहस्र-योजनपरिमितं द्वितीयतीर्थान्तरीयाभिमतं तापक्षेत्रं भवतीति ॥२।

अथ भगवान् तृतीयप्रतिपत्त्यभिप्रायं प्रदर्शयति--'तत्थ ण' इत्यादि 'तत्थ णं' तत्र ताप-क्षेत्रविषये खलु 'जे ते' ये ते तृतीयास्तीर्थान्तरीयाः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति, तदेव दर्शयति--'चत्तारि चत्तारि जोयणसहस्साइं' चत्वारि चत्वारि योजनसह स्राणि चतुश्चतुः सहस्रयोजनानि 'सूरिए' सूर्यः 'एगमेगेणं मुहुत्तेणं' एकैकेन मुहूर्त्तेन 'गच्छइ'

गच्छति, इति 'ते णं' ते खलु 'एवं' एवम्—अनेन वक्ष्यमाणाभिप्रायेण 'आहंसु' कथयन्ति, तमेव प्रकारमाह—'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता' उपसंक्रम्य 'चारं चरइ' चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'दिवसराई तहेव' दिवस रात्री तथैव—तथा च उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवतीति, 'तंसि च णं दिवसंसि' तस्मिश्च खलु दिवसे 'बावत्तरिं जोयणसहस्साइं' द्वासप्ततियोजनसहस्राणि—द्वासप्ततिसहस्रयोजनपरिमितं 'तावखेत्ते पण्णत्ते' तापक्षेत्रं प्रज्ञप्तम्। तथाहि—एतेषां तृतीयानां मते सूर्यः प्रतिमुहूर्त्तं चतुःसहस्रयोजनानि गच्छति सर्वाभ्यन्तरमण्डले अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति ततश्चाष्टादशमुहूर्त्ताश्चतुःसहस्रैर्गुण्यन्ते तदा भवति द्वासप्ततिसहस्रयोयनप्रमाणं (७२०००) तापक्षेत्रमिति, 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वबाहिरं मंडलं' सर्वबाह्यं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'राइंदियं तहेव' रात्रिन्दिवं तथैव, तथा च उत्तमकाष्ठाप्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, 'तंसि च णं' तस्मिश्च द्वादशमुहूर्त्तपरिमिते खलु 'दिवसंसि' दिवसे 'अडयालीसं जोयणसहस्साइं' अष्टचत्वारिंशद्-योजनसहस्राणि अष्टचत्वारिंशत्सहस्रयोजनपरिमितं 'तावखेत्ते पण्णत्ते' तापक्षेत्रं प्रज्ञप्तम्। कथमिति दर्शयति—एषां तृतीयानां मते सूर्यस्य गमनं प्रतिमुहूर्त्तं चतुश्चतुःसहस्रयोजनपरिमितमस्ति, सर्वबाह्यमण्डले च द्वादशमुहूर्त्तपरिमितो दिवसो भवति तेन चतुःसहस्रसङ्ख्याद्वादशभिर्गुण्यते तदा समायाति अष्टचत्वारिंशत्सहस्रयोजनपरिमितं तापक्षेत्रम्, अनेन प्रकारेण ते कथयन्ति 'तया णं' तदा खलु 'चत्तारि चत्तारि जोयणसहस्साइं' चत्वारि चत्वारि योजनसहस्राणि 'सूरिए' सूर्यः 'एगमेगेणं मुहुत्तेणं' एकैकेन मुहूर्त्तेन 'गच्छइ' गच्छति। मध्यमध्यमण्डलेषु पूर्वोक्त-रीत्या तत्तन्मण्डलगतं तापक्षेत्रं सूर्यस्य निष्क्रमणसमये प्रवेशसमये हान्या वृद्धया चावसेयमिति एव सूर्यो यदा सर्वबाह्यमण्डलाद् सर्वाभ्यन्तरमण्डलाभिमुखं गच्छति तदा मध्यमध्यमण्डल-सचरणसमये यस्मिन् यस्मिन् मण्डले यावत्परिमितं दिवसपरिमाणं भवति तत्तत्संख्यया चतुः सहस्राणां गुणने गुणनफलपरिमितमेव तत्तन्मण्डले तापक्षेत्रं भवति। अनेन क्रमेण गच्छन् सूर्यो यदा सर्वाभ्यन्तरमण्डलं प्राप्नोति तदा सर्वाभ्यन्तरमण्डले गते सूर्ये तदेव पूर्वोक्तं तदभिमतं ताप क्षेत्रप्रमाणं द्वासप्ततिसहस्रयोजनपरिमितमायातीति।३।

अथ चतुर्थप्रतिपत्त्याभिप्रायमाह—'तत्थ णं' इत्यादि। 'तत्थ णं' तत्र तापक्षेत्रविषये खलु 'जे ते' ये ते चतुर्थास्तीर्थान्तरीयाः 'एवं' वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' कथयन्ति तदेवाह—'छ वि पंच वि चत्तारि वि' षडपि पञ्चापि चत्वार्यपि 'जोयणसहस्साइं' योजनसहस्राणि षट् सहस्रयोजनान्यपि, पञ्चसहस्रयोजनान्यपि चतुःसहस्रयोजनान्यपि च 'सूरिए' सूर्यः 'एग-

मेगेणं मुहुत्तेणं' एकैकेन मुहूर्त्तेन 'गच्छइ' गच्छति, इति ये कथयन्ति 'ते' ते पूर्वोक्तरूपेण वक्तारः 'एवं' एवम् अनेन वक्ष्यमाणेनाभिप्रायेण 'आहंसु' आहुः—कथयन्ति तच्छ्रूयताम्— 'ता' तावत् 'सूरिए' सूर्यः 'उग्गमणमुहुत्तंसि' उद्गमनमुहूर्त्ते एवम् 'अत्थमणमुहुत्तंसि य' अस्तमयनमुहूर्त्ते च उदयकाले अस्तकाले चेत्यर्थः 'सिग्घगई भवइ' शीघ्रगतिर्भवति ततः 'तया णं' तदा उदयास्तसमये खलु सूर्यः 'छ छ जोयणसहस्साइं' षट् षड्योजनसहस्राणि 'एगमेगेणं मुहुत्तेणं' एकैकेन मुहूर्त्तेन 'गच्छइ' गच्छति, सूर्य उदयास्तकाले शीघ्रगतित्वेन एकस्मिन् मुहूर्त्ते षट्सहस्रयोजनपरिमितं क्षेत्रं पारयतीति भावः ततः पश्चात् 'मज्झिमं तावक्खेत्तं' मध्यमं तापक्षेत्रं 'समासाएमाणे २' समासादयन् २ प्रापयन्२ 'सूरिए' सूर्यः मज्झिमगई भवइ' मध्यमगतिर्भवति 'तया णं' तदा तस्मिन् काले खलु 'पंचपंचजोयण-सहस्साइं' पञ्चपञ्चयोजनसहस्राणि पञ्चपञ्चसहस्रयोजनानि 'एगमेगेणं मुहुत्तेणं' एकै-केन मुहूर्त्तेन 'गच्छइ' गच्छति । तथा 'मज्झिमं तावक्खेत्तं' मध्यमं तापक्षेत्रं 'संपत्ते' सम्प्राप्तो भवेत् तदा 'सूरिए' सूर्यः 'मंदगई भवइ' मन्दगतिर्भवति 'तया णं' तदा खलु 'चत्तारि चत्तारि जोयणसहस्साइं' चत्वारि चत्वारि योजनसहस्राणि चतुश्चतुःसहस्रयोज-नानि 'एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ' एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, यदा सूर्यो मध्यमतापक्षेत्रेऽधि-रूढो भवति तदा मन्दगतित्वेन एकैकस्मिन् मुहूर्त्ते चतुश्चतुःसहस्रयोजनपरिमितमेव क्षेत्रं पार-यितुं शक्नोति न ततोऽधिकमिति भावः ।

एवं भगवता कथिते सति गौतमः पृच्छति—'तत्थ' तत्र सूर्यस्य एवं गमने 'को हेऊ' को हेतुः किं कारणम् 'त्तिवएज्जा' इति वदेत् तद्गतिकारणं कथयतु भगवन् !

एवं गौतमेन पृष्टे भगवान् तत्कारणं प्रतिपादयति—'ता अयं णं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'अयं णं' अयं लोकप्रसिद्धः खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपो द्वीपः मध्यजम्बूद्वीपः जम्बूद्वीपस्य वर्णनं सर्वमत्र वाच्यम्, कियत्पर्यन्तम् ? इत्याह 'जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ते' यावत् परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः परिधिपर्यन्तं वाच्यम् । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठाप्राप्तः 'उक्कोसए' उत्कर्षकः 'अट्ठारस-मुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलघ्वी 'दुवालस-मुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । 'तं सि च णं' तस्मिन् च खलु पूर्वोक्तप्रमाणे 'दिस-संसि' दिवसे 'एक्काणउइं' एकनवतिं 'जोयणसहस्साइं' योजनसहस्राणि एकनवतिसहस्र-योजनपरिमितं 'तावखेत्ते पण्णत्ते' तापक्षेत्रं प्रज्ञप्तम् ।

तथाहि—सूर्योदयसमयमुहूर्तेऽस्तसमयमुहूर्ते च प्रत्येकं षट् षड्योजनसहस्रपरिमितो गमनकालः कथितः, तयोर्द्वयोर्मीलने जातानि द्वादशसहस्रयोजनानि (१२०००) सर्वाभ्यन्तरं मुहूर्त्तमात्रगम्यं तापक्षेत्रं सम्प्रति न गृह्यते मध्यमे च तापक्षेत्रे पञ्चदशमुहूर्त्तगम्यप्रमाणं पञ्च पञ्च-सहस्रयोजनानि सूर्यो गच्छतीति, पञ्चदशयोजनसहस्राणि पञ्चदशभिर्गुण्यन्ते तदा जातानि पञ्च सप्ततिसहस्रयोजनानि (७५०००) अथ च सर्वाभ्यन्तरमुहूर्त्तमात्रगम्यं तापक्षेत्रं चतुःसहस्र—योजन (४०००) परिमितं, तत् तथा उदयास्तसमयसंपन्नानि पूर्वोक्तानि द्वादशसहस्रयोजनानि च, एवं १२—७५—४ सर्वमीलने जातानि एकनवतिसहस्राणि (९१०००)। एव मष्टादशमुहूर्त्त—प्रमाणे दिवसे समागतं यथोक्तं तापक्षेत्रप्रमाणमिति। अन्यथा चैतानि न घटन्त इति।

'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वबाहिरं मंडलं' सर्वबाह्यं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ता' उत्तमकाष्ठा प्राप्ता सर्वोत्कृष्टप्रकर्षसंपन्ना 'उक्कोसिया' उत्कर्षिका सर्वोत्कृष्टा 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति 'जहण्णए' जघन्यकः सर्वलघुः 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादश-मुहूर्त्तो दिवसो भवति, 'तंसि च णं' तस्मिंश्च द्वादशमुहूर्त्तपरिमिते 'दिवसंसि' दिवसे 'एगसट्ठि—जोयणसहस्साइं' एकषष्टियोजनसहस्राणि एकषष्टिसहस्रयोजनपरिमितं (६१०००) 'तावखेत्ते पण्णत्ते' तापक्षेत्रं प्रज्ञप्तम्। कथमेतद् घटते? इति प्रदर्श्यते—उदयकालमुहूर्त्ते, अस्तकालमुहूर्त्ते च प्रत्येकं षट् षड्सहस्रयोजनानि सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छतीति द्वयोर्मीलने जातानि द्वादश-सहस्रयोजनानि (१२०००) सर्वाभ्यन्तरं मुहूर्त्तमात्रगम्यं तापक्षेत्रं सम्प्रति न गृह्यते, शेषा नवमुहूर्त्ताः तेषु सूर्यः पञ्च पञ्चसहस्रयोजनानि प्रतिमुहूर्त्तं गच्छति ततः पञ्चसहस्रयोजनानि नवभि-र्गुण्यन्ते जातानि पञ्चचत्वारिंशत्-सहस्रयोजनानि (४५०००) सर्वाभ्यन्तरे मुहूर्त्तैकगम्ये ताप-क्षेत्रे चतुःसहस्रयोजनानि एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छतीति चत्वारि योजनसहस्राणि (४०००) तथा उदयास्तकालसंपन्नानि पूर्वोक्तानि द्वादशसहस्रयोजनानि (१२०००) एवं १२—४५—४ सर्व-संमेलने जातं यथोक्तम् एकषष्टिसहस्रयोजनपरिमितं (६१०००) द्वादशमुहूर्त्तपरिमिते दिवसे तापक्षेत्रप्रमाणम। न चैतदन्यथोपपद्यत इति, 'तया णं' तदा खलु एवं कृते सति 'छ वि पंच वि चत्तारि वि' षडपि पञ्चापि चत्वार्यपि 'जोयणसहस्साइं' योजनसहस्राणि षट्पञ्चचतुःसहस्र-योजनपरिमितं क्षेत्रं 'सूरिए' सूर्यः 'एगमेगेणं मुहुत्तेणं' एकैकेन मुहूर्त्तेन 'गच्छइ' गच्छति। एतदभिप्रायेण चतुर्थास्तीर्थान्तरीयाः सूर्यस्य प्रतिमुहूर्त्तगमनकालं षट्पञ्चचतुःसहस्रयोजनपरिमितं प्रतिपादयन्तीति विज्ञेयम्। उपसंहारमाह—'एगे' एके चतुर्थाः परमतवादिनः 'एवं' एवं पूर्वप्रदर्शितप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्तीति ॥सू० १॥

पूर्वं परमतरूपाश्चतस्रः प्रतिपत्तयः प्रदर्शिताः, साम्प्रतं भगवान् स्वमतं प्रदर्शयति—' 'वयं पुण' इत्यादि ।

वयं पुण एवं वयामो—ता साइरेगाइं पंच पंच जोयणसहस्साइं सूरिए एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ तत्थ को हेऊ ? त्ति वएज्जा ता अयं णं जंबुद्दीवे दीवे जाव परिक्खेवेण पण्णत्ते ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं पंच पंच जोयणसहस्साइं दोण्णि य एकावण्णे जोयणसयाइं एगूणतीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, तया णं इहगयस्स मणुसस्स सीयालीसाए जोयणसहस्सेहिं, दोहि य तेवट्ठेहिं जोयणसएहिं, एक्कवीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ।

से निक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भितराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । ता जया णं सूरिए अब्भितराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं पंच पंच जोयणसहस्साइं दोण्णि य एकावण्णे जोयणसयाइं सीयालीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ तया णं इह गयस्स मणूसस्स सीयालीसाए जोयणसहस्सेहिं अउणासीए य जोयणसए सत्तावण्णाए सट्ठिभागेहिं जोयणस्स, सट्ठिभागं च एगट्ठिहा छेत्ता एगूणवीसाए चुण्णियाभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ, तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया ।

से निक्खममाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि अब्भंतरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ । ता जया णं सूरिए अब्भितरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं पंच २ जोयणसहस्साइं दोण्णि य बावण्णे जोयणसयाइं पंच य सट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ तया णं इहगयस्स मणूसस्स सीयालीसाए जोयणसहस्सेहिं छण्णउईए य जोयणेहिं तेत्तीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सट्ठिभागं च एगसट्ठिहा छेत्ता दोहिं चुण्णियाभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ, तया णं अट्ठारस मुहुत्ते दिवसे भवइ, चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं हीणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं-एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया । एवं खलु एएणं उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ तयाणंतरं मंडलाओ मंडलं संकममाणे २ अट्ठारस २ सट्ठिभागे जोयणस्स एग-

मेगे मंडले मुहुत्तगइं अभिवुड्ढेमाणे २ चुलसीइं साइरेगं जोयणाइं पुरिसच्छायं णिव्वु-इढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए सव्वबा-हिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं पंच जोयणसहस्साइं तिन्नि य पंचुत्त-राइं जोयणसयाइं पण्णरस य सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, तया णं इहगयस्स मणूसस्स एक्कतीसाए जोयणसहस्सेहिं अट्ठहिं एक्कतीसेहिं जोयणसएहिं तीसाए य सट्ठिभागे जोयणस्स सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्को-सिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ। एस णं पढमे छम्मासे। एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे ॥सू० २॥

छाया—वयं पुनरेवं वदामः—तावत् सातिरेकाणि पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि सूर्यः एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति। तत्र को हेतु ? इति वदेत् तावत् अयं खलु जम्बूद्वीपो द्वीपः यावत् परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः। तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि द्वे च एकपञ्चाशद्योजनशते एकोन-त्रिंशतं षष्टिभागान् योजनस्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, तदा खलु इहगतस्य मनुष्यस्य सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैः द्वाभ्यां च त्रिषष्ठाभ्यां योजनशताभ्याम् एकविंशत्या च षष्टि-भागैः योजनस्य सूर्यः चक्षुःस्पर्शं हव्यमागच्छति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्त उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रि र्भवति।

स निष्क्रामन् सूर्यः नवं संवत्सरम् अयन् प्रथमे अहोरात्रे अभ्यन्तरानन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः अभ्यन्तरानन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु पञ्चपञ्चयोजनसहस्राणि द्वे च एकपञ्चाशद्-योजनशते सप्तचत्वारिंशतं च षष्टिभागान् योजनस्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, तदा खलु इह गतस्य मनुष्यस्य सप्तचत्वारिंशतायोजनसहस्रैः एकोनसप्ताशीतिं च योजनशतानि सप्त पञ्चाशता षष्टिभागैः योजनस्य षष्टिभागं च एकषष्टिधा छित्वा एकोनविंशत्या चूर्णिकाभागैः सूर्यः चक्षुःस्पर्शं हव्यमागच्छति तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यामेधिका।

स निष्क्रामन् सूर्यः द्वितीये अहोरात्रे अभ्यन्तरं तृतीयं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः अभ्यन्तरं तृतीयं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु पञ्च २ योजनसहस्राणि द्वे च द्विपञ्चाशतं योजनशते पञ्च च षष्टिभागान् योजनस्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति तदा खलु इहगतस्य मनुष्यस्य सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैः षण्णवत्या च योजनैः त्रयस्त्रिंशता च षष्टिभागैः योजनस्य षष्टिभागं एकषष्टिधा छित्वा द्वाभ्यां चूर्णिकाभागाभ्यां सूर्यः चक्षुःस्पर्शं हव्यमागच्छति, तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैर्हीनः द्वादशमुहूर्त्ता रात्रि र्भवति चतुर्भिः एकषष्टिभाग-मुहूर्त्तैरधिका। एवं खलु एतेन उपायेन निष्क्रामन् सूर्यः तदनन्तरात् तदनन्तरं मण्डलात्

मण्डलं संक्रामन् २ अष्टादश २ षष्टिभागान् योजनस्य एकैकस्मिन् मण्डले मुहूर्त्तगतिम् अभिवर्धयन् २ चतुरशीतिं सातिरेकं योजनानि पुरुषच्छायां निर्वर्धयन् २ सर्वबाह्यं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वबाह्यं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति, तदा खलु पञ्च योजनसहस्राणि त्रीणि च पञ्चोत्तराणि योजनशतानि पञ्चदश च षष्टिभागान् योजनस्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, तदा खलु इहगतस्य मनुष्यस्य एकत्रिंशता योजनसहस्रैः अष्टभिः एकत्रिंशता योजनशतैः त्रिंशता च षष्टिभागैः योनस्य सूर्यः चक्षुः स्पर्शं हव्यमागच्छति, तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। एतत् खलु प्रथमं षण्मासम्। एतत् खलु प्रथमस्य षण्मासस्य पर्यवसानम् ।।सूत्र २ ।।

व्याख्या–'वयं पुण' इति 'वयं पुण' वयं पुनः वयं तु 'एवं' वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयामो' वदामः कथयामः, तदेव दर्शयन्ति–'ता' तावत् 'साइरेगाइं' सातिरेकाणि किञ्चिदधिकानि 'पंच पंच जोयणसहस्साइं' पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि पञ्चपञ्चसहस्रयोजनानि 'सूरिए' सूर्यः एग-मेगेणं मुहुत्तेणं' एकैकेन मुहूर्त्तेन 'गच्छइ' गच्छति। एवं भगवता प्रोक्ते गौतमोऽत्र हेतुं पृच्छति–'तत्थ को हेऊ' तत्र सूर्यस्य एकैकमुहूर्त्तपरिमितकालेन सातिरेकपञ्चसहस्रयोजनगमने को हेतुः किं कारणं कोपपत्तिः ? 'इति' इति 'वएज्जा' वदेत् हे भगवन्! वदतु कथयतु। भगवान् तत्कारणं प्रदर्शयति–'ता' तावत् 'अयं णं' अयं खलु 'जम्बुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपो द्वीपः मध्य-जम्बूद्वीपः 'जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ते' यावत्परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः अत्र यावत्पदेन जम्बूद्वीपवर्णनं सर्वं पठनीयं परिधिपरिमाणपर्यन्तमिति। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तयाणं' तदा खलु 'पंच २ जोयणसहस्साइं' पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि 'दोण्णि य एकावण्णे जोयणसयाइं' द्वे च एकपञ्चाशद्योजनशते एकपञ्चाशदधिकद्विशतयोजनानि (५२५१) 'एगूणतीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स' एकोनत्रिंशतं च षष्टिभागान् योजनस्य (५२-५१ $\frac{२९}{६०}$ एतावत्परिमितं क्षेत्रं सूर्यः 'एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ' एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति प्रत्येकं मुहूर्त्ते एतावत्परिमितं क्षेत्रं पारयतीति भावः। एतत्कथमुपलभ्यते ? इति प्रदर्श्यते–भरतैरवतसम्बन्धिनौ द्वौ सूर्यौ एकैकं मण्डलम् एकैकेन अहोरात्रेण परिसमापयतः, एकै-कस्य सूर्यस्यैकैकाहोरात्रगमने वस्तुतो द्वाभ्यामहोरात्राभ्यां परिभ्रमणमाश्रित्य मण्डलपरिसमाप्ति-र्भवति। द्वयोरहोरात्रयोः षष्टिर्मुहूर्त्ता भवन्ति प्रत्येकाहोरात्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तप्रमाणत्वात्। एषां षष्टिसंख्या भाजकराशित्वेन विज्ञेया, भाज्यराशिश्च मण्डलपरिधिपरिमाणसंख्या, मण्डलपरिधि-परिमाणं च सर्वाभ्यन्तरे मण्डले एकोननवत्यधिकपञ्चदशसहस्रोत्तराणि त्रीणि लक्षाणि–(३१-

५०८९) । एषा भाज्यराशिसंख्या पूर्वप्रदर्शितेन षष्टिसंख्यकेन (६०) भाजकराशिना विभज्यते भाज्यराशेर्भाजकराशिना भागो ह्रियते, भागे हृते लब्धं यथोक्तं सूर्यस्य एकमुहूर्त्तगम्य-क्षेत्रम्—एकपञ्चाशदधिकद्विशतोत्तरपञ्चसहस्रयोजनपरिमितं योजनस्यैकोनत्रिंशत्षष्टिभागाधिकम् ($५२५१\frac{२९}{६०}$) इति । अथ सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चारं चरन् उदयमानः सूर्य इहगतानां मनुष्याणां कियत्परिमिते क्षेत्रे व्यवस्थितो दृष्टिगोचरी भवतीति प्रदर्शयन्नाह—'तया णं' इत्यादि । 'तया णं' तदा सर्वाभ्यन्तरमण्डलसंचरणसमये खलु 'इहगयस्स' इहगतस्य भरतक्षेत्रस्थितस्य 'मणूसस्स' मनुष्यस्य अत्र जातावेकवचनं तेन इहगतानां मनुष्याणामित्यर्थः 'सीयालीसाए जोयणसहस्सेहिं' सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैः सप्तचत्वारिंशत्सहस्रयोजनैः (४७०००) 'दोहि य तेवट्ठेहिं जोयणसएहिं' द्वाभ्यां च त्रिषष्टाभ्यां योजनशताभ्यां त्रिषष्ट्यधिकद्विशतयोजनैः (२६३) 'एकवीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स' एकविंशत्या च षष्टिभागैर्योजनस्य ($\frac{२१}{६०}$) योजनस्यैकविंशतिषष्टिभागयुक्तैः त्रिषष्ट्यधिकशतद्वयोत्तरसप्तचत्वारिंशत्सहस्रयोजनैरित्यर्थः ($४७२६३-\frac{२१}{६०}$) 'सूरिए' सूर्यः 'चक्खुप्फासं' चक्षुः स्पर्शं 'हव्वं' इति शीघ्रम् 'आगच्छइ' आगच्छति प्राप्नोति दृष्टिगोचरीभवतीत्यर्थः । अस्योपपत्तिमाह—इह दिवसार्द्धेन यावत्परिमितं क्षेत्रं व्याप्तं भवति तावत्परिमिते क्षेत्रे व्यवस्थितः सूर्य उपलभ्यते, यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चारं चरति तदाऽष्टादशमुहूर्तो दिवसो भवति, अष्टादशानामर्द्धे कृते लभ्यन्ते नवमुहूर्त्ताः, सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चारं चरन् सूर्य एकपञ्चाशदधिक द्विशतोत्तरपञ्चसहस्रयोजनानि योजनस्यैकोनत्रिंशत् षष्टि भागाश्च ($५२५१\frac{२९}{६०}$) एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छतीति भगवता पूर्वं प्रतिपादितम् एषा संख्या दिवसस्यार्द्धरूपैर्नवभिर्मुहूर्त्तैर्गुण्यते ततः समायाति यथोक्तं सूर्यस्य दृष्टिगोचरविषयकं परिमाणमिति । गणितप्रकारो यथा—एक पञ्चाशदधिकद्विशतोत्तरपञ्चसहस्रसंख्या—(५२५१) नवभिर्गुण्यते जातानि एकोनषष्ट्यधिकशतद्वयोत्तरसप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि—(४७२५९) ततश्च—एकोनत्रिंशत् षष्टिभागा नवभिर्गुण्यन्ते जातम्—एकषष्ट्युत्तर शतद्वयम्—(२६१) अस्य योजनानयनार्थं षष्ट्या भागो ह्रियते लब्धाश्चत्वारः—४,एते च पूर्वं संपादितायां संख्यायां ($४७२५\frac{९}{४}$) योज्यते, तदा जातं (४७२६३) शेषा एकविंशति (२१) षष्टिभागाः स्थिता इति समा-

गतं यथोक्तं सूर्यस्य दृष्टिपथप्राप्तताविषयकं परिमाणम् ($४७२६३\frac{२१}{६०}$) इति । **'तया णं'** तदा तस्मिन् सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलसंचरणसमये खलु **उत्तमकट्ठपत्त'** उत्तमकाष्ठाप्राप्तः परमप्रकर्षप्राप्तः **उक्कोसए'** उत्कर्षकः सर्वोत्कृष्टः **'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ'** अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, **'जहण्णिया'** जघन्यिका सर्वलघ्वी **'दुवालस मुहुत्ता राई भवइ'** द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवतीति।

अथ सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलान्निष्क्रमणवक्तव्यतामाह—**'से निक्खममाणे'** इत्यादि। **'से'** सः सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारगतः **'निक्खममाणे'** निष्क्रामन् सर्वाभ्यन्तरमण्डलात्सर्वबाह्यमण्डलाभिमुखं गच्छन् **'सूरिए'** सूर्यः **'णवं संवच्छरं'** नवं संवत्सरं दिवसहानिरात्रिवृद्धिरूपम् **'अयमाणे'** अयन् प्राप्नुवन् **'पढमंसि अहोरत्तंसि'** प्रथमेऽहोरात्रे **'अब्भितराणंतरं'** अभ्यन्तरानन्तरं सर्वाभ्यन्तरमण्डलादग्रेतनं **'मंडलं'** द्वितीयं मण्डलम् **'उवसंकमित्ता चारं चरइ'** उपसंक्रम्य चारं चरति। **'ता'** तावत् **'जया णं'** यदा खलु **'सूरिए'** सूर्यः **'अब्भितराणंतरं मंडलं'** अभ्यन्तरादनन्तरं स्थितं मण्डलं द्वितीयमण्डलम् **'उवसंकमित्ता चारं चरइ'** उपसंक्रम्य चारं चरति **'तया णं'**-तदा खलु **'पंच पंच जोयणसहस्साइं'** पञ्चपञ्चयोजनसहस्राणि **'दोण्णिय एकावण्णे जोयणसयाइं'** द्वे एकपञ्चाशते योजनशते **'सीयालीसं' च सट्ठिभागे जोयणस्स'** सप्तचत्वारिंशतं च षष्टिभागान् योजनस्य एकपञ्चाशदधिकशतद्वयोत्तरपञ्चसहस्रयोजनानि योजनस्य सप्तचत्वारिंशत्षष्टिभागसहितानि ($५२५१-\frac{४७}{६०}$) **'एगमेगेणं मुहुत्तेणं'** एकैकेन मुहूर्त्तेन सूर्यः **'गच्छइ'** गच्छति चलति कथमेतदवसीयते! इत्याह—सर्वाभ्यन्तरमण्डलादनन्तरे द्वितीये मण्डले परिधिपरिमाणं सप्तोत्तरशताधिकपञ्चदशसहस्रोत्तराणि त्रीणि लक्षाणि (३१५१०७) व्यवहारतः परिपूर्णानि, निश्चयेन तु किञ्चिन्न्यूनानि, ततश्च प्रागुक्तयुक्त्याऽस्य षष्ट्या भागो ह्रियते, ततो लभ्यते यथोक्तमस्मिन् द्वितीये मण्डले सूर्यस्य मुहूर्त्तगतिपरिमाणम् ($५२५१\frac{४७}{६०}$)।

अथवा एवमपि ज्ञायते—पूर्वोक्तसर्वाभ्यन्तरमण्डलपरिधिपरिमाणात् (३१५०८९) अस्य द्वितीयमण्डलस्य परिधिपरिमाणे व्यवहारतः परिपूर्णाष्टादशयोजनानि वर्धन्ते, तदा जायन्ते (३१-५१०७) निश्चयनयमतेन किञ्चिन्न्यूनानि, ततश्च अष्टादशानां योजनानां षष्ट्याभागे हृते लभ्यन्तेऽष्टादशषष्टिभागा योजनस्य, ततश्च षष्टिभागाः षष्टिभागेष्वेव प्रक्षिप्यन्ते इति नियमात् एतेऽष्टादशषष्टिभागाः प्राक्तनमण्डलगतमुहूर्त्तपरिमाणगतेषु ($५२५१-\frac{२९}{६०}$) एकोनत्रिंशत्षष्टिभागेषु प्रक्षिप्यन्ते

ततो भवति यथोक्तं अस्मिन् द्वितीयमण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणं सप्तचत्वारिंशत्षष्टिभागसहितम् (५२५१-$\frac{४७}{६०}$)'तया णं' तदा द्वितीयमण्डलचारसमये खलु 'इहगयस्स मणूसस्स' इहगतस्य भरतक्षेत्रस्थितस्य मनुष्यस्य जातावेकवचनत्वात् भरतक्षेत्रस्थितानां मनुष्याणामित्यर्थः, 'सीयालीसाए जोयणसहस्सेहिं' सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैः 'अउणासीए य जोयणसएणं' एकोनाशीतेन योजनशतेन एकोनाशीत्यधिकेन योजनशतेन (१७९) 'सत्तावण्णाए सट्ठिभागेहिं जोयणस्स' सप्तपञ्चाशता षष्टिभागैर्योजनस्य, 'सट्ठिभागं च' षष्टिभागमेकं च 'एगट्ठिहा छेत्ता' एकषष्टिधा छित्वा एकषष्टिछेदराशिं कृत्वा तेन छित्त्वेत्यर्थः तत्सम्बन्धिभिः 'अउणावीसाए चुण्णियाभागेहिं' एकोनविंशत्या चूर्णिकाभागैः-(४७१७९ $\frac{५७}{६०}$- $\frac{१९}{६१}$) 'सूरिए' सूर्यः 'चक्खुप्फासं' चक्षुःस्पर्शम् 'हव्वं' शीघ्रम् 'आगच्छइ' आगच्छति प्राप्नोति दृष्टिगोचरीभवतीत्यर्थः। कथमेतदवसीयते ? तदेवाह—

अस्मिन् द्वितीये मण्डले सूर्यस्य महूर्त्तगतिपरिमाणं पूर्वप्रदर्शितम् एकपञ्चाशदधिकशतद्वयोत्तरपञ्चसहस्रयोजनानि, सप्तचत्त्वारिंशच्च षष्टिभागा योजनस्य (५२५१ ४७/६१) इति अत्र द्वितीयमण्डले सूर्यस्य संचरणसमये दिवसोऽष्टादशमुहूर्त्तः द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यां च हीनो भवति निष्क्रमणकाले प्रतिमण्डलं दिवसरात्र्योः मुहूर्त्तैकषष्टिभागद्वयस्य क्रमेण हानिवृद्धिनियमसद्भावात्, दिवसस्य हानिः रात्रेश्च वृद्धिर्भवतीतिभावः। ततो दिवसप्रमाणस्यार्धं क्रियते तस्यार्धं नवमुहूर्त्ताः एकेन मुहूर्त्तैकषष्टिभागेन हीनाः, तत एषामेकषष्टिभागकरणार्थं नवमुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते जातानि एकोनपञ्चाशदधिकानि पञ्चशतानि (५४९) दिवसप्रमाणः एकेन एकषष्टिभागेन हीनोऽतोऽस्मात् एकं रूपं निष्कास्यते ततो जातानि—अष्टचत्वारिंशदधिकानि पञ्चशतानि (५४८)। ततोऽस्य द्वितीयमण्डलस्य सप्तोत्तरशताधिकपञ्चदशसहस्रोत्तराणि त्रीणि लक्षाणि (३१५१०७) परिधिपरिमाणमिति। एषा संख्या अष्टचत्वारिंशदधिकपञ्चशतैः (५४८) गुण्यते, तेन जातः-एककः, सप्तकः, द्विकः, षट्कः, सप्तकः, अष्टकः, षट्कः, त्रिकः, षट्कः इति सप्तदश कोटयः, षड्विंशतिर्लक्षाः, अष्टसप्ततिः सहस्राणि, षट् शतानि तदुपरि षट्त्रिंशच्च-(१७२६७८६३६)। तत्र एकषष्टिः षष्ट्या गुण्यते जातानि षष्ट्यधिकषट्शतोत्तराणि त्रीणि सहस्राणि (३६६०)। अनया संख्यया पूर्वोक्तसंख्याया भागो ह्रियते, हृते च भागे लब्धानि एकोनाशीत्यधिक शतोत्तराणि सप्त चत्वारिंशत्सहस्राणि योजनानाम् (४७१-

७२), शेषे षण्णवत्यधिक चतुःशतोत्तराणि त्रीणि सहस्राणि (३४९६) अवतिष्ठन्ते। ततोऽस्माद् योजनानि न समायान्ति, अतः षष्टिभागानयनार्थं सूत्रे **'सट्ठिभागं च एगट्ठिहा छेत्ता'** इति कथितं, तद्वचनादत्र छेदराशिरेकषष्टिर्ध्रियते, अनेन भागे हृते लभ्यन्ते सप्तपञ्चाशत् षष्टि भागाः (५७/६०) एकस्य च षष्टिभागस्य सम्बन्धिन एकोनविंशतिरेकषष्टिभागाः (१९।६१) इति। जातानि (४७१७९ ५७/६०–१९/६१ चूर्णिका भागः) इति। एवं संप्राप्तं मूलसूत्रोक्तं सूर्यस्य चक्षुःपथप्राप्तताविषयकं परिमाणमिति।

'तया णं' तदा पूर्वोक्तप्रमाणैर्योजनैः द्वितीयमण्डलगतस्य सूर्यस्य चक्षुःप्राप्तिसमये खलु **'अट्ठारसमुहुत्तो दिवसो भवइ'** अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति किन्तु सः **'दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे'** द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यामूनः- हीनो भवति, **'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ'** द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति सा च **'दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया'** द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यामधिका।

अथ तृतीयमण्डलवक्तव्यतामाह—**'से निक्खममाणे'** इत्यादि। से **'सः निक्खममाणे'** निष्क्रामन् सर्वाभ्यन्तरमण्डलात्सर्वबाह्यमण्डलाभिमुखं गच्छन् **'सूरिए'** सूर्यः **'दोच्चंसि अहोरत्तंसि'** नवसंवत्सरस्य द्वितीयेऽहोरात्रे **'अब्भितरं'** आभ्यन्तरसम्बन्धिनं **'तच्चं मंडलं'** तृतीयं मण्डलम् **'उवसंकमित्ता चारं चरइ'** उपसंक्रम्य चारं चरति। **'ता'** तावत् **'जया णं'** यदा खलु **'सूरिए'** सूर्यः **'अब्भितरं तच्चं मंडलं'** अभ्यन्तरं तृतीयं मण्डलम् **'उवसंकमित्ता चारं चरइ'** उपसंक्रम्य चारं चरति **'तया णं'** तदा खलु **पंच पंचजोयणसहस्साइं'** पञ्च पञ्च योजनसहस्राणि **'दोण्णि य बावण्णे जोयणसयाइं'** द्वे च द्विपञ्चाशदधिके योजनशते **'पंच य सट्ठिभागे जोयणस्स'** पञ्च च षष्टिभागान् योजनस्य द्विपञ्चाशदधिकशतद्वयोत्तरपञ्चसहस्रयोजनानि योजनस्य षष्टिभागपञ्चकसहितानि (५२५२ ५/६०) **'एगमेगेणं मुहुत्तेण'** एकैकेन मुहूर्त्तेन प्रतिमुहूर्त्तमित्यर्थः **'गच्छइ'** गच्छति चलति।

कथमेतदित्याह—अस्मिन् सर्वाभ्यन्तरमण्डलात्तृतीये मण्डले मण्डलपरिधिः पञ्चदशसहस्रोत्तराणि त्रीणि लक्षाणि, तदुपरि पञ्चविंशत्यधिकं शतमेकं च (३१५१२५) अस्याः सङ्ख्यायाः पूर्वोक्तयुक्त्या षष्ट्या भागे हृते लभ्यतेऽस्य तृतीयस्य मण्डलस्य मुहूर्त्तगतिपरिमाणम् (५२५२ ५/६०) इति। अथवा अस्मात्प्राक्तनमण्डलमुहूर्त्तगतिपरिमाणादस्मिन् तृतीये मण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणविचारे प्राक् प्रतिपादितरीत्या अष्टादश एकषष्टिभागा योजनस्य अधिका लभ्यन्ते ततस्ते पूर्वमण्डलमुहूर्त्तगतिपरिमाणे (५२५१ ४७/६०) अधिकत्वेन प्रक्षि-

प्यन्ते ततो भवति यथोक्तमस्मिन् तृतीये मण्डले सूर्यस्य मुहूर्त्तगतिपरिमाणम्–(५२५२–५/६०) इति। **'तया णं'** तदा खलु **'इहगयस्स मणूसस्स'** इहगतस्य मनुष्यस्य जातावेकवचनत्वात् भरतक्षेत्रगतानां मनुष्याणामित्यर्थः **'सीयालीसाए जोयणसहस्सेहिं'** सप्तचत्वारिंशत्ता योजनसहस्रैः **'छण्णउइए य जोयणेहिं'** षण्णवत्या च योजनैः **'तेत्तीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स'** त्रयस्त्रिंशता च षष्टिभागैर्योजनस्य **'सट्ठिभागं च एगसट्ठिहा छेत्ता'** एक षष्टिभागम् एकषष्टिधा छित्त्वा **'दोहिं चुण्णियाभागेहिं'** द्वाभ्यां चूर्णिकाभागाभ्यां (४७०९६ ३३/६०। २/६१ चू) **'सूरिए'** सूर्यः **'चक्खुप्फासं'** चक्षुःस्पर्शं **'हव्वमागच्छइ'** शीघ्रमागच्छति सूर्यः पूर्वप्रदर्शितयोजनादिना दूरतश्चक्षुर्गोचरो भवतीतिभावः। तदेव दर्शयति।

अस्मिन् तृतीये मण्डले यदा सूर्यश्चारं चरति तदा योजनस्य चतुर्मुहूर्त्तैकषष्टिभागहीनोऽष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, अस्यार्धं द्विमुहूर्त्तैकषष्टिभागहीना नवमुहूर्त्ता भवन्ति। नव मुहूर्त्तान् एकषष्ट्या गुणयित्वा द्वावेकषष्टिभागौ तेभ्योऽपनीयेते तदा जाताः सप्तचत्वारिंशदुत्तराणि पञ्च शतानि एकषष्टिभागाः (५४७) तदनु अनेन राशिना तृतीयमण्डलपरिधिपरिमाणं गुण्यते, तच्च पञ्चविंशत्युत्तरैकशताधिकपञ्चदशसहस्रोत्तराणि त्रीणि लक्षाणि (३१५१२५) अस्याः संख्यायाः पूर्वसम्पादितैः सप्तचत्वारिंशदुत्तरपञ्चशतै (५४७) गुणने जाताः सप्तदशकोटयः त्रयोविंशतिर्लक्षाणि त्रिसप्ततिः सहस्राणि पञ्चसप्तत्यधिकानि त्रीणि शतानि च (१७, २३७३, ३७५)। एषाम् एकषष्ट्याः षष्टिसंख्यया गुणने यानि लब्धानि षष्ट्यधिकानि षट् त्रिंशच्छतानि (३६६०) तैर्भागो ह्रियते तदा लब्धानि षण्णवत्यधिकानि सप्तचत्वारिंशतसहस्राणि (४७०९६), शेषमुद्धरति पञ्चदशाधिके द्वेसहस्रे (२०१५)। तत इयं संख्या भाजकान्न्यूनत्वाद् योजनानि न लभ्यन्तेऽतः षष्टिभागानयनार्थम् **'एगसट्ठिहा छेत्ता'** इति मूलसूत्रवचनात् छेदराशिरेकषष्टिर्घ्रियते, तेन भागे हृते लब्धास्त्रयस्त्रिंशत् षष्टिभागा (३३।६०), एकस्य च षष्टिभागस्य सत्कौ द्वावेक षष्टिभागौ (२।६१), एष एव चूर्णिका भागः। एवं गणितरीत्या लब्धं मूलसूत्रोक्तम्–४७०९६-३३।६०–२।६१चू०) सूर्यस्य भरतक्षेत्रस्थमनुष्याणां दृष्टिपथप्राप्तता विषयकं परिमाणमिति।

'तया णं' तदा तृतीय मण्डलगतस्य सूर्यस्य चक्षुःपथप्राप्तिकाले खलु **'अट्ठारसमुहुत्तो दिवसो भवइ'** अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति किन्तु सः **'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे'** चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैरूनः हीनो भवति तथा **'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ'** द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, सा च **'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं'** चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः **'अहिया'** अधिका भवति सूर्यस्य निष्क्रमणकाले दिवसस्य हान्याः रात्रेश्च वृद्धेर्नियमसद्भावात्। अथाग्रेतनानां चतुर्थादिमण्डलानां विषयेऽतिदेशमाह -**'एवं'** इत्यादि। **'एवं खलु'** एवम्–अनेन रीत्या खलु **'एएणं उवाएणं'** एतेन पूर्वप्रदर्शितेन उपायेन विधिना सूर्यस्य प्रतिमुहूर्त्तगतिपरिमाणस्या-

ष्टादशाष्टादशषष्टिभागवृद्धिमाश्रित्येत्यर्थः **'णिक्खममाणे'** निष्क्रामन अभ्यन्तरान्मण्डलात् सर्वबाह्य-मण्डलाभिमुखं गच्छन् **'सूरिए'** सूर्यः **'तयाणंतराओ तयाणंतरं'** तदनन्तरात् तदनन्तरं **'मंड-लाओ मंडलं'** मण्डलान्मण्डलम् एकस्मान्मण्डलाद् द्वितीयं मण्डलं **'संकममाणे२'** संक्रामन् संक्रामन् **'अट्ठारस २ सट्ठिभागे जोयणस्स'** अष्टादशाष्टादशषष्टिभागान् योजनस्य व्यवहारतः परिपूर्णान् निश्चयत. किञ्चिन्न्यूनान् **'एगमेगे मंडले'** एकैकस्मिन् मण्डले **'मुहुत्तगइं'** इत्यत्र सप्तम्यर्थे द्वितीया तेन मुहूर्त्तगतौ **'परिवुड्ढेमाणे' २'** परिवर्धयन् परिवर्धयन् **'चुलसीइं'** चतुरशीतिं **'सीयाइं'** इति शीतानि किञ्चिन्न्यूनानि योजनानि, किञ्चिन्न्यूनचतुरशीतियोजनानि **'पुरिस छायं'** अत्रापि सप्तम्यर्थे द्वितीया तेन पुरुषच्छायाया, पुरुषछाया पुरुषस्य छाया यतो भवति. सा, प्रस्तावात् प्रथमत उदयमानस्य सूर्यस्य दृष्टिपथप्राप्तता गृह्यते तस्यामेकैकस्मिन् मण्डले किञ्चिदूनचतुरशीतिं योजनानि **'निव्वुड्ढेमाणे२'** निर्वर्धयन् २ ह्रापयन् २ हीनानि कुर्वन्नित्यर्थः सूर्यः **'सव्वबाहिरं मंडलं'** सर्वबाह्यं मण्डलं त्र्यशीत्यधिकशततमं मण्डलम् **उवसंकमित्ता चारं चरइ'** उपसंक्रम्य चारं चरति । अत्रायं भावः—

पूर्वं किञ्चिन्न्यूनानि चतुरशीतियोजनानि' इत्युक्तं तत्स्थूलदृष्ट्या प्रोक्तम्, परमार्थतस्तु तदेवम्—त्र्यशीतिर्योजनानि, त्रयोविंशतिश्च षष्टिभागा योजनस्य, एकस्य षष्टिभागस्य एकषष्टिधा छिन्नस्य सत्का द्विचत्वारिंशद्भागाश्च (८३–२३।६०–४२।६१) एषा संख्या दृष्टिपथप्राप्तता—विषये विषयहानौ ध्रुवराशि र्जातः । ततो यस्य यस्य मण्डलस्य दृष्टिपथप्राप्ततां ज्ञातुमिच्छद्भिः सर्वाभ्यन्तरमण्डलगततृतीयमण्डलादारभ्य अर्थात् तृतीयं मण्डलं प्रथमं परिकल्प्य ततोऽग्रे तत्तन्मण्डलसंख्यया षट्त्रिंशत्संख्या गुणनीया, तथा च—सर्वाभ्यन्तरमण्डलात्तृतीये मण्डले एकेन, चतुर्थे द्वाभ्यां पञ्चमे त्रिभिः—यावत् सर्वबाह्यमण्डले द्व्यशीत्यधिकेन शतेन गुण्यते । गुणनाद् यद् आगतं तद् ध्रुवराशिमध्ये प्रक्षेपणीयम् । प्रक्षिप्ते सति यद् जायते तत् पूर्वमण्डलगतदृष्टिपथ-प्राप्ततामध्यादपकृष्यते । अपकृष्टे या संख्या जाता तत्प्रमाणा तस्मिन् विवक्षिते मण्डले दृष्टिपथप्राप्ता ज्ञातव्या । अथ त्र्यशीतियोजनानीत्यादिरूपो ध्रुवराशिः कथमुत्पद्यते ? अत्रोच्यते—

अत्र सर्वाभ्यन्तरमण्डले दृष्टिपथप्राप्तता परिमाणम् त्रिषष्ट्यधिकशतद्वयोत्तराणि सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि, तदुपरि योजनस्य एकविंशतिः षष्टिभागाश्च (४७२६३–२१।६०), एतच्च अष्टादशमुहूर्त्तदिवसार्धे नवमुहूर्त्तगम्यं परिमाणं वर्त्तते तत एकस्मिन् मुहूर्त्तैकषष्टिभागे पूर्वोक्तदृष्टिपथप्राप्तताविषयकं परिमाणं कियदागच्छतीति विचारणायां मुहूर्त्तानामेकषष्टिभागकरणार्थं नवमुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते जातानि एकोनपञ्चाशदधिकानि पञ्चशतानि (५४९) मुहूर्त्तैक षष्टिभागाः । एतैर्भागो ह्रियते लब्धाः षडशीतिर्योजनानि पञ्चषष्टिभागा योजनस्य, एकस्य च षष्टिभागस्य एकषष्टिधा छिन्नस्य सत्काश्चतुर्विंशतिभागाः—(८६–५।६० $\frac{२४}{६१}$)

इति । गणितप्रकारश्चेत्थम्—सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि त्रिषष्ट्युत्तरशतद्वयं च, एकविंशतिश्च षष्टि-भागाः (४७२६३—२१।६०) एतस्याः संख्याया एकोनपञ्चाशदधिकपञ्चशत (५४९) संख्यया भागो ह्रियते, तत्र—योजनानां (४७२६३) भागे हृते लब्धा षडशीतिः (८६), शेषमेकोन-पञ्चाशत् (४९) उद्धरति, अस्याल्पत्वाद् योजनानि नायान्ति तत् एतस्य षष्टिभागानयनार्थं षष्ट्या गुण्यते, जातानि चत्वारिंशदधिकानि एकोन त्रिंशच्छतानि (२९४०) अस्मिन् उपरिस्था एकविंशतिः षष्टिभागाः क्षिप्यन्ते जातानि—एकषष्ठ्यधिकानि एकोनत्रिंशच्छतानि (२९६१), अस्य एकोनपञ्चाशदधिकपञ्चशतेन (५४९) भागो ह्रियते लब्धाः पञ्चषष्टिभागाः (५।६०) शेषं षोडशाधिकं शतद्वयमुद्धरति (२१६) पुनरप्यस्याल्पत्वात् षष्टिभागानायान्ति तत एक षष्टिभागानयनार्थं शेषमेकषष्ट्या गुण्यते जातानि त्रयोदशसहस्राणि शतमेकं षट् सप्तत्य-धिकं च (१३१७६), पुनश्चास्य एकोनपञ्चाशदधिकपञ्चशतैः (५४९) भागो ह्रियते लब्धा-श्चतुर्विंशतिरेकषष्टिभागाः पूर्णाङ्काः, न किञ्चिदवशिष्यते—तच्च—(८६—५।६० । २४।६१) इति ।

तथा चाङ्कतो गणितमिदम्—

५४९) ४७२६३ (८६
४३९२
×३३४३
३२९४
४९
४९ गुणनम्
६०
२९४० गुणनफलम्
२१ षष्टिभाग प्रक्षेपणे
२९६१ जाता अङ्क श्रेणि
५४९) २९६१ (५ भागाः ।—षष्टिभागाः ५
२७४५
२१६ शेषम् ।
२१६
६१ } गुणनम्
१३१७६ गुणनफलम्

५४९)१३१७६|२४ | तथा च-८६-$\frac{५}{६०}$|$\frac{२४}{६१}$ इति सम्पन्नम् ।
१०९८
×२१९६
२१९६ पूर्णाङ्काः ।
००००

पूर्वपूर्वमण्डलादनन्तरानन्तरप्रत्येकमण्डले परिधिपरिमाणविचारणायामष्टादशाष्टादशयोजनानि व्यवहारतः परिपूर्णानि वर्धन्तेऽतः पूर्वपूर्वमण्डलगतमुहूर्त्तगतिपरिमाणादनन्तरानन्तरे प्रतिमण्डलं मुहूर्त्तगतिपरिमाणविचारणायामष्टादशाष्टादश एकषष्टिभागा योजनस्य प्रतिमुहूर्त्तं प्रवर्धमाना ज्ञातव्याः । प्रतिमुहूर्त्तैकषष्टिभागाश्चाष्टादश एकस्य षष्टिभास्य सत्का एकषष्टिभागाः । सर्वाभ्यन्तरमण्डलादनन्तरे मण्डले नवभिर्मुहूर्त्तैः, एकेन मुहूर्त्तैकषष्टिभागेन हीनै र्यावन्मात्रं क्षेत्रं व्याप्यते तावन्मात्रे क्षेत्रे स्थितः सूर्यो दृष्टिपथप्राप्तो भवति, ततोऽष्टादशमुहूर्त्तदिवसपरिमाणस्यार्धे नव, ततो मुहूर्त्तानामेकषष्टिभागानयनार्थं नवमुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि एकोनपञ्चाशदधिकानि-पञ्चशतानि (५४९) । सूर्यस्य निष्क्रमणकाले प्रतिमण्डलं दिवसो मुहूर्त्तस्य द्वाभ्यामेकषष्टिभागाभ्यां हीनो भवतीति द्वयोरेकषष्टिभागयोरप्यर्धे क्रियते ततो जात एकएकषष्टिभागः, अयमेकोनपञ्चाशदधिकपंञ्चशतेभ्योऽपनीयते जातानि अष्टचत्वारिंशदधिकानि पञ्चशतानि (५४८) । एतैरष्टादशानां गुणने जातानि चतुःषष्ट्यधिकानि अष्टनवतिशतानि (९८६४) एषामेक षष्टिभागकरणार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धा एकषष्ट्यधिकशतसंख्यकाः (१६१) षष्टिभागाः तथा त्रिचत्वारिंशच्च एकषष्टिभागस्य सत्का एकषष्टिभागाः ($\frac{१६१}{६०}$|$\frac{४३}{६१}$) । एक षष्ट्यधिकशतसंख्यकानां षष्टिभागानां योजनानयनार्थं षष्ट्या भागो ह्रियते लब्धे द्वे योजने, शेषा एकचत्वारिंशत् षष्टिभागाः स्थिताः, ततो जातं द्वे योजने एकचत्वारिंशच्च षष्टिभागा योजनस्य, एकस्य षष्टिभागस्य सत्कास्त्रिचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः (२-$\frac{४१}{६०}$|$\frac{४३}{६१}$) इति । एषा संख्या, पूर्वोक्तात्-षडशीतियोजनानि पञ्चषष्टिभागाः योजनस्य, एकषष्टिभागस्य च सत्का श्चतुर्विंशतिरेकषष्टिभागाः (८६-$\frac{५}{६०}$|$\frac{२४}{६१}$) इत्येतस्मादपकृष्यते । अपकृष्टे च तस्मिन् स्थिताः शेषाः त्र्यशीति योजनानि त्रयोविंशतिः षष्टिभागा, योजनस्य, एकस्य षष्टिभागस्य सत्का द्विचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः (८३-$\frac{२३}{६०}$|$\frac{४२}{६१}$) एतावत द्वितीये मण्डले दृष्टिपथप्राप्तता विषये सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतदृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणात् हानितया लभ्यते । अनेन किमित्याह—

सर्वाभ्यन्तरमण्डलगताद् दृष्टिपथप्राप्ततायां हानौ ध्रुवराशिरस्ति, अतएव ध्रुवराशिपरिमाणाद् द्वितीये मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणमेतावता हीनं जायत इति। एतदेव अतोऽग्रेऽनन्तरानन्तरविषयदृष्टिपथप्राप्तताविचारणायां हानौ ध्रुवराशिरिति ध्रुवराशेरुत्पत्तिः।

ततो द्वितीयमण्डलादनन्तरं तृतीये मण्डले एष एव ध्रुवराशिः एकस्य षष्टिभागस्य सत्कैः षट्त्रिंशता एकषष्टिभागैः सहितः सन् यावान् भवति तथाहि—त्र्यशीतिर्योजनानि चतुर्विंशतिः षष्टिभागा योजनस्य, एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः सप्तदश एकषष्टिभागाः (८३—$\frac{२४}{६०}\Big|\frac{१७}{६१}$) इति। एतावान् द्वितीयमण्डलगताद् दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणात् शोध्यते ततो भवति यथोक्तं तृतीयमण्डले दृष्टिपथप्राप्ततविषयकं परिमाणमिति। एवं चतुर्थे मण्डले एष एव ध्रुवराशिर्द्वासप्तत्या सहितः कार्यः, यतोहि चतुर्थं मण्डलं तृतीयमण्डलमाश्रित्य गण्यते तदा द्वितीयं भवति ततः षट्त्रिंशत् द्वाभ्यां गुण्यते तदा द्वासप्ततिर्भवतीत्यतो द्वासप्तत्या सहितः क्रियते तदा जायते—त्र्यशीतिर्योजनानि चतुर्विंशतिः षष्टिभागा योजनस्य, एकस्य षष्टिभागस्य सत्कास्त्रिपञ्चाशद् एकषष्टिभागाः (८३—$\frac{२४}{६०}\Big|\frac{५३}{६१}$) इति। एष राशितृतीयमण्डलगताद् दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणात् शोध्यते ततो भवति चतुर्थे मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततविषयकं परिमाणम्, तथाहि त्रयोदशाधिकानि सप्तचत्वारिंशत्सहस्रयोजनानि, अष्टौ च षष्टि भागा योजनस्य, एकस्य च षष्टिभागस्य सत्का दश एकषष्टिभागाः, ते चाङ्कतो यथा—(४७०१३ $\frac{८}{६०}\Big|\frac{१०}{६१}$) अनया युक्त्या पञ्चममण्डलादारभ्य यावत् एकाशीत्यधिकशततममण्डलपर्यन्तं दृष्टिपथप्राप्ततविषयकं परिमाणं स्वयमूहनीयम्। अथ सर्वान्तिमसर्वबाह्यमण्डलव्यवस्था क्रियते, तथाहि—सर्वबाह्यमण्डलं च तृतीयमण्डलमवधीकृत्य द्व्यशीत्यधिकशततमं (१८२) मण्डलं भवति, अतः पूर्वोक्तनियमेन षट्त्रिंशद् द्व्यशीत्यधिकशतेन गुण्यते, जातानि द्विपञ्चाशदधिकानि पञ्चषष्टिशतानि (६५५२) ततः अस्य राशेः षष्टिभागानयनार्थमेषष्ट्या भागो ह्रियते तदा लब्धं सप्तोत्तरमेकं शतम् (१०७) शेषाः पञ्चविंशतिरेकषष्टिभागास्तिष्ठन्ति (२५) एषा पञ्चविंशति र्ध्रुवराशौ प्रक्षिप्यते, प्रक्षेपणे च जातम्—पञ्चाशीतिर्यो जनानि एकादश षष्टिभागा योजनस्य, एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षट् एकषष्टिभागाः (८५—$\frac{११}{६०}\Big|\frac{६}{६१}$)। षट् त्रिंशतश्चोत्पत्तिर्यथा—पूर्वस्मात् २ मण्डलादग्रेतनेऽग्रेतने मण्डले दिवसो द्वाभ्यां द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यां हीनो भवति, प्रतिमुहूर्त्तैकषष्टिभागाच्चाष्टादश एकस्य षष्टिभागस्य सत्का एकषष्टिभागा हीयन्ते ततो द्वयोरष्टादशक रूपयो-

रेकषष्टिभागयोर्मीलने जाताः षट्त्रिंशत्। एते चाष्टादश एकषष्टिभागा निश्चयनयेन कलया न्यूना भवन्ति न तु परिपूर्णाः, किन्तु व्यवहारनयमाश्रित्य पूर्वं परिपूर्णतया विवक्षिताः। तच्च कलया न्यूनत्वं प्रतिमण्डलं भवद् भवद् यदा द्व्यशीत्यधिकशततमे मण्डले एकत्र पिण्डितं क्रियते तदा एकषष्टिभागाः षष्टिसंख्यका हीना भवन्ति, एतदपि व्यवहारत एव ज्ञातव्यम् निश्चयतस्तु किञ्चिदधिका अपि एकषष्टिभागा हीयन्ते, इत्यवसेयम्। तत एते अष्टषष्टिभागाः अपनीयन्ते, तदपनयने च पञ्चाशीतिर्योजनानि नवषष्ठिभागा योजस्य। एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः $\left(८५-\frac{९}{६०}\middle|\frac{६०}{६१}\right)$ इति जातम्,, तत एतत् सर्वबाह्यमण्डलात् पूर्वस्थितात् एकाशीत्यधिकशततममण्डलगतात्—एकत्रिंशत्सहस्राणि षोडशोत्तराणि नवशतयोजनानि, एकोनचत्वारिंशत् षष्टिभागा योजनस्य, एकस्य च षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः " $\left(३१९१६-\frac{३९}{६०}\middle|\frac{६०}{६१}\right)$ इत्येवं रूपात् दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणात् शोध्यते ततो जायते यथोक्तं सर्वबाह्ये मण्डले दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणम् तच्च सूत्रकार स्वयमेवाग्रे कथयिष्यति। तत एवं पुरुषच्छायाया दृष्टिपथप्राप्तनारूपायां द्वितीयादिषु केषुचिन्मण्डलेषु चतुरशीतिं २ किञ्चिन्न्यूनानि योजनानि उपरितनेषु तु मण्डलेषु अधिकानि अधिकतराणि योजनानि हापयन्—हापयन् तावदवसेयं यावत् सूर्यः सर्वबाह्यमण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति। अथाग्रे मूलं व्याख्यायते—'ता जयाणं' इत्यादि।

'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः '**सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ**' सर्वबाह्यमण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति '**तया णं**' तदा खलु '**पंच जोयणसहस्साइं**' पंचयोजनसहस्राणि '**तिन्नि य पंचुत्तराइं जोयणसयाइं** त्रीणि च पञ्चोत्तराणि योजनशतानि '**पण्णरस य सट्ठिभागे जोयणस्स**' पञ्चदश च षष्टिभागान् योजनस्य $\left(५३०५\frac{१५}{६०}\right)$ '**एगमेगेणं मुहुत्तेणं**' एकैकेन मुहूर्त्तेन '**गच्छइ**' गच्छति चलति। तत्कथमित्याह—अस्मिन् सर्वबाह्ये मण्डले परिधिपरिमाणं त्रीणि लक्षाणि अष्टादशसहस्राणि, पञ्चदशोत्तराणि त्रीणि शतानि च (३१८३१५) ततोऽस्य पूर्वोक्तयुक्त्या षष्ट्या भागो ह्रियते, ततो लभ्यते यथोक्तं पञ्चाधिकशतत्रयोत्तराणि पञ्चसहस्राणि' पञ्चदश चैकषष्टिभागा योजनस्य $\left(५३०५\frac{१५}{६०}\right)$ मुहूर्त्तगतिपरिमाणमिति। '**तया णं**' तदा खलु '**इह गयस्स मणूसस्स**' इह गतस्य मनुष्यस्य जातावेकवचनत्वात्—भरतक्षेत्रगतानां मनुष्याणामित्यर्थः '**एकतीसाए जोयणसहस्सेहिं**' एकत्रिंशता योजनसहस्रैः '**अट्ठहिं एक्कतीसेहिं जोयणसएहिं**'

अष्टभिरेकत्रिंशैरेकत्रिंशतासहितैः योजनशतैः **'तीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स'** त्रिंशता च षष्टिभागैर्योजनस्य (३१८३१$\frac{३०}{६०}$) **'सूरिए'** सूर्यः **'चक्खुप्फासं'** चक्षुः स्पर्शं चक्षुर्विषयगोचरं **'हव्वं'** शीघ्रम् **'आगच्छइ'** आगच्छति प्राप्नोति। अस्मिन् सर्वबाह्यमण्डले सूर्यस्य संचरण-समये दिवसो द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणो भवति। दिवसस्य चार्धेन यावत्परिमितं क्षेत्रं व्याप्तं भवति तावत्परिमिते क्षेत्रे व्यवस्थित उदयमानः सूर्य उपलभ्यते। द्वादशानां मुहूर्त्तानामर्धं षड्मुहूर्त्ता भवन्ति ततो यस्मिन् मण्डले मुहूर्त्तगतिपरिमाणं पञ्चोत्तरशतत्रयाधिकानि पञ्चसहस्रयो-जनानि पञ्चदश च षष्टिभागा योजनस्य (५३०५$\frac{१५}{६०}$ एतत् षड्भिर्गुणने समायाति यथोक्तं दृष्टि पथप्राप्तता परिमाणमिति। **'तया णं'** तदा खलु **'उत्तमकट्ठपत्ता'** उत्तमकाष्ठा प्राप्ता परमप्रकर्ष-संपन्ना **'उक्कोसिया'** उत्कर्षिका सर्वोत्कृष्टा **'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ'** अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रि र्भवति, तथा **'जहण्णए'** जघन्यकः सर्वलघुः **'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ'** द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। **'एस णं'** एतत् खलु **'पढमे छम्मासे'** प्रथमं षण्मासम्। **'एस णं'** एतत् खलु **'पढमस्स छम्मासस्स'** प्रथमस्य षण्मासस्य **'पज्जवसाणे'** पर्यवसानम्—अन्तिममहोरात्र मिति ॥सू० २॥

प्रोक्तमिदं सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलान्निष्क्रमणविषयकं प्रथमं षण्मासम्, अथ, सर्वाभ्यन्तर-मण्डले सूर्यस्य प्रवेशविषयकं द्वितीयं षण्मासं प्रोच्यते—**'से पविसमाणे सूरिए'** इत्यादि

मूलम्—से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहि-राणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उव-संकमित्ता चारं चरइ तया णं पंच २ जोयणसहस्साइं तिण्णि य चउरुत्तराइं जोयणस-याइं सत्तावण्णं च सट्ठिभाए जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ, तया णं इह गयस्स मणूसस्स एक्कतीसाए जोयणसहस्सेहिं नवहिं य सोलसुत्तरेहिं जोयणसएहिं एगूण चत्तालीसाए सट्ठिभागेहिं जोयणस्स, सट्ठिभागं च एगसट्ठिहा छेत्ता सट्ठीए चुण्णिया-भागेहिं सूरिए चक्खुफासं हव्वमागच्छइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगसट्ठि-भागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए। से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए बाहिरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं पंच जोयण सहस्साइं तिन्नि य चउत्तराइं जोयणसयाइं एगूणचत्तालीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स

एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ तया णं इहगयस्स मणूसस्स एगाहिएहिं बत्तीसाए जोयणसहस्सेहिं एगूणपण्णाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स, सट्ठिभागं च एगट्ठिहा छेत्ता तेवीसाए चुण्णियाभागेहिं सूरिए चक्खुप्फासं हव्वमागच्छइ तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए। एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ तयाणंतरं मंडलाओ मंडलं संकममाणे संकममाणे अट्ठारस २ सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगे मंडले मुहुत्तगइं णिव्वुड्ढेमाणे २ साइरेगाइं पंचासीइं २ जोयणाइं पुरिसच्छायं अभिवुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं पंच जोयणसहस्साइं दोण्णि य एक्कावण्णे जोयणसयाइं एगूणतीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ तया णं इहगयस्स मणूसस्स सीयालीसाए जोयणसहस्सेहिं दोहि य तेवट्ठेहिं जोयणसएहिं एक्कवीसाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स सूरिए चक्खुफासं हव्वमागच्छइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। एस णं दोच्चे छम्मासे। एस णं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे। एस णं आइच्चे संवच्छरे। एस णं आइच्चसंवच्छरस्स पज्जवसाणे ॥सू० ३॥

॥ बितियस्स पाहुडस्स तइयं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥ २ ॥ ३ ॥

॥ बितियं पाहुडं समत्तं ॥२॥

छाया- स प्रविशन् सूर्यः द्वितीयं षण्मासम् अयन् प्रथमे अहोरात्रे बाह्यानन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तावत् यदा खलु सूर्यः बाह्यानन्तरं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु पञ्चयोजनसहस्राणि त्रीणि च चतुरुत्तराणि योजनशतानि, सप्तपञ्चाशतं च षष्टिभागान् योजनस्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति तदा खलु इहगतस्य मनुष्यस्य एकत्रिंशता योजनसहस्रैः नवभिश्च षोडशोत्तरैः योजनशतैः एकोनचत्वारिंशता षष्टिभागैर्योजनस्य, षष्टिभागं च एकषष्टिधा छित्त्वा षष्ट्या चूर्णिकाभागैः सूर्यः चक्षुः स्पर्शं हव्यमागच्छति, तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् ऊना द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् अधिकः। स प्रविशन् सूर्यः द्वितीये अहोरात्रे बाह्यं तृतीयं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः बाह्यं तृतीयं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु पञ्च योजनसहस्राणि त्रीणि च चतुरुत्तराणि योजनशतानि एकोनचत्वारिंशतं च षष्टिभागान् योजनस्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, तदा खलु इह गतस्य मनुष्यस्य एकाधिकैः द्वात्रिंशता योजनसहस्रैः एकोनपञ्चाशता च षष्टिभगैः योजनस्य, षष्टिभागं च एकषष्टिधा छित्त्वा त्रयोविंशत्या चूर्णिकाभागैः सूर्यः चक्षुःस्पर्शं हव्यमागच्छति तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमु

हूर्त्तैः ऊना, द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैरधिकः । एवं खलु एतेन उपायेन प्रविशन् सूर्यः तदनन्तरात् तदनन्तरं मण्डलात् मण्डलं संक्रामन् २ अष्टादश अष्टादशषष्टिभागान् योजनस्य एकैकस्मिन् मण्डले मुहूर्त्तगतिं निर्वर्धयन् २ सातिरेकाणि पञ्चाशीतिं २ योजनानि पुरुषच्छायाम् अभिवर्धयन् २ सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति । तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु पञ्चयोजनसहस्राणि द्वे च एकपञ्चाशत्ते योजनशते एकोनत्रिंशतं च षष्टिभागान् योजनस्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति तदा खलु इहगतस्य मनुष्यस्य सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैः द्वाभ्यां च त्रिषष्टाभ्यां योजनशताभ्यां एकविंशत्या च षष्टिभागैर्योजनस्य सूर्यः चक्षुःस्पर्शं हव्यमागच्छति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । एतत् खलु द्वितीयं षण्मासम् । एतत् खलु द्वितीयस्य षण्मासस्य पर्यवसानम् । एष खलु आदित्यः संवत्सरः । एतत् खलु आदित्यसंवत्सरस्य पर्यवसानम् । सू० ३।

द्वितीयप्राभृतस्य तृतीयं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ।२-३।

द्वितीयं प्राभृतं समाप्तम् ॥२॥

व्याख्या— 'से' स 'पविसमाणे' प्रविशन् सर्वबाह्यमण्डलात् सर्वाभ्यन्तरमण्डलाभिमुखं गच्छन् 'दोच्चं छम्मासं' द्वितीयं दिवसवृद्धिरूपं षण्मासम् 'अयमाणे' अयन् प्राप्नुवत् ,'पढमंसि अहोरत्तंसि' प्रथमेऽहोरात्रे 'बाहिराणंतरं मंडलं' बाह्यानन्तरं सर्व बाह्यमण्डलादनन्तरं सर्वाभ्यन्तरगमनमार्गस्थितं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसक्रम्य चारं चरति । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'बाहिराणंतरं मंलल' बाह्यानन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'पंचजोयणसहस्साइ' पञ्चयोजनसहस्राणि पञ्चसहस्रयोजनानि 'तिण्णि य चउत्तराइं जोयणसयाइं त्रीणि च चतुरुत्तराणि योजनशतानि सत्ता पण्णं च सट्ठि भाए जो यणस्स सप्तपञ्चाशतं च षष्टिभागान् योजनस्य ($५३०४\frac{५७}{६०}$)'एगमेगेणं मुहुत्तेणं गच्छइ' एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति । तथाहि—अत्रमण्डले परिधिपरिमाणं—सप्तनवत्यधिक द्विशतोत्तराष्टादशसहस्राधिक त्रिलक्ष योजनानि (३१८२१७) । ततोऽस्याः संख्यायाः प्रागुक्तयुक्त्या षष्ट्या भागो ह्रियते तदा लब्धं यथोक्तं मुहूर्त्तगतिपरिमाणम् ($५३०४\frac{५७}{६०}$) अथ दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणमाह- तयाणं' इत्यादि । 'तया णं' तदा खलु 'इहगयस्स मणूसस्स' इहापि पूर्ववज्जातावेकवचनं तत इहगतानां भरतक्षेत्रस्थितानां मनुष्याणाम् 'एक्कतीसाए जोयण सहस्सेहिं' एकत्रिंशता योजनसहस्रैः 'नवहि य सोलसुत्तरेहिं जोयणसएहिं' नवभिश्च षोडशोत्तरैर्योजनशतैः, 'एगूणचत्तालीसाए सट्ठिभागेहिं जोयणस्स' एकोनचत्वारिंशतापष्टिभागैर्योजनस्य 'सट्ठिभागं च एगट्ठिहा छेत्ता' षष्टिभागं च एकषष्टिधा छित्वा

तत्सत्कैः 'सट्ठीए चुण्णियाभागेहिं' षष्ट्या चूर्णिकाभागैः (३१९१६ $\frac{३९}{६०}$|$\frac{६०}{६१}$) 'सूरिए' सूर्यः 'चक्खुप्फासं' चक्षुः स्पर्शं 'हव्वमागच्छइ' हव्यमागच्छति—चक्षुर्गोचरी भवतीत्यर्थः । कथमिति दर्श्यते—सूर्यस्यास्मिन् मण्डले प्रथमेऽहोरात्रे संचरणसमये द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामधिको द्वादश मुहूर्त्तो दिवसो भवति, ततो द्वादशानां दिवसमुहूर्त्तानामर्धं क्रियये तदा जाताः षड् मुहूर्त्ताः द्वयोर्मुहूर्त्तैकभागयोरर्धमेको मुहूर्त्तैकषष्टिभागश्च ततः षड् मुहूर्त्ताः एकश्च मुहूर्त्तैकषष्टिभागः (६ $\frac{१}{६१}$) इति जातम् । तत एषां सर्वेषामेकषष्टिभागानयनार्थमेतान् षडपि मुहूर्त्तान् एकषष्ट्या गुणयित्वा एकएकषष्टिभागस्तत्राधिकत्वेन प्रक्षिप्यते ततो जातानि सप्तषष्ट्युत्तराणि त्रीणि शतानि (३६७) । ततः सर्ववाह्यमण्डलादग्रेतने द्वितीये मण्डले यत्परिधिपरिमाणम्—सप्तनवत्यधिकद्विशतोत्तराष्टादशसहस्राधिकत्रिलक्षयोजनसंख्यकम्—(३१८२९७) तत् एभिर्दिवसमुहूर्त्तार्द्धानामेकषष्टिभागैः सप्तषष्ट्युत्तरत्रिशत (३६७) संख्यकैर्गुण्यते जाता एकादश कोटयः, अष्टषष्टिर्लक्षाः, चतुर्दशसहस्राणि, नवनवत्यधिकानि नवशतानि च (११, ६८, १४, ९९९) अस्याः संख्याया एकषष्टिगुणितया षष्ट्या षष्ट्यधिक षट् त्रिंशच्छतरूपया (३६६०) भागो ह्रियते । हृते च भागे लब्धानि षोडशोत्तरनवशताधिकानि एकत्रिंशत् सहस्राणि (३१९१६) । उद्धरन्ति, शेषाणि एकोनचत्वारिंशदधिकानि चतुर्विंशतिशतानि (२४३९) । एभिर्योजनानि नायान्ति ततोऽस्य षष्टिभागकरणार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा एकोनचत्वारिंशत् षष्टिभागाः, शेषा स्थिताः षष्टिः ते च एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः, तथा चाङ्कतः—(३१९१६ $\frac{३९}{६०}$|$\frac{६०}{६१}$) इत्यायातं—यथोक्तं चक्षुःपथप्राप्ततविषयं परिमाणम् 'तया णं' तदा खलु सूर्यस्य सर्ववाह्यानन्तरार्वाक्तनद्वितीयमण्डलचारकाले खलु 'अट्ठारसमुहुत्ता' अष्टादशमुहूर्त्ता 'राई भवइ' रात्रिर्भवति, सा 'दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुमुहूर्त्ताभ्याम् 'ऊणा' ऊना हीना भवति, । 'दुवालसमुहुत्तो दिवसो भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, स च 'दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् 'अहिए' अधिको भवति । तथा 'से' सः 'पविसमाणे' प्रविशन् सर्वाभ्यन्तरमण्डलाभिमुखं गच्छन् सर्ववाह्यानन्तरार्वाक्तन द्वितीयस्मात् मण्डलादग्रे गच्छन्नित्यर्थः 'सूरिए' सूर्यः 'दोच्चंसि अहोरत्तंसि' द्वितीयेऽहोरात्रे 'बाहिरं' बाह्यं बाह्यमार्गप्राप्तत्वाद बाह्यं 'तच्चं मंडलं' तृतीयं सर्ववाह्यमण्डलमाश्रित्य तृतीयस्थानगतं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उप कम्य चारं चरति । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'बाहिरं तच्चं मंडलं' बाह्यं तृतीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता

चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'पंचजोयणसहस्साइं' पञ्चयोजनसहस्राणि पञ्चसहस्रयोजनानि 'तिन्नि य चउत्तराइं जोयणसयाइं' त्रीणि च चतुरुत्तराणि योजनशतानि 'एगूणचत्तालीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स' एकोनचत्वारिंशतं च षष्टि भागान् योजनस्य (५३०४ $\frac{३९}{७६}$) 'एगमेगेणं मुहुत्तेणं' एकैकेन मुहूर्त्तेन 'गच्छइ' गच्छति । अत्र मण्डले परिधिपरिमाणं त्रीणि लक्षाणि अष्टादशसहस्राणि एकोनाशीत्यधिकशतद्वयोत्तराणि (३१८२७९) अस्य षष्ट्या भागे हृते लभ्यते यथोक्तं मुहूर्त्तगतिपरिमाणम् (५३०४-$\frac{३९}{६०}$) इति । 'तया णं' तदा खलु 'इह गयस्स मणूसस्स' इह गतस्य मनुष्यस्य भरतक्षेत्रस्थितमनुष्यानामित्यर्थः 'एगाहिएहिं बत्तीसाए जोयणसहस्सेहिं' एकाधिकैः द्वात्रिंशता योजनसहस्रैः 'एगूणपण्णाए य सट्ठिभागेहिं जोयणस्स' एकोनपञ्चाशता च षष्टिभागैर्योजनस्य, 'सट्ठिभागं च एगसट्ठिहा छेत्ता' षष्टिभागं च एकषष्टिधा छित्त्वा षष्टिभागस्यैकषष्टिधा छेदनप्राप्तैः 'तेवीसाए चुण्णियाभागेहिं' त्रयोविंशत्या चूर्णिकाभागैः (३२०१ $\frac{४९}{६०}$|$\frac{२३}{६१}$) 'सूरिए' सूर्यः 'चक्खुफासं' चक्षुःस्पर्शं 'हव्वमागच्छइ' हव्यमागच्छति । तथाहि—

सूर्यस्य प्रवेशसमयेऽत्र तृतीयमण्डले दिवसः मुहूर्त्तैकषष्टिभागचतुष्टयाधिको द्वादशमुहूर्त्तप्रमाणो दिवसो भवति, तस्यार्धं षड्मुहूर्त्ताः द्वाभ्यां मुहूर्त्तैकषष्टिभागाभ्यामधिकः (मु. ६—$\frac{२}{६२}$) तत एकषष्टिभागकरणार्थं षडपि मुहूर्त्ता एकषष्ट्या गुण्यन्ते जाता षट् षष्ट्यधिकानि त्रीणि शतानि (३६६) अत्र द्वावेकषष्टिभागौ प्रक्षिप्येते ततो जातमष्टषष्ट्यधिकं शतत्रयम् (३६८) एषा गुणकसंख्या विज्ञेया । ततोऽस्मिन् तृतीयमण्डले परिधिपरिमाणं त्रीणि लक्षाणि अष्टादशसहस्राणि एकोनाशीत्यधिके द्वे शते च (३१८२७९) एते गुण्याङ्का ज्ञातव्याः । पूर्वसम्पादितगुणकसंख्यया (३६८) गुण्याङ्काः (३१८२७९) गुण्यन्ते, जातानि एकादश कोटयः, एकसप्ततिर्लक्षाणि, षड्विंशतिः सहस्राणि, द्विसप्तत्यधिकानि षट् शतानि च—(११—७१—२६—६७२) । ततश्च षष्टिरेकषष्ट्या गुण्यते तदा षष्ट्यधिकषट् त्रिंशत् शतानि (३६६०) जायन्ते, अनेन भागो हियते, हृते च भागे लब्धानि द्वात्रिंशत्सहस्राणि तदुपर्येकं च (३२००१) शेषतया द्वादशोत्तराणि त्रीणि सहस्राणि (३०१२) समुद्धरन्ति । एतेषां षष्टिभागकरणार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धा एकोनपञ्चाशत् षष्टि भागाः ($\frac{४९}{६०}$) त्रयोविंशतिश्च एकस्य षष्टिभागस्य सत्का एक

षष्टिभागाः $(\frac{२३}{६१})$ सर्वसंख्या– (३२००१–$\frac{४९}{६०}|\frac{२३}{६१}$) इति ।

'तया णं' तदा पूर्वोक्ते सूर्यस्य चक्षुःस्पर्शसमये खलु **'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवई'** अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति किन्तु सा **'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणा'** चतुर्भिरेकषष्टि भागमुहूर्त्तैः ऊना हीना भवति **'दुवालसमुहुत्तो' दिवसो भवइ'** द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति स च **'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए'** चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैरधिको भवति । अथाग्रे चतुरादि मण्डलेषु चातिदेशमाह–**'एवं खलु'** इत्यादि ।

'एवं' एवम्–अनेन प्रकारेण खलु निश्चितम् **'एएण'** एतेन पूर्वप्रदर्शितेन **'उवाएण'** उपायेन विधिना **'पविसमाणे'** प्रविशन् तत्तदभ्यन्तरचतुरादि मण्डलाभिमुखं गच्छन् **'सूरिए'** सूर्यः **'तयाणंतराओ तयाणंतरं'** तदनन्तरात् तदनन्तरं **'मंडलाओ मंडलं'** मण्डलान्मण्डलम् एकस्मात् मण्डलाद् द्वितीयं मण्डलं **'संकममाणे २'**–संक्रामन् २ अग्रेऽग्रे गतिं कुर्वन् **'अट्ठारसअट्ठारस' सट्ठिभागे जोयणस्स'** प्रतिमण्डलमष्टादशाष्टदशषष्टिभागान् योजनस्य व्यवहारतः परिपूर्णान्, निश्चयतः किञ्चिन्न्यूनान् **'एगमेगे मंडले'** एकैकस्मिन् मण्डले प्रत्येकमण्डले **'मुहुत्तगइं'** मुहूर्त्तगतिम् अत्र सप्तम्यर्थे द्वितीया प्राकृतत्वात्, तेन मुहूर्त्तगतौ–मुहूर्त्तगतिपरिमाणे **'णिव्वुड्ढेमाणे २'** निर्वर्धयन् २ हापयन् २ परिरयमधिकृत्य हानिसद्भावात् **'साइरेगाइं'** सातिरेकाणि किञ्चिदधिकानि **'पंचासीइं जोयणाइं'** पञ्चाशीतिं योजनानि **'पुरिसच्छायं'** पुरुषच्छायाम् अत्रापि सप्तम्यर्थे द्वितीया भावाद् पुरुषच्छायायां दृष्टिपथप्राप्ततारूपायाम् **'अभिवुड्ढमाणे २'** अभिवर्धयन् २ **'सव्वब्भंतरं मंडलं'** सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् **'उवसंकमित्ता चारं चरइ'** उपसंक्रम्य चारं चरति ।

अत्र तृतीयमण्डलादारभ्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलं द्व्यशीत्यधिकशततमं भवति ततश्चतुर्थमण्डलादारभ्य एकाशीत्यधिकशततममण्डलपर्यन्तं ह्रापनाभिवर्धनप्रकारः पूर्वोक्तयुक्त्या स्वयमूहनीयः । विस्तरतो व्याख्या च सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रस्य मत्कृतायां सूर्यज्ञप्तिप्रकाशिकायां व्याख्यायां विलोकनीया । अथ सर्वाभ्यन्तरमण्डलस्य गणितप्रकारः प्रदर्श्यते, तथाहि–यदा तु सर्वाभ्यन्तर मण्डले सूर्यश्चारं चरति तदा यदि दृष्टिपथप्राप्तताविषयकं परिणामं ज्ञातुमिष्यते तदा षट्त्रिंशत् (३६)द्व्यशीत्यधिकशतेन (१८२) गुण्यते तृतीयमण्डमधिकृत्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलस्य द्व्यशीत्यधिकशततमसंख्यकत्वात् । ततो गुणने जातानि द्विपञ्चाशदधिकानि पञ्चषष्टिशतानि (६५५२) एषामेकषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धं सप्तोत्तरमेकं शतं $(\frac{१०७}{६०})$ षष्टिभागानाम्

शेषं पञ्चविंशतिरेकपष्टिभागाः ($\frac{२५}{६१}$)एतच्च पञ्चाशीतिर्योजनानि नवषष्टिभागा योजनस्य एकस्य पष्टिभागस्य सत्काः षष्टिरेकषष्टिभागाः (८५ $\frac{९}{६०}$ $\frac{६०}{६१}$) इत्येवं रूपात् ध्रुवराशेरप-कृष्यते जातानि पश्चात् त्र्यशीतिर्योजनानि, द्वाविंशतिः षष्टिः भागा योजनस्य, एकस्य षष्टि भागस्य सत्काः पञ्चत्रिंदेकषष्टिभागाः (८३- $\frac{२२}{६०}$ $\frac{३५}{६१}$ । अत्र यत् षट्त्रिंशत २ एकषष्टिभागाः प्रोक्तास्ते परमार्थतः कलया न्यूना लभ्यन्ते इति प्रागेवोक्तम्, तच्च कलान्यूनत्वं प्रतिमण्डलं भवत् २ यदा द्व्यशीत्यधिकशततमे मण्डले एकत्र पिण्डितं क्रियते तदा अष्टषष्टिरे-कषष्टि भागा लभ्यन्ते । तत एतेऽपि भूयः प्रक्षिप्यते ततो जायते–त्र्यशीतिर्योजनानि त्रयोविंशतिः षष्टिभाग योजनस्य, एकस्य षष्टिभागस्य सत्काः द्विचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः(८३ $\frac{२३}{६०}$|$\frac{४२}{६१}$) इति । एतेषु सर्वाभ्यन्तरानन्तरद्वितीयमण्डलगतं दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं संयोज्यते, तच्च-सप्तचत्वारिंशत्सहस्राणि एकोनाशीत्यधिकमेकं शतं च योजननाम् सप्तपञ्चाशत् षष्टिः भागा योजनस्य, एकस्य षष्टिभागस्य सत्का एकोनविंशतिरेकषष्टिभागाः (४७१७९ $\frac{५७}{६०}$|$\frac{१९}{६१}$ इत्येवंरूपमस्ति । एतस्य संयोजने भवति यथोक्तं सर्वाभ्यन्तरे मण्डले दृष्टिपथप्राप्तता परिमाणम्–सप्तचत्वारिंशत् सहस्राणि त्रिषष्ट्यधिकं शतद्वयं योजनानाम्, एकविंशतिश्च षष्टि भागा योजनस्य (४७२६३ $\frac{२१}{६१}$)इति । एतच्चाग्रे सूत्रकारः स्वयं प्रदर्शयिष्यतीति । एवं दृष्टिपथप्राप्ततायां कतिपयेषु मण्डलेषु पञ्चाशीतिं योजनानि सातिरेकाणि, अग्रतनेषु चतुरशीति योजनानि, पर्यन्ते यथोक्ताधिकसहितानि त्र्यशीतिं योजनानि अभिवर्धयन् २ तावद् वक्तव्यं यावत् सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति । तदेव सूत्रे दर्शयति **'त' जया णं'** इत्यादि ।

'ता' तावत् **'जया णं'** यदा खलु **'सूरिए'** सूर्यः **'सव्वब्भंतरं मंडलं'** सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् **'उवसंकमित्ता 'चारं चरइ'** उपसंक्रम्य चारं चरति **'तया णं'** तदा खलु **'पंचयोजणसह स्साइं'** पञ्चयोजनसहस्राणि **'दोण्णि य एक्कावण्णे जोयणसयाइं'** द्वे एकपञ्चशते योजनशते एकपञ्चाशदधिके द्वे शते योजननाम् **'एगूणतीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स'** एकोनत्रिंशतं चष ष्टिभागान् योजनस्य (५२५१- $\frac{२९}{६०}$) **'एगमेगेणं'** मुहुत्तेणं एकैकेन मुहूर्त्तेन **'गच्छइ'**

गच्छति चलति, 'तया णं' तदा खलु 'इहगयस्स मणूसस्स' इहगतस्य मनुष्यस्य जातावेकवचनात् भरतक्षेत्रस्थितानां मनुष्याणां 'सीयालीसाए जोयणसहस्सेहिं' सप्तचत्वारिंशता योजनसहस्रैः 'दोहि य तेवट्ठेहिं जोयणसएहिं' द्वाभ्यां च त्रिषष्टाभ्यां त्रिषष्ट्यधिकाभ्यां योजन शताभ्यां त्रिषष्ट्यधिक द्विशतयोजनैः 'एक्कवीसाए सट्ठिभागेहिं जोयणस्स' एकविंशत्या षष्टिभागैर्योजनस्य (४७२६३ $\frac{२१}{६०}$) 'सूरिए' सूर्यः 'चक्खुप्फासं' चक्षुःस्पर्शं दृष्टिगोचरतां 'हव्वमागच्छइ' हव्यमागच्छति शीघ्रं प्राप्नोति, 'तया णं' तदा खलु उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठाप्राप्तः परमप्रकर्षेना सम्पन्नः 'उक्कोसए' उत्कर्षकः सर्वोत्कृष्टः 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलध्वी 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। एतच्च मुहूर्त्तगतिपरिमाणं दृष्टिपथप्राप्ततापरिमाणं च यत् पूर्वमेव प्रदर्शितं तत्तु सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलान्निष्क्रमणप्रारम्भविषयकं प्रदर्शितम् अत्र तु सूर्यस्य सर्वबाह्यमण्डलात्सर्वाभ्यन्तरमण्डलप्राप्तिविषयकमिति नात्र पुनरुक्तेः शंकाऽपीति। अथोपसंहारमाह—

'एस णं दोच्चे छम्मासे एतत् खलु द्वितीयं षण्मासम् 'एस णं एतत् खलु दोच्चस्स छम्मासस्स' द्वितीयस्य षण्मासस्य 'पज्जवसाणे' पर्यवसानम्—अन्तिममहोरात्रम् 'एस णं' एष खलु 'आइच्चे संवच्छरे' आदित्यः संवत्सरः सम्पूर्णो जातः। 'एस णं' एतत् खलु 'आइच्च संवच्छरस्स' आदित्यसंवत्सरस्य 'पज्जवसाणे' पर्यवसानम्—समाप्तिदिवसोऽस्ति॥

इति श्री—विश्वविख्यात—जगद्वल्लभ—प्रसिद्धवाचक पञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापक—प्रविशुद्धगद्यपद्यानैकग्रन्थनिर्मापक—वादिमानमर्दक—श्रीशाहुछत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त "जैनशास्त्राचार्य" पदभूषित—कोल्हापुर राजगुरु बालब्रह्मचारी—जैनशास्त्राचार्य—जैनधर्मदिवाकर श्रीघासीलालव्रति—विरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिका-टीकायां द्वितीयप्राभृतस्य तृतीयं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥२—३॥

द्वितीयं मूलप्राभृतं समाप्तम् ॥२॥

॥ श्रीरस्तु ॥



अथ तृतीयं प्राभृतं प्रारभ्यते

गतं द्वितीयं मूलप्राभृतम्, तत्र सूर्यः तिर्यक् कथं गच्छतीत्युक्तम् । संप्रति तृतीयमारभ्यते, अत्र 'चन्द्रौ सूर्यौ च कियत्क्षेत्रं प्रकाशयन्ति ?' इत्येतद्विषयं प्रदर्शयन्नाह—'ता केवइयं' इत्यादि

मूलम्—ता केवइयं खेत्तं चंदमसूरिया ओभासेंति उज्जोवेंति तवेंति पगासेंति आहितेति वएज्ज तत्थ खलु इमाओ वारसपडिवत्तीओ पन्नत्ताओ, तं जहा—तत्थेगे एवमाहंसु—ता एगं दीवं एगं समुद्दं चंदिमसूरिया ओभासेंति उज्जोवेंति तवेंति पगासेंति एगे एवमाहंसु ।१। एगे पुण एवमाहंसु—ता तिण्णि दीवे तिण्णि समुद्दे चंदिमसूरिया ओभासेंति ४ एगे एवमाहंसु ।२। एगे पुण एवमाहंसु—ता अद्धचउत्थे दीवे-अद्धचउत्थे समुद्दे चंदिमसूरिया ओभासेंति ४, एगे एवमाहंसु ।३। एगे पुण एवमाहंसु ता सत्तदीवे सत्त समुद्दे चंदिमसूरिया ओभासेंति ४, एगे एवमाहंसु ।४। एगे पुण एवमाहंसु—ता दसदीवे दससमुद्दे चंदिमसूरिया ओभासेंति ४, एगे एवमाहंसु ।५। एगे पुण एवमाहंसु ता वारस दीवे वारससमुद्दे चंदिमसूरिया ओभासेंति ४, एगे एवमाहंसु ।६। एगे पुण एवमाहंसु—ता वायालीसं दीवे वायालीसं समुद्दे चंदिमसूरिया ओभासेंति ४, एगे एवमाहंसु ।७। एगे पुण एवमाहंसु—ता वावत्तरिं दीवे वावत्तरिं समुद्दे चंदिमसूरिया ओभासेंति ४, एगे एवमाहंसु ।८। एगे पुण एवमाहंसु—ता वायालीसं दीवसयं वायालीसं समुद्दसयं चंदिमसूरिया ओभासेंति ४, एगे एवमाहंसु ।९। एगे पुण एवमाहंसु—ता वावत्तरिं दीवसयं वावत्तरिं समुद्दसयं चंदिमसूरिया ओभासेंति ४, एगे एवमाहंसु ।१०। एगे पुण एवमाहंसु—ता वायालीसं दीवसहस्सं वायालीसं समुद्दसहस्सं चंदमसूरिया ओभासेंति ४, एगे एवमाहंसु ।११। एगे पुण एवमाहंसु-ता वावत्तरिं दीवसहस्सं वावत्तरिं समुद्दसहस्सं चंदिमसूरिया ओभासेंति उज्जोवेंति तवेंति पगासेंति, एगे एवमाहंसु ।१२।

वयं पुण एवं वयामो—अयं णं जंबुद्दीवे दीवे सव्वद्दीवसमुद्दाणं जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ते । से णं एगाए जगईए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते । सा णं जगई अट्ठजोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पण्णत्ता एवं जहा जंबुद्दीवपण्णत्तीए तहेव निरवसेसं जाव एवामेव सपुव्वावरेणं जंबुद्दीवे दीवे चोद्दस सलिलासयसहस्सा, छप्पण्णं च सलीलासहस्सा भवंतीतिमक्खायं । जंबुद्दीवे दीवे पंच चक्कभागसंठिए आहिए त्ति वएज्जा, ता कहं जंबुद्दीवे दीवे पंचचक्कभागसंठिए आहिए तिवएज्जा ? ता जया णं एए दुवे सूरिया सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति तया णं जम्बुद्दीवस्स दीवस्स तिण्णि पंचचक्कभागे

ओभासेंति उज्जोवेंति तवेंति पभासेंति, तं जहा-एगे वि सूरिए एगं दिवड्ढं पंचचक्कभागं ओभासेइ उज्जोवेइ तवेइ पगासेइ, एगे वि सूरिए एगं दिवड्ढं पंच चक्कभागं ओभासेइ उज्जोवेइ तवेइ पगासेइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। ता जया णं एए दुवे सूरिया सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति तया णं जम्बुद्दीवस्स दीवस्स दोण्णि पंच चक्कभागे ओभासेंति उज्जोवेंति तवेंति पगासेंति। ता एगे वि सूरिए एगं पंचचक्कभागं ओभासेइ उज्जोवेइ तवेइ पगासेइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ ॥सू० १॥

छाया—तावत् कियत्कं क्षेत्रं चन्द्रसूर्या अवभासयन्ति उद्द्योतयन्ति तापयन्ति प्रकाशयन्ति, (अत्र किम्) आख्यातम् ? इति वदेत्। तत्र खलु इमा द्वादश प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः तद्यथा तत्रैके एवमाहुः-तावत् एकं द्वीपम् एकं समुद्रं चन्द्रसूर्या अवभासयन्ति उद्द्योतयन्ति तापयन्ति प्रकाशयन्ति, एके एवमाहुः।१। एके पुनरेवमाहुः तावत् त्रीन् द्वीपान् त्रीन् समुद्रान् चन्द्रसूर्या अवभासयन्ति ४ एके एवमाहुः।२। एके पुनरेवामाहुः तावत् अर्द्धचतुर्थान् द्वीपान् अर्धचतुर्थान् समुद्रान् चन्द्रसूर्या अवभासयन्ति ४, एके एवमाहुः।३। एके पुनरेववाहुः-तावत् सप्तद्वीपान् सप्तसमुद्रान् चन्द्रसूर्या अवभासयन्ति ४, एके एवमाहुः।४। एके पुनरेवमाहुः-तावत् दशद्वीपान् दशसमुद्रान् चन्द्रसूर्या अवभासयन्ति ४, एके एवमाहुः ५। एके पुनरेवमाहुः तावत् द्वादशद्वीपान् द्वादशसमुद्रान् चन्द्रसूर्या अवभासयन्ति ४, एके एवमाहुः।६। एके पुनरेवमाहुः-तावत् द्विचत्वारिंशतं द्वीपान् द्विचत्वारिंशतं समुद्रान् चन्द्रसूर्या अवभासयन्ति ४, एके एवमाहुः।७। एके पुनरेवमाहुः-तावत् द्वासप्तर्ति द्वीपान् द्वासप्तर्ति समुद्रान् चन्द्रसूर्या अवभासयन्ति ४, एके एवमाहुः।८। एके पुनरेवमाहुः-तावत् द्वाचत्वारिंशतं द्वीपशतं द्विचत्वारिंशतं समुद्रशतं चन्द्रसूर्या अवभासयन्ति ४ एके एवमाहुः।९। एके पुनरेवमाहुः-तावत् द्विसप्तर्ति द्वीपशतं द्विसप्तर्ति समुद्रशतं चन्द्रसूर्या अवभासन्ति ४, एके एववमाहुः।१०। एके पुनरेवमाहुः-तावत् द्विचत्वारिंशतं द्वीपसहस्रं द्विचत्वारिंशतं समुद्रसहस्रं चन्द्रसूर्या अवभासयन्ति ४, एके एवमाहुः।११। एके पुनरेवमाहुः-तावत् द्विसप्तर्ति द्वीपसहस्रं द्विसप्तर्ति समुद्रसहस्रं चन्द्रसूर्या अवभासयन्ति उद्द्योतयन्त तापयन्ति प्रकाशयन्ति,एगे एवमाहुः ॥१२॥

वयं पुनरेवं वदामः-अयं खलु जम्बूद्वीपो द्वीपः सर्वद्वीपसमुद्राणां यावत् परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः। स खलु एकया जगत्या सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्तः। सा खलु जगती अष्ट योजनानि उर्ध्वमुच्चत्वेन प्रज्ञप्ता एवं यथा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यां तथैव निरवशेषं यावत् एवमेव सपूर्वापरेण, जम्बूद्वीपे द्वीपे चतुर्दश सलिलाशतसहस्राणि षट् पञ्चाशच्च सलिला सहस्राणि (१४५६०००) भवंतीति आख्यातम्। जम्बूद्वीपो द्वीपः पञ्चचक्रभागसंस्थितः आख्यात इति वदेत्। तावत् कथं जम्बूद्वीपो द्वीपः पञ्चचक्रभागसंस्थित आख्यातः ? इति वदेत्-तावत् यदा खलु एतौ द्वौ सूर्यौ सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरतः

तदा खलु जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य त्रीन् पञ्चचक्रभागान् अवभासयतः उद्द्योतयतः तापयतः प्रकाशयतः, तद्यथा-एकोऽपि सूर्यः एकं द्व्यर्धं (द्वितीयार्धं-सार्द्धमेकं) पञ्चचक्रभागम् अवभासयति ४, एकोऽपि सूर्यः द्व्यर्धं (द्वितीयार्धं-सार्द्धमेकं) पञ्चचक्रभागम् अवभासयति उद्द्योतयति तापयति प्रकाशयति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । तावत् यदा खलु एतौ द्वौ सूर्यौ सर्वबाह्यं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरतः तदा खलु जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य द्वौ पञ्च चक्रवालभागान् अवभासयतः उद्द्योतयतः तापयतः प्रकाशयतः । तावत् एकोऽपि सूर्य एकं पञ्च, चक्रभागम् अवभासयति उद्द्योतयति तापयति प्रकाशयति । तदा खलु उत्तमकाष्ठा प्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, जघन्यको द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति ।सू० १।

॥ चन्द्रप्रज्ञप्त्यां तृतीयं प्राभृतं समाप्तम् ॥४॥

व्याख्या—'ता केवइयं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'केवइयं' कियत्कं कियत्परिमितं क्षेत्रं 'चंदिमसूरिया' चन्द्रसूर्याः बहुवचनं च जम्बूद्वीपे चन्द्रद्वयसूर्यद्वयसद्भावात् 'ओभासेंति' अवभासयन्ति, तत्र अवभासस्तु ज्ञानस्य प्रतिभासोऽपि भवेदिति तन्निराकर्त्तुमाह—'उज्जोवेंति' उद्द्योतयन्ति, 'द्युतिर्दीप्तौ' इति धातोः प्रेरणायां रूपम—दीपयन्तीत्यर्थः, 'तवेंति' तापयन्ति, एतत् चन्द्रे कथं घटते तस्य शीतरश्मित्वेन प्रसिद्धत्वात्, तत्राह—चन्द्रप्रकाशेऽपि आतपशब्दस्य लोके व्यवहारो दृश्यते, उक्तञ्च "चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ना, तथा चन्द्रातपः स्मृतः ॥ " इति कोषवचनात् आभाससहितं कुर्वन्तीत्यर्थः, तथा 'पगासें'ति' प्रकाशयन्ति स्वतेजसा प्रकाशयुक्तं कुर्वन्ति ? प्राय एकार्थिका इमे धातवः, देशभेदात् सर्वदेशीयानामवबोधार्थं प्रयुक्ता इति विज्ञेयम्' आहितं' आख्यातम् हे भगवन् भवन्मत एतद्विषये किमाख्यातम् ? 'ति' इति 'वएज्जा' वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् ? आर्षत्वाद् वदेत्, इति स्थाने वदतु, इति तकारव्यत्ययः कर्त्तव्यः । एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानेतद्विषये परतीर्थिकानां मिथ्याभावप्रदर्शनाय प्रथमं तेषां प्रतिपत्तीः प्रदर्शयति—'तत्थ खलु' इत्यादि । 'तत्थ' तत्र चन्द्रसूर्याणां क्षेत्रावभासनविचारे खलु 'इमाओ' इमाः वक्ष्यमाणाः 'बारस' द्वादश 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः परमतरूपाः 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ताः 'तं जहा' तद्यथा ता यथा 'तत्थ' तत्र तेषु द्वादशसु प्रतिपत्तिवादिषु मध्ये 'एगे' एके केचन प्रथमाः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति । किं कथयन्तीत्याह—'ता' तावत् 'चंदिमसूरिया' चन्द्रसूर्यौ, प्राकृते द्विवचनस्थाने बहुवचनं भवति तत्र द्विवचनाभावात्, तदुक्तम्—"बहुवयणेण दुवयणं' इति । अत्र चन्द्रसूर्यौ इति द्विवचनं तेषां परतीर्थिकानां मते एकस्य चन्द्रस्य एकस्य च सूर्यस्य मान्यता सद्भावात् एतौ चन्द्रसूर्यौ 'एगं दीवं' एकं द्वीपं "एगं समुद्दं एकं समुद्रं च 'ओभासेंति' अवभासयतः 'उज्जोवेंति उद्द्योतयतः 'तवेंति' तापयतः 'पगासेंति' प्रकाशयतः । 'एगे' एके इमे प्रथमास्तीर्थान्तरीया 'एवं' पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति ।१। एवमग्रेऽप्येकादशस्वपि प्रतिपत्तिषु योजना कर्तव्या, व्याख्यातु छायागम्याऽतो न

विद्यते । विशेषस्तु खल्वेतावानेव, तथाहि–द्वितीयाः प्रतिपत्तिवादिनश्चन्द्रसूर्ययोरवभासनादिविषये त्रीन्, द्वीपान् त्रीन् समुद्रान् कथयन्ति ।२। तृतीया अर्द्धचतुर्थान् सार्धान् त्रीन् द्वीपान् सार्द्धान् त्रीन् समुद्रान् ३, चतुर्थाः सप्तद्वीपान् सप्तसमुद्रान् ४, पञ्चमाः दश द्वीपान् दशसमुद्रान् ५ षष्ठाः द्वादशद्वीपान् द्वादशसमुद्रान् ६, सप्तमा द्विचत्वारिंशतं द्वीपान् द्विचत्वारिंशतं समुद्रान् ७, अष्टमा द्विसप्ततिं द्वीपान् द्विसप्ततिं समुद्रान्, नवमा द्विचत्वारिंशदधिकशतसंख्यकान् द्वीपान् द्विचत्वारिंशदधिकशतसंख्यकान् समुद्रान् ९, दशमाः द्विसप्तत्यधिकशतसंख्यकान् द्वीपान् द्विसप्तत्यधिकशतसंख्यकान् समुद्रान् १०, एकादशा द्विचत्वारिंशदधिकसहस्रसंख्यकान् द्वीपान् द्विचत्वारिंशदधिकसहस्रसंख्यकान् समुद्रान् ११ द्वादशाः द्विसप्तत्यधिकसहस्रसंख्यकान् द्वीपान् द्विसप्तत्यधिकसहस्रसंख्यकांश्च समुद्रान् चन्द्रसूर्यौ अवभासयतः, उद्द्योतयतः, तापयतः प्रकाशयत इति कथयन्ति । इति द्वादशप्रतिपत्तिस्वरूपम् ।

अथ भगवान् स्वमतं प्रदर्शयति–'वयं पुण' इत्यादि । 'वयं पुण' वयं तु अत्र पुनः शब्दस्त्वर्थे 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयामो' वदामः–कथयामः 'अयण्णं' अयं लोकप्रसिद्धः खलु 'जम्बूदीवे दीवे' जम्बूद्वीपो द्वीपः मध्यजम्बूद्वीपः 'सव्वदीवसमुद्दाणं' सर्वद्वीपसमुद्राणां मध्यस्थितः सर्वलघुः 'जाव' यावत् 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण परिधिनां 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तः । अस्य वर्णनमादौ प्रदर्शितम् । 'से णं' स खलु जम्बूद्वीपो द्वीपः 'एगाए जगईए' एकया जगत्या 'सव्वओ समंता' सर्वतः समन्तात् 'संपरिक्खित्ते' संपरिक्षिप्तः परिवेष्टितो वर्त्तते । 'सा णं जगई' सा खलु जगती 'तहेव जहा जंबूद्दीवपन्नत्तीए' तथैवास्ति यथा येन प्रकारेण जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यां कथितम् । कियत्पर्यन्तं कथनीयमित्याह–'जाव' यावत् 'एवामेव सपुव्वावरेणं' एवमेव सपूर्वापरेण पूर्वापरसहितेन । 'जंबूद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'चोद्दस सलिलासय सहस्सा' चतुर्दशसलिलाशतसहस्राणि सलिलानां चतुर्दशलक्षाणि, 'छप्पन्नं च सलिलासहस्सा' षट् पञ्चाशच्च सरित्सहस्राणि षट् पञ्चाशत्सहस्राणि सलिलानां सरितां नदीनामित्यर्थः (१४५-६०००) 'भवंति' भवन्ति–सन्ति 'इति मक्खाया' इत्याख्यातं भगवतेति । विशेषजिज्ञासुभिर्जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रमेव द्रष्टव्यमिति । 'जंबूदीवे णं दीवे' जम्बूद्वीपः खलु द्वीपोऽसौ 'पंच चक्कभागसंठिए' पञ्चचक्रभागसंस्थितः पञ्चभिः चक्रभागैः चक्रवालभागैः संस्थितः पञ्चचक्रवालसंस्थानसंस्थित इत्यर्थः । 'आहिते' आख्यातो मया 'ति वएज्जा' इति वदेत् स्वशिष्येभ्य इति । एवं भगवता प्रोक्ते गौतमः पुनः पृच्छति–'ता कहं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन कारणेन हे भगवन् ? भवता 'जंबूद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपो द्वीपः 'पंच चक्कभागसंठिए आहिए' पञ्च

चक्रभागसंस्थितः आख्यातः ? 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु । एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह—'ता जयाणं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'एए' एतौ प्रवचनवेतॄणां प्रसिद्धौ 'दुवे सूरिए' द्वौ समुदितौ सूर्यौ 'सव्वब्भंतरंमंडलं उवसंकमित्ता चारं चरति' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरतः 'तया णं' तदा खलु 'जंबुद्दीवस्स दीवस्स' जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य 'तिण्णि पंच चक्कभागे' त्रीन् पञ्च चक्रभागान् पञ्चचक्रवालभागान् 'ओभासेंति' अवभासयतः 'उज्जोवेंति' उद्द्योतयतः 'तवेंति' तापयतः, 'पगासेंति' प्रकाशयतः 'तं जहा' तद्यथा—तथाहि—'एगे वि सूरिए' एकोऽपि सूर्यः एकस्तु सूर्यः 'एगं दिवड्ढं' एकं परिपूर्णमेकं द्व्यर्धं द्वितीयार्धं च सार्धैकमित्यर्थः 'पंच चक्कभागं' पञ्च चक्रभागं पञ्चमं चक्रवालभागम् अयं भावः—एकं पञ्चमं चक्रवालभागं द्वितीयस्य पञ्चमस्य चक्रवालभागस्यार्धेन सहितम् 'ओभासेइ उज्जोवेइ तवेइ पगासेइ' अवभासयति उद्द्योतयति तापयति प्रकाशयति । 'एगे वि' सूरिए' एकस्तु अपरः सूर्यः 'एगं दिवड्ढं' एकं तदन्यं परिपूर्णमेकं द्व्यर्धं द्वितीयमर्धं च सार्धमेकमित्यर्थः पंच चक्कभागं' पञ्चमं चक्रवालभागम् 'ओभासेइ' ४, अवभासयति उद्द्योतयति तापयति प्रकाशयति । अयं भावः—

अनयोर्द्वयोः सूर्ययोः प्रकाशितभागमीलने परिपूर्णं भागत्रयं प्रकाश्यं भवति । अयमाशयः—जम्बूद्वीपगतानां पञ्चानां चक्रवालानां षष्ट्यधिकषट्शतोत्तरसहस्रत्रयभागाः(३६६०) कल्प्यन्ते, तस्य पञ्चभागकरणार्थं पञ्चभिर्भागो ह्रियते लब्धानि द्वात्रिंशदधिकानि सप्तशतानि (७३२) 'एगं दिवड्ढं' इति कथनात् इयं संख्या सार्धा क्रियते तदा जातमष्टानवत्यधिकं सहस्रमेकम् (१०९८) ततः सर्वाभ्यन्तरमण्डले वर्तमान एकोऽपि सूर्यः षष्ट्यधिकषट्शतोत्तर सहस्रत्रय (३६६०) संख्यकानां भागानां मध्यात् अष्टानवत्यधिकैकसहस्र (१०९८) परिमितं भागम् अवभासयति । एवमपरोऽपि सूर्यः—अष्टानवत्याधिकैकसहस्र (१०९८) परिमितं भागम् अवभासयति, उभयोर्योगकरणे जातानि षण्णवत्यधिकानि एकविंशतिशतानि (२१९६)। एतत्परिमितभागं चक्रवालप्रकाश्यमानं लभ्यते शेषं चतुष्षष्ट्यधिकचतुर्दशशत (१४६४) परिमितभागेऽन्धकारो लभ्यते, तदा च पञ्च चक्रवालभागमध्यात् द्वौ चक्रवालभागौ रात्रिः, त्रयश्चक्रवालभागाः दिवसः । तथाहि—एकतोऽपि एकः पञ्चमो भागो द्वात्रिंशदधिकसप्तशत- (७३२) भागा रात्रिः, अपरतोऽपि एकः पञ्चमो भागो द्वात्रिंशदधिकसप्तशत (७३२) भागा रात्रिः । द्वयोर्मीलने जातानि चतुष्षष्ट्यधिकानि चतुर्दशशतानि (१४६४), एतत्परिमितोऽन्धकारभागो लभ्यते । शेषाः षण्णवत्यधिकैकविंशतिशत (२१९६) भागाः । एतत्परिमितः प्रकाश भागो—दिवसो—लभ्यते, ततः सर्वेषामन्धकारभागानामुद्द्योतभागानां च संमेलने भवन्ति

षष्ठ्यधिकानि षट् त्रिंशच्छतानि (३६६०) जम्बूद्वीपस्य पञ्चचक्रवालभागानां कल्पिताः सर्वे भागाः।

तथाच कोष्ठकम्-

सर्वाभ्यन्तरमण्डले द्वयोः सूर्ययो प्रकाशभागाः	२१९६
अन्धकारभागाः — — —	१४६४
सर्वमेलने — —	३६६०

सम्प्रति दिवसरात्रिप्रमाणमाह-'तया णं' इत्यादि। 'तया णं' तदा-पूर्वोक्तपरिमित-प्रकाशान्धकारसमये खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठाप्राप्त परमप्रकर्षसम्पन्नः 'उक्कोसए' उत्कर्षकः सर्वगुरुः 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलघ्वी 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्ता रात्रिर्भवति।

अथ सर्वबाह्यमण्डलवक्तव्यतामाह-'ता जया णं' इत्यादि। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'एए दुवे सूरिए' एतौ द्वौ सूर्यौ 'सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरंति' सर्वबाह्यं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरतः 'तया णं' तदा खलु 'जंबुद्दीवस्स दीवस्स' जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य 'दोण्णि चक्कभागे' द्वौ चक्रभागौ चक्रवालभागौ 'ओभासेंति ४' अवभासयतः उद्द्योतयतः, तापयतः, प्रकाशयतः। अथ-एकैकसूर्यमधिकृत्याह-'ता एगे वि' इत्यादि। 'ता' तावत् 'एगे वि सूरिए' तयोर्मध्ये एकोऽपि सूर्यः-एकः सूर्यः अपि वाक्यालङ्कारे 'एगं पंचचक्कभागं' एकं पञ्चमं चक्रवालभागं द्वात्रिंशदधिकसप्तशत (७३२) भागरूपम् 'ओभासेइ ४' अवभासयति, उद्द्योतयति, तापयति, प्रकाशयति। एवम्-'एगेवि सूरिए' एकोऽपरोऽपि सूर्यः 'एगं चक्कभागं' एकं पञ्चमं चक्रवालभागं द्वात्रिंशदधिकसप्तशत (७३२) रूपम् 'ओभासेइ ४' अवभासयति, उद्द्योतयति, तापयति, प्रकाशयति। अयं भावः-सर्वबाह्यमण्डले द्वयोः सूर्ययोश्चारसमये तौ समुदितौ द्वौ सूर्यौ द्वौ चक्रवालभागौ चतुष्षष्ट्यधिकचतुर्दशशत (१४६४) भागरूपौ प्रकाशयतः, अतः सर्वबाह्यमण्डलचारसमये चतुष्षष्ट्यधिकचतुर्दशशत (१४६४) भागपरिमितः उद्द्योतभागो दिवसरूपो लभ्यते शेषा-स्त्रयश्चक्रवालभागाः षण्णवत्यधिकैकविंशतिशत (२१९६) भागपरिमितोऽन्धकारभागो रात्रिरूपो लभ्यते, तथा चैवं सर्वेषामुद्द्योतान्धकारभागानां संमेलने भवन्ति षष्ट्यधिकानि षट् त्रिंशच्छतानि (३६६०) जम्बूद्वीपभागाः।

कोष्ठकम्—

सर्वबाह्यमण्डले द्वयोः सूर्ययोः	
प्रकाशभागाः—	१४६४
अन्धकारभागाः—	२१९६
सर्वमेलनं — —	३६६०

मध्यमण्डलेषु द्व्यशीत्यधिकैकशत (१८२)संख्यकेषु प्रतिमण्डलं प्रतिसूर्यनिष्क्रमणकाले भागद्वयस्य हानिः प्रवेशकाले च भागद्वयस्य वृद्धि र्विज्ञेयेति।

अयमाशयः—सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारसमये प्रत्येकसूर्यस्याष्टानवत्यधिकदशशत (१०९८) भागपरिमितोद्योतभागसद्भावात् द्वयोः सूर्ययोः षण्णवत्यधिकैकविंशतिशत (२१९६) भागपरिमित उद्योतः, शेष चतुष्पष्ट्यधिकचतुर्दशशत (१४६४) भागपरिमितोऽन्धकारभागयोर्मीलने षष्ट्यधिकानि षट् त्रिंशच्छतानि (३६६०) भागा जम्बूद्वीपस्य पञ्च चक्रवालसम्बन्धिनो लभ्यन्ते सर्वबाह्यमण्डलचारसमये च एतद्विपरीतं भवति, यथा—द्वयोः सूर्ययोःचतुष्पष्ट्यधिकचतुर्दशशत (१४६४) भागपरिमित उद्योतभागः, षण्णवत्यधिकैकविंशतिशत (२१९६) भागपरिमितोऽन्धकारभागो भवति, द्वयोर्मीलने च भवन्ति षष्ट्यधिकानि षट्त्रिंशच्छतानि (३६६०) भागाः जम्बूद्वीपस्येति सर्वं पूर्वं कोष्ठकद्वये प्रदर्शितमिति।

अथ रात्रिदिवसप्रमाणमाह—'तया णं' इत्यादि। 'तया णं' तदा पूर्वं प्रदर्शितपरिमितप्रकाशान्धकारसमये खलु **'उत्तमकट्ठपत्ता'** उत्तमकाष्ठाप्राप्ता परमप्रकर्षसंपन्ना **'उक्कोसिया'** उत्कर्षिका सर्वोत्कृष्टा सर्वगुर्वीत्यर्थः **'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ'** अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, **'जहण्णए'** जघन्यकः सर्वलघुः **'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ'** द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवतीति।

एवं द्वितीयमण्डलादारभ्य द्व्यशीत्यधिकशततममण्डलपर्यन्तविचारणायामेवं ज्ञातव्यम्—सर्वबाह्यमण्डले यदा सूर्यश्चारं चरति तदा एकं सूर्यमधिकृत्य द्वात्रिंशदधिकसप्तशत (७३२) भागाएकस्य पञ्चमस्य चक्रवालस्य सम्बन्धिनः उद्योतस्य लभ्यन्ते तथा—अष्टनवत्यधिकदशशत- (१०९८) भागाः शेषाः चतुश्चक्रवालसम्बन्धिनः अन्धकारस्य लभ्यन्ते। सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारसमयेऽष्टनवत्यधिकदशशत (१०९८) भागाः सार्धैकचक्रवालसम्बन्धिनो भवन्ति, एतेभ्यो सर्वबाह्यमण्डलगता द्वात्रिंशदधिकसप्तशत (७३२) भागाः शोध्यन्ते तदा शेषाः षट्षष्ट्यधिकत्रिशत (३६६) भागा न्यूना लभ्यन्ते। एषा न्यूनसंख्या त्र्यशीत्य-धिकैकशत (१८३) संख्यकेषु मण्डलेषु भवति ततोऽनेन (१८३) षट्षष्ट्यधिकत्रिशत (३६६) भागानां भागो ह्रियते तदा लभ्येते द्वौ भागौ। अनयोर्द्वयो र्भागयोर्हानिः प्रत्येकमण्डलेषु क्रमेण भवति। एवं सर्वाभ्यन्तरमण्डलात् सर्वबाह्यमण्डलं प्रतिसूर्यस्य गमनसमये प्रतिमण्डलं भागद्वयमुद्योतस्य

ह्रापयन् २ यदा सर्वबाह्यमण्डलं सूर्यः प्राप्नोति तदा द्वात्रिंशदधिक सप्तशत (७३२) भागा उद्द्योतस्य भवन्ति । एवमेव द्वितीयसूर्यविषयेऽपि स्वयमूहनीयम् । द्वयोर्मीलने द्वयोः सूर्ययोः सर्वबाह्यमण्डलस्थितौ षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छत (३६६) भागमध्यात् चतुष्षष्ट्यधिकचतुर्दशशत (१४६४) भागा जम्बूद्वीपे द्वीपे प्रकाश्यमाना भवन्ति, शेषेषु षण्णवत्यधिकैकविंशतिशत-(२१९६) भागा अन्धकारस्य भवन्ति, एषु रात्रिर्भवतीत्यर्थः । सर्वमीलने भवन्ति जम्बूद्वीपस्य पञ्चचक्रवालसम्बन्धिनः षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छत (३६६०) भागा इति । एवं यथा प्रथमे षण्मासे सर्वाभ्यन्तरमण्डलान्निष्क्रामतोर्द्वयोः सूर्ययोर्जम्बूद्वीपविषयकः प्रकाशविधिः क्रमेण प्रतिसूर्यं भागद्वयहान्या हीयमानः प्रोक्तस्तथैव द्वितीयषण्मासे सर्वबाह्यमण्डलात्सर्वाभ्यन्तरमण्डलं प्रविशतोर्द्वयोः सूर्ययोर्जम्बूद्वीपविषयकः प्रकाशविधिः प्रतिसूर्यक्रमेण भागद्वयवृद्ध्या वर्धमानो ज्ञातव्य इति स्वयमूहनीयम् ।

अत्रोक्तमन्यत्र —छत्तीसे भागसए, सट्ठिं काऊण जंबुदीवस्स ।
तिरियं तत्तो दो दो, भागे वड्ढेइ हायई वा ॥१॥

छाया—षट्त्रिंशद्भागशतानि षष्टिं (३६६०) कृत्वा जम्बूद्वीपस्य
तिर्यक् (शनैः शनैः क्रमेण) ततो द्वौ द्वौ भागौ वर्धेते हीयेते वा ॥१॥

अत्रविषये पुनरपि विस्तरतो व्याख्यानं सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रस्य मत्कृतायां सूर्यज्ञप्तिप्रकाशिकाव्याख्यायामवलोकनीयमिति ॥सू० १॥

॥ अथ चतुर्थं प्राभृतम् प्रारभ्यते ॥

गतं तृतीयं प्राभृतम्, तत्र सूर्यचन्द्रयोः प्रकाश्यमानक्षेत्रमुक्तम् । साम्प्रतं चतुर्थमारभ्यते, अस्मिन् 'कहं ते सेययाए संठिई आहिया' कथं श्वेततायाः संस्थितिराख्याता इति प्रकाशस्य संस्थानरूपोऽर्थाधिकारः प्ररूपयिष्यते ततस्तद्विषयं सूत्रमाह—'ता कहं ते सेययाए'' इत्यादि।

मूलम्—ता कहं ते सेययाए संठिई अहिया ? तिवएज्जा तत्थ खलु इमा दुविहा संठिई पण्णत्ता, तं जहा-चंदिमसूरियसंठिई य १ तावक्खेत्तसंठिईय २। ता कहं ते चंदिमसूरियसंठिई आहिया ? ति वएज्जा, तत्थ खलु इमाओ सोलस पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तत्थेगे एवमाहंसु ता समचउरंससंठिया चंदिमसूरियसंठिई पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु १। एगे पुण एवमाहंसु ता विसमचउरंससंठिया चंदिमसूरियसंठिई पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ।२। एवं एएणं अभिलावेणं समचउक्कोणसंठिया ३, विसम चउक्कोणसंठिया ।४। समचक्कवालसंठिया ५, विसमचक्कवालसंठिया ६, चक्कद्ध-

चक्कवालसंठिया ७, छत्तागारसंठिया ८, गेहसंठिया ९, गेहावणसंठिया १०, पासाय संठिया ११, गोपुरसंठिया १२, पेच्छाघरसंठिया १३, वलभीसंठिया १४, हम्मियतलसंठिया १५, एगे पुण एवमाहंसु-वालग्गपोइया संठिया चंदिमसूरियसंठिई पण्णत्ता एगे एवमाहंसु १६। तत्थ णं जे ते एवमाहंसु-ता समचउरंसंठिया चंदिमसूरियसंठिई पण्णत्ता, एएणं णएणं णेयव्वं नोचेव णं इयरेहिं ॥सू० १॥

छाया—तावत् कथं ते श्वेततायाः संस्थितिः आख्याता ? इति वदेत् । तत्र खलु इयं द्विविधा संस्थितिः प्रज्ञप्ता तद्यथा-चन्द्रसूर्यसंस्थितिश्च १ तापक्षेत्रसंस्थितिश्च २, तावत् कथं ते चन्द्रसूर्यसंस्थितिः आख्याता ? इति वदेत् । तत्र खलु इमाः षोडश प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः । तद्यथा तत्रैके एवमाहुः-तावत् समचतुरस्रसंस्थिता चन्द्रसूर्यसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, एके एवमाहुः ।१। एके पुनरेवमाहुः-तावत् विषमचतुरस्रसंस्थिता चन्द्रसूर्यसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, एके एवमाहुः ।२। एवम् एतेनाभिलापेन समचतुष्कोणसंस्थिता ३, विषमचतुष्कोण संस्थिता ४, समचक्रवालसंस्थिता ५ विषमचक्रवालसंस्थिता ६, चक्रार्धचक्रवालसंस्थिता ७ छत्राकारसंस्थिता ८, गेहसंस्थिता ९, गेहापणसंस्थिता १०, प्रासादसंस्थिता ११, गोपुरसंस्थिता १२ प्रेक्षागृहसंस्थिता १३ वलभीसंस्थिता १४ हर्म्यतलसंस्थिता १५, एके पुनरेव माहुः वालाग्रपोतिकासंस्थिता चन्द्रसूर्यसंस्थितिः प्रज्ञप्ता एके एवमाहुः-१६, तत्र खलु ये ते एवमाहुः-तावत् समचतुरस्रसंस्थिता चन्द्रसूर्यसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, एतेन नयेन ज्ञातव्यं नो चैव खलु इतरैः ॥ सू०१ ॥

व्याख्या—'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'ते' तव भवतां मते 'सेययाए' श्वेततायाः शुक्लतायाः 'संठिई' संस्थितिः संस्थानम् 'आहिया' आख्याता कथिता ? 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु भगवन् ? । भगवानाह-'तत्थ' इत्यादि । 'तत्थ' तत्र श्वेतताविषये खलु 'इमा' इयं वक्ष्यमाणस्वरूपा 'दुविहा' द्विविधा द्विप्रकारा 'संठिई' संस्थितिः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ता, 'तं जहा' तद्यथा-सा यथा-'चंदिमसूरियसंठिई य' चन्द्रसूर्यसंस्थितिश्च १, 'तावक्खेत्तसंठिई य' तापक्षेत्रसंस्थितिश्च २। श्वेतता च चन्द्रसूर्यविमानानां तत्कृततापक्षेत्रस्य चेत्युभयोरपि श्वेततायोगात् श्वेतता, सा द्विविधा भवति । अथ द्वयोर्मध्ये पूर्वं चन्द्रसूर्यसंस्थितिमाह—'ता कहं ते' इत्यादि 'ता' तावत् हे भगवन् 'कहं' कथं केन प्रकारेण कीदृशीत्यर्थः 'ते' त्वया 'चंदिमसूरियसंठिई' चन्द्रसूर्यसंस्थितिः चन्द्रसूर्यविमानसंस्थानरूपा 'आहिया' आख्याता 'तिवएज्जा' इति वदेत वदतु कथयतु भगवन् । इयं चन्द्रसूर्यविमानसंस्थितिः द्वयोश्चन्द्रयोर्द्वयोः सूर्ययोरिति चतुर्णामपि अवस्थानरूपा पृष्टा गौतमेनेति ज्ञातव्यम् । एवं गौतमेन पृष्टे सति भगवान् पूर्वमस्मिन् श्वेतताविषये परतीर्थिकानां यावत्यः प्रतिपत्तयो लोके प्रचलन्ति तावतीः प्रदर्शयति-'तत्थ खलु' इत्यादि । 'तत्थ' तत्र चन्द्रसूर्यसंस्थितिविषये खलु 'इमाओ' इमा वक्ष्यमाणः 'सोलस' षोडश षोडशसंख्यकाः 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः परमतरूपाः 'पण्ण-

ताओ' प्रज्ञप्ताः 'तं जहा' तद्यथा ता यथा—'तत्थ' तत्र षोडशसु प्रतिपत्तिवादिषु 'एगे' एके केचन प्रथमा 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति—'ता' तावत् 'समचउरं-ससंठिया' समचतुरस्रसंस्थिता समाः चतस्रः अस्रयः भागा यस्याः सा तथा समचतुर्भागवती 'चंदिमसूरियसंठिई' चन्द्रसूर्यसंस्थितिः चन्द्रसूर्यविमानानां संस्थानरूपा 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ता। उपसंहारमाह—'एगे एवमाहंसु' एके प्रथमास्तीर्थान्तरीया एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः कथयन्ति ।१। इदमुपसंहारवाक्यमग्रे सर्वत्र वाच्यम्। 'एगे पुण' एके द्वितीयाः पुनः 'एवमाहंसु' एवमाहुः 'ता' तावत् 'विसमचउरंससंठिया' विषमचतुरस्रसंस्थिता विषमचतुर्भागवती 'चंदिमसूरियसंठिई' चन्द्रसूर्यसंस्थितिः प्रज्ञप्ता 'एगे एवमाहंसु' एके एवमाहुः ।२। 'एवं एएणं कमेणं' एवमेतेन प्रतिपत्तिद्वयप्रदर्शितेन क्रमेण आलापकक्रमेणाग्रे सर्वत्र योजना कर्त्तव्या। तृतीया एवमाहु—'समचउक्कोणसंठिया' समचतुष्कोणसंस्थिता ३। इति। चतुर्थाः—'विसमचउक्कोण-संठिया' विषमचतुष्कोणसंस्थिता—विषमतया चतुष्कोणसंस्थानवतीति ४ पञ्चमाः—'समचक्क-वालसंठिया' समचक्रवालसंस्थितेति ५। षष्ठाः—'विसमचक्कवालसंठिया' विषमचक्रवालसं-स्थितेति ६। सप्तमाः—'चक्कद्धचक्कवालसंठिया' चक्रार्धचक्रवालसंस्थिता, चक्रं रथचक्रं, तस्य यदर्धं चक्रवालं तत्सदृशसंस्थानवतीति ७। अष्टमाः—'छत्तागारसंठिया' छत्राकारसंस्थि-तेति ८। नवमाः—'गेहसंठिया' गेहसंस्थिता—वास्तुविद्ययोपनिबद्धस्य गृहस्येव सस्थितं संस्थानं यस्याः सा तथा, तादृशीति ९। दशमाः—'गेहावणसंठिया' गेहापणसंस्थिता—गृह युक्त आपणः गेहापणः वास्तुविद्या प्रसिद्धः, तत्सदृशसंस्थानवतीति—१०। एकादशाः—'पासायसंठिया' प्रासाद संस्थिता "प्रासादो धनिनां गृहम्" तत्सदृशसंस्थानवती ११। द्वादशाः—'गोपुरसंठिया' गोपुर-संस्थिता गोपुरं—पुरद्वारं, तत्सदृशसंस्थानवती १२। त्रयोदशाः—'पेच्छाघरसंठिया' प्रेक्षागृहसं-स्थिता-प्रेक्षागृहं वास्तुशास्त्रप्रसिद्धं नाटकादिगृहं तत्सदृशसंस्थानवती १३। चतुर्दशाः—'वलभीसं-ठिया' वलभीसंस्थिता—वलभीगृहाच्छादनार्थं दीयमानं दीर्घलम्बं काष्ठं, तद्वत्संस्थानं यस्या सा तादृ-शीति १४। पञ्चदशाः—'हम्मियतलसंठिया' हर्म्यतलसंस्थिता—हर्म्यं—राजगृहं तस्य तलं, तत्सदृशमिति वदन्ति १५। 'एगे पुण' एके षोडशाः—पुनः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति—'ता' तावत् 'वालग्गपोइया संठिया' वालाग्रपोतिकासंस्थिता तत्र 'वालाग्र-पोतिका' देशीशब्दोयं आकाशतडागमध्ये व्यवस्थितक्रीडास्थानवाचकः लघुप्रासाद इत्यर्थः, तद्वत् संस्थितं संस्थानं यस्याः सा तथा तत्सदृशसंस्थानयुक्ता 'चंदिमसूरियसंठिई' चन्द्रसूर्य-संस्थितिः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ता, 'एगे' एके षोडशाः 'एवं' एवं—पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्तीति १६। प्रदर्शिताः परमतवादिनां षोडश प्रतिपत्तयः अथ भगवान् एतासु—प्रतिपत्तिषु या समीचीना प्रतिपत्तिस्तां प्रदर्शयन्नाह—'तत्थ' इत्यादि।

'तत्थ णं' तत्र षोडशसु प्रतिपत्तिवादिषु खलु 'जे-ते' ये ते केचित् प्रथमाः 'एवमाहंसु' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः कथयन्ति 'ता' तावत् 'समचउरंससंठिया' समचतुरस्रसंस्थिता समचतुरस्रसंस्थानसंस्थिता 'चंदिमसूरियसंठिई' चन्द्रसूर्यसंस्थितिः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ता इति । 'एएणं' एतेन अनुपदं पूर्वकथितेन 'नएणं' नयेन अभिप्रायेण 'नेयव्वं' ज्ञातव्यम् अस्माकं मतेऽपि चन्द्रसूर्यसंस्थितिः समचतुरस्रसंस्थानसंस्थिता कथिता एतस्या एव सत्यत्वात्, अतः 'नो चेव णं इयरेहिं' नैव खलु इतरैः शेषपञ्चदशप्रतिपत्तिवादिनां नयैः अभिप्रायैश्चन्द्रसूर्यसंस्थितिर्ज्ञातव्या तेषां मिथ्यारूपत्वादिति ।

पूर्वं चन्द्रसूर्यसंस्थितिः समचतुरस्रसंस्थानसंस्थितेति भगवता प्रदर्शितम्, सा च कथं संगच्छते ? इति प्रदर्श्यते, तथाहि—इह सर्वेऽपि कालविशेषाः सुषमसुषमादयो युगमूलाः, युगस्य चादौ श्रावणे मासे कृष्णपक्षस्य प्रतिपदि प्रातरुदयसमये एकः सूर्यो दक्षिणपूर्वस्या मित्याग्नेयकोणे वर्त्तते, तद्भिन्नो द्वितीयः सूर्यः पश्चिमोत्तरस्यामिति वायव्यकोणे वर्त्तते । एवं चन्द्रश्च तत्समये एको दक्षिणपश्चिमायामिति नैऋत्यकोणे वर्त्तते, तदन्यस्तु उत्तरपूर्वस्यामिति ऐशान्यकोणे वर्त्तते तस्माद् युगस्यादौ चन्द्रसूर्याः समचतुरस्रसंस्थानसंस्थिता भवन्तीत्यतो भगवता चन्द्रसूर्ययोः संस्थितिः समचतुरस्रसंस्थिता प्रतिपादिता । यच्चात्र मण्डलापेक्षया चन्द्रयोः संस्थितिविषये वैषम्यं लभ्यते यथा तस्मिन् समये सूर्यौ सर्वाभ्यन्तरमण्डले चारं चरतः, चन्द्रौ च तदा सर्वबाह्यमण्डले वर्त्तेते तेन चन्द्रयोः संस्थितिः समचतुरस्रसंस्थिता न भवेत् तत्तु अल्पमिति कृत्वा सूत्रकृता न विवक्षिता, यतः सुषमासुषमादिरूपाणां समस्तकालविशेषाणामादिभूतस्य युगस्यादौ समचतुरस्रसंस्थिता चन्द्रसूर्ययोः संस्थितिर्भवति तत एतेषां संस्थितिः समचतुरस्रसंस्थानतया वर्णिता ।

अन्यथा वा स्व स्व सम्प्रदायानुसारेण समचतुरस्रसंस्थितिर्विचारणीयेति ॥सू० १॥

अथ पूर्वप्रतिज्ञातां तापक्षेत्रसंस्थितिं प्रतिपादयन्नाह—'ता कहं ते तावक्खेत्तसंठिई' इत्यादि ।

मूलम्—ता कहं ते तावक्खेत्तसंठिई आहिया ? ति वएज्जा, तत्थ खलु इमाओ सोलस पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ तं जहा-तत्थ णं एगे एव माहंसु-ता गेहसंठिया तावक्खेत्तसंठिई पण्णत्ता ।१। एवं ताओ चेव अट्ठ पडिवत्तीओ णेयव्वाओ जाव वालग्गपोइया संठिया तावक्खेत्तसंठिई पण्णत्ता एगे एव माहंसु ।८। एगे पुण एव माहंसु—ता जस्संठिए जंबुद्दीवे दीवे तस्संठिया तावक्खेत्तसंठिई पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ।९। एगे पुण एवमाहंसु—ता जस्संठिए भारहे वासे तस्संठिया तावक्खेत्तसंठिई पण्णत्ता

एगे एव माहंसु ।१०। एवं उज्जाणसंठिया ।११। निज्जाणसंठिया १२। एगओ णिसधसंठिया १३। दुहओ णिसधसंठिया १४। सेयणगसंठिया तावक्खेत्तसंठिई पण्णत्ता एगे एवमाहंसु ।१५। एगे पुण एवमाहंसु—ता सेणगपिट्ठसंठिया तावक्खेत्तसंठिई पण्णत्ता एगे एवमाहंसु १६।

वयं पुण एवं वयामो—ता उद्धीमुहकलंबुया पुप्फसंठिया तावक्खेत्तसंठिई पण्णत्ता अंतो संकुडा बाहिं वित्थडा, अंतो वट्टा बाहिं पिहुला, अंतो अंकमुहसंठिया बाहिं सत्थियमुहसंठिया, उभओ पासेणं तीसे दुवे बाहाओ अवट्ठियाओ भवंति, पणयालीसं पणयालीसं जोयणसहस्साइं आयामेणं, तीसे दुवे बाहाओ अणवट्ठियाओ भवंति तं जहा—सव्वब्भंतरिया चेव बाहा, सव्वबाहिरिया चेव बाहा। तत्थ को हेऊ ? त्ति वदेज्जा। ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे जाव परिक्खेवेण पण्णत्ते। ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चार चरइ तया णं उद्धीमुहकलंबुयापुप्फसंठिया तावक्खेत्तसंठिई आहिया ति वएज्जा—अंतो संकुडा बाहिं वित्थडा, अंतो वट्टा बाहिं पिहुला, अंतो अंकमुहसंठिया बाहिं सत्थियमुहसंठिया. दुहओ पासेणं तीसे तहेव जाव सव्वबाहिरिया चेव बाहा। तीसेणं सव्वब्भंतरिया बाहा मंदरपव्वयंतेणं णव जोयणसहस्साइं, चत्तारि य छलसीई जोयणसयाइं, णव य दसभागा जोयणस्स परिक्खेवेणं आहिया तिवएज्जा। ता से णं परिक्खेवविसेसे कओ आहिए ? ति वएज्जा, ता जे णं मंदरस्स पव्वयस्स परिक्खेवे, तं परिक्खेवं तिहिं गुणित्ता दसहि छित्वा दसहिं भागे हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे आहिए तिवएज्जा। तीसे णं सव्वबाहिरिया बाहा लवणसमुद्दं ते णं चउणउई जोयणसहस्साइं, अट्ठ य अट्ठसट्ठिं जोयणसयाइं चत्तारि य दसभागे जोयणस्स परिक्खेवेणं आहिया तिवएज्जा। ता से णं परिक्खेवविसेसे कओ आहिए ? ति वएज्जा, ता जे णं जंबुद्दीवस्स दीवस्स परिक्खेवे, तं परिक्खेवं तिहिं गुणित्ता दसहिं छित्ता दसहिं भागे हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे आहिए ति वएज्जा। ता से णं तावक्खेत्ते केवइए आयामेणं आहिए ? ति वएज्जा, ता अट्ठत्तरिं जोयणसहस्साइं तिण्णि य तेत्तीसाइं जोयणसयाइं जोयणतिभागे य आयामेणं आहिए ति वएज्जा। तया णं किं संठिया अंधगारसंठिई आहिया ? ति वएज्जा, उद्धीमुहकलंबुया पुप्फसंठिया तहेव जाव बाहिरिया चेव बाहा। तीसे णं सव्वब्भंतरिया बाहा मंदरपव्वयंतेणं छज्जोयणसहस्साइं तिण्णि य चउवीसे जोयणसयाइं छच्च दस भागे जोयणस्स परिक्खेवेणं आहिया ति वएज्जा। तीसे णं परिक्खेवविसेसे कओ आहिए ? ति वएज्जा, ता जे णं

मंदरस्स पव्वयस्स परिक्खेवे, तं परिक्खेवं दोहिं गुणेत्ता सेसं तहेव । तीसे णं सव्व-बाहिरिया बाहा लवणसमुद्दंतेणं तेवट्ठिजोयणसहस्साइं, दोण्णि य पणयाले जोयण-सयाइं छच्च दसभागा जोयणस्स परिक्खेवेणं आहिया ? तिवएज्जा । ता से णं परि-क्खेवविसेसे कओ आहिए ? तिवएज्जा, ता जे णं जंबुदीवस्स दीवस्स परिक्खेवे, तं परिक्खेवं दोहिं गुणित्ता दसहिं छेत्ता, दसहिं भागे हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे आहिए तिवएज्जा । ता से णं अंधयारे केवइए अयामेणं आहिए ? ति वएज्जा, ता अट्ठ-त्तरिं जोयणसहस्साइं तिण्णि य तेत्तीसाइं जोयणसयाइं, जोयणतिभागं च आयामेणं आहिएति वएज्जा । तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ ॥ सू० २ ॥

छाया—तावत् कथं ते तापक्षेत्रसंस्थितिः आख्याता ? इति वदेत् । तत्र खलु इमा षोडश प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः । तद्यथा-तत्र खलु एके एवमाहुः-तावत् गेहसंस्थिता तापक्षेत्रसंस्थितिः प्रज्ञप्ता ।१। एवं ता एव अष्ट प्रतिपत्तयः ज्ञातव्या यावत् वालाग्रपोतिका संस्थिता तापक्षेत्रस्थितिः प्रज्ञप्ताः । एके एवमाहुः ।८। एके पुनरेवमाहुः तावत् यत्संस्थितः जम्बूद्वीपो द्वीपः तत्संस्थिता तापक्षेत्रसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, एके एवमाहुः ।९। एके पुनरेव-माहुः-तावत् यत्संस्थितः भारतो वर्षः तत्संस्थिता तापक्षेत्रसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, एके एवमाहुः १० एवम् उद्यानसंस्थिता ११, निर्याणसंस्थिता १२, एकतो निषधसंस्थिता १३, द्विधा-तो निषधसंस्थिता १४, सेचनकसंस्थिता तापक्षेत्रसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, एके एवमाहुः ।१५। एकेपुनरेवमाहुः-तावत् सेचनकपृष्ठसंस्थिता तापक्षेत्रसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, एके एवमाहुः १६

वयं पुनरेवं वदामः-तावत् उर्ध्वमुखकलम्बुका पुष्पसंस्थिता तापक्षेत्रसंस्थितिः प्रज्ञप्ता-अन्तः संकुचिता बहिर्विस्तृता, अन्तर्वृत्ता बहिः पृथुला, अन्तः अङ्कमुखसंस्थिता बहिः स्वस्तिकमुखसंस्थिता, उभयतः पार्श्वेन तस्याः द्वे बाहे अवस्थिते भवतः, पञ्चचत्वा-रिंशत् पञ्चचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि आयामेन, तस्या द्वे बाहे अनवस्थिते भवतः, तद्यथा-सर्वाभ्यन्तराचैव बाहा ।१। सर्वबाह्या चैव बाहा ।२। तत्र को हेतुः ? इति वदेत् । तावत् अयं खलु जम्बूद्वीपो द्वीपः यावत् परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः । तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु ऊर्ध्वमुखकलम्बुका-पुष्पसंस्थिता तापक्षेत्रसंस्थितिः आख्याता इति वदेत्- अन्तः संकुचिता बहिः विस्तृता, अन्तर्वृत्ता बहिः पृथुला, अन्तः अंकमुखसंस्थिता बहिः स्वस्तिकमुखसंस्थिता, द्विधातः पार्श्वेन तस्या तथैव यावत् सर्वबाह्या चैव बाहा । तस्याः खलु सर्वाभ्यन्तरा बाहा मन्दर-पर्वतान्ते नवयोजनसहस्राणि चत्वारि च षडशीति योजनशतानि, नव च दशभागान् योजनस्य परिक्षेपेण आख्याता इति वदेत् । तावत् स खलु परिक्षेपविशेषः कुतः आख्यातः ? इति वदेत् तावत् यः खलु मन्दरस्य पर्वतस्य परिक्षेप, तं परिक्षेपं त्रिभि-र्गुणयित्वा दशभिश्छित्वा, दशभिर्भागे ह्रियमाणे एष खलु परिक्षेपविशेष आख्यात इति वदेत् । तस्याः खलु सर्वबाह्या बाहा लवणसमुद्रान्ते चतुर्नवतिं योजनसहस्राणि, अष्ट च

अष्टषष्टिं योजनशतानि चतुरश्च दशभागान् योजनस्य परिक्षेपेण आख्याता इति वदेत्। तावत् स खलु परिक्षेपविशेषः कुत आख्यातः ? इति वदेत्। तावत् यः खलु जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य परिक्षेपः, तं परिक्षेपं त्रिभिर्गुणयित्वा दशभिश्छित्त्वा–दशभिर्भागे ह्रियमाणे एष खलु परिक्षेपविशेष आख्यात इति वदेत्। तावत् तत् खलु तापक्षेत्रं कियत्कम् आयामेन आख्यातम् ? इति वदेत्। तावत् अष्टसप्ततिं योजनसहस्राणि त्रीणि च त्रयस्त्रिंशतं योजनशतानि, योजनत्रिभागांश्च आयामेन आख्यातम् इति वदेत्। तदा खलु किं संस्थिता अन्धकारसंस्थितिः–आख्याता ? इति वदेत् ऊर्ध्वीमुखकलम्बुका पुष्पसंस्थिता तथैव यावत् बाह्या चैव बाहा। तस्याः खलु सर्वाभ्यन्तरा बाहा मन्दरपर्वतान्ते षड्योजनसहस्राणि त्रीणि च चतुर्विंशतिं योजनशतानि षड्दशभागान् योजनस्य परिक्षेपेण आख्याता इति वदेत्। तस्याः खलु परिक्षेपविशेषः कुत आख्यातः ? इति वदेत्। तावत् यः खलु मन्दरस्य पर्वतस्य परिक्षेपः, तं परिक्षेपं द्वाभ्यां गुणयित्वा शेषं तथैव। तस्याः खलु सर्वबाह्या बाहा लवणसमुद्रान्ते त्रिषष्टियोजनसहस्राणि द्वे च पञ्चचत्वारिंशतं योजनशते षड्दशभागान् योजनस्य परिक्षेपेण आख्याता इति वदेत्। तावत् स खलु परिक्षेपविशेषः–कुत आख्यातः ? इति वदेत्। तावत् यः खलु जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य परिक्षेपः, तं परिक्षेपं द्वाभ्यां गुणयित्वा दशभिश्छित्त्वा दशभिर्भागे ह्रियमाणे एष खलु परिक्षेपविशेषः आख्यात इति वदेत्। तावत् स खलु अन्धकारः कियत्कः आयामेन आख्यातः ? इति वदेत्। तावत् अष्टसप्ततिं योजनसहस्राणि, त्रीणि च त्रयस्त्रिंशतं योजनशतानि, योजनत्रिभागं च आयामेन आख्यात इति वदेत्। तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। सू०२॥

व्याख्या—'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण कीदृशीत्यर्थः ते तव भगवतो मते 'तावक्खेत्तसंठिई' तापक्षेत्रसंस्थिति. तापक्षेत्रस्य संस्थानं 'आहिया' आख्याता कथिता किं संस्थितं तापक्षेत्रमाख्यातमिति भाव, 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु भगवान्। 'तत्थ' तत्र तापक्षेत्रसंस्थितिविषये 'इमाओ' इमाः वक्ष्यमाणप्रकाराः 'सोलस' षोडश षोडशसंख्यकाः 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः परमतरूपाः 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ताः कथिताः, 'तं जहा' तद्यथा–ता यथा– 'तत्थ णं' तत्र तापक्षेत्रसंस्थितिविषये खलु 'एगे पुण' एके केचन प्रथमाः प्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः–कथयन्ति–'ता' तावत् 'गेहसंठिया' गेहसंस्थिता वास्तुशास्त्रप्रसिद्धगृहाकारा तावक्खेत्तसंठिई' तापक्षेत्रसंस्थितिः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ता, 'एगे' एके पूर्वोक्ता प्रथमा 'एवं' एवं पूर्वोक्तरूपेण 'आहंसु' आहुः–कथयन्ति १ 'एवं' एवम्–अनेन आलापक प्रकारेण 'ताओ चेव' ता एव पूर्वोक्ताः पूर्वसूत्रोक्ता नवमीगेहसंस्थितित आरभ्य अन्तिमाः 'अट्ठपडिवत्तीओ' अष्टप्रतिपत्तयः षोडशपर्यन्ता अत्र 'णेयव्वाओ' ज्ञातव्याः, कीदृक् प्रतिपत्तिपर्यन्तमित्याह–'जाव' यावत् षोडशीयाऽत्राष्टमी भवेत् सा 'वालग्गपोइया संठिया' वालाग्रपोतिका संस्थिता 'तावक्खेत्तसंठिई' तापक्षेत्रसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, 'एगे' एके अष्टमाः प्रतिपत्ति-

वादिनः 'एवं' एवं पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः—कथयन्ति ।८। एषामष्टानां व्याख्या पूर्वं चन्द्र-सूर्यसंस्थितिप्रकरणे कृता तत्रतोऽवगन्तव्या, नात्र प्रपञ्चितेति, 'एगे पुण' एके नवमाः पुनः 'एवं' एवं–वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः—कथयन्ति—'ता' तावत् 'जस्संठिए जम्बूदीवे-दीवे' यत्संस्थितः यत्संस्थानवान् जम्बूद्वीपो द्वीपः 'तस्संठिया' तत्संस्थिता 'तावक्खेत्तसंठिई' तापक्षेत्रसंस्थितिः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ता, 'एगे एवमाहंसु' एके एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः कथयन्ति ९, 'एगे पुण' एके दशमाः पुनः 'एवमाहंसु' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः- 'ता' तावत् 'जस्संठिए भारहे वासे' यत्संस्थितः भारतं वर्षं भरतक्षेत्रं 'तस्संठिया' तत्संस्थिता 'ताव-क्खेत्तसंठिई पण्णत्ता' तापक्षेत्रसंस्थितिः प्रज्ञप्ता, 'एगे एवमाहंसु' एके दशमा एवं पूर्वोक्त प्रकारेण आहुः १० 'एवं' एवम् अनेन प्रकारेण आलापककरणेन 'उज्जाणसंठिया' उद्यान-संस्थिता ११, 'निज्जाणसंठिया' निर्याणसंस्थिता, निर्याणनाम पुरस्य निर्गमनमार्गः, तत्संस्थिता १२, 'एगओ णिसधसंठिया' एकतो निषधसंस्थिता, एकतो रथस्यैकस्मिन् पार्श्वे नि–नितरां यः सहते स्वपृष्टभागे समारोपितं भारमिति निषधः—बलीवर्दः, तस्येव एकतः पार्श्वसंलग्न-बलीवर्दस्येव संस्थानं यस्याः सा तथा १३, 'दुहओ णिसधसंठिया' द्विधातो निषधसंस्थिता, रथस्य उभयपार्श्वयोर्यौ बलीवर्दौ तयोरिवसंस्थानं यस्याः सा तथा १४, 'सेयणगसंठिया' सेचनकसंस्थिता सेचनकः श्येनकः पक्षिविशेषः बाज इति प्रसिद्धः, तस्येवसंस्थितं संस्थानं यस्या सा तथा, 'तावक्खेत्तसंठिई' तापक्षेत्रसंस्थितिः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ता 'एगे एवमाहंसु' एके एवमाहुः, १५ । 'एगे पुण' एके षोडशाः प्रतिपत्तिवादिनः पुनः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति 'ता' तावत् 'सेयणगपिट्ठसंठिया' सेचनकपृष्टसंस्थिता श्येनक पक्षिपृष्टभागस्य संस्थानसमाना 'तावक्खेत्तसंठिई' तापक्षेत्रसंस्थितिः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ता 'एगे एवमाहंसु' एके षोडशा एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः कथयन्तीति ॥१६॥

तदेवं प्रदर्शिताः षोडशापि प्रतिपत्तयो मिथ्या रूपाः, ता निराकृत्य भगवान् स्वमतं प्रद-र्शयति—'वयं पुण' इत्यादि । 'वयं पुण' वयं पुनः वय तु 'एवं' एवं—वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयामो' वदामः कथयामः, तदेवाह—'उद्धीमुह' इत्यादि । 'ता' तावत् 'उद्धीमुहकलंबुया पुप्फसंठिया' उर्ध्वमुखकलम्बुकापुष्पसंस्थिता उर्ध्वीभूतमुखस्य कलम्बुका नाम नालिका वनस्पतिविशेषः तस्य पुष्पस्येव संस्थितं संस्थानं यस्या सा तथाविधा तापक्षेत्रसंस्थितिः प्रज्ञप्ता। सा कीदृशी भवेदित्याह—'अंतो संकुडा बाहिं वित्थडा' अन्तः संकुचिता बहिर्विस्तृता, अन्तः मेरुदिशि, बहिर्लवणसमुद्रदिशि क्रमेण संकुचिता विस्तृता चेति। पुनश्च 'अंतो वट्टा' अन्तर्वृत्ता, अन्तर्मेरुदिशि वृत्तेति अर्धवलयाकारा अर्धगोलाकारा इत्यर्थः सर्वतोवृ-त्तमेरुस्थितान् त्रीन् द्वौ वा दशभागान् अभिव्याप्य तस्या व्यवस्थितत्वात् 'बाहिं पिहुला' बहिः पृथुला बहिः लवणसमुद्रदिशि विस्तारमुपगता। एतदेव पुनः स्पष्टयति 'अंतो अंकमुह-

संठिया' अन्तः अङ्कमुखसंस्थिता, अन्तः मेरुदिशि अङ्कः उत्सङ्गः स च पद्मासनोपविष्टस्य तद्रूप आसनवन्धः, तस्य मुखम् अग्रभागः अर्धवलयाकारस्तदाकारवत्संस्थानं यस्याः सा तथा, **'बाहिं सत्थियमुहसंठिया'** बहिः स्वस्तिकमुखसंस्थिता बहिर्लवणसमुद्रदिशि स्वस्तिकः मङ्गलाकृतिविशेषः प्रसिद्धः, तस्य मुखम् अग्रभागः तस्यैवातिविस्तीर्णतया संस्थानेन संस्थिता । **'उभओ पासेणं'** उभयतः पार्श्वेन मेरोरुभयोः पार्श्वयोः **'तीसे'** तस्यास्तापक्षेत्रसंस्थितेः सूर्यभेदेन द्विधाऽवस्थितायाः **'दुवे बाहाओ'** द्वे बाहे प्रत्येकमेकैकभावेन **'अवट्ठियाओ भवंति'** अवस्थिते भवतः जम्बूद्वीपगतमायाममाश्रित्यावस्थिते इतिभावः । सा एकैका बाहा कियत्प्रमाणा ? इत्याह— **'पणयालीसं'** इत्यादि । **'पणयालीसं पणयालीसं'** प्रत्येकं बाहा पञ्चचत्वारिंशत् पञ्चत्वारिंशद् योजनसहस्राणि (४५०००) आयामेन । तथा **'तीसे'** तस्याः तापक्षेत्रसंस्थितेकैकस्याः **'दुवे बाहाओ'** द्वे बाहे **'अणवट्ठियाओ भवंति'** अनवस्थिते भवतः **'तं जहा'** तद्यथा ते यथा— **'सव्वब्भंतरिया चेव सव्वबाहिरिया चेव'** सर्वाभ्यन्तरा चैव बाहा सर्वबाह्या चैव बाहा, तत्र सर्वाभ्यन्तरा या मेरुमसीपे विष्कम्भमधिकृत्य बाहा सा, सर्वबाह्या च या लवणदिशि जम्बूद्वीपपर्यन्तभागे विष्कम्भमधिकृत्य बाहा सा । अत्र आयामः दक्षिणोत्तरायतत्वमाश्रित्य विज्ञेयः, विष्कम्भश्च पूर्वापरायतत्वमाश्रित्य विज्ञेय इति । भगवता एवमुक्ते गौतमः स्पष्टावबोधार्थं पुनः पृच्छति— **'तत्थ'** इत्यादि । **'तत्थ'** तत्र तस्यामेवंविधायां व्यवस्थायां **'को हेऊ'** को हेतुः ? किं कारणम् अत्रोपपत्तिः का ? **'आहिए'** आख्यातो भवता कथितः **'ति वएज्जा'** इति वदेत् वदतु कथयतु हे—भगवन् । भगवानाह—**'ता'** इत्यादि । **'ता'** तावत् **'अयण्णं'** अयं लोकप्रसिद्धः खलु **'जंबुद्दीवे दीवे'** जम्बूद्वीपोद्वीपः मध्यजम्बूद्वीपः **'जाव'** यावत्—यावत्पदेन जम्बूद्वीपस्य तत्परिवेश्च सर्वं वर्णनमत्र वाच्यम्, तत्र प्रतिपादितपरिमितो जम्बूद्वीपः **'परिक्खेवेणं'** परिक्षेपेण परिधिना **'पण्णत्ते'** प्रज्ञप्तः । ततः किम् ? इत्याह—**'ता जया णं'** इत्यादि । **'ता'** तावत् **'जया णं'** यदा खलु **'सूरिए'** सूर्यः **'सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ'** सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति, **'तया णं'** तदा खलु **उद्धीमुहकलंबुयापुप्फसंठिया'**ऊर्ध्वमुखकलम्बुकापुष्पसंस्थिता **'तावक्खेत्तसंठिई'** तापक्षेत्रसंस्थितिः **'आहिया'** आख्याता **'ति वएज्जा'** इति वदेत् स्वशिष्येभ्यः । सा कीदृशी ? इत्याह—**'अंतो संकुडा बाहिं वित्थडा'** अन्तः संकुचिता बहिर्विस्तृता, पुनश्च—**'अंतो वट्टा बाहिं पिहुला,** अन्तो वृत्ता अर्धवलयाकारा, बहिः पृथुला—विस्तीर्णा, पुनश्च—**'अंतो अंकमुहसंठिया बाहिं सत्थियमुहसंठिया'** अन्तः अङ्कमुखसंस्थिता, बहिः स्वस्तिकमुखसंस्थिता, अर्थः प्राग्वत् **'दुहओ पासेणं'** द्विधात पार्श्वेण उभयपार्श्वे इत्यर्थः **'तीसे'** तस्याः तापक्षेत्रसंस्थिते **'तहेव जाव सव्वबाहिरिया चेव बाहा'** तथैव पूर्वोक्तवदेव यावत् सर्वबाह्या चैव बाहा, यावत् पदेन **'दुवे बाहाओ'** इत्यादि पूर्वोक्त आलापः सर्वो

वाच्यः । 'तीसेणं' तस्या तापक्षेत्रसंस्थितेः खलु 'सव्वब्भंतरिया बाहा' सर्वाभ्यन्तरा बाहा 'मंदरपव्वयंते णं' मन्दरपर्वतान्ते मेरुपर्वतसमीपे तत्परिक्षेपगततया 'नव जोयणसहस्साइं' नव योजनसहस्राणि 'चत्तारि य छअसीई जोयणसयाइ' चत्वारि षडशीतिः योजनशतानि षडशीत्यधिकानि चतुःशतयोजनानि 'नव य दसभागे जोयणस्स' नव च दशभागान् योजनस्य ($९४८६\frac{९}{१०}$) 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण परिधिना पूर्वोक्तपरिधिवती सर्वाभ्यन्तरा बाहा मेरु पर्वतसमीपे 'आहिया' आख्याता 'ति वएज्जा' इति वदेत् स्वशिष्येभ्य इति । गौतमः पुनः प्रश्नयति–'ता सेणं' इत्यादि । 'ता' तावत् हे भगवन् 'से णं' सः तापक्षत्रसंस्थितिविषयः खलु 'परिक्खेवविसेसे' परिक्षपविशेषः मन्दरपरिरय–परिक्षेपणविशेष इत्यर्थः 'कओ' कुतः कस्मात् कारणात् इयत्परिमितः 'आहिए' आख्यातः ? 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु भवान् हे भगवन् । भगवानाह–'ता जे णं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'जे णं' यः खलु 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्य पर्वतस्य 'परिक्खेवे' परिक्षेपः परिरयगणितसिद्धः त्रयोविंशत्यधिकषट्शतोत्तरैकत्रिंशत्सहस्र (३१६२३) परिमितो वर्त्तते 'तं परिक्खेवं' तं परिक्षेपं 'तिहिं गुणित्ता' त्रिभिर्गुणयित्वा ततः 'दसहिं छित्ता' दशभिश्छित्त्वा–विभज्य भागं हृत्वा दशभिर्विभज्यते इति भावः 'दसहिं भागे हीरमाणे' दशभिर्भागे ह्रियमाणे यो राशिर्लभ्यते 'एस णं' एष खलु राशिः ($९४८६\frac{९}{१०}$) 'परिक्खेवविसेसे' परिक्षेपविशेषः मन्दरसमीपे तापक्षेत्रपरिमाणमागच्छति, कस्मादेवं क्रियते ? इति चेदाह–इह सर्वाभ्यन्तरे मण्डले यदा सूर्यो वर्त्तते तदा जम्बूद्वीपसम्बन्धिनश्चक्रवालस्य यत्र तत्र प्रदेशे तत्तच्चक्रवालक्षेत्रप्रमाणानुसारेण त्रीन् दशभागान् ($\frac{३}{१०}$) प्रकाशयतीति पूर्वमेवोक्तम् ।

साम्प्रतं मन्दरसमीपगततापक्षेत्रचिन्ता क्रियतेऽतः प्रथमं यथा मन्दरपरिरयः सुखेनावबुध्यते तदर्थमेवं क्रियते इति । तथा हि गणितप्रकारः–मन्दरपर्वतस्य विष्कम्भपरिमाणं दशसहस्रयोजन-(१००००) परिमितम् । अस्य वर्गः क्रियते, या संख्या भवेत् सा तत्परिमितसंख्ययैव गुणनेन-वर्गो भवति । एवं वर्गे कृते जाता दशकोटयः (१०००००००) एकाङ्कोपरि अष्टशून्यानि, तासां दशकोटिकानां दशभिर्गुणने एकं शून्यं दशकोटयाउपरिवर्धते तेन जातं कोटिशतम् (१००००-०००००) एकाङ्कोपरि नवशून्यानि । अस्य राशेरासन्नवर्गमूलानयने लब्धानि किञ्चिन्न्यून त्रयोविंशत्यधिकषट्शतोत्तराणि एकत्रिंशत्सहस्राणि–(३१६२३) निश्चयतः, व्यवहारतस्तु परिपूर्णानीति विवक्ष्यते, अयं राशिस्त्रिभिर्गुण्यते तदा जायन्ते चतुर्नवतिसहस्राणि एकोनसप्तत्यधिकानि अष्टशतानि (९४८६९) एषां दशभिर्भागे हृते लभ्यन्ते षडशीत्यधिकचतुःशतोत्तराणि नवसहस्रयोजनानिशेषा

नवच दश भागा योजनस्य(९४८६ $\frac{९}{१०}$) इति लब्धं यथोक्तं मन्दरसमीपे तापक्षेत्रपरिमाणमिति,

उक्तञ्चान्यत्रापि-'मंदरपरिरयरासी, तिगुणे दसभाइयंमि जं लद्धं ।
तं होइ तावखेत्तं अब्भितरमंडले रविणो ॥१॥ इति ।
छाया-मन्दरपरिरयराशौ, त्रिगुणिते दशभाजिते यल्लब्धम् ।
तद्भवति तापक्षेत्रं, अभ्यन्तरमण्डले रवेः ॥१॥ इति ।

उक्तं च सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलस्थितिसमये मन्दरसमीपे तापक्षेत्रसंस्थितेः सर्वाभ्यन्तरबाहाया विष्कम्भपरिमाणम् । अथ च लवणसमुद्रदिशि जम्बूद्वीपपर्यन्ते स्थितायाः सर्वबाह्या बाहाया विष्कम्भपरिमाणमाह-'तीसे णं' इत्यादि,

'तीसे णं' तस्याः खलु तापक्षेत्रसंस्थितेः 'सव्वबाहिरिया बाहा' सर्वबाह्या बाहा 'लवण समुद्दंते णं' लवणसमुद्रान्ते 'चउणउइं जोयणसहस्साइं' चतुर्नवतियोजनसहस्राणि 'अट्ठय अट्ठसट्ठे जोयणसयाइ' अष्ट च अष्टषष्ठि योजनशतानि अष्टषष्टचधिकानि अष्टशतयोजनानि 'चत्तारि य दसभागे जोयणस्स' चतुरश्चदशभागान् योजनस्य (९४८६८ $\frac{४}{१०}$) यावत् 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण जम्बूद्वीपपरियपरिक्षेपेण 'आहिया' आख्याता 'ति वएज्जा' इति वदेत् । अथास्य स्पष्टबोधार्थं गौतमः प्रश्नयति-'ता से णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'से णं' स खलु एतावान् परिक्षेपविशेषस्तापक्षेत्रसंस्थितेः 'कओ आहिए' कुत आख्यातः कस्मात्कारणात् कथितः 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु भगवन् । इति गौतमेन प्रश्ने कृते तदेव भगवान् दर्शयति-'ता जे णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जे णं' यः खलु जम्बूद्वीपस्य परिक्षेपः परिरयगणितप्रसिद्धः 'परिक्खेवविसेसे' परिक्षेपविशेषः अस्ति 'तं परिक्खेवं' तं परिक्षेपम् 'तिहिं गुणित्ता' त्रिभिर्गुणयित्वा 'दसहिं छित्ता' दशभिश्छित्वा दशभिर्भागं हृत्वा, दशभिर्विभज्यते इति भावः, 'दसहिं भागे हीरमाणे' दशभिभागे ह्रियमाणे दशभिर्विभाजिते सति यो राशिर्लभ्यते 'एस णं' एष : भागलब्धः खलु 'परिक्खेवविसेसे' परिक्षेविशेषः 'आहिए' आख्यातः । एतच्च यथोक्तं जम्बूद्वीप-पर्यन्ते लवणदिशि तापक्षेत्रपरिमाणं भवति 'ति वएज्जा' इति वदेत् कथयेत् स्वशिष्येभ्य इति । तद्गणितविधिश्चेत्थम्—जम्बूद्वीपस्य परिक्षेपः-सप्तविंशत्यधिकद्विशतोत्तरषोडशसहस्राधिकानि त्रीणि लक्षाणि योजनानाम् (३१६२२७) तदुपरि गव्यूतत्रयम् (३) अष्टाविंशत्यधिकमेकं धनुः शतम् (१२८) सार्धत्रयोदशाङ्गुलानि (१३॥) च' अत्र निश्चयत एकं योजनं किञ्चिन्न्यूनं वर्त्तते किन्तु व्यवहारतः अष्टाविंशत्यधिकं शतद्वयं परिपूर्णं विज्ञेयं ततः-अष्टाविंशत्यधिकशतद्वयोत्तरषोडशसहस्राधिकानि त्रीणि लक्षाणि योजनानां (३१६२२८) जम्बूद्वीपपरिधिर्ग्रहीतव्यः । एषा संख्या त्रिभिर्गुण्यते जातानि-चतुरशीत्यधिकषट्शताधिकाष्टाचत्वारिंशत्सहस्रोत्तराणि

नवलक्षाणि (९४८६८४) एतेषां दशभिर्भागे हृते लभ्यते यथोक्तं जम्बूद्वीपपर्यन्ते२, सर्व-बाह्यावाहाया विष्कम्भपरिमाणम्-(९४८६८ $\frac{४}{१०}$) इति ।

तदेवमुक्तं जम्बूद्वीपे तापक्षेत्रसंस्थितेः सर्वाभ्यन्तराया सर्वबाह्यायाश्च बाहाया विष्कम्भपरिमाणम् । साम्प्रतं सामस्त्येन तापक्षेत्रपरिमाणमायामतः कियत् ? इति जिज्ञासायामाह— **'ता से णं'** इत्यादि ।

'ता' तावत् 'से णं' तत् खलु **'तावखेत्ते'** तापक्षेत्रं **'केवइयं'** कियत्कं । कियत्प्रमाणकम् **'आयामेणं'** आयामेन सामस्त्येन दक्षिणोत्तरायततया **'आहियं'** आख्यातम् । **'तिवएज्जा'** इति वदेत् वदतु हे भगवन् । भगवानाह—**'ता अट्ठत्तरिं'** इत्यादि । 'ता' तावत् **'अट्ठत्तरिं'** अष्टसप्ततिं **'जोयणसहस्साइं'** योजनसहस्राणि अष्टसप्ततिसहस्रयोजनानि **'तिण्णि य तेत्तीसं जोयणसयाइं'** त्रीणि त्रयस्त्रिंशतं योजनशतानि त्रयस्त्रिंशदधिकत्रिशतयोजनानि **'जोयणतिभागं च'** योजनत्रिभागं च एकस्य योजनस्य तृतीयं भागं यावत् ७८३३३-$\frac{१}{३}$) योजनत्रिभागं **'जोयण तिभागं च'** आयामेय दक्षिणोत्तरायतया **'आयामेणं'** आयामेन दक्षिणोत्तरायतया **'आहियं'** आख्यातं कथितम् **'ति वएज्जा'** इति वदेत् स्वशिष्येभ्यः ।

अयमाशयः—सर्वाभ्यन्तरे मण्डले यदि सूर्यश्चारं चरति तदा तस्य तापक्षेत्रं दक्षिणोत्तरायततामाश्रित्य मेरोर्मध्यभागाद् आरभ्य यावत् लवणसमुद्रस्य षष्ठो भागो भवेत् तावद् वर्धते, अत्रार्थे चाह—

मेरुस्समज्झभागा, जाव य लवणस्स रुंदछब्भागा ।
तावायामो एसो, सगडुद्धी संठिओ नियमा ॥१॥

छाया—मेरोर्मध्यभागात् यावच्च लवणस्य रुंद षड्भागाः ।
तापायामः, एष शकटो द्धिसंस्थितो नियमात् ॥१॥ इति ।

एषः तापक्षेत्रस्यायामः । तत्र मेरोरारभ्य जम्बूद्वीपपर्यन्तभागं यावत् पञ्चचत्वारिंशत्सहस्रयोजनानि (४५०००) लवणसमुद्रस्य विस्तारश्च द्विलक्षयोजनानि, एषां षष्ठो भागः षष्ठेन भागहरणात् लब्धः त्रयस्त्रिंशत्सहस्रयोजनानि, त्रयस्त्रिंशदधिकशतत्रयोत्तराणि योजनस्य च त्रिभागः (३३३३३ $\frac{१}{३}$) । ततोऽस्यां संख्यायां पञ्चचत्वारिंशत् सहस्रयोजनानां संमेलने जातं यथोक्तम् (७८३३३-$\frac{१}{३}$) आयामपरिमाणम् । मेरोरारभ्य जम्बूद्वीपपर्यन्तभागं यावत् पञ्चचत्वारिंशत्सहस्रयोजनानि कथं स्युरित्याह—जम्बूद्वीपपरिमाणमेकलक्षयोजनकम् तस्मात् मेरोर्भागः—दशसहस्र-

योजनपरिमितं, स जम्बूद्वीपपरिमाणात् शोध्यते ततो भवेयुः नवतिसहस्रयोजनानि, एषां भागद्वयकरणे एकस्य भागस्य लभ्यन्ते पञ्चचत्वारिंशत्सहस्रयोजनानीति ।

उक्तं तापक्षेत्रपरिमाणं, साम्प्रतं सर्वाभ्यन्तरमण्डलमाश्रित्यान्धकारसंस्थितिं प्रतिपादयन्नाह– 'तया णं' इत्यादि–

'तया णं' तदा खलु सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारसमये '**किं संठिया**' किं संस्थिता–कीदृक्संस्थानवती '**अंधगारसंठिई**' अन्धकारसंस्थितिः '**आहिया**' आख्याता ? '**ति वएज्जा**' इति वदेत् वदतु हे भगवन् ? भगवानाह–'ता' तावत् '**उद्धीमुहकलंबुया पुप्फसंठिया**' उर्ध्वमुखकलम्बुका पुष्पसंस्थिता '**तहेव जाव बाहिरिया चेव बाहा**' तथैव यावत् बाह्याचैव बाहा तथैव पूर्वोक्तवदेवात्र पाठो ग्राह्यः । कियत्पर्यन्तमित्याह–यावत् बाह्या चैव बाहा, तत्रत्यप्रकरणं चेत्थम्–आख्याता इति वदेत्, कीदृशी सा अन्धकारसंस्थितिः ? अत्राह–तथा च तत्पाठः–'**अंतो संकुडा बाहिं वित्थडा, अंतो वट्टा बाहिंपिहुला, अंतो अंकमुहसंठिया, बाहिं सत्थियमुहसंठिया, उभओ पासेणं तीसे दुवे बाहाओ अवट्ठियाओ भवंति, पणयालीसं पणयालीसं जोयणसहस्साइं आयामेणं, तीसे दुवे बाहाओ–अणवट्ठियाओ भवंति, तंजहा–सव्वब्भंतरिया चेव बाहा सव्वबाहिरियाचेव बाहा**''

एषां पदानामर्थः पूर्वं व्याख्यातः, स तत्र विलोकनीयः ।

इमे द्वे बाहे अत्र अन्धकारसंस्थितेर्ज्ञातव्ये, इति विशेषः । तयोर्द्वयोर्बाह्योर्मध्ये प्रथमं सर्वाभ्यन्तराया बाहाया विष्कंभमाश्रित्य परिमाणमाह–'**तीसे णं**' इत्यादि ।

'तीसे णं' तस्या अन्धकारसंस्थितेः खलु '**सव्वब्भंतरिया बाहा**' सर्वाभ्यन्तरा बाहा या '**मंदरपव्वयंतेणं**' मन्दरपर्वतान्ते मन्दरपर्वतसमीपे वर्त्तते सा '**छज्जोयणसहस्साइं**' षड् योजनसहस्राणि षट्सहस्रयोजनानि '**तिण्णि य चउवीसे**' **जोयणसयाइं**, त्रीणि च चतुर्विंशतिः योजनशतानि चतुर्विंशत्यधिकत्रिशतयोजनानि '**छच्च दसभागे जोयणस्स**' षट् च दशभागान् योजनस्य $6324\frac{6}{10}$) '**परिक्खेवेणं**' परिक्षेपेण '**आहिया**' आख्याता '**ति वएज्जा**' इतिवदेत् कथयेत् स्वशिष्येभ्य इति । अत्र गौतमः पृच्छति '**ता से णं**' इत्यादि । '**ता**' तावत् '**से णं**' स खलु पूर्वोक्तः '**परिक्खेवविसेसे**' परिक्षेपविशेषः '**कओआहिए**' कुतः कस्मात्कारणात् आख्यातः ? '**तिवएज्जा**' इति वदेत् वदतु हे भगवन् ! । भगवानाह—हे गौतम ? '**ता**' तावत् '**जे णं**' यः खलु '**मंदरस्स पव्वयस्स परिक्खेवे**' मन्दरस्य पर्वतस्य परिक्षेपः प्राक् प्रतिपादितप्रमाणोऽस्ति '**तं परिक्खेवं**' तं परिक्षेपम् '**दोहिं गुणित्ता**' द्वाभ्यां गुणयित्वा '**सेसं तहेव**' शेषं तथैव पूर्ववदेव

अनुसंधेयम्, तथाहि—'दसहिं छित्ता दसहिं भागे हीरमाणे एस णं परिक्खेवविसेसे आहिएति वएज्जा'

छाया—दशभिश्छित्वा, दशभिर्भागे ह्रियमाणे एष खलु परिक्षेपविशेष आख्यात इति वदेत्। किमर्थं द्वाभ्यां गुणनम्? दशभिश्च भागहरणम्? इति चे दाह—

इह द्वयोः सूर्ययोः सर्वाभ्यन्तरमण्डलचरणसमये एकस्यापि सूर्यस्य जम्बूद्वीपगतचक्रवालस्य यस्मिन् तस्मिन् वा प्रदेशे यत्तच्चक्रवालक्षेत्रानुसारेण त्रयोदशभागाः प्रकाश्याः स्युः, तत उभयसंयोगे दशभागाः षड् भवन्ति, तेषां प्रत्येकं त्रयाणां त्रयाणां दशभागानामपान्तराले द्वौ द्वौ दशभागौ रजनी भवतः, ततः कारणात् द्वाभ्यां गुणनं कथितम्। तौ च द्वौ दशभागाविति दशभिर्भागहरणं कथितम्। 'सेसं तहेव' शेषं तथैव पूर्ववदेव' अथ सर्वबाह्यबाहा विषये प्राह-'तीसे णं' तस्याः खलु अन्धकारसंस्थितेः 'सव्वबाहिरिया बाहा' सर्वबाह्या बाहा 'लवणसमुद्दंतेणं' लवणसमुद्रान्ते लवणसमुद्रसमीपे जम्बूद्वीपपर्यन्तभागे 'तेवट्ठि जोयणसहस्साइं' त्रिषष्टिजोयनसहस्राणि 'दोण्णि य पणयाले जोयणसयाइं' द्वे पञ्चचत्वारिंशते योजनशते पञ्चचत्वारिंशदधिके द्वे शते 'छच्च दसभागे जोयणस्स' षड् च दशभागान् योजनस्य ($६३२४५\frac{६}{१०}$) यावत् 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण जम्बूद्वीपपरियपरिक्षेपेण 'आहिया' आख्याता 'ति वएज्जा' इति वदेत्। पुनर्गौतमः स्वशिष्याणां स्पष्टाववोधार्थं प्रश्नयति—'ता से णं' इत्यादि। 'ता' तावत् 'से णं' स खलु अन्धकारसंस्थितेः 'परिक्खेवविसेसे' परिक्षेपविशेषः 'कओ' कुतः कस्मात् कारणात् 'आहिए' आख्यातः? 'ति वएज्जा' इति वदेत्—वदतु कथयतु हे भगवन्? एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवान् तद्दर्शयति—'ता जे णं' इत्यादि। 'ता' तावत् 'जे णं' यः खलु 'जंबुद्दीवस्स दीवस्स' जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपः पूर्वप्रदर्शितः 'तं परिक्खेवं' तं परक्षेपम् 'दोहिं गुणित्ता' द्वाभ्यां गुणयित्वा 'दसहिं छेत्ता' दशभिश्छित्वा दशभिर्विभज्यते इति भावः ततः 'दसहिं भागे हीरमाणे' दशभिर्भागे ह्रियमाणे यो राशिर्लभ्यते 'एस णं' एष खलु—'परिक्खेवविसेसे' परिक्षेपविशेषः अन्धकारसंस्थितेः 'आहिए' आख्यातः 'ति वएज्जा' इति वदेत् स्वशिष्येभ्यः। अस्य कारणं पूर्वं प्रदर्शितमेव। तथा च तद्दर्श्यते—जम्बूद्वीपस्य परिक्षेपपरियाणम् अष्टाविंशत्यधिकशतद्वयोत्तरषोडशसहस्राधिकानि त्रीणि लक्षाणि (३१६२२८) एष राशिर्द्वाभ्यां गुण्यते जातानि अस्य द्विगुणानि षड् लक्षाणि षट्पञ्चाशदधिकचतुःशतोत्तरद्वात्रिंशत्सहस्राधिकानि (६३२४५६) एषामङ्कानां दशभिर्भागो ह्रियते तदा लब्धानि पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशतोत्तराणि त्रिषष्टि

सहस्रयोजनानि षट् च दश भागा योजनस्य (६३२४५। $\frac{६}{१०}$) एवमेष सूत्रप्रदर्शित प्रमाणेऽन्धकारसंस्थितेः परिक्षेपविशेष आगच्छतीति ।

उक्तं सर्वबाह्यायाः अपि बाह्याया, विष्कम्भपरिमाणम्, साम्प्रतं सामस्त्येनान्धकारसंस्थितेरायामप्रमाणविषये गौतमः पृच्छति–' ता से णं' इत्यादि ।

'ता' तावत 'से णं' स खलु अन्धकारः 'केवइए' कियत्कः कियत्प्रमाणः 'आयामेणं' आयामेन 'आहिए' आख्यातः–कथितः भवता ? 'ति वएज्जा' इति वदेत्–वदतु हे भगवन् भगवान् तत्प्रमाणं प्रदर्शयति–'ता अट्ठत्तरिं' इत्यादि । 'ता' तावत् स अन्धकारः 'अट्ठतरिंजोयणसहस्साइं' – अष्टसप्ततियोजनसहस्राणि अष्टसप्ततिसहस्रयोजनानि 'तिण्णि य तेत्तीसं जोयणसयाइं' त्रीणि च त्रयस्त्रिंशद् योजनशतानि त्रयस्त्रिंशदधिकशतत्रययोजनानि 'जोयण तिभागं च' योजनत्रिभागं च यावत् (७८३३३–$\frac{२}{६}$) 'आयामेणं' आयामेन 'आहिए' आख्यातः 'ति वएज्जा' इति वदेत् स्वशिष्येभ्यः कथयेत् । अथ तत्समयगतदिवसरात्रिप्रमाणमाह–'तया णं' इत्यादि । 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठा प्राप्तः परमप्रकर्षसम्पन्नः 'उक्कोसए' उत्कर्षकः सर्वोत्कृष्टः 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्तो दिवसो भवति, 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलघ्वी 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति ॥सू० २॥

तदेवमुक्ता सर्वाभ्यन्तरे मण्डले तापक्षेत्रसंस्थितिः अन्धकारसंस्थितिश्च, साम्प्रतं सर्वबाह्यमण्डलगतां तामाह 'ता जया णं' इत्यादि ।

मूलम्—ता जया णं सूरिए सव्ववाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं किं संठिया तावक्खेत्त संठिई आहिया ? तिवएज्जा, ता उद्धीमुहकलंबुयापुप्फसंठिया तावक्खेत्तसंठिई आहिया ति वएज्जा । एवं जं अब्भितरमंडले अंधयारसंठिईए पमाणं तं वाहिरमंडले तावक्खेत्तसंठिईए पमाणं जं तहिं तावक्खेत्तसंठिईए पमाणं तं बाहिरमंडले अंधयारसंठिईए पमाणं भाणियव्वं जाव तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ । ता जंबुद्दीवेणं दीवे सूरिया केवइयं खेत्तं उड्ढंतवेंति ? केवइयं खेत्तं अहे तवेंति ? केवइयं खेत्तं तिरियं तवेंति ! । ता जंबुद्दीवे णं दीवे सूरिया एगं जोयणसयं उड्ढं तवेंति, अट्ठारसजोयणसयाइं अहे

तवेंति, सीयालीसं जोयणसहस्साइं दुन्नि य तेवट्ठे जोयणसए एक्कवीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स तिरियं तवेंति ॥सू० ३॥

चंदपन्नत्तीए चउत्थं पाहुडं समत्तं ॥४॥

छाया—तावत् यदा खलु सूर्यः सर्ववाह्यं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु किंसंस्थिता तापक्षेत्रसंस्थितिः आख्याता ? इति वदेत् । तावत् ऊर्ध्वमुखकलम्बुकापुष्पसंस्थिता तापक्षेत्रसंस्थितिः आख्याता, इति वदेत् । एवं यत् अभ्यन्तरमण्डले अन्धकारसंस्थितेः प्रमाणं तद्वाह्यमण्डले तापक्षेत्रसंस्थितेः प्रमाणम् यत् तत्र तापक्षेत्रसंस्थितेः प्रमाणं तद् वाह्यमण्डले अन्धकारसंस्थितेः प्रमाणं भणितव्यम् यावत् तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति । तावत् जम्बूद्वीपे खलु द्वीपे सूर्यौ कियत्कं क्षेत्रम् ऊर्ध्वं तापयतः ? कियत्कं क्षेत्रम् अधः तापयतः । कियत्कं क्षेत्रं तिर्यक्तापयतः । तावत् जम्बूद्वीपे खलु द्वीपे सूर्यौ एकं योजनशतम् ऊर्ध्वं तापयतः, अष्टादशयोजनशतानि अधः तापयतः, सप्तचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि द्वे त्रिषष्टिःयोजनशते एकविंशतिं च षष्टिभागान् योजनस्य तिर्यक् तापयतः ॥सू०३॥

चन्द्रप्रज्ञप्त्यां चतुर्थं प्राभृतं समाप्तम् ॥४॥

व्याख्या—'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्ववाहिरं मंडलं उवसंकमिता चारं चरइ' सर्ववाह्यं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'किं संठिया तावक्खेत्तसंठिई आहिया' किं संस्थिता कीदृक् संस्थानवती तापक्षेत्रसंस्थितिराख्याता 'तिवएज्जा' इति वदेद् वदतु हे भगवन्, एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह—'ता' तावत् 'उद्धीमुहकलंवुया पुप्फसंठिया तावक्खेत्तसंठिई आहिया' ऊर्ध्वमुखकलम्बुकापुष्पसंस्थिता तापक्षेत्रसंस्थितिराख्याता" 'तिवएज्जा' इति वदेत् स्वशिष्येभ्यः अथ पूर्वसूत्रातिदेशमाह—'एवं' इत्यादि । 'एवं' एवं पूर्वोक्तप्रकारेण 'जं' यत् 'अंब्भितरमंडले' सर्वाभ्यतरमण्डले सूर्यस्य चारसमये 'अंधयारसंठिईए पमाणं' अन्धकारसंस्थितेः प्रमाणमुक्तम् 'तं' तत् प्रमाणं 'वाहिरमंडले' सर्ववाह्यमण्डले सूर्यस्य चारसमये 'तावक्खेत्तसंठिईए' तापक्षेत्रसंस्थितेः 'पमाणं' प्रमाणं विज्ञेयम् । 'जं' यत् 'तहिं' तत्र सर्वाभ्यन्तरमण्डले सूर्यस्य चारसमये 'तावक्खेत्तसंठिईए पमाणं' तापक्षेत्रसंस्थितेः प्रमाणमुक्तम् 'तं' तत् 'वाहिरमण्डले' सर्ववाह्यमण्डले सूर्यस्य चारसमये 'अंधकारसंठिईए' अन्धकारसंस्थितेः 'पमाणं' प्रमाणं ज्ञातव्यम् । सर्वाभ्यन्तरमण्डगतेसूर्ये यत् अन्धकारसंस्थितिप्रमाणं तत् वाह्यमण्डलगते सूर्ये तापक्षेत्रस्य प्रमाणं वोच्यम् । यत् सर्वाभ्यन्तरमण्डले सूर्यस्य चारसमये तापक्षेत्रसंस्थितिप्रमाणं तदत्र वाह्यमण्डलेऽन्धकारसंस्थितिप्रमाणं बोध्यम् । सर्वाभ्यन्तरसर्ववाह्यमण्डयोः परस्परमन्धकारतापक्षेत्रसंस्थितिप्रमाणं वैपरीत्येन सदृशं विज्ञेयमितिभावः । इदं प्रकरेणं पूर्वोक्तं कियत्पर्यन्तं बोध्यम् ? तदेवाह—'जाव' इत्यादि, 'जाव' यावत् वक्ष्यमाणं रात्रि-

दिवस परिमाणमायाति तावत्–वक्तव्यम् । तदेवाह–'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ता' उत्तमकाष्ठा प्राप्ता 'उक्कोसिया' उत्कर्षिका 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, 'जहण्णए' जघन्यकः सर्वलघुः 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, इत्यालापकपर्यन्तं सर्वं पूर्वोक्तं प्रकरणमत्र वोध्यम् । विशेषः केवलमयम्–यत् तत्र अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसः द्वादशमुहूर्त्ता रात्रि· कथिता, अत्र तु अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवतीति प्रदर्शितमेवेति । तत्रत्या सूत्ररचनात्वेवम्—'उद्धीमुहकलंवुयापुप्फसठिया तावखेत्तसंठिई' उर्ध्वमुखकलंवुकापुष्पसंस्थिता तापक्षेत्रसंस्थितिरित्युक्तम्, सा च–'अंतो संकुडा वाहिं वित्थडा, अंतो वट्टा वाहिं पिहुला, अंतो अंकमुहसंठिया वाहिं सत्थियमुहसंठिया, उभओ पासेणं तीसे दुवे वाहाओ अवट्ठियाओ०" इत्यादि, सर्वोऽपि पाठोऽत्र पठनीयः, विस्तरभयाद विरम्यते। एषा व्याख्याऽपि तत्र विलोकनीया विस्तरजिज्ञासुभिः सूर्यप्रज्ञप्तिसूत्रस्य मत्कृतायां सूर्य ज्ञप्तिप्रकाशिकाटीकायां विलोकनीयम् । तत्रायं सर्वोऽपि पाठ. संगृहीत इति । यत् तापक्षेत्रचिन्तायां मन्दरपरिरयादेर्द्वाभ्यां गुणनं कृतं तत् अन्धकारचिन्तायां त्रिभिर्गुणनं कृतम्, ततोऽनन्तरं विभाजनं तूभयत्रापि दशभिरेव कृतम् । तथा सर्ववाह्यमण्डले चारं चरतः सूर्यस्य लवणसमुद्रमध्ये तदनुरोधात् तापक्षेत्रं पञ्च[?]हस्रयोजनपरिमितं भवति, अन्धकारश्चायामतो वर्धतेऽतः स त्र्यशीतिसहस्रयोजनपरिमितः कथित इति ।

उक्तं च तापक्षेत्रसंस्थितेः, अन्धकारसंस्थितेश्च परिमाणम् । अथ च जम्बूद्वीपे द्वौ सूर्यौ ऊर्ध्वमधः, पूर्वाऽपरे च विभागे कियत्क्षेत्रं तापयतः ? इति तन्निरूपणार्थमाह—'ता जंवुद्दीवेणं दीवे' इत्यादि ।

'ता' तावत् 'जंवुद्दीवेणं दीवे' जम्बूद्वीपे खलु द्वीपे 'सूरिया' सूर्यौ द्वौ सूर्यौ प्रत्येकं 'केवइयं खेत्तं' कियत्कं कियत्प्रमाणं क्षेत्रम् 'उड्ढं तवेंति' ऊर्ध्वं तापयतः प्रकाशयतः, । 'केवइयं खेत्तं' कियत्कं कियत्प्रमाणं क्षेत्रम् 'अहे' अधः 'तवेंति' तापयतः । 'केवइयं खेत्तं' कियत्कं कियत्प्रमाणं क्षेत्रम् 'तिरियं तवेंति' तिर्यक् तापयतः । इति प्रश्ने कृते भगवानाह—'ता' इत्यादि 'ता' तावत् 'जंवुद्दीवे णं दीवे' जम्बूद्वीपे खलु द्वीपे 'सूरिया' द्वौ सूर्यौ प्रत्येकम् 'एगं जोयणसयं' एकं योजनशतम् एकशतयोजनपर्यन्तम् 'उड्ढं' ऊर्ध्वं स्वविमानाद् ऊर्ध्वभागं 'तवेंति' तापयतः, 'अट्ठारस जोयणसयाइं' अष्टादशयोजनशतानि अष्टादशशतयोजनपर्यन्तम् 'अहे' अधः स्वविमानादधोभागे अधोलोकग्रामापेक्षया 'तवेंति' तापयतः, तथा 'सीयालीसजोयणसहस्साइं' सप्तचत्वारिंशद्योजनसहस्राणि सप्तचत्वारिंशत्सहस्रयोजनानि 'दुन्निय तेवट्ठे जोयणसयाइं' द्वे च त्रिषष्टिः योजनशते त्रिषष्ट्यधिकद्विशत योजनानि 'एक्कवीसं च सट्ठिभागे जोयणस्स' एकविंशतिं च

षष्टिभागान् योजनस्य (४७२६३ | $\frac{२१}{६०}$) 'तिरियं' तिर्यक् स्वविमानात् पूर्वभागेऽपरभागे च 'तवेंति' तापयतः प्रकाशयतः । अयमाशयः—अधोलौकिकग्रामाः समतलभूभागाद् अधः एक-सहस्रयोजनेन व्यवस्थिताः, तत्रापि सूर्यप्रकाशः प्रसरति । ततः समतलभूभागस्याध एकसहस्रयोजन-पर्यन्तं, तदूर्ध्वं चाष्टशत योजनानि, इत्युभयमीलनेऽष्टादशशतयोजनानि भवन्ति, तिर्यक् च स्ववि-मानात् पूर्वापरभागद्वये सूर्यौ प्रत्येकं त्रिषष्टयधिकशतद्वयोत्तराणि सप्तचत्वारिंशत्सहस्रयोजनानि, एकविंशतिं च षष्टिभागान् योजनस्य (४७२६३ | $\frac{२१}{६०}$) प्रकाशयत इति ॥सू० ३॥

इति श्री–विश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–जप्रसिद्धवाचक पञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापक–प्रविशुद्ध-गद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–श्रीशाहुच्छत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त "जैनशास्त्रा-चार्य" पदभूषित–कोल्हापुर राजगुरु बालब्रह्मचारि–जैनशास्त्राचार्य–जैनधर्मदिवाकर श्रीघासीलालव्रति–विरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिकायां चतुर्थं मूलप्राभृतं समाप्तम् ॥४॥

॥ श्रीरस्तु ॥



॥ अथ पंचमं प्राभृतं प्रारभ्यते ॥

व्याख्यातं चतुर्थं प्राभृतं, तत्र श्वेततायाः संस्थितिरुक्ता, साम्प्रतं पञ्चमं प्रारभ्यते अत्राय-मर्थाधिकारः—'कहिं पडिहया लेस्सा, कस्मिन् लेश्या प्रतिहता। इत्येतद्विषयोऽत्रप्ररूपयिष्यते, तस्य चेदमादिमं सूत्रम्—'ता कस्सिं णं' इत्यादि।

मूलम्—ता कस्सिं णं सूरियस्स लेस्सा पडिहया आहिया ! ति वएज्जा। तत्थ खलु इमाओ वीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तत्थेगे एवमाहंसु ता मंदरंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया आहिया तिवएज्जा, एगे एवमाहंसु।१। एगे पुण एवमा-हंसु—ता मेरुंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया आहिया तिवएज्जा, एगे एवमाहंसु।२। एवं एएणं अभिलावेणं ता मणोरमंसि णं पव्वयंसि।३। ता सुदंसणंसि णं पव्व-यंसि।४। ता सयंपभंसि णं पव्वयंसि।५। ता गिरिरायंसि णं पव्वयंसि।६। ता रय-णुच्चयंसि णं पव्वयंसि।७। ता सिलुच्चयंसि णं पव्वयंसि।८। ता लोयमज्झंसि णं पव्व-यंसि।९। ता लोयणाभिंसि णं पव्वयंसि।१०। ता अच्छंसि णं पव्वयंसि।११। ता सूरि-यावत्तंसि णं :पव्वयंसि।१२। ता सूरियावरणंसि णं पव्वयंसि।१३। ता उत्तमंसि णं पव्वयंसि।१४। ता दिसादिंसि णं पव्वयंसि।१५। ता अवयंसंसि णं पव्वयंसि।१६। ता धरणिखीलंसि णं पव्वयंसि।१७। ता धरणिसिंगंसि णं पव्वयंसि।१८। ता पव्वतिंदं-सि णं पव्वयंसि।१९। एगे पुण एवमाहंसु ता पव्वयरायंसि णं पव्वयंसि सूरियस्स लेस्सा पडिहया आहियाति वएज्जा, एगे एवमाहंसु॥२०॥

वयं पुण एवं वयामो—ता मंदरेवि पवुच्चइ, मेरु वि पवुच्चइ जाव पव्वपरायावि पवुच्चइ (२०) ता जे णं पुग्गला सूरियस्स लेस्सं फुसंति ते णं पुग्गला सूरियस्स लेस्सं पडिहणंति अदिट्ठा वि णं पुग्गला सूरियस्स लेस्सं पडिहणंति, चरिमलेस्संतरगया वि पुग्गला सूरियस्स लेस्सं पडिहणति॥ सू० १॥

॥ चंदपन्नत्तीए पंचमं पाहुडं समत्तं ॥५॥

छाया—तावत् कस्मिन् खलु सूर्यस्य लेश्या प्रतिहता आख्याता ? इति वदेत्। तत्र खलु इमा विंशतिः प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—तत्र एके एवमाहुः-तावत् मन्दरे खलु पर्वते सूर्यस्य लेश्या प्रतिहता आख्याता, इति वदेत्, एके एवमाहुः।१। एके पुनरेव माहुः—तावत् मेरोः खलु पर्वते सूर्यस्य लेश्या प्रतिहता आख्याता इति वदेत्, एके एवमाहुः।२। एवम् एतेन अभिलापेन तावत्-मनोरमे खलु पर्वते।३। तावत् सुदर्शने खलु पर्वते।४। तावत् स्वयंप्रभे खलु पर्वते।५। तावत् गिरिराजे खलु पर्वते।६। तावत् रत्नोच्चये खलु पर्वते।७। तावत् शिलोच्चये खलु पर्वते।८। तावत् लोकमध्ये खलु पर्वते।९। तावत् लोक-नाभौ खलु पर्वते।१०। तावत् अच्छे खलु पर्वते।११। तावत् सूर्यावर्त्ते खलु पर्वते।१२। तावत् सूर्यावरणे खलु पर्वते।१३। तावत् उत्तमे खलु पर्वते।१४। तावत् दिशादौ खलु

पर्वते ।१५। तावत् अवतंसे खलु पर्वते ।१६। तावत् धरणिकीले खलु पर्वते ।१७। तावत् धरणिशृङ्गे खलु पर्वते ।१८ तावत् पर्वतेन्द्रे खलु पर्वते ।१९। एके पुनरेव माहुः-तावत् पर्वतराजे खलु पर्वते सूर्यस्य लेश्या प्रतिहता आख्याता इति वदेत्, एके एवमाहुः ।२०।

वयं पुनरेवं वदामः-तावत् मन्दरोऽपि प्रोच्यते, मेरुरपि प्रोच्यते तावत् पर्वतराजोऽपि (२०) प्रोच्यते। तावत् ये खलु पुद्गलाः सूर्यस्य-लेश्यां स्पृशन्ति ते खलु पुद्गलाः सूर्यस्य लेश्यां प्रतिघ्नन्ति, अदृष्टा अपि खलु पुद्गलाः सूर्यस्य लेश्यां प्रतिघ्नन्ति, चरमलेश्यान्तरगता अपि खलु पुद्गलाः सूर्यस्य लेश्यां प्रतिघ्नन्ति सू० ॥१॥

चन्द्रप्रज्ञप्त्यां पञ्चमं प्राभृतं समाप्तम् ॥५॥

व्याख्या:—'ता' तावत् सर्वाभ्यन्तरमण्डले यदा सूर्यश्चारं चरति तदा सूर्यस्य लेश्या प्रसरतीति 'कंसि णं' कस्मिन् खलु स्थाने 'सूरियस्स लेस्सा' सूर्यस्य लेश्या तेजो रूपा पडिहया' प्रतिहता अवष्टब्धा प्रतिरुद्धेत्यर्थः 'आहिया' आख्याता ? 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु हे भगवन् ?।

इदमत्र तात्पर्यम्-इहाभ्यन्तरं प्रविशन्ती सूर्यस्य लेश्याऽवश्यं प्रतिहता भवति, सा च कस्मिन् स्थाने प्रतिहता भवतीति जिज्ञासा जायते यतो हि सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरे सर्वबाह्ये च मण्डले चारसमये पञ्चचत्वारिंशत्सहस्रयोजनपरिमितमेव जम्बूद्वीपगतं तापक्षेत्रमायामतः प्रोक्तम्, इयत्परिमितं तापक्षेत्रं च सर्वाभ्यन्तरमण्डलस्थिते सूर्ये लेश्याप्रतिघातं विना नोपलभ्यते, यद्येवं न मन्यते तदा सर्वाभ्यन्तरमण्डलाद्बहिः सूर्यस्य निष्क्रमणसमये तत्सम्बन्धिनस्तापक्षेत्रस्यापि निष्क्रमणसद्भावात्, सूर्यस्य सर्वबाह्यमण्डलचारसमये तापक्षेत्रमायामतो हीनमायाति, किन्तु तस्य हीनत्वं न प्रतिपादितम्, अतो ज्ञायते सूर्यस्य लेश्या क्वापि प्रतिहताऽवश्यं जाता भवेत्, इति तद वबोधाय एष प्रश्नो गौतमेन कृतः। इमं प्रश्नं स्पष्टी कर्त्तुकामो भगवान् प्रथममेतद्विषये यावत्यः प्रतिपत्तयः सन्ति ता उपदर्शयति-'तत्थ खलु' इत्यादि।

'तत्थ खलु' तत्र लेश्याप्रतिघातविषये खलु 'इमाओ' इमा अग्रे वक्ष्यमाणस्वरूपाः 'वीसं' विंशतिः विंशतिसंख्यकाः 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः परमतमान्यतारूपाः 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ताः कथिताः 'त जहा' तद्यथा-ता यथा-'तत्थ' तत्र विंशतिप्रतिपत्तिवादिषु मध्ये 'एगे' एके केचन प्रथमास्तीर्थान्तरीयाः 'एव माहंसु' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः कथयन्ति—'ता' तावत् 'मंदरंसि णं पव्वयंसि' मन्दरे खलु पर्वते 'सूरियस्स लेस्सा' सूर्यस्य लेश्या तेजो-रूपा 'पडिहया' प्रतिहता 'आहिया' आख्याता 'ति वएज्जा' इति वदेत् इति कथनीयमित्यर्थः 'एगे' एके प्रथमाः एवमाहंसु एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः ।१। 'एगे पुण' एके केचन द्वितीया 'एवमाहंसु' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः कथयन्ति-'ता' तावत् 'मेरुंसि णं पव्वयंसि' मेरौ खलु पर्वते 'सूरियस्स लेस्सा' सूर्यस्य लेश्या 'पडिहया आहिया' प्रतिहता

आख्याता 'ति वएज्जा' इति वदेत् स्वशिष्येभ्यः कथयेत् 'एगे' एके पूर्वोक्ता द्वितीयाः 'एव-माहंसु' एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः कथयन्ति ।२। 'एवं' अनेन प्रकारेण 'एएणं' एतेन पूर्वमनुपदप्रदर्शितेन 'अभिलावेण' आलापकप्रकारेण शेषा अपि प्रतिपत्तयः कथनीयाः । अत्रतु केवलं प्रतिपत्तय एव प्रदर्श्यन्ते, आलापकयोजना स्वयं करणीया, तथाहि—'ता मणोरमंसि णं पव्वयंसि' तावत् मनोरमे खलु पर्वते ।३। 'ता सुदंसणंसि णं पव्वयंसि' तावत् सुदर्शने खलु पर्वते ।४। 'ता सयंपभंसि णं पव्वयंसि' तावत् स्वयंप्रभे खलु पर्वते ।५। 'ता गिरिरायंसि णं पव्वयंसि' तावत् गिरिराजे खलु पर्वते ।६। 'ता रयणुच्चयंसि णं पव्वयंसि' तावत् रत्नोच्चये खलु पर्वते ।७। 'ता सिलुच्चयंसि णं पव्वयंसि' तावत् शिलोच्चये खलु पर्वते ।८। 'ता लोयमज्झंसि णं पव्वयंसि' तावत् लोकमध्ये खलु पर्वते ।९। 'ता लोयणाभिंसि णं पव्वयंसि' तावत् लोकनाभौ खलु पर्वते ।१०। 'ता अच्छंसि खलु पव्वयंसि' तावत् अच्छे खलु पर्वते ।११। 'ता सूरियावत्तंसि णं पव्वयंसि' तावत् सूर्यावर्त्ते खलु पर्वते ।१२। 'ता सूरियावरणंसि णं पव्वयंसि' तावत् सूर्यावरणे खलु पर्वते ।१३। 'ता उत्तमंसि णं पव्वयंसि' तावत् उत्तमे खलु पर्वते।१४। 'ता दिसादिंसि णं पव्वियंसि' तावत् दिशादौ खलु पर्वते ।१५। 'ता अवतंसंसि णं पव्वयंसि' तावत् अवतंसे खलु पर्वते ।१६। 'ता धरणिखीलंसि णं पव्वयंसि' तावत् धरणिकीले खलु पर्वते ।१७। 'ता धरणिसिंगंसि णं पव्वयंसि' तावत् धरणिश्रृङ्गे खलु पर्वते ।१८। 'ता पव्वतिंदंसि णं पव्वयंसि' तावत् पर्वतेन्द्रे खलु पर्वते ।१९। 'एगे पुण' एके विंशतितमप्रतिपत्तिवादिनः पुनः 'एवमाहंसु' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः कथयन्ति 'ता' तावत् 'पव्वयरायंसि णं 'पव्वयंसि' पर्वतराजे खलु पर्वते 'सूरियस्स' सूर्यस्य 'लेस्सा' लेश्या तेजोरूपा 'पडिहया' प्रतिहता 'आहिया' आख्याता 'ति वएज्जा' इति वदेत् । उपसंहारमाह— 'एगे' एके विंशतितमाः परमतवादिनः 'एवं' एव पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति ॥२०॥

यद्यप्येते मन्दरादयः सर्वेऽपि शब्दा वस्तुत एकार्थिका एव, तथापि भिन्नाभिप्रायत्त्वेन कथितत्वादेते विंशतिरपि प्रतिपत्तिवादिनो मिथ्याप्ररूपका एवेति प्रदर्श्य साम्प्रतं भगवान् स्वमतंप्रदर्शयन्नाह—'वयं पुण इत्यादि ।

'वयं पुण' वयं तु अत्र 'पुनः' शब्दः 'तु' इत्यर्थे, 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयामो' वदामः कथयामः । तदेवाह—'ता' इत्यादि । 'ता' तावत् यत्र लेश्या प्रतिहता भवति स पर्वतः 'मंदरे वि पवुच्चइ' मंदरोऽपि प्रोच्यते, 'मेरूवि पवुच्चइ' मेरुरपि प्रोच्यते 'जाव' यावत्, यावत्पदेन मध्यगतानां मनोरमादारभ्य पर्वतेन्द्रपर्यन्तानां मष्टदशानां ग्रहणं भवति द्वौ मन्दरमेरुनामानौ पर्वतौ पूर्वं सूत्रे प्रोक्तौ । 'पव्वयरायावि पवुच्चइ' पर्वतराजोऽपि विंशति-

तमः प्रोच्यते, पर्वतराजोऽपि स एव प्रोच्यते नान्यः कश्चिदन्यः पर्वत इति। अयमेको पर्वतो विंशतिनामभिः कथं स्यात इति तेषामर्थाधिकारः प्रदर्श्यते तथाहि—

(१) मन्दरः—पल्योपमस्थितिकमन्दराभिधदेवनिवासस्थानयोगात्।

(२) मेरुः—तस्य समस्ततिर्यग्लोकमध्यभागस्य मर्यादाकारित्वात्।

(३) मनोरमः—अतिसुरूपतया देवानां मनोरमणहेतुकत्वात्।

(४) सुदर्शनः—जाम्बूनदजातीय सुवर्णमयत्वेन वज्ररत्नबहुलत्वेन च मनोमोदजनकसुष्टुदर्शनवत्त्वात्।

(५) स्वयंप्रभः—रत्नबहुलतया आदित्यादिनिरपेक्षस्वयंप्रभावत्त्वात्।

(६) गिरिराजः—सर्वगिरीणामुच्चैस्त्वेन तीर्थंकरजन्मोत्सवाभिषेकाश्रयत्वेन च गिरीणां मध्ये राजसादृश्यात्।

(७) रत्नोच्चयः—नानाविधरत्नानामतिशयेन चयस्थानत्वात्।

(८) शिलोच्चयः—पाण्डुकम्बलादिशिलानां तदुपरि चयसद्भावात्।

(९) लोकमध्यः—समस्ततिर्यग् लोकस्य मध्यवर्त्तित्वात्।

(१०) लोकनाभिः—स्थालमध्यस्थित समुन्नतवृत्तचन्द्रतुल्यत्वेन स्थालाकारतिर्यग्लोकस्य नाभिसादृश्यात्।

(११) अच्छः—अतिनिर्मलजाम्बूनदसुवर्णवज्रादिरत्नबहुलत्वेन स्वच्छकान्तिमत्त्वात्।

(१२) सूर्यावर्त्तः—सूर्यस्य उपलक्षणाच्चन्द्रग्रहनक्षत्रतारारूपाणां प्रदक्षिणावर्त्तस्थानत्वात्।

(१३) सूर्यावरणः—सूर्यादिभिः परिभ्रमणशीलैरावृतत्वात्।

(१४) उत्तमः—गिरीणां मध्ये सर्वोत्कृष्टत्वेन उत्तमत्वात्।

(१५) दिशादिः—गोस्तनाकाराष्टप्रदेशात्मकरुचकादेव दिग्विदिशामादिर्ज्ञायते, तस्यमध्यवर्त्तित्वात्

(१६) अवतंसकः—गिरीणां चूडामणिसादृश्यात्।

एषां षोडशानां नामसंग्राहकं गाथाद्वयं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिप्रसिद्धं—

यथा—"मंदर–मेरु–मनोरम,–सुदंसण–सयंपभेय गिरिराया।
रयणोच्चए सिलोच्चय, मज्झे लोगस्स नाभी य ॥१॥
अच्छेय सूरियावत्ते, सूरियावरणे इय।
उत्तमे य दिसाई य वडिंसे इय सोलसे ॥२॥

छाया पूर्वप्रदर्शितनामभिः सुगमैवेति।

(१७) धरणिकीलः—पृथिव्याः कीलकसादृश्यात्।

(१८) धरणिश्रृङ्गः—पृथिव्याः श्रृङ्गसादृश्यात्।

(१९) पर्वतेन्द्रः—पर्वतानां मध्ये इन्द्रसादृश्यात् ।
(२०) पर्वतराजः—पर्वतानां मध्ये राजसादृश्यात् । इति विंशतिर्नामानीति ।

एतेषां शब्दानामेकार्थिकत्वे सत्यपि भिन्नार्थप्रतिपादकत्वेन एता विंशतिरपि प्रतिपत्तयो मिथ्यारूपा एवेति विज्ञेयम् ।

अथ भगवान् सूर्यलेश्यायाः प्रतिहतिस्वरूपं प्रदर्शयति— 'ता जे णं' इत्यादि । इयं च लेश्याप्रतिहतिः मन्दरेऽप्यस्ति अन्यत्रापि चास्तीत्याह—'ता' तावत् 'जे णं पुग्गला' ये खलु पुद्गलाः मेरुतटभित्तिसंस्थिताः 'सूरियस्स लेस्सं, सूर्यस्य लेश्यां 'फुसंति' स्पृशन्ति 'ते णं पुग्गला' ते खलु पुद्गलाः 'सूरियस्स लेस्सं' सूर्यस्य लेश्यां 'पडिहणंति' प्रतिघ्नन्ति अभ्यन्तरं प्रविशन्त्याः सूर्यलेश्यायास्तैः प्रतिस्खलितत्वात् । तथा 'अदिट्ठा वि णं पोग्गला' अदृष्टा अपि खलु येऽपि पुद्गला मेरुतटभित्तिसंस्थिता अपि दृश्यमानपुद्गलान्तर्गताः सन्तः सूक्ष्मत्वान्न चक्षुः स्पर्शमायान्ति ते अदृष्टा अपि पुद्गला 'सूरियस्स लेस्सं' सूर्यस्य लेश्यां 'पडिहणंति' प्रतिघ्नन्ति तैरपि अभ्यन्तरं प्रविशन्त्याः सूर्यलेश्यायाः स्वशक्त्यनुरूपं प्रतिस्खल्यमानत्वात् । तथा पुनरपि 'चरिमलेस्संतरगयावि णं पोग्गला' चरमलेश्यान्तरगता अपि खलु पुद्गलाः येऽपि च मेरोरन्यत्र भागेऽपि च चरमलेश्याविशेष संस्पर्शवन्तः पुद्गला अपि 'सूरियस्स लेस्सं' सूर्यस्य लेश्यां 'पडिहणंति' प्रतिघ्नन्ति तैरपि चरमलेश्यासंस्पर्शकत्वेन चरमलेश्यायाः प्रतिहन्यमानत्वात्॥सू० १॥

इति श्री—विश्वविख्यात—जगद्वल्लभ—जप्रसिद्धवाचक पञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापक—प्रविशुद्ध-गद्यपद्यानैकग्रन्थनिर्मापक—वादिमानमर्दक—श्रीशाहुच्छत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त "जैनशास्त्राचार्य" पदभूषित—कोल्हापुर राजगुरु बालब्रह्मचारि—जैनशास्त्राचार्य—जैनधर्मदिवाकर श्रीघासीलालव्रति—विरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिका-ख्यायां व्याख्यायां

पञ्चमं प्राभृतं समाप्तम् ॥५॥

॥ श्रीरस्तु ॥



॥ अथ षष्ठं प्राभृतं प्रारभ्यते ॥

व्याख्यातं पञ्चमं प्राभृतम् तत्र सूर्यस्य लेश्याप्रतिघातः प्रोक्तः। साम्प्रतं षष्ठं व्याख्यायते, तस्य चायमर्थाधिकार.–'कहं ते ओयसंठिई' कथं ते ओजः संस्थितिः, इति पूर्वप्रतिज्ञात–विषयं विवृण्वन् आदिमं सूत्रमाह–'ता कहं ते ओयसंठिई' इत्यादि।

मूलम्—ता कहं ते ओयसंठिई आहिया ति वएज्जा, तत्थ खलु इमाओ पणवीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तंजहा–तत्थेगे एवमाहंसु ता अणुसममेव सूरियस्सओया अण्णा उप्पज्जइ, अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु। १। एगेपुण एवमाहंसु ता अणुमुहुत्तमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु। २। एवं एएणं अभिलावेणं–ता अणुराइंदियमेव। ३। ता अणुपक्खमेव। ४। ता अणुमासमेव। ५। ता अणुउउमेव। ६। ता अणु अयणमेव। ७। ता अणुसंवच्छरमेव। ८। ता अणु जुगमेव। ९। ता अणुवाससयमेव। १०। ता अणुवाससहस्समेव। ११। ता अणु वाससयसहस्समेव। १२। ता अणुपुव्वमेव। १३। ता अणुपुव्वसयमेव। १४। ता अणुपुव्वसहस्समेव। १५। ता अणुपुव्वसयसहस्समेव। १६। ता अणुपलिओवममेव। १७। ता अणुपलिओवमसयमेव। १८। ता अणुपलिओवमसहस्समेव। १९। ता अणुपलिओवमसयसहस्समेव। २०। ता अणुसागरोवममेव। २१। ता अणुसागरोवमसयमेव। २२। ता अणुसागरोवमसहस्समेव। २३। ता अणुसागरोवमसयसहस्समेव। २४। एगे एवमाहंसु–ता अणुउस्सप्पिणि ओसप्पिणिमेव सूरियस्स ओया अण्णा उप्पज्जइ अण्णा अवेइ, एगे एवमाहंसु। २५।

वयं पुण एवं वयामो–ता तीसं तीसं मुहुत्ते सूरियस्स ओया अवट्ठिया भवइ, तेण परं सूरियस्स ओया अणवट्ठिया भवइ। छम्मासे सूरिए ओयं णिव्वुड्ढेइ, छम्मासे सूरिए ओयं अभिवुड्ढेइ। णिक्खममाणे सूरिए देसं णिव्वुड्ढेइ, पविसमाणे सूरिए देसं अभिवुड्ढेइ। तत्थ को हेऊ! तिवएज्जा, ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ते। ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। से णिक्खममाणे सूरिए णवं संवच्छरं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि अब्भितराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए अब्भितराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगेणं राइंदिएणं एगं भागं ओयाए दिवसखित्तस्स णिव्वुड्ढित्ता रयणिखित्तस्स अभिवड्ढित्ता चारं चरइ, मंडलं अट्ठारसहिं तीसेहिं सएहिं छित्ता,

तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया। से णिक्खममाणे सूरिए दोच्चंसिरहोरत्तंसि अब्भितराणंतरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए अब्भितराणं तरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं दोहिं राइंदिएहिं दो भागे ओयाए दिवसखेत्तस्स णिव्वुड्ढित्ता, २ रयणिखेत्तस्स अभिवड्ढेत्ता चारं चरइ, मंडलं अट्ठारसेहिं तीसेहिं सएहिं छेत्ता, तया णं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे, दुवालसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिया।

एवं खलु एएण उवाएणं णिक्खममाणे सूरिए तयाणंतराओ तयाणंतरं मंडलाओ मंडलं संकममाणे २ एगमेगे मंडले एगमेगेणं राइंदिएणं एगमेगं २ भागं ओयाए दिवसखेत्तस्स निव्वुड्ढेमाणे २ रयणिक्खेत्तस्स अभिवड्ढेमाणे २ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतराओ मंडलाओ सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं सव्वब्भंतरं मंडलं पणिहाय एगेणं तेसीएणं राइंदियसएणं एगं तेसीयं भागसयं ओयाए दिवसखेत्तस्स णिव्वुड्ढेत्ता रयणिखेत्तस्स अभिवुड्ढेत्ता चारं चरइ, मंडलं अट्ठारसहिं तीसेहिं सएहिं छेत्ता, तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ। एस णं पढमे छम्मासे। एस णं पढमस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे।

से पविसमाणे सूरिए दोच्चं छम्मासं अयमाणे पढमंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं एगेणं राइंदिएणं एगं भागं ओयाए रयणिखेत्तस्स णिव्वुड्ढेत्ता, दिवसखेत्तस्स अभिव्वुड्ढेत्ता चारं चरइ मंडलं अट्ठारसहिं तीसेहिं सएहिं छेत्ता, तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं उणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए। से पविसमाणे सूरिए दोच्चंसि अहोरत्तंसि बाहिराणंतरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए बाहिराणंतरं तच्चं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया ण दोहि राइंदिएहि दोभाए ओयाए रयणि खेत्तस्स णिव्वुड्ढेत्ता, दिवसखेत्तस्स अभिव्वुड्ढेत्ता चारं चरइ, मंडलं अट्ठारसहिं तीसेहिं सएहि छेत्ता, तया णं अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहि उणा, दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ चउहि एगसट्ठि भागमुहुत्तेहि अहिए। एवं खलु एएणं उवाएणं पविसमाणे सूरिए तयाणंतराओ तयाणंतरं मंडलाओ मंडलं संकममाणे २ एगमेगेणं

राइंदिएणं एगमेगं भागं ओयाए रयणिखेत्तस्स णिव्वुड्ढेमाणे २, दिवसखेत्तस्स अभिव्वुड्ढेमाणे २ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ। ता जया णं सूरिए सव्वबाहिराओ मंडलाओ सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं सव्वबाहिरं मंडलं पणिहाय एगेणं तेसीएणं राइंदियसएणं एगं तेसीयं भागसयं ओयाए रयणि खेत्तस्स णिव्वुड्ढेत्ता, दिवसखेत्तस्स अभिव्वुड्ढेत्ता चारं चरइ, मंडलं अट्ठारसहि तीसेहि सएहि छेत्ता, तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। एस णं दोच्चे छम्मासे। एसणं दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे। एस णं आइच्चे संवच्छरे। एस णं आइच्चस्स संवच्छरस्स पज्जवसाणे ॥सू०१॥

छट्ठं पाहुडं समत्तं ॥६॥

छाया— तावत् कथं ते ओजः संस्थितिः आख्याता ? इति वदेत् तत्र खलु इमाः पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः तद्यथा–तत्र एके एवमाहुः–तावत् अनुसमयमेव सूर्यस्य ओजः अन्यत् उत्पद्यते अन्यत् अपैति, एके एवमाहुः ।१। एके पुनः एव माहुः–तावत् अनुमुहूर्त्तमेव सूर्यस्य ओजः अन्यत् उत्पद्यते, अन्यत् अपैति, एके एवमाहुः ।२। एवं एतेन अभिलापेन–तावत् अनुरात्रिन्दिवमेव ।३। तावत् अनुपक्षमेव ।४। तावत् अनुमासमेव ।५। तावत् अनु ऋतुमेव ।६। तावत् अन्वयनमेव ।७ तावत् अनुसंवत्सरमेव ।८। तावत् अनुयुगमेव ।९। तावत् अनुवर्षशतमेव ।१०। तावत् अनुवर्षसहस्रमेव ।११। तावत् अनुवर्षशतसहस्रमेव ।१२। तावत् अनुपूर्वमेव ।१३। तावत् अनुपूर्वशतमेव ।१४। तावत् अनुपूर्वसहस्रमेव ।१५। तावत् अनुपूर्वशतसहस्रमेव ।१६। तावत् अनुपल्योपमेव ।१७। तावत् अनुपल्योपमशतमेव ।१८। तावत् अनुपल्योपमसहस्रमेव ।१९। तावत् अनुपल्योपमशतसहस्रमेव ।२०। तावत् अनुसागरोपममेव ।२१। तावत् अनुसागरोपमशतमेव ।२२। तावत् अनुसागरोपमसहस्रमेव ।२३। तावत् अनुसागरोपमशतसहस्रमेव ।२४। एके पुनः एवमाहुः—तावत् अनूत्सर्पिण्यवसर्पिणीमेव सूर्यस्य ओजः अन्यत् उत्पद्यते अन्यत् अपैडि, एके एव माहुः २५।

वयं पुनः एवं वदामः—तावत् त्रिंशतं त्रिंशतं मुहूर्त्तान् सूर्यस्य ओज· अवस्थितं भवति, ततः परं सूर्यस्य ओजः अनवस्थितं भवति। षण्मासान् सूर्यः ओजः निर्वर्धयति, षण्मासान् सूर्य ओजः अभिवर्धयति। निष्क्रामन् सूर्यः देशं निर्वर्धयति, प्रविशन् सूर्यः देशमभिवर्धयति। तत्र को हेतुः ? इति वदेत्। तावत् अयं खलु जम्बूद्वीपो द्वीपः यावत् परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः। तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठा प्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। स निष्क्रामन् सूर्यः नवं संवत्सरं अयन् प्रथमे अहोरात्रे अभ्यन्तरानन्तरं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति। तावत् यदा खलु सूर्यः अभ्यन्तरानन्तरं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु एकेन रात्रिन्दिवेन एकं भागम् ओजसा दिवसक्षेत्रस्य निर्वर्ध्य, रजनीक्षेत्रस्य अभिवर्ध्य चारं चरति, मण्डलम् अष्टादशभिः त्रिंशता शतैः छित्त्वा तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् ऊनः, द्वादशमुहूर्त्ता रात्रि-

भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यामधिका । स निष्क्रामन् सूर्यः द्वितीयेऽहोरात्रे आभ्य न्तरानन्तरं तृतीयं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति । तावत् यदा खलु सूर्यः आभ्यन्तरानन्तरं तृतीयं मडण्लमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु द्वाभ्यां रात्रिन्दिवाभ्यां द्वौ भागौ ओजसा दिवसक्षेत्रस्य निर्वर्ध्य २ रजनीक्षेत्रस्य अभिवर्ध्य चारं चरति, मण्डलम् अष्टादशभिः त्रिशता शतैः छित्त्वा, तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः ऊनः द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्तैरधिका । एवं खलु एतेन उपायेन निष्क्रामन् सूर्यः तदनन्तरात् तदनन्तरं मण्डलात् मण्डलं संक्रामन् २ एकैकस्मिन् मण्डले एकैकेन रात्रिन्दिवेन एकैकं भागम् ओजसा दिवसक्षेत्रस्य निर्वर्धयन् २, रजनीक्षेत्रस्य अभिवर्धयन् २ सर्वबाह्यं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति । तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरात् मण्डलात् सर्वबाह्यं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं प्रणिधाय एकेन त्र्यशीतिकेन रात्रिन्दिवशतेन एकं त्र्यशीतिकं भागशतम् ओजसा दिवसक्षेत्रस्य निर्वर्ध्य, रजनीक्षेत्रस्य अभिवर्ध्य चारं चरति, मण्डलम् अष्टादशभिः त्रिशता शतैः छित्त्वा, तदा खलु उत्तमकाष्ठा प्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति । एतत् खलु प्रथमं षण्मासम् । एतत् खलु प्रथमस्य षण्मासस्य पर्यवसानम् ॥

सः प्रविशन् सूर्यः द्वितीयं षण्मासम् अयन् प्रथमे अहोरात्रे बाह्यानन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति । तावत् यदा खलु सूर्यः बाह्यानन्तरं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु एकेन रात्रिन्दिवेन एकं भागम् ओजसा रजनीक्षेत्रस्य निर्वर्ध्य दिवसक्षेत्रस्य अभिवर्ध्य चारं चरति, मण्डलम् अष्टादशभिस्त्रिशता शतैः छित्त्वा, तदा खलु अष्टदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्ताभ्याम् ऊना द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् अधिकः । स प्रविशन् सूर्यः द्वितीये अहोरात्रे बाह्यानन्तरं तृतीय मण्डलमुवसंक्रम्य चारं चरति । तावत् यदा खलु सूर्यः बाह्यानन्तरं तृतीयं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु द्वाभ्यां रात्रिन्दिवाभ्यां द्वौ भागौ ओजसा रजनीक्षेत्रस्य निर्वर्ध्य, दिवसक्षेत्रस्य अभिवर्ध्य चारं चरति, मण्डलम् अष्टादशभिः त्रिशता शतैः छित्त्वा, तदा खलु अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैरूना, द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तै रधिकः । एवं खलु एतेन उपायेन प्रविशन् सूर्यः तदनन्तरात् तदनन्तरं मण्डलाद् मण्डलं संक्रामन् २ एकैकेन रात्रिन्दिवेन एकैकं भागम् ओजसा रजनीक्षेत्रस्य निर्वर्ध्य २, दिवसक्षेत्रस्य अभिवर्ध्य २ सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं उपसंक्रम्य चारं चरति । तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वबाह्यात् मण्डलात् सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु सर्वबाह्यं मण्डलं प्रणिधाय एकेन त्र्यशीतिकेन रात्रिन्दिवशतेन एकं त्र्यशीतिकं भागशतम् ओजसा रजनीक्षेत्रस्य निर्वर्ध्य दिवसक्षेत्रस्य अभिवर्ध्य चारं चरति, मण्डलम् अष्टादशभिः त्रिशता शतैः छित्त्वा, तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । एतत् खलु द्वितीयं षण्मासम् । एतत् खलु द्वितीयस्य षण्मासस्य पर्यवसानम् । एष खलु आदित्यः संवत्सरः । एतत् खलु आदित्यस्य संवत्सरस्य पर्यवसानम् ॥ सू० १ ॥

॥ चन्द्रप्रज्ञप्त्यां षष्ठं प्राभृतं समाप्तम् ६ ॥

व्याख्या—'ता' तावत् 'ते' तव भवतो मते 'कहं' कथं-केन प्रकारेण किं सर्वदा एकरूपा उतान्यथा 'ओयसंठिई' ओजः संस्थितिः ओजसः प्रकाशस्य संस्थितिः—संस्थानम् अवस्थानमित्यर्थ 'आहिया' आख्याता कथिता ? 'ति वएज्जा' इति वदेत् हे भगवन् कथयतु । इति गौतममस्य प्रश्नः । अथ भगवान् एतद्विषये अन्यतैर्थिकानां मान्यतारूपा यावत्यः प्रतिपत्तयः सन्ति ताः प्रदर्शयति—'तत्थ' इत्यादि । 'तत्थ खलु' तत्र ओजः संस्थितिविषये खलु 'इमाओ' इमा अग्रे वक्ष्यमाणाः 'पणवीसं' पञ्चविंशतिः 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः परमतरूपा 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ताः कथिताः 'तं जहा' तद्यथा ता यथा 'तत्थेगे' इत्यादि । 'तत्थ' तत्र पञ्चविंशति संख्यकेषु प्रतिपत्तिवादिषु 'एगे' एके केचन प्रथमाः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' कथयन्ति, किं कथयन्तीति प्रदर्शयति—'ता अणुसमयमेव' इत्यादि 'ता' तावत् 'अणुसमयमेव' अनुसमयमेव प्रतिसमयमेव समये समये प्रतिक्षणमित्यर्थः 'सूरियस्स' सूर्यस्य 'ओया' ओजः प्रकाशः, सूत्रे 'ओया' इति स्त्रीत्वं प्राकृतत्वात् 'अण्णा उप्पज्जइ' अन्यत् उत्पद्यते' तथा 'अण्णा' अन्यत् अपरमेव ओजः 'अवेइ' अपैति पृथक् भवति, अयं भावः सूर्यस्यौजः प्राक्तनं भिन्नप्रमाणमुत्पद्यते प्राक्तनाद् भिन्नमेव ओजः विनश्यति इति । उपसंहारमाह—'एगे' एके प्रथमा 'एवं' एवं पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्तीति ।१। 'एगे पुण' एके द्वितीयाः पुनः 'एवमाहंसु' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः—'ता' तावत 'अणुमुहुत्तमेव' अनुमुहूर्त्तमेव प्रतिमुहूर्त्तमेव 'सूरियस्स ओया' सूर्यस्य ओजः 'अण्णा-उप्पज्जइ' अन्यत् उत्पद्यते, 'अण्णा अवेइ' अन्यत् यत् पूर्वमासीत् तत् अपैति विनश्यति, उपसंहारः—'एगे' एके द्वितीयाः 'एवं' एवं पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति ।२। 'एवं' एवम् 'एएणं' एतेन आद्य प्रतिपत्तिद्वयप्रोक्तेन 'अभिलावेणं' अभिलापेन अभिलापप्रकारेण अग्रेऽपि विज्ञेयमिति भावः । तथा च—'ता' तावत् अणुराइदियमेव' अनुरात्रिन्दिवमेव प्रत्येकमहोरात्रमेव ।३। 'ता अणुपक्खमेव' तावत् अनुपक्षमेव ।४। 'ता अणुमासमेव' तावत् अनुमासमेव ।५। 'ता अणुउउ मेव' तावत् अनुऋतुमेव प्रतिवसन्तादिरूपमेव ।६। 'ता अणुअयणमेव' तावत् अन्वयनमेव, अयनंनाम दक्षिणायनोत्तरायणरूपं द्वयम् ।७। 'ता अणुसंवच्छरमेव' तावत् अनुसंवत्सरमेव, संवत्सरः—द्वादशमासरूपः ।८। 'ता अणुजुगमेव' तावत् अनुयुगमेव पञ्चवर्षात्मकयुगमेव ।९। 'ता अनुवाससयमेव' तावत् अनुवर्षशतमेव ।१०। 'ता अणुवाससहस्समेव' तावत् अनुवर्षसहस्रमेव ॥११॥ ता अणुवाससयसहस्समेव' तावत् अनुवर्षशतसहस्रमेव अनुलक्षवर्षमेवेत्यर्थः ।१२। 'ता अणुपुव्वमेव' तावत् अनुपूर्वमेव॥१३॥ ता अणुपुव्वसयमेव तावत् अनुपूर्वशतमेव ।१४। 'ता अणुपुव्वसहस्समेव तावत् अनुपूर्वसहस्रमेव, ।१५। 'ता अणुपुव्वसयसहस्समेव' तावत् अनुपूर्वशतसहस्रमेव, शतसहस्रमिति लक्षम् ।१६। 'ता-

अणुपलिओवममेव' तावत् अनुपल्योपममेव ।१७। 'ता अणुपलिओवमसयमेव' तावत् अनुपल्योपमशतमेव ।१८। ता अणुपलिओवमसहस्समेव' तावत् अनुपल्योपमसहस्रमेव ।१९। 'ता अणुपलिओवमसयसहस्समेव' तावत् अनुपल्योपमशतसहस्रमेव ।२०। 'ता अणुसागरोवममेव' तावत् अनुसागरोपममेव ।२१। 'ता अणुसागरोवमसयमेव' तावत् अनुसागरोपमशतमेव ।२२। ता अणुसागरोवमसहस्समेव' तावत् अनुसागरोपमसहस्रमेव ।२३। 'ता अणुसागरोवमसयसहस्समेव' तावत् अनुसागरोपमशतसहस्रमेव ।२४। 'एगे पुण' एके पञ्चविंशतितमाः परतीर्थिकाः पुनः 'एवं' एवम्-वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति 'ता' तावत् 'अणुउस्सप्पिणिओसप्पिणिमेव' अनुत्सर्पिण्यवसर्पिणीमेव प्रत्येकोत्सर्पिण्यवसर्पिणीकालमेव 'सूरियस्स ओया' सूर्यस्य ओज. 'अण्णा' अन्यत् अपरं पूर्वस्थितम् 'अवेइ' अपैति विनश्यति 'एगे' एके पञ्चविंशतितमाः परमतवादिनः 'एव' एवं-पूर्वप्रदर्शितप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति । इति पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तयः ।२५। इति,

इमाः पूर्वप्रदर्शिताः सर्वा अपि प्रतिपत्तयः मिथ्यारूपाः सन्ति अत आसां निराकरणेन भगवान् स्वमतमुपन्यस्यति-'वयं पुण' इत्यादि ।

'वयं पुण' वयं तु 'एवं' एवं-वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयामो' वदामः कथयामः, तदेवाह-'ता तीसं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'तीसं तीसं मुहुत्ते' त्रिंशतं त्रिंशतं मुहूर्त्तान् जम्बूद्वीपे प्रतिवर्षं परिपूर्णतया त्रिंशन्मुहूर्त्तपरिमितकालपर्यन्तम् 'सूरियस्स ओया' सूर्यस्य ओजः-प्रकाशः 'अवट्ठिया भवइ' अवस्थितं यथावस्थितं भवति । अयमाशयः-सूर्यसंवत्सरस्य पर्यन्तभागे यदा सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डले चारं चरति तदा सूर्यस्य जम्बूद्वीपगतमोजः त्रिंशतं मुहूर्त्तान् यावत् परिपूर्णप्रमाणयुक्तं भवति । 'तेणं परं' तेन परं ततोऽनन्तरं सर्वाभ्यन्तरमण्डलात्परम् 'सूरियस्स ओया' सूर्यस्य ओजः 'अणवट्ठिया' अनवस्थितं नियतप्रमाणरहितं 'भवइ' भवति । कस्मात् कारणादित्याह-'छम्मासे' इत्यादि । यतो हि सर्वाभ्यन्तरमण्डलात् अग्रे चरतः सूर्यस्य निष्क्रमणसमयगतान् प्रथमान् सूर्यसंवत्सरसम्बन्धिनः 'छम्मासे' षण्मासान् यावत् 'सूरिए' सूर्यः 'ओयं' ओजः जम्बूद्वीपगतं प्रकाशं 'णिव्वुड्ढेइ' निर्वर्धयति प्रत्यहोरात्रमेकैकस्य त्रिंशदधिकाष्टादशशत १८३० संख्यकभागसम्बन्धिनो भागस्य हीनकरणेन हापयति । एवं तदनन्तरं सूर्यसंवत्सरस्य द्वितीयान् प्रवेशसमयगतान् 'छम्मासे' षण्मासान् यावत् षण्मासपर्यन्तमित्यर्थः 'सूरिए' सूर्यः 'ओयं' ओजः प्रकाशम् 'अभिवड्ढेइ' अभिवर्धयति प्रत्यहोरात्रं त्रिंशदधिकाष्टादशशत (१८३०) संख्यभागस्यैकैकभागवर्धनेन तत्र वृद्धिं करोति । एतदेव स्पष्टयति-'णिक्खममाणे' इत्यादि 'णिक्खममाणे' निष्क्रामन् सर्वाभ्यन्तरमण्डलाद्बहिर्निर्गच्छन् 'सूरिए' सूर्यः

'देसं' देशं भागैकरूप प्रत्येकमण्डले 'णिव्वुड्ढेइ' निर्वर्धयति हापयति, 'पविसमाणे' प्रविशन् सर्वबाह्यमण्डलात् सर्वाभ्यन्तरमण्डलाभिमुखं गच्छन् 'सूरिए' सूर्यः 'देसं' देशं भागैकरूपं प्रत्येकमण्डले 'अभिवड्ढेइ' अभिवर्धयति तत्र वृद्धिं करोतीति। अत एवोच्यते सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारसमये त्रिंशन्मुहूर्त्तान् यावत् परिपूर्णतया सूर्यस्य ओजः अवस्थितं तिष्ठति, ततः परम् अनवस्थितमिति। अत्र गौतमः प्रश्नयति—'तत्थ' इत्यादि। 'तत्थ' तत्र—सूर्यौजसोऽवस्थितानवस्थितविषये 'को' किदृशः 'हेऊ' हेतु. तत्र किंकारणम् ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् हे भगवन् तत्र कारणं वदतु कथयतु। अथ भगवान् तत्कारणं प्रदर्शयन्नाह—'ता अयण्णं' इत्यादि। 'ता' तावत् 'अयण्णं' अयं खलु लोकप्रसिद्धः 'जम्बुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपो द्वीपः मध्यजम्बूद्वीपः 'जाव' यावत् 'परिक्खेवेणं पण्णत्ते' परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः, यावत्पदेन जम्बूद्वीपप्रमाणं सर्वमत्र वाच्यम्। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठाप्राप्तः परमप्रकर्पसंपन्नः 'उक्कोसए' उत्कर्षकः सर्वोत्कृष्टः 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलघ्वी 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवतीति ज्ञातव्यम्।

अथ सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलान्निष्क्रमणसमयव्यवस्थां प्रदर्शयति—'से णिक्खममाणे' इत्यादि। 'से' सः 'णिक्खममाणे' निष्क्रामन् सर्वाभ्यन्तरमण्डलात् सर्वबाह्यमण्डलाभिमुखं गच्छन् 'सूरिए' सूर्यः 'णवं संवच्छर' नवं संवत्सर दिवसहापनरात्रिवर्धनरूपम् 'अयमाणे' अयन् प्राप्नुवन् 'पढमंसि अहोरत्तंसि' प्रथमेऽहोरात्रे 'अब्भितराणंतरं मंडलं' अभ्यन्तरानन्तरं सर्वाभ्यन्तरमण्डलाद् द्वितीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति। 'ता' तावत् जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः' अब्भितराणंतरं मंडलं' अभ्यन्तरानन्तरं द्वितीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'एगेणं राइंदिएणं' एकेन रात्रिन्दिवेन एकाहोरात्रेण सर्वाभ्यन्तरमण्डलगतेन 'एगं भागं ओयाए' एकं भागमोजसः 'दिवसखित्तस्स' दिवसक्षेत्रस्य दिवसक्षेत्रगतस्य 'णिव्वुड्ढित्ता' निर्वर्ध्य हापयित्वा प्रथमक्षणादूर्ध्वं शनैः शनैः कलामात्रहापनेन अहोरात्रस्य पर्यन्तभागे न्यूनीकृत्य, तथा एवमेव 'रयणिखेत्तस्स' रजनीक्षेत्रस्य रजनीक्षेत्रगतस्य ओजसस्तमेव एकं भागम् 'अभिवड्ढित्ता' अभिवर्ध्य च 'चारं चरइ' चारं चरति मण्डलं केच्छित्वा एकं भागं हापयति वर्धयतीत्यत्राह 'मंडलं' मण्डलं सर्वाभ्यन्तराद् द्वितीयं मण्डलम् 'अट्ठारसहिं तीसेहिं सएहिं' अष्टादशभिः त्रिंशता शतैः त्रिंशदधिकाष्टादशशतैः (१८३०) 'छित्ता' छित्वा विभज्य। अयं भावः—एकस्य मण्डलस्य त्रिंशदधिकाष्टादशशतभागाः कल्प्यन्ते, तत्सम्बन्धिनमेकं भागमिति।

एते पुनस्त्रिंशदधिकाष्टादशशतभागाः कथं कल्प्यन्ते ? इति प्रदर्श्यते-इह-एकैकं मण्डलं द्वौ सूर्यौ एकैकेनाहोरात्रेण परिभ्रम्य पूरयतः। अहोरात्रश्च त्रिंशन्मुहूर्त्तप्रमाणो भवति, प्रतिसूर्यं चाहोरात्रगणनायां परमार्थतो द्वयोः सूर्ययोः द्वौ अहोरात्रौ भवतः। अतो द्वयोरहोरात्रयोर्मुहूर्त्ताः षष्टिसंख्यका जायन्तेऽतो मण्डलं प्रथमतः षष्टया भागैर्विभज्यते एकस्य मण्डलस्य षष्टिभागा जाता इत्यर्थः। अथ निष्क्रामन्तौ द्वौ सूर्यौ प्रत्यहोरात्रं प्रत्येकं द्वौ द्वौ मुहूर्त्तैकषष्टिभागौ हापयतः, प्रविशन्तौ चाभिवर्धयतः, ततश्च द्वौ मुहूर्त्तैकषष्टिभगौ समुदितौ भवतः, तयोरेकः सार्धत्रिंशत्तमो भागो भवति, ततः षष्टिरपि भागाः सार्धत्रिंशता गुण्यन्ते जातास्त्रिंशदधिकाष्टादशशतभागा (६० X ३०॥=१८३०)। अत्र गुण्याङ्काः षष्टि(६०) गुणकाङ्काः सार्धत्रिंशत् (३०॥) अनयोर्गुणने समायाति यथोक्ता संख्या (१८३०) इति।

एवं निष्क्रामन् सूर्यः प्रतिमण्डलं त्रिंशदधिकाष्टादशशतसंख्यकभागानां सत्कमेकैकं भागं दिवसक्षेत्रगतस्य ओजसः (प्रकाशस्य) हापयन् हापयन् रजनीक्षेत्रस्य चाभिवर्धयन् अभिवर्धयन् सूर्यः सर्वबाह्यमण्डले गच्छति ततः सर्वबाह्यमण्डलपर्यन्तमेव वक्तव्यम्।

सर्ववाह्यमण्डले त्र्यशीत्यधिकमेकं शतं (१८३) भागानां दिवसक्षेत्रगतस्य प्रकाशस्य हापनेन रजनीक्षेत्रस्य चाभिवर्धनेन भवति। एतच्च त्र्यशीत्यधिकं भागशतं त्रिंशदधिकाष्टादशशतभागानां दशमो भागो भवति, ततः सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात् सर्वबाह्यमण्डले दिवसक्षेत्रस्य जम्बूद्वीपचक्रवालदशभागस्त्रुटयति, रजनी क्षेत्रस्य चाभिवर्धते इति पूर्वमभिहितमेव।

एवमेव सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं प्रविशन् प्रतिमण्डलं त्रिंशदधिकाष्टादशशतभागानां सत्कमेकैकं भागं दिवसक्षेत्रगतस्य प्रकाशस्याभिवर्धयन् रात्रिक्षेत्रगतस्य प्रकाशस्य च हापयन् तावद् वक्तव्यं यावत् सर्वाभ्यन्तरे मण्डले त्र्यशीत्यधिकैकशतभागं (१८३) दिवसक्षेत्रगतस्य प्रकाशस्याभिवर्धयति, रजनीक्षेत्रस्य च त्र्यशीत्यधिकैकशतभागं हापयति। एतत् त्र्यशीत्यधिकं भागशतं च जम्बूद्वीपचक्रवालस्य दशमो भागो भवति, ततः सर्वबाह्यमण्डलात् सर्वाभ्यन्तरमण्डले दिवसक्षेत्रगतस्य प्रकाशस्यैको दशमश्चक्रवालभागोऽभिवर्धते, रजनीक्षेत्रस्य चैषस्त्रुटयति, इति यत् प्रागभिहितं तत्समुचितमेवेति।

एतत्सर्वं भगवान् मूले प्रदर्शयिष्यति। तदेवाह-'**तया णं**' इत्यादि। '**तया णं**' तदा सूर्यस्य निष्क्रमणसमये खलु यदा एकेन रात्रिन्दिवेन एकं भागं दिवसक्षेत्रगतस्य प्रकाशस्य हापयित्वा, रजनीक्षेत्रस्य चाभिवर्ध्य सूर्यश्चारं चरति तदा इत्यर्थः, '**अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ**' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति किन्तु सः '**दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं ऊणे**' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यामूनः-हीनो भवति, '**दुवालसमुहुत्ता राई भवइ**' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, सा च '**दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं**' अहिया द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यामधिका भवतीति।

पुनश्च—'से' सः 'णिक्खममाणे सूरिए' निष्क्रामन् सूर्यः 'दोच्चंसि अहोरत्तंसि' द्वितीयेऽहोरात्रे 'अब्भिंतराणंतरं तच्चं मंडलं आभ्यन्तरानन्तरम् सर्वाभ्यन्तरमण्डलादग्रेतनं तृतीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उवसंक्रम्य चारं चरति। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'अब्भिंतराणंतरं तच्चं मंडलं, आभ्यन्तरानन्तरं तृतीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'दोहिं राइंदिएहिं' द्वाभ्यां रात्रिन्दिवाभ्यां 'दो भागे' द्वौ भागौ 'ओयाए' ओजसः 'दिवसखेत्तस्स' दिवसक्षेत्रस्य दिवसक्षेत्रगतस्य 'णिव्वुड्ढित्ता' निर्वर्ध्य—ह्रापयित्वा, तथा—'रयणिखेत्तस्स' रजनीक्षेत्रस्य रजनीक्षेत्रगतस्य 'अभिवड्ढेत्ता' अभिवर्ध्य 'चारं चरइ' चारं चरति, 'मंडलं' मण्डलम् 'अट्ठारसहिं तीसेहिं सएहिं' अष्टादशभिः त्रिंशता शतैः त्रिंशदधिकाष्टादशशतैः 'छेत्ता' छित्वा विभज्य मण्डलस्यविभागाः करणीया इत्यर्थः। 'तया णं' तदा खलु 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, स च 'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतुर्भिरेकपष्टिभागमुहूर्त्तैः 'ऊणे' ऊनः हीनो भवति। तथा 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, सा च 'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः 'अहिया' अधिका भवति। 'एव खलु' एवम्—अनेन प्रकारेण खलु 'एएण' एतेन पूर्वप्रदर्शितेन 'उवाएणं' उपायेन युक्तिरूपेण 'णिक्खममाणे सूरिए' निष्क्रामन् सूर्यः 'तयाणंतराओ तयाणंतरं' तदनन्तरात् तदनन्तरं 'मंडलाओ मंडलं' मण्डलान्मण्डलम् एकस्मान्मण्डलाद् अग्रेतनं द्वितीयं मण्डलं—'संकममाणे २' संक्रामन् २ 'एगमेगे मंडले' एकैकस्मिन् मण्डले 'एगमेगेणं राइंदिएणं' एकैकेन रात्रिन्दिवेन—'एगमेगं भागं' एकैकं भागम् 'ओयाए' ओजसः 'दिवसखेत्तस्स' दिवसक्षेत्रस्य दिवसक्षेत्रगतस्य 'णिव्वड्ढेमाणे २' निर्वर्धयन् २ हापयन् २, 'रयणिखेत्तस्स' रजनीक्षेत्रगतस्य ओजसश्च एकैकं भागम् 'अभिव्वड्ढेमाणे २' अभिवर्धयन् २, 'सव्वबाहिरं मडलं' सर्वबाह्यं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसक्रम्य चारं चरति। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतराओ मंडलाओ' सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलात् 'सव्वबाहिरं मंडलं' सर्वबाह्यं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डल 'पणिहाय' प्रणिधाय अवधीकृत्य 'एगेणं तेसीएणं राइंदियसएणं' एकेनत्र्यशीतिकेन त्र्यशीत्यधिकेन रात्रिन्दिवशतेन त्र्यशीत्यधिकैकशतसंख्यकैरहोरात्रैः (१८३) 'एगं तेसीयं भागसयं' एकं त्र्यशीतिकं भागशतं त्र्यशीत्यधिकैकशततमं भागम् 'ओयाए' ओजसः 'दिवसखेत्तस्स' दिवसक्षेत्रगतस्य 'णिव्वुड्ढेत्ता' निर्वर्ध्य ह्रापयित्वा, 'रयणिखेत्तस्स' रजनीक्षेत्रस्य च 'अभिव्वुड्ढेत्ता' अभिवर्ध्य चारं चरति, मण्डलम् तन्मण्डलं 'अट्ठारसेहिं तीसेहिं सएहिं' अष्टादशभिः त्रिंशता अधिकैः शतैः (१८३०) 'छेत्ता' छित्वा विभज्य विभज्यन्ते इत्यर्थः

भागाः क्रियन्ते इति भावः। 'तया णं' तदा खलु तत्प्रस्तावे खलु 'उत्तमकट्ठपत्ता' उत्तमकाष्ठाप्राप्ता परमप्रकर्षयुक्ता 'उक्कोसिया' उत्कर्षिका सर्वगुर्वी 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति 'जहण्णए' जघन्यकः सर्वलघु 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। उपसहारमाह-'एस णं' इत्यादि। 'एस णं' एतत् पूर्वप्रदर्शितं खलु 'पढमे छम्मासे' प्रथमं सूर्यस्य निष्क्रामणेन संजातं रात्रिवृद्धि-दिवसहानिरूपं षण्मासम्। 'एस णं' एतदेव खलु 'पढमस्स छम्मासस्स' प्रथमस्य षण्मासस्य 'पज्जवसाणे' पर्यवसानम्-अन्तिममहोरात्रमिति ॥

अथ सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डले प्रवेशस्य वक्तव्यतामाह-'से पविसमाणे' इत्यादि।

'से सः 'पविसमाणे' प्रविशन् सर्वाभ्यन्तरमण्डलाभिमुखं गच्छन् 'सूरिए' सूर्यः 'दोच्चं' द्वितीयं दिवसवृद्धिरात्रिहानिरूपं 'छम्मासं' षण्मासं 'अयमाणे' अयन् प्राप्नुवन् 'पढमंसि अहोरत्तंसि' प्रथमेऽहोरात्रे 'वाहिराणंतरं मंडलं' वाह्यानन्तरं सर्ववाह्यमण्डलाद्द्वितीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'वाहिराणंतरं मंडलं' वाह्यानन्तरं द्वितीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चार चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'एगे णं राइदिएणं' एकेन रात्रिन्दिवेन 'एगं भागं' एकं भागम् 'ओयाए' ओजसः प्रकाशस्य, कीदृशस्य ?-'रयणिखेत्तस्स' रजनीक्षेत्रगतस्य 'णिव्वुड्ढित्ता' निर्वर्ध्य ह्रापयित्वा, तथा 'दिवसखेत्तस्स' दिवसक्षेत्रस्य ओजसः-एकं भागं 'अभिवुड्ढेत्ता' अभिवर्ध्य 'चारं चरइ' चारं चरति। 'मंडलं' मण्डलं च 'अट्ठारसहिं तीसेहिं सएहिं' अष्टादशशतैस्त्रिंशदधिकैः 'छेत्ता' छित्वा विभज्य मण्डलस्य त्रिंशदधिकाष्टादशशतभागाः कर्त्तव्या इति भावः। 'तया णं' तदा खलु 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, सा च 'दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्याम् 'उणा' ऊना हीना भवति, 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, स च 'दोहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं अहिए' द्वाभ्यामेकषष्टिभागमुहूर्त्ताभ्यामधिको भवति। पुनश्च 'से' सः 'पविसमाणे सूरिए' प्रविशन् सूर्यः 'दोच्चंसि अहोरत्तंसि' द्वितीयेऽहोरात्रे 'वाहिराणंतरं' वाह्यानन्तरं वाह्यभागादग्रेतनं 'तच्चं मंडलं' तृतीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः वाहिराणंतरं तच्चं मंडलं' वाह्यानन्तरं तृतीयं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'दोहिं राइंदिएहिं' द्वाभ्यां रात्रिन्दिवाभ्यां 'दो भाए, द्वौ भागौ 'ओयाए' ओजसः 'रयणिखेत्तस्स' रजनीक्षेत्रगतस्य 'णिव्वुडढेत्ता' निर्वर्ध्य ह्रापयित्वा 'दिवसखेत्तस्स' दिवसक्षेत्रगतस्य च ओजसो द्वौ भागौ 'अभिव्वुड्ढेत्ता' अभिवर्ध्य चारं चरति, 'मंडलं' तन्मण्डलं च 'अट्ठारसेहिं तीसेहिं

सएहिं' त्रिंशदधिकाष्टादशशतैः 'छेत्ता' छित्वा विभज्य मण्डलस्य भागान् कृत्वा सूर्यश्चारं चरतीति भावः। 'तया णं' तदा खलु अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, सा च 'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं उणा' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः ऊना भवति। 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, स च 'चउहिं एगसट्ठिभागमुहुत्तेहिं' चतुर्भिरेकषष्टिभागमुहूर्त्तैः 'अहिए' अधिको भवति। 'एवं खलु' एवमनेन प्रकारेण खलु 'एएणं उवाएणं' एतेन पूर्वोक्तरूपेण उपायेन विधिना 'पविसमाणे सूरिए' प्रविशन् सूर्यः 'तयाणंतराओ तयाणंतरं' तदनन्तरात् तदनन्तरं 'मंडलाओ मंडलं' मण्डलान्मण्डलं 'संकममाणे २' संक्रामन् २ 'एगमेगेणं राइंदिएणं' एकैकेन रात्रिन्दिवेन 'एगमेगं भागं' एकैकं भागम् ओजसः 'रयणिखेत्तस्स' रजनीक्षेत्रगतस्य 'णिव्वुड्ढेमाणे २' निर्वर्धयन् २ ह्रापयन् २, तथा 'दिवसखेत्तस्स' दिवसक्षेत्रगतस्य 'अभिवुड्ढेमाणे २' अभिवर्धयन् २ 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वबाहिराओ' सर्वबाह्यान्मण्डलात् 'सव्वब्भंतरं मंडलं' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'सव्वबाहिरं मंडलं' सर्वबाह्यमण्डलं 'पणिहाय' प्रणिधाय अवधीकृत्य तत आरभ्येत्यर्थः 'एगेणं तेसीएणं राइंदियसएणं' त्र्यशीत्यधिकैकशत (१८३) संख्यकैः रात्रिन्दिवैः 'एगं तेसीयं भागसयं' त्र्यशीत्यधिकैकशततमं भागम् 'ओयाए' ओजसः 'रयणिखेत्तस्स' रजनीक्षेत्रगतस्य 'णिव्वुड्ढेत्ता' निर्वर्ध्य ह्रापयित्वा, तथा 'दिवसखेत्तस्स' दिवसक्षेत्रगतस्य च ओजसः एकं भागं 'अभिवुड्ढेत्ता' अभिवर्ध्य 'चारं चरइ' चारं चरति, 'मंडलं' तन्मण्डलं च 'अट्ठारसेहिं तीसेहिं सएहिं' त्रिंशदधिकाष्टादशशतसंख्यकैः छित्वा भागान् कृत्वा मण्डलस्य भागाः कर्त्तव्याः। 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठा प्राप्तः परमप्रकर्षसंपन्नः 'उक्कोसए' उत्कर्षकः सर्वोत्कृष्टः 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलध्वी 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवतीति।

उपसंहार एवं वाच्यः, तथाहि—एवं पूर्वोक्तप्रकारेण व्यवस्थायां सत्यां कथ्यते यत्-प्रति सूर्यं संवत्सरपर्यन्तभागे सर्वाभ्यन्तरे मण्डले त्रिंशतं मुहूर्त्तान् यावत् सूर्यस्य परिपूर्णमोजः अवस्थितं भवति, ततः परमनवस्थितं भवति। सर्वाभ्यन्तरेऽपि च मण्डले त्रिंशद् मुहूर्त्तान् यावत् परिपूर्णमवस्थितमोज. कथ्यते, एतद् व्यवहारतो विज्ञेयम्, निश्चयतः पुनस्तत्रापि प्रथमक्षणादूर्ध्वं शनैः शनैः ह्रियमाणं ज्ञातव्यम् यतो हि प्रथमक्षणादूर्ध्वं सूर्यः एकस्मान्मण्डलादनन्तरं द्वितीयमण्डलाभिमुखं चारं चरतीति।

उप संहारमाह–'एस णं' इत्यादि। 'एस णं' एतत्खलु 'दोच्चे छम्मासे' द्वितीयं षण्मासम्। 'एस णं' एतत्खलु 'दोच्चस्स छम्मासस्स पज्जवसाणे' द्वितीयस्य षण्मासस्य पर्यवसानम् अन्तिममहोरात्रमिति। 'एस णं आइच्चे संवच्छरे' एष खलु आदित्यः संवत्सरः समाप्तः। 'एस णं' एतत् खलु 'आइच्चस्स संवच्छरस्स' आदित्यस्य संवत्सरस्य 'पज्जवसाणे' पर्यवसानम्–अन्तिममहोरात्रमस्तीति ॥सू० १॥

इति श्री–विश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचक पञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापक–प्रविशुद्ध-गद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–श्रीशाहुच्छत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त "जैनशास्त्राचार्य" पदभूषित–कोल्हापुर राजगुरु बालब्रह्मचारि–जैनशास्त्राचार्य–जैनधर्मदिवाकर श्रीघासीलालव्रति–विरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिका-' ख्यायां व्याख्यायां

षष्ठं प्राभृतं समाप्तम् ॥५॥

॥ श्रीरस्तु ॥



व्याख्यातं षष्ठं प्राभृतम्

व्याख्यातं षष्ठं प्राभृतम् । तत्र-ओजःसंस्थिति प्रतिपादिताः, अथ सप्तमं प्राभृतं व्याख्यायते तस्य चायमर्थाधिकारः 'किं ते सूरियं वरइ' किं ते सूर्यं वरयति ! हे भगवन् तव मते सूर्यं कः वरयति प्रकाशयति, इत्येतदधिकारं विवृण्वन्नाह—'ता किं ते सूरियं' इत्यादि ।

मूलम्—ता किं ते सूरियं वरइ आहितेति वएज्जा । तत्थ खलु इमाओ वीसई पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-तत्थ खलु एगे एवमाहंसु-ता मंदरे णं पव्वए सूरियं वरइ, एगे एवमाहंसु ।१। एगे पुण एवमाहंसु-ता मेरूवणं पव्वए सूरियं वरइ, एगे एव माहंसु ।२। एवं एएणं अभिलावेणं जाव वीसइमा पडिवत्ती जाव ता पव्वयराएणं पव्वए सूरियं वरइ, एगे एवमाहंसु ।२०। वयं पुण एवं वयामो मंदरे वि पवुच्चइ, मेरू वि पवुच्चइ, एवं जाव पव्वयराओ वि पवुच्चइ। ता जे णं पोग्गला सूरियस्स लेसं फुसंति ते णं पोग्गला सूरियं वरंति, अदिट्ठावि णं पोग्गला सूरियं वरंति, चरमलेस्संतरगया वि णं पोग्गला सूरियं वरंति ॥सू० १॥

चंद पन्नत्तीए सत्तमं पाहुडं समत्तं ॥७॥

छाया—तावत् कस्ते सूर्यं वरयति आख्यात इति वदेत् । तत्र खलु इमा विंशतिः प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-तत्र खलु एके एवमाहुः-तावत् मन्दरः खलु पर्वतः सूर्यं वरयति, एके एवमाहुः ।१। एके पुनरेवमाहुः-तावत् मेरुः खलु पर्वतः सूर्यं वरयति, एके एवमाहुः ।२। एवम् एतेन अभिलापेन यावत् विंशतितमा, प्रतिप्रत्तिः, यावत्-तावत् पर्वतराजः खलु पर्वतः सूर्यं वरयति एके एवमाहुः ।२०। वयं पुनरेवं वदामः-मन्दरोऽपि प्रोच्यते, मेरुरपि प्रोच्यते, एवं यावत् पर्वतराजोऽपि प्रोच्यते । तावत् ये खलु पुद्गलाः सूर्यस्य लेश्यां स्पृशन्ति ते खलु पुद्गला सूर्यं वरयन्ति, अदृष्टा अपि खलु पुद्गलाः सूर्यं वरयन्ति, चरमलेश्यान्तरगता अपि खलु पुद्गलाः सूर्यं वरयन्ति ।।सू० १।।

चन्द्रप्रज्ञप्त्यां सप्तमं प्राभृतं समाप्तम् ॥७॥

व्याख्या—'ता' तावत् 'किं' कः 'ते' तवमते 'सूरियं' सूर्यं 'वरइ वरयति' वर ईप्सायाम् वरयन् आप्तुमिच्छन् स्वप्रकाशकत्वेन स्वीकुर्वन् 'आहिए' आख्यातः ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् । अत्र भगवान् प्रतिपत्तीः प्रदर्शयति-'तत्थ खलु' तत्र सूर्यस्य वरणविषये खलु 'इमाओ' इमाः वक्ष्यमाणाः 'वीसई' विंशतिः विंशतिसंख्यकाः 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः परमतरूपाः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ताः, 'तं जहा' तद्यथा-ता यथा-'तत्थ खलु' तत्र विंशति-प्रतिपत्तिवादिषु मध्ये खलु 'एगे' एके प्रथमाः 'एवं' एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति 'ता' तावत् 'मंदरे णं पव्वए' मन्दरः खलु पर्वतः 'सूरियं' सूर्यं 'वरइ' वरयति मन्दरः पर्वतो हि सूर्येण

मण्डलपरिभ्रम्या सर्वतः प्रकाश्यते ततः सः सूर्यं स्वप्रकाशकत्वेन वरयतीति प्रोच्यते। एवमग्रेऽपि बोध्यम्। **'एगे एवमाहंसु'** एके प्रथमा एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः ॥१॥ **'एगे पुण'** एके द्वितीयाः पुनः **'एवं'** एवं-वक्ष्यमाणप्रकारेण **'आहंसु'** आहु. **'ता'** तावत् **'मेरू णं पव्वए'** मेरुः खलु पर्वतः **'सूरियं'** सूर्यं **'वरइ'** वरयति, **'एगे एवमाहंसु'** एके द्वितोया एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः। **'एवं'** अनेन प्रकारेण **'एएणं'** एतेन पूर्वोक्तेन **'अभिलावेणं'** अभिलापेन अग्रेऽपि आलापकाः कर्त्तव्याः। कियत्पर्यन्तमित्याह-**'जाव'** इत्यादि। **'जाव'** यावत् **'वीसइमा'** विंशतितमा **'पडिवत्ती'** प्रतिपत्तिः भवेत् **'जाव'** यावत् **'ता'** पूर्ववत् **'पव्वयराए णं पव्वए'** पर्वतराजः खलु पर्वतः **'सूरियं वरइ'** सूर्यं वरयति **'एगे एवमाहंसु'** एके विंशतितमाः प्रतिपत्तिवादिनः एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः कथयन्ति। अत्र मन्दरादारभ्य पर्वतराजपर्यन्तं विंशतिशब्दानां व्याख्या पूर्वं पञ्चमप्राभृते सूर्यस्य लेश्याप्रतिघातप्रकरणे कृतेति तत्र विलोकनीया। एता विंशतिरपि-प्रतिपत्तयो मिथ्यारूपाः एकस्य मन्दरस्यैव विंशतिनामवत्त्वात् तदेव भगवान् स्वमतं प्रदर्शयन्नाह—**'वयं पुण'** इत्यादि। **'वयं पुण'** वयं पुनः वयं तु **'एवं'** एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण **'वयामो'** वदामः कथयामः—**'मंदरेवि पवुच्चइ'** मन्दरोऽपि प्रोच्यते—एते विंशतिप्रतिपत्तिवादिनः अन्यान्य नाम आश्रित्य कथयन्ति किन्तु विंशतिनामवान् एक एव पर्वतो वर्त्तते नान्यः। एष एव पर्वतः मन्दर इति प्रोच्यते। तथा **'मेरू वि पवुच्चइ'** मेरुरपि प्रोच्यते **'एवं जाव पव्वयराओ वि पवुच्चइ'** एवं यावत् मनोरमादारभ्य विंशतितमनामवान् पर्वतराजोऽपि प्रोच्यते एषां नाम्नां सार्थकत्वं पञ्चमप्राभृते सविस्तरं प्रदर्शितं तत्तत्र विलोकनीयम्। न केवलं मेरुरेव सूर्यं वरयति किन्तु अन्येऽपि पुद्गलाः सूर्यं वरयन्तीत्याह- **ता जे णं'** इत्यादि। **'ता'** तावत् **'जे णं'** ये खलु **'पोग्गला'** पुग्दलाः **'सूरियस्स लेस्सं फुसंति'** सूर्यस्य लेश्यां स्पृशन्ति **'ते णं पोग्गला'** ते खलु पुग्दलाः **'सूरियं वरंति'** सूर्यं वरयन्ति पुनश्च **'अदिट्ठा वि णं पोग्गला'** अदृष्टा अपि खलु पुद्गला ये च प्रकाश्यमानपुद्गलस्कन्धान्तर्गता मेरुस्थिताः सूर्येण प्रकाशिता अपि अतिसूक्ष्मत्वान्न दृष्टिस्पर्शमुपयान्ति ते अदृष्टा अपि पुद्गलाः खलु प्रागुक्तरीत्या **'सूरियं वरंति'** सूर्यं वरयन्ति, तेषामपि सूर्येण प्रकाश्यमानत्वात्। पुनश्च **'चरमलेस्संतरगया वि णं पोग्गला'** चरम-लेश्यान्तर्गता अपि सूर्यप्रकाशान्तर्वर्त्तिनोऽपि खलु पुद्गला **'सूरियं वरंति'** सूर्यं वरयन्तीति ॥सू० १॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापक-प्रविशुद्ध-गद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहुछत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त "जैनशास्त्राचार्य" पदभूषित-कोल्हापुर राजगुरु बालब्रह्मचारि-जैनशास्त्राचार्य-जैनधर्मदिवाकर श्रीघासीलालव्रति-विरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिका-ख्यायां व्याख्यायां

सप्तमं प्राभृतं समाप्तम् ॥५॥

॥ श्रीरस्तु ॥

॥ अथ अष्टमं प्राभृतम् ॥

गतं सप्तमं प्राभृतम्, तत्र कः सूर्यं वरयतीत्युक्तम् । अथाष्टममारभ्यते, अस्य चाय मर्थाधिकारः–'कहं ते उदयसंठिई' कथं ते उदयसंस्थितिः केन प्रकारेण सूर्य उदेति, इति पूर्वप्रति ज्ञातमेवार्थं प्रदर्शयति–'ता कहं ते उदयसंठिई' इत्यादि ।

मूलम्—ता कहं ते उदयसंठिई आहिया ? ति वएज्जा । तत्थ खलु इमाओ तिण्णि पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–तत्थ एगे एवमाहंसु–ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढे वि अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ। ता जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं दाहिणड्ढे वि अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ। ता जया णं दाहिणड्ढे सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढे वि सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवइ, ता जया णं उत्तरड्ढे सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं दाहिणड्ढे वि सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवइ । एवं एएणं अभिलावेणं सोलसमुहुत्ते, पण्णरसमुहुत्ते, चोद्दसमुहुत्ते तेरसमुहुत्ते। ता जया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढे वि बारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जया णं उत्तरड्ढे बारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं दाहिणड्ढे वि बारसमुहुत्ते दिवसे भवइ। तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिम पच्चत्थिमेणं सया पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवइ, सया पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ, अवट्ठिया णं तत्थ राइंदिया पण्णत्ता समणाउसो एगे एवमाहंसु ॥१॥

एगे पुण एवमाहंसु–ता जया णं जंबुद्दीवेदीवे दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढे वि अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ तया णं दाहिणड्ढे वि अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ। एवं परिहवियव्वं–सत्तरसमुहुत्ताणंतरे, सोलसमुहुत्ताणंतरे, पण्णरसमुहुत्ताणंतरे, चउद्दसमुहुत्ताणंतरे, तेरसमुहुत्ताणंतरे, ता जया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढे वि बारसमहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, जया णं उत्तरड्ढे बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ तया णं दाहिणड्ढे वि बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं नो सया पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवइ, नो सया पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ, अणवट्ठिया णं तत्थ राइंदिया पण्णत्ता समणाउसो ! एगे एवमाहंसु ॥२॥

एगे पुण एवमाहंसु–ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं दाहिणड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। ता जया णं दाहिणड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, जया णं उत्तरड्ढे अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ तया णं दाहिणड्ढे दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। एवं सत्तरसमुहुत्ते दिवसे, सत्तरसमुहुत्ताणंतरे, सोलसमुहुत्ते सोलसमुहुत्ताणंतरे, पण्णरसमुहुत्ते, पण्णरसमुहुत्ताणंतरे, चउद्दसमुहुत्ते चउद्दसमुहुत्ताणंतरे, तेरसमुहुत्ते, तेरसमुहुत्ताणंतरे। ता जया णं दाहिणड्ढे बारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढे बारसमुहुत्ता राई भवइ, जया णं उत्तरड्ढे बारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं णेवत्थि पण्णरसमुहुत्ते दिवसे णेवत्थि पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ वोच्छिण्णाणं तत्थ राइंदिया पण्णत्ता समणाउसो एगे एवमाहंसु ॥३॥ सू० १॥

छाया—तावत् कथं ते उदयसंस्थितिः आख्याता इति वदेत्। तत्र खलु इमाः तिस्रः प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः तद्यथा-तत्र एके एवमाहुः-तावत् यदा खलु जम्बुद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्धे अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा खलु उत्तरार्धेऽपि अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। तावत् यदा खलु उत्तरार्धे अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा खलु दक्षिणार्धेऽपि अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। तावत् यदा खलु दक्षिणार्धे सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा खलु उत्तरार्धेऽपि सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, तावद् यदा खलु उत्तरार्धे सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा खलु दक्षिणार्धेऽपि सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। एवमेव एतेन अभिलापेन षोडशमुहूर्त्तः, पञ्चदशमुहूर्त्तः, चतुर्दशमुहूर्त्तः, त्रयोदशमुहूर्त्तः। तावत् यदा खलु दक्षिणार्धे द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा खलु उत्तरार्धेऽपि द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति यदा खलु उत्तरार्धे द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा खलु दक्षिणार्धेऽपि द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, तदा खलु जम्बुद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्यपाश्चात्ये सदा पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, सदा पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, अवस्थितानि खलु रात्रिन्दिवानि प्रज्ञप्तानि श्रमणायुष्मन्तः, एके एवमाहुः।१।

एके पुनरेवमाहुः-तावत् यदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्धे अष्टादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति तदा खलु उत्तरार्धेऽपि अष्टादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति, यदा खलु उत्तरार्धे अष्टादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति तदा खलु दक्षिणार्धेऽपि अष्टादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति। एवं परिज्ञातव्यम्-सप्तदशमुहूर्त्तानन्तरः, षोडशमुहूर्त्तानन्तरः, पञ्चदशमुहूर्त्तानन्तरः, चतुर्दशमुहूर्त्तानन्तरः, त्रयोदशमुहूर्त्तानन्तरः। तावत् यदा खलु दक्षिणार्धे द्वादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति तदा खलु उत्तरार्धेऽपि द्वादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति, यदा खलु उत्तरार्धे द्वादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति तदा खलु दक्षिणार्धेऽपि

द्वादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति, तदा खलु जम्बुद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्य-पाश्चात्ये नो सदा पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, नो सदा पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, अनवस्थितानि खलु तत्र रात्रिन्दिवानि प्रज्ञप्तानि श्रमणायुष्मन्तः, एके एवमाहुः ।२।

एके पुनरेवमाहुः--तावत् यदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्धे अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा खलु उत्तरार्धे द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, यदा खलु उत्तरार्धे अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा खलु दक्षिणार्धे द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । तावत् यदा खलु दक्षिणार्धे अष्टादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति तदा खलु उत्तरार्धे द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, यदा खलु उत्तरार्धे अष्टादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति तदा खलु दक्षिणार्धे द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । एवं सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसः; सप्तदशमुहूर्त्तानन्तर. षोडशमुहूर्तः, षोडशमुहूर्त्तानन्तरः, पञ्चदश-मुहूर्तः, पञ्चदशमुहूर्त्तानन्तरः, चतुर्दशमुहूर्त्तः, चतुर्दशमुहूर्त्तानन्तरः, त्रयोदशमुहूर्त्तः, त्रयोदश-मुहूर्त्तानन्तरः, तावत् यदा खलु दक्षिणार्धे द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा खलु उत्तरार्धे द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, यदा खलु उत्तरार्धे द्वादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति, तदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्यपाश्चात्ये नैवास्ति पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसः, नैवास्ति-पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, व्यवच्छिन्नानि खलु तत्र रात्रिन्दिवानि प्रज्ञप्तानि श्रवणायुष्मन्तः एके एवमाहु. ।३। ॥सू० १॥

व्याख्या:—'ता' इति तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'ते' तव भवन्मते 'उदय संठिई' उदयसंस्थितिः 'आहिया' आख्याता कथिता ? 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु कथ-यतु भवान् । गौतमेन एवं प्रश्ने कृते भगवान् पूर्वमेतद्विषये परमतरूपास्तिस्रः प्रतिपत्तीः प्रद-र्शयति—'तत्थ खलु' इत्यादि । 'तत्थ खलु' तत्र—उदयसंस्थितिविषये खलु 'इमाओ' इमाः अग्रे प्रदर्श्यमानाः 'तिण्णि' तिस्रः 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ता कथिताः, 'तं जहा' तद्यथा ता यथा—'तत्थ' तत्र त्रिपु प्रतिपत्तिवादिपु मध्ये 'एगे' एके प्रथमाः 'एवं' एवं—वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे जम्बूद्वीपनामके द्वीपे मध्यजम्बुद्वीपे 'दाहिणड्ढे' दक्षिणार्धे दक्षिणदिक् स्थितेऽ-र्धभागे 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'उत्त-रड्ढेवि' उत्तरार्धेऽपि उत्तरदिक् स्थितेऽर्धभागेऽपि 'अट्ठारसमुहुत्तो दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'उत्तरड्ढे' उत्तरार्धे' अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'दाहिणड्ढेवि' दक्षिणार्धेऽपि अट्ठारस मुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'दाहिणड्ढे' दक्षिणार्धे 'सत्तरसमुहुत्तो दिवसे भवइ' सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तरड्ढेवि' उत्तरार्धेऽपि 'सत्तरसमुहुत्तो दिवसो भवइ' सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसो

भवति, 'जया णं' यदा खलु 'उत्तरड्ढे' उत्तरार्धे 'सत्तरसमुहुत्ते दिवसे भवइ' सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'दाहिणड्ढे वि' दक्षिणार्धेऽपि 'सत्तरसमुहुत्तो दिवसो भवइ' सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति । 'एवं' एवम्—अनया रीत्या 'एएणं' एतेन पूर्वोक्तेन 'अभिलावेणं' अभिलापेन पूर्वोक्ताभिलापानुसारेण—एकैकमुहूर्त्तहान्या षोडशमुहूर्त्तदिवसादारभ्य त्रयोदशमुहूर्त्तदिवसपर्यन्तमभिलापाः कर्त्तव्या इति भावः । तदेवाह—'सोलसमुहुत्ते' षोडशमुहूर्त्तः, 'पण्णरसमुहुत्ते' पञ्चदशमुहूर्त्तः, 'चोद्दसमुहुत्ते' चतुर्दशमुहूर्त्तः, 'तेरसमुहुत्ते' त्रयोदशमुहूर्त्तः । एषामालापकाः स्वयमूहनीयाः । अथ द्वादशमुहूर्त्तविषये सूत्रकारः स्वयमाह—'ता जया णं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'दाहिणड्ढे' दक्षिणार्धे बारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तरड्ढे वि' उत्तरार्धेऽपि 'बारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'ता' तावत् 'जया ण' यदा खलु 'उत्तरड्ढे बारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' उत्तरार्धे द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'दाहिणड्ढेवि बारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' दक्षिणार्धेऽपि द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति । 'तया णं' तदा अष्टादशमुहूर्त्तादि दिवसकाले खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बुद्वीपे द्वीपे 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्य पर्वतस्य 'पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं' पौरस्त्यपाश्चात्ये पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि पूर्वपश्चिमयोर्दिशोरित्यर्थः 'सया' सदा सर्वदा सर्वकाले 'पण्णरसमुहुत्ते दिवसे भवइ' पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, तथा 'सया' सदा सर्वदा सर्वकाले 'पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ' पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, न तत्र न्यूनाधिकानि रात्रिंदिवानि भवन्तीति भावः । कुतः किं तत्र कारणमित्याह—'अवट्ठिया णं' अवस्थितानि सर्वदैकप्रमाणानि खलु 'तत्थ' तत्र मन्दरपर्वतस्य पूर्वस्यां पश्चिमायां च दिशि 'राइंदिया' रात्रिन्दिवानि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि कथितानि अस्माकं पूर्वाचार्यैः 'समणाउसो' श्रमणायुष्मन्तः हे श्रमणाः हे आयुष्मन्तः चिरजीविनः शिष्याः !,

उपसंहारः—'एगे' एके प्रथमाः प्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' एवं—पूर्वप्रदर्शितप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति प्रतिपादयन्ति । एषा प्रथमा प्रतिपत्तिः ॥१॥

अथ द्वितीयां प्रतिप्रत्तिमाह—'एगे पुण' इत्यादि । 'एगे' एके द्वितीयप्रतिप्रत्तिवादिनः पुनः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति ।

तदेव दर्शयति—'ता जया णं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'दाहिणड्ढे' दक्षिणार्धे "अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे' अष्टादशमुहूर्त्तानन्तरः

अष्टादशमुहूर्त्तेभ्यो न्यूनः 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति। अत्र-अनन्तरशब्दो न्यूनार्थवाची वर्त्तते। 'तया णं' तदा खलु 'उत्तरड्ढेवि' उत्तरार्धेऽपि 'अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे' अष्टादशमुहूर्त्तानन्तरः 'दिवसो भवइ' दिवसो भवति। 'जया णं' यदा खलु 'उत्तरड्ढे' उत्तरार्धेः 'अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'दाहिणड्ढे वि' दक्षिणार्धेऽपि 'अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवई' अष्टादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति। 'एवं' एवम्-अनेन प्रकारेण 'परिहावेयव्वं' परिहातव्यम् एकैकमुहूर्त्तहान्या न्यूनीकर्त्तव्यम्। तदेव परिहाणिप्रकारमाह 'सत्तरस' इत्यादि। सत्तरसमुहुताणंतरे' सप्तदशमुहूर्त्तानन्तरः, सोलसमुहुत्ताणंतरे' षोडशमुहूर्त्तानन्तरः, 'पण्णरसमुहुत्ताणंतरे' पञ्चदशमुहूर्त्तानन्तरः, 'चउदसमुहुत्ताणंतरं' चतुर्दशमुहूर्त्तानन्तरः, 'तेरसमुहुत्ताणंतरे' त्रयोदशमुहूर्त्तानन्तरः। अथ द्वादशमुहूर्त्तानन्तरसूत्रं सूत्रकारः स्वयं दर्शयति-'ता जया णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'दाहिणड्ढे' दक्षिणार्धे 'बारसमुहुत्ताणंतरे' द्वादशमुहूर्त्तानन्तरः 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तरड्ढे वि' उत्तरार्धेऽपि 'दुवालसमुहुत्ताणंतरे' द्वादशमुहूर्त्तानन्तरः 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति। 'जया णं' यदा खलु उत्तरड्ढे उत्तरार्धे 'दुवालसमुहुत्ताणंतरे' द्वादशमुहूर्त्तानन्तरः 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'दाहिणड्ढेवि' दक्षिणार्धेऽपि 'दुवालसमुहुत्ताणंतरे' द्वादशमुहूर्त्तानन्तरः, द्वादशमुहूर्त्तेभ्यो न्यूनः 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति। 'तया णं' तदा अष्टादशादिद्वादशमुहूर्त्तानन्तरदिवससमये खलु 'जम्बुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्य पर्वतस्य 'पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं' पौरस्त्यपाश्चात्ये पूर्वस्यामपरस्यां च दिशि 'नो' नैव 'सया' सदा सर्वकाले 'पण्णरसमहुत्ते दिवसे भवइ' पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, तथा 'नो' नैव सया' सदा सर्वकालं 'पण्णरसमहूत्ता राई भवइ' पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रि र्भवति। तत्र को हेतुः? इत्याह-'अणवट्ठिया' इत्यादि, 'अणवट्ठिया णं' अनवस्थितानि अनियतप्रमाणानि खलु तत्र मन्दरस्य पूर्वापरदिशोः 'राइंदिया' रात्रिन्दिवानि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि अस्मत्पूर्वाचार्यैः कथितानि 'समणाउसो' श्रमणायुष्मन्तः हे चिरजीविनः श्रमणा इति। उपसंहारः-'एगे' एके द्वितीयप्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' एवं पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः-कथयन्ति। एषा द्वितीया प्रतिपत्तिः।२।

अथ तृतीयां प्रतिपत्तिमाह-'एगे' इत्यादि। एगेपुण' एके तृतीयाः परतीर्थिकाः पुनः एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण'आहंसु' आहुः कथयन्ति, तदेवाह-'ता जयाणं' इत्यादि। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु जंबु द्दीवे दीवे जम्बूद्वीपे द्वीपे 'दाहिणड्ढे' दक्षिणार्धे दक्षिणदिक्स्थिते जम्बूद्वीपस्यार्धे भागे 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति

'तया णं' तदा खलु 'उत्तरड्ढे' उत्तरार्धे उत्तरदिक्‌ स्थिते जम्बूद्वीपस्यार्धे भागे 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, 'जया णं' यदा खलु उत्तरड्ढे उत्तरार्धे 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'दाहिणड्ढे' दक्षिणार्धे 'अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तानन्तरः अष्टादशभ्यो मुहूर्त्तेभ्यो हीनो दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तरड्ढे' उत्तरार्धे 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, 'जया णं' यदा खलु 'उत्तरड्ढे' उत्तरार्धे 'अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे' अष्टादशमुहूर्त्तानन्तरः अष्टादशमुहूर्त्तेभ्यो हीनः 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'दाहिणड्ढे' दक्षिणार्धे 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। 'एवं' एवम्-अनेन अभिलापप्रकारेण तावद्वक्तव्यं यावत् त्रयोदशमुहूर्त्तानन्तरदिवससूत्रमायाति। अत्र पूर्णमुहूर्त्तैः, अनन्तरैः किञ्चिन्न्यूनैश्च मुहूर्त्तैः द्वौ द्वौ आलापकौ कर्त्तव्यौ, सर्वत्र रात्रिस्तु द्वादशमुहूर्त्तैव वक्तव्या। तदेवाह—सत्तरसमहुत्ते दिवसे' १, सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसः १, 'सत्तरसमुहुत्ताणंतरे' सप्तदशमुहूर्त्तानन्तरः २, 'सोलसमुहुत्ते' षोडशमुहूर्त्तः ३, 'सोलसमुहुत्ताणंतरे' षोडशमुहूर्त्तानन्तरः ४, 'पण्णरसमहुत्ते' पञ्चदशमुहूर्त्तः ५, 'पण्णरसमुहुत्ताणंतरे' पञ्चदशमुहूर्त्तानन्तरः ६ चउद्दसमुहुत्ते' चतुर्दशमुहूर्त्तः ७, 'चउद्दसमहुत्ताणंतरे' चतुर्दशमुहूर्त्तानन्तरः ८, 'तेरसमुहुत्ते' त्रयोदशमुहूर्त्तः ९, 'तेरसहुत्तणंतरे' त्रयोदशमुहूर्त्तानन्तरः १०,। एते दशआलापका. पूर्वप्रदर्शितरीत्या स्वयमूहनीयाः। अथ द्वादशमुहूर्त्तालापकद्वयं सूत्रकार. स्वयं प्रदर्शयति—'ता जया णं' इत्यादि। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'दाहिणड्ढे' दक्षिणार्धे 'वारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तरड्ढे' उत्तरार्धे 'वारसहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, 'जया णं' यदा खलु 'उत्तरड्ढे उतरार्धे 'वारसहुत्ताणंतरे' द्वादशमुहूर्त्तानन्तरः दिवसे भवइ' दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्य पर्वतस्य 'पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं' पौरस्त्यपाश्चात्ये पूर्वापरदिग्भागे 'णेवत्थि' नैवास्ति 'पण्णरसमुहुत्ते दिवसे' पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसः, तथा 'णेवत्थि' नैवास्ति 'पण्णरसमुहुत्ता राई' पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिः 'भवइ' भवति। कथमित्याह—'वोच्छिण्णा णं' व्यवच्छिन्नानि विनष्टानि खलु 'तत्थ राइंदिया' तत्र रात्रिन्दिवानि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि अस्मदाचार्यैः 'समणाउसो' हे श्रमणायुष्मन्तः ? उपसंहारः—'एगे' एके तृतीयाः 'एवं' एवं पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्तीति। इति तृतीया प्रतिपत्तिः ।३।सू०॥१॥

उक्तास्तिस्रः प्रतिपत्तयः, एता स्तिस्रोऽपि प्रतिपत्तयो मिथ्यारूपाः सन्ति भगवतामनभिमतत्वात्। अत्रापि ये तृतीयाः परतीर्थिकाः सदैव द्वादशमुहूर्त्तां रात्रिं प्रतिपादयन्ति तेषां प्ररूप-

णायां विरोधः प्रत्यक्ष एव लोके रात्रेर्हीनाधिकरूपत्वेन समुपलभ्यमानत्वात्। एवं सति भगवान् स्वमतं प्रदर्शयति—'वयं पुण' इत्यादि ।

मूलम्—वयं पुण एवं वयामो—ता जंबुद्दीवे दीवे सूरिया उदीणपाईणं उग्गच्छंति पाईणदाहिणं आगच्छंति। पाईणदाहिणं उग्गच्छंति दाहिणपडीणं आगच्छंति २। दाहिणपडीणं उग्गच्छंति पडीण उदीणं आगच्छंति ३। पडीणउदीणं उग्गच्छंति उदीणपाईणं आगच्छति ४ ॥१॥

ता जया णं जबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढे वि दिवसे भवइ, जया णं उत्तरड्ढे दिवसे भवइ तया णं जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमेण राई भवइ। जया णं जबुद्दीवे दीवे मदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं दिवसे भवइ तया णं पच्चत्थिमेणं वि दिवसे भवइ, जया णं पच्चत्थिमेणं दिवसे भवइ तया णं जबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं राई भवइ ।२। ता जया णं जबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढे वि उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ।, जया णं उत्तरड्ढे उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं जबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। ता जया णं जबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं पच्चत्थिमेण वि उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ।, जया णं पच्चत्थिमेणं उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं जबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरदाहिणेणं जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ। एवं अट्ठारसमुहुत्ताणंतरे दिवसे भवइ, साइरेगा दुवालसमुहुत्ता राई भवइ, सत्तरसमुहुत्ते दिवसे तेरसमुहुत्ता राई भवइ। सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगा तेरसमुहुत्ता राई भवइ। सोलसमुहुत्ते दिवसे चउद्दसमुहुत्ता राई भवइ। सोलसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगा चउद्दसमुहुत्ता राई भवइ। पण्णरसमुहुत्ते दिवसे पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ। पण्णरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगा पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ। चउद्दसमुहुत्ते दिवसे सोलसमुहुत्ता राई भवइ। चउद्दसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगा सोलसमुहुत्ता राई भवइ। तेरसमुहुत्ते दिवसे सत्तरसमुहुत्ता राई भवइ। तेरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे साइरेगा सत्तरसमुहुत्ता राई भवइ। ता जया णं जबुद्दीवे दिवे दाहिणड्ढे जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं उत्तरड्ढे वि जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ। ता जया णं उत्तरड्ढे जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं जबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पच्चत्थिमेण उक्कोसिया

अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ। ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं पच्चत्थिमेण वि जहण्णए दुवालस्समुहुत्ते दिवसे भवइ। जया णं पच्चत्थिमेणं जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं दाहिणेणं उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ ॥३॥ सू०२॥

छाया— वयं पुनरेवं वदामः तावत् जम्बूद्वीपे द्वीपे सूर्यौ उदीचीप्राच्याम् उद्गच्छतः प्राचीदक्षिणस्याम् आगच्छतः ।१। प्राची दक्षिणस्यामुद्गच्छतः दक्षिण प्रतीच्यामागच्छतः २ दक्षिणप्रतीच्यामुद्गच्छतः ३ प्रतीच्युदीच्यामुद्गच्छतः उदीचीप्राच्यामागच्छतः ४ ॥१॥

तावत् यदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्धे दिवसो भवति तदा खलु उत्तरार्धेऽपि दिवसो भवति। यदा खलु उत्तरार्धे दिवसो भवति तदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्यपाश्चात्ये रात्रिर्भवति। यदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये दिवसो भवति तदा खलु पाश्चात्येऽपि दिवसो भवति। यदा खलु पाश्चात्ये दिवसो भवति तदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरदक्षिणे रात्रिर्भवति ॥२॥ तावत् यदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्धे उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा खलु उत्तरार्धेऽपि उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। तदा खलु उत्तरार्धे उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्यपाश्चात्ये जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। तावत् यदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा खलु पाश्चात्येऽपि उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, यदा खलु पाश्चात्ये उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरदक्षिणे जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। एवम्—अष्टादशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति, सातिरेका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। सप्तदशमुहूर्त्तो दिवसः त्रयोदशमुहूर्ता रात्रिर्भवति। सप्तदशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसः सातिरेका त्रयोदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। षोडशमुहूर्त्तो दिवसः चतुर्दशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। षोडशमुहूर्त्तानन्तरः दिवसः सातिरेका चतुर्दशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। पञ्चदशमुहूर्तो दिवसः पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। पञ्चदशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसः सातिरेका पञ्चदशमुहूत्ता रात्रिर्भवति। चतुर्दशमुहूर्त्तो दिवसः षोडशमुहूर्ता रात्रिर्भवति। चतुर्दशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसः सातिरेका षोडशमुहूर्त्तारात्रिर्भवति। त्रयोदशमुहूर्तो दिवसः सप्तदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। त्रयोदशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसः सातिरेका सप्तदशमुहूर्ता रात्रिर्भवति। तावत् यदा खलु जम्बुद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्धे- जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा खलु उत्तरार्धेऽपि जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। तावत् यदा खलु उत्तरार्धे जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये पाश्चात्ये उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति तावत् यदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये जघन्यकः द्वादशमुहूर्तो दिवसो भवति तदा खलु पाश्चात्येऽपि जघन्यको द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। यदा

खलु पाश्चात्ये जघन्यको द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे दक्षिणे उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्ता रात्रिर्भवति ।२ । सू० २॥

व्याख्या—'वयं पुण' वयं तु 'एवं' एवं–वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयामो' वदामः । किं वदामः ?। तदेवाह–'ता जंबुद्दीवे दीवे' इत्यादि । 'ता' तावत् 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'सूरिया' सूर्यौ द्वौ सूर्यौ भरतैरवतसम्बन्धिनौ मण्डलगत्या परिभ्रमन्तौ 'उदीणपाईणं' उदीचीप्राच्यां उत्तरपूर्वस्याम् ईशानकोणे 'उग्गच्छंति' उद्गच्छतः उद्गत्येत्यर्थः 'पाईणदाहिणं प्राचीदक्षिणस्यां पूर्वदक्षिणायाम्—अग्निकोणे 'आगच्छंति' आगच्छतः अस्तं प्राप्नुतः १। 'पाईणदाहिणं' प्राचीदक्षिणस्याम् अग्निकोणे 'उग्गच्छंति' उद्गच्छतः उद्गत्य 'दाहिणपडीणं' दक्षिणप्रतीच्यां नैर्ऋतकोणे 'आगच्छंति' आगच्छन्तः अस्तं प्राप्नुतः २। 'दाहिणपडीणं' दक्षिणप्रतीच्याम् 'उग्गच्छंति' उद्गच्छतः उद्गत्य 'पडीणउदीणं' प्रतीच्युदीच्यां वायुकोणे 'आगच्छंति, आगच्छतः अस्तं प्राप्नुतः ।३। 'पडीणउदीणं' प्रतीच्युदीच्यां वायुकोणे 'उग्गच्छंति' उद्गच्छतः उद्गत्य 'उदीणपाईणं' उदीचीप्राच्याम् ईशानकोणे 'आगच्छंति' आगच्छतः अस्तं प्राप्नुतः ४। एवं द्वौ भरतैरवतसूर्यौ ईशानकोणाद् उद्गत्य चतुर्षु विदिक्षु उदयास्तक्रमेण परिभ्रम्य अन्ते ईशानकोणे एव अस्तं प्राप्नुतः । एवं जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य परितः द्वौ सूर्यौ मण्डलगत्या परिभ्रम्य चारं चरतइति भावः ।

अयं तावत् सामान्यतः समुदितयोर्द्वयोः सूर्ययोरुदयास्तविधिः प्रदर्शितः । विशेषत एकैकसूर्यमाश्रित्य तद्विधिरेवं ज्ञातव्यः–अत्र एकः सूर्यो द्वितीयसूर्यस्य सन्मुखं प्रतिकूलदिशि चारं चरति इति लोकव्यवस्थाया नियमः, यथा–यदा एकः सूर्यः उत्तरपूर्वस्यामीशानकोणे उद्गच्छति तदा द्वितीयः दक्षिणपश्चिमायां नैर्ऋतकोणे उद्गच्छति, यदा उत्तरपूर्वस्यामुद्गतः सूर्यः प्राचीदक्षिणस्याम् आगच्छति पूर्वक्षेत्रापेक्षया अस्तमेति तत्क्षेत्रापेक्षया चोद्गच्छतीत्यवधेयम्–तदा दक्षिणप्रतीच्यां नैऋतकोणे उद्गतः सूर्यः प्रतीच्युदीच्याम् वायव्यकोणे आगच्छतीति पूर्वक्षेत्रापेक्षयाऽस्तमेति तत्क्षेत्रापेक्षया चोद्गच्छतीति ज्ञातव्यम् न कदापि सूर्य उद्गच्छति न चास्तमेति च किन्तु सूर्यस्य चक्षुषोः स्पर्शास्पर्शमाश्रित्य लोका उदयास्तशब्देन व्यवहरन्ति। सूर्यस्य चक्षुःस्पर्शे सूर्य उदितः, इति चक्षुःस्पर्शाभावे सूर्यः अस्तंगतः इति लोका व्यवहरन्तीति विवेकः । प्रकृतमनुसरामः–यदा एकः सूर्यः पूर्वदक्षिणस्याम् अग्निकोणे उद्गच्छति तदाऽपरः प्रतीच्युदीच्यां तत्सन्मुखं वायव्यकोणे समुद्गच्छति, एष द्वयोः सूर्ययो उदयविधिः। यदा पूर्वदक्षिणोद्गतश्च भारतः सूर्यो भरतादीनि क्षेत्राणि मेरुदक्षिणदिग्भावीनि मण्डलगत्या परिभ्रमन् प्रकाशयति, तदाऽपरः सूर्यः पश्चिमोत्तरस्यां वायव्यकोणे समुद्गतः सन् तत ऊर्ध्वं मण्डलगत्या परिभ्रमन् ऐरवतादीनि क्षेत्राणि यानि मेरोरुत्तरदिग्भावीनि वर्तन्ते तानि

प्रकाशयति। यदा भारतश्च सूर्यः पूर्वदक्षिणस्यामुद्गत्य दक्षिणप्रतीच्यां नैऋतकोणे समागतः सन् अपरविदेहक्षेत्रमाश्रित्य उदयमेति तदा ऐरवतः सूर्यः प्रतीच्युदीच्यां वायव्यकोणे-समुद्गत्य उत्तरपूर्वस्यामागतः सन् पूर्वविदेहमाश्रित्य उदयमेति। दक्षिणप्रतीच्यां नैऋतकोणे समुद्गतः सन् सूर्यः तत ऊर्ध्वं मण्डलगत्या परिभ्रमन् अपरविदेहान् प्रकाशयति। उत्तर-पूर्वस्याम् ईशानकोणे समुद्गतस्तु तत ऊर्ध्वं मण्डलगत्या परिभ्रमन् पूर्वविदेहान् प्रकाशयति। तत एष पूर्वविदेहप्रकाशकः सूर्यो पूर्वदक्षिणस्याम् आग्नेयकोणे भरतादि क्षेत्रापेक्षया उद-यमेति, अपरविदेहप्रकाशकः सूर्यस्तु प्रतीच्युदीच्यां वायव्यकोणे उदयमेतीति।

तदेवं जम्बूद्वीपे द्वीपे सूर्ययो रुदयविधिः प्रदर्शितः, साम्प्रतं क्षेत्रविभागेन दिवसरात्रि विभागमाह—'ता जया णं' इत्यादि।

'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'दाहिणड्ढे दिवसे भवइ' दक्षिणार्धे दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तरड्ढे वि' उत्तरार्धेऽपि 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति द्वयोः सूर्ययोः परस्परं समकालं सन्मुखं प्रतिकूलदिक्चारित्वात्। तदा एकः सूर्यः दक्षिणदिशि परिभ्रमति तदाऽपरः सूर्योऽवश्यमुत्तरदिशि परिभ्रमति ततः दक्षिणार्धे उत्त-रार्धे च उभयत्र दिवसो भवत्येवेति भावः। 'जया णं' यदा खलु 'उत्तरड्ढे' उत्तरार्धे उपलक्ष-णात् दक्षिणार्धे च 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बू-द्वीपेद्वीपे 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्य पर्वतस्य 'पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं' पौरस्त्यपाश्चात्ये पूर्वस्यां पश्चिमायां च दिशि 'राई भवइ' रात्रिर्भवति द्वयोः सूर्ययो र्दक्षिणोत्तरचरणात्पूर्वपश्चिम-योरेकस्यापि सूर्यस्योपस्थितेरभावात्। 'जया णं' यदा खलु जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्य पर्वतस्य 'पुरत्थिमेणं' पौरस्त्ये पूर्वस्यां दिशि 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य 'पच्चत्थिमेणं पि' पाश्चा-त्येऽपि पश्चिमायां दिशायामपि 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति द्वयोः सूर्ययोः परस्परं विपरीत-दिशोः समकालं संचरणस्वभावत्वात् उभयत्र दिवसो भवत्येव। यदा एकः सूर्यः पूर्वस्यां चारं चरति तदाऽपरः पश्चिमायां दिशि चारं चरत्येवेति। 'जया णं' यदा खलु 'पच्चत्थिमेणं' पाश्चात्ये पश्चिमायां दिशि उपलक्षणात् पूर्वस्यां च दिशि 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्य पर्वतस्य 'उत्तरदाहिणेणं' उत्तर दक्षिणे उत्तरस्यां दक्षिणस्यां च दिशि 'राई भवइ' रात्रिर्भवति द्वयोः सूर्ययोः पूर्वपश्चिमदिशोः संचरणसमये उत्तरे दक्षिणे च एकस्यापि सूर्यस्योपस्थित्यभावात् ।।२।। एवं दिवसरात्रिविभाग-मुपदर्श्य साम्प्रतं तत्प्रमाणमुपदर्शयति—'ता जया णं' इत्यादि। 'ता' तावत् 'जया णं यदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'दाहिणड्ढे' दक्षिणार्धे 'उक्कोसए' उत्कर्षकः 'अट्ठार-

समुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तरद्धेवि' उत्तरार्धेऽपि 'उक्कोसए' उत्कर्षकः 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति । द्वयोः सूर्ययोः परस्परं विपरीतसमकालसन्मुखमण्डलचारित्वेन यदा एकः सूर्यः दक्षिणार्धे सर्वाभ्यन्तरमण्डले चारं चरति तदाऽपरोऽपि उत्तरार्धे सर्वाभ्यन्तरमण्डले चारं चरति तथा स्वाभाव्यात् ततो दक्षिणोत्तरयोरुभयत्र समानदिवसप्रमाणत्वं समीचीनमेवेति भावः । 'जया णं' यदा खलु 'उत्तरद्धे' उत्तरार्धे उपलक्षणात् दक्षिणार्धे च 'उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'तया णं जंबुद्दीवे दीवे' तदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्य पर्वतस्य 'पुरत्थिमपच्चत्थिमेणं' पौरस्त्यपाश्चात्ये पूर्वस्यां पश्चिमायां च दिशि 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलध्वी 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । सर्वाभ्यन्तरमण्डले चारं चरतोः द्वयोः सूर्ययोः सर्वत्रापि द्वादशमुहूर्त्ताया एव रात्रेर्भावात् । यतो हि त्रिंशन्मुहूर्त्ताहोरात्रसत्त्वेऽष्टादशमुहूर्त्तास्तत्र दिवसभागे व्यतीता जाता अतो द्वादशमुहूर्त्ता एव रात्रेः शेषास्तिष्ठेयुरिति । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्य पर्वतस्य 'पुरत्थिमेणं' पौरस्त्ये पूर्वस्यां दिशि 'उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'पच्चत्थिमेण वि' पाश्चात्येऽपि पश्चिमदिशायामपि 'उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति । द्वयो सूर्ययोः परस्परविपरीतसंमुखमण्डल समकालचारित्वेन यदा पूर्वदिक्चारी सूर्यः सर्वाभ्यन्तरमण्डले चारं चरति तदाऽपरः पश्चिमदिक्चारी सूर्योऽपि सर्वाभ्यन्तरमण्डले चारं चरति तथा स्वाभाव्यात् ततः पूर्वपश्चिमयोः उभयत्रापि दिवसयोः समानप्रमाणत्वं भवत्येवेति भावः । 'जया णं' यदा खलु 'पच्चत्थिमेणं' पाश्चात्ये पश्चिमदिशायाम् उपलक्षणात् पूर्वस्यां दिशि च 'उक्कोसए' उत्कर्षकः 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादश मुहूर्त्तो दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्य पर्वतस्य 'उत्तरदाहिणेणं' उत्तरदक्षिणे उत्तरस्यां दक्षिणस्यां च दिशि 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलध्वी 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । सूर्ययोः सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारसमये रात्रे द्वादशमुहूर्त्ताया एवं सर्वत्र सद्भावात्, त्रिंशन्मुहूर्त्ताहोरात्रप्रमाणेऽष्टादशमुहूर्त्तानां तत्र दिवसभागे व्यतीतत्वाच्चेति । 'एवं' एवम् अनेनाभिलापप्रकारेणाग्रे सर्वत्र भावना करणीया । तत्र यदा 'अट्ठारस मुहुत्ताणंतरे' अष्टादश मुहूर्त्तानन्तरः अष्टादशमुहूर्त्तात् किञ्चिन्न्यूनः 'दिवसे भवइ' दिवसो भवति तदा 'साइरेगा' सातिरेका किञ्चिदधिका यदा दिवसे यावत्परिमितं न्यूनत्वं भवति तदा रात्रौ तावत्परिमितमेवाधिकत्वं भावनीयम् । 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । एवमेकैकमुहूर्त्तस्य

किंचित्प्रमाणस्य वा दिवसप्रमाणे यथा यथा न्यूनत्वं जायते तथा तथा रात्रिप्रमाणे एकैकमुहूर्त्तस्य किंचित्प्रमाणस्य वाऽधिकत्वं ज्ञातव्यम् । तथाहि यदा—'सत्तरसमुहुत्ते दिवसे' सप्तदश मुहूर्त्तो दिवस. तदा 'तेरसमुहुत्ता राई भवइ' त्रयोदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । यदा 'सत्तरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे' सप्तदशमुहूर्त्तानन्तरः सप्तदशमुहूर्त्तेभ्यः किंचिन्न्यूनो दिवसो भवति तदा 'साइरेगा-तेरसमुहुत्ता राई भवइ' सातिरेका किंचिदधिका त्रयोदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । यदा 'सोलसमुहुत्ते दिवसे' षोडशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा 'चउद्दसमुहुत्ता राई भवइ' चतुर्दशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । यदा 'सोलसमुहुत्ताणंतरे दिवसे' षोडशमुहूर्त्तानन्तरः षोडशमुहूर्त्तेभ्यः किंचिन्न्यूनो दिवसो भवति तदा 'साइरेगा' सातिरेका किंचिदधिका 'चउद्दसमुहुत्ता राई भवइ' चतुर्दशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । यदा 'पण्णरसमुहुत्ते दिवसे' पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा 'पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ' पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति ।

अत्र पूर्वं प्रथमप्राभृतस्य प्रथमे प्राभृतप्राभृते कथितम्—'नत्थि पण्णरसमुहुत्ते दिवसे नत्थि पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ' नास्ति परिपूर्णपञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसो नास्ति परिपूर्णा पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवतीति, अस्य कारणमपि गणितेन तत्र प्रदर्शितम् तत्रत्यमेतत्कथनं निश्चयनयमाश्रित्य कृतं वर्त्तते, अत्र व्यवहारनयमाश्रित्य 'पञ्चदशमुहूर्त्तो दिवसः पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिः' इति कथितमतो न कोऽपि दोषः। दृश्यते हि लोके किञ्चिन्न्यूनाधिकशतसंख्यायाम् इदमेकं शतम्' इति व्यवहार इति ।

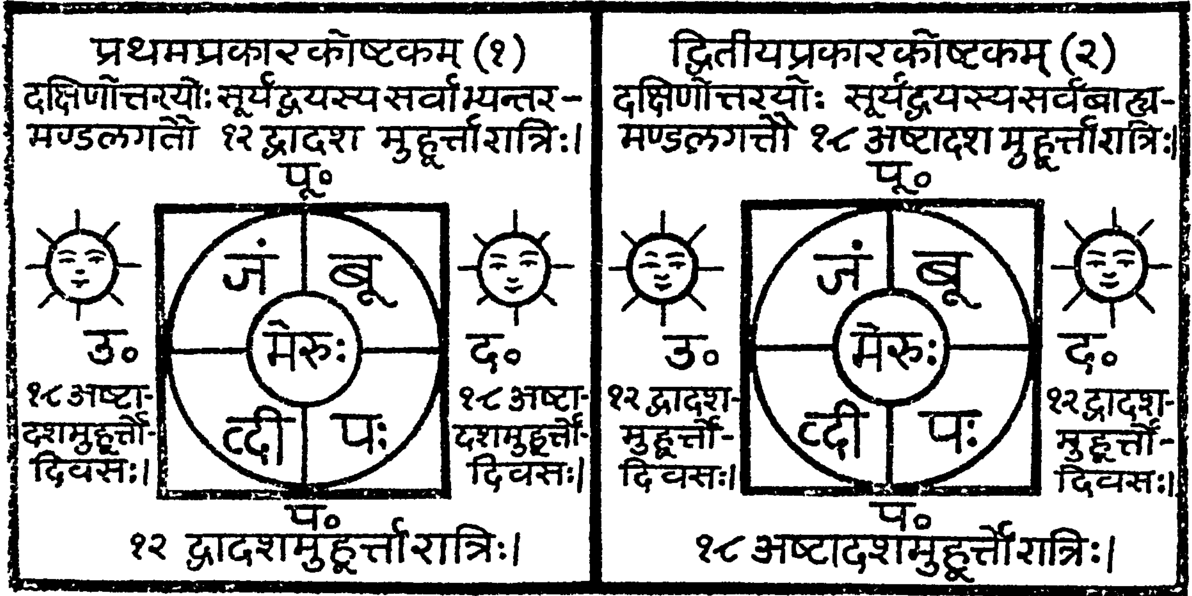
प्रकृतमनुसरामः—यदा 'पण्णरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे' पञ्चदशमुहूर्त्तानन्तरो दिवसो भवति पञ्चदशमुहूर्त्तेभ्यः किञ्चिन्न्यूनो दिवसो भवति तदा 'साइरेगा' सातिरेका किञ्चिदधिका 'पण्णरसमुहुत्ता राई भवइ' पञ्चदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । यदा—'चउद्दसमुहुत्ते दिवसे' चतुर्दशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा 'सोलसमुहुत्ता राई भवइ' षोडशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । यदा चउद्दसमुहुत्ताणंतरे दिवसे' चतुर्दशमुहूर्त्तानन्तरः चतुर्दशमुहूर्त्तेभ्यः किञ्चिन्न्यूनो दिवसो भवति तदा 'साइरेगा' सातिरेका किञ्चिदधिका 'सोलसमुहुत्ता राई भवइ' षोडशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। यदा 'तेरसमुहुत्ते दिवसे' त्रयोदशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तदा 'सत्तरसमुहुत्ता राई भवइ' सप्तदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । यदा 'तेरसमुहुत्ताणंतरे दिवसे' त्रयोदशमुहूर्त्तानन्तर. त्रयोदशमुहूर्त्तेभ्यः किञ्चिन्न्यूनो दिवसो भवति तदा 'साइरेगा' सातिरेका किञ्चिदधिका 'सत्तरसमुहुत्ता राई भवइ' सप्तदशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति । अथाग्रे सूत्रकारः स्वयमालापक प्रदर्शयति 'ता जया णं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बुद्वीपे द्वीपे 'दाहिणड्ढे' दक्षिणार्धे 'जहण्णए' जघन्यकः सर्वलघुः 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादश-

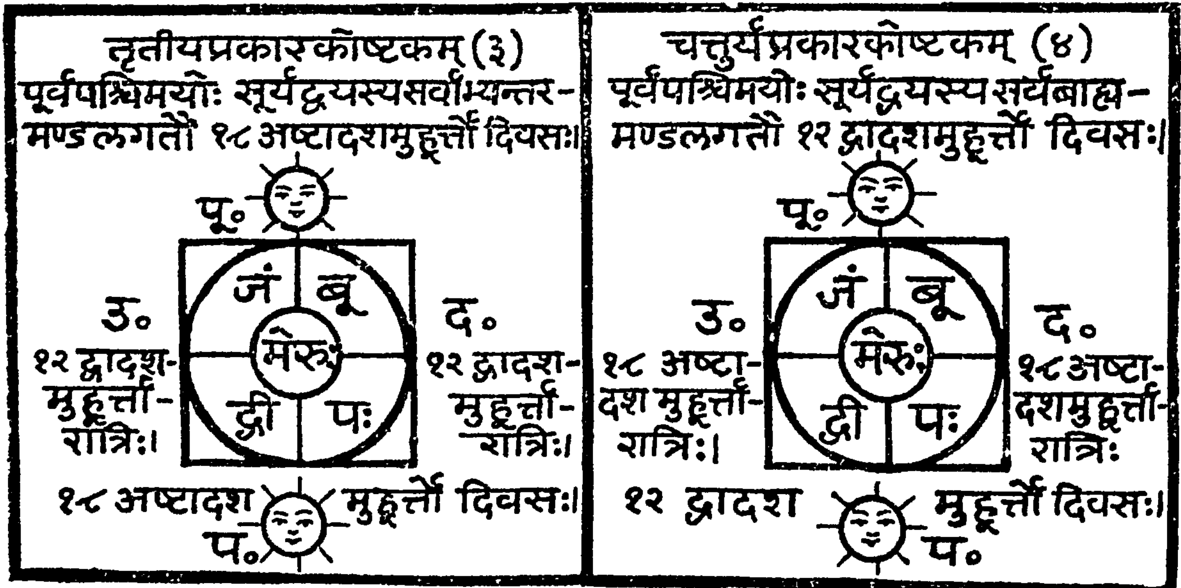
मुहूर्तो दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तरड्ढे वि' उत्तरार्धेऽपि 'जहण्णए' जघन्यकः 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु उत्तरड्ढे' उत्तरार्धे उपलक्षणाद्दक्षिणार्धे च 'जहण्णए' जघन्यकः सर्वलघुः 'दुवालस-मुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बु-द्वीपे द्वीपे 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्य पर्वतस्य 'पुरत्थिमेणं पच्चत्थिमेणं' पौरस्त्ये पाश्चात्ये पूर्वस्यां पश्चिमायां च दिशि 'उक्कोसिया' उत्कर्षिका सर्वोत्कृष्टा 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु जंबुद्दीवे दीवे' जम्बुद्वीपे द्वीपे 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्य पर्वतस्य 'पुरत्थिमेणं' पौरस्त्ये पूर्वस्यां दिशि 'जहण्णए' जघन्यकः सर्वलघुः दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'तया णं' तदा खलु 'पच्चत्थिमेण वि' पाश्चात्येऽपि पश्चिमायां दिशायामपि 'जहण्णए' जघन्यकः सर्वलघुः 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। 'जया णं' यदा खलु पच्चत्थिमेणं' पाश्चात्ये पश्चिमदिशि उपलक्षणात् पूर्वदिशि च 'जहण्णए' जघन्यकः 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति। 'तया णं' तदा खलु 'जंबुद्दीवे-दीवे' जम्बुद्वीपे द्वीपे 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्स पर्वतस्य 'उत्तरेणं दाहिणेणं' उत्तरे दक्षिणे 'उक्कोसिया' उत्कर्षिका सर्वोत्कृष्टा 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति ॥३॥

अत्रायं निष्कर्षः—द्वौ सूर्यौ जम्बुद्वीपे परस्परं प्रतिकूलदिशि संमुखं स्व स्व क्षेत्रे समकालं समानगत्या चारं चरतः, ततो दक्षिणोत्तरयो. सर्वाभ्यन्तरमण्डलचारसमये उभयत्र अष्टादश-मुहूर्त्तो दिवसो भवेत्, सर्वबाह्यमण्डलचारसमये उभयत्र समकालं द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवेत्। यदा सूर्यौ दक्षिणोत्तरयोश्चारं चरतस्तदा पूर्वपश्चिमयोः रात्रिर्भवेत्, यदा पूर्वपश्चिमयोश्चारं चरतस्तदा दक्षिणोत्तरयोः रात्रिर्भवेदिति सुज्ञातमेव।

यदा सूर्यौ दक्षिणोत्तरयोः सर्वाभ्यन्तरमण्डलमाश्रित्य चारं चरतस्तदोभयत्र समका-लम् अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, पूर्वपश्चिमयोश्चोभयत्र समकालं द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिभवेदिति प्रथमः प्रकारः।१। यदा सूर्यौ दक्षिणोत्तरयोः सर्वबाह्यमण्डलमाश्रित्य चारं चरतस्तदा तत्रो भयत्र समकालं द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, पूर्वपश्चिमयोश्चाष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिभवति, अहो-रात्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तप्रमाणत्वात्। इति द्वितीय. प्रकारः।२। यदा सूर्यौ पूर्वपश्चिमयोः सर्वाभ्य-न्तरमण्डलमाश्रित्य चारं चरतस्तदा तत्रोभयत्र समकालम् अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, दक्षिणो-त्तरयोश्चोभयत्र द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवतीति तृतीयः प्रकारः।३। यदा सूर्यौ पूर्वपश्चिमयोः सर्व-

बाह्यमण्डलमाश्रित्य चारं चरतस्तदा तत्रोभयत्र समकालं द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, दक्षिणोत्तरयोश्चोभयत्र अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवतीति चतुर्थः प्रकारः ।४। अथैषां चतुर्णामपि प्रकाराणां सुगमबोधार्थं चत्वारि कोष्ठकानि प्रदर्श्यन्ते—





पूर्वं दक्षिणार्द्धोत्तरार्द्धयोर्दिवसरात्रिप्रकारः, तन्मुहूर्त्तमानं च प्रदर्शितम्, साम्प्रतं दक्षिणार्धे-उत्तरार्धे कदा कदा वर्षाकालस्य प्रथमः समयः प्रतिपद्यते इति दर्शयितुमाह—'ता' जया णं इत्यादि ।

मूलम्—ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ तया णं उत्तरड्ढे वि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ, जया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पच्चत्थिमेणं अणंतरपुराकडे कालसमयंसि वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेणं दाहिणेणं अणंतरपच्छाकडे कालसमयंसि वासाणं पढमे समए पडिपुण्णे भवइ । जहा समए एवं आवलिया, आणपाणू, थोवे, लवे, मुहुत्ते, अहोरत्ते, पक्खे, मासे, उऊ, एए दस आलावगा वासाणं भाणियव्वा ।४। ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दहिणड्ढे हेमंताणं पढमे समए पडिवज्जइ तया णं उत्तरड्ढे वि हेमंता णं पढमे समए पडिवज्जइ, जया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पच्चत्थिमेणं अणंतरपुराकडे कालसमयंसि यं हेमंताणं पढमे समए पडिवज्जइ० एयस्स वि दस आलावगा जाव उऊ भाणियव्वा ।५। ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे गिम्हाणं पढमे समए पडिवज्जइ तया णं उत्तरड्ढेवि गिम्हाणं पढमे समए पडिवज्जइ । ता जया णं उत्तरदाहिणड्ढे गिम्हाणं पढमे समए पडिवज्जइ तया णं जंबुद्दीवे दीवे पुरत्थिमेणं पच्चत्थिमेणं अणंतरपुराकडे कालसमयंसि गिम्हाणं पढमे समए पडिवज्जइ० एयस्स वि दस आलावगा जाव उऊ भाणियव्वा ।६। ता जया णं जंबुदीवे दीवे दाहिणड्ढे पढमे अयणे पडिवज्जइ । जया णं उत्तरड्ढे वि पढमे अयणे पडिवज्जइ तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पच्चत्थिमेणं अणंतरेपुराकडे कालसमयंसि पढमे अयणे पडिवज्जइ । ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पढमे अयणे पडिवज्जइ तया णं पच्चत्थिमेण वि पढमे अयणे पडिवज्जइ । ता जया णं पच्चत्थिमेणं पढमे अयणे पडिवज्जइ तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स उत्तरेण दाहिणेण अणंतरपच्छाकडे कालसमयंसि पढमे अयणे पडिपुन्ने भवइ । एवं संवच्छरे जुगे वाससए वाससहस्से वाससयसहस्से पुव्वंगे, पुव्वे, तुडियंगे, तुडिए, अववंगे, अववे, हुहुयंगे, हुहुए, उप्पलंगे, उप्पले, पउमंगे, पउमे, णलिणंगे, णलिणे, अच्छ निउरंगे, अच्छनिउरे अउयंगे, अउए, नउयंगे, नउए चूलियगे, चूलिया, सीसपहेलियंगे, सीसपहेलिया, पलिओवमे, सागरोवमे । ता जया णं जंबुद्दीवे दीवे दाहिणड्ढे पढमे समए उस्सप्पिणी पडिवज्जइ तया णं उत्तरड्ढे वि पढमे समए उस्सप्पिणी पडिवज्जइ, जया णं उत्तरड्ढे पढमे समए उस्सप्पिणी पडिवज्जइ तया णं जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स पुरत्थिमेणं पच्चत्थिमेणं उस्सप्पिणी, नेवत्थि अवट्ठिए णं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो ।७।

एवं लवणसमुद्दे धायईसंडे कालोए ता अब्भितरपुक्खरद्धेण वि सूरिया उत्तरपाईणमुग्गच्छंति पाईणदाहिणं आगच्छंति। एवं जंबुद्दीववत्तव्वया भाणियव्वा जाव उस्सप्पिणी वि ॥सू० ३॥

चंदपन्नत्तीए अट्ठमं पाहुडं समत्तं ॥८॥

छाया—तावत् यदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्धे वर्षाणां प्रथमः समयः प्रतिपद्यते तदा खलु उत्तरार्धेऽपि वर्षाणां प्रथमः समयः प्रतिपद्यते। यदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये पाश्चात्ये अनन्तरपुराकृते कालसमये वर्षाणां प्रथमः समयः प्रतिपद्यते तदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे दक्षिणे अनन्तरपश्चात्कृते कालसमये वर्षाणां प्रथमः समयः प्रतिपूर्णो भवति। यथा समयः एवम्—आवलिका, आनप्राणौ, स्तोकः, लवः, मूहूर्तः, अहोरात्रः, पक्षः, मासः, ऋतुः, एते दश आलापका वर्षाणां भणितव्याः ।४। तावत् यदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्धे हेमन्तानां प्रथमः समयः प्रतिपद्यते तदा खलु उत्तरार्धेऽपि हेमन्तानां प्रथमः समयः प्रतिपद्यते, तदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये पाश्चात्ये अनन्तरपुराकृते कालसमये हेमन्तानां प्रथमः समयः प्रतिपद्यते एतस्यापि दश आलापका यावत् ऋतुम् भणितव्याः ।५। तावत् यदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्धे ग्रीष्माणां प्रथमः समयः प्रतिपद्यते तदा खलु उत्तरार्धेऽपि ग्रीष्माणां प्रथमः समयः प्रतिपद्यते। तावत् यदा खलु उत्तरदक्षिणार्धे ग्रीष्माणां प्रथम समयः प्रतिपद्यते तदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे पौरस्त्ये पाश्चात्ये अनन्तरपुराकृते कालसमये ग्रीष्माणां प्रथमः समयः प्रतिपद्यते। एतस्यापि दश आलापका यावत् ऋतुम् भणितव्याः ॥६।

तावत् यदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्धे प्रथमम् अयनं प्रतिपद्यते तदा खलु उत्तरार्धेऽपि प्रथमम् अयनं प्रतिपद्यते। यदा खलु उत्तरार्धे प्रथमम् अयनं प्रतिपद्यते तदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये पाश्चात्ये अनन्तरपुराकृते कालसमये प्रथमम् अयनं प्रतिपद्यते। तावत् यदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये प्रथमम् अयनं प्रतिपद्यते तदा खलु पाश्चात्येपि प्रथमम् अयनं प्रतिपद्यते। तावत् यदा खलु पाश्चात्ये-प्रथम् अयनं प्रतिपद्यते। तदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य उत्तरे दक्षिणे अनन्तरपश्चात्कृते कालसमये प्रथम् अयनं प्रतिपूर्णं भवति। एवं संवत्सरः, युगम् वर्षशतम्, वर्षसहस्रम्, वर्षशतसहस्रम्, पूर्वाङ्गं, पूर्वम्, त्रुटिताङ्गं, त्रुटितम्, अटटाङ्गं, अटटम्, अववाङ्गं, अववम् हुहुकाङ्गं, हुहुकम्, उत्पलाङ्गं, उत्पलम्, पद्माङ्गं, पद्मम्, नलिनाङ्गं, नलिनम् अच्छनिकुराङ्गं अच्छनिकुरम्, अयुताङ्गम्, अयुतम्, नयुताङ्गं नयुतम्, चूलिकाङ्गं चूलिका, शीर्षप्रहेलिकाङ्गं शीर्षप्रहेलिका पल्योपमं, सागरोपमम्। तावत् यदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे दक्षिणार्धे प्रथमे समये उत्सर्पिणी प्रतिपद्यते तदा खलु उत्तरार्धेऽपि प्रथमे समये उत्सर्पिणी प्रतिपद्यते यदा खलु उत्तरार्धे प्रथमे समये उत्सर्पिणी प्रतिपद्यते तदा खलु जम्बूद्वीपे द्वीपे मन्दरस्य पर्वतस्य पौरस्त्ये पाश्चात्ये उत्सर्पिणी नैवास्ति अवस्थितस्तत्र कालः प्रज्ञप्तः श्रमणायुष्मन्! ।७।

एवं लवणसमुद्रे, धातकीखण्डे, कालोदे, तावत् अभ्यन्तरपुष्करार्धेऽपि सूर्यौ उत्तरप्राच्यामुद्गच्छतः । प्राचीदक्षिणस्यामागच्छतः । एवं जम्बूद्वीपवक्तव्यता भणितव्या यावत् उत्सर्पिण्यपि ॥ सू० ३ ॥

चन्द्रप्रज्ञप्त्याम् अष्टमं प्राभृतं समाप्तम् ॥ ८ ॥

व्याख्या— 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'दाहिणड्ढे' दक्षिणार्धे 'वासाणं' वर्षाणां=वर्षाकालस्य सूत्रे बहुवचनमार्षत्वात् 'पढमे समए पडिवज्जइ' प्रथमः समयः प्रारम्भसमयः प्रतिपद्यते आरब्धो भवति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तरड्ढे' वि उत्तरार्धेऽपि 'वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ' वर्षाणां वर्षाकालस्य मासचतुष्टरूपस्य प्रथमः समय· प्रतिपद्यते दक्षिणोत्तरयोः समकालमेव द्वयोः सूर्ययोश्चारचरणात् । 'तया णं' तदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'मन्दरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्य पर्वतस्य पुरत्थिमेणं पच्चत्थिमेणं' पौरस्त्ये पाश्चात्ये पूर्वस्यां पश्चिमायां च दिशि 'अणंतरपुराकडे' अनन्तरपुराकृते अनन्तरं दक्षिणोत्तरयोर्वर्षाणां प्रथमसमयात् द्वितीये पुराकृते अग्रे स्थिते 'कालसमयंसि' कालसमये, समयस्तु अनेकार्थवाचकः—'समयः शपथाचारकालसिद्धान्तसंविदः' इति वचनात्, ततस्तद्व्यवच्छेदार्थं कालेति विशेषणं दत्तम्, तेन कालसमये काल रूपे समये इत्यर्थः 'वासाणं पढमे समए पडिवज्जइ' वर्षाणां प्रथमः समयः प्रतिपद्यते 'तया णं' तदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे जम्बूद्वीपे द्वीपे 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्य पर्वतस्य 'उत्तरेणं दाहिणेणं' उत्तरे दक्षिणे च 'अणंतरपच्छाकडे' अनन्तरपश्चात्कृते पश्चाद्गतानन्तरसमये पश्चानुपूर्व्या द्वितीये तस्मात् पूर्वस्मिन्ननन्तरे 'कालसमयंसि' कालसमये 'वासाणं पढमे समए' वर्षाणां प्रथमः समयः 'पडिपुण्णे भवइ' प्रतिपूर्णो भवति। दक्षिणोत्तरयोः वर्षाणां प्रथमसमयसमाप्त्यनन्तरमेव पूर्वपश्चिमयोः वर्षाणां प्रथमसमयस्य प्रारम्भन्यायात्। यदा दक्षिणोत्तरयोः वर्षाकालसमयस्य पूर्णानन्तरमेव पूर्वपश्चिमयो. सूर्यगतिसद्भावात् एकस्य सूर्यस्य दक्षिणभागात् पश्चिमे भागे गतिर्भवति, द्वितीयस्य उत्तरभागात् पूर्वे भागे गतिर्भवति, ततः समीचीनमेव पूर्वकथनमिति ।१। 'जहा समए' यथा समयः यथा समयमाश्रित्य आलापकप्रकारः प्रदर्शितः 'एवं' एवम्—अनेनैवालापकप्रकारेण शेषा नव 'आवलिया' आवलिका २, 'आणपाण' आनप्राणौ श्वासोच्छ्वास समयः ३, 'थोवे' स्तोकः ४ लवे' लवः ५ 'मुहुत्ते' मुहूर्तः ६, 'अहोरत्ते' अहोरात्रः ७, 'पक्खे' पक्षः ८, 'मासे' मासः ९, 'ऊऊ' ऋतुः १० 'एए' एते पूर्वोक्ताः 'दस' दश समयमवधीकृत्य दश संख्यका 'आलावगा' आलापकाः 'वासाणं' वर्षाणां वर्षाकालस्य 'भाणियव्वा' भणितव्याः आलापकाः करणीया इत्यर्थः, आलापक प्रकारश्च स्वयमूहनीयः ।४।

अथ वर्षाकालं प्रतिपाद्य हेमन्तकालं प्रदर्शयितुमाह—'ता जया णं हेमंताणं' इत्यादि ।

'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'दाहिणड्ढे' दक्षिणार्धे 'हेमंताण' हेमन्तानां हेमन्तकालस्य मासचतुष्टयरूपस्य 'पढमे समए' प्रथमः समयः 'पडिवज्जइ' प्रतिपद्यते प्रविष्टो भवति—'तया णं' तदा खलु 'उत्तरड्ढे वि' उत्तरार्धेऽपि 'हेमंताणं पढमे समए पडिवज्जइ' हेमन्तानां प्रथमः समयः प्रतिपद्यते, 'जया णं' यदा खलु जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्य पर्वतस्य 'पुरत्थिमेणं पच्चत्थिमेणं' पौरस्त्ये पाश्चात्ये पूर्वस्यां पश्चिमायां च दिशि 'अणंतरपुराकडे' अनन्तरपुराकृते तदनन्तरे दक्षिणोत्तरहेमन्तप्रथमसमयादनन्तरं द्वितीये पूर्वानुपूर्व्या अग्रे स्थिते 'कालसमयंसि' कालसमये कालरूपे समये 'हेमंताणां' हेमन्तानाम् 'पढमे समए' प्रथमः समयः 'पडिवज्जइ' प्रतिपद्यते तदा दक्षिणोत्तरयोरनन्तरपश्चात्कृते पश्चानुपूर्व्या पूर्वस्मिन् कालसमये हेमन्तानां प्रथमः समयः परिपूर्णो भवतीति सुगममेव । 'एयस्स वि' एतस्यापि हेमन्तकालस्यापि 'दसआलावगा' दश—आलपकाः 'जाव ऊऊ' यावत् ऋतुम् समयादारम्य ऋतुपर्यन्ताः 'भाणियव्वा' भणितव्याः ॥५॥

अथ सूत्रकारः ग्रीष्मकालं प्रदर्शयितुमाह—'ता जया णं गिम्हाणं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'दाहिणड्ढे' दक्षिणार्धे 'गिम्हाणं पढमे समए पडिवज्जइ' ग्रीष्मणां ग्रीष्मकालस्य चतुर्मासरूपस्य प्रथमः समयः प्रतिपद्यते 'तया णं' तदा खलु 'उत्तरड्ढे वि' उत्तरार्धेऽपि 'गिम्हाणं पढमे समए पडिवज्जइ' ग्रीष्माणां ग्रीष्मकालस्य चतुर्मासरूपस्य प्रथमः समयः प्रतिपद्यते । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'उत्तरदाहिणड्ढे' उत्तरदक्षिणार्धे उत्तरार्धे दक्षिणार्धे च 'गिम्हाणं पढमे समए पडिवज्जइ' ग्रीष्माणां प्रथमः समयः प्रतिपद्यते 'तया णं' तदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'पुरत्थिमेणं पच्चत्थिमेणं पौरस्त्ये पाश्चात्ये च 'अणंतरपुराकडे' अनन्तरपुराकृते उत्तरदक्षिणगतग्रीष्मकालस्य द्वितीये 'कालसमयंसि' कालसमये 'गिम्हाणं पढमे समए' ग्रीष्माणां प्रथमः समयः 'पडिवज्जइ' प्रतिपद्यते, इत्यादि 'एयस्स वि' एतस्यापि ग्रीष्मकालस्यापि 'दस आलावगा' दशालापकाः 'जाव ऊऊ' यावत् ऋतुम् समयादारम्य ऋतुपर्यन्ताः 'भाणियव्वा' भणितव्याः पूर्वोक्तालापकवत् करणीयाः ।६।

पूर्वं वर्षाहेमन्तग्रीष्मरूपऋतुत्रयस्य वक्तव्यतां प्रतिपाद्य साम्प्रतम्—अयनादि वक्तव्यता माह—'ता जया णं अयणे' इत्यादि । 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'दाहिणड्ढे' दक्षिणार्धे 'पढमे अयणे' प्रथमम् अयनम् 'पडिवज्जइ' प्रतिपद्यते 'तया णं'

तदा खलु 'उत्तरड्ढे वि' उत्तरार्धेऽपि 'पढमे अयणे पडिवज्जइ' प्रथमम् अयनं प्रतिपद्यते। 'जया णं' यदा खलु 'उत्तरड्ढे' उत्तरार्धे उपलक्षणात् दक्षिणार्धेऽपि च उभयत्र सूर्यसद्भावात् 'पढमे अयणे पडिवज्जइ' प्रथमम् अयनं प्रतिपद्यते 'तया णं' तदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्य पर्वतस्य 'पुरत्थिमेणं पच्चत्थिमेणं' पौरस्त्ये पश्चात्ये पूर्वस्यां पश्चिमायां च दिशि 'अणंतरे पुराकडे' अनन्तरे पुराकृते अग्रेतने अनन्तरे 'कालसमये' दक्षिणोत्तरगतायनप्रथमसमयात् द्वितीये समये इत्यर्थः 'पढमे अयणे' प्रथमम् अयनं 'पडिवज्जइ' प्रतिपद्यते भवति। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्य पर्वतस्य 'पुरत्थिमेणं' पौरस्त्ये पूर्वदिशायां 'पढमे अयणे पडिवज्जइ' प्रथमम् अयनं प्रतिपद्यते भवति 'तया णं' तदा खलु 'पच्चत्थिमेण वि' पाश्चात्येऽपि पश्चिमदिशायामपि 'पढमे अयणे पडिवज्जइ' प्रथमम् अयनं प्रतिपद्यते भवति पूर्वपश्चिमयोः सूर्यद्वयस्य समकालं समरेखायां संचरणस्वभावात्। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'पच्चत्थिमेणं' पाश्चात्ये पश्चिमभागे पूर्वभागे च 'पढमे अयणे पडिवज्जइ' प्रथमम् अयनं प्रतिपद्यते 'तया णं' तदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्य पर्वतस्य 'उत्तरेण दाहिणेणं' उत्तरे दक्षिणे च उत्तरदिशि दक्षिणदिशि च 'अणंतरे पच्छाकडे' अनन्तरे पश्चात्कृते पश्चानुपूर्व्याऽनन्तरे पूर्वपश्चिमभागसमापन्नायनसमयात्पूर्वस्मिन् 'कालसमयंसि' कालसमये 'पढमे अयणे' प्रथमम् अयनं 'पडिपुन्ने भवइ' प्रतिपूर्णं भवति तत्र प्रतिपूर्णानन्तरमेवात्र तत्सद्भावो भवेदिति न्यायात्। इदं सर्वं व्याख्यानं पूर्वोक्तसमयसूत्रवदेव वाच्यम्। 'एवं' एवम्—अनयैव रीत्या अनेनैवाऽऽलापकप्रकारेण च अग्रे संवत्सरयुगादेरारभ्य पल्योपमसागरोपमपर्यन्तमवसेयम्। तदेव दर्शयति—'संवच्छरे जुगे' इत्यादि। संवत्सरयुगादितः पल्योपमसागरोपमपर्यन्तं सर्वोऽपि पाठः तद्व्याख्या चेति सर्वं सुगमं छाया गम्यमेवेति विरम्यते।

सांप्रतमुत्सर्पिणी कालमधिकृत्याह—'ता जया ण' इत्यादि।

'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'दाहिणड्ढे' दक्षिणार्धे 'पढमे समए' प्रथमे समये 'उस्सप्पिणी पडिवज्जइ' उत्सर्पिणी प्रतिपद्यते प्रारभते 'तया णं' तदा खलु 'उत्तरड्ढे वि' उत्तरार्धेऽपि 'पढमे समये' प्रथमे समये 'उस्सप्पिणी पडिवज्जइ' उत्सर्पिणी प्रतिपद्यते प्रारभते 'जया णं' यदा खलु 'उत्तरड्ढे' उत्तरार्धे दक्षिणार्धे च 'पढमे समए' प्रथमे समये 'उस्सप्पिणी पडिवज्जइ' उत्सर्पिणी प्रतिपद्यते 'तया णं' तदा तस्मिन् समये खलु 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'मंदरस्स पव्वयस्स' मन्दरस्स पर्वतस्य 'पुरत्थिमेणं पच्चत्थिमेणं' पौरस्त्ये पाश्चात्ये पूर्वपश्चिमयोः 'उस्सप्पिणी' उत्सर्पिणी उपलक्षणाद् अवसर्पिण्यपि 'णेवत्थि

नैवास्ति 'अवट्ठिए णं' अवस्थितः खलु सदा समानः 'तत्थ' तत्र पूर्वपश्चिमयोः 'काले पण्णत्ते' कालः प्रज्ञप्तः कथितः तथास्वाभाव्यात् 'समणाउसो' हे श्रमण ? आयुष्यन् ? गौतम ? ॥७॥

तदेवं जम्बूद्वीपवक्तव्यता प्रोक्ता, साम्प्रतं लवणसमुद्रादि वक्तव्यतामाह—'एवं लवण-समुद्दे' इत्यादि ।

'एवं' एवम्-अनेन जम्बूद्वीपे सूर्ययोरुद्गमादि प्रदर्शितं तथैव 'लवणसमुद्दे' लवणसमुद्रे तथा 'धायईसंडे' धातकी षण्डे 'कालोए' कालोदे समुद्रे 'ता' तावत् 'अब्भितरपुक्खरद्धेण वि' आभ्यन्तरपुष्करार्धेऽपि 'सूरिया' सूर्याः द्वासप्ततिसंख्यकाः 'उत्तरपाईणमुग्गच्छंति' उत्तर-प्राच्याम् ईशानकोणे उद्गच्छन्ति 'पाईणदाहिणं आगच्छंति' प्राचीदक्षिणस्याम् अग्निकोणे आगच्छन्ति । 'एवं' एवम्-अनेन आलापकप्रकारेण 'जंबुद्दीववत्तव्वया' जम्बूद्वीपवक्तव्यता 'भाणियव्वा' भणितव्या । कियत्पर्यन्तमित्याह—'जाव' इत्यादि 'जाव उस्सप्पिणी वि' यावत्—उत्सर्पिण्यपि उत्सर्पिण्यालापकपर्यन्तमिति । अत्र यो विशेषः स प्रदर्श्यते, लवणसमुद्रेऽयं विशेषः जम्बूद्वीपे द्वौ सूर्यौ स्तः किन्तु लवणसमुद्रे चत्वारः सूर्याः सन्ति द्विगुणक्षेत्रविस्तारात् । तेषु चतुर्षु सूर्येषु द्वौ सूर्यौ जम्बूद्वीपदक्षिणार्धसूर्यस्य समश्रेणिप्रतिबद्धौ स्तः, द्वौ च उत्तरार्धसूर्यस्य समश्रेणिप्रतिबद्धौ स्तः । यदा जम्बूद्वीपे एकः सूर्यो दक्षिणपूर्वस्यामुदेति तदा तस्य समश्रेणिप्रति-बद्धौ द्वौ सूर्यौ लवणसमुद्रे दक्षिणपूर्वस्यामुदयं प्राप्नुतः । एवं जम्बूद्वीपगतो द्वितीयः सूर्यो दक्षिणपूर्वकोणस्य सम्मुखं पश्चिमोत्तरे उदयमेति तदा लवणसमुद्रेऽपरौ द्वौ सूर्यौ जम्बूद्वीपगत-सूर्यस्य समश्रेणिप्रतिबद्धौ पश्चिमोत्तरे उदयं प्राप्नुतः । एवमुदयविधिर्जम्बूद्वीपसूर्यवदेव ज्ञातव्यः विशेषः केवलमेतावानेव यदत्र द्वौ सूर्यौ, लवणसमुद्रे च चत्वार इत्यतो द्वौ द्वौ एकैकस्यां दिशि वक्तव्यौ । एवमेव यदा लवणसमुद्रस्य दक्षिणार्धे दिवसो भवति । तदा उत्तरार्धेऽपि दिवसो भवति । एवं यदा उत्तरार्धे दिवसो भवति तदा दक्षिणार्धेऽपि दिवसो भवति । यदा लवणसमु-द्रस्य दक्षिणार्धे उत्तरार्धे च दिवसो भवति तदा पूर्वपश्चिमयोः रात्रिर्भवति तदानीं तत्र सूर्याचार-भावात् । यदा लवणसमुद्रस्य पूर्वपश्चिमयोर्दिवसो भवति तदा दक्षिणोत्तरयोः रात्रिर्भवति तदानीं तत्र सूर्याभावात् । दिवस रात्र्योर्यावत्कं प्रमाणं जम्बूद्वीपे कथितं तावन्मात्रं लवणसमुद्रेऽपि भणि-तव्यम्, तच्च 'नेवत्थि तत्थ ओसप्पिणी अवट्ठिएणं तत्थ काले पण्णत्ते समणाउसो' इत्ये-तत्पर्यन्तं सर्वं जम्बूद्वीपवक्तव्यतावदेव पठितव्यमिति ॥ आलापकप्रकारः स्वयमूहनीयः । एषा लवणसमुद्रस्य वक्तव्यता कथिता । यथा लवणसमुद्रस्य वक्तव्यता कथिता तथैव धातकी खण्डस्य वक्तव्यता वाच्या विशेष एतावान् यत्—अत्र क्षेत्रस्य विशालता सद्भावात् द्वादशसूर्या द्वादशैव चन्द्राः सन्ति तेषां परस्परं समत्वात्, एवमग्रेऽपि विज्ञेयम् तेषु द्वादशसु सूर्येषु षट् सूर्या

दक्षिणार्धे षट् च उत्तरार्धे पूर्वोक्तजम्बूद्वीपक्रमेणैव चारं चरन्ति । एते द्वादशापि सूर्याः जम्बूद्वीप-लवणसमुद्रगतसूर्याणां समश्रेणिप्रतिबद्धास्तेनैव क्रमेण चारं चरन्ति । एषामुदयास्तविधिः जम्बूद्वीपगतसूर्यवदेव विज्ञेयः । दिवसरात्रिप्रकारोऽपि जम्बूद्वीपवदेवावसेयः । उत्सर्पिण्यवसर्पिणी-पर्यन्तं सर्वोऽपि प्रकारो जम्बूद्वीपवदेव भणितव्यः । आलापकाः स्वयं करणीया इति ।

कालोदधिसमुद्रस्यापि वक्तव्यता लवणसमुद्रवदेव पठितव्या, विशेषोऽत्रैतावान् यत् अत्र क्षेत्रविस्ताराधिक्यात् द्विचत्वारिंशत् सूर्याः सन्ति, तेषु एकविंशतिः सूर्या दक्षिणविभागे, एकविंशतिरेव उत्तरविभागे चारं चरन्ति । एतेऽपि जम्बूद्वीपलवणसमुद्रधातकीखण्डगतसूर्याणां समश्रेणि-प्रतिबद्धास्तेनैव क्रमेण स्वस्वक्षेत्रं प्रकाशयन्ति । दिवसरात्र्यादिप्रकारः पूर्ववदेव विज्ञातव्य इति ।

अथाभ्यन्तरपुष्करार्धविषये कथ्यते—अत्रापि सर्वा वक्तव्यता जम्बूद्वीपवदेव विचारणीया, विशेषस्त्वयम्—यदत्र द्वा सप्ततिः सूर्याः सन्ति । तेषु पूर्ववदेव षट्त्रिंशत् सूर्या दक्षिणे षट् त्रिंशदेव उत्तरे प्रकाशयन्ति । अन्यत्सर्वं दिवसरात्रिप्रकारः, तथा वर्षाऋतु समयादारभ्योत्सर्पिण्यव-सर्पिणी वक्तव्यतापर्यन्तं सर्वोऽपि विचारश्चेत्यादि जम्बूद्वीपवक्तव्यतासदृशमेव भणितव्यम् । एवं क्रमेण सार्धतृतीयद्वीपवक्तव्यता भवति, तत्र द्वात्रिंशदधिकैकशत (१३२) संख्यकाः सूर्याः निरन्तरं चारं चरन्ति । सर्वत्र जबूद्वीपादारभ्य सार्धतृतीयद्वीपपर्यन्तं यत्र यावन्तः सूर्यास्तत्र तावन्त एव चन्द्रा भवन्तीति विज्ञेयमिति ॥सू० ३॥

इति श्री–विश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापक–प्रविशुद्ध-गद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–श्रीशाहुच्छत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त "जैनशास्त्राचार्य" पदभूषित–कोल्हापुर राजगुरु बालब्रह्मचारि–जैनशास्त्राचार्य–जैनधर्मदिवाकर श्रीघासीलालव्रति–विरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिका-ख्यायां व्याख्यायाम्

अष्टमम् प्राभृतं समाप्तम् ॥५॥

॥ श्रीरस्तु ॥



अथ नवमं प्राभृतं प्रारभ्यते

तदेवमुक्तमष्टमं प्राभृतम्, तत्र जम्बूद्वीपे सूर्योदयमर्यादा प्रदर्शिता । अथ नवमं प्राभृतं प्रारभ्यते, अत्र पूर्वं द्वारकथनावसरे 'कइ कट्ठा पोरिसी छाया' कतिकाष्ठा पौरुषी छाया, इति कथितम्, सूर्यः पौरुषी छायां कतिकाष्ठां निर्वर्त्तयति ? इत्यर्थाधिकारो निरूपयिष्यते इति सम्बन्धेनायातस्यास्य नवमस्य प्राभृतस्येदमादिमं सूत्रम्–'ता कइकट्ठं' इत्यादि ।

मूलम्—ता कइकट्ठं ते सूरिए पोरिसीं छाया णिव्वत्तेइ आहितेति वएज्जा, तत्थ खलु इमाओ तिण्णि पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–तत्थ एगे एवमाहंसु–ता जे णं पोग्गला सूरियस्स लेस्सं फुसंति ते णं पोग्गला संतप्पंति. ते णं पोग्गला संतप्पमाणा तयाणंतराइं वाहिराइं पोग्गलाइं संतावेंति-त्ति एस णं से समिए तावखेत्ते, एगे एवमाहंसु ।१। एगे पुण एवमाहंसु–ता जे णं पोग्गला सूरियस्स लेस्सं फुसंति ते णं पोग्गला नो संतप्पंति, ते णं पोग्गला असंतप्पमाणा तयाणंतराइं वाहिराइं पोग्गलाइं नो संतावेंति एस णं से समिए तावखेत्ते, एगे एवमाहंसु ।२। एगे पुण एवमाहंसु–ता जे णं पोग्गला सूरियस्स लेस्सं फुसंति ते णं पोग्गला अत्थेगइया संतवेंति, अत्थे गइया नो संतवेंति, अत्थेगइया संतप्पमाणा तयाणंतराइं वाहिराइं पोग्गलाइं संतावेंति, अत्थेगइयाअसंतप्पमाणा तयाणंतराइं वाहिराइं पोग्गलाइं नो संतावेंति, एस णं से समिए तावखेत्ते, एगे एवमाहंसु ।३।

वयं पुण एवं वयामो—ता जाओ इमाओ चंदिमसूरियाणं देवाणं विमाणेहिंतो लेस्साओ वहिया अभिनिस्सडाओ ताओ पयावेंति, एयासि णं लेस्साणं अंतरेसु २ अण्णयराओ छिन्नलेस्साओ संमुच्छंति, तए णं ताओ छिन्नलेस्साओ संमुच्छियाओ समाणीओ तयाणंतराइं वाहिराइं पोग्गलाइं संतावेंति त्ति, एस णं से समिए ताव खेत्ते ॥सू०॥

छाया—तावत् कतिकाष्ठां ते सूर्यः पौरुषीं छायां निर्वर्तयति आख्यातमिति वदेत् । तत्र खलु इमास्तिस्रः प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—तत्र एके एवमाहुः—तावत् ये खलु पुद्गलाः सूर्यस्य लेश्यां स्पृशन्ति ते खलु पुद्गलाः संतप्यन्ते, खलु पुद्गलाः संतप्यमानाः तदनन्तरान् बाह्यान् पुद्गलान् संतापयन्ति इति एतत् खलु तत् समितं तापक्षेत्रम्, एके एवमाहुः ।१। एके पुनरेवमाहुः—तावत् ये खलु पुद्गलाः सूर्यस्य लेश्यां स्पृशन्ति ते खलु पुद्गला नो संतप्यन्ते, ते खलु पुद्गला असंतप्यमानाः तदनन्तरान् बाह्यान् पुद्गलान् नो संतापयन्ति, एतत् खलु तत् समितं तापक्षेत्रम् एके एवमाहुः ।२। एके पुनरेवमाहुः—तावत् ये खलु पुद्गलाः सूर्यस्य लेश्यां स्पृशन्ति ते खलु पुद्गलाः अस्त्येके संतप्यन्ते,

अस्त्येके नो संतप्यन्ते (ये) अस्त्येके संतप्यमानाः (ते) तदनन्तरान् बाह्यान् पुद्गलान् संतापयन्ति, अस्त्येके असंतप्यमानाः तदनन्तरान् बाह्यान् पुद्गलान् नो संतापयन्तीति, एतत् खलु तत् समितं तापक्षेत्रम् एके एवमाहुः ।३।

वयं पुनरेवं वदाम—तावत् या इमाः चन्द्रसूर्ययोर्देवयोः विमानेभ्यः लेश्याः बहिः अभिनिस्सृताः ता प्रतापयन्ति, एतासां खलु लेश्यानाम् अन्तरेषु अन्यतराः छिन्नलेश्याः संमूर्छन्ति, तत खलु ता छिन्नलेश्याः संमूर्छिताः सत्यः तदनन्तरान् बाह्यान् पुद्गलान् संतापयन्तीति एतत् खलु तत् समित तापक्षेत्रम् ॥१॥सू०१॥

व्याख्या—'ता' तावत् 'कइकट्ठं' कतिकाष्ठं कति कतिप्रमाणा काष्ठा प्रकर्षो यस्याः सा कतिकाष्ठा तां किंप्रमाणामित्यर्थः 'ते' त्वमते 'सूरिए' सूर्यः पोरिसिं पुरुषे भवा पौरुषी तां 'छायं' छायां पुरुषसम्बन्धिनीं छायां 'निव्वत्तेइ' निर्वर्त्तयति करोति, अत्रविषये भवता किम् 'आहियं' आख्यातम् ? 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् ! इति गौतमस्य प्रश्नः । अत्र भगवान् पूर्वमेतद्विषये यावत्यः प्रतिपत्तयो वर्त्तन्ते ता दर्शयति–'तत्थ खलु' इत्यादि ।

'तत्थ' तत्र पौरुषी छायाप्रमाणविषये खलु तापक्षेत्रस्वरूपविषयाः 'इमाओ' इमाः वक्ष्यमाणाः 'तिण्णी' तिस्रः 'पडीवत्तीओ' प्रतिपत्तयः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ताः, 'तं जहा तद्यथा—'तत्थ' तत्र त्रिषु प्रतिपत्तिवादिषु मध्ये 'एगे' एके प्रथमाः एवं' एवम्—वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति । किं कथयन्तीत्याह—'ता जे णं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'जे णं' ये खलु पोग्गला पुद्गला' 'सूरियस्स लेस्सं' सूर्यस्य लेश्यां 'फूसंति' स्पृशन्ति 'ते णं पोग्गला' ते खलु पुद्गलाः 'संतप्पंति' संतप्यन्ते, अत्र कर्मकर्त्तरि प्रयोगः, 'ते णं पोग्गला' ते खलु पुद्गलाः 'संतप्पमाणा' संतप्यमानाः सूर्यलेश्यातापेन संतप्ता भवन्तः सन्तः 'तयाणंतराइं' तदन्तरान् संतप्यमानपुद्गलानामव्यवधानाऽग्रे स्थितान् 'बाहिराइं' बाह्यान् तत्प्रदेशाद्बहिःस्थितान् 'पोग्गलाइं' पुद्गलान् सूत्रे नपुंसकत्वमार्षत्वात्, 'संतावेंतित्ति' सन्तापयन्ति, इति, अत्र इति शब्दः प्रस्तुतवाक्यपरिसमाप्तिसूचकः 'एस णं' एतत् एवंस्वरूपं खलु 'से' तस्य सूर्यस्य 'समिए' समितं संपन्नं 'तावखेत्ते' तापक्षेत्रमस्ति । अत्र पुंस्त्वं प्राकृतत्वात् । उपसंहारः 'एगे' एके प्रथमाः 'एवं' एवं पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति । इति प्रथमा प्रतिपत्तिः ॥१॥

अथ द्वितीयां प्रतिपत्तिमाह—'एगे पुण' इत्यादि 'एगे पुण' एके द्वितीया पुनः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति– 'ता' तावत 'जे णं पुग्गला' ये खलु पुद्गलाः 'सूरियस्स लेस्सं' सूर्यस्य लेश्यां 'फुसंति' स्पृशन्ति 'ते णं पोग्गला' ते खलु पुद्गलाः 'नो संतप्पंति' नो सतप्यन्ते संतप्ता न भवन्ति 'ते णं पोग्गला' ते खलु पुद्गलाः 'असंतप्पमाणा' असंतप्यमानाः नसंतप्ता भवन्तः सन्तः 'तयाणंतराइं' तदनन्तरान् अव्यवधानेन तद-

तदग्रस्थितान् 'बाहिराइं' बाह्यान् बहिःस्थितान् 'पोग्गलाइं' पुद्गलान् 'नो संतप्पेति' नो सन्तापयन्ति, ते णं पोग्गला' ते खलु पुद्गलाः 'असंतप्पमाणाः' असंतप्यमानाः 'तयणंतराइं' तदनन्तरान् अव्यवहिताग्रे स्थितान् 'बाहिराइं' बाह्यान् 'पोग्गलाइं' पुद्गलान् 'नो संतावेति' नो संतापयन्ति संतप्तान् न कुर्वन्ति, 'एस णं' एतत् खलु 'से' तस्य सूर्यस्य 'समिए' समितं संपन्नं 'तावखेत्ते' तापक्षेत्रम् । 'एगे' एके एते द्वितीयाः परतीर्थिकाः 'एवं 'एवं पूर्वोक्तरीत्या 'आहंसु' आहुः कथयन्तीति द्वितीया प्रतिपत्तिः ।२।

अथ तृतीयां प्रतिपत्तिमाह—'एगे पुण' इत्यादि । 'ता' तावत् 'एगे पुण' एके तृतीया प्रतिपत्तिवादिनः पुनः 'एवं' एवम्—वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति । तदेवाह 'ता जे णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जे णं पोग्गला'ये खलु पुद्गलाः 'सूरियस्स लेस्सं फुसंति' सूर्यस्य लेश्यां स्पृशन्ति 'ते णं पोग्गला' ते खलु पुद्गलाः 'अत्थेगइया' अस्त्येके सूर्यलेश्या स्पर्शकारिपुद्गलानां मध्ये केचित् पुद्गलाः 'संतप्पंति' संतप्यन्ते तथा 'अत्थेगइया' अस्त्येके तेषां मध्ये केचित्पुद्गलाः 'नो संतप्पंति' नो संतप्यन्ते तत्र ये 'अत्थेगइया' अस्त्येके 'संतप्पमाणा' संतप्यमाना भवन्ति ते 'तयाणंतराइं' तदनन्तरान् तदनन्तरस्थितान् 'बाहिराइं' बाह्यान् 'पोग्गलाइं' पुद्गलान् 'संतावेंति' संतापयन्ति । ये च 'अत्थेगइया' अस्त्येके केचन सूर्यलेश्यास्पर्शकपुद्गलाः 'असंतप्पमाणा' असंतप्यमानाः न संतप्ता भवन्तः सन्त 'तयाणंतराइं' तदन्तरान् स्वस्याग्रे स्थितान् 'बाहिराइं 'बाह्यान् तत्प्रदेशाद्बहिःस्थितान् 'पोग्गलाइं 'पुद्गलान् 'नो संताविंति—त्ति नो सन्तापयन्तीति । 'एस णं' एतत् खलु 'से' तस्य सूर्यस्य 'समिए' समितं संप्राप्तम् 'तावखेत्ते' तापक्षेत्रम् । उपसंहारः—'एगे' एके तृतीयाः 'एवं' एवं पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु १आहुः कथयन्ति । इति तृतीया प्रतिपत्तिः ३॥

अथ भगवान् मिथ्या रूपा स्तिस्रः परतीर्थिकप्रतिपत्तीः प्रदर्श्य स्वमतं प्रदर्शयति-'वयं पुण इत्यादि ।

'वयं पुण एवं वयामो' वयं पुनरेवं वदामः- 'ता' तावत् 'जाओ इमाओ' या इमाः 'चंदसुरियाणं देवाणं' चन्द्रसूर्याणां देवानां' जम्बूद्वीपे द्विद्विचन्द्रसूर्ययोः सद्भावाद् बहुवचनम् 'विमाणेहिंतो' विमानेभ्यः 'लेस्साओ' लेश्याः 'बहिया अभिनिस्सडाओ' बहिरभिनिस्सृताः 'ताओ' ताः बाह्यं यथोचितमाकाशम् 'पयाविंति१ प्रतापयन्ति प्रकाशयन्ति 'एतासि णं' एतासां विमानेभ्यो निस्सृतानां 'लेस्साणं' लेश्यानां 'अंतरेसु२' अन्तरेषु२ प्रत्येकमपान्तरालेषु 'अण्णयराओ' अन्यतराः काश्चिदन्यतमाः 'छिन्नलेस्साओ' छिन्नलेश्याः छिन्नमूला लेश्याः 'संमुच्छंति, संमूर्छन्ति तथास्वभावात् समुद्भवन्त । 'तए णं' १ततः खलु 'ताओ' ताः पूर्वोक्ता 'छिन्नलेस्साओ' छिन्नलेश्याः छिन्नमूला लेश्याः 'संमुच्छियाओ समाणीओ' १संमूर्च्छिताः

सत्यः 'तयणंतराइं' तदनन्तरान्-अव्यवधानेन तदग्रे स्थितान् 'बाहिराइं पोग्गलइं' बाह्यान् पुगद्लान् 'संतावितीं' संतापयन्ति। इति पूर्ववत् 'एस णं' एतत् खलु 'से' तस्य सूर्यस्य 'समिए' समितं संपन्नं 'तावखेत्ते' तापक्षेत्रम् ॥ सू० १॥

पूर्वं तापक्षेत्रस्य स्वरूपप्रतीपन्नता प्रोक्ता, साम्प्रतं किं प्रमाणां पौरूषीं छायां सूर्यो निर्वर्त्तयतीति प्रदर्शयन्नाह— 'ता कइकट्टं ते' इत्यादि ।

मूलम्—ता कइकट्टंते सूरिए पोरिसीं छायं निव्वत्तेइ ? आहिते ? ति वदेज्जा। तत्थ खलु इमाओ पणवीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ तं जहा–तत्थ एगे एवमाहंसु ता अणुसमयमेव सूरिए पोरिसीं छायं निव्वत्तेइ एगे एवमाहंसु ।१। एगे पुण एवमाहंसु ता अणुमुहुत्तमेव सूरिए पोरिसिच्छायं णिव्वत्तेइ एगे एवमाहंसु ।२। एवं एएणं अभिलावेणं जाओ चेव ओयसंठिईए (प्राभृतं ६) पणवीसं पडिवत्तीओ ताओ चेव णेयव्वाओ जाव एगे पुण एवमाहंसु ता अणुउस्सप्पिणीओसप्पिणीमेव सूरिए पोरिसि छायं निव्वत्तेइ, एगे एवमाहंसु ॥२५॥

वयं पुण एवं वयामो–ता सूरियस्स णं उच्चत्तं लेस्सं च पडुच्च छाया उद्देसो, उच्चत्तं छायं पडुच्च लेस्सुद्देसे, लेस्सं च छायं पडुच्च उच्चत्तद्देसो ।२। तत्थ खलु इमाओ दो पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–एगे एवमाहंसु—ता अत्थि णं से दिवसे जंसि च णं दिवसंसि सूरिए चउ पोरिसिं छायं निव्वत्तेइ, अहवा दुपोरिसिं छायं निव्वत्तेइ, एगे एवमाहंसु ।१। एगे पुण एवमाहंसु—ता अत्थि णं से दिवसे जंसि च णं दिवसंसि सूरिए दुपोरिसिं छायं निव्वत्तेइ, अहवा नो किंचिवि पोरिसिं छायं निव्वत्तेइ एगे एवमाहंसु ।२। तत्थ णं जे ते एवमाहंसु–ता अत्थि णं से दिवसे जंसि च णं दिवसंसि सूरिए चउपोरिसिं छायं निव्वत्तेइ, अहवा अत्थि णं से दिवसे जंसि च णं दिवसंसि सूरिए दुपोरिसिं छायं निव्वत्तेइ, ते णं एवमाहंसु—ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ, जहण्णिया दुवालसमुहुत्ता राई भवइ तंसि च णं दिवसंसि सूरिए चउपोरिसिं छायं निव्वत्तेइ, तं जहा उग्गमणमुहुत्तंसि अत्थमणमुहुत्तंसि य लेस्सं अभिवुड्ढेमाणे वा निव्वुड्ढेमाणे वा ॥ ता जयाणं सूरिए सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ, तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया-अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ, जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ तंसि च णं दिवसंसि सूरिए दुपोरिसिं छायं निव्वत्तेइ, तंजहा-उग्गमणमुहुत्तंसि य अत्थमणमुहुत्तंसि य लेस्सं अभिवुड्ढेमाणे वा निव्वुड्ढेमाणे वा ।१। तत्थ णं जे ते एवमाहंसु-ता अत्थि णं से दिवसे जंसि च णं दिवसंसि सूरिए दुपोरिसिं छायं निव्वत्तेइ, अहवा अत्थि णं से दिवसे जंसि च णं दिवसंसि सूरिए नो किंचिवि पोरिसिं

निव्वत्तेइ ते एवमाहंसु-ता जया णं सूरिए सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ जहण्णिया दुवालस-मुहुत्ता राई भवइ तंसि च णं दिवसंसि सूरिए दुपोरिसीं छायं णिव्वत्तेइ, तं जहा उग्गमणमुहुत्तंसि य अत्थमणमुहुत्तंसि य, लेस्सं अभिवुड्ढेमाणे वा निव्वुड्ढेमाणे वा। ता जया णं सूरिए सव्ववाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तया णं उत्तमकट्ठपत्ता उक्कोसिया अट्ठारसमुहुत्ता राईभवइ जहण्णए दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ तंसि च णं दिवसंसि सूरिए नो किंचिवि पोरिसिं छायं निव्वत्तेइ, तं जहा उग्गमणमुहुत्तंसि य अत्थमणमुहुत्तंसि य, नो चेव णं लेस्सं अभिवुड्ढेमाणे वा निवुड्ढे माणे वा ॥सू० २॥

छाया— तावत् कतिकाष्ठांते सूर्यः पौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति ? आख्यातमिति वदेत्। तत्र खलु इमाः पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तय. प्रज्ञप्ताः तद्यथा—तत्र एके एवमाहुः—तावत् अनुस-मयमेव सूर्यः पौरुषीं छायां निवर्त्तयति एके एवमाहुः ।१। एके पुनरेवमाहुः-तावत् अनु-मुहूर्त्तमेव सूर्यः पौरूषीं छायां निर्वर्त्तयति एके एवमाहुः ।२। एवम् एतेन अभिलापेन या एव ओजः संस्थितौ (प्रा०६) पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तयः, ता एव ज्ञातव्याः, यावत्—एके पुनः एवमाहुः-तावत् अनुत्सर्पिण्यवसर्पिणीमेव सूर्यः पौरूषीं छायां निर्वर्त्तयति, एके एवमाहु ।२५।

वयं पुनरेवं वदामः -तावत् सूर्यस्य खलु उच्चत्वं लेश्यां च प्रतीत्य छायोद्देशः १ उच्चत्वं छायां च प्रतीत्य लेश्योद्देशः, लेश्यां च छायां च प्रतीत्य उच्चत्वोद्देशः २ । तत्र खलु इमे द्वे प्रतिपत्ती प्रज्ञप्ते तद्यथा एके एवमाहुः तावद् अस्ति खलु स दिवसः यस्मिंश्च खलु दिवसे सूर्यः चतु पौरूषीं छायां निर्वर्त्तयति, अथवा द्विपौरूषीं छायां निर्वर्त्तयति, एके एवमाहुः ।१। एके पुनरेवमाहुः-तावत् अस्ति खलु स दिवसः यस्मिंश्च खलु दिवसे सूर्यः द्विपौरूषीं छायां निर्वर्त्तयति, अथवा नोकाञ्चिदपि पौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति, एके एवमाहुः ।२। तत्र खलु ये ते एवमाहुः-तावत् अस्ति खलु स दिवसः यस्मिंश्च खलु दिवसे सूर्यः चतुःपौरूषीं छायां निर्वर्त्तयति अथवा अस्ति खलु सः दिवस यस्मिंश्च खलु दिवसे सूर्यः द्विपौरूषीं छायां निर्वर्त्तयति, ते खलु एवमाहुः तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रि भवति तस्मिंश्च खलु दिवसे सूर्यः चतुःपौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति, तद्यथा-उद्गम-नमुहूर्त्ते च, अस्तमनमुहूर्त्ते च लेश्याम् अभिवर्धयन् वा निर्वर्धयन्वा। तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वबाह्यं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्ता उत्कर्षिका अष्टा दशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तस्मिंश्च खलु दिवसे सूर्यः द्विपौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति तद्यथा उद्गमनमुहूर्त्ते च अस्तमनमुहूर्त्ते च लेश्यां अभिवर्धयन् वा निर्वर्धयन् वा ।१। तत्र खलु ये ते एवमाहुः तावत् अस्ति खलु स दिवसः यस्मिंश्च खलु दिवसे सूर्यो द्विपौरूषीं छायां निर्वर्त्तयति, अथवा अस्ति खलु स दिवसः

यस्मिंश्च खलु दिवसे सूर्यो न किञ्चिदपि पौरुषीं छायां निर्वर्तयति ते एवमाहुः-तावद् यदा खलु सूर्यः सर्वाभ्यान्तरं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठाप्राप्तः उत्कर्षकः अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, जघन्यिका द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति तस्मिंश्च खलु दिवसे सूर्यः द्विपौरूषीं छायां निर्वर्त्तयति, तद्यथा-उद्गमनमुहूर्त्ते च अस्तमनमुहूर्त्ते च लेश्याम् अभिवर्धयन् वा निर्वर्धयन् वा। तावत् यदा खलु सूर्यः सर्वबाह्यं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तदा खलु उत्तमकाष्ठा प्राप्ता उत्कर्षिका अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भयति, जघन्यकः द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति तस्मिंश्च खलु दिवसे सूर्यः नो काञ्चिदपि पौरूषीं छायां निर्वर्त्तयति, तद्यथा उद्गमनमुहूर्त्ते च अस्तमन् मूहूर्त्ते च नो चैव खलु लेश्याम् अभिवर्धयन् वा निर्वर्धयन् वा। "सूत्र २॥

व्याख्या—'ता' तावत् 'कइकट्ठं' कतिकाष्ठां कियत्प्रकर्षोपेतां प्रकर्षतः कियत्परिमितां हे भगवन् 'ते' तवमते 'सूरिए' सूर्यः 'पोरिसीं छायां' पौरुषीं छायां—पुरुषेण निर्वृत्ता पौरुषी पुरुषप्रमाणा तां तादृशीं छायां 'निव्वत्तेइ' निर्वर्तयति रचयति करोतीत्यर्थः। कियत्प्रमाणां परा काष्ठासंपन्नां पौरुषीं छायां सूर्यो निर्वर्त्तयतीति भावः। एतद्विषये किम् 'आहिए' आख्यातम् ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् ! गौतमेन एवं प्रश्ने कृते भगवानाह हे गौतम ! 'तत्थ णं' तत्र पौरुषीछायाविषये खलु 'इमाओ' इमाः अनुपदमग्रे प्रदर्श्यमानाः 'पंचविंसई' पञ्चविंशतिः 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः अन्यतैर्थिकमतरूपाः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ताः कथिताः 'तं जहा' तद्यथा ता यथा— 'तत्थ' तत्र पञ्चविंशतिप्रतिपत्तिवादिषु मध्ये 'एगे' एके प्रथमाः 'एवं' एवम्—वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति 'ता' तावत् 'अणुसमयमेव' अनुसमयमेव समयं समयं प्रति—प्रतिसमयमित्यर्थः 'सूरिए' सूर्यः 'पोरिसीं छायं' पौरुषीं छायाम्। अत्र पौरुषीछाया लेश्यावशेन संपद्यतेऽतः पौरुषी छायेति शब्देन लेश्या ग्रहीतव्या कारणे कार्योपचारात् तेन लेश्यां निर्वर्त्तयतीति भावः। उपसंहारः 'एगे' एके प्रथमा 'एवं' एवम् पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुरिति १। 'एवं' एतत् अनया रीत्या 'एगे पुण' एके द्वितीयाः पुनः-'एवमाहंसु' एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः कथयन्ति-'ता' तावत् 'अणुमुहुत्तमेव' अनुमुहूर्त्तमेव—प्रतिमुहूर्त्तं 'सूरिए' सूर्यः 'पोरिसिं छायं' पौरुषीं छायां 'णिव्वत्तेइ' निर्वर्त्तयति करोति 'एगे' ऐके द्वितीयाः 'एवं' एवम् पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति २। 'एएणं अभिलावेणं' एतेन प्रथमेन द्वितीयेन च अभिलापेन प्रथमद्वितीयाभिलापप्रकारेण 'जाओ चेव' या एव 'ओयसंठिईए' ओजःसंस्थितौ षष्ठप्राभृतोक्ते ओजःसंस्थितिप्रकारेण 'पंचवीसई पडिवत्तीओ' पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तयः प्रतिपादिता 'ताओ चेव' ता एवात्रापि समयानन्तरं समयमुहूर्त्तानन्तरमहोरात्रादिरूपाः 'णेयव्वाओ' ज्ञातव्याः। कियत्पर्यन्तमित्याह—'जावे'त्यादि। 'जाव' यावत् तासु पञ्चविंशतिप्रतिपत्तिषु चरमप्रतिपत्तिः उत्सपण्यवसर्पिणीरूपाऽऽयाति तावदिति तामेव चरमप्रतिपत्तिं सूत्रकारः स्वयं

प्रदर्शयति 'एगे पुण' इत्यादि, 'एगे पुण' एके पञ्चविंशतितमाः प्रतिपत्तिवादिनः पुनः 'एवं' एवम्-वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः-कथयन्ति-यत् 'ता' तावत् 'अणुउस्सप्पिणी-ओसप्पिणीमेव' अनूत्सर्पिण्यवसर्पिणीमेव प्रत्येकमुत्सर्पिणीमवसर्पिणीं चाधिकृत्य 'सूरिए' सूर्यः 'पोरिसीं छायं' पौरुषीं छायां 'निव्वत्तेइ' निर्वर्त्तयति निर्माति । उपसंहारः-'एगे' एके पञ्चविंशतितमाः 'एवं' एवम्---पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति ।२५। आसां पञ्चविंशतिप्रतिपत्तीनामालापकप्रकारः प्रथमप्रतिपत्तिप्रोक्तालापकप्रकारेण स्वयमूहनीयः ।

अथ भगवान् 'एताः परमतरूपा विंशतिरपि प्रतिपत्तयो मिथ्यारूपाः सन्ति इति कृत्वा स्वमतं प्रदर्शयति-'वयं पुण' इत्यादि ।

'वयं पुण' वयं पुनः वयं तु 'एवं' एवम् वक्ष्यमाणरीत्या 'वयामो' 'वदाम. कथयामः 'ता' तावत् 'सूरियस्स णं' सूर्यस्य खलु 'उच्चत्तं लेस्सं च' उच्चत्वं लेश्यांतेजोरूपां च 'पडुच्च' प्रतीत्य आश्रित्य 'छाया उद्देसो' छायोद्देशः छायाप्रकारो भवति, अयमाशयः यदा सूर्यो लेश्यां तेजोरूपां प्रसारयन् उदयमेति तदा पुरुषस्य प्रकाश्यवस्तुनो वा छाया दीर्घा भवति, उदयसमये लोकव्यवहारेण 'सूर्य आसन्नं वर्त्तते' इति कथ्यते । तदनन्तरं सूर्यो यथा यथा उच्चैरुच्चैस्तरं चाधिरोहति तथा तथा तेजोरूपा लेश्या वर्धते पुरुषस्य प्रकाश्य वस्तुनो वा छाया च हीना हीनतरा भवन्तीति दृश्यते । एवं मध्याह्नपर्यन्तं छाया हीना हीन तरा हीनतमा भवति । अयं प्रथमच्छायोद्देशः ।१। अथ 'उच्चत्तं छायं च पडुच्च-लेस्सुद्देसो" सूर्यस्य मध्याह्नगतस्य उच्चत्वं छायां च प्रतीत्य लेश्योद्देशः लेश्याप्रकारो भवति । अयं भावः-यदा सूर्यो मध्याह्नसमयेऽस्माकं मस्तकोपरि वर्त्तते तदा लोक व्यवहारेण ज्ञायते-सूर्यः सर्वोच्चभागे समागत इति, यदा च पुरुषस्य प्रकाश्यवस्तुनो वा छायापरमप्रकर्षेण हीना लघ्वी जायते, सा चेतस्ततः पार्श्वभागेन भवति, तदा सूर्यस्य लेश्या तेजोरूपा पराकाष्ठा प्राप्ता जायतेऽतोऽयं लेश्योद्देशो द्वितीयो भवतीति ।२। 'लेस्सं च छायं च पडुच्च उच्चत्तउद्देसो' लेश्यां च छायां च प्रतीत्य उच्चत्वोद्देशः । अयमाशयः मध्याह्नादूर्ध्वं सूर्यो यथा यथा उच्चत्वतो नीचैर्नीचैस्तरमतिक्रामति तथा तथा लोकव्यवहारेण कथ्यते-सूर्यः उच्चप्रदेशादधो गच्छतीति, यथा यथा सूर्यो नीचैर्गच्छति तथा तथा तेजोरूपा लेश्याऽपि हीना हीनतरा भवति, पुरुषस्य प्रकाश्यवस्तुनो वा छायाऽपि दीर्घा भवतीति ज्ञायते । मध्यान्हगतोच्चत्वमधि-कृत्यायमुद्देशो वर्त्ततेऽतोऽयमुच्चत्वोद्देशस्तृतीयो भवतीति ।३। एते त्रयोऽप्युद्देशाः प्रतिक्षणमन्यथा ऽन्यथा निर्वर्त्तन्ते तत एषु एकतरस्य तथा तथा प्रतिक्षणं विवर्त्तमानस्योद्देशात उपलम्भादितरस्या-प्युद्देशस्यावगमः स्वयं कर्तव्य इति ।

तदेवं लेश्यास्वरूपं प्रतिपादितम्, अथ पौरुषीछायापरिमाणविषयेऽन्यतैर्थिकप्रतिपत्ति द्वयं वर्त्तते तत्प्रदर्शयितुमाह—'तत्थ' इत्यादि ।

'तत्थ खलु' तत्र पौरुषीछायापरिमाणविषये खलु 'इमाओ' इमे वक्ष्यमाणस्वरूपे 'दो पडिवत्तीओ' द्वे प्रतिपत्ती 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ते कथिते । 'तं जहा' तद्यथा ते द्वे यथा 'एगे' एके द्वयोर्मध्ये प्रथमाः प्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' एवम्—वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति, तथाहि 'ता' तावत् 'अत्थि णं' अस्ति खलु 'से दिवसे' स दिवसः एतादृशो दिवसो भवति खलु 'जंसि च णं' यस्मिंश्च खलु 'दिवसंसि' दिवसे 'सूरिए' सूर्यः उदयास्तसमये 'चउ-पोरिसिं छायं निव्वत्तेइ' चतुष्पौरुषं छायां निर्वर्त्तयति उत्कृष्टेन रचयति करोतीत्यर्थः । चतुः पौरुषीमिति चतुःपुरुषप्रमाणां पुरुषशरीरचतुर्गुणामित्यर्थ उपलक्षणात् अन्यस्य कस्यापि प्रकाश्य वस्तुनस्तस्मिन् दिवसे तद्वस्तुतश्चतुर्गुणां छायां निर्वर्त्तयतीति भावः । 'अहवा' अथवा' अस्ति स दिवसो यस्मिंश्च दिवसे सूर्यः 'दुपोरिसिं छायं' द्विपौरुषीं छायां द्विगुणां छायाम् उद्गमनास्तमनसमये 'निव्वत्तेइ' निर्वर्त्तयति नान्यथेति । 'एगे' एके 'एवं' एवम् पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति ।१। 'एगे पुण' एके द्वितीयाः पुनः 'एवं एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति यत्—'ता' तावत् 'अत्थि णं' अस्ति भवति खलु 'से दिवसे' स दि-वसः 'जंसि च णं' यस्मिन् खलु 'दिवसंसि' दिवसे उद्गमनास्तमनमुहूर्त्ते 'सूरिए' सूर्यः 'दुपो-रिसिं छायं' द्विपौरुषीं छायां कस्यापि प्रकाश्यवस्तुनः द्विगुणां छायामित्यर्थः ''निव्वत्तेइ' निर्व-र्त्तयति निर्माति । 'अहवा' अथवा 'अत्थि णं' अस्ति खलु 'से दिवसे' स दिवसः 'जंसिचणं दिवसंसि' यस्मिंश्च खलु दिवसे उदयास्तसमये 'न किंचिवि पोरिसिं छायां' न काञ्चिदपि पौरुषीं छायां 'निव्वत्तेइ' निर्वर्त्तयति । 'एगे' एके द्वितीयाः 'एवं' एवम्—पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति ।२।

तदेवं द्वे अपि प्रतिपत्ती प्रदर्श्य साम्प्रतं केन कारणेन एतौ द्वौ प्रतिपत्तिवादिनौ एवं कथयतः इत्येवं भावयति—'तत्थ' इत्यादि । 'तत्थ' तत्र द्वयोर्मध्ये 'जे ते' ये ते प्रथमा 'एवं' एवम्—वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति—यत् 'अत्थि णं से दिवसे' अस्ति खलु स दिवसः 'जंसि च णं दिवसंसि' यस्मिंश्च खलु दिवसे 'सूरिए' सूर्यः 'चउपोरिसिं छायं निव्वत्तेइ' चतुष्पौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति, 'अहवा' अथवा 'दुपोरिसिं छायं निव्वत्तेइ' द्विपौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति 'ते णं' ते खलु 'एवं' एवम्—अनेन वक्ष्यमाणेन कारणेन 'आहंसु' आहुः कथयन्ति तदेवकारणं दर्शयति—'ता' इत्यादि । 'ता' तावत् 'जया णं' यदाःखलु 'सूरिए' सूर्य. 'सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु

'उत्तमकट्ठपत्ते' उत्तमकाष्ठाप्राप्तः परमप्रकर्षसंपन्नः 'उक्कोसए' उत्कर्षकः सर्वोत्कृष्टः 'अट्ठारस-मुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलघ्वी 'दुवालस-मुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति 'तंसि च णं दिवसंसि' तस्मिंश्च खलु सर्वोत्कृष्टदिवस सर्वजघन्यरात्रिरूपे दिवसे 'सूरिए' सूर्यः 'चउपोरिसिं छायं' चतुष्पौरुषीं छायां 'निव्वत्तेइ' निर्वर्त्तयति। कस्मिन् समये ? इत्याह–'तं जहा' तद्यथा 'उग्गमणमुहुत्तंसि' य अत्थमणमुहु-त्तंसि य' उद्गमनमुहूर्त्ते च अस्तमनमुहूर्त्ते च 'लेस्सं' लेश्यां तेजो रूपाम् 'अभिवुड्ढेमाणे वा' अभिवर्धयन् वा उद्गमनमुहूर्त्ते तेजोरूपां स्वलेश्यां प्रवर्धयन् वा, तथा 'निव्वुड्ढेमाणे वा' निर्वर्धयन् वा सूर्योऽस्तमनसमये स्वलेश्यां हापयन् वा।

सूर्यो द्विपौरुषीं छायां कदा निर्वर्त्तयतीति दर्शयति 'ता जया णं इत्यादि,।

'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ' सर्व बाह्यमण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ता' उत्तम-काष्ठा प्राप्ता परमप्रकर्षसंपन्ना 'उक्कोसिया' उत्कर्षिका सर्वोत्कृष्टा 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति, 'जहण्णए' जघन्यकः 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'तंसि च णं' तस्मिंश्च सर्वोत्कृष्टरात्रि–सर्वजघन्यदिवसरूपे खलु 'दिवसंसि' दिवसे 'सूरिए' सूर्य. 'दुपोरिसिं छायं निव्वत्तेइ' द्विपौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति पुरुषस्य प्रकाश्यवस्तु नो वा द्विगुणां छायां निर्वर्त्तयतीति भावः। कदा द्विपौरुषी छाया भवतीत्याह 'तं जहा' तद्यथा 'उग्गमणमुहुत्तंसि य अत्थमणमुहुत्तंसि य' उद्गमनमुहूर्त्ते च अस्तमनमुहूर्त्ते च उदयास्तसमये इत्यर्थः। तच्च 'लेस्सं' लेश्यां स्वतेजोरूपां 'अभिवुड्ढेमाणे वा' अभिवर्धयन् वा 'निव्वुड्ढे माणे वा' निर्वर्धयन् वा लेश्यां हापयन् वा, उदयसमये लेश्यां वर्धयन् अस्तमनसमये च लेश्यां हापयन् हीनां कुर्वन् वा द्विपौरुषीं छायां सूर्यो निर्वर्त्तयतीतिभावः। इति प्रथमप्रतिपत्तेर्भेदद्वयस्य स्पष्टी-करणम्।१।

अथ द्वितीयप्रतिपत्तेर्भेदद्वयस्य स्पष्टीकरणमाह–'तत्थ णं जे ते' इत्यादि, 'तत्थ णं' तत्र द्वयोर्मध्ये ये ते द्वितीयाः प्रतिपत्तिवादिनः यत् 'एवमाहंसु' एवं–वक्ष्यमाणप्रकारेणाहुः यत् 'ता' तावत् 'अत्थि णं से दिवसे' अस्ति भवति खलु स दिवसः 'जंसि णं दिवसंसि' यस्मिन् खलु दिवसे 'सूरिए' सूर्यः 'दुपोरिसिं छायं निव्वत्तेइ' द्विपौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति। 'अहवा' अथवा 'अत्थि णं' अस्ति खलु 'से दिवसे' स दिवसः 'जंसि णं दिवसंसि' यस्मिन् खलु दिवसे 'सूरिए' सूर्यः 'नो किंचिवि' नो नैव काञ्चिदपि किञ्चिन्मात्रामपि 'पोरिसिं छायां' पौरुषीं छायां 'निव्वत्तेइ' निर्वर्त्तयति, 'ते' ते द्वितीयाः प्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' एवम् वक्ष्यमाण

कारणेन अनुपदं प्रदर्श्यमानं कारणमाश्रित्य 'आहंसु' आहुः-कथयन्ति। तदेव दर्शयति 'ता जया णं' इत्यादि। 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वब्भंतरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ' सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ते उक्कोसए' उत्तमकाष्ठाप्राप्तः परमप्रकर्षतां प्राप्तः अतएव उत्कर्षकः सर्वोत्कृष्ट. 'अट्ठारसमुहुत्ते दिवसे भवइ' अष्टादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति 'जहण्णिया' जघन्यिका सर्वलघ्वी 'दुवालसमुहुत्ता राई भवइ' द्वादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति 'तंसि च णं दिवसंसि' तस्मिश्च खलु दिवसे अष्टादशमुहूर्त्तपरिमितदिवसद्वादशमुहूर्त्तपरिमितरात्रिरूपे दिवसे सूरिए' सूर्यः 'दुपोरिसीं छायं निव्वत्तेइ' द्विपौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति, कदा ? इत्याह 'तंजहा' इत्यादि। 'तं जहा' तद्यथा तथाहि-'उग्गमणमुहुत्तंसि य' उद्गमनमुहूर्त्ते-उदयकाले च अत्र मुहूर्त्तशब्दः कालवाची, एवं सर्वत्रापि। तथा 'अत्थमणमुहुत्तंसि य' अस्तमनमुहूर्त्ते सूर्यास्तकाले चेति। कथमित्याह-'लेस्स' लेश्यां स्वतेजोरूपाम् 'अभिवुड्ढेमाणे वा' अभिवर्धयन् वा 'निव्वुड्ढेमाणे वा' निर्वर्धयन् ह्रापयन् वेति। तथा-'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरिए' सूर्यः 'सव्वबाहिरं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ' सर्वबाह्यं मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति 'तया णं' तदा खलु 'उत्तमकट्ठपत्ता' उत्तमकाष्ठा प्राप्ता परमप्रकर्षसंपन्ना अतएव 'उक्कोसिया' उत्कर्षिका सर्वोत्कृष्टा 'अट्ठारसमुहुत्ता राई भवइ' अष्टादशमुहूर्त्ता रात्रिर्भवति 'जहण्णए' जघन्यकः सर्वलघुः 'दुवालसमुहुत्ते दिवसे भवइ' द्वादशमुहूर्त्तो दिवसो भवति, 'तंसि च णं' 'दिवसंसि' तस्मिंश्च तादृशे पूर्वोक्तरात्रि दिवसप्रमाणरूपे दिवसे 'सूरिए' सूर्यः 'णो' नैव 'किंचिवि' किञ्चिदपि किञ्चिन्मात्रामपि 'पोरिसीं छायां' पौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति, कदेति दर्शयति-'तं जहा' तद्यथा तथाहि-'उग्गमणमुहुत्तंसि य' उद्गमनमुहूर्त्ते उदयकाले च तथा 'अत्थमणमुहुत्तंसि य' अस्तमनमुहूर्त्ते अस्तकाले च 'नो चेव णं' नैव च खलु 'लेस्सं' लेश्यां स्वतेजोरूपाम् 'अभिवुड्ढेमाणे वा' अभिवर्धयन् वा 'निव्वुड्ढेमाणे वा' निर्वर्धयन् वेति। दिवसपरमहानिरात्रिपरमवृद्धिरूपे दिवसे सूर्यः स्वलेश्याया वृद्धिं हानिं वा अकुर्वन् उदयकाले अस्तकाले च कदाचिदपि किञ्चिन्मात्रामपि पौरुषीं छायां नो निर्वर्त्तयतीति भावः ॥सू० २॥

पूर्वं परतीर्थिकानां प्रतिपत्तिद्वयं, तत्स्पष्टीकरणं च श्रुत्वा गौतमो भगवन्तं स्वमतविषये प्रश्नयति-'ता कइकट्ठं' इत्यादि।

मूलम् :—ता कइकट्ठंते सूरिए पोरिसिं छायं निव्वत्तेइ आहिए। त्ति वएज्जा। तत्थ खलु इमाओ छण्णउई पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-तत्थेगे एवमाहंसु-ता अत्थि णं से देसे जंसि च णं देसंसि सूरिए एगपोरिसिं छायं निव्वत्तेइ, एगे एवमाहंसु।१। एगे पुण एवमाहंसु-ता अत्थि णं से देसे जंसिच णं देसंसि सूरिए दुपोरिसिं छायं

निव्वत्तेइ, एगे एवमाहंसु ।२। एवं एएणं अभिलावेणं णेयव्वं जाव–एगे पुण एवमाहंसु–ता अत्थि णं से देसे जंसि च णं देसंसि सूरिए छण्णउइ–पोरिसिं छायं णिव्वत्तेइ, एगे एवमाहंसु ।९६। तत्थ णं जे ते एवमाहंसु–ता अत्थि णं से देसे जंसि च णं देसंसि सूरिए एगपोरिसिं छायं णिव्वत्तेइ, ते एवमाहंसु–ता सूरियस्स णं सव्वहेट्ठिमाओ सूरियप्पडिहिओ वहित्ता अभिणिसिट्ठाहिं लेस्साहि ताविज्जमाणेहिं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए वहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ जावइयं उड्ढं उच्चत्तेणं एवइयाए एगाए अद्धाए एगेणं छायाणुमाणप्पमाणेणं ओमाए एत्थ णं से सूरिए एगपोरिसिं छायं निव्वत्तेइ ।१। तत्थ णं जे ते एवमाहंसु–ता अत्थि णं से देसे जंसि च णं देसंसि सूरिए दुपोरिसिं छायं निव्वत्तेइ, ते एवमाहंसु–ता सूरियस्स णं सव्वहेट्ठिमाओ सूरियप्पडिहिओ वहित्ता अभिणिसिट्ठाहिं लेस्साहिं ताविज्जमाणेहिं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए वहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ जावइयं सूरिए उड्ढं उच्चत्तेणं एवइयाहिं दोहिं अद्धाहिं दोहिं छायाणुमाणप्पमाणेहिं ओमाए एत्थ णं से सूरिए दुपोरिसिं छायं णिव्वत्तेइ ।२। एवं णेयव्वं जाव तत्थ जे ते एवमाहंसु–ता अत्थि णं से देसे जंसि च णं देसंसि सूरिए छण्णउइपोरिसिं छायं णिव्वत्तेइ, ते एवमाहंसु–ता सूरियस्स णं सव्वहिट्ठिमाओ सूरियप्पडिहिओ वहित्ता अभिणिसिट्ठाहिं लेस्साहिं ताविज्जमाणीहिं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए वहुसमरमाणिज्जाओ भूमिभागाओ जावइयं सूरिए उड्ढं उच्चत्तेणं एवइयाहिअ छण्णउईए अद्धाहिं छण्णउईए छायाणुमाणप्पमाणेहिं ओमाए, एत्थ णं से सूरिए छण्णउइ-पोरिसिं छायं णिव्वत्तेइ ।९६।।सू० ३।।

छाया–तावत् कतिकाष्ठां ते सूर्यः छायां निर्वर्त्तयति? आख्यातमिति वदेत् । तत्र खलु इमाः षण्णवतिः प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः तं जहा तत्र एके एवमाहुः–अस्ति खलु स देशः–यस्मिंश्च खलु देशे सूर्यः एकपौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति एके पुनः एवमाहुः–तावद् अस्ति स देशः यस्मिंश्च खलु देशे सूर्यः द्वि पौरुषीं छायां निर्वर्तयति, एके एवमाहुः ।२। एवं एतेन अभिलापेन नेतव्यं यावत् एके पुनः एवमाहुः—तावत् अस्ति खलु स देशः यस्मिंश्च खलु देशे सूर्यः षण्णवतिपौरूषीं छायां निर्वर्त्तयति, एके एवमाहुः । ९६। तत्र खलु ये ते एवमाहुः-तावत् अस्ति खलु स देशः यस्मिंश्च खलु देशे सूर्य· एकपौरूषीं छायां निर्वर्त्तयति, ते एवमाहुः—तावत् सूर्यस्य खलु सर्वाधस्तनात् सूर्यप्रतिधेः वहिस्तात् अभिनिस्सृष्टाभिः लेश्याभिः तप्यमानाभि· अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः बहु समरमणीयात् भूमिभागात् यावत्कम् ऊर्ध्वमुच्चत्वेन एतावता एकेन अध्वना एकेन छायानुमानप्रमाणेन अवमितः अत्र स सूर्यः एक पौरूषों छायां निर्वर्त्तयति ।१। तत्र खलु ये ते एवमाहुः तावत् अस्ति खलु स देशः यस्मिंश्च खलु देशे सूर्यः द्विपौरूषों छायां निर्वर्त्तयति ते एवमाहुः तावत् सूर्यस्य खलु सर्वाधस्तनात् सूर्यप्रतिधे वहिस्तात् अभिनिस्सृष्टाभिः

लेश्याभिः तप्यमानाभिः अस्याः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः बहुसमरमणीयाद् भूमिभागात् यावत्कं सूर्यः ऊर्ध्वमुच्चत्वेन एतावद्भ्यां द्वाभ्याम् अध्वभ्यां द्वाभ्यां छायानुमान-प्रमाणाभ्याम् अवमितः, अत्र खलु स सूर्यः द्विपौरूषीं छायां निर्वर्तयति ।२। एवं नेतव्यं यावत्-तत्र ये ते एवमाहुः तावत् अस्ति खलु स देशः यस्मिंश्च खलु देशे सूर्यः षण्णवतिपौरूषीं छायां निर्वर्त्तयति, ते एवमाहुः तावत् सूर्यस्य खलु सर्वाधस्तनात् सूर्यप्रतिधेः बहिस्तात् अभिनिस्सृताभिः लेश्याभि तप्यमानाभिः अस्याः खलु रत्नप्रभायाः पृथिव्याः बहुसमरमणीयात् भूमिभागात् यावत्कं सूर्यः ऊर्ध्वमुच्चत्वेन एतावद्भिः षण्णवत्या अध्वभिः षण्णवत्या छायानुमानप्रमाणैः अवमितः अत्र खलु स सूर्यः षण्णवतिपौरूषीं छायां निर्वर्त्तयति ॥९६॥सू०३॥

व्याख्या—'ता' तावत् 'कइकट्ठं' कतिकाष्ठां उत्कर्षेण किं प्रमाणं 'ते' तव भवतो मते 'सूरिए' सूर्यः 'पोरिसिं छायं' पौरुषीं पुरुषप्रमणाम् उपलक्षणात् कस्यापि प्रकाश्यवस्तुन-स्तत्प्रमाणां देशविभागेन छायां 'निव्वत्तेइ' निर्वर्त्तयति, एतद्विषये भवता किम् 'आहियं' आख्या तम् ! 'ति वएज्जा' इति वदेत् कथयतु हे भगवन् भगवान्। स्वमतेन देशविभागमाश्रित्य पौरुषीं छायां पृथक् २ तथा तथा–अनियतप्रमाणामग्रे वक्ष्यति, परतीर्थिकास्तु देशविभागेन प्रतिदिवसं प्रतिनियतामेव पौरुषीं छायां प्रतिपादयन्ति ततः प्रथमं तन्मता एव प्रतिपत्तीः प्रदर्श-यति–'तत्थ' इत्यादि। 'तत्थ खलु' तत्र देशविभागेन प्रतिदिवसं प्रतिनियतपौरुषीं छाया विषये 'इमाओ' इमाः अनुपदवक्ष्यमाणाः 'छण्णउई' षण्णवतिः षण्णवतिसंख्यकाः 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः परमतरूपा. 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ताः, 'तं जहा' तद्यथा ता यथा–'तत्थ' तत्र परतीर्थि कानां षण्णवतिप्रतिपत्तिवादिनां मध्ये 'एगे' एके प्रथमाः 'एवं' एवम्–वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति–'ता' तावत् 'अत्थि णं' अस्ति खलु 'से देसे' स एतादृशो देशः प्रदेशः 'जंसि-च णं देसंसि' यस्मिंश्च खलु देशे 'सूरिए' सूर्यः आगतः सन् 'एगपोरिसिं' एकपौरुषीं एक पुरुषपरिमितां पुरुषसमानामेव, पुरुषशब्दस्योपलक्षणत्वात् सर्वस्यापि प्रकाश्यवस्तुनः स्वस्व प्रमाणां 'छायं' छायां 'निव्वत्तेइ' निर्वर्त्तयति करोति, 'एगे' एके प्रथमाः 'एवं' एवम् पूर्वकथित-प्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति ।१। 'एगे पुण' एके द्वितीयाः पुनः 'एवं' एवम्–वक्ष्यमाण–प्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति–'ता' तावत् 'अत्थि णं से देसे' अस्ति खलु कोऽपि स देशः प्रदेशः 'जंसि च णं देसंसि' यस्मिंश्च खलु देशे 'सूरिए' सूर्यः समागतः सन् 'दुपोरिसिं छायं' द्विपौरुषीं द्विपुरुषप्रमाणां पुरुषस्य प्रकाश्यस्य कस्यापि वस्तुनः द्विगुणां छायां 'निव्वत्तेइ' निर्वर्त्तयति, उपसंहार. 'एगे' एके द्वितीयाः 'एवं' एवम् पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः–कथ-यन्ति ।२। 'एवं' एवम्–अनेनैव पूर्वोक्तेन प्रकारेण 'एएणं' एतेन पूर्वोक्तेन 'अभिलावेणं' अभिलापेन सूत्रपाठगमेन शेषं त्रिनवतिसंख्यकानां मध्यगतानां तृतीयप्रतिपत्तित आरम्य

पञ्चनवतितमप्रतिपत्तिपर्यन्तं तावत् 'नेयव्वं' नेतव्यं ज्ञातव्यं 'जाव' यावत् षण्णवतितम-प्रतिपत्तिसूत्रमायाति । तामेव षण्णवतितमां प्रतिपत्तिं सूत्रकारः स्वयं प्रदर्शयति 'ता अत्थि णं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'अत्थि णं से देसे' अस्ति विद्यते खलु सः देशः 'जंसि च णं देसंसि' यस्मिंश्च खलु देशे 'सूरिए' सूर्यः आगतः सन् 'छण्णउइपोरिसिं छायं' षण्णवतिपौरुषीं षण्ण-वतिपुरुषप्रमाणां पुरुषस्य प्रकाश्यवस्तुनश्च षण्णवतिगुणां छायां 'निव्वत्तेइ' निर्वर्त्तयति । मध्यगतास्त्रिनवतिसंख्यका आलापाश्च पूर्वोक्तरीत्या स्वयमेव विधातव्याः सुगमत्वान्न प्रदर्शिताः उपसंहारः 'एगे' एके षण्णवतितमप्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' पूर्वोक्तरीत्या 'आहंसु' आहुः कथयन्ति ।९६।

अथ भगवान् 'एते षण्णवतिप्रतिपत्तिवादिनः केन हेतुना एवं कथयन्ति ?' इति तेषां भावनिकां प्रदर्शयति—'तत्थ णं जे ते' इत्यादि । 'तत्थ णं जे ते' तत्र षण्णवतिप्रतिपत्तिवादिषु-मध्ये ये ते प्रथमाः 'एवं' एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति, तदेव दर्शयति—'ता अत्थि णं' इत्यादि, 'ता अत्थि णं से देसे जंसि च णं देसंसि सूरिए एगपोरिसिं छायं निव्वत्तेइ' अर्थः सुगमः पूर्वप्रदर्शितश्च, 'ते' प्रथमप्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' एवम् अनेन वक्ष्यमाणेन हेतुना 'आहंसु' आहुः कथयन्ति, तमेव हेतुं प्रदर्शयति—'ता सूरियस्स णं' इत्यादि 'ता' तावत् 'सूरियस्स णं' सूर्यस्य खलु 'सव्वहेट्ठिमाओ' सर्वाधस्तनात् सर्वथाऽधस्तनस्थितात् 'सूरियप्पडिहिओ' सूर्यप्रतिधेः सूर्यप्रतिधानात् सूर्यनिवेशात् सूर्यनिवेशस्थानादित्यर्थः 'वहित्ता' वहिस्तात् वहिर्भागे 'अभिणिसिट्ठाहिं' अभिनिस्सृष्टाभिः वहिर्निस्सृताभिरित्यर्थः 'लेस्साहिं' लेश्याभिस्तेजोरूपाभिः, कीदृशीभिः ? 'तविज्जमाणीहिं' तप्यमानाभिः सूर्यतेजसा तप्ताभिः सह 'इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए' अस्याः प्रसिद्धायाः रत्नप्रभायाः पृथिव्याः 'बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ' बहुसमरमणीयात् भूमिभागात् रत्नप्रभापृथिवीसमतलभूमिभागात् 'जावइयं' यावत्कं यावत्परिमितम् 'उड्ढं उच्चत्तेणं' उर्ध्वमुच्चत्वेन उच्चत्वमाश्रित्य ऊर्ध्वं स्थितः 'एवइ-याए' एतावता 'एगाए अद्धाए' एकेन अध्वना 'एगेणं छायाणुमाणपमाणेणं' एकेन छाया-नुमानप्रमाणेन प्रकाश्यवस्तुप्रमाणेन प्रकाश्यस्य वस्तुनो यमुद्देश्यमाश्रित्य प्रमाणमनुमीयते तेन, अत्राकाशप्रदेशे सूर्यसमीपे प्रकाश्यस्य वस्तुनः प्रमाणं साक्षात् परिग्रहीतुं न शक्यते किन्तु देशतः—अनुमानेन ततश्छायानुमानप्रमाणेनेत्युक्तम्, 'ओमाए' अवमितः अनुमितः यः प्रदेशः 'एत्थ णं' अत्र एकेन छायानुमानप्रमाणेन अनुमितप्रदेशे समागतः सन् 'सूरिए' सूर्यः 'एग-पोरिसिं छायं' एकपौरुषीं पुरुषप्रमाणां प्रकाश्यवस्तुप्रमाणां वा छायां 'निव्वत्तेइ' निर्वर्त-यति । अत्रेदं बोध्यम्—प्रथमं सूर्ये उदयमाने या लेश्या विनिर्गत्य प्रकाशमाश्रिताः ताभिः प्रकाश्य-वस्तुदेशे ऊर्ध्वं क्रियमाणाभिः किञ्चित्पूर्वाभिमुखमवनताभिः प्रकाश्येन वस्तुना च यः परि-

च्छिन्न आकाशप्रदेशः सन्ताप्यते तत्र समागतः प्रकाश्यवस्तुप्रमाणां छायां निर्वर्तयति एवमुत्तरत्रापि विज्ञेयम् ।१।

अथ द्वितीयप्रतिपत्तिभावं प्रदर्शयति—'तत्थ णं' इत्यादि । 'तत्थ णं' तत्र षण्णवतिप्रतिपत्तिवादिषु मध्ये खलु—'जे ते' ये ते द्वितीयाः 'एवं' एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति—'ता' तावत् 'अत्थि णं से देसे जंसि च णं देसंसि सूरिए दुपोरिसिं छायं निव्वत्तेइ' इति अर्थः सुगम एव पूर्वं प्रदर्शितश्च, 'ते' द्वितीयाः 'एवं' एवम्—अनेन हेतुना 'आहंसु' आहुः कथयन्ति, तमेव हेतुं प्रदर्शयति 'ता' इत्यादि, 'ता' तावत् 'सूरियस्स णं' सूर्यस्य खलु 'सव्वहेट्ठिमाओ' सर्वाधस्तनात् सर्वथाऽधोभागे स्थितात् 'सूरियप्पडिहिओ' सूर्यप्रतिधेः सूर्यनिवेशात् 'बहित्ता' बहिस्तात् 'अभिणिस्सिट्ठाहिं' अभिनिस्सृष्टाभिः बहिर्निर्गताभिः 'लेस्साहिं' लेश्याभिः तेजोरूपाभिः 'तविज्जमाणीहिं' तप्यमानाभिः तापं मुञ्चन्तीभि' सह 'इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए' अस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्याः 'बहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ' बहुसमरमणीयात् भूमिभागात् समतलभूमिभागात् 'जावइयं' यावत्कं यावत्परिमितम् 'सूरिए' सूर्यः 'उद्धं उच्चत्तेणं' ऊर्ध्वमुच्चत्वेन उच्चत्वमाश्रित्य ऊर्ध्वं स्थितः 'एत्तइयाहिं' एतावद्भ्यां 'दोहिं अद्धाहिं' द्वाभ्यामध्वभ्यां, 'दोहिं छायाणुमाणप्पमाणेहिं' द्वाभ्यां छायानुमानप्रमाणाभ्यां प्रकाश्यवस्तुप्रमाणाभ्याम् 'ओमाए' अवमितः अनुमितः परिच्छिन्नो यो देशः 'एत्थ णं' अत्र खलु देशे स्थितः सन् 'सूरिए दुपोरिसिं छायं णिव्वत्तेइ' सूर्यः द्विपौरुषीम् प्रकाश्यवस्तुनः पुरुषस्य वा द्विगुणां छायां निर्वर्त्तयतीति ।२। 'एवं' एवम्-अनेन अभिलाप प्रकारेण—एकैकप्रतिपत्तौ एकैकछायानुमानप्रमाणवृद्धिरूपेण 'णेयव्वं' नेतव्यं तावत् ज्ञातव्यं 'जाव' यावत् पञ्चनवतितमप्रतिपत्त्यभिलापः संपूर्णो भूत्वा षण्णवतितमप्रतिपत्त्यभिलापः प्रारभेत तावत्पर्यन्तमित्यर्थः सूत्रालापकाश्च स्वयमूहनीयाः । अथ षण्णवतितमप्रतिपत्तिभावनिकां सूत्रकारः स्वयं प्रदर्शयति—'तत्थ' इत्यादि, 'तत्थ' तत्र षण्णवतिप्रतिपत्तिवादिमध्ये 'जे ते' ये ते षण्णवतितमाः प्रतिपत्तिवादिनः सन्ति ते 'एवं' एवम्—वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति, 'तदेवाह—'ता' इत्यादि, 'ता' तावत् 'अत्थि णं' अस्ति विद्यते खलु 'से देसे' स देशः सूर्य—संस्थितिप्रदेशः 'जंसि च णं देसंसि' यस्मिंश्च खलु देशेऽवस्थितः सन् 'सूरीए' सूर्यः 'छण्णउइ पोरिसिं छायं' षण्णवतिपौरुषीं छायां पुरुषस्य अन्यस्य वा प्रकाश्यवस्तुनः षण्णवतिगुणां छायां 'निव्वत्तेइ' निर्वर्त्तयती करोतीति ये कथयन्ति ते 'एवं' एवम् अनेन वक्ष्यमाणेन कारणेन अग्रे कथ्यमानं कारणमाश्रित्येत्यर्थः 'आहंसु' आहुः कथयन्ति । तदेव कारणं प्रदर्शयति—'ता सूरियस्स णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'सूरियस्स णं' सूर्यस्य खलु 'सव्वहिट्ठिमाओ' सर्वाधस्तनात् 'सूरियप्पडिहिओ' सूर्यप्रतिधेः सूर्यनिवेशात् 'बहित्ता' बहिस्तात् बहिः 'अभिनिस्सिट्ठाहिं'

अभिनिस्सृष्टाभिः वहिर्निस्सृताभिरित्यर्थः 'लेस्साहिं' लेश्याभिः 'तविज्जमाणीहिं' तप्यमानाभिः सूर्यतेजसा तप्ताभिः सह 'इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए' अस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्याः 'वहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ' वहुसमरमणीयात् भूमिभागत् रत्नप्रभापृथिवीममतलभागात् 'जावइयं' यावत्कं' यावत्परिमितं 'सूरिए' सूर्यः 'उड्ढं उच्चत्तेणं' ऊर्ध्वम् उच्चत्वेन उच्चत्वमाश्रित्य ऊर्ध्वं वर्त्तते 'एवइयाहिं' एतावत्कै 'षण्णउईए' षण्णवत्या षण्णवतिसंख्यकैः 'अद्धाहिं' अध्वभिः 'छण्णउईए' षण्णवत्या षण्णवतिसंख्यकैः 'छायाणुमाणप्पमाणेहिं' छायानुमनप्रमाणैः छायाया अनुमानप्रमाणान्याश्रित्य सूर्यसमीपस्थितप्रकाश्यवस्तुप्रमाणस्य ग्रहणाशक्यत्वात् 'ओमाए' अव मितः अनुमितः अनुमानविषयीकृतो भवेत्, 'एत्थ णं' अत्र अस्मिन्देशे खलु 'सूरिए' सूर्यः 'छण्णाउइपोरिसिं छायां' षण्णवतिपौरुषीं षण्णवतिगुणां पुरुषादिसम्बन्धिनीं छायां 'निव्वत्तेइ' निर्वर्तयति रचयति पूर्वप्रदर्शितप्रदेशे पुरुषस्य प्रकाश्यवस्तुनो वा छायां षण्णवतिगुणा दीर्घा भवतीति भावः ॥सू० ३॥

उक्ता अन्यतीर्थिकानां षण्णवतिः प्रतिपत्तयः, ताश्च मिथ्यारूपाः अतोऽस्वीकरणीयाः सन्ति अथ भगवान् सम्यग्रूपं स्वमतं प्रकटयति– वयं पुण' इत्यादि ।

मूलम्—वयं पुण एवं वयामो–सूरिए–साइरेगअउणट्ठिपोरिसिं छायं निव्वत्तेइ । ता अवड्ढपोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गए वा सेसे वा ? ता तिभागे गए वा सेसे वा । ता पोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गए वा सेसे वा ? ता चउब्भागे गए वा सेसे वा । ता दिवड्ढपोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गए वा सेसे वा ? ता पंचभागे गए वा सेसे वा । एवं अद्धापोरिसिं छोढुं २ पुच्छा दिवसस्स भागं छोढुं छोढुं२ वागरणं जाव ता अवड्ढएगूणसट्ठिपोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गए वा सेसे वा ? ता एगूणवीसइसयभागे गए वा सेसे वा ? ता एगूणसट्ठिपोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गए वा सेसे वा ? बावीससहस्सभागे गए वा सेसे वा । ता साइरेगएगूणसट्ठिपोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गए वा सेसे वा ? ता णत्थि किंचि गए वा सेसे वा । तत्थ खलु इमा पणवीसनिविट्ठा छाया पण्णत्ता तं जहा–खंभछाया १, रज्जुच्छाया २, पागारछाया ३, पासायछाया ४, उच्चत्तछाया अणुलोमछाया ६, पडिलोमछाया ७, आरोविया छाया ८, उच्चारोविया छाया ९, समापडिहया छाया १०, खीलछाया ११, पंथछाया १२, पुरओ दग्गा पिट्ठओ दग्गा १३, पुरिमकट्ठभागोवगया छाया १४, पच्छिमकट्ठभागोवगया १५, छायाणुवादिणी १६, कट्ठाणुवादिणी १७, छायाइकंपदीहा सगडच्छाया तत्थ

णं इमा अट्ठविहा गोलच्छाया पण्णत्ता तं जहा-गोलच्छाया १८, अवड्ढ गोलच्छाया १९, गोलच्छाया २०, अवड्ढगोलच्छाया २१, गोलावलिच्छाया २२, अवड्ढगोलावलिच्छाया २३, गोलपुंजच्छाया २४, अवड्ढगोलपुंजच्छाया २५, ॥सू० ४॥

नवमं पाहुडं समत्तं ॥९॥

छाया—वयं पुनरेवं वदामः सूर्यः सातिरेकैकोनषष्टिपौरुषीं छायां निर्वर्त्तयति। तावत् अपार्धपौरुषी खलु छाया दिवसस्य किं गते वा शेषे वा ? तावत् त्रिभागे गते वा शेषेवा ३। तावत् पौरुषी खलु छाया दिवसस्य किं गते वा शेषे वा ? तावत् चतुर्भागे गते वा शेषे वा १। तावत् द्व्यर्धपौरुषी खलु छाया दिवसस्य किं गते वा शेषे वा ?। तावत् पञ्चभागे गते वा शेषे वा ?। एवम् अर्धपौरुषीं क्षिप्त्वा २ पृच्छा। दिवसस्य भागं क्षिप्त्वाऽऽख्याकरणं यावत् तावत् अपार्धैकोनषष्टिपौरुषी खलु छाया दिवसस्य किं गते वा शेषे वा ?। तावत् एकोनविंशतिशतभागे गते वा शेषे वा ?। तावत् एकोनषष्टिपौरुषी खलु छाया दिवसस्य किं गते वा शेषे वा ? द्वाविंशतिसहस्रभागे गते वा शेषे वा। तावत् सातिरेकैकोनषष्टिपौरुषी खलु छाया दिवसस्य किं गते वा शेषे वा ? तावत् नास्ति किञ्चिद्‌गते वा शेषे वा। तत्र खलु इमा पञ्चविंशतिविधा छाया प्रज्ञप्ता तद्यथा स्तम्भच्छाया१, रज्जुच्छाया २, प्राकारच्छाया ३, प्रासादच्छाया ४, उच्चत्वच्छाया५, अनुलोमच्छाया ६, प्रतिलोमच्छाया ७, आरोपिता छाया ८ उच्चारोपिता छाया ९ समा प्रतिहताछाया १०, कीलच्छाया ११, पान्थच्छाया १२, पुरत उदग्रा पृष्ठत-उदग्रा १३, पौरस्त्यकाष्ठभागोपगता छाया १४। पाश्चात्यकाष्ठभागोपगता १५, छायानुवादिनी १६, काष्ठानुवादिनी १७, छायातिक्रमपदीर्घा शकटच्छाया, तत्र खलु इमा अष्टविधा गोलच्छाया प्रज्ञप्ता, तद्यथा-गोलच्छाया१८, अपार्धगोलच्छाया १९, गोलच्छाया२०, अपार्धगोलच्छाया २१, गोलावलिच्छाया २२, अपार्धगोलावलिच्छाया २३, गोलपुञ्जच्छाया २४, अपार्धगोलपुञ्जच्छाया २५ ॥ सू०४

नवमं प्राभृतं समाप्तम् ॥९॥

व्याख्या—'वयं पुण' वयं पुनः 'एवं' एवम्-वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयामो' वदामः कथयाम.। तदेवाह-'सूरिए' इत्यादि 'सूरिए' सूर्यः 'साइरेगअउणट्ठिपोरिसिं' सातिरेकैकोनषष्टिपौरुषीम्, उदयसमयेऽस्तसमये च 'छायं' छायां 'निव्वत्तेइ' निर्वर्त्तयति। एतदेव स्पष्टयति-'ता अवड्ढ' इत्यादिः 'ता' तावत् 'अवड्ढपोरसी णं छाया' अपार्धपौरुषी खलु छाया, अपगतमर्द्धं यस्याः सा अपार्धा सा चासौ पौरुषीचेति-अपार्धपौरुषी छाया अर्धपौरुषी छायेत्यर्थः पुरुषस्य उपलक्षणात् प्रकाश्यस्य सर्वस्यापि वस्तुन इत्यग्रेऽपि विज्ञेयम्, अपार्धपौरुषी अर्धपुरुषप्रमाणेत्यर्थः छाया 'दिवसस्स' दिवसस्य 'किं' किम् कतमे भागे 'गए वा' गते वा व्यतीतेवा कतितमे 'सेसे वा' शेषे वा अवशिष्टे वा भागे भवति, अपार्धपौरुषी छाया दिवसस्य कतितमे भागे व्यतीते कतितमे वा भागेऽवशिष्टे भवतीति प्रश्नः

भगवानुत्तरमाह—'ता' इत्यादि, 'ता' तावत् 'ति भागे' त्रिभागे दिवसस्य भागत्रये 'गए वा' गते वा व्यतीते वा 'सेसे वा' शेषे वा अवशिष्टे वा, दिवसस्य 'भागत्रये गते' इति एकस्मिन्नन्तिमे भागे 'भागत्रये शेषे' इति दिवसस्यादिमे एकस्मिन् भागे अपार्धपौरुषी छाया भवतीति भावः। पुनः प्रश्नयति—'ता' तावत् 'पोरसी णं छाया' पौरुषी खलु संपूर्णपुरुष प्रमाणा छाया 'दिवसस्स' दिवसस्य 'किं गए वा सेसे वा' किं गते वा शेषे वा भवति ? अर्थः पूर्ववत् भगवानाह—'ता' तावत् 'चउब्भागे' दिवसस्य चतुर्भागे भागचतुष्टये गते वा, व्यतीते वा अस्तमनसमये इत्यर्थः 'सेसे वा' शेषे वा दिवसस्य भागचतुष्टयेऽवशिष्टे उद्गमनसमये इत्यर्थः संपूर्णपुरुषप्रमाणा छाया भवतीति । इयं छायाऽन्यत्र सर्वाभ्यंतर-मण्डलगतं सूर्यमाश्रित्य प्रोक्ता, उक्तश्च—"पुरिस-ति संकू पुरिससरीरं वा तओ पुरिसे निप्पन्ना पोरिसी, एवं सव्वस्स वत्थुणो जया सयप्पमाणा छाया भवइ तया पोरिसी हवइ, एयं पोरिसीपमाणं उत्तरायणस्स अंते, दक्खिणायणस्स आइए इक्कम्मि दिणे हवइ, अओ परं अद्धएगसट्ठिभागा अंगुलस्स दक्खिणायणे वड्ढंति. उत्तरायणे हस्संति। एवं मण्डले मण्डले अन्ना पोरिसी" इति छाया–पुरुष इति शङ्कुः, पुरुषशरीरं वा, ततः पुरुषे निष्पन्ना पौरुषी एवं सर्वस्य वस्तुनो यदा स्वप्रमाणा छाया भवति तदा पौरुषी भवति, एवं पौरुषीप्रमाणम् उत्तरायणस्य अन्ते, दक्षिणायनस्य आदौ एकस्मिन् दिने भवति, अतः परम् अर्धैकषष्टिभागा अंगुलस्य दक्षिणायने वर्धन्ते, उत्तरायणे ह्रासति, एवं मण्डले मण्डले अन्या पौरुषी, इति। अत इदं सकलमपि पौरुषीविभागपरिणामकथनं सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तर–मण्डलचारसमयमाश्रित्य विज्ञेयम् । तथा पुनः प्रश्नयति–'ता' तावत् 'दिवड्ढपोरसी णं' छाया, द्व्यर्धपौरुषी खलु द्वितीयायाः पौरुष्या अर्धं यत्र सा द्व्यर्धा, सा चासौ पौरुषी चेति तथा सार्धैक पुरुषप्रमाणा पौरुषीत्यर्थः, एतादृशी छाया 'दिवसस्स' दिवसस्य 'किं गते वा सेसे वा' किं–कतमे भागे गते वा अवशिष्टे वा भवतीति प्रश्नः। उत्तरमाह 'ता' तावत् 'पंचम-भागे' पञ्चमभागे 'गते वा सेसे वा' गते वा शेषे वा भवति, दिवसस्य पञ्चभागाः कल्प्यन्ते तत्र पञ्चमे भागे द्व्यर्धपौरुषी छाया भवतीति भावः। 'एवं' एवम् अनेन पूर्वोक्तेन क्रमेण अग्रेऽपि 'अद्धपोरिसिं' अर्धपौरुषीं प्रत्येकस्मिन् प्रश्ने 'छोढुं २' क्षिप्त्वा २ संवर्ध्य संवर्ध्ये-त्यर्थः 'पुच्छा' पृच्छा प्रश्नः कर्त्तव्या, तथा प्रत्येकस्मिन् उत्तरवाक्ये 'दिवसस्स' दिवसस्य 'भागं' भागमेकं 'छोढुं २' क्षिप्त्वा २ संवर्ध्य २, 'वागरणं' व्याकरणम् उत्तरं कर्त्तव्यम्। तच्चैवम्—"विपोरिसी णं' छाया दिवसस्स किं गए वा सेसे वा ? ता छब्भागे गए वा सेसे वा । ता अड्ढाइज्जपोरिसी णं छाया दिवसस्स किं गए वा सेसे वा ?, ता सत्त-भागे गए वा सेसे वा" इत्यादिरीत्या सूत्रालापकाः स्वयमूहनीयाः—कियत्पर्यन्त मित्याह—

'जाव' इत्यादि, जाव' यावत्-'अवड्ढएगूणसट्ठिपोरसी णं छाया' अपार्धैकोनषष्टि पौरुषी खलु छाया, अपगता अर्धा यस्याः सा अपार्धा, सा चासौ एकोनषष्टिरिति अपार्धै-कोनषष्टिः सार्धाष्टपञ्चाशद्रूपा, सा च पौरुषीति अपार्धैकोनषष्टिपौरुषी खलु छाया 'दिवसस्स' दिवसस्य 'कि गए वा सेसे वा' किं गते वा शेषे वा भवति ? । उत्तरमाह—'ता' तावत्-'एगूणवीसइसयभागे' एकोनविंशतिशतभागे' दिवस्य एकोनविंशतिशतभागशरणे एकोनविंशति-शततमे भागे 'गए वा सेसे वा' गते वा शेषे वा आपार्धैकोनषष्टिपौरुषी छाया भवतीति भावः । प्रश्नयति-'ता' तावत् 'एगूणसट्ठिपोरिसी णं छाया' एकोनषष्टिपौरुषी खलु छाया 'दिवसस्स' दिवसस्य 'किं गए वा सेसे वा' किं गते वा शेषेवा भवतीति प्रश्नः । उत्तर-माह—'बावीस हस्सभागे' द्वाविंशतिसहस्रभागे, दिवसस्य द्वाविंशति सहस्रभागकरणे द्वाविंशति-सहस्रतमे भागे 'गए वा सेसे वा' गते वा शेषे वा एकोनषष्टिपौरुषीछाया भवति । पुनः प्रश्नयति 'ता' तावत् 'साइरेगएगूणसट्ठिपोरिसी णं' सातिरेकैकोनषष्टिः साधिका अधि-केन सहिता किञ्चिदधिका एकोनषष्टिरिति सातिरेकैकोनषष्टिः, सा चासौ पौरुषी चेति साति-रेकपौरुषी खलु छाया' छाया 'दिवसस्स' दिवसस्य किं गए वा सेसे वा' किं गते वा शेषे वा भवतीति प्रश्नः । उत्तरमाह —'ता' तावत् 'णत्थि किंचि गए वा सेस वा' नास्ति न भवति एतादृशी पौरुषी छाया दिवसस्य किञ्चिन्मात्रोऽपि भागे गते वा शेषेवेति ॥ 'तत्थ' तत्र छायाविचारे खलु 'इमा' इमाः वक्ष्यमाणा 'पणवीसनिविट्ठा' पञ्चविंशतिनिविष्ठा पञ्च-विंशतिनिवेशवत्यः, पञ्चविशतिप्रकारसंनिवेशयुक्ता 'छाया' छाया 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ता, 'तं जहा' तद्यथा-खंभछाया' स्तम्भछाया, स्तम्भवद्दीर्घा छाया १ 'रज्जुच्छाया' रज्जुच्छाया दवरिकाछाया रज्जुवत्तिर्यग्भूता छाया २, पागारच्छाया' प्राकारच्छाया, प्रकारो नगरवेष्टनभित्तिः, तदाकारा छाया ३ 'पासायच्छाया' प्रासादच्छाया 'प्रासादो धनिनां गृहम्' इति वचनात् प्रासादवद्वि-स्तीर्णा छाया ४, 'उच्चत्तच्छाया' उच्चत्वच्छाया शिखरवदुच्चत्वमाश्रित्य छाया ५, 'अणु-लोमच्छाया' अनुलोमच्छाया सरलछाया ६, 'पडिलोमच्छाया' प्रतिलोमच्छाया वक्रच्छाया, 'आरोविया छाया' आरोपिता छाया आरोपितस्य यष्ट्यादेश्छाया, ८, 'उच्चारोविया छाया' उच्चारोपिता छाया ऊर्ध्वीकृतयष्ट्यादेश्छाया ९, समापडिहया छाया' समाऽप्रतिहता समा समतया हस्ते गृहीता अतएव अप्रतिहता केनापि वस्तुना न प्रतिहता या यष्टिः तस्याश्छाया १०, 'खीलच्छाया' कीलच्छाया-कीलस्य काष्ठकीलस्य लोहकीलस्य वा छाया ११, 'पंथच्छाया' मार्गे चलतश्छाया १२, 'पुरओ दग्गा पिट्ठओ दग्गा' पुरतउदग्रा पृष्ठतउदग्रा-पूर्वं पुरतः अग्रे हस्तमूर्ध्वीकृत्य पश्चादधः करोति, तस्यैतादृशस्य हस्तस्य छाया पुरतः पृष्ठतश्चोदग्रा छाया कथ्यते १३, 'पुरिमकट्ठभागोवगया' पौरस्त्यकाष्ठभागोपगता, पौरस्त्ये सूर्यमधिकृत्य

पूर्वस्यां दिशि स्थापितकाष्ठभागमुपगता छाया १४, 'पच्छिमकट्ठभागोवगया' पाश्चात्य-काष्ठभागोपगता एवं पाश्चात्ये सूर्यमधिकृत्य पश्चिमायां दिशि स्थापितकाष्ठभागमुपगता छाया १५, 'छायाणुवादिणी' छायानुवादिनो छायानुवादकारिणी छाया प्रमाणकारिणी छाया १६, 'कट्ठानुवादिणी' काष्ठानुवादिनी काष्ठप्रमाणकारिणी छाया १७,छायाइकंपदीहा सगडच्छाया' छायादि कम्पदीर्घा शकटच्छाया छायादिकम्पनकारिणीत्वेन दीर्घा लम्बा शकटच्छाया गन्त्री छाया 'तत्थ' तत्र तस्यां छायायां खलु 'इमा' इयं वक्ष्यमाणा 'अट्ठविहा' अष्टविधा अष्टप्रकारा 'गोलच्छाया' गोलाकारा वर्त्तुला छाया 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ता, 'तं जहा' तद्यथा-'गोलच्छाया' 'गोलच्छाया-गोलवद्वर्त्तुला छाया १८, अवड्ढगोलच्छाया' अपार्धगोलच्छाया-अर्धगोल-च्छाया १९, 'गोलगोलच्छाया' गोलगोलच्छाया गोलैर्बहुभिर्गोलैर्मिलित्वा यो निष्पादित एको गोलः स गोलगोलः, तस्य छाया वलयाकारा २०,'अवड्ढगोलगोलच्छाया' अपार्धगोलगोलच्छाया अर्धगोलच्छाया काचनिर्मितबालक्रीडनकगोलाकारा २१, 'गोलावलिच्छाया' गोलावलि-च्छाया-गोलानाम्-अनेकगोलानां या आवलिः पंक्तिः सा गोलावलिः, तस्याश्छाया मध्याह्नसूर्या-कारा २२ 'अवड्ढगोलावलिच्छाया' अपार्धगोलावलिच्छाया-अर्धगोलावलिच्छाया पूर्णिमा मध्यरात्रिवर्त्तिचन्द्राकारा २३, 'गोलपुंजच्छाया' गोलपुञ्जच्छाया, गोलानां पुञ्जः-समूहः तस्य छाया गम्भीरगर्त्ताकारा २४, 'अवड्ढगोलपुञ्जच्छाया' अपार्धगोलपुञ्जच्छाया; गोलसमूहस्यार्धं तस्य छाया अर्धगम्भीरगर्त्ताकारा २५, इति ॥सू० ४॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापक-प्रविशुद्ध-गद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहुच्छत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त "जैनशास्त्रा-चार्य" पदभूषित-कोल्हापुर राजगुरु बालब्रह्मचारि-जैनशास्त्राचार्य-जैनधर्मदिवाकर श्रीघासीलालव्रति-विरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिका-ख्यायां व्याख्यायाम्

नवमम् प्राभृतं समाप्तम् ॥९॥

॥ श्रीरस्तु ॥

॥ दशमं प्राभृतम् ॥

गतं नवमं प्राभृतम् तत्र सूर्यस्य पौरुषी छाया निर्वर्त्तनं प्रदर्शितम्। अथ दशमं प्राभृतं प्रारभ्यते, तत्र पूर्वं द्वारगाथायां 'जोएत्ति किं ते आहिए' योग इति किं ते आख्यात इति प्रतिज्ञातमिति तद्विषयमत्र दशमे प्राभृते प्रतिपादयिष्यते. अत्र द्वाविंशतिः प्राभृतप्राभृतानि सन्ति, तत्र प्रथमे प्राभृतप्राभृते नक्षत्रपरिपाटी, प्रतिपाद्यते-'ता जोगे त्ति' इत्यादि।

मूलम्-ता जोगेत्ति वत्थुस्स आवलियानिवाए आहिएत्ति वएज्जा। ता कहं ते जोगेत्ति वत्थुस्स आवलियाणिवाए आहिए ? त्ति वएज्जा। तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—तत्थेगे एवमाहंसु-ता सव्वे वि णं णक्खत्ता कत्तियादिया भरणिपज्जवसाणा पण्णत्ता एगे एवमाहंसु ॥१॥ एगे पुण एवमाहंसु-ता सव्वे वि णं नक्खत्ता मघादिया अस्सेसापज्जवसाणा पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ॥२॥ एगे पुण एवमाहंसु-ता सव्वे वि णं नक्खत्ता धणिट्ठाइया सवणपज्जवसाणा पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ॥३॥ एगे पुण एवमाहंसु ता सव्वे वि णं णक्खत्ता अस्सिणीआदिया रेवईपज्जवसाणा पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ॥४॥ एगे पुण एवमाहंसु ता सव्वे वि णं णक्खत्ता भरणीआइया अस्सिणीपज्जवसाणा पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ॥५॥ वयं पुण एवं वयामो-ता सव्वे वि णं णक्खत्ता अभिईआदिया उत्तरासाढापज्जवसाणा पण्णत्ता, तं जहा—अभिई सवणो जाव उत्तरासाढा ॥सू० १॥

॥दसमस्स पाहुडस्स पढमं पाहुडं समत्तं॥१०।१॥

छाया—तावत् योग इति वस्तुनः आवलिकानिपात आख्यात इति वदेत्।तावत् कथं ते योग इति वस्तुनः आवलिकानिपात आख्यातः! इति वदेत्। तत्र खलु इमाः पञ्च प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—तत्रैके एवमाहुः तावत् सर्वाण्यपि खलु नक्षत्राणि कृत्तिकादिकानि भरणीपर्यवसानानि प्रज्ञप्तानि, एके एवमाहुः।१। एके पुनः एवमाहुः—तावत् सर्वाण्यपि खलु नक्षत्राणि मघादिकानि अश्लेषापर्यवसानानि प्रज्ञप्तानि, एके एवमाहुः।२। एके पुनः एवमाहुः—तावत् सर्वाण्यपि खलु नक्षत्राणि धनिष्ठादिकानि श्रवणपर्यवसानानि प्रज्ञप्तानि, एके एवमाहुः।३। एके पुनः एवमाहुः—तावत् सर्वाण्यपि खलु नक्षत्राणि अश्विन्यादिकानि रेवती पर्यवसानानि प्रज्ञप्तानि, एके एवमाहु।४। एके पुनः एवमाहुः-तावत् सर्वाण्यपि खलु नक्षत्राणि भरण्यादिकानि अश्विनी पर्यवसानानि प्रज्ञप्तानि, एके एवमाहुः।५। वयं पुनः एवं वदामः--तावत् सर्वाण्यपि खलु नक्षत्राणि अभिजिदादिकानि उत्तराषाढापर्यवसानानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अभिजित् १ श्रवणः २ यावत् उत्तराषाढा २७॥ सू० १॥

व्याख्या— 'ता जोगेत्ति' इति। 'ता' तावत्—आस्तां तावदन्यत् कथनीयं साम्प्रतमेतावदेव कथ्यते-यत् 'जोगेत्ति' योग इति 'वत्थुस्स' वस्तुनः नक्षत्रजातस्य 'आवलियानिवाए' आवलिकानिपातः आवलिकया पंक्त्या क्रमेणेत्यर्थः निपातः चन्द्रसूर्यैः सह संपातः संयोगः स एव योग इति 'आहिए' आख्यातः कथितो मया 'त्ति वएज्जा' इति वदेत् स्वशिष्येभ्यः कथयेत्। भगवता एवमुक्ते गौतमः पृच्छति 'ता कहं ते' इत्यादि, 'ता' तावत् प्रथमं हे भगवन्! 'ते' त्वया 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'जोएत्ति' योग इति 'वत्थुस्स' वस्तुनः नक्षत्रजातस्य 'आवलियाणिवाए' आवलिकानिपातः क्रमेण चन्द्रसूर्यैः सह संपातः 'आहिए' आख्यातः कथितः, तस्य कः प्रकारः? 'त्तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु भगवान् अथात्र भगवान् प्रथममन्यतीर्थिकाणां प्रतिपत्तीः प्रदर्शयति 'तत्थ खलु' इत्यादि, 'तत्थ' तत्र नक्षत्राणां योगविषये खलु 'इमाओ' इमाः अग्रे प्रवक्ष्यमाणाः 'पंच' पञ्चेति पञ्चसंख्यकाः 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ताः कथिताः, 'तं जहा' तद्यथा ता यथा—'तत्थ' तत्र पञ्चसु प्रतिपत्तिवादिषु मध्ये 'एगे' एके प्रथमाः 'एवं' एवम्—वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति 'ता' तावत् 'सव्वे वि णं णक्खता' सर्वाणि समस्तानि अपि खलु नक्षत्राणि 'कत्तियादिया भरणी पज्जवसाणा' कृत्तिकादीनि भरणीपर्यवसानानि कृत्तिकात आरभ्य भरणीपर्यन्तानि सर्वेषां नक्षत्राणामादौ कृतिका अन्ते भरणी इति 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि। उपसंहारः—'एगे' एके प्रथमाः 'एवं' एवं पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति।१। 'एगे पुण' एके द्वितीयाः पुनः 'एवं' एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति—'ता' तावत् 'सव्वे वि णं णक्खत्ता' सर्वाण्यापि खलु नक्षत्राणि 'मघाइया अस्सेसापज्जवसाणा' मघादिकानि अश्लेषापर्यवसानानि मघात आरभ्य अश्लेषापर्यन्तानि सर्वेषां नक्षत्राणां आदौ मघा, अन्ते अश्लेषा, इति 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि कथितानि, 'एगे एवमाहंसु' एके एवमाहुः द्वितीया एवं कथयन्ति।२। 'एगे पुण' एके तृतीयाः पुनः 'एवं' एवम्—वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति 'ता' तावत् 'सव्वा विणं णक्खत्ता' सर्वाण्यपि खलु नक्षत्राणि 'धणिट्ठादिया सवणपज्जवसाणा' धनिष्ठादिकानि श्रवणपर्यवसानानि धनिष्ठात आरभ्य श्रवणपर्यन्तानि सर्वेषां नक्षत्राणामादौ धनिष्ठा, अन्ते श्रवणः, इत्येवं रूपाणि 'पण्णता' प्रज्ञप्तानि 'एगे एवमाहु' एके तृतीया एवमाहुः।३। 'एगे पुण' एके चतुर्थाः पुनः 'एवं' एवम् वक्ष्यमाणप्रकरेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति—'ता' तावत् 'सव्वेवि णं णक्खत्ता' सर्वाण्यपि खलु नक्षत्राणि 'अस्सिणीआदिया रेवई पज्जवसाणा' अश्विन्यादिकानि रेवतीपर्यवसानानि, अश्विनीत आरभ्य रेवतीपर्यन्तानि सर्वेषां नक्षत्राणामादौ अश्विनी अन्ते रेवती, इत्येवं रूपाणि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि कथितानि, 'एगे एवमाहंसु' एके चतुर्था एवमाहुः।४। 'एगे पुण' एके पञ्चमा पुनः 'एवं' एवम् वक्ष्माणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः 'सव्वेवि णं णक्खत्ता' सर्वाण्यपि खलु नक्षत्राणि 'भरणीआदिया अस्सिणीपज्जवसाणा' भरण्यादिकानि अश्विनीपर्यवसानानि, भरणीत आरभ्य अश्विनीपर्यन्तानि, सर्वेषां नक्षत्राणामादौ भरणी,

अन्ते चाश्विनी, इत्येवंरूपाणि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि, 'एगे एवमाहंसु' एके पञ्चमा एवमाहुः ।५। तदेवमन्यतीर्थिकाणां पञ्च प्रतिपत्तीः प्रदर्श्य भगवान् साम्प्रतं स्वमतं प्रकटयति-'वयं पुण' इत्यादि, 'वयं पुण' वयं पुनः 'एवं' एवम्-वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयामो' वदामः कथयामः, तदेवाह-'ता' इत्यादि, 'ता'तावत् 'सव्वे वि णं णक्खत्ता' सर्वाण्यपि खलु नक्षत्राणि 'अभिईआदिया उत्तरासाढा पज्जवसाणा' अभिजिदादिकानि उत्तराषाढापर्यवसानानि, अभिजित आरभ्य उत्तराषाढापर्यन्तानि, सर्वेषां नक्षत्राणामादौ अभिजित्, अन्ते च उत्तराषाढा वर्त्तते, इत्येवं रूपाणि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि कथितानि, वस्तुतो नक्षत्राणां गणनाक्रमः अभिजिदादिकः उत्तराषाढापर्यवसान एव भवति, नान्यः क्रमः समीचीनः, अन्यतीर्थिकाणां पञ्चापि प्रतिपत्तयो मिथ्यारूपा अतो न स्वीकरणीयाः । तान्येव नक्षत्राणि दर्शयति-'अभिई' इत्यादि, अभिजित् १, 'सवणे' श्रवणः २, 'जाव' यावत्, यावत्पदेन धनिष्ठा ३, शतभिषक् ४, पूर्वाभाद्रपदः ५, उत्तराभाद्रपदः ६, रेवती ७, अश्विनी ८, भरणी ९, कृत्तिका १०, रोहिणी ११, मृगशिरः १२, आर्द्रा १३, पुनर्वसुः १४, पुष्य १५, अश्लेषा १६, मघा १७, पूर्वाफाल्गुनी १९, हस्तः २०, चित्रा २१, स्वातिः २२, विशाखा २३, अनुराधा २४, ज्येष्ठा २५, मूलम् २६, पूर्वाषाढा २७ इति संग्राह्यम् 'उत्तरासाढा' उत्तराषाढा २८, इत्यष्टाविंशतितमं नक्षत्रं वाच्यम् । अत्राशङ्क्यते यत्-सर्वेषां नक्षत्राणामादौ अभिजित् अन्ते च उत्तराषाढा, इत्येव कथम् ? इत्याह-इह सर्वेषामपि सुषमसुषमादि रूपकालविशेषाणामादि च युगं भवति, उक्तञ्च—'एए उ सुसमसुसमादओ अद्धाविसेसा जुगादिना सह पवत्तंति जुगंतेण सह समप्पंति' छाया-एते तु सुषमसुषमादयः अद्धाविशेषा युगादिना सह प्रवर्त्तन्ते, युगान्तेन सह समाप्यन्ते, इति । युगस्यादिश्च-श्रावणमासे बहुलपक्षे प्रतिपत्तिथौ बालवकरणे अभिजिन्नक्षत्रे चन्द्रेण सह योगं प्राप्ते सति भवति, तथा चोक्तम्—

"सावणबहुलपडिवए, बालवकरणे अभीइनक्खत्ते ।
सव्वत्थ पढमसमए, जुगस्स आइं वियाणाहि" ॥१॥

छाया—श्रावणबहुलप्रतिपदि, बालवकरणे अभिजिन्नक्षत्रे ।
सर्वत्र प्रथमसमये, युगस्य आदि विजानीहि ॥१॥

सर्वत्रेति भरते, ऐरवते, महाविदेहे चेति । अतएव भगवता कथितम्-अभिजिदादीनि उत्तराषाढापर्यवसानानि सर्वाणि नक्षत्राणि भवन्तीति ॥सू० १॥

इति-श्री-विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ-प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-श्रीशाहुच्छत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त "जैनशास्त्राचार्य" पदभूषित-कोल्हापुरराजगुरु बालब्रह्मचारि-जैनशास्त्राचार्य-जैनधर्मदिवाकर श्रीघासीलालव्रति-विरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रप्रज्ञप्तिप्रकाशिकाख्यातां व्याख्यायाम् दशमप्राभृते प्रथमं प्राभृतं समाप्तम् ॥१०-१॥

॥ दशमस्य प्राभृतस्य द्वितीयं प्राभृतप्राभृतम् ॥

पूर्वं दशमस्य प्रथमे प्राभृतप्राभृते नक्षत्रपरिपाटी प्रतिपादिता, अथात्र द्वितीये प्राभृतप्राभृते चन्द्रसूर्याभ्यां सह नक्षत्राणां योगविषयकं मुहूर्त्तपरिमाणं वक्तव्यं स्यादिति तद्विषयकमिदमादिमं सूत्रम्—'ता कहं ते मुहुत्तग्गे' इत्यादि

मूलम्— ता कहं ते मुहुत्तग्गे आहिए ? ति वएज्जा, ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अत्थि णक्खत्तं जं णं णवमुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तसट्ठिभाए मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ ? अत्थि णक्खत्ता जे णं पण्णरसमुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति २, अत्थि नक्खत्ता जे णं तीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ३, अत्थि णं-नक्खत्ता जे णं पणयालीसे मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ४, ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं कयरं नक्खत्तं जं णं नवमुहुत्ते सतावीसं च सत्तट्ठिभाए मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ१, कयरे णक्खत्ता जे णं पण्णरसमुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति २. कयरे णक्खत्ता जे णं तीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ३, कयरे णक्खत्ता जे णं पणयालीसे मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जएंति ४, ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं तत्थ जं तं णक्खत्तं जं णं णवमुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभाए मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ से णं एगे अभीई १. तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं पण्णरसमुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ते णं छ तं जहा—सतभिसया १, भरणी २' अद्दा ३, अस्सेसा ४, साई ५, जेट्ठा ६।२। तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं तीसं मुहुते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ते णं पण्णरस, तं जहा—सवणे १, धणिट्ठा २, पुव्वाभद्दवया ३, रेवई ४, अस्सिणी ५. कत्तिया ६; मग्गसिरा ७, पुस्सं ८ महा९ पुव्वाफग्गुणी १०; हत्थो ११; चित्ता १२, अणुराहा १३, मूलो १४, पुव्वआसाढा १५, ।३। तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं पणयालीसे मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति तेणं छ, तं जहा—उत्तराभद्दवया १, रोहिणी २, पुणव्वसू ३ उत्तरा-फग्गुणी ४, विसाहा ५, उत्तरासाढा ६, ।४। ॥सू० १॥

छाया—तावत् कथं ते मुहूर्त्ताग्रम् आख्यातम् ?? इति वदेत्, तावत् एतेषां खलु अष्टाविंशतेः नक्षत्राणां अस्ति नक्षत्रं यत् खलु नव मुहूर्त्तान् सप्तविंशतिं च सप्तषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति ?, सन्ति नक्षत्राणि यानि खलु पञ्चदश मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति २, । सन्ति नक्ष-त्राणि यानि खलु त्रिंशत् मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति ३। सन्ति खलु नक्षत्राणि

यानि खलु पञ्चचत्वारिंशद् मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति ४। तावत् एतेषां खलु अष्टाविंशतेः नक्षत्राणां कतरत् नक्षत्रं यत् खलु नव मुहूर्त्तान् सप्तविंशतिं च सप्तषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति १, कतराणि नक्षत्राणि यानि खलु पञ्चदश मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धं योग युञ्जन्ति २। कतराणि नक्षत्राणि यानि खलु त्रिंशद् मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति ३। कतराणि नक्षत्राणि यानि खलु पञ्चचत्वारिंशद् मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति ।४। तावत् एतेषां खलु अष्टाविंशतेः नक्षत्राणां तत्र यत्तन्नक्षत्रं यत् खलु नव मुहूर्त्तान् सप्तविंशतिं च सप्तषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति तत् खलु एकम् अभिजित् १। तत्र यानि तानि नक्षत्राणि यानि खलु पञ्चदशमुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति तानि खलु षट् तद्यथा—शतभिषक् १, भरणी २, आर्द्रा ३, अश्लेषा ४, स्वातिः ५, ज्येष्ठा ६।२। तत्र यानि तानि नक्षत्राणि यानि खलु त्रिंशत् मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति तानि खलु पञ्चदश, तद्यथा—श्रवणः १, धनिष्टा २, पूर्वाभाद्रपदा ३, रेवती ४, अश्विनी ५, कृत्तिका ६, मृगशिरः ७, पुष्यः ८, मघा ९, पूर्वाफाल्गुनी १०, हस्तः ११, चित्रा १२, अनुराधा १३ मूलम् १४, पूर्वाषाढा १५,।३ तत्र यानि तानि क्षत्राणि यानि खलु पञ्चचत्वारिंशत् मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति तानि खलु षट्, तद्यथा—उत्तराभाद्रपदा १, रोहिणी २, पुनर्वसु ३, उत्तराफाल्गुनी ४ विशाखा ५, उत्तराषाढा ६ ।४। ॥सू० १॥

व्याख्या— 'ता कहं ते' इति, 'ता' तावत् 'कहं' कथं हे भगवन् ! केन प्रकारेण 'ते' त्वया प्रतिनक्षत्रं 'मुहुत्तग्गे' मुहूर्त्ताग्रं चन्द्रेण सह नक्षत्राणां योगसम्बन्धि मुहूर्त्तपरिमाणम् 'आहियं' आख्यातम् ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् कथयतु । एवं गौतमेनोक्ते भगवानाह 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां खलु 'अट्ठावीसाए नक्खत्ताणं' अष्टाविंशतेः नक्षत्राणां मध्ये 'अत्थि' अस्ति 'नक्खत्तं' नक्षत्रं 'जं णं' यत्खलु नक्षत्रं 'नवमुहुत्ते' नवमुहूर्त्तान् 'सत्तावीसं च सत्तट्ठिभागे' सप्तविंशतिं च सप्तषष्टिभागान् 'मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्य, सप्तषष्टिभागयुक्तान् नवमुहूर्त्तान् यावत् 'चंदेण सद्धिं' चन्द्रेण सार्धं 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति १। 'अत्थि' सन्ति 'नक्खत्ता' नक्षत्राणि 'जे णं यानि खलु नक्षत्राणि 'पण्णरसमुहुत्ते' पञ्चदशमुहूर्त्तान् यावत् पञ्चदशमुहूर्तपर्यन्तमित्यर्थः 'चंदेण सद्धिं' चन्द्रेण सार्धं 'जोयं जोएंति' योगं युञ्जन्ति कुर्वन्ति २ । 'अत्थि' सन्ति 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु नक्षत्राणि 'तीसं मुहुत्ते' त्रिंशन्मुहूर्त्तान् त्रिंशन्मुहूर्त्तपर्यन्तं 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति' चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति ।३। 'अत्थि' सन्ति 'णक्खत्ता'नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'पणयालीसे मुहुत्ते'पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तान् यावत् 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति' चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति ४। एवं भगवता सामान्येन कथितान् चन्द्र नक्षत्रयोगरूपान् चतुरो विषयान् श्रुत्वा भगवान् गौतमो विशेषनिर्णयार्थं प्रत्येकमेकैकशः पृच्छति 'ता एएसि णं' इत्यादि, 'ता' तावत 'एएसि णं' एतेषां 'अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं'अष्टाविंशते र्नक्षत्रणां मध्ये 'कयरं' कतरत् किं नामकं 'णक्खत्तं' नक्षत्रं 'जे णं' यत् खलु नक्षत्रं 'नवमुहुत्ते

सत्तावीसं च सत्तट्ठिभाए मुहुत्तस्स' सप्तविंशति सप्तषष्टिभागयुक्तान् नवमुहूर्त्तान् यावत् 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति १। 'कयरे णक्खत्ता' कतराणि नक्षत्राणि किं नामधेयानि नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'पण्णरसमुहुत्ते' पञ्चदशमुहूर्त्तान् यावत् 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति' चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति २। 'कयरे णक्खत्ता' कतराणि नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'तीसं मुहुत्ते' त्रिशन्मुहूर्त्तान् यावत् 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति' चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति ३। 'कयरे' कतराणि कानि 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'पणयालीसे मुहुत्ते' पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तान् यावत् 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति' चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति ४।

एवं गौतमेन पृष्टे सति भगवान् एकैकशः कृत्वा चतुरोऽपि प्रश्नान् स्पष्टीकरोति—'ता एएसि णं' इत्यादि। 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां खलु 'अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं' अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां 'तत्थ' तत्र मध्ये 'ज तं णक्खत्तं' यत्तत् नक्षत्रं 'जे णं' यत् खलु 'णवमुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभाए मुहुत्तस्स' सप्तविंशति सप्तषष्टिभागयुक्तान् नवमुहूर्त्तान् यावत् 'चंदेणं सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति 'से णं' तत् खलु 'एगे अभीई' एकम् अभिजित् नक्षत्रमस्ति। एतत् कथम् ? इति प्रदर्श्यते इदमभिजिन्नक्षत्र सप्तषष्टिखण्डीकृतस्याहोरात्रस्यैकविंशतिभागान् यावत् चन्द्रेण सह योगं प्राप्नोति, मुहूर्त्तगतभागकरणार्थमेते च एकविंशतिरपि भागा एकस्याहोरात्रस्य त्रिशन्मुहूर्त्तप्रमाणत्वात् त्रिंशता गुण्यन्ते (२१ × ३०) जातानि त्रिंशदधिकानि षट्शतानि (६३०) कालमाश्रित्य एतावान् सीमाविस्तारोऽभिजिन्नक्षत्रस्य भवति, उक्तं चाऽन्यत्रापि "छच्चेव सया तीसा भागाणं अभिई सीमविक्खंभो। दिट्ठो सव्वडहरगो सव्वेहिं अणंतनाणीहिं"॥१॥ छाया—षडेव शतानि त्रिशत् भागानाम् अभिजित्सीमाविष्कम्भः दृष्टः सर्वलघुकः सर्वैः अनन्तज्ञानिभिः ॥१॥ इति तानि त्रिंशदधिकषट्शतानि (६३०) सप्तषष्ट्या विभज्यन्ते ततो लब्धा नवमुहूर्त्ताः एकस्य मुहूर्त्तस्य च सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागाः ($९\frac{२७}{६७}$) अतएवोक्तम् "अभिइस्स चंदजोगो सत्तट्ठीखंडिओ अहोरत्तो। भागा य सत्तवीसं ते पुण अहिया नव मुहुत्ता" ॥१॥ छाया—अभिजितः चन्द्रयोगः सप्तषष्टिखण्डितम् अहोरात्रम्। भागाश्च सप्तविंशतिः, ते पुनः अधिका नवमुहूर्त्ताः। १। इति।

अथ भगवान् पञ्चदशमुहूर्त्तविषयक द्वितीयं प्रश्नं स्पष्टयति—'तत्थ' इत्यादि। 'तत्थ' तत्र अष्टाविंशतिनक्षत्राणां मध्ये 'जे ते णक्खत्ता' यानि तानि नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'पण्णरसमुहुत्ते' पञ्चदशमुहूर्त्तान् यावत् 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति' चंद्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति 'णं' तानि खलु 'छ' षट् सन्ति 'तं जहा' तद्यथा 'सयभिसया'

'शतभिषक् १ 'भरणी' भरणी २, 'अद्दा' आर्द्रा ३, 'अस्सेसा' अश्लेषा ४, 'साई' स्वातिः ५, 'जेट्ठा' जेष्ठा ।६॥ एतेषां षण्णामपि नक्षत्राणां प्रत्येकं सप्तषष्टिखण्डीकृतस्याहोरात्रस्य सम्बन्धिनः सार्द्धान् त्रयस्त्रिंशद्भागान् (३३॥) यावत् चन्द्रेण सह योगो भवति तत एते सार्धत्रयस्त्रिंशद्भागाः मुहूर्त्तगतसप्तषष्टिभागकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते तत्र प्रथमं त्रयस्त्रिंशत् त्रिंशता गुण्यन्ते जातानि नवत्यधिकनवशतानि (९९०) ततो यदुपरि अर्धं तदपि त्रिंशता गुण्यते लब्धाः पञ्चदशमुहूर्त्तस्य सप्तषष्टिभागाः, तेषां पूर्वराशौ प्रक्षेपणे जातं पञ्चोत्तरं सहस्रमेकम् (१००५)। एवं चैतेषां षण्णां नक्षत्राणां प्रत्येकं कालमाश्रित्य सीमाविस्तारः पञ्चोत्तरसहस्रमुहूर्त्तगतसप्तषष्टिभागप्रमितः, अत्राह—

"सयभिसया भरणीए, अद्दा अस्सेसा साइ जिट्ठाए।
पंचोत्तरं सहस्सं भागाणं सीमाविक्खंभो ॥१॥

छाया—शतभिषग्भरण्योः आर्द्राऽश्लेषा—स्वातिज्येष्ठानाम्। पञ्चोत्तरं सहस्रं भागानां सीमाविष्कम्भः ॥१॥इति। अस्य पञ्चोत्तरसहस्रस्य सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धाः पञ्चदशमुहूर्त्ताः। अतएवोक्तं च-- "**सयभिसया भरणी य अद्दा अस्सेससाइजिट्ठा य। एए छन्नक्खत्ता, पण्णरसमुहुत्तसंजोगा**" ॥१॥ छाया -शतभिषक् भरणी च आर्द्रा अश्लेषा स्वातिः ज्येष्ठा च एतानि षड्नक्षत्राणि, पञ्चदशमुहूर्त्तसंयोगानि ॥२॥इति।

अथ त्रिंशन्मुहूर्त्तविषयकं प्रश्नं स्पष्टयति तत्थ' इत्यादि, 'तत्थ' तत्राष्टाविंशतिनक्षत्राणां मध्ये 'जे ते णक्खत्ता 'यानि तानि नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु '**तीसं मुहुत्ते**' त्रिंशन्मुहूर्त्तान् यावत् '**चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति**' चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति, '**ते णं पण्णरस**' तानि खलु पञ्चदश, 'तं जहा 'तद्यथा—'**सवणो**' श्रवणः १, '**धणिट्ठा**' धनिष्ठा २, '**पुव्वाभद्दवया** पुर्वाभाद्रपदा ३, '**रेवई**' रेवती ४, '**अस्सिणी**' अश्विनी ५, '**कत्तिया**' कृत्तिका ६, '**मग्गसिरं** 'मृगशिरः ७, '**पुस्सं**' पुष्यम् ८, '**मघा**' 'मघा' ९, **पुव्वाफग्गुणी**' पूर्वाफाल्गुनी १०, **हत्थो**' हस्तः ११, '**चित्ता**' ,चित्रा १२. '**अनुराहा**' अनुराधा १३, '**मूलो**' मूलम् १४, '**पुव्व-आसाढा**' पूर्वाषाढा १५, । तथाहि एतेषा पञ्चदशानां नक्षत्राणां कालमाश्रित्य प्रत्येकं सीमा विष्कम्भो मुहूर्त्तगतसप्तषष्टिभागानां दशोत्तरं सहस्रद्वयम् (२०१०] भवति । तत्कथमित्याह

एषु प्रत्येकं नक्षत्रमेकाहोरात्रस्य सप्तषष्टिसप्तषष्टिभागान् ($\frac{६७}{६७}$) यावत् चन्द्रेण सह योगं करोति ततोऽहोरात्रस्य त्रिशन्मुहूर्त्तप्रमाणत्वात्सप्तषष्टिः त्रिंशता गुण्यते तदा जायते यथोक्तो राशिः (२०१०)। तस्य सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धा त्रिंशत् मुहूर्त्ताः ३०॥इति

अथ चतुर्थं पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तविषयकं प्रश्नं स्पष्टयति—'तत्थ' इत्यादि । '**तत्थ**' तत्र अष्टाविंशतिनक्षत्राणां मध्ये 'जे ते **णक्खत्ता**' यानि तानि नक्षत्राणि 'जे णं' यानि

खलु 'पणयालीसं मुहुत्ते' पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तान् यावत् 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति' चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति 'तेणं छ' तानि खलु षट् सन्ति, 'तंजहा' तद्यथा 'उत्तराभद्दवया' उत्तराभाद्रपदा १, 'रोहिणी' रोहिणी २, 'पुणव्वसू, पुनर्वसुः ३, 'उत्तराफग्गुणी' उत्तराफाल्गुनी ४, 'विसाहा, विशाखा, ५, 'उत्तरासाढा, उत्तराषाढा ६ । एतेषां षण्णां नक्षत्राणां प्रत्येकं कालमाश्रित्य सीमाविष्कम्भः पञ्चदशोत्तरसहस्रत्रय (३०१५) मुहूर्त्तगतसप्तषष्टिभागप्रमितो वर्त्तते एष कथं जायते ? इत्याह— एषां प्रत्येकमेकस्याहोरात्रस्य एकार्धोत्तरं शतमेकं सप्तषष्टिभागान् $(\frac{१००॥}{६७})$ यावत् चन्द्रेण सह योगं करोति ततः एकार्धोत्तरं शतमेकं (१००॥) सप्तषष्टया गुण्यते तदा जायते पूर्वोक्तो राशिः (३०१५) इति अस्य पञ्चोत्तरसहस्रत्रयराशेः (३०१५) सप्तषष्टया भागो ह्रियते ततो लब्धाः पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः, उक्तञ्च—

"तिन्नेव उत्तराइं पुणव्वसू रोहिणी विसाहा य ।
एए छन्नक्खत्ता, पणयालमुहुत्तसंजोगा ॥१॥

छाया—त्रिन्न एव उत्तरा ३ (उत्तराभाद्रपदा १, उत्तरा फाल्गुनी २ उत्तराषाढा ३,)पुनर्वसुः ४, रोहिणी ५ विशाखा ६ च । एतानि षड् नक्षत्राणि पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तसंयोगानि ॥१॥
शेष नक्षत्रमुहूर्त्तविषये पुनश्चोक्तम्—

'अवसेसा नक्खत्ता णव पण्णरस हुंति तीसइमुहुत्ता ।
चंदंमि एस जोगो , नक्खत्ताणं समक्खाओ ॥२॥

छाया—अवशेषाणि नक्षत्राणि अभिजिदेकम् १, शतभिषगादयः षट् ६ श्रवणादयः पञ्चदश १५, इति द्वाविंशतिनक्षत्राणि क्रमेण नव पञ्चदश भवन्ति त्रिंशन्मुहूर्त्तानि चन्द्रे एष योगः नक्षत्राणां समाख्यातः॥ २। सू १ ॥

उक्तोऽयं नक्षत्राणां चन्द्रेण सह योगः, सांप्रतं सूर्येण सह योगं प्रदर्शयन्नाह—'ता एएसि णं' इत्यादि ।

मूलम्ः— ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अत्थि णक्खत्ते जे णं चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएइ ।१। अत्थि णक्खत्ता जे णं छ अहोरत्ते एक्कवीसं च मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति ।२। अत्थि णक्खत्ता जे णं तेरस अहोरत्ते बारस य मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति ३ । अत्थि णक्खत्ता जे णं वीसं अहोरत्ते तिण्णि य मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति ।४।

ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं कयरं णक्खत्तं चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएइ ।१। कयरे णक्खता जे णं छ अहोरत्ते एक्कवीसमुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति २। कयरे णक्खत्ता जे णं तेरस अहोरत्ते वारस य मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति ३। कयरे णक्खत्ता जे णं वीसं अहोरत्ते तिन्नि य मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति ४। ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं तत्थ जे से णक्खत्ते जे णं चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएइ से णं अभिई १। तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं छ अहोरत्ते एक्कवीसं च मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जो ति ते णं छ तं जहा—सयभिसया १, भरणी २, अद्दा ३, अस्सेसा ४' साई ५, जेट्ठा ६, २। तत्थ जे ते नक्खत्ता तेरसअहोरत्ते दुवालस य मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति ते णं पण्णरस तं जहा—सवणो १, धणिट्ठा २, पुव्वाभद्दवया ३, रेवई ४, अस्सिणी ५, कत्तिया ६, मग्गसिरं ७, पूसो ८, मघा- ९, पुव्वाफग्गुणी १०, हत्थो ११, चित्ता १२, अणुराहा १३, मूलो १४, पुव्वाआसाढा १५।३ तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं वीसं अहोरत्ते तिण्णि य मुहुत्ते सूरिए ण सद्धिं जोयं जोएंति ते णं छ तं जहा उत्तराभद्दवया १, रोहिणी २, पुणव्वसू ३, उत्तराफग्गुणी ४, विसाहा ५, उत्तरासाढा ६।४ ॥सू०२॥

छाया—तावत् एतेषां खलु अष्टाविंशतेः नक्षत्राणां अस्ति नक्षत्रं यत् खलु चत्वारि अहोरात्राणि षट् च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युनक्ति १। सन्ति नक्षत्राणि यानि खलु षड् अहोरात्रान् एकविंशतिं च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति २। सन्ति नक्षत्राणि यानि खलु त्रयोदश अहोरात्रान् द्वादश च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति ३। सन्ति नक्षत्राणि यानि खलु विंशतिं अहोरात्रान् त्रीन् च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योग युञ्जन्ति ४

तावत् एतेषां खलु अष्टाविंशतेः नक्षात्राणां कतरत् नक्षत्रं यत् चतुरोऽहोरात्रान् षट् च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युनक्ति १। कतराणि नक्षत्राणि यानि खलु षड् अहोरात्राणि एकविंशति मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति २। कतराणि नक्षत्राणि यानि खलु त्रयोदश अहोरात्रान् द्वादश च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति ३। कतराणि नक्षत्राणि यानि खलु विंशतिम् अहोरात्रान् त्रीन् मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति ४। तवत् एतेषां खलु अष्टाविंशतेः नक्षत्राणां तत्र यत्तत् नक्षत्रं यत् खलु चतुरोऽहोरात्रान् षट् च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युनक्ति तत् खलु अभिजित् १। तत्र यानि तानि नक्ष त्राणि यानि खलु षड् अहोरात्रान् एकविंशतिं च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति तानि खलु षट् तद्यथा—शतभिषक् १, भरणी २, आर्द्रा ३, अश्लेषा ४, स्वातिः ५ ज्येष्ठा ६, तत्र यानि तानि नक्षत्राणि त्रयोदश अहोरात्रान् द्वादश च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति तानि खलु पञ्चदश तद्यथा—श्रवणः १, धनिष्ठा २, पूर्वाभाद्रपदा ३, रेवती ४, अश्विनी ५, कृत्तिका ६, मृगशिरः ७, पुष्यम् ८, मघा ९, पूर्वाफाल्गुनी, हस्तः ११,

चित्रा १२, अनुराधा १३, मूलम् १४, पूर्वाषाढा १५।३। तत्र यानि तानि नक्षत्राणि यानि खलु विंशतिम् अहोरात्रान् त्रीन् च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति तानि खलु षड्, तद्यथा—उत्तराभाद्रपदा १, रोहिणी २, पुनर्वसुः ३, उत्तराफाल्गुनी ४, विशाखा ५, उत्तराषाढा ६।४। ।सू २॥

॥दशमस्य प्राभृतस्य द्वितीयं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०—२॥

व्याख्या—भगवानाह—'ता एएसि णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां खलु 'अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं' अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणाम् 'अत्थि' अस्ति भवति 'णक्खत्ते' नक्षत्रं 'जं णं' यत् खलु 'चत्तारि अहोरत्ते' चतुरोऽहोरात्रान् 'छच्च मुहुत्ते' षट् च मुहूर्त्तान् यावत् 'सूरिएण सद्धिं' सूर्येण सार्धं 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति १, तथा—'अत्थि' सन्ति 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'छ अहोरत्ते' षड् अहोरात्रान् एकविंशतिं च मुहूर्त्तान् यावत् 'सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति' सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति २। 'अत्थि' सन्ति 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'तेरस अहोरत्ते' त्रयोदश अहोरात्रान् 'बारस य मुहुत्ते' द्वादश च मुहूर्त्तान् 'सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति' सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति ३। 'अत्थि' सन्ति कानिचित् 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'वीसं अहोरत्ते' विंशतिमहोरात्रान् 'तिण्णि य मुहुत्ते' त्रीन् च मुहूर्त्तान् 'सूरिएणं सद्धिं जोयं जोएंति' सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति ४ ।

एवं भगवता सामान्येन कथितान् सूर्यनक्षत्रयोगविषयकान् चतुरो विषयान् श्रुत्वा गौतमः पृच्छति—'ता एएसि णं' इत्यादि, हे भगवन् 'ता' तावत् प्रथमं कथय 'एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं' एतेषां खलु अष्टाविंशतेः नक्षत्राणां मध्ये 'कयरं णक्खत्तं' कतरत् किं नामधेयं नक्षत्रम् 'जं णं' यत् खलु 'चत्तारि अहोरत्ते' चतुरोऽहोरात्रान् 'छच्च मुहुत्ते' षट् च मुहूर्त्तान् यावत् 'सूरिएण सद्धिं जोयं जोएइ' सूर्येण सार्धं योगं युनक्ति १, 'कयरे णक्खत्ता' कतराणि किंनामधेयानि नक्षत्राणि 'छच्च अहोरत्ते' षट् चाहोरात्रान् 'एक्कवीसं मुहुत्ते' एकविंशतिं मुहूर्त्तान् यावत् 'सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति' सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति २। 'कयरे णक्खत्ता' कतराणि कानि नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'तेरस अहोरत्ते' त्रयोदश अहोरात्रान् 'बारस य मुहुत्ते' द्वादश च मुहूर्त्तान् यावत् 'सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति' सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति ३। 'कयरे णक्खत्ता' कतराणि कानि नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'वीसं अहोरत्ते' विंशतिमहोरात्रान् 'तिण्णि य मुहुत्ते' त्रीन् च मुहूर्त्तान् यावत् 'सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति' सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति ४।

एवं गौतमेन पृष्टे सति भगवान् चतुरोऽपि प्रश्नान् एकैकशः स्पष्टीकरोति तत्र प्रथममाह—'ता एएसि णं' इत्यादि 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां खलु 'अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं' अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये 'तत्थ' तत्र तेषु नक्षत्रेषु 'जे से णक्खत्ते' यत्तत् नक्षत्रं 'चत्तारि अहोरत्ते'

चतुरोऽहोरात्रान् 'छच्च मुहुत्ते' षट् च मुहूर्त्तान् यावत् 'सूरिएण सद्धिं' सूर्येण सार्धं 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति 'से णं' तत् खलु 'अभीई' अभिजिन्नक्षत्रमवगन्तव्यम् । कथमित्याह—इह च यन्नक्षत्रमेकस्याहोरात्रस्य सम्बन्धिनो यावतः सप्तषष्टिभागान् चन्द्रेण सह योगं करोति तन्नक्षत्रं सूर्येण सह अहोरात्रस्य तावतः पञ्चभागान् यावत् योगं करोति, उक्तञ्च—'जं रिक्खं जावइए वच्चइ चंदेण भागसत्तट्ठी । तं पणभागे राइंदियस्स—सूरेण तावइए ।१। छाया—यत् ऋक्षं यावत्कान् व्रजति चन्द्रेण भागान् सप्तसष्टिम् । तत् पञ्च भागान् रात्रिन्दिवस्य तावत्कान् ॥१॥ इति । अत्रेदं बोध्यम्—यन्नक्षत्रमभिजिन्नामकं चन्द्रेण सह नवमुहूर्त्तान् सप्तविंशतिं च सप्तषष्टिभागान् यावत् योगं करोति तदत्र सूर्येण सह चतुरोऽहोरात्रान् षड् मुहूर्त्तान् यावत् योगं करोति १ । यानि च शतभिषगादीनि षड् नक्षत्राणि प्रत्येकं चन्द्रेण सह पञ्चदशमुहूर्त्तान् यावद् योगं कुर्वन्ति तान्यत्र प्रत्येकं सूर्येण सह षड् अहोरात्रान् एकविंशतिं च मुहूर्त्तान् यावत् योगं कुर्वन्ति २ । यानि च श्रवणादीनि पञ्चदश नक्षत्राणि प्रत्येकं त्रिंशद् मुहूर्त्तान् यावत् चन्द्रेण सह योगं कुर्वन्ति तान्यत्र सूर्येण सार्धं त्रयोदशाहोरात्रान् द्वादश च मुहूर्त्तान् यावत् योगं कुर्वन्ति ३ । यानि उत्तराभाद्रपदादीनि षड् नक्षत्राणि प्रत्येकं पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तान् यावत् चन्द्रेण सह योगं कुर्वन्ति तान्यत्र सूर्येण सार्धं विंशतिमहोरात्रान् त्रीन् मुहूर्त्तांश्च यावत् योगं कुर्वन्ति ४ । कोष्ठकं यथा—

चन्द्रसूर्याभ्यां सह नक्षत्राणां योगकोष्ठकम्

नक्षत्रनामानि	चन्द्रेण सह मुहूर्त्तानां योगः	सूर्येण सहाहोरात्राणां मुहूर्त्तानां च योगः
अभिजित् १	मु० ९—२७ सप्तषष्टिः भागाः ६७	अहो० ४ मु० ६
शतभिषक् १, भरणी २, आर्द्रा ३, अश्लेषा ४, स्वातिः ५, ज्येष्ठा ६ । प्रत्येकम्	१५	६—२१
श्रवणः १, धनिष्ठा २, पू० भा० ३, रेवती ४, अश्विनी ५, कृतिका ६, मृगशिरः ७, पुष्यं ८, मघा ९, पू० फा० १०, हस्तः ११, चित्रा-१२, अनुराधा १३, मूलम् १४, पू० फा०-१५, प्र०	३०	१३—१२
उ० भा० १, रोहिणी २, पुनर्वसुः ३, उ०-फा० ४, विशाखा ५, उ० षा० ६, प्र०	४५	२०—३

अयमाशयः—यदभिजिन्नक्षत्रं चतुरः अहोरात्रान् षड् मुहूर्त्तांश्च यावत् सूर्येण सह योगं करोति तदेवम्—सामान्यतया एकस्मिन् युगे एकं नक्षत्रं सप्तषष्टिवारान् चन्द्रेण सह योगं करोति, सूर्येण च सह पञ्चवारान् योगं करोतीति सिद्धान्तः। यदभिजिन्नक्षत्रं चन्द्रेण सह नवमुहूर्त्तान् सप्तविंशतिं च सप्तषष्टिभागान् यावत् योगं करोति, एनं राशिम् अभिजिन्नक्षत्रमेकस्मिन् युगे चन्द्रेण सह सप्तषष्टिवारान् यावद् योगं करोति, अतएव सप्तषष्ट्या गुणयेत् $(९\frac{२७}{६७}\times६७)$ ततो जायते त्रिंशदधिकानि षट् शतानि (६३०) तच्चैवम्—नवमुहूर्त्ताना सप्तषष्ट्या गुणने जातं त्र्यधिकं षट्शतम् (६०३) अस्मिन् राशौ सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागाः प्रक्षिप्यन्ते जातो यथोक्तो राशिः (६३०)। एकस्याहोरात्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्ताः भवन्त्यतः पूर्वोक्तो राशिः (६३०) त्रिंशता (३०) विभज्यते लब्धा एकविंशतिः (२१) सप्तषष्टि भागाः, एतदेव नक्षत्रमेकस्मिन् युगे पञ्च वारान् योगं करोति तत एकविंशतिः सप्तषष्टि भागा पञ्चभिर्विभज्यन्ते तत आगच्छन्ति चत्वारः ४, एकं च शेषं तदपि त्रिंशता गुणितं जातास्त्रिंशत् एतेऽपि पञ्चभिर्विभज्यन्ते लब्धा षट् ६ ततोऽभिजिन्नक्षत्रं चतुरः अहोरात्रान् षट् च मुहूर्त्तान् यावत सूर्येण सह योगं करोतीति सिद्धम् १। उक्तञ्च—

"अभिई छच्च मुहुत्ते चत्तारि य केवले अहोरत्ते।
सूरेण समं वच्चइ, इत्तो सेसाण वुच्छामि" ॥१॥

छाया—अभिजित् षट् च मुहूर्त्तान् चतुरः केवलान् अहोरात्रान्।
सूर्येण समं व्रजति, इतः शेषाणां वक्ष्यामि ॥१॥ इति ।१।

अथ द्वितीयं प्रश्नं स्पष्टयति—

'तत्थ' इत्यादि। 'तत्थ' तत्र 'जे ते णक्खत्ता' यानि तानि नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'छच्च अहोरत्ते' षट् च अहोरात्रान् 'एक्कवीसं च मुहुत्ते' एकविंशतिं च मुहूर्त्तान् 'सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति' सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति 'तेणं छ' तानि खलु षट्, 'तं जहा' तद्यथा—'सयभिसया' शतभिषक् १, 'भरणी' भरणी २, 'अद्दा' आर्द्रा ३, 'अस्सेसा' अश्लेषा ४, 'साई' स्वातिः ५, 'जेट्ठा' ज्येष्ठाः ६ इति। तत्कथमिति प्रदर्श्यते—एतानि षड् नक्षत्राणि प्रत्येकं चन्द्रेण सह पञ्चदशमुहूर्त्तान् योगं कुर्वन्ति, चन्द्रेण सह युगे सप्तषष्टिवारयोगकरणत्वेन पञ्चदश सप्तषष्ट्या गुण्यन्ते जातं पञ्चोत्तरमेकं सहस्रम् (१००५), ततः अहोरात्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तत्वेनास्य त्रिंशता भागो ह्रियते लब्धा अर्धेन सह त्रयस्त्रिंशत् (३३॥) सप्तषष्टिभागाः, ततो युगे सूर्येण सह पञ्चवारयोगकरणत्वेन एषा संख्या (३३॥) पञ्चभि-

विभज्यते तत्र त्रयस्त्रिंशतः पञ्चभिर्भागे हृते लब्धाः षट् (६) अहोरात्राः। तदुपरि शेषं सार्धं त्रयम् (३$\frac{1}{2}$)तदपि त्रिंशता गुणयित्वा पञ्चभिर्विभज्यते लब्धा एकविंशतिः (२१) इति, अतः षड् अहोरात्रान् ६ एकविंशतिं च मुहूर्त्तान् यावत् षण्णां मध्ये प्रत्येकं नक्षत्रम् सूर्येण सह योगं करोतीति सिद्धम्। अत्रोक्तम्—

"सयभिसया १ भरणी २ य अद्दा ३, अस्सेस ४ साइ ५ जिट्ठा ६ य।
वच्चंति मुहुत्ते इक्कवीसं छच्चेवऽहोरत्ते" ॥१॥

छाया–शतभिषक् १, भरणी २ च, आर्द्रा ३, अश्लेषा ४, स्वातिः ५ ज्येष्ठा ६ च।
व्रजन्ति मुहूर्त्तान् एकविंशतिं षट् चैवाहोरात्रान् इति।२।

अथ तृतियं प्रश्नं स्पष्टयति– 'तत्थ' इत्यादि, 'तत्थ' 'तत्र अष्टाविंशतिनक्षत्राणां मध्ये 'जे ते' णक्खत्ता' यानि तानि नक्षत्राणि 'तेरस अहोरत्ते' त्रयोदश अहोरात्रान् 'दुवालस य मुहुत्ते' द्वादश च मुहूर्त्तान् 'सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति' सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति 'ते णं' तानि खलु 'पण्णरस' पञ्चदश सन्ति, 'तं जहा' तद्यथा–'सवणो' श्रवणः 'धणिट्ठा' धनिष्ठा।२, 'पुव्वाभद्दवया' पूर्वाभाद्रपदा ३, 'रेवई' 'रेवतिः ४ 'अस्सिणी' अश्विनी ५, 'कत्तिया' 'कृत्तिका ६, 'मग्गसिरं 'मार्गशिरः ७, 'पूसो 'पुष्यम् ८, 'मघा' मघा ९, 'पुव्वाफग्गुणी' पूर्वाफाल्गुनी १०, 'हत्थो' हस्तः ११, 'चित्ता' चित्रा १२, 'अणुराहा' अनुराधा १३, 'मूलो' मूलम् १४, 'पुव्वाआसाढा' पूर्वाषाढा १५, इति, तथाहि—एतानि पञ्चदश नक्षत्राणि प्रत्येकत्वेन चन्द्रेण सह त्रिंशन्मुहूर्त्तान् योगं कुर्वन्ति तत्त्रिंशत् (३०) सप्तषष्ट्या गुण्यन्ते जाते दशोत्तरे द्विसहस्रे (२०१०) अस्य राशेस्त्रिंशता भागो ह्रियते लब्धाः सप्तषष्टिः (६७) ततः सप्तषष्ट्याः पञ्चभिर्भागो ह्रियते लब्धास्त्रयोदश (१३) अहोरात्राः, शेषं द्वयं (२) तदपि त्रिंशता गुण्यते जाता षष्टिः (६०) पञ्चभिर्भागे हृते लब्धाः द्वादश (१२) अतः– त्रयोदशाहोरात्रान् द्वादशमुहूर्त्तांश्च यावत् सूर्येण सह योगो भवतीति सिद्धम्। उक्तंचात्र–

"अवसेसा नक्खत्ता पण्णरस वि सूरसहगया जंति बारस चेव मुहुत्ते' तेरस य समे अहोरत्ते

छाया—अवशेषाणि नक्षत्राणि पञ्चदशापि सूर सहगता यान्ति द्वादश चैव मुहूर्त्तान्। त्रयोदश च समान् अहोरात्रान इति अत्र 'अवसेसा' इति पदेन ज्ञायते यदियं गाथा तत्रत्य प्रकरणेऽन्तिमा भवतुमर्हतीति विवेकः।३।

अथ चतुर्थं प्रश्नं स्पष्टयति— 'तत्थ 'इत्यादि, 'तत्थ' तत्र अष्टाविंशति नक्षत्राणां मध्ये 'जे ते एकणत्ता' यानि तानि नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'विसं अहोरत्ते' विंशतिमहोरात्रान् 'तिण्णि य मुहुत्ते' त्रींश्च मुहूर्त्तान् 'सूरि-

एणं सद्धिं जोयं जोएंति 'सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति 'तेणं छ' तानि खलु षट् सन्ति, 'तंजहा 'तद्यथा—'उत्तरा भद्दवया 'उत्तराभाद्रपदा १, 'रोहिणी' रोहिणी २, 'पुणव्वसू' पुनर्वसुः ३, 'उत्तराफग्गुणी' 'उत्तरफाल्गुनी ४, 'विसाहा 'विशाखा ५, उत्तरासाढा उत्तराषाढा ६, इति। तदेवं जायते— एतानि नक्षत्राणि प्रत्येकत्वेन चन्द्रेण सह पञ्चचत्वारिंशत् (४५) मुहूर्त्तान् यावत् योगं कुर्वन्ति ततः पञ्चचत्वारिंशत् सप्तषष्टया गुण्यन्ते जातानि पञ्चदशोत्तराणि त्रीणि सहस्राणि (३०१५) एतेषां त्रिशता भागो ह्रियते लब्धमर्धेन सहितं शतमेकम् (१००$\frac{१}{२}$)

अत्र शतस्य पञ्चभिर्भागे हृते लब्धाः विंशतिरहोरात्राः २०, उपरि यदर्धं, तदपि त्रिंशता गुण्यते जाताः पञ्चदश १५, एषां पञ्चभिर्भागे हृते लब्धं त्रयम् ३, इति विंशतिमहोरात्रान् त्रींश्च मुहूर्त्तान् यावत् सूर्येण सह योगो भवतीति सिद्धम्। विशेषबोधार्थं पूर्वस्थं कोष्ठकं द्रष्टव्यमिति सू०॥२॥

इति–श्री–विश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापक–प्रविशुद्ध–गद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–श्रीशाहुच्छत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त "जैनशास्त्राचार्य" पदभूषित–कोल्हापुरराजगुरु बालब्रह्मचारि–जैनशास्त्राचार्य–जैनधर्मदिवाकर श्रीघासीलालव्रति–विरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिकाख्यायां व्याख्यायाम् दशमप्राभृतेः द्वितीयं प्राभृतं समाप्तम् ॥१०–२॥

दशमस्य मूलप्राभृतस्य तृतीयं प्राभृतप्राभृतम् ।

व्याख्यतं दशमस्य मूलप्राभृतस्य द्वितीयं प्राभृतप्राभृतम्, तत्र चन्द्रसूर्याभ्यां सह नक्षत्राणां योगः प्रतिपादितः अथ तृतीयं प्राभृतप्राभृतं व्याख्यायते, अत्र नक्षत्रयोग-प्रसंगात्— 'कथमेवं भागानि नक्षत्राणि आख्यातानि,, इत्येवं व्याख्यास्यते, अनेन सम्बन्धेनायातस्यास्य तृतीयप्राभृतप्राभृतस्येदं सूत्रम्—'ता कहं ते एवं भागा' इत्यादि ।

मूलमः—ता कहं ते एवं भागा णक्खत्ता आहिया ? तिवएज्जा, ता एएसिणं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अत्थि णक्खत्ता पुव्वंभागा समखेत्ता तीसमुहुत्ता पण्णत्ता १। अत्थि णक्खत्ता पच्छंभागा समखेत्ता तीसमुहुत्ता पण्णत्ता २। अत्थि णक्खत्ता णत्तंभागा अवड्ढखेत्ता पण्णरसमुहुत्ता ३। अत्थि णक्खत्ता उभयंभागा दिवड्ढखेत्ता पणयालीसं मुहुत्ता पण्णत्ता ४। ता एएसिणं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं कयरे णक्खत्ता जे णं पुव्वंभागा समखेत्ता तीसंमुहुत्ता पण्णत्ता १। कयरे णक्खत्ता जे णं पच्छंभागा समखेत्ता तीसं मुहुत्ता पण्णत्ता २ । कयरे णक्खत्ता जे णं णत्तं भागा अवड्ढखेत्ता पण्णरसमुहुत्ता पण्णत्ता ३। कयरे णक्खत्ता जे णं उभयंभागा दिवड्ढखेत्ता पणयालीसंमुहुत्ता पण्णत्ता ४। ता एएसिणं अट्ठावीसाए नक्खत्ताणं तत्थ जे ते णक्खत्ता पुव्वंभागा समखेत्ता तीसं मुहुत्ता पण्णत्ता ते णं छ,तं जहा पुव्वभद्दवया १, कत्तिया २, महा ३, पुव्वाफग्गणी ४, मूलो ५, पुव्वासाढा ६।१। तत्थ जे ते णक्खत्ता पच्छंभागा समखेत्ता तीसं मुहुत्ता पण्णत्ता, ते णं दस तं जहा—अभिई १, सवणो २, धणिट्ठा ३, रेवई ४, अस्सिणी, मिगसिरं ६, पूसो ७, हत्थो ८, चित्ता ९, अणुराहा १०।२। तत्थ जे ते णक्खत्ता णत्तं भागा अवड्ढखेत्ता पण्णरसमुहुत्ता पण्णत्ता ते णं छ, तं जहा—सयभिसया १, भरणी २, अद्दा ३, अस्सेसा ४, साई ५, जेट्ठा ६,।३। तत्थ जे ते णक्खत्ता उभयं भागा दिवड्ढखेत्ता पणयालीसं मुहुत्ता पण्णत्ता ते णं छ, तं जहा—उत्तराभद्दवया १, रोहणी२' पुणव्वसू ३, उत्तराफग्गुणी ४ विसाहा ५, उत्तरासाढा ६।४॥सू०१॥

दसमस्स पाहुडस्स तइयं पाहुड समत्तं ॥१०।३

छाया—तावत् कथं ते एवं भागानि नक्षत्राणि आख्यातानि ? इति वदेत् । तावत् एतेषां खलु अष्टाविंशतेः नक्षत्राणां सन्ति नक्षत्राणि पूर्वभागानि समक्षेत्राणि त्रिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि १। सन्ति नक्षत्राणि पश्चाद्भागानि समक्षेत्राणि त्रिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि २। सन्ति नक्षत्राणि नक्तभागानि अपार्धक्षेत्राणि पञ्चदश मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि ३।

सन्ति नक्षत्राणि उभयभागानि द्व्यर्धक्षेत्राणि पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि ४।

तावत् एतेषां खलु अष्टाविंशतेः नक्षत्राणां कतराणि नक्षत्राणि यानि खलु पूर्वभागानि समक्षेत्राणि त्रिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि १। कतराणि नक्षत्राणि यानि खलु पश्चाद्भागानि समक्षेत्राणि त्रिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि २ कतराणि नक्षत्राणि यानि खलु नक्तंभागानि अपार्धं- क्षेत्राणि पञ्चदशमुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि ३। कतराणि नक्षत्राणि यानि खलु उभयभागानि द्व्यर्धक्षेत्राणि पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि ४।

तावत् एतेषां खलु अष्टाविंशते र्नक्षत्राणां तत्र यानि तानि नक्षत्राणि पूर्वभागानि समक्षेत्राणि त्रिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि तानि खलु षट्, तद्यथा—पूर्वाभाद्रपदा १, कृत्तिका २, मघा ३, पूर्वाफाल्गुनी ४, मूलम् ५, पूर्वाषाढा ६, ।१। तत्र यानि तानि नक्षत्राणि पश्चाद्भा- गानि समक्षेत्राणि त्रिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि तानि खलु दश, तद्यथा–अभिजित् १। श्रवणः २, धनिष्ठा ३, रेवती ४, अश्विनी ५, मृगशिरः ६, पुष्यम् ७, हस्तः ८, चित्रा ९, अनु- राधा १० ।२। तत्र यानि तानि नक्षत्राणि नक्तंभागानि अपार्धक्षेत्राणि पञ्चदशमुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि तानि खलु षट्, तद्यथा—शतभिषक् १, भरणी २, आर्द्रा ३, अश्लेषा ४, स्वातिः ५, ज्येष्ठा ६, ।३। तत्र यानि तानि नक्षत्राणि उभयभागानि द्व्यर्धक्षेत्राणि पञ्चचत्वा- रिंशन्मुहूर्त्तानि प्रज्ञप्तानि तानि खलु षट्, तद्यथा—उत्तराभाद्रपदा १, रोहिणी २, पुनर्वसुः ३, उत्तराफाल्गुनी ४, विशाखा ५, उत्तराषाढा ६, ।४।। सू० १।।

॥ दशमस्य प्राभृतस्य तृतीयं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०॥

व्याख्या—'ता कहं ते' इत्यादि, 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण हे भगवन् 'ते त्वया' एवं भागानि एवम्—अनेन वक्ष्यमाणप्रकारेण भागा येषां तानि एवंभागानि वक्ष्यमाण प्रकारभागसम्पन्नानि 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि 'आहिया' आख्यातानि 'त्ति' इति—एतद्विषयं 'वएज्जा' वदेत् वदतु कथयतु ममेति गौतमस्य प्रश्नः । भगवानाह—'ता' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां खलु 'अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं' अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये 'अत्थि' सन्ति कियन्ति 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि 'पुव्वंभागा' पूर्वभागानि पूर्वं दिवसस्य भागः पूर्वभागः प्रातः कालरूपः स चन्द्रयोगस्यादिमाश्रित्य विद्यते येषां तानि पूर्वभागानि, चन्द्रेण सह नक्षत्रयोगस्य यः प्रातः- काल आदिभागः स एव दिवसस्य पूर्वभागो व्यपदिश्यते, एतादृशपूर्वभागानीत्यर्थः 'समखेत्ता' समक्षेत्राणि, समं सम्पूर्णं क्षेत्रम्- अहोरात्ररूपं चन्द्रयोगमाश्रित्यास्ति येषां तानि समक्षेत्राणि प्रातः कालादारम्य सम्पूर्णाहोरात्रभोग्यानि अतएव 'तीसंमुहुत्ता' त्रिंशन्मुहूर्त्तानि त्रिंशन्मुहूर्त्तप्रमाणानि

'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि १। तथा-'अत्थि' सन्ति 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि कानिचित् यानि 'पच्छंभागा' पश्चाद्भागानि चन्द्रयोगस्यादिमाश्रित्य दिवसस्य सायंकालादारभ्य द्वितीयदिवससायंकालपर्यन्तभोग्यानि तानि पश्चाद्भागभोग्यानि कथ्यन्ते 'समखेत्ता' समक्षेत्राणि रात्रिन्दिवभोग्यानि 'तीसं मुहुत्ता' त्रिशन्मुहूर्त्तानि चन्द्रयोगस्यादिमाश्रित्य दिवसस्य पश्चाद्भागात्सायंकालादारभ्य द्वितीयदिवससायंकालपर्यन्तं त्रिशन्मुहूर्त्तभोग्यानि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि २। तथा-'अत्थि' सन्ति 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि कानिचित् यानि 'नत्तंभागा' नक्तं भागानि, नक्तं-रात्रौ चन्द्रयोगस्यादिमाश्रित्य भागः अवकाशो येषां तानि तथा, 'अवड्ढखेत्ता' अपार्धक्षेत्राणि अपगतमर्धं यस्य तदपार्धम्-अर्द्धमात्रं क्षेत्रं येषां चन्द्रयोगमाश्रित्य तानि-अपार्धक्षेत्राणि रात्रिमात्रक्षेत्राणि, अतएव 'पण्णरसमुहुत्ता' पञ्चदशमुहूर्त्तानि चन्द्रयोगमाश्रित्य पञ्चदशमुहूर्त्ता विद्यन्ते येषां तानि पञ्चदशमुहूर्त्तानि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि ३। तथा 'अत्थि' सन्ति 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि कानिचित् यानि 'उभयंभागा' उभयभागानि दिवसरात्रिभागानि चन्द्रयोगस्यादिमाश्रित्य भागो येषां तानि तथा एतानि कियत्प्रमितक्षेत्राणि सन्ति ? तत्राह-'दिवड्ढखेत्ता' द्व्यर्धक्षेत्राणि द्वितीयम् अर्धं यत्र तद् द्व्यर्धं सार्धमहोरात्रप्रमितं क्षेत्रं येषां तानि-प्रथमतया प्रातःकालादारभ्य सपूर्णमेकमहोरात्रं त्रिशन्मुहूर्त्तात्मकं पुनश्चार्द्धोऽहोरात्रः, द्वितीयदिवसमात्ररूपः पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकः न तु रात्रिभागः एतद्रूपं द्व्यर्धमिति सार्धमहोरात्ररूपं क्षेत्रं येषां तानि द्व्यर्धक्षेत्राणि, अतएव 'पणयालीसं मुहुत्ता' पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तानि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि ४। एवं भगवता सामान्येन प्रोक्ते विशेषजिज्ञासया भगवान् गौतमः पृच्छति 'ता एएसिणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसि णं अट्ठावीसाए नक्खत्ताणं' एतेषां खलु अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये 'कयरे णक्खत्ता' कतराणि कानि नक्षत्राणि 'पुव्वंभागा' पूर्वभागानि प्रातःकालव्यापीनि 'समखेत्ता' समक्षेत्राणि समस्ताहोरात्रभोग्यानि, 'तीसंमुहुत्ता' त्रिशन्मुहूर्त्तानि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि ११। तथा-'कयरे णक्खत्ता' कतराणि कानि नक्षत्राणि 'पच्छंभागा' पश्चाद्भागानि सायंकालव्यापीनि 'समखेत्ता' समक्षेत्राणि 'तीसंमुहुत्ता' त्रिशन्मुहूर्त्तानि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि १२। तथा-'कयरे णक्खत्ता' कतराणि कानि नक्षत्राणि 'णत्तंभागा' नक्तंभागानि-रात्रिभागानि-रात्रिमात्रभोग्यानि 'अवड्ढखेत्ता' अपार्धक्षेत्राणि—अर्धक्षेत्रभोग्यानि 'पण्णरसमुहुत्ता' पञ्चदशमुहूर्त्तानि रात्रिमात्रव्याप्तत्वात् पञ्च दशमुहूर्त्तमात्रयोगकारकाणि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि १३।

तथा-'कयरे णक्खत्ता' कतराणि कानि नक्षत्राणि 'उभयं भागा' उभयभागानि दिवस-रात्रिभागव्यापीनि 'दिवड्ढखेत्ता' द्व्यर्धक्षेत्राणि सार्धाहोरात्रयोगकारीणि एकः सम्पूर्णोऽहोरात्रः, द्वितीयाहोरात्रस्यार्धदिवसमात्ररूपम्, इत्येव द्व्यर्धक्षेत्राणि, अतएव 'पणयालीसं मुहुत्ता' पञ्च चत्वारिंशन्मुहूर्त्तानि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि १४। एवं गौतमेन प्रश्नचतुष्टये पृष्टे सति भगवान् चतुरोऽपि प्रश्नान् एकैकशः कृत्वा समाधत्ते-'ता एएसि णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं' एतेषां खलु अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां 'तत्थ' तत्र मध्ये 'जे ते णक्खत्ता' यानि तानि नक्षत्राणि 'पुव्वंभागा' पूर्वभागानि प्रातःकालव्यापीनि 'समखेत्ता' समक्षेत्राणि संपूर्णक्षेत्रचारीणि अतएव 'तीसं मुहुत्ता' त्रिंशन्मुहूर्त्तानि त्रिंशन्मुहूर्त्तभोग्यानि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि 'ते णं' तानि खलु 'छ' षट्, 'तं जहा' तद्यथा—'पुव्वपोट्ठवया' पूर्वप्रोष्ठपदा १, 'कत्तिया' कृत्तिका २, 'मघा' मघा ३, 'पुव्वाफग्गुणी' पूर्वाफाल्गुनी ४, 'मूलो' मूलम् ५, 'पुव्वा-साढा' पूर्वाषाढा इति ६। तथा—'तत्थ' तत्र अष्टाविंशतिनक्षत्रेषु 'जे ते णक्खत्ता' यानि तानि नक्षत्राणि 'पच्छंभागा' पश्चाद्भागानि सायंकालव्यापीनि 'समखेत्ता' समक्षेत्राणि अतएव 'तीसंमुहुत्ता' त्रिंशन्मुहूर्त्तानि त्रिंशन्मुहूर्त्तभोग्यानि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि 'ते णं दस' तानि खलु दश, 'तं जहा' तद्यथा—'अभीइ' अभिजित् १, 'सवणो' श्रवणः २, 'धणिट्ठा' धनिष्ठा ३, 'रेवई' रेवती ४, 'अस्सिणी' अश्विनी ५, 'मिगसिरं' मृगशिरः ६, 'पूसा' पुष्यम् ७, 'हत्थो' हस्तः ८, 'चित्ता' चित्राः ९, 'अणुराहा' अनुराधा १०,। अत्र दशसु नक्षत्रेषु श्रवणादीनि नवनक्षत्राणि समक्षेत्राणि सन्ति, एकमभिजिन्नक्षत्रं समक्षेत्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्ता-त्मकस्य सप्तषष्टिभागाः क्रियन्ते तेषु—एकविंशतिभाग (२१/६७) क्षेत्रभोग्यमस्ति तथापि अस्याभिजितः समक्षेत्रे एव गणना कृता व्यवहारनयमाश्रित्येति विवेकः। इति २।

तथा—'तत्थ' तत्र अष्टाविंशतिनक्षत्रेषु 'जे ते णक्खत्ता' यानि तानि नक्षत्राणि, णत्तं-भागा' नक्तंभागानि रात्रिमात्रव्यापीनि, अतएव 'अवड्ढखेत्ता' अपार्ध क्षेत्राणि अर्धक्षेत्रस्था-यीनि रात्रिमात्रस्थायित्वात् अतएव च पण्णरसमुहुत्ता' पञ्चदशमुहूर्त्तान पञ्चदशमुहूर्त्त-भोग्यानि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि ,ते णं छ' तानि खलु षट्, 'तं जहा' तद्यथा—'सयभिसया' शतभिषक् १, 'भरणी' भरणी २, 'अद्दा' आर्द्रा ३, 'अस्सेसा' अश्लेषा ४, 'साई' स्वातिः ५, 'जेट्ठा' ज्येष्ठा ६, इति ३।

'तत्थ' तत्र अष्टाविशति नक्षत्रेषु जे ते णक्खत्ता' यानि तानि नक्षत्राणि 'उभयंभागा' उभयभागानि दिवसरात्रिरूपभागद्वयव्यापीनि 'दिवड्ढखेत्ता' द्व्यर्धक्षेत्राणि सार्धाहोरात्रस्थायीनि प्रथमदिवसस्य प्रातःकाले चन्द्रेण सह योगमुपेत्य सम्पूर्णमहोरात्रं त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं भुक्त्वा पुन-स्तदुपरि द्वितीयदिवसस्य सायंकालपर्यन्तं पञ्चदशमुहूर्त्तांश्च यावत्तिष्ठन्ति, इत्येवं रूपं द्व्यर्धक्षेत्राणि

सन्ति, अतएव 'पणयालीसं मुहुत्ता' पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तानि पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तभोग्यानि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि 'ते णं छ' तानि खलु ष , 'तं जहा' तद्यथा – 'उत्तराभद्दवया' उत्तरा भाद्रपदा १, 'रोहिणी' रोहिणी २, 'पुणव्वसू' पुनर्वसुः ३, 'उत्तरा फग्गुणी' उत्तराफाल्गुनी ४, 'विसाहा' विशाखा ५, 'उत्तरासाढा' उत्तराषाढा ६ इति ४, एषां सर्वेषां नक्षत्राणामभिजिदादि क्रमेण स्पष्टीकरणभावना सूत्रकारः स्वयमग्रे चतुर्थे प्राभृतप्राभृते करिष्यते इति सू०।१॥

अष्टाविंशतिनक्षत्राणां पूर्वभागादि ज्ञानार्थं कोष्ठकम्

संख्या	नक्षत्रनामानि	किंभागानि	कियत्क्षेत्राणि	कियन्मुहूर्त्तानि
६	पूर्वाभाद्रपदा १ कृत्तिका २, मघा ३ पूर्वाफाल्गुनी ४, मूलम् ५ पूर्वाषाढा ६,	पूर्वभागानि	समक्षेत्राणि	३० त्रिंशन्मुहूर्त्तानि
१०	अभिजित् १, श्रवणः २ धनिष्ठा ३, रेवती ४, आश्विनी ५, मृगशिरः ६ पुष्यम् ७, हस्त ८, चित्रा ९, अनुराधा १०,	पश्चाद्भागानि	समक्षेत्राणि	३० त्रिंशन्मुहूर्तानि
६	शतभिषक् १, भरणी २, आर्द्रा ३, अश्लेषा ४, स्वातिः ५, जेष्ठा ६,	नक्तं भागानि	अपार्ध क्षेत्राणि	१५ पञ्चदशमुहूर्त्तानि
६	उत्तराभाद्रपदा १, रोहिणी, पुनर्वसुः ३, उत्तराफाल्गुनी ४, विशाखा ५, उत्तराषाढा ६।	उभय भागानि	१ द्व्यर्ध १२ क्षेत्राणि	४५ पञ्च चत्वारिंशन्मुहूर्त्तानि

इति श्री–विश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापक–प्रविशुद्ध-गद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–श्रीशाहुच्छत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त "जैनशास्त्राचार्य" पदभूषित–कोल्हापुर राजगुरु बालब्रह्मचारि–जैनशास्त्राचार्य–जैनधर्मदिवाकर श्रीघासीलालव्रति–विरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिका-ख्यायां व्याख्यायाम्

दशमस्य प्राभृतस्य तृतीयं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् १०–३॥

दशमस्य मूलप्राभृतस्य चतुर्थं प्राभतप्राभृतम्

तदेवं तृतोये प्राभृतप्राभृते चन्द्रेण सह नक्षत्राणां पूर्वभागादि निरूपितम् तत्प्रसङ्गात् चतुर्थं प्राभृतप्राभृतं व्याख्यायते, अत्र पूर्वोक्तानां चन्द्रेण सह योगस्यादिर्वक्तव्यः स्यात् यतो नक्षत्राणां पूर्वभागादिक योगस्यादिज्ञानमन्तरेण न ज्ञातुं शक्यते, अतोऽस्मिन् चतुर्थे प्राभृत-प्राभृते अभिजिदाद्यष्टाविंशतिनक्षत्राणां क्रमेण योगस्यादिं निरूपयन्नाह—'ता कहं ते जोगस्स आदी' इत्यादि।

मूलम्—ता कहं ते जोगस्स आदी अहिते? ति वएज्जा ता अभीइ सवणा खलु दुवे णक्खत्ता पच्छाभागा समखेत्ता साइरेगउणयालीसमुहुत्ता तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति, तओ पच्छा अवरं साइरेगं दिवसं, एवं खलु अभिइसवणा दुवे णक्खत्ता एगराइं एगंच साइरेगं दिवसं चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति, जोयं जोएत्ता जोयं अणुपरियट्टंति जोयं अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं धणिट्ठाणं समप्पंति।२। ता धणिट्ठा खलु णक्खत्ते पच्छा भागे समखेत्ते तीसंमुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, जोयं जोइत्ता तओ पच्छा राइं अवरंच दिवसं, एवं खलु धणिट्ठा णक्खत्ते एगं च राइं एगं च दिवसं चंदेणं सद्धिं जोयं जोएइ, जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ, अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं सयभिसयाणं समप्पेइ ३। ता सयभिसया खलु णक्खत्ते णत्तंभागे अवड्ढखेत्ते पण्णरसमुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोय जोएइ णो लभइ अवरं दिवसं, एवं खलु सयभिसया णक्खत्ते एगं राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ, जोयं अणुपरिएट्टित्ता पाओ चंदं पुव्वापोट्ठवयाणं समप्पेइ ४। ता पुव्वापोट्ठवया खलु णक्खत्ते पुव्वंभागे समखेत्ते तीसं मुहुत्ते तप्पढमयाए पाओ चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, तओ पच्छा अवरराइं' एवं खलु पुव्वापोट्ठवया णक्खत्ते एगं च दिवसं एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ' अणुपरियट्टित्ता पाओ चंदं उत्तरापोट्ठवयाणं समप्पेइ ५, ता उत्तरापोट्ठवया खलु णक्खत्ते उभयं भागे दिवड्ढखेत्ते पणयालीसमुहुत्ते तप्पढमयाए पाओ चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ अवरंच राइं तओ पच्छा अपरं दिवसं, एवं खलु उत्तरापोट्ठवया णक्खत्ते दो दिवसे एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं रेवईणं समप्पेइ ६। ता रेवई खलु णक्खत्ते पच्छं भागे समखेत्ते तीसं मुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, तओ पच्छा अवरं दिवसं एवं खलु रेवई णक्खत्ते

एगं राइं एगं च दिवसं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं अस्सिणीणं समप्पेइ ७। ता अस्सिणी खलु णक्खत्ते पच्छं भागे समखेत्ते तीसं मुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, तओ पच्छा अवरं दिवसं एवं खलु अस्सिणी णक्खत्ते एगं च राइं— एगं च दिवसं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ, अणुपरियट्टित्ता सायं चंदं भरणीणं समप्पेइ ८। ता भरणी खलु णक्खत्ते णत्तं भागे अवड्ढखेत्ते पण्णरसमुहुत्ते तप्पढमयाए सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, णो लभइ अवरं दिवसं, एवं खलु भरणी णक्खत्ते एगं राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ अणुपरियट्टित्ता पाओ चंदं कत्तियाणं समप्पेइ ९। ता कत्तिया खलु णक्खत्ते पुव्वंभागे समखेत्ते तीसं मुहुत्ते तप्पढमयाए पाओ चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ तओ पच्छा राइं एवं खलु कत्तिया णक्खत्ते एगं च दिवसं एगं च राइं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ, अणुपरियट्टित्ता पाओ चंदं रोहिणीणं समप्पेइ १०। रोहिणी जहा उत्तराभद्दवया ११। मगसिरं जहा धणिट्ठा ।१२। अद्दा जहा सयभिसया १३, पुणव्वसू जहा उत्तराभद्दवया १४। पुस्सो जहा धणिट्ठा १५। अस्सेसा जहा सयभिसया १६। महा जहा पुव्वाफग्गुणी १७। पुव्वाफग्गुणी जहा पुव्वाभद्दवया १८। उत्तराफग्गुणी जहा उत्तराभद्दवया १९। हत्थो चित्ता य जहा धणिट्ठा २०-२१। साई जहा सयभिसया २२। विसाहा जहा उत्तराभद्दवया २३। अणुराहा जहा धणिट्ठा २४ जिट्ठा जहा सयभिसया २५। मूलं २६, पुव्वासाढा य जहा पुव्वाभद्दवया २७। उत्तरासाढा जहा उत्तराभद्दवया २८, ।।सू० १०।।

दसमस्स पाहुडस्स चउत्थं पाहुडपाहुडं समत्तं ।।१०-४।।

छाया—तावत् कथं त्वया योगस्य आदिः आख्यातः? इति वदेत्, तावत् अभिजिच्छ्रवणौ खलु द्वे नक्षत्रे पश्चाद्भागे समक्षेत्रे सातिरेकैकोनचत्वारिंशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया सायं चन्द्रेणसार्धं योगं युङ्क्तः, ततः पश्चाद् अपरं सातिरेकं दिवसम्, एवं खलु अभिजिच्छ्रवणौ द्वे नक्षत्रे एकरात्रिम्, एकं च सातिरेकं दिवसं चन्द्रेण सह योगं युङ्क्तः, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयतः योगम् अनुपरिवर्त्य सायं चन्द्रं धनिष्ठायै समर्पयतः ।२। तावत् धनिष्ठा खलु नक्षत्र पश्चाद्भागं समक्षेत्रं त्रिंशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया सायं चन्द्रेण सार्धं योगंयुनक्ति, योगं युक्त्वा ततः पश्चात् रात्रिम् अपरं च दिवसम्, एवं खलु धनिष्ठा नक्षत्रम् एकां च रात्रिम् एकं च दिवसं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, अनुपरिवर्त्य सायं चन्द्रं शतभिषजे समर्पयति ।३। तावत् शतभिषक् खलु नक्षत्रं नक्तंभागम् अपार्धक्षेत्र पञ्चदशमुहूर्त्तं तत्प्रथमतया सायं चन्द्रेण सार्धं योगं

युनक्ति, नो लभते अपरं दिवसम्, एवं खलु शतभिषग् नक्षत्रं एकां रात्रिं चन्द्रेण साधँ योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, योगम् अनुपरिवर्त्य प्रातः चन्द्रं पूर्वाप्रोष्ठपदायै समर्पयति ।४। तावत् पूर्वाप्रोष्ठपदा खलु नक्षत्र पूर्वभागं समक्षेत्र त्रिशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया प्रातः चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, ततः पश्चात् अपररात्रिम्, एवं खलु पूर्वाप्रोष्ठपदानक्षत्रम् एकं च दिवसम् एकां च रात्रिं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, अनुपरिवर्त्य प्रातः चन्द्रम् उत्तराप्रोष्ठपदायै समर्पयति ।५। तावत् उत्तरा प्रोष्ठपदा खलु नक्षत्रम् उभयभागं द्व्यर्धक्षेत्र पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया प्रातः चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति-अपरां च रात्रिं, ततः पश्चात् अपरं दिवसम्, एवं खलु उत्तरापोष्ठपदा नक्षत्रं द्वौ दिवसौ एकां च रात्रिं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, अनुपरिवर्त्य सायं चन्द्रं रेवत्यै समर्पयति ।६। तावत् रेवती खलु नक्षत्रं पश्चाद्भागं समक्षेत्रं त्रिशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया सायं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, ततः पश्चात् अपरं दिवसम् एवं खलु रेवतीनक्षत्रम् एकां रात्रिम् एकं चदिवसं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, अनुपरिवर्त्य सायं चन्द्रम् अश्विन्यै समर्पयति ।७। तावत् अश्विनी खलु नक्षत्रं पश्चाद्भागं समक्षेत्रं त्रिशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया सायं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, ततः पश्चात् अपरं दिवसम् एव खलु अश्विनी नक्षत्रम् एकां च रात्रिम् एकं च दिवसं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, अनुपरिवर्त्य सायं चन्द्रं भरण्यै समर्पयति ।८। तावत् भरणी खलु नक्षत्रं नक्तंभागम् अपार्धक्षेत्र पञ्चदशमुहूर्त्तं तत्प्रथमतया सायं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, नो लभते अपरं दिवसम्, एवं खलु भरणी नक्षत्रम् एकां रात्रिं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, अनुपरिवर्त्य प्रातः चन्द्रं कृत्तिकायै समर्पयति ।९। तावत् कृत्तिका खलु नक्षत्रं पूर्वभागं समक्षेत्रं त्रिशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया प्रातः चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति ततः पश्चात् रात्रिम्, एवं खलु कृत्तिकानक्षत्रम् एकं च दिवसम्, एकांच रात्रिं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, अनुपरिवर्त्य प्रातः चन्द्र रोहिण्यै समर्पयति ।१०। रोहिणी यथा उत्तराभाद्रपदा ११। मृगशिरः यथा धनिष्ठा ।१२। आर्द्रा यथा शतभिषक् ।१३। पुनर्वसुः यथा-उत्तराभाद्रपदा ।१४। पुष्यं यथा धनिष्ठा ।१५। अश्लेषा यथा शतभिषक् ।१६। मघा यथा पूर्वाफाल्गुनी ।१७। पूर्वाफाल्गुनी यथा पूर्वाभाद्रपदा ।१८। उत्तराफाल्गुनी यथा-उत्तराभाद्रपदा ।१९ हस्तः चित्रा च यथा धनिष्ठा ।२०-२१। स्वातिः यथा शतभिषक् ।२२। विशाखा यथा-उत्तराभाद्रपदा ।२३। अनुराधा यथो धनिष्ठा ।२४। ज्येष्ठा यथा शतभिषक् ।२५ मूलं पूर्वाषाढा च यथा पूर्वाभाद्रपदा ।२६-२७। उत्तराषाढा यथा उत्तराभाद्रपदा ।२८। सू० १।।

।इति दशमस्य प्राभृतस्य चतुर्थं प्राभृत प्राभृत समाप्तम् १०-४॥

व्याख्या--'ता कहं ते' इति। 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'ते' त्वया 'जोगस्स' योगस्य चन्द्रनक्षत्रयोगस्य 'आई' आदि योगस्य प्रथमसमयरूप 'आहिए' आख्यात. ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् । अत्र निश्चयनयमतेन चन्द्रयोगस्यादिः सर्वेषां नक्षत्राणां न प्रतिनियतकालप्रमाणोऽस्ति, किन्तु अप्रतिनियतकालप्रमाणो वर्त्तते ततः स करणवशादव-

गन्तव्यम् तच्च करणम्–अन्यग्रन्थेभ्योऽवसेयम् । अत्रतु व्यवहारनयाश्रयणेन बाहुल्यतो यस्य नक्षत्र–स्य यदा चन्द्रयोगस्यादिर्भवेत् तं प्रतिपादयितुमाह–'अभीई' इत्यादि 'ता' तावत् 'अभिइसवणा' अभिजिच्छ्रवणौ खलु 'दुवे णक्खत्ता' द्वे नक्षत्रे 'पच्छंभागा' पश्चाद्भागे दिवसस्य पश्चाद्भागव्या-पके 'समखेत्ता' समक्षेत्रे समस्तक्षेत्रभोग्ये अत्रायं विवेकः इदमभिजिन्नक्षत्रं समक्षेत्रम् अपार्धक्षेत्रं द्व्यर्धक्षेत्रं वा न किमप्यस्ति, किन्तु तत् श्रवणनक्षत्रेण सह संबद्धं गृहीतमित्यभेदोपचारेण समक्षेत्रं परिकल्प्य समक्षेत्रत्वेनोपात्तमिति । इमे द्वे नक्षत्रे 'साइरेग उणयालीसमुहुत्ते' सातिरेकैकोनचत्वा रिंशन्मुहूर्त्तौ 'तप्पढमयाए' तत्प्रथमतयेति प्रथममेव 'सायं' सायं संध्याकाले, अत्र 'सायं' इति दिवसस्य कतितमाच्चरमभागादारभ्य यावद्रात्रेः कतितमो भागो भवेत् अर्थात् यावत्कालं नक्षत्र-मण्डलालोकः परिस्फुटो न भवेत् तावत्परिमितः कालविशेषः 'सायं' इति विवक्ष्यते तस्मिन् सायंकाले 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति' चन्द्रेण सार्धं योगं युङ्क्तः । तत्र अभिजिन्नक्षत्रस्य च नव मुहूर्त्ताः तथा चतुर्विंशतिरेकषष्टिभागाः, एकोनचत्वारिंशच्च सप्तषष्टिभागाः सन्ति, श्रवणस्य त्रिंशन्मुहूर्त्ताः इत्युभयोर्मीलने द्वयोर्नक्षत्रयोः सातिरेका एकोनचत्वारिंशन्मुहूर्त्ता भवन्तीत्यत उक्तम् 'साइरेगउणयालीसमुहुत्ता' इति । यद्यपि अभिजिन्नक्षत्रयोगे प्रातः काले युगस्यादि र्भवति तथापि एकविंशतिं सप्तषष्टिभागान् यावत् श्रवणनक्षत्रेण सह समक्षेत्रं भवति तत एवास्यापि पश्चाद्भागत्वेन विवक्षा कृता । श्रवणनक्षत्रं च मध्याह्नादूर्ध्वमपसरति दिवसे चन्द्रेण सह योगं करोति ततः श्रवणनक्षत्रसाहचर्यादभिजिन्नक्षत्रस्यापि सायंकाले चन्द्रेण सह योगं युनक्तीति विवक्षामवल म्ब्य सामान्यतः 'सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति' इति कथितम् । अथवा युगस्यादिमति-रिच्याऽन्यदा बाहुल्यमाश्रित्येदं कथितमिति नात्र कश्चिद्दोषो विभावनीयः । एवमुक्तनक्षत्रद्वयं 'तओ पच्छा' ततः पश्चात् रात्र्यनन्तम् 'अवरं साइरेगं दिवसं' अपरं सातिरेकचतुर्विंशत्येक षष्टिभागैकोनचत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागरूपाधिक्यसहितम् अपरं द्वितीयं दिवसं यावत् चन्द्रेण सह योगं युङ्क्तः । उपसंहारमाह 'एवं खलु' इत्यादि 'एवं' एवम् अनेन प्रकारेण खलु–निश्चयेन 'अभिइसवणा' अभिजिच्छ्रवणौ 'दुवे णक्खत्ता' द्वे नक्षत्रे सायं समयादारभ्य 'एगराइं' एक रात्रिम् 'एगं च साइरेगं दिवसं' एकं च सातिरेकं किञ्चदधिकचतुर्विंशत्येकषष्टिभागैकोन-चत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागाधिकं चंदेण सद्धिं जोगं जोएंति' चन्द्रेण सार्धं योगं युङ्क्तः योगं कुरुतः 'जोयं जोएत्ता' चन्द्रेण सार्धमेतावन्तं कालं योगं युक्त्वा तदन्तरं 'जोयं अणुपरियट्टं ति' योगम् अनुपरिवर्त्तयतः ततः पराबर्त्तेते, आत्मानं चन्द्रात् पृथक् कुरुत इत्यर्थः 'जोयं अणुपरि-यट्टित्ता' योगं चानुपरिवर्त्य 'सायं' सायं सन्ध्याकाले दिवसस्य कतितमे पश्चाद्भागे इत्यर्थः 'चंदं' चन्द्रं 'धणिट्ठाणं' धणिष्ठायै' 'चतुत्थीए छट्ठी' इति वचनात् प्राकृते चतुर्थ्यर्थे षष्ठी, बहु-वचनं चार्षात्वात् तेन धनिष्ठायै इत्यर्थः 'समप्पंति' समर्पयतः तत्समये अभिजिच्छ्रवणधणिष्ठा

इति त्रीणि नक्षत्राणि किञ्चित्कालं चन्द्रेण सह प्रथमतो योगं युञ्जन्ति तेन एतानि त्रीण्यपि नक्षत्राणि पश्चाद्भागानि बोध्यानि २। 'ता' तावत् ततः 'धणिट्ठा खलु णक्खत्ते' धनिष्ठा खलु नक्षत्रं 'पच्छं-भागे' पश्चाद्भागं सायं समये तस्य चन्द्रेण सह प्रथमतो योगकारकत्वात् 'समखेत्तं' समक्षेत्रं रात्रिदिवसरूपसमस्तक्षेत्रस्थापित्वात् अतएव 'तीसं मुहुत्ते' त्रिशन्मुहूर्त्तात् यावत् 'तप्पढम, याए' तत्प्रथमतया प्रथममेव 'सायं' संन्ध्याकाले 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति 'जोयं जोइत्ता' योगं युक्त्वा चन्द्रेण सह योगं कृत्वा 'तओ पच्छा' ततः पश्चात् सायंसमयादूर्ध्वं 'राइं' तां रात्रिं 'अवरं च दिवसं' अपरं द्वितीयं च दिवसं यावत् चन्द्रेण सह तिष्ठति । उपसंहारमाह—'एवं खलु' इत्यादि 'एवं' एवम् उक्तरीत्या 'खलु' निश्चयेन 'धणिट्ठा णक्खत्ते' धनिष्ठा नक्षत्रं 'एगं च राइं' एकां च तां रात्रिम् 'एगं च दिवसं' एकंच-द्वितीयं दिवसं यावत् 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति 'जोयं जोएत्ता' पूर्वोक्तकालं त्रिशन्मुहूर्त्तरूपं यावत् योगं युक्त्वा तदनन्तरं 'जोयं अणुपरियट्टइ' योगमनुपरि-वर्त्तयति चन्द्रात्स्वमात्मानं पृथक्करोति 'जोयं अणुपरियट्टित्ता' योगमनुपरिवर्त्य 'सायं' सायं द्वितीदिवसस्य सन्ध्यासमये 'चंदं' चन्द्रं 'सयभिसयाणं' शतभिषजे 'समप्पेइ' समर्पयति ३। 'ता' तावत् ततः 'सयभिसया खलु णक्खत्ते' शतभिषक् खलु नक्षत्रं 'णत्तंभागे' नक्तं भागं रात्रिमात्रव्यापित्वात् 'अवड्ढखेत्तं' अपार्धक्षेत्रम् अर्धक्षेत्रस्थायित्वात् अतएव 'पण्णरसमुहुत्ते' पञ्चदशमुहूर्त्ते पञ्चदशमुहूर्त्तप्रमाणकमेतन्नक्षेत्रे 'तप्पढमयाए' तत्प्रथमतया प्रथममेव 'सायं' सायं काले 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति एवं च योगयुक्तं सदेतन्न क्षत्रं 'णो लभइ अवरं दिवसं' नो नैव लभते अपरं द्वितीयं दिवसं नक्तंभागत्वेन रात्रिमात्र व्यापित्वात् किन्तु चन्द्रेण योगं युक्त्वा रात्र्यन्त एव समाप्तिमुपैति अत आह—'एवं' एवम् उक्त-रीत्या खलु निश्चयेन 'सयभिसया णक्खत्ते' शतभिषक् नक्षत्रम् 'एगं राइं' एकामेव रात्रिं यावत् 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति 'जोयं जोएत्ता' योगं युक्त्वा 'जोयं अणुपरियट्टइ' योगम् अनुपरिवर्त्तयति, 'जोयं अणुपरियट्टित्ता' योगम् अनुपरिवर्त्य 'पाओ' प्रातः प्रभातकाले 'चंदं' चन्द्रं 'पुव्वपोट्ठवयाणं' पूर्वाप्रोष्ठपदायै पूर्वाभाद्रपदायै 'समप्पेइ' समर्पयति ४। ता, तावत्, ततस्तत् 'पुव्वापोट्ठवया खलु णक्खत्ते' पूर्वाप्रोष्ठ-पदा खलु नक्षत्रं 'पुव्वं भागे' पूर्वभागं प्रातःकालव्यापित्वात् 'समखेत्त' समक्षेत्रं संपूर्णक्षेत्र-स्थायित्वात् अतएव 'तीसं मुहुत्ते' त्रिशन्मुहूर्त्ते त्रिशन्मुहूर्त्तप्रमाणयुक्तं 'तप्पढमयाए' तत्प्रथम मतया प्रथममेव, 'पाओ' प्रातः प्रभातकाले 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, 'जोयं जोएत्ता' योगं युक्त्वा 'तओ पच्छा' तत् पश्चात् योगकरणानन्तरं दिवसं तद्दिवसं

सकलम् 'अवरं च राइं' अपरां च रात्रिम्–एकं दिवसं द्वितीयां च रात्रिं यावत् योगं युनक्ति'। उपसंहारमाह–'एवं खलु' एवम्–उक्तप्रकारेण खलु 'पुव्वापोट्ठवयाणक्खत्ते' पूर्वप्रोष्ठपदानक्षत्रम् 'एगं दिवसं एगं च राइं' एकं दिवसमेकांच रात्रिं यावत् 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, 'जोयं जोएत्ता' योगं युक्त्वा–'जोयं अणुपरियट्टइ' योगमनुपरिवर्त्तयति 'जोयं अणुपरियट्टित्ता' योगमनुपरिवर्त्य 'पाओ' प्रातः प्रभातसमये 'चंदं' चन्द्रम् 'उत्तरापोट्ठवयाणं' उत्तराप्रोष्ठपदायै–उत्तराभाद्रपदायै 'समप्पेइ' समर्पयति ॥५॥ 'ता' तावत् ततः 'उत्तरापोट्ठवया खलु णक्खत्ते' उत्तराप्रोष्ठपदा खलु नक्षत्रम् 'उभयभागं' उभयभागं दिवसरात्रिरूपोभयस्थायि 'दिवड्ढखेत्ते' द्व्यर्धक्षेत्रं सार्धैकाहोरात्रक्षेत्रम् अतएव 'पणयालीसमुहुत्ते' पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्त 'तप्पढमयाए' तत्प्रथमतया प्रथमं 'पाओ' प्रातः प्रभातसमये 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति 'जोयं जोएत्ता' योगं युक्त्वा 'तं सकलं दिवसं' तं सकलं दिवसं तद्दिवसानन्तरम् 'अवरं च राइं' अपरां दिवससमाप्त्यनन्तरं जायमानां रात्रिं 'तओ पच्छा' ततः पश्चात् रात्रिसमाप्त्यनन्तरं जायमानम् 'अवरं दिवसं' अपरं द्वितीयं दिवसं यावत् चन्द्रेण सार्धं तिष्ठति, एतदेवोपसंहाररूपेण स्पष्टीकरोति 'एवं खलु' इत्यादि, 'एवं' एवम्–उक्तरीत्या खलु निश्चयेन 'उत्तरापोट्ठवया णक्खत्ते' उत्तराप्रोष्ठपदा नक्षत्रं 'दो दिवसे एगं च राइं' द्वौ दिवसौ एकः प्रथमयोगकरणदिवसः, द्वितीयः रात्र्यनन्तरं जायमानो दिवसः, एवं द्वौ दिवसौ एकां च रात्रिं दिवसद्वयमध्यगतां रात्रिं यावत् 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति 'जोयं जोइत्ता' योगं युक्त्वा, 'जोयं अणुपरियट्टइ' योगमनुपरिवर्त्तयाति, 'जोयं अणुपरियट्टित्ता' योगमनुपरिवर्त्य 'सायं' सायं सन्ध्याकाले 'चंदं' चन्द्रं 'रेवईणं' रेवत्यै 'समप्पेइ' समर्पयति ।६। 'ता' तावत् ततः 'रेवई खलु णक्खत्ते' रेवती खलु नक्षत्रं 'पच्छंभागे' पश्चाद्भागं सायंकालव्यापित्वात् 'समखेत्ते' समक्षेत्रं परिपूर्णाहोरात्ररूपक्षेत्रस्थायित्वात् अतएव 'तीसं मुहुत्ते' त्रिंशन्मुहूर्त्तं तत् 'तप्पढमयाए' तत्प्रथमतया प्रथमं 'सायं' सायं सन्ध्यासमये 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति योगं प्राप्नोति, 'तओ पच्छा' ततः पश्चात् तद्रात्र्यनन्तरम् 'अवरं दिवसं' अपरं द्वितीयं दिवसं यावत् चन्द्रेण सार्धं तिष्ठति । तदेव स्पष्टयति–'एवं खलु' इत्यादि, 'एवं खलु' अनेन प्रकारेण 'रेवईणक्खत्ते' रेवतीनक्षत्रं 'एगं राइं' एकां रात्रिं योगप्रारम्भरात्रिम् 'एगं च दिवसं' एकं च द्वितीयं दिवसं यावत् 'चंदेण सद्धिं' चन्द्रेण सार्धं 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति, 'जोयं जोएत्ता' योगं युक्त्वा 'जोयं अणुपरियट्टइ' योगम् अनुपरिवर्त्तयति, 'जोय अणुपरियट्टित्ता' योगमनुपरिवर्त्य 'सायं' सायं काले 'चंदं' चन्द्रम् 'अस्सिणीणं' अश्विन्यै 'समप्पेइ' समर्पयति ७। 'ता' तावत् ततः 'अस्सिणी खलु णक्खत्ते' अश्विनी खलु नक्षत्रं 'पच्छं भागे' पश्चाद्भागं सायंकाले चन्द्रेण सह युज्यमानत्वात् 'समखेत्ते' समक्षेत्र परिपूर्णरात्रिन्दिव-

स्थायित्वात् अतएव 'तीसं मुहुत्ते' त्रिंशन्मुहूर्त्ते, ततः 'तप्पढमयाए' तत्प्रथमतया प्रथमं 'सायं' सायं काले 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति 'तओ पच्छा' ततः पश्चात् रात्र्यनन्तरम् 'अवरं दिवसं' अपरं द्वितीयं दिवसं यावत् चन्द्रेण सार्धं तिष्ठति । उपसंहारः—'एवं खलु' एवम् अनया रीत्या खलु निश्चयेन 'अस्सिणीणक्खत्ते' अश्विनी नक्षत्रं 'एगं राइं' एकां योगप्रारम्भरूपां रात्रिम् 'एगं च दिवसं' एकम् अग्रे समागमिष्यमाणं दिवसं यावत् 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, 'जोयं जोइत्ता' योगं युक्त्वा 'जोयं अणुपरियट्टइ' योगमनुपरिवर्त्तयति, 'जोयं अणुपरियट्टित्ता' योगमनुपरिवर्त्य 'सायं' सायंकाले 'चंदं' चन्द्रं 'भरणीणं समप्पेइ' भरण्यै समर्पयति ।८। 'ता' तावत् ततः 'भरणी खलु णक्खत्ते' भरणी खलु नक्षत्रं 'णत्तंभागे' नक्तं भागं सायंकालव्यापि भूत्वा रात्रिमात्रस्थायित्वात् 'अवड्ढखेत्ते' अपार्धक्षेत्रम् अर्धक्षेत्रप्रमाणोपेतम्, अतएव 'पण्णरसमुहुत्ते' पञ्चदशमुहूर्त्ते, ततः 'तप्पढमयाए' तत्प्रथमतया प्रथमं 'सायं' सन्ध्यासमये 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति रात्रिमात्रं तिष्ठति किन्तु 'णो लभइ अवरं दिवसं' नो—नैव लभते अपरं द्वितीयं रात्र्यन्ते समागमिष्यमाणं दिवसं, तत्तु रात्र्यन्ते एव समाप्तिमेति । उपसंहारव्याजेन तदेव स्पष्टयति 'एवं खलु' इत्यादि 'एवं' अनेन प्रकारेण खलु 'भरणीणक्खत्ते' भरणीनक्षत्रम् 'एगं राइं' एकां तां रात्रिमेव 'चंदेणसद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति 'जोयं जोइत्ता' योगं युक्त्वा 'जोयं अणुपरियट्टइ' योगम् अनुपरिवर्त्तयति 'जोयं अणुपरियट्टित्ता' योगमनुपरिवर्त्य 'पाओ' प्रातः प्रभातसमये 'चंदं' चन्द्रं 'कत्तियाणं' कृत्तिकायै 'समप्पेइ' समर्पयति ।९। 'ता' तावत् तथा 'कत्तिया-खलु णक्खत्ते' कृत्तिका खलु नक्षत्रं 'पुव्वंभागे' पूर्वभागम् प्रातश्चन्द्रेण सह युज्यमानत्वात् 'समखेत्ते' समक्षेत्रम् अतएव 'तीसं मुहुत्ते' त्रिंशन्मुहूर्त्ते प्रातःसमयादूर्ध्वं संपूर्णे दिवसरात्रिस्थायित्वात्, ततः 'तप्पढमयाए' तत्प्रथमतया प्रथमं 'पाओ' प्रातः 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति 'तओ पच्छा' ततः पश्चात् सकलदिवसानन्तरं 'राइं' रात्रिं सकलां रात्रिं यावत् चन्द्रेण सार्धं तिष्ठति । तदेवाह—'एवं' एवम् अनेन रीत्या 'खलु' निश्चयेन 'कत्तियाणक्खत्ते' कृत्तिकानक्षत्रम् 'एगं च दिवसं' एकं च दिवसम् 'एगं च राइं' एकां च रात्रिं यावत् 'चंदेण सद्धिं जोयं जोइए' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति 'जोयं जोइत्ता' योगं युक्त्वा 'जोयं अणुपरियट्टइ' योगम् अनुपरिवर्त्तयति योगाद् आत्मानं पृथक्करोति 'अणुपरियट्टित्ता' अनुपरिवर्त्य 'पाओ' प्रातः 'चंदं' चन्द्रं 'रोहिणीणं' रोहिण्यै 'समप्पेइ' समर्पयति ।१०। तदेवम् अभिजित आरभ्य कृत्तिकापर्यन्तं दशनक्षत्राणां चन्द्रेण सह योगप्रकारः सविस्तरं प्रदर्शितः, साम्प्रतं शेषाणां रोहिणीत आरभ्य उत्तराभाद्रपदापर्यन्तमष्टादशनक्षत्राणां चन्द्रेण सह योगप्रकारमतिदेशेनाह—'रोहिणी जहा' इत्यादि 'रोहिणी जहा उत्तराभद्दया' रोहिणी यथा उत्तराभाद्रपदा

नक्षत्रं पूर्वं कथितं तथैव विज्ञेयम्, तथाहि तावत् रोहिणी खलु नक्षत्रम् उभयभागं द्व्यर्धक्षेत्रं पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया प्रातः चन्द्रेण सह योगं युनक्ति सकलं दिवसम् अपरां च रात्रिं यावत्, ततः पश्चात् अपरं द्वितीयं दिवसं सायंकालपर्यन्तं चन्द्रेण सह योगं युनक्ति एवं खलु रोहिणी-नक्षत्रं द्वौ दिवसौ एकां च रात्रिं यावत् चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनु-परिवर्त्तयति योगम् अनुपरिवर्त्य सायं चन्द्रं मृगशिरसे समर्पयति ११। 'मिगसिरं जहा धणिट्ठा' मृगशिरो नक्षत्रं यथा धनिष्ठानक्षत्रं पूर्वं कथितं तथैव भावनीयम्, तथाहि—तावत् मृगशिरो नक्षत्रं पश्चाद्भागं समक्षेत्रं त्रिंशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया सायं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा तां सकलां रात्रिं ततः पश्चात् अपरं दिवसं यावत् तिष्ठति, एवं खलु मृगशिरो नक्षत्रम् एकां रात्रिम् एकं च दिवसं यावत् चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, योगम् अनु-परिवर्त्य सायं चन्द्रम् आर्द्रायै समर्पयति, 'सायं' इति परिस्फुटनक्षत्रमण्डलालोकसमये, इत्यर्थो बोध्यः आर्द्रानक्षत्रस्य नक्तंभागत्वादिति १२। 'अद्दा जहा सयभिसया' आर्द्रा यथा शत-भिषक् तथा ज्ञातव्या, तच्चैवम्—तावत् आर्द्रा खलु नक्षत्रं नक्तंभागम् अपार्धक्षेत्रं पञ्चदशमुहूर्त्तं तत्प्रथमतया सायं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, एतत् आर्द्रानक्षत्रं नो लभते अपरम् अन्यं दिवसं रात्रिमात्रभोग्यत्वात्, एवं खलु आर्द्रानक्षत्रम् एकां रात्रिं यावत् चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, योगम् अनुपरिवर्त्य प्रातः चन्द्रं पुनर्वसवे समर्पयति ।१३। 'पुणव्वसू जहा उत्तराभद्दवया' पुनर्वसुः यथा उत्तराभाद्रपदा कथिता तथैव विज्ञेयः, तथाहि—तावत् पुनर्वसुः खलु नक्षत्रम् उभयभागं द्व्यर्धक्षेत्रं पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया प्रातः चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, ततः सकल दिवसम् अपरां च रात्रिं ततः पश्चाद् अपरं दिवसं च यावत् एवं खलु पुनर्वसुः नक्षत्रं द्वौ दिवसौ एकां च रात्रिं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, योगम् अनुपरिवर्त्य सायं द्वितीयदिवसस्य सायंकाले नक्षत्रमण्डलस्य परिस्फुटनकाले चन्द्रं पुष्याय समर्पयति १४। 'पुस्सो जहा धणिट्ठा' पुष्यो यथा धनिष्ठा, पुष्यनक्षत्रं यथा धनिष्ठा नक्षत्रं पूर्वं प्रतिपादितं तथैव विज्ञेयम् तदेवाह—तावत् पुष्यः खलु नक्षत्रं पश्चाद्भागं सायंकाल-व्यापित्वात् समक्षेत्रं त्रिंशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया—सायं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति योगं युक्त्वा ततः पश्चात् रात्रिसमाप्त्यनन्तरम् अपरं द्वितीयं दिवसं यावत्, एवं खलु पुष्यो नक्षत्रम् एकां रात्रिम् एकं च दिवसं यावत् चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, योगम् अनुपरिवर्त्य सायं काले चन्द्रम् अश्लेषायै समर्पयति १५। 'असलेसा जहा सयभिसया' अश्लेषा यथा शतभिषग्नक्षत्रं तथाऽवसेया, तथाहि—तावत् अश्लेषा, खलु नक्षत्रं नक्तंभागम् अपार्धक्षेत्रं त्रिंशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया सायं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा नो लभते अपरं द्वितीयं दिवसं नक्तं भागत्वेन रात्रिमात्रभोग्यत्वात् एवं खलु

अश्लेषानक्षत्रम् एकां रात्रिमेव चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, योगम् अनुपरिवर्त्य प्रातः रात्र्यनन्तरं प्रभातसमये चन्द्रं मघायै समर्पयति १६। 'मघा जहा पुव्वा फुग्गुणी' मघा यथा पूर्वाफाल्गुनी अग्रे वक्ष्यमाणा तथैव बोध्या, अत्राग्रे 'पुव्वाफग्गुणी जहा पुव्वाभद्दवया' इति वक्ष्यतेऽतो मघा पूर्वाभाद्रपदावद् विज्ञेयेति विवेकः।

तच्चैवम्—तावत् मघा खलु नक्षत्रं पूर्वभागं समक्षेत्रं त्रिंशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया प्रातः चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा ततः पश्चात् दिवससमाप्त्यनन्तरम् अपरां रात्रिं यावत् तिष्ठति एवं खलु मघानक्षत्रम् एकं दिवसम् एकां च रात्रिं यावत् चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति योगम् अनुपरिवर्त्य प्रातः चन्द्रं पूर्वाफाल्गुन्यै समर्पयति १७। 'पुव्वाफग्गुणी जहा पुव्वाभद्दवया' पूर्वाफाल्गुनी यथा पूर्वाभाद्रपदा कथिता तथैव विज्ञेया, तथाहि-तावत् पूर्वाफाल्गुनी खलु नक्षत्रं पूर्वभागं प्रातः कालव्यापित्वात्, समक्षेत्रम् समस्तक्षेत्र-स्थायित्वात् त्रिंशन्मुहूर्त्तं परिपूर्णाहोरात्रभोग्यत्वात् तन्नक्षत्रं तत्प्रथममतया प्रातः चन्द्रेण सह योगं युनक्ति, ततः पश्चात् दिवससमाप्त्यनन्तरम् अपरां रात्रिम् एवं खलु पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रम् एकं च दिवसम् एकां च रात्रिम् चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, योगम् अनुपरिवर्त्य प्रातः चन्द्रम् उत्तराफाल्गुन्यै समर्पयति १८। 'उत्तराफग्गुणी जहा उत्तराभद्दवया' उत्तराफाल्गुनी यथा पूर्वम् उत्तराभाद्रपदा कथिता तथैव विज्ञेया तथाहि—तावत् उत्तराफाल्गुनी खलु नक्षत्रम् उभयभागं द्व्यर्धक्षेत्रम् दिवसद्वयैकरात्रिस्थायित्वात् अतएव पञ्चचत्वारिंशन्मु-हूर्त्तं तत्प्रथमतया प्रातः चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति तं दिवसम् अपरां च दिवसान्ते जायमाना मन्यां रात्रिं ततः पश्चात् रात्र्यनन्तरम् अपरं दिवसम् एवं खलु उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रं द्वौ दिवसौ एकां च रात्रिं यावत् चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति योगम् अनुपरिवर्त्य सायं चन्द्रं हस्ताय समर्पयति १९। तथा 'हत्थो चित्ता य जहा धणिट्ठा' हस्त श्चित्रा चेति नक्षत्रद्वयं पूर्वं धनिष्ठानक्षत्र कथितं तथैव विज्ञेयम्। तच्चैवम्—तावत् हस्तः खलु नक्षत्रं पश्चाद्भागं समक्षेत्रं त्रिंशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया सायं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, तां रात्रिम् अपरंच दिवसं यावत् चन्द्रेण सार्धं चलति, एवं खलु हस्तनक्षत्रम् एकां च रात्रिम् एकं च दिवसं यावत् चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, योगम् अनुपरि-वर्त्य सायं चन्द्रं चित्रायै समर्पयति।२०। तदनन्तरं तावत् चित्रा खलु नक्षत्र पश्चाद्भागं समक्षेत्रं त्रिशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया सायं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, ततः पश्चात् रात्र्यनन्तरम् अपरं दिवसं यावत् योगं करोति, एवं खलु चित्रानक्षत्रम् एकां रात्रिम् एकं च दिवसं यावत् चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्तयति, योगम् अनुपरिवर्त्य सायं चन्द्रं स्वात्यै समर्पयति।२१। 'साई जहा सयभिसया' स्वातिर्यथा शतभिषग्नक्षत्रं कथितं तथा विज्ञेया, तथाहि—

तावत् स्वातिः खलु नक्षत्रं नक्तं भागम् अपार्धक्षेत्रं पञ्चदशमुहूर्तं तत्प्रथमतया सायं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति इदं स्वातिनक्षत्रं नो लभते अपरं द्वितीयं दिवसं रात्रिमात्रव्यापित्वात्, एवं खलु स्वातिर्नक्षत्रम् एकां रात्रिमेव यावत् चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, योगम् अनुपरिवर्त्य प्रातः चन्द्रं विशाखायै समर्पयति २२। 'विसाहा जहा उत्तराभद्दवया' विशाखा यथा, उत्तराभाद्रपदा तथा वक्तव्या, तथाहि—तावत् विशाखा खलु नक्षत्रम् उभयभागं द्व्यर्धक्षेत्रं पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया प्रातः चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, तद्दिवसम्, अपरां दिवसान्ते समागम्यमानां च रात्रिं ततः पश्चात्, रात्र्यनन्तरम् अपरं द्वितीयं दिवसम्, एवं खलु विशाखानक्षत्रं द्वौ दिवसौ एकां च रात्रिं यावत् चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, योगम् अनुपरिवर्त्य सायं चन्द्रम् अनुराधायै समर्पयति ।२३ 'अणुराहा जहा धणिट्ठा' अनुराधा यथा धनिष्ठा कथिता तथा वाच्या, तदित्थम्–तावत् अनुराधा खलु नक्षत्रं पश्चाद्भागं सायंकालव्यापित्वात् समक्षेत्रं रात्रिदिवसरूपसंपूर्णक्षेत्रस्थायित्वात् अतएव त्रिंशन्मुहूर्तं तत्प्रथमतया सायं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, तां सकलां रात्रिं ततः पश्चात् रात्र्यनन्तरम् अपरं दिवसं यावत्तिष्ठति, एवं खलु अनुराधानक्षत्रम् एकां रात्रिम् एकं च दिवसं यावत् चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, योगम् अनुपरिवर्त्य सायं चन्द्रं जेष्ठायै समर्पयति ।२४ 'जेट्ठा जहा सयभिसया' ज्येष्ठा यथा शतभिषक् तथा वाच्या, सा चेत्थम्—तावत् ज्येष्ठा खलु नक्षत्रं नक्तं भागम् अपार्धक्षेत्रं पञ्चदशमुहूर्त्तं तत्प्रथमतया सायं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति किन्तु नक्तं भागत्वात् नो लभते अपरं द्वितीयं दिवसं रात्रावेवास्य समाप्तिसद्भावात्, एवं खलु ज्येष्ठानक्षत्रं एकां रात्रिमेव यावत् चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, योगम् अनुपरिवर्त्य प्रातः चन्द्रं मूलाय समर्पयति २५। 'मूलो जहा पुव्वाभद्दवया' मूलं यथा पूर्वाभाद्रपदा तथा वक्तव्यम् तथाहि—तावत् मूलं खलु नक्षत्रं पूर्वभागसमक्षेत्रं त्रिंशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया प्रातः चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, तत्सकलं दिवसं ततः पश्चात् दिवसानन्तरम् अपराम् अग्रे समागम्यमानाम् अपरां रात्रिं यावत्, एवं खलु मूलनक्षत्रम् एकं च दिवसं एकां च रात्रिं यावत् चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति यक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति योगम् अनुपरिवर्त्य प्रातः चन्द्रं पूर्वाषाढायै समर्पयति ।२६। 'पुव्वासाढा जहा पुव्वाभद्दवया' पूर्वाषाढा यथा पूर्वाभाद्रपदा कथिता तथा पठनीया, तच्चैवम् तावत् पूर्वाषाढा खलु नक्षत्रं पूर्वभागं समक्षेत्रं त्रिंशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया प्रातः चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, तं दिवसं ततः अपरां च रात्रिं यावत् चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, योगम् अनुपरिवर्त्य प्रातः चन्द्रम् उत्तराषाढायै समर्पयति ७। 'उत्तरासाढा जहा उत्तरभद्दवया' उत्तराषाढा

यथा उत्तराभाद्रपदा तथा बोध्या, सा चैवम्—तावत् उत्तराषाढा खलु नक्षत्रम् उभयभागं द्व्यर्धक्षेत्रं पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तं तत्प्रथमतया प्रातः चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, तद्दिवसं ततः अपरां रात्रिं ततः पश्चात् रात्र्यनन्तरम् अपरं दिवसं यावत् चन्द्रेण सह तिष्ठति एवं खलु उत्तराषाढानक्षत्रं द्वौ दिवसौ एकां च रात्रिं यावत् चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्तयति, योगम् अनुपरिवर्त्य सायं चन्द्रम् अभिजिच्छ्रवणाभ्यां समर्पयति ।२८। एवमिदम् अभिजित आरम्य उत्तराषाढापर्यन्तम् अष्टाविंशतिनक्षत्रात्मकं नक्षत्रचक्रं चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्तीति । इदं योगप्रकारेण पञ्चदश मुहूर्त्तात्मकदिवस-पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकरात्रिरूपसमदिवसरात्रि समयगतं विज्ञेयम्, नक्तं भागनक्षत्रस्य पञ्चदशमुहूर्त्तत्वेन, द्व्यर्धक्षेत्रनक्षत्रस्य च पञ्चचत्वारिंशन्मूहूर्त्तत्वेन प्रतिपादनात् तदेवं बाहुल्यमाश्रित्य पूर्वोक्तप्रकारेण यथोक्तकालेषु नक्षत्राणि चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति कानिचित् पूर्वभागानि, कानिचित् पश्चाद्भागानि कानिचित् नक्तंभागानि कानिचिच्च उभयभागानि कथितानीति ॥सूत्रम् १॥

इति श्री चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रप्रज्ञप्तिप्रकाशिकाटीकायां दशमस्य प्राभृतस्य चतुर्थं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥ १०—४ ॥

इति श्री—विश्वविख्यात—जगद्वल्लभ—प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापक—प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक—श्रीशाहुच्छत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त "जैनशास्त्राचार्य" पदभूषित-कोल्हापुर राजगुरु बालब्रह्मचारि—जैनशास्त्राचार्य—जैनधर्मदिवाकर श्रीघासीलालव्रति—विरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिकाख्यायां व्याख्यायाम्

दशमस्य प्राभृतस्य चतुर्थं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०—४॥

|| अष्टाविंशति नक्षत्राणां भागक्षेत्र-मुहूर्त ज्ञानार्थं कोष्टकम् ||

सं.	नक्षत्रम्	भागाः	क्षेत्रम्	मुहूर्ताः
१ २	अभिजित् श्रवणश्च	पश्चाद्भागम्	समक्षेत्रम्	सातिरेकम् ३०/२१ साति०
३	धनिष्ठा	पश्चाद्भागम्	समक्षेत्रम्	३०
४	शतभिषक्	नक्तं भागम्	अपार्धक्षेत्रम्	१५
५	पूर्वा भाद्रपदा	पूर्व भागम्	समक्षेत्रम्	३०
६	उत्तरा भाद्रपदा	उभय भागम्	द्व्यर्धक्षेत्रम्	४५
७	रेवती	पश्चाद्भागम्	समक्षेत्रम्	३०
८	अश्विनी	पश्चाद्भागम्	समक्षेत्रम्	३०
९	भरणी	नक्तं भागम्	अपार्धक्षेत्रम्	१५
१०	कृत्तिका	पूर्व भागम्	समक्षेत्रम्	३०
११	रोहिणी	उभय भागम्	द्व्यर्धक्षेत्रम्	४५
१२	मृगशिरः	पश्चाद्भागम्	समक्षेत्रम्	३०
१३	आर्द्रा	नक्तं भागम्	अपार्धक्षेत्रम्	१५
१४	पुनर्वसुः	उभय भागम्	द्व्यर्धक्षेत्रम्	४५
१५	पुष्यम्	पश्चाद्भागम्	समक्षेत्रम्	३०
१६	अश्लेषा	नक्तं भागम्	अपार्धक्षेत्रम्	३०
१७	मघा	पूर्व भागम्	समक्षेत्रम्	३०
१८	पूर्वा फाल्गुनी	पूर्व भागम्	समक्षेत्रम्	३०
१९	उत्तरा फाल्गुनी	उभय भागम्	द्व्यर्धक्षेत्रम्	४५
२०	हस्तः	पश्चाद्भागम्	समक्षेत्रम्	३०
२१	चित्रा	पश्चाद्भागम्	समक्षेत्रम्	३०
२२	स्वातिः	नक्तं भागम्	अपार्धक्षेत्रम्	१५
२३	विशाखा	उभय भागम्	द्व्यर्धक्षेत्रम्	४५
२४	अनुराधा	पश्चाद्भागम्	समक्षेत्रम्	३०
२५	ज्येष्ठा	नक्तं भागम्	अपार्धक्षेत्रम्	१५
२६	मूलम्	पूर्व भागम्	समक्षेत्रम्	३०
२७	पूर्वाषाढा	पूर्व भागम्	समक्षेत्रम्	३०
२८	उत्तराषाढा	उभय भागम्	द्व्यर्धक्षेत्रम्	४५

॥ दशमस्य प्राभृतस्य, पञ्चमं प्राभृतप्राभृतम् ॥

व्याख्यातं दशमस्य मूलप्राभृतस्य चतुर्थं प्राभृतप्राभृतम्, तत्र चन्द्रेण सार्धमष्टाविंशति-नक्षत्राणां योगः पूर्वभागादिकं च प्रदर्शितम्, अथास्मिन् पञ्चमप्राभृतप्राभृते योगसम्बन्धान्नक्षत्राणां कुलत्वम्, उपकुलत्वम्, कुलोपकुलत्वं च प्रदर्शयन्निदं सूत्रमाह—'ता कहं ते कुला' इत्यादि ।

मूलम्—ता कहंते कुला आहिया ति वएज्ज, तत्थ खलु इमे बारस कुला, बारस उवकुला, चत्तारि कुलोवकुला पण्णत्ता । बारस कुला तं जहा सविट्ठा, (धणिट्ठा) कुलं १, उत्तराभद्दवयाकुलं २, अस्सिणी कुलं ३, कत्तियाकुलं ४, मगसिरकुलं ५, पुस्स कुलं ६, मघाकुलं ७, उत्तराफग्गुणीकुलं ८, चित्ताकुलं ९, विसाहाकुलं १०, मूलंकुलं ११, उत्तरासाढाकुलं १२, बारस उवकुला तं जहा—सवणो उवकुलं १, पुव्वभद्दवयाउवकुलं २, रेवईउवकुलं ३, भरणीउवकुलं ४, रोहिणीउवकुलं ५, पुणव्वसुउवकुलं ६, अस्सेसाउव-कुलं ७, पुव्वाफग्गुणी उवकुलं ८' हत्थोउवकुलं ९, साईउवकुलं १०, जेट्ठाउवकुलं ११, पुव्वासाढाउवकुलं १२, चत्तारि कुलोवकुला तं जहा —अभिइकुलोवकुलं १, सयभिसया कुलोवकुलं २, अद्दा कुलोवकुलं ३, अणुराहा कुलोवकुल ४ ॥सू० १॥

दसमस्स पाहुडस्स पंचमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥१०-५॥

छाया—तावत् कथं ते कुलानि आख्यातानि इति वदेत्, तत्र खलु इमानि द्वादश कुलानि १२, द्वादश उपकुलानि १२, चत्वारि कुलोपकुलानि ४ प्रज्ञप्तानि । द्वादश कुलानि तद्यथा- श्रविष्ठा (धनिष्ठा) कुलम् १, उत्तराभाद्रपदाकुलम् २, अश्विनीकुलम् ३, कृत्तिकाकुलम् ४, मृगशिरः कुलम् ५, पुष्यकुलम् ६, मघाकुलम्, उत्तराफाल्गुनी-कुलम ८, चित्राकुलम् ९, विशाखा कुलम् १०, मूलं कुलम् ११, उत्तराषाढाकुलम् १२, द्वादश, उपकुलानि तद्यथा श्रवणः उपकुलम् १, पूर्वाभाद्रपदा उपकुलम् २, रेवती उपकुलम् ३, भरणी उपकुलम् ४, रोहिणी-उपकुलम् ५, पुनर्वसु उपकुलम् ६, अश्लेषा-उपकुलम् ७, पूर्वाफाल्गुनी उपकुलम् ८, हस्तः उपकुलम् ९, स्वातिः - उपकुलम् १०, ज्येष्ठाउपकुलम् ११, पूर्वाषाढा-उपकुलम् १२, चत्वारि कुलोपकुलानि, तद्यथा—अभिजित्-कुलोपकुलम्, १, शतभिषक्-कुलोपकुलम् २, आर्द्रा-कुलोपकुलम् ३, अनुराधा कुलोपकुलम् ४॥सू०१॥

दशमस्य प्राभृतस्य पञ्चमं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् १०-५॥

व्याख्या—'ता कहं ते' इति ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'ते' त्वया 'कुला' कुलानि 'आहिया' आख्यातानि-कथितानि ? ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु-कथयतु हे भगवन् ! भगवानाह-'तत्थ' तत्र कुलादिविषये-खलु-निश्चयेन 'इमे' इमानि वक्ष्यमाणानि 'बारस' द्वादश 'कुला' कुलानि सन्ति तथा 'बारस' द्वादश 'उवकुला' उपकुलानि सन्ति, तथा 'चत्तारि' चत्वारि 'कुलोवकुला' कुलोपकुलानि सन्ति, । तत्र 'बारस' द्वादश 'कुला' कुलानि, भवन्ति 'तं जहा' तद्यथा तानि यथा 'सविट्ठा कुलं' इत्यादि, कुलानीति किम्, तत्राह यानि नक्षत्राणि यान् मासान् समापयन्ति मास सदृशनामानि भवन्ति तानि नक्षत्राणि कुलानीति

कथ्यन्ते-तानि द्वादश १२। उपकुलानीति किम् ? तत्राह—मासंसदृशनामकनक्षत्रेभ्यः पूर्वगतानि नक्षत्राणि यदि यान् मासान् समाप्तिं नयन्ति तानि उपकुलानि कथ्यन्ते तान्यपि द्वादश १२। यानि पश्चानुपूर्व्या तृतीयानि नक्षत्राणि यान् मासान् समाप्तिं नयन्ति तानि कुलोपकुलानि कथ्यन्ते तानि च चत्वार्येव भवन्ति ४। तान्येव दर्शयामः—श्रविष्ठः, श्रावणो मासः प्रायः श्रविष्ठया धनिष्ठाऽपरपर्यायया समाप्तिमेतीति। श्रावणपूर्णिमायां यदि धनिष्ठा भवेत्तदा धनिष्ठानक्षत्रं कुलमुच्यते १, भाद्रपदपूर्णिमायां यदि उत्तराभाद्रपदा भवेत्तर्हि तत् कुलं कथ्यते २, एवम् आश्विनपूर्णिमायां यदि अश्विनी भवेत्तदा तन्नक्षत्रं कुलम् ३, कार्त्तिकपूर्णिमायां कृत्तिकानक्षत्रं कुलम् ४, मार्गशीर्षमासे मृगशिरो नक्षत्रं कुलम् ५, पौषपूर्णिमायां पुष्यनक्षत्रं कुलम् ६, माघपूर्णिमायां मघानक्षत्रं कुलम् ७, फाल्गुनपूर्णिमायाम् उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रं कुलम् ८, चैत्रपूर्णिमायां चित्रा नक्षत्रं कुलम् ९, वैशाखपूर्णिमायां विशाखानक्षत्रं कुलम् १०, ज्येष्ठपूर्णिमायां मूलनक्षत्रं कुलम् ११, आषाढपूर्णिमायाम् उत्तराषाढानक्षत्रं कुलम् १२, एतानि द्वादशनक्षत्राणि कुलानि कथ्यन्ते। एतेभ्यः पूर्ववर्त्तीनि नक्षत्राणि यदि भवेयुस्तदा तानि उपकुलानि कथ्यन्ते, तथाहि—श्रावणपूर्णिमायां श्रवणनक्षत्रं भवेत्तदा तद् उपकुलं कथ्यते १, एवं भाद्रपदपूर्णिमायां पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमुपकुलम् २, आश्विनपूर्णिमायां रेवतीनक्षत्रमुपकुलम् ३, कार्त्तिकपूर्णिमायां भरणीनक्षत्रमुप कुलम् ४, मार्गशीर्षपूर्णिमायां रोहिणीनक्षत्रमुपकुलम् ५, पौषपूर्णिमायां पुनर्वसुनक्षत्रमुपकुलम् ६, माघपूर्णिमायाम् अश्लेषानक्षत्रमुपकुलम् ७, फाल्गुनपूर्णिमायां पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रमुपकुलम् ८, चैत्रपूर्णिमायां हस्तनक्षत्रमुपकुलम् ९, वैशाखपूर्णिमायां स्वातिनक्षत्रमुपकुलम् १०। ज्येष्ठपूर्णिमायां ज्येष्ठानक्षत्रमुपकुलम् ११, आषाढपूर्णिमायां पूर्वाषाढानक्षत्रमुपकुलम् १२, इति। यद्युपकुलनक्षत्रात् पूर्ववर्त्तिनक्षत्रम् अर्थात् पश्चानुपूर्व्या प्रायो माससदृशनामककुलनक्षत्रात् पूर्ववर्त्ति तृतीयं नक्षत्रं पूर्णिमायां भवेत्तदा तत् कुलोपकुलं कथ्यते, तानि चत्वार्येव, सूत्रोपदिष्टानां चतुर्णामेव नक्षत्राणां श्रावण-भाद्रपद-पौष-ज्येष्ठरूपासु चतसृष्वेव पूर्णिमासु कादाचित्कत्वेन योगसंभवात्, तथाहि—श्रावणपूर्णिमायां यदि अभिजिन्नक्षत्रं भवेत्तदा तत् कुलोपकुलं कथ्यते १, एवं भाद्रपदपूर्णिमायां शतभिषग्नक्षत्रं कुलोपकुलम् २, पौषपूर्णिमायाम् आर्द्रा नक्षत्रं कुलोपकुलम् ३, ज्येष्ठपूर्णिमायां चानुराधानक्षत्रं कुलोपकुलं कथ्यते ४, इति। उक्तञ्च—

मासाण सरिसनामा, हुंति कुला उवकुला उ हिट्ठिमगा।
हुंति पुण कुलोवकुला अभीइ-सय-अद्द-अणुराहा" ॥ १ ॥

छाया—मासानां सदृशनामानि भवन्ति कुलानि उपकुलानि तु अधस्तनानि।
भवन्ति पुनः कुलोपकुलानि अभिजित् १, शतभिषक् २, आर्द्रा ३ अनुराधा ॥ १ ॥

'हिट्ठिमगा' इति अधस्तनानि अधोभागस्थितानि कुलनक्षत्रेभ्यो यानि पूर्वं स्थितानि पश्चानुपूर्व्या कुलनक्षत्रेभ्यो द्वितीयानीत्यर्थः।

॥ कुलादि ज्ञानार्थं कोष्टकम् ॥

सं.	नक्षत्र नाम	कुल	उपकुल	कुलोप
१	अभिजित्	×	×	१
२	श्रवणः	×	१	×
३	धणिष्ठा	१	×	×
४	शतभि०	×	×	१
५	पू० भा०	×	१	×
६	उ० भा०	१	×	×
७	रेवती	×	१	×
८	अश्विनी	१	×	×
९	भरणी	×	१	×
१०	कृत्तिका	१	×	×
११	रोहिणी	×	१	×
१२	मृगशिरः	१	×	×
१३	आर्द्रा	×	×	१
१४	पुनर्वसुः	×	१	×
१५	पुष्यं	१	×	×
१६	अश्लेषा	×	१	×
१७	मघा	१	×	×
१८	पू० फा०	×	१	×
१९	उ० फा	१	×	×
२०	हस्तः	×	१	×
२१	चित्रा	१	×	×
२२	स्वातिः	×	१	×
२३	विशाखा	१	×	×
२४	अनुराधा	×	×	१
२५	ज्येष्ठा	×	१	×
२६	मूलम्	१	×	×
२७	पू० षा०	×	१	×
२८	उ० षा०	१	×	×

इति श्रीचन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रे चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिकाटीकायां दशमस्य प्राभृतस्य पञ्चमं प्राभृत-प्राभृतं समाप्तम्—१०।–५॥

दशमप्राभृतस्य षष्ठं प्राभृतप्राभृतम् ।

तदेवमुक्तं पञ्चमं प्राभृतप्राभृतम्, तत्राष्टाविंशतिनक्षत्राणां कुलादिसंज्ञा प्रदर्शिता । अथ षष्ठं प्राभृतप्राभृतं विव्रियते, अत्र द्वादश पूर्णिमाः द्वादश अमावस्या वक्तव्याः स्युः, तत्र पूर्णिमासु कति कति नक्षत्राणि योगं युञ्जन्तीति प्रदर्श्यते–'ता कहंते पुण्णमासी' इत्यादि ।

मूलम्—ता कहं ते पुण्णमासी आहिया ? ति वएज्जा, तत्थ खलु इमाओ वारस पुण्णमासीओ, वारस अमावासाओ, पण्णत्ताओ तं जहा–साविट्ठी १ पोट्ठवई २, आसोयी३, कत्तियी ४, मग्गसिरी ५, पोसी ६, माही ७, फग्गुणी ८, चेत्ती ९, वेसाही १०, जेट्ठा मूली ११, आसाढी १२, ता साविट्ठिं णं पुण्णमासिं कइ णक्खत्ता जोएंति ? ता तिण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा—अभिई १, सवणो २, धणिट्ठा ३ (१) ता पोट्ठवइं णं पुण्णिमं कइ णक्खत्ता जोएंति, ता तिण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा–सयभिसया १, पुव्वापोट्ठवया २, उत्तरापोट्ठवया ३, (२) ता आसोइं णं पुण्णिमं कइ णक्खत्ता जोएंति ?, ता दोण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा-रेवई अस्सिणी य (३) ता कत्तिइं णं पुण्णिमं कइ णक्खत्ता जोएंति, ता दोण्णि णक्खत्ता जोएंत्ति तं जहा–भरणी कत्तिया च(४) । ता मग्गसिरिं णं पुण्णिमं कइ णक्खत्ता ज़ोएंति ? ता दोण्णि णक्खत्ता जोएंति तं जहा रोहिणी मग्गसिरा य (५) । ता पोसिं णं पुण्णिमं कइ णक्खत्ता जोएंति ?, ता तिण्णि णक्खत्ता जोएंति तं जहा—अद्दा १, पुणव्वसू २, पुस्सो ३ (६) ता माहिं णं पुण्णिमं कइ णक्खत्ता जोएंति ?, ता दोण्णि णक्खत्ता जोएंति. तं जहा—अस्सेसा मघा य (७) ता फग्गुणिं णं पुण्णिमं कइ णक्खत्ता जोएंति ? ता दोन्नि नक्खत्ता जोएंति. तं जहा—पुव्वाफग्गुणी उत्तराफग्गुणी य (८) ता चेत्तिं णं पुण्णिमं कइ णक्खत्ता जोएंति ? ता दोण्णि णक्खत्ता जोएंति तं जहा—हत्थो चित्ता य (९) । ता वेसाहिं णं पुण्णिमं कइ णक्खत्ता जोएंति ? ता दोण्णि णक्खत्ता जोएंति' तं जहा - साई विसाहा य (१०) ता जेट्ठामूलिं णं पुण्णिमं कइ णक्खत्ता जोएंति ? ता तिण्णि णक्खत्ता जोएंति तं जहा—अणुराहा १, जेट्ठा २, मूलो य ३, (११) तावत् आसाढिं णं पुण्णिमं कइ णक्खत्ता जोएंति ? ता दो णक्खत्ता जोएंति, तं जहा-पुव्वासाढा उत्तरासाढा य (१२) ॥सू० १॥

छाया—तावत् कथं ते पूर्णमास्य आख्याता ? इति वदेत्, तत्र खलु इमा द्वादश पूर्णिमास्यः, द्वादश अमावास्याः प्रज्ञप्ताः तद्यथा-श्राविष्ठी १, प्रोष्ठपदी २, आश्विनी ३, कार्त्तिकी ४, मार्गशीर्षी ५, पौषी ६, माघी ७फाल्गुनी ८, चैत्री ९, वैशाखी १०, जेष्ठा मूली ११ आषाढी १२, । तावत् श्राविष्ठीं खलु पूर्णिमां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति, ?, तावत्

त्रीणि नक्षत्राणि युञ्जन्ति, तद्यथा-अभिजित् १, श्रवणः २, धनिष्ठा ३। (१) तावत् प्रोष्ठपदीं खलु पूर्णिमां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ? तावत् त्रीणि नक्षत्राणि युञ्जन्ति, तद्यथा-शतभिषक् १, पूर्वप्रोष्ठपदा २, उत्तरप्रोष्ठपदा ३। (२) तावत् आश्विनीं खलु पूर्णिमां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ? ४ तावत्-द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः, तद्यथा-रेवती अश्विनी च ३। तावत् कार्त्तिकीं खलु पूर्णिमां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ! तावत् द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः तद्यथा-भरणी कृत्तिका च ४। तावत् मार्गशीर्षीं खलु पूर्णिमां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति। तावत् द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः तद्यथा-रोहिणी मृगशिरश्च ५) तावत् पौषीं खलु पूर्णिमां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ?, तावत् त्रीणि नक्षत्राणि युञ्जन्ति, तद्यथा-आर्द्रा १ पुनर्वसुः २, पुष्यम् ३। (६) तावत् माघीं खलु पूर्णिमां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ?, तावत् द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः, तद्यथा—अश्लेषा मघा च ७। तावत् फाल्गुनीं खलु पूर्णिमां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ?, तावत्-द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः तद्यथा—पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी च ८। तावत् चैत्रीं खलु पूर्णिमां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ! तावत् द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः, तद्यथा-हस्तः चित्रा च ९। तावत् वैशाखीं खलु पूर्णिमां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ? तावत् द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः, तद्यथा—स्वातिः विशाखा च १०। तावत् ज्येष्ठामूलीं खलु पूर्णिमां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति। तावत् त्रीणि नक्षत्राणि युञ्चन्ति, तद्यथा—अनुराधा १ ज्येष्ठा २, मूलं च ३।११। तावत् आषाढ़ीं खलु पूर्णिमां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ? तावत् द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः, तद्यथा—पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा च ॥ (१२) ॥ सू०१॥

व्याख्या—गौतमः पृच्छति-'ता कहं ते पुण्णमासी' इत्यादि 'ता' तावत् 'कहं' केन प्रकारेण कैः कैः नक्षत्रैर्युक्ता इत्यर्थः 'पुण्णमासी' पूर्णमास्यः उपलक्षणात् अमावास्याश्च 'आहिया' आख्याताः कथिताः ? 'ति वएज्जा' इति वदेत्—एतद्विषयं वदतु हे भगवन्। एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह-'तत्थ' इत्यादि, 'तत्थ' तत्र पूर्णमास्यमावास्याविषये 'खलु' निश्चयेन 'बारस पुण्णमासीओ' द्वादश पूर्णमास्यः, तथा 'बारस अमावासाओ' द्वादश अमावास्याश्च 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ताः कथिताः 'तंजहा' तद्यथा ता यथा-'साविट्ठी' इत्यादि, 'साविट्ठी' श्राविष्ठी श्रविष्ठेति धनिष्ठा तदुपलक्षिता श्राविष्ठी श्रावणमासभाविनी पूर्णिमा श्राविष्ठी कथ्यते, इयं प्रथमा पूर्णिमा १। 'पोट्ठवई' प्रोष्ठपदी प्रोष्ठपदा उत्तराभाद्रपदा तदुपलक्षिता भाद्रपदमासभाविनी पूर्णमासी प्रोष्ठपदी कथ्यते २। 'आसोई' आश्विनी अश्विनीनक्षत्रोपलक्षिता आश्विनमासभाविनी पूर्णिमा आश्विनी कथ्यते ३। 'कत्तिई' कार्त्तिकी—कृत्तिकानक्षत्रोपलक्षिता कार्त्तिकमासभाविनी पूर्णिमा कार्त्तिकी कथ्यते ४। 'मग्गसिरी' मार्गशीर्षी—मृगशिरोनक्षत्रोपलक्षिता मार्गशीर्षमासभाविनी पूर्णिमा मार्गशीर्षी कथ्यते ५। 'पोसी' पौषी पुष्यनक्षत्रोपलक्षिता पौषमासभाविनी पूर्णिमा पौषी कथ्यते ६,। 'माही' माघी मघानक्षत्रोपलक्षिता माघमासभाविनी पूर्णिमा माघी कथ्यते ७। 'फग्गुणी' फाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रोपलक्षिता फाल्गुनमासभाविनी पूर्णिमा फाल्गुनी कथ्यते ८। 'चेत्ती' चैत्री—चित्रानक्षत्रोपलक्षिता चैत्रमासभाविनी पूर्णिमा चैत्री कथ्यते ९। 'वेसाही' वैशाखी—विशाखानक्षत्रोपलक्षिता वैशाखमासभाविनी पूर्णिमा वैशाखी कथ्यते १०।

'जेट्ठामूली' मूलनक्षत्रोपलक्षिता ज्येष्ठमासभाविनी पूर्णिमा ज्योष्ठामूली कथ्यते ११। 'आसाढी' आषाढी–उत्तराषाढानक्षत्रोपलक्षिता आषाढमासभाविनी पूर्णिमा आषाढी कथ्यते १२। इति द्वादश पूर्णिमानामानीति। अथ कति कति नक्षत्राणि कस्यां पूर्णिमायां योगं कुर्वन्ति ? इति प्रश्नान् उत्तराणि च प्रदर्शयति–ता साविट्ठि णं, इत्यादि 'ता' तावत् 'साविट्ठि णं' श्राविष्ठीं श्रावणमास भाविनीं पूर्णिमां 'कइ नक्खत्ता' कतिनक्षत्राणि कियत्संख्यकानि नक्षत्राणि 'जोएंति' युञ्जन्ति कानि नक्षत्राणि चन्द्रेण सह योगं कृत्वा श्राविष्ठीं पूर्णिमां समापयन्तीति भावः। भगवानाह– 'ता तिण्णि' इत्यादि 'ता' तावत् 'तिण्णि णक्खत्ता' त्रीणि नक्षत्राणि 'जोएंति' युञ्जन्ति योगं कुर्वन्ति त्रीणि नक्षत्राणि चन्द्रेण सार्धं यथायोग संयुज्य श्राविष्ठीं पूर्णिमां समापयन्ति 'तं जहा' तद्यथा तानीमानि–'अभिई' अभिजित् १ 'सवणो' २ श्रवणः 'धणिट्ठा' धनिष्ठा ३। इमां पूर्णिमां वस्तुतः श्रवणो धनिष्ठा चेति द्वे एव नक्षत्रे श्राविष्ठीं पूर्णिमासीं परिसमापयतः किन्तु अभिजिन्नक्षत्रं श्रवणेन सह संबद्धं वर्त्ततेऽतः पूर्णिमासमापने तस्यापि ग्रहणं कृतमिति १। एतत्कथं परिज्ञायते ? इति प्रश्ने तत्परिज्ञानं करणपरिज्ञानमन्तरेण न भवतीत्यन्यत्र प्रसिद्ध-ममावास्यापौर्णमासीविषयकचन्द्रयोगपरिज्ञानार्थं करणं प्रदर्श्यते–

" नाउमिह अमावासं जइ इच्छसि कम्मि होइ रिक्खम्मि।
अवहारं ठाविज्जा तत्तियरूवेहिं संगुणए ॥१॥
छावट्ठी य मुहुत्ता, विसट्ठिभागा य पंच पडिपुण्णा।
बासट्ठिभाग–सत्तसट्ठिगो य इक्को हवइ भागो ॥२॥
एयमवहाररासिं, इच्छ अमावाससंगुणं कुज्जा।
नक्खत्ताणं एत्तो, सोहणगविहिं निसामेह ॥३॥
बावीसं च मुहुत्ता, छायालीसं विसट्ठिभागा य।
एयं पुणव्वसुस्स य, सोहेयव्वं हवइ वुच्छं ॥४॥
बावत्तरं सयं फग्गुणीण बाणउइ य बे विसाहासु।
चत्तारि य बायाला, सोज्झा अह उत्तरासाढा ॥५॥
एयं पुणव्वसुस्स य बिसट्ठिभागसहियं तु सोहणगं।
इत्तो अभीइआइं, बिइयं वुच्छामि सोहणगं ॥६॥
अभिइस्स नव मुहुत्ता, विसट्ठिभागा य हुंति चउवीसं।
छावट्ठी य समत्ता, भागा सत्तट्ठिछेकया ॥७॥
अउणसट्ठं पोट्ठवया, तिसु चेव नवोत्तरं च रोहिणिया।
तिसु नवनवएसु भवे, पुणव्वसू फग्गुणीओ य ॥८॥

पंचेव अउणपन्नं सयाइ, अउणुत्तराइं छच्चेव ।
सोज्झाणि विसाहासु, मूले सत्तेव चोयाला ॥९॥
अट्ठसय अउणवीसा, सोहणगं उत्तरासाढाणं ।
चउवीसं खलु भागा, छावट्ठी चुण्णियाओ य ॥१०॥
एयाई सोहइत्ता, जं सेसं तं हवेइ नक्खत्तं ।
इत्थं य करेइ उडुवई, सूरेण समं अमावासं ॥११॥
इच्छापुन्निमगुणिओ, अवहारो सोत्थ होइ कायव्वो ।
तं चेव य सोहणगं, अभिइआइं तु कायव्वं ॥१२॥
सुद्धम्मि य सोहणगे; जं सेसं तं हविज्ज नक्खत्तं ।
तत्थ य करेइ उडुवई, पडिपुन्नो पुण्णिमं विमलं ॥१३॥

छाया—ज्ञातुमिह अमावास्यां, यदि इच्छसि कस्मिन् भवति नक्षत्रे ।
अवधार्य स्थापयेत् तावत्करूपैः संगुणयेत् ॥१॥
षट् षष्टिश्च मुहूर्त्ताः, द्विषष्टि भागाश्च पञ्च प्रतिपूर्णाः ।
द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिकश्च एको भवति भागः ॥२॥
एतमवधार्यराशिम् इच्छितामावास्यासंगुणं कुर्यात् ।
नक्षत्राणाम् इतः शोधनविधिं निशाम्यत ॥३॥
द्वाविंशतिश्च मुहूर्त्ताः षट् चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाश्च ।
एतत् पुनर्वसोश्च शोधयितव्यं भवति वक्ष्ये ॥४॥
द्वासप्तं शतं फाल्गुनीनां द्विनवतिश्च द्वौ विशाखासु ।
चत्वारि च द्विचत्वारिंशतानि शोध्यानि अथ उत्तराषाढा ॥५॥
एतत् पुनर्वसोश्च, द्विषष्टिभागसहितं तु शोधनकम् ।
इतः अभिजिदादि द्वितीयं वक्ष्यामि शोधनकम् ॥६॥
अभिजितो नव मुहूर्त्ताः द्विषष्टिभागाश्च भवन्ति चतुर्विंशतिः ।
षट्षष्टिश्च समस्ता भागाः सप्तषष्टिछेदकृताः ॥७॥
एकोनषष्ठं प्रोष्ठपदा त्रिषु चैव नवोत्तरं च रोहिणिका ।
त्रिसु नवनवेषु भवेयुः पुनर्वसुः फाल्गुन्यश्च ॥८॥
पञ्चैव एकोनपञ्चाशतानि शतानि एकोनसप्तत्युत्तराणि षडेव ।
शोध्यानि विशाखासु मूले सप्तैव चतुश्चत्वारिंशतानि ॥९॥
अष्टशतम् एकोनविंशतम् शोधनकम् उत्तराषाढानाम् ।
चतुर्विंशतिः खलु भागाः षट्षष्टिः चूर्णिकाश्च ॥१०॥
एतानि शोधयित्वा यत् शेष तद् भवति नक्षत्रम् ।
इत्थं च करोति उडुपतिः सूरेण समम् अमावास्याम् ॥११॥

इच्छितपूर्णिमागुणितः अवधार्यः सोऽत्र भवतिकर्तव्यः ।
तदेव च शोधनकम् अभिजिदादि तु कर्त्तव्यम् ॥१२॥
शुद्धे च शोधनके यत् शेषं तद् भवेन्नक्षत्रम् ।
तत्र च करोति उडुपतिः प्रतिपूर्णः पूर्णिमां विमलाम् ॥१३॥इति॥

एताः गाथाः क्रमेण व्याख्यायन्ते— 'नाउमिह' इत्यादि 'इह' इह युगे 'जइ' यदि त्वम् 'आमावासं' आमावास्यां ज्ञातुमिच्छसि यत् कस्मिन् नक्षत्रे वर्त्तमानाऽमावास्या परिसमाप्ता भवतीति, तदा'। तत्तियरूवेहिं' तावत्करूपैः, याममावास्यां ज्ञातुमिच्छसि तत्पर्यन्तं यावत्यो ऽमावास्या व्यतीता जातास्तावत्संख्यया 'अवहारं' अवधार्यम् अवधार्यते प्रथमतया स्थाप्यते इति अवधार्यः ध्रुवराशिः तं 'ठावित्ता' स्थापयित्वा पट्टिकादौ लिखित्वा व्यतीतामावास्यासंख्यया तम् अवधार्यं राशिं 'संगुणए' संगुणयेत् ॥१॥ कोऽसौ अवधार्यराशिरिति तं प्रदर्शयति—'छावट्ठी' इत्यादि 'छावट्ठी य मुहुत्ता' षट्षष्टिश्च मुहूर्त्ताः। एकस्य मुहूर्त्तस्य च 'पंचपडिपुण्णा विसट्ठि भागा' परिपूर्णाः शेषरहिताः पञ्च द्वाषष्टिभागा तथा 'बासट्ठिभाग' इति द्वाषष्टिभागस्य 'सत्तसट्ठिगो य एक्को हवइ भागो' सप्तषष्टितम एको भागो भवति अयं भावः—एकस्य द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिभागाः क्रियन्ते, तेषु एकः सप्तषष्टितमो भागः । ($६६\frac{५}{६२}—\frac{१}{६७,६२}$)इति एतावत्प्रमाणः अवधार्यराशिर्भवतीति ॥२॥

एतावत्प्रमाणस्यावधार्यराशेः कथमुत्पत्तिः ? इति प्रदर्श्यते— अत्र यदि चतुर्विंशत्यधिक-शतसंख्यकैः पर्वभिः सूर्यनक्षत्रपर्यायाः पञ्च लभ्यन्ते तदा द्वाभ्यां पर्वभ्यां किं लभ्यते ? इति त्रैराशिको गणित प्रकारस्ततो राशित्रयं स्थाप्यते यथा १२४। ५। २। अत्रान्त्येन द्विकरूपेण राशिना मध्यमः पञ्चकरूपो राशिर्गुण्यते जाताः दश (१०) अयं छेद्यराशिः अतः चतुर्विं-शत्यधिकं शतं च छेदकराशिः अतः छेदकराशिना छेद्यराशेर्भागहरणं कर्त्तव्यमिति चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन दशकरूपस्य राशेर्भागो ह्रियते, तत्र छेद्यस्य दशकरूपस्य राशे र्न्यूनत्वेन भागो न ह्रियते तेन छेद्यछेदकराश्योर्द्विकेनापवर्त्तना क्रियते, तेन छेद्यस्य दशकरूपस्य पञ्च लभ्यन्ते एष पञ्चकरूपः उपरितनराशिः छेदकस्य द्विकेनापवर्त्तनाकरणे द्वाषष्टिर्लभ्यते, एष द्वाषष्टिरूपः अधस्तनो राशिः, तेन लब्धाः पञ्च द्वाषष्टि भागाः इति । एतेन नक्षत्राणि कर्त्तव्यानीति नक्षत्रकरणार्थम् त्रिंशद-धिकाष्टादशशतैः (१८३०) सप्तषष्टिभागरूपैरुपरितनछेद्यराशिः पञ्चकरूपो गुण्यते जाता-नि पञ्चाशदधिकैकनवतिशतानि ($५ \times १८३० = ९१५०$), अथ चाधस्तनश्छेदराशि-र्द्वाषष्टिप्रमाणः (६२) एषोऽपि सप्तषष्ट्यागुण्यते, जातानि चतुष्पञ्चशदधिकैकच-त्वारिंशच्छतानि ($६२ \times ६७ = ४१५४$) स्थापना चेत्थम्—$\frac{९१५०}{४१५४}$) । अत्रत्य उपरितनो राशिर्मुहूर्त्तानयनार्थं दिवसस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तत्वेन भूयस्त्रिंशता गुण्यते जाते पञ्चशतोत्तरचतुः सप्तति-

सहस्राधिके द्वे लक्षे (२७४५००) तथा च–९१५०×३०=२७४५००। अस्य राशेः चतुष्पञ्चाशदधिकचत्वारिंशच्छतै (४०५४) र्भागो ह्रियते–लब्धा षट्षष्टिर्मुहूर्त्ताः तथा च–

४०५४) २७४५०० (६६ । शेषाः ३३६, शेषा अंशाः षट्त्रिंशदधिकानि त्रीणि शतानि (३३६) एष

राशि र्द्वाषष्टिभागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यते जातानि द्वात्रिंशदधिकाष्टशतोत्तराणि विंशतिसहस्राणि (२०८३२) अस्यापि अनन्तरोक्तेन चतुष्पञ्चाशदधिकैकचत्वारिंशच्छतरूपेण (४१५४) छेदराशिना भागहरणं क्रियते लब्धाः पञ्च द्वाषष्टिभागाः (५), शेषास्तिष्ठन्ति (६२)। ततस्तस्या द्वाषष्ट्या अपवर्त्तना क्रियते जात एककः १, छेदराशेश्चतुर्विंशत्याधिकशत रूपस्य द्वाषष्ट्याऽपवर्त्तनायां लब्धा सप्तषष्टिः ततः आयातं–षट् षष्टिर्मुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च द्वाषष्टिभागा', एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टिभागः। ६६–५–६२ ७/६७ इति तदेवं जातमवधार्यराशिप्रमाणम्। अवधार्यराशेरुत्पत्तिरेषा भवतीति। ६२

अथ शेषविधि प्रदर्शयति-**'एयमवहाररासिं'** इत्यादि, **'एयं'** एतम् पूर्वोक्तम् **'अवहाररासिं'** अवधार्यराशिम् **'इच्छअमावाससंगुणं कुज्जा'** इच्छितामावास्यासंगुणं यामवास्यां ज्ञातुमिच्छा वर्त्तते तत्प्रमितया सङ्ख्यया गुणितं कुर्यात् व्यतिक्रान्तामावास्यासंख्यया अवधार्यराशिं गुणयेदिति भाव'। गुणयित्वा गुणनराशिमेकत्र स्थापयेदित्याशयः **'एत्तो'** इत ऊर्ध्वं च नक्षत्राणि शोधनीयानि भवन्तीति **'नक्खत्ताणं'** नक्षत्राणां **'सोहणविहिं'** शोधनविधिं वक्ष्यमाणं शोधनप्रकारं **'निसामेह'**। निशाम्यत शृणुध्वम् ॥३॥

प्रथमं पुनर्वसुशोधनकमाह—**'बावीसं** इत्यादि **'बावीसं' च मुहुत्ता'** द्वाविंशतिश्च मुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य **'छायालीसं विसट्ठिभागा'** षट्चत्वारिंशद्द्विषष्टिभागाः–(२२ $\frac{४६}{६२}$) **'एयं'** एतत्–एतावत्प्रमाणं **'पुणव्वसुस्स'** पुनर्वसोः पुनर्वसुनक्षत्रस्य **'सोहेयव्वं भवइ'** शोधयितव्यं भवति। **'मुच्छं'** वक्ष्यामि शेषनक्षत्राणा शोधनकानि अग्रे कथयिष्यामि ॥४॥

कथमेतस्योत्पत्तिरिति चेदाह—इह यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन पञ्च सूर्यनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते तदा एकं पर्वातिक्रम्यैकेन पर्वणा कतिपया लभ्यन्ते ? इति त्रिराशिकगणितप्रकारोऽयं-जायते, तथा च स्थापना (१२४।५।१।) अत्रान्त्येन एककराशिना पञ्चकरूपो मध्यराशिर्गुण्यते तदा जाताः पञ्चैव। तेषां चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागो ह्रियते, पञ्चकरूपराशेर्न्यूनत्वेन भागो न ह्रियते तदा स्थिताः पञ्चैव शेषरूपाः, तेन लब्धाः पञ्च–चतुर्विंशत्यधिकशतभागाः (५।१२४)। ततो नक्षत्रानयनार्थमेष राशिः त्रिंशदधिकैरष्टादशभिः शतैः (१८३०) सप्तषष्टिभागरूपैर्गुणयितव्य-इति गुणकारराशिः त्रिंशदधिकान्यष्टादशशतानि (१८३०) छेदराशिश्चतुर्विंशत्यधिकमेकं शतम्

(१२४)। तयोर्गुणकार-छेदराश्योरपवर्त्तना क्रियते ततो गुणकारराशिर्जातः पञ्चदशोत्तराणि नवशतानि (९१५), छेदराशिर्द्वापष्टिर्जातः। ततः पञ्च च पञ्चदशोत्तरनवशत (९१५) संख्यया गुण्यते, जातानि पञ्च सप्तत्युत्तराणि पञ्चचत्वारिंशच्छतानि (४५७५), अपवर्त्तनया लब्धच्छेद-राशिर्द्वापष्टिरूपः, स सप्तषष्ट्या गुण्यते, जातानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि एकचत्वारिंशच्छतानि (४१५४), तथा पुष्यनक्षत्रस्य ये त्रयोविंशतिः सप्तषष्टिभागाः (२३।६७) ये प्राक्तनयुगचर्मपर्वाणि सूर्येण सह योगं युञ्जन्ति ते (२३) द्वापष्ट्या गुण्यन्ते जातानि षड्विंशत्यधिकानि चतुर्दश-शतानि-(२३×६२=१४२६)। एतानि प्राक्तनात् पञ्चसप्तत्यधिकपञ्चचत्वारिंशच्छतप्रमाण-राशेः (४५७५) शोध्यन्ते तिष्ठन्ति शेषतया एकोनपञ्चाशदधिकैकत्रिंशच्छतानि (३१४९)। तत एतानि मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि सप्तत्यधिकचतुःशतोत्तराणि चतुर्णवति सहस्राणि-(३१४९×३०=९४४७०)। एषां चतुष्पञ्चाशदधिकैकचत्वारिंशच्छतरूपेण (४११४) भागो ह्रियते, लब्धा द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः शेषरूपेण तिष्ठन्ति द्व्यशीत्यधिकानि त्रिशच्छतानि (३०८२) तथा च भागहरणस्थापना—(भाजकाः ४१५४) भाज्याः, ९४४७० लब्धाः २२)। अस्य

शेषाः ३०८२

शेषाङ्काः द्व्यशीत्यधिकत्रिंशच्छतरूपाः (३०८२ द्वापष्टिभागानयनार्थं द्वाषष्ट्या, गुण्यन्ते, जातं चतुरशीत्यधिकैकनवतिसहस्रोत्तरं लक्षमेकम् (१९१०८४)। एषां चतुष्पञ्चाशदधिकैकचत्वारिं-शच्छत (४१५४) रूपेण छेदराशिना भागो ह्रियते, लब्धा षट् चत्वारिंशद् एकस्य मुहूर्त्तस्य द्वापष्टि भागा इति समागतं पूर्वोक्तं द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः षट् चत्वारिंशच्च द्वापष्टिभागाः-(२२-$\frac{४६}{६२}$)

इति प्रमाणं पुनर्वसुनक्षत्रस्य शोधनकम्। एषा पुनर्वसुनक्षत्रस्य शोधनकोत्पत्तिः॥

अथ 'वुच्छं' वक्ष्ये' इति प्रतिज्ञया शेषनक्षत्राणां शोधनकान्याह—'बावत्तरं सयं' इत्यादि, 'बावत्तरं सयं' इति—द्वासप्ततं शतं चेति द्वासप्तत्यधिकमेकं शतं 'फग्गुणीण' फाल्गुनीनाम् उत्तर-फाल्गुनीनां शोध्यं भवति। अयमाशयः—द्वासप्तत्यधिकेनैकेन शतेन पुनर्वस्वादीनि उत्तरफाल्गुनी पर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्ध्यन्तीति। एवमग्रेऽपि भावार्थो बोध्यः। तथा—'बाणउइय वे विसाहासु' इति, विशाखासु हस्तादारभ्य विशाखापर्यन्तेषु नक्षत्रेषु शोधनकं द्विनवत्यधिकं शतद्वयम् (२९२) 'अह' अथानन्तरम 'उत्तरासाढा' इति—अनुराधात आरभ्योत्तरापाढा पर्यन्तानि पञ्च नक्षत्राणि अधिकृत्य 'सोज्झा' शोध्यानि, कियन्तीत्याह—'चत्तारि य बायाला' चत्वारिंशतानि द्विचत्वा-रिंशच्च—इति द्विचत्वारिंशदधिकानि चत्वारिंशतानि (४४२) भवन्तीति॥५॥ 'एयं पुण' इत्यादि 'एयं' एतत् पूर्वप्रदर्शितं पुनः 'सोहणगं' शोधनकं सर्वमपि 'पुणव्वसुस्स' पुनर्वसोः पुनर्वसुसम्ब-न्धि वर्त्तते कियदित्याह—'तिसट्ठिभागसहियं' द्वापष्टिभागसहितं समवसेयम्। तथाहि—यो पुनर्वसु-

सम्बन्धिनो द्वाविंशतिर्मुहूर्त्तास्ते सर्वेऽपि उत्तरस्मिन् शोधनकेऽन्तः प्रविष्टाः प्रवर्तन्ते किन्तु न द्वाषष्टि भागाः, ततो यद् यच्छोधनकं शोध्यते तत्र तत्र पुनर्वसु सम्बन्धिनः षट्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागा उपरितनाः शोधनीया इति । इदं च पुनर्वसोरारभ्य उत्तराषाढा पर्यन्तं प्रथमं शोधनकमुक्तम्, 'इत्तो' इतः अत्रतोऽग्रे 'अभिइआइं' अभिजिदादिम् अभिजितमादिं विधाय आदौ अभिजितं कृत्वा 'विइयं सोहणगं' द्वितीयं शोधनकं 'वुच्छामि' वक्ष्यामि—कथयिष्यामि ॥६॥ तदेव गाथा चतुष्टयेन दर्शयति 'अभिइस्स' इत्यादि 'अभिइस्स' अभिजितः अभिजिन्नक्षत्रस्य शोधनकं 'नवमुहुत्ता' नवमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य 'चउवीसं बिसट्ठिभागा य' चतुर्विंशति द्वाषष्टिभागाश्च, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य 'सत्तट्ठिछेयकया' सप्तषष्टिछेदकृताः 'समत्ता' समस्ताः परिपूर्णाः शेषरहितत्वात् 'छावट्ठीभागा' षट्षष्टिर्भागाः भवन्ति ।७। तथा 'अउणट्ठं' इत्यादि, 'अउणट्ठं' एकोनषष्टम्—एकोनषष्ट्यधिकं शतं 'पोट्ठवया' प्रोष्ठपदेति पदानाम् उत्तरभाद्रपदानां शोधनकम्, किं तात्पर्यमित्याह—एकोनषष्ट्यधिकेन शतेन अभिजित आरभ्य उत्तरभाद्रपदापर्यन्तं षड्नक्षत्राणि शुद्धयन्ति । एवमग्रेऽपि योजना कर्त्तव्या । तदेवान्तिमनक्षत्रमाश्रित्य सूचयति—रोहिणिका—अश्विनीत आरभ्य रोहिणी पर्यन्तानि चत्वारि नक्षत्राणि 'तिसु चेव नवोत्तरं च' त्रिषु चैव नवोत्तरेषु च शतेषु नवोत्तराणि त्रीणि शतानि (३०९) नवोत्तरशतत्रयभागैः शुद्धयन्ति । तथा 'तिसु नवनवएसु' त्रिषु नवनवतेषु नवनवत्यधिकेषु त्रिषु शतेषु नवनवोत्तरशतत्रय(३९९)भागैः 'पुणव्वसू' पुनर्वसुः मृगशिरसआरभ्य पुनर्वसुपर्यन्तानि त्रीणि नक्षत्राणि शुद्धयन्ति । तथा नवमगाथा-पूर्वार्धकथितानि 'अउणपन्नं पंचेव सयाइं' एकोनपञ्चाशदुत्तराणि पञ्चशतानि एकोनपञ्चाशदधिकपञ्चशतभागैः (५४९) 'फग्गुणीओ' फाल्गुन्यः उत्तरफाल्गुन्यः पुष्यत आरभ्य उत्तरफाल्गुनी पर्यन्तानि पञ्चनक्षत्राणि शुद्धयन्ति ।८। तथा 'विसाहासु' विशाखासु हस्तत आरभ्य विशाखापर्यन्तेषु चतुर्षु नक्षत्रेषु 'अउणुत्तराइं' एकोनसप्तत्यधिकानि 'छच्चेव सयाइं' षट्शतानि (६६९) 'सोज्झाणि' शोध्यानि भवन्ति । 'मूले' मूलपर्यन्ते अनुराधात आरभ्य मूल नक्षत्रपर्यन्तेषु त्रिषु नक्षत्रेषु 'सत्तेव चोयाल' सप्तैव चतुश्चत्वारिंशत् चतुश्चत्वारिंशदधिकानि सप्तशतानि (७४४) शोध्यानि ॥९॥ 'उत्तरासाढाणं' उत्तराषाढानाम्—उत्तराषाढापर्यन्तानामिति पूर्वाषाढा उत्तराषाढा—इति द्वयोर्नक्षत्रयोः 'सोहणगं' शोधनकम् 'अट्ठसय अउणवीसा' एकोन विंशत्यधिकानि अष्टौ शतानि (८१९) सन्तीति । सर्वेष्वपि च शोधनकेषु उपरि अभिजिन्नक्षत्रस्य सम्बन्धिनो मुहूर्त्तस्य 'चउवीसं खलु भागा' चतुर्विंशति द्वाषष्टिभागा तथा 'छावट्ठीचुण्णियाओ य' षट्षष्टिश्च चूर्णिकाश्च एकस्य द्वाषष्टि भागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागा चूर्णिकाभागाः । $\left(\frac{२४}{६२} \frac{६६}{६७}\right)$ शोधनीयाः ॥१०॥

उपसंहारमाह—'एयाइं' इत्यादि, 'एयाइं' एतानि पूर्वप्रदर्शितानि शोधनकानि यथायोगं 'सोहइत्ता' शोधयित्वा एतेषु शोधितेषु सत्सु 'जं सेसं' यत् शेषं भवेत 'तं' तत् 'नक्खत्तं हवइ' नक्षत्रं भवति। 'इत्थ य' अत्र च एतस्मिन् नक्षत्रे 'उडुवई' उडुपतिः चन्द्रः 'सूरेण समं' सूरेण समं, सूर्येण सह स्थित्वा 'अमावासं करेइ' अमावास्यां करोति स्वाभीप्सितामावास्यायामेतन्नक्षत्रं भवतीति भावः ।११। एवममावास्याविषयचन्द्रयोगपरिज्ञानार्थं करणमभिहितम्, साम्प्रतं पूर्णिमाविषयचन्द्रयोगपरिज्ञानार्थं करणमाह—'इच्छापुण्णिमगुणिओ' इत्यादि, अत्रापि योऽमावास्या चन्द्रयोगपरिज्ञानेऽवधार्यराशिः प्रोक्तः स एव ग्राह्यः। 'इच्छापुण्णिमगुणिओ' इच्छितपूर्णिमागुणितः इति अयमवधार्यराशिः—(६६ $\frac{५}{६२}$ | $\frac{१}{६२|६७}$) उक्तश्चैष राशिः पूर्वं द्वितीयगाथायां, तथाहि—

'छावट्ठीयमुहुत्ता, विसट्ठिभागा य पंच पडिपुन्ना। बासट्ठिभागसट्ठिगो य इक्को हवइ भागो॥२॥

इति, व्याख्यातेयं गाथा तत्रैवेति। 'सोत्थ' सोऽत्र 'अवहारो अ' अवधार्यराशिः पूर्णिमां ज्ञातुमिच्छति तत्संख्यया गुणितः 'कायव्वो होइ' कर्त्तव्यो भवति गुणयितव्य इत्यर्थः, गुणयित्वा च 'तं चेव य सोहणगं' तदेव च शोधनकं पूर्वप्रदर्शितं शोधनकम् 'अभिइआइं अभिजिदादिकं 'कायव्वं' कर्त्तव्यम्, न तु पुनर्वसुप्रभृतिकमिति भावः ।१२। 'सुद्धम्मि य सोहणगे' शुद्धे च शोधनके, कृते च शोधनके 'जं सेसं तं' यत् शेषं तत् 'नक्खत्तं' नक्षत्रं 'हविज्ज' भवेत् तस्यां पूर्णिमायाम्। 'तत्थ य' तत्र च तस्मिन् नक्षत्रे 'उडुवई' उडुपतिः चन्द्रः 'पडिपुन्नो' प्रतिपूर्णः सकलकलासम्पन्नः 'विमलं पुण्णिमं' विमलां निर्मलां पूर्णिमां 'करेइ' करोति। इत्येष पौर्णमासीचन्द्रनक्षत्रपरिज्ञानविषयकरणगाथाद्वयाक्षरार्थः।

अथात्रास्यैव भावना क्रियते—अत्र कोऽपि प्रच्छकः प्रश्नं करोति—युगस्यादौ प्रथमा पूर्णिमा श्राविष्ठी श्रावणमासभाविनी भवति सा कस्मिन् चन्द्रनक्षत्रे समाप्तिमेति ? इति प्रश्ने तत्रावधार्यो राशिः—षट्षष्टिमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य परिपूर्णाः पञ्चद्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टितमो भागः —६६ $\frac{५}{६२}$ | $\frac{१}{६२|६७}$) इत्येतद्रूपोऽवधार्यराशिः स्थाप्यते, एष राशिः प्रच्छकेन प्रथमायाः पौर्णामास्याविषये प्रश्नः कृत स्ततः एकेन गुण्यते, एकेन गुणितः स एव भवति "एकेन गुणितं तदेव भवति" इति वचनात्, ततस्तस्मात् अभिजितो नवमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति र्द्वाषष्टिभागाः, एकस्य द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिसप्तषष्टिभागाः (९ $\frac{२४|६६}{६२|६७}$) इत्येतत्परिमा

णकं शोधनकं शोधनीयम्, तत्र षट्पष्टितो नव मुहूर्त्ताः शोधिता' स्थिता' शेषाः सप्तपञ्चाशत् (५७) तेभ्य एकं मुहूर्त्तं गृहीत्वा तस्य द्वाषष्टिर्भागाः क्रियन्ते, ते च द्वापष्टिभागा अपि द्वापष्टिभागराशौ पञ्चकरूपे प्रक्षिप्यन्ते जाताः सप्तपष्टिर्द्वाषष्टिभागाः, तेभ्यश्चतुर्विंशति शोध्यते स्थिताः शेषास्त्रिचत्वारिंशत् (४३) तेभ्य एकं रूपं गृहीत्वा तस्य सप्तपष्टिर्भागाः क्रियन्ते, कृताश्च ते सप्तपष्टिभागा अपि सप्तपष्टिभागानामेकभागमध्ये प्रक्षिप्यन्ते, जाता अष्टपष्टिः सप्तपष्टिभागाः ($\frac{६८}{६७}$)तेभ्यः षट्षष्टिः शोध्यते तदा स्थितौ शेषौ द्वौ सप्तषष्टि भागौ(५६-$\frac{४२}{६२}|\frac{२}{६७}$) ततः श्रवणस्य त्रिशन्मुहूर्त्ता षट्पञ्चशतः शोध्यन्ते स्थिताः शेषाः षड्विंशति मुहूर्त्ताः, तत आगतं धनिष्ठानक्षत्रस्य षड्विंशतिमुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्विचत्वारिंशति द्वापष्टिभागेषु गतेषु एकस्य च द्वापष्टिभागस्य द्विसंख्यकसप्तपष्टि भागे (२६$\frac{४२}{६२}|\frac{२}{६७}$) व्यतीते सति, तथा-त्रिपु मुहूर्त्तेषु, एकस्य मुहूर्त्तस्य एकोनविंशतिसंख्यकेषु द्वापष्टिभागेषु एकस्य च द्वापष्टिभागस्य पञ्चपष्टिसंख्यकसप्तपष्टिभागेषु च($\frac{१९}{३६२}|\frac{६५}{६७}$ / ६२)शेषेषु प्रथमा श्राविष्ठी पौर्णमासी परिसमाप्तिमेति। यदि द्वितीया श्राविष्ठी पूर्णिमा विचार्यते तदा सा युगस्यादितः आरभ्य त्रयोदशो भवति। अवधार्यराशिः पूर्वोक्त एव (६६$\frac{-५}{६२}$/$\frac{\frac{१}{६७}}{६२}$ त्रयोदशभिर्गुण्यते जाता अष्टपञ्चाशदधिकानि अष्टशतानि मुहूर्त्ताः (८५८) एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चपष्टिर्द्वापष्टि भागाः, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य सम्बन्धिनस्त्रयोदशसप्तपष्टिभागाः(८५८$\frac{६५}{६२}|\frac{१३}{६७}$) एतस्मात् एकोनविंशत्यधिकाष्टशत-८१९ मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाष्टिभागाः, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य सम्बन्धिनः षट्पष्टिः सप्तपष्टि भागाः $\frac{६६}{६७}$ (८१९-$\frac{२४}{६२}|\frac{६६}{६७}$) एकस्य नक्षत्रपर्यायस्य-शोध्यन्ते, ततः स्थिताः शेषाः-एकोनचत्वारिंशन्मुहूर्त्ता' एकस्य च मुहूर्त्तस्य चत्वारिंशद् द्वापष्टि भागाः, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य चतुर्दश सप्तपष्टिभागाः- (३९$\frac{४०}{६२}|\frac{१४}{६७}$), तत एतस्मात् नव मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वापष्टिभागा. एकस्य च द्वापष्टिभागस्य षट्षष्टि. सप्तपष्टि भागाः अभिजिन्नक्षत्रस्य शोध्यन्ते, स्थिताः शेषाः त्रिशन्मुहूर्त्ताः, एकस्य मुहूर्त्तस्य पञ्चदश द्वापष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चदश सप्तषष्टिभागाः (३०-$\frac{१५}{६२}|\frac{१५}{६७}$),तेभ्यस्त्रिशन्मुहूर्त्ता श्रवणस्य शोध्यन्ते, तत आगतम्—एकस्य मुहू-

र्त्तस्य पञ्चदशसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चदशसु सप्तषष्टिभागेषु (०-$\frac{१५}{६२}$|$\frac{१५}{६७}$) गतेषु सत्सु, तथा एकोनत्रिंशति मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्विपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु (२९-$\frac{४६}{६२}$|$\frac{५२}{६७}$)शेषेषु च धनिष्ठानक्षत्रं द्वितीयां श्राविष्ठीं पूर्णिमां परिसमापयति। यदा तृतीयां श्राविष्ठीं पूर्णिमां ज्ञातुमिच्छेत् तदा सा युगस्यादितः पञ्चविंशतितमेति पञ्चविंशत्या पूर्वोक्तोऽवधार्यराशिर्गुण्यते, जातानि पञ्चाशदधिकानि षोडशशतानि (१६५०), एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चविंशत्यधिकमेकं शतं द्वाषष्टिभागाः (१२५) एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य पञ्चविंशतिः सप्तषष्टिभागाः २५ (१६५० $\frac{१२५}{६२}$|$\frac{२५}{६७}$)। अस्मात् अष्ट त्रिंशदधिकषोडशशतमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वात्रिंशदधिकं शतम् (१६३८-$\frac{४८}{६२}$|$\frac{१३२}{६७}$) द्वयोर्नक्षत्रपर्याययोः शोध्यन्ते, स्थिताः शेषाः द्वादशमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पंञ्चसप्ततिद्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागाः १२$\frac{७५}{६२}$|$\frac{२७}{६७}$)। ततो नव मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विं शति द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः (९-$\frac{२४}{६२}$|$\frac{६६}{६७}$)शोध्यन्ते, तिष्ठन्ति शेषाः त्रयो मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चाशत् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्याष्टाविंशतिः सप्तषष्टिभागाः (३$\frac{५०}{६२}$|$\frac{२८}{६७}$ एतेषु भागेषु गतेषु, तथा षड्विंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकादशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकोनचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु (२६$\frac{११}{६२}$|$\frac{३९}{६७}$) शेषेषु सत्सु च श्रवणनक्षत्रं तृतीयां श्राविष्ठीं पौर्णमासीं समापयति। एवं रीत्या चतुर्थीं श्राविष्ठीं पूर्णिमां युगस्यादितः सप्तत्रिंशत्तमां (३७) धनिष्ठानक्षत्रं त्रयोदशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टाविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्विचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु, (१३ $\frac{२८}{६२}$|$\frac{४२}{६७}$) गतेषु तथा षोडशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयस्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु (१६$\frac{३३}{६२}$|$\frac{२५}{६७}$) शेषेषु सत्सु परिसमा-

पयति । पञ्चमीं श्राविष्ठीं पूर्णिमां युगादित एकोनपञ्चाशत्तमां श्रवणनक्षत्रं सप्तदशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य मुहूर्त्तस्यैकस्मिन् द्वाषष्टिभागे, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु १७/१/४५ । गतेषु, तथा द्वादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षष्टिसंख्यकेषु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु (१२$\frac{६०}{६२}|\frac{२२}{६७}$) शेषेषु परिसमापयति । अतएव सूत्रे कथितम्–"ता साविट्ठिं णं पुण्णमासिं कइ णक्खत्ता जोएंति? ता तिण्णि-णक्खत्ता जोएंति, तं जहा अभिई १ सवणो२ धणिट्ठा३ ।" इति ॥१॥

तदेवं श्राविष्ठीपूर्णिमापरिसमापकानि नक्षत्राणि प्रदर्शितानि, साम्प्रतं यानि नक्षत्राणि प्रोष्ठपदीं पूर्णिमां समापयन्ति, तानि प्रदर्शयति–'ता पोट्ठवइं णं' इत्यादि ।

'ता' तावत् 'पोट्ठवइं णं पुण्णिमं' प्रोष्ठपदीं भाद्रपदमासभाविनीं खलु पूर्णिमां 'कइ' कति कति संख्यकानि 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि चन्द्रेण 'जोएंति' युञ्जन्ति इत्यादि, कतिनक्षत्राणि चन्द्रेण सह योगं युक्त्वा भाद्रपदभाविनीं पूर्णिमां समापयन्तीति भावः । भगवानाह –'ता तिण्णि' इत्यादि । 'ता' तावत् 'तिण्णि णक्खत्ता' त्रीणि नक्षत्राणि 'जोएंति' युञ्जन्ति प्रोष्ठपदीपूर्णिमानक्षत्रत्रययुक्ता भवतीति भावः। तान्येव दर्शयति– 'तं जहा' इत्यादि 'तं जहा' तद्यथा तानि नक्षत्राणि यथा–'सयभिसया' शतभिषक् १ 'पुव्वा पो-ट्ठवया' पूर्वप्रोष्ठपदा पूर्वाभाद्रपदा २ 'उत्तरा पोट्ठवया' उत्तरप्रोष्टपदा–उत्तराभा-द्रपदा ३॥ तत्र प्रथमां प्रोष्टपदीं पूर्णिमाम् उत्तरभाद्रपदानक्षत्रं सप्तदशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिषु सप्तषष्टि-भागेषु, (१७-$\frac{४७}{६२}|\frac{३}{६७}$) गतेषु, तथा सप्तविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्दशसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुः-षष्टौ सप्तषष्टिभागेषु (२७$\frac{१४}{६२}|\frac{६४}{६७}$) शेषेषु समापयति उत्तरभाद्रपदानक्षत्रस्य पञ्चचत्वारिं-शन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् १। द्वितीयां प्रोष्ठपदीं पूर्णिमां पूर्वभाद्रपदानक्षत्रम्—एकविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य मुहूर्त्तस्य च विंशतौ द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षोडशसु सप्तषष्टिभागेषु (२१$\frac{२०}{६२}|\frac{१६}{६७}$) गतेषु, तथा अष्टसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एक पञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु (८$\frac{४१}{६२}|\frac{५१}{६७}$) शेषेषु परिसमाप्ति नयति २ । तृतीयां प्रोष्ठपदीं पूर्णिमां शतभिषग् नक्षत्रं नवसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चपञ्चा शति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकोन त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु (९$\frac{५५}{६२}|\frac{२९}{६७}$)

गतेषु तथा पञ्चसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्सु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य अष्टाविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु (५ $\frac{६}{६२}$ | $\frac{३८}{६७}$) शेषेषु च समापयति शतभिषग्नक्षत्रस्य पञ्चदश मुहूर्त्तात्मकत्वात् ।३॥ चतुर्थीं प्रोष्ठपदीं पूर्णिमाम् उत्तरभाद्रपदानक्षत्रं चतुर्षु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य विंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु (४ $\frac{२०}{६२}$ | $\frac{४३}{६७}$) गतेषु, तथा चत्वारिंशति मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्विंशतौ सप्तषष्टिभागेषु (४० $\frac{४१}{६२}$ | $\frac{४२}{६७}$) शेषेषु समापयति उत्तरभाद्रपदनक्षत्रस्य पञ्च चत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् ।४। पञ्चमीं प्रोष्ठपदीं पूर्णिमां पूर्वभाद्रपदानक्षत्रम् अष्टसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्सु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्पञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु (८ $\frac{६}{६२}$ | $\frac{५६}{६७}$) गतेषु, तथा एकविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य मुहूर्त्तस्य पञ्चपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकादशसु सप्तषष्टिभागेषु (२१ $\frac{५५}{६२}$ | $\frac{११}{६७}$) शेषेषु परिसमाप्तिं नयतीति २ ।' आसोइं णं' इत्यादि **'आसोइं णं'** आश्विनीम् आश्विनमासभाविनीं खलु **'पुण्णिमं'** पूर्णिमां **'कइणक्खत्ता जोएंति'** कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति चन्द्रेण सहयोगं कृत्वा समापयन्ति ? भगवानाह—**'ता'** तावत् **'दोण्णि णक्खत्ता'** द्वे नक्षत्रे **'जोएंति'** युङ्क्तः **'तं जहा'** तद्यथा—**'रेवई य अस्सिणी य'** रेवती च अश्विनी च । काञ्चिद् आश्विनीं पौर्णमासीम् उत्तरभाद्रपदानक्षत्रमपि कदाचित् परिसमापयति परं तन्नक्षत्रं प्रौष्ठपदीमपि पूर्णिमां समापयति अतो लोके तन्नाम्ना तस्या एव पूर्णिमाया अभिधानात्तत्रैव तस्य प्राधान्यम्, अतोऽत्र तन्न विवक्षितमिति न दोषः ।

आश्विनीं पूर्णिमासमाप्तिप्रकारमाह—प्रथमामाश्विनीं पौर्णमासीमश्विनीनक्षत्रम् अष्टसुमुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्विपञ्चाशद्द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्षु सप्तषष्टिभागेषु (८ $\frac{५२}{६२}$ | $\frac{४}{६२}$) गतेषु, तथा एकविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य नवसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु (२१ $\frac{९}{६२}$ | $\frac{६३}{६७}$) शेषेषु समापयति । द्वितीयामाश्विनीं पौर्णमासीं रेवतीनक्षत्रं द्वादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु,

एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तदशसु सप्तषष्टिभागेषु (१२ $\frac{२५}{६२}\Big|\frac{१७}{६७}$)गतेषु, तथा सप्तदशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चाशतिसप्तषष्टिभागेषु (१७ $\frac{३६}{६२}\Big|\frac{५०}{६७}$)शेषेषु समापयति २। तृतीयामाश्विनीं पौर्णमासीमुत्तराभाद्रपदानक्षत्रं त्रिंशतिमुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षष्टौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाष्टिभागस्य त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु (३० $\frac{६०}{६२}\Big|\frac{३०}{६७}$) गतेषु तथा चतुर्दशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्यैकस्मिन् द्वाषष्टिभागे, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तत्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु(१४ $\frac{१३}{६२}\Big|\frac{७}{६७}$) शेषेषु समापयति उत्तराभाद्रपदनक्षत्रं पञ्च चत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकमस्तीति पूर्वकथितमेवेति । ३। चतुर्थीमाश्विनीं पौर्णमासीं रेवतीनक्षत्रं पञ्चविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टाविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुश्चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु (२५ $\frac{२८}{६२}\Big|\frac{४४}{६७}$) गतेषु, तथा चतुर्षु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयस्त्रिंशति द्वाष्टिभागेषु एकस्य च द्वाष्टिभागस्य त्रयोविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु ४ $\frac{३३}{६२}\Big|\frac{२३}{६७}$ शेषेषु समापयति ।४। पञ्चमीमाश्विनीं पौर्णमासीमुत्तरभाद्रपदनक्षत्रं चतुश्चत्वारिंशति मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्यैकादशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु (४४ $\frac{११}{६२}\Big|\frac{५७}{६७}$) गतेषु तथैकस्य मुहूर्त्तस्य पञ्चाशतिं द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य दशसु सप्तषष्टिभागेषु (० $\frac{५०}{६२}\Big|\frac{१०}{६७}$) शेषेषु समाप्तिं नयति उत्तरभाद्रपदनक्षत्रस्य पञ्चत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् ॥५॥

गता आश्विनो पूर्णिमावक्तव्यता अथ कार्तिकी पूर्णिमा परिसमाप्तिप्रकारमाह **'कत्तियं'**इत्यादि **'कत्तियं णं पुण्णमं'** कार्तिकीं कार्तिकमासभाविनीं खलु पूर्णिमां **'कइ णक्खत्ता जोएंति'** कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति कियत्संख्यकाणिनक्षत्राणि चन्द्रेण सह योगं कृत्वा कार्तिकीपूर्णिमां परिसमापयतीति गौतमस्य प्रश्नः। भगवानाह **'ता'** तावत् **'दोण्णि णक्खत्ता'** द्वे नक्षत्रे **'जोएंति'** युङ्क्तः **'तं जहा'** तद्यथा ते इमे **'भरणी कत्तियाय'** भरणी कृत्तिका च । इहापि काश्चित् कार्त्तिकीं पूर्णिमां कदाचित् अश्विनीनक्षत्रमपि समापयति किन्तु तस्याश्विन्यां पूर्णिमायां प्राधान्यात् , तदत्र न विवक्षितमतो

ऽत्र भरण्याः कृत्तिकायाश्च योगप्रकारमाह- –प्रथमां कार्तिकीं पूर्णिमां कृत्तिकानक्षत्रमेकोनत्रिंशति मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चसु सप्तषष्टि भागेषु (२९ $\frac{५७}{६२}\Big|\frac{५}{६७}$)गतेषु तथैकस्य मुहूर्त्तस्य चतुर्षु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य द्वाषष्टौ सप्तषष्टि भागेषु (० $\frac{४}{२६}\Big|\frac{६२}{६२}$) शेषेषु समाप्तिं नयति ।१। द्वितीयां कार्तिकीं पूर्णिमां कृत्तिकानक्षत्रं त्रिषु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य अष्टादशसु सप्तषष्टिभागेषु ३ $\frac{३०}{६२}\Big|\frac{१८}{६७}$ गतेषु तथा षड्विंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकत्रिंशति द्वाषष्टि भागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकोनपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु (२६ $\frac{३१}{६२}\Big|\frac{४९}{६९}$) शेषेषु समापयति ।२।—तृतीयां कार्त्तिकीं पूर्णिमामश्विनीनक्षत्रं द्वाविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिषु द्वाषष्टि भागेषु एकस्य च द्विषष्टि भागस्य एकत्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु (२२ $\frac{३}{६२}\Big|\frac{३१}{६७}$) गतेषु तथा सप्तसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाष्टिभागस्य षट्त्रिंशति सप्तषष्टि भागेषु(७ $\frac{५८}{६२}\Big|\frac{३६}{६७}$) शेषेषु समापयति ।३। चतुर्थीं कार्त्तिकीं पौर्णमासीं कृत्तिकानक्षत्रं त्रयोदशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिषु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्च चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु [१३ $\frac{३}{६२}\Big|\frac{४५}{६७}$] गतेषु तथा षोडशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टापञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु (१६ $\frac{५८}{६२}\Big|\frac{२२}{६७}$ शेषेषु समापयति ।४। पञ्चमीं कार्त्तिकीं पूर्णिमां भरणीनक्षत्रं पञ्चसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षोडशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्याष्टपञ्चाशति सप्तषष्टि भागेषु ५ $\frac{१६}{६२}\Big|\frac{५८}{६७}$ गतेषु, तथा नवसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य नवसु सप्तषष्टिभागेषु ९ $\frac{४५}{६२}\Big|\frac{९}{६७}$ शेषेषु समाप्तिं नयति, भरणीनक्षत्रस्य पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकत्वात् ।५।

उक्तः कार्त्तिकीपूर्णिमाया नक्षत्रयोगप्रकारः, अथ मार्गशीर्षमास पूर्णिमाया नक्षत्रयोगमाह— **'मग्गसिरिं णं'** इत्यादि **'मग्गसिरिं णं पुण्णिमं'** मार्गशीर्षी मार्गशीर्षमासभाविनीं खलु पूर्णिमां **'कइ णक्खत्ता जएंति'** कतिनक्षत्राणि युञ्जन्ति? भगवन्नाह—**'ता'** तावत् **'दोण्णि णक्खत्ता जएंति'** द्वे नक्षत्रे युङ्क्त **'तंजहा'** तद्यथा—ते इमे—**'रोहिणी मग्गसिरोय'** रोहिणी मृगशिरश्च । तत्र— प्रथमां मार्गशीर्षी पूर्णिमां मृगशिरोनक्षत्रम्—एकविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य—सम्बन्धिनो द्वाषष्टिभागस्य षट्सु सप्तषष्टिभागेषु २१ ०/६२ | ६१/६७ गतेषु तथा—अष्टसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सम्बन्धिद्वाषष्टिभागस्य एकषष्टौ सप्तषष्टि भागेषु (८ ०/६२ | ६१/६७ शेषेषु समाप्तिं नयति ।१। द्वितीयां मार्गशीर्षी पूर्णिमां रोहिणीनक्षत्रम्—एकोनचत्वारिंशति मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चत्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकोनविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु ३९ ३५/६२ | १९/६७ गतेषु तथा पञ्चसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षड्विंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य अष्टचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु ५ २६/६२ | ४८/६७ शेषेषु समापयति, रोहिणीनक्षत्रस्य पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् ॥२॥ तृतीयां मार्गशीर्षी पौर्णमासीमपि रोहिणीनक्षत्रम् त्रयोदशसु-मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाविंशति—सप्तषष्टि भागेषु १३ ८/६२ | २२/६७ गतेषु तथा एकत्रिंशति मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिपञ्चाशति द्वाषष्टि भागेषु, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य पञ्चचत्वारिंशति सप्तषष्टि भागेषु— ३१ ५३/६२ | ४५/६७ शेषेषु परिपूरयति ।३। चतुर्थी मार्गशीर्षी पूर्णिमां मृगशिरोनक्षत्रे सप्तसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु ७ ४८/६२ | ४६/६७ गतेषु तथा द्वाविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोदशसु षष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्यैकविंशतौ सप्तषष्टि भागेषु २२ १३/६२ | २१/६७ शेषेषु समापयति ।४। पञ्चमी मार्गशीर्षी पूर्णिमां रोहिणी नक्षत्रं षड्विंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्यैकविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकोनषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु २६ २१/६२ | ५९/६७ गतेषु, तथा अष्टादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च

मुहूर्त्तस्य चत्वारिंशति द्वाषष्टि भागेषु, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्याष्टसु सप्तषष्टिभागेषु, $१८\frac{४०}{६२}\Big|\frac{८}{६७}$ शेषेषु समाप्तिं नयति ।५।

उक्ता मार्गशीर्षीपौर्णमासी वक्तव्यता, साम्प्रतं पौषी—पौर्णमासी—वक्तव्यतामाह— **'ता पोसिं णं'** इत्यादि **'ता'** तावत् **'पोसिं णं' पुण्णिमं'** पौषीं पौषमासभाविनीं खलु पूर्णिमां **'कइ णक्खत्ता जोएंति'** कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति, कतिसंख्यकानि नक्षत्राणि चन्द्रेण सह योगं कृत्वा पौषीं पूर्णिमां परिसमापयति ? भगवानाह—**'ता'** तावत् **'तिण्णि णक्खत्ता जोएंति'** त्रीणि नक्षत्राणि युञ्जन्ति, **'तं जहा'** तद्यथा—तानीमानि—**'अद्दा'** आर्द्रा **'पुणव्वसू'** पुनर्वसुः २, **'पुस्सो'** पुष्यः ३, तत्र प्रथमां पौषीं पौर्णमासीं पुनर्वसुनक्षत्रं द्विचत्वारिंशति मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तसु सप्तषष्टिभागेषु—($४२\frac{५}{६२}\Big|\frac{७}{६७}$) गतेषु; तथा—द्वयोर्मुहूर्त्तयोः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्पञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षष्टौ सप्तषष्टिभागेषु ($२\frac{५६|६०}{६२|६७}$)शेषेषु समाप्तिं नयति पुनर्वसुनक्षत्रस्य पञ्च चत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् १, द्वितीयां पौषीं पौर्णमासीं पुनर्वसुनक्षत्रम् पञ्चदशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य विंशतौ सप्तषष्टिभागेषु ($१५\frac{४०|२०}{६०|६७}$) गतेषु, तथा—एकोनत्रिंशति मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्यै कविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तचत्वारिंशति सप्तषष्टि भागेषु ($२९\frac{२१}{६२}\Big|\frac{४७}{६७}$) शेषेषु समापयति २, तृतीयां पौषीं पूर्णिमामग्रेऽधिकमासस्यागमिष्यमाणत्वादधिकमासादर्वाक्तनीं पौर्णमासीमार्द्रानक्षत्रं चतुर्षु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोदशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु ($४\frac{१३|३३}{६२|६७}$) गतेषु तथा—दशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु ($१०\frac{४८|३४}{६२|६७}$) शेषेषु समाप्तिं नयति, आर्द्रानक्षत्रस्य पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकत्वात् ३, पुनश्चाधिकमासभाविनीमपरां तृतीयां पौषीं पूर्णिमां पुष्यनक्षत्रं दशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टादशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु

$(१०\frac{१८।३४}{६२।६७})$ गतेषु, तथा—एकोनविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चत्वारिंशति द्वाषष्टि भागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु $(१९\frac{४३।३३}{६२।६७})$ शेषेषु समापयति ३, चतुर्थीं पौषीं पौर्णमासीं पुनर्वसु नक्षत्रम्—अष्टाविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु $(२८\frac{५३।४७}{६२।६७})$ गतेषु, तथा—षोडशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य विंशतौ सप्तषष्टिभागेषु $(१६\frac{८।२०}{६२।६७})$ शेषेषु परिणमयति ४, पञ्चमीं पौषीं पौर्णमासीं पुनर्वसुनक्षत्रं द्वयोर्मुहूर्त्तयोः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षड्विंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षष्टौ सप्तषष्टिभागेषु $(२\frac{२६।६०}{६२।६७})$ गतेषु, तथा—द्विचत्वारिंशतिमुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चत्रिंशति द्वाषष्टि भागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तसु सप्तषष्टि भागेषु $(४२\frac{३५।७}{६२।६७})$ शेषेषु समाप्तिं नयति ॥५॥

गता पौषी पौर्णमासी वक्तव्यता, अथ माघी पौर्णमासी वक्तव्यतामाह—**'ता माहि णं'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **'माहि णं पुण्णिमं'** माघी माघमासभाविनीं पूर्णिमां **'कइ णक्खत्ता जोएंति'** कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति? भगवानाह—**'ता'** तावत् माघीं खलु पूर्णिमां **'दोण्णि णक्खत्ता जोएंति'** द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः, **'तं जहा'** तद्यथा—ते इमे—**'अस्सेसा महा य'** अश्लेषा मघा च । अत्र—च शब्दात् काञ्चिन्माघीं पूर्णिमां पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रं, काञ्चिच्च पुष्यनक्षत्रमपि युनक्ति योगं करोतीति विज्ञेयम् । तथाहि—प्रथमां माघीं पौर्णमासीं मघानक्षत्रम्—अष्टादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य दशसु द्वाषष्टि भागेषु, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्याष्टसु सप्तषष्टिभागेषु $(१८\frac{१०।८}{६२।६७})$ गतेषु, तथा—एकादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्यैकपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकोनषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु $(११\frac{५१।५९}{६२।६७})$ शेषेषु, समापयति १, द्वितीयां माघीं पौर्णमासीमाश्लेषानक्षत्रम्—षट्सु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु $(६\frac{४५।२१}{६२।६७}$

गतेपु, तथा—अष्टसु मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पोडशसु द्वाषष्टिभागेपु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पट्चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेपु ($८\frac{१६|४६}{६२|६७}$) शेषेपु समाप्तिं नयति २, तृतीयां माघीं पूर्णिमां पूर्वाफाल्गुनीनक्षमेकस्मिन् मुहूर्त्ते, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चत्रिंशति सप्तषष्टिभागेपु ($१\frac{२३|३५}{६२|६७}$) गतेषु, तथा—अष्टाविंशतौ मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टत्रिंशति द्वाषष्टिभागेपु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वात्रिंशति सप्तषष्टिभागेपु ($२८\frac{३८|३२}{६२|६७}$)शेषेपु समापयति ३, चतुर्थीं माघीं पौर्णमासीं मघानक्षत्रं चतुर्षु मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेपु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्याष्टचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेपु ($४\frac{५८|४८}{६२|६७}$) गतेपु, तथा—पञ्चविंशतौ मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिपु द्वाषष्टिभागेपु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकोनविंशतौ सप्तषष्टिभागेपु ($२५\frac{३|१९}{६२|६७}$)शेपेपु समापयति ४, पञ्चमीं माघीं पौर्णमासीं पुष्यनक्षत्रं त्रयोविंशतौ मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्यैकत्रिंशति द्वाषष्टिभागेपु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकषष्टौ सप्तषष्टिभागेपु ($२३\frac{३१|६१}{६२|६७}$) गतेपु, तथा—पट्सु मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिंशति द्वाषष्टिभागेपु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पट्सु सप्तषष्टिभागेपु ($६\frac{३०|६}{६२|६७}$) शेषेषु समापयति।५।

व्याख्याता माघी पौर्णमासी, अथ फाल्गुनीं पौर्णमासीं विवृणोति—'**ताफग्गुर्णि णं**' इत्यादि '**ता** तावत् '**फग्गुर्णि णं पुण्णिमं**' फाल्गुनीं फाल्गुनमासभाविनीं—खलु पूर्णिमां '**कइ णक्खत्ता जोएंति**'कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ? भगवानाह—'**ता दुन्ति णक्खत्ता जोएंति**'तावत् द्वे नक्षत्रे युङ्क्त', '**तं जहा**' तद्यथा ते इमे '**पुव्वफग्गुणी उत्तरफग्गुणीय**' पूर्वाफाल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी च। तत्र-प्रथमा फाल्गुनी पौर्णमासीमुत्तराफाल्गुनी नक्षत्रं चतुर्विंशतौ मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चदशसु द्वाषष्टिभागेपु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य नवसु सप्तषष्टिभागेपु ($२४\frac{१५|९}{६८|६७}$) गतेपु, तथा–विंशतौ मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पट्चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेपु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्याष्टापञ्चाशति सप्तषष्टिभागेपु ($२०\frac{४६|५८}{६२|६७}$) शेषेपु परिसमापयति, उत्तरा-

फाल्गुनी नक्षत्रस्य पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् ।१। द्वितीयां फाल्गुनीं पौर्णमासी पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रं सप्तविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु (२७ $\frac{५०।२२}{६२।६७}$) गतेषु, तथा--द्वयोर्मुहूर्त्तयोः, एकस्य च मुहूर्त्तस्यै कादशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु (२ $\frac{११।४५}{६२।६७}$) शेषेषु समाप्तिं नयति ।२। तृतीयां फाल्गुनीं पौर्णमासीमुत्तराफाल्गुनीनक्षत्रं सप्त-त्रिंशतौ मुहूर्त्तेषु,एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टाविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्त्रिंशति सप्तषष्टि भागेषु(३७ $\frac{२८।३६}{६२।६७}$) गतेषु, तथा सप्तसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयस्त्रिंशति द्वा-षष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकत्रिंशति सप्तषष्टि भागेषु (७ $\frac{३३।३१}{६२।६७}$) शेषेषु समापयति ।३। चतुर्थीं फाल्गुनीं पौर्णमासीमुत्तराफाल्गुनीनक्षत्रम्—एकादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्यैकस्मिन् द्वाषष्टिभागे, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्यैकोनपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु (११ $\frac{१ ।४९}{६२।६७}$) गतेषु, तथा—त्रयस्त्रिंशति मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षष्टौ द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्याष्टादशसु सप्तषष्टिभागेषु (३३ $\frac{६०।१८}{६२।६७}$) शेषेषु परिणमयति ।४। पञ्चमीं फाल्गुनीं पौर्णमासीं पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रं चतुर्दशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु १४ $\frac{३६।६२}{६२।६७}$) गतेषु, तथा - पञ्चदशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चसु सप्तषष्टिभागेषु (१५ $\frac{२५।५}{६२।६७}$ शेषेषु परिसमापयति ।५।

गता फाल्गुनी पूर्णिमावक्तव्यता, साम्प्रतं चैत्रीमाह—**'ता चेत्तिं णं'** इत्यादि **'ता चेत्तिं णं'** तावत् चैत्रीं चैत्रमासभाविनीं खलु **'पुण्णिमं'** पूर्णिमां **'कइ णक्खत्ता'** कति नक्षत्राणि **'जोएंति'** युञ्जन्ति चन्द्रेण सह संयुज्य चैत्रीं पूर्णिमां समापयति, भगवानाह—**'ता'** तावत् **'दोण्णि णक्खत्ता जोएंति'** द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः, **'तं जहा'** तद्यथा—ते यथा—**'हत्थो चित्ताय'** हस्तिः चित्रा च । तत्र—प्रथमां चैत्रीं पौर्णमासीं चित्रानक्षत्रं पञ्चदशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहू-

र्त्तस्य विंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य दशसु सप्तषष्टिभागेषु (१५ $\frac{२०।१०}{६२।६७}$ गतेषु तथा—चतुर्दशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्यैकचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु (१४ $\frac{४१।५७}{६२।६७}$) शेषेषु समापयति ।१। द्वितीयां चैत्रीं पौर्णमासीं हस्तिनक्षत्रम्—अष्टादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयो विंशतौ सप्तषष्टिभागेषु (१८ $\frac{५५।२३}{६२।६७}$) गतेषु, तथा—एकादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्सु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुश्चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु (११ $\frac{६ ।४४}{६२।६७}$) शेषेषु समाप्तिं नयति ।२। तृतीयां चैत्रीं पौर्णमासीं चित्रानक्षत्रम्—अष्टाविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयस्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तत्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु (२८ $\frac{३३।३७}{६२।६७}$) गतेषु तथा—एकस्मिन् मुहूर्त्ते, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टाविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु (१ $\frac{२८।४०}{६२।६७}$) शेषेषु समाप्तिं नयति ।३। चतुर्थी चैत्रीं पौर्णमासीं चित्रानक्षत्रं द्वयोर्मुहूर्त्तयोः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्सु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु (२ $\frac{६ ।५०}{६२।६७}$) गतेषु, तथा सप्तविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तदशसु सप्तषष्टिभागेषु (२७ $\frac{५५।१७}{६२।६७}$) शेषेषु परिणमयति ।४। पञ्चमीं चैत्रीं पौर्णमासीं हस्तिनक्षत्रं पञ्चसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्यैकचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु (५ $\frac{४१।६३}{६२।६७}$ गतेषु, तथा—चतुर्विंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्षुसप्तषष्टि भागेषु (२४ $\frac{३०।४}{६२।६७}$) शेषेषु समापयति ॥५॥

व्याख्याता चैत्री पौर्णमासी. साम्प्रत वैशाखीं पौर्णमासीं व्याख्यातुमाह—**'ता वेसाहिं णं'** इत्यादि, 'ता' तावत् **'वेसाहिं णं पुण्णिमं'** वैशाखीं वैशाखमासभाविनीं पूर्णिमां **'कइ णक्खत्ता**

जोएंति' कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ? भगवानाह—'ता दोण्णि णक्खत्ता जोएंति' तावत् द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः' 'तं जहा' तद्यथा—ते यथा—'साई विसाहा य' स्वातिः, विशाखा च। चशब्दात्—अनुराधा च, इदमनुराधानक्षत्रं च विशाखा नक्षत्रात् परं वर्तते, तस्य परस्यां ज्येष्ठामूलीपूर्णिमायामुपादानं करिष्यति नत्वेह सूत्रे साक्षादुपात्तम् अत्र तु विशाखानक्षत्रस्यैव प्राधान्यमिति। तत्र—प्रथमां वैशाखीं पौर्णमासीं विशाखानक्षत्रं षट्त्रिंशति मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य—एकादशसु सप्तषष्टिभागेषु ($३६\frac{२५।११}{६२।६७}$) गतेषु तथा—अष्टसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्पञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु ($८\frac{३६।५६}{६२।६७}$) शेषेषु समाप्तिं नयति, विशाखानक्षत्रस्य पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् ।१। द्वितीयां वैशाखीं पौर्णमासीं विशाखानक्षत्रं नवसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षष्टौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्विंशतौ सप्तषष्टिभागेषु ($९\frac{६०।२४}{६२।६७}$) गतेषु, तथा—पञ्चत्रिंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्यैकस्मिन् द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु ($३५\frac{१।४३}{६२।६७}$) शेषेषु परिसमापयति ५। तृतीयां वैशाखीं पौर्णमासीम् अनुराधानक्षत्रं चतुर्षु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टत्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य अष्टत्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु ($४\frac{३८।३८}{६२।६७}$) गतेषु, तथा—पञ्चविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकोनत्रिंशतौ सप्तषष्टिभागेषु ($२५\frac{२३।२९}{६२।६७}$) शेषेषु परिणमयति ३। चतुर्थीं वैशाखीं पौर्णमासीं विशाखानक्षत्रं त्रयोविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकादशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु ($२३\frac{११।५१}{६२।६७}$ गतेषु तथा एकविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षोडशसु सप्तषष्टिभागेषु ($२१\frac{५०।१६}{६२।६७}$) शेषेषु परिसमाप्तिं नयति ४। पञ्चमीं वैशाखीं पौर्णमासीं स्वातिनक्षत्रम् एकादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुः-

र्त्तस्य विंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य दशसु सप्तषष्टिभागेषु (१५ $\frac{२०।१०}{६२।६७}$ गतेषु तथा—चतुर्दशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्यैकचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु (१४ $\frac{४१।५७}{६२।६७}$) शेषेषु समापयति ।१। द्वितीयां चैत्रीं पौर्णमासीं हस्तिनक्षत्रम्—अष्टादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयो विंशतौ सप्तषष्टिभागेषु (१८ $\frac{५५।२३}{६२।६७}$) गतेषु, तथा—एकादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्सु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुश्चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु (११ $\frac{६ ।४४}{६२।६७}$) शेषेषु समाप्तिं नयति ।२। तृतीयां चैत्रीं पौर्णमासीं चित्रानक्षत्रम्—अष्टाविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयस्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तत्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु (२८ $\frac{३३।३७}{६२।६७}$) गतेषु तथा—एकस्मिन् मुहूर्त्ते, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टाविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु (१ $\frac{२८।४०}{६२।६७}$) शेषेषु समाप्तिं नयति ।३। चतुर्थीं चैत्रीं पौर्णमासीं चित्रानक्षत्रं द्वयोर्मुहूर्त्तयोः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्सु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु (२ $\frac{६ ।५०}{६२।६७}$) गतेषु, तथा सप्तविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तदशसु सप्तषष्टिभागेषु (२७ $\frac{५५।१७}{६२।६७}$) शेषेषु परिणमयति ।४। पञ्चमीं चैत्रीं पौर्णमासीं हस्तिनक्षत्रं पञ्चसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्यैक चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु (५ $\frac{४१।६३}{६२।६७}$ गतेषु, तथा—चतुर्विंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्षुसप्तषष्टि भागेषु (२४ $\frac{२०।४}{६२।६७}$) शेषेषु समापयति ॥५॥

व्याख्याता चैत्री पौर्णमासी, साम्प्रतं वैशाखीं पौर्णमासीं व्याख्यातुमाह—**'ता वेसाहिं णं'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **'वेसाहिं णं पुण्णिमं'** वैशाखीं वैशाखमासभाविनीं पूर्णिमां **'कइ णक्खत्ता**

जोएंति' कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ? भगवानाह—'ता दोण्णि णक्खत्ता जोएंति' तावत् द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः' 'तं जहा' तद्यथा—ते यथा—'साई विसाहा य' स्वातिः, विशाखा च । चशब्दात्—अनुराधा च, इदमनुराधानक्षत्रं च विशाखा नक्षत्रात् परं वर्तते, तस्य परस्यां ज्येष्ठामूलीपूर्णिमायामुपादानं करिष्यति नत्वेह सूत्रे साक्षादुपात्तम् अत्र तु विशाखानक्षत्रस्यैव प्राधान्यमिति । तत्र—प्रथमां वैशाखीं पौर्णमासीं विशाखानक्षत्रं षट्त्रिंशति मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य—एकादशसु सप्तषष्टिभागेषु ($३६\frac{२५।११}{६२।६७}$) गतेषु तथा—अष्टसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्पञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु ($८\frac{३६।५६}{६२।६७}$) शेषेषु समाप्तिं नयति, विशाखानक्षत्रस्य पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् ।१। द्वितीयां वैशाखीं पौर्णमासीं विशाखानक्षत्रं नवसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षष्टौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्विंशतौ सप्तषष्टिभागेषु ($९\frac{६०।२४}{६२।६७}$) गतेषु, तथा—पञ्चत्रिंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्यैकस्मिन् द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु ($३५\frac{१।४३}{६२।६७}$) शेषेषु परिसमापयति ५। तृतीयां वैशाखीं पौर्णमासीम् अनुराधानक्षत्रं चतुर्षु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टत्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य अष्टत्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु ($४\frac{३८।३८}{६२।६७}$) गतेषु, तथा—पञ्चविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकोनत्रिंशतौ सप्तषष्टिभागेषु ($२५\frac{२३।२९}{६२।६७}$) शेषेषु परिणमयति ३। चतुर्थी वैशाखीं पौर्णमासीं विशाखानक्षत्रं त्रयोविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकादशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु ($२३\frac{११।५१}{६२।६७}$) गतेषु तथा एकविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षोडशसु सप्तषष्टिभागेषु ($२१\frac{५०।१६}{६२।६७}$) शेषेषु परिसमाप्तिं नयति ४। पञ्चमीं वैशाखीं पौर्णमासीं स्वातिनक्षत्रम् एकादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुः-

षष्टौ सप्तषष्टिभागेषु ($११\frac{४६|६४}{६२|६७}$) गतेषु, तथा—त्रिषु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चदशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिषु सप्तषष्टिभागेषु ($३\frac{१५|३}{६२|६७}$) शेषेषु परिसमापयति, स्वातिनक्षत्रस्य पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकत्वात् ॥५॥

तदेवमुक्तं वैशाखीपूर्णिमाप्रकरणम्,

अथ ज्येष्ठामूली पूर्णिमाप्रकरणं विवृणोति—'**ता जेट्ठामूलिं णं**' इत्यादि, '**ता**' तावत् '**जेट्ठामूलिं णं**' ज्येष्ठामूलीं ज्येष्ठमासभाविनीं खलु '**पुण्णिमं**' पूर्णिमां '**कइ णक्खत्ता जोएंति**' कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ? भगवानाह—'**ता**' तावत् '**तिण्णि णक्खत्ता जोएंति**' त्रीणि नक्षत्राणि युञ्जन्ति, '**तं जहा**' तद्यथा तानि यथा—'**अणुराहा**' अनुराधा १, '**जेट्ठा**' ज्येष्ठा २, '**मूलो**' मूलम् ३ तत्र—प्रथमां ज्येष्ठामूलीं पौर्णमासीं मूलनक्षत्रं द्वादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वादशसु सप्तषष्टिभागेषु ($१२\frac{३०|१२}{६२|६७}$) गतेषु, तथा सप्तदशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकत्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्च पञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु ($१७\frac{३१|५५}{६२|६७}$) शेषेषु परिसमापयति १। द्वितीयां ज्येष्ठामूलीं ज्येष्ठमासभाविनीं पौर्णमासीं ज्येष्ठानक्षत्रम्—एकस्मिन् मुहूर्त्ते, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिषु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु ($१\frac{३|२५}{६२|६७}$) गतेषु, तथा त्रयोदशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्विचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु ($१३\frac{५८|४२}{६२|६२}$)शेषेषु परिसमाप्तिं नयति ज्येष्ठानक्षत्रस्य पञ्चदश मुहूर्त्तात्मकत्वात् ।२। तृतीयां ज्येष्ठामूलीं पौर्णमासीं मूलनक्षत्रं पञ्चविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकोनचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु ($२५\frac{४३|३९}{६२|६७}$) गतेषु, तथा—तृतीयां ज्येष्ठामूलीं पौर्णमासीं पूर्वोक्तं मूलनक्षत्रं चतुर्षु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टादशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य अष्टाविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु ($४\frac{१८|२८}{६२|६७}$) शेषेषु परिसमापयति ।३। चतुर्थीं ज्येष्ठामूलीं पौर्णमासीं ज्येष्ठा नक्षत्रं चतुर्दशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षोडशसु

द्वाषष्टिभागेपु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्विपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेपु (१४ $\frac{१६}{६८}|\frac{५२}{६७}$) गतेषु, तथा एकस्य मुहूर्त्तस्य पञ्चचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेपु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चदशसु सप्तषष्टिभागेपु (० $\frac{४५}{६२}|\frac{१५}{६७}$) शेषेपु परिपूरयति ज्येष्ठानक्षत्रस्य पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकत्वात् ।४। पञ्चमीं ज्येष्ठामूलीं पौर्णमासीम्—अनुराधानक्षत्रं सप्तदशसु मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेपु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चषष्ठौ सप्तषष्टिभागेपु (१७ $\frac{५७}{६२}|\frac{६५}{६७}$) गतेषु, तथा द्वादशसु मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य दशसु द्वाषष्टिभागेपु शेषेपु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वयोः सप्तषष्टिभागयोः (१२ $\frac{१०}{६२}|\frac{१२}{६७}$) शेषयोश्च परिपूर्णां करोति ।५।

तदेवं प्रतिपादिता ज्येष्ठामूली पूर्णिमा, साम्प्रतमाषाढीं पूर्णिमां प्रतिपादयितुमाह—'**ता आसाढिं णं**' इत्यादि. 'ता' तावत् '**आसाढिं णं पुण्णिमं**' आषाढीम्—आषाढमासभाविनीं पूर्णिमां '**कइणक्खत्ता जोएंति**' कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ? कियत्संख्यकानि नक्षत्राणि चन्द्रेण सह भोगं कृत्वा आषाढीं पूर्णिमां परिसमापयन्तीत्यर्थः । भगवानाह—'**ता दो णक्खत्ता जोएंति**' तावत् द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः चन्द्रेण सह पूर्णिमायां योगं कुरुत इति भावः, '**तंजहा**' तद्यथा—ते द्वे इमे—'**पुव्वा साढा उत्तरासाढा य**' पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा चेति । तत्र—प्रथमामाषाढीं पौर्णमासीं उत्तराषाढा-नक्षत्रम् अष्टादशसु मुहूर्त्तेपु एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चत्रिंशति द्वाषष्टिभागेपु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयोदशसु सप्तषष्टि भागेपु (१८ $\frac{३५}{६२}|\frac{१३}{६७}$) गतेषु, तथा षड् विंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षड् विंशतौ द्वाषष्टिभागेपु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुष्पञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु (२६ $\frac{२६}{६२}|\frac{५४}{६७}$) शेषेषु समापयति, उत्तराषाढानक्षत्रस्य पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् ।१। द्वितीयामाषाढीं पौर्ण-मासीं पूर्वाषाढानक्षत्रं द्वाविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वा-षष्टिभागस्य षड्विंशतौ सप्तषष्टिभागेषु (२२ $\frac{८}{६२}|\frac{२६}{६७}$) गतेषु—तथा—सप्तसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेपु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु (७ $\frac{५३}{६२}|\frac{४१}{६७}$) शेषेषु च परिपूर्णतां नयति ।२। तृतीयामाषाढीं पौर्णमासीम्, उत्तराषाढानक्षत्रम्, एक त्रिंशति मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टाचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य

चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु ($३१\frac{४८}{६२}|\frac{४०}{६७}$) गतेषु, तथा—त्रयोदशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोदशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु ($१३\frac{१३}{६२}|\frac{२७}{६७}$) शेषेषु समाप्तिं नयति ।३। चतुर्थी खलु पौर्णमासीमपि उत्तराषाढा नक्षत्रं पञ्चसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिपञ्चाशति सप्तषष्टि भागेषु ($५\frac{२१}{६२}|\frac{५३}{६२}$) गतेषु, तथा—एकोनचत्वारिंशति मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्दशसु सप्तषष्टिभागेषु ($३९\frac{४०}{६२}|\frac{१४}{६७}$)शेषेषु परिणमयति ४। पञ्चमीमाषाढीं पौर्णमासी पूर्वाषाढानक्षत्रम् अष्टसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट् पञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट् षष्टौ सप्तषष्टि भागेषु ($८\frac{५६}{६२}|\frac{६६}{६७}$) गतेषु, तथा—एकविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चसु द्वाषष्टिभागेषु, गतेषु एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य एकस्मिन् सप्तषष्टिभागे ($२१-\frac{५}{६२}|\frac{१}{६७}$) गते च परिसमापयति ५। अधिकमाससम्बन्धिनीं पुनस्तामेव पञ्चमीमाषाढीं पौर्णमासीमुत्तराषाढानक्षत्रं पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकं स्वयं परिसमाप्नुवन् तामपि परिसमापयति, अधिकमासिक्याषाढी पौर्णमासी समाप्तिसमकालमेवोत्तराषाढा नक्षत्रं चन्द्रेण सह सजातं योगमाश्रित्य स्वयमपि समाप्तिमेतीति भावः । अत्र चन्द्रप्रज्ञप्त्यामस्माभिः पूर्णिमासमापकनक्षत्राणामतिक्रान्ता भागाः शेषा भागाश्चेति द्वयमपि प्रदर्शितम्, सूर्यप्रज्ञप्तौ तु शेषा एव भागा विवक्षिता नत्वतिक्रान्ता भागा इत्यवधेयम् ॥सू० १॥

॥ इति पौर्णमासी समापकनक्षत्रप्रकरणं समाप्तम् ॥

पूर्वं यानि नक्षत्राणि चन्द्रेण सह योगं कृत्वा यां यां पौर्णमासीं समापयन्ति तानि प्रदर्शितानि, साम्प्रतं गतार्थमपि विषयं मन्दमतिप्रबोधनार्थं कुलादि योजनामाह—**'ता साविट्ठिं णं'** इत्यादि ।

मूलम्—ता साविट्ठिं णं पुण्णिमं किं कुलं जोएइ उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ ? । ता कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ । कुलं जोएमाणे धणिट्ठा णक्खत्ते जोएइ, उवकुलं जोएमाणे सवणणक्खत्ते जोएइ, कुलोवकुलं जोएमाणे अभिईणक्खत्तं जोएइ । साविट्ठिं पुण्णिमं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं

वा जोएइ। कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता, कुलोवकुलेण वा जुत्ता साविट्ठी पुण्णिमा जुत्ताति वत्तव्वं सिया १। ता पोट्ठवइ णं पुण्णिमं किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुल जोएइ? ता कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ। कुलं जोएमाणे उत्तरापोट्ठवया णक्खत्ते जोएइ उवकुलं जोएमाणे पुव्वापोट्ठवया णक्खत्ते जोएइ, कुलोवकुलं जोएमाणे सयभिसया णक्खत्ते जोएइ, पोट्ठवइं णं पुण्णिमं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ, कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता कुलोवकुलेण वा जुत्ता, पोट्ठवई पुण्णिमा जुत्ता-ति वत्तव्वं सिया २। ता आसोइं णं पुण्णिमं किं कुलं जोएइ, उवकुल जोएइ कुलोवकुलं जोएइ? ता कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, नो कुलोवकुलं जोएइ, कुलं जोएमाणे अस्सिणी णक्खत्ते जोएइ, उवकुलं जोएमाणे रेवई णक्खत्ते जोएइ, आसोइं णं पुण्णिमं कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता आसोईणं पुण्णिमा जुत्ता-ति वत्तव्वं सिया ३। एएणं अभिलावेणं जाव पोसि पुण्णिमं, जेट्ठामूलिं, पुण्णिमं च कुलोवकुलं पि जोएइ, अवसेसासु कुलोवकुला णत्थि जाव आसाढी पुण्णिमा जुत्ता-ति वत्तव्वं सिया ॥ सू० २ ॥

छाया- तावत् श्राविष्ठीं खलु पुर्णिमां किं कुलं युनक्ति, उपकुलं युनक्ति, कुलोपकुलं युनक्ति ? तावत् कुलं वा युनक्ति उपकुलं वा युनक्ति कुलोपकुलं वा युनक्ति कुलं युञ्जत् धनिष्ठानक्षत्रं युनक्ति उपकुलं युञ्जत् श्रवणनक्षत्रं युनक्ति कुलोपकुलं युञ्जत् अभिजिन्नक्षत्रं युनक्ति श्राविष्ठीं पूर्णिमां कुलं वा युनक्ति उपकुलं वा युनक्ति कुलोपकुलं वा युनक्ति कुलेण वा युक्ता उपकुलेन वा युक्ता कुलोपकुलेन वा युक्ता श्राविष्ठी पूर्णिमा युक्तेति वक्तव्यं स्यात् ।१। तावत् प्रौष्ठपदीं खलु पूर्णिमां किं कुलं युनक्ति उपकुल युनक्ति कुलोपकुलं युनक्ति तावत् कुलं वा युनक्ति उपकुलं वा युनक्ति कुलोपकुलं वा युनक्ति कुलं युञ्जत् उत्तराप्रोष्ठपदानक्षत्रं युनक्ति उपकुलं युञ्जत् पूर्वाप्रोष्ठपदानक्षत्र युनक्ति कुलोपकुलं युञ्जत शतभिषग् नक्षत्रं युनक्ति। प्रौष्ठदीं खलु पुर्णिमां कुल वा युनक्ति उपकुलं वा युनक्ति कुलोपकुलं वा युनक्ति कुलेण वा युक्ता उपकुलेन वा युक्ता कुलोपकुलेन वा युक्ता पौष्टपदी पर्णिमा युक्ता इति वक्तव्यं स्यात् ।२। तावत् अश्विनीं खलु पूर्णिमां किं कुलं युनक्ति उपकुलं युनक्ति कुलोपकुलं युनक्ति। तावत् कुलं वा युनक्ति उपकुलं वा युनक्ति नो कुलोपकुलं युनक्ति। कुलं युञ्जत् अश्विनीनक्षत्रं युनक्ति उपकुलं युञ्जत् रेवतीनक्षत्र युनक्ति। आश्विनीं खलु पूर्णिमां कुलं वा युनक्ति उपकुलं वा युनक्ति कुलेण वा युक्ता उपकुलेन वा युक्ता आश्विनी खलु पूर्णिमा युक्ता इति वक्तव्यं स्यात् ।३। एतेन अभिलापेन यावत् पौषीं पूर्णिमां ज्येष्ठामूलीं पूर्णिमां च कुलोपकुलमपि युनक्ति अवशेषासु कुलोपकुलानि न सन्ति यावत् आषाढी पूर्णिमा युक्ता इति वक्तव्यं स्यात् ।२॥सू०२॥

व्याख्या—गौतमः पृच्छति–'ता साविट्ठिं णं' इति, 'ता' तावत् 'साविट्ठिं णं' श्राविष्ठिं श्रावणमासभाविनीं खलु 'पुण्णिमं' पूर्णिमां कि 'कुलं जोएइ' कुलं युनक्ति, किं कुलसंज्ञकं नक्षत्रं चन्द्रेण सह योगं कृत्वा श्राविष्ठीं पूर्णिमां परिसमापयति ? एवमग्रेऽपि सर्वत्र योजना कर्त्तव्या, किं 'उव कुलं जोएइ' उपकुलं युनक्ति, किं 'कुलोवकुलं जोएइ' कुलोपकुलं युनक्ति ? भगवानाह—'ता' तावत् 'कुलं वा जोएइ' कुलं वा युनक्ति, अत्र 'वा' शब्दस्य समुच्चयार्थकत्वात् कुलमपि युनक्तीत्यर्थः, एवमग्रेऽपि विज्ञेयम्, 'उवकुलं वा जोएइ' उपकुलमपि युनक्ति, 'कुलोवकुलं वा जोएइ' कुलोपकुलमपि युनक्ति, तत्र 'कुलं जोएमाणे' कुलं युञ्जत् कुलसंज्ञकं नक्षत्रं योगं कुर्वन्नित्यर्थः 'धनिट्ठाणक्खत्ते' धनिष्ठानक्षत्रं 'जोएइ' युनक्ति, धनिष्ठानक्षत्रस्यात्र कुलसंज्ञकत्वात् 'उवकुलं जोए माणे' उपकुलं युञ्जत् 'सवणणक्खत्ते जोएइ' श्रवणनक्षत्रं युनक्ति, श्रवणनक्षत्रस्यात्रोपकुलसंज्ञकत्वात्, 'कुलोवकुलं जोएमाणे' कुलोपकुलं युञ्जत् 'अभिईणक्खत्ते' अभिजिन्नक्षत्रं 'जोएइ' युनक्ति अभिजिन्नक्षत्रस्यात्र कुलोपकुलसंज्ञकत्वात्। अभिजिन्नक्षत्रं हि तृतीयायां श्राविष्ठ्यां पौर्णमास्यां किञ्चिदधिकद्वादशमुहूर्त्तेषु शेषेषु–चन्द्रेण सह योगं युनक्ति ततः श्रवणेन सहास्य सहचरत्वात् स्वस्य च तृतीय श्राविष्ठ्याः पौर्णमास्याः पर्यन्तवर्त्तित्वात् तदपि तां परिसमापयतीति विवक्षया 'युनक्ति इत्यभिहितम्। उपसंहारमाह–'साविट्ठिं णं' इत्यादि, 'साविट्ठिं णं पुण्णिमं' श्राविष्ठीं खलु पूर्णिमां 'कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ' कुलं वा युनक्ति, उपकुलं वा युनक्ति कुलोपकुलं वा युनक्ति। ततः किमित्याह—'कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता, कुलोवकुलेण वा जुत्ता' कुलेनापि युक्ता, उपकुलेनापि युक्ता, कुलोपकुलेनापि युक्ता 'साविट्ठी पुण्णिमा' श्राविष्ठी पूर्णिमा 'जुत्ताति वत्तव्वं सिया' युक्तेति कुलादित्रिकैर्युक्ताऽस्तीति वक्तव्यं वाच्यं स्यात्।१। 'ता' तावत् 'पोट्ठवइं णं पुण्णिमं' प्रोष्ठपदी भाद्रपदीं भाद्रपदमासभाविनीं खलु पूर्णिमा 'किं कुलं जोएइ, उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ' कि कुलं युनक्ति, उपकुलं युनक्ति, कुलोपकुलं युनक्ति ? भगवानाह—'ता' तावत् 'कुलं वा जोएइ उवकुलं वा जोएइ कुलोवकुलं वा जोएइ' कुलमपि युनक्ति, उपकुलमपि युनक्ति, कुलोपकुलमपि युनक्ति। तत्र 'कुलं जोएमाणे' कुलं युञ्जत्, यदा कुलसंज्ञकं नक्षत्रमत्र पूर्णिमायां योगं करोति तदा 'उत्तरापोट्ठवयाणक्खत्ते' उत्तराप्रोष्ठपदानक्षत्रं 'जोएइ' युनक्ति योगं करोति, 'उवकुलं जोएमाणे' उपकुलं युञ्जत् 'पुव्वापोट्ठवयाणक्खत्ते' पूर्वाप्रोष्ठपदानक्षत्रं 'जोएइ' युनक्ति, 'कुलोवकुलं जोएमाणे' कुलोपकुलं युञ्जत् 'सयभिसया णक्खत्ते जोएइ' शतभिषग् नक्षत्रं युनक्ति, अतएव 'पोट्ठवइं णं पुण्णिमं' प्रोष्ठपदीं खलु पूर्णिमां 'कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ, कुलोवकुलं वा जोएइ' कुलं वा युनक्ति, उपकुलं वा युनक्ति, कुलोपकुलं वा युनक्ति, भाद्रपदपूर्णिमायाम् उत्तराप्रोष्ठपदा पूर्वाप्रोष्ठपदा शतभिषग्नक्षत्राणामेव कुलादि संज्ञकत्वात्। एवमधिकृत्यैव प्रौष्ठपदी पूर्णिमा 'कुलेण वा जुत्ता, उवकुलेण वा जुत्ता, कुलोवकुलेण वा जुत्ता' कुलेनापि युक्ता, उपकुलेनापि युक्ता, कुलोपकुलेनापि युक्ता 'पोट्ठवई

पुण्णिमा' प्रौष्ठपदी पूर्णिमा 'जुत्तत्ति' युक्तेति 'वत्तव्वं सिया' वक्तव्यं स्यात् शिष्येभ्यः कथनीयं स्यादिति ।२। 'आसोइं णं पुण्णिमं' आश्विनीं आश्विनमासभाविनीं खलु पूर्णिमां 'किं कुलं जोएइ उवकुलं जोएइ, कुलोवकुलं जोएइ' कि कुलं युनक्ति, उपकुलं युनक्ति, कुलोपकुलं युनक्ति ? भगवानाह—'कुलं वा जोएइ उवकुलं वा जोएइ' कुलमपि युनक्ति, उपकुलमपि युनक्ति किन्तु 'नो कुलोवकुलं जोएइ' नो—नैव कुलोपकुलं युनक्ति, अत्र कुलोपकुलयोर्द्वयोरेव चन्द्रेण सह योग सद्भावात् कुलत्वेन उपकुलत्वेन कि किं नक्षत्रं वर्त्तते ? इत्याह—'कुलं जोएमाणे' कुलं युञ्जत् अत्र यदि कुलनक्षत्रं योगं करोति तदेत्यर्थः 'अस्सिणीणक्खत्ते जोएइ' अश्विनीनक्षत्रं युनक्ति योगं करोति, तथा 'उवकुलं जोएमाणे' उपकुलं युञ्जत्, यदि उपकुलनक्षत्रं योगं करोति तदा 'रेवई णक्खत्ते' रेवतीनक्षत्रं 'जोएइ' युनक्ति चन्द्रेण सह योगं करोति, अतएव कथ्यते 'आसोइं णं पुण्णिमं' आश्विनीं खलु पूर्णिमां 'कुलं वा जोएइ उवकुलं वा जोएइ' कुलमपि युनक्ति उपकुलमपि युनक्ति. वा शब्दः सर्वत्र समुच्चयार्थकः । एषा पूर्णिमा अनेनैव कारणेन 'कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता' कुलेनापि युक्ता उपकुलेनापि युक्ता भूत्वा 'आसोईणं पुण्णिमा' आश्विनी खलु पूर्णिमा 'जुत्ताति' युक्तेति 'वत्तव्वं सिया' वक्तव्यं स्यात् कथनीयं भवेत् ३। अथाग्रेऽति-देशेनाह—'एवं' इत्यादि 'एवं' एवम् अनया रीत्या 'एएणं' एतेन पूर्वोक्तेन पूर्वप्रदर्शितप्रकारेण 'अभिलावेणं' अभिलावेन सूत्ररचनारूपेण 'जाव' यावत् 'पोसिं पुण्णिमं जेट्ठामूलिं पुण्णिमं च' पौषीं पूर्णिमां ज्येष्ठामूलीं ज्येष्ठमासभाविनीं पूर्णिमा च 'कुलोवकुलंपि जोएइ' कुलोपकुलमपि युनक्ति, पौष्यां पूर्णिमायां कुलोपकुलमार्द्रानक्षत्रम् ज्येष्ठामूल्यां पूर्णिमायां च कुलोपकुलमनुराधा-नक्षत्रमिति विज्ञेयम् । तत्र पौषपूर्णिमायां कुलं पुष्यनक्षत्रम्, उपकुलं पुनर्वसुनक्षत्रमस्ति, तथा ज्येष्ठा-मूल्यां पूर्णिमायामिति ज्येष्ठमासभाविन्यां पूर्णिमायां कुलं मूलनक्षत्रम् उपकुलं ज्येष्ठानक्षत्रं भव-तीति कुलादीनि त्रीण्यपि नक्षत्राणि चन्द्रेण सह यथायोगं योगं कुर्वन्तीति, 'अवसेसासु' अवशे-षासु पूर्वप्रदर्शितातिरिक्तासु पूर्णिमासु 'कुलोवकुला नत्थि' कुलोपकुलानि न सन्ति, तासु कुलानि उपकुलानि चैव चन्द्रेण, सह योगं कुर्वन्ति न तु कुलोपकुलानीति भावः । कियत्पर्यन्तमित्याह—'जाव' इत्यादि, 'जाव आसाढी पुण्णिमा जुत्ताति वत्तव्वं सिया' यावत्—आषाढी पूर्णिमा युक्तेति वक्तव्यं स्यात् इत्येतत्पर्यन्तं पूर्वप्रदर्शितसूत्रालापकप्रकारेण ज्ञातव्यम् । आलापकाश्च स्वयमूहनीयाः कस्यां पूर्णिमायां किं कुलं किमुपकुलमिति प्रदर्श्यते—श्राविष्ठीत आरभ्य आश्विनी पूर्णिमापर्यन्तं तिस्रः पूर्णिमास्तु पूर्वसूत्रे एव प्रदर्शिताः पौषी—ज्येष्ठा मूलीति पूर्णिमाद्वयं तु पर्वं व्याख्यायां प्रदर्शितम् । शेषास्तथाहि—कार्त्तिक्यां पूर्णिमायां कृत्तिकानक्षत्रं कुलं, भरणी नक्षत्रमुपकुलम् ४। मार्गशीर्षपूर्णिमायां मृगशीर्षनक्षत्रं कुलं, रोहिणीनक्षत्रमुपकुलम् ५। पौषी पूर्वं प्रदर्शिता कुला दित्रययोगयुक्तेति पूर्वं द्रष्टव्यम् ६। माघीपूर्णिमायां मघानक्षत्रं कुलम्, अश्लेषानक्षत्रमुपकुलम्

७। फल्गुनपूर्णिमायाम् उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रं कुलं, पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमुपकुलम् ८। चैत्री पूर्णिमायां चित्रानक्षत्रं कुलं, हस्तनक्षत्रमुपकुलम् ९। वैशाखी पूर्णिमायां विशाखानक्षत्रं कुलं, स्वातिनक्षत्रमुपकुपम् १०। ज्येष्ठपूर्णिमा कुलादित्रययुक्तेति पूर्वं प्रदर्शिता ११। आषाढी पूर्णिमायामुत्तराषाढानक्षत्रं कुलं, पूर्वाषाढा चोपकुलम् ११। इति द्वादश पूर्णिमा प्रकरणम् ॥सू० २॥

कुलादिनक्षत्रज्ञानार्थं कोष्ठकम्

मास स.	मासाः	कुलम्	उपकुलम्	कुलोपकुलम्
१	श्रावण पूर्णिमायाम्	धनिष्ठा	श्रवणः	अभिजित्
२	भाद्रपदपूर्णिमायाम्	उत्तराभाद्रपदः	पूर्वाभाद्रपदः	शतभिषक्
३	अश्विनपूर्णिमायाम्	अश्विनी	रेवती	×
४	कार्त्तिकपूर्णिमायाम्	कृत्तिका	भरणी	×
५	मार्गशीर्षपूर्णिमायाम्	मृगशिरः	रोहिणी	×
६	पौषपूर्णिमायाम्	पुष्यम्	पुनर्वसुः	आर्द्रा
७	माघपूर्णिमायाम्	मघा	अश्लेषा	×
८	फाल्गुनपूर्णिमायाम्	उत्तरा फाल्गुनी	पूर्वाफाल्गुनी	×
९	चैत्रपूर्णिमायाम्	चित्रा	हस्तः	×
१०	वैशाख,पूर्णिमायाम्	विशाखा	स्वातिः	×
११	ज्येष्ठपूर्णिमायाम्	मूलम्	ज्येष्ठा	अनुराधा
१२	आषाढपूर्णिमायाम्	उत्तराषाढा	पूर्वाषाढा	×

अभिजित आरम्य ऊत्तराषाढा पर्यन्तमष्टाविंशतिनक्षत्राणा मुहूर्त्तसकलना कोष्ठकम्।

नक्षत्र संख्या	नक्षत्र नामानि	मुहूर्त्तभोग प्रमाण	सकलित मुहूर्त्ताः	नक्षत्र संख्या	नक्षत्र नामानि	मुहूर्त्तभोग प्रमाण	सकलित मुहूर्त्ताः
१	अभिजित्	९–२७	९–२७	१०	कृत्तिका	३०	२६४–,,
२	श्रवणः	३०	३९–२७	११	रोहिणी	४५	३०९–,,
३	धनिष्ठा	३०	६९– ,,	१२	मृगशिरः	३०	३३९–,,
४	शतभिषक्	१५	८४– ,,	१३	आर्द्रा	१५	३५४–,,
५	पूर्वाभाद्रपदा	३०	११४–,,	१४	पुनर्वसुः	४५	३९९–,,
६	उत्तराभाद्रपदा	४५	१५९–,,	१५	पुष्यः	३०	४२९–,,
७	रेवती	३०	१८९–,,	१६	अश्लेषा	१५	४४४ ,,
८	अश्विनी	३०	२१९–,,	१७	मघा	३०	४७४–,,
९	भरणी	१५	२३४–,,	१८	पूर्वाफाल्गुनी	३०	५०४–,,

१९	उत्तरा फाल्गुणी	४५	५४९–,,
२०	हस्तः	३०	५७९–,,
२१	चित्रा	३०	६०९–,,
२२	स्वातिः	१५	६२४–,,
२३	विशाखा	४५	६६९–,,
२४	अनुराधा	३०	६९९–,,
२५	ज्येष्ठा	१५	७१४–,,
२६	मूला	३०	७४४–,,
२७	पूर्वाषाढा	३०	७७४–,,
२८	उत्तराषाढा	४५	८१९–,,

इति द्वादश पूर्णिमायोगकारि कुलादि नक्षत्रप्रकरणं समाप्तम्

तदेवं पूर्णिमायोगकारि कुलादि नक्षत्रवक्तव्यता प्रतिपादिता साम्प्रतममावास्या योगकारी कुलादि नक्षत्रवक्तव्यतामाह -- 'दुवालस अमावासाओ' इत्यादि ।

मूलम्—दुवालस अमावासाओ पण्णत्ताओ तं जहा—साविट्ठीपोट्ठवइ जाव आसाढी' ता साविट्ठिं णं अमावासं कइ णक्खत्ता जोएंति ? ता दुन्नि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा—असेस्सा महा य १ । एवं एएणं अभिलावेणं णेयव्वं–ता पोट्ठवइं दो णक्खत्ता जोएंति तं जहा—पुव्वाफग्गुणी उत्तराफग्गुणी य २ । आसोइं दो हत्थो चित्ता य ३ । कत्तिइं दो, तं जहा–साई विसाहा य ४ । मग्गसिरिं तिण्णि, तं जहा अणुराहा, जेट्ठामूलो य ५ । पोसिं दो, तं जहा–पुव्वासाढा उत्तरासाढा ६ माहिं तिण्णि, तं जहा–अभीई सवणो धणिट्ठा य ७ । फग्गुणिं तिण्णि तं जहा–सयभिसया पुव्वपोट्ठवया उत्तरपोट्ठवया य ८ । चेत्तिं तिण्णि, तं जहा–उत्तरभद्दावया, रेवई, अस्सिणी य ९ । वेसाहिं दो, तं जहा–भरणी कत्तिया य १० । जेट्ठामूलिं दो, तं जहा–रोहिणी मग्गसिरं च ११ । ता आसाढिं णं अमावासं कइ णक्खत्ता जोएंति ? ता तिण्णि णक्खत्ता जोएंति, तं जहा–अद्दा, पुणव्वसू, पुस्सो य १२ । ता साविट्ठिं णं अमावासं किं कुलं जोएइ ? उवकुलं जोएइ ? कुलोवकुलं जोएइ ? कुलं वा जोएइ, उवकुलं वा जोएइ नो लब्भइ कुलोवकुलं । कुलं जोएमाणे महाणक्खत्ते जोएइ, उवकुलं वा जोएमाणे असलेसा णक्खत्ते जोएइ कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता साविट्ठी अमावासा जुत्ता– ति वत्तव्वं सिया । एवं णेयव्वं णवरं मग्गसिराए, माहीए फग्गुणीए,

आसाढीए य अमावासाए कुलोवकुलं भाणियव्वं' सेसासु कुलोवकुलं णत्थि ॥सू० ३॥

"चंदपन्नत्तीए दसमस्स पाहुडस्स छट्ठं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥ १०-६ ॥

छाया द्वादश अमावास्याः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—श्राविष्ठी, प्रौष्ठपदी २, यावत् आषाढी १२। तावत् श्राविष्ठीं खलु अमावास्यां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति, तावत् द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः तद्यथा-अश्लेषा मघा च '१ एवम् एतेन अभिलापेन ज्ञातव्यम्-तावत् प्रौष्ठपदीं द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः तद्यथा—पूर्वाफाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी च २। आश्विनीं द्वे तद्यथा हस्तः चित्रा च ३। कार्त्तिकीं द्वे तद्यथा-स्वातिः विशाखा च ४। मार्गशीर्षीम् त्रीणि, तद्यथा-अनुराधा, ज्येष्ठामूलं च ५। पौषीं द्वे,तद्यथा-पूर्वाषाढा उत्तराषाढा च ६। माघीम् त्रीणि, तद्यथा-अभिजित् श्रवण धनिष्ठा च ७। फाल्गुनीं त्रीणि तद्यथा—शतभिषक् पूर्वप्रौष्ठपदा उत्तरप्रौष्ठपदा च, ८ चैत्रीं त्रीणि तद्यथा—उत्तराभाद्रपदा, रेवती, अश्विनी च ९। वैशाखीं द्वे तद्यथा—भरणी कृत्तिका च १०। ज्येष्ठामूलीं द्वे तद्यथा-रोहिणी मृगशिरश्च ११। तावत् आषाढीं खलु अमावास्यां कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ? तावत् त्रीणि नक्षत्राणि युञ्जन्ति, तद्यथा—आर्द्रा, पुनर्वसुः, पुष्यश्च १२। तावत् श्राविष्ठीं खलु अमावास्यां किं कुलं युनक्ति ? उपकुलं युनक्ति ? कुलोपकुलं युनक्ति ? कुलं वा युनक्ति, उपकुलं वा युनक्ति, नो लभते कुलोपकुलम् कुलं युञ्जत् मघानक्षत्रं युनक्ति, उपकुलं वा युञ्जत् अश्लेषा नक्षत्रं युनक्ति, कुलेन वा युक्ता उपकुलेन वा युक्ता श्राविष्ठी अमावास्या युक्ता इति वक्तव्यं स्यात् । एवं ज्ञातव्यं, नवरं मार्गशीर्ष्या, माध्यां फाल्गुन्याम् आषाढ्यां च अमावास्यायां कुलोपकुलं भणितव्यम् शेषासु कुलोपकुलं नास्ति सू० ३॥

॥इति चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रे दशमस्य प्राभृतस्य षष्ठं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् १०-६॥

व्याख्या—'दुवालस' इति 'दुवालस अमावासा पण्णत्ता' द्वादश अमावास्याः प्रज्ञप्ताः, 'तंजहा' तद्यथा—ता यथा—'साविट्ठी' श्राविष्ठी श्राविष्ठा अपरपर्याया धनिष्ठा, तया समाप्यमानो मासः श्राविष्ठः श्रावणः, श्रावणमासभाविनी अमावस्या श्राविष्ठीति १। 'पोट्ठवई' प्रोष्ठपदी प्रोष्ठपदा उत्तरभाद्रपदा, प्रोष्टपदानक्षत्रेण समाप्यमानो मासः प्रोष्टपदः, भाद्रपदमासः, तत्र भाविनी अमावास्या प्रौष्टपदी कथ्यते २। 'जाव आसाढी' यावत् आषाढी उत्तराषाढानक्षत्रेण समाप्यमानाऽऽषाढमासभाविनी अमावास्या आषाढी १२। अत्र यावत्पदेन—आश्विनी ३, कार्त्तिकी ४, मार्गशीर्षी ५, पौषी ६, माघी ७, फाल्गुनी ८, चैत्री ९, वैशाखी १०, ज्येष्ठामूली ११, इति पाठस्य संग्रहः। तत्र अश्विनीनक्षत्रसमाप्यमानाऽऽश्विनमासभाविनी अमावास्या आश्विनी ३, कृत्तिकानक्षत्रसमाप्यमान कार्त्तिकमासभाविनी अमावास्या कार्त्तिकी ४, मृगशिरोनक्षत्र समाप्यमानमार्गशीर्षमासभाविनी अमावास्या मार्गशीर्षी ५, पुष्यनक्षत्रसमाप्यमान पौषमासभाविनी अमावास्या पौषी ६, मघानक्षत्रसमाप्यमान माघमासभाविनी अमावास्या माघी ७, उत्तरा फाल्गुनीनक्षत्रसमाप्यमानफाल्गुनमासभाविनी अमावास्या फाल्गुनी ८, चित्रा नक्षत्रसमाप्यमान चैत्रमासभाविनी अमावास्या चैत्री ९, विशाखा नक्षत्रसमाप्यमान वैशाखमासभाविनी अमावास्या वैशाखी १० मूलनक्षत्र समाप्यमान ज्येष्ठमासभाविनी अमावास्या ज्येष्ठामूली ११। इति

द्वादशामावास्यानामानि । अथा योगकारकनक्षत्रसंख्यापूर्वकं कुलादि प्रदर्शयति—**'ता साविट्ठिं णं'** इत्यादि **'ता'** तावत् **'साविट्ठिं णं'** श्राविष्ठीं श्रवणमासभाविनीं खलु **'अमावासं'** अमावास्यां **'कइ णक्खत्ता जोएंति'** कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ? **'ता'** तावत् **'दोण्णि णक्खत्ता जोएंति'** द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः. **'तंजहा'** तद्यथा—**'अस्सेसा महा य'** अश्लेपा मघा च, एते द्वे नक्षत्रे श्राविष्ठीममावास्यां चन्द्रेण सह योगं कृत्वा परिसमापयत इति भावः ।

अयमाशयः—यदिह व्यवहारनयमतेन पौर्णमास्यां यन्नक्षत्रं भवति तस्मादारभ्य पश्चानुपूर्व्या प्रायः पञ्चदश नक्षत्रममावास्यायां भवति । तथा—अमावास्यायां यन्नक्षत्रं भवति तत आरभ्य परतः पूर्वानुपूर्व्या प्रायः पञ्चदशं नक्षत्रं पूर्णिमायां भवतीति सामान्यतो नियमो वर्त्तते । एतन्नियमात् श्राविष्ठ्यां पूर्णिमायां किल श्रवणो धनिष्ठा वा प्रोक्ता ततोऽस्यां श्राविष्ठ्याममावास्यायाम्—अश्लेपा मघा वा प्रायो भवत्येव । लोके च तिथि गणितानुसारेण व्यतीतायाममावास्यायां, वर्त्तमानायामपि च प्रतिपदि, द्वयोर्मध्ये यस्मिन्नहोरात्रे सूर्योदये प्रथमतोऽमावास्या भवेत् स सकलोऽप्यहोरात्रः अमावास्येति व्यवह्रियते, तत्रामावास्यायाः सूर्योदयव्यापिनीत्वात् तत एवं व्यवहारतोऽमावास्यायां मघानक्षत्रं प्राप्यते इति न कश्चिद्दोषः । निश्चयनयमतेन तु श्राविष्ठीमिमाममावास्यां वक्ष्यमाणानि त्रीणि नक्षत्राणि परिसमापयन्ति, तथाहि—पुनर्वसु पुष्यः, अश्लेषा चेति । कथमेवमायातीति—अमावास्यायां चन्द्रेण सह नक्षत्रयोगपरिज्ञानार्थं करणमाश्रित्य तत्प्रक्रिया प्रदर्श्यते तत्र करणं तु प्रागुक्तमेव, अथ कोऽपि पृच्छति युगस्यादौ प्रथमां श्राविष्ठीममावास्यां किं नक्षत्रं चन्द्रेण सह योगं युञ्जत् सत् परिसमापयतीति । तत्र पूर्वप्रदर्शितोऽवधार्यराशिः—षट्षष्टिर्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टि भागः $(६६\frac{५|१}{६२|६७})$ इयत्प्रमाणः स्थाप्यते स्थापयित्वा च प्रथमाममावास्यायाः पृष्ठत्वादेकेन गुण्यते एकेन गुणने स एव राशिरायातीति तावानेवावधार्यराशिः—$(६६\frac{५|१}{६२|६७})$ जातः तत एतस्माद्राशेः पुनर्वसुनक्षत्रस्य शोधनकं शोध्यते, तच्च शोधनकम्—द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट् चत्वारिंशद् द्वाषष्टि भागाः—$(२२\frac{४६}{६२})$ इत्येवं प्रमाणकम् । तत्र पूर्वषट्षष्टि मुहूर्त्तेभ्यो द्वाविंशति मुहूर्त्ताः शोधिताः शेषाश्चतुश्चत्वारिंशत् ४४, ततो द्वाषष्टि भागशोधनार्थं तस्माच्चतुश्चत्वारिंशद्राशेरेकं रूपं निष्कास्य तस्य द्वाषष्टि भागाः क्रियन्ते, तत एषु द्वाषष्टिभागेषु ये पञ्च द्वाषष्टिभगाः सन्ति ते प्रक्षिप्यन्ते जाता. सप्तषष्टिः ६७, पूर्वोराशि स्त्रिचत्वारिंशज्जातः ४३, ततः सप्तषष्टि भागेभ्यः पुनर्वसु शोधनकस्थितः षट् चत्वारिंशद्राशिः ४६, शोध्यते, तिष्ठन्ति शेषा एकविंशतिः २१, तत एक रूप निष्कासनानन्तरं स्थितेभ्यस्त्रिचत्वारिंशतः ४३, मुहूर्त्तेभ्यस्त्रिंशन्मुहूर्त्ताः

३०, पुष्यस्य शोध्यन्ते स्थिताः शेषास्त्रयोदश मुहूर्त्ताः १३। तथा—अवधार्यराशे रूपरितनश्चैकः सप्तपष्टि भागः $\frac{१}{६७}$ एवमवस्थित एवेति समागतास्त्रयोदशमुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकविंशतिर्द्वापष्टिभागाः, एकस्य च द्वापष्टिभागस्यैकः सप्तपष्टिभागः ($१३\frac{२१|१}{६२|६७}$) इति। अश्लेपा नक्षत्रं चापार्धक्षेत्रमिति पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकं, ततस्त्रयोदशसु मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकविंशतौ द्वापष्टिभागेपु गतेपु, तथा एकस्य च द्वापष्टिभागस्य एकस्मिन् सप्तपष्टिभागे ($१३\frac{२१ १}{६२६१}$)गते सति, तथा—एकस्मिन् मुहूर्त्ते, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चत्वारिंशति द्वापष्टिभागेपु, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य षट्पष्टौ सप्तपष्टिभागेषु ($१\frac{४०|६६}{६२|६७}$) शेपेपु प्रथमा श्राविष्ठचमावास्या समाप्तिमुपगच्छतीति। वक्ष्यति चाग्रे—

'ता एएसिं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं अमावासं चंदे केणं नक्खत्तेणं जोएइ? ता असिलेसाहिं, असिलेसाणं एक्को मुहुत्तो, चत्तालीसं बावट्ठि भागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छेत्ता छावट्ठी चुण्णिया भागा सेसा'' इति।

छाया—तावत् एतेषां पञ्चानां संवत्सराणां प्रथमाममावास्यां चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति?, तावत् अश्लेषया, अश्लेषा खलु एको मुहूर्त्तः, चत्वारिंशद् द्वापष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वापष्टिभागं च सप्तपष्टिधा छित्वा पट्पष्टि चूर्णिकाभागाः ($१\frac{४०,६६}{६२|६७}$) शेपाः, इति प्रथमा श्राविष्ठी अमावास्या १

अथ द्वितीया श्राविष्ठचमावास्या चिन्त्यते—इयं द्वितीया श्राविष्ठचमावास्या युगादित आरभ्य त्रयोदशीति पूर्वोक्तो ध्रुवराशिः–($६६\frac{५|१}{६२|६७}$) त्रयोदशभिर्गुण्यते ततः प्रथमं पट्पष्टिर्मुहूर्त्तास्त्रयोदशभिर्गुणिता जाता अष्टपञ्चाशदधिकाष्टशतसंख्यकाः (८५८) मुहूर्त्ताः, ततः पञ्च द्वापष्टिभागास्त्रयोदशभिर्गुणिता जाताः पञ्चपष्टिर्द्वापष्टिभागाः $\frac{६५}{६२}$, तत एकः सप्तपष्टिभागस्त्रयोदशभिर्गुणितस्ततो जाता स्त्रयोदश सप्तपष्टिभागाः १३, इति तत्स्थापना–$८५८\frac{६५|१३}{६२|६७}$)। ततः **"चत्तारि य बायाला सोज्झा अह उत्तरासाढा"** इति अत्रैव करणगाथागत पञ्चमगाथा वचनात् प्रथमशोधनकगतैर्द्विचत्वारिंशदधिकैश्चतुः शत संख्यकैः (४४२) मुहूर्त्तैः, पट् चत्वारिंशता

द्वाषष्टि भागैश्च–($\frac{४६}{६२}$) पुनर्वसुत आरभ्योत्तरापाढा पर्यन्तानि नक्षत्राणि शोध्यन्ते यथा—

८५८–६५–१३ शोध्य संख्या
४४२–४६– ० शोधक सख्या
४१६–१९–१३ शोधनफलम्

स्थितानि शेषाणि षोडशोत्तराणि चत्वारि शतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनविंशतिर्द्वापष्टिभागाः एकस्य च द्वापष्टिभागस्य त्रयोदश सप्तपष्टिभागा (४१६ $\frac{१९}{६२}\Big|\frac{१३}{६७}$) । तत एतस्माद् राशेः—नवत्यधिकशतत्रय (३९९) संख्यका मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वापष्टिभागाः ($\frac{२४}{६२}$) एकस्य च द्वापष्टिभागस्य षट् षष्टि सप्तपष्टिभागाः ($\frac{६६}{६७}$) इति (३९९ $\frac{२४}{६२}\Big|\frac{६६}{६७}$) समुदितो राशिरुपरिष्ठराशेः शोध्यते, तथाहि—पूर्वं षोडशोत्तर चतुःशत (४१६) राशेः नवनवत्यधिकत्रिशत (३९९) राशिः शोधितः, लब्धाः शेषाः सप्तदश मुहूर्त्ताः १७), अग्रे उपरितना द्वाषष्टिभागा एकोनविंशतिः (१९) एतेभ्यो न्यूनत्वेन चतुर्विंशतिर्न शोध्यते तत' शोधनार्थं सप्तदशमुहूर्त्तेभ्य एकं मुहूर्त्तं निष्कास्यास्य द्वापष्टिभागाः क्रियन्ते, एते द्वाषष्टिभागाः एकोनविंशतौ द्वाषष्टिभागराशौ क्षिप्यन्ते ततो जाता द्वापष्टिभागाः एकाशीतिः(८१)शोधन योग्या तत एतस्माद् राशेश्चतुर्विंशतिः शोध्यते, स्थिता पश्चात् सप्तपञ्चाशत्(५७), अस्मादेकं रूपं निष्कास्य सप्तपष्टिभागाः क्रियन्ते, एते सप्तपष्टि भागास्त्रयोदशसु सप्तपष्टिभागेषु क्षिप्यन्ते जाता अशीतिः(८०), एभ्यः षट् षष्टि सप्तपष्टिभागाः शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चात् चतुर्दश (१४) इत्यागताः पुष्यनक्षत्रस्यातिक्रान्ता भागा–षोडश मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्पञ्चाशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्दश सप्तपष्टि भागाः (१६–$\frac{५६}{६२}\Big|\frac{१४}{६७}$) त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकस्य पुष्यनक्षत्रस्यैतावत्परिमितेषु भागेष्वतिक्रान्तेषु द्वितीया श्राविष्ठी अमावस्या परिसमाप्तिमेतीति ।२।

अथ तृतीया श्रावष्ठ्यमावास्या विचार्यते–तत्र सा युगस्यादित आरभ्य पञ्चविंशतितमेति ध्रुवराशिः (६६ $\frac{५}{६२}\Big|\frac{१}{६७}$) पञ्चविंशत्या गुण्यते जातानि पञ्चाशदधिकानि षोडशशतानि (१६५०) मुहूर्त्तानां भवन्ति, तथा एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चविंशत्यधिकमेकं शतं द्वाषष्टिभागाः (१२५) एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चविंशतिः सप्तषष्टिभागाः २५ । तथाहि—(१६५० $\frac{१२५}{६२}\Big|\frac{२५}{६७}$) इति । तत्र द्विचत्वारिंशदधिकचतुःशतमुहूर्त्ताः (४४२) एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्

चत्वारिंशद् (४६) द्वाषष्टिभागाः–(४४२ $\frac{४६}{६२}$) एतत् पुनर्वसु प्रभृत्युत्तराषाढापर्यन्तं प्रथमं शोधनक पूर्वोक्तात् अमावास्या सख्या गुणितध्रुवराशेः (१६५०–$\frac{१२५}{६२}$|$\frac{२५}{६७}$) एतावत्परिमितात् शोध्यते, शोधिते च स्थितानि पश्चात् मुहूर्तेभ्यः अष्टोत्तराणि द्वादशशतानि (१२०८) मुहूर्त्तानाम , ततः पंचविंशत्युत्तरैकशतसंख्यकेभ्यो द्वाषष्टिभागेभ्यः षट्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागनां शोधने स्थिताः पश्चात् एकोनाशीतिः (७९) द्वाषाष्टिभागाः पञ्चविंशतिः (२५) सप्तषष्टिभागाश्च यथा पूर्वं तथैव स्थिताः, तथाहि स्थापना (१२०८–$\frac{७९}{६२}$|$\frac{२५}{६७}$) । तत एतस्माद् राशेः एकोनविंशत्यधिकाष्टशतमुहूर्त्ताः (८१९) एकस्य मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागाः ($\frac{२४}{६२}$) एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट् षष्टिः ($\frac{६६}{६७}$) सप्तषष्टिभागा. (८१९–$\frac{२४}{६२}$|$\frac{६६}{६७}$) एतत्परिमित एको नक्षत्रपर्यायः शोध्यते ततः स्थिता पश्चात्—नवाशीत्यधिकत्रिशतमुहूर्त्ताः (३८९) एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुष्पञ्चाशद (५४) द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षड्विंशतिः (२६) सप्तषष्टिभागाः (३८९–$\frac{५४}{६२}$|$\frac{२६}{६७}$) ततः पुनर्नवोत्तरशतत्रयमुहूर्त्ता (३०९), एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागाः (२४), एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः ६६ सप्तषष्टि भागाः, (३०९–$\frac{२४}{६२}$|$\frac{६६}{६७}$) एतत्परिमितं करणगाथा सप्तमाष्टमोक्तानाम् अभिजित आरभ्य रोहिणिका पर्यन्ताना नक्षत्राणां शोधनकं शोध्यते, स्थिता पश्चात्—अशीतिर्मुहूर्त्ताः (८०) एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनत्रिंशद (२९) द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तविंशतिः (२७) सप्तषष्टिभागाः(८०–$\frac{२९}{६२}$|$\frac{२७}{६७}$ ततः स्त्रिंशन्मुहूर्त्ता अस्माद्राशेर्मृगशिरसः शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चात् पञ्चाशन्मुहूर्त्ताः (५०) पुनरस्माद्राशे. पञ्चदशमुहूर्त्ता आर्द्रायाः शोध्यन्ते स्थिता पश्चात् पञ्चत्रिंशत् (३५) मुहूर्त्ता । ततः पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकस्य पुनर्वसु नक्षत्रस्य पञ्चत्रिंशतिमुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनत्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिभागेषु (३५ $\frac{२९}{६२}$|$\frac{२७}{६७}$) गतेषु तृतीया श्राविष्ठ्यमावास्या परिसमाप्तिमेति ।३।

एवं चतुर्थी श्राविष्ठीममावास्यां पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकमश्लेषानक्षत्रमेकस्य मुहूर्त्तस्य सप्तसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु ($0\frac{7}{62}|\frac{41}{67}$) गतेषु परिसमापयति ।४।

पञ्चमीं श्राविष्ठीममावास्यां त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं पुष्यनक्षत्रं त्रिषु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्विचत्वारिंशतिद्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुष्पञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु ($3-\frac{42}{62}|\frac{54}{67}$) गतेषु परिसमापयति ।५।

अथ प्रौष्ठपदीप्रभृत्यमावास्याविषये प्राह—'एवं' इत्यादि, 'एवं' एवम्—अनया रीत्या 'एएणं' एतेन अनन्तरोक्तेन 'अभिलावेणं' अभिलापेन आलापकप्रकारेण अग्रे प्रौष्ठपदी प्रभृत्यमावास्याविषये 'णेयव्वं' नेतव्यं ज्ञातव्यम्, तथाहि—'पोट्ठवई' इत्यादि, 'पोट्ठवई' प्रौष्ठपदीं भाद्रपदमासभाविनीममावास्यां 'दो णक्खत्ता जोएंति' द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः योगं कृत्वा परिसमापयतः, 'तंजहा' तद्यथा ते द्वे यथा—पुव्वाफग्गुणी उत्तराफग्गुणी य' पूर्वाफाल्गुनीं उत्तराफाल्गुनी च। इदं तु व्यवहारतः कथ्यते, वस्तुतस्तु त्रीणि नक्षत्राणि प्रौष्ठपदीममावस्यां परिसमापयन्ति, तत्र तृतीयायाः पञ्चम्याश्च प्रौष्ठपद्यमावास्यायाः परिसमापकत्वात्। तथाहि—प्रथमां प्रौष्ठपदीममावास्यां पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकमुत्तराफाल्गुनी नक्षत्रं चतुर्षु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षड्विंशतौ द्वाषष्टि भागेषु गतेषु, तथा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वयोः सप्तषष्टि भागयोः ($4-\frac{26}{62}|\frac{2}{67}$)गतयोः सतोः समापयति ।१। द्वितीयां प्रौष्ठपदीममावास्यां त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रं सप्तसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकषष्ठौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चदशसु सप्तषष्टि भागेषु ($7\frac{61}{62}|\frac{15}{67}$) व्यतिक्रान्तेषु परिसमापयति ।२। तृतीयां प्रौष्ठपदीममावास्यां त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं मघानक्षत्रम् एकादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुस्त्रिंशति द्वाषष्टि भागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य अष्टाविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु ($11-\frac{34}{62}|\frac{28}{67}$) परिपूरितेषु समाप्तिं नयति ।३। चतुर्थी प्रौष्ठपदीममावास्यां त्रिंशन्मुहूर्तात्मकं पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रम्—एकविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वादशसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्विचत्वारिंशति सप्तषष्टि भागेषु($21\frac{12|42}{62|42}$) गतेषु परिसमापयति ।४। पञ्चमी प्रौष्ठ-

पदीममावास्यां त्रिशन्मुहूर्त्तात्मक मघानक्षत्रं चतुर्विंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चाशति सप्तषष्टि भागेषु ($२४\frac{४७|४५}{६८|६६}$ व्यतीतेषु परिपूरयति ।५।

अथाश्विनीममावास्यां प्रदर्शयति---'आसोई' इत्यादि, 'आसोई दो' आश्विनीम् आश्विनमासभाविनीममावास्या द्वे नक्षत्रे तद्यथा 'हत्थो चित्ता य' हस्तश्चित्रा चेति नक्षत्रद्वयं युनक्ति योगं कृत्वा समापयति । इदमपि व्यवहारत एव कथ्यते, निश्चयतस्तु तृतीयमुत्तराफाल्गुनीनक्षत्रमप्याश्विनीममावास्यां परिसमापयतीति । तत्र प्रथमामाश्विनीममावास्यां त्रिशन्मुहूर्त्तात्मकं हस्तनक्षत्रं पञ्चविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकत्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिषु सप्तषष्टिभागेषु ($२५-\frac{३१|३}{६२|६७}$) गतेषु १, तथा द्वितीयामाश्विनीममावास्यां पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकमुत्तराफाल्गुनीनक्षत्रं चतुश्चत्वारिंशति मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्षु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षोडशसु सप्तषष्टिभागेषु ($४४\frac{४}{६२}\frac{१६}{६७}$) व्यतिक्रान्तेषु २, तथा तृतीयामाश्विनीममावास्या पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्तात्मिकं तदेवोत्तराफाल्गुनीनक्षत्रं सप्तदशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य द्वाषष्टिभागस्य एकोनत्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु ($१७\frac{३९|२९}{६२|६७}$) समाप्तेषु ३, तथा चतुर्थीमाश्विनीममावास्यां त्रिशन्मुहूर्त्तात्मकं हस्तनक्षत्रं द्वादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तदशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिचत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु ($१२-\frac{१७}{६२}\frac{४३}{६७}$) व्यतिक्रान्तेषु ४, तथा पञ्चमीमाश्विनीममावास्यां पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकमुत्तराफाल्गुनीनक्षत्रं त्रिंशतिमुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्विपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुष्पञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु ($३०-\frac{५२|५४}{६२|६७}$)चातिक्रान्तेषु परिसमापयति ॥५॥

अथ कार्तिकीममावास्यां प्रदर्शयति---'कत्तिइं' इत्यादि, 'कत्तिइ' कार्त्तिकीं कार्त्तिकमासभाविनीममावास्यां दो 'तं जहा' द्वे नक्षत्रे तद्यथा---'साई विसाहा य' स्वातिर्विशाखा च एते द्वे नक्षत्रे युङ्क्तः योगं कुरुतः । अत्रापीदं व्यवहारनयेन प्रोक्तम्, निश्चयनयेन तु तृतीयं चित्रा

नक्षत्रमपीमां कार्तिकीममावास्यां परिसमापयति । तत्र प्रथमां कार्तिकीममावास्यां पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकं विशाखानक्षत्रं षोडशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट् त्रिंशति द्वाषष्टि भागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्षु सप्तषष्टिभागेषु ($१६\frac{३६|४}{६२|६७}$) गतेषु १, तथा द्वितीयां कार्त्तिकीममावास्यां पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकं स्वातिनक्षत्रं पञ्चसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वाविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिभागेषु ($५\frac{२२|१९}{६२|६१}$) व्यतीतेषु २, तथा तृतीयां कार्त्तिकीममावास्यां त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं चित्रानक्षत्रम्—अष्टसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुश्चत्वारिंशति द्वाषष्टि भागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु ($८\frac{४४|३०}{६२|६७}$) परिपूरितेषु ३, तथा चतुर्थी कार्त्तिकीममावास्यां पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकं विशाखानक्षत्रं त्रयोदशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य न मुहूर्त्तस्य द्वाविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुश्चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु ($१३\frac{२२|४४}{६२|६७}$) समाप्तेषु ४, तथा पञ्चमीं कार्त्तिकीममावास्यां त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं चित्रानक्षत्रम् एकविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तपञ्चाशति सप्तषष्टि भागेषु ($२१\frac{५७|५७}{६२|६७}$) गतेषु च समापयति ॥५॥

अथ मार्गशीर्षीममावास्यां विवृणोति—'मग्गसिरिं' इत्यादि, 'मग्गसिरि' मार्गशीर्षी मार्गशीर्षमासभाविनीममावास्यां 'तिण्णि' त्रीणि नक्षत्राणि युञ्जन्ति 'तं जहा' तद्यथा—'अणुराहा, जेट्ठा, मूलो य' अनुराधा, ज्येष्ठा, मूलं च। अत्र व्यवहारनयेन इमानि पूर्वोक्तानि त्रीणि नक्षत्राणि मार्गशीर्षीममावास्यां परिसमापयन्ति, किन्तु निश्चयनयमतेन तु इमानि वक्ष्यमाणानि त्रीणि नक्षत्राणि समापयन्ति, तथाहि—विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा चेति। तत्र प्रथमां मार्गशीर्षीममावास्यां पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकं ज्येष्ठानक्षत्रं सप्तसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकचत्वारिंशति द्वाषष्टि भागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य, पञ्चसु सप्तषष्टिभागेषु ($७\frac{४१|५}{६२|६७}$) गतेषु परिसमापयति १, द्वितीयां मार्गशीर्षीममावास्यां त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मक मनुराधानक्षत्रम्—एकादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्दशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य अष्टादशसु सप्तषष्टिभागेषु ($११\frac{१४|१८}{६२|६७}$) परिपूर्णेषु २, तथा तृतीयां मार्गशीर्षीममावास्यां पञ्चचत्वारि शन्मुहूर्त्तात्मकं विशाखानक्षत्रम्—एकोनत्रिंशति मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य

[illegible] द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकत्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु ([illegible] $\frac{[illegible]}{६२।६७}$) [illegible] प्राप्तेषु ३, तथा चतुर्थी मार्गशीर्षीममावास्यां त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकमनु-[illegible] चतुर्विंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तत्रिंशता द्वाषष्टिभागेषु च, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चचत्वारिंशति सप्तषष्टि भागेषु (२४ $\frac{२७।४५}{६२।६७}$) व्यतीतेषु ४, तथा पञ्चमी मार्गशीर्षीममावास्यां पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकं विशाखानक्षत्रं त्रिचत्वारिंशति मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य सम्बन्धिनो द्वाषष्टिभागस्य अष्टपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु च (४३ $\frac{०।५८}{६२।६७}$) परिपूर्णेषु परिसमापयति ॥५॥

[illegible] पौषीममावास्यामाह-'पोसिं' इत्यादि, 'पोसिं' पौषी पौषमासभाविनीममावास्यां 'दो' द्वे नक्षत्रे 'तं जहा' तद्यथा–'पुव्वासाढाउत्तरासाढा य' पूर्वाषाढा उत्तराषाढा चेति । इदमपिव्यवहारत [illegible] निश्चयतस्तु तृतीयं मूलनक्षत्रमपि पौषीममावास्यां परिसमापयति । तत्र प्रथमां पोषीममा-[illegible] त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं पूर्वाषाढानक्षत्रम्–अष्टाविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिं-[illegible] द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्सु सप्तषष्टिभागेषु, (२८–$\frac{४६।६}{६२।६७}$ गतेषु, [illegible] द्वितीया पौषीममावास्या त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं पूर्वाषाढानक्षत्रं द्वयोर्मुहूर्त्तयोर्गतयोः सतोः एकस्य [illegible] मुहूर्त्तस्य एकोनविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकोनविंशतौ सप्तषष्टि [illegible] (२ $\frac{१९।१९}{६२।६७}$) व्यतीतेषु २, तथा तृतीयामभिवर्धितमासभाविनीममावास्यां पञ्चचत्वा-[illegible]–एकादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनषष्टौ द्वाषष्टिभागेषु [illegible] त्रयस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु (११ $\frac{५९।३३}{६२।६७}$ परिपूर्णेषु ३, तथा चतुर्थी [illegible] पूर्वाषाढानक्षत्रं पञ्चदशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्पञ्चा-[illegible] एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्चत्वारिंशति सप्तषष्टि भागेषु (१५ $\frac{५६।४६}{६२।६७}$ [illegible] मुहूर्त्तं [illegible] मूलनक्षत्रम् एकोनविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च [illegible] एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य एकोनषष्टौ सप्तषष्टि भागेषु (१९ $\frac{५।५९}{६२।६७}$ [illegible] ॥५॥

[illegible] 'माहिं' इत्यादि, 'माहिं' माघी [illegible]ममावास्यां 'तिण्णि' [illegible]–अभीई सवणो धणिट्ठाय' अभिजित्, श्रवणः, धनिष्ठा च

एतानि त्रीणि नक्षत्रणि युञ्जन्ति परिसमापयन्तीत्यर्थः एतानि पूर्वोक्तानि त्रीणि नक्षत्राणि व्यवहार-नयमाश्रित्य प्रोक्तानि निश्चयनयेन तु एतानि वक्ष्यमाणानि त्रीणि नक्षत्राणि मघीममावास्यां परिस-मापयन्ति, तानि त्रीणीमानि उतरापाढा अभिजित्, श्रवणश्चेति । तत्र प्रथमां माघीममावास्यां त्रिश-न्मुहूर्त्तात्मक श्रवणनक्षत्रं दशसु मुहूर्त्तेपु एकस्य च मुहूर्त्तस्य पड्विंशतौ द्वापष्टि भागेषु, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य अष्टसु सप्तपष्टिभागेपु ($१०\frac{२६|८}{६२|६७}$) गतेपु तथा द्वितीयां माघीममावास्य सप्तविंशति सप्तपष्टि भाग युक्त नवमुहूर्त्तात्मकमभिजिन्नक्षत्रं ९ $\frac{२७}{६७}$ त्रिंश मुहूर्त्तेपु एकस्य च मुहूर्त्त स्य पड्विंशतौ द्वापष्टिभागेपु एकस्य च द्वापष्टिभागस्य विंशतौ सप्तपष्टि भागेपु ३–$\frac{२६|२०}{६२|६७}$ व्यतीतेपु तथा तृतीयां माघीममावास्यां त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं श्रवणनक्षत्रं त्रयोविंशतौ मुहूर्त्तेपु एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनचत्वारिंशति द्वापष्टिभागेपु एकस्य च द्वापष्टि भागस्य पञ्च त्रिंशति सप्तपष्टि भागेपु ($२३\frac{३७}{६२}|\frac{३५}{६७}$) परिपूर्णेपु ३, चतुर्थी माघीममावास्या सप्तविंशति सप्तषष्टिभागयुक्तनवमु-हूर्त्तात्मकमभिजिन्नक्षत्रं षट्सु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तत्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तचत्वारिंशतिसप्तषष्टिभागेषु ($६\frac{३७}{६२}|\frac{४७}{६७}$) गतेषु ४, तथा पञ्चमीं माघीममा-वास्याम् पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकमुत्तरापाढानक्षत्रं पञ्चविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य दशसु द्वापष्टिभागेषु, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य षष्टौ सप्तषष्टिभागेषु च ($२५\frac{१०}{६२}|\frac{६०}{६७}$) व्यतीतेषु परिसमापयति ।५।

अथ फाल्गुनीममावस्याविषये–प्राह–**'फग्गुणीं'** इत्यादि, **फग्गुणीं'** फाल्गुनीं फाल्गुनमासभावि-नीममावास्यां **'तिण्णि'** त्रीणि नक्षत्राणि योगं कुर्वन्ति तानि यथा-**'सयभिसया, पुव्वपोट्ठवया य, उत्तरपोट्ठवया य'** शतभिशक्, पूर्वप्रोष्ठपदा उत्तरप्रोष्ठपदाचेति । एतदपि व्यवहारत एव, निश्चय-तस्तु अमूनि वक्ष्यमाणानि त्रीणि नक्षत्राणि फाल्गुनीममावास्यां समापयन्ति, तानीमानि– धनिष्ठा, शतभिषक्, पूर्वाभाद्रपदाचेति । तत्र प्रथमां फाल्गुनीममावास्या त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं पूर्वभाद्रपदानक्षत्र षट्सु मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकत्रिंशति द्वापष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य नवसु सप्तपष्टिभागेषु ($६\frac{३१}{६२}|\frac{९}{६७}$) व्यतीतेषु १, तथा द्वितीयां फल्गुनी-

ममावास्यां त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं धनिष्ठानक्षत्रं विंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्षु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु (२० ४/६२ | २२/६७) समाप्तेषु, २ तथा तृतीयां फाल्गुनीममावास्यां त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं पूर्वाषाढानक्षत्रं चतुर्दशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुश्चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्त्रिंशति सप्तभागेषु (१४ ४४/६२ | ३६/६७) गतेषु ३, चतुर्थी फाल्गुनी ममावास्यां पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकं शतभिषक् नक्षत्रं त्रिषु मुहूर्त्तेषु एकस्य च सप्तदशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकोन पञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु (३ १७/६२ | ४९/६७ गतेषु ४, पञ्चमीं फाल्गुनीममावास्यां त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं धनिष्ठानक्षत्रं षट्सु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्विपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु च (६ ५२/६२ | ६२/६७) समतिक्रान्तेषु परिसमापयति ।५।

अथ चैत्रीममावास्यामाह—**'चेत्ति'** इत्यादि, **'चेत्ति'** चैत्रीं चैत्रमासभाविनीममावास्यां **'तिण्णि'** त्रीणि समापयन्ति, **'तं जहा'** तद्यथा **'उत्तरभद्दवया, रेवई, अस्सिणी य'** उत्तराभाद्रपदा, रेवति, अश्विनी चेति । इदमपि व्यवहारतः, निश्चयतस्तु वक्ष्यमाणानीमानि त्रीणि नक्षत्राणि चैत्रीममावास्यां परिसमापयन्ति, तानि यथा पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा रेवती चेति । तत्र प्रथमा चैत्रीममावास्यां पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकमुत्तराभाद्रपदानक्षत्रं सप्तत्रिंशतिमुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य दशसु सप्तषष्टिभागेषु (३७ ३६/६२ | १०/६९)व्यतीतेषु १, द्वितीयां चैत्रीममावास्यां पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकमुत्तराभाद्रपदानक्षत्रम्—एकादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य नवसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयोविंशतौ सप्तषष्टिभागेषु (११ ९/६२ | २३/६७)गतेषु २, तृतीयां चैत्रीममावास्यां त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं रेवतीनक्षत्रं पञ्चसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिभागेषु (५ ४१/६२ | ३७/६७) परिपूर्णेषु ३, चतुर्थी चैत्रीममावस्यां पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकमुत्तराभाद्रपदानक्षत्र त्रयोविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वाविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु (२३ २२/६२ | ५०/६७) गतेषु ४, पञ्चमीं चैत्रीममावास्यां त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मक पूर्वाभाद्रपदानक्षत्रं सप्तविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तपञ्चा-

शति द्वापष्टिभागेपु, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य त्रिपष्टौसप्तपष्टिभागेपु ($२७\frac{५७}{६२}\frac{६३}{६७}$) गतेपु च समापयति ।५।

अथ वैशाखीममावास्यामाह—'वइसाहिं' इत्यादि, 'वइसाहिं' वैशाखीं वैशाखमासभाविनीममावास्या 'दो' द्वे नक्षत्रे समापयतः, 'तं जहा' तद्यथा—ते द्वे इमे—भरणीकत्तिया य' भरणी कृत्तिका चेत्ति । अत्राप्येते द्वे नक्षत्रे व्यवहारतः कथिते, निश्चयतस्तु त्रीणि नक्षत्राणि वक्ष्यमाणानि वैशाखीममावास्यां परिपूरयति, तानीमानि—रेवती, अश्विनी, भरणी चेति । तत्र—प्रथमां वैशाखीममावास्याम् त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकमश्विनीनक्षत्रम्—अष्टाविंशतौ मुहूर्त्तेपु एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकचत्वारिंशति द्वापष्टिभागेपु एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य एकादशसु सप्तपष्टि भागेपु ($२८\frac{४१}{६२}|\frac{११}{६७}$) गतेपु १, द्वितीयां वैशाखीममावास्याम्—त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकमश्विनीनक्षत्रं द्वयोर्मुहूर्त्तयोर्गतयोः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनचत्वारिंशति द्वापष्टिभागेपु एकस्य च द्वापष्टिभागस्य त्रयोविंशतौ सप्तषष्टि भागेषु ($२\frac{३९}{६२}|\frac{२३}{६७}$) व्यतीतेपु २, तृतीयां वैशाखीममावास्यां पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकं भारणीनक्षत्रम्—एकादशसु मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुःपञ्चाशति द्वापष्टि भागेपु एकस्य च द्वापष्टिभागस्य अष्टत्रिंशति सप्तपष्टिभागेपु ($११\frac{५४}{६२}|\frac{३८}{६७}$) गतेपु ३, चतुर्थी वैशाखीममावास्यां त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकमश्विनीनक्षत्रं पञ्चदशसु मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतौ द्वापष्टिभागेषु, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य एकपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेपु ($१५\frac{२७}{६२}|\frac{५१}{३७}$) गतेपु ४, पञ्चमीं वैशाखीममावास्यां त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं रेवतीनक्षत्रम्—एकोनविंशतौ मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सम्वन्धिन एकस्य द्वापष्टिभागस्य चतुःपष्टौ सप्तपष्टिभागेपु ($१९\frac{०}{६२}|\frac{६४}{६}$) गतेपु च परिसमापयति ।५।

अथ ज्येष्ठमासभाविनीममावास्यां प्रदर्शयति—'जेट्ठामूलिं' इत्यादि 'जेट्ठामूलिं' ज्येष्ठामूलीं ज्येष्ठमासभाविनीममावास्यां 'दो' द्वे नक्षत्रे परिसमापयत., 'तं जहा' तद्यथा—ते द्वे इमे—'रोहिणीमिगसिरं च' रोहिणो मृगशिरश्चेति । एतदपि व्यवहारतः कथितं, निश्चयतस्तु कृत्तिका रोहिणी चेति द्वे नक्षत्रे ज्येष्ठामूलीममावास्यां परिसमापयत. । तत्र प्रथमां ज्येष्ठामूलीममावास्यां पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकं रोहिणीनक्षत्रम् एकोनविंशतौ एकोनविंशतौ मुहूर्त्तेपु एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशति द्वापष्टिभागेपु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वादशसु सप्तषष्टिभागेपु ($१९\frac{४६}{६२}|\frac{१२}{६७}$

परिसमाप्तेपु, द्वितीया ज्येष्ठामूली ममावस्यां त्रिशन्मुहूर्त्तात्मकं कृत्तिकानक्षत्रं त्रयोविंशतौ मुहूर्त्तेपु एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनविंशतौ द्वापष्टिभागेपु, एकस्य च द्वापष्टि भागस्य पञ्चविंशतौ सप्तपष्टिभागेपु (२३ $\frac{१९}{६२}|\frac{२५}{६७}$ व्यतीतेपु २, तृतीयां ज्येष्ठामूलीममावास्यां पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकं रोहिणीनक्षत्र द्वात्रिंशति मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनपष्ठौ द्वापष्टिभागेपु, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य एकोनचत्वारिंशति सप्तपष्टिभागेपु (३२ $\frac{५९}{६२}|\frac{३९}{६७}$) परिपूर्णता गतेपु ३, चतुर्थी ज्येष्ठामूलीममावास्यां पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकं रोहिणीनक्षत्रं पट्सु मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वात्रिंशतौ द्वापष्टिभागेपु, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य द्विपञ्चाशति सप्तपष्टिभागेपु (६ $\frac{३२}{६२}\frac{५२}{६७}$ परिसमाप्तेपु ४, तथा पञ्चमी ज्येष्ठामूलीममावास्यां त्रिशन्मुहूर्त्तात्मकं कृत्तिकानक्षत्रं दशसु मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चसु द्वापष्टिभागेपु, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य पञ्चपष्ठौ सप्तपष्टिभागेपु (१० $\frac{५}{६२}|\frac{६५}{६७}$) समतिक्रान्तेपु समापयति ५।

अथापाढीममावास्यां सूत्रकारः स्वयं सूत्रालापकेन प्रदर्शयति **'ता आसाढिं णं'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **'आसाढिं णं'** आपाढीं आपाढमासभाविनीम् खलु **'अमावासिं'** अमावास्यां **'कइणक्खत्ता जोएंति'** कति नक्षत्राणि युञ्जन्ति ? चन्द्रेण सह योगं कृत्वा आपाढीममावास्यां परिसमापयन्ति ? भगवानाह—**'ता'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **'तिण्णि णक्खत्ता जोएंति'** त्रीणि नक्षत्राणि युञ्जन्ति **'तं जहा'** तद्यथा— **'अद्दा पुणव्वसू पुस्सो'** आर्द्रा, पुनर्वसुः, पुष्यः ।१२। अत्रापि इमानि पूर्वोक्तानि त्राणि नक्षत्राणि व्यवहारमाश्रित्य प्रोक्तानि, निश्चयनयेन पुनरिमानि वक्ष्यमाणानि त्रीणि नक्षत्राणि आपाढीममावास्यां परिसमापयन्ति तानि यथा—मृगशिरः, आर्द्रा, पुनर्वसुश्चेति तत्र प्रथमामापाढीममावास्या पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकमार्द्रानक्षत्रं दशसु मुहूर्त्तेपु एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकपञ्चाशति द्वापष्टिभागेपु एकस्य च द्वापष्टिभागस्य त्रयोदशसु सप्तपष्टिभागेपु (१०—$\frac{५१}{६२}$ $\frac{१३}{६७}$) व्यतिक्रान्तेपु १, यथा—द्वितीयामापाढीममावास्यां त्रिशन्मुहूर्त्तात्मकं मृगशिरो नक्षत्रं सप्तविंशतौ मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतौ द्वापष्टिभागेपु एकस्य च द्वापष्टिभागस्य पड्विंशतौ सप्तपष्टिभागेपु २७—$\frac{२४|२६}{६२|६७}$—गतेपु २, तथा तृतीयामापाढीममावास्या पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकं पुनर्वसुनक्षत्रं नवसु मुहूर्त्तेपु एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वयोर्द्वापष्टिभागयोः, एकस्य च

द्वाषष्टिभागस्य चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु (९ — $\frac{२}{६२}\Big|\frac{४०}{६७}$) गतेषु ३, तथा चतुर्थीमाषाढीममावास्यां त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं मृगशिरो नक्षत्रं सप्तदिशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तत्रिंशतिद्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिपञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु (२९— $\frac{३७}{६२}\Big|\frac{५३}{६७}$ समतिक्रान्तेषु ४, तथा-पञ्चमीमाषाढीममावास्यां पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकं पुनर्वसुनक्षत्रं द्वाविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षोडशसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य अष्टसु सप्तषष्टिभागेषु च (२२- $\frac{१६}{६२}\Big|\frac{८}{६९}$)परि-पूर्णतां प्राप्तेषु सत्सु परिसमापयतीति । ५ ।

॥इति द्वादशामावास्या विचारः समाप्तः॥

गतो द्वादशाऽमावास्यानां परिसमापकचन्द्रयोगकारकनक्षत्राणा विधिः साम्प्रतमेतासामेवामावास्यानां कुलादिसंज्ञकनक्षत्रयोजना प्रदर्शयति—ता **'साविट्ठिं णं'** इत्यादि गौतमः पृच्छति **'ता'** तावत् **'साविट्ठिं णं'** श्रावष्ठीं श्रावणमासभाविनीम् **'अमावासं'** अमावास्यां **'किं कुलं-जोएइ'** किं कुलं कुलसंज्ञकनक्षत्रं **'जोएइ'** युनक्ति चन्द्रेण सह योगं कृत्वाताममावास्या परिसमापयतीतिभावः अथवा **'उवकुलं जोएइ'** उपकुलं युनक्ति उपकुलं कुलनक्षत्रात् पूर्वस्थितं नक्षत्रं योग करोति ? अथवा **'कुलोवकुलं'** कुलोपकुलं कुलनक्षत्रात् पश्चानुपूर्व्या तृतीयं नक्षत्रं **'जोएइ'** युनक्ति ? इति प्रश्नः। भगवानाह— हे गौतम ! श्राविष्ठीममावास्यां **'कुलं वा जोएइ'** कुलं वा युनक्ति अत्र वा शब्दः अप्यर्थे तेन कुलमपि युनक्तीत्यर्थः एवमग्रेऽपि सर्वत्र विज्ञेयम् तथा **'उवकुलं वा जोएइ'** उपकुलमपि युनक्ति किन्तु **'नो लब्भइ कुलोवकुलं'** न लभते नो प्राप्नोति कुलोपकुलं, कुलनक्षत्रात् पश्चानुपूर्व्या तृतीयं नक्षत्रं श्राविष्ठीममावास्यां योगकारकत्वेन न प्राप्नोतीति भावः एवं तर्हि कुलत्वेन च उपकुलत्वेन कि किं नक्षत्रं श्राविष्ठीममावास्यां युनक्तीति प्रश्ने ते द्वे नक्षत्रे प्रदर्शयति **'कुलं जोएमाणे'** इत्यादि **'कुलं'** कुलं कुलसंज्ञकं नक्षत्रं **'जोएमाणे'** युञ्जन् योगं कुर्वन् **'महाणक्खत्ते'** मघानक्षत्रं **'जोएइ** युनक्ति चन्द्रेण सह योगं कृत्वा श्राविष्ठीममावास्यां परिसमापयतीति भावः अत्र कुलनक्षत्रं मघेति तात्पर्यम् अत्र यत् मघानक्षत्रं कुलत्वेन प्रोक्तं तद् व्यवहारतः प्रोक्तम् व्यवहारतो हि व्यतीतायाममावास्यायां वर्त्तमानायां च प्रतिपदियोऽहोरात्रप्रारम्भेऽमावास्यया सम्बद्धः स समस्तोऽप्यहोरात्रः **'अमावास्या** इति व्यवह्रियते तत एव व्यवहारमाश्रित्य श्राविष्ठ्याममावास्यायां मघानक्षत्रस्य संभवादत्रोक्तं यत कुलं युञ्जन्मघानक्षत्रं युनक्तीति, किन्तु निश्चयनयेन तु कुलं युञ्जत् पुष्यनक्षत्रं श्राविष्ठीममावास्यां युनक्तीति-प्रतिपत्तव्यं कुलप्रसिद्ध्या प्रसिद्धस्य तस्यैव श्राविष्ठ्याममावास्यायां संभवात् एतच्च प्रागेवोक्तम्, उत्तरसूत्रमपि व्यवहारमाश्रित्य यथा योगं परिभावनीयमिति **'वा'** वा अथवा **'उवकुलं'** उपकुलं नक्षत्रं **'जोएमाणे'** युञ्जन् योगं कुर्वन् **'असिलेसा णक्खत्ते'** अश्लेषानक्षत्रं मघातः पूर्वस्थितं **'जोएइ'** युनक्ति श्राविष्ठ्याममावास्यायां चन्द्रेण सह योगं करोतीत्यर्थः कुलोपकुलं नक्षत्रं समायातीति भावः ॥

अथोपसंहारमाह—'कुलेण वा' इत्यादि, 'कुलेण वा जुत्ता उवकुलेण वा जुत्ता' कुलेन वा युक्ता उपकुलेन वा युक्ता भवति, अत एव साविट्ठीअमावासा' श्राविष्ठी अमावास्या जुत्तात्ति' युक्ता इति 'वत्तव्वं सिया' वक्तव्यं स्यात् द्वाभ्यां कुलेन उपकुलेण च युक्ता कथ्यते न तु कुलोपकुलेन युक्तेति भावः 'एवं' एवम्—अनेन प्रकारेण 'नेयव्वं' नेतव्यं ज्ञातव्यम् एवं द्वादशानामप्यमावास्यानामालापकप्रकारः स्वयमूहनीय इति भावः यद्वैशिष्ट्यं तद्दर्शयति—'नवरं' इत्यादि 'नवरं' नवरं केवलं विशेषस्त्वयम्—'मग्गसिराए' मार्गशीर्ष्यां मार्गशीर्षमासभाविन्याम् 'माहीए' माध्यां माघमासभाविन्याम् 'फग्गुणीय ए' फाल्गुन्यां फाल्गुनमासभाविन्याम् 'आसाढीए य' आषाढ्याम् आषाढमासभाविन्यां चामावास्यायां 'कुलोवकुलं भाणियव्वं' कुलोपकुलं नक्षत्रं भणितव्यम् आसु चतसृष्वेवामावास्यासु कुलोपकुलनक्षत्रं भवतीति भावः 'सेसासु' शेषासु मार्गशीर्षमाघफाल्गुनाऽऽषाढमासगतामावास्यातिरिक्तासु अष्टस्वमावास्यासु 'कुलोवकुलं नत्थि' कुलोपकुलं नास्ति न भवतीति ॥सू० ३॥

द्वादशामावास्या योगकारक कुलादि नक्षत्र कोष्टकम्

मा. संख्या	अमावास्या नाम	कुलम्	उपकुलम्	कुलोपकुलम्
१	श्राविष्ठ्याम्	मघा	अश्लेषा	०
२	प्रौष्ठपद्याम् (भाद्रपद्याम्)	उत्तरा फाल्गुनी	पूर्वा फाल्गुनी	०
३	आश्विन्याम्	चित्रा	हस्तः	०
४	कार्तिक्याम्	विशाखा	स्वातिः	०
५	मार्गशीर्ष्याम्	मूलम्	ज्येष्ठा	अनुराधा
६	पौष्याम्	उत्तराषाढा	पूर्वाषाढा	०
७	माघ्याम्	धनिष्ठा	श्रवणः	अभिजित्
८	फाल्गुन्याम्	उत्तराभाद्रपदा	पूर्वाभाद्रपदा	शतभिषक्
९	चैत्र्याम्	अश्विनी	रेवती	०
१०	वैशाख्याम्	कृत्तिका	भरणी	०
११	ज्येष्ठामूल्याम्	मृगशिरः	रोहणी	०
१२	आषाढ्याम्	पुष्यः	पुनर्वसुः	आर्द्रा

इति श्री जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर घासीलाल मुनिविरचितचन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रे चन्द्रज्ञप्तिटीकायां दशमस्य प्राभृतस्य षष्ठं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०–६॥

दशमस्य प्राभृतस्य सप्तमं प्राभृतप्राभृतम् ।

गतं दशमस्य प्राभृतस्य षष्ठं प्राभृतप्राभृतम् तत्र द्वादशानाममावास्यानां योगकारक-नक्षत्राणां कुलादिनक्षत्राणां च विवेचनं कृतम् अधुना सप्तमं प्राभृतम् विविच्यते, अत्र पूर्णिमानाममावास्यानां च चन्द्रयोगमाश्रित्य परस्परं नक्षत्रैः संयोगरूपः संनिपातो वक्तव्य इति तद्विषयक-सूत्रमाह–,ता कहं ते संनिवाए इत्यादि ।

मूलम्–ता कहं ते संनिवाए आहिएत्ति वएज्जा । ता जया णं साविट्ठी पुण्णिमा भवइ तया णं माही अमावासा भवइ । जया णं माही पुण्णिमा भवइ तया णं साविट्ठी अमावासा भवइ । जया णं पोट्ठवई पुण्णिमा भवइ तया णं फग्गुणी अमावासा भवइ । जया णं फग्गुणी पुण्णिमा भवइ तया णं पोट्ठवई अमावासा भवइ । जया णं आसोई पुण्णिमा भवइ तया णं चेत्ती अमावासा भवइ । जया णं चेत्ती पुण्णिमा भवइ तया णं आसोई अमावासा भवइ । जया णं कत्तिई पुण्णिमा भवइ तया णं वेसाही अमावासा भवइ जया णं वेसाही पुण्णिमा-भवइ तया णं कत्तिया अमावासा भवइ । जया णं मग्गसिरी पुण्णिमा भवइ तया णं जेट्ठा-मूली अमावासा भवइ । जयाणं जेट्ठामूली पुण्णिमा भवइ तया णं मग्गसिरी अमावासा भवइ । जया णं पोसी पुण्णिमा भवइ तया णं आसाढी आमावासा भवइ । जया णं आसाढी पुण्णिमा भवइ तया णं पोसी अमावासा भवइ ॥ सू० १ ॥

॥ दसमस्स पाहुडस्स सत्तमपाहुडं समत्तं ॥ १०–९ ॥

छाया—तावत् कथं ते संनिपातः आख्यातः ? इति वदेत् । तावत् यदा खलु श्राविष्ठी पूर्णिमा भवति तदा खलु माघी अमावास्या भवति । यदा खलु माघी पूर्णिमा भवति तदा खलु श्राविष्ठी अमावास्या भवति । यदा प्रोष्ठपदी पूर्णिमा भवति तदा खलु फाल्गुनी अमावास्या भवति । यदा फाल्गुनी पूर्णिमा भवति तदा खलु प्रोष्ठपदी अमावास्या भवति । यदा खलु आश्विनी पूर्णिमा भवति तदा चैत्री अमावास्या भवति यदा खलु चैत्री पूर्णिमा भवति तदा खलु आश्विनी अमावास्या भवति यदा खलु कार्त्तिकी पूर्णिमा भवति तदा खलु वैशाखी अमावास्या भवति । यदा खलु वैशाखी पूर्णिमा भवति तदा खलु कार्तिकी अमावास्या भवति । यदा खलु मार्गशीर्षी पूर्णिमा भवति तदा खलु ज्येष्ठामूली अमावास्या भवति । यदा खलु ज्येष्ठामूली पूर्णिमा भवति तदा खलु मार्गशीर्षी अमावास्या भवति । यदा खलु पौषी पूर्णिमा भवति तदा खलु आषाढी अमावास्या भवति । यदा खलु आषाढी पूर्णिमा भवति तदा खलु पौषी अमावास्या भवति ॥सू० १॥

॥दशमस्य प्राभृतस्य सप्तमं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् १०-७॥

व्याख्या—'ता' कहंते' इति, 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण हे भगवन् 'ते' त्वया 'संनिवाए' संनिपातः पूर्णिमासु अमावास्यासु च चन्द्रयोगमाश्रित्य नक्षत्राणां सनि-पातः सयोगः 'आहिए' आख्यातः कथितः ? 'ति' इति–एतत्प्रकरणं मम 'वएज्जा' वदेत्

वदतु कथयतु हे भगवान् ! इति गौतमेन पृष्टे भगवानाह—हे गौतम ! पूर्णिमाऽमावास्यानां चन्द्रयोगमाश्रित्य नक्षत्रप्रकरणं व्यवहारनयेन कथयामि तथाहि—'ता' तावत् नक्षत्रं त्रिप्रकारकं भवति कुलनक्षत्रम् १, उपकुलनक्षत्रम् २, कुलोपकुलनक्षत्रं चेति । तेपु 'जया णं' यदा खलु कुलादिपु धनिष्ठा—श्रवणा—ऽभिजिद्रूपेपु व्यवहारनयेन नक्षत्रेण युक्ता सावित्री पुण्णिमा' श्राविष्ठी पूर्णिमा श्रावणमासभाविनी पूर्णिमा भवेत् 'तया णं' तदा खलु 'माही अमावासा' माघी माघमासभाविनी अमावास्यापि व्यवहारतः धनिष्ठा—श्रवणाऽभिजिन्नक्षत्रमध्ये केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता 'भवइ' भवति ? 'जया णं' यदा खलु 'माही पुण्णिमा माघमासभाविनी पूर्णिमा मघाऽश्लेषा नक्षत्रयोर्मध्ये येन नक्षत्रेण युक्ता 'भवइ' भवति तदा 'साविट्ठी अमावासा' श्राविष्ठी अमावास्यऽपि मघाश्लेषयोर्मध्ये केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता 'भवइ' भवति ।२। 'जया णं' यदा खलु 'पोट्ठवई' प्रोष्ठपदी भाद्रपदमासभाविनी 'पुण्णिमा' पूर्णिमा त्रिपु—उत्तराभाद्रपदपूर्वाभाद्रपद—शतभिषग् रूपेपु कुलादिसंज्ञकेपु मध्ये केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता भवति 'तया णं' तदा खलु 'फग्गुणी' फग्गुनी फाल्गुनमासभाविनी 'अमावासा' अमावास्यापि एष्वेवमध्ये केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता 'भवइ' भवति ३ 'जया णं' यदा खलु 'फग्गुणी' फाल्गुनी फाल्गुनमासभाविनी 'पुण्णिमा' पूर्णिमा उत्तराफाल्गुनी पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रयोः कुलादिसञ्ज्ञयोर्मध्ये केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता भवति 'तया णं' तदा खलु 'पोट्ठवई' प्रोष्ठपदी भाद्रपदमासभाविनी 'अमावासा' अमावास्याऽपि पूर्वोक्तयोर्नक्षत्रयोर्मध्ये केनचिदेकेन नक्ष ण युक्ता 'भवइ' भवति ४ 'जया णं' यदा खलु 'आसोई' आश्विनी—आश्विनमासभाविनी 'पुण्णिमा' पूर्णिमा अश्विनी रेवतीनक्षत्रयोः कुलादिसंज्ञयोर्मध्ये येन केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता भवति 'तया णं' तदा खलु 'चेत्ती' चैत्री चैत्रमासभाविनी 'अमावासा' अमावास्यापि पूर्वोक्तयोर्द्वयोर्मध्ये केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता 'अमावासा' अमावस्या भवति ५ । 'जया णं' यदा खलु 'चेत्ती' चैत्री चैत्रमासभाविनी 'पुण्णिमा' पूर्णिमा चित्रा हस्तयोः कुलादिसञ्ज्ञयोर्द्वयोर्नक्षत्रयोर्मध्यात् केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता 'भवइ' भवति 'तया णं' तदा खलु 'आसोई' आश्विनी—आश्विनमासभाविनी अमावासा अमावास्याऽपि पूर्वोक्तयोर्द्वयोर्नक्षत्रयोर्मध्यात् केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता 'भवइ' भवति ६ 'जया णं' यदा खलु 'कत्तिकी' कार्त्तिकी कार्त्तिकमास भाविनी 'पुण्णिमा' पूर्णिमा कृत्तिका भरणी नक्षत्रयोः कुलादिसंज्ञयोर्द्वयोर्मध्यात् येन केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता 'भवइ' भवत 'तया णं तदा खलु 'वेसाही वैशाखी वैशाखमासभाविनी 'अमावासा, अमावास्यापि पूर्वोक्तयोर्द्वयोर्नक्षत्रयोर्मध्यात् केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता 'भवइ' भवति 'तया णं' तदा खलु 'कत्तिया कार्त्तिकी कार्तिकमासभाविनी 'अमावासा' अमावास्याऽपि पूर्वोक्तयोर्द्वयोर्नक्षत्रयोर्मध्यात् केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता 'भवइ'भवति८ 'जया णं' यदा खलु 'मग्गसिरी'मार्गशीर्षी 'पुण्णिमा'पूर्णिमा मृगशीर्ष—रोहिणी—नक्षत्रयोः कुलादिसंज्ञयोर्द्वयोर्मध्यात् येन केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता 'भवइ'भवति'तया णं'तदा

खलु 'जेट्ठामूली'ज्येष्ठामूली ज्येष्ठमासभाविनी 'अमावासा'अमावास्याऽपि पूर्वोक्तयोर्द्वयोर्नक्षत्रयोर्मध्यात् केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता 'भवइ'भवति ९ 'जया णं'यदा खलु 'जेट्ठामूली'ज्येष्ठामूली-ज्येष्ठमासभाविनी 'पुण्णिमा'पूर्णिमा मूलज्येष्ठा-ऽनुराधारूपेषु त्रिषु कुलादिसञ्ज्ञकेषु नक्षत्रेषु मध्यात् येन केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता 'भवइ'भवति 'तया णं'तदा खलु 'मग्गसिरी'मार्गशीर्षी—मार्गशीर्षमासभाविनी 'अमावासा'अमावास्याऽपि पूर्वोक्तानां त्रयाणां नक्षत्राणां मध्यात् केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता'भवइ' भवति१० 'जया णं'यदा खलु 'पोसी'पौषीपोषमासभाविनी'पुण्णिमा' पूर्णिमा पुष्यपुनर्वस्वाऽऽर्द्रारूपेषु त्रिषु कुलादिसंज्ञकेषु नक्षत्रेषु मध्यात् येन केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता'भवइ'भवति'तया णं'तदा खलु 'आसाढी'आषाढमासभाविनी'अमावासा'अमावास्याऽपि पूर्वोक्तानां त्रयाणां नक्षत्राणां मध्यात् केनचिदेकेन नक्षत्रेण युक्ता'भवइ'भवति ११ 'जया णं' यदा खलु 'आसाढी'आषाढी—आषाढमासभाविनी'पुण्णिमा'पूर्णिमा उत्तराषाढा पूर्वाषाढारूपयोर्द्वयोर्नक्षत्रयोर्मध्यात् केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता 'भवइ'भवति'तयाणं' तदा खलु 'पोसी'पौषमासभाविनी'अमावासा'अमावास्याऽपि पूर्वोक्तयोर्द्वयोर्नक्षत्रयोर्मध्यात् केनाप्येकेन नक्षत्रेण युक्ता 'भवइ'भवति१२ इति ॥ सू० १ ॥

॥ पूर्णिमाऽमावास्याज्ञानार्थं कोष्ठकम् ॥

संख्या	मास पूर्णिमा	कुल नक्षत्रम्	उपकुल नक्षत्रम्	कुलोपकुल नक्षत्रम्	मासामावास्या
१	श्राविष्ठी—श्रावण मास-पूर्णिमा १५	धनिष्ठा	श्रवण	अभिजित्	माघी अमा. ३० फाल्गुनी अ. ३०
२	प्रोष्ठपदी-भाद्रपद मास-पूर्णिमा १५	उत्तराभाद्रपद	पूर्वा भाद्रपद		चैत्री अमा. ३० वैशाखी अ.३०
३	आश्विनी १५	आश्विनी	रेवती	शतभिषक्	ज्येष्ठामूली-ज्येष्ठ-
४	कार्तिकी १५	कृत्तिका	भरणी	×	मास अमा. ३०
५	मार्गशीर्षी १५	मृगशिरः	रोहीणी	×	आषाढी ३०
६	पौषी १५	पुष्यः	पुनर्वसु	×	श्राविष्ठी-श्रावण
७	माघी १५	मघा	अश्लेषा	आर्द्रा	मास अ. ३०
८	फाल्गुनी १५	उत्तराफल्गुनी	पूर्वाफाल्गुनी	×	प्रोष्ठपदी—भाद्र
९	चैत्री १५			×	पद० अ. ३०
१०	वैशाखी १५	चित्रा	हस्तः	×	आश्विनी अ.३०
११	ज्येष्ठामूली-ज्येष्ठमास पू. १५	विशाखा मूलम्	स्वाति ज्येष्ठा	× अनुराधा	कार्त्तिकी अ.३० मार्गशीर्ष अ.३०
१२	आषाढी १५	उत्तराषाढा	पूर्वा षाढा	×	पौषी-अ. ३०

अथ प्रकारान्तरेणेदं सूत्रं व्याख्यायते—'ता जया णं' इत्यादि 'ता जया णं' तावत् यदा-खलु, 'साविट्ठी' श्राविष्ठी श्रविष्ठा—धनिष्ठानक्षत्रं तेन युक्ता पूर्णिमा भवति 'तया णं' तदा खलु तत्पूर्णिमातः प्राक्तना 'अमावासा' अमावास्या 'माही' माघी मघानक्षत्रयुक्ता 'भवइ' भवति यतो हि व्यवहारनयमतेन पूर्णिमानक्षत्रात् पश्चानुपूर्व्या पञ्चदशे चतुर्दशे वा नक्षत्रेऽमावास्या भवति श्राविष्ठानक्षत्रात् मघानक्षत्रस्य पश्चानुपूर्व्या पञ्चदशत्वात् एतच्च व्यवहारतः श्रावणमासमधिकृत्यावसेयम्१ एतदेव वैपरीत्येनाह—'जयए णं' यदा खलु 'माही' माघी मघानक्षत्रयुक्ता 'पुण्णिमा भवइ' पूर्णिमा भवति 'तया णं' तदा खलु 'अमावासा' अमावास्या तत्पूर्णिमातः प्राक्तना अमावास्या 'साविट्ठी' श्राविष्ठी धनिष्ठानक्षत्रयुक्ता भवति मघात आरभ्य पश्चानुपूर्व्या धनिष्ठानक्षत्रस्य पञ्चदशत्वात् एतच्च व्यवहारतो माघमासमाश्रित्य विज्ञेयम्२ 'जया णं' यदा खलु 'पोट्ठवई' प्रोष्ठपदी उत्तराभाद्रपदानक्षत्रयुक्ता 'पुण्णिमा पूर्णिमा 'भवइ' भवति 'तया णं' तदा खलु 'अमावासा' तत्प्राक्तना अमावास्या 'फग्गुणी' फाल्गुनी—उत्तरफाल्गुनीनक्षत्रयुक्ता 'भवइ' भवति उत्तरभाद्रपदातः पूर्वमुत्तरफाल्गुनीनक्षत्रस्य पञ्चदशत्वात् अपान्तरालगतनक्षत्रस्य स्तोककालस्थायित्वेन प्रायो व्यवहारेण न गण्यते लोके अभिजिन्नक्षत्रं वर्जयित्वा शेपसप्तविंशतिनक्षत्राणां व्यवहारत्वात् उक्तञ्च समवायाङ्गसूत्रे—"जंबुद्दीवे दीवे अभिई वज्जेहिं सत्तावीसाए नक्खत्तेहिं संववहारो वट्टइ" इति छाया-जम्बूद्वीपे द्वीपे अभिजिद्वर्जैः सप्तविंशत्या नक्षत्रैः संव्यवहारो वर्त्तते इतिवचनात् उत्तरभाद्रपदानक्षत्रात् उत्तरफाल्गुनीनक्षत्रं पश्चानुपूर्व्या गणने पञ्चदशं भवतीति एतच्च भाद्रपदमासमाश्रित्य प्रोक्तमवसेयम्३ 'जया णं' यदा खलु 'फग्गुणी' फाल्गुनीउत्तराफाल्गुनी नक्षत्रयुक्ता यदा 'पुण्णिमा' पूर्णिमा 'भवइ' भवति—भवेत् 'तया णं' तदा खलु 'अमावासा' तत्पश्चाद्गताऽमावास्या 'पोट्ठवई' प्रोष्ठपदीउत्तरभाद्रपदानक्षत्रयुक्ता 'भवइ' भवति—भवेदित्यर्थः उत्तरफाल्गुनीनक्षत्रात् उत्तरभाद्रपदानक्षत्रस्य चतुर्दशत्वात् इदं च फाल्गुनमासमाश्रित्य प्रतिपादितम् ४ 'जया णं' यदा खलु 'आसोई' आश्विनी अश्विनी नक्षत्रयुक्ता 'पुण्णिमा 'पूर्णिमा 'भवइ' भवति—भवेत्—'तयाणं' तदा खलु 'अमावासा' अमावास्या पूर्णिमातः प्राग्गता अमावास्या 'चेत्ती' चैत्री-चित्रा नक्षत्रयुक्ता 'भवइ, भवति भवेत् अश्विनीनक्षत्रात् पश्चानुपूर्व्या गणने चित्रानक्षत्रस्य पञ्चदशत्वात् एतद्व्यवहारनयेन प्रोक्तम्, निश्चयतस्तु एवं न, इदं व्यवहारत आश्विनमासमधिकृत्य प्रोक्तम्, आश्विनमासभाविन्याममावास्यायां च चित्रानक्षत्रस्य प्रायोऽसम्भवात् अतः व्यवहारनयमतेन' इति पूर्वमेव प्रदर्शितम् ५ 'जया णं' यदा खलु 'चेत्ती' चैत्री चित्रानक्षत्रयुक्ता 'पुण्णिमा भवइ' पूर्णिमा भवति 'तयाणं' तदा खलु 'अमावासा' पूर्णिमातः प्राक्तना अमावास्या 'आसोई 'आश्विनी अश्विनीनक्षत्रयुक्ता 'भवइ' भवति इदं व्यवहारतश्चैत्रमासमाश्रित्य प्रोक्तम् चैत्रैमासभाविन्याममावास्यायामश्विनीनक्षत्रस्य निश्चयनयेन प्रायोऽसम्भवात् ६ 'जयाणं' यदा खलु 'कत्तिइ' कार्त्तिकी—कृत्तिकानक्षत्रोपेता 'पुण्णिमाभवइ' पूर्णिमा भवति 'तया णं' तदा खलु 'अमावासा'

एतत्पूर्णिमातः प्राग्वर्त्तिनी अमावास्या 'वेसाही' वैशाखी विशाखा नक्षत्रोपेता'भवइ'भवति, कृत्तिका नक्षत्रात् पश्चानुपूर्व्या विशाखानक्षत्रस्य पञ्चदशत्वात्। तथा'जया णं'यदा खलु 'वेसाही' वैशाखी विशाखानक्षत्रयुक्ता 'पुण्णिमा भवइ' पूर्णिमा भवति. 'तया णं' तदा खलु 'अमावासा' पश्चाद्गता अमावास्या 'कत्तिइ' कार्त्तिकी-कृत्तिकानक्षत्रयुक्ता 'भवइ' भवति, विशाखातः कृत्तिकायाः पश्चानु-पूर्व्या गणने चतुर्दशत्वात्, एतद् वैशाखमासमधिकृत्य विज्ञातव्यम् ८। 'जया णं' यदा खलु 'मग्गसिरी' मार्गशीर्षी मृगशिरोनक्षत्रोपेता 'पुण्णिमा' भवइ' पूर्णिमा भवति 'तया णं' तदा खलु 'जेट्ठामूली' ज्येष्ठानक्षत्रयुक्ता 'अमावासा' तत्पूर्णिमातः प्राक्तनाऽमावास्या 'भवइ' भवति, इदं च ज्येष्ठमासमाश्रित्य प्रोक्तमित्यवसेयम् ९। 'जया णं' यदा खलु, 'जेट्ठामूली' ज्येष्ठामूली ज्येष्ठानक्षत्रोपेता 'पुण्णिमा भवइ' पूर्णिमा भवति 'तया णं' तदा खलु 'अमावासा' प्राग्गताऽमा-वास्या 'मग्गसिरी' मार्गशीर्षी मृगशिरोनक्षत्र युक्ता 'भवइ' भवति १०। 'जया णं' यदा खलु 'पोसी' पौषी पुष्यनक्षत्रयुक्ता 'पुण्णिमा भवइ' पूर्णिमा भवति 'तया णं' तदा खलु तत्प्राग्भवा 'अमावासा' अमावास्या 'आसाढी' उत्तरा पाढानक्षत्रयुक्ता 'भवइ' भवति, इदं पौषमासमाश्रित्य कथितम् ११। तथा'जया णं'यदा खलु 'आसाढी, आषाढ़ी उत्तराषाढा नक्षत्रयुक्ता 'पुण्णिमा भवइ, पूर्णिमा भवति, 'तया णं, तदा खलु तत्प्राक्तना 'अमावासा, अमावास्या 'पोसी, पौषी पुष्यनक्षत्रोपेता 'भवइ, भवति इदमाषाढमासमधिकृत्याभिहितमित्यवसेयम् १२ ॥ सू० १ ॥

"पूर्णिमाऽमावास्या नक्षत्रकोष्ठकम्"

संख्या	पूर्णिमा नक्षत्रम्	तत्प्राक्तनामावास्यानक्षत्रम्
१	श्रवणः	मघा
२	मघा	श्रवणः
३	उत्तराभाद्रपदा	उत्तराफाल्गुनी
४	उत्तराफाल्गुनी	उत्तराभाद्रपदा
५	अश्विनी	चित्रा
६	चित्रा	अश्विनी
७	कृत्तिका	विशाखा
८	विशाखा	कृत्तिका
९	मृगशिरः	ज्येष्ठामूलम् (ज्येष्ठा)
१०	ज्येष्ठामूलम्	मृगशिरः
११	पुष्यः	उत्तराषाढा
१२	उतराषाढा	पुष्यः

"इति चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्रे चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिकाटीकायां सप्तमं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०–७॥

दशमस्य प्राभृतस्याष्टमं प्राभृतप्राभृतम् ।

तदेवं व्याख्यात दशमस्य प्राभृतस्य सप्तमं प्राभृतप्राभृतम्, अथाष्टमं व्याख्यायते, तस्य चायमभिसम्बन्ध–पूर्वप्राभृते पूर्णिमाऽमावास्यानां परस्परं नक्षत्रैः सह संयोगरूपः सनिपातः प्रदर्शित अथ तत्प्रस्तावादत्र नक्षत्राणां संस्थानं प्रदर्श्यते–'ता कह ते नक्खत्त संठिई' इत्यादि ।

सूत्रम्— ता कहं ते नक्खत्तसंठिई आहिए ? ति वएज्जा । ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिई णं णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ? गोयमा ! गोसीसावलिसंठिए पण्णत्ते १ । सवणे णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ? काहारसंठिए पण्णत्ते २ धणिट्ठा णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ? सउणिपलीणगसंठिए पण्णत्ते ३ । सयभिसया णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ? पुप्फोवयारसंठिए पण्णत्ते ४ । पुव्वापोट्ठवया णक्खत्ते उत्तरभद्दवया णक्खत्ते य किं संठिए पण्णत्ते ? अवड्ढवावी संठिए पण्णत्ते ५।६। रेवईणक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ? णावासंठिए पण्णत्ते ७ । अस्सिणी णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ? आसक्खंधसंठिए पण्णत्ते ८ । भरणीणक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते भगसंठिए पण्णत्ते ९ । कत्तिया णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ? छुरघरसंठिए पण्णत्ते १० । रोहिणीणक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ? सगडुद्धिसंठिए पण्णत्ते ११ । मिगसिराणक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ? मिगसीसावलिसंठिए पण्णत्ते १२ । अद्दाणक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ! रुधिरबिंदुसंठिए पण्णत्ते १३ । पुणव्वसुणक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ? तुला संठिए पण्णत्ते १४ । पुस्से णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ? वद्धमाणसंठिए पण्णत्ते १५ । अस्सेसा णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ? पडागसंठिए पण्णत्ते १६ । महाणक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते पागारसंठिए पण्णत्ते १७ । पुव्वाफग्गुणीणक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ! अद्धपलियंकसंठिए पण्णत्ते १८ । एवं उत्तराफग्गुणी वि १९ । हत्थे णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते हत्थसंठिए पण्णत्ते २० । चित्ताणक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ! मुहफुल्लसंठिए पण्णत्ते २१ । साइणक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ! खीलगसंठिए पण्णत्ते २२ । विसाहा णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ? दामणिसंठिए पण्णत्ते २३ । अणुराहा णक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ? एगावलिसंठिए पण्णत्ते २४ । जेट्ठाणक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते गयदंतसंठिए पण्णत्ते २५ । मूलेणक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ? विच्छुय लंगूल संठिए पण्णत्ते २६ । पुव्वासाढाणक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ? गयविक्कमसंठिए पण्णत्ते २७ उत्तरासाढाणक्खत्ते किं संठिए पण्णत्ते ? सीहमिसीइया संठिए पण्णत्ते ॥ सू० १ ॥

"दसमस्स पाहुडस्स अट्ठमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥ १० । ८ ॥

छाया—तावत् कथं ते नक्षत्रसंस्थितिः आख्याता ? इति वदेत् । तावत् एतेषां खलु अष्टाविंशतेः नक्षत्राणां अभिजित् खलु नक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? । गौतम ! गोशीर्षावलिसंस्थित प्रज्ञप्तम १। श्रमणो नक्षत्रं किं संस्थित प्रज्ञप्तम् ? काहार (कावड) संस्थितं प्रज्ञप्तम् २। धनिष्ठा नक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? शकुनि प्रलीनक (पक्षिपञ्जर) संस्थितं प्रज्ञप्तम् ३। शतभिषग् नक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम्? पुष्पोपचारसंस्थितं प्रज्ञप्तम् ४। पूर्वा प्रोष्ठपदानक्षत्रम् उत्तरा प्रोष्ठपदा नक्षत्रं च किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? अपार्धवापी संस्थितं प्रज्ञप्तम् ५।६। रेवती नक्षत्र किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् नौका संस्थितं प्रज्ञप्तम् ७ अश्विनी नक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? अश्वस्कन्धसंस्थितं प्रज्ञप्तम् ८। भरणीनक्षत्र किं संस्थित प्रज्ञप्तम् ? भगसंस्थितं प्रज्ञप्तम् ९। कृत्तिका नक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? क्षुरगृहसंस्थितं प्रज्ञप्तम् १०। रोहिणी नक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? शकटोद्धि संस्थितं प्रज्ञप्तम् ११। मृगशिरोनक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? मृगशीर्षावलिसंस्थितं प्रज्ञप्तम् १२। आर्द्रा नक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? रुधिरबिन्दुसंस्थितं प्रज्ञप्तम् १३। पुनर्वसुनक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? तुला संस्थितं प्रज्ञप्तम् १४। पुष्यो नक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? वर्धमान संस्थितं प्रज्ञप्तम् १५। अश्लेषानक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? पताका संस्थितं प्रज्ञप्तम् १६ मघानक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? प्राकार संस्थितं प्रज्ञप्तम् १७। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? अर्धपल्यङ्कसंस्थितं प्रज्ञप्तम् १८। एवम्-उत्तराफाल्गुन्यपि १९। हस्तो नक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? हस्तसंस्थित प्रज्ञप्तम् २०। चित्रानक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? मधु (महुडो) पुष्पसंस्थितं प्रज्ञप्तम् २१। स्वाति नक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? कीलक संस्थितं प्रज्ञप्तम् २२। विशाखा नक्षत्रं किं संस्थित प्रज्ञप्तम् ? दामनी (पशुबन्धनरज्जु) संस्थितं प्रज्ञप्तम् २३। अनुराधा नक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? एकावलि (हार) संस्थितं प्रज्ञप्तम् २४। ज्येष्ठा नक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? गजदन्तसंस्थितं प्रज्ञप्तम् २५। मूलोनक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? वृश्चिकलाङ्गूल (वृश्चिकपुच्छ) संस्थितं प्रज्ञप्तम् २६ । पूर्वाषाढानक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? गजविक्रम (गजपादन्याससंस्थितं प्रज्ञप्तम् २७ । उत्तराषाढानक्षत्रं किं संस्थितं प्रज्ञप्तम् ? सिंहनिषीदिका (सिंहोपवेशन) संस्थितं प्रज्ञप्तम् २८ ॥ सू० १॥

दशमस्य प्राभृतस्याष्टमं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् १०

व्याख्या—'ता कहंते नक्खत्तसंठिई' इत्यादि। गौतमः पृच्छति—'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'ते' त्वया 'णक्खत्त संठिई' नक्षत्रसंस्थितिः नक्षत्राणां संस्थितिः संस्थानम् आकार इति नक्षत्रसंस्थितिः नक्षत्राकृतिः 'आहिया' आख्याता कथिता 'त्ति इति 'वएज्जा' वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् ! तदेव प्रतिनक्षत्र विषये गौतम प्रश्न—भगवदुत्तरप्रतिपादकानि सूत्राण्याह 'ता एएसिणं' इत्यादि । 'ता' तावत्—एएसि णं एतेषां शास्त्रप्रसिद्धानामभिजिदादीनां 'अट्ठावीसाए' अष्टाविंशतेः अष्टाविंशतिसंख्यकानां 'णक्खत्ताणं' नक्षत्राणां मध्ये यत् 'अभीई णं णक्खत्ते' अभिजित् खलु नक्षत्रं 'किं संठिए' किं संस्थितं कीदृगाकारसंयुक्तं 'पण्णत्तं' प्रज्ञप्तम् हे भगवन् अभिजिन्नक्षत्रस्य कीदृश आकारो वर्त्तते ? इति गौतमस्य प्रश्नः । भगवानाह—हे गौतम ! अष्टाविंशतिनक्षत्राणां मध्ये यद् अभिजिन्नक्षत्रं प्रथमं वर्त्तते तत् 'गोसीसावलिसंठियं' गोशीर्षावलि

संस्थितं, गोः बलीवर्दस्य शीर्षं—मस्तकं गोशीर्षं तस्य आवलिः तत्पुद्गलानां दीर्घरूपा श्रेणिः, तदाकारं संस्थानं 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तम् १। एवमग्रेऽपि शेषाणि सूत्राणि स्वयं व्याख्यातव्यानि सूत्राणि—छायागम्यानीति न व्याख्यायन्ते ।२८। अत्र अभिजिदाद्यष्टाविंशतिनक्षत्राणां यथासंख्यं संस्थानसग्राहिका जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिगतास्तिस्रो गाथाः प्रदर्श्यन्ते, तथाहि—

"गोसीसावलि १, काहार २, सउणि, ३ पुप्फोवयार ४, वावीय ५। ६ (पूर्वोत्तरारूपं प्रोष्ठपदद्वयम्)। णावा, आसक्खंधग ८. भग ९ छुरघरए १० य सगडुद्धी। ११ ॥१॥ मिग सीसावलि १२ रुहिर विंदु १३ तुल १४ वद्धमाण १५ पडागा १६। पागार १७ पल्लंके १८–१९ (पूर्वोत्तराफाल्गुनीद्वयम्), हत्थे २० महुफुल्लए २१ चेव ॥२॥ २२ खीलग २२ दामिणि २३ एगावली ३४ य गयदंत २५ विच्छुयणंगूले ३६ या गयविक्कमे २७ य तत्तो, सीहनिसीया २८ य संठाणा ॥३॥"

छाया—गोशीर्षावलि १ कहार (कवड) २ शकुनिः ३ पुष्पोपचारः ४ वापी (पूर्वोत्तरारूपं प्रोष्ठपदाद्वयं) ५।६ नौका ७ अश्वस्कन्ध ८ भग ९ क्षुरगृहं १० च शकटोद्धि ११॥१॥ मृगशीर्षावलि १२। रुधिरबिन्दु १३, तुला १४ वर्धमानक १५ पताका १६। प्राकारा १७ पल्यङ्क (पूर्वोत्तराफाल्गुनीद्वयम्) १८।१९, हस्त २० मधुपुष्पकं २१ चैव ॥२॥ कीलक २२ दामनि २३ एकावलिः २४ च गजदन्त २५ वृश्चिकलाङ्गुलं २६ च। गज विक्रमश्च, (गजपादन्यासः) २७ ततः सिंहनिषीदिका २८ च संस्थानानि ॥३॥ इति। सू० १॥

इति चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रे चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिकाटीकायां दशमस्य प्राभृतस्याष्टमं प्राभृत प्राभृतं समाप्तम् ॥ १० ॥

दशमस्य प्राभृतस्य नवमं प्राभृतप्राभृतम्

व्यत्यतमष्टमं प्राभृतप्राभृतम् तत्राष्टाविंशतिनक्षत्राणां संस्थानानि प्रदर्शितानि। अथ नवमं प्राभृतप्राभृतं व्याख्यायते, नक्षत्राणां सस्थानानि च तारासंख्याविना न भवितुमर्हन्तीत्यत्र नवमे प्राभृतप्राभृते नक्षत्राणां तारासंख्या प्रदर्श्यते—ता कहं ते तारग्गे। इत्यादि।

मूलम्—ता कहं ते तारग्गे आहिए ? ति वएज्जा। ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभीईणक्खत्ते कइ तारे पण्णत्ते ? गोयमा ? तितारे पण्णत्ते १। सवण णक्खत्ते कइ तारे पण्णत्ते ? तितारे पण्णत्ते २। धणिट्ठा णक्खत्ते कइतारे पण्णत्ते ? पंचतारे पण्णत्ते ३। सयभिसया णक्खत्ते कइतारे पण्णत्ते? दुतारे पण्णत्ते ४। पुव्वापोट्ठवया णक्खत्ते कइतारे पण्णत्ते ? दुतारे पण्णत्ते ५। एवं उत्तरापोट्ठवयावि ६। रेवईणक्खत्ते कइतारे पण्णत्ते ? वत्तीसइतारे पण्णत्ते ७। अस्सिणी णक्खत्ते कइतारे पण्णत्ते ? तितारे पण्णत्ते ८। एवं सव्वे पुच्छिज्जिंति—भरणी० तितारे ९। कत्तिया० छत्तारे १०। रोहिणी० पंचतारे ११। मिगसिर० तितारे १२। अद्दा० एगतारे १३ पुणव्वसु०

पंचतारे १४ । पुस्से० तितारे १५ अस्सेसा० छत्तारे १६ । महा०सत्ततारे १७ । पुव्वफग्गुणी दुतारे १८ । एवं उत्तराफग्गुणी वि दुतारे १९ । हत्थे० पंचतारे २० । चित्ता० एगतारे २१ । साई० एगतारे २२ । विसाहा० पंचतारे २३ । अणुराहा० पंचतारे २४ । जेट्ठा० तितारे २५ । मूले एगारसतारे २६ । पुव्वासाढा० चउतारे २७ । उत्तरा साढा णक्खत्ते कइतारे पण्णत्ते ? चउतारे पण्णत्ते ॥ सू० १ ॥

दसमस्स पाहुडस्स नवमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥ १०-९ ॥

छाया—तावत् कथं ते ताराग्रं आख्यातम् ? इति वदेत् । तावत् एतेषां खलु अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणाम् अभिजिन्नक्षत्रं कतितारं प्रज्ञप्तम् ? गौतम ! त्रितारं प्रज्ञप्तम् १ । श्रवणो नक्षत्रं कतितारं प्रज्ञप्तम् ? त्रितारं प्रज्ञप्तम् २। धनिष्ठा नक्षत्रं कतितारं प्रज्ञप्तम् ? पञ्चतारं प्रज्ञप्तम् ३ । शतभिषग्नक्षत्रं कतितारं प्रज्ञप्तम् ? शततारं प्रज्ञप्तम् ४ । पूर्वाप्रोष्ठपदानक्षत्रं कतितारं प्रज्ञप्तम् ? द्वितारं प्रज्ञप्तम् ५ । एवम्—उत्तराप्रोष्ठपदापि ६ । रेवती नक्षत्रं कतितारं प्रज्ञप्तम् ? द्वात्रिंशत्तारं प्रज्ञप्तम् ७ । अश्विनी नक्षत्रं कतितारं प्रज्ञप्तम् ? त्रितारं प्रज्ञप्तम् ८ । एवं सर्वाणि (नक्षत्राणि) पृच्छयन्ते—भरणी० त्रितारम् ९। कृत्तिका० षट्तारम् १० ।रोहिणी० पञ्चतारम् ११ । मृगशिरोन० त्रितारम् १२। आर्द्रा० एकतारम् १३ । पुनर्वसु०पञ्चतारम् १४ । पुष्यो न० त्रितारम् १५। अश्लेषा० षट्तारम् १६ । मघा०सप्ततारम् १७। पूर्वाफाल्गुनी० द्वितारम् १८। एवमुत्तराफाल्गुन्यपि० द्वितारम् १९। हस्तो न०पञ्चतारम् २० । चित्रा० एकतारम् २१। स्वातिन० एकतारम् २२। विशाखा० पञ्चतारम् २३। अनुराधा० पञ्चतारम् २४। ज्येष्ठा० त्रितारम् २५। मूलो न० एकादशतारम् २६, पूर्वाषाढा० चतुस्तारम् २७। उत्तराषाढानक्षत्रं कतितारं प्रज्ञप्तम् ? चतुस्तारं प्रज्ञप्तम् ॥ सू०१ ॥

दशमस्य प्राभृतस्य नवमं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०—९॥

व्याख्या—गौतमः पृच्छति—'ता कहं तारग्गे' इत्यादि । 'ता' तावत् 'कहं' कथं—केन प्रकारेण 'ते' त्वया 'तारग्गे' तारग्रं—ताराप्रमाणम्—अष्टाविंशतिनक्षत्राणां तारा-संख्या 'आहिए' आख्यातं कथितम् ? 'ति, इति 'वएज्जा' वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् ? तदेवं प्रश्नयति—'ता' तावत् 'एएसिणं' एतेषां लोकप्रसिद्धानाम् 'अट्ठावीसाए' अष्टाविंशतेः अष्टाविंशतिसंख्यकानां खलु 'णक्खत्ताणं' नक्षत्राणां मध्ये 'अभिईणक्खत्ते' अभिजिन्नक्षत्रं 'कइतारे' कतितारं कियत्तारा युतं 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तम्—कथितम् ! भगवानाह—'गोयमा' हे गौतम । अभिजिन्नक्षत्रं 'तितारे 'पण्णत्ते, त्रितारं तारात्रययुक्तं प्रज्ञप्तम् १ । 'सवणे णक्खत्ते' श्रवणः श्रवणाभिधनक्षत्रं 'कतितारे' 'पण्णत्ते, कतितारं प्रज्ञप्तम् ! तितारे पण्णत्ते ? त्रितारं प्रज्ञप्तम् २। एवमनया रीत्या सर्वाण्यपि-प्रश्नसूत्राणि निर्वचनसूत्राणि च स्वयं सयोज्य भणितव्यानि । व्याख्यातु अर्थस्य छायागम्यत्वान्न विव्रियते । सर्वनक्षत्रताराप्रमाणप्रतिपादकं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिगतं गाथाद्वयमत्र प्रदर्श्यते—"तिग १ तिग २ पंचग ३ सय ४ दुग, ५ दुग ६ बत्तीसं ७ तिगं (तहतिगं ९ च) छ १० पंचग ११ तिग १२ इक्कग १३,—पंचग १४ तिग १५ इक्कगं, १६ चेव ॥१॥ सत्तग १७ दुग १८ दुग १९, पंचग २०, इक्कि २१ क्कग, २२ पंच २३ चउ २४ तिगं २५ चेव । इक्कारसग २६ चउक्कं २७, चउक्कगं २८ चेव तारग्गं ॥२३॥" इति॥

सं०	अष्टाविंशति नक्षत्रनामानि	नक्षत्राणां सं. संस्थानानि	स्थान तारा तारासंख्या	स.	संख्याकोष्ठकम् नक्षत्रनामानि	क्रम् संख्यास्थानानि	तारा संख्या
१	अभिजित्	गोशीर्षावलि.	तिस्रः ३	१५	पुष्यः	वर्धमान (शराव)	तिस्रः ३
२	श्रवणः	काहार. (कावड)	तिस्रः ३	१६	अश्लेषा	पताका स.	षट् ६
३	धनिष्ठा	शकुनि पंजर.	पञ्च ५	१७	मघा	प्रकार स.	सप्त ७
४	शतभिषक्	पुष्पोपचार.	शतम् १००	१८	पूर्वाफाल्गुनी	अर्धपल्यङ्क स.	द्वेतारे २
५	पूर्वाभाद्रपदा	अपार्धवापी.	द्वेतारे २	१९	उत्तराफाल्गुनी	,,	,,
६	उत्तराभाद्र.	,, ,,	,, २	२०	हस्तः	हस्त स.	पञ्च ५
७	रेवती	नौका.	द्वात्रिंशत ३२	२१	चित्रा	मधु (महरा) पु.	
८	अश्विनी	अश्वस्कन्ध.	तिस्रः ३	२२	स्वातिः	कीलक सं०	एका १
९	भरणी	भग सं.	तिस्रः ३	२३	विशाखा	दामिनि (रज्जु) सं.	पञ्च ५
१०	कृत्तिका	क्षुरगृह.	षट् ६	२४	अनुराधा	एकावलिहार सं.	पञ्च ५
११	राहिणी	शकटोद्धि	पञ्च ५	२५	ज्येष्ठा	गजदन्त स.	तिस्र ३
१२	मृगशिरः	मृगशीर्षावलि.	तिस्रः ३	२६	मूल०	वृश्चिकपुच्छ	एकादश ११
१३	आर्द्रा	रुधिरबिन्दु.	एका. १	२७	पूर्वाषाढा	गजपादन्या स.	चतस्रः ४
१४	पुनर्वसु	तुला सं.	पञ्च ५	२८	उत्तराषाढा	सिंहनिषद्या सं	चतस्रः ४

छाया—त्रिक १ त्रिक २ पञ्चक ३ शत ४ द्विकं ५ द्विक ६ द्वात्रिंशत् १ त्रिकं ८ तथा त्रिकं ९ च षट् १० पञ्चक ११ त्रिक १२ एकक १३—पञ्चक १४ त्रिकं १५ एककं १६ चैव १॥ सप्तक १७ द्विक १८ द्विक १९ पंचक २०, एकैं २१ कक २२ पंचक २३ चतुः २४ त्रिकं २५ चैव । एकादशक २६ चतुष्कं २७ चतुष्कं २८ चैव ताराग्रम् ॥२॥ इति

एतद्गाथाद्वयोक्तक्रमेणाष्टाविंशति नक्षत्राणां ताराप्रमाणमवसेयमिति ॥सू० १॥

इति श्री–विश्वविख्यात–जगद्वल्लभ–प्रसिद्धवाचकपञ्चदशभाषाकलितललितकलापालपक–प्रविशुद्ध–गद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक–वादिमानमर्दक–श्रीशाहुच्छत्रपति कोल्हापुरराजप्रदत्त "जैनशास्त्राचार्य" पदभूषित–कोल्हापुर राजगुरु बालब्रह्मचारि–जैनशास्त्राचार्य–जैनधर्मदिवाकर श्रीघासीलालव्रति–विरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिका-ख्यायां व्याख्यायां

दशमस्य प्राभृतस्य–नवमं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०–९॥

॥ श्रीरस्तु ॥

॥ दशमस्य प्राभृतस्य दशमं प्राभृतप्राभृतम् ॥

व्याख्यातं नवमं प्राभृतप्राभृतम्। तत्र नक्षत्राणां तारासंख्या प्रदर्शिता, अथ दशमं प्राभृतप्राभृतं व्याख्यायते, अत्र स्वस्यास्तगमनेन कति नक्षत्राणि अहोरात्रपरिसमापकतया कं मासं नयन्तीति कोऽहोरात्रस्य नक्षत्ररूपो नेता ? इति नक्षत्राणां नेतृत्वं तत्तदधिकृत्य पौरुषीपरिमाणं च प्रदर्श्यते—'ता कहं ते णेया' इत्यादि।

मूलम्—ता कहं ते णेया आहिए ति वएज्जा। ता वासाणं पढमं मासं कइ णक्खत्ता णेंति ? ता चत्तारि णक्खत्ता णेंति, तं जहा—उत्तरासाढा, अभीई सवणे, धणिट्ठा। उत्तरासाढाचोद्दस अहोरत्ते णेइ, अभिई सत्त अहोरत्ते णेइ, सवणे अट्ठ अहोरत्ते णेइ धणिट्ठा एगं अहोरत्तं णेइ। तंसि च णं मासंसि चउरंगुलाए पोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ। तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे दो पायाइं चत्तारि य अंगुलाइं पोरिसी भवइ १।

ता वासाणं दोच्चं मासं कइ णक्खत्ता णेंति ? ता चत्तारि णक्खता णेंति, तं जहा—धणिट्ठा, सयभिसया, पुव्वपोट्ठवया। एवं एएणं अभिलावेणं जहेव जंबुदीवपन्नत्तीए तहेव एत्थंपि भाणियव्वं, तं जहा—धणिट्ठा चोद्दसअहोरत्ते णेइ सयभिसया सत्त अहोरत्ते णेइ, पुव्वापोट्ठवया अट्ठ अहोरत्ते णेइ, उत्तरापोट्ठवया एगं अहोरत्तं णेइ। तंसि च णं मासंसि अट्ठंगुलाए पोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे दो पयाइं अट्ठ अंगुलाइं पोरिसी भवइ २।

ता वासाणं तइयं मासं कइ णक्खत्ता णेंति ? ता तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं जहा—उत्तरपोट्ठवया, रेवई, अस्सिणी उत्तरापोट्ठवया चोद्दसअहोरत्ते णेइ, रेवई पण्णरस अहोरत्ते णेइ अस्सिणी एगं अहोरत्तं णेइ। तंसि च णं मासंसि दुवालसंगुलाए पोरिसीए छाया सूरिए अणुपरियट्टइ। तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे लेहत्थाइं तिण्णि पयाइं पोरिसी भवइ ३।

ता वासाणं चउत्थं मासं कइ णक्खत्ता णेंति ? ता तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं जहा—अस्सिणी, भरणी कत्तिया। अस्सिणी चउद्दस अहोरत्ते णेइ, भरणी पण्णरस अहोरत्ते णेइ, कत्तिया एगं अहोरत्तं णेइ, तंसि च णं मासंसि सोलसंगुलाए पोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ, तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे तिण्णि पयाइं चत्तारि अंगुलाइं पोरिसी भवइ ४

ता हेमंताणं पढमं मासं कइ णक्खत्ता णेंति ? ता तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं जहा—कत्तिया, रोहिणी, संठाणा। कत्तिया चोद्दसअहोरत्ते णेइ, रोहिणी पण्णरस अहो–

रत्ते णेइ, संठाणा एगं अहोरत्तं णेइ । तंसि च णं मासंसि वीसंगुलाए पोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ, तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे तिण्णि पयाइं अट्ठ अंगुलाइं पोरिसी भवइ ।१।

ता हेमंताणं दोच्चं मासं कइ णक्खत्ता णेंति ? चत्तारि णक्खत्ता णेंति, तं जहा–संठाणा, अद्दा, पुणव्वसू पुस्सो । संठाणा चोद्दसअहोरत्ते णेइ, अद्दा सत्त अहोरत्ते णेइ, पुणव्वसू अट्ठ अहोरत्ते णेइ पुस्से एगं अहोरत्तं णेइ । तंसि च णं मासंसि चउवीसंगुलाए पोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ । तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे लेहट्ठाणि चत्तारि पयाइं पोरिसी भवइ २ ।

ता हेमंताणं तइयं मासं कइणक्खत्ता णेंति ? ता त्तिण्णि णक्खत्ता णेति तं जहा–पुस्से अस्सेसा महा । पुस्से चोद्दसअहोरत्ते णेइ, अस्सेसा पंचदस अहोरत्ते णेइ, महा एगे अहोरत्तं णेइ । तंसि च णं मासंसि वीसंगुलाए पोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ । तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे तिण्णि पयाइं अट्ठंगुलाइं पोरिसी भवई ३ ।

ता हेमंताणं चउत्थं मासं कइ णक्खत्ता णेंति ? ता तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं जहा–महा पुव्वाफग्गुणी उत्तराफग्गुणी । महा चोद्दस अहोरत्ते णेइ, पुव्वाफग्गुणी पण्णरस अहोरत्ते णेइ, उत्तराफग्गुणी एगं अहोरत्तं णेइ । तंसि च णं मासंसि सोलसंगुलाए पोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ । तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे तिण्णि पयाइं चत्तारि अंगुलाइं पोरिसी भवइ ४ ।

ता गिम्हाणं पढमं मासं कइ णक्खत्ता णेंति ? ता तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं जहा उत्तराफग्गुणी, हत्थो चित्ता । उत्तराफग्गुणीचोद्दस अहोरत्ते हत्थो पण्णरस अहोरत्ते णेइ, चित्ता एगं अहोरत्तं णेइ । तंसि च णं मासंसि दुवालसंगुलाए पोरिसी छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ । तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे लेहट्ठाइं य तिण्णि पयाइं पोरिसी भवइ १ ।

ता गिम्हाणं बितियं मासं कइ णक्खत्ता णेंति ? ता तिण्णि णक्खत्ता णेंति तं जहा–चित्ता, साई, विसाहा, चित्ता चोद्दस अहोरत्ते णेइ, साई पण्णरस अहोरत्ते णेइ, विसाहा एगं अहोरत्तं णेइ, । तंसि च णं मासंसि अट्ठंगुलाए पोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे दो पयाइं अट्ठ अंगुलाइं पोरिसी भवइ २ ।

गिम्हाणं तइयं मासं कइ णक्खत्ता णेति ? ता चत्तारि णक्खत्ता णेंति तं जहा—विसाहा अणुराहा, जेट्ठा, मूले य । विसाहा चोद्दसअहोरत्ते णेइ, अणुराहा, सत्त अहोरत्ते णेइ, जेट्ठा अट्ठ अहोरत्ते णेइ, मूलो एगं अहोरत्तं णेइ । तंसि च णं मासंसि चउरंगुलाए

पोरिसीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ । तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे दो पयाइं चत्तारि अंगुलाइं पोरिसी भवइ ३ ।

ता गिम्हाणां चउत्थं मासं कइ णक्खत्ता णेंति ? ता तिण्णि णक्खत्ता णेंति, तं जहा–मूलो, पुव्वासाढा, उत्तरासाढा । मूलो चोद्दसअहोरत्ते णेइ, पुव्वासाढा पण्णरस अहोरत्ते णेइ; उत्तरासाढा एगं अहोरत्तं णेइ । (इयत्पर्यन्तं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिपाठः) जाव तंसि च णं मासंसि वट्टाए, समचउरंससंठियाए णग्गोहपरिमंडलाए सकायमणुरंगिणीए छायाए सूरिए अणुपरियट्टइ तस्स णं मासस्स चरिमे दिवसे लेहट्ठाइं दोपयाइं पोरिसी भवइ ॥सू० १ ॥

॥ दसमस्स पाहुडस्स दसमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥१०–१०॥

छाया —तावत् कथं ते नेता आख्यातः ? इति वदेत् । तावत् वर्षाणां प्रथमं मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति ? तावत् चत्वारि नक्षत्राणि नयन्ति, तद्यथा–उत्तराषाढा, अभिजित्, श्रवणः, धनिष्ठा । उत्तराषाढा चतुर्दश अहोरात्रान् नयति, अभिजित् सप्तअहोरात्रान् नयति, श्रवणः अष्ट अहोरात्रान् नयति, धनिष्टा एकम् अहोरात्रं नयति । तस्मिंश्च खलु मासे चतुरङ्गुलया पौरुष्या छायया सूर्यः अनुपरावर्त्तते । तस्य खलु मासस्य चरिमे दिवसे द्वे पदे चत्वारि च अङ्गुलानि पौरुषी भवति १ ।

तावत् वर्षाणां द्वितीयं मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति ? तावत् चत्वारि नक्षत्राणि नयन्ति तद्यथा–धनिष्ठा शतभिषक्, पूर्वाप्रोष्ठपदा, उत्तराप्रोष्ठपदा । एवम् एतेन अभिलापेन यथैव जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यां तथैव अत्रापि भणितव्यम् ,तद्यथा–धनिष्ठा चतुर्दश अहोरात्रान् नयति, शतभिषक् सप्त अहोरात्रान् नयति, पूर्वाप्रोष्ठपदा अष्ट अहोरात्रान् नयति, उत्तराप्रोष्ठपदा एकम् अहोरात्रं नयति । तस्मिंश्च खलु मासे अष्टाङ्गुलया पौरुष्या छायया सूर्यः अनुपरावर्त्तते । तस्य मासस्य चरमे दिवसे द्वे पदे अष्ट अङ्गुलानि पौरुषी भवति २ ।

तावत् वर्षाणां तृतीयं मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति ? तावत् त्रीणि नक्षत्राणि नयन्ति, तद्यथा–उत्तराप्रोष्ठपदा, रेवती अश्विनी । उत्तराप्रोष्ठपदा चतुर्दश अहोरात्रान् नयति, रेवती पञ्चदश अहोरात्रान् नयति, अश्विनी एकम् अहोरात्रं नयति । तस्मिंश्च खलु मासे द्वादशाङ्गुलया पौरुष्या छायया सूर्यः अनुपरावर्त्तते । तस्य खलु मासस्य चरमे दिवसे रेखास्थानि त्रीणि पदानि पौरुषी भवति ३ ।

तावत् वर्षाणां चतुर्थं मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति ? तावत् त्रीणि नक्षत्राणि नयन्ति, तद्यथा–अश्विनी, भरणी, कृत्तिका । अश्विनी चतुर्दश अहोरात्रान् नयति, भरणी पञ्चदश अहोरात्रान् नयति, कृत्तिका एकम् अहोरात्रं नयति । तस्मिंश्च खलु मासे षोडशाङ्गुलया पौरुष्या छायया सूर्य अनुपरावर्त्तते । तस्य खलु मासस्य चरमे दिवसे त्रीणि पदानि चत्वारि अङ्गुलानि पौरुषी भवति ४ ।

तावत् हेमन्तानां प्रथमं मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति ? तावत् त्रीणि नक्षत्राणि नयन्ति, तद्यथा–कृत्तिका, रोहिणी संस्थाना । कृत्तिका चतुर्दश अहोरात्रान् नयति, रोहिणी पञ्चदश अहोरात्रान् नयति, संस्थाना एकमहोरात्रं नयति । तस्मिंश्च खलु मासे विंशत्यङ्गुलया-

पौरुष्या छायया सूर्यः अनुपरावर्त्तते, तस्य खलु मासस्य चरमे दिवसे त्रीणि पदानि अष्ट अङ्गुलानि पौरुषी भवति । १ ।

तावत् हेमन्तानां द्वितीयं मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति तावत् चत्वारि नक्षत्राणि नयन्ति, तद्यथा—संस्थाना, आर्द्रा पुनर्वसुः पुष्यः । संस्थाना चतुर्दश अहोरात्रान् नयति, आर्द्रा सप्त-अहोरात्रान् नयति, पुनर्वसुः अष्ट अहोरात्रान् नयति, पुष्यः एकमहोरात्रं नयति । तस्मिंश्च खलु मासे चतुर्विंशत्यङ्गुलया पौरुष्या छायया सूर्यः अनुपरावर्त्तते । तस्य खलु मासस्य चरमे दिवसे रेखास्थानि चत्वारिपदानि पौरुषी भवति । २ ।

तावत् हेमन्तानां तृतीयं मासं कतिनक्षत्राणि नयन्ति ? तावत्त्रीणि नक्षत्राणि नयन्ति, तद्यथा पुष्यः अश्लेषामघा। पुष्यः चतुर्दश अहोरात्रान् नयति, अश्लेषा पञ्चदश अहोरात्रान् नयति मघा एकमहोरात्रं नयति । तस्मिंश्च खलु मासे विंशत्युङ्गुलया पौरुष्या छायया सूर्यः अनुपराव-र्त्तते । तस्य खलु मासस्य चरमे दिवसे त्रीणि पदानि अष्टअङ्गुलानि पौरुषी भवति।३ ।

तावत् हेमन्तानां चतुर्थं मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति, तावत् त्रीणि नक्षत्राणि नयन्ति तद्यथा-मघा, पूर्वाफल्गुनी, उत्तराफाल्गुनी । मघा चतुर्दश अहोरात्रान् नयति, पूर्वाफाल्गुनी पञ्चदश अहोरात्रान् नयति, उत्तरफाल्गुनी एकमहोरात्रं नयति । तस्मिंश्च खलु मासे षोड-शाङ्गुलया पौरुष्या छायया सूर्यं अनुपरावर्त्तते । तस्य खलु मासस्य चरमे दिवसे त्रीणि पदानि चत्वारि अङ्गुलानि पौरुषी भवति । ४ ।

तावत् ग्रीष्माणां प्रथमं मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति ? तावत् त्रीणि नक्षत्राणि नयन्ति तद्यथा-उत्तराफाल्गुनी हस्तः चित्रा । उत्तराफाल्गुनी चतुर्दश अहोरात्रान् नयति, हस्तः पञ्चदश अहोरात्रान् नयति, चित्रा एकमहोरात्रं नयति। तस्मिंश्च खलु मासे द्वादशाङ्गुलया पौरूष्या छायया सूर्यः अनुपरावर्त्तते । तस्य खलु मासस्य चरमे दिवसे रेखास्थानि त्रीणि पदानि पौरुषी भवति । १ ।

तावत् ग्रीष्माणां द्वितीयं मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति ? तावत् त्रीणि नक्षत्राणि नयन्ति, तद्यथा-चित्रा, स्वातिः विशाखा । चित्रा चतुर्दश अहोरात्रान् नयति, स्वातिः पञ्चदश अहोरात्रान् नयति, विशाखा एकमहोरात्रं नयति ।तस्मिंश्च खलु मासे अष्टाङ्गुलया पौरुष्या छायया सूर्यः अनुपरावर्त्तते । तस्य खलु मासस्य चरमे दिवसे द्वे पदे अष्ट—अङ्गुलानि पौरुषी भवति । २ ।

ग्रीष्माणां तृतीयं मास कति नक्षत्राणि नयन्ति ? तावत् चत्वारि नक्षत्राणि नयन्ति, तद्यथा-विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा मूलम् । विशाखा चतुर्दश अहोरात्रान् नयति, अनुराधा सप्तअहोरात्रान् नयति, ज्येष्ठा अष्टअहोरात्रान् नयति, मूलम् एकमहोरात्रं नयति तस्मिंश्च खलु मासे चतुरङ्गुलया पौरुष्या छायया सूर्यः अनुपरावर्त्तते । तस्य च खलु मासस्य चरमे दिवसे द्वे चत्वारि अंगुलानि पौरुषी भवति । ३ ।

तावत् ग्रीष्माणां चतुर्थं मासं कति नक्षत्राणि नयन्ति ? तावत् त्रीणि नक्षत्राणि नयन्ति तद्यथा—मूलं पूर्वाषाढा उत्तराषाढा मूलं चतुर्दश अहोरात्रान् नयति पूर्वाषाढा पञ्चदश अहोरात्रान् नयति, उत्तराषाढा एकं नक्षत्रं नयति । (जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसंगृहीतः पाठो गतः) यावत् तस्मिंश्च खलु मासे 'वृत्तया समचतुरस्रसंस्थितया , न्यग्रोधपरिमण्डलया स्वकायमनुरङ्गिण्या छायया सूर्यः अनुपरावर्त्तते तस्य खलु मासस्य चरमे दिवसे रेखास्थे द्वे पदे पौरुषी भवति । ४। सू० १

व्याख्या—गौतमः पृच्छति 'ता कहं ते णेया' इति । 'ता' तावत 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'ते' त्वया 'णेया' नेता स्वस्याऽस्तगमनेनाहोरात्रपरिसमापको नक्षत्ररूपो नेता नायकः 'आहिए' आख्यातः ? 'तिवएज्जा' इति वदेत वदतु कथयतु हे भगवन् ! तदेव प्रश्नयन्नाह—'ता वासाणं' इत्यादि । 'ता' तावत 'वासाणं' वर्षाणां वर्षाऋतु सम्बन्धिनां चतुर्णां मासानां श्रावण–भाद्रपदा–ऽऽश्विन–कार्तिकरूपाणां मध्ये 'पढमं' प्रथमम् - आदि 'मासं' श्रावणलक्षणं 'कइ' कति कियत्संख्यकानि 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि 'णेंति' नयन्ति स्वस्यास्तगमनपूर्वकमहोरात्र–परिसमापकतया गमयन्ति । एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह—'ता चत्तारि' इत्यादि, 'ता' तावत् 'चत्तारि णक्खत्ता' चत्वारि नक्षत्राणि 'णेंति' क्रमेण नयन्ति तान्येव दर्शयति—तं जहा, इत्यादि तं जहा—तद्यथा—तानीमानि—'उत्तरासाढा' उत्तराषाढा१, 'अभिई' अभिजित २ 'सवणो' श्रवणः ३, 'धणिट्ठा' धनिष्ठा ४ चेति । तत्र 'उत्तरासाढा' उत्तराषाढानक्षत्रं 'चोद्दस' चतुर्दश मासस्यादिमान् चतुर्दश संख्यकान् 'अहोरत्ते' अहोरात्रान् रात्रिन्दिवानि 'णेइ' नयति स्व-स्याऽस्तगमनेनाहोरात्रपरिसमापकतया गमयति १ । तथा तदपश्चात् चतुर्दशाहोरात्रानन्तरं 'अभिई' अभिजिन्नक्षत्रं 'सत्त अहोरत्ते' सप्ताहोरात्रान् पञ्चदशाहोरात्रादारभ्य एकविंशतितमाहो-रात्रपर्यन्तं 'णेइ' नयति स्वयमस्तं प्राप्याहोरात्रपरिसमापकतया गमयति २। तदनन्तरं 'सवणो' श्रवणः श्रवणनक्षत्रं 'अट्ठअहोरत्ते' अष्टाहोरात्रान्—द्वाविंशतितमाहोरात्रादारभ्य एकोनत्रिंशत्तमाहो-रात्रपर्यन्तं 'णेइ' नयति । एवं सर्वसंकलनया गता श्रावणमासस्यैकोनत्रिंशदहोरात्राः तदनन्तरं शेषम् 'एगं अहोरत्तं' एकमहोरात्रंत्रिंशत्तमं 'धणिट्ठा' धनिष्ठानक्षत्रं 'णेइ' नयति स्व-स्याऽस्तगमनेनैकाहोरात्रपरिसमापनपूर्वकं माससमापकतया श्रावणं मासं परिसमापयति । एवं चत्वारि नक्षत्राणि श्रावणमासपरिसमापकानि सन्तीति । अथ सूर्यपरावर्त्तनमाह—'तंसि च णं' इत्यादि, 'तंसि च णं' तस्मिन उत्तराषाढादिनक्षत्रचतुष्टयेन परिसमाप्यमाने 'मासंसि' मासे श्रावणे मासे 'चउरंगुलाए पोरसीए' चतुरङ्गुलया चतुरङ्गुलाधिकया पौरुष्या पुरुष प्रमाणया 'छायाए' छायया 'सूरिए' सूर्यः 'अणुपरियट्टइ' 'अनुपरावर्त्तते, 'अनु' इति प्रतिदिवस परावर्त्तते पृथग् भवति । अत्रेदं बोध्यम्—श्रावणमासे प्रथमाहोरात्रादारभ्य प्रति दिवसमन्यान्यमण्डलसंक्रमणेन यथा तस्य श्रावणमासस्यान्तिमे दिवसे तथा कथञ्चनापि द्वे पदे चत्वारि अङ्गुलानि पौरुषी भवेदित्येवं क्रमेण सूर्यस्य संक्रमणं भवति, तदेव दर्शयति—'तस्स णं' इत्यादि, 'तस्स णं मासस्स' तस्य खलु श्रावणस्य मासस्य 'चरमे दिवसे' चरमे दिवसे अन्तिमे दिने 'दोपयाइं' 2 द्वे पदे—'चत्तारि अंगुलाणि' चत्वारि अङ्गुलानि चतुरङ्गुलाधिक द्विपदप्रमिता 'पोरिसी भवइ' पौरुषी भवति ॥१॥

अथ वर्षाणां द्वितीयं मासं प्रदर्शयति—'ता वासाणं दोच्चं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'वासाणं' वर्षाणां वर्षारात्रस्य वर्षाऋतोरित्यर्थः 'दोच्चं मासं' द्वितीयं मासं भाद्रपदलक्षण 'कइ णक्खत्ता'

णेंति' कति नक्षत्राणि नयन्ति स्वस्याऽस्तगमनेन भाद्रपदमासं परिसमापयन्तीत्यर्थः । 'ता' तावत् 'चत्तारि णक्खत्ता णेंति' चत्वारि नक्षत्राणि नयन्ति । कानि तानीत्याह–'तं जहा' इत्यादि "'तं जहा' तद्यथा–तानीमानि—'धनिट्ठा' धनिष्ठा १, 'सयभिसया' शतभिषक् २, 'पुव्वपोट्ठवया' पूर्वाप्रोष्ठपदा ३, 'उत्तरपोट्ठवया' उत्तराप्रोष्ठपदा ४ प्रोष्ठपदेति भाद्रपदा विज्ञेया । अथातिदेशमाह–'एवं' इत्यादि, 'एवं' एवम्–अनेन प्रकारेण 'एएण अभिलावेणं' एतेन पूर्वमनुपदप्रदर्शिताभिलापक्रमेण 'जहेव' यथैव 'जम्बूद्दीवपन्नत्तीए' जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यां सप्तमवक्षस्कारे कथितं 'तहेव' तथैव 'एत्थंपि' अत्रापि चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रगतेऽस्मिन् प्रकरणेऽपि 'भाणियव्वं' भणितव्यम् । तदेव प्रदर्शयामः– 'तं जहा' तद्यथा-तत्रत्यं प्रकरणं यथा– 'धणिट्ठा' इत्यादि, 'धणिट्ठा' धनिष्ठा नक्षत्रं 'चोद्दसअहोरत्ते' भाद्रपदमासस्य प्रथमान् चतुर्दश अहोरात्रान् स्वयमस्तङ्गतं भूत्वा . चतुर्दशाहोरात्रपरिसमापकतया 'णेइ' नयति चतुर्दशाहोरात्रान् परिसमापयतीत्यर्थः, तत्पश्चात् 'सयभिसया' शतभिषग्नक्षत्रं 'सत्तअहोरत्ते' सप्ताहोरात्रम् पञ्चदशाहोरात्रादारभ्य एकविंशतितमाहोरात्रपर्यन्तं 'णेइ' नयति स्वयमस्तगमनेन भाद्रपदमासस्यैकविंशतितममहोरात्रं समापयति ।। तदनन्तरं 'पुव्वापोट्ठवया' पूर्वाप्रोष्ठपदा पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रं 'अट्ठअहोरत्ते' अष्टाहोरात्रान् द्वाविंशतितमाहोरात्रादारभ्यैकोनत्रिंशत्तमाहोरात्रपर्यन्तं 'णेइ' नयति भाद्रपदमासस्यैकोनत्रिंशदहोरात्रान् परिसमापयति ततश्च 'उत्तरापोट्ठवया' उत्तराप्रोष्ठपदा–उत्तराभाद्रपदानक्षत्रं 'एगं अहोरत्तं' एकमहोरात्रं यो मासपूर्त्तौ शेषएकाऽहोरात्रः स्थितः तम् उत्तराभाद्रपदानक्षत्रं 'णेइ' नयति । अस्यैकस्याहोरात्रस्य समाप्तौ भाद्रपदमासः समाप्तो भवतीति भावः । 'तंसि च णं' तस्मिंश्च खलु 'मासंसि, मासे भाद्रपदलक्षणे 'अट्ठंगुलाए पोरिसीए' अष्टाङ्गुलया पौरुष्या अष्टाङ्गुलाधिकया पुरुषप्रमाणया 'छायाए' छायया 'सूरिए' सूर्यः 'अणुपरियट्टइ' अनुपरावर्त्तते प्रतिदिवसं निवर्त्तते, अत. 'तस्स णं मासस्स' तस्य खलु मासस्य 'चरिमे दिवसे' चरमे अन्तिमे दिवसे 'दो पयाइं' द्वे पदे तथा 'अट्ठ अंगुलाइं' अष्टाङ्गुलाधिकपदद्वयप्रमिता 'पोरिसी भवइ' पौरुषी भवति २ । एवमग्रेऽपि सर्वत्र विज्ञेयम् । व्याख्या छायागम्यत्वेन सुगमत्वाद् ग्रीष्माणां तृतीयमासज्येष्ठमासपर्यन्तं न विक्रियते, वर्षाणां चतुर्थमाषाढमासंत्वग्रे वक्ष्यतीति । नवरं वर्षा ऋतोस्तृतीय आश्विनमासः ३ । चतुर्थः कार्त्तिकमासः ४ । एवं हेमन्त ऋतोः प्रथमो मार्गशीर्षमासः १, द्वितीय पौषः २, तृतीयो माघः३, चतुर्थश्च फाल्गुनो मासः ४ इति । एवं ग्रीष्म ऋतो. प्रथमश्चैत्रो मासः १, द्वितीयः वैशाखः २, तृतीयो-ज्येष्ठः ३, चतुर्थश्च आषाढमासः ४, इति द्वादश मासा भवन्ति । एवमाषाढस्य चरमे दिवसे 'लेहट्ठाइं दो पयाइं' इति रेखास्थो रेखा–पादपर्यन्तवर्त्तिनी सीमा तत्स्थे द्वे पदे पौरुषी भवति परिपूर्ण पद द्वयपरिमिता पौरुषी भवतीति भावः एवं व्याख्येयम् । इयं चतुरङ्गुला वृद्धि प्रतिमासं श्रावणमासादारभ्य पौषमासपर्यन्तं भवति । तत्पश्चाच्च प्रतिमासं चतुरङ्गुला हानिर्वाच्या सूर्यस्योत्तरायणगतत्वात् । इयं च हानिराषाढमासपर्यन्त भवति, अत आषाढमासस्य चरमे दिवसे द्विपदा पौरुषी भवति । तदेव प्रदर्श्यते–'ता गिम्हाणं' इत्यादि 'ता' तावत् गिम्हाणं'ग्रीष्माणां ग्रीष्मऋतोः

'चउत्थं मासं' चतुर्थं मासम् आषाढलक्षणं 'कइ णक्खत्ता णेंति' कति नक्षत्राणि नयन्ति स्वस्यास्तगमनेन मासपरिसमापकतया गमयन्ति ? 'ता' तावत 'तिण्णि णक्खत्ता णेंति' त्रीणि नक्षत्राणि नयन्ति, 'तंजहा तद्यथा–तानीमानि–'मूलो' मूलम् १ पुव्वासाढा' पूर्वाषाढा २ 'उत्तरासाढा' उत्तराषाढा ३ । तत्र 'मूलो' मूलं नक्षत्रं 'चोद्दस अहोरत्ते णेइ' आद्यान् चतुर्दशअहोरात्रान् 'नयति' १। 'पुव्वासाढा' पूर्वाषाढा 'पण्णरसअहोरत्ते णेइ' पञ्चदशाहोरात्रान् नयति २। 'उत्तरासाढा' उत्तराषाढा 'एगं अहोरत्तं' एकं त्रिंशत्तम-महोरात्रं 'णेइ' नयति स्वयमस्तगमनेन त्रिंशत्तमाहोरात्रसमापनपूर्वकं तमाषाढमासं परिसमापयतीति भावः 'तंसि च णं मासंसि' तस्मिंश्च आषाढलक्षणे खलु मासे 'वट्टाए' वृत्तया, वर्तुलया वृत्तस्य प्रकाश्यवस्तुनः वृत्तया 'छायया' इत्यग्रेण सम्बन्धः, एवं 'समचउरंससंठियाए' समचतुरस्रसंस्थितया समचतुरस्रसंस्थानवतः प्रकाश्य वस्तुनः समचतुरस्राकारया छायया, तथा 'णग्गोहपरिमंडलाए' न्यग्रोधपरिमण्डलया न्यग्रोधो वटः तदाकारस्य प्रकाश्यवस्तुनस्तदाकारया, छायया, उपलक्षणमेतत् अनेन यत्संस्थानसंस्थितं प्रकाश्यं वस्तु भवति तस्य छायाऽपि तत्संस्थानवती भवतीति सर्वसंस्थानेषु विज्ञेयम् यत् आषाढमासे प्रायः सर्वस्यापि प्रकाश्यवस्तुनः दिवसस्य चतुर्भागेऽतिक्रान्ते चतुर्भागे शेषे वा स्वप्रमाणा छाया भवति, निश्चयनयेन तु आषाढमासस्य चरमे दिवसे, तत्रापि सूर्ये सर्वाभ्यन्तरमण्डले चारं चरति सति प्रकाश्यवस्तु संस्थानसदृशा छाया भवति. अत एवोक्तम् "वट्टस्स वट्टयाए" इत्यादि । एतदेव सूत्रकारः स्पष्टयति 'सकायमणुरंगिणीए' इति । 'सकायमणुरंगिणीए' स्वकायमनुरङ्गिण्या–स्वस्य स्वकीयस्य छायानिबन्धनस्य प्रकाश्यवस्तुनः कायः–शरीरं स्वकायस्तम् अनु रज्यते–अनुकारं विदधातीत्येवं शीला अनुरङ्गिणी 'द्विपद्गृह' इत्यादिना घिनञ् प्रत्ययः तया स्वकायमनुरङ्गिण्या 'छायाए' छायया 'सूरिए' सूर्यः 'अणुपरियट्टइ' अनु–प्रतिदिवसं परावर्त्तते । अयमाशयः–आषाढस्य प्रथमादहोरात्रादारभ्य प्रतिदिवसमन्यान्यमण्डलसंक्रमणे यथा सर्वस्यापि प्रकाश्यवस्तुनो दिवसस्य चतुर्भागेऽतिक्रान्ते चतुर्भागे शेषे वा स्वानुकारा स्वप्रमाणा च छाया भवेत् तथा कथञ्चनापि सूर्यः परावर्त्तते, इति । ततः 'तस्स णं मासस्स' तस्य खलु आषाढस्य मासस्य 'चरिमे दिवसे' चरमे अन्तिमे त्रिंशत्तमे दिवसे 'लेहट्ठाइं' रेखापर्यन्तभागवर्तिनो सीमा तत्रस्थिते रेखास्थिते 'दो पयाइं' द्वे पदे पदद्वयप्रमिता 'पोरिसी भवइ' पौरुषी भवतीति सूत्रार्थः । अस्य सूत्रस्य विशेषव्याख्या जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यां मत्कृतायां प्रकाशिकाव्याख्यायां विलोकनीयमिति ।

अत्र यद् आषाढमासस्य चरमदिवसे द्विपदा पौरुषी भवतीत्युक्तं तत् पौरुषी प्रमाणं व्यवहारत उक्तम्, निश्चयतः पुनः सार्धत्रिंशताऽहोरात्रैः–(३०॥) चतुरङ्गुला वृद्धिः श्रावणमासादारभ्य पौषमासपरिसमाप्तिपर्यन्तं षट्सु मासेषु दक्षिणायनगते सूर्ये भवति, एवमेव चतुरङ्गुला हानिर्माघमासादारभ्याषाढमासपरिसमाप्तिपर्यन्तं षट्सु मासेषु उत्तरायणगते सूर्ये भवतीति ज्ञातव्यम् । निश्चयतः पौरुष्याश्चतुरङ्गुला वृद्धिर्हानिश्च सौरमासमधिकृत्य भवति, सौरमासस्यैव सार्धत्रिंशद्दिवसप्रमाणत्वात्, अत्र यच्चान्द्रमासा कथितास्ते लोकव्यवहारमाश्रित्य कथिता इति विभावनीयम् ।

संख्या	मास नाम	नक्षत्र नाम दि.	तथा दि.	दि व दि.	साः दि.	
१	श्रावणः	उत्तराषाढा १४ दि	अभिजित् ७	श्रवण ८	धनिष्ठा–१	३०
२	भाद्रपदः	धनिष्ठा–१४	शतभिषक्–७	पूर्वाभाद्र ८	उत्तरा भाद्र–१	,,
३	आश्विनः	उत्तरा भाद्रपद-१४	रेवती–१५	अश्विनी–१	×	,,
४	कर्तिकः	आश्विनी–१४	भरणी–१५	कृत्तिका–१	×	,,
५	मार्गशीर्षः	कृत्तिका–१४	रोहिणी–१५	मृगशिर–१	×	,,
६	पौषः	मृगशिरः–१४	आर्द्रा–८	पुनर्वसु–७	पुष्यः १	,,
७	माघः	पुष्यः–१४	अश्लेषा–१५	मघा–१	×	,,
८	फाल्गुनः	मघा–१४	पूर्वा फाल्गुनी १५	उत्तरा फा.–१	×	,,
९	चैत्रः	उत्तराफाल्गुनी १४	हस्तः–१५	चित्रा–१	×	,,
१०	वैशाखः	चित्रा–१४	स्वातिः १५	विशाखा–१	×	,,
११	ज्येष्ठः	विशाखा–१४	अनुराधा–७	ज्येष्ठा–८	मूलम्–१	,,
१२	आषाढः	मूलम्–१४	पूर्वाषाढा–१५	उत्तराषाढा–	×	,,

अत्र निश्चयतः पौरुषीप्रमाणप्रतिपादिका अन्यत्रोक्ता अष्टौ करणगाथाः 'पव्वे' इत्यादि प्रदर्श्यन्ते—

पव्वे पण्णरसगुणे, तिहि सहिए पोरिसीए आणयणे ।
छलसीइसयविभत्ते, जं लद्धं तं वियाणाहि ॥१॥
जइ होइ विसमलद्धं, दक्खिणमयणं ठविज्जनायव्वं ।
अह हवइ समं लद्धं, नायव्वं उत्तरं अयणं ॥२॥
अयणगए तिहिरासी चउग्गुणे पव्वपाय भइयव्वं ।
जं लद्धंगुलाणि, खयवुड्ढी पोरिसीए य ॥३॥
दक्खिणवुड्ढी दुपया, अंगुलया णं तु होइ नायव्वा ।
उत्तर अयणे हाणी, कायव्वा चउहि पाएहिं ॥४॥
सावण वहुल पडिवया, दुपया पुण पोरिसी धुवाहोइ ।
चत्तारि अंगुलाइं, मासेणं वड्ढए तत्तो ॥५॥
इक्कत्तीसइ भागा, तिहिए पुण अंगुलस्स चत्तारि ।
दक्खिणअयणे वुड्ढी, जाव उ चत्तारि उ पयाइं ॥६॥
उत्तर अयणे हाणी, चउहिं पायाहिं जाव दो पाया ।
एवं तु पोरिसीए, वुड्ढि-खया हुंति नायव्वा ॥७॥
वुड्ढी वा हाणी वा, जावइया पोरिसीए दिट्ठा उ ।
तत्तो दिवसगएणं, जं लद्धं तुं खु अयणगयं ॥८॥ इति ।

छाया—पर्व पञ्चदशगुणं, तिथिसहितं पौरुष्या आनयने ।
षडशीतिशतविभक्तं, यल्लब्धं तद् विजानीहि ॥१॥
यदि भवति विषमं लब्धं दक्षिणमयनं स्थापयेत ज्ञातव्यम् ।
अथ भवति समं लब्धं, ज्ञातव्यम् उत्तरम् अयनम् ॥२॥
अयनगत. तिथि राशिः, चतुर्गुणः पर्वपाद भक्तव्यम् ।
यद् लब्धम् (यानि लब्धानि) अङ्गुलानि, क्षयवृद्धिपौरुष्याश्च ॥३॥
दक्षिणे वृद्धिः द्विपदा, चतुरङ्गुलकाना तु भवति ज्ञातव्या ।
उत्तरे अयने हानि , कर्त्तव्या चतुर्भिः पादे ॥४॥
श्रावण बहुल प्रतिपदि, द्विपदा पुनः पौरुषी ध्रुवा भवति ।
चत्वारि अङ्गुलानि, मासेन वर्धते ततः (तस्मात्) ॥५॥
एकत्रिंशद् भागाः, तिथ्याः, पुनः अङ्गुलस्य चत्वारः ।
दक्षिणे अयने वृद्धिः, यावत् चत्वारि तु पदानि ॥६॥

उत्तरे अयने हानिः, चतुर्भिः पादैः यावत् द्वौ पादौ ।
ऐवं तु पौरुष्याः, वृद्धि–क्षयौ भवतः ज्ञातव्यौ ॥७॥
वृद्धिः वा हानिः वा, यावत्का पौरुष्या दृष्टा तु ।
तत्तः दिवसगतेन यत् लब्धं तत् खु अयनगतम् ॥८॥ इति ।

एता गाथाः क्रमेण व्याख्यायन्ते— 'पव्वे पण्णरसगुणे' पर्वपञ्चदशगुण–युगमध्ये यस्मिन् पर्वणि यस्यां तिथौ पौरुषीपरिमाणं ज्ञातुमिष्यते तस्मात् पूर्वयुगादित आरभ्य यावन्ति पर्वाणि, पूर्णिमा रूपाणि व्यतीतानि तेषां संख्या ध्रियते, तत्पश्चात् **'तिहिसहिए'** तिथि सहितः यस्या तिथे. पौरुपीपरिमाणं ज्ञातुमिच्छेत् तस्यास्तिथेः पूर्वं यावत्यस्तिथयो गतास्तत्स-ख्यया यो राशिः पूर्वमेकत्रस्थापितः स सहितः युक्तः कर्त्तव्यः, तस्मिन् राशौ गतः तिथिसंख्या प्रक्षिप्यते इत्यर्थः । किमर्थमित्याह **'पोरिसीए आणयणे'** पौरुष्या आनयने पौरुष्यानयनार्थ-मित्यर्थः । ततः–तिथिसहितः पूर्वोक्तो राशिः **'छलसीइसयविभत्ते** षडशीतिशतविभक्तः षड-शीत्यधिकेन शतेन तस्य राशेर्भागो ह्रियते–अत्रायं भावः–एकस्मिन् सौरमासे सूर्यतिथयः सार्ध-त्रिंशद् भवन्ति तदवधौ चन्द्रतिथय एकत्रिंशद् भवन्ति, ततोऽयनस्य षण्मासत्वेन मासस्य सूर्य तिथयः सार्धत्रिंशत् षड्केन गुण्यन्ते ततो भवति षडशीत्यधिकमेकं शतं (१८६) मण्डलानामेक स्मिन्नयने तथा तदवधिगतचन्द्रतिथय'चैकत्रिंशत् षड्केन गुण्यन्ते ततो भवति षडशी-त्यधिकमेकं शतं (१८६) चन्द्र तिथीनामेकस्मिन् अयने ततः त्र्यशीत्यधिकशतपरि माणमण्डलात्मके एकस्मिन्नयने चन्द्रनिष्पादिततिथीनां षडशीत्यधिकशतप्रमाणत्वेन षडशीत्यधिकशतेन भागहरणं कथितम् भागे च हृते **'जं लद्धं'** यत् लब्धं भागहारेण यत् प्राप्तं **'तं वियाणाहि'** तत् विजानीहि हृदि सम्यगवधारयेत्यर्थः ॥ १ ॥ ततः **'जइ होइ विसमलद्धं'** यदि भवति विषमं लब्धं यदि लब्धं, लब्धसंख्या विषमा एक-त्रिपञ्चादिरूपा भवेत् तदा तत्पर्यन्तवर्ति **'दक्खिणमयणं'** दक्षिणमयनं दक्षिणायनं **'ठविज्जनायव्वं'** स्थापयेत् ज्ञात-व्यं, भवेदित्यर्थः । **'अह'** अथ यदि **'समं लद्धं'** सम लब्धसमसंख्या द्विकचतुष्क–षट्कादि-रूपा लब्धा भवेत् तदा तत्पर्यन्तवर्ति **'उत्तरं अयणं नायव्वं'** उत्तरमयनम् उत्तरायणं ज्ञातव्यम् ॥२॥ तदेवमुक्तो दक्षिणोत्तरायणपरिज्ञानोपायः । साम्प्रतं षडशीत्यधिकशतेन भागे हृते यच्छे-षमवतिष्ठते, अथवा भागसंभवेन यच्छेषं तिष्ठति तद्गतविधिं प्रदर्शयति–**'अयणगए'** इत्यादि । **'अयणगए तिहिरासी'** अयनगतस्तिथिराशिः–पूर्वं भागे हृते भागसंभवे वा अवशेषीभूतो यो-ऽयनगत स्तिथिराशिः–पूर्वभागे हृते भागसंभवे वा अवशेषीभूतो योऽयनगतस्तिथिराशि स्तिष्ठति सः **'चउग्गुणे'** चतुर्गुणः कर्तव्यः चतुर्भि चतुर्गुण्यते इत्यर्थः, गुणिते सति यः गुणनफलरूपो राशिः सः **'पव्वपाय भइयव्वं'** पर्वपादेन भक्तव्यः पर्वपादेन पर्वचतुर्थांशेन तस्य भागो हर्त्तव्यः, तथाहि युगमध्ये यानि सर्वसकलनया पर्वाणि चतुर्विंशत्यधिकशत(१२४)संख्यकानि कथमित्याह–

एकस्मिन् युगे अधिकमासद्विकयुक्तत्वेन द्वापष्टिमासा (६२) भवन्ति, एकस्मिन्मासे च पूर्णिमाऽमावास्यारूपं पर्वद्वयं भवति ततो द्वापष्टि द्वाभ्यां गुण्यते- जातं चतुर्विंशत्यधिकमेकं शतम् (१२४)। ततश्चतुर्विंशत्यधिकशतसंख्यकानि पर्वाणि पर्वपादेन पर्वचतुर्थांशेन एकत्रिंश-द्रूपेण विभज्यन्ते तेषा भागो ह्रियते इत्यर्थः। हृते च भागे 'जं लद्धं' यल्लब्धं या संख्या चतुष्करूपा लभ्यते तत्परिमितानि 'अंगुलाइं' अङ्गुलानि च चत्वार्यङ्गुलानि चकारादङ्गुलांशाश्च 'पोरिसीए' पौरुष्याः 'खयवुड्ढी' क्षयवृद्धी ज्ञातव्ये भागलब्धसंख्यापरिमितानि चत्वार्यङ्गु-लानि पौरुष्याः पदध्रुवराशेः क्षयत्वेन उत्तरायणे, तथा पदध्रुवराशेरुपरि वृद्धित्वेन च दक्षिणायने ज्ञातव्यानीति ॥३॥ एतदेवाग्रे चतुर्थगाथाव्याख्यायां प्रदर्शयिष्यते।

अथ एवम्भूतस्य गुणकारस्य तथा भागहारस्य कथमुत्पत्तिः? इति तदुत्पत्तिः प्रदर्श्यते— यदि षडशीत्यधिकेन तिथिशतेन चतुर्विंशत्यङ्गुलानि उत्तरायणे क्षयत्वेन दक्षिणायने च वृद्धित्वेन प्राप्यन्ते तदा एकस्यां तिथौ अङ्गुलानां किं प्रमाणः क्षयः किं प्रमाणा च वृद्धि र्भवेत्? इति प्रश्ने तत्प्रकार—२ माह अत्र राशित्रयं जातम् तत्स्थापना यथा——

तिथिषु	अङ्गुलानि	दिवसे	का हानिर्वृद्धिर्वा
१८६	२४	१	

अत्र अन्त्येन एककरूपेण राशिना मध्यमश्चतुर्विंशतिरूपो राशिर्गुण्यते, एकेन गुणने च एतावानेव जातश्चतुर्विंशतिसंख्यकः २४, "एकेन—गुणितं तदेव भवति' इति वचनात्, ततः अस्य चतुर्विंशतिरूपस्य राशेः आद्येन षडशीत्यधिक-शतरूपेण राशिना भागो ह्रियते, भाज्यराशेश्चतुर्विंशतिरूपस्योपरितनस्य स्तोकत्वे षडशीत्यधिक-शतरूपभाजकराशिना भागो न ह्रियते ($\frac{२४}{१८६}$)। ततो भागहाराभावे भाज्य—भाज्यकराश्यो षट्केनापवर्त्तना क्रियते, षट्केन भागो ह्रियते इत्यर्थः ततो जात उपरितनो भाज्यराशिश्चतुष्करूपः अधस्तनो भाजक राशिश्च एकत्रिंशत् ($\frac{४}{३१}$)। ततो लब्धा एकैकस्यां तिथौ चत्वार एकत्रिं-शद्भागाः ($\frac{४}{३१}$) क्षयत्वेन वृद्धित्वेन वेति तदेवमुक्त उपरितनो राशिर्गुणकारः अधस्तनश्च भागहार इति गुणाकार भागहारयोरुत्पत्तिरिति। अत्र सूत्रे आषाढमासस्य चरमदिवसे आषाढपूर्णिमायां द्विपदा पौरुषी भवतीत्युक्तम्। तत आरभ्य दक्षिणायनत्वेन प्रतितिथौ चतु-रेकत्रिंशद्भाग ($\frac{२४}{३१}$) वृद्धिक्रमेण श्रावणपूर्णिमायां-चतुरङ्गुलाधिका द्विपदा पौरुषी भवति। एव प्रतिमासं चतुरङ्गुलवृद्धिक्रमेण पौषपूर्णिमायां चतुष्पदा पौरुषी भवति। तत उत्तरायण

प्रवेशेन प्रतितिथौ चतुरेकत्रिंशद्‌भाग ($\frac{४}{३१}$) हानिक्रमेण आषाढपूर्णिमायां पुनर्द्विपदा पौरुषी- जायते, इत्यवधेयमिति ॥३॥

प्रकृतमनुसरामः—अथ कस्मिन्नयने कियत्प्रमाणापद ध्रुमवराशिमधिकृत्य वृद्धिर्हानिर्वा भवतीति प्रदर्शयितुं चतुर्थीगाथा व्याख्यायते—'दक्खिणवुड्ढी' इत्यादि 'दक्खिणवुड्ढी' दक्षिणे वृद्धिः, दक्षिणायने सूर्ये गते पौरुषी प्रमाणे वृद्धिर्ज्ञातव्या, यथा—आषाढपूर्णिमायां द्विपदापौरुषी भवति तत्पश्चाद्‌दक्षिणायनं प्रारभतेऽतः पदद्वयस्योपरि अङ्‌गुलानां वृद्धिर्विज्ञेया। एतदेवाह—'दुपया- द्विपदात् पदद्वयादुपरि 'अंगुलयाणं' अङ्‌गुलकानां 'वुड्ढी होइ' वृद्धि भवति, सा 'नायव्वा' ज्ञातव्या। उत्तरे अयणे' उत्तरे अयने उत्तरायणे गते सूर्ये या पूर्वे दक्षिणायनान्तिमदिवसे पौष पूर्णिमायां चत्वारः पादाः पौरुषी जाताः तेभ्यः 'चउहिं पाएहिं' चतुर्भ्यः पादेभ्य 'हाणीका- यव्वा' हानि कर्त्तव्या ॥४॥

अथ युगमध्ये प्रथमे संवत्सरे दक्षिणायने यस्माद्दिवसादारभ्य वृद्धि भवेत्तं पञ्चमषष्ठेति गाथा द्वयेन प्ररूपयति—'सावणबहुलः' इत्यादि। सावणबहुलपडिवया' श्रावण बहुलप्रतिपदायां युगस्य प्रथमे संवत्सरे श्रावणमासे कृष्णपक्षस्य प्रतिपदायाम् आषाढपूर्णिमातो द्वितीये दिवसे 'दुपया पुण पोरिसी धुवा होइ' द्विपदा पुनः पौरुषी ध्रुवा—निश्चिता भवति। 'तत्तो' तत्त. तद्दिवसात् श्रावण कृष्णप्रतिपदात आरभ्याग्रे 'मासेणं' मासेन सूर्यमासमाश्रित्य सार्धत्रिंशदहोरात्रप्रमाणेन, चन्द्रमासमाश्रित्य एकत्रिंशत्तिथिभिः 'चत्तारि अंगुलाइं' चत्वारि अंगुलानि पौरुषी 'वड्ढए' वर्धते प्रतिमासान्ते चतुरङ्‌गुलानां पौरुषी प्रमाणे वृद्धिर्भवति सूर्यस्य दक्षिणायनगतत्वात् ॥ ५ ॥

सूर्यमासचन्द्रमासेति कथमवसीयते ? इति तदेव प्रदर्श्यते—'इक्कतीसइ' इत्यादि, 'इक्कती- सइभागा' इतिकथमवसीयते? इति तदेव प्रदर्श्यते— 'इक्कतीसइ' इत्यादि 'इक्कतीसइ भागाति- हिए पुण अंगुलस्स चत्तारि' एकत्रिंशद्भागाः तिथौ पुनरङ्गुलस्य चत्वारि—'तिहिए' एक- स्यां तिथौ अङ्गुलस्य चत्वार एकत्रिंशद्भागाः $\frac{४}{३१}$ वृद्धिरूपेण भवन्ति, सा च 'दक्खिणअयणेवु- ड्ढी' दक्षिणेऽयने वृद्धिः, एषां चतुरेकत्रिंशद्भागानां दक्षिणाऽयने वृद्धिर्भवति। कियत्पदपर्यन्त मित्याह—'जाव उ चत्तारि उ पयाइं' यावत् तु चत्वारितु पदानि—यावत् दक्षिणायन चरमदिने चतुष्पदमिता पौरुषी भवेत् तावत् वृद्धिर्ज्ञातव्येति भावः ॥६॥

अथ पौरुष्याः पदहानिमाह—'उत्तरअयणे' इत्यादि, उत्तर अयणे' उत्तरे अयने उत्तरा- यणे 'हाणी' हानि भवेत् , कथमित्याह—'चउहिं पायाहिं' चतुर्भ्यः पादेभ्यः उत्तरायणप्रथमदिव सादारभ्य चतुर्भ्यः पादेभ्यो हानिः प्रारभते प्रतितिथौ चतुरेकत्रिंशद्भागक्रमेण, कियत्पर्यन्तमित्याह- 'जाव दो पाया' यावत् द्वौ पादौ, यावत् उत्तरायणचरमदिवसे द्विपदा पौरुषी भवेत् तावत् हा-

निर्ज्ञातव्येति । उपसंहरन्नाह—'**एवंतु**' इत्यादि, '**एवंतु**' अनेन पूर्वोक्तप्रकारेण '**पोरिसीए**' पौरुष्याः '**वुड्ढिखया**' वृद्धिक्षयौ '**होंति**' भवतः, इति तौ वृद्धिक्षयौ '**नायव्वा**' ज्ञातव्यौ ॥७॥

अथायनस्यादितः कति दिवसा गता इति पौरुषी प्रमाणमधिकृत्य प्रदर्शयन्नाह—'**वुड्ढिवा**' इत्यादि, '**वुड्ढीवा हाणी वा**' वृद्धिर्वा हानिर्वा '**जावइया पोरिसीए दिट्ठा उ**' यावती पौरुष्या दृष्टा तु, '**तत्तो**' ततः तत्सकाशात्—'**दिवसगएणं**' दिवसगतेन दिवसानां गमनेन '**जं लद्धं**' यल्लब्धं प्राप्तं दिवसप्रमाणं '**तं खु**' तत् खलु '**अयणगयं**' अयनगतं तावत्परिमितमयनं गतमित्यवधार्यम् । अस्या गाथाया अयं भावः—ईप्सितदिने 'अद्य अयनस्य कतिदिवसा व्यतीता' इति ज्ञातुमिच्छेत् तदा तदीप्सितदिने यदि दक्षिणायनं भवेत् तदा तस्मिन् दिवसे यावन्तः पादाः अङ्गुलसहिताः पौरुष्या वर्धिता भवेयुस्तान् प्रतितिथि एकत्रिंशद्भागचतुष्टयवृद्धिक्रमेण तिथीर्गणयेत् यावत्यस्तिथयो लभ्यन्ते यावन्तो दिवसान् अयनस्य जानीयात् यत् दक्षिणायनस्य इयन्तो दिवसा गता इति । एवमेव उत्तरायणे हानिमाश्रित्य दिवसा गणनीया इति ॥८॥

तदेवमक्षरार्थमाश्रित्य करणगाथानां व्याख्यानं कृतम् साम्प्रतमुदाहरणं प्रदर्श्यते—यदि दक्षिणायने पदद्वयस्योपरि चत्वारि अङ्गुलानि यस्मिन् दिवसे पौरुष्या लभ्यन्ते तदा कोऽपि पृच्छति—अद्य दक्षिणायनस्य कति तिथयो गताः? इति प्रश्ने शृणु—अत्र त्रैराशिककर्मावतारो यथा—यदि अङ्गुलस्य चतुर्भिरेकत्रिंशद्भागैरेका तिथि र्लभ्यते ततश्चतुर्भिरङ्गुलैः कति तिथयो लभ्यन्ते? इति प्रश्ने राशित्रयस्थापना क्रियते—

एकत्रिंशद्भागा	तिथिः	अङ्गुलानि
४	१	४

अत्रान्त्यो राशिरङ्गुलरूपः, अस्यैकत्रिंशद्भागकरणार्थमेकत्रिंशता गुण्यते जातं चतुर्विंशत्यधिकमेकशतम् (१२४) अनेन मध्यो राशि रेककरूपो गुण्यते जातं तदेव चतुर्विंशत्यधिकं शतम् १२४ । अस्य चतुष्करूपेणादि राशिना भागो ह्रियते लब्धा एकत्रिंशत्संख्येति । एतास्तिथयो ज्ञातव्याः, तेन आगतं दक्षिणायने एकत्रिंशत्तमायां तिथौ पौरुष्यां चतुरङ्गुला वृद्धि रिति दक्षिणायनस्य अद्यैकत्रिंशद्दिनानि गतानिति परिभावनीयमिति । एवमुत्तरायणे पदचतुष्टया दष्टाङ्गुलानि हीनानि पौरुष्या यस्मिन् दिने लभ्यन्ते तदा कोऽपि पृच्छति—अद्य उत्तरायणस्य कतितिथयो गताः ? इति प्रश्ने शृणु—अत्रापि त्रैराशिक क्रियते, यथा—यदि अङ्गुलस्य चतुर्भिरेकत्रिंशद्भागैरेका तिथिर्लभ्यते तदाऽष्टभिरङ्गुलैर्हीनैः कतितिथयो लभ्यन्ते ? इति राशित्रयस्थापना क्रियते यथा—

एकत्रिंशद्भागाः	तिथिः	अङ्गुलानि
४	१	८

अत्राप्यन्त्यो राशिरेकत्रिंशद्भागकरणार्थमेकत्रिंशता गुण्यते—जातं अष्टचत्वारिंशदधिके द्वे शते -(२४८) अनेन राशिना मध्यो राशिरेकक

दधिके द्वे शते (२४८) इति। अस्य राशेः (२४८) आद्येन चतुष्करूपेण राशिना भागो ह्रियते लब्धा द्वाषष्टिः ६२। आगतमुत्तरायणे द्वाषष्टितमायां तिथौ पौरुष्यामष्टावङ्गुलानि हीनानीति गतानि उत्तरायणस्य द्वाषष्टिर्दिनानीति विभावनीयमिति ॥८॥ इति करणगाथाः ॥८॥

तदेवं क्रमेण व्याख्याता अष्टापि करणगाथाः। साम्प्रतं 'युगस्यादितोऽमुकस्मिन् पर्वणि कतिपदा पौरुषी भवति ? इत्युदाहरणैः प्रदर्शयति—यथा कोऽपि पृच्छति–युगे आदित आरभ्य पञ्चाशीतितमे पर्वणि पञ्चम्यां तिथौ कतिपदा पौरुषी भवति ? तत्र चतुरशीति र्ध्रियते, तस्याश्चाधस्तात् पञ्चम्यां तिथौ पृष्ट मिति पञ्च स्थाप्याः $\frac{८४}{५}$ चतुरशीतिश्च पञ्चदशभिर्गुण्यते जातानि षष्ट्यधिकानि द्वादशशतानि (१२६०), एतेषु मध्ये अधस्तना ये पञ्च स्थतास्ते प्रक्षिप्यन्ते, जातानि पञ्चषष्ट्यधिकानि द्वादशशतानि (१२६५) एषां षडशीत्यधिकेन शतेन १८६, भागो ह्रियते, लब्धा षट् ६, आगतं षड् अयनानि गतानि, सप्तममयनं वर्त्तते। ततस्तद्गतं च शेषमेकोन पञ्चाशदधिकं शतं १४९ तिष्ठति। तत एष राशिश्चतुर्भिर्गुण्यते जातानि षण्णवत्यधिकानि पञ्चशतानि ५९६। एषामेकत्रिंशता भागो हृते लब्धा एकोनविंशति १९, शेषास्तिष्ठन्ति सप्त ७, तत्र द्वादशाङ्गुलः पादो भवतीत्येकोनविंशते १९ द्वादशकेन भागो ह्रियते तेन लब्धमेकं पदम्, शेषाः सप्त, तानि चाङ्गुलानि, तेन जातमेकं पदं सप्तचाङ्गुलानि (पदं १—अं ७) षष्ठं चायनमुत्तरायणं, तच्च गतं, सप्तमं तु दक्षिणायनं वर्त्तते, ततो ये च सप्त एक त्रिंशद्भागाः पूर्वं शेषीभूता वर्त्तन्ते तेषां यवाः कार्याः, तत्र–अष्ट यवात्मकमेकमङ्गुलमिति ते सप्त, अष्टभिर्गुण्यन्ते जाताः षट् पञ्चाशत् ५६ अस्यैकत्रिंशता भागे हृते लब्ध एको यवः, शेषास्तिष्ठन्ति पञ्चविंशतिः २५, एते एकस्य यवस्य पञ्चविंशतिरेकत्रिंशद्भागाः, ततो जातम् एक पदम्, सप्त अङ्गुलानि, एको यवः, एकस्य च यवस्य पञ्चविंशतिरेकत्रिंशद्भागाः पदम्—अङ्गुलानि—यवः—एकत्रिंशद्भागाः १—७—१—२५

एकः राशिः पदद्वयप्रमाणे ध्रुवराशौ प्रक्षिप्यते, तत आगतम् पञ्चाशीतितमे पर्वणि पञ्चम्यां तिथौ—त्रीणि पदानि, सप्तअङ्गुलानि, एको यवः, एकस्य च यवस्य पञ्चविंशतिरेकत्रिंशद्भागाः (पद. ३—अं ७—यवः १—भागा $\frac{२५}{३१}$) इत्येतावती पौरुषीति।

तथा पुनरन्य कोऽपि पृच्छति' —सप्तनवतितमे पर्वणि पञ्चम्यां तिथौ कतिपदा पौरुषी भवति ?, तत्र षण्णवतिर्ध्रियते तस्याश्चाधस्तात् पञ्च, षण्णवतिश्च पञ्चदशभिर्गुण्यते, जातानि

चत्वारिंशदधिकानि चतुर्दशशतानि (१४४०), एषां मध्ये येऽधस्तनाः पञ्च ते प्रक्षिप्यन्ते, जातानि पञ्चचत्वारिंशदधिकानि चतुर्दशशतानि (१४४५) एषां षडशीत्यधिकशतेन (१८६) भागो ह्रियते, लब्धानि सप्त ७ इति सप्त अयनानि, शेषं तिष्ठति त्रिचत्वारिंशदधिकमेकं शतम् (१४३) एतत् चतुर्भिर्गुण्यते जातानि द्विसप्तत्यधिकानि पञ्चशतानि (५७२), एषामेकत्रिंशता भागो ह्रियते लब्धानि अष्टादश (१८) तानि चाङ्गुलानि, द्वादशाङ्गुलं पदमिति द्वादशभिरङ्गुलैस्तु पदं लभ्यते, शेषं षट्, तानि चाङ्गुलानि तत आयातम् एकं पदं षड् अङ्गुलानीति। तत एकत्रिंशता भागे हृते ये उद्धृताश्चतुर्दश १४, ते यवानयनार्थमष्टभिर्गुण्यन्ते जातं तिष्ठति द्वादशोत्तरं शतम् (११२) अस्य-एकत्रिंशता भागो ह्रियते लब्धस्त्रयः ३, ते च यवाः ३, शेषा तिष्ठति एकोनविंशतिः ते च एकोनविंशति रेक त्रिंशद्भागाः। ततः एकं पदं षड् अङ्गुलानि, त्रयो यवाः, एकस्य यवस्य एकोनविंशतिश्चैकत्रिंशद्भागाः (१-६-३ $\frac{१९}{३१}$) इति प्राप्तम्। अत्र सप्तचायनानि गतानि अष्टमं वर्त्तते, तच्चायनमुत्तरायणं भवति, उत्तरायणे च पदचतुष्टयरूपाद् ध्रुवराशेर्हानिर्भवेदिति पूर्वोक्ताङ्कश्रेणिः (१-६-३ $\frac{१९}{३१}$) पदचतुष्टयात् हीना क्रियते तदा शेषं तिष्ठति-द्वे-पदे- पञ्चाङ्गुलानि, चत्वारो यवाः एकस्य च यवस्य द्वादश एकत्रिंशद्भागा (प. अं यवा. भागाः
२-५-४ $\frac{१२}{३१}$)। एतावतीयुगादित आरभ्य सप्तनवतितमे पर्वणि पञ्चम्यां तिथौ पौरुषी भवतीत्युत्तरमवसेयम् एवं सर्वत्र गणना परिभावनीयेति ॥ सू० १ ॥

"इति चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिकायां टीकायां दशमस्य प्राभृतस्य दशमं प्राभृतप्राभृत समाप्तम् ॥ १०-१० ॥

दशमस्य प्राभृतस्य-एकादशं प्राभृतप्राभृतम्।

गतं दशमं प्राभृतप्राभृतम्, तत्र नक्षत्राणां नेतृत्वं पौरुषी प्रमाणं च प्रदर्शितम्। अथ एकादशं प्राभृतप्राभृतं प्रारभ्यते, अत्र नक्षत्राण्यधिकृत्य चन्द्रमार्गाः, चन्द्रमण्डलान्तरं सूर्यमार्गश्च प्रदर्शयिष्यते, इति सम्बन्धेनायातस्यास्यैकादशप्राभृतप्राभृतस्य प्रथमं चन्द्रमार्गविषयकमिदमादिसूत्रम्-'ता कहं ते चंदमग्गा इत्यादि।

मूलम्—ता कहं ते चंदमग्गा आहिएति वएज्जा। ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अत्थि णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स दाहिणेणं जोयं जोएंति ॥१॥ अत्थि णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स उत्तरेण जोयं जोएंति ॥२॥ अत्थि णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स

दाहिणेण वि उत्तरेण वि पमद्दंपि जोयं जोएँति ॥३॥ अत्थि णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स दाहिणेणं वि पमद्दंपि जोयं जोएँति ॥४॥ अत्थि णक्खत्ता जे णं चंदस्स सया पमद्दं जोयं जोएँति ॥५॥ ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं कयरे णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स दाहिणेण जोयं जोएँति, तहेव जाव कयरे णक्खत्ता जे णं सया चंदस्स पमद्दं जोयं जोएंति ? ता एएसिणं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं जे णं णक्खत्ता सया चंदस्स दाहिणेणं जोयं जोएँति ते णं छ, तंजहा–संठाणा १, अद्दा, २, पुस्सो ३, अस्सेसा ४, हत्थो ५, मूलो ६। तत्थ णं जे ते णक्खत्ता जेणं सया चंदस्स उत्तरेणं जोयं जोएँति, ते णं बारस, तंजहा–अभिई १, सवणो २, धणिट्ठा ३, सयभिसया ४, पुव्वाभद्दवया ५, उत्तराभद्दया ६, रेवई ७, अस्सिणी ८, भरणी ९, पुव्वाफग्गुणी १०, उत्तराफग्गुणी ११, साई १२। तत्थ णं जे ते णक्खत्ता जे णं चंदस्स दहिणेण वि उत्तरेण वि पमद्दंपि जोयं जोएँति तेणं सत्त, तंजहा–कत्तिया १, रोहिणी २, पुणव्वसू ३, महा ४, चित्ता ५, विसाहा ६, अणुराहा ७। तत्थ णं जे ते णक्खत्ता जेणं चंदस्स दाहिणेण वि पमद्दंपि जोयं जोएँति ताओ णं दो आसाढाओ तओ य सव्वबाहिरे मण्डले जोयं जोएँसुवा, जोएँतिवा, जोइस्संति वा तत्थ णं जं तं णक्खत्तं जं णं सया चंदस्स पमद्दं जोयं जोएइ सा णं एगा जेट्ठा ॥सूत्र १॥

छाया—तावत् कथं ते चन्द्रमार्गाः आख्याताः ? इति वदेत्, तावत् एतेषां खलु अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां सन्ति नक्षत्राणि यानि खलु सदा चन्द्रस्य दक्षिणे योगं युञ्जन्ति ॥१॥ सन्ति नक्षत्राणि यानि खलु सदा चन्द्रस्य उत्तरे योगं युञ्जन्ति ।२। सन्ति नक्षत्राणि यानि खलु सदा चन्द्रस्य दक्षिणेऽपि उत्तरेऽपि प्रमर्दमपि योगं युञ्जन्ति ।३। सन्ति नक्षत्राणि यानि खलु सदा चन्द्रस्य दक्षिणेऽपि प्रमर्दमपि योगं युञ्जन्ति ।४। सन्ति नक्षत्राणि यानि खलु चन्द्रस्य सदा प्रमर्दं योगं युञ्जन्ति ।५। तावत् एतेषाम् अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां कतराणि नक्षत्राणि यानि खलु सदा चन्द्रस्य दक्षिणे योगं युञ्जन्ति ? तथैव यावत् कतराणि नक्षत्राणि यानि खलु सदा चन्द्रस्य प्रमर्दं योगं युञ्जन्ति । तावत्, एतेषां खलु अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां यानि खलु नक्षत्राणि सदा चन्द्रस्य दक्षिणे योगं युञ्जन्ति तानि खलु षट् तद्यथा—संस्थाना १, आर्द्रा २, पुष्यः ३, अश्लेषा ४, हस्त ५, मूलम् ६, । तत्र खलु यानि तानि नक्षत्राणि यानि खलु सदा चन्द्रस्य उत्तरे योगं युञ्जन्ति तानि खलु द्वादश, तद्यथा—अभिजित् १, श्रवणः २, धनिष्ठा ३, शतभिषक् ४, पूर्वाभाद्रपदा ५, उत्तराभाद्रपदा ६, रेवती ७, अश्विनी ८, भरणी ९, पूर्वाफाल्गुनी १०, उत्तरा फल्गुनी ११, स्वाति १२, तत्र खलु यानि तानि नक्षत्राणि यानि खलु चन्द्रस्य दक्षिणेऽपि, उत्तरेऽपि, प्रमर्दमपि योगं युञ्जन्ति तानि खलु सप्त, तद्यथा-कृत्तिका १, रोहिणी २, पुनर्वसु ३, मघा ४, चित्रा ५, विशाखा ६, अनुराधा ७, । तत्र खलु यानि तानि नक्षत्राणि यानि खलु चन्द्रस्य दक्षिणेऽपि प्रमर्दमपि योगं युञ्जन्ति

ते द्वे आषाढे, ते च सर्वं बाह्ये मण्डले योगम् अयुञ्जतां वा, युङ्क्तो वा, योक्ष्यतो वा। तत्र यत्तत् नक्षत्रं यत् खलु सदा चन्द्रस्य प्रमर्दं योगं युनक्ति सा खलु एका ज्येष्ठा। ॥सूत्र०१॥

व्याख्या—'ता कहंते इति। 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'ते' त्वया 'चंदमग्गा' चन्द्रमार्गाः नक्षत्राणां दक्षिणत उत्तरतः प्रमर्दतः, अथवा सूर्यनक्षत्रैर्विरहिततया अविरहितया चन्द्रस्य मार्गा मण्डलत्वगत्या परिभ्रमणरूपा मण्डलरूपा वा मार्गाः 'अहिया' आख्याताः कथिताः ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन्। एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह—'ता एएसि णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां ज्योतिः शास्त्रप्रसिद्धानां 'अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं' अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये 'अत्थि' सन्ति 'अत्थि' इति एकवचन-बहुवचनवाचकमव्ययपदं, तेन सन्तीत्यर्थः 'णक्खत्ता नक्षत्राणि कानिचित्, 'जे णं' यानि खलु 'सया' सदा निरन्तरं 'चंदस्स चन्द्रस्य 'दाहिणेणं' दक्षिणे दक्षिणभागे दक्षिणस्यां दिशि स्थितानि 'जोयं जोएंति' योगं युञ्जन्ति चन्द्रेण सह योगं कुर्वन्तीत्यर्थः ? तथा 'अत्थि' सन्ति कानिचित् 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'सया' सदा 'चंदस्स' चंद्रस्य 'उत्तरेणं' उत्तरे उत्तरस्यां दिशि स्थितानि 'जोयं जोएंति' योगं युञ्जन्ति २। तथा 'अत्थि' सन्ति कानिचित् 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'सया' सदा 'चंदस्स' चंद्रस्य 'दाहिणेण वि' दक्षिणेऽपि 'उत्तरेण वि' उत्तरेऽपि 'पमद्दंपि' प्रमर्दमपि प्रमर्दरूपमपि मध्यमार्गेण गमनरूपमपि 'जोयं' जोएंति योगं युञ्जन्ति ३। तथा—'अत्थि' सन्ति कानिचित् 'णक्खत्ता नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'सया' सदा चंदस्स चंद्रस्य दाहिणेणं 'पमद्दंपि' दक्षिणे प्रमर्दमपि प्रमर्दरूपमपि 'जोयं जोएंति' योगं युञ्जन्ति ॥४॥ तथा 'अत्थि णक्खत्ता' सन्ति कानिचित् नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'चंदस्स' चद्रस्य 'सया' सदा 'पमद्दं' प्रमर्दरूपं 'जोयं जोएंति' योगं युञ्जन्ति ॥५। एवं भगवता सामान्यतो नक्षत्राणां पञ्च योगप्रकाराः प्रदर्शिताः अथ भगवन् गौतमः कानि कानि नक्षत्राणि चन्द्रस्य दक्षिणादिक्रमेण योगं युञ्जतीति भिन्नतया स्पष्टावबोधार्थं पुनः पृच्छति—'ता' 'एएसिणं' इत्यादि 'ता' तावत् 'एएसिणं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं' एतेषाम् अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणा मध्ये 'कयरे 'णक्खत्ता' कतमानि किंनामानि कति नक्षत्राणि सन्ति 'जे णं' यानि खलु 'सया' सदा चंदस्स दाहिणेणं जोयं जोएंति' चन्द्रस्य दक्षिणे स्थितानि योगं युञ्जन्ति ? ॥१॥ 'तहेव' तथैव यथा पूर्वप्रकरणे नक्षत्रयोगप्रकाराः कथितास्तथैवात्रापि वक्तव्या. स्पष्टार्थत्वात्पुनर्न विविच्यन्ते। कियत्पर्यन्तं ते वक्तव्याः तत्राह—'जाव' इत्यादि 'जाव' यावत् पञ्चमं प्रकारम् तदेवाह—'कयरे' इत्यादि 'कयरे' कतमानि किंनामानि कति सङ्ख्यकानि च 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि सन्ति 'जे णं' यानि खलु नक्षत्राणि 'सया' सदा 'चदस्स' चन्द्रस्य 'पमद्दं' प्रमर्दरूपं 'जोयं' जोएंति योगं युञ्जन्ति ? ।५।

एवं गौतमेन पृष्टे सति भगवान् तानि भिन्नभिन्नरूपेण प्रदर्शयति 'ता एएसि णं' इत्यादि 'ता तावत् 'एएसि ण अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं' एतेपां खलु अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये 'जे णं' णक्खत्ता यानि खलु नक्षत्राणि 'सया' सदा सर्वकाल 'चदस्स दाहिणेणं' चन्द्रस्य दक्षिणे दक्षिणस्यां दिशि स्थितानि 'जोयं जोएंति' योगं युञ्जन्ति 'ते णं' तानि खलु 'छ' षट् षट् संख्यकानि सन्ति 'तं जहा' तद्यथा तानि यथा 'संठाणा' सस्थाना मृगशिरः १, 'अद्दा' आर्द्रा २, 'पुस्सो' पुष्य ३ 'अस्सेसा' अश्लेषा ४, 'हत्थो' हस्त ५, 'मूलो' मूलश्च ६, इति एतानि सर्वाण्यपि मृगशिर आदीनि नक्षत्राणि पञ्चदशस्य चन्द्रमण्डस्य बहिश्चारं चरन्ति तथाचोक्त जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ ।

संठाणा अद्द पुस्सोऽसिलेस हत्थो तहेव मूला य ।
बाहिरओ बाहिरमंडलस्स छप्पि य नक्खत्ता ॥१॥

छाया—संस्थाना आर्द्रा पुष्यः अश्लेषा हस्तस्तथैव मूलश्च ।
बाह्यतो बाह्यमण्डलस्य षडपि च नक्षत्राणि ॥१॥

एतानि नक्षत्राणि सदैव दक्षिणदिग् व्यवस्थितान्येव चन्द्रेण सह योगं युञ्जन्ति नान्यथेति ॥१॥ 'तत्थ' तत्र तेपु नक्षत्रयोगप्रकारेपु 'जे ते णक्खत्ता' यानि तानि नक्षत्राणि सन्ति तेपु 'जे णं' यानि खलु नक्षत्राणि 'सया' सदा सर्वदा 'चंदस्स उत्तरेणं जोयं जोएंति' चंद्रस्य उत्तरे उत्तरदिशि स्थितानि योगं युञ्जन्ति 'ते णं' तानि खलु 'बारस' द्वादश सन्ति 'तंजहा' तद्यथा तानीमानि—अभिई अभिजित् १' 'सवणो' श्रवणः २, धनिट्ठा धनिष्ठा ३, 'सयभिसया' शतभिषक् ४, 'पुव्वा भद्दवया' पूर्वाभाद्रपदा ५, 'उत्तराभद्दवया' उत्तराभाद्रपदा, ६, 'रेवई' रेवती, अस्सिणी, अश्विनी ८, 'भरणी' भरणी ९, पुव्वाफग्गुणी' पूर्वाफल्गुनी १०, उत्तराफग्गुणी उत्तराफल्गुनी ११, साई' स्वातिः १२, इति एतानि द्वादशापि नक्षत्राणि सर्वाभ्यन्तरं चन्द्रमण्डले चारं चरन्ति। यदा चंद्रस्य एतैः सहयोगो भवति तदा स्वभावतः एव चन्द्र शेषेष्वेव मण्डलेपु वर्त्तते तत एतानि उत्तरदिग् व्यवस्थितान्येव सदैव चन्द्रेण सह योगं युञ्जन्तीति २ ।

तत्थ तत्र 'जे ते णक्खत्ता' यानि तानि नक्षत्राणि सन्ति तेपु 'जे णं' यानि खलु नक्षत्राणि 'चंदस्स' चन्द्रस्य 'दाहिणेणवि' दक्षिणेऽपि 'उत्तरेणवि' उत्तरेऽपि 'पमद्द पि' प्रमर्दरूपमपि 'जोयं जोएंति' योगं युञ्जन्ति 'तेणं सत्त' ते खलु सप्त सन्ति; 'तंजहा तद्यथा तानि यथा 'कत्तिया' कृत्तिका १, 'रोहिणी' रोहिणी 'पुणव्वसू' पुनर्वसु ३, 'महा' मघा ४, 'चित्ता' चित्रा ५, 'विसाहा' विशाखा ६, 'अनुराहा' अनुराधा ७, । ३ ।

तथा 'तत्थ' तत्र अष्टाविंशतिनक्षत्राणा मध्ये ये यानि 'नक्खत्ता' नक्षत्राणि सन्ति तेषा मध्ये 'जे णं' ये द्वे खलु नक्षत्रे 'चंदस्स' चन्द्रस्य 'दाहिणेणवि' दक्षिणेऽपि तथा

ते द्वे आषाढे, ते च सर्वे बाह्यमण्डले योगम् अयुञ्जन्त वा, युञ्जन्ति वा, योक्ष्यन्ति वा। तत्र यत्तद् नक्षत्रं यत् खलु सदा चन्द्रस्य प्रमर्दं योगं युनक्ति सा खलु एका ज्येष्ठा। ॥सूत्र०१॥

व्याख्या—'ता कहंते इति। 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'ते' त्वया 'चंदमग्गा' चन्द्रमार्गाः नक्षत्राणां दक्षिणत उत्तरतः प्रमर्दतः, अथवा सूर्यनक्षत्रैर्विरहिततया अविरहितया चन्द्रस्य मार्गा मण्डलगत्या परिभ्रमणरूपा मण्डलरूपा वा मार्गाः 'अहिया' आख्याताः कथिताः ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन्। एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह—'ता एएसि णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां ज्योतिः शास्त्रप्रसिद्धानां 'अट्ठावीसाए' णक्खत्ताणं' अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणा मध्ये 'अत्थि' सन्ति 'अत्थि' इति एकवचन—बहुवचनवाचकमव्ययपदं, तेन सन्तीत्यर्थः 'णक्खत्ता नक्षत्राणि कानिचित्, 'जे णं' यानि खलु 'सया' सदा निरन्तरं 'चंदस्स चन्द्रस्य 'दाहिणेणं' दक्षिणे दक्षिणभागे दक्षिणस्यां दिशि स्थितानि 'जोयं जोएंति' योगं युञ्जन्ति चन्द्रेण सह योगं कुर्वन्तीत्यर्थः ? तथा 'अत्थि' सन्ति कानिचित् 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'सया' सदा 'चंदस्स' चंद्रस्य 'उत्तरेणं' उत्तरे उत्तरस्यां दिशि स्थितानि 'जोयं जोएंति' योगं युञ्जन्ति २। तथा 'अत्थि' सन्ति कानिचित् 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'सया' सदा 'चंदस्स' चंद्रस्य 'दाहिणेण वि' दक्षिणेऽपि 'उत्तरेण वि' उत्तरेऽपि 'पमद्दंपि' प्रमर्दमपि प्रमर्दरूपमपि मध्यमार्गेण गमनरूपमपि 'जोयं' जोएंति योगं युञ्जन्ति ३। तथा—'अत्थि' 'सन्ति कानिचित् 'णक्खत्ता नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'सया' सदा चंदस्स चंद्रस्य दाहिणेणं 'पमद्दंपि' दक्षिणे प्रमर्दमपि प्रमर्दरूपमपि 'जोयं जोएंति' योगं युञ्जन्ति ॥४॥ तथा 'अत्थि णक्खत्ता' सन्ति कानिचित् नक्षत्राणि 'जे णं' यानि खलु 'चंदस्स' चंद्रस्य 'सया' सदा 'पमद्दं' प्रमर्दरूपं 'जोयं जोएंति' योगं युञ्जन्ति ॥५॥ एवं भगवता सामान्यतो नक्षत्राणां पञ्च योगप्रकाराः प्रदर्शिताः अथ भगवन् गौतमः कानि कानि नक्षत्राणि चन्द्रस्य दक्षिणादिक्रमेण योगं युञ्जन्तीति भिन्नतया स्पष्टावबोधार्थं पुनः पृच्छति—'ता' 'एएसिणं' इत्यादि 'ता' तावत् 'एएसिणं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं' एतेषाम् अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणा मध्ये 'कयरे 'णक्खत्ता' कतमानि किंनामानि कति नक्षत्राणि सन्ति 'जे णं' यानि खलु 'सया' सदा चंदस्स दाहिणेणं जोयं जोएंति' चन्द्रस्य दक्षिणे स्थितानि योगं युञ्जन्ति ? ॥१॥ 'तहेव' तथैव यथा पूर्वप्रकरणे नक्षत्रयोगप्रकाराः कथितास्तथैवात्रापि वक्तव्याः स्पष्टार्थत्वात्पुनर्न विविच्यन्ते। कियत्पर्यन्तं ते वक्तव्याः तत्राह—'जाव' इत्यादि 'जाव' यावत् पञ्चमं प्रकारम् तदेवाह—'कयरे' इत्यादि 'कयरे' कतमानि किंनामानि कति संख्यकानि च 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि सन्ति 'जे णं' यानि खलु नक्षत्राणि 'सया' सदा 'चंदस्स' चन्द्रस्य 'पमद्दं' प्रमर्दरूपं 'जोयं' जोएंति योगं युञ्जन्ति ? ।५।

एवं गौतमेन पृष्टे सति भगवान् तानि भिन्नभिन्नरूपेण प्रदर्शयति 'ता एएसि णं' इत्यादि 'ता तावत् 'एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं' एतेषां खलु अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये 'जे णं' णक्खत्ता यानि खलु नक्षत्राणि 'सया' सदा सर्वकाल 'चंदस्स दाहिणेणं' चन्द्रस्य दक्षिणे दक्षिणस्यां दिशि स्थितानि 'जोयं जोएंति' योग युञ्जन्ति 'ते णं' तानि खलु 'छ' षट् षट् संख्यकानि सन्ति 'तं जहा' तद्यथा तानि यथा 'संठाणा' सरथाना मृगशिरः १, 'अद्दा' आर्द्रा २, 'पुस्सो' पुष्य ३ 'अस्सेसा' अश्लेषा ४, 'हत्थो' हस्तः ५, 'मूलो' मूलश्च ६, इति एतानि सर्वाण्यपि मृगशिर आदीनि नक्षत्राणि पञ्चदशस्य चन्द्रमण्डस्य बहिश्चारं चरन्ति तथाचोक्तं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ ।

संठाणा अद्द पुस्सोऽसिलेस हत्थो तहेव मूला य ।
बाहिरओ बाहिरमंडलस्स छप्पि य नक्खत्ता ॥१॥
छाया—संस्थाना आर्द्रा पुष्यः अश्लेषा हस्तस्तथैव मूलश्च ।
बाह्यतो बाह्यमण्डलस्य षडपि च नक्षत्राणि ॥१॥

एतानि नक्षत्राणि सदैव दक्षिणदिग् व्यवस्थितान्येव चन्द्रेण सह योगं युञ्जन्ति नान्यथेति ॥१॥ 'तत्थ' तत्र तेषु नक्षत्रयोगप्रकारेषु 'जे ते णक्खत्ता' यानि तानि नक्षत्राणि सन्ति तेषु 'जे णं' यानि खलु नक्षत्राणि 'सया' सदा सर्वदा 'चंदस्स उत्तरेणं जोयं जोएंति' चंद्रस्य उत्तरे उत्तरदिशि स्थितानि योगं युञ्जन्ति 'ते णं' तानि खलु 'बारस' द्वादश सन्ति 'तंजहा' तद्यथा तानीमानि–अभिई अभिजित् १' 'सवणो' श्रवणः २, धनिट्ठा धनिष्ठा ३, 'सयभिसया' शतभिषक् ४, 'पुव्वा भद्दवया' पूर्वाभाद्रपदा ५, 'उत्तराभद्दवया' उत्तराभाद्रपदा, ६, 'रेवई' रेवती, अस्सिणी, अश्विनी ८, 'भरणी' भरणी ९, पुव्वाफग्गुणी' पूर्वाफल्गुनी १०, उत्तराफग्गुणी उत्तराफल्गुनी ११, साई' स्वातिः १२, इति एतानि द्वादशापि नक्षत्राणि सर्वाभ्यन्तरे चन्द्रमण्डले चारं चरन्ति। यदा चंद्रस्य एतैः सहयोगो भवति तदा स्वभावतः एव चन्द्रः शेषेष्वेव मण्डलेषु वर्त्तते तत एतानि उत्तरदिग् व्यवस्थितान्येव सदैव चन्द्रेण सह योगं युञ्जन्तीति २ ।

तत्थ तत्र 'जे ते णक्खत्ता' यानि तानि नक्षत्राणि सन्ति तेषु 'जे णं' यानि खलु नक्षत्राणि 'चंदस्स' चन्द्रस्य 'दाहिणेणवि' दक्षिणेऽपि 'उत्तरेणवि' उत्तरेऽपि 'पमद्दंपि' प्रमर्दरूपमपि 'जोयं जोएंति' योगं युञ्जन्ति 'तेणं सत्त' ते खलु सप्त सन्ति; 'तंजहा तद्यथा तानि यथा 'कत्तिया' कृत्तिका १, 'रोहिणी' रोहिणी 'पुणव्वसू' पुनर्वसु ३, 'महा' मघा ४, 'चित्ता' चित्रा ५, 'विसाहा' विशाखा ६, 'अनुराहा' अनुराधा ७, । ३ ।

तथा 'तत्थ' तत्र अष्टाविंशतिनक्षत्राणां मध्ये ये यानि 'नक्खत्ता' नक्षत्राणि सन्ति तेषा मध्ये 'जे णं' ये द्वे खलु नक्षत्रे 'चंदस्स' चन्द्रस्य 'दाहिणेणवि' दक्षिणेऽपि तथा

'पमद्दंपि' प्रमर्दमपि 'जोयं जोएंति' योगं युङ्क्तः 'ता ओय' ने द्वे नक्षत्रे सव्ववाहिरे मंडले सर्व बाह्यमण्डलव्यवस्थितं 'जोयं जोएंसु वा' योगमयुङ्क्ताम् वा योगमकुरुतां 'जोएंति वा' युङ्क्तो वा योगं कुरुतः 'जोएस्संति वा' योक्ष्यतो योगं करिष्यत वा। अत्रेयं भावना एते पूर्वाषाढा उत्तराषाढा चेति द्वे अपि आषाढे प्रत्येकं चतुस्तारे, उक्तञ्च पूर्वं अस्यैव नवमे प्राभृते-नक्षत्रतारा संख्याप्रकरणे-'पुव्वासाढा चउत्तारे, उत्तरासाढा चउत्तारे' इति, तत्र द्वे द्वे तारे सर्वबाह्यस्य पञ्चदशस्य मण्डलस्याभ्यन्तरं भवतः, द्वे द्वे च वहिर्भवनः। तत्र ये द्वे द्वे तारे वहिर्भवतस्ते चन्द्रस्य पञ्चदशेऽपि मण्डले चारं चरतस्तदा ते दक्षिणदिग्भ्यवस्थिते स्तः, ततस्तदपेक्षया "दाहिणेण वि" इति दक्षिणेऽपि योगं युङ्क्तः, इत्युक्तम्। तथा ये द्वे द्वे तारे अभ्यन्तरे स्तः, तयोर्मध्येन नियमतश्चन्द्रो गच्छतीति, यतोहि-यदा पूर्वाषाढोत्तराषाढाभ्यां सह चन्द्रो योगं समुपैति तदाऽभ्यन्तरतारकाणां-मध्यतो गच्छतीति नियमः। तदपेक्षया "पमद्दंपि" इति प्रमर्दमपि योगं इति कथ्यते ॥४॥

तथा-'तत्थ' तत्र-अष्टाविंशति नक्षत्रेषु 'जं तं णक्खत्तं' यत्तन्नक्षत्रं 'जं णं' यत् खलु 'सया' सदा सर्वकालं 'पमद्दं जोयं' प्रमर्दं योगं मध्यतो गमनरूपं योगं 'जोएइ' युनक्ति 'सा णं एका जेट्ठा' सा खलु एका ज्येष्ठा तत् खलु एकं ज्येष्ठानक्षत्रमिति भावः ॥सूत्र १॥

तदेवमुक्ता मण्डलगत्या परिभ्रमणरूपश्चन्द्रमार्गाः, साम्प्रतं मण्डलरूपान् चन्द्रमार्गान् तदन्तराणि सूर्यमार्गांश्चाभिधातुमाह-'ता कइ णं ते चंदमंडला' इत्यादि।

मूलम्—ता कइणं ते चंदमंडला आहिएति वएज्जा, ता पण्णरस चंदमंडला आहिएति वएज्जा। एएसि णं पण्णरसण्हं चंदमण्डलाणं अत्थि चंदमंडला जे णं सया णक्खत्तेहिं अविरहिया, १, अत्थि चंदमंडला जे णं सया णक्खत्तेहिं विरहिया २,। अत्थि चंदमंडला जे णं रविससि णक्खत्ताणं सामण्णा भवंति ३। अत्थि चंदमंडला जे णं सया-आइच्चेहिं विरहिया।४। ता एएसिणं पण्णरसण्हं चंदमंडलाणं कयरे चंदमंडला जे णं सया णक्खत्तेहिं अविरहिया जाव कयरे चंदमंडला जे णं सया आइच्चेहिं विरहिया १ ता एएसि णं पण्णरसण्हं चंदमंडलाणं तत्थ जे ते चंदमंडला जेणं सया णक्खत्तेहिं अविरहिया ते णं अट्ठ, तं जहा पढमे चंदमंडले, १' तइए चंदमंडले, छट्ठे चंदमंडले ३, सत्तमे चंदमंडले ४, अट्ठमे चंदमंडले ५, दसमे चंदमंडले ६, एगारसे चंदमंडले ७, पण्णरसमे चंदमंडले ८,। तत्थ जे ते चंदमंडला जे णं सया णक्खत्तेहिं विरहिया ते णं सत्त, तंजहा-बीए चंदमंडले १, चउत्थे चंदमंडले २, पंचमे चंदमंडले ३, नवमे चंदमंडले ४, वारसमे चंदमंडले ५, तेरसमे चंदमंडले ६, चउद्दसमे चंदमंडले ७,। तत्थ जेते चंदमंडले जे णं ससिरविणक्खत्ताणं समाणा भवंति ते णं चत्तारि तं जहा-पढमे चंदमंडले १, बीए चदमंडले २, इक्कारसमे चदमंडले ३, पण्णरसमे

चंदमंडले ४, तत्थ जेते चंदमंडला जे णं सया आइच्चेहिं विरहिया तेणं पंच, तं जहा—छट्ठे चंदमंडले १, सत्तमे चंदमंडले १, अट्ठमे चंदमंडले ३, नवमे चंदमंडले ४, दसमे चंदमंडले ५, ॥सूत्र २॥

"दसमस्स पाहुडस्स एगारसमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥१०-११॥

छाया—तावत् कति खलु ते चन्द्रमण्डलानि आख्यातानि ? इति वदेत्, तावत् पञ्चदश चन्द्रमण्डलानि आख्यातानि इतिवदेत् । तावत् एतेषां खलु पञ्चदशानां चन्द्रमण्डलानां सन्ति चन्द्रमण्डलानि यानि खलु सदा नक्षत्रैरविरहितानि १। सन्ति चन्द्रमण्डलानि यानि खलु सदा तक्षत्रैर्विरहितानि २ । सन्ति चन्द्रमण्डानि यानि खलु रवि शशि नक्षत्राणां सामान्यानि भवन्ति ३। सन्ति चन्द्रमण्डलानि यानि खलु सदा अदित्याभ्यां विरहितानि ४। तावत् एतेषां खलु पञ्चदशानां चन्द्रमण्डलानां कतमानि चन्द्रमण्डलानि यानि खलु सदा नक्षत्रैः विरहितानि ? यावत् कतमानि चन्द्रमण्डलानि यानि खलु सदा आदित्याभ्यां विरहितानि ? तावत् एतेषां खलु पञ्चदशानां चन्द्रमण्डलानां तत्र यानि तानि चन्द्रमण्डलानि यानि खलु नक्षत्रैः अविरहितानि तानि खलु अष्ट, तद्यथा-प्रथमं चन्द्रमण्डलम् १ तृतीयं चन्द्रमण्डलम्, २ षष्ठं चन्द्रमण्डलम् ३, सप्तमं चन्द्रमण्डलम् ४, अष्टमं चन्द्रमण्डलम् ५, दशमं चन्द्रमण्डलम् ६, एकादशं चन्द्रमण्डलम् ७, पञ्चदशं चन्द्रमण्डलम् ८। १, तत्र यानि तानि चन्द्रमण्डलानि यानि खलु सदा नक्षत्रैः विरहितानि तानि खलु सप्त, तद्यथा-द्वितीयं चन्द्रमण्डलम् १, चतुर्थं चन्द्रमण्डलम् २, पञ्चमं चन्द्रमण्डलम् ३, नवमं चन्द्रमण्डलम् ४, द्वादशं चन्द्रमण्डलम् ५, त्रयोदशं चन्द्रमण्डलम् ६, चतुर्दशं चन्द्रमण्डलम् ७।२। तत्र यानि तानि चन्द्रमण्डलानि यानि खलु शशि-रवि नक्षत्राणां सामान्यानि भवन्ति तानि खलु चत्वारि, तद्यथा प्रथम चन्द्रमण्डलम् १, द्वितीयं चन्द्रमण्डलम् २, एकादशं चन्द्रमण्डलम् ३, पञ्चदशं चन्द्रमण्डलम् ४, ।३। तत्र यानि तानि चन्द्रमण्डलानि यानि खलु सदा आदित्याभ्यां विरहितानि तानि खलु पञ्च, तद्यथा-षष्ठं चन्द्रमण्डलम् १, सप्तमं चन्द्रमण्डलम् २, अष्टमं चन्द्रमण्डलम् ३, नवमं चन्द्रमण्डलम् ४, दशमं चन्द्रमण्डलम् ५ ।४।।सू० २॥

दशमस्य प्राभृतस्य एकादशं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०-११॥

व्याख्या—गौतमः पृच्छति 'ता कइ णं ते चंदमंडला' इति 'ता' तावत् 'कइ णं' कति खलु कियन्ति खलु 'ते' ते—त्वया 'चंदमंडला' चन्द्रमण्डलानि 'आहिया' आख्यातानि कथितानि 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् ! । भगवानाह 'ता' तावत् 'पण्णरस' पञ्चदश पञ्चदशसंख्यकानि 'चंदमंडला' चन्द्रमण्डलानि 'आहिया' आख्यातानि मया कथितानि 'ति' इति एवं प्रकारेण 'वएज्जा' वदेत् कथयेत् स्वशिष्येभ्य इति । तत्र पञ्च चन्द्रमण्डलानि जम्बूद्वीपे सन्ति शेषाणि च दशमण्डलानि लवणसमुद्रे सन्ति । उक्तञ्च जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रे—

जंबूदीवे णं भंते ! दीवे केवइयं ओगाहित्ता केवइया चंदमंडला पण्णत्ता ? गोयमा ! जंबू दीवेणं दीवे असीयं जोयणसयं ओगाहित्ता एत्थ णं चंदमंडला पण्णत्ता ।

लवणेणं भंते समुद्दे केवइयं ओगाहित्ता केवइया चंदमंडला पण्णत्ता ? गोयमा ! लवणे णं समुद्दे तिण्णि तीसाइं जोयणसयाइं ओगाहित्ता एत्थ णं दस चंदमंडला पण्णत्ता एवामेव सपुव्वावरेणं जम्बूदीवे लवणे य पण्णरस चंदमंडला भवंतीति अक्खायं ॥

छाया—जम्बूद्वीपे खलु भदन्त ! द्वीपे कियत्कं (क्षेत्रं) अवगाह्य कियन्ति चन्द्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! जम्बूद्वीपे खलु द्वीपे अशीतं (अशीत्यधिकं) योजनशतम् अवगाह्य अत्र, खलु पञ्च चन्द्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि । लवणे खलु भदन्त! समुद्रे कियत्कं (क्षेत्रं) अवगाह्य कियन्ति चन्द्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि ? गौतम ! लवणे खलु समुद्रे त्रीणि त्रिंशत् योजनशतानि अवगाह्य अत्र खलु दश चन्द्रमण्डलानि प्रज्ञप्तानि । एवमेव सपूर्वापरेण जम्बूद्वीपे लवणे च पञ्चदश चन्द्रमण्डलानि भवन्तीति आख्यातम् ॥ अस्य व्याख्या जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रस्य मत्कृतायां.. .....व्याख्यायां विलोकनीयेति ।

अथ भगवान् चन्द्रमण्डलानां नक्षत्रादिना सह योगं प्रदर्शयति—'**ता एएसि णं**' इत्यादि, '**ता**' तावत् '**एएसि णं**' एतेषां खलु '**पण्णरसण्हं**' पञ्चदशानां '**चंदमंडलाणं**' चन्द्रमण्डलानां मध्ये '**अत्थि त्ति,** सन्ति एतादृशानि '**चंदमंडला**' चन्द्रमण्डलानि '**जे णं**' यानि खलु '**सया**' सदा सर्वकालं '**णक्खत्तेहिं**' नक्षत्रैः '**अविरहिया**' अविरहितानि युक्तानि तिष्ठन्ति ! '**अत्थि** सन्ति कियन्ति एतादृशानि '**चंदमंडला**' चन्द्रमण्डलानि '**जे णं**' यानि खलु '**सया**' सदा सर्वकालं '**णक्खत्तेहिं**' नक्षत्रैः '**विरहिया**' विरहितानि नक्षत्रयोगवर्जितानि तिष्ठन्ति २। '**अत्थि**' सन्ति कियन्ति '**चंदमंडला**' चन्द्रमण्डलानि '**जे णं**' यानि खलु '**रविससि नक्खत्ताणं** रविशशिनक्षत्राणां रविशशिनक्षत्राण्याश्रित्य '**सामण्णा**' सामान्यानि सर्वसाधारणानि तिष्ठन्ति, येषु चन्द्रमण्डलेषु रविरपि गच्छति शश्यपि गच्छति नक्षत्राण्यपि गच्छन्तित्यतः सूर्यचन्द्रनक्षत्रेति सर्वेषामपि भोग्यानीति भावः ३ । '**अत्थि**' सन्ति कियन्ति एतादृशानि '**चंदमंडला**' चन्द्रमण्डलानि '**जे णं**' यानि खलु '**सया**' सदा सर्वकालं '**आइच्चेहिं**' आदित्याभ्यां जम्बूद्वीपे सूर्यद्वयस्य सद्भावात् द्वाभ्यां सूर्याभ्यां '**विरहिया**' विरहितानि सूर्याभोग्यानि तिष्ठन्ति न तेषु कदापि द्वावपि सूर्यौचारं चरत इति भावः । ४ एवं भगवना सामान्येन प्रोक्ते सति गौतमः एकैकशश्चचन्द्रमण्डलविषये विशेषावबोधार्थं पुनः पृच्छति '**ता एएसि णं**' इत्यादि, '**ता**' तावत् '**एएसि णं**' ? एतेषां खलु '**पण्णरसण्हं**' पञ्चदशानां '**चंदमंडलाणं**' चन्द्रमण्डलानां मध्ये '**कयरे**' कतमानि कानि कियन्ति '**चंदमंडला**' चन्द्रमण्डलानि सन्ति '**जे णं**' यानि खलु '**सया**' सदा '**णक्खत्तेहिं**' नक्षत्रैः **अविरहिया**' अविरहितानि विरहरहितानि युक्तानीत्यर्थः तिष्ठन्ति ! १। '**जाव**' यावत, अत्र यावत्पदेन पूर्वं भगवता प्रोक्तमालापकद्वयमत्र वाच्यम्, तथाहि—कानि चन्द्रमण्डलानि सन्ति यानि सदा नक्षत्रैर्विरहितानि नक्षत्रभोगवर्जितानि तिष्ठन्ति २ । तथा कानि चन्द्रमण्डलानि सन्ति यानि

रविशशिनक्षत्राणां सामान्यानि सर्वसाधारणानि रविशशिनक्षत्रेति त्रयाणामपि भोग्यानि सन्ति ३। चतुर्थमालापकं सूत्रकार एव विशदयति—'कयरे' इत्यादि, एतेषां पञ्चदशानां चन्द्रमण्डलानां मध्ये 'कयरे' कतमानि कानि 'चंदमंडला' चन्द्रमण्डलानि 'जे णं' यानि खलु 'सया' सदा 'आइच्चेहिं' आदित्याभ्यां 'विरहिया' विरहितानि सूर्यद्वययोगरहितानि तिष्ठन्ति ! । इति गौतमेन पृष्ठे सति भगवान् चतुरोऽपि प्रश्नान् एकैकशः कृत्वा समाधत्ते—'ता एएसिणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतासां खलु 'पण्णरसण्हं' पञ्चदशानां 'चंदमंडलाणं' चन्द्रमण्डलानां, 'तत्थ' तत्र तेषां मध्ये 'जे ते चदमंडला' यानि तानि चन्द्रमण्डलानि 'जे णं' यानि खलु 'सया' सदा सर्व कालं 'णक्खत्तेहिं अविरहिया' नक्षत्रैः अविरहितानि नक्षत्रयोगयुक्तानीत्यर्थः सन्ति 'तेणं अट्ठ' तानि खलु अष्ठ, 'तं जहा' तद्यथा—तानीमानि 'पढमे चंदमंडले' प्रथमं चन्द्रमण्डलम् १, 'तइए चंदमंडले' तृतीयं चन्द्रमण्डलम् २, 'छट्ठे चंदमंडले' षष्ठं चन्द्रमण्डलम् ३, 'सत्तमे चंद-मंडले' 'सप्तमं चन्द्रमण्डलम् ४, 'अट्ठमे चंदमंडले' अष्टमं चन्द्रमण्डलम् ५, 'दसमे चंदमंडले' दशमं चन्द्रमण्डलम् ६, 'एगारसे चंदमंडले' एकादशं चन्द्रमण्डलम् ७, 'पण्णरसे चंदमंडले' पञ्चदशं चन्द्रमण्डलम् ८। एषामष्टानां चन्द्रमण्डलानां मध्ये कस्मिन् मण्डले कति २ नक्षत्राणि भवन्तीति प्रदर्श्यते—एषामष्टानां चन्द्रमण्डलानां मध्ये प्रथमे चन्द्रमण्डले द्वादश नक्षत्राणि भवन्ति, तथाहि—अभिजित् १, श्रवणः२, धनिष्ठा ३, शतभिषक् ४, पूर्वाभाद्रपदा ५, उत्तराभाद्रपदा ६, रेवती ७, अश्विनी ८, भरणी ९, पूर्वाफाल्गुनी १०, उत्तराफाल्गुनी ११, स्वातिः १२,॥ उक्तञ्च—

"अभिई १, सवण २, धणिट्ठा ३, सयभिसया ४, दो य होंति भद्दवया ६ ।
रेवइ ७, अस्सिणी ८, भरणी ९ दो फग्गुणी ११, साइ १२ पढमंमि ॥१॥

छाया—स्पष्टैवेति ।१।

तृतीये चन्द्रमण्डले पुनर्वसुर्मघा चेति द्वे नक्षत्रे २, षष्ठे एकैव कृत्तिका ३, सप्तमे रोहिणी चित्रा चेति द्वे नक्षत्रे ४, अष्टमे एका विशाखा ५, दशमे अनुराधा ६, एकादशे ज्येष्ठा ७, पञ्चदशे चाष्टौ नक्षत्राणि भवन्ति तथाहि—मृगशिरः १, आर्द्रा २, पुष्यः ३, अश्लेषा ४, हस्तः ५, मूलम् ६, पूर्वाषाढा ७, उत्तराषाढा ८, चेति, ऐषु आद्यानि षड्नक्षत्राणि पञ्चदशस्य मण्डलस्य, यद्यपि बहिश्चारं चरन्ति तथापि तत्प्रत्यासन्नवर्त्तित्वात्तानि तत्र गणितानीति न कश्चि दोष इति, एवमेतान्यष्ट चन्द्रमण्डलानि सदैव नक्षत्रै रविरहितानि युक्तानि तिष्ठन्तीति ।१। 'तत्थ' तत्र पञ्चदशसु चन्द्रमण्डलेषु मध्ये 'जे ते चंदमंडला' यानि तानि चन्द्रमण्डलानि सन्ति तेषु 'जे णं' यानि खलु 'सया' सदा सर्वकालं 'णक्खत्तेहि विरहिया' नक्षत्रै विरहितानि नक्षत्रयोगवर्जितानि येषु कदाप्येकमपि नक्षत्रं योगं न युनक्ति तादृशानि 'ते णं' तानि खलु 'सत्त'

सप्त सन्ति, 'तं जहा' तद्यथा तानि यथा—'वितिए चंदमंडले' द्वितीयं चन्द्रमण्डलम्' 'चउत्थे चंदमंडले' चतुर्थं चन्द्रमण्डलम् २, 'पंचमे चंदमंडले' पञ्चमं चन्द्रमण्डलम् ३, 'नवमे चंदमंडले' नवमं चन्द्रमण्डलम् ४, 'वारसमे चंदमंडले' द्वादशं चन्द्रमण्डम् ५, 'तेरसमे चंदमंडले' त्रयोदशं चन्द्रमण्डलम् ६, 'चउद्दसमे चंदमंडले' चतुर्दशं चन्द्रमण्डलम् ७, ।२। 'तत्थ' तत्र पञ्चदशसु चन्द्रमण्डलेषु 'जे ते चंदमडला'यानि तानि चन्द्रमण्डलानि सन्ति तेषु 'जे णं' यानि खलु 'ससिरवि नक्खत्ताणं' शशिरवि नक्षत्राणां कृते 'सामण्णा' सामान्यानि सर्वसाधारणानि सर्वेषां चारयोग्यानि 'भवंति' सन्ति 'ते णं' तानी खलु 'चत्तारि' चत्वारि' 'तं जहा' तद्यथा—तानीमानि— 'पढमे चंदमंडले' प्रथमं चन्द्रमण्डलम् १, 'वीए चंदमंडले' द्वितीयं चन्द्रमण्डलम् २, 'इक्कारसमे चंदमंडले' एकादशं चन्द्रमण्डलम् ३, 'पण्णरसमे चंदमंडले' पञ्चदशं चन्द्रमण्डलम् ४।३। तथा— 'तत्थ' तत्र तेषु पञ्चदशसु चन्द्रमण्डलेषु 'जे ते चंदमंडला' यानितानि चन्द्रमण्डलानि सन्ति तेषु 'जे णं' यानि खलु 'सया' सदा सर्वकालं दिवसे रात्रौवा 'आइच्चेहिं विरहिया' आदित्याभ्या सूर्याभ्यां विरहितानि सूर्यमण्डलस्पर्शवर्जितानि 'तेणं' तानि खलु पञ्च' पञ्च, 'तं जहा' तद्यथा तानि यथा— 'छट्ठे चंदमंडले' षष्ठं चन्द्रमण्डलम् १, 'सत्तमे चंदमंडले' सप्तमं चन्द्रमण्डलम् २, 'अट्ठमे चंदमंडले'अष्टमं चन्द्रमण्डलम् ३, 'नवमे चंदमंडले' नवमं चन्द्रमण्डलम् ४, 'दसमे चंदमंडले' दशमं चन्द्रमण्डलम् ५, इति ।

अत्रैवं गम्यते यत्—यानि एकतः पञ्च पर्यन्तानि पञ्च १—२—३—४—५) चन्द्रमण्डलानि सर्वाभ्यन्तराणि, तथा यानि च— एकादशत आरभ्य पञ्चदशपर्यन्तानि पञ्च (११—१२—१३—१४—१५) चन्द्रमण्डलानि सर्वबाह्यानीत्येतानि दश चन्द्रमण्डलानि सूर्यस्यापि साधारणानि सूर्यस्यापि चारयोग्यानि सन्ति येषु सूर्योऽपि चारं चरति । शेषाणि षष्ठत आरभ्य दशपर्यन्तानि ६—७—८—९—१० पञ्च चंद्रमण्डलानि चन्द्रस्यैवासाधारणानि यतस्तत्र चन्द्रएव चारं चरति न तु कदाचिदपि सूर्य इति, उक्तञ्च

"दसचेव मंडलाइं, अब्भिंतरवाहिरा रवि ससीणं ।
सामण्णाणि उ नियमा, पत्तेया होंति सेसाणि ॥१॥

छाया—दश चैव मण्डलानि आभ्यन्तर—बाह्यानि रविशशिनोः ।
सामान्यानि तु नियमात्, प्रत्येकानि भवन्ति शेषाणि ॥१॥

अर्थः स्पष्टः नवरं प्रत्येकानि—एकमेकं प्रति-प्रत्येकम्, तानि प्रत्येकानि—चन्द्रस्य असाधारणानि, चन्द्रस्यैव भोग्यानि न तु कदाचिदपि सूर्यस्य । तेषु कदाचिदपि सूर्यो न गच्छतीति भावः ।

अत्र किम् चन्द्रमण्डलं कियता सूर्यमण्डलेन न स्पृश्यते ? तथा चन्द्रमण्डलस्यापान्तराले

कियन्ति सूर्यमण्डलानि भवन्ति तथा षष्ठमण्डलादारभ्य दशमण्डलपर्यन्तानि पञ्च (६–७–८–१०) चन्द्रमण्डलानि कथं सूर्याभ्यां न स्पृश्यन्ते ? इति तद्विभाग उपदर्श्यते–तत्र प्रथममेतद्विभागप्रदर्शनार्थं सूर्यस्य विकम्पक्षेत्रकाष्ठा प्ररूप्यते विकम्प इति शनैः शनै संचरणरूपा गतिरिति । अत्र सूर्यस्य विकम्पक्षेत्रकाष्ठा, काष्ठेति विकम्पक्षेत्रस्य उत्कृष्ठं परिमाणमिति, सा च दशोत्तराणि पञ्च योजनशतानि (५१०) ।

तथाहि–यदि सूर्यस्य एकेनाहोरात्रेण विकम्पो द्वे योजने, एकस्य च योजनस्य अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः (२– $\frac{४८}{६१}$ लभ्यन्ते तदा त्र्यशीत्यधिकशता (१८३) होरात्रैः कति योजनानि लभ्यन्ते ? इति $\frac{२}{\frac{४८}{६१}}$ त्रैराशिकं गणितं क्रियते, तत्र राशित्रयं स्थाप्यते–१८३। अत्रान्त्यराशिना मध्यराशिर्गुण्यते ततो मध्यराशिगतयोजनद्वयस्य सवर्णनार्थम् (एकषष्टि भागकरणार्थम्) द्वे योजने एकषष्ट्या गुण्येते जातं द्वाविंशत्यधिकमेकं शतम् (१२२) जाता एते एकषष्टिभागाः, एषु ये अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागा स्थितास्ते प्रक्षिप्यन्ते जातं सप्तत्यधिकमेकं शतम् (१७०) संजात एष गुण्यराशिरन्त्येन त्र्यशीत्यधिकशत (१८३) संख्यकराशिना गुण्यते जातानि दशोत्तरशताधिकानि एकत्रिंशत्सहस्राणि (३१११०) । एते एकषष्टिभागाः सन्ति, एषां योजनानयनार्थमेकषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धानि दशोत्तराणि पञ्चशतयोजनानि (५१०) एतावती त्र्यशीत्यधिकशताहोरात्रैः सूर्यस्य विकम्पक्षेत्रकाष्ठा । एष दशोत्तर पञ्चशत योजनपरिमितः सूर्यस्य त्र्यशीत्यधिकशतमण्डलपरिभ्रमणमार्गः, नातोऽधिकमित्यतो विकम्पक्षेत्रकाष्ठेत्युच्यते । अथ चन्द्रस्य विकम्पक्षेत्रकाष्ठा प्रदर्श्यते चन्द्रस्य विकम्पक्षेत्रकाष्ठा नवाधिकपञ्चशतयोजनानि एकस्य च योजनस्य त्रिपञ्चाशदेकषष्टिभागाः (५०९ $\frac{५३}{६१}$) । ततो यदि चन्द्रमसो विकम्पः एकेनाहोरात्रेण षट् त्रिंशद्योजनानि, एकस्य च योजनस्य पञ्चविंशति रेकषष्टिभागाः एकस्य चैक षष्ठि भागस्य चत्वारः सप्तभागाः ३६ $\frac{५}{६१}\frac{४}{७}$ लभ्यन्ते तदा चतुर्दशभिरहोरात्रैः कतिभागा लभ्यन्ते ?

अत्रापि राशित्रयात्मकं गणितं भवति ततो राशित्रयस्थापना क्रियते सा चेत्थम् —१। $\frac{३६}{\frac{२५}{\frac{६१}{\frac{४}{७}}}}$ १४ ।

अत्र सवर्णनार्थं—प्रथमं मध्यराशिगत पट् त्रिंशद् योजनानामेकषष्टिभागकरणार्थं पट् त्रिंशद् योजनराशिरेकषष्ट्या गुण्यते जातानि षण्णवत्यधिकानि एकविंशतिशतानि (२१९६) एषु पञ्चविंशतिरेकषष्टिभागाः क्षिप्यन्ते जातानि (२२२१) एष राशिः सप्तभागकरणार्थं सप्तभिर्गुण्यते, जातानि पञ्चदशसहस्राणि पञ्चशतानि एकविंशत्याधिक द्वाविंशतिशतानि सप्तचत्वारिंशदधिकानि (१५५४७) एषु च चत्वारः सप्तभागाः प्रक्षिप्यन्ते, ततो जातानि पञ्चदशसहस्राणि एक पञ्चाशदधिकानि पञ्चशतानि (१५५५१) जाता एष सप्तभागराशिः ततश्च योजनानयनार्थमेकषष्टिलक्षणश्छेदराशिरपि सप्तभिर्गुण्यते, जातानि सप्तविंशत्यधिकानि चत्वारिंशतानि (४२७) एषश्छेदराशिः तत उपरि निष्पादित सप्तभाग राशिः (१५५५१) चतुर्दशरूपेणान्त्यराशिना गुण्यते, जातानि—द्वे लक्षे चतुर्दशाधिक सप्तशतोत्तराणि सप्तदशसहस्राणि च (२१७७१४) जात एषश्छेद्यराशिः अस्य छेदकराशिना सप्तविंशत्यधिक चतुःशत (४२७) रूपेण भागो हार्यः, ततो भागसरलार्थं छेद्यछेदकराश्योः सप्तभिरपवर्त्तना क्रियते द्वयोराश्योः सप्तभिर्भागो ह्रियते इत्यर्थः। ततः पूर्वं छेदराशेः (४२७) सप्तभिरपवर्त्तना करणाज्जाता एकषष्टि ६१। ततश्छेद्यराशे (२१७-७१४) सप्तभिरपवर्त्तना करणाज्जात एष राशिः द्व्यधिकशतोत्तराणि एकत्रिंशत्सहस्राणि (३११०२)। अस्याऽपवर्त्तनासंपन्नेन एकषष्टिरूपेण छेदराशिना भागो ह्रियते, लब्धानि नवोत्तराणि पञ्चशतयोजनानि, शेषा एकस्य च योजनस्य त्रिपञ्चाशदेकषष्टिभागाः (५०९ । $\frac{५३}{६१}$ प्राप्त एतावती चन्द्रमसो विकम्पक्षेत्रकाष्ठा । अथवाऽपवर्त्तनाया अकरणे एषा रीतिः'

तथाहि छेद्यराशेः (२१७७१४) छेदराशिना सप्तविंशत्यधिक चतुःशत (४२७) रूपेण भागो, हृते लभ्यन्ते नवोत्तराणि पञ्चशतानि (५०९), स्थितानि शेषाणि एक सप्तत्यधिकानि त्रीणि शतानि (३७१) एनं राशिमेकषष्टिभागानयनार्थमेकषष्ट्या गुणयित्वा पुनः सप्तविंशत्यधिकचतुःशत—(४२७) रूपेण छेदराशिना भागो हरणीयः तेन लब्धाः त्रिपञ्चाशद् एक षष्टिभागाः ततः समागतं पूर्वोक्तं योजनप्रमाणं ५०९ $\frac{५३}{६१}$) चन्द्रमसो विकम्पक्षेत्रकाष्ठाया इति ।

अथ द्वयोर्द्वयोः सूर्यमण्डलयो र्द्वयोश्च चन्द्रमण्डलयोः परस्परमन्तरं प्रदर्श्यते, तथाहि—एकस्य सूर्यमण्डलस्य द्वितीयस्य सूर्यमण्डलस्य च परस्परमन्तरं द्वे द्वे योजने भवतः। एवं एकस्य चन्द्रमण्डलस्य द्वीतीयस्य चद्रमण्डलस्य च परस्परमन्तरं पञ्चत्रिंशद् योजनानि, एकस्य च योजनस्य त्रिंशद् एकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य चत्वारः सप्तभागाः, एतत्परिमितं भवति उक्तञ्च जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तौ—

"सूरमंडलस्स णं भंते सूरमंडलस्स एस णं केवइए अवाहाए अंतरे पण्णत्ते ! गोयमा ,दो जोयणाइं सूरमंडलस्स अवाहाए अंतरे पण्णत्ते" तथा—चंदमंडलस्स

णं भंते ! चंदमंडलस्स एस णं केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ! गोयमा ! पणतीसंजोयणाइं तीसं च एगट्ठिभागा जोयणस्स, एगंच एगसट्ठिभागं सत्तहा छिता चत्तारि य चुण्णिया भागा ऐसा चंदमंडलस्स अबाहाए अंतरे पण्णत्ते"

छाया—सूरमण्डलस्य खलु भदन्त ! सूरमण्डलस्य एतत् खलु कियत्कम् अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् ! गौतम ! द्वे योजने सूरमण्डलस्य सूरमण्डलस्य अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् । तथा–चन्द्रमण्डलस्य खलु भदन्त ! चन्द्रमण्डलस्य एतत् खलु कियत्कं अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् गौतम ! पञ्चत्रिंशत् योजनानि, त्रिंशच्च एकषष्टिभागा योजनस्य, एकं च एकषष्टिभागं सप्तधा छित्वा चत्वारश्च चूर्णिका भागा शेषाः ३५–$\frac{३०}{६१}\Big|\frac{४}{७}$–चू) तदेतत् चन्द्रमण्डलस्य अबाधया अंतरं प्रज्ञप्तम् ॥

एतत् सूर्यमण्डलस्य चन्द्रमण्डलस्य चान्तरं प्रोक्तं तत् स्वस्वमण्डलविष्कम्भपरिमाणेन युक्ते कृते सूर्यस्य–चन्द्रस्य च विष्कम्पपरिमाणमायाति । उक्तञ्च–

सूरविकंपो एक्को, समंडलाहोइ मंडलंतरिया ।
चंदविकंपो य तहा, समंडला मंडलंतरिया ॥२॥

अस्याः काचिदक्षरगमनिका क्रियते–'सूरविकंपो' इत्यादि, मंडलंतरिया मण्डलान्तरिका मण्डलस्य मण्डलस्य च अन्तरं 'समंडला' समण्डला मण्डलेन सहिता, अत्र मण्डलशब्देन मण्डलविष्कम्भो गृह्यते, तेन समण्डलिका मण्डलविष्कम्भसहिता, पूर्वोक्तमन्तरं सूर्यमण्डलविष्कम्भयुक्तं भवति तदेव 'एक्को सूरविकंपो एक सूर्यविकम्पो भवति सूर्यस्य विकम्पक्षेत्रपरिमाणं भवतीति भावः। 'तहा य' तथैव सूर्य विकम्पवदेव मण्डलान्तरं मण्डलविष्कम्भयुक्तं कुर्यात् तत् चन्द्रविकम्पक्षेत्रं भवतीति। तथाहि–एकं सूर्यमण्डलस्यान्तरं द्वे योजने, इति पूर्वं प्रदर्शितम्। सूर्यमण्डलविष्कम्भश्च–अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः ($\frac{४८}{६१}$) । ततो द्वयोर्मेलने जातमेकस्य सूर्यमण्डस्य विकम्पपरिमाणम् द्वे योजने, एकस्य च योजनस्य अष्टचत्वारिंशद् एकषष्टिभागाः–२–$\frac{४८}{६१}$) एतत् सूर्यमण्डलस्य विकम्पपरिमाणम् । एवं चन्द्रमण्डलान्तरं पञ्चत्रिंशत् योजनानि, एकस्य च योजनस्य त्रिंशद् एक षष्टिभागाः, एकस्य चैकषष्टिभागस्य च चत्वारः सप्तभागाः ये चूर्णिकाभागाः कथ्यन्ते (३५$\frac{३०}{६१}\Big|\frac{४}{७}$) । एतस्मिन् चन्द्रमण्डलान्तरे चन्द्रमण्डलविष्कम्भपरिमाणेन

सहिते कृते एकश्चन्द्रविकम्पो भवतीति। अथ विकम्पक्षेत्रज्ञानार्थमुक्तञ्च—

सगमंडलेहिं लद्धं सगकट्ठाओ हवंति सविकंपा।
जे सगविक्खंभजुया, हवंति सगमंडलंतरिया ॥१॥"

संक्षेपतो व्याख्या—'जे' ये चन्द्रस्य सूर्यस्य वा विकम्पाः, कीदृशास्ते ? **'सगविक्खंभजुया'** स्वकविष्कम्भयुताः **'सगमंडलंतरिया'** स्वकमण्डलान्तरिकाः, स्व स्व मण्डलविष्कम्पपरिमाणसहितानि स्व स्व मण्डलान्तराणि भवन्ति तानि तत्प्रमाणाः **'सगकट्ठाओ'** स्वककाष्ठायाः—स्व स्व विकम्पयोग्यक्षेत्रपरिमाणस्य **'सगमंडलेहिं'** स्वकमण्डलैः स्व स्व मण्डलसंख्यया भागो हृते 'लद्ध' यत् लब्धं या संख्या लभ्यते तत्प्रमाणाः **'सविकंपा'** स्व स्व विकम्पाः स्व स्व विकम्पक्षेत्रपरिमाणानि **'हवंति'** भवन्ति ॥१॥ तदेव दर्श्यते—सूर्यस्य विकम्पक्षेत्रकाष्ठा दशोत्तरपञ्चशतयोजनानि (५१०) एषा मेकषष्टिभागाः करणीया अत एष राशि रेकषष्ट्या गुण्यते जातानि दशोत्तरशताधिकानि एकत्रिंशत्सहस्राणि (३१११०) एष भाज्यराशिर्जातः अथ भाजकराशिः क्रियते विकम्पक्षेत्रे सूर्यमण्डलानि च त्र्यशीत्यधिकमेकं शतं (१८३)। एतदप्येकषष्ट्या गुण्यते जातानि त्रिषष्ट्यधिकशतोत्तराणि एकादश सहस्राणि (१११६३), एष भाजकराशिर्जातस्ततोऽनेन भाजकराशिना पूर्वस्य भाज्यराशेः (३१११०) भागो ह्रियते लब्धे द्वे योजने (२), स्थितानि शेषाणि चतुरशीत्यधिकानि सप्ताशीतिशतानि (८७८४) अस्य न्यूनत्वाद्भागो न ह्रियतेऽत एक षष्टिभागा आनेतव्या अत एकषष्ट्या गुणनात् पूर्वं यो भाजकराशिः त्र्यशीत्यधिकशत १८३ रूपस्तेन भागो हरणीयः हृते च भागो लब्धा अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः ४८ परिपूर्णाः ततो द्वे योजने, एकस्य च योजनस्य अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागा ($२\frac{४८}{६१}$)एतद्—एकैकस्य सूर्यस्य एकैकाहोरात्रमाश्रित्य विकम्पक्षेत्रमापातमिति। तदेवमुक्तमेकैकसूर्यस्य एकैकाहोरात्रमाश्रित्य विकम्पक्षेत्रम्।

अथ चन्द्रस्य तदेव विकम्पक्षेत्रं प्रदर्श्यते—तत्र चन्द्रस्य विकम्पक्षेत्रकाष्ठा नवोत्तरपञ्चशतयोजनानि, त्रिपञ्चाशदेकषष्टिभागाः ($५०९\frac{५३}{६१}$)। एतत् पूर्वं प्रदर्शिमेव। अथ एकषष्टिभागानयनार्थं पूर्वं योजनानि नवोत्तर पञ्चशतानि (५०९) एकषष्ट्या गुण्यन्ते जातानि एकोनपञ्चाशदधिकानि एकत्रिंशत्सहस्रयोजनानि (३१०४९) तत एषु ये उपरितनाः त्रिपञ्चाशदेकषष्टिभागाः सन्ति ते प्रक्षिप्यन्ते जातानि द्व्युत्तरशताधिकानि एकत्रिंशत्सहस्रयोजनानि (३११०२), चन्द्रस्य विकम्पक्षेत्रे चतुर्दश मण्डलानि १४ सन्ति तत एकषष्टिगुणित विकम्पक्षेत्रकाष्ठाराशेर्भागहरणार्थं मण्डलान्यपि एकषष्ट्या गुण्यन्ते ततश्चतुर्दश एकषष्ट्या गुण्यन्ते जातानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि अष्टशतानि (८५४) अनेन पूर्वराशे (३११०२) र्भागो ह्रियते लब्धानि षट् त्रिंशद् योजनानि (३६), तिष्ठन्ति शेषाणि अष्टपञ्चाशदधिकानि त्रीणि शतानि (३५८) तत एकषष्ट्या गुणनात् पूर्वं यो मण्डलसंख्यारूपो

भाजकराशि श्चतुर्दशरूपः १४, तेन शेषाङ्कानां (३५८) भागो हृिएते लब्धा पञ्चविंशतिरेकषष्टि-भागाः (२५) पुनः शेषास्तिष्ठन्ति अष्टौ, एते सप्तभागकरणार्थं सप्तभि र्गुण्यन्ते जाताः षट् पञ्चाशत् (५६), एषां चतुर्दशभि र्भागे हृते लब्धाश्चत्वारः सप्त भागाः ४ परिपूर्णाः (३६ $\frac{२५}{६१}$ | $\frac{४}{७}$ । एतावत्प्रमाण एकैकस्य चन्द्रस्यैकैकाहोरात्रमाश्रित्य विकम्प इति ।

तदेवं चन्द्रसूर्ययो विकम्पक्षेत्रकाष्ठा प्रदर्शिता, तथा चन्द्रमण्डलानां सूर्यमण्डलानां च पर-स्परमन्तरमपि चोक्तम् ॥ अथ पूर्वं यदुक्तम् कियन्ति चन्द्रमण्डलस्यापान्तराले सूर्यमण्डलानि ?' इति तद्विषयकप्रस्तुतप्रकरणं प्रस्तूयते—तत्र सर्वाभ्यन्तरे चन्द्रमण्डले सर्वाभ्यन्तरं सूर्यमण्डलं सर्वात्मना प्रविष्टं भवति तत्र—चन्द्रमण्डलस्य केवलमष्टावेव एक षष्टिभागाः बहिरवशिष्टास्ति-ष्ठन्ति, चन्द्रमण्डलात् सूर्यमण्डलस्य अष्टैकषष्टिभागैर्हीनत्वात्, ततो द्वितीयस्माच्चन्द्रमण्डलाद् अर्वाग् अपान्तराले द्वादशसूर्यमार्गा भवन्ति । कथमेतदिति गणितेन प्रदर्श्यते तथाहि—द्वयोश्चन्द्र-मण्डलयोरन्तरं पञ्चत्रिंशद् योजनानि एकस्यच योजनस्य त्रिंशच्चैकषष्टिभागाः, एकस्य चैक-षष्टिभागस्य सबन्धिनश्चत्वारः सप्तभागाः (३५ $\frac{३०}{६१}$ | $\frac{४}{७}$)इति पूर्वं प्रदर्शितमेव तत्र पूर्वं योजनानि एकषष्टिभागकरणार्थं पञ्चत्रिंशदेकषष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि पञ्चत्रिंशदधिकानि एकविंशतिशतानि (२१३५), एते एकषष्टिभागा जाताः एषु त्रिंशदेकषष्टिभागा उपरितनाः प्रक्षिप्यन्ते जातानि पञ्चषष्ट्यधिकानि एकविंशतिशतानि (२१६५) स्थिता उपरितना एकस्यैकषष्टिभागस्य चत्वारः सप्तभागाः ($\frac{४}{७}$) ते तिष्ठन्तु । अथ सूर्यस्य विकम्पो द्वे योजने एकस्य च योजनस्य अष्टचत्वा-रिंशदेकषष्टिभागाः (२ $\frac{४८}{६१}$) तत पूर्वं योजनद्वयमेकषष्ट्या गुण्यते जातं द्वाविंशत्यधिकमेकं शतम् (१२२), तत एषूपरितना योजनस्याष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः प्रक्षिप्यन्ते जातं सप्तत्यधिकमेकं-शतम् (१७०), अनेन पञ्चषष्ट्यधिकैकविंशतिशतानां (२१६५) भागो ह्रियते लब्धा द्वादश, एते द्वितीयचन्द्रमण्डलादर्वागपान्तराले सूर्यमार्गा भवन्ति, अथ च शेषं यत् पञ्चविंशत्यधिकमेकं शतं तिष्ठति (१२५) तत एक षष्टिद्विगुणितेन द्वाविंशत्यधिकशतेन भागे हृते द्वे योजने लब्धे, एते द्वे योजने द्वादशस्य सूर्यमार्गस्योपरि द्वे योजने (२) शेषास्तिष्ठन्ति त्रयः एकषष्टिभागाः ($\frac{३}{६१}$) एषु ये प्रथमे चन्द्रमण्डले सर्वात्मना सूर्यमण्डले प्रविष्टे सति ये शेषाः सूर्यमण्डलादधिका अष्टावेकषष्टिभागास्ते प्रक्षिप्यन्ते, जाता एकादश एकषष्टि भागाः ($\frac{११}{६१}$), तत आगतम्—द्वाद

ग्गात्सूर्यमार्गात् परतो द्वितीयस्माच्चन्द्रमण्डलादर्वाक् द्वे योजने, एकस्य च योजनस्य एकादशएकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सम्बन्धिनश्चत्वारः सप्तभागाः ($२-\frac{११}{६१}|\frac{४}{७}$, तत्र योजनद्वयानन्तरं सूर्यमण्डलमस्ति अतो द्वितीयाच्चन्द्रमण्डलदर्वाक् एकादश एकषष्टिभागान् एकस्यच एकषष्टिभागस्य सम्बन्धिनश्चतुरः सप्तभागान् यावत् सूर्यमण्डलमभ्यन्तरं प्रविष्टम् । ततः परं षट्त्रिंशदेकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सम्बन्धिनस्त्रयः सप्तभागाः($\frac{३६}{६१}|\frac{३}{७}$) एतावत्परिमितं सूर्यमण्डलं चन्द्रमण्डलसंमिश्रं वर्त्तते । ततः सूर्यमण्डलात् परत एकोनविंशतिमेकषष्टिभागान् एकस्य च एकषष्टिभागस्य चतुरः सप्तभागान् ($\frac{१९}{६१}|\frac{४}{७}$) यावत् चन्द्रमण्डलं वहिर्विनिर्गतं भवति । तत परं पुनस्तृतीयाच्चन्द्रमण्डलादर्वाक् पूर्वोक्तपरिमाणमन्तरम् तथाहि—पञ्चत्रिंशद् योजनानि एकस्य च योजनस्य त्रिंशद् एकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टि भागस्य सत्काश्चत्वारः सप्तभागाः($३५-\frac{३०}{६१}|\frac{४}{७}$) एतत्परिमिते चान्तरे द्वादश सूर्यमार्गाः लभ्यन्ते उपरि च द्वे योजने, एकस्य च योजनस्य त्रयएकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सम्बन्धिनश्चत्वारः सप्तभागाः($२-\frac{३}{६१}|\frac{४}{७}$) सन्ति, अस्मिन् राशौ ये प्रागुक्ता द्वितीयचन्द्रमण्डलस्य सम्बन्धिनः सूर्यमण्डलाद् वहिर्विनिर्गता एकस्य योजनस्य एकोनविंशतिरेकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य चत्वार सप्तभागाः, ($\frac{१९}{६१}|\frac{४}{७}$) ते प्रक्षिप्यन्ते (३—४ जाता, इमे) त्रयोविंशतिरेकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सम्बन्धी एकः सप्तभागः($\frac{२३}{६१}|\frac{१}{७}$) तत इदं निष्पन्नम् द्वितीयाच्चन्द्रमण्डलात्परतो द्वादश सूर्यमार्गाः, अन्तिमाद् द्वादशात् सूर्यमार्गाच्च परतो योजन द्वयमतिक्रम्य सूर्यमण्डलं भवति, तच्च सूर्यमण्डलं तृतीयाच्चन्द्रमण्डलादर्वाक्त्रयोविंशतिमेकषष्टि भागान्, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सम्बन्धिनः एकं सप्तभागं($\frac{२३}{६१}|\frac{१}{७}$) यावत् अभ्यन्तरं प्रविष्टम् । ततो ये शेषाः सूर्यमण्डलस्य चतुर्विंशतिरेकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य षट्

सप्तभागाः आसन् ते तृतीयचन्द्रमण्डलसम्मिश्रास्तिष्ठन्ति । ततस्तृतीयं चन्द्रमण्डलम् एकस्य योजनस्य एकत्रिंशतमैकषष्टिभागान्, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कमेकं सप्तभागं यावत् सूर्यमण्डलाद् बहिर्विनिर्गतम् । ततः पुनरप्यायातं ययोक्तं चन्द्रमण्डलान्तरम् (३५–$\frac{३०}{६१}$|$\frac{४}{७}$) एतावदन्तरे च द्वादश सूर्यमार्गा लभ्यन्ते। अन्तिमस्य द्वादशस्य सूर्यमार्गस्योपरि द्वे योजनने एकस्य च योजनस्य त्रय एकषष्टि भागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सम्बन्धिनश्चत्वारः सप्तभागाः (२–$\frac{३}{६१}$|$\frac{४}{७}$) ततोऽस्मिम् राशौ ये तृतीयमण्डलसम्बन्धिनः सूर्यमण्डलाद्बहिर्विनिर्गता एकस्य योजनस्य एकत्रिंशद् एकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्क एकः सप्तभागः ($\frac{३१}{६१}$|$\frac{१}{७}$) ते प्रक्षिप्यन्ते, ततो जाता एकस्य योजनस्य चतुस्त्रिंशदेकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्काः पञ्च सप्तभागाः($\frac{३४}{६१}$|$\frac{५}{७}$) तत इदमायातं वस्तुतत्त्वम्–तृतीयस्माच्चन्द्रमण्डलात्परतो द्वादश सूर्यमार्गाः, द्वादशाच्च सूर्यमार्गात् परतो योजनद्वयेऽतिक्रान्ते सूर्यमण्डलं वर्त्तते, तच्च सूर्यमण्डलं चतुर्थाच्चन्द्रमण्डलादर्वाक् चतुस्त्रिंशतमेकषष्टिभागान्, एकस्य च एकषष्टि भागस्य सत्कान् पञ्चसप्तभागान् ($\frac{३४}{६१}$|$\frac{५}{७}$) यावत् अभ्यन्तरं प्रविष्टम् ततः शेषाः स्थिताः सूर्यमण्डलस्य त्रयोदश एकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सम्बन्धिनौ द्वौ सप्तभागौ ($\frac{१३}{६१}$|$\frac{२}{७}$) इति, एतावच्चतुर्थचन्द्रमण्डलसम्मिश्रं जातम् ततश्चतुर्थस्य चन्द्रमण्डलस्य द्विचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्काः पञ्च सप्तभागा ($\frac{४३}{६१}$|$\frac{५}{७}$) सूर्यमण्डला द्बहिर्विनिर्गता भवन्ति ततः भूयोऽप्यायातं यथोक्तं–(३५–$\frac{३०}{६१}$|$\frac{४}{७}$ चन्द्रमण्डलान्तरपरिमाणम् । एतस्मिन्नन्तरे द्वादश सूर्यमार्गा लभ्यन्ते इति । अन्तिमस्य द्वादशस्य च सूर्यमार्गस्योपरि द्वे योजने, एकस्य च योजनस्य त्रय एकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सम्बन्धिनः पञ्च सप्तभागाः (२–$\frac{३}{६१}$|$\frac{४}{७}$) । एषु च य आद्य चतुर्थ चन्द्रमण्डलस्य सूर्यमण्डलाद् बहिर्वि-

निर्गता योजनस्य द्वाचत्वारिंशदेकषष्टिभागाः, ऐकस्य च एकषष्टिभागस्य सम्बन्धिनः पञ्चसप्त भागाः–($\frac{४२}{६१}\Big|\frac{५}{७}$) ते प्रक्षिप्यन्ते ततो जाता योजन द्वयोपरि षट् चत्वारिंशदेकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कौ द्वौ सप्तभागौ (२–$\frac{४६}{६१}\Big|\frac{२}{७}$) इति, ततो वस्तुत एवं ज्ञातव्यम्– चतुर्थाच्चन्द्रमण्डलात् परतो द्वादश सूर्यमार्गाः सन्ति, तेषु द्वादशा त्सूर्यमार्गात् परतो द्वे योजने अतिक्रम्य सूर्यमण्डलं वर्त्तते, तच्च सूर्यमण्डलं पञ्चमाच्चन्द्रमण्डलादर्वाक् षट् चत्वारिंशतमेकष्टि-भागान्, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कौ द्वौ सप्तभागौ ($\frac{४६}{६१}\Big|\frac{२}{७}$)यावत् अभ्यन्तरं प्रविष्टम् । शेषं सूर्यमण्डलस्य एकषष्टिभागः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य पञ्च सप्तभागाः($\frac{१}{६१}\Big|\frac{५}{७}$) इत्येत-त्प्रमाण पञ्चमचन्द्रमण्डलसम्मिश्रं वर्त्तते । तस्य पञ्चमस्य चन्द्रमण्डलस्य चतुष्पञ्चाशदेकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य द्वौ सप्तभागौ($\frac{५४}{६१}\Big|\frac{२}{७}$) इति सूर्य मण्डलाद्बहि विनिर्गतं वर्त्तते, तदेवं पञ्च सर्वाभ्यन्तराणि चन्द्रमण्डलानि सूर्यमण्डलसम्मिश्राणि भवन्ति । एवं चतुर्षु च चन्द्रमण्डलान्तरेषु प्रत्येकं द्वादश द्वादश सूर्यमार्गा भवन्तीति सिद्धम् । तदेवं पूर्वं "दस चेव मंडलाइं" इति गाथाया-मभ्यन्तराणि बाह्यानि च पञ्च पञ्चेति दशमण्डलानि रविशशिनोः सामान्यानि सन्तीति कथितम्, तेषु यानि पञ्च सर्वाभ्यन्तराणि मण्डलानि सूर्यमण्डलसंमिश्राणि भवन्ति तानि प्रदर्शितानि,

अथ तत्रैव गाथायां "पत्तेया होंति सेसाणि" इत्युक्तं, तत्र शेषाणि षष्ठादारभ्य दशम-पर्यन्तानि पञ्च मण्डलानि प्रत्येकानीति चन्द्रस्यैव गम्यानि न तु कदाचिदपि सूर्यस्य इति सूर्यमण्डला संस्पृष्टानि सन्तीति तान्यत्र प्रदर्श्यन्ते—

पञ्चमाच्चन्द्रमण्डलात् परतो भूयः षष्ठं चन्द्रमण्डलमधिकृत्यान्तरं पञ्चत्रिंशद् योजनानि, एकस्य च योजनस्य त्रिंशदेकषष्टिभागाः एकस्य च एकषष्टिभागस्य सम्बन्धिन श्चत्वारः सप्त-भागाः (३५$\frac{३०}{६१}\Big|\frac{४}{७}$) भवन्ति । तत्र च प्रथम मेकषष्टिभागकरणार्थं पञ्चत्रिंशत् एकषष्ट्या गुण्यन्ते जातानि पञ्चत्रिंशदधिकानि एकविंशतिशतानि (२१३५) । एषूपरितना ये त्रिंशदेकषष्टि भागास्ते प्रक्षिप्यन्ते जातानि पञ्चषष्ट्यधिकानि एकविंशतिशतानि (२१६५) । ततश्चैतेषु ये पञ्च-मस्य चन्द्रमण्डलस्य सूर्यमण्डलाद्बहि निर्गताश्चतुष्पञ्चाशदेकषष्टिभागा एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कौ द्वौ सप्तभागौ ($\frac{५४}{६१}\Big|\frac{२}{७}$) इति ये साम्प्रतमेव पूर्वप्रदर्शितास्ते एकषष्टिभागाः (५४)

प्रक्षिप्यन्ते जातानि एकोनविंशत्यधिकानि द्वाविंशतिशतानि (२२१९)। अथ सूर्यस्य विकम्पः—द्वे योजने, अष्ट चत्वारिंशच्चैकषष्टिभागाः ($२\frac{४८}{६१}$) तत्रैक षष्टिभागानयनार्थं द्वे योजने एकषष्ट्या गुण्येते जाता एकषष्टिभागा द्वाविंशत्यधिकमेकं शतम् (१२२), तत एषु ये उपरितना अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागास्ते प्रक्षिप्यन्ते जातं सप्तत्यधिकमेक शतम् (१७०)। अनेन एकोनविंशत्यधिकं द्वाविंशतिशत(२२१९) रूपस्य पूर्वराशेर्भागो ह्रियते, लब्धास्त्रयोदश (१३) शेषास्तिष्ठन्ति नव ९, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्काः षट सप्तभागाः($१३\frac{९}{६१}|\frac{६}{७}$) तत इदमायातम्—पञ्चमाच्चन्द्रमण्डलात्परतस्त्रयोदश सूर्यमार्गाः एषु त्रयोदशस्य च सूर्यमार्गस्योपरिषष्ठाच्चन्द्रमण्डलादर्वाक् अन्तरं योजनस्य नव एक षष्टिभागाः एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्काः षट् सप्तभागा, ($\frac{९}{६१}|\frac{६}{७}$) भवन्ति, तत परत षष्ठ षट् पञ्चाशदेकषष्टिभागात्मकं चन्द्रमण्लमायाति। ततः परं सूर्यमण्डलादर्वाक् अन्तरं पञ्चपञ्चाशदेकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य एकः सप्तभागः ($\frac{५६}{६१}|\frac{१}{७}$) अस्ति, तदनन्तरं सूर्यमण्डलं वर्त्तते, तस्माच्च परतः चतुरुत्तरमेकं शतमेकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सम्बन्धी एकः सप्तभागः ($\frac{१०४}{६१}|\frac{१}{७}$) एतत्संख्यया हीनं यथोक्तपरिमाणकं चन्द्रमण्डलान्तरं लभ्यते इति। तस्मात्सूर्य मण्डलात्परतोऽन्ये द्वादश सूर्यमार्गा लभ्यन्ते ततः सर्वं संमेलनेन तस्मिन्नप्यन्तरे त्रयोदश सूर्यमार्गाः सन्ति। तस्य च त्रयोदशस्यान्तिमस्य सूर्यमार्गस्योपरि सप्तमाच्चन्द्रमण्डलादर्वाक् अन्तरम् एकविंशतिरेकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य त्रयः सप्तभागाः ($\frac{२१}{६१}|\frac{३}{७}$) भवन्ति, ततः परमग्रे सप्तमं चन्द्रमण्डलमस्ति। तस्माच्च सप्तमाच्चन्द्रमण्डलात्परतश्चतुश्चत्वारिंशता एकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कैश्चतुर्भिःसप्तभागैः ($\frac{४४}{६१}|\frac{४}{७}$) सूर्यमण्डलं, ततो द्विनवतिसंख्यैरेकषष्टिभागैः, एकस्य एकषष्टिभागस्य च सत्कैश्चतुर्भिः सप्तभागैः ($\frac{९२}{६१}|\frac{४}{७}$) न्यूनं यथोक्तप्रमाणं चन्द्रमण्डलान्तरं ततः परमस्तीत्यन्येऽपि द्वादशसूर्यमार्गा लभ्यन्ते। ततस्तस्मिन्नप्यन्तरे सर्वसंकलनया त्रयोदश सूर्यमार्गाः त्रयोदशस्य सूर्यमार्गस्य बहिरष्टमाच्चन्द्रमण्डलादर्वाक् अन्तरं त्रयस्त्रिंशदेकषष्टिभागाः ($\frac{३३}{६१}$), ततोऽष्टमं चन्द्रमण्डलं वर्त्तते।

तस्माच्चाष्टमाच्चन्द्रमण्डलात्परतस्त्रयस्त्रिंशता एकषष्टिभागैः($\frac{३३}{६१}$) सूर्यमण्डलं वर्त्तते, तत एकाशीतिसंख्यैरेकषष्टिभागैरूनं यथोक्तप्रमाणं चन्द्रमण्डलान्तरं पुरतो विद्यते इति ततः पुरतोऽन्येऽपि द्वादशसूर्यमार्गाः सन्ति, ततस्तस्मिन्नप्यन्तरे सर्वसङ्कलनया त्रयोदश सूर्यमार्गाः, त्रयोदशाच्च सूर्यमार्गात् पुरतो नवमाच्चन्द्रमण्डलादर्वाक् अन्तरं चतुश्चत्वारिंशदेकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सम्बन्धिनश्चत्वारः सप्तभागाः ($\frac{४४}{६१}|\frac{४}{७}$) । ततः परं नवमं चन्द्रमण्डलम् । तस्माच्च नवमाच्चन्द्रमण्डलात्परत एकविंशत्या एकषष्टिभागैः एकस्य च एकषष्टिभागस्य त्रिभिः सप्तभागैः($\frac{२१}{६१}|\frac{३}{७}$) सूर्यमण्डलम्, तत एकोन सप्ततिसंख्यैरेकषष्टिभागै., एकस्य च एकषष्टिभागस्य त्रिभिःसप्त भागैः ($\frac{६९}{६१}|\frac{३}{७}$) हीनं यथोदितप्रमाणं चन्द्रमण्डलान्तरम् । तत्र चान्ये द्वादशसूर्यमार्गाः । एवमस्मिन्नप्यन्तरे सर्वसङ्कलनया त्रयोदश सूर्यमार्गाः । तस्य चान्तिमस्य त्रयोदशस्य सूर्यमार्गस्योपरि, दशमाच्चन्द्रमण्डलादर्वाक् अन्तरं षट्पञ्चाशदेकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य एकः सप्तभागः ($\frac{५६}{६१}|\frac{१}{७}$) ततो-दशमं चन्द्रमण्डलम् । तस्माच्च दशमाच्चन्द्रमण्डलात्परतो नवभिरेकषष्टिभागैः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कैः षड्भिः सप्तभागैः ($\frac{९}{६१}|\frac{६}{७}$) सूर्यमण्डलम्, ततः सप्तपञ्चाशता एकषष्टिभागैः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कैः षड्भिः सप्तभागैः ($\frac{५७}{६१}|\frac{६}{७}$) न्यूनं पूर्वोक्तप्रमाणं चन्द्रमण्डलान्तरम् । ततः पुनरपि द्वादश सूर्यमार्गा लभ्यन्ते इति तस्मिन्नप्यन्तरे सर्वसंकलनया त्रयोदश सूर्यमार्गाः सन्ति । तत्रान्तिमस्त्रयोदशः सूर्यमार्गस्तस्य त्रयोदशस्य सूर्यमार्गस्योपरि-एकादशाच्चन्द्रमण्डलादर्वाक् अन्तरं सप्तषष्टिरेकषष्टिभागा', एकस्य च एकषष्टिभागस्य सम्बन्धिनः पञ्च सप्तभागा ($\frac{६७}{०६१}|\frac{५}{७}$) ।

इत्येवं षष्ठादारभ्य दशमपर्यन्तानि पञ्च चन्द्रमण्डलानि सूर्यासंस्पृष्टानि प्रदर्शितानि । एतत्प्रदर्शने षट्सु च चन्द्रमण्डलान्तरेषु त्रयोदश सूर्यमार्गा भवन्तीत्यपि जातम् । अथैतदनन्तर-मेकादशादिपञ्चदशान्तानि पञ्च चन्द्रमण्डलानि पुनरपि सूर्यसंस्पृष्टानि भवन्तीति प्रदर्श्यते—

एकादशे चन्द्रमण्डले चतुष्पञ्चाशदेकषष्टिभागाः एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कौ द्वौ सप्तभागौ ($\frac{५४}{६१}|\frac{२}{७}$) इत्येतावत् सूर्यमण्डलादभ्यन्तरं प्रविष्टम्, एक एकषष्टिभागः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य पञ्चसप्तभागा ($\frac{१}{६१}|\frac{५}{७}$) एतावन्मात्रं सूर्यमण्डलसम्मिश्रम् एकादशाच्चन्द्रमण्डलाद्बहिर्विनिर्गतं सूर्यमण्डलम्, षट्चत्वारिंशदेकषष्टिभागाः, एकस्य च एक षष्टिभागस्य सत्कौ द्वौ सप्तभागौ ($\frac{४६}{६१}|\frac{२}{७}$) तत् एतावता हीनं परतश्चन्द्रमण्डलान्तरमस्तीति द्वादश सूर्यमार्गा लभ्यन्ते । ततः परमेकोनाशीत्या एकषष्टिभागैः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्काभ्यां द्वाभ्यां सप्तभागाभ्यां ($\frac{७९}{६१}|\frac{२}{७}$) द्वादशं चन्द्रमण्डलं लभ्यन्ते । तच्च द्वादशं चन्द्रमण्डलं द्विचत्वारिंशतमेकषष्टिभागान्, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कान् पञ्चसप्तभागान् ($\frac{४२}{६१}|\frac{५}{७}$) यावत् सूर्यमण्डलादभ्यन्तर प्रविष्टम् । शेषं च योजनस्य त्रयोदश एकषष्टिभागाः एकस्य च एकषष्टि भागस्य सत्कौ द्वौ सप्तभागौ ($\frac{१३}{६१}|\frac{२}{७}$) । एतवन्मात्रं चन्द्रमण्डलं सूर्यमण्डलसम्मिश्रं वर्त्तते । तस्माच्च द्वादशाचन्द्रमण्डलात् सूर्यमण्डलं योजनस्य चतुस्त्रिंशतमेकषष्टिभागान्, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कान् पञ्चसप्तभागान् ($\frac{३४}{६१}|\frac{५}{७}$) यावत् एतत्परिमितमित्यर्थः वहिर्विनिर्गतं भवति, तत एतावन्मात्रेण न्यूनं परतश्चन्द्रमण्डलान्तरं वर्त्तते, तत्र च द्वादशसूर्यमार्गा लभ्यन्ते तत्र द्वादशाच्च सूर्यमार्गात् परतो नवतिसंख्यकै रेकषष्टिभागैः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कैः षड्भिः सप्तभागैः ($\frac{९०}{६१}|\frac{६}{७}$) एतावत्परिमितक्षेत्रमुल्लङ्घये त्यर्थः त्रयोदशं चन्द्रमण्डलं वर्त्तते । तच्च त्रयोदशं चन्द्रमण्डलम् एकत्रिंशतमेकषष्टिभागान्, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कमेकं सप्तभागम्—एक सप्तभागसहितैकत्रिंशदेकषष्टिभागपरिमितं ($\frac{३१}{६१}/\frac{१}{७}$)सूर्यमण्डलादभ्यन्तरं प्रविष्टं विद्यते । स्थितास्तस्य शेषाश्चतुर्विंशतिरेकषष्टि भागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सम्बन्धिनः षट् सप्तभागाः ($\frac{२४}{६१}|\frac{६}{७}$) एतावन्मात्रं चन्द्रमण्डलं सूर्यमण्डलसम्मिश्रं भवति । तस्माच्च त्रयोदशाच्चन्द्रमण्डलात् त्रयोविंशतिमेकषष्टि

भागान्, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कमेकसप्तभागं ($\frac{२३}{६१}\Big|\frac{१}{७}$) यावत् सूर्यमण्डलं वहिर्विनिर्गतं वर्त्तते, तत एतावता परिहीणं परतश्चन्द्रमण्डलान्तरं भवति । तत्र द्वादशसूर्यमार्गा लभ्यन्ते । सर्वान्तिमादथवा द्वादशाच्च सूर्यमार्गात् परतो द्व्युत्तरशतैकषष्टिभागैः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कैस्त्रिभिः सप्त भागैः ($\frac{१०२}{६१}\Big|\frac{३}{७}$) एतावत्क्षेत्रातिक्रमणानन्तरमित्यर्थः चतुर्दशं चन्द्रमण्डलं लभ्यते, तच्च चतुर्दशं चन्द्रमण्डलं सूर्यमण्डलात् एकोनविंशतिमेकषष्टिभागान्, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कान् चतुरः सप्तभागान् ($\frac{१९}{६१}\Big|\frac{४}{७}$) यावत् अभ्यन्तरं प्रविष्टं विद्यते । तिष्ठन्ति शेषाः षट्त्रिंशदेकषष्टिभागाः, एकस्य च एकषष्टिभागस्य सत्कास्त्रयः सप्तभागाः ($\frac{३६}{६१}\Big|\frac{३}{७}$) इत्येतावत्परिमितं चन्द्रमण्डलं सूर्यमण्डलसम्मिश्रं भवति । तस्माच्चतुर्दशाच्चन्द्रमण्डलात्—एकादश एकषष्टिभागान्, एकस्य च एकषष्टिभागस्य चतुरः सप्तभागान् ($\frac{११}{६१}\Big|\frac{४}{७}$) यावत् एतत्परिमितमित्यर्थः सूर्यमण्डलं वहिर्विनिर्गतं वर्त्तते तत एतावता परिमाणेन न्यूनं यथोक्त परिमाण चन्द्रमण्डलान्तरमायाति तत्र च द्वादश सूर्यमार्गा लभ्यन्ते । पुनश्च द्वादशात्सूर्यमार्गात् परतश्चतुर्दशोत्तरशतसंख्यकैरेकषष्टिभागैः पञ्चदशं चन्द्रमण्डलं लभ्यते । तच्च पञ्चदशं चन्द्रमण्डलं सर्वान्तिमात् सूर्यमण्डलादर्वाक्—अष्टैकषष्टिभागान् ($\frac{८}{६१}$) यावत् अभ्यन्तरं प्रविष्टं वर्त्तते । तिष्ठन्ति ये शेषा अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागास्ते सूर्यमण्डलसम्मिश्रा भवन्तीति । एतानि—एकादशादीनि-पञ्चदशपर्यन्तानि पञ्चचन्द्रमण्डलानि सूर्यमण्डलसम्मिश्राणि भवन्ति । एषु च चरमेषु चतुर्थचन्द्रमण्डलान्तरेषु द्वादश द्वादश सूर्यमार्गा भवन्तीति ।

अथोपसंह्रियते—चन्द्रस्य पञ्चदशमण्डलानि भवन्ति, तत्र एकादीन पञ्चमपर्यन्तानि पञ्चमण्डलानि आभ्यन्तराणि, तथा—एकादशादीनि पञ्चदशपर्यन्तानि पञ्चमण्डलानि च वाह्यानि कथ्यन्ते, एतानि दशमण्डलानि चन्द्रसूर्ययोः साधारणानीति दशचन्द्रमण्डलानि सूर्यमण्डलसम्मिश्राणि भवन्ति,-तथा षष्ठादारभ्य दशमपर्यन्तानि पञ्चमण्डलानि प्रत्येकानीति तानि केवलं चन्द्र एव स्पृशति, न कदाचिदपि सूर्यः, इति एतानि सूर्यमण्डलसंस्पृष्टानि भवन्तीत्येवं सर्वं सविस्तरं प्रदर्शितम् । सूर्यमार्गाश्च चतुर्दशस्वेव चन्द्रमण्डलेषु लभ्यन्ते तत्रैवान्तरसद्भावात् न तु सर्वान्तिमे पञ्चदशे चन्द्रमण्डले तदग्रेऽन्तराभावात्, इति—अष्टसु आद्येषु चतुर्षु चरमेषु च चतुर्षु अभ्य-

न्तरबाह्येषु चन्द्रमण्डलान्तरेषु द्वादश द्वादश सूर्यमार्गा भवन्ति । तदतिरिक्तेषु पञ्चमादिदशम-पर्यन्तेषु षट्सु च चन्द्रमण्डलान्तरेषु त्रयोदश सूर्यमार्गा भवन्ति, उक्तञ्च—

चंदंतरेसु अट्ठसु, अब्भिंतरबाहिरेसु सूरस्स ।
बारस बारस मग्गा, छसु तेरस तेरस भवंति ॥१॥ इति

छाया—चन्द्रान्तरेषु अष्टसु, अभ्यन्तरबाह्येषु सूरस्य ।
द्वादश द्वादश मार्गाः षट्सु त्रयोदश त्रयोदश भवन्ति ॥१॥

"इति चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रे चन्द्रज्ञप्ति प्रकाशिकायां टीकायां दशमस्य प्राभृतस्य एकादशं प्राभृतप्राभृतं समाप्तं १०–११ ।

। दशमस्य प्राभृतस्य द्वादशं प्राभृतप्राभृतम् ।

गतमेकादशं प्राभृतप्राभृतम्, तत्र चन्द्रमण्डलानि, तदन्तराणि सूर्यमार्गाश्च प्रदर्शिताः, अत्र च नक्षत्राणां देवताध्ययनानि वक्तव्यानीत्यधिकृत्य द्वादशं प्राभृतप्राभृतं प्रारभ्यते, तस्य चेदं सूत्रम् 'ता कहं ते देवयाणं अज्झयणा' इत्यादि ।

मूलम्- ता कहं ते देवयाणं अज्झयणा आहिया ? तिवएज्जा·ता एएसि णं अट्ठावीसाए नक्खत्ताणं अभिई णक्खत्ते बंभदेवयाए पण्णत्ते १ । सवणे णक्खत्ते विण्हुदेवयाए पण्णत्ते २ । एवं जहा जंबूदीवपण्णत्तीए जाव उत्तरासाढा णक्खत्ते विसु-देवयाए पण्णत्ते ॥सू० १॥

छाया—तावत् कथं ते देवतानां अध्ययनानि आख्यातानि ? इति वदेत् । तावत् एतेषां खलु अष्टाविंशतेः नक्षत्राणां अभिजित् नक्षत्रं किं देवताकं प्रज्ञप्तम् ? ब्रह्मदेवताकं प्रज्ञप्तम् १ । श्रवणनक्षत्रं किं देवताकं प्रज्ञप्तम् ? विष्णु देवताकं प्रज्ञप्तम् २ । एवं यथा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यां यावत् उत्तराषाढानक्षत्रं विश्वग्देवाकं प्रज्ञप्तम् २८ ॥सू० १॥

दशमस्य प्राभृतस्य द्वादशं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१० । १२॥

व्याख्या—'ता कहं ते' इति 'ता' तावत् 'कहं, कथं केन प्रकारेण हे भगवन् ! 'ते' त्वाया 'देवयाणं' देवतानां नक्षत्राधिष्ठातॄणां 'अज्झयणा' अध्ययनानि—अधीयन्ते ज्ञायन्ते यै स्तानि अध्ययनानि अभिधानानि नामानीतिभावः 'आहिया' आख्यातानि कथितानि 'तिवएज्जा' इति वदेत् कथयेत्, प्रतिपादयन्तु भवन्तः, इति गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह— 'ता' तावत् 'एए-सिणं' एतेषां खलु 'अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं' अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये 'अभिई णक्खत्ते' अभिजिन्नक्षत्रं 'बंभदेवयाए' ब्रह्मदेवताकं ब्रह्माभिधदेवताकं 'पण्णत्तं' प्रज्ञप्तम् । अभिजि-न्नक्षत्रस्य ब्रह्माभिधो देवोऽधिष्ठाताऽस्ति, एवमग्रेऽपि सर्वत्र योज्यम् । 'सवणे णक्खत्ते' श्रवणनक्षत्रं

'वण्हुदेवयाए' विष्णु देवताकं 'पण्णत्तं' प्रज्ञप्तम् श्रवणस्याधिष्ठाता विष्णुनामको देवोऽस्तीति। 'एवं' एवम्—अनयैव रीत्या 'जहा जंबुद्दीवपण्णत्तीए' यथा जम्बूद्वीपप्रज्ञप्त्यां—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिसूत्रे कथितं तथैवात्रापि वाच्यम्। कियत्पर्यन्त मित्याह— 'जाव' इत्यादि, यावत् 'उत्तरासाढाणक्खत्ते विस्सुदेवयाए पण्णत्ते' उत्तराषाढनक्षत्रं विष्वग्देवताकं प्रज्ञप्तम्। अत्र 'जावे' ति यावत्पदेन धनिष्ठा नक्षत्रादारम्य पूर्वाषाढानक्षत्रपर्यन्तानां मध्यमानां पञ्चविंशतिनक्षत्राणां देवतानामानि जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तितोऽवगन्तव्यानि, तथाहि—"धणिट्ठा णक्खत्ते वसुदेवयाए पण्णत्ते ३, सयभिसया णक्खत्ते वरुणदेवयाए पण्णत्ते ४, पुव्वापोट्ठवया णक्खत्ते अयदेवयाए पण्णत्ते ५, उत्तरपोट्ठवया णक्खत्ते अभिवड्ढिदेवयाए पण्णत्ते ६, रेवई णक्खत्ते पुस्स देवयाए पण्णत्ते ७, अस्सिणी णक्खत्ते अस्सदेवयाए पण्णत्ते ८, भरणी णक्खत्ते जमदेवयाए पण्णत्ते ९, कत्तिया णक्खत्ते अग्गिदेवयाए पण्णत्ते १० रोहिणी णक्खत्ते पयावइदेवयाए पण्णत्ते ११, संठाणा णक्खत्ते सोमदेवयाए पण्णत्ते १२, अद्दा णक्खत्ते रुद्ददेवयाए पण्णत्ते १३, पुणव्वसु णक्खत्ते अदिइ देवयाए पण्णत्ते १४, पुस्स णक्खत्ते बहस्सइदेवयाए पण्णत्ते १५, अस्सेसा णक्खत्ते सप्पदेवयाए पण्णत्ते १६, मघा णक्खत्ते, पिइदेवयाए पण्णत्ते १७ पुव्वाफग्गुणी णक्खत्ते भगदेवयाए पण्णत्ते १८, उत्तराफग्गुणी णक्खत्ते अज्जमदेवयाए पण्णत्ते १९, हत्थे सविइदेवयाए पण्णत्ते २०, चित्ता णक्खत्ते तट्ठदेवयाए पण्णत्ते २१, साइ णक्खत्ते वाउ देवयाए पण्णत्ते २२, विसाहा णक्खत्ते इंदग्गिदेवयाए पण्णत्ते २३, अणुराहा णक्खत्ते मित्तदेवयाए पण्णत्ते २४, जेट्ठा णक्खत्ते इंददेवयाए पण्णत्ते २५, मूल णक्खत्ते णिरईदेवयाए पण्णत्ते २६, पुव्वासाढा णक्खत्ते आउ देवयाए पण्णत्ते २७।"

छाया—धनिष्ठा नक्षत्रं वसुदेवताकं प्रज्ञप्तम् ३, शतभिषग् नक्षत्र वरुणदेवताकं प्रज्ञप्तम् ४, पूर्वाप्रोष्ठपदा नक्षत्रम् अजदेवताकं प्रज्ञप्तम् ५, उत्तराप्रोष्ठपदा नक्षत्रम् अभिवृद्धिदेवताकं प्रज्ञप्तम् ६, रेवतीनक्षत्रं पुष्यदेवताकं प्रज्ञप्तम् ७, अश्विनीनक्षत्रम् अश्व (अश्वमुख) देवताकं प्रज्ञप्तम् ८, भरणीनक्षत्रं यमदेवताकं प्रज्ञप्तम् ९, कृत्तिकानक्षत्रम् अग्नि देवताकं प्रज्ञप्तम् १०, रोहिणीनक्षत्रं प्रजापति देवताकं प्रज्ञप्तम् ११, संस्थान (मृगशिरो) नक्षत्रं सोमदेवताकं प्रज्ञप्तम् १२, आर्द्रानक्षत्रं रुद्रदेवताकं प्रज्ञप्तम् १३, पुनर्वसुनक्षत्रम् अदिति देवताकं प्रज्ञप्तम् १४, पुष्यनक्षत्रं बृहस्पतिदेवताकं प्रज्ञप्तम् १५, अश्लेषानक्षत्रं सर्पदेवताकं प्रज्ञप्तम् १६, मघानक्षत्रं पितृदेवताकं प्रज्ञप्तम् १७, पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रं भगदेवताकं प्रज्ञप्तम् १८, उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रम् अर्यमदेवताकं प्रज्ञप्तम् १९, हस्तनक्षत्रं सवितृदेवताकं प्रज्ञप्तम् २०, चित्रानक्षत्रं त्वष्टृदेवताकं प्रज्ञप्तम् २१, स्वातिनक्षत्रं वायु देवताकं प्रज्ञप्तम् २२, विशाखानक्षत्रम् इन्द्राग्नि देवताकं प्रज्ञप्तम् २३, अनुराधानक्षत्रं मित्रदेवताकं प्रज्ञप्तम् २४, ज्येष्ठानक्षत्रम् इन्द्रदेवताकं प्रज्ञप्तम् २५, मूलनक्षत्रं निरति देवताकं प्रज्ञप्तम् २६, पूर्वाषाढानक्षत्रम् अप् देवताकं प्रज्ञप्तम् २७। देवतानामसङ्ग्राहिका इमास्तिस्रो गाथाः—

"बम्ह १, विण्हू २ य वसू ३, वरुणो ४, तहऽजो ५ अणंतरं होइ ।
अभिवड्ढि ६, पूस ७, गंधव्व ८ चेव परतो जमो होइ ॥१॥
अग्गि १० पयावइ ११, सोमे १२, रुद्दे १३ अदिई १४ वहस्सई १५ चेव ।
णागे १६, पिइ १७ भग १८ अज्जम १९ सविया २० तट्ठा २१ य वाऊ २२ य ॥२॥
इंदग्गी २३, मित्तोवि २४ य इंदे २५ निरई २६ य आउ २७ विस्सू २८, य ।
नामाणि देवयाणं हवंति रिक्खाण जहक्कमसो" ॥३॥

छाया—"ब्रह्मा १ विष्णुश्च २, वसुः ३ वरुणः ४ तथा अजः ५ अन्तरं भवति ।
अभिवृद्धिः ६ पूषा ७ गन्धर्वः (अश्वमुखः) ८ चैव परतः यमो ९ भवति ॥१॥
अग्निः १० प्रजापतिः ११ सोम १२ रुद्रः १३ अदिति १४, बृहस्पति १५ श्चैव ।
नागः (सर्पः) १६ पितृ १७ भगः १८ अर्यमा १९, सविता २०, त्वष्टा २१ च वायुश्च २२ ॥२॥
इन्द्राग्निः २३, मित्रो २४ ऽपि च इन्द्रः २५ निरग्निः २६ अप् २७ विश्वश्च २८ ।
नामानि देवतानां भवन्ति ऋक्षाणां यथाक्रमशः ॥३॥" इति ।

इत्येतानि अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां देवतानामानि प्रोक्तानि ॥सू० १॥

इति चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रे चन्द्रज्ञप्ति प्रकाशिका व्याख्यायां दशमस्य प्राभृतस्य द्वादशं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१० । १२॥

॥ दशमस्य प्राभृतस्य त्रयोदशं प्राभृतप्राभृतम् ॥

गतं दशमस्य प्राभृतस्य द्वादशं प्राभृतप्राभृतम्, तत्राष्टाविंशतेर्नक्षत्राणामधिष्ठातृ देवता नामानि प्रदर्शितानि । अथ त्रयोदशं प्राभृतप्राभृतं प्रारम्यते, अत्र च मुहूर्त्तानां नामानि वक्तव्यानीति तद्विषयकं सूत्रमाह–'ता कहं मुहुत्ताणं नामधेज्जा' इत्यादि ।

मूलम्—ता कहं ते मुहुत्ताणं नामधेज्जा आहिया ? ति वएज्जा । ता एगमेगस्स णं अहोरत्तस्स तीसं मुहुत्ता पण्णत्ता, तंजहा—"रुद्दे १ सेए २, मित्ते ३, वाऊ ४ ठवई ५ तहेव अभिचंदे ६ । माहिंद ७ वलव ८ बंभो ९ वहुसच्चे १० चेव ईसाणे ११ ॥१॥ तट्ठे १२ य भवियप्पा १३, वेसमणे १४ वारुणे य १५ आणंदे १६ । विजए १७ य वीससेणे १८, पयावई १९ चेव उवसमए २० ॥२॥ गंधव्व २१ अग्गिवेस्से २२, सयवसहे २३ आयवं २४ च अममे २५ य । अणवं २६ च भोम २७ वसहे २८, सव्वट्ठे २९ रक्खसे ३० चेव ॥३॥सू०१॥

दसमस्स पाहुडस्स तेरसमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥१०।१३॥

छाया—तावत् कथं त्वया मुहूर्त्तानां नामधेयानि आख्यातानि ? इति वदेत्। तावत् एकैकस्य खलु अहोरात्रस्य त्रिंशत् मुहूर्त्ताः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—"रुद्रः १ श्रेयान् २ मित्रं ३, वायु ४ स्थपति ५ तथैव अभिचन्द्रः ६, माहेन्द्रः ७ बलवान् ८, ब्रह्मा ९, बहुसत्य १०, चैव ईशानः ११ ॥१॥ त्वष्टा १२ च भावितात्मा १३, वैश्रवणः १४ वारुणश्च १५ आनन्दः १६ । विजयश्च १७ विश्वसेनः १८ प्रजापतिः १९, चैव उपशमकः २० ॥२॥ गन्धर्व २१ अग्निवेश्यः २२, शतवृषभः २३ आतपवान् २४ च अममश्च २५। ऋणवान २६ च भौमः २७ वृषभः २८ सर्वार्थः २९ राक्षसः ३० चैव ॥३॥ सू० १॥

दशमस्य प्राभृतस्य त्रयोदशं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०॥१३॥

दशमस्य प्राभृतस्य त्रयोदशं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०॥१३॥

व्याख्या—'ता कहंते' इति, 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'ते' त्वया 'मुहुत्ताणं' मुहूर्त्तानां 'नामधेज्जा' नामधेयानि नामानि 'आहिया' आख्यातानि ? 'ति वएज्जा' इति वदेत् इति वदतु हे भगवन् ? एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह—'ता' तावत् 'एगमेगस्स णं अहोरत्तस्स' एकैकस्याहोरात्रस्य 'तीसं मुहुत्ता पण्णत्ता' त्रिंशत् मुहूर्त्ताः प्रज्ञप्ताः। के ते त्रिंशत् मुहूर्त्ताः इत्याह 'तं जहा' इत्यादि, 'तं जहा' तद्यथा—ते इमे। तानेव दर्शयति तिसृभिर्गाथाभिः—'रुद्दे' इत्यादि, 'रुद्दे' रुद्रः, प्रथमस्य मुहूर्त्तस्य रुद्र इति नामधेयम् १। एवमग्रेऽपि वक्तव्यम्, तेषां नाममात्राण्याह—'सेए' श्रेयान् द्वितीयस्य मुहूर्त्तस्य श्रेयान् इति नाम २। तृतीयस्य मुहूर्त्तस्य मित्र मितिनाम। शेषा व्याख्या निगदसिद्धा ॥सू० १॥

इति चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रे चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिका टीकाया दशमस्य प्राभृतस्य त्रयोदशं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०।१३॥

दशमस्य प्राभृतस्य चतुर्दशं प्राभृतप्राभृतम् ।

व्याख्यातं दशमस्य प्राभृतस्य त्रयोदशं प्राभृतप्राभृतम्, तत्र त्रिंशन्मुहूर्त्तानां नामानि प्रतिपादितानि। अथ चतुर्दशं प्राभृतप्राभृतं विवियते, अत्र पञ्चदशदिवसाना पञ्चदशरात्रीणां च नामानि प्रतिपादनीयानीति तस्येदं सूत्रम्—'ता कहंते दिवसाणं' इत्यादि।

मूलम्—ता कहं ते दिवसाणं नामधेज्जा आहिय—त्ति वएज्जा। ता एगमेगस्स णक्खत्तस्स पण्णरस २ दिवसा पण्णत्ता, तं जहा—पडिवयादिवसे १, वितिया दिवसे २ जाव पण्णरसी दिवसे १५। ता एएसि णं पण्णरसण्हं दिवसाणं पण्णरसनामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—"पुव्वंगे १ सिद्धमणोरमे २ य, तत्तो मणोहरो ३ चेव। जसभद्दे ४ य जसोधर २५ सव्वकामसमिद्धे ६ त्तिय ॥१॥ इंदमुद्धाभिसित्ते, य सोमणस ८ धणंजए ९ य बोद्धव्वे। अत्थसिद्धे १० अभिजाते ११, अच्चासणे १२, य सतंजए १३ ॥२॥ अग्गिवेस्से १४ उवसमे १५ दिवसाणं णामधेज्जाइं ॥"

ता कहंते राईओ आहिय–त्ति वएज्जा ता एगमेगस्स णं णक्खत्तस्स पण्णरस राईओ पण्णत्ताओ, तं जहा पडिवया राई वितिया राई जाव पण्णरसी राई। ता एयासिणं पण्णरसण्हं राईणं पण्णरसनामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा–उत्तमा १, य सुणक्खत्ता, एला एलावच्च ३ जसोधरा ४। सोमणसा ५ चेव तहा, सिरिभूया ६ य बोद्धव्वा ॥१॥ विजया, य वेजयंती ८, जयंति ९ अपराजिया १० य गच्छा ११ य समाहारा १२ चेव तहा तेया १३ य तहा य अइतेया १४ ॥२॥ देवाणंदा १५ निरई, रयणीणं, णामधेज्जाइं" ॥सू० १॥

दसमस्स पाहुडस्स चउदसमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥१०।१४॥

छाया—तावत् कथं त्वया दिवसानां नामधेयानि आख्यातानि ? इति वदेत्। तावत् एकैकस्य खलु पक्षस्य पञ्चदश पञ्चदश दिवसाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—प्रतिपदा दिवसः १, द्वितीया दिवसः २ यावत् पञ्चदशी दिवसः १५। तावत् एतेषां खलु पञ्चदशानां दिवसानां पञ्चदश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—"पूर्वाङ्गः १, सिद्धमनोरमश्च २, ततो मनोहरः ३ चैव। यशोभद्रश्च ४ यशोधरः ५ सर्वकामसमृद्धः ६ इति च ॥१॥ इन्द्रमूर्धाभिषिक्तश्च, सोमनसः ८ धनञ्जयश्च ९ बोद्धव्यः अर्थसिद्धः १० अभिजातः अत्यशनश्च १२ शतञ्जयः १३ ॥२॥अग्निवेश्यः १४ उपशमः १५, दिवसानां नामधेयानि॥"

तावत् कथं त्वया रात्र्यः आख्याताः ? इति वदेत्। तावत् एकैकस्य पक्षस्य पञ्चदश पञ्चदश रात्र्य. प्रज्ञप्ताः तद्यथा–प्रतिपदारात्री १, द्वितीयारात्री यावत् पञ्चदशीरात्री। तावत् एतासां खलु पञ्चदशानां रात्रीणां पञ्चदश नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा— "उत्तमा १ च सुनक्षत्रा २ एेलापत्या ३ यशोधरा सौमनसा ५, चैव तथा, श्री संभूता ६ च बोद्धव्या ॥१॥ विजया ७, च वैजयन्ती ८, जयन्ति ९ अपराजिता १० च गच्छा ११ च समाहारा चैव तथा, तेजा १३ च तथा च अतितेजा १४ देवानन्दा १५ निरतिः रजनीनां नामधेयानि ॥११॥

दशमस्य प्राभृतस्य चतुर्दशं प्राभृतप्राभृत समाप्तम् ॥१०॥१४॥

व्याख्या– 'ता कहंते' इति। 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण केन क्रमेण 'ते, त्वया 'दिवसाणं' दिवसानां 'नामधेज्जा' नामधेयानि नामानि 'आहिया' आख्यातानि ? 'त्ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह–'ता एगमेगस्स णं' इत्यादि 'ता' तावत् 'एगमेगस्स णं पक्खस्स' एकैकस्य खलु पक्षस्य 'पण्णरस २' पञ्चदश पञ्चदश 'दिवसा पण्णत्ता' दिवसाः प्रज्ञप्ताः 'तं जहा' तद्यथा–ते यथा–'पडिवया–दिवसे' प्रतिपदादिवसः 'बितिया दिवसे' द्वितीया दिवसः २, 'जाव' यावत् 'पण्णरसीदिवसे' पञ्चदशीदिवसः १५।अत्र यावत्पदेन तृतीया दिवसः ३, चतुर्थी दिवसः ४ इत्यादिक्रमेण 'चतुर्दशी दिवसः इत्यन्तं संग्राह्यम् 'ता' तावत् 'एएसि णं पण्णरसण्हं दिवसाणं' एतेषां खलु पञ्चदशानां

दिवसानां 'पण्णरसणामधेज्जा' पञ्चदशनामधेयानि नामानि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि 'तं जहा' तद्यथा तानि यथा-'पुव्वंगे' इत्यादि पुव्वंगे पूर्वाङ्ग प्रतिपदा दिवसस्य पूर्वाङ्ग इति नाम १। 'सिद्धमणोरमे य' सिद्धमनोरमश्च द्वितीयादिवसस्य सिद्धमनोरमा इति नाम 'ततो' ततः तदनन्तरं 'मणोहरो चेव' मनोहरश्चैव तृतीयादिवसस्य मनोहर इति नाम ३। अनेन क्रमेण चतुर्थी दिवसस्य यशोभद्रो नाम, इत्यारभ्य पञ्चदशी दिवसस्य-पूर्णिमा दिवसस्य अमावास्या दिवसस्य च उपशम इति नाम, इत्यन्तं सर्वं स्वयमूहनीयम् । अत्र पूर्णिमा अमावास्या चेति द्वयोर्ग्रहणार्थं सूत्रकृता 'पण्णरसी दिवसे' पञ्चदशी दिवसः, इत्युक्तम् तयोः प्रतिपक्षं पञ्चदशत्वात् । शेषं स्पष्टम् ।

अथ रात्रीणां नामान्याह—'ता कहं ते राईओ' इत्यादि । 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन क्रमेण 'ते' त्वया 'राईओ' रात्र्यः 'आहिया' आख्याताः 'ति वएज्जा' इति वदेत् पदतु कथयतु हे भगवन् ? एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह 'ता एगमेगस्स णं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'एगमेगस्स णं पक्खस्स' एकैकस्य पक्षस्य 'पण्णरस' २ पञ्चदश पञ्चदश 'राईओ पण्णत्ताओ' रात्र्यः प्रज्ञप्ताः 'तं जहा' तद्यथा—ता यथा—'पडिवयाराई' प्रतिपदा रात्री । 'बितियाराई' द्वितीया रात्री २, 'जाव' यावत् 'पण्णरसीराई' पञ्चदशी रात्री, अत्रापि यावत्पदेन तृतीया रात्री ३ चतुर्थी रात्री ४, इत्यादि क्रमेण 'चतुर्दशीरात्री' इत्यन्तं संग्राह्यम् । अत्र द्वितीयारात्री' इत्यादिपदैः द्वितीया—तृतीयादि तिथयो बोध्या न तु सङ्ख्येति । अथ रात्रीणां नामान्याह—'ता एयासि णं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'एयासि णं' एतासां वक्ष्यमाणानां 'पण्णरसण्हं' पञ्चदशानां 'राईणं' रात्रीणां 'पण्णरस नामधेज्जा पण्णत्ता' पञ्चदश नामधेयानि नामानि प्रज्ञप्तानि 'तं जहा' तद्यथा—'उत्तमा य' उत्तमा च प्रथमा—प्रतिपत्सम्बन्धिनी रात्री रुत्तमा—उत्तमानाम्नी भवति । 'सुणक्खत्ता' सुनक्षत्रा द्वितीया सम्बन्धिनी रात्री सुनक्षत्रा कथ्यते २। एवं क्रमेण तृतीयात आरभ्य पञ्चदशी रात्री 'देवाणंदा' देवानन्दा इत्यन्तं स्वयमूहनीयम् । अस्य व्याख्या छायागम्याऽतो न वित्रियते ॥सू० १॥

॥इति चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिका व्याख्याया
दशमस्य प्राभृतस्य चतुर्दश प्राभृत—
प्राभृतं समाप्तम् ॥१०।१४॥

दशमस्य प्राभृतस्य पञ्चदशं प्राभृतप्राभृतम् ।

गतं चतुर्दश प्राभृतप्राभृतम् तत्र पञ्चदशानां दिवसानां, पञ्चदशानां रात्रीणां च नामानि प्रदर्शितानि । अथ पञ्चदशं प्राभृतप्राभृतं प्रारभ्यते अत्र दिवसतिथि रात्रितिथीनां च नामानि वक्तुं सूत्रमाह—'तं कहं ते तिही' इत्यादि ।

मूलम्—ता कहंते तिहीओ आहिया ? ति वएज्जा । तत्थ खलु इमा दुविहाओ तिहीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—दिवसतिहीओ य राईतिहीओ य । ता कहंते दिवसतिहीओ आहिया ? तिवएज्जा । ता एगमेगस्स णं पक्खस्स पण्णरस दिवस तिहीओ पण्णत्ताओ, तं जहा—नंदा १ भद्दा २ जया ३ तुच्छा ४ पुण्णा ५ पक्खस्स पंचमी ५ । पुणरवि नंदा ६ भद्दा ७ जया ८ तुच्छा ९ पुण्णा १० पक्खस्स दसमी १०। पुणरवि नंदा ११ भद्दा १२ जया १३ तुच्छा १४ पुण्णा १५ पक्खस्स पण्णरसी । एवं एया तिगुणा तिहीओ सव्वेसिं दिवसाणं । ता कहंते राई तिहीओ आहिया ? तिवएज्जा । ता एगमेगस्स णं पक्खस्स पण्णरस पण्णरस राईतिहीओ पण्णत्ताओ तं जहा—उग्गवई १ भोगवई २ जसवई ३ सव्वट्ठसिद्धा ४ सुहाणामा ५, पुणरवि—उग्गवई ६, भोगवई ७ जसवई ८ सव्वट्ठसिद्ध ९ सुहाणामा १० पुणरवि उग्गवई ११ भोगवई १२ जसवई १३ सव्वट्ठसिद्धा १४ सुहाणामा १५ एवं एया तिगुण तिहीओ सव्वासिं राईणं ॥सू. १॥

दसमस्स पाहुडस्स पण्णरसमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥१०॥ १५॥

छाया—तावत् कथं ते तिथयः आख्याताः ? इति वदेत्। तत्र खलु इमा द्विविधाः तिथयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—द्विवसतिथयश्च ? रात्रीतिथयश्च २। तावत् कथं ते दिवसतिथयः आख्याता. ? इति वदेत् । तावत् एकैकस्य खलु पक्षस्य पञ्चदश द्विवसतिथयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—'नंदा १ भद्रा २ जया ३ तुच्छा ४ पूर्णा ५। पुनरपि नन्दा ६, भद्रा ७ जया ८ तुच्छा ९ पूर्णा १० पक्षस्य दशमी १० पुनरपि नन्दा ११ भद्रा १२ जया १३ तुच्छा १४ पूर्णा १५, पक्षस्य पञ्चदशी १५ । एवम् एताः त्रिगुणाः तिथयः सर्वेषां दिवसानाम् । तावत् कथं ते रात्री तिथय आख्याताः ? इति वदेत् । तावत् एकैकस्य खलु पक्षस्य पञ्चदश पञ्चदश रात्री तिथयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—उग्रवती १ भोगवती २ यशोमती ३ सर्वार्थसिद्धा ४ शुभानाम्नी ५। पुनरपि उग्रवती ६ भोगवती ७ यशोमती ८ सर्वार्थसिद्धा शुभानाम्नी १० । पुनरपि—उग्रवती ११ भोगवती १२ यशोमति १३, सर्वार्थसिद्धा १४ शुभानाम्नि १५ एवम् एता त्रिगुणाः तिथयः सर्वासां रात्रीणाम् ॥ सू० १॥

॥दशमस्य प्राभृतस्य पञ्चदशं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०।१५॥

व्याख्या—'ता कहंते तिहीओ' इति । 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'ते' तवमते 'तिहीओ' तिथयः 'आहिया' आख्याताः कथिताः ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हेभगवन् ! । अत्र पृच्छ्यति यत् दिवसानां च विषये कः प्रतिविशेषः येन दिवसेभ्यः पृथक् तिथयः पृच्छ्यन्ते ? अत्राह—इह सूर्य निष्पादिता अहोरात्रा भवन्ति, तिथयश्च चन्द्रनिष्पादिताः, चन्द्रमसो वृद्धि हानिभ्यां तिथीनां निष्पाद्यमानत्वात्, उक्तञ्च—

"तं रयय कुमुयसिरिसप्पभस्स चंदस्स राइसु रुयस्स।
लोए तिहित्ति नियय, भण्णइ वुड्ढीए हाणीए ॥१॥"
छाया—रजत कुमुदश्री सत्प्रभस्य चन्द्रस्य रात्रिगुरुचेः।
लोके तिथि रिति नियतं, भण्यते (यस्य) वृद्ध्या हान्या ॥१॥ इति।

चन्द्रस्य या वृद्धिर्हानिर्वा भवति सा न स्वरूपतः किन्तु राहुविमानकृता भवति, यदा राहु विमानेन चन्द्रविमानमाव्रियते तदा चन्द्रस्य हानिरन्यथा वृद्धिर्भवतीति लोके कथ्यते—चन्द्रस्य हानिर्वृद्धिर्वा जातेति। राहुश्च द्विविधः पर्वराहुः ध्रुव (नित्य) राहुश्च। पर्वराहोर्विचारोऽत्रानुपयुक्तइत्यग्रे वक्ष्यते, अन्यत्र वा स्थले वर्त्तते इति तत्रतोऽवसेय.। अत्र प्रस्तुतप्रकरण ध्रुवराहोरिति तस्य विपये विविच्यते—यो ध्रुवराहुस्तस्य विमानं कृष्णं स च चन्द्रमण्डलस्याधस्ताचतुरङ्गुलान्तरेण नित्यं चारं चरति। अथ - चन्द्रमण्डलं बुद्ध्या चतु पष्टि संख्यकैर्भागैः परिकल्प्यते यदिदं चन्द्रमण्डलं चतुष्पष्टि भागात्मकमिति। तत एतेषां चतु. पष्टिभागाना कलानां पोडशत्वात् पोडशभिर्भागो ह्रियते लब्धाश्चत्वारश्चतुःपष्टिभागाः एते पञ्चदशसु दिवसेपु चन्द्रममण्डलस्य प्रत्येक दिवसस्य आवरणभागाः सन्ति। तेन तिथीनां पञ्चदशत्वात्पञ्च दशभिस्तिथिभिः पष्टि भागाश्चचन्द्रस्य राहुणा आव्रियन्ते शेपः स्थितश्चतुर्भागात्मक एको भागः स च चन्द्रमण्डलस्य सदाऽनावृताएव तिष्ठति, एप एव चन्द्रमण्डलस्य पोडशीकलेति प्रसिद्धम्, एषा पोडशीकला कदाऽपि नाव्रियते। स च ध्रुवराहुः कृष्णपक्षस्य प्रतिपदि चन्द्रमण्डलस्याधश्चतुरङ्गुलान्तरेण चारं चरन स्वकीयेन पञ्चदशेन भागेन यः पोडशीकला सञ्ज्ञाकश्चतुर्भागात्मकः सदाऽनावार्यः पोडशो भागस्तं मुक्त्वा शेपस्य पष्टि भागात्मकस्य चन्द्रमण्डलस्य तिथीनां पञ्चदशत्वात् पञ्चदश भागा भवन्ति तेपु ध्रुवराहुः स्वकोयेन पञ्चदशेन भागेन चतुर्भागात्मकमेकं पञ्चदशं भागमावृणोति। एवं द्वितीयायां स्वकीयाभ्यां द्वाभ्या पञ्चदशभागाभ्यां द्वौ पञ्चदशभागौ अष्ट भागात्मकौ चन्द्रमण्डलस्याऽऽवृणोति। तृतीयायां च स्वकीयैस्त्रिभिः पञ्चदश भागैस्त्रीन् पञ्चदशभागान् द्वादशभागात्मकान् चन्द्रमण्डलस्यावृणोति। एवमावरणवृद्ध्या यावद् अमावस्यायां स्वकीयैः पञ्चदशभिः पञ्चदशभागैः पञ्चदशापि पञ्चदशभागान् चन्द्रमण्डलस्यावृणोति, तदा चन्द्रमण्डलस्य पष्टिरपि भागा अवृता भवन्ति प्रतिदिनावारक चतुर्भागेन पञ्चदशानां गुणने पष्टिभागानां लाभादिति। एवं शुक्लपक्षे एतावत्परिमितमेव भागं चन्द्रमण्डलस्य प्रकटी करोति ततः प्रतिपदायामेकं चतुर्भागात्मकं पञ्चदशं भागं प्रकटीकरोति। एवं द्वितीयायां द्वौ, तृतीयायां त्रीन् चतुर्भागात्मकान् पञ्चदशभागान् प्रकटी करोति। एवमावरणहान्या यावत् पञ्चदश्यां चतुर्भागात्मकान् पञ्चदशाऽपि पञ्चदशभागान् प्रकटीकरोति तदा चन्द्रमण्डलस्य पष्टिरपि भागा आनावृता भवन्ति ततः सर्वमपि चन्द्रमण्डलं सर्वात्मना परिपूर्णं लोके दृश्यते।

वक्ष्यति चामुमेवार्थं सूत्रकारोऽग्रेऽपि 'तत्थ णं जे से धुवराहू' इत्याद्यालापकेन । ततो यावत्परिमितेन कालेन पञ्चदशो भागः षष्टि भागसत्कचतुर्भागात्मको हानि वर्द्धि वा प्राप्नोति स तावान् कालविशेषः कृष्णपक्षे शुक्लपक्षे वा तिथिरित्युच्यते । उक्तञ्च—

"सोलसभागा काऊण उडुवई हायएत्थ पण्णरस ।
तत्तियमित्ते भागे पुणोवि परिवड्ढए जोण्हे ॥१॥
कालेण जेण हायइ, सोलसभागो उसा तिही होइ ।
तह चेव य वुड्ढीए, एवं तिहिणो समुप्पत्ती ॥२॥"
छाया—षोडशभागान् कृत्वा उडुपतेः हीयन्तेऽत्र पञ्चदश ।
तावन्मात्रान् भागान् पुनरपि परिवर्धयेत् ज्योत्स्ने (शुक्लपक्षे) ॥१॥
कालेन येन हीयते षोडशो भागस्तु सा तिथि र्भवति ।
तथैव च वृद्ध्या, एवं तिथेः समुत्पत्तिः ॥२॥ इति ।

तिथि विषये वृद्ध सम्प्रदायो यथा—अहोरात्रस्य द्वाषष्टिभागकरणे ये एक षष्टिभागास्ताव त्प्रमाणा तिथिः । अथाहोरात्रस्त्रिंशन्मुहूर्त्तप्रमाणो भवतीति प्रतीत एव किन्तु तिथिः कियन्मुहूर्त्तप्रमाणा भवतीत्यत्रोच्यते तिथिश्च परिपूर्णा एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वात्रिंशद् द्वा षष्टिभागाः.(२९ $\frac{३२}{६२}$) एतावत्प्रमाणा भवन्ति, उक्तञ्च—

अउणतीसं पुण्णा, उ मुहुत्ता सोमओ तिही होइ ।
भागा वि य बत्तीसं, बावट्ठिकाएण छेएण" ॥१॥
छाया—एकोनत्रिंशत् पूर्णास्तु मुहूर्त्ताः सा मतातिथिर्भवति ।
भागा अपि च द्वात्रिंशत् द्वाषष्टिकृतेन छेदेन ॥१॥ इति ।

एतत्कथं भवतीति चेदाह—इह अहोरात्रस्य द्वाषष्टिर्भागाः क्रियन्ते, ततस्तत्सत्का ये एक षष्टि भागा स्तावत्प्रमाणा तिथिरिति कथ्यते, तत्रैकषष्टि स्त्रिशता गुण्यते जातानि त्रिंशत्यधिकानि अष्टादशशतानि (१८३०) । एते किल द्वाषष्टिभागीकृतस्याहोरात्रस्य मुहूर्त्तसत्का अंशाः जाताः, ततो मुहूर्त्तानयनार्थमेषां त्रिंशदधिकाष्टादशशतानां (१८३०) द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धा एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ताः, तदुपरि एकस्य मुहूर्त्तस्य च द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः २९ $\frac{३२}{६२}$ एतावत्प्रमाणा तिथिर्भवति एतावतैर कालेन चन्द्रमण्डलगतः चतुर्भागात्मकः पूर्वप्रदर्शित प्रमाणः षोडशो भागो हानिमुपगच्छति वृद्धिं वा प्राप्नोति तत एतावानेव तिथेः परिमाणकालो भव-

तीति तदेवमेषोऽहोरात्रस्य तिथेश्च प्रतिविशेषो लब्धोऽत एव दिवसात् पृथक् तिथेः प्रश्नः कृतइति।

एवं गौतमेन तिथिविषये प्रश्ने कृते सति भगवानाह्—'तत्थ खलु' इत्यादि। 'तत्थ खलु' तत्र तिथिविषयविचारे खलु 'इमा' वक्ष्यमाणाः 'तिहीओ' तिथयः 'दुविहा' द्विविधा 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ताः कथिताः,' तं जहा' तद्यथा—ता इमाः 'दिवसतिहीओ राईतिहीओ य' दिवसतिथयः रात्रि तिथयश्च। दिवस तिथिरिति तिथेः पूर्वार्धभागः, रात्रितिथि रिति तिथे. पश्चार्धभागइति। पुनर्गौतम. पृच्छति—'ता कहं ते दिवसतिहीओ' इत्यादि 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'ते' त्वया 'दिवसतिहीओ' दिवसतिथय· 'आहिया' आख्याता 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन्! एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह 'ता एगमेगस्स णं, तावत् 'एगमेगस्स णं' एकैकस्य खलु 'पक्खस्स' पक्षस्य 'पण्णरस' पञ्चदश पञ्चदश 'दिवसतिहीओ पण्गत्ताओ' दिवसतिथयः प्रज्ञप्ताः कथिताः। 'तं जहा' तद्यथा—ता यथा 'णंदा'१, भद्दा२ जया ३ तुच्छा ४, पुण्णा५, नन्दा१ भद्रा २ जया३ तुच्छा४ पूर्णा५। तत्र प्रथमा प्रतिपदा तिथि· नन्देति कथ्यते, एवं द्वितीयाभद्रा२, तृतीया जया,३ चतुर्थी तुच्छा इयं लोके रिक्ता शब्देन प्रसिद्धा ४ पञ्चमी तिथि पूर्णा कथ्यते ५। एषा पूर्णा 'पक्खस्स पंचमी' पक्षस्य पञ्चमी तिथि र्भवति५ एवं 'पुणरवि' पुनरपि अग्रेतनाः पञ्च तिथय.—नन्दा इत्यादि नन्दा ६ भद्रा ७ जया ८ तुच्छा ९ पूर्णा १० भवति एषा पूर्णा 'पक्खस्स दसमी' पक्षस्य दशमी तिथिर्भवति १०। एवमेव 'पुणरवि' पुनरपि 'नंदा' इत्यादि नन्दा ११ भद्रा १३ जया १२ तुच्छा १४ पूर्णा १५ भवति। एषा पूर्णा 'पक्खस्स पण्णरसी' पक्षस्य पञ्चदशी-तिथि र्भवतीति १५। 'एवं' एवम् अनया रीत्या 'ता' ता· 'तिगुणा' त्रिगुणाः 'नन्दा, भद्रा, जया, तुच्छा, पूर्णा' एभिर्नामभिस्त्रिरावर्त्तनेन सम्पन्नाः पञ्चदश 'तिहीओ' तिथयः 'सव्वेसिं दिवसाणं' परिपूर्णपक्षस्य दिवसानां भवन्तीति। पुनर्गौतमो रात्रितिथिविषये पृच्छति—'ता कहं ते राई तिहीओ' इत्यादि। 'ता' तावत् 'कहं' कथं कया नाम परिपाट्या 'राई तिहीओ' रात्रितिथय· 'आहिया' आख्याताः कथिताः? 'ति वएज्जा' इति-इत्यपि वदेत् वदतु- कथयतु हे भगवन्! एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह्— 'ता एगमेगस्स णं' इत्यादि। 'ता' तावत् 'एगमेगस्स णं पक्खस्स' एकैकस्य खलु पक्षस्य 'पण्णरस२' पञ्चदश पञ्चदश 'राईतिहीओ' रात्रि तिथयः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ताः कथिताः, 'तं जहा' तद्यथा—ता यथा—'उग्गवई' उग्रवती प्रथमा प्रतिपत्सम्बन्धिनी रात्रितिथिः उग्रवती १ 'भोगवई' भोगवती द्वितीया सम्बन्धिनी रात्रितिथि· भोगवती कथ्यते २। 'जसवई' यशोमती तृतीया तिथि सम्बन्धिनी रात्रितिथिः यशोमतीनाम्ना कथ्यते ३, 'सव्वट्ठसिद्धा' सर्वार्थसिद्धा चतुर्थी तिथि सम्बन्धिनी रात्रि तिथि. सर्वार्थसिद्धेति प्रसिद्धा ४। 'सुहाणाम' शुभानाम्नी पञ्चमी तिथि सम्बन्धिनी रात्रि तिथि· शुभेति नाम्ना प्रोच्यते, एषा पक्षस्य पञ्चमी रात्रितिथिरिति ५।

'पुणरवि' पुनरपि भूयोऽपि अग्रेतना' षष्ठीत आरभ्य दशमी पर्यन्ताः पञ्चरात्रि तिथय एभिरेव पूर्वोक्तैर्नामभिः कथ्यते तथाहि—षष्ठी रात्रि तिथिः उग्रवती ६ सप्तमी भोगवती ७, अष्टमी यशोमती ८, नवमी सर्वार्थसिद्धा ९ दशमी शुभानाम्नी १० । एषा पक्षस्य दशमी रात्रितिथिर्भवतीति १० । 'पुणरवि' पुनरपि अग्रेतनाः एकादशीत आरभ्य पञ्चदशी पर्यन्ताः रात्रि तिथयोऽपि एकादशी—उग्रवती ११, द्वादशी भोगवती १२ त्रयोदशी यशोमती १३, चतुर्दशी सर्वार्थसिद्धा १४, पञ्चदशी च शुभानाम्नी १५ । एषा पक्षस्यान्तिमा पञ्चदशी रात्रि तिथि र्विज्ञेया १५ । 'एया' एताः उग्रवती प्रभृतयः पञ्च नामवत्यः 'तिगुणा' त्रिगुणाः त्रिरावर्त्तनेन संपन्नाः पञ्चदश 'तिहीओ' तिथयः'सव्वासिं राईणं' सर्वासां रात्रीणां, पक्षसम्बन्धिनीनां भवन्तीति ॥सू० १॥

इति चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिका व्याख्यायां-
दशमस्य प्राभृतस्य पञ्चदशं
प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०।१५॥

। दशमस्य प्राभृतस्य षोडशं प्राभृतप्राभृतम् ।

व्याख्यातं पञ्चदशं प्राभृतप्राभृतम्, तत्र दिवसतिथिनां रात्रितिथिनां च नामानि प्रदर्शितानि । अथ षोडशं प्राभृतप्राभृतं व्याख्यायते, अत्राष्टाविंशति नक्षत्राणां गोत्राणि वक्तव्यानीति तद्विषयकं सूत्रमाह —'ता कहं ते गोत्ता' इत्यादि ।

मूलम्—ता कहं ते गोत्ता आहिया ? त्ति वएज्जा । ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं अभिई णक्खत्ते मोग्गलायणसगोत्ते ?, सवणे णक्खत्ते संखायणसगोत्ते पण्णत्ते २ । धणिट्ठाणक्खत्ते अग्गभावसगोत्ते ३ । सयभिसया णक्खत्ते कण्णलायणसगोत्ते पण्णत्ते ४ । पुव्वापोट्ठवया णक्खत्ते जोउकण्णियसगोत्ते पण्णत्ते ५ । उत्तरा पोट्ठवया णक्खत्ते धणंजयसगोत्ते पण्णत्ते ६ । रेवईणक्खत्ते पुस्सायणसगोत्ते पण्णत्ते ७ । अस्सिणीणक्खत्ते अस्सायणसगोत्ते ८ । भरणी णक्खत्ते भग्गवेस्ससगोत्ते पण्णत्ते ९ । कत्तिया णक्खत्ते अग्गिवेस्सगोत्ते पण्णत्ते १० । रोहिणीणक्खत्ते गोयमगोत्ते पण्णत्ते ११। मग्गसिरणक्खत्ते भारद्दायसगोत्ते पण्णत्ते १२ । अद्दाणक्खत्ते लोहिच्चायणसगोत्ते पण्णत्ते १३ । पुणव्वसुणक्खत्ते वासिट्ठसगोत्ते पण्णत्ते १४। पुस्सणक्खत्ते उज्जायणसगोत्ते--पण्णत्ते १५। अस्सेसा णक्खत्ते मंडव्वायणसगोत्ते पण्णत्ते १६ । मघाणक्खत्ते पिंगायणसगोत्ते पण्णत्ते १७ । पुव्वाफग्गुणीणक्खत्ते गोवल्लायणसगोत्ते पण्णत्ते १८ । उत्तराफग्गुणीणक्खत्ते कासवगोत्ते पण्णत्ते १९। हत्थणक्खत्ते कोसियगोत्ते पण्णत्ते २० । चित्ताणक्खत्ते दब्भियायणसगोत्ते

पण्णत्ते २१। साइणक्खत्ते चामरच्छगोत्ते पण्णत्ते २२। विसाहाणक्खत्ते सुंगायणसगोत्ते पण्णत्ते २३। अणुराहा णक्खत्ते गोल व्वायणसगोत्ते पण्णत्ते २४। जेट्ठाणक्खत्ते तिगिच्छायणसगोत्ते पण्णत्ते २५। मूलणक्खत्ते कच्चायणसगोत्ते पण्णत्ते २६। पुव्वासाढाणक्खत्ते वज्झियायणसगोत्ते पण्णत्ते २७। उत्तरासाढाणक्खत्ते वग्घावच्चसगोत्ते पण्णत्ते २८॥सू०१॥

दसमस्स पाहुडस्स सोलसमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥ १०। १६ ॥

छाया—तावत् कथं ते गोत्राणि आख्यातानि ? इति वदेत्। तावत् एतेषां खलु अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणाम् अभिजिन्नक्षत्रं मुद्गलायनगोत्रं प्रज्ञप्तम् १। श्रवणनक्षत्रं संख्यायन गोत्रं प्रज्ञप्तम् २) धनिष्ठानक्षत्रम् अग्रभावगोत्रं प्रज्ञप्तम् शतभिषग्नक्षत्रं कर्णलायनगोत्रं प्रज्ञप्तम् ४, पूर्वा प्रोष्ठपदानक्षत्रं जोउकर्णिकगोत्रं प्रज्ञप्तम् ५। उत्तराप्रोष्ठपदानक्षत्रं धनञ्जयगोत्रं प्रज्ञप्तम् ६, रेवती नक्षत्रं पुष्यायनगोत्रं प्रज्ञप्तम् ७, अश्विनीनक्षत्रम् अश्वायन गोत्रं प्रज्ञप्तम् ८, भरणीनक्षत्रं भग्नवेश्यगोत्रं प्रज्ञप्तम् ९, कृत्तिकानक्षत्रं अग्निवेश्यगोत्रं प्रज्ञप्तम् १०, रोहिणीनक्षत्रं गौतमगोत्रं प्रज्ञप्तम् ११. मृगशिरोनक्षत्रं भारद्वाजगोत्रं प्रज्ञप्तम् १२, आर्द्रानक्षत्रं लोहित्यायनगोत्रं प्रज्ञप्तम् १३ पुनर्वसुनक्षत्रं वासिष्ठगोत्रं प्रज्ञप्तम् १४, पुष्यनक्षत्रं ऊर्जायनगोत्रं प्रज्ञप्तम् १५ अश्लेषा नक्षत्रं माण्डव्यायनगोत्रं प्रज्ञप्तम् १६ मघानक्षत्रं पिङ्गायनगोत्रं प्रज्ञप्तम् १७ पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रं गोवल्लायनगोत्रं प्रज्ञप्तम् १८ उत्तराफल्गुनीनक्षत्रं काश्यपगोत्रं प्रज्ञप्तम् १९ हस्तनक्षत्रं कौशिकगोत्रं प्रज्ञप्तम् २०। चित्रानक्षत्रं दर्भिकायनगोत्रं प्रज्ञप्तम् २१। स्वातीनक्षत्रं चाम (भाग) रच्छगोत्रं प्रज्ञप्तम् २२। विशाखानक्षत्रं संगायनगोत्रं प्रज्ञप्तम् २३। अनुराधानक्षत्रं गोलव्यायनगोत्रं प्रज्ञप्तम् २४। ज्येष्ठानक्षत्रं चिकित्सायनगोत्रं प्रज्ञप्तम् २५। मूलनक्षत्रं कात्यायनगोत्रं प्रज्ञप्तम् २६। पूर्वापाढानक्षत्रं वज्झिकायनगोत्रं प्रज्ञप्तम् २७। उत्तरापाढानक्षत्रं व्याघ्रापत्यगोत्रं प्रज्ञप्तम् २८ ॥ सू० १ ॥

दशमस्य प्राभृतस्य षोडशं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥ १०–१६ ॥

व्याख्या—'ता कहं ते गोत्त।' इति 'ता' तावत् 'कहं' कथं—नक्षत्राणां कानि 'गोत्ता' गोत्राणि 'ते' त्वया 'आहिया' आख्यातानि ? 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु नक्षत्राणां गोत्राणि कथयतु हे भगवन् एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह—'ता' तावत् 'एएसिणं' एतेषां लोकप्रसिद्धानां खलु 'अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं' अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणा मध्ये 'अभिईणक्खत्ते' अभिजिन्नक्षत्रं 'मोग्गलायसगोत्ते' मुद्गलायनगोत्रं प्रज्ञप्तम् १। 'मोग्गलायणस' इत्यत्र सकार आर्षत्वात्। एवमग्रेऽपि विज्ञेयम्। अन्यत्सर्वं सुगमं छाया गम्यं चेति न विव्रियते। ननु नक्षत्राणामपि किं गोत्राणि भवन्ति ? इत्यत्राह नक्षत्राणां स्वरूपतो न गोत्रसंभवः किन्तु गोत्रस्वरूप मेतादृशं लोकप्रसिद्धिमगमत्। गोत्रं च प्रकाशकाद्यपुरुषाभिधानतस्तदपत्यं सन्तानो गोत्रमभिधीयते, यथा कश्यपस्यापत्यं सन्तान. काश्यप इति काश्यपाभिधानं गोत्रं भवति किन्तु न चैवं स्वरूपं गोत्रमत्र नक्षत्राणां सभवति, तेषामौपपातिकजन्मत्वेनापत्यत्वासंभवात् तत इत्थं गोत्रसं-

भवो ज्ञातव्यः–यन्नक्षत्रं शुभाशुभैर्ग्रहैराक्रान्तं भवेत् तद्गोत्रोत्पन्नस्य पुरुषस्य यथाक्रमं शुभमशुभं वा भवति यथा –अभिजिन्नक्षत्रे यदि शुभग्रहो वर्त्तते तदा मुद्गलायनगोत्रोत्पन्नस्य पुरुषस्य शुभं फलजनकं भवतीत्येवमधिकृत्य गोत्राणा प्रश्नोपपत्तिर्जातेति । अत्र जम्बूद्वीप प्रज्ञप्तिप्रोक्ता गोत्र-नामसंग्राहिकाश्चतस्रो गाथाः प्रदर्श्यन्ते—

"मोग्गल्लायण १ संखायणे २ य तह अग्गभाव ३ कण्णल्ले ४।
तत्तोय जोउकण्णे ५, धणंजए ६ चेव बोद्धव्वे ॥१॥
पुस्सायण, अस्सायण ८, भग्गवेसे ९ अग्गिवेसे १० य ।
गोयम ११ भारद्दाए १२, लोहिच्चे १३ चेववासिट्ठे १४ ॥२॥
उज्जायण १५ मंडव्वायणे १६ य पिंगायणे १७ य गोवल्ले १८ ।
कासव १९ कोसिय २० दब्भिय २१ चाम (भाग) रच्छा २२ । य सुंगाए २३ ॥३॥
गोलव्वायण २४ तिगिच्छायणे २५ य कच्चायणे २६ हवइ मूले ।
तत्तो य वज्झियायण २७ वग्घावच्चे २८ य गोत्ताइं ॥४॥"

छाया—मुद्गलायनं १ सख्यायनं २ च तथा अग्रभावम् ३ कर्णलायनम् ४, ततश्चजोउ-कर्णि ५ धनञ्जयं ६ चैव बोद्धव्यम् ॥१॥ पुष्यायनं ७ अश्वायनं ८ भग्नवेश्यं ९ च अग्निवेश्यं १० च । गौत्तमं ११ भारद्वाजं १२ लौहित्यं १३ चैव वाशिष्ठम् १४ ॥२॥ ऊर्जायनं १५ माण्डव्यायनं १६ च पिङ्गायनं १७ च गोवल्लं १८। काश्यपं १९ कौशिकं २० दर्भिकं २१ चाम (भाग) रच्छं २२ च सुंगाकम् २३ ॥३॥ गोलव्यायनं २४ चिकित्सायनं २५ च कात्यायनं २६ भवति मूले। ततश्च वज्झिकायनं २७ व्याघ्रापत्यं २८ च गोत्राणि ॥४॥ इति सूत्र १॥

इति चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रे चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिका व्याख्यायां
दशमस्य प्राभृतस्य षोडशं
प्राभृतप्राभृतं समाप्तम्
॥ १० । १६ ॥

दशमस्य प्राभृतस्य सप्तदशं प्राभृतप्राभृतम् ।

गतं दशमस्य प्राभृतस्य षोडशं प्राभृतप्राभृतम्, तत्र नक्षत्राणां गोत्राण्यभिहितानि । अथ सप्तदशं प्राभृतप्राभृतं प्रारभ्यते, अत्र नक्षत्राणां भोजनानि प्रतिपादनीयानीति तद्विषयं सूत्रमाह—'ता कहंते भोयणा' इत्यादि ।

मूलम्—ता कहते भोयणा आहिया ? तिवएज्जा । ता एएसि णं अट्ठावीसाए णक्ख-त्ताणं कत्तियाहिं दहिणा भोच्चा कज्जं साहिति १, रोहिणीहिं वसभमंसं भोच्चा कज्जं साहिंति २, मिगसिरेणं मिगमंसं भोच्चा कज्जं साहिंति ३, अद्दाहिं णवणीएणं भोच्चा कज्जं साहिंति ४, पुणव्वसुणा घएणं भोच्चा कज्जं साहिति ५, पुस्सेणं खीरेणं

भोच्चा कज्जं साहेंति ६, अस्सेसाए दीवगमंसं भोच्चा कज्जं साहेंति ७, मघाहिं कसोत्तिं (कंसारं) भोच्चा कज्जं साहिंति ८, पुव्वा फग्गुणीहिं मेढगमंसं भोच्चा कज्जं साहेंति ९, उत्तराफग्गुणीहिं णक्खीमंसं भोच्चा कज्जं साहिंति १०, हत्थेणवत्थाणीएण भोच्चा कज्जं साहेति ११ चित्ताहिं मुग्गसूपेणं भोच्चा कज्जं सहिंति १२, साइणा फलाइं भोच्चा कज्जं साहेंति १३, विसाहाहिं अतसियं भोच्चा कज्जं साहेंति १४, अणुराहाहिं मासकूरं भोच्चा कज्जं साहेंति १५, जेट्ठाहिं कोलट्ठिएणं भोच्चा कज्जं साहिंति १६, मूलेणं मूलगसाएणं भोच्चा कज्जं साहेंति १७, पुव्वासाढाहिं आमलगसरीरं भोच्चा कज्जं साहिंति १८, उत्तरासाढाहिं विल्लेहिं भोच्चा कज्जं साहिंति १९, अभीइणा पुप्फेहि भोच्चा कज्जं साहिति २०, सवणेणं खीरेणं भोच्चा कज्जं साहिंति २१, धणिट्ठाहिं जूसेणं भोच्चा कज्जं साहेंति २२, सयभिसयाए तुवराओ भोच्चा कज्जं साहिंति २३, पुव्वापोट्ठवयाहिं कारिल्लएहिं भोच्चा कज्जं साहेंति २४, उत्तरापोट्ठवयाहिं वराहमंसं भोच्चा कज्जं साहेंति २५, रेवईहिं जलयरमंसं भोच्चा कज्जं साहेति २६, अस्सिणीहिं तित्तिरमंसं अहवा वट्टगमंसं भोच्चा कज्जं साहेंति २७, भरणीहिं तिलतंदुलगं भोच्चा कज्जं साहेंति २८, । सू० । १ ॥

दसमस्स पाहुडस्स सत्तरसमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥१०॥

छाया—तावत् कथं ते भोजनानि अख्यातानि ? इति वेदत् । तावत् एतेषां खलु अष्टाविंशते नक्षत्राणां कृतिका सुदध्ना भक्त्वा कार्यं साधयन्ति १, रोहिणीषु वृषभमांसं भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति २, मृगशिरसि मृगमांसं भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति ३ आर्द्रासु नवनीतेन भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति ४ पुनर्वसौ घृतेन भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति ५ पुष्ये क्षीरेण भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति ६ अश्लेषायां द्वीपक मांसं भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति ७ मघासु कसोत्ति (कसारिं) भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति ८ पूर्वाफल्गुनीषु मण्डूकमांसं भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति ९ उत्तराफाल्गुनीषु नखिमांस भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति १० हस्तेवत्थाणीएण वस्त्रानीकेन भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति ११ चित्रासु मुद्गरूपेणभुक्त्वा कार्यं साधयन्ति १२ स्वातौ फलानि भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति १३ विशाखासु अतसिकां भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति १४ अनुराधासु मापकूरं भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति १५ ज्येष्ठासु कोलास्थिकेन भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति १६ मूले मूलकशाकेन भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति १७ पूर्वाषाढासु अमलक शरीरं भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति १८ उत्तरापाढासु बिल्वैः भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति १९ अभिजिति पुष्पैः भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति २० श्रवणेन क्षीरेण भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति २१ धनिष्ठासु यूषेण भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति २२ पूर्वा प्रोष्ठपदासुकारवेल्लकैः भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति २४ उत्तरा प्रोष्ठपदासु वराहमांसं भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति २५ रेवतीषु जलचरमांसं भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति २६ अश्विनीषु तित्तिरिमांसम् अथवा वर्तकमांसं भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति २७ भरणीषु तिलतन्दुलकं भुक्त्वा कार्यं साधयन्ति २८ ॥ सू १ ॥

दशमस्य प्राभृतस्य सप्तदश प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०। १७

व्याख्या—'ता कहं ते भोयणा' इति, 'ता' तावत् 'कहं' केन प्रकारेण हे भगवान् ! 'ते' त्वया 'भोयणा' भोजनानि केषु केषु नक्षत्रेषु कानि कानि भोजनानि करणीयानीति 'आहिया' आख्यातानि कथितानि ? 'त्ति वएज्जा' इति वदेत् कथयतु हे भगवन् ! । एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह—'ता एएसिणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषा खलु 'अट्ठावीसाए णक्खत्ताणं' अष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां मध्ये 'कत्तियाहिं' कृत्तिकासु कृत्तिका नक्षत्रदिने 'दहिणा' दध्ना सह भोजनं 'भोच्चा' भुक्त्वा गमने लोकाः 'कज्जं साहेंति' कार्यं साधयन्ति, कृत्तिकानक्षत्रदिने यदि पुमान् दधि भुक्त्वा कार्यार्थं गच्छति तदा तस्य तत्कार्यं सिध्यतीति भावः ? एवं सर्वत्र भावना करणीया, सुगमत्वान्न व्याख्यायते ।

वस्तुत इदं सप्तदशं प्राभृतप्राभृतं न भगवता प्रतिपादितं किन्तु केनाऽप्यत्र प्रक्षिप्तमिति प्रतिभाति, नेयं भाषाशैली भगवतो लभ्यते, यतोऽत्र सूत्रे कुत्रचित् 'कत्तियाहिं रोहिणीहिं, अद्दाहिं' इत्यादि तृतीया बहुवचनं लभ्यते कुत्रचिच्च 'पुणव्वसुणा पुस्सेणं, अद्दाए' इत्यादि तृतीयैकवचनं लभ्यते । अन्यच्च भोज्यवस्तुविषये कुत्रचित्तृतीया कुत्रचिद्द्वितीया च । यथा—"दहिणा भोच्चा, णवणीएण भोच्चा, खीरेण भोच्चा' इति तृतीया कुत्रचिच्च यत्र मांसविषयकथनं तत्र द्वितीया, यथा—"वसभ मंसं भोच्चा, मिगमंसं भोच्चा, दीवगमंसं भोच्चा" इत्यादि, एवमव्यवस्थित जल्पनेन ज्ञायते नेदं भगवता प्ररूपितमिति । अन्यच्च कतिपयस्थलेषु स्थलचर जलचर—खेचर प्राणिनां मांसभक्षणं कार्यसिद्धौ कारणत्वेन प्रतिपादितं तत्तु नितान्तमसङ्गतमेव, यतः षट्कायप्रतिपालकस्य षट्कायरक्षणोपदेशतत्परस्य च भगवतो मुखान्नैष मासभक्षणविधिर्भवितु मर्हति, शास्त्रेषु कुत्रापि नैतादृशी वाणी भगवत समुपलभ्यतेऽतो निर्धार्यते—नेदं भगवदुपदेशनिष्यकमिति । अस्तु अन्यदपि सयुक्तिकं कारणं श्रूयताम् शास्त्रेषु सर्वत्र नक्षत्राणां गणना—अभिजिन्नक्षत्रादारभ्यैव कृता युगस्याद्यदिवसेऽभिजित एव सद्भावात् । अत्रैव शास्त्रे पूर्वं दशम प्राभृतस्य प्रथमे प्राभृतप्राभृते आदावेव सूत्रमिदम्—

"ता कहं ते जोगेति वत्थुस्स आवलियाणिवाए आहिएति वएज्जा, तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तत्थेगे एवमाहंसु ता सव्वेवि णक्खत्ता कत्तियादिया भरणी पज्जवसाणा एगे एवमाहंसु ॥१॥" इयमन्यतीर्थिकाना प्रथमा प्रतिपत्तिः एते कृत्तिकादीनि भरणी पर्यवसानानि नक्षत्राणि मन्यन्ते एवमन्यतीर्थिकानां पञ्च प्रतिपत्तयः सन्ति । तत्र द्वितीयाः—'मघादिकानि अश्लेषा पर्यवसानानि सर्वाणि नक्षत्राणि' इति २, तृतीयाः—धनिष्ठादीनि श्रवणपर्यवसानानि' इति ३ चतुर्थाः अश्विन्यादीनि रेवती पर्यवसानानि सर्वाणि नक्षत्राणि' इति कथयन्ति ।५। एता पञ्चापि प्रतिपत्तयो मिथ्या रूपा इति कथयित्वा, भगवान् स्वमतं प्रदर्शयति

"वयं पुण एवं वयामो—सव्वेवि णं णक्खत्ता अभिई आइया उत्तरासाढापज्जवसाणा पण्णत्ता, तंजहा—अभिई सवणो जाव उत्तरासाढा ॥" इति ।

अस्य मलयगिरि सूरिणा कृता टीका यथा—

"युगस्य चादिः प्रवर्त्तते श्रावणमासि बहुलपक्षे प्रतिपदितिथौ बालवकरणे अभिजिन्नक्षत्रे चन्द्रेण सह योगमुपागच्छति (सति) तथा चोक्तम्—ज्योतिष्करण्डके—

सावण बहुलपडिवए बालवकरणे अभिईनक्खत्ते ।
सव्वत्थ पढमसमये जुगस्स आई वियाणाहि ॥१॥ इति

'सव्वत्थ' सर्वत्रेति भरतैरवते महाविदेहे च । इत्थं सर्वेषामपि कालविशेषाणामादौ चन्द्र योगमधिकृत्याभिजिन्नक्षत्रस्य वर्त्तमानत्वादभिजिदादीनि नक्षत्राणि प्रज्ञप्तानि" इति टीका ।

अत्र कृत्तिकातो भरणी पर्यवसानानि नक्षत्राणि प्रथमान्यतीर्थिकैः—संमतानि सन्ति, तन्म तानुसारेणेदं— प्राभृतप्राभृतं दृश्यते । नेदं भगवतो मतमित्यतः स्पष्टं ज्ञायतेऽस्मिन् सप्तदशे प्राभृत-प्रभृते भगवतः प्ररूपणा न भवितु मर्हतीत्यलं विस्तरेणेति ॥सू० १॥

॥इति चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रे चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिका
व्याख्यायां दशमस्य प्राभृतस्य सप्तदशं
प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०।१७॥

दशमस्य प्राभृतस्याष्टादशं प्राभृतप्राभृतम् ॥

तदेवमुक्तं सप्तदशं प्राभृतप्राभृतम्, तत्र नक्षत्राणां भोजनानि प्रोक्तानि । अथाष्टादशं प्राभृतप्राभृतं प्रारभ्यते, अत्र चन्द्रादित्यचारा वक्तव्या इति तद्विषयकं सूत्रमाह—'ता कहं ते चारा' इत्यादि,

मूलम्—ता कहं ते चारा आहिया ति वएज्जा । तत्थ खलु इमे दुविहा चारा पण्णत्ता, तं जहा—आइच्च चारा य चंदचारा य । ता कहंते चंदचारा आहिया ति वएज्जा । ता पंच संवच्छरिए णं जुगे अभिई णक्खत्ते सत्तसट्ठिचारे चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ १, सवणेणं णक्खते सत्तट्ठि चारे चंदेण सद्धि जोयं जोएइ २ एवं जाव उत्तरासाढा णक्खते सत्तट्ठि चारे चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ । ता कहं ते आइच्चचारा आहियाति वएज्जा, ता पंच संवच्छरिएणं जुगे अभिईणक्खते पंच चारे सूरेण सद्धिं जोयं जोएइ एवं जाव उत्तरा साढा णक्खते पंच चारे सूरेण सद्धिं जोयं जोएइ ॥सू० १।

दसमस्य पाहुडस्स अट्ठारसमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥१०।१८,

छाया— तावत् कथं ते चारा आख्यातः ? इति वदेत् । तावत् इमे द्विविधाः चाराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—आदित्यचाराश्च चन्द्रचाराश्च । तावत् कथं ते चन्द्रचारा आख्याताः ? इति वदेत् । तावत् पञ्च सांवत्सरिके खलु युगे अभिजिन्नक्षत्रं सप्तषष्टि चारान् चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति १ श्रवणः खलु नक्षत्रं सप्तषष्टि चारान् चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति २ एवं

यावत् उत्तराषाढानक्षत्रं सप्तषष्टिं चारान् चन्द्रेण सार्धं योग युनक्ति । तावत् कथं ते आदित्य चारा आख्याताः ? इति वदेत् । तावत् पञ्च सांवत्सरिके खलु युगे अभिजिन्नक्षत्रं पञ्च चारान् सूरेण सार्धं योगं युनक्ति ॥सू० १॥

दशमस्य प्राभृतस्याष्टादशं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०।१८॥

व्याख्या—'ता कहंते चारा' इति 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण कया सख्यया 'ते' त्वया 'चारा आहिया' चाराः संचरणरूपाः आख्याताः ? 'त्ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् १। एवं गौतमेन पृष्ठे भगवानाह—'तत्थ खलु' तत्र चार-विचारे खलु 'इमे' वक्ष्यमाणाः 'दुविहा चारा पण्णत्ता' द्विविधाः चाराः प्रज्ञप्ताः 'तंजहा' तद्यथा—'आइच्चचारा य चंदचारा य' आदित्यचाराश्च चन्द्रचाराश्च । प्रथमं गौतमश्च-न्द्रचारविषये पृच्छति—'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण संख्यामधिकृत्य 'चंद चारा' चन्द्रचारा 'आहिया' आख्याता 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु हे भगवन् ? । भगवानाह—'ता' तावत् 'पंच संवच्छरिएणं' पञ्च सांवत्सरिके चन्द्र—चन्द्रा-ऽभिवर्धित-चन्द्रा-ऽभिवर्धितरूप पञ्च सवत्सरात्मके खलु 'जुगे' युगे 'अभिईणक्खत्ते' अभिजिन्नक्षत्रं 'सत्तसट्ठिंचारे' सप्तषष्टि चारान् यावत् सप्तषष्टिचारपर्यन्तं "चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, एकस्मिन् युगे पञ्च सवत्सरात्मके चन्द्रोऽभिजिन्नक्षत्रेण सह संयुक्तो भूत्वा सप्तपष्टिसंख्यकान् चारान् चरतीति भावः, एकस्मिन् युगे चन्द्राभिजिन्नक्षत्रयोः सप्तषष्टिवारान् संयोगो भवतीति तात्प-र्यम् । एतत्कथं—ज्ञायते ? अत्राह—इह योगमाश्रित्य चन्द्रस्य समस्तनक्षत्रचक्रपरिभ्रमणपरिसमा-प्तिरेकेन नक्षत्रमासेन जायते, अतः प्रत्येकस्मिन् नक्षत्रमासे एकैकस्मिन्नहोरात्रे चन्द्रेण सह एकैकनक्षत्रयोगसंभवाद् युग सम्बन्धिषु सप्तषष्टिमार्गेषु सप्तषष्टिवारान् चन्द्रस्याभिजिता सह योगसमुपपत्तिर्लभ्यते ततश्चन्द्रोऽभिजिता नक्षत्रेण सह संयुक्तः सन् युगमध्ये सप्तषष्टिसंख्यकान् चारान् चरतीति सिद्ध्यति । एवं रीत्या सर्वनक्षत्रैः सह चन्द्रयोगो विज्ञेयः, यतः येन नक्षत्रेण सह यस्मिन् नक्षत्रमासे चन्द्रस्य योगो भवति स पुनश्चन्द्रस्य योग स्तेन नक्षत्रेण सह द्वितीये नक्षत्रमासे भविष्यति प्रत्येकमासे एकैकनक्षत्रेण सह चन्द्रयोगसद्भावात् । एवम् 'सवणेणं णक्खत्ते' श्रवणः खलु नक्षत्रं 'सत्तट्ठिं चारे' सप्तषष्टिं चारान् यावत् 'चंदेण सद्धिं' चन्द्रेण सार्धं 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति । 'एवं जाव' एवम्—अनेन क्रमेण यावत् यावत्पदेन धनिष्ठात आरभ्य पूर्वाषाढा नक्षत्रपर्यन्तानि पञ्चविंशतिरपि नक्षत्राणि एकस्मिन् युगे प्रत्येक मधिकृत्य सप्तषष्टिं २ चारान् चन्द्रेण सह योगं युञ्जन्ति । अथाष्टाविंशतितमं नक्षत्रमाह—'उत्तरासाढाणक्खत्ते' उत्तराषाढानक्षत्रं 'सत्तट्ठिचारे' सप्तषष्टिं चारान् 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्तीति २८।

अथादित्यचारान् प्रदर्शयति—गौतमः पृच्छति—'ता कहंते आइच्चचारा' इत्यादि, 'ता' तावत् 'कहं' कथं कया रीत्या कया संख्ययेत्यर्थः 'ते' त्वया । 'आइच्च चारा' आदित्य

चारा 'आहिया' आख्याताः कथिताः ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् !। एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह—'ता' तावत् 'पंचसंवच्छरिएणं जुगे' पञ्चसांवत्सरिके पूर्वोक्त पञ्च संवत्सरात्मके खलु युगे 'अभीईनक्खत्ते' अभिजिन्नक्षत्रं 'पंचचारे' पञ्चचारान् यावत् 'सूरेण सद्धिं' सूरेण सार्धं 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति । कथमित्याह—अत्र योगमाश्रित्य सूर्यस्य समस्त नक्षत्रचक्रचारपरिसमाप्तिरेकेन सूर्यसंवत्सरेण जायते, ते च सूर्यसंवत्सरा एकस्मिन् युगे पञ्चैव भवन्ति ततः प्रत्येकस्मिन् संवत्सरे एकैकस्मिन् मासे एकैकनक्षत्रयोगसद्भावात् युगसम्बन्धिषु पञ्चसु संवत्सरेषु पञ्चवारानेव सूर्यस्याभिजिता सह योगसमुपपत्तिर्लभ्यते ततोऽभिजिन्नक्षत्रेण सह संयुक्तः सूर्य एकस्मिन् युगे पञ्च चारान्चरतीति सिध्यति । एवं रीत्या सर्वनक्षत्रैः सह सूर्ययोगएकस्मिन् युगे पञ्चचारान् यावत् भवतीति विज्ञेयम् । ततः यस्मिन् संवत्सरे येन नक्षत्रेण सह सूर्यस्य योगो भवति स पुनः सूर्यस्य योगस्तेन नक्षत्रेण सह द्वितीये संवत्सरे भविष्यति प्रत्येक संवत्सरे एकैकनक्षत्रेण सह सूर्ययोग सद्भावात 'एवं' एवम्-अनया रीत्या 'जाव' यावत् अत्र यावत्पदेन श्रवणनक्षत्रादारभ्य पूर्वाषाढानक्षत्रपर्यन्तानि षड्विंशतिर्नक्षत्राणि एकस्मिन् युगे प्रत्येकं पञ्च पञ्चचारान् सूर्येण सह योगं युञ्जन्ति । अथाष्टाविंशतितमनक्षत्रमाह—'उत्तरासाढानक्खत्ते' उत्तराषाढानक्षत्रं 'पंचचारे' पञ्चचारान् 'सूरेण सद्धिं' सूर्येण सार्धं 'जोयं जोएइ' योगं युनक्तीति । २८ ॥सू० १॥

चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्रे चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिका व्याख्यायां दशमस्य प्राभृतस्य अष्टादशं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०।१८॥

॥ दशमस्य प्राभृतस्यैकोनविंशतितमं प्राभृतप्राभृतम् ॥

गतमष्टादशं प्राभृतप्राभृतम् तत्र चन्द्रचारा आदित्यचाराश्च प्रदर्शिताः । अथैकोनविंशतितमं प्राभृतप्राभृतं प्रारभ्यते, अत्र संवत्सरस्य मासा वक्तव्या इति तद्विषयं सूत्रमाह-'ता कहं ते मासा' इत्यादि ।

मूलम्—ता कहं ते मासा आहिया ? तिवएज्जा । ता एगमेगस्स णं संवच्छरस्स वारस मासा पण्णत्ता । तेसिं च णं वारसण्हं मासाणं दुविहा नामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा लोइया लोउत्तरिया य । तत्थ लोइया नामा सावणे, भद्दवए २, आसोए ३, जाव आसाढे १२ । लोउत्तरिया णामा—"अभिणंदे १, सुपइट्ठे २ य, विजए ३ पीइवद्धणे ४। सेज्जंसे ५ य सिवइ यावइ, सिसिरे ७ वि य हेमवं ८ ॥१॥ नवमे वसंतमासे ९, दसमे कुसुमसंभवे १० एगारसमे णिदाहे ११, वण विरोही य वारसे ॥२॥ सू० १

दसमस्स वाहुडस्स गूणवीसइमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥१० १९॥

छाया—तावत् कथं ते मासा आख्याताः ? इति वदेत्। तावत् एकैकस्य खलु संवत्सरस्य द्वादशमासाः प्रज्ञप्ताः। तेषां च खलु द्वादशानां द्विविधानि नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—लौकिकानि लोकोत्तराणि च। तत्र लौकिकानि नामानि—श्रावणः १, भाद्रपदः २ आश्विनः ३, यावत् आषाढः १२। लोकोत्तराणि नामानि—अभिनन्दः १ सुप्रतिष्ठश्च२, विजय ३ प्रीतिवर्धनः ४। श्रेयांसश्च ५ शिवश्चापि ६, शिशिरः ७ अपि च हैमवान् ८॥१॥ नवमो वसन्तमास ९ दशमः कुसुमसंभवः १०। एकादशो निदाघः ११ वनविरोधी च द्वादशः १२॥२॥, सू० १॥

दशमस्य प्राभृतस्य एकोनविंशतितमं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०।१९॥

व्याख्या—'ता कहं ते मासा' इति। 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण किंनामधेयाः 'ते' ते 'मासा आहिया' मासा आख्याताः कथिताः ? 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् ? एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह,—'ता' तावत् 'एगमेगस्स णं संवच्छरस्स' एकैकस्य खलु संवत्सरस्य 'बारसमासा पण्णत्ता' द्वादश द्वादश मासाः प्रज्ञप्ता 'तेसिं च णं बारसण्हं-मासाणं' तेषां च खलु द्वादशानां मासानां 'दुविहा नामधेज्जा पण्णत्ता' द्विविधानि नामधेयानि प्रज्ञप्तानि लौकिकानि लोकोत्तराणि च 'तत्थ' तत्र लौकिकलोकोत्तराणां मध्ये 'लोइया नामा' लौकिकानि नामानि, तथाहि 'सावणे १, भद्दवए २, आसोए ३,' श्रावणः १, भाद्रपद २, आश्विनः ३, 'जाव आसाढे' यावत्-आषाढः १२, अत्र यावत्पदेन कार्तिकः ४, मार्गशीर्षः ५, पौषः ६, माघः ७, फाल्गुनः ८, चैत्रः ९, वैशाखः १०, ज्येष्ठः ११, एषां संग्रहः कर्त्तव्यः। द्वादश आषाढ इति सूत्रे कथितमेवेति। लोउत्तरिया० नामा लोकोत्तराणि नामानि यथा—अभिणंदे सुपइट्ठे य' अभिनन्दः १, सुप्रतिष्ठ २ श्च, 'विजए पीइवद्धणे' विजयः ३ प्रीतिवर्धनः ४। 'सेज्जंसे य सिवे यावि' श्रेयांसश्च ५ शिवश्चापि 'च' तथा शिवनामापि च षष्ठो मासः ६। शिशिरः ७, अपि च तथा हेमवं' हैमवान् ८॥१॥ 'नवमे वसंतमासे' नवमो वसंतमासः वसन्ताभिधो नवमो मासः ३, 'दसमे कुसुमसंभवे' दशमो मासः कुसुमसंभवः १० इति। एगारसमे णिदाहे' एकादशो मासः निदाघः ११ इति, 'वणविरोही य' वनविरोधी च 'बारसे' द्वादशः १२ ॥ २ ॥ सू० १ ॥

॥ इतिचन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रे चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिका
व्याख्यायां दशमस्य प्राभृतस्य एकोनविंशति
तमं प्राभृत प्राभृतं समाप्तम् ॥ १० । १९ ॥

॥ दशमस्य प्राभृतस्य विंशतितमं प्राभृतप्राभृतम् ॥

व्याख्यातमेकोनविंशतितमं प्राभृतप्राभृतम्, तत्र लौकिकलोकोत्तरमासानां नामान्यभिहितानि। अथ विंशतितमं प्राभृतप्राभृतं प्रोच्यते, तत्र संवत्सराः वक्तव्या इति तद्विषयकं सूत्रमाह—'ता कहं ते संवच्छरा' इत्यादि।

मूलम्—ता कहं ते संवच्छरा आहिया ति वएज्जा । ता पंच संवच्छरा आहिया, ति वएज्जा तं जहा–णक्खत्तसंवच्छरे १, जुगसंवच्छरे २, पमाणसंवच्छरे ३, लक्खण-संवच्छरे ४, सणिच्छरसंवच्छरे ॥सू० १।

छाया—तावत् कथ ते संवत्सरा आख्याता इति वदेत् तद्यथा-नक्षत्रसंवत्सरः १, युगसंवत्सरः २, प्रमाणसंवत्सरः ३, लक्षणसंवत्सर ४, शनैश्चरसंवत्सरः सू०१॥

व्याख्या—गौतमः पृच्छति–'ता कहं ते संवच्छरा' इति तावत् हे भगवन् 'कहं' कथं कतिसंख्यका 'ते' त्वया 'संवच्छरा' संवत्सराः 'आहिया' आख्याताः ? इ'ति वएज्जा' इति वदेत वदतु कथयतु । भगवानाह–'ता' तावत् 'पंच संवच्छरा' आहिया' पञ्च संवत्सरा 'अहिया' मया आख्याताः 'ति वएज्जा' इति वदेत् कथयेत् स्वशिष्येभ्यः । 'तं जहा' तद्यथा-ते पञ्च संवत्सरा यथा–'णक्खत्त संवच्छरे' नक्षत्रसंवत्सरः तत्र यावताकालेन अष्टाविंशति नक्षत्रैः सह चन्द्रस्य योगसमाप्ति र्भवेत् यावत् कालेन चन्द्रोऽष्टाविंशतौ नक्षत्रेषु भोगं कृत्वा तेभ्यः पृथग् भवेत् तावत्परिमितः कालविशेषो नक्षत्रमासो भवति ते नक्षत्रमासा यावता कालेन द्वादश व्यतीता भवन्ति तावत्परिमितः कालविशेषो नक्षत्रसंवत्सरः कथ्यते, अथ च एको नक्षत्रमासो द्वादशभिर्गुणितो नक्षत्रसंवत्सरो भवति, उक्तञ्च—

"नक्खत्तं चंद जोगो बारस गुणिओ य नक्खत्तो ॥"

छाया—नक्षत्रचन्द्रयोगः द्वादशगुणितश्च नाक्षत्रः (संवत्सरः) । इति । अत्र पुनरेकेन ऊनिकृतो नक्षत्र पर्याय योग एको नक्षत्रमासः–सप्तविंशतिरहोरात्राः, एकस्याहोरात्रस्य एकविंशतिः सप्तषष्टि भागः ($२७\frac{२१}{६७}$) एतावत्परिमितो भवति । एष एकस्य नक्षत्रमासस्याहोरात्रपरिमाणरूपो राशिर्यदा द्वादशभिर्गुण्यते तदा यस्तद्गुणनफलराशि र्भवेत् तत्परिमिताहोरात्रप्रमाणो नक्षत्र-संवत्सरो भवति, तच्च गुणनफलमेतावत्परिमितं भवति–सप्तविंशत्यधिकानि त्रीणि अहोरात्रशतानि, एकस्याहोरात्रस्य च एकपञ्चाशत् सप्तषष्टिभागाः($३२७\frac{५१}{६७}$) इति कथमेतदवसीयते इति तद्गणितं प्रदर्श्यते —एकनक्षत्रमासाहोरात्र ($२७\frac{२१}{६७}$) द्वादशभिर्गुणने प्रथमं सप्तविंशति र्द्वादशभिर्गुण्यते जातानि चतुर्विंशत्यधिकानि त्रीणि शतानि (३२४) तत उपरितनो राशिरेकविंशतिः (२१) एषोऽपि द्वादशभिर्गुण्यते जाते द्विपञ्चाशदधिके द्वेशते (२५२), ततोऽस्याऽहोरात्रानयनार्थं सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धास्त्रय., एते पूर्वं स्थितेऽहोरात्रराशौ (३२४) प्रक्षिप्यन्ते जातानि सप्तविंशत्यधिकानि

त्रीणि शतानि शेषा एक पञ्चाशत्सप्तषष्टिभागाः $(३२७\frac{५१}{६७})$ तदेवमायातं नक्षत्रसंवत्सराहोरात्र प्रमाणम्, एतावदहोरात्रप्रमाणो नक्षत्रसंवत्सरो भवतीति १ । द्वितियः **'जुगसंवच्छरे'** युगसंवत्सरः, तत्र युगं पञ्च संवत्सरात्मकम् तत्पूरकः संवत्सरो युगसंवत्सरः । यदा चान्द्र—चान्द्राऽभिवर्धित-चान्द्राऽभिवर्धितरूपाः पञ्च संवत्सराः परिपूर्णा व्यतीता भवेयुस्तदा एको युगसंवत्सरः परिपूर्णो भवतीति ।२। तृतीयः **'पमाण संवच्छरे'** प्रमाणसवत्सरंः युगस्य प्रमाणहेतुः संवत्सरः प्रमाणसंवत्सरः । **'लक्खण संवच्छरे'** लक्षणसंवत्सरः, लक्षणेन यथावस्थितेन उपेतः संवत्सरो लक्षणसंवत्सरः ४ । **'सणिच्छरसंवच्छरे'** शनैश्चरसंवत्सरः, शनैश्चरेण निष्पादितः संवत्सरः पञ्चमःशनैश्चरसंवत्सरः ५ ॥ सू० १ ॥

पूर्वं पञ्चापि संवत्सरा नामतः प्रतिपादिताः, अथैतेषां यथाक्रमं भेदान् प्रदर्शयति—**'ता नक्खत्तसंवच्छरे'** इत्यादि ।

मूलम्—ता णक्खत्तसंवच्छरेणं दुवालसविहे पण्णत्ते, तं जहा सावणे १ भद्दवए २ जाव आसाढे १२। जं वा वहस्सई महग्गहे दुवालसहिं संवच्छरेहिं सव्वं णक्खत्तमंडलं समाणेइ ॥सू० २॥

छाया—तावत् नक्षत्रसंवत्सरः खलु द्वादशविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा श्रावणः १ भाद्रपदः २, यावत् आषाढः १२। यद्वा वृहस्पति र्महा ग्रहः द्वादशभिः संवत्सरैः सर्वं नक्षत्रमण्डलं समानयति। सू० २॥

व्याख्या—'ता' तावत् प्रथमं नक्षत्रसंवत्सरः कथ्यते—**'णक्खत्तसंवच्छरेणं'** नक्षत्रसंवत्सरः खलु **'दुवालसविहे पण्णत्ते'** द्वादशविधः द्वादशप्रकारकः प्रज्ञप्तः कथितः, **'तं जहा'** तद्यथा—**'सावणे भद्दवए'** श्रावणः १, भाद्रपदः २, **'जाव आसाढे'** यावत् आषाढः १२। यावत्पदेन—आश्विनः २ कार्तिकः ४ मार्गशीर्षः ६ पौषः ६ माघः ७ फाल्गुनः ८, चैत्रः ९ वैशाखः १०, ज्येष्ठः ११, एते नव मासा गृह्यन्ते । इह—एकः समस्त नक्षत्रयोगपर्यायो द्वादशभि र्गुणने नक्षत्रसंवत्सरो भवति । एवं ये नक्षत्रसंवत्सरस्य पूरका द्वादश समस्तनक्षत्रयोगपर्यायाः श्रावण भाद्रपदादिनामानस्तेऽपि अवयवे समुदायोपचारान्नक्षत्रसवत्सर इति । यथा—श्रावणादारभ्याषाढपर्यन्तः कालविशेषः नक्षत्रसवत्सरः १। एवं सर्वत्र संयोजनीयम् । अथ द्वितीय प्रकारमप्याह—**'जं वा'** इत्यादि, **'जं वा'** यद्वा—अथवा—**'वहस्सई महग्गहे'** बृहस्पतिर्महाग्रहः **'दुवालसहिं संवत्सच्छरेहिं'** द्वादशभिः सवत्सरैः **'सव्वं नक्खत्तमंडलं'** सर्वमष्टाविंशति नक्षत्रात्मकं नक्षत्रमण्डलं योगमधिकृत्य परिभ्रमणेन **'समाणेइ'** समानयति समापयति, एषोऽपि नक्षत्र संवत्सर-

शब्देन कथ्यते, अयमाशयः—यत् यावता कालेन बृहस्पतिनामा महाग्रहो नक्षत्रैः सह योगमाश्रित्या-भिजिदादीनि अष्टाविंशतिमपि नक्षत्राणि परिसमापयति तावत्परिमितो द्वादशवर्षात्मको नक्षत्रसंवत्सरो भवतीति प्रथमः संवत्सरः ।१॥ सू० २।

अथ द्वितीयं युगसंवत्सरमाह—'ता जुगसंवच्छरेणं' इत्यादि ।

मूलम्—ता जुगसंवत्सरेणं पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा—चंदे १ चंदे २ अभिवड्ढिए ३ चंदे ४ अभिवड्ढिए ५। ता पढमस्स णं चंदसंवच्छरस्स चउव्वीसं पव्वा पण्णत्ता १। दोच्चस्स चंदसंवच्छरस्स चउवीसं पव्वा पण्णत्ता २। तच्चस्स णं अभिवड्ढिय संवच्छ-रस्स छव्वीसं पव्वा पण्णत्ता ।३। चउत्थस्स णं चंदसंवच्छरस्स चउवीसं पव्वा पण्णत्ता ४। पंचमस्स णं अभिवड्ढियवच्छरस्स छव्वीसं पव्वा पण्णत्ता ५। एवामेव सपुव्वावरेणं पंचसंवच्छरिए जुगे एगे चउवीसे पव्वसए भवतीति मक्खायं ॥सू० ३॥

छाया—तावत् युगसंवत्सरः खलु पञ्चविधः, प्रज्ञप्तः तद्यथा—चान्द्रः १, चान्द्रः २, अभिवर्द्धितः३, चन्द्रः४ अभिवर्द्धितः५। तावत् प्रथमस्य खलु चान्द्रसंवत्सरस्य चतुर्विंशति पर्वाणि प्रज्ञप्तानि १। द्वितीयस्य खलु चान्द्रसंवत्सरस्य चतुर्विंशतिः पर्वाणि प्रज्ञप्तानि २। तृतीयस्य खलु अभिवर्द्धित संवत्सरस्य षड्विंशतिः पर्वाणि प्रज्ञप्तानि ३। चतुर्थस्य खलु चान्द्रसंवत्सरस्य चतुर्विंशतिः पर्वाणि प्रज्ञप्तानि४। पञ्चमस्य खलु अभिवर्द्धित संवत्सरस्य षड्विंशतिः पर्वाणि प्रज्ञप्तानि ५। एवमेव सपूर्वापरेण पञ्चसांवत्सरिके युगे चतुर्विंशं पर्वशतं (१२४) भवतीत्याख्यातम् ॥सू० ३॥

व्याख्या—'ता जुगसंवच्छरेणं' इति, 'ता' तावत् 'जुगसंवच्छरेणं' युगसंवत्सरः खलु युगपूरकः संवत्सरः स खलु 'पंचविहे पण्णत्ते' पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, 'तं जहा' तद्यथा—'चंदे १ चंदे २ अभिवड्ढिए ३ चदे ४ अभिवड्ढिए ५, चान्द्रः १ चान्द्रः२ अभिवर्द्धितः ३ चान्द्रः ४ अभिवर्द्धितः ५' एतन्नामानः पञ्च संवत्सराः कथिता इति, तथा चोक्तम्—

चंदो चंदो अभिवड्ढिओ य चंदोऽभिवड्ढिओ चेव ।
पंच सहियं जुगमिणं दिट्ठं तेलुक्कदंसीहिं ॥१॥
पढमविइया उ चंदा अभिवड्ढियं वियाणाहि ।
चंदं चेव चउत्थं, पचममभिवड्ढियं जाण ॥२॥

छाया—चान्द्रः १ चान्द्रः २ अभिवर्द्धितश्च ३, चान्द्रः ४ अभिवर्द्धितश्चैव ५।
पञ्चसहितं युगमिदं दृष्टं त्रैलोक्यदर्शिभिः ॥१॥
प्रथमद्वितीयौ तु चान्द्रौ, तृतीयमभिवर्द्धित विजानीहि ।
चान्द्रं चैव चतुर्थं पञ्चममभिवर्द्धितं जानीहि ॥२॥ इति

अथैते पञ्च चान्द्रादि संवत्सराः पृथक् यथाक्रमं व्याख्यायन्ते, तत्र प्रथमं, चान्द्रसंवत्सरस्य व्याख्या क्रियते, तथाहि—

अमावास्या पौर्णमासीनां द्वादश द्वादश परिवर्त्ता यावताकालेन परिसमाप्ता भवन्ति तावकालविशेषश्चान्द्रः संवत्सरो निष्पद्यते, उक्तञ्च—

"आमावासा पुण्णिमा–परियट्टा जावएण कालेण
बारस होंति य तावं, संवच्छरो हवइ चंदो ॥१॥

"अमावास्या पूर्णिमा परिवर्त्तायावत्केन कालेन
द्वादश द्वादश भवन्ति च तावान् (कालविशेषः) संवत्सरो भवतिचान्द्रः ॥१॥ इतिच्छाया ।

अमावास्या पूर्णिमा परिवर्त्तो यावता कालेन भवति सकाल विशेषश्चान्द्रमासः एकस्मिन् चान्द्रमासेऽमावास्या पूर्णिमयोरेकैकयोरेव सद्भावात् । तस्मिंश्च चान्द्रमासे कियन्ति रात्रिन्दिवानि भवन्ति ? इत्यत्राह–एकस्य चान्द्रमासस्य–एकोनत्रिंशदहोरात्राः, एकस्याहोरात्रस्य च द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः ($२९\frac{३२}{६२}$) भवन्ति । एकस्मित् चान्द्रसंवत्सरे द्वादश मासा भवन्तीति द्वादशभिर्गुण्यन्ते, जातानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि त्रीणि शतानि रात्रिन्दिवानि, एकस्य रात्रिन्दिवस्य द्वादश द्वाषष्टिभागाः ($३५४\frac{१२}{६२}$) एतत्परिमाणश्चान्द्रसंवत्मर आयाति । १ । एवं द्वितीयश्चान्द्रसंवत्सरोऽपि परिभावनीयः ।२।

अथ तृतीयोऽभिवर्द्धितसंवत्सरो व्याख्यायते यस्मिन् संवत्सरेऽधिकमासो भवति सोऽभिवर्द्धितसंवत्सरः कथ्यते । अस्मिन् संवत्सरे त्रयोदश चान्द्रमासा भवन्ति । तथा चोक्तम्—"तेरस य चंदमासा, एसो अभिवड्ढिओ ३ वोद्धव्वो" त्रयोदश च चान्द्रमासाः एषः अभिवर्द्धितस्तु बोद्धव्यः, इतिच्छाया । अथ चैकचान्द्रमासाहोरात्रसंख्या त्रयोदशभिर्गुणनीया भविष्यति, सा च संख्या–एकोनत्रिंशदहोरात्राः, एकस्य चाहोरात्रस्य द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः ($२\frac{३२}{६२}$) इतिपूर्वं प्रदर्शितमेव, अस्य राशेस्त्रयोदशभिर्गुणने जातानि त्र्यशीत्यधिकानि त्रिशताहोरात्राणि, एकस्याहोरात्रस्य च चतुश्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः ($३८३\frac{४४}{६२}$) । एतावदहोरात्रपरिमाणोऽभिवर्द्धितसंवत्सरो निष्पद्यते ३ । एवं चतुर्थपञ्चमयोश्चान्द्राभिवर्द्धितयोरपि संवत्सरयोरहोरा-

त्रसंख्या परिभावनीया। सर्वसंकलनया एकस्य युगस्य—अष्टादशशतानि त्रिंशदधिकानि अहोरात्राणि-भवन्तीति।

अथ कथमधिकमाससंभवः येनाऽभिवर्द्धितसंवत्सर उपजायते ? एषोऽधिकमासश्च कियता कालेन संभवतीति प्रदर्श्यते—अत्र युगं चान्द्र—चान्द्रा-ऽभिवर्द्धित—चान्द्रा-ऽभिवर्द्धितेति पञ्चसंवत्सरात्मकं भवति, सूर्यसंवत्सरापेक्षया च विचार्यमाणेऽस्मिन् युगे अन्यूनातिरिक्तानि पञ्चवर्षाणि भवन्ति। अथ सूर्यमासः सार्धत्रिंशदहोरात्रप्रमाणः (३०॥), चान्द्रमासश्च पूर्वं प्रदर्शितो द्वात्रिंश द्वाषष्टिभाग-सहित एकोनत्रिंशदहोरात्रप्रमाणः (२९ $\frac{३२}{६२}$) ततो गणितपरिपाट्या सूर्यसंवत्सर सम्बन्धित्रिंशन्मासातिक्रमे एकश्चान्द्रमासोऽधिक आयाति। स च कथं लभ्यते इति ज्ञापनायात्र वृद्धसंप्रदायोक्त करण गाथा प्रोच्यते—

"चंदस्स जो विसेसो, आइच्चस्स य हविज्जमासस्स
तीसइ गुणिओ संतो, हवइ अहिमासगो एक्को" ॥१॥

छाया—चन्द्रस्य यो विश्लेषः, आदित्यस्य च भवेत् मासस्य। त्रिंशद्गुणितः सन् भवति खलु अधिकमास एकः ॥१॥ इति।

अस्या गाथाया अर्थः प्रदर्श्यते—'आइच्चस्स मासस्स' आदित्यस्य मासस्य मध्यात् 'चंदस्स, जो विसेसो हविज्ज' आदित्यसंवत्सरसम्बन्धिनो मध्यात् चन्द्रस्य चन्द्रमासस्य विश्लेषः शोधन-रूपो भवेत् स 'तीसइ गुणिओ संतो' त्रिंशद्गुणितः सन् 'एक्को अहिमासओ' एकोऽधिकमासो भवतीति गाथार्थः। एतद्गणितं यथा—सूर्यमासः सार्धत्रिंशद् दिनप्रमाणः (३०॥) चन्द्रमासश्च एकोनत्रिंशद् दिनानि, एकस्य च दिनस्य द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागाः (२९ $\frac{३२}{६२}$) इतिसूर्यमास दिनेभ्यः चन्द्रमासदिनानि द्वाषष्टिभागसहितानि शोध्यन्ते ततः स्थितं पश्चादेकं दिनमेकेन द्वाषष्टिभागेन न्यूनम्, एतच्च सूर्यमासात् चन्द्रमासस्य प्रतिमाससत्कं न्यूनत्वम्। तच्च दिनत्रिंशता गुण्यते जातानि त्रिंशद्दिनानि (३०) एकश्च द्वाषष्टिभागोऽपि त्रिंशता गुण्यते जाता एकस्य दिनस्य त्रिंशद्द्वाषष्टि-भागाः (३०) एते त्रिंशद्द्वाषष्टिभागाः त्रिंशद्दिनेभ्यः शोध्यन्ते, स्थितानि शेषाणि एकोनत्रिंशद्दिनानि एकस्य च दिनस्य द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः (२९ $\frac{३२}{६२}$)। कथमित्याह—त्रिंशद्दिनेभ्य एकं रूपं निष्कास्यते,—स्थितानि शेषाणि एकोनत्रिंशद्दिनानि, निष्कासितस्य एकस्य द्वाषष्टि भागकरणार्थं तद् द्वाषष्ट्या गुण्यते जाता द्वाषष्टिः (६२) अस्माद् राशे स्त्रिंशत् शोध्यन्ते स्थिताः शेषा द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः (३२) तत आगतो यथोक्त प्रमाणश्चान्द्रमासः (२९—$\frac{३२}{६२}$) इत्येवंरूपो भवति सूर्यसं-

वत्सरस्य त्रिंशन्मासातिक्रमे एकोऽधिकमासः । अत्रान्याऽपि सरला रीतिः प्रदर्श्यते—सार्धत्रिंशद्दिन-प्रमाणात्सूर्यमासात् द्वात्रिंशद् द्वाषष्टि भागसहितानि एकोनत्रिंशद्दिनानि, चान्द्रामासस्य शोध्यन्ते स्थितमेकं दिनमेकेन द्वाषष्टिभागेन न्यूनं, तच्च एक षष्टि र्द्वाषष्टिभागाः $(\frac{६१}{६२})$ एतावत्प्रमाणं भवति, एतच्च सूर्यमासे प्रतिमासं चन्द्रमासस्य न्यूनत्वं सिद्धम्, एतच्च सूर्यस्य त्रिंशन्मासैः संघातीभूय एकश्चन्द्रमासोऽधिको निष्पद्यते तदेव दर्श्यते, एते एकषष्टि र्द्वाषष्टिभागाः सूर्यस्य त्रिंशन्मासैं र्गुण्यन्ते जातानि त्रिंशदधिकानि अष्टादशशतानि (१८३०) द्वाषष्टिभागाः, एषां मासदिनानयनर्थं द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धानि एकोनत्रिंशद्दिनानि स्थिताः शेषा द्वात्रिंशद्द्वाषष्टि भागाः । एतावत्परिमित एकश्चन्द्रमास स्त्रिंशता सूर्यमासैरधिकोऽलभ्यते, अयं भावः—सूर्यस्य त्रिंशन्मासाः चन्द्रस्य एकत्रिंशन्मासैः परिपूर्यन्ते एष एवाधिको मासो भवतीति । एकस्मिन् युगे षष्टिः सूर्यमासा भवन्ति ततः पुनरपि सूर्यसंवत्सरस्य त्रिशन्मासातिक्रमे द्वितीयोऽधिकमासो भवति । एवमेकस्मिन् युगे युगार्द्धे एकैकाधिकमाससंभवाद् द्वौ अधिकमासौ भवतः, तथा चोक्तम्—

सट्ठीए अइयाए, हवइ हु अहिमासगो जुगद्धंमि ।
वावीसे पव्वसए हवइ य वीओ युगद्धम्मि" ॥१॥

छाया—षष्टौ अतीतायां भवति खलु अधिकमासो युगार्धे ।
द्वाविंशति पर्वशते भवति च द्वितीयो युगार्धे ॥१॥ इति ।

अयं भावः—षष्टौ पर्वणाम्—अमावास्या पूर्णिमा रूपाणाम् पर्वणामित्यर्थः षष्टि संख्यायां 'अईयाए' अतीतायां व्यतिक्रान्तायां सत्याम् त्रिंशतिमासेषु पर्वणां षष्टि संभवात् तदग्रे 'जुगद्धम्मि' युगार्धे 'अहिमासो हवइ' अधिकमासो भवति सूर्यस्य त्रिशन्मासरूपे युगार्धे चन्द्रस्य एकत्रिंशन्मासा इति भावः । एवं 'वावीसे पव्वसए' द्वाविंशत्यधिके पर्वशते द्वाविंशत्यधिकैकशततमे पर्वणि व्यतीते सति 'जुगद्धंमि' युगार्धे द्वितीये युगार्धे युगान्ते इत्यर्थः पुनरपि 'वीओ हवइ' द्वितीयोऽधिमासो भवति, एकस्मिन् युगेऽधिकमासद्वयसंभवादिति सूर्यस्य षष्टि मासेषु चन्द्रस्य द्वाषष्टि मासाः परिपूर्णा भवन्तीति भावः, तेन युगमध्ये तृतीये संवत्सरेऽधिकमासः, ततः पञ्चमे, इति युगेऽभिवर्धितसंवत्सरौ द्वौ भवत इति ।

अथैकस्मिन् युगे सर्वसंख्यया कियन्ति पर्वाणि भवन्तीति प्रदर्शयितुकामः प्रति संवत्सरस्य पर्वसंख्यामाह—'ता पढमस्स णं' इत्यादि ।

'ता' तावत् 'पढमस्स णं' प्रथमस्य खलु 'चंदसंवच्छरस्स' चान्द्रसंवत्सरस्य 'चउव्वीसं पव्वा पण्णत्ता' चतुर्विंशतिः पर्वाणि अमावास्या पूर्णिमारूपाणि प्रज्ञप्तानि चान्द्रसंवत्सरस्य द्वादशमासात्मकत्वात्, एकैकस्मिन् मासे च पर्वद्वयसद्भावात् ।१। 'दोच्चस्स णं'

द्वितीयस्य खलु 'चंदसंवच्छरस्स' चान्द्रसंवत्सरस्य 'चउव्वीसं पव्वा पण्णत्ता' चतुर्विंशतिः पर्वाणि प्रज्ञप्तानि, अत्रैव पूर्वोक्तकारणसद्भावात् ।२। 'तच्चस्स णं' तृतीयस्य खलु 'अभिवड्ढिय संवच्छरस्स' अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य 'छव्वीसं पव्वा पण्णत्ता' षड्विंशतिः पर्वाणि प्रज्ञप्तानि अस्य त्रयोदशमाससद्भावात् ३ । 'चउत्थस्स णं' चतुर्थस्य खलु 'चंदसंवच्छरस्स' चान्द्रसंवत्सरस्य 'चउव्वीसं पव्वा पण्णत्ता' चतुर्विंशतिः पर्वाणि प्रज्ञप्तानि अस्यापि द्वादशमासात्मकत्वात् ।४। 'पंचमस्स णं' पञ्चमस्य खलु 'अभिवड्ढिय संवच्छरस्स' अभिवर्द्धित संवत्सरस्य 'छव्वीसं पव्वा पण्णत्ता' षड्विंशतिः पर्वाणि प्रज्ञप्तानि, पूर्ववदस्यापि त्रयोदशमासात्मकत्वात् ५ । अथ युगपर्वणां सर्वसंकलनामाह — 'एवामेव' इत्यादि 'एवामेव' एवमेव अनेनैव प्रकारेण 'सपुव्वावरेणं' सपूर्वापरेण पूर्वापरगतसर्वपर्वसंख्यासंमेलनेन 'पंचसंवच्छरिए जुगे' पञ्च सांवत्सरिके पञ्च संवत्सरात्मके युगे एकस्मिन् युगे 'एगे चउव्वीसे पव्वसए भवइ' एकं चतुर्विंशशतं चतुर्विंशत्यधिकं पर्वशतं भवति चतुर्विंशत्यधिकैकशतसंख्यकानि पर्वाणि एकस्मिन् युगे भवन्तीति भावः, 'इति मक्खायं' इत्याख्यातं इति कथितं सर्वैः पूर्वतीर्थकरैर्मया चेति सूत्रार्थः ॥३॥

युग संवत्सरयन्त्रम्

सं.-सं.	संवत्सरनामानि	मास सख्या	पर्व संख्या	अहोरात्र सख्या	द्वापष्टिभाग संख्या
१	चान्द्र	१२	२४	३५४	१२
२	चान्द्र	१२	२४	३५४	१२
३	अभिवर्द्धित	१३	२६	३८३	४४
४	चान्द्रः	१२	२४	३५४	१२
५	अभिवर्द्धितः	१३	२६	३८३	४४
संकलन	५	६२	१२४	१८२८	१२४

द्वापष्टि भाग समेलनेन, १८३० अहोरात्राणि युगस्य

अथ कस्मिन् अयने कस्मिन् वा मण्डले किं पर्वपरिसमाप्तिमुपैतीति विचारणायां वृद्धोक्ता श्रुतस्त्वः पर्वकरणगाथा अत्र प्रदर्श्यन्ते—

"इच्छपव्वेहि गुणिउं अयणं रूवऽहियं तु कायव्वं । सोऽज्झं च हवइ एत्तो, अयणक्खेत्तं उडुवइस्स ॥१॥

जइ अयणा सुज्झंति, त्तइपव्वजुया उ रूवसंजुत्ता ।
तावइयं तं अयणं, नत्थि निरंसंमि रूवजुयं ॥२॥

कसिणंमि होइ रूव,—प्पक्खेवो दो य होंति भिन्नंमि ।
जाइया तावइया, एए ससिमंडला होंति ॥३॥

ओयंमि उ गुणकारे, अब्भितरमंडले हवइ आई ।
जुग्गं मिय गुणकारे, बाहिरगे मंडले आइ ॥४॥

छाया—इच्छापर्वभिः गुणयित्वा अयनं रूपाधिकं तु कर्त्तव्यम् ।
शोध्यं च भवति अस्मात् अयनक्षेत्रं उडुपतेः ॥१॥
यावन्ति अयनानि शुद्धयन्ति तावत्पर्वयुतानि तु रूपसंयुक्तानि ।
तावत्कं तद् अयनं, नास्ति निरंशे रूपयुतम् ॥२॥
कृत्स्ने भवति रूप प्रक्षेपः द्वौ च भवतः भिन्ने ।
यावत्कानि तावत्कानि, एतानि शशिमण्डलानि भवन्ति ॥३॥
ओजसितु गुणकारे, अभ्यन्तरमण्डले भवति आदिः ।
युग्मे च गुणकारे अभ्यन्तरमण्डले भवति आदिः ॥४॥

आसां गाथानां क्रमेण संक्षेपतो व्याख्या क्रियते—'इच्छापव्वेहिं' इच्छापर्वभिः यस्मिन् पर्वणि अयनमण्डलादि ज्ञातु मिच्छेत् तद् 'इच्छापव्वेहिं' स्वेच्छितपर्वभिः 'गुणेउं' गुणयित्वा किमिति ? ध्रुवराशिम् । अथ कोऽसौ ध्रुवराशिरिति ध्रुवराशिः प्रदर्श्यते—अत्र ध्रुवराशिप्रतिपादिका गाथा प्रोच्यते—

"एगंच मंडलं मंडलस्स सत्तट्ठभाग चत्तारि ।
नव चेव चुण्णियाओ, इगतिसकरण छेएण ॥१॥"

अस्य छाया—एकं च मण्डलं मण्डलस्य सप्तषष्टि भागश्चत्वारः ।
नव चैव चूर्णिका भागाः, ऐकत्रिंशत्कृतेन छेदेन ॥१॥ इति ।

अस्या अयमर्थः—एकं मण्डलम्, एकस्य च मण्डलस्य चत्वारः सप्तषष्टिभागाः, तथा एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य एकत्रिंशत्कृतेन छेदेन नव चूर्णिका भागाः ($१\frac{४}{६७}\Big|\frac{९}{३१}$) इति गाथार्थः । एतत्प्रमाणो ध्रुवराशिः स्थाप्यते । अयं च पर्वगतक्षेत्राद् अयनगतक्षेत्रस्यापगमे शेषी भूतो वर्त्तते । अस्योत्पत्तिरग्रे वक्ष्यते । तत एवम्भूतं ध्रुवराशिं इच्छापर्वभिः इच्छितपर्वभिर्गुणयित्वा तत्पश्चात् 'अयणं रूवाहियं तु कायव्वं' अयनं रूपाधिकं तुकर्त्तव्यम् एकं रूपमयने प्रक्षेपणीय मित्यर्थः । एवं गुणितस्य मण्डलराशे र्यदि चन्द्रस्यायनक्षेत्रं परिपूर्णमधिकं वा संभाव्यते तदा 'सोज्झं च हवइ एत्तो' एतस्माद् इच्छितपर्वसंख्या गुणितात् मण्डलराशेः 'अयणक्खेत्तं उडुवइस्स' उडुपतेः चन्द्रस्यायनक्षेत्रं शोध्यं भवति ॥१॥ 'जइ' इत्यादि । 'जइ' यावन्ति यावत्संख्यकानि अयनानि 'सुज्झंति' शुद्धयन्ति 'तइपव्वजुयाइ' तावत्संख्यकपर्वयुतानि कृत्वा भूयः 'रूवसंजुत्ता' रूपयुक्तानि एकरूपयुक्तानि च अयनानि क्रियन्ते । एवं करणे यावत्कं भवति 'तावइयं तं अयणं' तावत्कमेव तदयनं विज्ञेयम् 'नत्थि निरंसंमि रूव जुयं' नास्ति निरंशे रूपयुक्तं तत्कर्त्तव्यम् । यदि पुनः परिपूर्णानि

मण्डलानि शुद्ध्यन्ति राशिश्च पश्चान्निर्लेपो जायते तदा तदयनसंख्यानं निरंशं सद् रूपयुक्तं नास्ति, तत्र निरंशेऽयनराशौ रूपं न प्रक्षिप्यते इति भावः ॥२॥ 'कसिणंमि' इत्यादि 'कसिणंमि' कृत्स्ने परिपूर्णे राशौ रूपप्रक्षेपो भवति, मण्डलराशौ एकं रूपं प्रक्षेपणीयं भवतीतिभावः। 'भिन्नंमि' भिन्ने खण्डे भिन्नराशौ अंश सहिते राशौ सति मण्डलराशौ 'दो य होंति' द्वे रूपे प्रक्षेपणीये भवतः। प्रक्षेपेच कृते सति 'जावइया' इति यावन्ति मण्डलानि भवन्ति, यावान् मण्डलराशिर्भवतीत्यर्थः 'तावइया' तावन्ति एतानि राशिमण्डलानि इच्छिते पर्वणि भवन्ति ॥३॥ तथा 'ओयंमि उ' इत्यादि, 'ओयंमि गुणकारे' ओजसि विषमे गुणकारे सति, यदि इच्छितेन पर्वणा ओजो रूपेण विषमलक्षणेन गुणकारो भवेत्तदा 'अब्भितरमंडले 'हवइ आई' अभ्यन्तरमण्डले आदिर्द्रष्टव्यः। अथ च 'जुग्गंमि य गुणाकारे' युग्मे चेति समसंख्यके गुणकारे सति, यदि इच्छितेन पर्वणा समलक्षणेन समसंख्यकपर्वणा गुणकारो भवेत्तदा 'बाहिरगे मंडले आई'—बाह्ये मण्डले आदिर्विज्ञेयः ॥४॥ इतिकरणगाथाऽक्षरार्थः ॥

अथैतेषां भावनाप्रकारः प्रदर्श्यते–अथ कोऽपि पृच्छेत्–यत् युगादौ प्रथमं पर्व कस्मिन्नयने कस्मिन् वा मण्डले समाप्तिमेति ? तत्र प्रथमं पर्व पृष्टमितिवामपार्श्वे पर्वसूचक एक–रूपोऽङ्कः स्थापनीयः, ततस्तस्यैव अनुश्रेणिदक्षिणपार्श्वे अयनसूचक एककः स्थाप्यते, तस्य चानुश्रेणि मण्डलसूचक एककः स्थापनीयः, तस्य मण्डलस्य चाधस्तात् चत्वारः सप्तषष्टि भागाः स्थाप्याः तेषामप्यधस्तात् नव एकत्रिंशद्भागाः स्थापनीयाः यथा–(पर्व/१) अयनं/१ मण्डलम्/१–$\frac{४}{६७}$ $\frac{९}{३१}$ एष पर्वोऽपि ध्रुव राशि रस्ति तत एक संख्यकमयनमेकेन इच्छितेन पर्वणा गुण्यते जातमेकमेव, ततः 'अयणं रूवाहियं च कायव्वं' इति वचनात् एकक लक्षणेऽयनराशौ एकं रूप प्रक्षिप्यते जातं द्विकम्, एतच्च एककलक्षणात् मण्डलराशेर्न शुद्ध्यति ततः 'दोयहोंति भिन्नंमि' इति वचनात् भिन्ने खण्डे मण्डलराशौ द्वेरूपे प्रक्षिप्यते जातो मण्डलराशिस्त्रिकरूपः तदेव मागतं प्रथमं पर्व(२ अयनं ३ तृतीय–मण्डलस्य ($\frac{४}{६७}$ । $\frac{९}{३१}$) द्वितीयेऽयने, तृतीयस्य मण्डलस्य 'ओयंमि गुणकारे अब्भितरमंडले हवइ आई' ओजसि विषमे गुणकारे अभ्यन्तरमण्डले आदि र्भवतीति वचनात् अत्र एककरूप विषमाङ्कत्वेन अभ्यन्तरवर्तिनः अभ्यन्तरवर्त्ति तृतीयमण्डलस्य चतुर्पु सप्तषष्टिभागेषु, एकस्य च सप्तषष्टि भागस्य नवसु एकत्रिंशद्भागेषु(२ अयने ३ तृतीयमण्डलस्य $\frac{४}{६७}$ । $\frac{९}{३१}$ गतेषु समाप्तिमुपैतीति। अयनंचात्र चन्द्रस्य विज्ञेम्। तच्च चन्द्रायणं युगस्यादौ

प्रथममुत्तरायणं, द्वितीयं दक्षिणायनमिति द्वितीये दक्षिणे चन्द्रायणे अभ्यन्तरवर्त्तिनस्तृतीयस्य मण्डलस्येति विज्ञेयम् १।

तथा अन्यः कोऽपि पृच्छति–द्वितीयं पर्व कस्मिन्नयने कस्मिन् वा मण्डले समाप्तिमेति ? अत्र द्वितीयं पर्व पृष्टमिति स एव प्राक् प्रोक्तो ध्रुवराशिः (अ. म. १–१– ४/६७ | ९/३१) समस्तोऽपि द्वाभ्यां गुण्यते ततो जाते द्वे अयने, द्वे मण्डले, अष्टौ सप्तषष्टिभागाः, अष्टादश एकत्रिंद्भागाः (अ. २– ० २– ८/६९ | १८/३१) इति, 'अयणं रूवाहियं तु कायव्वं' अयनं रूपाधिकं तु कर्त्तव्यम्, इति वचनात् द्विकरूपेऽयने एकं प्रक्षिप्यते जातं त्रिकम् (अ./३) एतदयनं च मण्डलराशेस्तो कत्वान्न शुद्धयति, ततः 'दो य होंति भिन्नंमि' इति वचनात् भिन्ने-खण्डेऽस्मिन् द्विकरूपे मण्डलराशौ द्वे प्रक्षिप्येते ततो जातश्चतुष्करूपो मण्डलराशिः (४) ततः समागतं द्वितीयं पर्व तृतीयेऽयने चतुर्थस्य मण्डलस्य 'जुग्गंमि य गुणकारे बाहिरगे मंडले हवइ आई' युग्मे च गुणकारे बाह्ये मण्डले भवति आदिः, इति वचनात् अत्र द्विकरूपसमराशित्वेन बाह्यमण्डला दर्वाग् वर्तिनो मण्डलस्य अष्टसु सप्तषष्टिभागेषु, एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य अष्टादशसु एक त्रिंशद्भागेषु (३–४– ८/६७ | १८/३१) गतेषु परिसमाप्तिं समुपैति २।

एवं चतुर्दशपर्वप्रश्नविषये ध्रुवराशिः (१–१ ४/६७ | ९/३१) चतुर्दशभिर्गुण्यते, गुणने च जातानि अयनानि चतुर्दश (१४) षट् पञ्चाशत् सप्तषष्टिभागाः (५६) षड्विंशत्यधिकमेकं शतं च एक त्रिशद्भागाः [१४–१४– ५६/६७ | १२६/३१] अत्र एकत्रिंशाद्भागाः [१२६] एकत्रिंशतोऽधिकत्वाद् एकत्रिंशता विभज्य लब्धाङ्काः सप्तषष्टिभागेषु प्रक्षेप्याः, शेषाश्चूर्णिका भागा ज्ञातव्याः, इति गाणितेन षड्विंशत्यधिकैकशतस्य एकत्रिंशता भागो ह्रियते, लब्धाश्चत्वारः सप्तषष्टिभागा शेषौ द्वौ चूर्णिका भागौ तिष्ठतः, चत्वारो लब्धाङ्काः उपरितने षट्पञ्चाशद्रूपे सप्तषष्टिभागराशौ प्रक्षिप्यन्ते जाताः षष्टिः सप्तषष्टि भागाः, तत आगत एष राशिः– [१४–१४– ६०/६७ | २/३१] इति।

ततः चतुर्दशभ्यश्च मण्डलेभ्यस्त्रयोदशभिर्मण्डलैस्त्रयोदश भिश्च सप्तषष्टिभागैरयनं शुद्धं, तेन पूर्वाण्ययनानि चतुर्दशसख्यकानि युतानि क्रियन्ते, ततः 'अयणं रूवाहियं तु कायव्वं' अयनं रूपाधिकं

तु कर्त्तव्यम्, इति वचनात् भूयोऽपि तत्रैकं रूपं प्रक्षिप्यते, जातानि षोडश अयनानि, सप्तषष्टि भागाश्च चतुष्पञ्चाशत् [५४] मण्डलराशौ उद्धरितास्तिष्ठन्ति, ते षष्टिरूपे सप्तषष्टिभागराशौ प्रक्षिप्यन्ते जाताश्चतुर्दशोत्तरशतसंख्यकाः [११४] अस्य सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धमेकं मण्डलम् पश्चात् सप्तचत्वारिंशत् [४७] सप्तषष्टि भागास्तिष्ठन्ति, ततः 'दो य होंति भिन्नंमि' द्वे च भवतो भिन्ने [प्रक्षेपणार्थे] इति वाचनात् मण्डलराशौ द्वे प्रक्षिप्येते जातानि त्रीणि मण्डलानि, चतुर्दशभिश्चात्र गुणितं कृतम् चतुर्दशराशिश्च यद्यपि युग्मरूपस्तथाऽप्यत्र मण्डलराशेरेकमयनमधिकं प्रविष्टमितित्रीणि मण्डलानि अभ्यन्तमण्डलादारभ्य द्रष्टव्यानि, तत आयातम् — षोडशेऽयने अभ्यन्तरमण्डलादारभ्य तृतीये मण्डले सप्त चत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागेषु व्यतीतेषु, एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य द्वयोरेक त्रिंशद्भागयोर्व्यतीतयोः सतो चतुर्दशं पर्व समाप्तिमुपयातीति ।१४।

अथ द्वाषष्टितमपर्वविषये प्राह—अत्र कोऽपि पृच्छति द्वाषष्टितमं पर्व कस्मिन्नयनं कस्मिंश्च मण्डले समाप्तं भवतीति । अत्रापि स पूर्वोक्तो ध्रुवराशिः—($\frac{\text{अ—म.}}{\text{१—१}}\ \frac{\text{४}}{\text{६७}}\Big|\frac{\text{९}}{\text{३१}}$) द्वाषष्टि पर्वविषये पृष्टमिति ध्रुवराशिर्द्वाषष्ट्या गुण्यते जातानि द्वाषष्टिरयनानि, द्वाषष्टिरेव मण्डलानि एकेन गुणिते तदेव भवतीति वचनात्, चतुर्णां सप्तषष्टिभागानां द्वाषष्ट्या गुणने जाता अष्टचत्वारिंशदधिक द्विशतसंख्यकाः (२४८) सप्तषष्टिभागाः, नवानामेकत्रिंशद्भागानां द्वाषष्ट्या गुणने जाता अष्टपञ्चाशदधिक पञ्चशत संख्यका एकत्रिंशद्भागाः (६२—६२ $\frac{\text{२४८}}{\text{६७}}\Big|\frac{\text{५५८}}{\text{३१}}$) । प्रथममष्टपञ्चाशदधिकानां पञ्चशतानामेकत्रिंशद्भागानां सप्तषष्टि भागानयनार्थमेकत्रिंशता भागो ह्रियते लब्धाः परिपूर्णा अष्टादश सप्तषष्टिभागाः, एते उपरितने अष्टचत्वारिंशदधिकशतद्वयरूपे (२४८) सप्तषष्टिभागराशौ प्रक्षिप्यन्ते जाते षट् षष्ट्यधिके द्वे शते (२६६) सप्तषष्टिभागानाम् (६२—६२—$\frac{\text{२६६}}{\text{६७}}$) । उपरि च यानि द्वाषष्टि मण्डलानि सन्ति तेभ्योऽयनस्य मण्डलसत्कत्रयोदशसप्तषष्टिभागयुक्तत्रयोदशमण्डलात्मकत्वेन द्विपञ्चाशता मण्डलै एकस्य च मण्डलस्य द्विपञ्चशता सप्तषष्टि भागै(५२—$\frac{\text{५२}}{\text{६७}}$) श्चत्वारि अयनानि लब्धानि, तान्ययनराशौ प्रक्षिप्यन्ते जातानि षट्षष्टिरयनानि (६६) पश्चात्तिष्ठन्ति नवमण्डलानि, एकस्य मण्डलस्य च पञ्चदश सप्तषष्टिभागाः (९—$\frac{\text{१५}}{\text{६७}}$) । एते पञ्चदश सप्तषष्टिभागाः सप्तषष्टिभागराशौ (२६६) प्रक्षिप्यन्ते जाते एकाशीत्यधिके द्वे शते (२८१) अस्य राशे सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धानि चत्वारि मण्डलानि, शेषास्तिष्ठन्ति त्रयोदश सप्तषष्टिभागा मण्डलस्य, एते च मण्डलराशौ प्रक्षिप्य-

न्ते, जातानि त्रयोदश मण्डलानि, त्रयोदशमण्डलैः त्रयोदशभिश्च सप्तषष्टिभागैः ($१३-\frac{१३}{६७}$) परिपूर्णमेकमयनं लब्धमिति तदयनराशौ प्रक्षिप्यते, जातानि सप्तषष्टिः (६७) अयनानि, **'नत्थि निरंसंमि रूव जुयं'** इति वचनादयनराशौ रूपं न प्रक्षिप्यते, केवलं **'कसिणंमि होइ रूवपक्खेवो'** इति वचनान्मण्डले एकं रूपं न्यस्यते, द्वाषष्ट्या च गुणकारः कृत इति द्वाषष्टि राशि र्युग्मोऽस्ति, यान्यपि च चत्वार्ययनानि तान्यपि युग्मरूपाणि, रूपं चात्राधिकमेकं न प्रक्षिप्तमिति पञ्चममयनं तत्स्थाने द्रष्टव्यमित्यत्र बाह्यमण्डलमादिर्विज्ञेयम्, तत आयातम्–सप्तषष्टावयनेषु परिपूर्णेषु व्यतीतेषु बाह्यमण्डले प्रथमरूपे परिसमाप्ते सति द्वाषष्टितमं पर्व परिपूर्णतां प्राप्तमिति ।६२।

अनेन रीत्या यथेच्छितानि सर्वाणि संयोज्य कर्त्तव्यानि परिभावनीयानि वा अथ जिज्ञासुजनानुग्रहाय पर्वायनप्रस्तारोऽत्र लेशतः प्रदर्श्यते – प्रथम पर्व द्वितीयेऽयने तृतीये मण्डले, तृतीयस्य मण्डलस्य चतुर्षु सप्तषष्टिभागेषु, एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य नवसु एकत्रिंशद्भागेषु— य.–म.–मं. (१–२–३– $\frac{४}{६७}\Big|\frac{९}{३१}$) गतेषु समाप्तमिति ध्रुवराशि कृत्वा पर्वायनमण्डलेषु प्रत्येकमेकैकं रूपं प्रक्षेपणीयम्, भागेषु च तावत्सङ्ख्याका भागा प्रक्षेप्तव्याः, जात एतावान् राशिः–द्वे पर्वे त्रीणि अयनानि, चत्वारि मण्डलानि, अष्ट सप्तपष्टिभागाः, अष्टादश एकत्रिंशद्भागाः— प.–अ. म. (२–३–४– $\frac{८}{६७}\Big|\frac{१८}{३१}$) इति । मण्डले चायनक्षेत्रे परिपूर्णे त्रयोदश मण्डलानि, एकस्य च मण्डलस्य त्रयोदशसप्तषष्टिभागा ($१३-\frac{१३}{६७}$), एतावत्प्रमाणमयनक्षेत्रं शोधयित्वाऽयनराशौ प्रक्षेपणीयम्, अनया रीत्याऽग्रे वक्ष्यमाणप्रस्तारः सम्यक्तया विचारयितव्यः । स प्रस्तारश्चायम्— प्रथमं पर्व द्वितीयेऽयने, तृतीये मण्डले, तृतीयस्य मण्डलस्य चतुर्षु सप्तषष्टि भागेषु, एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य नवसु एकत्रिंशद्भागेषु अ.–म. (२–३–$\frac{४}{६७}\Big|\frac{९}{३१}$) गतेषु समाप्तम् १ द्वितीयं पर्व–तृतीयेऽयने चतुर्थे मण्डले, चतुर्थस्य मण्डलस्य च अष्टसु सप्तषष्टिभागेषु, एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य अष्टादशसु एकत्रिंशद्भागेषु ३–४ $\frac{८}{६७}\Big|\frac{१८}{३१}$ गतेषु समाप्तम् २ । तृतीयं पर्व--चतुर्थेऽयने, पञ्चमे मण्डले, पञ्चमस्य मण्डलस्य च द्वादशसु सप्तषष्टि भागेषु, एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य सप्तविंशतौ एकत्रिंशद्भागेषु ४--५- $\frac{१२}{६७}\Big|\frac{२७}{३१}$ गतेषु समाप्तम् ३ । चतुर्थे पर्व पञ्चमेऽयने, षष्ठे मण्डले षष्ठस्य मण्डलस्य च सप्तदशसु सप्तषष्टि भागेषु, एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य पञ्चसु एकत्रिंशद्भागेषु ५–६ $\frac{१७}{६७}\Big|\frac{५}{३१}$ गतेषु समाप्तम् ४। पञ्चमं पर्व–षष्ठेऽयने, सप्तमे मण्डले, सप्तमस्य

मण्डलस्य एकविंशतौ सप्तपष्टिभागेषु, एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य चतुर्दशसु एकत्रिंशद्भागेषु ६–७–$\frac{२१}{६७}$|$\frac{१४}{३१}$ गतेषु समाप्तं भवति ५,

एवमग्रेऽपि—गतपर्वणः–अयन-मण्डल-सप्तपष्टि भागै-कत्रिंशद्भागेषु-एककम् १, एककम् १, चत्वारः ४, नव ९, च (१-१-४-९) इत्येवं रूपो ध्रुवराशिरग्रेऽग्रे प्रत्येकस्मिन् समेलनेन आगामि पर्वणः अयनादि सर्वं समायाति। तत्र एकत्रिंशद्भागा यदि-एकत्रिंशतोऽधिका भवेयुस्तदा तत्सङ्ख्याया एकत्रिंशता भागं हृत्वा लब्धाङ्क एककरूपः पूर्वस्थिते सप्तषष्टिभागराशौ प्रक्षेप्तव्य, ये शेषास्ते एकत्रिंशद्भागा अवसेयाः। एवं यदि सप्तषष्टि भागाः सप्तषष्टितोऽधिका भवेयुस्तदा सप्तषष्ट्या भागं हृत्वा लब्धाङ्क एककरूपः पूर्वस्थिते मण्डलराशौ प्रक्षेप्तव्यः, ये शेषास्ते सप्तषष्टि भागा अवसेया. एवं यदि मण्डलानि त्रयोदशतोऽधिकानि भवेयुस्तदा अयनस्य त्रयोदशसप्तषष्टिभागयुक्ता त्रयोदशमण्डलात्मकत्वेन मण्डलानां सप्तषष्टिभागानां च प्रत्येकं त्रयोदशेन भागं हृत्वा मण्डल भागलब्धाङ्क एककरूपोऽयनराशौ प्रक्षेप्तव्यः, ततः सप्तषष्टिभागानां त्रयोदशेन भागे हृते ये लब्धाङ्कास्ते मण्डलराशौ प्रक्षेप्तव्याः तयो र्द्वयोः शेषाङ्कलभ्यो मण्डलराशिः सप्तषष्टि भागराशिश्चावसेयः। इत्येवमग्रे सर्वत्र योजना कार्या। अत्र पञ्च पर्वाणि तु व्याख्यायामपि प्रदर्शितान्येव। पर्व योजनायाः सुखाववोधार्थं पञ्च दशपर्वात्मकं कोष्ठकं स्थाप्यते, तत्र विलोकनीयम् अग्रे च स्वयमूहनीयमिति। तच्चेदं कोष्ठकम्—

"पर्व समाप्तौ अयनादिकोष्ठकम्।"

पर्व संख्या	अयनानि	मण्डलानि	सप्तपष्टि भागाः	एकत्रिंशद्भागा
१	२	३	४	९
२	१	१	४	९-प्रक्षेप्यो राशिः
३	३	४	८	१८
४	४	५	१२	२७
५	५	६	१७	५
६	६	७	२१	१४
७	७	८	२५	२३
८	८	९	३०	१
९	९	१०	३४	१०
१०	१०	११	३८	१९
११	११	१२	४२	२८
१२	१२	१३	४७	६
१३	१४	१	३८	,१५
१४	१५	२	४२	२४
१५	१६	३	४७	२
	१७	४	५१	११

अथ कि पर्व कस्मिन् चन्द्रनक्षत्रयोगे समाप्ति मेतीति विचारणायां वृद्ध सम्प्रदायोक्तास्तिस्रः करणगाथाः प्रदर्श्यन्ते—

"चउवीससयं काऊण पमाणं सत्तट्ठिमेव फलं ।
इच्छापव्वेहिं गुणं, काऊणं पज्जया लद्धा ॥१॥
अट्ठारसहि सएहिं तीसेहिं सेसगम्मि गुणियम्मि ।
तेरस विउत्तरेहिं, सएहिं अभिइम्मि सुद्धम्मि ॥२॥
सत्तट्ठिविसट्ठीणं, सव्वग्गेणं तओ उ जं सेसं ।
तं रिक्खं नायव्वं, जत्थ समत्थं हवइ पव्वं ॥३॥

छायाः—चतुर्विंशशतं कृत्वा प्रमाणं सप्तषष्टिमेव फलम् ।
इच्छापर्वभिर्गुणं कृत्वा पर्यायाः लब्धाः ॥१॥
अष्टादशभिः शतैः त्रिंशता (अधिकैः) शेषके गुणिते ।
त्रयोदशभिः द्व्युत्तरैः शतैः अभिजिति शुद्धे ॥२॥
सप्तषष्टि द्वाषष्ट्योः सर्वाग्रेण ततस्तु यत् शेषम् ।
तद् ऋक्षं ज्ञातव्यं, यत्र समाप्तं भवति पर्व ॥३॥इति ।

आसां भावमधिकृत्य संक्षेपतो व्याख्या क्रियते—त्रैराशिकविधौ **'चउवीससयं पमाणं काऊण'** चतुर्विंशत्यधिकं शतं प्रमाणराशिं कृत्वा **'सत्तट्ठिमेव फलं'** सप्तषष्टि रूपं फलराशिं कृत्वा **'इच्छापव्वेहिं'** इच्छितपर्वभिः स्वेप्सितपर्वभिः यानि पर्वाणि ज्ञातुमिच्छेत् तैः **'गुणं काऊणं'** गुणं गुणकारं कृत्वा विधाय आद्येन चतुर्विंशत्यधिकशतरूपेण राशिना भागे हृतेऽङ्का लभ्यन्ते ते **'पज्जया लद्धा'** पर्यायाः लब्धा इति ज्ञातव्यम्, ॥१॥ **'सेसगम्मि गुणियम्मि'** यः पुनः शेषो राशिरवतिष्ठते तस्मिन् **'अट्ठारसहिं सएहिं तीसेहि'** त्रिंशदधिकै रष्टादशभिः शतै र्गुणिते सति ततः **'तेरस विउत्तरेहिं सएहिं'** द्व्युत्तरैस्त्रयोदशभिः शतैः **'अभिइम्मि सुद्धम्मि'** अभिजिति शुद्धे, अयं भावः—अभिजित् शोधनीयः अभिजिन्नक्षत्रस्य भोग्यानामेकविंशतिसप्तषष्टिभागानां द्वाषष्ट्या गुणने एतावत एव (१३०२) शोधनकस्य लभ्यमानत्वात्, ततस्तस्मिन् शोधने ॥२॥ **'सत्तट्ठि विसट्ठिणं'** सप्तषष्टि द्विषष्टीनां सप्तषष्टि संख्यका या द्विषष्ट्यस्तासां **'सव्वग्गेणं'** सर्वाग्रेण **'तओ उ जं सेसं'** ततस्तु यत् शेषम्, अयं भावः—सप्तषष्ट्या द्विषष्टौ गुणितायां यो राशिर्भवति तेन राशिना भागे हृते यद् लब्धं यो राशिर्लभ्यते तद्राशि प्रमाणानि नक्षत्राणि शुद्धानि, इति विज्ञेयम्, यत्पुनर्भागहरणात् शेषमवतिष्ठते **'तं रिक्खं नायव्वं'** तद् ऋक्षं—नक्षत्रं ज्ञातव्यं **'जत्थ समत्तं हवइ पव्वं'** यत्र विवक्षितं पर्व समाप्तं भवति, तत् पर्व समाप्ति नक्षत्रं ज्ञातव्यमिति भावः ॥३॥ एषा करणगाथानां भावतो व्याख्या ॥

अथ करणगाथानां भावमाश्रित्य गणितेन भावना क्रियते सा चेत्थम्—अत्र त्रैराशिकं यथा—यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन (१२४) सप्तषष्टिः (६७) पर्याया लभ्यन्ते तदा एकेन (१) पर्वणा किं लभ्यते ? राशित्रयस्थापना । १२४।६७।१। अत्रायं नियमः—अन्त्येन राशिना मध्यराशिं गुणयित्वा स आद्यराशिना विभाज्यः । एतन्नियमानुसारेण अन्त्येन एककरूपेण राशिना मध्यराशिः सप्तषष्टिरूपो गुण्यते, 'एकेन गुणितं तदेव भवति' इति न्यायात् जाता सप्तषष्टिरेव (६७) अस्य आद्येन चतुर्विंशत्यधिकशतरूपेण (१२४) राशिना भागो हरणीयः, स च स्तोकत्वाद्भागो न ह्रियते, ततो नक्षत्रानयनार्थम्—'अट्ठारसहिं सएहिं तीसेहिं गुणियम्मि' इति द्वितीयगाथोक्तवचनात् त्रिंशदधिकैरष्टादशभि शतैः (१८३०) सप्तषष्टिभागरूपैः सप्तषष्टे र्गुणकारः कर्त्तव्यो भवेत्, ततोऽङ्कानामाधिक्येन भूयमानत्वादर्धेनाऽपवर्त्तनां कृत्वा गुणयितव्या सप्तषष्टिः, ततोऽस्य गुणकारराशेः (१८३०) चतुर्विंशत्यधिकशत (१२४) रूपस्य छेद राशेश्चार्द्धेनापवर्त्तना कर्त्तव्या जातो गुणकारराशिः पञ्चदशोत्तराणि नवशतानि (९१५) छेदराशिश्च द्वाषष्टि संख्यो (६२) जातः, अथ सप्तषष्टिः पञ्चदशोत्तरनवशतैं र्गुण्यते जातानि—एकषष्टिः सहस्राणि, त्रीणि शतानि पञ्चोत्तराणि (६१३०५) एतस्मादभिजिन्नक्षत्रस्य द्वयुत्तराणि त्रयोदश शताणि (१३०२) शुद्धानि, स्थितानि शेषाणि त्र्युत्तराणि षष्टिसहस्राणि (६०००३), अपवर्त्तनालब्धो द्वाषष्टिरूपः (६२) छेदराशिः सप्तषष्ट्या गुण्यते, जातानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि एकचत्वारिंशच्छतानि (४१५४) तैर्भागो ह्रियते लब्धाश्चतुर्दश (१४), तेन श्रवणादीनि पुष्य पर्यन्तानि चतुर्दशनक्षत्राणि शुद्धानि, यानि शेषाणि सप्तचत्वारिंशदधिकानि अष्टादशशतानि (१८४७) स्थितानि तानि मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुणने जातानि—दशोत्तरचतुःशताधिकानि पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणि (५५४१०), एषां पुनश्चतुष्पञ्चाशदधिकैकचत्वारिंशच्छतैः (४१ ५४) भागो ह्रियते लब्धास्त्रयोदश (१३) मुहूर्त्ताः, भागे हृते यानि अष्टोत्तराणि चतुर्दशशतानि (१४०८) शेषाणि तिष्ठन्ति । तानि द्वाषष्टि भागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुणयितव्यानि भवन्ति, ततोऽधिकाङ्कानां स्वल्पाङ्ककरणार्थं गुणकारच्छेदराश्यो र्द्वाषष्ट्याऽपवर्त्तना क्रियते अपवर्त्तना अपकर्षः द्वाष्ट्या भागं हृत्वा लब्धाङ्करूपः स्वल्पाङ्को राशिः क्रियते इति भावः, एवं कृते गुणकारराशे र्द्वाषष्टे र्द्वाषष्ट्या भागे हृते एककरूपो लब्धः, एवं चतुष्पञ्चाशदधिकैकचत्वा रिंशच्छतरूपस्य (४१५४) राशे र्द्वाषष्ट्याऽपवर्तिते भागं हृते इत्यर्थः छेदराशि सप्तषष्टिरूपो लब्धस्तेन गुणकार राशिरेकक: (१) छेदराशिः सप्तषष्टिरूपो लब्धस्तेन गुणकार राशिरेककः (१) छेदराशिः सप्तषष्टि (६७) जातः तत एककेन गुणकारराशिना गुणितः उपरितन. अष्टोत्तरचतुर्दशशत (१४०८) रूपो राशि र्जातस्तावानेव (१४०८) अस्यापवर्त्तित सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, हृते च भागे लब्धा एकविंशति' (२१) शेषस्तिष्ठत्येकः, स च एकस्य द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टि भागोऽस्ति, तत आगतं यत् प्रथमं पर्व अश्लेषायास्त्रयोदश मुहूर्त्तान्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकविंशतिं

द्वाषष्टिभागान्, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकसप्तषष्टिभागं--(१३- $\frac{२१}{६२}\Big|\frac{१}{६७}$) भुक्त्वा समाप्तिमुपगतमिति । एवम्-अश्लेषानक्षत्रस्य एतावत्परिमित मुहूर्त्तादि प्रमाणे चन्द्रेण सह योगे समाप्ते सति प्रथमं पर्व समाप्तिमेतीति ज्ञातव्यम् १ ।

अथ यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन (१२४) सप्तषष्टिः पर्याया लभ्यन्ते ततो द्वाभ्यां पर्वभ्यां कियल्लभ्यते, एतदपि त्रैराशिकं गणितं जायते, तथाहि राशित्रयस्थापना— । १२४ । ६७ । २ । अत्रापि अन्त्येन राशिना मध्यमो राशिर्गुण्यते, जातं चतुस्त्रिंशदधिकं शतमेकम् (१३४), अस्य आद्येन चतुर्विंशत्यधिकशतरूपेण राशिना भागो ह्रियते, लब्ध एको नक्षत्रपर्यायः, शेषा स्थिताः दश, तत एते नक्षत्रानयनार्थं त्रिंशदधिकैरष्टादशशतैः (१८३०) सप्तषष्टिभागै र्गुणयितव्या भवन्तीत्यत्रापि गुणाकारच्छेदराश्योरर्धेनापवर्त्तना कर्त्तव्या, तेन जातो गुणकारराशिः पञ्चादशोत्तराणि नवशतानि (९१५) छेदराशिश्च द्वाषष्टि (६२) र्भवति । तत्र दशरूपो राशिः पञ्चादशोत्तरैर्नवभिः शतैः (९१५) गुण्यते, जातानि पञ्चाशदधिकानि एक नवतिशतानि (९१५०)। एभ्यो द्व्युत्तराणि त्रयोदशशतानि (१३०२) अभिजिन्नक्षत्रस्य शोध्यानि, शोधिते च स्थितानि शेषाणि अष्टचत्वारिंशदधिकानि अष्टसप्ततिशतानि (७८४८) । तत्र द्वाषष्टिरूपश्छेदराशिः सप्तषष्ट्या गुण्यते, जातानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि एकचत्वरिंशच्छतानि (४१५४) एतैर्भागो ह्रियते, लब्धमेकं नक्षत्रं श्रवणरूपम्, शेषाणि यानि चतुर्नवत्यधिकानि षट्त्रिंशच्छतानि (३६९४) तिष्ठन्ति तानि मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातम्—एकं लक्षं, दशसहस्राणि, अष्टौ शतानि विंशत्युत्तराणि (११०८२०,) एषां छेदराशिना भागो ह्रियते, हृते च भागे लब्धाः षड्विंशतिर्मुहूर्त्ताः २६, शेषाणि यानि षोडशोत्तराणि अष्टाविंशतिशतानि (२८१६) तिष्ठन्ति तानि द्वाषष्टिभागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुणनीयानीति गुणकारछेदराश्यो र्द्वाषष्ट्याऽपवर्त्तना कर्त्तव्या, तेन जातो गुणकारराशिरेकरूपः (१) छेदराशिश्च सप्तषष्टिः । तत्रैकेन गुणित उपरितनो राशिः षोडशोत्तराष्टाविंशतिशतरूपो जातस्तावानेव (२८१६), अस्य सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धा द्वाचत्वारिंशत् (४२) द्वाषष्टिभागाः, शेषौ स्थितौ द्वौ तौ च एकस्य द्वाषष्टिभागस्य द्वौ सप्तषष्टिभागौ, तत आगतम् द्वितीयं पर्व धनिष्ठानक्षत्रस्य षड्विंशतिं मुहूर्त्तान् एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वि चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागान्, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वौ सप्तषष्टिभागौ (२६— $\frac{४२}{६२}\Big|\frac{२}{६७}$) भुक्त्वा समाप्तिमुपयातीति । एवं धनिष्ठानक्षत्रस्य एतावत्परिमितमुहूर्त्तादि प्रमाणे चन्द्रेण सह योगे समाप्ते सति द्वितीयं पर्व परिसमाप्तिमुपगच्छतीति विज्ञातव्यम् । २ ।

एवं शेषेष्वपि युगार्धम् द्विषष्टिपर्यन्तेषु पर्वसु सर्वाणि पर्वसमाप्ति नक्षत्राणि भावनीयानि । तत्सङ्ग्राहिकाश्चेमा पञ्च गाथाः—

"सप्प १ धणिट्ठा २ अज्जमइ ३ अभिवुड्ढि ४ चित्त ५ आस ६ दग्गी ८। रोहिणिए ८ जिट्ठा ९ मिगसिर १०, विस्सा ११ ऽदिति १२ सवण १३ पिउदेवा १४॥१॥ अज १५ अज्जम १६ अभिवुड्ढी १७ चित्ता १८ आसो १९ तहा विसाहाओ २०। रोहिणि २१ मूलो २२ अद्दा २३ वीसं २४ पुस्सो २५ धनिट्ठा २६ य ॥२॥

भग २७ अज २८ अज्जम २९ पूसो ३०, साइ ३१ अग्गी ३२ य मित्तदेवा ३३ य। रोहिणि ३४ पुव्वा साढा ३५ पुणव्वसू ३६ वीसदेवा ३७ य ॥३॥ अहि ३८ वसु ३९ भगा ४० ऽभिवुड्ढी ४१ हत्थ ४२ ऽस्स ४३ विसाह ४४ कत्तिया ४५ जेट्ठा ४६।

सोमा ४७ ऽऽउ ४८ रवी सवणो ५० पिउ ५१ वरुण ५२ भगा ५३ भिवुड्ढी ५४ य ॥४॥

चित्ता ५५ ऽऽस ५६ विसाह ५७ ऽग्गी, ५८ मूलो ५९ अद्दा ६० य विस्स ६१ पुस्सो य।

एए जुगपुव्वद्धे, विसट्ठिपव्वेसु नक्खत्ता ॥५॥

छाया:—सर्पः १ धनिष्ठा २ अर्यमा ३ अभिवृद्धिः ४ चित्रा ५ अश्वः ६ इन्द्राग्निः ७। रोहिणी ८ ज्येष्ठा ९ मृगशिरः १०, विश्वा ११ ऽदिति १२ श्रवण १३ पितृदेवाः १४ ॥१॥ अजः १५ अर्यमा १६ अभिवृद्धिः १७, चित्रा १८ अश्वः १९ तथा विशाखा २०। रोहिणी २१ मूलम् २२ आर्द्रा २३, विष्वक् २४ पुष्यः २५ धनिष्ठा २६ च ॥२॥ भगः २७ अजः २८ अर्यमा २९ पुष्यः ३०, स्वातिः ३१ अग्निः ३२ च मित्रदेवश्च ३३ रोहिणी ३४ पूर्वाषाढा ३५, पुनर्वसु ३६ विष्वग्देवाः ३७ च ॥३॥ अहिः ३८ वसुः ३९ भगा ४० ऽभिवृद्धि ४१ हस्ता ४२ ऽश्व ४३ विशाखा ४४ कृत्तिक ४५ ज्येष्ठाः ४६। सोमः ४७ आयु ४८ रविः ४९ श्रवणः ५०, पिता ५१ वरुणः ५२ भगः ५३ अभिवृद्धिश्च ५४ ॥४॥

चित्रा ५५ अश्वः ५६ विशाखा ५७ अग्निः ५८ मूलं ५९ आर्द्रा ६० च विष्वक् ६१ पुष्यश्च ६२।

एते युग पूर्वार्द्धे, द्विषष्टि पर्वसु नक्षत्राणि ॥५॥ इति

आसां व्याख्या—प्रथमस्य पर्वणः समाप्तिकाले सर्पः—सर्प देवतोपलक्षित नक्षत्रम्—अश्लेषा १। एवं द्वितीयस्य धनिष्ठा २। तृतीयस्यार्यमा अर्यमादेवतोपलक्षिता उत्तरफाल्गुन्यः ३। चतुर्थस्याभिवृद्धि—अभिवृद्धिदेवतोपलक्षिता उत्तरभाद्रपदा ४। पञ्चमस्य चित्रा ५। षष्ठस्याश्वः अश्वदेवतोपलक्षिता- अश्विनी ६। सप्तमस्य इन्द्राग्निः-इन्द्राग्निदेवतोपलक्षिता— विशाखा ७। अष्टमस्य रोहिणी ८ नवमस्य ज्येष्ठा ९। दशमस्य मृगशिरः १०। एकादशस्य विश्वा विश्वदेवतोपलक्षिता— उत्तराषाढा ११। द्वादशस्यादितिः—अदिति देवतोपलक्षितः पुनर्वसुः १२ त्रयोदशस्य,

श्रवणः १३। चतुर्दशस्य पितृदेवाः– पितृदेवतोपलक्षिता मघा १४ । पञ्चदशस्याजः– अजदेवतोपलक्षिताः पूर्वभाद्रपदाः १५ षोडशस्यार्यमा अर्यमदेवतोपलक्षिता उत्तरफाल्गुन्यः १६, सप्तदशस्य अभिवृद्धिः–अभिवृद्धिदेवतोपलक्षिता उत्तरभाद्रपदा १७। अष्टादशस्य चित्रा १८। एकोनविंशतितमस्याश्वः अश्वदेवतोपलक्षिता-अश्विनी १९। विंशतितमस्य विशाखा २० एकविंशतितमस्य रोहिणी २१ द्वाविंशतितमस्य मूलः २२। त्रयोविंशतितमस्यार्द्रा २३ । चतुर्विंशतितमस्य विष्वक्–विष्वग् देवतोपलक्षिता उत्तराषाढा २४। पञ्चविंशतितमस्य पुष्यः २५। षड्विंशतितमस्य धनिष्ठा २६। सप्तविंशतितमस्य भगः- भगदेवतोपलक्षिताः पूर्वाफाल्गुन्यः २७ .अष्टाविंशतितमस्याजः–अज देवतोपलक्षिताः पूर्वभाद्रपदा' २८ एकोनत्रिंशत्तमस्यार्यमा अर्यमदेवतोपलक्षिता उत्तरफाल्गुन्यः २९ त्रिंशत्तमस्य पुष्यः-पुष्यदेवतोपलक्षिता रेवती ३०। एकत्रिंशत्तमस्य स्वातिः ३१। द्वात्रिंशत्तमस्याग्नि'-अग्निदेवतोपलक्षिताः कृत्तिकाः ३२। त्रयस्त्रिंशत्तमस्य मित्रदेवा-मित्रनाम देवतोपलक्षिता–अनुराधा ३३ । चतुस्त्रिंशत्तमस्य रोहिणी ३४ । पञ्चत्रिंशत्तमस्य पूर्वाषाढा ३५। षट्त्रिंशत्तमस्य पुनर्वसुः ३६ सप्तत्रिंशत्तमस्य विष्वग्देवाः–विष्वग्देवतोपलक्षिता उत्तराषाढाः ३७ । अष्टत्रिंशत्तमस्याहिः–अहि देवतोपलक्षिता अश्लेषा ३८। एकोनचत्वारिंशत्तमस्य वसुः– वसुदेवतोपलक्षिता धनिष्ठा ३९ । चत्वारिंशत्तमस्य भगः–भगदेवतोपलक्षिताः पूर्वाफाल्गुन्यः ४० । एकचत्वारिंशत्तमस्याभिवृद्धिः–अभिवृद्धिदेवतोपलक्षिता उत्तरभाद्रपदाः ४१ । द्वाचत्वारिंशत्तमस्य हस्तः ४२। त्रिचत्वारिंशत्तमस्याश्वः–अश्वदेवतोपलक्षिता-अश्विनी ४३ ।चतुश्चत्वारिंशत्तमस्य विशाखा ४४। पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य कृत्तिका ४५। षट्चत्वारिंशत्तमस्य ज्येष्ठा ४६। सप्तचत्वारिंशत्तमस्य सोमः– सोमदेवतोपलक्षितं मृगशिरा ४७। अष्टचत्वारिंशत्तमस्यायुः– आयुर्देवतोपलक्षिताः पूर्वाषाढाः ४८ । एकोनपञ्चाशत्तमस्य रविः–रविनामकदेवतोपलक्षिता पुनर्वसुः ४९। पञ्चाशत्तमस्य श्रवणः ५०। एक पञ्चाशत्तमस्य पिता-पितृ देवतोपलक्षिता मघा ५१ द्विपञ्चाशत्तमस्य वरुणः-वरुणदेवतोपलक्षितं शतभिषक् ५२ त्रिपञ्चाशत्तमस्य भगः-भगदेवतोपलक्षिताः पूर्वफाल्गुन्यः ५३ । चतुष्पञ्चाशत्तमस्याभिवृद्धिः-अभिवृद्धि देवतोपलक्षिता उत्तरभाद्रपदाः ५४। पञ्च पञ्चाशत्तमस्य चित्रा ५५। षट्पञ्चाशत्तमस्याश्वः-अश्व देवतोपलक्षिता– अश्विनी ५६। सप्तपञ्चाशत्तमस्य विशाखा ५७। अष्ट पञ्चाशत्तमस्याग्निः-अग्निदेवतोपलक्षिताः कृत्तिकाः ५८। एकोनषष्टितमस्य मूलम् ५९ । षष्टितमस्य आर्द्रा ६० एकषष्टितमस्य विष्वक्– विश्वग्देवतोपलक्षिता उत्तराषाढाः ६१। द्वाषष्टितमस्य पुष्यः ६२। उपसंहरन्नाह–**'एए'** इत्यादि, **'एए'** एतानि पूर्वोक्तानि **'नक्खत्ता'** नक्षत्राणि द्विषष्टि सङ्ख्यकानि **जुगपुव्वद्धे'** युगपूर्वार्द्धे युगस्यार्द्धे पूर्वभागे **'विसट्ठि पव्वेसु'** द्विषष्टि पर्वसु क्रमेण ज्ञातव्यानि ॥५॥ इति गाथापञ्चकार्थः ॥ एवमेव प्रागुक्तकरणवशादुत्तरार्धेऽपि द्वाषष्टि सङ्ख्यकेषु पर्वसु एतान्येवानेनैव क्रमेण नक्षत्राणि वेदितव्यानि ।

अथ सूर्य मण्डलान्याश्रित्य पर्व समाप्तिर्विचार्यते, यथा—कस्मिन् सूर्यमण्डले किं पर्वसमाप्तिमेतीति, अत्रापि करणगाथामाह—

"सूरस्स वि नायव्वो, सगेण अयणेण मंडलविभागो ।
'अयणम्मि उ जे दिवसा, रूवहिए मंडले हवइ ॥१॥

छाया—सूरस्यापि ज्ञातव्यः, स्वकेन अयनेन मण्डलविभागः ।
अयने तु ये दिवसाः रूपाधिके मण्डले भवति ॥१॥ इति

अस्य व्याख्या—'सूरस्सवि' सूर्यस्यापि 'मंडलविभागे' पर्वविषयो मण्डलविभागः 'नायव्वो' ज्ञातव्यः, कथम् ? 'सगेण अयणेण' स्वकेन अयनेन, सूर्यसम्बन्धिनाऽयनेन ज्ञातव्य इति । अयं भावः—सूर्यस्य स्वकीयमयनमपेक्ष्य तस्मिन् तस्मिन् मण्डले तस्य तस्य पर्वणः समाप्तिरवधार्येति । तत्र 'अयणम्मि' अयने तु शोधिते सति 'जे दिवसा' ये दिवसाः शेषा उद्धरिताः अयनशोधनानन्तरं येऽवशिष्टा दिवसा स्तिष्ठन्ति तत्संख्यके 'रूवाहिए मंडले' रूपाधिके-एकरूपसहिते मण्डले 'हवइ' भवति तदीप्सितं पूर्व समाप्तं भवतीति विज्ञातव्यम् ॥ एष करणगाथासंक्षेपार्थः ॥१॥ विस्तरार्थस्तु भावनया वेदितव्यः, सा चेत्थम्—इह यत्—अमुकं पर्व कस्मिन् मण्डले समाप्तं भवतीति ज्ञातुमिच्छेत् तदा ईप्सितपर्वसंख्या स्थाप्यते सा च पञ्चदशभिर्गुणयेत् गुणिता सा संख्या एकरूपाधिका कर्त्तव्या, ततः तद्राशिनः संभवतोऽवमरात्रा पात्यन्ते, ततो यदि सा संख्या त्र्यशीत्यधिकशतेन भागहरणीया भवेत् तर्हि तस्यास्त्र्यशीत्यधिकशतेन भागो ह्रियते, हृते च भागे यानि लब्धानि तान्ययनानि ज्ञातव्यानि, भागावशिष्टा या दिवस संख्याऽवतिष्ठते तस्या अन्तिमे मण्डले यद् विवक्षितं तत् पर्व समाप्तं भवतीत्यवधारणीयम् । तत्र यदि उत्तरायणं वर्त्तते तदा सर्वबाह्यं मण्डलमादित्येन कर्त्तव्यम्, उत्तरायणे सर्ववाह्य मण्डलमादिर्भवतीति भावः, यदि दक्षिणायनं वर्त्तते तदा सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमादित्वेन विज्ञेयम्, दक्षिणायने सर्वाभ्यन्तरं मण्डलमादिर्भवतीति भावः । इति पर्वसमाप्त्यानयनप्रकारः प्रदर्शितः, अथ तदेव सोदाहरणं परिभाव्यते तथाहि—

यथा कोऽपि पृच्छेत्-युगे प्रथमं पर्व सूर्यस्य कस्मिन् मण्डले समाप्तं भवतीति । अत्र प्रथम पर्वविषयक प्रश्न-इति—एकक. (१) स्थाप्यते, स पञ्चदशभिर्गुण्यते जाताः पञ्चदश (१५) अत्रैकोऽप्यवमरात्रो न संभवतीति न किमपि पात्यते, स्थिताः पञ्चदशैव (१५) ते च पञ्चदशरूपाधिकाः क्रियन्ते जाताः षोडश १६ युगादौ च प्रथमं पर्व दक्षिणायने भवतीत्यत आगतम्—युगे प्रथमं मण्डले सर्वाभ्यन्तरमण्डलमादि कृत्वा षोडशे मण्डले समाप्तं जातमिति ॥१॥

अथ कोऽपि पृच्छेत्—चतुर्थं पर्व कस्मिन् मण्डले परिसमाप्तिमेतीति । तत्र चतुर्थपर्वविषयकः प्रश्नः कृत इति चतुष्काऽङ्कः स्थाप्यते (४) स च पञ्चदशभिर्गुण्यते जाता षष्टिः, ६० अत्रैकोऽवमरात्रः सम्भवतीत्येकोऽस्माद्राशेः पात्यते जाता एकोनषष्टि ५९ सा पुनरेकरूपयुक्ता क्रियते

जाता भूयोऽपि षष्टिरेवेति समागतं यत्—चतुर्थं पर्व सर्वाभ्यन्तरमण्डलमादि कृत्वा षष्टितमे मण्डले समाप्तिमुपगच्छतीति ।४।

एवं पञ्चविंशतितमपर्वविषये प्रश्ने पञ्चविंशतिर्ध्रियते, सा पञ्चदशभिर्गुण्यते जातानि पञ्चसप्तत्यधिकानि त्रीणि शतानि (३७५)। अत्र षड् अवमरात्रा जायन्ते इति पूर्वोक्तराशेः (३७५) षट्शोध्यन्ते, तिष्ठन्ति शेषाणि एकोनसप्तत्यधिकानि त्रीणि शतानि (३६९) एषां त्र्यशीत्यधिकशतेन (१८३) भागो ह्रियते लब्धौ द्वौ (२) पश्चात्तिष्ठन्ति त्रीणि, तानि रूपयुक्तानि क्रियन्ते जातानि चत्वारि, यौ च द्वौ लब्धाङ्कौ, तेन द्वे अयने दक्षिणायनोत्तरायणरूपे शुद्धे, तत आयातं-तृतीये दक्षिणायन-रूपेऽयने सर्वाभ्यन्तरमण्डलमादि कृत्वा चतुर्थे मण्डले पञ्चविंशतितमं पर्व समाप्तं भवतीति ।२५।

अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमपर्वविषय. प्रश्नो भवेत्तदा चतुर्विंशत्यधिकशसंख्यको राशिः (१२४) स्थाप्यते, एषोऽपि पूर्ववत् पञ्चदशभिर्गुण्यते, जातानि—षष्ट्यधिकानि अष्टादशशतानि (१८६०) चतुर्विंशत्यधिक पर्वशते च अवमरात्रास्त्रिंशज्जाता (३०) इति त्रिंशत्पात्यते, जातानि त्रिंशदधिकानि अष्टादशशतानि (१८३०), एतेषु रूपयुक्तेषु कृतेषु जातानि—एकत्रिंशदधिकानि अष्टादशशतानि (१८३१) एषां त्र्यशीत्यधिकशतेन (१८३) भागो ह्रियते लब्धानि दशायनानि, शेषोऽवतिष्ठते एकः (१) दशमं चायनं युगपर्यन्तभागे उत्तरायणम्, ततः संप्राप्तम्—उत्तरायणपर्यन्ते सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चतुर्विंशत्यधिकशततमं (१२४) पर्वसमाप्तिं प्राप्तमिति (१२४)।

गतं पर्वसमापकसूर्यमण्डलप्रकरणम्, साम्प्रतं पर्वसमापक सूर्यनक्षत्रप्रकरणं प्रस्तूयते, तत्र, पूर्वं तत्प्रदर्शिकास्तिस्रः करणगाथाः प्रदर्श्यन्ते—

"चउवीससयं काऊण पमाणं पज्ज य पंच फलं ।
इच्छापव्वेहिं गुणं काऊणं पज्जया लद्धा ॥१॥
अट्ठारस य सएहिं, सेसगंमि गुणियम्मि ।
सत्तावीससएसु, अट्ठावीसेसु पूसम्मि ।
सत्तट्ठ विसट्ठीणं सव्वग्गेणं तओ उ जं सेसं ।
तंरिक्खं सूरस्स उ, जत्थ समत्तं हवइ पव्वं ॥३॥

'एतासां तिसृणां करणगाथानां क्रमशो व्याख्या क्रियते—चउवीससयं काऊण पमाणं' चतुर्विंशतिशतं चतुर्विंशतिशतप्रमितं प्रमाणं प्रमाणराशि कृत्वा 'पज्जए य पंच' पञ्च पर्यायान् 'फलं' फलं कुर्यात्। ततः 'इच्छापव्वेहिं गुणं काऊण' इच्छापर्वभिः ईप्सितपर्वराशिना गुणं-गुणकारं कृत्वा तत आद्येन राशिना चतुर्विंशत्यधिकशतरूपेण भागे हृते ये लब्धास्ते 'पज्जाया लद्धा' पर्याया लब्धा इति विज्ञेयम्। ते च शुद्धा ज्ञातव्याः ॥१॥

'अट्ठारसयसएहिं तीसेहिं' अष्टादशकशतैस्त्रिशदधिकैः (१८३०) 'सेसगंमि गुणियम्मि' शेषके भागं हृते यत् शेषमवतिष्ठते तस्मिन् गुणिते सति 'सत्तावीस सएसुं अट्ठावीसेसु' अष्टाविंशत्यधिकेषु सप्तविंशतिशतेषु (२७२८) शुद्धेषु 'पूसंमि' पुष्यः शुद्ध्यति, तस्मिश्च पुष्ये शुद्धे ॥२॥ 'सत्तट्ठ बिसट्ठीणं सव्वग्गेण' सप्तषष्टि संख्यकद्वाषष्टीनां सर्वाग्रेण यद् भवति, अयं भाव:—सप्तषष्ट्या द्वाषष्टिर्गुण्यते गुणिताया च तस्यां यद् भवति चतुष्पञ्चाशदधिकानि एकचत्वारिंशच्छतानि (४१५४) तेन भागे हृते यो राशिर्लब्धः तावन्ति नक्षत्राणि शुद्धानि ज्ञातव्यानि यत्पुन: 'तओ उ' ततोऽपि भागहरणादपि 'जं सेसं' यत् शेषं तिष्ठति 'तं रिक्खं उ' तत् ऋक्षं नक्षत्रं तु 'सूरस्स' सूरस्य सूर्यस्य सम्बन्धि ज्ञातव्यम्, किमित्याह–'जत्थ समत्तं हवइ पव्वं' यत्र समाप्तं भवति पर्व, तदेव सूर्यनक्षत्रं पर्व समापकं भवतीति–भाव.। इति करण गाथात्रयार्थः ॥३॥

आसां भावना चेत्थम् यदि चतुर्विंशत्यधिकशतसंख्यकैः पर्वभिः पञ्च सूर्यनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते तदा एकेन पर्वणा कति लभ्यन्ते ? त्रैराशिकं गणितं कर्त्तव्य भवेत् राशित्रयस्थापना–। १२४।५।१। अत्र त्रैराशिक गणितेऽन्त्येन राशिना मध्यमराशिगुणयित्वा आद्येन राशिना भागो हरणीय इति नियमात् अन्त्यराशिना एककरूपेण मध्यमे राशौ पञ्चरूपे गुणिते जातस्तावानेव पञ्चक रूपो राशिः (५) अस्य आद्येन राशिना चतुर्विंशत्यधिक शत [१२४] रूपेण भागहरणं प्राप्यते, तच्च स्तोकत्वान्न सभवति, ततो नक्षत्रानयनार्थम् – त्रिंशदधिकाष्टादशशतै [१८३०] सप्तषष्टिभागैर्गुणयिष्याम इति तदर्थं गुणकार–छेदराश्योरर्द्धेनापवर्त्तना कर्त्तव्या, एवं कृते जातो गुणकारराशिः पञ्चदशोत्तरनवशतसंख्यकः [९१५] छेदराशिः द्वाषष्टिः [६२] ततो ये त्रैराशिके मध्यस्थिता' पञ्च ते पञ्चदशोत्तरैर्नव शतै गुण्यन्ते जातानि पञ्च सप्तत्यधिकानि पञ्चचत्वारिंशच्छतानि [४५७५]। इतश्च पुष्यस्य चतुश्चत्वारिंशद् [४४] भागाः द्वाषष्ट्या [६२] गुण्यन्ते जातानि अष्टाविंशत्यधिकानि सप्तविंशतिशतानि [२७२८] एतानि पूर्वराशे. [४५७५] शोध्यन्ते, निष्कास्यन्ते, स्थितानि पश्चात् सप्तचत्वारिंशदधिकानि अष्टादशशतानि [१८४७]। तत्र छेदराशिर्द्वाषष्टिरूपः सप्तषष्ट्या गुण्यते, जातानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि एक चत्वारिंशच्छतानि [४१५४] एभिः पूर्वोक्तराशेर्भागो ह्रियते किन्तु छेदराशिः स्तोक., अतस्तस्य स्तोकत्वाद् भागो न ह्रियते ततो दिवसा आनेतव्याः, तत्र च छेदराशिस्तु द्वाषष्टिरूपः, किन्तु परिपूर्ण नक्षत्रानयनार्थमेव हि द्वाषष्टिः सप्तषष्ट्या गुणिता, परिपूर्णं च नक्षत्र मिदानीं नायाति ततो मूल एव द्वाषष्टि रूपश्छेदराशिः, केवलं पञ्चभिः सप्तषष्टि भागैरहोरात्रो भवतीत्यतो दिवसानयनार्थं द्वाषष्टिः पञ्चभिर्गुणनीयः, द्वाषष्टेः पञ्च भिर्गुणने जातानि दशोत्तराणि त्रीणि शतानि [३१०] एतैः पूर्वोक्तस्य सप्तचत्वारिंशदधिकाष्टादशशतराशेः [१८४,] भागो हरणीयः हृते च भागे लब्धाः पञ्च दिवसाः[५] शेषं तिष्ठति सप्तनवत्यधिके द्वे शते [२९७] इति। एष राशि र्मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यते तत्र गुणाकार छेदराश्योः शून्येनापवर्त्तना कर्त्तव्या, तत्र

गुणाकारराशि स्त्रिशत् [३०] सजातस्त्रिकरूपः [३] छेदराशिर्दशोत्तरशतत्रयरूपः [३१०] स जात एकत्रिंशत् (३१) तत्र त्रिकरूपेण गुणकारराशिना उपरितनः सप्तनवत्यधिकशतद्वयरूपो [२९७] राशिर्गुण्यते जातानि–एकनवत्यधिकानि अष्टौ शतानि [८९१] एषामेकत्रिंशद्रूपेण (३१) छेदराशिना भागो ह्रियते, लब्धा अष्टाविंशति मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशति रेकत्रिंशद्भागाः ($२८\text{-}\frac{२३}{३१}$) तत आगतम्–प्रथमं पर्व अश्लेषानक्षत्रस्य पञ्च दिवसानां, एकस्य च दिवसस्याष्टाविंशति मुहूर्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशत्येकत्रिंशद्भागानां [दि. मु. भा. ५–२८–$\frac{२३}{३१}$] भोगं कृत्वा समाप्तं भवतीति ।

अथवा—पूर्वोक्तगणितगतत्रैराशिकमध्यस्थितपञ्चकराशौ (५) पञ्चदशोत्तरनवशत (९१५) राशिना गुणिते समागतो यः पञ्चसप्तत्यधिक पञ्च चत्वारिंशच्छत (४५७५) रूपो राशिः तस्मात्–द्वाषष्टि गुणित चतुश्चत्वारिंशत्पुष्यभाग (४४) समागताष्टाविंशत्यधिक सप्तविंशति (२७२८) राशिरूपे पुष्ये शुद्धे स्थितानि पश्चात् सप्तचत्वारिंशदधिकानि अष्टादशशतानि (१८४७) तानि सूर्यमुहूर्त्तानयनाय त्रिंशता गुण्यन्ते जातानि–पञ्च पञ्चाशत् सहस्राणि चत्वारिंशतानि दशोत्तराणि (५५४१०) एषां प्रागुक्तेन सप्तषष्टि गुणितद्वाषष्टि समागत–चतुष्पञ्चाशदधिकैक चत्वारिंशच्छत (४१५४) रूपेण छेदराशिना भागो ह्रियते, लब्धास्त्रयोदश (१३) मुहूर्त्ता तिष्ठन्ति शेषाणि अष्टोत्तर चतुर्दशशतानि (१४०८) तत एतानि द्वाषष्टि भागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुणयितव्यानि भवन्तीति गुणकारछेदराश्यो द्वाषष्ट्याऽपवर्त्तना कर्त्तव्या तत्र गुणकारराशिर्द्वाषष्टिस्ततस्तस्या द्वाषष्ट्या अपवर्त्तना करणे लब्ध एककरूपः (१) छेदराशेश्चतुष्पञ्चाशदधिकैकचत्वारिंशच्छत (४१५४) रूपस्य द्वाषष्ट्याऽपवर्त्तना करणे जाता सप्तषष्टिः (६७) तत्र द्वाषष्ट्याऽपवर्तितैकक रूपेण गुणकारराशिना गुणितः अष्टोत्तरचतुर्दशशत (१४०८) रूपो राशिर्जातस्तावानेव (१४०८) । ततोऽपवर्तितेन सप्तषष्टि (६७) रूपेण छेदराशिना छेद्यते–भागो ह्रियते इत्यर्थः, हृते च भागे लब्धा एकविंशतिः २१ द्वाषष्टि भागा एकस्य मुहूर्त्तस्य यश्चशेष एकः, स एकस्य द्वाषष्टि भागस्य एकः सप्तषष्टिभागः ($१३\text{-}\frac{२१}{६२}\Big|\frac{१}{६७}$) । तत एवं समागतम् युगस्यादौ प्रथमम् अमावास्यारूपं पर्वसूर्योऽश्लेषानक्षत्रस्य त्रयोदश मुहूर्त्तान् एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकविंशतिद्वाषष्टि भागान् एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य एकं सप्तषष्टि भागम् ($१३\text{-}\frac{२१}{६२}\Big|\frac{१}{६७}$) भुक्त्वा समापयतीति ।

अथ च यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन पञ्च सूर्यनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते तर्हि द्वाभ्यां पर्वाभ्यां कति सूर्यनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते ? । अत्रापि राशित्रयस्थापना—। १२४।५।२। पूर्वोक्तरीत्याऽत्रापि अन्त्येन राशिना द्विकरूपेण मध्यराशिः पञ्चकरूपो गुण्यते, जाता दश (१०) एषां चतुर्विंशत्यधिकैकशतरूपेण आद्य राशिना भागहरणं प्राप्यते किन्तु भाजक राशे र्भाज्यराशिः स्तोकोऽतो भागो न ह्रियते ततो नक्षत्रानयनार्थं त्रिंशदधिकाष्टादशशत (१८३०) संख्यया गुणयितव्यमिति गुणकारच्छेदराश्योरर्धेनाऽपवर्त्तना क्रियते, जातोऽयं गुणकारराशिः पञ्चदशोत्तरनवशतसंख्यक (९१५) छेदराशिश्चतुर्विंशत्यधिकशत (१२४) रूपः, सोऽर्धेनापवर्त्तिते जातो द्वाषष्टिः (६२) तत्र पञ्चदशोत्तरनवशतैः (९१५) दश (१०) गुण्यन्ते जातानि पञ्चाशदधिकानि एकनवतिशतानि (९१५०), एभ्यः पूर्वप्रदर्शितानि अष्टाविंशत्यधिकानि सप्तविंशतिशतानि (२७२८) पुष्यसम्बन्धीनि शोध्यन्ते, शोधिते च स्थितानि पश्चात्—द्वाविंशत्यधिकानि चतुष्षष्टिशतानि (६४२२) छेदराशिर्द्वाषष्टिरूपः, स सप्तषष्ट्या गुण्यते जातानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि एकचत्वारिंशच्छतानि (४१५४) एतैर्भागो ह्रियते, लब्धमेकं नक्षत्रम् अश्लेषारूपम्, तच्चाश्लेषानक्षत्रमर्धक्षेत्रं पञ्चदश मुहूर्त्तात्मकत्वात्, अत एतद्गताः पञ्चदश मुहूर्त्ता अधिका ज्ञातव्याः, पूर्वं भागे हृते यानि शेषाणि तिष्ठन्ति-अष्टषष्ट्यधिकानि द्वाविंशति शतानि (२२६८) तानि मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते जातानि—अष्टषष्टिः सहस्राणि चत्वारिंशदधिकानि (६८०४०) तेषां चतुष्पञ्चाशदधिकैकचत्वारिंशच्छत (४१५४) रूपेण छेदराशिना भागो ह्रियते, लब्धाः षोडश मुहूर्त्ताः, तिष्ठन्ति शेषाणि षट्सप्तत्यधिकानि पञ्चदशशतानि (१५७६) एतानि द्वाषष्टि भागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुणयितव्यानीति गुणकारच्छेदराश्योर्द्वाषष्ट्याऽपवर्त्तना क्रियते, तेन जातो गुणकारराशिरेकरूपः (१) छेदराशिः सप्तषष्टिः (६७) तत्रोपरितनो राशिः राशिः (१५७६) एकेन गुणितो जातस्तावानेव (१५७६) अस्य सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धास्त्रयोविंशति द्वाषष्टि भागाः (२३) शेषारितष्ठन्ति पञ्चत्रिंशत्, ते च पञ्चत्रिंशत् सप्तषष्टि भागाः (३५) तत्र ये षोडश मुहूर्त्ता लब्धास्ते, तथा ये चोद्धरिताः पाश्चात्याः पञ्चदशमुहूर्त्तास्ते एकत्र मील्यन्ते जात एकत्रिंशत् (३१) तत्र त्रिंशता मघा शुद्धा, पश्चादुद्धरत्येकः सूर्यमुहूर्त्तः १, तत आगतं श्रावणमासभावि पौर्णमासीरूपं पूर्वफाल्गुनी नक्षत्रस्यैकं मुहूर्त्तम् एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशतिं द्वाषष्टि भागान्, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चत्रिंशतं सप्तषष्टि भागान् ($१-\frac{२३}{६२}|\frac{३५}{६७}$) भुक्त्वा सूर्यो द्वितीयं पर्व समापयतीति ।

तथा चोक्तं शेषमुहूर्त्तविषये "ता पुव्वाहिं फग्गुणीहिं पुव्वाणं फग्गुणीणं अट्ठावीसं च मुहुत्ता अट्ठत्तीसं च बासट्ठिभागा मुहुत्तस्स बासट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छेत्ता बत्तीसं चुण्णिया भागा सेसा" छाया—तावत् पूर्वाभिः फाल्गुनीभिः पूर्वाणां फाल्गुनीनां अष्टाविंशति-

मुहूर्त्ताः, अष्टत्रिंशच्च द्वाषष्टिभागाः मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा द्वात्रिंशत् चूर्णिकाः भागाः शेषाः । २८–३८–३२ पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रस्य समक्षेत्रत्वेन त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् भुक्तशेषयो र्द्वयोः संमेलने जायन्ते पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रस्य परिपूर्णास्त्रिशन्मुहूर्त्ताः (३०) इति ।

तथा यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन पञ्च सूर्यनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते तदा त्रिभिः कति सूर्यनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते ? अत्रापि राशित्रयस्थापना — ।१२४।५।३। अत्राप्यन्त्येन राशिना त्रिकरूपेण मध्यः पञ्चकरूपो राशिर्गुण्यते जाताः पञ्चदश (१५) तेषामाद्येन चतुर्विंशत्यधिकशत (१२४) रूपेण राशिना भागहरणं प्राप्यते, भाज्यराशे स्तोकत्वाद् भागो न ह्रियते ततो नक्षत्रानयनार्थमष्टादशभिः शतै स्त्रिशदधिकैः (१८३०) सप्तषष्टिभागै र्गुणयिष्याम इति गुणकारच्छेदराश्योरर्द्धेनापवर्त्तना क्रियते, जातो गुणकारराशिः पञ्चदशोत्तराणि नव शतानि (९१५) छेदराशिर्द्वाषष्टिः (६२) । तत्र पञ्चदशोत्तरनवशतैः पञ्चदश गुण्यन्ते, जातानि पञ्चविंशत्यधिकसप्तशतोत्तराणि त्रयोदश सहस्राणि (१३७२५), एभ्यः अष्टाविंशत्यधिकानि सप्तविंशतिशतानि (२७२८) पुष्यनक्षत्रसम्बन्धीनि शोध्यन्ते, स्थितानि पश्चात् सप्तनवत्यधिक नवशतोत्तराणि दश सहस्राणि(१०९९७), छेदराशि र्यो द्वाषष्टिरूपः स सप्तषष्ट्या गुण्यते जातानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि एकचत्वारिंशच्छतानि (४१५४), एतैर्भागो ह्रियते, लब्धे द्वे नक्षत्रे, ते चाश्लेषा मघारूपे, तत्राश्लेषा नक्षत्रमपार्द्धक्षेत्रं पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकमित्येतद्गताः पञ्चदशसूर्यमुहूर्त्ता उद्धरिता ज्ञातव्याः, इतश्च पूर्वं भागे हृते यानि स्थितानि शेषाणि नवाशीत्यदिकानि षड्विंशतिशतानि(२६८९),तानि मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिशता गुण्यन्ते, जातानि अशीति सहस्राणि सप्तत्यधिकानि षड्शतानि (८०६७०), एषां छेदराशिना चतुष्पञ्चाशदधिकैक चत्वारिंशच्छतरूपेण (४१५४) भागो ह्रियते, लब्धा एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः (१९), शेषाणि तिष्ठन्ति चतुश्चत्वारिंशदधिकानि सप्तदशशतानि (१७४४), एतानि द्वाषष्टि भागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुणनीयानीति गुणकार-च्छेदराश्यो र्द्वाषष्ट्याऽपवर्त्तना क्रियते, जातो गुणकार राशिरेकरूपः (१), छेदराशिः सप्तषष्टिरूपः (६७) तत्रो परितनो यो राशिश्चतुश्चत्वारिंशदधिकसप्तदश शतरूपः (१७४४), स एकेन गुणितस्तावानेव १७४४) अस्य सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा षड्विंशति र्द्वाषष्टिभागाः स्थितौ शेषौ द्वौ तौ च एकस्य द्वाषष्टि भागस्य द्वौ सप्तषष्टि भागौ—($\frac{२६}{६२} \Big| \frac{२}{६७}$) तत्र पूर्वं ये लब्धा एकोनविंशतिमुहूर्त्ताः (१९) ये चाश्लेषा नक्षत्रसत्काः पञ्चदश सूर्यमुहूर्त्ता उद्धरिताः, एतद्द्वयमपि एकत्र मील्यते जाताश्चतुस्त्रिंशन्मुहूर्त्ताः (३४) अत्र त्रिंशता पूर्व फाल्गुनी शुद्धा, शेषाः स्थिता श्चत्वारो मुहूर्त्ता (४) तत आगतम्-उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रसम्बन्धिनां चतुर्णां मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षड्विंशति र्द्वाषष्टिभागानाम् एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य द्वयोः सप्तषष्टि भागयोः($४–\frac{२६}{६२}, \frac{२}{६७}$) भोगं कृत्वा सूर्यः भाद्रपदमासगतामावास्या

रूपं तृतीयं पर्व समापयतीति ॥ अनेनैव रीत्या शेषपर्वसमापकान्यपि सूर्यनक्षत्राण्यानेतव्यानीति ।

तथा चोक्तं शेषभागविषये—"..... .ता उत्तराहिं चेव फग्गुणीहिं, उत्तराणं फग्गुणीणं चत्तालीसं मुहुत्ता पणतीसं च बासट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बासट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छेत्ता पण्णट्ठी चुण्णिया भागा सेसा" छाया—तावत् उत्तराभिः चैव फाल्गुनीभिः, उत्तराणां फाल्गुनीनां चत्वारिंशन्मुहूर्त्ता, पञ्चत्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा पञ्चषष्टिः चूर्णिका भागाः शेषाः ($४०—\frac{३५}{६२}—\frac{६५}{६७}$)उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रस्य द्व्यर्धक्षेत्रत्वेन पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् भुक्त शेषयोर्द्वयोः संमेलने जायन्ते उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रस्य परिपूर्णा पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्ता (४५) इति ।

अथवा कस्मिन् पर्वणि किं सूर्यनक्षत्रं भवतीति परिज्ञानार्थमत्रेमाः सप्त करणगाथाः प्रदर्श्यन्ते- 'तेत्तीसं' इत्यादि, तथाहि—

"तेत्तीसं च मुहुत्ता, बिसट्ठिभागा य दो मुहुत्तस्स ।
चुत्ती चुण्णियभागा, पव्वीकया रिक्ख धुवरासी ॥१॥
इच्छा पव्व गुणाओ, धुवरासीओ य सोहणं कुणसु ।
पूसाईणं कमसो, जह दिट्ठमणंतनाणीहिं ॥२॥
उगवीसं च मुहुत्ता, तेयालीसं बिसट्ठि भागा य ।
तेत्तीसं चुण्णियाओ, पूसस्स य सोहणं एयं ॥३॥
उगुयालसयं उत्तर—फग्गु उगुणट्ठ दो बिसाहासु ।
चत्तारि नवोत्तर उत्तराण साढाण सोज्झाणि ॥४॥ (ग्र. ५०००)
सव्वत्थ पुस्ससेसं, सोज्झं अभिइस्स च उरइगवीसा ।
बावट्ठी छब्भागा, बत्तीसं चुण्णिया भागा ॥५॥
उगुणत्तर पंच सया, उत्तर भद्दवय सत्त उगुवीसा ।
रोहिणि अट्ठनवोत्तर, पुणव्वसंतम्मि सोज्झाणि ॥६॥
अट्ठसया उगुवीसा, बिसट्ठिभागा य होंति चउवीसं ।
छावट्ठी सत्तट्ठि भागा पुस्सरस्स सोहणगं ॥७॥"

छाया— त्रयस्त्रिंशच्च मुहूर्त्ताः, द्वाषष्टि भागौ च द्वौ मुहूर्त्तस्य ।
चतुस्त्रिंशत् चूर्णिका भागा पर्वीकृत ऋक्षध्रुव राशिः ॥१॥
इच्छापर्वगुणात् ध्रुवराशितश्च शोधनं कुरुत ।
पुष्यादीनं क्रमशः यथा दृष्टमनन्तज्ञानीभिः ॥२॥

एकोनविंशतिश्च मुहूर्त्ताः त्रिचत्वारिंशद् द्वाषष्टि भागाश्च ।
त्रय स्त्रिंशत्-चूर्णिकाः, पुष्यस्य शोधन मेतत् ॥३॥
एकोन चत्वारिंशं शतम् उत्तरफाल्गुनीनाम् एकोनषष्टे द्वे (शते) विशाखासु ।
चत्वारि नवोत्तराणि (शतानि) उत्तराषाढानां शोध्यानि ॥४॥
सर्वत्र पुष्पशेषं, शोध्यं अभिजितः चत्वारि एकोनविंशानि ।
द्वाषष्टिः षड् भागाः, द्वात्रिंशत् चूर्णिका भागाः ॥५॥
एकोनसप्ततानि पञ्च शतानि उत्तरभाद्रपदानां सप्त एकोन विंशानि ।
रोहिणी अष्ट नवोत्तराणि पुनर्वस्वन्ते शोध्यानि ॥६॥
अष्ट शतानि एकोन विंशानि, द्वाषष्टि भागाश्च भवन्ति चतुर्विंशतिः ।
षट् षष्टिः सप्तषष्टि भागाः पुष्यस्य शोधनकम् ॥७॥

एतेषां क्रमेण संक्षेपतो व्याख्या—**'तेत्तीसं च मुहुत्ता विसट्ठिभागा य दो मुहुत्तस्स'** त्रय स्त्रिंशन्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वौ द्वाषष्टि भागौ तथा **'चुत्तीचुण्णिया भागा'** एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य चतुस्त्रिंशत् चूर्णिका भागाः ॥ $३३ \frac{२}{६२} \Big| \frac{३४}{६७} \Big|$ एष सर्वेष्वपि पर्वसु **'पव्वीकया'** पर्वीकृतः एकेन पर्वणा निष्पादितः **'रिक्खधुवरासी'** ऋक्षध्रुवराशिः-सूर्यनक्षत्रविषयोऽयं ध्रुवराशिः ॥१॥ एष ध्रुवराशिः कथमुपपद्यते ? इत्येतदाह-एष त्रैराशिकात् समुपपद्यते, तथाहि-यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन पञ्चसूर्यनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते तदा एकेन पर्वणा कति पर्याया लभ्यन्ते ? इति त्रैराशिकं यथा —।१२४।५।१। अत्रापि त्रैराशिकगणितरीत्या—अन्त्येन मध्यं गुणयित्वा आद्येन भागहरणं भवतीति न्यायात् अन्त्येन एक रूपेण राशिना मध्यः पञ्चरूपो राशि र्गुण्यते जातस्तावानेव पञ्चरूपो राशिः (५) तत आद्येन चतुर्विंशत्यधिक शत रूपेण(१२४)भागो ह्रियते किन्तु मध्यराशेः स्तोकत्वाद् भागो न लभ्यते ततो लब्धा एकस्य सूर्यनक्षत्रपर्यायस्य पञ्च चतुर्विंशत्यधिकशतभागाः $(\frac{५}{१२४})$, एतान् नक्षत्रानयनार्थं त्रिंशदधिकाष्टादशशतैः (१८३०) सप्तषष्टि भागै र्गुणयिष्याम इति गुणकारच्छेदराश्योरर्धेनापवर्त्तना क्रियते जातो गुणकारराशिः पञ्चदशोत्तराणि नवशतानि (९१५) छेदराशि र्द्वाषष्टिः (६२) ततः पञ्चदशोत्तर नवशत (९१५) रूपेण गुणकार राशिना पञ्च गुण्यन्ते, जातानि पञ्च सप्तत्युत्तराणि पञ्चचत्वारिंशच्छतानि (४५७५) एतानि मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातमेकं लक्षं, सप्तत्रिंशत्सहस्राणि, पञ्चाशदधिके द्वे शते च (१३७२५०), छेदराशि र्द्वा षष्टिरूपः सप्तषष्ट्या गुण्यते जातानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि एक चत्वारिंशच्छतानि (४१५४) एभिरुपरितनराशेः (१३७२५०) भागो ह्रियते, लब्धास्त्रयस्त्रिंशन्मुहूर्त्ताः (३२)शेषम्—अष्ट षष्ट्यधिकमेकं शतं (१६८) तिष्ठति, एष राशि र्द्वा षष्टि भागानयनार्थं

द्वाषष्टया गुणयितव्य इति गुणकारच्छेदराश्यो र्द्वा षष्टयाऽपवर्त्तना क्रियते, जाता द्वा षष्टयाऽपवर्तितो द्वाषष्टिरूपो गुणकारराशिरेकरूपः (१), छेदराशिः चतुष्पञ्चाशदधिकैक चत्वारिंशच्छतरूपो द्वा षष्टयाऽपवर्त्तितो जातः सप्तषष्टिरूपः (६७), ततोऽष्टषष्टयधिकैकशतरूपो राशिरेकेन गुणितो जा तस्तावानेव (१६८), अस्य सप्तषष्टया भागे हृते लब्धौ द्वौ द्वाषष्टिभागौ, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुस्त्रिंशत् सप्तषष्टि भागाः (३३– $\frac{२}{६२}\Big|\frac{३४}{६७}$) इति । एवमेतत् प्रथम गाथोक्त ध्रुवराशिप्रमाणं समुपपन्नमिति द्वितीयगाथाभावना ॥२॥

अथ तृतीया गाथा व्याख्यायते–'**इच्छापव्वगुणाओ**' इत्यादि । '**इच्छापव्वगुणाओ**' इच्छापर्वगुणात्-इच्छा यस्य पर्वणो ज्ञतुमिच्छा, तद्विषयं यत् पर्वेति पर्वसंख्यानं, तद् इच्छापर्व, तेन गुणः–गुणकारो यस्य ध्रुवराशे स इच्छापर्वगुणः, तस्मात् इच्छापर्वगुणात् इच्छितपर्वगुणितात्, एतादृशात् '**धुवरासीओय**' ध्रुवराशितश्च ध्रुवराशिसकाशाच्च '**सोहणं कुणसु**' शोधनं कुरुत, केषामित्याह '**पूसाइणं कमसो**' पुष्यादीनां नक्षत्राणां क्रमशः-क्रमेण शोधनं कुर्यादित्यर्थः । कथमेतद् ज्ञातम् ? '**जह दिट्ठमणंतनाणीहिं**' यथा दिष्टम्–यथोपदिष्टमनन्तज्ञानिभिस्तथा कुर्यादिति भावः ॥२॥ अथ तृतीय गाथया तदेव शोधनकं दर्शयति–'**उगवीसं**' इत्यादि, '**उगवीसं च मुहुत्ता**' एकोनविंशतिश्च मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य '**तेयालीसं बिसट्ठिभागा य**' त्रिचत्वारिंशद् द्वाषष्टि भागाश्च तथा एकस्य द्वाषष्टि भागस्य '**तेत्तीस चुण्णियाओ**' त्रयस्त्रिंशच्चूर्णिका भागाः

(१९– $\frac{४३}{६२}\Big|\frac{\overset{\text{चू.}}{३३}}{६७}$) '**पूसस्स सोहणं एयं**' पुष्यस्य शोधनमेतत्–अनुपदोक्तमेतत् पुष्यनक्षत्रस्य शोधनकमस्ति ॥३॥

अथ तृतीयगाथाया भावना—एतावत्कं पुष्यशोधनकं कथमुपपद्यते ? इत्यत्राह–इह पाश्चात्य युगपरिसमाप्तौ पुष्यनक्षत्रस्य त्रयोविंशतिः सप्तषष्टिभागा गताः, शेषाश्चतुश्चत्वारिंशद्भागा [४४] अवतिष्ठन्ते, तत् एते मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि विंशत्यधिकानि त्रयोदशशतानि (१३२०), एषां सप्तषष्टया भागो हरणीयः, लब्धा एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः (१९), शेषाः सप्तचत्वारिंशत् (४७) तिष्ठन्ति, ते द्वाषष्टि भागनायनार्थं द्वाषष्टया गुण्यन्ते, जातानि–चतुर्दशोत्तराणि एकोनत्रिंशच्छतानि (२९१४) तत एतेषां सप्तषष्टया भागो ह्रियते, लब्धास्त्रिचत्वारिंशत् (४३) द्वाषष्टि भागाः ये शेषास्ते एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य त्रयस्त्रिंशत् (३३) सप्तषष्टि भागा इति तृतीय गाथा ॥

अथ चतुर्थी गाथां व्याख्यायते —'**उगुयाल सयं**' इत्यादि '**उगुयालसयं**' एकोनचत्वारिंशं शतम्–एकोनचत्वारिंशदधिकं शतं मुहूर्त्तानां एकोनचत्वारिंशदधिकं मुहूर्त्तशतं (१३९)

'उत्तर फग्गु' उत्तराफाल्गुनीनामिति-उत्तरा फाल्गुनी पर्यन्तानां नक्षत्राणां शोध्यम्। 'उगुणट्ठ दो' एकोनषष्टि द्वे इति, एकोनषष्ट्यधिके द्वे शते(२५९)'विसाहासु' विशाखासु हस्तत आरभ्य विशाखापर्यन्तेपु शोध्ये। 'चत्तारि नवोत्तर' चत्वारि नवोत्तराणि शतानि नवोत्तराणि चत्वारि मुहूर्त्तशतानि (४०९) 'उत्तराणसाढाण' उत्तरापाढानाम्-अनुराधात आरभ्य उत्तराषाढ़ा पर्यन्तानां नक्षत्राणा 'सोज्झाणि' शोध्यानि (४०९) इति चतुर्थगाथा व्याख्या ॥४॥

अथ पञ्चमी गाथा व्याख्यायते-'सव्वत्थ' इत्यादि, 'सव्वत्थ' सर्वत्र एतेपु सर्वेष्वपि शोधनेपु 'पुस्ससेसं' पुष्यशेपं यत्पुष्यस्य मुहूर्त्तेभ्यः शेपं एकस्य मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशत् द्वाषष्टि भागाः, एकस्य च द्वापष्टि भागस्य त्रयस्त्रिंशत्सप्तषष्टि भागाः $\frac{४३}{६२}\Big|\frac{३३}{६७}$ इति तत प्रत्येकं 'सोज्झं' शोध्यं शोधनीयम्, तथा 'अभिइस्स' अभिजितः अभिजिन्नक्षत्रस्य 'चउर उगवीसा' चत्वारि एकोनविशानि-एकोनविशत्यधिकानि चत्वारि मुहूर्त्तशतानि तथा 'बावट्ठि छब्भागा' द्वापष्टिः षड्भागाः-एकस्स्य च मुहूर्त्तस्य षड्द्वापष्टि भागाः, 'बत्तीसं चुण्णिया भागा' तथा द्वात्रिंशच्चूर्णिका भागाः-एकस्य च द्वापष्टि भागस्य द्वात्रिंशत्सप्तषष्टि भागाः (४१९-$\frac{६}{६२}$ $\frac{३२चू}{६७}$) इति शोध्यमू, एतावता पुष्यादीनि अभिजित्पर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धयन्तीति भावार्थः ॥५॥

अथ षष्टी गाथा व्याख्यायते-'उगुणत्तर०' इत्यादि, 'उगुणत्तर पंचसया' एकोन सप्तानि एकोन सप्तत्यधिकानि पञ्चशतानि मुहूर्त्तानामू (५६९) 'उत्तरभद्दवय' उत्तरभाद्रपदानाम्-श्रवणत आरभ्य उत्तरभाद्रपदा पर्यन्तानां शोध्यानि। तथा 'सत्तउगुवीसा' सप्तएकोनविंशत्यधिकानि सप्तशतानि (७१९) 'रोहिणी' रोहिर्णारेवतीत आरभ्य रोहिणी पर्यन्तानां शोध्यानि 'अट्ठनवोत्तर' अष्टनवोत्तराणि नवोत्तराष्टशतानि (८०९) 'पुणव्वसंतम्मि' पुनर्वस्वन्ते पुनर्वसुपर्यन्ते मृगशिरस आरभ्य रोहिणी पर्यन्तानां नक्षत्राणां 'सोज्झाणि' शोध्यानि शोधनीयानि भवन्तीति ॥६॥

अथ सप्तमी गाथा व्याख्यायते-'अट्ठसया' इत्यादि, 'अट्ठसया उगुवीसा' अष्टशतानि एकोनविंशानि-एकोनविंशत्यधिकानि अष्टौ मुहूर्त्तशतानि (८१९), 'बिसट्ठिभागा य होंति चउवीसा' द्विषष्टि भागाश्च भवन्ति चतुर्विंशतिः-एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागाः, तथा 'छावट्ठि सत्तट्ठि भागा' षट् षष्टिसप्तषष्टि भागाः, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य षट् षष्टिः-सप्तषष्टि भागाः (८१९-$\frac{२४}{६२}\Big|\frac{६६}{६७}$) इति 'पुस्सस्स सोहणगं' पुष्यस्य शोधनक्रमस्ति, एतावता सम्पूर्ण एक सूर्यनक्षत्रपर्यायः शुद्ध्यतीति तात्पर्यार्थः ।.७॥

इति करणगाथा व्याख्या समाप्ता ॥१-७॥

आसां भावना चेत्थम्-अथ कोऽपि पृच्छति-प्रथमं पर्व कस्मिन् सूर्यनक्षत्रे समाप्तं भवति ? अत्र ध्रुवराशिः-त्रयस्त्रिंशन्मुहूर्त्ताः एकस्य मुहूर्त्तस्य द्वौ द्वाषष्टिभागौ, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य चतुस्त्रिंशत् सप्तषष्टि भागौ (३३ $\frac{२}{६२}|\frac{३४}{६७}$)। एष ध्रुवराशिः स्थाप्यते। एषो ध्रुवराशिः प्रथमपर्वविषयक प्रश्नत्वाद् एकेन गुण्यते, जातस्तावानेव। ३३।२।३४। एतस्मात् पुष्यशोधनकम्-एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः, एकस्य मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशत्सप्तषष्टिभागाः (१९ $\frac{४३}{६२}|\frac{३३}{६७}$) इत्येवं प्रमाणं शोध्यते शोधिते स्थिताः शेषास्त्रयोदशमुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य एक विंशति द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टि भागः (१३ $\frac{२१}{६२}|\frac{१}{६७}$)। तत आगतम्-अश्लेषानक्षत्रस्यैतावद्भागान् भुक्त्वा सूर्यः प्रथमं पर्व श्रावणमासगतामावास्या रूपं परिसमापयतीति ॥१॥ द्वितीयपर्वविचारणायामपि स पूर्वोक्त एव ध्रुवराशिः-३३।२।३४। अत्र द्वितीयपर्वविषयक प्रश्नत्वादेष ध्रुवराशिर्द्वाभ्यां गुण्यते जाताः षट्षष्टिर्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टिभागः ६६।५।१। एतस्मात् पुष्यशोधनकं यथोक्तप्रमाण-१९।४३।३३। शोध्यते, स्थिताः पश्चात् षट् चत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः, त्रयोविंशतिर्द्वाषष्टि भागाः, पञ्चत्रिंशत्सप्तषष्टिभागाः ४६।२३।३५। एतस्मात् पञ्चदश मुहूर्त्ता अश्लेषानक्षत्रस्य शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चात् एकत्रिंशन्मुहूर्त्ता (३१) एभ्यः-त्रिंशन्मुहूर्त्ता मघा नक्षत्रस्य शोध्यन्ते, स्थितः पश्चादेको मुहूर्त्तः (१) तत आगतम् द्वितीयं पर्व सूर्यः पूर्वफाल्गुनी नक्षत्रस्य एकं मुहूर्त्तम् एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशति द्वाषष्टिभागान्, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य पञ्चत्रिंशतं सप्तषष्टि भागान्— (१ $\frac{२३}{६२}|\frac{३५}{६७}$) भुक्त्वा परिसमापतीति। २।

तृतीय पर्व पृच्छायामपि स एव ध्रुवराशिः ३३।२।३४ त्रिभिर्गुण्यते, जाता नव नवतिर्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तद्वाषष्टि भागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्च त्रिंशत्सप्तषष्टिभागाः (९९ $\frac{७}{६२}|\frac{३५}{६७}$)। एतस्माद्राशेः पुष्यशोधनकं (१९।४३।३३) शोध्यते, स्थिताः पश्चात्-एकोनाशीति मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षड्विंशते द्वाषष्टि भागा, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य द्वौ सप्तषष्टि भागौ (७९ $\frac{२६}{६२}|\frac{२}{६७}$)। ततः पञ्चदश मुहूर्त्ता अश्लेषाया. शोध्या., स्थिताः पश्चात चतुषष्टि मुहूर्त्ताः (६४)। अस्माद्राशे. त्रिशन्मुहूर्त्ता मघायाः शोध्याः, स्थिताः पश्चात् चतुस्त्रिंशन्मुहूर्त्ताः (३४), अस्मात् त्रिंशन्मुहूर्त्ताः पूर्वफगुन्या शोध्याः पश्चाच्चत्वारो मुहूर्त्ताः (४) तत आगतम्-तृतीयं

पर्व भाद्र पदमासामावास्या लक्षणं सूर्य उत्तरफाल्गुनी नक्षत्रस्य चतुरो मुहूर्त्तान् , एकस्य च मुहूर्त्तस्य षड् विंशतिं द्वाषष्टिभागान् , एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य दौ सप्तषष्टिभागौ भुक्त्वा समाप्तिं नयतीति ।३। इत्येतानि त्रीणि पर्वाणि गणितेन प्रदर्शितानि अनयैव रीत्या शेषेषु पर्वस्वपि सर्वे समापकानि सूर्यभोगनक्षत्राणि स्वयमूहनीयानीति ।

अत्र युग पूर्वार्धभावि द्वाषष्टि पर्व गत सूर्यनक्षत्रसूचिका इमाश्चतस्रो गाथाः प्रदर्श्यन्ते—

"सप्प-भग-अज्जमदुगं, हत्थो चित्ता विसाह मित्तो य ।
जेट्ठाइयं च छक्कं अजाभिवुड्ढी दु पूसासा ॥१॥
छक्कं च कत्तियाई, पिइ-भग अज्जमदुगं च चित्ता य ।
वाउ विसाहा अणुराह जेट्ठ आउंच वीसु दुगं ॥२॥
सवणधणिट्ठा अजदेव अभिवुड्ढी दुअस्स जम वहुला ॥
रोहिणि सोम दिइ दुगं, पुस्सों पिइ भगज्जमा हत्थो ॥३॥
चित्ता य जिट्ठवज्जा, अभिई अंताणि अट्ठ रिक्खाणि ।
एए जुग पुव्वद्धे, विसट्ठिपव्वेसु रिक्खाणि ॥४॥

छाया—सर्प १ भग २ अर्यमद्विकं ४ हस्त ५ चित्रा ६ विशाखा, मित्रं च । ज्येष्ठादिकं च षट्कं १४, अज १५ अभिवृद्धि द्विकं १७ पुष्याश्वो १९ ॥१॥ षट्कं च कृत्तिका दि २५ पितृ २६ भग २७ अर्यमद्विकं २९ च चित्रा ३० च । वायुः ३१ विशखा ३२ अनुराधा ३३ ज्येष्ठा ३४ आयुः ३५ विश्वग्द्विकम् ३, ॥२॥ श्रवणः ३८, धनिष्ठा ३९ अजदेवः ४० अभिवृद्धिद्विकं ४२ अश्व ४३ यमबहुलौ ४५ रोहिणी ४६ सोमः ४७ अदितिद्विकं ४९ पुष्यः ५० पितृ ५१ भग ५२ अर्यमा ५३ हस्त ५४ चित्रा ५५ च ज्येष्ठावर्जानि अभिजिदन्तानि अष्ट ऋक्षाणि ६२ । ॥३॥ एतानि युगपूर्वार्धे द्विषष्टि पर्वसु ऋक्षाणि ॥४॥ इति ॥

एतासां व्याख्या—प्रथमस्य पर्वणः समाप्तौ सूर्यनक्षत्रं सर्पः सर्पदेवतोपलक्षिताऽश्लेषा १, द्वितीयस्य भगः—भगदेवतोपलक्षितः पूर्वफाल्गुन्यः २, ततः अर्यमद्विकमिति तृतीयस्यार्यमदेवतोपलक्षिता उत्तरफाल्गुन्यः ३, चतुर्थस्यापि उत्तरफाल्गुन्यः ४, पञ्चमस्य हस्तः ५ षष्ठस्य चित्रा ६, सप्तमस्य विशाखा ७, अष्टमस्य मित्रदेवतोपलक्षिताऽनुराधा ८, ततो ज्येष्ठादिकं षट्कं ज्येष्ठादीनि षड् नक्षत्राणि क्रमेण वक्तव्यानि, तथाहि—नवमस्य ज्येष्ठा ९, दशमस्य मूलम् १०, एकादशस्य पूर्वाषाढा ११, द्वादशस्योत्तराषाढा १२, त्रयोदशस्य श्रवणः १३, चतुर्दशस्य धनिष्ठा १४, पञ्चदशस्याजः अजदेवतोपलक्षिताः पूर्वभाद्रपदाः १५, 'अभिवुड्ढिदुगं' अभिवृद्धिद्विकमिति षोडशस्याभिवृद्धिः अभि-

वृद्धि देवतोपलक्षिता उत्तरभाद्रपदाः १६, सप्तदशस्यापि उत्तर भाद्रपदा १७, अष्टादशस्य पुष्यः-पुष्य देवतोपलक्षिता रेवती १८, एकोनविंशतितमस्याश्व'-अश्वदेवतोपलक्षिता अश्विनी १९, 'छक्कं च कत्तियाई' पट्कं च कृत्तिकादिकमिति कृतिकात आरभ्य पुष्यपर्यन्तानि नक्षत्राणि क्रमेण षण्णां पर्वणाम्, तथाहि—

विंशतितमस्य कृत्तिका २०, एकविंशतितमस्य रोहिणी २१, द्वाविंशतितमस्य मृगशिरः २२, त्रयोविंशतितमस्य आर्द्रा २३, चतुर्विंशतितमस्य पुनर्वसुः २४, पञ्चविंशतितमस्य पुष्यः २५, षड्विंशतितमस्य पितृदेवतोपलक्षिता मघा २६, सप्तविंशतितमस्य भग'—भगदेवतोपलक्षिताः पूर्वफाल्गुन्यः २७, 'अज्जमदुगं' अर्यमद्विकमिति अष्टाविंशतितमस्य २८, एकोनत्रिंशत्तमस्य २९, च द्वयोरपि 'अज्जम' इति अर्यमा-अर्यमदेवतोपलक्षिता उत्तराफाल्गुन्यः २८-२९ त्रिंशत्तमस्य चित्रा ३०, एकत्रिंशत्तमस्य वायुः-वायुदेवतोपलक्षिता स्वातिः ३०, द्वात्रिंशत्तमस्य विशाखा ३२, त्रयस्त्रिंशत्तमस्यानुराधा ३३, चतुस्त्रिंशत्तमस्य ज्येष्ठा ३४ पञ्चत्रिंशत्तमस्य पुनरायुः—आयुर्देवतोपलक्षिताः पूर्वाषाढाः ३५, 'वीसुदुगं' इति विष्वग्द्विकं विष्वग् द्वयोर्नक्षत्रयोः तथाहि षट्त्रिंशत्तमस्य विश्वग्देवतोपलक्षिता उत्तराषाढाः ३६, सप्तत्रिंशत्तमस्यापि उत्तराषाढाः ३७, अष्टत्रिंशत्तमस्य श्रवण' ३८, एकोनचत्वारिंशत्तमस्य धनिष्ठा ३९, चत्वारिंशत्तमस्याजः—अजदेवतोपलक्षिताः पूर्वभाद्रपदाः ४०, एकचत्वारिंशत्तमस्याभिवृद्धि'—'अभिवुड्ढिदुगं' अभिवृद्धिर्द्वयोरिति अभिवृद्धिदेवतोपलक्षिता उत्तरभाद्रपदाः ४१, द्विचत्वारिंशत्तमस्याप्युत्तरभाद्रपदा, ४२, त्रिचत्वरिंशत्तमस्याश्वः अश्वदेवतोपलक्षिता अश्विनी ४३, चतुश्चत्वारिंशत्तमस्य यम'-यमदेवतोपलक्षिता भरणी ४४, पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य बहुला-बहुलदेवतोपलक्षिताः कृत्तिका ४५, षट् चत्वारिंशत्तमस्य रोहिणी ४६, सप्तचत्वारिशत्तमस्य सोमः-सोमदेवतोपलक्षितं मृगशिरः ४७, 'अदिइदुगं' अदिति द्विकम्, इति-अष्टचत्वारिंशत्तमस्य एकोन पञ्चाशत्तमस्य चादितिः-अदिति देवतोपलक्षितं पुनर्वसुनक्षत्रम् ४८-४९, पञ्चाशत्तमस्य पुष्यः ५०, एकपञ्चाशत्तमस्य पिता-पितृदेवतोपलक्षिताः मघा ५१, द्विपञ्चशत्तमस्य भगः-भगदेवतोपलक्षिताः पूर्वफाल्गुन्यः ५२, त्रिपञ्चाशत्तशस्यार्यम-अर्यमदेवतोपलक्षिता उत्तरफाल्गुन्य ५३, चतुष्पञ्चाशत्तमस्य हस्तः ५४, अतोऽग्रे 'चित्ता य जिट्ठवज्जा अभिई अंताणि अट्ठरिक्खाणि' चित्रा चेति चित्रादीनि अभिजित्पर्यन्तानि ज्येष्ठारहितानि अष्टनक्षत्राणि क्रमेण वक्तव्यानि, तथाहि—पञ्चपञ्चाशत्तमस्य चित्रा ५५, षट् पञ्चाशत्तमस्य स्वाति. ५६, सप्तपञ्चाशत्तमस्य विशाखा ५७, अष्टपञ्चाशत्तमस्यानुराधा ५८ एकोनषष्टितमस्य मूलम् ५९, षष्टितमस्य पूर्वाषाढाः ६०, एकषष्टितमस्योत्तराः षाढाः ६१, द्वाषष्टितमस्याभिजित् ६२, इति । एतानि द्वाषष्टिनक्षत्रानि यथायोगं भुक्त्वा सूर्यः युगस्य पूर्वार्धे द्वाषष्टिसंख्यकानि

पर्वाणि समापयतीति । एवमेव करणवशात् युगस्योत्तरार्धेऽपि द्वाषष्टि पर्वसु सूर्यनक्षत्राणि स्वयमूहनीयानीति ।

युगस्य चरमदिवसे किं पर्व कियत्सु मुहूर्तेषु गतेषु समाप्तिमेतीत्येतद्विषयारितस्रः गाथा अत्र प्रदर्श्यन्ते—

"चउहिं हियम्मि पव्वे, एक्को सेसम्मि होइ कलिओगो ।
वेसु य दावरजुम्मो, तिसु तेया चउसु कडजुम्मो ॥१॥
कलिओगे तेणउई, पक्खेवो दावरम्मि वावट्ठी ।
तेओए एक्कतीसा, कडजुम्मे नत्थि पक्खेवो ॥२॥
सेसद्धे तीस गुणे, वावट्ठो भइयंमि जं लद्धं ।
जाणे तइसु मुहुत्तेसु, अहोरत्तस्स तं पव्वं ॥३॥

छाया—चतुर्भिर्हृते (भक्ते) पर्वणि, एकस्मिन् शेषे भवति कल्योजः ।
द्वयोश्च द्वापरयुग्मः, त्रिपु त्रेतौजः चतुर्पु कृतयुग्मः ॥१॥
कल्योजे त्रिनवतिः प्रक्षेपो द्वापरे द्वाषष्टिः ।
त्रेतौजे एकत्रिंशत्, कृतयुग्मे नास्ति प्रक्षेपः ॥२॥
शेषार्धे त्रिंशद्गुणिते द्वाषष्टि भाजिते यल्लब्धम् ।
जानीयात् तावत्केपु मुहूर्त्ते अहोरात्रस्य तत् पर्व ॥३॥ इति

एतासां व्याख्या—'चउहिं' इत्यादि, 'पव्वे' पर्वणि पर्वराशौ 'चउहिं हियंमि' चतुर्भि र्भागे हृते सति 'एक्के सेसंमि' एकस्मिन् शेषे सति यद्येकः शेषोऽवतिष्ठते तदा सः 'होइ कलिओगो' भवति कल्योजः कल्योजो भवति, 'वेसु य दावरजुम्मो' द्वयोश्च शेषयोर्द्वापरयुग्मः, 'तिसु तेया' त्रिपु शेषेषु त्रेतौजः, 'चउसु कडजुम्मो' चतुर्षु शेषेषु च कृतयुग्मो भवतीति ॥१॥ अथैतेपु प्रक्षेपराशिमाह—'कलिओगे' इत्यादि 'कलिओगे' कल्योजे कल्योजराशौ 'तेणउई' त्रिनवतिः 'पक्खेवो' प्रक्षेपः प्रक्षेपणीयो राशिः, 'दावरम्मि वावट्ठी' द्वापरे द्वापरराशौ द्वाषष्टिः द्वाषष्टिराशिः प्रक्षेपणीयो भवति, 'तेऊए-एक्कतीसा' त्रेतौजे एकत्रिंशत्, 'कडजुम्मे नत्थि पक्खेवो' कृतयुग्मे न कोऽपि प्रक्षेपः प्रक्षेपणीयो राशिर्न भवतीति ॥२॥ एवं प्रक्षेपे कृते तेषां प्रक्षिप्तप्रक्षेपाणां पर्वराशीनां चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन (१२४) भागो हियते, भागे हृते यच्छेषं तस्य किं कर्त्तव्यमिति तद्विधिमाह—'सेसद्धे' इत्यादि, 'सेसद्धे' शेषार्धे शेषस्य भागावशिष्टस्यार्धं क्रियते, तस्मिन् 'तीसगुणे' त्रिंशद्गुणिते त्रिशता गुणनं क्रियते, ततस्तस्य 'वावट्ठीभाइए' द्वाषष्टि भाजिते द्वाषष्ट्या भागेहृते सति 'जं लद्धं' यल्लब्धं यो राशिर्लब्धः, 'तइसु मुहुत्तेसु' तावत्केपु मुहूर्त्तेषु भागलब्धराशि

परिमितेषु मुहूर्त्तेषु, कस्य ? 'अहोरत्तस्स' अहोरात्रस्य तावत्परिमितेषु मुहूर्त्तेषु 'तं पव्वं' तत्पर्व समाप्तं भवति 'जाणे' जानीयात् । भागे हृते यो राशिः शेषोऽवतिष्ठते तं राशिं मुहूर्त्तस्य भागरूपं जानीयात् यत्—एकस्य मुहूर्त्तस्य एतावन्तो भागा इति । तद्विवक्षितं पर्व चरमेऽहोरात्रे सूर्योदयादनन्तर तावत्सु मुहूर्त्तेषु तावत्सुच मुहूर्त्तभागेषु व्यतीतेषु परिसमाप्तिं प्राप्तमिति ज्ञातव्यमिति ॥३॥

गता करणगाथा व्याख्या, अथ तद्भावना प्रदर्श्यते—अत्र कोऽपि पृच्छेत्—प्रथमं पर्व-चरमेऽहोरात्रे कति मुहूर्तातिक्रमेण परिसमाप्तिं गतम् ? इति प्रश्ने प्रथमं पर्व पृच्छात्वेन एकः स्थाप्यते, अयमेकरूपो राशिः कल्योजः 'कलिओगे तेणउई' इति वचनादत्र त्रिनवतिः प्रक्षेपणीया, प्रक्षेपणे जाता चतुर्नवतिः (९४) अस्य चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन (१२४) भागो ह्रियते एकस्मिन् युगे पूर्वार्द्धे उत्तरार्धे च पर्वणां चतुर्विंशत्यधिकशतसंख्यकत्वात् । अत्र भाजकाद् भाज्यस्य स्तोकत्वाद् भागो न लभ्यते ततो यथासंभवं करणलक्षणं कर्त्तव्यम् तत्र चतुर्नवतेरर्धं क्रियते जाताः सप्तचत्वरिंशत् (४७), एते त्रिंशता गुण्यन्ते जातानि चतुर्दशशतानि दशोत्तराणि (१४१०) एषां द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः (२२) शेषातिष्ठन्ति षट्चत्वारिंशत् (४६), ततश्छेद्य-छेदकराश्योरर्धेनापवर्त्तना क्रियते तत्र छेद्यराशेः षट्चत्वरिंशद्रूपस्यार्धं त्रयोविंशतिः (२३) छेदकराशेर्द्वाषष्टिरूपस्यार्धमेकत्रिंशत् (३१)तेन लब्धास्त्रयोविंशतिरेकत्रिंशद्भागा ($\frac{२३}{३१}$) तत आगतम्—प्रथमं पर्व चरमेऽहोरात्रे द्वाविंशतिं मुहूर्त्तान्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशतिमेकत्रिंशद्भागान् (२२—$\frac{२३}{३२}$) अतिक्रम्य समाप्तिं गतमिति ।१।

अथ द्वितीयपर्वप्रश्ने प्राह—द्वितीयपर्वप्रश्नत्वेन द्विको ध्रियते, स च द्वापरयुग्मराशिरिति 'दावरम्मि बावट्ठी' इति वचनादत्र द्वाषष्टिः प्रक्षिप्यते जाता चतुष्षष्टिः (६४) इयं चतुर्विंशत्यधिकशतेन भागं न लभते स्तोकत्वात् ततोऽस्या अर्धं क्रियते जाता द्वात्रिंशत् (३२) सा त्रिंशता गुण्यते जातानि षष्ट्यधिकानि नवशतानि (९६०) तेषां द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धाः पञ्चदश मुहूर्त्ताः (१५), पश्चात्तिष्ठति त्रिंशत्, ततश्छेद्यच्छेदकराश्योरर्धेनापवर्त्तना करणे लब्धा पञ्चदश एकत्रिंशद्भागाः ($\frac{१५}{३१}$), तत आगतम् द्वितीयं पर्व चरमेऽहोरात्रे पञ्चदशमुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चदशैकत्रिंशद्भागानाम् (१५—$\frac{१५}{३१}$) अतिक्रमणे समाप्तं भवतीति ।२।

अथ तृतीयं पर्व प्राह—अत्र तृतीय पर्व पृच्छात्त्वेन त्रिको राशिः स्थाप्यते, स च त्रेतौजराशिरिति 'तेओए एक्कतीसा' इति वचनात् अत्र एकं त्रिंशत् प्रक्षिप्यते, जाताश्चतुस्त्रिंशत् (३४), एते चतुर्विंशत्यधिकशतेन भागं न लभन्ते, तत स्तस्यार्धं क्रियते जाताः सप्तदश (१७) एते त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि दशोत्तराणि पञ्च शतानि(५१०), एषा द्वापष्टया भागो ह्रियते, लब्धा अष्टौ (८) शेषाः स्थिताश्चतुर्दश (१४), ततश्छेद्यच्छेदकराश्योरपवर्तनायां कृतायां लब्धाः सप्तएकत्रिंशद्भागाः ($\frac{७}{३१}$) तत आयातम्-तृतीयं पर्व चरमेऽहोरात्रेऽष्टौ मुहूर्त्तान् एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्त एकत्रिंशद्भागान् ($८\frac{७}{३१}$) अतिक्रम्य समाप्तिमेतीति ॥३।

अथ चतुर्थपर्वविषये प्रोच्यते-चतुर्थपर्वपृच्छयां चतुष्को राशिः स्थाप्यते (४)। अयं च कृतयुग्मराशि रिति 'कडजुम्मे नत्थि पक्खेवो' इति वचनादत्र न किमपि प्रक्षिप्यते। एते चत्वार श्चतुर्विंशत्यधिकशतेन भागं न लभन्ते ततोऽस्यार्धं क्रियते जातौ द्वौ, एतौ त्रिंशता गुण्येते जाता षष्टिः (६०), एतस्या द्वाषष्टया भागो न प्राप्यते स्वल्पत्वात्, ततश्छेद्यच्छेदक राश्योरर्धेनापवर्त्तना करणेन जाता त्रिंशदेकत्रिंशद्भागाः ($\frac{३०}{३१}$) तत आगतम्-चतुर्थं पर्व चरमेऽहोरात्रे मुहूर्त्तस्य त्रिंशदेव त्रिंशद्भागानतिक्रम्य समाप्तिमेतीति ।४।

अनयैव रीत्या शेषेष्वपि पञ्चमपर्वत आरभ्य त्रयोविंशत्यधिशतपर्यन्तेषु पर्वसु भावना कर्त्तव्येति।

अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमपर्वविषये प्राह एकस्य युगस्य पञ्चवर्षात्मकस्याभिवर्द्धित मासद्वयसंभवात् पूर्वार्द्धे द्वाषष्टिः, उत्तरार्धेऽपि द्वाषष्टिरिति मिलित्वा सर्वाणि चतुर्विंशत्याधिकशत (१२४) संख्यकानि पर्वाणि भवन्ति, तत्रान्तिम चतुर्विंशत्यधिक शतरूपो राशिरत्र स्थाप्यते (१२४), अस्य च चतुर्भिर्भागे हृते न किमपि शेषमवतिष्ठते इत्ययं कृतयुग्मोराशिस्ततः 'कडजुम्मे नत्थि पक्खेवो' इत्यत्र न किमपि प्रक्षिप्यते, ततश्चतुर्विंशत्यधिकशतेन भागे हृते जातो राशि र्निर्लेपः, न किमप्यवशिष्यते तत आगतम्-सम्पूर्णं चरममहोरात्रं भुक्त्वा चतुर्विंशत्यधिकशततमं पर्व समाप्तं भवतीति ॥सू० ३॥

॥ इति युगसवत्सरप्रकरणं समाप्तम् ॥

तदेवमुक्तो युगसंवत्सरः, सम्प्रति प्रमाणसवत्सरमाह—'ता पमाणसंवच्छरे' इत्यादि।

मूलम्—ता पमाणसंवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते, तं जहा-नक्खत्ते १ चंदे २, उऊ ३ आइच्चे ४ अभिवड्ढिए ५ ॥ सू० ४ ॥

छाया—तावत् प्रमाणसंवत्सरः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-नाक्षत्रः १, चान्द्रः २, आर्त्तवः ३ आदित्यः ४ अभिवर्द्धितः ५ ॥ सू० ४ ॥

व्याख्या--'ता' इति, 'ता' तावत् 'पमाणसंवच्छरे' प्रमाणसंवत्सरः प्रमाणनामकः संवत्सरः 'पंचविहे पण्णत्ते' पञ्चविधः प्रज्ञप्तः कथितः, 'तं जहा' तद्यथा-- ते यथा-'नक्खत्ते' नक्षत्रः--नक्षत्रसंवत्सरः १ 'चंदे' चान्द्रः चन्द्रसंवत्सरः २, 'उऊ' ऋतुः-ऋतु संवत्सरः ३, 'आइच्चे' आदित्यः-आदित्य संवत्सरः ४, 'अभिवड्ढिए' अभिवर्द्धितः-अभिवर्द्धितसंवत्सरश्च ५, इदं प्रमाणसवत्सरस्य पञ्चविधत्वमुक्तम्, तत्र नक्षत्रसंवत्सरस्य, चन्द्रसंवत्सरस्य, अभिवर्द्धित-सवत्सरस्य च सविस्तरं स्वरूपं पूर्वमुपदर्शितमेव, अत्र ऋत्वादित्यसंवत्सरयोः स्वरूपं विविच्यते-तत्र संवत्सर इति किम्? तदर्शयति द्वे घटिके एको मुहूर्तः ते त्रिंशद् एकोऽहोरात्रः, परिपूर्णाः पञ्चदशाहोरात्राः-एकः पक्षः, द्वौ पक्षौ एको मासः, ते द्वादशमासाः परिपूर्णा भवेयुस्तदा एकः संवत्सरो भवति। तत्र यस्मिन् संवत्सरे परिपूर्णानि षष्ट्यधिकानि त्रीणि शतानि (३६०) अहोरा-त्राणां भवन्ति स ऋतु संवत्सरः कथ्यते। ऋतवो हि वसन्तादयो लोकप्रसिद्धाः, तत्प्रधानः संव-त्सरः ऋतुसंवत्सरः। अस्य संवत्सरस्यापरमपि नामद्वयं विद्यते, तथाहि-कर्म संवत्सरः सवनसंवत्स-रश्च, तत्र कर्मेतिलौकिको व्यवहारः, तत्प्रधानः संवत्सरः कर्मसंवत्सरः यतोलोके प्रायः सर्वोऽपि-व्यवहारोऽनेनैव संवत्सरेण जायते, तथा चैतत्सम्बन्धिनं मासमधिकृत्यान्यत्र प्रोक्तम्--

"कम्मो निरंसयाए, मासो ववहारकारगो लोए।
सेसा उ संसयाए, ववहारे दुक्करो घेत्तुं ॥१॥"
छाया-कर्म :-कर्ममासो निरंशतया मासो व्यवहार कारको लोके।
शेपास्तु सांशतया व्यवहारे दुष्कराग्रहीतुम् ॥१॥ इति ॥

अयं कर्ममासो निरंशो भवति, निरंशः अंशरहितः परिपूर्ण त्रिंशदहोरात्रप्रमाणः, शेपा मासाः सांशाः अंशसहिता भवन्ति, अंशास्तु त्रिंशदहोरात्राणामुपरि घटिकादि रूपाः कथ्यन्ते, अतोऽन्ये मासा सांशतया व्यवहारे ग्रहीतुं दुष्करा भवन्ति, अत ऋतुसंवत्सरगतो मासः कर्म मास कथ्यत इति भावार्थः। अस्यापरंनाम सवनसंवत्सरः, तत्र सवनमिति कर्मसु प्रेरणं, षू प्रेरणे इति धातोः सवनं सिध्यति, सवनसंवत्सरः प्रेरणाप्रधानः संवत्सर इति, अनेन व्यवहारे प्रेरणा जायते, तत्प्रधानः सवत्सरः सवनसंवत्सरः कथ्यते, उक्तञ्च---

"वेनालिया मुहुत्तो, सट्ठी उण नालिया अहोरत्तो।
पन्नरस अहोरत्ता, पक्खो तीसं दिणा मासो ॥१॥
संवच्छरो उ वारस, मासा पक्खा यत्ते चउव्वीसं।
तिन्नेव सया सट्ठा, हवंति राइंदियाणं तु ॥२॥
एसो सकमो भणिओ, नियमा संवच्छरस्स कम्मस्स।
कम्मोत्ति सावणो-त्तिय, उउ इत्ति तस्स नामाणि ॥३॥"

छाया---द्वे नाडिके (घटिके) मुहूर्त्तः, षष्टिः पुन नाडिकाः अहोरात्रः ।
पञ्चदश अहोरात्राः पक्षः त्रिंशद्दिनानि मासः ॥१॥
संवत्सरस्तु द्वादश मासाः, पक्षाश्च ते चतुर्विंशतिः ।
त्रीण्येवशतानि षष्ट्यधिकानि भवन्ति रात्रिन्दिवानां तु ॥२॥
एषस्तु क्रमो भणितः, नियमात् संवत्सरस्य कर्मणः ।
कर्म इति सावन इति च ऋतुरिति च तस्य नामानि ॥३॥ इति ।

अथ च यावता कालेन प्रावृडादयः षडपि ऋतवः परिपूर्णाः प्रवृत्ता भवन्ति तावत्परिमितः कालविशेष आदित्य संवत्सरो भवति ऋतुपरिवर्त्तनस्यादित्याधीनत्वात् उक्तञ्च—

"छप्पि-उ ऊ परियट्टा एसो संवच्छरो उ आइच्चो"

षडपि ऋतुपरिवर्त्ताः एष संवत्सरस्तु आदित्यः, इतिच्छाया ।

लोके यद्यपि षष्ट्यहोरात्रप्रमाणः प्रावृडादिक ऋतुः प्रसिद्धोऽस्ति तथापि वस्तुतः स एकषष्ट्यहोरात्रप्रमाणा वेदितव्यः, तथैवोत्तर कालमव्यभिचारदर्शनात्, अतएव चास्मिन् आदित्यसंवत्सरे षट् षष्ट्यधिकानि त्रीणि शतानि (३६६) रात्रिन्दिवानां भवन्ति । आदित्यमासः सार्ध त्रिंशदहोरात्र परिमितो, भवति, तत एतत्परिमितैर्द्वादशभिश्च मासैरादित्यसंवत्सरो भवति, उक्तं-चान्यत्रापि पञ्चस्वपि संवत्सरेषु रात्रिन्दिवानां यथोक्तं परिमाणम्—

"तिन्नि अहोरत्तसया, छावट्ठा भक्खरो हवइ वासो ।
तिन्ना सया पुण सट्ठा कम्मो संवच्छरो होइ ॥१॥
तिन्नि अहोरत्तसया, चउ पन्ना नियमसो हवइ चंदो ।
भागो य बारसेव य बावट्ठि कएण छेएण ॥२॥
तिन्नि अहोरत्तसया, सत्तावीसा य होंति नक्खत्ता ।
एक्कावन्नं भागा, सत्तट्ठिकएण छेएण ॥३॥
तिन्नि अहोरत्तसया, तेसीईचेव होइ अभिवड्ढी ।
चोयालीसंभागा, बावट्ठिकएण छेएण ॥४॥

छाया---त्रीणि अहोरात्रशतानि षट् षष्ट्यधिकानि (३६६) भास्करे भवति वर्षः ।
त्रीणि शतानि पुनः षष्ट्यधिकानि (३६०) अहोरात्राणां) कर्मसंवत्सरो भवति ॥१॥
त्रीणि अहोरात्रशतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि (३५४) (अहोरात्राणां) नियमतो भवति चान्द्रः (संवत्सरः) ।
भागश्च द्वादशैव च द्वाषष्टिकृतेन छेदेन($354\frac{12}{62}$) ॥२॥

त्रीणि अहोरात्रशतानि सप्तविंशत्यधिकानि च भवन्ति नाक्षत्रः ।

एक पञ्चाशद् भागा सप्तषष्टिकृतेन छेदेन ($३२७\frac{५१}{६७}$) ॥३॥

त्रीणि अहोरात्रशतानि त्र्यशीत्यधिकानि (अहोरात्राणां) चैव भवति अभिवर्द्धितः ।

(संवत्सरः) चतुश्चत्वारिंशद् भागा द्वाषष्टिकृतेन छेदेन ($३८३\frac{४४}{६२}$) ॥४॥ इति ।

पञ्च संवत्सराहोरात्र कोष्ठकम्

सख्या	संवत्संरनामानि	अहोरात्र संख्या	भागाः
१	आदित्यसवत्सरः	३६६	×
२	कर्मसंवत्सरः	३६०	×
३	चन्द्रसवत्सरः	३५४	१२/६२
४	नक्षत्रसंवत्सरः	३२७	५१/६७
५	अभिवर्धितसंवत्सरः	३८३	४४/६२

प्रत्येक संवत्सरस्याहोरात्रपरिमाणमग्रे वक्ष्यति, प्रस्तावादिहाप्युक्तम् । अथ संवत्सराहोरात्र प्रमाणान्मासाहोरात्रसंख्या कति भवतीति प्रदर्श्यते—तथाहि सूर्यसंवत्सरः षट् षष्ट्यधिक शतत्रयाहोरात्रपरिमितो (३६६) भवति, द्वादशभिश्च मासैरेकः संवत्सरो भवति, तत्र षट्षष्ट्य-धिकानां त्रयाणां शताना द्वादशभिर्भागो न ह्रियते ततोऽर्धं क्रियते ततोलब्धमेकस्य दिवस-स्यार्धं मित्येतावत्परिमाणः सार्धत्रिंशदहोरात्ररूपः सूर्यमासः (३०॥) १ । द्वितीयस्य कर्म-संवत्सरस्य षष्ट्यधिकानि त्रीणि शतानि रात्रिन्दिवानां (३६०) भवन्ति, तेषां द्वादशभिर्भागे हृते लब्धास्त्रिंशदहोरात्राः (३०) इत्येतत्परिमाणं कर्ममासस्य भवति २ । तृतीयस्य चान्द्रसंवत्सरस्य परिमाणं चतुष्पञ्चाशदधिकानि त्रीणि शतानि रात्रिन्दिवानाम्, एकस्याहोरात्रस्य च द्वादश द्वाषष्टि भागाः, तत्र चतुष्पञ्चाशदधिकानां त्रयाणां शतानां द्वादशभिर्भागो ह्रियते, हृते च भागे लब्धा एकोनत्रिंशदहोरात्राः, तिष्ठन्ति शेषा षडहोरात्राः, एते च द्वाषष्टि भागकरणार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि द्विसप्तत्यधिकानि त्रीणि शतानि (३७२), एतेषु ये उपरितना द्वादश द्वाषष्टि भागाः स्थितास्ते प्रक्षिप्यन्ते, जातानि चतुरशीत्यधिकानि त्रीणि शतानि (३८४) एषां द्वादशभि-र्भागे हृते लब्धा द्वात्रिंशद् द्वाषष्टि भागाः ($२९\frac{३२}{६२}$) एतावत्परिमाणश्चन्द्रमासः ३ । चतुर्थस्य नक्षत्रसंवत्सरस्य परिमाणं सप्तविंशत्यधिकानि त्रीणि शतानि रात्रिन्दिवानाम्, तथा एकस्य च

रात्रिन्दिवस्य एकपञ्चाशत् सप्तषष्टि भागा ($३२७\frac{५१}{६७}$) तत्र सप्तविंशत्यधिकानां त्रयाणां शतानां द्वादशभिर्भागे हृते लब्धाः सप्तविंशतिरहोरात्राः तिष्ठन्ति शेषास्त्रयः, एते च सप्तषष्टि भागानयनार्थं सप्तषष्ट्या गुण्यन्ते, जाते एकोत्तरे द्वे शते (२०१) एषु च ये उपरितना एकपञ्चाशत् सप्तषष्टि भागास्ते प्रक्षिप्यन्ते, जाते द्विपञ्चाशदधिके द्वे शते (२५२) एषां द्वादशभिर्भागे हृते लब्धा एक विंशतिः सप्तषष्टि भागा ($२७\frac{२१}{६७}$) एतावत्परिमितो नक्षत्रमासो भवति ४।

अथ पञ्चमस्याभिवर्द्धितसंवत्सरस्य परिमाणं त्र्यशीत्यधिकानि त्रीणि शतानि रात्रिन्दिवानाम्, एकस्य च रात्रिन्दिवस्य चतुश्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः ($३८३ \frac{४४}{६२}$) एतावत्परिमाणोऽभिर्द्धितसवत्सरः । तत्र त्र्यशीत्यधिकानां त्रयाणां शतानां द्वादशभिर्भागो हरणीयः हृते च भागे लब्धा एकत्रिंशद् अहोरात्राः, तिष्ठन्ति शेषा एकादशाहोरात्राः, ते च चतुर्विंशत्युत्तरशतभागकरणार्थं चतुर्विंशत्युत्तरशतेन (१२४) गुण्यन्ते जातानि चतुष्चष्टचधिकानि त्रयोदशशतानि (१३६४), ततो ये चोपरितनाश्चतुश्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागास्तेऽपि चतुर्विंशत्युत्तरशतभागकरणार्थं द्वाभ्यां गुण्यन्ते, जाताऽष्टाशीतिः इयमनन्तरराशौ प्रक्षिप्यते, जातानि द्विपञ्चाशदधिकानि चतुर्दश शतानि (१४५२), एषां द्वादशभिर्भागे हृते लब्धमेकविंशत्युत्तरं शतम् (१२१) इति एकविंशत्युत्तरशतं चतुर्विंशत्युत्तरशतभागाः ($३१-\frac{१२१}{१२४}$) एतावत्परिमितोऽभिवर्द्धितमासो भवति ।

आदित्यादि मासाहोरात्र कोष्ठकम्

स.	मास नाम	मासाहोरात्रसंख्या ( )
१	आदित्यमासस्य	सार्ध त्रिंशद्दिनानि (३०।।)
२	कर्ममासस्य	परिपूर्णा स्त्रिंशदहोरात्राः (३०)
३	चन्द्रमास्य	एकोनत्रिंशदहोरात्राः द्वात्रिंशदद्वाषष्टि भागाः ($२९-\frac{३२}{६२}$)
४	नक्षत्रमासस्य	सप्तविंशतिरहोरात्राः एकविंशति.सप्तषष्टिभागाः ($२७-\frac{२१}{६७}$)
५	अभिवर्धितमासाहोरात्रप्रमाणम्	एकत्रिंशदहोरात्राः एकविंशत्युत्तरशतं चतुर्विंशत्युत्तर शतभागाः ($३१-\frac{१२१}{१२४}$)

पूर्वोक्त पञ्चसंवत्सरगतमासाहोरात्रपरिमाणप्रतिपादिका वृद्धसम्प्रदायोक्तास्तिस्रो गाथा अत्र प्रदर्श्यन्ते, तथाहि—

"अइच्चो खलु मासो, तीसं अद्धं च सावणो तीसं।
चंदो एगुणतीसं विसट्ठिभागा य बत्तीसं ॥१॥
नक्खत्तो खलु मासो, सत्तावीसं भवे अहोरत्ता।
अंसा य एक्कवीसा, सत्तट्ठिकएण छेएण ॥२॥
अभिवड्ढिओ य मासो, एक्कतीसं भवे अहोरत्ता।
भागसय मेक्कवीसं, चउवीससएण छेएण ॥३॥

छाया—आदित्यः खलु मासः, त्रिंशद् अर्धं च (अहोरात्राः) सावनस्त्रिंशत् ।
चान्द्र एकोनत्रिंशत् द्वाषष्टिभागाश्च द्वात्रिंशत् ॥१॥
नाक्षत्रः खलु मासः, सप्तविंशतिर्भवेद् अहोरात्राः ।
अंशाश्च एकविंशतिः सप्तषष्टिकृतेन छेदेन ॥२॥
अभिवर्धितश्च मासः, एकत्रिंशद् भवेद् अहोरात्राः ।
भागशतमेकविंशतिः चतुर्विंशतिशतेन छेदेन ॥३॥ इति ।

एतैरेव पञ्चभिः संवत्सरैरेकं प्रागुक्तस्वरूपं युगं भवति, अथैतत् पञ्चसंवत्सरात्मकं युगं मासानधिकृत्य प्रमीयते, तत्र युगप्रागुक्तस्वरूपं यदि सूर्यमासैर्विभज्यते तदा षष्टि सूर्यमासात्मकं युगं भवति, तथाहि—सूर्यमासे सार्धत्रिंशद् अहोरात्रा भवन्ति, ते चैकस्मिन् युगे त्रिंशदधिकाष्टादशशतसंख्यकाः (१८३०) भवन्ति । कथमेतद् ज्ञायते ? इति चेदुच्यते—अत्र युगे त्रयश्च संवत्सराः, द्वौचाभिवर्धितसंवत्सरौ, एवं पञ्च संवत्सरा भवन्ति । एकैकस्मिंश्च चन्द्रसंवत्सरे चतुष्पञ्चाशदधिकानि त्रीणि शतानि (३५४) अहोरात्राणां भवन्ति, तदुपरि एकस्य चाहोरात्रस्य द्वादश द्वाषष्टिभागाः ($३५४-\frac{१२}{६२}$) भवन्ति, तत एष राशिः अत्रैकस्मिन् युगे चन्द्रसंवत्सराणां त्रिकत्वात् त्रिभिर्गुण्यते, जातानि द्वाषष्ट्याधिकानि दशशतानि अहोरात्राणाम्, एकस्य चाहोरात्रस्य षट्त्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः ($१०६२\frac{३६}{६२}$), तथा - अभिवर्द्धित संवत्सरौ चात्र द्वौ, एकैकस्मिन् अभिवर्द्धितसंवत्सरे चाहोरात्राणां त्र्यशीत्यधिकानि त्रीणि शतानि, चतुश्चत्वारिंशच्च द्वाषष्टि भागा एकस्याहोरात्रस्य ($३८३\frac{४४}{६२}$) ततोऽभिवर्धितसवत्सरावत्र द्वाविति एष राशि र्द्वाभ्या गुण्यते जातानि सप्तषष्ट्यधिकानि सप्तशतान्यहोत्राणाम्, एकस्य चाहोरात्रस्य षड्

विंशति द्वाषष्टि भागाः ($७६७\frac{२६}{६२}$), तदेवं चन्द्रसंवत्सरत्रयस्याऽहोरात्राणाम्——($१०६२\frac{३६}{६२}$) अभिवर्द्धितसंवत्सरद्वयस्य च अहोरात्राणां ($७६७\frac{२६}{६२}$) च संमीलने सर्वाहोरात्राणां त्रिंशदधिकानि अष्टादशशतानि (१८३०) भवन्ति, सूर्यमासश्च पूर्वोक्तरीत्या सार्धत्रिंशदहोरात्रप्रमाणः (३०॥) इति तेन भागे हृते लभ्यते च स्पष्टमेव षष्टि (६०)। एवं युगमध्ये सूर्यमासा षष्टिरिति सिद्धम्।

अथ युगं सावनमासैर्विभज्यते, तथाहि सावन (कर्म) संवत्सरस्य तु एकस्मिन् युगे एकषष्टिर्मासाः ६१ भवन्ति। कथमित्याह—एकस्मिन् युगे त्रयश्चन्द्रसंवत्सराः, द्वौ चाभिवर्धितसंवत्सरौ इति द्वयाहोरात्रमीलने त्रिंशदधिकान्यष्टादशाहोरात्रशतानि (१८३०) भवन्तीति पूर्वमुक्तमेव ततः सावनमासस्य त्रिंशद्दिनमानत्वात् पूर्वोक्तो (१८३०) राशि स्त्रिशता भज्यते हृते च भागे लब्धा एकषष्टि रिति सावनसंवत्सरस्यैकस्मिन् युगे एकषष्टिर्मासा भवन्तीति सिद्धम् २।

अथ युगं चन्द्रमासैर्विभज्यते—तत्र युगे चन्द्रमासा द्विषष्टि र्भवन्ति, कथमवसीयते? इति चेदाह— चन्द्रमासपरिमाणमेकोनत्रिंशदहोरात्राः, एकस्याहोरात्रस्य च द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः $२९\frac{३२}{६२}$) ततः प्रथममेकोनत्रिंशदहोरात्रा द्वाषष्टिभागकरणार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते जातानि अष्टानवत्यधिकानि सप्तदशशतानि (१७९८), ततो ये उपरितना द्वात्रिंशद् द्वाषष्टि भागास्तेऽत्र प्रक्षिप्यन्ते, जातानि त्रिंशदधिकानि अष्टादशशतानि (१८३०)। ततो येऽपि च पूर्वप्रदर्शिता युगगताश्चन्द्रसंवत्सराभिवर्द्धितसंवत्सराहोरात्रा अष्टादशशतानि त्रिंशदधिकानि (१८३०), तेऽपि द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, जातास्ते—एको लक्षः, त्रयोदशसहस्राणि, चत्वारिशतानि षष्ट्याधिकानि (११३-४६०) ।एतेषां त्रिंशदधिकाष्टादशशतैः (१८३०) चन्द्रमाससम्बन्धिद्वाषष्टि भागरूपैर्भागो ह्रियते लब्धा द्वाषष्टिश्चन्द्रमासा (६२) इत्येकस्मिन् युगे चन्द्रसंवत्सरस्य द्वाषष्टिमासा भवन्तीति सिद्धम् ३।

अथ तदेव युगं नक्षत्रमासैः परिगण्यते—तत्रैकस्मिन् युगे नक्षत्रमासाः सप्तषष्टिर्भवन्ति। कथमिति प्रदर्श्यते——नक्षत्रमासपरिमाणं सप्तविंशतिरहोरात्राः, एकस्य चाहोरात्रस्य एकविंशतिः सप्तषष्टिभागाः, ($२७\frac{२१}{६७}$)। तत्र प्रथमं सप्तविंशतिरहोरात्राः सप्तषष्टिभागकरणार्थं सप्तषष्ट्या गुण्यन्ते जातानि नवोत्तराण्यष्टादशशतानि (१८०९) ततो ये उपरितना एकविंशतिः सप्तषष्टि भागास्तेऽत्र प्रक्षिप्यन्ते, प्रक्षिप्ते च जातानि त्रिंशदधिकाष्टादशशतानि (१८३०) युगस्यापि ये त्रिंशदधिकानि अष्टादशाहोरात्रशतानि (१८३०) तान्यपि सप्तषष्ट्या गुण्यन्ते जातो राशिः——

एको लक्षः, द्वाविंशतिः सहस्राणि, दशोत्तराणि षट् शतानि च (१२२६१०)। एतेषां त्रिंशदधिकै-रष्टादशशतैर्नक्षत्रमाससम्बन्धि सप्तषष्टिभागरूपै भागो हरणीयः, हृते च भागे लब्धाः सप्तषष्टिमासाः (६७) एवमेकस्मिन् युगे नक्षत्रसंवत्सरस्य सप्तषष्टिर्मासा भवन्तीति सिद्धम् ४।

तथा यदि अभिवर्द्धितसंवत्सरमासैर्युगं विभज्यते–तत्रैकस्मिन् युगेऽभिवर्द्धितमासाः सप्तपञ्चाशत् (५७) सप्ताहोरात्राः, एकादशमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशति द्वाषष्टिभागाः (मा. अहो. मु. भागाः) इत्येतदभिवर्धितमासप्रमाणं भवति। कथमेतदवसीयते ? इत्याह–

(५७– ७– ११– $\frac{२३}{६२}$) अभिवर्द्धितमासस्य परिमाणम् एकत्रिंशदहोरात्राः, एकस्य चाहोरात्राः,

एकस्य चाहोरात्रस्य एकविंशत्युत्तरशतं चतुर्विंशत्युत्तरशतभागाः (३१– $\frac{१२१}{१२४}$) तत्र एकत्रिंशदहो-

रात्राश्चतुर्विंशत्युत्तरशतभागकरणार्थं चतुर्विंशत्युत्तरशतेन गुण्यन्ते, जातानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि अष्टत्रिंशच्छतानि (३८४४) तत उपरितनमेकविंशत्युत्तरं शतमत्र प्रक्षिप्यते, जातानि–पञ्चषष्ट्यधिकानि एकोनचत्वारिंशच्छतानि(३९६५)। ये च पूर्वोक्तास्त्रिंशदधिकाष्टादशशतसंख्यका युगस्याहोरात्राः (१८३०) ते चतुर्विंशत्युत्तरेण शतेन गुण्यन्ते, जातो राशिः–द्वे लक्षे षड्विंशतिः सहस्राणि, नवशतानि, विंशत्यधिकानि च (२२६९२०) इत्येतत्परिमितः। तत एषामेकोन चत्वारिंशच्छतैः पञ्चषष्ट्यधिकैरभिवर्द्धितमाससम्बन्धि चतुर्विंशत्यधिकशतभागरूपै र्भागो ह्रियते लब्धाः सप्तपञ्चाशन्मासाः तिष्ठन्ति शेषाणि पञ्चदशोतराणि नवशतानि (९१५) तेषामहोरात्रा-नयनार्थं चतुर्विंशत्यधिकशतेन भागो ह्रियते, लब्धाः सप्ताहोरात्राः, तिष्ठन्ति शेषाः सप्तचत्वारिंशत्

चतुर्विंशत्युत्तरशतभागाः। तत्र चतुर्भिर्भागैः, एकस्य च भागस्य चतुर्भिस्त्रिंशद्भागैः (४– $\frac{४}{३०}$)

एको मुहूर्तो भवति, तथाहि–एकस्मिन्नहोरात्रे त्रिंशन्मुहूर्ता भवन्ति, एकस्मिन्नहोरात्रे च चतुर्विंशत्युत्तरमेकं शतं (१२४) भागानां कल्प्यते, ततस्तस्य चतुर्विंशत्युत्तरशतस्य त्रिंशता भागो ह्रियते,

लब्धाश्चत्वारो भागाः, शेषा एकस्य च भागस्य–सम्बन्धिनश्चत्वारस्त्रिंशद् भागाः (४– $\frac{४}{३०}$)

एतद् एकस्य मुहूर्त्तस्य परिमाणं जातम्। ततः पञ्चचत्वारिंशद्भागै, एकस्य भागस्य सत्कैश्चतुर्दशभिस्त्रिंशद्भागैः (४५– $\frac{१४}{३०}$) एकादशमुहूर्त्ता लब्धाः कथमित्याह–पूर्वं सप्तरात्रिन्दिवलाभानन्तरं स्थिता सप्तचत्वारिंशत् चतुर्विंशत्युत्तरशत भागाः। ($\frac{४७}{१२४}$) एतेभ्य एकादशमुहूर्त्ताः

(४५–$\frac{१४}{३०}$) पूर्वोक्तरूपा गताः, शेषस्तिष्ठत्येको भागः, एकस्य भागस्य च सत्काः षोडश-त्रिंशद्भागाः–(१–$\frac{१६}{३०}$)। अस्य त्रयोविंशतिर्द्वाषष्टिभागाः ($\frac{२३}{६२}$) कथं भवन्तीत्याह–अस्यै-कस्य भागस्य, षोडशानां त्रिंशद्भागानां च सर्वे षट् चत्वारिंशत् त्रिंशद्भागा जाताः, एते च किल एकस्य मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्युत्तरशतभागसम्बन्धिनः सन्ति, ततः षट्चत्वारिंशतः (४६), चतुर्विंश-त्युत्तरशतस्य (१२४) च द्विकेनापवर्त्तना क्रियते, लब्धा एकस्य मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशति द्वाषष्टि-भागाः ($\frac{२३}{६२}$)। तदेव मेकस्मिन् युगेऽभिवर्द्धितसंवत्सरमासाः–सप्तपञ्चाशन्मासाः सप्ताहोरात्राः, एकादश मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशतिर्द्वाषष्टिभागाः (मा० अहो० मु० भागा) एता (५७–७– ११ $\frac{२३}{६२}$) एताव-त्परिमिता भवन्तीतिसिद्धम्। उक्तं चान्यत्रापि–––

"तत्थ पडिमिज्जमाणे, पंचहिं माणेहिं पुव्वगणिएहिं।
मासेहि विभज्जंता, जइ मासा होंति तेवोच्छं॥१॥

अत्र 'तत्थ' इति तत्र 'पचहिं माणेहिं' इति पञ्चभिर्मानैः–मान संवत्सरैः प्रमाण संवत्सरै-रादित्यचन्द्रादिभिरित्यर्थः, 'पुव्वगणिएहिं' पूर्वगणितैः–प्राक् प्रतिसख्यातस्वरूपैः 'पडिमिज्ज-माणे' प्रतिमीयमाने–प्रतिगण्यमाने 'मासेहिं' मासैः–सूर्यादिमासैः। शेषं सुगममिति॥१॥

उक्तञ्च–युगसम्बन्धि पञ्चसंवत्सरमासविषये–––

"आइच्चेण उ सट्ठी, मासा उउणो उ होंति एगट्ठी।
चंदेण उ बा-वट्ठी, सत्तट्ठी होंति नक्खत्ते॥ १॥
सत्तावण्णं मासा सत्तय राइंदियाइं अभिवड्ढे।
इक्कारस य मुहुत्ता विसट्ठि भागा य तेवीसं॥ २॥

छाया—आदित्येन तु (विभज्यमानाः) षष्टिर्मासाः ६० (युगे) ऋतोस्तु (मासाः) भवन्ति एकषष्टिः। ६१।

चन्द्रेण तु (विभज्यमाना मासाः) द्वाषष्टिः ६२ सप्तषष्टिर्भवन्ति नक्षत्रे॥१॥
सप्तपञ्चाशद् मासाः ५७ सप्त च रात्रिन्दिवानि, अभिवर्द्धिते।
एकादश च मूहूर्त्ताः ११ द्विषष्टिभागाश्च त्रयोविंशतिः ($\frac{२३}{६२}$ ॥२॥ इति सू० ४॥

साम्प्रतं-लक्षणसंवत्सरमाह— 'ता लक्खणसंवच्छरे' इत्यादि ।

मूलम्—ता लक्खणसंवच्छरे पंचविहे पण्णत्ते, तंजहा-नक्खत्ते, १ चंदे उऊ ३, आइच्चे ४, अभिवड्ढिए ५, ता लक्खणसंवच्छरे पंचविहा लक्खणा पण्णत्ता,-तं जहा—

"समगं णक्खत्ता जोयं जोएंति समगं उऊपरिणमंति ।
नच्चुण्हेंनाइसीए, वहुउदए होइ णक्खत्ते ॥१॥
ससि समग पुण्णमासिं, जोईंति विसमचारि णक्खत्ता ।
कडुओ वहुउदओ य, तमाहु संवच्छरं चंदं ॥२॥
विसमं पवालिणो परिणमंति अणु ऊसुदिंति पुप्फफलं ।
वासं न सम्म वासइ, तमाहु संवच्छरं कम्मं ॥३॥
पुढवि दगाणं च रसं, पुप्फ फलाणंच देइ आइच्चे ।
अप्पेण वि वासेणं, सम्मं निप्फज्जए सस्सं ॥४॥
आइच्च तेयतविया, खण लवदिवसाउऊ परिणमंति ।
पूरेइ निण्णथलए, तमाहु अभिवड्ढियं जाण ॥५॥

ता सणिच्छरसंवच्छरेणं अट्ठावीसइ विहे पण्णत्ते, तं जहा-अभिई १ सवणे २ जाव उत्तरासाढा २८ । जं वा सणिच्छरे महग्गहे तीसाए संवच्छरेहिं सव्वं, णक्खत्तमडलं समाणेइ । ॥सूत्र॥५॥

दसमस्स पाहुडस्स वीसइमं पाहुडपाहुडं समत्तं ॥१०-२०॥

छाया—तावत् लक्षणसंवत्सरः पञ्चविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—नाक्षत्रः १. चान्द्रः २, आर्त्तवः ३, आदित्यः ४, अभिवर्द्धितः ५ । तावत् लक्षणसंवत्सरे पञ्चविधानि लक्षणानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—

"समकं नक्षत्राणि योगं युञ्जन्ति, समकम् ऋतवः परिणमन्ति ।
नात्युष्णः नातिशीतः, वहूदको भवति नाक्षत्रः, ॥ १ ॥
शशिसमकपूर्णमासीं योगं युञ्जन्ति विषमचारिनक्षत्राणि ।
कटुको वहूदकश्च, तमाहु संवत्सरं चान्द्रम् ॥ २ ॥
विषमं प्रवालिनः परिणमन्ति अनृतुषु ददति पुष्पफलम् ।
वर्षं न सम्यक् वर्षति, तमाहुः संवत्सरं कार्मम् ॥ ३ ॥
पृथिव्युदकानां च रसं, पुष्पफलानां च ददाति आदित्यः ।
अल्पेनाऽपि वर्षेण, सम्यग् निष्पद्यते सस्यम् ॥ ४ ॥
आदित्य तेजस्तप्ताः, क्षणलवदिवसाऋतवः परिणमन्ति ।
पूरयति निम्नस्थलकान्, तमाहु अभिवर्द्धितं जानीहि ॥ ५ ॥

तावत् शनैश्चर संवत्सरः खलु अष्टाविंशतिविधः प्रज्ञप्तः, तद्यथा-अभिजित् १ श्रवणः २ यावत् उत्तराषाढा। यद्वा शनैश्चरो महाग्रहः त्रिंशद्भिः संवत्सरैः सर्वं नक्षत्रमण्डलं समानयति । सू० ५॥

॥दशमस्य प्राभृतस्य विंशतितमं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥ १०-२० ॥

व्याख्या—'ता लक्खणसंवच्छरे' इति, 'ता' तावत् 'लक्खणसंवच्छरे' लक्षणसंवत्सरः पूर्वोक्तरूपः 'पंचविहे' पञ्चविधः पञ्चप्रकारकः 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तः कथितः, 'तं जहा' तद्यथा-ते यथा 'णक्खत्ते' नाक्षत्रः नक्षत्रसवत्सरः १, 'चंदे' चान्द्रः चन्द्रसंवत्सरः २, 'उऊ' आर्त्तवः ऋतुसंवत्सरः ३, 'आइच्चे' आदित्यः आदित्यसवत्सरः ४, 'अभिवड्ढिए' अभिवर्द्धितः अभिवर्द्धितसवत्सरः पञ्चमः ५ । ते नक्षत्रादि संवत्सराः यथोक्तरात्रिन्दिवप्रमाणरूपलक्षणोपेता केवलं न भवति किन्तु तेभ्यः पृथग्भूता अन्यलक्षणोपेता अपि भवन्तीत्याह—'ता लक्खणसंवच्छरे' इत्यादि 'ता' तावत् 'लक्खणसंवच्छरे' लक्षणसवत्सरे नाक्षत्रादि पञ्च संवत्सरात्मके 'पंचविहा लक्खणा' पञ्चविधानि, लक्षणानि प्रत्येकस्मिन् पृथक् पृथक् प्रकारकाणि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि कथितानि 'तं जहा' तद् यथा-तानि यथा- तत्र प्रथमं नाक्षत्रसंवत्सरलक्षणानि प्रदर्शन्ते—'समगं' इत्यादि, यस्मिन् संवत्सरे 'समगं' समकम्-एककालमेव ऋतुभिः सहैव 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि उत्तराषाढा प्रभृतीनि 'जोयं जोएंति' योगं युञ्जन्ति चन्द्रेण सह योगं कुर्वन्ति, तां पौर्णमसीं परिसमापयन्तीत्यर्थः १ । तथा 'समगं' समकम् एककालमेव 'उऊ' ऋतवः षडपि समकालमेव 'परिणमंति' परिणमन्ति परिणामं प्राप्नुवन्ति तस्मिन् संवत्सरे, तया तया परिसमाप्यमानया पौर्णमास्या सहैव निदाधाद्या ऋतवोऽपि परिसमाप्तिमुपयान्तीति भावः, अयमाशयः यस्मिन् संवत्सरे माससदृशनामकैर्नक्षत्रैस्तस्य तस्य ऋतोः पर्यन्तवर्त्ती मासः परिसमाप्यते, तां तां पौर्णमासीं परिसमापयत्सु मासेषु तया तया पौर्णमास्या सह निदाधाद्या ऋतवोऽपि परिसमाप्ति मुपयान्ति, तथाहि—यथा उत्तराषाढा नक्षत्रमाषाढीं पौर्णमासीं परिसमापयति तथां तया आषाढपौर्णमास्या सह निदाध ऋतुरपि परिसमाप्ति प्राप्नोति, अतोऽसौ नक्षत्रसंवत्सर' नक्षत्रानुरोधेन तस्य तथा तथा परिणमनसद्भावात् २ । तथा 'नच्चुण्हे' नात्युष्णा' न विद्यते अतिशयेन-उष्णरूपः परितापो यस्मिन् स नात्युष्णाः उष्णताधिक्याभावात् ३। तथा नाइसीए' नातिशीतः शैत्याधिक्याभावात् ४। तथा 'बहूदओ' बहूदकः बहु पुष्कलम् उदकवर्षणं यस्मिन् स बहूदकः वर्षणाधिक्यात् ५ । एतादृश पञ्च लक्षणयुक्तः 'नक्खत्ते' नाक्षत्रः नक्षत्रसंवत्सरः 'होइ' भवतीति ॥१॥

अथ चान्द्रसंवत्सरलक्षणान्याह—'ससिसमग' इत्यादि, यस्मिन् संवत्सरे विसम चारिणक्खत्ता' विषमचारीणि मासविसदृशनामानीत्यर्थः 'ससिसमग' शशिना समकं शशिना सह 'पुण्णमासिं' तां तां पौर्णमासीं 'जोइंति' युञ्जन्ति परिसमापयन्ति तथा यः

'कडुओ' कटुकः शीतातपरोगादिदोपवहुल्येन परिणामदारुणः 'य' च तथा 'वहुउदओ' वहूदकः वृष्टि वहुको भवति 'तं संवच्छरं' तं सवत्सरं 'चंदं' चन्द्रं 'आहु' आहुः कथयन्ति । अत्र चन्द्रानुरोधात् मासानां परिसमाप्तिर्भवति, न तु माससदृशनामनक्षत्रानुरोधादिति ॥२॥

अथ कर्मसंवत्सरलक्षणान्याह—'विसमं पवालिणो' इत्यादि, यस्मिन् संवत्सरे 'पवालिणो' प्रवालिनः वनस्पतयः 'विसमं' विपमं विपमकालं कालवैपरीत्येन 'परिणमंति' परिणमन्ति प्रवालाङ्कुरादितया परिणामं प्राप्नुवन्ति तथा ते एव वृक्षादि वनस्पतयः 'अणु ऊहा' अनृतुपु स्व स्व ऋतु विपरीतकालेऽपि 'पुप्फफलं' पुप्पफलं पुप्पाणि फलानि च 'दिंति' ददति प्रयच्छन्ति स्व स्व ऋत्वभावेऽपि वृक्षाः फलन्तीत्यर्थः तथा 'वासं' वर्षं वृष्टिं 'न सम्मवासइ' न सम्यग् वर्षति यथाकालं वृष्टिरपि न भवति 'तं संवच्छरं' तं तादृशं संवत्सरं 'कम्मं' कार्मं कर्मसवत्सरं 'आहु' आहुः कथयन्ति ॥३॥

साम्प्रतं सूर्यसंवत्सरलक्षणान्याह—'पुढविदगाणं' इत्यादि । यस्मिन संवत्सरे 'पुढविदगाणं' पृथिव्युदकानां पृथिव्या उदकानां च, 'च तथा 'पुप्फफलाणं' पुप्पफलानां' पुप्पानां फलानां च 'ईसं' रसम् 'आइच्चे' आदित्यः सूर्यः ददाति पृथिवीं परिमितसरसतापप्रभावान्मधुरादि रसवहुला, उदकं माधुर्यस्वास्थादि गुणयुक्तं पुप्पाणि चम्पकादीनि सुगन्धवहुलानि, फलानि आम्रादीनि अतिशयरसयुक्तानि चादित्यः करोतीति भावः । तथा तत्प्रभावात् 'अप्पेण वि वासेण' अल्पेनापि वर्पेण स्वल्प वृष्ट्याऽपि तथाविधसरसजलप्रभावात् 'सस्सं' सस्यं धान्यं 'सम्मं' सम्यक् परिपूर्णतया 'निप्फज्जए' निप्पद्यते निप्पन्नं भवति, एतादृशं संवत्सरं आदित्यसंवत्सरं कथयन्ति ॥४॥

अभिवद्धितसंवत्सरलक्षणान्याह—'आइच्चतेयतविया' इत्यादि । यस्मिन्सवत्सरे 'खणलवदिवसा' क्षणलवदिवसा तत्र क्षणः कतिपयावलिकारूपः लवः सप्तस्तोकरूपः, तथाहि-असख्यातावालीकानामेक आनप्रान, सप्तानप्राणानामेक स्तोकः सप्तस्तोकानामेको लवः, तादृशसमय लवरूपो लव तथा दिवसः अहोरात्रस्त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकः एते सर्वेऽपि तथा 'उऊ' ऋतवोऽपि पडपि ऋतवः 'आइच्चतेयतविया' आदित्यतेजस्तप्ताः सूर्यातपेन संतप्ताः 'परिणमंति' परिणमन्ते प्रसरिता भवन्ति 'णिण्णथलए' निम्नस्थलान् 'पूरेइ' पूरयति पांशुना जलेन वा, त संवत्सरं 'अभिवड्ढियं' अभिवर्द्धित 'जाण' जानीहि ॥५॥

इत्येवं लक्षणसंवत्सरो वर्णितः, साम्प्रतं शनैश्चरसंवत्सरमाह-'ता सणिच्छरेणं इत्यादि 'ता' तावत् 'सणिच्छरसंवच्छरेणं' शनैश्चरसवत्सरः खलु 'अट्ठावीसइविहे' अष्टाविंशति विधः अष्टाविंशति प्रकारकः 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तः कथितः 'तं जहा' तद्यथा 'अभिई' अभिजित 'सवणे' श्रवणः 'जाव' यावत् 'उत्तरासाढा' उत्तरापाढा, अत्र यावत्पदेन धनिष्ठात आरम्य पूर्वापाढा पर्यन्तानि पञ्चविंशतिनक्षत्रनामानि सग्राह्याणि शनैश्चरमहाग्रहस्याष्टाविंशति नक्षत्रपरिभ्रमणकालमाश्रित्य शनैश्चरसंवत्सरोऽष्टाविंशतिविधः प्रोच्यते, तथाहि—अभिजिदिति

यावत्परिमितं कालं शनैश्चरोऽभिजिन्नक्षत्रेण सह योगं करोति तावत्परिमितः कालः अभिजिच्छनैश्चरसंवत्सरः एवं यावत् कालं श्रवणेन सह शनैश्चरो योगं करोति तावत्परिमितः कालः श्रवणशनैश्चरसंवत्सर. कथ्यते । यस्मिन् यस्मिन् संवत्सरे येन येन नक्षत्रेण सह शनैश्चरो योगं युनक्ति स स संवत्सरस्तत्तन्नक्षत्रनाम्ना शनैश्चरसंवत्सरः कथ्यते इति भावः । तथा 'जं वा' यद्वा-अथवा 'सणिच्छरे महग्गहे' शनैश्चरो महाग्रह 'तीसाए संवच्छरेहिं' त्रिंशता त्रिंशत्संख्यकै. संवत्सरैः 'सव्वं नक्खत्तमंडलं' सर्वं नक्षत्रमण्डलम् अष्टाविंशतिनक्षत्रात्मकं 'समाणेइ' समानयाति स्व गत्या समापयति स कालः त्रिंशद्वर्षात्मकः शनैश्चरसंवत्सर. इत्यपि बोध्यमिति । ॥सू० ५॥

इति श्री चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रे चन्द्रज्ञप्ति प्रकाशिकायां---
टीकायां दशमस्य प्राभृतस्य विंशतितमम
प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् श्री रस्तु ।

॥ दशमस्य प्राभृतस्यैकविंशतितमं प्राभृतप्राभृतम् ॥

गतं दशमस्य प्राभृतस्य विंशतितमं प्राभृतप्राभृतम्, तत्र पञ्च सवत्सरा. प्ररूपिताः । अथैकविंशतितमं प्राभृतप्राभृतं निरूप्यते, अत्र पूर्वप्रतिज्ञातं यत् 'जोइसियदाराइं' ज्योतिषिक द्वाराणीति नक्षत्रचक्रस्य द्वाराणि वक्तव्यानि सन्तीति तद्विषयकं सूत्रमाह---'ता कहंते जोइसस्स दारा' इत्यादि ।

मूलम्---ता कहंते जोइसस्स दारा आहिया ति वएज्जा' तत्थ खलु इमाओ पंच पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा--तत्थेगे एवमाहंसु ता कत्तियाइया सत्त नक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता एगे एवमाहंसु ॥१॥ एगे पुण एव माहंसु--ता महाइया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता एगे एव माहंसु ॥२॥ एगे पुण्ण एव माहंसु--ता धणिट्ठाइया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, एगे एव माहंसु ॥३॥ एगे पुणएवमाहंसु--अस्सिणियाइया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, एगे एवमाहंसु ॥४॥ एगे पुणएवमाहंसु--ता भरणियाइया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता एगे एवमाहंसु ॥५॥ तत्थ णं जे ते एवमाहंसु ता कत्तियाइया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता ते एवमाहंसु तं जहा--कत्तिया, १ रोहिणी २, संठाणा ३, अद्दा ४, पुणव्वसु ५, पुस्सो ६, असिलेसा ७। ता महाइया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता, तं जहा--महा १, पुव्वाफग्गुणी २, उत्तराफग्गुणी ३, हत्थो ४, चित्ता ५। साई ६, विसाहा ७। ता अणुराहाइया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पण्णत्ता, तं जहा अणुराहा १, जेट्ठा २, मूलो ३, पूव्वासाढा ४, उत्तरासाढा ५, अभिई ६, सवणो ७। ता धणिट्ठाइया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तं जहा--धणिट्ठा १ सयभिसया २, पुव्वापोट्ठवया ३, उत्तरापोट्ठवया ४, रेवई ५, अस्सिणी ६, भरणी ७।

॥१॥ तत्थ णं जे ते एवमाहंसु–ता महाइया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता ते एवमाहंसु, तं जहा–महा १, पुव्वाफग्गुणी २, उत्तराफग्गुणी ३, हत्थो ४, चित्ता ५, साई ६, विसाहा ७। ता अणुराहाइया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता, तं जहा–अणुराहा १, जेट्ठा २, मूले ३, पुव्वासाढा ४, उत्तरासाढा ५, अभिई ६, सवणे ७। ता धणिट्ठाइया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पण्णत्ता, तंजहा–धणिट्ठा १, सयभिसया २, पुव्वापोट्ठवया ३, उत्तरापोट्ठवया ४, रेवई ५, अस्सिणी ६, भरणी ७। ता कत्तियाइया सत्तणक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तं जहा–कत्तिया १, रोहिणी २, संठाणा ३, अद्दा ४ पुणव्वसू ५, पुस्सो ६, अस्सेसा ७॥२॥ तत्थ णं जे ते एवमाहंसु–ता धणिट्ठाइया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, ते एवमाहंसु, तं जहा–धणिट्ठा १, सयभिसया २, पुव्वाभद्दवया ३, उत्तराभद्दवया ४, रेवई ५, अस्सिणी ६, भरणी ७। ता कत्तियाइया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता, तं जहा–कत्तिया १, रोहिणी २, संठाणा ३, अद्दा ४, पुणव्वसू ५, पुस्सो ६, अस्सेसा ७। ता महाइया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पण्णत्ता, तं जहा–महा १, पुव्वाफग्गुणी २, उत्तराफग्गुणी ३, हत्थो ४, चित्ता ५, साई ६, विसाहा ७। ता अणुराहाइया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तं जहा–अणुराहा १, जेट्ठा २, मूलो ३, पुव्वासाढा ४, उत्तरासाढा ५, अभिई ६, सवणो ७॥३॥ तत्थ णं जे ते एवमाहंसु–ता अस्सिणियाइया सत्तणक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता ते एव माहंसु, तं जहा–अस्सिणी १, भरणी २, कत्तिया ३, रोहिणी ४, संठाणा ५, अद्दा ६, पुणव्वसू ७। ता पुस्साइया सत्तणक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता तं जहा–पुस्सो १, अस्सेसा २, महा ३, पुव्वाफग्गुणी ४, उत्तराफग्गुणी ५, हत्थो ६, चित्ता ।७। ता साइयाइया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पण्णत्ता, तं जहा–साई १, विसाहा २, अणुराहा ३, जेट्ठा ४, मूलो ५, पुव्वासाढा ६, उत्तरासाढा ७। ता अभिइआइया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तं जहा–अभिई १, सवणो २, धणिट्ठा ३ सयभिसया ४, पुव्वभद्दवया ५, उत्तरभद्दवया ६, रेवई ७॥४॥ तत्थ णं जे ते एव माहंसु–ता भरणियाइया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, ते एवमाहंसु तं जहा–भरणी १, कत्तिया २, रोहिणी ३, संठाणा ४, अद्दा ५, पुणव्वसू ६, पुस्सो ७। ता अस्सेसाइया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता, तंजहा–अस्सेसा १, महा २, पुव्वाफग्गुणी ३, उत्तराफग्गुणी ४, हत्थो ५, चित्ता ६, साई ७। ता विसाहाइया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पण्णत्ता, तं जहा–विसाहा १, अणुराहा २, जेट्ठा ३, मूलो ४, पुव्वासाढा ५, उत्तरासाढा ६, अभिई ७। ता सवणाइया सत्तणक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तं जहा–सवणो १, धणिट्ठा २, सयभिसया ३, पुव्वापोट्ठवया ४, उत्तरपोट्ठवया ५, रेवई ६, अस्सिणी ७। ॥५॥ एते एवमाहंसु।

वयं पुण एवं वयामो–ता अभिइयाइया सत्त णक्खत्ता पुव्वदारिया पण्णत्ता, तं जहा–अभिइ १. सवणो २, धणिट्ठा ३, सयभिसया ४, पुव्वापोट्ठवया ५, उत्तरापोट्ठवया ६, रेवई ७। ता अस्सिणियाइया सत्त णक्खत्ता दाहिणदारिया पण्णत्ता, तं जहा–अस्सिणी १, भरणी २. कत्तिया ३. रोहिणी ४. संठाणा ५, अद्दा ६. पुणव्वसू ७। ता पुस्साइया सत्त णक्खत्ता पच्छिमदारिया पण्णत्ता, तं जहा–पुस्सो १, अस्सेसा २, महा ३, पुव्वाफग्गुणी ४, उत्तराफग्गुणी ५, हत्थो ६, चित्ता ७। ता साइयाइया सत्त णक्खत्ता उत्तरदारिया पण्णत्ता, तं जहा–साई १, विसाहा २, अणुराहा ३, जेट्ठा ४, मूलो ५, पुव्वासाढा ६, उत्तरासाढा ७ ॥सूत्र॥१॥

दसमस्स पाहुडस्स एक्कवीसइमं पाहुडपाहुडं समत्तं । १०–२१॥

छाया—तावत् कथं ते ज्यौतिषस्य द्वाराणि आख्यातानि ? इति वदेत्, तत्र खलु इमाः पञ्च प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-तत्रैके एवमाहुः-तावत् कृत्तिकादिकानि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, एके एवमाहुः ।१। एके पुनरेवमाहुः-तावत् मघादिकानि सप्तनक्षत्राणि पूर्वद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, एके एवमाहुः । २ । एके पुनरेवमाहुः-तावत् धनिष्ठादिकानि सप्तनक्षत्राणि पूर्वद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, एके एव माहुः । ३ । एके पुनरेवमाहुः-तावत् अश्विन्यादिकानि सप्तनक्षत्राणि पूर्वद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, एके एवमाहुः ।४। एके पुनरेवमाहुः-तावत् भरण्यादिकानि सप्तनक्षत्राणि पूर्वद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, एके एवमाहुः ।५। तत्र खलु ये ते एवमाहुः-तावत् कृत्तिकादीनि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वाराणि प्रज्ञप्तानि ते एवमाहुः,तद्यथा-कृत्तिका १, रोहिणी २. संस्थाना (मृगशिरः) ३, आर्द्रा ४, पुनर्वसुः ५, पुष्यः ६, अश्लेषा ७, तावत् मघादिकानि सप्तनक्षत्राणि दक्षिणद्वाराणि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—मघा १, पूर्वाफाल्गुनी २, उत्तराफाल्गुनी ३, हस्तः ४, चित्रा ५, स्वातिः ६, विशाखा ७ । तावत् अनुराधादिकानि सप्तनक्षत्राणि पश्चिमद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अनुराधा १, ज्येष्ठा २, मूलः ३, पूर्वाषाढा ४, उत्तराषाढा ५, अभिजित् ६, श्रवणः ७ । तावत् धनिष्ठादिकानि सप्तनक्षत्राणि उत्तर द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा धनिष्ठा १, शतभिषक् २, पूर्वाप्रोष्ठपदा ३, उत्तराप्रोष्ठपदा ४, रेवती ५, अश्विनी ६ भरणी ७ ॥ १ ॥ तत्र खलु ये ते एवमाहुः—तावत् मघादिकानि सप्तनक्षत्राणि पूर्वद्वाराणि प्रज्ञप्तानि ते एवमाहुः, तद्यथा—मघा १, पूर्वाफाल्गुनी २, उत्तराफाल्गुनी ३ हस्तः ४ चित्रा ५ स्वातिः ६ विशाखा ७। तावत् अनुराधादिकानि सप्तनक्षत्राणि दक्षिणद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अनुराधा १, ज्येष्ठा २, मूलः ३, पूर्वाषाढा ४, उत्तराषाढा ५, अभिजित् ६, श्रवणः ७, । तावत् धनिष्ठादिकानि सप्तनक्षत्राणि पश्चिमद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—धनिष्ठा १, शतभिषक् २, पूर्वाप्रोष्ठपदा ३, उत्तराप्रोष्ठपदा ४, रेवती ५, अश्विनी ६, भरणी ७ । तावत् कृत्तिकादिकानि सप्तनक्षत्राणि उत्तरद्वाराणि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—कृत्तिका १, रोहिणी २, संस्थाना (मृगशिरः) आर्द्रा ४, पुनर्वसुः ५, पुष्यः ६, अश्लेषा ७, ॥ २ ॥ तत्र खलु ये ते एवमाहुः तावत् धनिष्ठादिकानि सप्तनक्षत्राणि पूर्वद्वाराणि प्रज्ञप्तानि ते एवमाहुः तद्यथा—धनिष्ठा १, शतभिषक् २, पूर्वाभाद्रपदा ३,

उत्तराभाद्रपदा ४, रेवती ५, अश्विनी ६, भरणी ७। तावत् कृत्तिकादिकानी सप्तनक्षत्राणि दक्षिणद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—कृत्तिका १, रोहिणी २, संस्थाना (मृगशिरः) ३, आर्द्रा ४, पुनर्वसुः ५, पुष्यः ६, अश्लेषा ७। तावत् मघादिकानि सप्तनक्षत्राणि पश्चिमद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—मघा १, पूर्वाफाल्गुनी २, उत्तराफाल्गुनी ३, हस्तः ४, चित्रा ५, स्वातिः ६, विशाखा ७। तावत् अनुराधादिकानी सप्तनक्षत्राणि उत्तरद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अनुराधा, १, ज्येष्ठा २, मूलः ३ पूर्वाषाढा ४, उत्तराषाढा ५, अभिजित् ६, श्रवणः ७, ॥३॥ तत्र खलु ये ते एवमाहुः—तावत् अश्विन्यादिकानी सप्तनक्षत्राणि पूर्वद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, ते एवमाहुः-तद्यथा -अश्विनी १ भरणी २, कृत्तिका ३, रोहिणी ४, संस्थाना (मृगशिरः) ५ आर्द्रा ६, पुनर्वसुः ७, तावत् पुष्यादिकानि सप्तनक्षत्राणि दक्षिणद्वाराणि प्रज्ञप्तानि; तद्यथा—पुष्यः १, अश्लेषा २, मघा, ३, पूर्वाफाल्गुनी ४, उत्तराफाल्गुनी ५, हस्तः ६, चित्रा ७। तावत् स्वातिकादिकानि सप्तनक्षत्राणि पश्चिमद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—स्वातिः १, विशाखा २, अनुराधा ३, ज्येष्ठा ४, पूर्वाषाढा ६ उत्तराषाढा ७। तावत् अभिजिदादिकानि सप्तनक्षत्राणि उत्तरद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा-अभिजित् १, श्रवणः २; धनिष्ठा ३, शतभिषक् ४, पूर्वाभाद्रपदा ५ उत्तराभाद्रपदा ६, रेवती, ॥४॥ तत्र खलु ये ते एवमाहुः तावत् भरण्यादिकानिसप्तनक्षत्राणि पूर्वद्वाराणि प्रज्ञप्तानि ते एवमाहु तद्यथा—भरणी १, कृत्तिका २, रोहिणी ३, संस्थाना (मृगशिरः) ४, आर्द्रा ५, पुनर्वसुः ६, पुष्यः ७। तावत् अश्लेषादिकानि सप्तनक्षत्राणि दक्षिणद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—अश्लेषा १, मघा २, पूर्वाफल्गुनी ३ उत्तराफाल्गुनी ४, हस्तः ५, चित्रा ६, स्वातिः ७। तावत् विशाखादिकानी सप्तनक्षत्राणि पश्चिमद्वाराणि प्रज्ञप्तनि, तद्यथा—विशाखा १, अनुराधा २, ज्येष्ठा ३, मूलः ४, पूर्वाषाढा ५, उत्तराषाढा ६. अभिजित् ७। तावत् श्रवणादिकानी सप्तनक्षत्राणि उत्तरद्वाराणि प्रज्ञप्तानि तद्यथा—श्रवणः १, धनिष्ठा २, शतभिषक् ३, पूर्वाप्रोष्ठपदा ४, उत्तराप्रोष्ठपदा ५, रेवती ६, अश्विनी ७।५॥ एते एवमाहुः। वयं पुनरेवं वदामः—तावत् अभिजिदादिकानि सप्त नक्षत्राणि पूर्वद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा -अभिजित् १, श्रवणः २, धनिष्ठा ३, शतभिषक् ४, पूर्वा प्रोष्ठपदा ५, उत्तराप्रोष्ठपदा ६, रेवती ७। तावत् अश्विन्यादिकानि सप्तनक्षत्राणि दक्षिणद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा अश्विनी १, भरणी २, कृत्तिका ३, रोहिणी ४, संस्थाना (मृगशिरः) ५, आर्द्रा ६, पुनर्वसुः ७। तावत् पुष्यादि सप्तनक्षत्राणि पश्चिम द्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—पुष्यः १ अश्लेषाः २, मघा ३, पूर्वाफाल्गुनी ४, उत्तराफाल्गुनी ५, हस्तः ६, चित्रा ७। तावत् स्वातिकादिकानि सप्तनक्षत्राणि उत्तरद्वाराणि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—स्वाति १, विशाखा २, अनुराधा ३, ज्येष्ठा ४, पूर्वाषाढा ७॥ सूत्र-१॥

"इति चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रे चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिका टीकायां दशमस्य प्राभृतस्य एकविंशतितमम् प्राभृतप्राभृतं समाप्तम् ॥१०-२१॥

व्याख्या—'ता कहं ते जोइसदारा' इति, 'ता तावत् 'कहं' कथं केन क्रमेण 'ते' त्वया 'जोइसदारा' ज्योतिषद्वाराणि नक्षत्रद्वाराणि 'आहिया' आख्यातानि कथितानि 'ति वएज्ज' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन्। इति गौतमेन पृष्टे भगवानाह—'तत्थ' इत्यादि, 'तत्थ' तत्र ज्यौतिषद्वारविषये खलु 'इमाओ' इमा वक्ष्यमाणाः 'पंच' पञ्चसंख्यकाः 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः परमतरूपाः 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ताः कथिताः। ता एव दर्शयति-'तत्थेगे' इत्यादि, 'तत्थ'

तत्र पञ्चसु प्रतिपत्तिवादिषु मध्ये 'एगे' एके केचन 'एवमाहंसु' एवमाहु. एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहु कथयन्ति । किमाहुरित्याह– 'ता कत्तियाइया' इत्यादि 'ता' तावत् 'कत्तियाइया' कृत्तिकादीनि 'सत्तनक्खत्ता' सप्तनक्षत्राणि 'पुव्वदारिया' पूर्वद्वाराणि 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्तानि । इह येषु नक्षत्रेषु पूर्वस्यां दिशि गमनं कुर्वतः प्रायः शुभं भवति तानि पूर्वद्वाराणि नक्षत्राणि कथ्यन्ते । अथवा नक्षत्रचक्रस्य पूर्वभागचारीणि कृत्तिकादीनि सप्तनक्षत्राणि सन्तीति पूर्वद्वाराणि कथ्यन्ते इति । इदं प्रथमप्रतिपत्तिवादिमतम् १ । शेषाश्चतस्रः प्रतिपत्तयः सुगमा इति न व्याख्यायते । अयमाशयः–द्वितीयप्रतिपत्तिवादिमते मघादीनि सप्तनक्षत्राणि पूर्वद्वाराणि ।१। तृतीयप्रतिपत्तिवादिमते- धनिष्ठादीनि सप्तनक्षाणि पूर्वद्वाराणि ।३। चतुर्थप्रतिपत्तिवादिमते–अश्विन्यादीनि सप्तनक्षत्राणि पूर्वद्वाराणि ।४। पञ्चमप्रतिपत्तिवादिमते भरण्यादीनि सप्तनक्षत्राणि पूर्वद्वाराणि सन्तीति ।५। एवं पञ्चप्रतिपत्तिवादिना पञ्चमतानि संक्षेपतः प्रोक्तानि. अथैतेषां प्रत्येकं शेष दक्षिण-पश्चिमोत्तरद्वारविषये भावनां प्रदर्शयति– 'तत्थ णं जे ते' इत्यादि 'तत्थ णं' तत्र पञ्चसु प्रतिपत्तिवादिषु खलु 'जे ते' ये ते प्रथमाः प्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' एवम् पूर्वोक्त प्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति यत् 'ता' तावत् कृत्तिकादीनि सप्तनक्षत्राणि पूर्वद्वाराणि प्रज्ञप्तानि ते 'एवं' एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण सप्तनक्षत्राणि 'आहंसु' आहुः, तान्येव सप्तनक्षत्राणि नामनिर्देशपूर्वकं दर्शयति 'तं जहा' इत्यादि, 'तं जहा' तद्यथा–तानि सप्त यथा–कृत्तिका १, रोहिणी २, मृगशिरः ३, आर्द्रा ४ पुनर्वसुः ५, पुष्यः ६, अश्लेषा ७ । अष्टाविंशतिनक्षत्राणां पूर्व-दक्षिण-पश्चिमोत्तररूपदिक्चतुष्टये प्रत्येकस्मिन् दिशि सप्त सप्तनक्षत्राणि तत्तद्दिग् द्वाराणि क्रमेण भवन्ति, तथाहि–कृत्तिकात आरभ्याश्लेषा पर्यन्तानि सप्तनक्षत्राणि पूर्वद्वाराणि ७ । तदग्रेतनानि मघात आरभ्य विशाखा पर्यन्तानि सप्तनक्षत्राणि दक्षिण द्वाराणि १४ । तदग्रेतनानि-अनुराधात आरभ्य श्रवणपर्यन्तानि सप्तनक्षत्राणि पश्चिमद्वाराणि २१ । तदग्रेतनानि धनिष्ठात आरभ्य भरणी पर्यन्तानि सप्तनक्षत्राणि उत्तरद्वाराणि सन्ति २८ । एष प्रथम प्रतिपत्तिवादिमतेऽष्टाविंशतिनक्षत्राणा क्रमः ।१। एवं द्वितीय प्रतिपत्तौ मघात आरभ्य अश्लेषापर्यन्तान्यष्टाविंशति नक्षत्राणि पूर्वादि दिक् चतुष्टये सप्त सप्त विभजनेनावसेयानि। एतद् द्वितीयप्रतिपत्तेः स्पष्टीकरणम् ।२ तृतीयप्रतिपत्तौ धनिष्ठात आरभ्य श्रवणपर्यन्ताष्टाविशतिनक्षत्राणि प्रत्येकस्मिन् दिशि सप्त सप्त क्रमेण विज्ञेयानि ।३। चतुर्थप्रतिपत्तौ अश्विनीत आरभ्य रेवती पर्यन्ताष्टाविंशतिनक्षत्राणि पूर्वादि प्रत्येकदिशि सप्त सप्त क्रमेण स्थापनीयानि ।४। पञ्चमप्रतिपत्तौ भरणीत आरभ्याश्विनी पर्यन्ताष्टाविंशतिनक्षत्राणि पूर्वादि दिक् चतुष्टये सप्तसप्त क्रमेण ज्ञातव्यानि ।५। तदेवं पञ्चप्रतिपत्तिस्पष्टीकरणं प्रोक्तम् । अक्षरगमनिका स्वयमूहनीयेति । अथ भगवान् स्वमतं प्रदर्शयति 'वयं पुण' इत्यादि, 'वयं पुण' वयं पुनरिति वयं तु 'एवं' वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयामो' वदामः कथयामः 'ता' तावत् 'अभीइयाइया' अभिजिदादीनि 'सत्तणक्खत्ता' सप्तनक्षत्राणि 'पुव्वदारिया पण्णत्ता' पूर्वद्वाराणि प्रज्ञप्तानि । शेषं सुगमम् । अयमाशयः— अत्राभिजित आरभ्य-

उत्तराषाढापर्यन्तानि अष्टाविंशति नक्षत्राणि सप्तसप्तक्रमेण पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरद्वाराणि ज्ञातव्यानीति सूत्र ॥१॥

॥ इति चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रे चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिकाटीकायां
दशमस्य प्राभृतस्य एकविंशतितमं प्राभृतप्राभृतं
समाप्तम् ॥ १०-२१

श्री रस्तु

दशमस्य प्राभृतस्य द्वाविंशतितमं प्राभृतप्राभृतम् ।

तदेवमुक्तमेकविंशतितमं प्राभृतप्राभृतम्। तत्र ज्यौतिषद्वाराणि प्ररूपितानि। साम्प्रतं द्वाविंशतितमं प्राभृतप्राभृतं प्रस्तूयते, अत्रायमर्थाधिकारः- यत् पूर्वं द्वारगाथायां 'नक्खत्तविचएत्तिय' नक्षत्रविचय इति च, इति प्रोक्तं तदनुसारेणास्मिन् प्राभृतप्राभृते नक्षत्राणा विचय इति स्वरूपनिर्णयः प्रदर्शयिष्यते इति तद्विषयकं सूत्रमाह-'ता कहं ते नक्खत्तविचए' इत्यादि।

मूलम्— ता कहं ते नक्खत्तविचए आहिएति वएज्जा, ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ते। ता जंबुद्दीवेणं दीवेणं दो चंदा पभासेसु वा, पभासेंति वा, पभासिस्संति वा। दो सूरिया तविंसु वा तवेंति वा तविस्संति वा। छप्पण्णे नक्खत्ता जोयं जोइंसुवा जोइंति वा जोइस्संतिवा, तं जहा दो अभिई, दो सवणा दो धणिट्ठा, दो सयभिसया, दो पुव्वापोट्ठवया दो उत्तरापोट्ठवया, दो रेवई, दो अस्सिणी दो भरणी, दो कत्तिया, दो रोहिणी, दो संठाणा, दो अद्दा, दो पुणव्वसू, दो पुस्सा, दो असिलेसा, दो पुव्वाफग्गुणी, दो उत्तराफग्गुणी, दो हत्था दो चित्ता, दो साई दो विसाहा, दो अणुराहा, दो जेट्ठा दो मूला, दो पुव्वासाढा दो उत्तरासाढा। ता एएसिं णं छप्पण्णाए नक्खत्ताणं अत्थि णक्खत्ता जे णं णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभागे मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति। अत्थि णक्खत्ता जे णं पणयालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ॥ ता एएसिणं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं कयरे णक्खत्ता जे णं णवमुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभागे मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति, कयरे णक्खत्ता जे णं पण्णरसमुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति?, कयरे णक्खत्ता जे णं तीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति? कयरे णक्खत्ता जे णं पणयालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति? ता एएसिणं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं तत्थ जेते णक्खत्ता जेणं णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभागे मुहुत्तस्स जोयं जोएंति ते णं दो अभिई। तत्थ जे ते णक्खत्ता जेणं पण्णरसमुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ते णं बारस तं जहा-दो सयभिसया, दो भरणी, दो अद्दा, दो अस्सेसा दो साई दो जेट्ठा। तत्थ जे णं तीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ते णं तीसं, तं जहा दो सवणा दो धणिट्ठा, दो पुव्वाभद्दवया, दो रेवई, दो अस्सिणी, दो कत्तिया दो संठाणा, दो पुस्सा,

दो महा, दो पुव्वाफग्गुणी, दो हत्था, दो चित्ता, दो अणुराहा दो मूला दो पुव्वासाढा। तत्थ जेते णक्खत्ता जेणं पणयालीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति ते णं वारस, तं जहा-दो उत्तरापोट्ठवया, दो रोहिणी, दो पुणव्वसू दो उत्तराफग्गुणी दो विसाहा, दो उत्तरासाढा। ता एएसिणं छप्पण्णाए णक्खत्ता णं अत्थि णक्खत्ता जे णं चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति। अत्थि णक्खत्ता जे णं छ अहोरत्ते एक्कवीसं च मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति। अत्थि णक्खत्ता जे णं तेरस अहोरत्ते दुवालस य मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति। अत्थि नक्खत्ता जे णं वीसं अहोरत्ते तिन्नि य मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जाएंति ता एएसि णं छप्पणाए णक्खत्ताणं कयरे णक्खत्ता जे णं तं चेव उच्चारेयव्वं। ता एएसिणं छप्पण्णाए णक्खत्ता णं तत्थ जे ते णक्खत्ता जेणं चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति ते णं दो अभिई। तत्थ जेते णक्खत्ता जे णं छ अहोरत्ते एक्कवीसं च मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जायं जोएंति ते णं वारस तं जहा-दो सयभिसया, दो भरणी, दो अद्दा, दो अस्सेसा, दो साई, दो जेट्ठा। तत्थ जे ते णक्खत्ता जे णं तेरस अहोरत्ते वारस य मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएति तेणं तीसं, तं जहा-दो सवणा, जाव दो पुव्वासाढा। तत्थ जे ते णक्खत्ता जे ण वीसं अहोरत्ते तिण्णि य मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएंति तेणं वारस, तं जहा-दो उत्तरापोट्ठवया जाव दो उत्तरासाढा। सूत्रं-१॥

छाया---तावत् कथं ते नक्षत्रविचयः आख्यातः इति वदेत् तावत् अयं खलु जम्बूद्वीपो द्वीपः यावत् परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः, तावत् जम्बूद्वीपे खलु द्वीपे द्वौ चन्द्रौ प्राभासतां वा प्रभासेते वा प्रभासिष्येते १। द्वौ सूर्यौ अतापयतां वा तापयतो वा, तापयिष्यतो वा। षट्पञ्चाशत् नक्षत्राणि योगमयुञ्जन् वा युञ्जन्तिवा, योक्ष्यन्ति वा तद्यथा-द्वौ अभिजितौ ३, द्वौ श्रवणौ ४, द्वौ धनिष्ठे ६, द्वे शतभिषजौ ८, द्वे पूर्वाप्रोष्ठपदे १०, द्वे उत्तराप्रोष्ठपदे १२. द्वे रेवत्यौ १४ द्वे अश्विन्यौ १६, द्वे भरण्यौ १८, द्वे कृत्तिके २० द्वे रोहिण्यौ २२, द्वे संस्थाने (मृगशिरसी) २४; द्वे आर्द्रे २६, द्वौ पुनर्वसू २८, द्वौ पुष्यौ ३० द्वे अश्लेषे ३२, द्वे मघे ३४, द्वे पूर्वाफाल्गुन्यौ ३६, द्वे उत्तराफाल्गुन्यौ ३८ द्वौ हस्तौ ४० द्वे चित्रे ४२, द्वे स्वातो ४४, द्वे विशाखे ४६, द्वौ अनुराधे ४८, द्वे ज्येष्ठे ५०, द्वौ मूलौ ५२, द्वे पूर्वाषाढे ५४ द्वे उत्तराषाढे ५६। तावत् एतेषां खलु षट्पञ्चाशतो नक्षत्राणां सन्ति नक्षत्राणि यानि खलु नव मुहूर्त्तान् सप्तविंशतिं च सप्तषष्ठिभागान् मुहूर्त्तस्य चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति। सन्ति नक्षत्राणि यानि खलु पञ्चदश मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति। सन्ति नक्षत्राणि यानि खलु त्रिंशन्मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धयोगं युञ्जन्ति। सन्ति नक्षत्राणि यानि खलु पञ्चत्वारिंशन्मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धंयोगं युञ्जन्ति। तावत् एतेषां खलु षट् पञ्चाशतो नक्षत्राणां कतराणि नक्षत्राणि यानि खलु नव मुहूर्त्तान् सप्तविंशतिं च सप्तषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति ?, कतराणि नक्षत्राणि यानि खलु पञ्चदश मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धं-

योगं युञ्जन्ति ?, कतराणि नक्षत्राणि खलु त्रिंशन्मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति ?, कतराणि नक्षत्राणि यानि खलु पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति ?, तावत् एतेषां खलु षट्पञ्चशतो नक्षत्राणां, तत्र यानि तानि नक्षत्राणि यानि खलु नव मुहूर्त्तान् सप्तविंशतिं च सप्तषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति तौ खलु द्वौ अभिजितौ। तत्र यानि तानि नक्षत्राणि यानि खलु पञ्चदश मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति तानि खलु द्वादश, तद्यथा-द्वौ शतभिषजौ २, द्वे भरण्यौ ४, द्वे आर्द्रे ६, द्वे अश्लेषे ८, द्वे स्वाती १०, द्वे ज्येष्ठे १२। तत्र यानि खलु त्रिंशन्मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति तानि खलु त्रिंशत्, तद्यथा-द्वौ श्रवणौ २, द्वे धनिष्ठे ४, द्वे पूर्वाभाद्रपदे ६, द्वे रेवत्यौ ८ द्वे अश्विन्यौ १०, द्वे कृत्तिके १२ द्वे संस्थाने (मृगशिरसौ) १४, द्वौ पुष्यौ १६, द्वे मघे १८, द्वे पूर्वाफाल्गुन्यौ २०, द्वौ हस्तौ २२, द्वे चित्रे २४, द्वे अनुराधे २६, द्वौ मूलौ २८, द्वे पूर्वाषाढे ३०। तत्र यानि तानि नक्षत्राणि यानि खलु पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति तानि खलु द्वादश, तद्यथा-द्वे उत्तराप्रोष्ठपदे २ द्वे रोहिण्यौ ४, द्वौ पुनर्वसू ६, द्वे उत्तराफाल्गुन्यौ ८, द्वे विशाखे १०, द्वे उत्तराषाढे १२, तावत् एतेषां खलु षट् पञ्चाशतो नक्षत्राणां सन्ति नक्षत्राणि यानि खलु चतुरोऽहोरात्रान् षट् च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति। सन्ति नक्षत्राणि यानि खलु षड् अहोरात्रान् एकविंशतिं च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति। सन्ति नक्षत्राणि यानि खलु त्रयोदशाहोरात्रान् द्वादश च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति। सन्ति नक्षत्राणि यानि खलु विंशतिमहोरात्रान् त्रीन् मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति। एतेषां खलु षट् पञ्चाशतो नक्षत्राणां कतराणि नक्षत्राणि यानि खलु तदेव उच्चारयितव्यम्। तावत् एतेषां खलु षट् पञ्चाशतो नक्षत्राणां तत्र यानि तानि नक्षत्राणि यानि खलु चतुरोऽहोरात्रान् षट् च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति तानि खलु द्वौ अभिजितौ। तत्र तानि नक्षत्राणि यानि खलु षड् अहोरात्रान् एकविंशतिं च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति तानि खलु द्वादश, तद्यथा—द्वौ शतभिषजौ २, द्वे भरण्यौ ४ द्वे आर्द्रे ६, द्वे अश्लेषे ८, द्वे स्वाती १०, द्वे ज्येष्ठे १२.। तत्र यानि तानि नक्षत्राणि यानि खलु त्रयोदशाहोरात्रान् द्वादश च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति, तानि खलु त्रिंशत्, तद्यथा—द्वे श्रवणे २, यावत् द्वे पूर्वाषाढे ३०,। तत्र यानि तानि नक्षत्राणि यानि खलु विंशतिमहोरात्रान् त्रीन् च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्धं योगं युञ्जन्ति तानि खलु द्वादश, तद्यथा- द्वे उत्तराप्रोष्ठपदे २, यावत् द्वे उत्तराषाढे १२, ॥ सूत्र - १ ॥

व्याख्या 'ता कहं ते नक्खत्तविचए' इति 'ता तावत् कहं' कथं 'ते' त्वया 'नक्खत्तविचए' नक्षत्रविचयः नक्षत्राणां विचय तदर्थनिर्णयनम् स्वरूपनिर्णय इत्यर्थः नक्षत्र-विचयः, उक्तञ्चान्यत्र—"आप्तवचनं प्रवचनं ज्ञात्वा विचयस्तदर्थनिर्णयनम्।" इति तथाहि—नक्षत्राणां स्वरूपनिर्णय त्वया केन प्रकारेण 'आहिए' आख्यातः ? 'ति वएज्जा' इति वदेत् इति एतद्विषये हे भगवान् वदतु कथयतु। इति गौतमेन पृष्टे भगवानाह—'ता अयं णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'अयं णं' अयं खलु प्रसिद्धः 'जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपो द्वीपःमध्यजम्बूद्वीपः सर्वद्वीपसमुद्राणां सर्वाभ्यन्तर. सर्वक्षुल्लक इत्यादि विशेषणविशिष्टः लक्षयोजनपरिमित आया-

मविष्कम्भेण तथा त्रयोलक्षाः, षोडशसहस्राणि सप्तविंशत्यधिकं शतद्वयंच योजनम् त्रयः क्रोशाः, अष्टाविंशत्यधिकशतधनूंषि, सार्धत्रयोदशाङ्गुलानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि, एतावत्परिमितः 'परिक्खेवेणं' परिक्षेपेण परिधिना 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तः कथितः । 'ता' तावत् तादृशे 'जंबुद्दीवेणं दीवे' जम्बूद्वीपे खलु द्वीपे 'दो चंदा' द्वौचन्द्रौ 'पभासिंसु' प्रभासतां वा भूतकाले, 'पभासेंतिवा' प्रभासेते वा वर्त्तमानकाले, 'पभासिस्संति वा' प्रभासिष्येते वाऽनागतकाले, अतीत वर्त्तमानानागतरूपे कालत्रयेऽपि प्रभासमानौ वर्त्तेते इति भावः । एवं 'दो सूरिया' द्वौ सूर्यौ 'तविंसु वा' अतपताम् 'तवेंतिवा' तपतः तविस्संतिवा' तपिष्यतः, द्वौ सूर्यावपि जम्बूद्वीपे कालत्रयेऽपि तपन्तौ वर्त्तेते इति भावः । तथा षट्पञ्चाशत् नक्षत्राणि अष्टाविंशते र्नक्षत्रणां प्रत्येकं द्विर्द्विर्भावेन षट्पञ्चाशत्संख्यकानि नक्षत्राणि 'जोयं' योगं चन्द्रसूर्यैः सह युतिं 'जोइस्संतिवा', योक्ष्यन्ति वा, एतानि नक्षत्राण्यपि कालत्रये चन्द्रसूर्यैः सह योगं युञ्जन्ति इति भावः । तान्येव दर्शयति— 'तं जहा' इत्यादि, तं जहा' तद्यथा तानि यथा—'दो अभिई' द्वौ अभिजितौ, इत्यत आरभ्य द्वे उत्तरषाढे, इति पर्यन्तानि द्विर्द्विर्भावेन षट् पञ्चाशन्नक्षत्राणि मूलसूत्रादेव विज्ञेयानीति । अथ नक्षत्राणां चन्द्रेण सह योगपरिमाणं प्रतिपादयन्नाह—'ता एएसिणं' इत्यादि । 'ता' तावत् 'एएसिणं' एतेषां खलु 'छप्पण्णाए णक्खत्ताणं' षट् पञ्चाशतो नक्षत्राणा 'अत्थि णक्खत्ता' सन्ति कानिचिन्नक्षत्राणि 'जेणं' यानि खलु 'णव मुहुत्ते' नवमुहूर्त्तान्, 'सत्तावीसं च सत्तट्ठिभागे मुहुत्तस्स' एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतिं सप्तषष्टिभागान् यावत् 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति' चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति । 'अत्थि नक्खत्ता' सन्ति कानिचिन्नक्षत्राणि 'जेणं' यानि खलु 'पण्णरसमुहुत्ते' पञ्चदशमुहूर्त्तान् यावत् 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति' चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति । 'अत्थि नक्खत्ता' सन्ति कानिचिन्नक्षत्राणि 'जेणं' यानि खलु 'तीसं मुहुत्ते' त्रिंशन्मुहूर्त्तान् यावत् चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति' चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति । 'अत्थि णक्खत्ता' सन्ति कानिचिन्नक्षत्राणि 'जेणं' यानि खलु 'पणयालीसं मुहुत्ते' पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तान् यावत् 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएंति' चन्द्रेण सार्धं योगं युञ्जन्ति पूर्वं भगवता सामान्येन नक्षत्र योगः प्रोक्तः, साम्प्रतं एतानेव चतुरो विषयान् गौतमः पृथक् पृथक्त्वेन पृच्छति— 'ता एएसिणं' इत्यादि, व्याख्या स्पष्टा ।

अथ भगवान् तानेव विषयान् पृथक् पृथग् रूपेण नामनिर्देशपूर्वकं स्पष्टयति—'ता एएसि णं' इत्यादि, व्याख्या सुगमा अथ षट् पञ्चाशतो नक्षत्राणां मध्ये यानि यानि नक्षत्राणि सूर्येण सहयोगं युञ्जन्ति तेषां संख्या नामानि च पृथक् पृथक् प्रदर्शयति—'ता एएसिणं' इत्यादि, व्याख्या पाठ सिद्धा । एषां विशेषव्याख्या पूर्वमस्यैव दशमस्य प्राभृतस्य द्वितीये प्राभृतप्राभृते कृतेति तत्र विलोकनीया । सूत्र ॥१॥

चन्द्रेण सूर्येण सार्धं च नक्षत्रयोगकोष्ठकम्

संख्या	नक्षत्रनामानि	चन्द्रेण सह मुहूर्ता	सूर्येण सहाहोरात्राः	मुहूर्त्ताः
१	अभिजित्	९–२७।६७	४	६
२	श्रवण	३०	१३	१२
३	धनिष्ठा	३०	१३	१२
४	शतभिषक्	१५	६	२१
५	पूर्वाभाद्रपदा	३०	१३	१२
६	उत्तराभाद्रपदा	४५	२०	३
७	रेवती	३०	१३	१२
८	अश्विनी	३०	१३	१२
९	भरणी	१५	६	२१
१०	कृत्तिका	३०	१३	१२
११	रोहिणी	४५	२०	३
१२	मृगशिरः	३०	१३	१२
१३	आर्द्रा	१५	६	२१
१४	पुनर्वसुः	४५	२०	३
१५	पुष्य	३०	१३	१२
१६	अश्लेषा	१५	६	२१
१७	मघा	३०	१३	१२
१८	पूर्वाफाल्गुनी	३०	१३	१२
१९	उत्तराफाल्गुनी	४५	२०	३
२०	हस्त	३०	१३	१२
२१	चित्रा	३०	१३	१२
२२	स्वाति	१५	६	२१
२३	विशाखा	४५	२०	३
२४	अनुराधा	३०	१३	१२
२५	ज्येष्ठा	१५	६	२१
२६	मूल	३०	१३	१२
२७	पूर्वाषाढा	३०	१३	१२
२८	उत्तराषाढा	४५	२०	३

पूर्वं कालमाश्रित्य चन्द्रेण सूर्येण च सह षट्पञ्चाशन्नक्षत्राणां योगपरिमाणं प्रतिपादितम्, साम्प्रतं क्षेत्रमाश्रित्य तच्चिन्तयन् प्रथमं सीमाविष्कम्भं प्रतिपादयति–'ता कहंते सीमाविक्खंभे' इत्यादि ।

मूलम्—ता कहं ते सीमाविक्खंभे आहिएत्ति वएज्जा । ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं अत्थि णक्खत्ता जेसि णं छ सयातीसा सत्तट्ठिभागतीसइ भागाणं सीमा विक्खंभो अत्थि णक्खत्ता जेसि णं सहस्सं पंचोत्तरं सत्तट्ठिभागतीसइभागाणं सीमाविक्खंभो

अत्थि णक्खत्ता जेसि णं दो सहस्सा दसुत्तरा सत्तट्ठिभागतीसइ भागाणं सीमा विक्खंभो। अत्थि णक्खत्ता जेसि णं तिसहस्सं पंचदसुत्तरं सत्तट्ठिभागतीसइभागाणं सीमाविक्खंभो। ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ता णं कयरे णक्खत्ता जेसि णं छसयातीसा तं चेव उच्चारेयव्वं जाव ता एएसिणं छप्पण्णाए णक्खत्ता णं कयरे णक्खत्ता जेसि णं तिसहस्सं पंचदसुत्तरं सत्तट्ठिभागतीसइभागाणं सीमाविक्खंभो ?। ता एएसिणं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं तत्थ जे ते णक्खत्ता जेसि णं छ सया तीसा सत्तट्ठिभागतीसइभागाणं सीमाविक्खंभो ते णं दो अभिई। तत्थ जे ते णक्खत्ता जेसि णं सहस्सं पंचुत्तरं सत्तट्ठिभागतीसइभागाणं सीमा विक्खंभो ते णं बारस, तं जहा—दो सयभिसया २, जाव दो जेट्ठा १२। तत्थ जे ते णक्खत्ता जेसि णं दो सहस्सा दसुत्तरा सत्तट्ठिभागतीसइभागाणं सीमा विक्खंभो तेणं तीसं. तं जहा—दो—सवणा २ जाव दो पुव्वासाढा ३०। तत्थ जे ते णक्खत्ता जेसिणं तिसहस्सं पंचदसुत्तरं सत्तट्ठिभाग तीसइ भागाणं सीमा—विक्खंभोते णं बारस, तं जहा—दो उत्तरापोट्ठवया २ जाव दो उतरासाढा। सूत्र ॥२॥

छाया—तावत् कथं ते सीमाविष्कम्भ आख्यातः? इति वदेत् तावत् एतेषां खलु षट्पञ्चाशतो नक्षत्राणां (मध्ये) सन्ति नक्षत्राणि येषां खलु षट् शतानि त्रिंशानि (त्रिंशदधिकानि) सप्तषष्टिभागत्रिंशद्भागानां विष्कम्भः। सन्ति नक्षत्राणि येषां खलु द्वे सहस्रे दशोत्तरे सप्तषष्टि भागत्रिंशद्भागानां सीमाविष्कम्भः। सन्ति नक्षत्राणि येषां खलु त्रिसहस्रं पञ्चदशोत्तरं सप्तषष्टिभागत्रिंशद्भागानां सीमाविष्कम्भः। तावत् एतेषां खलु षट्पञ्चाशतो नक्षत्राणां कतराणि नक्षत्राणि येषां खलु षट्शतानि त्रिंशानि तदेवउच्चारयितव्यं यावत् एतेषां खलु षट्पञ्चाशतो नक्षत्राणां कतराणि नक्षत्राणि येषां खलु त्रिसहस्रपञ्चदशोत्तरं सप्तषष्टित्रिंशद्भागानां सीमाविष्कम्भः?तावत् एतेषां खलु षट्पञ्चाशतो नक्षत्रणां तत्र यानि तानि नक्षत्राणि येषां खलु षट्शतानि त्रिंशानि सप्तषष्टिभागत्रिंशद्भागानां सीमाविष्कम्भः, तौ खलु द्वौ अभिजितौ। तत्र यानि तानि नक्षत्राणि येषां खलु सहस्रं पञ्चोत्तरं सप्तषष्टि भाग त्रिंशद्भागानां सीमाविष्कम्भः तानि खलु द्वादश तद्यथा—द्वौ शतभिषजौ २ यावत् द्वौ ज्येष्ठे। तत्र यानि तानि नक्षत्राणि येषां खलु द्वे सहस्रे दशोत्तरे सप्तषष्टि भाग त्रिंशद्भागानां सीमाविष्कम्भः, तानि खलु त्रिंशत्, तद्यथा—द्वौ श्रवणौ २ यावत् द्वे पूर्वाषाढे ३०। तत्र यानि तानि नक्षत्राणि येषां खलु त्रीणि सहस्राणि पञ्चदशोत्तराणि सप्तषष्टि भागत्रिंशद्भागानां सीमाविष्कम्भः, तानि खलु द्वादश, तद्यथा—द्वे उत्तराप्रोष्ठपदे यावत् द्वे उत्तराषाढे ॥सू० २॥

व्याख्या—'ता कहं ते सीमाविक्खंभे' इति, 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण कियत्या विभागसंख्यया हे भगवान्! 'ते' त्वया 'सीमा विक्खंभे' सीमाविष्कम्भः सीमा विस्तार 'आहिए' आख्यातः? 'तिवएज्जा' इति वदेत्, एतद्विषये कथयतु। एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह—

'ता एएसिणं' इत्यादि। इहाष्टाविंशत्या नक्षत्रै स्वगत्या स्व स्व कालपरिमाणेन क्रमशो यावत्परिमितं क्षेत्रं बुद्धया व्याप्यमानं सम्भाव्यते तावत्परिमितमेकमर्द्धमण्डलमुपकल्प्यते, एतावत्प्रमाणमेव द्वितीयमर्द्धमण्डलमित्येवं प्रमाणं बुद्धिपरिकल्पितमेकं परिपूर्णमण्डलं कल्प्यते, तस्य मण्डलस्य

मंडलं सयसहस्सेण अट्ठाणउएहिं सएहिं छित्ता इच्चेसनक्खत्ते खेत्तपरिभागेनक्खत्तविचए पाहुडे आहिएत्तिबेमि"

छाया—मण्डलशतसहस्रेण अष्टानवतिभिः शतै श्छित्त्वा इत्येष नाक्षत्रः क्षेत्रपरिभागः नक्षत्रविचये प्राभृते आख्यात इति ब्रवीमि—इति। इति वाक्यमाणवचनात् अष्टानवतिशत सहस्रविभागैर्विभज्यते। किमेवंविधसख्यकभागानां कल्पने प्रमाणम्? इति चेदाह—इह नक्षत्राणि त्रिविधानि भवन्ति तथाहि—समक्षेत्राणि, अर्धक्षेत्राणि, द्व्यर्धक्षेत्राणि च, तत्र समक्षेत्राणि त्रिंशन्मुहूर्त्तानि, अर्धक्षेत्राणि पञ्चदशमुहूर्त्तानि, द्व्यर्धक्षेत्राणि पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तानीति। अयं भावः यावत्प्रमाणं क्षेत्रं यैर्नक्षत्रैरेकेनाहोरात्रेण गम्यते तावत्क्षेत्रप्रमाणं योगं यानि नक्षत्राणि चन्द्रेण सह युञ्जन्ति तानि नक्षत्राणि समक्षेत्राणि कथ्यन्ते, तानि च पञ्चदश, तथाहि—श्रवणः १, धनिष्ठा २, पूर्वाभाद्रपदा ३, रेवती ४, अश्विनी ५, कृत्तिका ६, मृगशिरः ७, पुष्यः ८, मघा ९, पूर्वाफाल्गुनी १०, हस्तः ११, चित्रा १२, अनुराधा १३, मूलः १४, पूर्वाषाढ़ा १५, इति। तथा यानि नक्षत्राणि अहोरात्रप्रमितस्यत्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकस्यार्द्धं पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकं क्षेत्रं चन्द्रेण सह योगं युञ्जन्ति तानि अर्द्धक्षेत्राणि प्रोच्यन्ते, तानि च षट्-तथाहि—शतभिषक् १, भरणी २, आर्द्रा ३, अश्लेषा ४, स्वातिः ५, ज्येष्ठा ६, चेति। तथा द्वितीयमर्धं यस्य तद् द्व्यर्धं सार्धमेकमित्यर्थः, तद् द्व्यर्धमर्द्धाधिकं क्षेत्रमहोरात्रप्रमितं पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकं चन्द्रयोगयोग्यं येषां तानि द्व्यर्धक्षेत्राणि, एतान्यपि षट् तथाहि—उत्तराभाद्रपदा १, उत्तराफाल्गुनी २, उत्तराषाढ़ा ३, रोहिणी ४, पुनर्वसुः ५, विशाखा ६ चेति। अथ सीमापरिमाणं चिन्त्यते, तत्राहोरात्रः सप्तषष्टि भागी क्रियते, पूर्णाहोरात्रं च चन्द्रयोगयोग्यं येषां नक्षत्राणां भवति तानि नक्षत्राणि समक्षेत्राणि, तेषां समक्षेत्राणां क्षेत्रं प्रत्येकं सप्तषष्टि भागाः परिकल्प्यन्ते इति समक्षेत्रस्य नक्षत्रस्य सप्तषष्टिभागाः (६७), अर्धक्षेत्रस्य सार्धत्रयस्त्रिंशद्भागाः (३३॥) द्व्यर्धक्षेत्रस्यैकं शतमर्द्धं च (१००॥) अभिजिन्नक्षत्रस्य एकविंशतिसप्तषष्टिभागः ($\frac{२१}{६७}$) भवन्ति, अभिजितः सप्तविंशतिसप्तषष्टिभागयुक्तनवमुहूर्त्तान् यावत् चन्द्रयोगयोग्यत्वात्, एते च सप्तषष्टिभागाः त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकपूर्णाहोरात्रस्य परिकल्पिताः सन्तीति रीत्याऽभिजित एकविंशतिः सप्तषष्टिभागा लभ्यन्ते इति विवेकः। समक्षेत्राणि नक्षत्राणि च पञ्चदशेति सप्तषष्टिभागाः पञ्चदशभिर्गुण्यन्ते, जातं पञ्चोत्तरमेक सहस्रम् (१०५)। अर्धक्षेत्राणि षडिति सार्धत्रयस्त्रिंशत् (३३॥) भागा षड्भिर्गुण्यन्ते, जाते एकोत्तरे द्वे शते (२०१)।द्व्यर्धक्षेत्राणि षट् ततः सार्धशतमेकं (१००॥)

च षड्भिर्गुण्यते, जातानि त्र्युत्तराणि षट् शतानि (६०३)। अभिजिन्नक्षत्रस्यैकविंशतिः सप्तषष्टि-भागा इति सर्वसंकलनया जातानि त्रिंशदुत्तराणि अष्टादशशतानि (१८३०। एतावद्भागपरि-मितमेकमर्द्धमण्डलं भवति, एवं द्वितीयमर्द्धमण्डलमपि एतावद्भागपरिमितमेवेति द्वयोस्त्रिंशदधिकाष्टा-दशशतयोर्मेलने जातानि षष्ट्यधिकानि षट्त्रिंशच्छतानि (३६६०) एकैकस्मिन् अहोरात्रे किल त्रिंशन्मुहूर्त्ता भवन्तीति प्रत्येकमेतेषु षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छत संख्यकेषु भागेषु (३६६०) त्रिंशद्भागकल्प-नायां त्रिंशता गुण्यन्ते जातमष्टानवतिशताधिकमेकं शतसहस्रम् (१०९८००)। तत इत्थं मण्डल-स्य भागान् परिकल्प्यैव भगवान् प्रतिवचनं ददाति-'ता एएसिणं' इत्यादि। 'ता' तावत् 'एएसिणं' एतेषां खलु 'छप्पण्णाए णक्खत्ताणं' षट् पञ्चाशतो नक्षत्राणा मध्ये 'अत्थि णक्खता' सन्ति कानिचिन्नक्षत्रानि 'जेसि णं' एषां खलु 'छ सया तीसा' षट्शतानि त्रिंशानि, त्रिंशदधिकानि षट्शतानि (६३०) 'सत्तट्ठिभागतीसइभागाणं' सप्तषष्टिभागत्रिंशद्भागानां 'सीमाविक्खंभो' सीमाविष्कम्भः सीमाविस्तारोऽस्तीति। 'अत्थि णक्खत्ता' सन्ति कानिचिन्नक्षत्राणि येषां खलु 'सहस्सं पंचुत्तरं' सहस्रं पञ्चोत्तरं पञ्चाधिकमेकं सहस्रं (१००५) 'सत्तट्ठिभागतीसइ-भागाणं' सप्तषष्टिभागत्रिंशद्भागानां 'सीमाविक्खंभो' सीमाविष्कम्भः। 'अत्थिणक्खत्ता' सन्ति कानिचिन्नक्षत्राणि 'जेसि णं' येषां खलु 'दो सहस्सा दसुत्तरा' द्वे सहस्रे दशोत्तरे दशा-धिकं सहस्रद्वयं (२०१०)'सत्तट्ठिभागतीसइभागाणं' सप्तषष्टिभागत्रिंशद्भागानां 'सीमाविक्खंभो' सीमाविष्कम्भः। 'अत्थि णक्खत्ता सन्ति कानिचिन्नक्षत्राणि 'जेसि णं' येषां खलु 'तिसहस्सं पंच-दसुत्तरं' त्रिसहस्रं पञ्चदशोत्तरं पञ्चदशाधिकं सहस्रत्रयं (१०१५) 'सत्तट्ठिभागतीसइभा-गाणं' सप्तषष्टि भागत्रिंशद्भागानां 'सीमाविक्खंभो' सीमाविष्कम्भः एवं भगवता प्रोक्ते केषां नक्षत्राणां कियत्परिमितः सीमाविष्कम्भः ? इति गौतमः पृच्छति-'ता एएसि णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां खलु 'छप्पण्णाए णक्खत्ताणं' षट् पञ्चाशतो नक्षत्राणां मध्ये 'कयरे णक्खत्ता' कतराणि नक्षत्राणि कानि नक्षत्राणि एतादृशानि 'जेसि णं' येषां खलु नक्षत्राणां 'छ सयातीसा' षट्शतानि त्रिंशानि त्रिंशदधिकानि षट्शतानि सप्तषष्टिभागत्रिंशद्भागानां सीमा विष्कम्भः प्रोक्तः ? 'तं चेव उच्चारेयव्वं' तदेव उच्चारयितव्य पूर्वोक्तमेव सर्वं प्रश्नरूपेण सूत्र-मत्रवाच्यम् कियत्पर्यन्त मित्याह-'जाव' इत्यादि यावत् 'ता एएसि णं' तावत् एतेषां खलु 'छप्पण्णाए णक्खत्ताणं' षट्पञ्चाशतो नक्षत्राणां मध्ये 'कयरे णक्खत्ता' कतराणि नक्षत्राणि कानि नक्षत्राणि एतादृशानि सन्ति 'जेसि णं' येषां खलु नक्षत्राणां 'तिसहस्सं पंचदसुत्तरं' त्रिसह पञ्चदशोत्तरं (३०१५) 'सत्तट्ठिभागतीसइभागाणं' सप्तषष्टिभागत्रिंशद्भागानां 'सीमाविक्खंभो' सीमाविष्कम्भः प्रोक्तः ? एवं गौतमेन पृष्टे भगवान् तत्प्रश्नान् समाधत्ते 'ता एएसिणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसिणं' एतेषां खलु 'छप्पण्णाए णक्खत्ताणं' षट्पञ्चा-

गतो नक्षत्राणां मध्ये 'तत्थ' तत्र 'जे ते णक्खत्ता' यानि तानि नक्षत्राणि सन्ति 'जेसि णं' येषां खलु 'छसया तीसा' पट्शतानि त्रिंशानि त्रिंशदधिकानि पट् शतानि 'सत्तट्ठिभागतीसइभागाणं' सप्तपष्टिभागत्रिंशद्भागानां 'सीमाविक्खंभो' सीमाविष्कम्भः प्रोक्तः तेषां मध्ये 'ते णं दो' तौ द्वौ अभिजितौ ते द्वे अभिजिन्नक्षत्रे स्तः। तत् कथमित्याह इह एकैकस्याभिजितो नक्षत्रस्य सप्तपष्टि खण्डीकृतस्याहोरात्रगम्यस्य क्षेत्रस्य सम्बन्धिन एकविंशतिर्भागाश्चन्द्रयोगयोग्यः सन्ति एकैकस्मिश्चभागे त्रिंशद्भागपरिकल्पनादेकविंशतिस्त्रिंशता गुण्यते, जातानि पट् शतानि त्रिंशदधिकानि (६३० । तथा- 'तत्थ' तत्र अष्टाविंशतिनक्षत्रेपु मध्ये 'जे ते णक्खत्ता' यानि तानि नक्षत्राणि सन्ति 'जेसि णं' येषां खलु 'सहस्सं पंचुत्तरं' सहस्रं पञ्चोत्तरं पञ्चाधिकमेकं सहस्रं (१००५) 'सत्तट्ठिभागतीसइभागाणं' सप्तपष्टिभागत्रिंशद्भागानां 'सीमाविक्खंभो' सीमाविष्कम्भोऽस्ति 'ते णं' तानि खलु 'बारस' द्वादश 'तं जहा' तद्यथा-तानि यथा-'दो सयभिसया' द्वौ शतभिषजौ 'जाव' यावत् 'दो जेट्ठा' द्वे ज्येष्ठे। अत्र यावत्पदेन 'दो भरणीओ, दो अद्दाओ, दो अस्सेसाओ, दो साईओ' द्वे भरण्यौ, द्वे आर्द्रे द्वे अश्लेपे, द्वे स्वाती, इत्येषां संग्रहः। एतेषां द्वदशानामपि नक्षत्राणामर्द्धक्षेत्रत्वात् प्रत्येकं सप्तपष्टि खण्डीकृतस्याहोरात्रगम्यस्य क्षेत्रस्य सम्बन्धिनः सार्द्धास्त्रयस्त्रिंशद्भागाः (३३॥) चन्द्रयोगयोग्याः, त्रिंशता गुण्यन्ते जातं पञ्चोत्तरं सहस्रम् (१००५) तथा 'तत्थ' तत्र तेपु अष्टाविंशति नक्षत्रेपु 'जे ते णक्खत्ता' यानि तानि नक्षत्राणि सन्ति 'जेसि णं' येषां खलु 'दो सहस्सा दसुत्तरा' द्वे सहस्रे दशोत्तर दशाधिकसहस्रद्वयम् (२०१०) 'सत्तट्ठिभागतीसइभागाणं' सप्तपष्टि भाग त्रिंशद्भाभागाना 'सीमाविक्खंभो' सीमाविष्कम्भो भवति 'तेणं तीसं' तानि खलु त्रिंशत्, 'तं जहा' तद्यथा 'दो सवणा' द्वौ श्रवणौ, 'जाव' यावत् 'दो पुव्वासाढा' द्वे पूर्वापाढे, यावत्पदसग्राह्याणि नक्षत्राणि-'दो धनिट्ठा' 'दो पुव्वाभद्दवया दो रेवई, दो अस्सिणी, दो कत्तिया, दो मिगसिरा' दो पुस्सा, दो मघा, दो पुव्वाफग्गुणीओ, दो हत्था, दो चित्ता, दो अणुराहा, दो मूला' इति, त्रिंशन्नक्षत्राणि यथा-द्वौ श्रवणौ २, द्वे धनिष्ठे ४, द्वे पूर्वाभाद्रपदे ६, द्वे रेवत्यौ, 'द्वे अश्विन्यौ १०, द्वे कृत्तिके १२, द्वे मृगशिरसी १४, द्वौ पुष्यौ १६, द्वे मघे १८, द्वे पूर्वा फाल्गुन्यौ २०, द्वौ हस्तौ २२, द्वे चित्रे २४ द्वे अनुराधे २६, द्वे मूले २८ द्वे पूर्वापाढे ३० इति एतानि त्रिंशन्नक्षत्राणि समक्षेत्राणि, तत एषां सप्तपष्टि खण्डीकृतस्याहोरात्रगम्यस्य क्षेत्रस्य सम्बन्धिन परिपूर्णा सप्तपष्टिभागाः (६७) प्रत्येक चन्द्रयोगयोग्याः, तेन सप्तपष्टिस्त्रिंशता गुण्यते, जातं यथोक्तं दशोत्तरं द्वे सहस्रे (२०१०)। तथा-'तत्थ' तत्राष्टाविंशतिनक्षत्रेपु 'जे ते णक्खत्ता' यानि तानि नक्षत्राणि सन्ति 'जेसि णं' येषां खलु प्रत्येकं 'तिण्णिसहस्सा पण्णरसुत्तरा' त्रीणि सहस्राणि पंचदशोत्तराणि-पञ्चदशाधिकं सहस्रत्रयम् (३०१५) 'सत्तट्ठिभागतीसइभागाणं' सप्तपष्टिभागत्रिंशद्भागानां 'सीमाविक्खंभो' सीमाविष्कम्भो भवति 'ते णं' तानि

खलु नक्षत्राणि 'बारस' द्वादश सन्ति, 'तं जहा' तद्यथा—'दो उत्तरापोट्ठवया २, द्वे उत्तराप्रोष्ठपदे २, 'जाव' यावत् 'दो उत्तरासाढा' द्वे उत्तराषाढे १२, अत्र यावत्पदसंग्राह्याणीमानि नक्षत्राणि—'दो रोहिणी, दो पुणव्वसू, दो उत्तरफग्गुणी, दो विसाहा' द्वे रोहिण्यौ ४, द्वौ पुनर्वसू ६ द्वे उत्तराफाल्गुन्यौ, द्वे विशाखे १०, इति, द्वे उत्तराषाढे १२, इति प्रोक्त मेवेति द्वादश। एतानि नक्षत्राणि द्व्यर्धक्षेत्राणि, ततः सप्तषष्टि खण्डीकृतस्याहोरात्रगम्यस्य क्षेत्रस्य द्व्यर्द्धत्वेन तत्सम्बन्धिनश्चन्द्रयोगयोग्याभागाः शतमेकमर्द्धं च (१००॥) प्रत्येकं भवन्ति, एतेषां (१००॥) त्रिंशता गुणने जातानि पञ्चदशाधिकानि त्रीणि सहस्राणि (३०१५) इति ॥सूत्र २॥

अथाष्टाविंशतिनक्षत्राणां प्रात सायमिति क्रमेण चन्द्रेण सह योगकरणं प्रदर्श्यते—'एएसिणं' इत्यादि।

मूलम्—एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ता णं किं सया पाओ चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ?। एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ता णं किं सया सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ?। एएसिणं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं किं सया दुहओ पविसिय २ चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ?। ता एएसि णं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं न किंपि तं जं सया पाओ चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, नो सया सायं चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, नो सया दुहओ पविसिय २ चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, णण्णत्थ दोहिं अभीइहिं। ता एएणं दो अभीई। पायंचियचोत्तालीसं २ अमावासं जोएंति, नो चेव णं पुण्ण मासिणिं ॥ सू० ३ ॥

छाया—एतेषां खलु षट् पञ्चाशतो नक्षत्राणां किं सदा प्रातः चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति?। एतेषां खलु षट् पञ्चाशतो नक्षत्राणां किं सदा सायं चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति?। एतेषां खलु षट् पञ्चाशतो नक्षत्राणां कि सदा द्विधातः प्रविश्य २ चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति?। तावत् एतेषां खलु षट् पञ्चाशतो नक्षत्राणां न किमपि तत् यत् सदा प्रातः चन्द्रेण सार्द्धं युनक्ति, नो सदा सायं चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति, नो सदा द्विधातः प्रविश्य २ चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति, नान्यत्र द्वाभ्याम भिजिद्भ्याम्। तावत् एतौ खलु द्वौ अभिजितौ प्रातरेव २ चतुश्चत्वारिंशां २ अमावास्यां युङ्क्तः नैव खलु पूर्णमासीम्। सूत्र ॥३॥

व्याख्या :—गौतमः पृच्छति 'एएसिणं' एतेषां खलु द्विद्वित्वेन स्थितानां 'छप्पण्णाए णक्खत्ताणं' षट् पञ्चाशतो नक्षत्राणां मध्ये 'किं' किंनामकं नक्षत्रं यत् 'सया' सदा निरन्तरं 'पाओ' प्रातः प्रभातसमये 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्द्ध योगं युनक्ति?। तथा 'एएसि णं' एतेषां खलु 'छप्पण्णाए णक्खत्ताणं' षट्पञ्चाशतो नक्षत्राणां मध्ये 'किं' किं नामकं नक्षत्रं यत् 'सया' सदा 'सायं' सायं सन्ध्याकाले 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति? तथा 'एएसिणं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं' एतेषां खलु षट्पञ्चाशतो नक्षत्राणां मध्ये 'किं' किं नामकं नक्षत्रं यत् 'सया' सदा 'दुहओ' द्विधातः प्रातः सायं

च 'पविसिय २' प्रविश्य २ चन्द्रमण्डले समाविश्य २ 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति ? । एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह—'ता एएसिणं' इत्यादि, 'ता' तावत् श्रूयताम्—'एएसिणं छप्पण्णाए णक्खत्ताणं' एतेषां खलु षट् पञ्चाशतो नक्षत्राणां मध्ये 'न किंपि तं' न किमपि तन्नक्षत्रं 'जं' यत् नक्षत्रं 'सया' सदा निरन्तरं प्रतिदिनमित्यर्थः 'पाओ' प्रातः प्रभातसमये सूर्योदयवेलायां 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति, तथा 'नो' न किमपि तन्नक्षत्रं यत् 'सया' सदा 'सायं' सायं सन्ध्याकाले सूर्यास्तसमये 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति । तथा 'नो' न किमपि तन्नक्षत्रं यत् 'सया' सदा 'दुहओ' द्विधानं प्रातः सायं वा 'पविसिय २' प्रविश्य २ चन्द्रमण्डले समाविश्य २ 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्धं योगं युनक्ति । किं सर्वथा न किमपि नक्षत्रं सदा प्रातरादिसमये चन्द्रेण सह योगं युनक्ति ? नैवम्, तत आह—'नन्नत्थ' नान्यत्र 'दोहिं अभिईहिं' द्वाभ्यामभिजिद्भ्याम्, द्वौ अभिजितौ मुक्त्वाऽन्यत् किमपि नक्षत्रं सदा प्रातरादि समये चन्द्रेण सह योग न युनक्तीति भाव । तत्रापि 'ता' तावत् 'एतेणं' एते खलु 'दो अभिई' द्वौ अभिजितौ अपि युगेयुगे 'पायंचिय २' प्रातरेव प्रातरेव 'चोत्तालीसं २' चतुश्चत्वारिंशां २ चतुश्चत्वारिंशतमां चतुश्चत्वारिंशत्तमां 'अमावासं' अमावास्यामेव चन्द्रेण सह योगं 'जोएंति' युक्तः कुरुतः, चतुश्चत्वारिंशत्तमाममावास्यामेव परिसमापयत इति भावः, किन्तु 'नो चेव णं' नैव खलु 'पुण्णमासिणि' पौर्णमासीम्, परिसमापयत इति ।

अथ कथमेतद् ज्ञायते यत् प्रति युगमभिजिन्नक्षत्रं सदैव प्रातः काले चतुश्चत्वारिंशत्तमां-चतुश्चत्वारिंशत्तमाममावास्यां चन्द्रेण सह योगं युङ्क्त्वा परिसमापयतीति ? तत्राह—पूर्वाचार्योपदर्शितकरणवशात ज्ञायते, तदेवाह—प्रथमं तिथ्यानयनार्थं करणगाथेयम्—

"तिहिरासिमेव बवट्ठिभाइया सेसमेगसट्ठिगुणणं च ।
बावट्टीए विभत्तं, सेसा अंसा तिहि समत्ती ॥१॥

छाया—तिथि राशिरेव द्वापष्टिभाजितः शेषमेकषष्टि गुणनं च ।
द्वाषष्ट्या विभक्तं, शेषा अंशा तिथि समाप्तिः ॥१॥ इति

अस्याः संक्षेपार्थ.—'तिहिरासिमेव' तिथिराशि रेवेति युगमध्ये ये चन्द्रमासा अतिक्रान्तास्ते तिथिराश्यानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, गुणिते यस्तिथिराशिर्जातः स एवेत्यर्थः 'बावट्ठिभाइया' द्वाषष्टिभाजित, तस्य तिथि राशेर्द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, हृते च भागे 'सेसं' यदवशिष्टं तस्य 'एगसट्ठिगुणणं' एकषष्टिगुणनम् एकषष्ट्या गुणकारः क्रियते गुणकारं कृत्वा 'बावट्टीएविभत्तं' द्वाषष्ट्या विभक्तं द्वाषष्ट्या भागो हरणीय, हृते च भागे ये 'सेसा अंसा' शेषा अंशा., ये अंशा उद्धरन्ति तत्परिमिता सा विवक्षिते दिने 'तिहिसमत्ती' तिथिसमाप्तिः विवक्षिततिथिसमाप्तिरवसेयेति करणगाथार्थः ॥१॥

ततश्चतुश्चत्वारिंशत्तमामावास्यायाश्चिन्तायां त्रिचत्वारिंशत् (४३) चन्द्रमासाः, एकं च चन्द्रमासस्य पर्वलभ्यते, ततस्त्रिचत्वारिंशत् त्रिशता गुण्यन्ते, जातानि नवत्यधिकानि द्वादशशतानि (१२९०), तत उपरितनमेकं पर्व, चन्द्रमासस्य पर्वद्वयं भवतीत्यैकपर्वगताः पञ्चदश प्रक्षिप्यन्ते, जातानि पञ्चाधिकानि त्रयोदशशतानि (१३०५), एषां द्वाषष्ट्या भागे हृते लब्धा एकविंशतिः (२१), सा त्यज्यते, शेषास्तिष्ठन्ति त्रयः ते एकषष्ट्या गुण्यन्ते जातं त्र्यशीत्यधिकमेकं शतम् (१८३), तस्य द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धौ द्वौ, तौ त्यक्तौ, शेषास्तिष्ठत्येकोनषष्टिः (५९), तदेव सागता—एकोनषष्टिर्द्वा षष्टिभाग प्रमिता तस्मिन् दिनेऽमावास्येति । अमावास्यासु पौर्णमासीषु च नक्षत्रानयनार्थं प्रागुक्तमेव करण गृह्यते । तत्र ध्रुवराशिः—षट्षष्टिर्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टिभागः (६६–$\frac{५}{६२}\Big|\frac{१}{६७}$) ।

तत्र चतुश्चत्वारिंशता गुण्यते, जातानि चतुरुत्तराणि एकोनत्रिंशच्छतानि (२९०४) मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टि भागाना विंशत्यधिके द्वे शते ($\frac{२२०}{६२}$) एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य चतुश्चत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः ($\frac{४४}{६७}$) तदेवं सर्वाङ्कितः–($\frac{मु.}{२९०४}$ — $\frac{२२०}{६२}\Big|\frac{४४}{६७}$)

तत्र पुनर्वसु प्रभृतिकमुत्तराषाढापर्यन्तं मुहूर्त्तानां द्विचत्वारिंशदधिकानि चत्वारिशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशद्द्वाषष्टिभागा· (४४२–$\frac{४६}{६२}$) इत्येवं प्रमाणं शोध्यते, जातानि मुहूर्त्तानां द्वाषष्ट्याधिकानि चतुर्विंशतिशतानि (२४६२), एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुः सप्तत्यधिकमेकं शत द्वाषष्टिभागानाम् ($\frac{१७४}{६२}$) । ततोऽभिजिदादि सकलनक्षत्रमण्डलशोधनकम्—एकोनविंशत्यधिकानि अष्टौ शतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिः भागाः (८१९–$\frac{२४}{६२}\Big|\frac{६६}{६७}$) इत्येवं प्रमाणं यावत्संभवं शोधनीयम् । तत्र त्रिगुणमपि शुद्धिमासादयतीति त्रिगुणं कृत्वा शोध्यते, स्थिता पश्चात् षड्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तत्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तचत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः— (६–$\frac{३७}{६२}\Big|\frac{४७}{६७}$) । तत आगतं यत् चतुश्चत्वारिंशत्तमाममावास्याममभिजिन्नक्षत्रं षट्सु मुहूर्त्तेषु, सप्तमस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तत्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्त चत्वारिंशति सप्तषष्टि भागेषु गतेषु सत्सु परिसमापयतीति ॥ सूत्र ३॥

साम्प्रतममावास्या–पौर्णमासी प्रसङ्गमाश्रित्य पौर्णमास्यऽमावास्यावक्तव्यतामाह- —'तत्थ-खलु इमाओ' इत्यादि ।

मूलम्—तत्थ खलु इमाओ वावट्ठिं पुण्णमासिणीओ, वावट्ठिअमावासाओ पण्णत्ताओ। ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं पुण्णमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोयं जोएइ ?। ता जंसि णं देसंसि चंदे चरिमं वावट्ठिं पुण्णमासिणिं जोएइ ताओ णं पुण्णमासिणिट्ठाणाओ मंडलं चउवीसेणं एएणं छेत्ता दुत्तीसं भागे उवाइणावित्ता एत्थ णं चंदे पढमं पुण्णमासिणिं जोएइ। ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं पुण्णमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोयं जोएइ ? ता जंसि णं देसंसि चंदे पढमं पुण्णमासिणिं जोएइ ताओ णं पुण्णमासिणिट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सए णं छेत्ता, दुत्तीसं भागे उवाइणावित्ता, एत्थ णं से चंदे दोच्चं पुण्णमसिणिं जोएइ। ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं पुण्णमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोयं जोएइ ?। ता जंसि णं देसंसि चंदे दोच्चं पुण्ण मासिणिं जोएइ ताओ णं पुण्णमासिणिट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता, दुत्तीसं भागे उवाइणावित्ता, एत्थ णं से चंदे तच्चं पुण्णमासिणिं जोएइ ! ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसमं पुण्णमासिणिं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ? ता जंसि देसंसि चंदे तच्चं पुण्णमासिणिं जोएइ ताओ णं पुण्णमासिणिट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता दोण्णि अट्ठासीए भागसए उवाइणावित्ता एत्थणं से चंदे दुवालसमं पुण्णमासिणिं जोएइ। एवं खलु एएणं उवाएणं ताओ ताओ पुण्णमासिणिट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता तीसं २ भागे उवाइणावित्ता तंसि तंसि देसंसि तं तं पुण्णमासिणिं चंदे जोएइ। ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं, चरमं वावट्ठि पुण्णमासिणि चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?, ता जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पाईण पडीणाययाए उदीणदाहिणाययाए जीवाए मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता दाहिणिल्लंसि चउब्भागमंडलंसि सत्तावीसं चउब्भागे उवाइणावित्ता अट्ठावीसइ भागं वीसहा छेत्ता अट्ठारसभागे उवाइणावित्ता तिहिं भागेहिं दोहि य कलाहिं पच्चत्थिमिल्लं चउब्भागमंडलं असंपत्ते एत्थ णं चंदे चरिमं वावट्ठि पुण्णमासिणिं जोएइ ॥सूत्र ४॥

छाया—तत्र खलु इमा द्वाषष्टिः पौर्णमास्यः, द्वाषष्टिरमावास्यः प्रज्ञप्ताः। तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां प्रथमां पौर्णमासीं चन्द्रः कस्मिन् देशे युनक्ति ? तावत्–यस्मिन् खलु देशे चन्द्रः चरमां द्वाषष्ठि पौर्णमासीं युनक्ति तस्मात् खलु पौर्णमासी स्थानात् मण्डलं चतुर्विशेन शतेन छित्वा द्वात्रिंशतं भागान् 'उवाइणित्ता' उपादाय अत्र खलु स चन्द्रः प्रथमां पौर्णमासीं युनक्ति तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां द्वितीयां पौर्णमासीं चन्द्रः कस्मिन् देशे युनक्ति ? तावत् यस्मिन् खलु देशे चन्द्रः प्रथमां पौर्णमासीं युनक्ति तस्मात् खलु पौर्णमासी स्थानात् मण्डलं चतुर्विशेन शतेन छित्वा द्वात्रिंशतं भागान् उपादाय, अत्र खलु स चन्द्रः द्वितीयां पौर्णमासीं युनक्ति। तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां

तृतीयां पौर्णमासीं चन्द्रः कस्मिन् देशे युनक्ति ? तावत् यस्मिन् देशे चन्द्रः द्वितीयां पौर्णमासीं युनक्ति तस्मात् खलु पौर्णमासी स्थानात् मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्वा द्वात्रिंशतं भागान् उपादाय, अत्र खलु तृतीयां पौर्णमासीं चन्द्रः युनक्ति। तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां द्वादशां पौर्णमासीं चन्द्रः कस्मिन् देशे युनक्ति ? तावत् यस्मिन् खलु देशे चन्द्रः तृतीयां पौर्णमासीं युनक्ति तस्मात् पौर्णमासी स्थानात् मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्त्वा द्वे अष्टाशीते भागशते उपादाय, अत्र खलु स चन्द्रः द्वादशां पौर्णमासीं युनक्ति। एवं खलु एतेन उपायेन तस्मात् तस्मात् पौर्णमासी स्थानात् मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्त्वा द्वात्रिंशतं२ भागान् उपादाय तस्मिन् तस्मिन् देशे तां तां पौर्णमासीं चन्द्रः युनक्ति। तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां चरमां द्वाषष्टिं पौर्णमासीं चन्द्रः कस्मिन् देशे युनक्ति ? तावत् जम्बूद्वीपस्य खलु द्वीपस्य प्राची प्रतीच्यायतया उदीची-दक्षिणायतया जीवया मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्त्वा दाक्षिणात्ये चतुर्भागमण्डले सप्तविंशतिचतुर्भागान् उपादाय अष्टाविंशतिभागं विंशतिधा छित्त्वा अष्टादश भागान् उपादाय त्रिभि भागै द्वाभ्यां च कलाभ्यां पाश्चात्यं चतुर्भागमण्डलम् असम्प्राप्तः, अत्र खलु चन्द्र चरमां द्वाषष्टिं पौर्णमासीं युनक्ति ॥ सूत्र ॥४॥

व्याख्या— भगवानाह—'तत्थ खलु' तत्र युगे खलु 'इमाओ' इमाः वक्ष्यमाणस्वरूपाः 'बावट्ठिं' द्वाषष्टि 'पुण्णमासिणीओ' पौर्णमास्यः तथा 'बावट्ठिं' द्वाषष्टिरेव 'अमावासाओ' अमावास्याः 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ताः। भगवता एव प्रोक्ते गौतमः प्रश्नयति 'ता एएसि णं पंचण्हं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां चन्द्रादीनां खलु 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये 'पढमं' प्रथमां 'पुण्णमासिणिं' पौर्णमासीं 'चंदे' चन्द्रः 'कंसि देसंसि' कस्मिन् देशे 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयतीति प्रश्नः। उत्तरमाह 'ता' तावत् 'जंसि णं देसंसि' यस्मिन् खलु देशे 'चंदे' चन्द्रः 'चरिमं चरमामन्तिमां पाश्चात्ययुगपर्यन्तवर्तिनी 'बासट्ठिं' द्वाषष्टिं द्वाषष्टितमां 'पुण्णमासिणीं' पौर्णमासीं 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति 'ताओ णं' तस्मात् खलु 'पुण्णमासिणिट्ठाणाओ, पौर्णमासी स्थानात् चरम द्वाषष्टितमपौर्णमासीं परिसमाप्तिस्थानात् परतः 'मंडलं' 'चउव्वीसेणं सएणं' चतुर्विंशेन शतेन चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन (१२४) 'छित्ता' छित्वा विभज्य 'बत्तीसं भागे' द्वात्रिंशतं भागान द्वात्रिंशत्संख्यकान् भागान् 'उवाइणावित्ता' उपादाय गृहीत्वा द्वात्रिंशद्भागग्रहणानन्तरं 'एत्थ णं' अत्र खलु द्वात्रिंशद्भागरूपे देशे 'से चंदे' स चन्द्रः 'पढमं पुण्णमासिणिं' प्रथमां पौर्णमासीं 'जोएइ' युनक्ति तां पौर्णमासीं परिसमापयतीति। पुनः प्रश्नयति—'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां खलु पूर्वोक्तानां 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणं-मध्ये 'दोच्चं 'पुण्णमासिणिं' द्वितीयां पौर्णमासीं 'चंदे' चन्द्रः 'कंसि देसंसि' कस्मिन् देशे 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति ? उत्तरमाह—जंसि णं देसंसि' यस्मिन् खलु देशे 'चंदे' चन्द्रः 'पढमं 'पुण्णामसिणिं' प्रथमां पौर्णमासीं 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति 'ताओ णं' तस्मात् खलु पुण्णमासिणिट्ठाणाओ' पौर्णमासीस्थानात् प्रथम पौर्णमासीपरिसमाप्तिस्थानात् परतः 'मंडलं'

मण्डलं **'चउव्वीसेणं सएणं'** चतुर्विंशेन शतेन चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन **'छित्ता'** छित्वा तद्गतान् **'दुत्तीसं भागे'** द्वात्रिंशतं भागान् द्वात्रिंशत्संख्यकान् भागान् **'उवाइणावित्ता'** उपादाय **'एत्थ'** अत्र द्वात्रिंशद्भागरूपे देशे **'से चंदे'** स चन्द्रः **'दोच्चं पुण्णमासिणिं'** द्वितीयां पुर्णमासीं **'जोएइ'** युनक्ति परिसमापयति। पुनः पृच्छति—**'ता'** तावत् **'एएसि णं'** एतेषां खलु पूर्वोदितानां **'पंचण्हं संवच्छराणं'** पञ्चनां सवत्सराणां **'तच्चं पुण्णामासिणि'** तृतीयां पौर्णमासीं **'चंदे'** चन्द्रः **'कंसि देसंसि'** कस्मिन् देशे **'जोएइ'** युनक्ति परिसमापयति ? । उत्तरयति—**ता** तावत् **'जंसि णं देसंसि'** यस्मिन् खलु देशे **'चंदे'** चन्द्रः **'दोच्चं पुण्णमासिणिं'** द्वितीयां पौर्णमासीं **'जोएइ'** युनक्ति परिसमापयति **'ताओ णं'** तस्मात् खलु **'पुण्णमासिणिट्ठाणाओ'** पौर्णमासीस्थानात् **'मंडलं'** मण्डलं **'चउव्वीसेणं सएणं'** चतुर्विंशेन शतेन **'छित्ता'** छित्वा **'बत्तीसं भागे'** द्वात्रिंशतं भागान् द्वात्रिंशत्संख्यकान् भागान् **'उवाइणावित्ता'** उपादय, **'एत्थ णं'** अत्र द्वात्रिंशद्भागरूपे देशे **'तच्चं पुण्णमासिणिं'** तृतीयां पौर्णमासीं **'जोएइ'** युनक्ति परिसमापयति। एवमेव चतुर्थी पौर्णमासीत आरभ्य एकादशतम पौर्णमासीपर्यन्तं सूत्राणि स्वयमूहनीयानि। अथ तृतीयामेव पौर्णमासीं लक्षी कृत्य द्वादशी पौर्णमासीविषयं सूत्रमाह—**'ता एएसिणं'** इत्यादि । **'ता'** तावत् **'एएणं'** एतेन प्रकारेण खलु **'पंचण्हं संवच्छराणं'** पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये **'दुवालसमं पुण्णमासिणिं'** द्वादशीं पौर्णमासीं **'चंदे'** चन्द्रः **'कंसि देसंसि'** कस्मिन् देशे **'जोएइ'** युनक्ति ? । उत्तरमाह—**ता** तावत् **'जंसि णं देसंसि'** यस्मिन् खलु देशे **'चंदे'** चन्द्रः **'तच्चं पुण्णमासिणिं'** तृतीयां पौणमासीं **'जोएइ'** युनक्ति **'ताओ णं'** तस्मात् खलु **'पुण्णमासिणिट्ठाणाओ'** पौर्णमासीस्थानात् तृतीय पौर्णमासीं परिसमाप्तिस्थानात् **'मंडलं'** मण्डलं **'चउव्वीसेणं सएण'** चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन **'छित्ता'** छित्वा विभज्य **'दोण्णि अट्ठासीए भागसए'** द्वे अष्टाशीते भागशते अष्टाशीत्यधिके द्वे भागशते (२८८), अत्र तृतीयस्या. परतः किल द्वादशी पौर्णमासी नवमी भवति, ततो द्वात्रिंशतो भागानां नवभिर्गुणने अष्टाशीत्याधिके द्वे शते भगानां (२८८) भवत इत्यैतावत्प्रमाणान् भागान् **'उवाइणावित्ता'** उपादाय-गृहीत्वा **'एत्थ णं'** अत्र खलु अष्टाशीत्यधिकशतद्वयभागरूपे देशे **'से चंदे'** स चन्द्रः **'दुवालसमं पुण्णमासिणिं'** द्वदशीं पौर्णमासीं **'जोएइ'** युनक्ति परिसमापयति। अथा ग्रेऽतिदेशेनाह—**'एवं खलु'** इत्यादि **'एवं'** एवम्—अनेन प्रकारेण खलु—निश्चितम् **'एएणं'** एतेन पूर्वप्रदर्शितेन **'उवाएणं'** उपायेन विधिना **'ताओ ताओ'** यां यां पौर्णमासीं यत्र यत्र देशे परिसमापयति तस्यास्तस्याः पौर्णमास्यास्ततोऽनन्तरां पौर्णमासीं तस्मात्तस्मात् **'पुण्णमासिणिट्ठाणाओ'** पौर्णमासीस्थानात् पाश्चात्य पौर्णमासी परिसमाप्तिस्थानात् **'मंडलं'** मण्डलं **'चउव्वीसेणं सएणं'** चतुर्विंशेन चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन **'छित्ता'** छित्वा परतस्तद्गतान् **'दुत्तीसं २ भागे'** द्वात्रिंशतं भागान् **'उवाइणावित्ता'** उपादाय **'तंसि तंसि देसंसि'** तस्मिन् तस्मित् देशे **'तं तं पुण्णमासिणिं'** तां ता पौर्णमासीं **'चंदे'** चन्द्रः **'जोएइ'** युनक्ति—परिसमा-

पयति । सचैवं परिसमापयन् तावद् वेदितव्यः यावद् भूयोऽपि चरमां द्वाषष्टिं पौर्णमासीं यस्मिन् देशे पाश्चात्ये युगं चरमां द्वाषष्टिं पौर्णमासीं परिसमापितवान् तस्मिन् देशे परिसमापयति कथ मेतदिति चेदत्र गणितक्रमं प्रदर्शयति–पाश्चात्ययुग चरमद्वाषष्टितमपौर्णमासीपरिसमाप्तिस्था. नात् परतो मण्डलस्य चतुर्विंशत्यधिकशतविभक्तस्य सम्बन्धिनां द्वात्रिंशतो भागाना मतिक्रमे तस्यास्तस्याः पौर्णमास्याः परिसमाप्तिर्भवति । युगे सर्वसंख्यया पौर्णमास्यो द्वाषष्टिर्भवन्ति, ततो द्वात्रिंशद् भागाद्वाषष्टया गुण्यन्ते जातानि चतुरशीत्यधिकानि एकोनविंशतिशतानि (१९८४) । एषां चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन (१२४) भागो ह्रियते, लब्धाः षोडश सकलमण्डलपरावर्त्ताः (१६) समस्तस्यापिच राशेर्निर्लेपी भवनादागताया यस्मिन् देशे पाश्चात्ययुगसम्बन्धि चरमद्वाषष्टितम पौर्णमासी परिसमाप्तिर्भवति सा । अथ चरमद्वाषष्टितम परिसमाप्तिदेशविषयकं सूत्रमाह–'ता एएसिणं' इत्यादि । 'ता' तावत् युगे 'एएसि णं' एतेषां खलु **'पंचण्हं संवच्छराणं'** पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये 'चरमं' चरमां युगपर्यन्तवर्त्तिनीं 'बावट्ठिं पुण्णमासिणिं' द्वाषष्टिं पौर्णमासीं 'चंदे' चन्द्रः 'कंसि देसंसि' कस्मिन् देशे 'जोएइ' युनक्ति-परिसमापयति ? इति गौतमेन पृष्टे भगवानाह–'ता जंबुद्दीवस्स णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स' जम्बूद्वीपस्य खलु द्वीपस्योपरि 'पाईणपडीणाययाए' प्राचीप्रतीच्यायतया, अत्र प्राची ग्रहणेन उत्तरपूर्वा गृह्यते प्रतीची ग्रहणेन दक्षिणापरा गृह्यते तेनायमर्थः–पूर्वोत्तरदक्षिणापरायतया, इति एवम् 'उदीणदाहिणाययाए' उदीची दक्षिणायतया, उदीची शब्देनापरोत्तरायतया, दक्षिण शब्देन पूर्वदक्षिणायतया च, अयं भावः–एका जीवा उत्तरतो निस्सृत्य पूर्वायां प्रविष्टा १, द्वितीया दक्षिणतो निस्सृत्य प्रतीच्यां प्रविष्टा २, तृतीया प्रतीचीतो निस्सृत्योत्तरस्यां प्रविष्टा ३, चतुर्थी पूर्वातो निस्सृत्य दक्षिणस्यां प्रविष्टा ४. इत्येवंरूपया 'जीवाए' जीवया प्रत्यञ्चा सदृशत्वा त्प्रत्यञ्चया दवरिकयेत्यर्थः 'मंडलं' मण्डलं' 'चउव्वीसेणं सएणं' चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन 'छित्ता' छित्वा विभज्य भूयश्चतुर्भिर्विभज्यते, ततः 'दाहिणिल्लंसि' दक्षिणात्ये 'चउब्भागमंडलंसि' चतुर्भागमण्डले एकत्रिंशद्भागप्रमाणे 'सत्तावीसं चउब्भागे' सप्तविंशतिं चतुर्भागान् 'उवाइणावित्ता' उपादाय 'अट्ठावीसइभागं' अष्टाविंशतितमं भागं 'वीसहा छेत्ता' विंशतिधा छित्वा तद्गतान् 'अट्ठारसभागे' अष्टादशभागान् 'उवाइणावित्ता' उपादाय शेषैः 'तिहिं भागेहिं त्रिभिर्भागैः, चतुर्थस्य भागस्य च दोहियकलाहिं' द्वाभ्यां च कलाभ्यां 'पच्चत्थिमिल्लं' पाश्चात्यं 'चउब्भागमंडलं' चतुर्भागमण्डलम् 'असंपत्ते' असम्प्राप्तः, 'एत्थ णं' अत्र खलु अस्मिन प्रदेशे 'चंदे' चन्द्रः 'चरिमं' चरमां सर्वान्तिमां 'बावट्ठिं' द्वाषष्टिं द्वाषष्टितमां 'पुण्णमासिणिं' पौर्णमासीं 'जोएइ युनक्ति–परिसमापयतीति । सूत्र ॥४॥

पूर्वं चन्द्रस्य पौर्णमासी परिसमाप्तिदेशः प्रोक्तः, साम्प्रतं सूर्यस्य पौर्णमासी परिसमाप्तिदेशं प्रतिपादयन् तद्विषयकं सूत्रमाह–'ता एएसिणं' इत्यादि ।

मूलम्—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं पुण्णमासिणिं सूरे कंसि देसंसि-जोएइ ? । ता जंसि णं देसंसि सूरिए चरिमं बावट्ठिं पुण्णमासिणिं जोइए ताओ पुण्णमासिणि ट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता चउणवइंभागे उवाइणावित्ता एत्थ णं से सूरिए पढमं पुण्णमासिणिं जोएइ । ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं पुण्णमासिणिं सूरिए कंसि देसंसि जोएइ ? । ता जंसि णं देसंसि सूरिए पढमं पुण्णमासिणिं जोएइ ताओ पुण्णमासिणिट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता चउणवइभागे उवाइणावित्ता एत्थ णं से सूरिए दोच्चं पुण्णमासिणिं जोएइ । ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं पुण्णमासिणिं सूरिए कंसि देसंसि जोएइ ? ता जंसि णं देसंसि सूरिए दोच्चं पुण्णमासिणिं जोएइ ताओ पुण्णमासिणिट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता चउणवइभागे उवाइणा वित्ता, एत्थ णं से सूरिए तच्चं पुण्णमासिणिं जोएइ । ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसं पुण्णमासिणिं सूरिए कंसि देसंसि जोएइ ? ता जंसि णं देसंसि सूरिए तच्चं पुण्णमसिणिं जोएइ ताओ पुण्णमासिणिट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता अट्ठछत्ताले भागसए उवाइणावित्ता, एत्थ णं से सूरिए दुवालसमं पुण्णमासिणिं जोएइ । एवं खलु एएण उवाएणं ताओ ताओ पुण्णमासिणिट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता चउणवइं चउणवइं भागे उवाइणावित्ता तंसि तंसि णं देसंसि तं तं पुण्णमासिणिं सूरिए जोएइ । ता एएसि णं पचण्हं संवच्छराणं चरिमं बावट्ठिं पुण्णमासिणिं सूरिए कंसि देसंसि जोएइ ? । ता जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स पाईणपडीणाययाए उदीणदाहिणाययाए जीवाए मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता पुरत्थिमिल्लंसि चउब्भागमंडलंसि सत्तावीसं भागे उवाइणावित्ता अट्ठावीसइभागं वीसहा छेत्ता अट्ठारसं भागं उवाइणावित्ता तिहिं भागेहिं दोहि य कलाहिं दाहिणिल्लं चउब्भागमंडलं असंपत्ते, एत्थ णं सूरिए छावट्ठिं पुण्णमासिणिं जोएइ । ॥सूत्र॥५॥

छाया—तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां प्रथमां पौर्णसीं सूर्यः कस्मिन् देशे युनक्ति ? तावत् यस्मिन् खलु देशे सूर्यः चरमां द्वाषष्ठिं पौर्णमासीं युनक्ति तस्मात् पौर्णमासीस्थानात् मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्वा चतुर्नवति भागान् उपादाय, अत्र खलु स सूर्यः प्रथमां पौर्णमासीं युनक्ति । तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां द्वितीयां पौर्णमासीं सूर्यः कस्मिन् देशे युनक्ति ? तावत् यस्मिन् खलु देशे सूर्यः प्रथमां पौर्णमासीं युनक्ति तस्मात् पौर्णमासो स्थानात् मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्वा चतुर्नवति भागान् उपादाय, अत्र खलु स सूर्यः द्वितोयां पौर्णमासीं युनक्ति । तावत् खलु पञ्चानां संवत्सराणां तृतीयां पौर्णमासीं सूर्यः कस्मिन् देशे युनक्ति ? तावत् यस्मिन् खलु देशे सूर्यः द्वितोयां पौर्णमासीं युनक्ति तस्मात् पौर्णमासी स्थानात् मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्वा चतुर्नवति भागान् उपादाय अत्र खलु स सूर्यः तृतीयां पौणमासीं युनक्ति । तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां द्वादशीं पौर्णमासीं सूर्यः कस्मिन् देशे युनक्ति ? तावत् यस्मिन् खलु देशे

तृतीयां पौर्णमासीं सूर्यः युनक्ति तस्मात् पौर्णमासीस्थानात् मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्त्वा अष्ट पञ्चत्वारिंशानि भागशतानि उपादाय, अत्र खलु स सूर्यः द्वादशीं पौर्णमासीं युनक्ति। एवं खलु एतेन उपायेन तस्मात् तस्मात् पौर्णमासीस्थानात् मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्त्वा चतुर्नवतिं चतुर्नवतिं भागान् उपादाय तस्मिन् तस्मिन् खलु देशे तां तां पौर्णमासीं सूर्यः युनक्ति। तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां चरमां द्वाषष्टिं पौर्णमासीं सूर्यः कस्मिन् देशे युनक्ति ? तावत् जम्बूद्वीपस्य खलु द्वीपस्य प्राची प्रतीच्यायतया, उदीची दक्षिणायतया जीवया मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्त्वा पौरस्त्ये चतुर्भागमण्डले सप्तविंशतिं भागान् उपादाय अष्टाविंशतिं भागं विंशतिधा छित्त्वा अष्टादशं भागं उपादाय त्रिभिर्भागैः द्वाभ्यां च कलाभ्यां दाक्षिणात्यं चतुर्भागमण्डलम् असम्प्राप्तः, अत्र खलु सूर्यः चरमां द्वाषष्टिं पौर्णमासीं युनक्ति। सूत्र ॥५॥

व्याख्या—'ता एएसि णं' इति तत्र युगे 'एएसि णं' एतेषां पूर्वोक्तानां 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चाना चन्द्रादिसंवत्सराणां मध्ये 'पढमं पुण्णमासिणिं' प्रथमां पौर्णमासीं 'सूरिए' सूर्यः 'कंसि देसंसि' कस्मिन् देशे स्थितः सन् 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति ? एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह— 'ता जंसि णं' इत्यादि। 'ता' तावत् 'जंसि णं देसंसि' यस्मिन् खलु देशे स्थितः सन् 'सूरिए' सूर्यः 'चरिमं' चरमां पाश्चात्ययुगपर्यन्तवर्त्तिनीं 'बावट्ठिं' द्वाषष्टिं द्वाषष्टितमां 'पुण्णमासिणिं' पौर्णमासीं 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति 'ताओ' तस्मात् 'पुण्णमासिट्ठाणाओ' पौर्णमासीस्थानात् चरमद्वाषष्टितम पौर्णमासीपरिसमाप्तिकारणभूतात् स्थानात् परतः 'मंडलं' मण्डलं 'चउव्वीसेणं सएणं' चतुर्विंशेन शतेन चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन (१२४) 'छित्ता' छित्त्वा विभज्य तद्गतान् 'चउनवइं भागे' चतुर्नवतिं भागान् 'उवाइणावित्ता' उपादाय 'एत्थ णं' अत्र खलु 'से सूरिए' स सूर्यः 'पढमं' प्रथमां 'पुण्णमासिणिं' पौर्णमासीं 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति। किमत्र कारणमितिचेदाह—इह परिपूर्णेषु त्रिंशदहोरात्रेषु परिसमाप्तेषु सत्सु स एव सूर्यस्तस्मिन्नेव देशे वर्तमानः प्राप्यते, नतु कतिपयभागन्यूनेषु। पौर्णमासीं च चन्द्रमासपर्यन्त परिसमाप्तिमुपयति, चन्द्रमासस्य च परिमाण मेकोनत्रिंशदहोरात्राः, एकस्य चाहोरात्रस्य द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः(२९-$\frac{३२}{६६}$ ततस्त्रिंशत्तमेऽहोरात्रे द्वात्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु गतेषु सत्सु सूर्यश्चरमद्वाषष्टितमात् पौर्णमासी परिसमाप्तिकरणभूतात् स्थानात् चतुर्नवतौ चतुर्विंशत्यधिकशतभागेषु समतिक्रान्तेषु सत्सु प्रथमां पौर्णमासीं परिसमापयन् प्राप्यते। यतोहि त्रिंशता भागैस्तमेव देशमसप्राप्तः सन्नवाप्यते इति, त्रिंशतो द्वाषष्टि भागानामहोरात्र सम्बन्धिनामद्यापि स्थितत्वादिति। पुनर्गौतमो द्वितीयपौर्णमासीविषये पृच्छति—'ता एएसिणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसिणं' एतेषां खलु 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चाना संवत्सराणां मध्ये 'दोच्चं' द्वितीयां 'पुण्णमासिणिं' पौर्णमासीं 'सूरिए' सूर्यः 'कंसि देसंसि' कस्मिन् देशे स्थितः सन् 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति ? भगवानाह—'ता' तावत् 'जंसि णं देसंसि' यस्मिन्

खलु देशे स्थितः सन् 'सूरिए सूर्यः 'पढमं' प्रथमां युगादौ प्रथमप्राप्तां 'पुण्णमासिणिं' पौर्णमासीं 'जोएइ' युनक्ति 'ताओ' तस्मात् 'पुण्णमासिणिट्ठाणाओ' पौर्णमासी स्थानात् युगादिप्रथम पौर्णमासी परिसमाप्तिनिबन्धस्थानात् परतःमण्डलं 'चउव्वीसेणंसएणं' चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन 'छित्ता' छित्वा विभज्य तग्दतान् 'चउणवइभागे' चतुर्नवति भागान् 'उवाइणावित्ता' उपादाय, 'एत्थ णं' अत्र खलु अस्मिन् देशे स्थितः सन् 'से सूरिए' स सूर्यः 'दोच्चं पुण्णमासिणिं' द्वितीयां पौर्णमासी 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति। अथ तृतीयपौर्णमासीविषये पृच्छति—'ता' तावत् 'एएसिणं पंचण्ह संवच्छराणं' एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये 'तच्चं पुण्णमासिणिं' तृतीयां पौर्णमासीं 'सूरिए' सूर्यः 'कंसि देसंसि जोएइ' कस्मिन् देशे स्थितः सन् युनक्ति तृतीयपौर्णमासीं समापयति ?। भगवानाह—'ता' तावत् 'जंसि णं देसंसी' यस्मिन् खलु देशे स्थितः सन् 'सूरिए' सूर्यः 'दोच्चं पुण्णमासिणिं' द्वितीयां पौर्णमासीं 'जोएइ' युनक्ति 'ताओ पुण्णमासिणिट्ठाणाओ' तस्मात पौर्णमासी स्थानात् परतःमण्डलं 'चउव्वीसेणं सएणं' चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन 'छित्ता' छित्वा विभज्य तग्दतान् 'चउणवइभागे' चतुर्नवति भागान 'उवाइणावित्ता' उपादाय, 'एत्थ णं, अत्र खलु देशे 'से सूरिए' स सूर्यः 'तच्चं पुण्णमासिणीं' तृतीयां पौर्णमासीं 'जोएइ' युनक्ति। एवमेव चतुर्थीं पौर्णमासीत आरभ्य एकादशी पौर्णमासी पर्यन्तं स्वयमूहनीयम्। अथ तृतीयामधीकृत्य द्वादशीं पौर्णमासीं पृच्छति—'ता एएसिणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसिणं' एतेषां खलु 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये 'दुवालसं पुण्णमासिणिं' द्वादशीं पौर्णमासीं 'सूरिए' सूर्यः 'कंसि देसंसि' कस्मिन देशे स्थितः सन् 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति ?। भगवानाह—'ता' तावत् 'जंसि णं देसंसि' यस्मिन् खलु देशे स्थितः सन 'सूरिए' सूर्यः 'तच्चं पुण्णमासिणिं' तृतीयां पौर्णमासीं 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति 'ताओ पुण्णमासिणिट्ठाणाओ' तस्मात् पौर्णमासीस्थानात परतः 'मंडलं' मण्डलं 'चउव्वीसेणं-सएणं' चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन 'छित्ता' छित्वा विभज्य 'अट्ठछत्ताले भागसए' अष्ट षट्चत्वारिंशानि भागशतानि षट्चत्वारिंशदधिकानि अष्टशतानि भागानां, तृतीयस्याः पौर्णमास्याः परतो द्वादशी पौर्णमासीनवमी भवति, ततश्चतुर्नवतिर्नवभिर्गुण्यते, जायन्ते अष्टौ शतानि षट्चत्वारिंशदधिकानि (८.४६) एतावतो भागान् 'उवाइणावित्ता' उपादाय, 'एत्थ णं' अत्रास्मिन् खलु देशे 'से सूरिए' स सूर्यः 'दुवालसमं' पुण्णमासिणिं' द्वादशीं पौणमासीं 'जोएइ' युनक्ति अथातिदेशमाह—'एवं खलु' इत्यादि। 'एवं' एवम् अनेनैव प्रकारेण खलु 'एसणं' एतेन पूर्वोक्तेन 'उवाएणं' उपायेन विधिना 'ताओ ताओ' तस्मात् तस्मात् विवक्षितात् 'पुण्णमासिणिट्ठाणाओ' पौर्णमासी स्थानात पाश्चात्यपाश्चात्यपौर्णमासीपरिसमाप्तिस्थानात् 'मंडलं' मण्डलं 'चउव्वीसेणं सएणं' चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन 'छित्ता' छित्वा परतस्तद्गतान् 'चउणवइं चउणवइं भागे' चतुर्नवतिं चतुर्नवतिं भागान् 'उवाइणावित्ता' उपादाय 'तंसि तंसि णं देसंसि' तस्मिन तस्मिन्

खलु देशे स्थितः सन् 'तं तं पुण्णमासिणिं' तां तां विवक्षितां पौर्णमासीं 'सूरिए' सूर्यः 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति । एवं तावद ज्ञातव्यं यावत् भूयोऽपि चरमां द्वाषष्टितमां पौर्णमासीं सूर्यः परिसमापयतीति । एतच्च गणितक्रमवशाद् ज्ञायते, तथाहि—पाश्चात्ययुगचरमद्वाषष्टितम पौर्णमासी परिसमाप्तिसम्बन्धिस्थानात् परतो मण्डलस्य चतुर्विंशत्यधिकशतविभक्तस्य सम्बन्धिनां चतुर्नवतिचतुर्नवति भागेषु समतिक्रान्तेषु तस्यास्तस्याः पौर्णमास्याः परिसमाप्तिर्भवतीति ततश्चतुर्नवति द्वाषष्ट्या गुण्यते जातानि अष्टाविंशत्यधिकानि अष्टपञ्चाशच्छतानि—(५८२८) एषां चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन भागे हृते लब्धाःसप्तचत्वारिंशत् सकलमण्डलपरावर्त्ताः (४७) किन्तु न च तैः प्रयोजनम् केवलं राशेर्निर्लेपी भवनादागतम्—यस्मिन् देशे स्थितः सन् सूर्यः पाश्चात्ययुगसम्बन्धि चरमद्वाषष्टितमपौर्णमासीपरिसमापकस्तस्मिन्नेव देशे विवक्षितस्यापि युगस्य चरमां द्वाषष्टितमां पौर्णमासीं परिसमापयतीति । अथ चरमद्वाषष्टितम पौर्णमासी परिसमाप्तिसम्बन्धि देशं पृच्छति—'ता एएसि णं' इत्यादि, 'ता' तावत 'एएसि णं' एतेषां खलु 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां सवत्सराणां मध्ये 'चरिमं' चरमां युगपर्यन्तवर्त्तिनीं 'बावट्ठिं' द्वाषष्टितमां 'पुण्णमासिणिं' पौर्णमासीं 'सूरिए' सूर्यः 'कंसि देसंसि' कस्मिन् देशे स्थितः सन् 'जोइए' युनक्ति परिसमापयति ? । एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह 'ता जंबुद्दीवस्स णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जंबुद्दीवस्स णं दीवस्स' जम्बूद्वीपस्य खलु द्वीपस्य 'पाइणपडीणायययाए' प्राची प्रतीच्यायतया, अत्रापि प्राचीग्रहणेन उत्तरपूर्वादिक् प्रतीचो ग्रहणेन च दक्षिणापरा गृह्यते, ततः—उत्तर पूर्वायतया दक्षिणापरायतया चेति । एवं 'उदीणदाहिणायययाए' उदीचीदक्षिणायतया, तत उदीचीग्रहणेन-अवरोत्तरा दक्षिणग्रहणेन पूर्वदक्षिणा गृह्यते, ततोऽयमर्थः अपरोत्तरायतया, पूर्वदक्षिणायतया च 'जीवाए' जीवया प्रत्यञ्चया दवरिकयेत्यर्थः 'मंडलं' मण्डलं 'चउव्वीसेणं सएणं' चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन 'छित्ता' छित्वा विभज्य पुनश्चतुर्भिर्भक्त्वा 'पुरत्थिमिल्लं' पौरस्त्ये पूर्वदिग्वर्त्तिनि 'चउब्भागमंडलंसि' चतुर्भागमण्डले एकत्रिंशद्भागप्रमाणे तद्गतान् 'सत्तावीसं भागे' सप्तविंशति भागान् 'अट्ठावीसइभागं' अष्टाविंशतितमं भागं 'वीसहा छित्ता' विंशतिधा छित्त्वा तद्गतान् 'अट्ठारसभागे' अष्टादशभागान् 'उवाइणावित्ता' उपादाय 'तिहिं भागेहिं' शेषै त्रिभिर्भागैः, चतुर्थस्य च भागस्य 'दोहियकलाहिं' द्वाभ्या च कलाभ्यां विंशतितमाभ्यां—दाहिणिल्लं' दाक्षिणात्यं दक्षिणदिग्वर्त्तिनं च 'चउब्भागमंडलं' चतुर्भागमण्डलं 'असंपत्ते' असम्प्राप्तः सन् 'एत्थणं' अत्र खलु देशे 'सूरिए' सूर्यः 'चरिमं' चरमां युगान्तिमां 'बावट्ठिं' द्वाषष्टितमां 'पुण्णमासिणिं' पौर्णमासीं 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयतीति ॥ सू० ५॥

अथ चन्द्रसूर्ययोरेवाऽमावास्यापरिसमाप्तिदेशं प्रतिपादयन् प्रथमं चन्द्रविषये सूत्रमाह—'ता एएसि णं' इत्यादि ।

मूलम्—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं अमावासं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?। ता जंसि णं देसंसि चंदे चरिमं बावट्ठिं अमावासं जोएइ तओ अमावासट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छित्ता बत्तीसे भागे उवाइणावित्ता एत्थ ण चंदे पढमं अमावासं जोएइ। एवं जेणेव अभिलावेणं चंदस्स पुण्णमासिणीओ भणियाओ तेणेव अभिलावेणं अमावासाओ भाणियव्वाओ तंजहा—विइया तइया दुवालसमी, एव खलु एएणं उवाएणं ताओ ताओ अमावासाठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छित्ता दुत्तीसं भागे उवाइणावित्ता तंसि तंसि देसंसि तं तं अमावासं चंदे जोएइ। ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरमं बावट्ठिं अमावासं चंदे चरिमं बावट्ठिं पुण्णमासिणिं जोएइ ताओ पुण्णमासिणिट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छित्ता सोलसभागे उक्कोवइत्ता एत्थ णं से चंदे चरिमं बावट्ठिं अमावासं जोएइ ॥ सूत्र ६ ॥

छाया— तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां प्रथमाम् अमावास्यां चन्द्रः कस्मिन् देशे युनक्ति ?। तावत् यस्मिन् खलु देशे चन्द्रः चरमां द्वाषष्ठिम् अमावास्यां युनक्ति तस्मात् अमावास्यास्थानात् मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्त्वा द्वात्रिंशतं भागान् उपादाय अत्र खलु स चन्द्रः प्रथमाम् अमावास्यां युनक्ति। एवं येनैव अभिलापेन चन्द्रस्य पौर्णमास्यो भणितास्तेनैव अभिलापेन अमावास्याः भणितव्याः तद्यथा—द्वितीया, तृतीया, द्वादशी। एवं खलु एतेन उपायेन तस्मात् तस्मात् अमावास्या स्थानात् मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्त्वा द्वात्रिंशतं द्वात्रिंशतं भागान् उपादाय तस्मिन् तस्मिन् देशे तां ताम् अमावास्यां चन्द्रः युनक्ति। तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सरानां चरमां द्वाषष्ठिम् अमावास्यां चन्द्रः कस्मिन् देशे युनक्ति ? तावत् यस्मिन् खलु देशे चन्द्रः चरमां द्वाषष्ठिं पौर्णमासीं युनक्ति तस्मात् पौर्णमासी स्थानात् मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्त्वा षोडश भागान् अवष्वष्क्य अत्र खलु स चन्द्रः चरमां द्वाषष्ठिम् अमावास्यां युनक्ति ॥ सूत्र ६ ॥

व्याख्या —'ता एएसिणं' इति, 'ता' तत्र युगे 'एएसिणं' एतेषा मनन्तरोदितानां 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये 'पढमं अमावासं' प्रथमाममावास्यां 'चंदे' चन्द्रः 'कंसि देसंसि' कस्मिन् देशेस्थितः सन 'जोएइ' युनक्ति ?। एवं गौतमेन प्रश्ने कृते भगवानाह 'ता' तावत् 'जंसि णं देसंसि' यास्मिन् खलु देशे स्थितः 'चंदे' चन्द्रः 'चरिमं' चरमां 'बावट्ठिं' द्वाषष्टितमां 'अमावासं' अमावास्या 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति 'ताओ अमावासाठाणाओ' तस्मात् अमावास्यास्थानात अमावास्यापरिसमाप्तिस्थानात परतः 'मंडलं' 'चउव्वीसेणं सएणं' चतुर्विंशेन शतेन 'छित्ता' छित्वा तद्गतान् 'बत्तीसं भागे' द्वात्रिंशतं भागान् 'उवाइणावित्ता' उपादाय 'एत्थ णं' अत्र खलु देशे 'से चंदे' स चन्द्रः 'पढमं अमावासं' प्रथमाममावास्यां 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति। अथाग्रेऽतिदेशेनाह—'एवं' इत्यादि 'एव' एवम्—अनेनानुपदमुक्तेन प्रकारेण 'जेणेव' येनैव यादृशेनैव 'अभिलावेणं' अभिलापेन अभिलापक्रमेण 'चंदस्स पुण्णमासिणीओ भणियाओ' चन्द्रस्य पौर्णमास्यो भणिताः 'तेणेव अभिलावेण' तेनैव

तादृशेनैव अभिलापेन 'अमावासाओ भाणियव्वाओ' अमावास्या भणितव्याः । प्रथमा तु सूत्र एव कथिता, द्वितीयाद्या आह-'तं जहा' तद्यथा ता यथा-'विइया, तइया, दुवालसमी' द्वितीया, तृतीया, द्वादशी तदालापप्रकारश्चेत्थम्—

"एएसिणं पंचण्हं दोच्चं अमावासं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ता जसिणं देसंसि चंदे पढमं अमावासं जोएइ ताओ णं अमावासट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छेत्ता दुत्तीसं भागे उवाइणावित्ता एत्थ णं से चंदे दोच्चं अमावासं जोएइ । ता एसएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं अमावासं चंदे कंसि देसंसि जोइए । ता जंसि णं देसंसि चंदे दोच्चं अमावासं जोइए ताओ अमावासट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं-छित्ता दुत्तीसं भागे उवाइणावित्ता एत्थ णं से चंदे तच्चं अमावासं जोएइ । ता एए-सिणं पंचण्हं संवच्छराणं चंदे कंसि देसंसि जोएइ । ता जंसिणं देसंसि चंदे तच्चं अमावासं जोएइ तओणं अमावासट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएण छित्ता दोन्नि अट्ठासीइए भागसए उवाइणावित्ता एत्थणं चंदे दुवालसमं अमावासं जोएइ । इति ।

छाया-तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां द्वितीयाममावास्यां चन्द्रः कस्मिन् देशे युनक्ति ? तावत् यस्मिन् खलु देशे चन्द्रः प्रथमाममावस्यां युनक्ति तस्मात् खलु अमावस्या स्थानात् मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्वा द्वात्रिंशतं भागान् उपादाय, अत्र खलु स चन्द्रः द्वितीयाममावास्यां युनक्ति तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां तृतीयाममावास्यां चन्द्रः कस्मिन् देशे युनक्ति ? । तावत् यस्मिन् खलु देशे चन्द्रःद्वितीयाममावास्यां युनक्ति तस्मात् अमावस्या स्थानात् मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्वा द्वात्रिंशतं भागान् उपादाय, अत्र खलु स चन्द्रः तृतीयाममावास्यां युनक्ति तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां द्वादशीममावास्यां चन्द्रः कस्मिन् देशे युनक्ति । तावत् यस्मिन् खलु देशे चन्द्रः तृतीयाममावास्यां युनक्ति तस्मात् खलु अमावास्या स्थानात् मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्वा द्वे अष्टशीते भागशते उपादाय अत्र खलु चन्द्रः द्वादशीममावास्यां युनक्ति" इति ।

व्याख्या सुगमा, नवरम् तृतीयस्या अमावास्याः परतो द्वादशी किलामावास्या नवमी भवतीति द्वात्रिशत् नवभिर्गुण्यते जायेते द्वेशते अष्टाशीत्यधिके (२८८) तत एवोक्तम् 'दोन्नि अट्ठासीए भागसए' द्वे अष्टाशीत्यधिके भागशते इति,शेषं स्पष्टम् । अथ शेषामावास्य विषयेऽति-देशमाह-'एवं खलु' इत्यादि, 'एवं' एवम्-अनेनैव प्रकारेण खलु 'एएणं' एतेन पूर्वोक्तेन 'उवाएणं' उपायेन विधिना 'ताओ ताओ अमावासट्ठाणाओ' तस्मात् तस्मात् अमावास्यास्थानात् 'मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छित्ता' मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्वा 'दुत्तीसं दुत्तीसं भागे'

द्वात्रिंशतं द्वात्रिंशतं भागान् 'उवइणावित्ता' उपादाय 'तंसि तंसि देसंसि' तस्मिन् तस्मिन् विवक्षिते देशे 'तं तं अमावासं' तांताममावास्यां 'चदे जोएइ' चन्द्रो युनक्ति—परिसमापयतीति। अथ चरमाममावास्या सूत्रामाह 'ता एएसि णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां चन्द्रादि संवत्सरत्वेन प्रसिद्धानां 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये 'चरमं' चरमां युगपर्यन्त वर्त्तिनीं 'बावट्ठिं' द्वाषष्टिं द्वाषष्टितमां 'अमावासं' अमावास्यां 'चंदे' चन्द्रः 'कंसि देसंसि' कस्मिन् देशे 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति? भगवानाह-'ता जंसि णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जंसि णं-देसंसि' यस्मिन् खलु-देशे स्थितः सन् 'चंदे' चन्द्र' 'चरिमं बावट्ठिं पुण्णमासिणिं' चरमां द्वाषष्टिं पौर्णमासीं 'जोएइ' युनक्ति 'ताओ पुण्णमासिणिट्ठाणाओ' तस्मात् पौर्णमासी स्थानात् पौर्णमासी परिसमाप्तिस्थानात् 'मंडलं' मण्डलं 'चउव्वीसेणं सएणं' चतुर्विंशेन शतेन 'छित्त्वा' विभज्य पूर्वं 'सोलसभागे' षोडशभागान् 'उक्कोवइत्ता' अवष्वष्कय पश्चात्कृत्वा परिपूर्ण द्वात्रिंशद्भागानां मध्यात् पूर्वार्धभागं षोडशभागात्मकमतिक्रम्येत्यर्थ' अत्रायं भाव'—चरम द्वाषष्टितमाममावास्याः चरमद्वाषष्टितम पौर्णमास्याः पक्षेण पश्चात्पक्षेण च विवक्षितप्रदेशात् चन्द्रः मासेन द्वात्रिंशता भागैः परतो वर्त्तमानः लभ्यतेऽतः षोडशभिश्चतुर्विंशत्यधिकशतभागैः परतश्चन्द्रः प्ररूप्यते, तत एव षोडशभागान् पूर्व मवष्वष्क्येत्युक्तम्, 'एत्थ णं' अत्र खलु प्रदेशे स्थित' सन् 'चंदे' चन्द्रः 'चरिमं' चरमां 'बावट्ठिं' द्वाषष्टितमां 'अमावासं' अमावास्यां 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयतीति ॥सूत्र ६॥

पूर्वं चन्द्रस्यामावास्या परिसमाप्तिदेशः, प्ररूपितः, अथाग्रे सूर्यस्यापरिसमाप्तिदेशं प्रतिपादयन्नाह—'ता एएसिणं' इत्यादि,

मूलम्—ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं अमावासं सूरिए कंसि देसंसि जोएइ ? । ता जंसि णं देसंसि सूरिए चरिमं बावट्ठिं अमावासं जोएइ ताओ अमावासाठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छित्ता चउणवइं भागे उवाइणावित्ता एत्थ णं से सूरिए पढमं अमावासं जोएइ। एवं जेणेव अभिलावेणं सूरियस्स पुण्णमासिणीओ भणिया तेणेव अभिलावेणं अमावासाओवि भाणियव्वाओ, तं जहा बिइया तइया, दुवालसमी। एवं खलु एएणं उवाएणं ताओ २ अमावासाठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छित्ता चउणवइं २ भागे उवाइणावित्ता तंसि तंसि देसंसि तं तं अमावासं सूरिए जोएइ। ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं चरिमं बावट्ठिं अमावासं सूरिए कंसि देसंसि जोएइ ? ता जंसि णं देसंसि सूरिए चरिमं बावट्ठिं पुण्णमासिणिं जोएइ ताओ पुण्णमासिणिट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छित्ता सत्तावीसं भागे उक्कोवइत्ता एत्थ णं से सूरिए चरिमं बावट्ठिं अमावासं जोएइ ॥सूत्र ७॥

छाया—तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां प्रथमाममावस्यां सूर्यः कस्मिन् देशे युनक्ति ?। तावत् यस्मिन् खलु देशे सूर्यः चरमां द्वाषष्टिं अमावस्यां युनक्ति तस्मात् अमावस्यास्थानात् मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्वा चतुर्नवतिभागान् उपादाय, अत्र खलु स सूर्यः प्रथमाममावास्यां युनक्ति । एवं येनैवाभिलापेन सूर्यस्य पौर्णमास्यो भणिताः तेनैवाभिलापेन अमावस्या अपि भणितव्याः, तद्यथा—द्वितीया तृतीया द्वादशी । एवं खलु एतेनोपायेन तस्मात् तस्मात् अमावास्यास्थानात् मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्वा चतुर्नवतिर भागान् उपादाय तस्मिन् तस्मिन् देशे तांताममावास्यां सूर्यः युनक्ति । तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां चरमां द्वाषष्टिममावास्यां सूर्यः कस्मिन् देशे युनक्ति ? तावत् यस्मिन् खलु देशे सूर्यः चरमां द्वाषष्टिं पौर्णमासीं युनक्ति तस्मात् पौर्णमासीस्थानात् मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्वा सप्तचत्वारिंशतं भागान् अवष्वष्क्य, अत्र खलु स सूर्यः चरमां द्वाषष्टिममावास्यां युनक्ति । सूत्र ॥ ७ ॥

व्याख्या—'ता एएसि णं' इति 'ता' तावत 'एएसि णं' एतेषां खलु 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये 'पढमं अमावासं प्रथमाममावास्यां 'सूरिए' सूर्यः 'कंसि देसंसि जोएइ' कस्मिन् देशे युनक्ति ?। भगवानाह—'ता' तावत् 'जंसि णं देसंसि' यस्मिन् खलु देशे 'सूरिए' सूर्यः 'चरिमं' चरमा पाश्चात्य युगपर्यन्तवर्त्तिनीं 'बावट्ठिं' द्वाषष्टिं द्वाषष्टितमां 'अमावासं' अमावास्यां 'जोएइ' युनक्ति 'ताओ' तस्मात् 'अमावासट्ठाणाओ' अमावास्यास्थानात् 'मंडलं' मण्डलं 'चउव्वीसेणं सएणं' चतुर्विंशेन शतेन 'छित्ता' छित्वा 'चउणवइं भागे' चतुर्नवति भागान् 'उवाइणावित्ता' उपादाय 'एत्थ णं' अत्र खलु 'से सूरिए' स सूर्यः 'पढमं अमावासं' प्रथमाममावास्यां 'जोएइ' युनक्ति । अथाग्रेऽतिदेशमाह—'एवं' इत्यादि 'एवं' एतम्—अनेनैव प्रकारेण 'जेणेव अभिलावेणं' येनैव यत्प्रकारकेणाभिलापेन पूर्वं 'सूरियस्स' सूर्यस्य 'पुण्णमासिणीओ भणियाओ' पौर्णमास्यो भणिताः कथिताः 'तेणेव अभिलावेणं' तेनैव तादृशेनैवाभिलापेन सूर्ययोगयुक्ताः 'अमावासाओवि' अमावास्या अपि 'भाणियव्वाओ' भणितव्या वाच्याः, 'तं जहा' तद्यथा 'विइया, तइया दुवालसमी' द्वितीया, तृतीया द्वादशी । तदालापकाश्चेत्थम्—

एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं अमावासं सूरिए कंसि देसंसि जोएइ ? ता जंसि णं देसंसि सूरिए पढमं अमावासं जोइए, ताओ अमावासट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छित्ता चउणवइं भागे उवाइणावित्ता एत्थ णं से सूरिए दोच्चं अमावासं जोएइ । ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं अमावासं सूरिए कंसि देसंसि जोएइ ? ता जंसि णं देसंसि दोच्चं अमावासं जोएइ ताओ अमावासट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छित्ता चउणवइं भागे उवाइणावित्ता एत्थ णं से सूरिए तच्चं अमावासं जोएइ । ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसमं अमावासं सूरिए कंसि देसंसि जोएइ । ता जंसि णं देसंसि

सूरिए तच्चं अमावासं जोएइ ताओ अमावासट्ठाणाओ मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छित्ता अट्ठचत्ताले भागसए उवाइणावित्ता एत्थ णं से सूरिए दुवालसमं अमावासं जोएइ"

छाया- एतेषां खलु पंचानां संवत्सराणां द्वितीयाममावास्यां सूर्यः कस्मिन् देशे युनक्ति ? तावत् यस्मिन् खलु देशे सूर्यः प्रथमाममावास्यां युनक्ति तस्मात् अमावस्यास्थानात् मंडलं चतुर्विंशेन शतेन छित्वा चतुर्नवतिं भागान् उपादाय अत्र खलु स सूर्यः द्वितीयाममावास्यां युनक्ति ? तावत् एतेषां खलु पञ्चाना संवत्सराणां तृतीयाममावस्यां सूर्यः कस्मिन् खलु देशे युनक्ति तावत् यस्मिन् खलु देशे द्वितीयाममावास्यां युनक्ति तस्मात् अमावास्यास्थानात् मण्डलं चतुर्विंशतेन शतेन छित्वा चतुर्नवतिं भागान् उपादाय अत्र खलु स सूर्यः तृतीयाममावस्यां युनक्ति । तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां द्वादशीममावास्यां सूर्यः कस्मिन् देशे युनक्ति ? तावत् यस्मिन् खलु देशे सूर्यः तृतीयाममावास्यां युनक्ति तस्मात् अमावास्यास्थानात् मण्डल चतुर्विंशेन शतेन छित्वा अष्ट षट्चत्वारिंशद्भागशतानि उपादाय अत्र खलु स सूर्यः द्वादशीममावास्यां युनक्ति, इति ।

व्याख्या—पूर्ववदेव नवरम्-द्वादशीअमावास्या खलु तृतीयस्या अमावास्यायाः परतो नवमी भवतीति चतुर्नवतिभागा नवभिर्गुण्यन्ते जातानि—षट्चत्वारिंशदधिकानि अष्टशतानि (८४६) भागानामित्यतः प्रोक्तम्—'अट्ठचत्ताले भागसए' इति । शेषं सुगमम् । अथ शेषा अमावास्या अतिदेशेनाह—'एवं खलु' इत्यादि, 'एवं' एवम्-अनेन प्रकारेण खलु—निश्चित 'एएणं' एतेन पूर्वोक्तेन 'उवाएणं' उपायेन विधिना 'ताओ ताओ अमावासाट्ठाणाओ' तस्मात् तस्मात् पूर्वं पूर्वं गतात् अमावास्यास्थानात् अमावास्यापरिसमाप्तिनिबन्धनात् देशात् 'मंडलं' मण्डलं 'चउव्वीसेणं सएणं' चतुर्विंशेन शतेन 'छित्ता' छित्वा 'चउणवइं २ भागे' चतुर्नवतिं चतुर्नवतिं भागान् 'उवाइणावित्ता' उपादाय 'तंसि तंसि देसंसि' तस्मिन् तस्मिन् देशे 'तं तं अमावासं' तांताममावास्यां 'सूरिए' सूर्य· 'जोएइ' युनक्ति अथ चरमां द्वाषष्टितमाममावास्यामाह 'ता एएसिणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं' एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये 'चरिमं' चरमा युगपर्यन्तवर्तिनीं 'बावट्ठिं अमावासं' द्वाषष्टिं द्वाषष्टितमाममावास्यां 'सूरिए' सूर्यः 'कंसि देसंसि जोएइ' कस्मिन् देशे युनक्ति ? भगवानाह—'ता' तावत् 'जंसि णं देसंसि' यस्मिन् खलु देशे 'सूरिए' सूर्यः 'चरिमं बावट्ठिं' चरमां द्वाषष्टिं 'पुण्णमासिणिं जोएइ' पौर्णमासीं युनक्ति 'ताओ पुण्णमासिणिट्ठाणाओ, तस्मात् पौर्णमासीस्थानात् 'मंडलं' मण्डलं 'चउव्वीसेणं सएणं' चतुर्विंशेन शतेन 'छित्ता' छित्वा—विभज्यार्वाक् 'सत्तालीसं भागे' सप्तचत्वारिंशतं भागान् 'उक्कोवइत्ता' अवष्वष्क्य पश्चादादाय 'एत्थ णं' अत्र खलु 'से सूरिए' स सूर्यः 'चरिमं' चरमां 'बावट्ठिं' द्वाषष्टिं द्वाषष्टितमां 'अमावासं' अमावास्यां 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति ॥ सूत्रम् ॥७॥

अथ कां पौर्णमासीं चन्द्रः सूर्यो वा केन नक्षत्रेण युक्तः सन् परिसमापयतीति प्रतिपादयन्नाह—'ता एएसिणं' इत्यादि ।

मूलम्—'ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं पुण्णमासिणिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता धणिट्ठाहिं, धणिट्ठाणं तिण्णि मुहुत्ता एगूणवीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता पण्णट्ठी चुण्णियाभागा सेसा, तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता पुव्वाफग्गुणीणं अट्ठावीसं मुहुत्ता अट्ठतीसं बावट्ठीभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता दुत्तीसं चुण्णिया भागा सेसा । ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं पुण्णमासिणिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता उत्तरापोट्ठवयाहिं, उत्तरापोट्ठवयाणं सत्तावीसं मुहुत्ता, चोद्दस य बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता चउसट्ठी चुण्णिया भागा सेसा तं समयं च णं सूरे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता उत्तराफग्गुणीहिं, उत्तराफग्गुणीणं सत्त मुहुत्ता तेत्तीसं च बावट्ठीभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता एक्कतीसं चुण्णिया भागा सेसा । ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं पुण्णमासिणिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?, ता अस्सीणीहिं, अस्सीणीणं एक्कवीसं मुहुत्ता णव य बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता तेवट्ठी चुण्णियाभागा सेसा, तं समयं च णं सूरिए केण णक्खत्तेण जोएइ ?, ता चित्ताए, चित्ताए एक्को मुहुत्तो, अट्ठावीसं च बावट्ठी भागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता तीसं चुण्णियाभागा सेसा । ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसमं पुण्णमासिणिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?, ता उत्तरासाढाहिं, उत्तरासाढाणं छव्वीसं मुहुत्ता छव्वीसं च बावट्ठीभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता चउप्पण्णं चुण्णिया भागा सेसा तं समयं च णं सूरिए के णं णक्खत्तेणं जोएइ ?, ता पुणव्वसुस्स सोलसमुहुत्ता, अट्ठय बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता वीसं चुण्णिया भागा सेसा । ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं चरमं बावट्ठिं पुण्णमासिणिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? उत्तरासाढाहिं उत्तरासाढाणं चरमसमए, तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?, ता पुस्सेणं, पुस्सस्स एगूणवीसं मुहुत्ता, तेतालीसं च बावट्ठीभागा मुहुत्तस्स बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता तेत्तीसं चुण्णियाभागा सेसा । सूत्र ॥८॥

छाया—तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां प्रथमां पौर्णमासीं चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् धनिष्ठाभिः, धनिष्ठानां च त्रयो मुहूर्त्ताः, एकोनविंशतिश्च द्वाषष्टिभागा मूहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभाग च सप्तषष्टिधा छित्त्वा पञ्चषष्टि श्चूर्णिका भागाः शेषाः। तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् पूर्वाफल्गुनीभ्यां पूर्वाफाल्गुन्योः अष्टाविंशति मुहूर्त्ताः , अष्टत्रिंशच्च द्वाषष्टि भागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा—

छित्त्वा द्वात्रिंशत् चूर्णिकाभागाः शेषाः । तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां द्वितीयां पौर्णमासीं चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति?, तावत् उत्तराप्रोष्ठपदाभ्याम् उत्तराप्रोष्ठपदयोः सप्तविंशति मुहूर्त्ताः, चतुर्दश च द्वाषष्टिभागाः मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा द्वाषष्टि श्चूर्णिका भागाः शेषाः, तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण युनक्ति तावत् उत्तराफाल्गुनीभ्यो, उत्तराफाल्गुन्योः सप्तमुहूर्त्ताः त्रयस्त्रिंशच्च द्वाषष्टि भागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा एकत्रिंशच्चूर्णिका भागाःशेषाः । तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां तृतीयां पौर्णमासीं चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् अश्विनीभि., अश्विनीनां च एकविंशतिर्मुहूर्त्ताः, नव च द्वाषष्टिभागा मुहूर्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा त्रिषष्टिश्चूर्णिका भागाः शेषाः, तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् चित्रायाः चित्रायाश्च एको मुहूर्तः, अष्टाविंशतिश्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा त्रिंशत् चूर्णिका भागाः शेषाः तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां द्वादशीं पौर्णमासीं चन्द्रःकेन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् उत्तरा षाढाभ्यां, उत्तराषाढयो षड् विंशति मुहूर्त्ताः षड्विंशतिश्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा चतुष्पञ्चाशत् चूर्णिकाभागाः शेषाः तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण युनक्ति ?, तावत् पुनर्वसुना, पुनर्वसोः षोडश मुहूर्त्ताः अष्ट च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा विंशतिश्चूर्णिका भागाः शेषाः तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां चरमां द्वषष्टिः पौर्णमासीं चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? उत्तराषाढयो चरमसमये, तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् पुष्येण, पुष्यस्य एकोनविंशति मुहूर्त्ता त्रिचत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा त्रयस्त्रिंशत् चूर्णिकाभागाः शेषाः ॥८॥

व्याख्या—'ता एएसिणं' इति, 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां खलु पूर्वोक्तानां 'पंचण्हं' पञ्चानां 'संवच्छराणं' चन्द्रादिसवत्सराणां मध्ये 'पढमं पुण्णमासिणिं' प्रथमां पौर्णमासीं युगस्यादि भाविनीं पौर्णमासीं 'चंदे' चन्द्रः उपलक्षणात्सूर्यो वा 'केण णक्खत्तेणं' केन किंनामकेन नक्षत्रेण-सह योगमुपागतः सन् 'जोएइ' युनक्ति—परिसमापयति ? भगवानाह—'ता धणिट्ठाहिं' इत्यादि, 'ता' इति तत्र युगे 'धणिट्ठाहिं' धनिष्ठाभिः तेषां पञ्चाना संवत्सराणां मध्ये प्रथम पौर्णमासीं चन्द्रः धनिष्ठाभिः परिसमापयति । धनिष्ठा नक्षत्रस्य पञ्चतारकत्वाद्बहुवचनम् तदेव विशदयति—'धनिट्ठाणं' धनिष्ठाना धनिष्ठा नक्षत्रस्येत्यर्थः 'तिण्णि मुहुत्ता' त्रयो मुहूर्त्ताः 'एगूणवीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स' एकोनविंशतिश्च द्वाषष्टि भागा मुहूर्त्तस्य, तथा 'बावट्ठिभागं च' एकं द्वाषष्टि भाग च 'सत्तट्ठिहा' सप्तषष्टिधा सप्तषष्टिभागैः 'छित्ता' छित्त्वा विभज्य, एकस्य द्वाषष्टि-भागस्य सप्तषष्टि विभागान् कृत्वेत्यर्थः तेभ्यः 'पणट्ठी' पञ्चषष्टिः 'चुण्णिया भागा' चूर्णिका भागाः (३ ($\frac{१९}{६२}$ । $\frac{६५}{६७}$) शेषा, भवेयुस्तदा चन्द्रः प्रथमां पौर्णमासीं समापयतीतिभावः । कथमेत-दित्याह—पौर्णमासी विषयक चन्द्रनक्षत्रयोगस्य परिज्ञानार्थं कारणं प्रागुक्तमेव, तत्र षट्षष्टि—मुहूर्त्ताः,

एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च द्वापष्टिभागाः, एकः सप्तपष्टि भागः (६६ – $\frac{५}{६२}$ । $\frac{१}{६७}$) एप ध्रुवराशि-ध्रियते, धृत्वा च प्रथमायां पौर्णमास्यां चन्द्रनक्षत्रयोगं ज्ञातुमिच्छतीति एकेन गुण्यते, एकेन गुणितो राशिः स एव स्थित तावानेव जातः, एतस्माद् राशेरभिजिन्नक्षत्रस्य नव मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वापष्टिभागा एकस्य च द्वापष्टि भागस्य पट्पष्टि सप्तपष्टिभागाः (९ – $\frac{२४}{६२}$ । $\frac{६६}{६७}$) इत्येतत्परिमितं शोधनकं शोध्यते, तत्र प्रथमं पट्पष्टि मुहूर्त्तेभ्यो (६६) नव मुहूर्त्ताः शोध्यन्ते स्थिताः शेषाः सप्तपञ्चाशत् (५७) एभ्य एकं मुहूर्त्तं गृहीत्वा तस्य द्वापष्टिभागाः क्रियन्ते, ते च द्वापष्टि भागा अपि पञ्चकरूपे द्वापष्टि भागराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जाताः सप्तपष्टि द्वापष्टि भागाः ($\frac{६७}{६२}$) तेभ्यश्चतुर्विंशतिः शोध्यते, स्थिताः पश्चात् त्रिचत्वारिंशत् (४३) तस्माद् एकं रूपं गृहीत्वा तस्य सप्तपष्टि भागा क्रियन्ते, ते च सप्तपष्टिभागा अपि एकक रूपे सप्तपष्टिभागे प्रक्षिप्यन्ते जाता अष्टपष्टिः सप्तपष्टिभागाः ($\frac{६८}{६७}$) तेभ्यः पट्पष्टिः शोध्यते, स्थितौ शेपौ द्वौ सप्तपष्टि भागौ (५६ । $\frac{४३}{६२}$ + $\frac{२}{६७}$), ततस्त्रिंशता मुहूर्त्तैः श्रवणः शोध्यते, स्थिताः पश्चात् षड्विंशति मुहूर्त्ताः शेपा अंकास्तथैवेति (२६ – $\frac{४३}{६२}$ । $\frac{२}{६७}$) धनिष्ठानक्षत्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् त्रिंशन्मुहूर्त्तेभ्यः पूर्वोक्तो राशिः शोध्यते तत आगतम् धनिष्ठानक्षत्रस्य त्रिपु मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनविंशतिसंख्यकेषु सप्तपष्टिभागेपु (३ – $\frac{१९}{६२}$ । $\frac{६५}{६७}$) शेपेपु प्रथमा पौर्णमासी परिसमाप्तिमेति ।१।

साम्प्रतं सूर्यनक्षत्रयोगमाह—**'त समयं चणं'** इत्यादि **'तं समयं च णं'** तस्मिन् समये खलु, अत्र सप्तम्यर्थे द्वितीया प्राकृतत्वात् यस्मिन् समये धनिष्ठानक्षत्रं यथोक्तशेषं चन्द्रेण युक्तं परिसमापयति तस्मिन्क्षणे **'सूरिए'** सूर्यः **'केणं णक्खत्तेणं'** केन नक्षत्रेण युक्तः सन् तां प्रथमां पौर्णमासीं **'जोएइ'** युनक्ति परिसमापयति ? एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह—**'ता 'पुव्वाफग्गुणीहिं'** **'ता'** तदा **'पुव्वाफग्गुणीहिं'** पूर्वाफाल्गुनीभ्याम् पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रस्य द्वितारकत्वाद्विवचनम्, प्राकृते च द्विवचनाभावाद बहुचनम्, तयोश्च **'पुव्वाफग्गुणीणं'** पूर्वाफाल्गुन्यो स्तदानीं **'अट्ठावीसं मुहुत्ता'** अष्टाविंशतिर्मुहूर्त्ताः, **'अट्ठतीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स'** अष्टात्रिंशच्च द्वाषष्टि भागा मुहूर्त्तस्य, तथा **'बावट्ठिभागं च'** एकंच द्वाषष्टिभागं **'सत्तट्ठिहा छित्ता'** सप्तषष्टिधा छित्वा, एकस्य द्वाषष्टि-

भागस्य सप्तषष्टिभागान् विधाय तेभ्य 'दुत्तीसं चुण्णियाभागा' द्वात्रिंशत् चूर्णिकाभागः २८- $\frac{३८}{६२}|\frac{३२}{६७}$ 'सेसा' शेषास्तिष्ठन्ति तदा सूर्यः प्रथमां पौर्णमासीं समापयतीतिभावः। तदेव दर्शयति—अत्रापि स एव पूर्वोक्तो ध्रुवराशिः—षट्षष्टिमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्च द्वाषष्टिभागाः, एकस्य सप्तषष्टिभागस्य एकः सप्तषष्टि भागः (६६-$\frac{५}{६२}|\frac{१}{६७}$) इत्येवं रूपो ध्रियते धृत्वा चास्याः पौर्णमास्याः प्रथमत्वाद् एकेन गुण्यते, जातं तदेव (६६-$\frac{५}{६२}|\frac{१}{६७}$) ततस्तस्मात् पुष्यशोधनकम् एकोनविंशतिमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशत् सप्तषष्टिभागाः, (१९-$\frac{४३}{६३}|\frac{३३}{६७}$) इत्येवं प्रमाणं शोध्यते अथास्य पुष्य-शोधनकस्य कथमुत्पत्तिः? अत्रोच्यते अत्र पूर्वं युगपरिमाप्तिसमये पुष्यस्य त्रयोविंशतिः सप्तषष्टिभागाः (२३) परिपूर्णाः परिसमाप्तिं गताः शेषाश्चतुश्चत्वारिंशद्भागाः (४४) अवतिष्ठन्ति, ततः शेषीभूताश्च-तुश्चत्वारिंशत् सप्तषष्ठिभागाः (४४) मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यते, जातानि विंशत्यधिकानि त्रयो-दशशतानि (१३२०) अस्य राशेसप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा एकोनविंशति मुहूर्त्ताः (१९), तिष्ठन्ति शेषाः सप्तचत्वारिंशत् (४७) एते च द्वाषष्टिभागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि चतुर्दशाधिकानि एकोनत्रिंशच्छतानि (२९१४)। एषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धास्त्रिचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः ($\frac{४३}{६२}$), स्थिताः शेषास्त्रयस्त्रिंशत् (३३), ते च सप्तषष्टिभागाः, तदेवमागतं पुष्प-शोधनकम्—एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशत् सप्तषष्टिभागाः (१९$\frac{४३}{६२}|\frac{३३}{६७}$) इति एष राशिर्ध्रुवराशेः (६६।५।१ शोध्यते। तत्र षट्षष्टे र्मुहूर्त्तेभ्य एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः शुद्धाः स्थिताः पश्चात्सप्तचत्वारिंशत् (४७) एभ्य एको मुहूर्त्तो गृह्यते तदा स्थिताः पश्चात् षट्चत्वारिंशत (४६) गृहीतस्यैकस्य मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टि भागाः कर्त्तव्याः, ते च पञ्चकरूपे द्वाषष्टिभागराशौ प्रक्षिप्यन्ते जाताः सप्तषष्टि-र्द्वाषष्टिभागा', तेभ्यस्त्रिचत्वारिंशत् शोध्यन्ते स्थिताः पश्चाच्चतुर्विंशतिः (२४), एभ्य एक रूप-मुपादीयते जाता त्रयोविंशतिः, गृहीतस्य एकस्य सप्तषष्टिभागाः क्रियन्ते, ते च एककरूपे सप्त-षष्टिभागे प्रक्षिप्यन्ते, जाता अष्टषष्टिः सप्तषष्टिभागा. ($\frac{६८}{६७}$) एभ्यस्त्रयस्त्रिंशत् शुद्धाः, स्थिताः पञ्च-

त्रिंशत् सप्तषष्टिभागाः, ($४६-\frac{२३}{६२}\big|\frac{३५}{६७}$) तत एभ्य. षट्चत्वारिंशन्मुहूर्त्तेभ्यः (४६) पञ्चदश-मुहूर्त्ता अश्लेषायाः, त्रिंशन्मुहूर्त्ताश्च मघाया इति मिलित्वा पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः (४५) शोध्यन्ते, स्थित पश्चादेको मुहूर्त. (१) शेपा अङ्कास्त एव, तथाहि–एको मुहूर्त्तः परिपूर्णः एकस्य मुहूर्त्तस्य च त्रयोविंशतिर्द्वाषष्टिभागा', एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चत्रिंशत् सप्तषष्टि भागाः ($१\frac{२३}{६२}\big|\frac{३५}{६७}$), इति पूर्वफाल्गुनी नक्षत्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् एप पूर्वोक्तो राशिस्त्रिंशन्मुहूर्त्तेभ्य' शोध्यते। तत आगतम् पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रस्याष्टाविंशतौ मुहूर्त्तेपु, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टात्रिंशति द्वाषष्टिभागेपु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वात्रिंशति सप्तषष्टिभागेपु (२८–३८–३२) शेपेपु सूर्यः प्रथमां पौर्णमासीं परिसमापयति। एते च सूर्यमुहूर्त्ताःसन्ति, एवम्भूतैश्च सूर्यमुहूर्त्तैस्त्रिंशत्संख्यकैः संमिलितैस्त्रयोदशरात्रिन्दिवानि, तदुपरि एकस्य च रात्रिन्दिवस्य द्वादश व्यावहारिका मुहूर्त्ता भवन्ति, तत एतदनुसारेण गतैकदिवसभागगणना भवति, शेषास्थितदिवसगणना च पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रस्य स्वयं कर्त्तव्या एवमग्रे उत्तरसूत्रेष्वपि सूर्यनक्षत्रयोगे भावना कर्त्तव्येति।

द्वितीयायाः पौर्णमास्याश्चन्द्रयोगं पृच्छति–'**ता एएसिणं**' इत्यादि, '**ता** तावत् '**एएसिणं**' एतेपां पूर्वोक्तानां '**पंचण्हं संवच्छराणं**' पञ्चानां सवत्सराणां मध्ये '**दोच्चं पुण्णमासिणिं**' द्वितीयां पौर्णमासीं '**चंदे**' चन्द्रः '**केणं णक्खत्तेणं**' केन नक्षत्रेण सह युक्तः सन् '**जोएइ**' युनक्ति ?। एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह–'**ता**' तावत् '**उत्तरापोट्ठवयाहिं**' उत्तराप्रोष्ठपदाभ्याम्, अत्रापि उत्तराप्रोष्ठपदानक्षत्रस्य द्वितारकत्वाद् द्विवचनम्, तयोश्च '**उत्तरापोट्ठवयाणं**' उत्तराप्रोष्ठपदयोः उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रस्य '**सत्तावीसं मुहुत्ता**' सप्तविंशतिर्मुहूर्त्ताः '**चोद्दस य बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स**' चतुर्दशच द्वाषष्टिभागा एकस्य मुहूर्त्तस्य, तथा '**बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता**' द्वाषष्टितमं भागं च सप्तषष्टिधा छित्वा एकस्य द्वाषष्टिभागस्य च सप्तषष्टिभागान् कृत्वा तत्सम्बन्धिनः '**चउसट्ठी चुण्णियाभागा**' चतुष्षष्ठिश्चूर्णिका भागा' शेषास्तिष्ठन्ति तदा द्वितीयां पौर्णमासीं चन्द्रः परिसमापयति। कथमित्यत्राह–स एव ध्रुवराशिः–६६।५।१। द्वितीय पौर्णमासीपृच्छायां द्वाभ्यां गुण्यते, जातं द्वात्रिंशदुत्तरं शतं (१३२) मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य दश द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वौ सप्तषष्टिभागौ ($१३२\frac{१०}{६२}\big|\frac{२}{६७}$)। ततः पूर्वक्रमेणाभिजिन्नक्षत्रस्य नवमुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वापष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सम्बन्धिनः षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः ($९-\frac{२४}{६२}\big|\frac{६६}{६७}$) शोध्यन्ते, स्थिता शेषा द्वाविंशत्यधिकशतसंख्यकाः (१२२) मुहूर्त्ताः,

एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयः सप्तषष्टि भागा. (१२२–$\frac{४७}{६२}|\frac{३}{६७}$) । ततोऽस्माद्राशेः त्रिंशन्मुहूर्त्ताः श्रवणस्य (३०), त्रिंशन्मुहूर्त्ता धनिष्ठायाः (३०), पञ्चदशमुहूर्त्ता शतभिषजः (१५) त्रिंशन्मुहूर्त्ता. (३०) पूर्वभाद्रपदायाश्चेति सर्वे पञ्चोत्तरशत (१०५) मुहूर्त्ता अनन्तरोदित द्वाविंशत्यधिकशत (१२२) मुहूर्त्तेभ्यः शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चात् सप्तदश मुहूर्त्ताः (१७) शेषा अङ्कास्त एवेति स्थिताः (१७–$\frac{४७}{६२}|\frac{३}{६७}$), तत उत्तराभाद्रपदानक्षत्रस्य पञ्च चत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् उत्तराभाद्रपदनक्षत्रस्य सप्तविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्दशसु, द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुष्षष्टौ सप्तषष्टिभागेषु (२७–$\frac{१४}{६२}|\frac{६४}{६७}$) शेषेषु द्वितीयां पौर्णमासीं चन्द्रः परिसमापयति ।

अथास्यामेव पौर्णमास्यां सूर्यनक्षत्रयोगमाह–'तं समयं च णं' इत्यादि. 'तं समयं च णं' तस्मिन् समये च खलु यस्मिन् समये चन्द्रो द्वितीयां पौर्णमासीं समापयति तस्मिन् समये 'सूरिए' सूर्यः 'केणं णक्खत्तेणं' केन नक्षत्रेण सह युक्तः सन् द्वितीयां पौर्णमासीं 'जोएइ' युनक्ति समापयति ? एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह–'ता उत्तराफग्गुणीहिं' इत्यादि 'ता' तावत् 'उत्तराफग्गुणीहिं' उत्तराफाल्गुनीभ्यां सह सूर्यो योगं युनक्ति, तत्र द्वितीय पौर्णमासीं परिसमापयति समये 'उत्तराफग्गुणीणं' उत्तरफाल्गुन्योः उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रस्य, अत्राप्यस्य द्वितारकत्वादद्विवचनम्, 'सत्त मुहुत्ता' सप्तमुहूर्त्ताः, तेत्तीसं च बावट्ठिभागमुहुत्तस्स' त्रयस्त्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, तथा 'बासट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता' द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा विभज्य तेषु 'एक्कतीसं चुण्णिया भागा' एकत्रिंशच्चूर्णिका भागाः शेषा यदा तिष्ठन्ति उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रस्य तदा सूर्य स्तामेव द्वितीयां पौर्णमासीं परिसमापयतीति भावः । कथमेतदित्याह–अत्रापि स एव पूर्वोक्तो ध्रुवराशिर्ध्रियते यथाङ्कतः (६६|५|१। धृत्वा चात्र द्वितीय पौर्णमासीविषयक प्रश्न इति ध्रुवराशिर्द्वाभ्यां गुण्यते जाता द्वात्रिंशदधिकशतमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य दशद्वाषष्टिभागा एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वौ सप्तषष्टिभागौ(१३२–$\frac{१०}{६२}|\frac{२}{६७}$ तत एतस्माद् राशे पुष्यशोधनकम् एकोनविंशति मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागा, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशत् सप्तषष्टिभागाः (१९–$\frac{४३}{६२}|\frac{३३}{६७}$) इत्येताव परिमाणं पूर्वरीत्या शोध्यते, स्थितं पश्चात् शतमेकं द्वादशोत्तरं (११२)

मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टाविंशति द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्त्रिंशत् सप्तषष्टिभागाः $(११२-\frac{२८}{६२}|\frac{३६}{६७})$ एतस्माद्राशेः पञ्चदश मुहूर्त्ता अश्लेषायाः त्रिंशन्मुहूर्त्ता मघायाः, त्रिंशन्मुहूर्त्ताश्च पूर्वाफाल्गुन्यः शोध्याः, इति सर्वे पञ्चसप्ततिर्मुहूर्त्ताः शोध्यन्ते ततः स्थिता. पश्चात् सप्तत्रिंशन्मुहूर्त्ताः, शेषा भागास्त एव, यथा $(३७-\frac{२८}{६२}|\frac{३६}{६७})$ तत उत्तर फल्गुनी नक्षत्रस्य पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् उत्तरफल्गुनीनक्षत्र सूर्येण युक्तं सत् स्वस्य सप्तसु मुहूर्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयस्त्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकत्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु $(७-\frac{३३}{६२}|\frac{३१}{६७})$ शेषेषु द्वितीयां पौर्णमासीं परिसमापयतीति ।२।

अथ—तृतीयपौर्णमासी विषयं चन्द्रनक्षत्रयोगसूत्रमाह—**'ता एएसि णं'** इत्यादि । गौतमः पृच्छति—**'ता'** तावत् **'एएसि णं'** एतेषां खलु **'पंचण्हं संवच्छराणं'** पञ्चानां सवत्सराणां मध्ये **'तच्चं पुण्णमासिणि'** तृतीयां पौर्णमासीं **'चंदे'** चन्द्रः **'केणं णक्खत्तेणं'** केन नक्षत्रेण **'जोएइ'** युनक्ति ? भगवानाह— **'ता अस्सिणीहिं'** इत्यादि **'ता'** तावत् । **'अस्सिणीहिं'** अश्विनीभिः अश्विनीनक्षत्रस्य त्रितारकत्वाद्बहुवचनम्, तृतीयपौर्णमासीपरिसमाप्तिसमये **'अस्सिनीणं'** अश्विनीनामिति अश्विनीनक्षत्रस्य **'एकवीसं मुहुत्ता'** एकविंशतिर्मुहूर्त्ताः, **'नवय बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स'** नव च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, **'बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता'** द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा विभज्य तत्सम्बन्धिनः **'तेवट्ठीचुण्णिया भागा'** त्रिषष्टि श्चूर्णिकाः भागाः $(२१-\frac{९}{६२}|\frac{६३}{६७})$ यदा **'सेसा'** शेषा अवशिष्टास्तिष्ठेयुस्तदा चन्द्रः तृतीयां पौर्णमासीं परिसमापयतीति भावः । तथाहि—अत्रापि स एव (६६।५।१।) ध्रुवराशिः अत्र तृतीय पौर्णमासी प्रष्टुरिष्टेति ध्रुवराशिस्त्रिभिर्गुण्यते, जातमष्टानवत्यधिकमेकं शतं मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चदश द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयः सप्तषष्टिभागाः $(१९८-\frac{१५}{६२}|\frac{३}{६७})$ ततः **'उगुणट्ठं पोट्ठवया'** इति करणगाथा वचनात् पूर्वोक्तराशे एकोनषष्ट्यधिकशतमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिश्च द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टि भागा $(१५९-\frac{२४}{६२}|\frac{६६}{६७})$ अभिजित आरभ्योत्तरभाद्रपदा पर्यन्तानां षण्णां नक्षत्राणां शोध्याः शोधिते च पश्चादवतिष्ठन्ते—अष्टत्रिंशन्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्विपञ्चाशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च

द्वाषष्टिभागस्य चत्वारः सप्तषष्टि भागाः (३८–५२/६२ | ४/६७)। अस्माद्राशेस्त्रिंशन्मुहूर्त्ता रेवतीनक्षत्रस्य शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चात् अष्टौ मुहूर्त्ताः, शेषं तदेव, तथा चाङ्कतः–(८ ५२/६२ | ४/६७) तत आगतम्-अश्विनीनक्षत्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात्तस्य–एकविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य नवसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु (२१+९+६३) शेषेषु चन्द्रस्तृतीयां पौर्णमासीं समापयतीति।

साम्प्रतमस्यामेव तृतीयस्यां पौर्णमास्यां सूर्यनक्षत्रयोगमाह–**'तं समयं च णं'** इत्यादि गौतमः पृच्छति–**'तं समयं च णं'** तस्मिन् समये च खलु यस्मिन् समये चन्द्रस्तृतीयां पौर्णमासीमश्विनीनक्षत्रस्य कतिपयभागशेषे समापयति तस्मिन् समये इत्यर्थः **'सूरिए'** सूर्यः **'केणं-णक्खत्तेणं'** केन नक्षत्रेण सह युक्तः सन् तृतीयां पौर्णमासीं **'जोएइ'** युनक्ति समापयति ?। गौतमेन एवं पृष्टे भगवानाह–**'ता चित्ताए'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **'चित्ताए'** चित्रया, चित्रानक्षत्रस्य एकतारकत्वादेकवचनम् चित्रानक्षत्रेण युक्तः सन् सूर्यस्तृतीयां पौर्णमासीं समापयतीति भावः। तदेव स्पष्टयति–**'चित्ताए'** इत्यादि, **'चित्ताए'** चित्रायाः चित्रानक्षत्रस्य **'एक्को मुहुत्तो'** एको मुहूर्त्तः **'अट्ठावीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स'** अष्टाविंशतिश्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, तथा **'बावट्ठिभागं च'** द्वाषष्टिभागं च **'सत्तट्ठिहा छित्ता'** सप्तषष्टिधा छित्वा विभज्य तत्सत्काः **'तीसं-चुण्णिया भागा'** त्रिंशच्चूर्णिका भागाः (१ २८/६२ | ३०/६७) **'सेसा'** शेषा अवशिष्टा यदा भवेयुस्तदा सूर्यस्तृतीया पौर्णमासीं परिसमापयतीति। कथमित्याह–स एव ध्रुवराशिः ६६।५।१। अत्र तृतीय पौर्णमासी चिन्त्यतेऽत एष ध्रुराशिस्त्रिभिर्गुण्यते, जाता अष्टनवत्यधिकशतमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चदश द्वाषष्टिभागाः, एकस्य द्वाषष्टिभागस्य त्रयः सप्तषष्टिभागाः (१९८–१५/६२ | ३/६७)। तत एतस्माद्राशे पुष्यशोधनकम्–एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः, एकस्य मुहूर्त्तस्य च त्रिचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशत् सप्तषष्टिभागाः (१९–४३/६२ | ३३/६७), एतत्परिमितं पूर्वप्रकारेण शोध्यते स्थितं पश्चान्मुहूर्त्तानामष्टसप्तत्यधिकं शतम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयस्त्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तत्रिंशत् सप्तषष्टिभागाः (१७८–३३/६२ | ३७/६७)। तत

एतस्माद्राशेः अश्लेषादि हस्त पर्यन्ताना पञ्चानां नक्षत्राणां पञ्चाशदधिकशत मुहूर्त्ताः (१५०) शोध्यन्ते, पञ्चाशदधिकशतमुहूर्त्तैरश्लेषादिपञ्चनक्षत्राणि शुद्धयन्तीति भावः, शोधिते च शेषास्तिष्ठन्ति अष्टाविंशतिर्मुहूर्त्ताः, शेषं तथैव. यथा (२८–$\frac{३२}{६२}$|$\frac{३७}{६७}$) ततश्चित्रानक्षत्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात्तस्यैकस्मिन् मुहूर्त्ते, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टाविंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु (१।२८।३०) शेषेषु सूर्यस्तृतीयां पौर्णमासीं परिसमापयतीति ।

अथ द्वादशी पौर्णमासी विषयं चन्द्रनक्षत्रयोगसूत्रमाह–'ता एएसिणं' इत्यादि, गौतमः पृच्छति–'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां खलु 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये 'दुवालसमं पुण्णमासिणिं' द्वादशीं पौर्णमासीं 'चंदे' चन्द्रः 'केणं नक्खत्तेणं' केन नक्षत्रेण 'जोएइ' युनक्ति-परिसमापयति ? भगवानाह–'ता उत्तरासाढाहिं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'उत्तरासाढाहिं' उत्तराषाढाभिः, उत्तराषाढानक्षत्रस्य चतुस्तारकत्वाद् बहुवचनम्. उत्तराषाढानक्षत्रेण सह योगं युञ्जन् चन्द्रो द्वादशीं पौर्णमासीं समापयतीति भावः । तदेव स्पष्टयति–'उत्तरासाढाणं' उत्तराषाढानाम–उत्तराषाढानक्षत्रस्य 'छव्वीसं मुहुत्ता' षड्विंशतिर्मुहूर्त्ताः, 'छव्वीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स' षड्विंशतिश्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, 'बावट्ठिभागं च' द्वाषष्टिभागं च 'सत्तट्ठिहा छित्ता' सप्तषष्टिधा छित्वा–विभज्य तत्सम्बन्धिन. 'चउप्पण्णचुण्णिया भागा,' चतुष्पञ्चाशच्चूर्णिका भागाः (२६–$\frac{२६}{६२}$|$\frac{५४}{६७}$) 'सेसा' शेषा यदा भवेयुस्तदा चन्द्रो द्वादशीं पौर्णमासीं परिसमापयतीति भावः । कथमवसीयते इत्याह–स एव ध्रुवराशिः ६६।५।१। द्वादशी पौर्णमास्या विचार्यमाणत्वादेव ध्रुवराशि र्द्वादशभिर्गुण्यते, जातानि द्विनवत्यधिकानि सप्तशतानि मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षष्टिर्द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य च द्वादशसप्तषष्टिभागाः (७९२–$\frac{६०}{६२}$|$\frac{१२}{६७}$) ततः 'मूले सत्तेव बायाला' मूले सप्तैव द्विचत्वारिंशाः द्विचत्वारिंशदधिकानि सप्तशतानि मूलपर्यन्तनक्षत्रमुहूर्त्तानाम्, इति करणगाथावचनात् सप्तभिर्द्विचत्वारिंशदधिकमुहूर्त्तशतैः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट् षष्ट्या सप्तषष्टिभागैः. (७४२–$\frac{२४}{६२}$|$\frac{६६}{६७}$) अभिजित आरभ्य मूलपर्यन्तानि नक्षत्राणि शोध्यानि, ततो द्वात्रिंशता मुहूर्त्तैः पूर्वाषाढा शोध्यते, तिष्ठन्ति शेषम् अष्टादश मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चत्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः (१८-$\frac{३५}{६२}$|$\frac{१३}{६७}$ ।

तत उत्तराषाढानक्षत्रस्य पञ्च चत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वा दुत्तराषाढानक्षत्रस्य षड्विंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षड्विंशतौ द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुष्पञ्चाशति सप्तषष्टिभागेषु (२६–$\frac{२६}{६२}$|$\frac{५४}{६७}$) शेषेषु चन्द्रो द्वादशीं पौर्णमासीं परिसमापयतीति । साम्प्रतमस्यामेव द्वादश्यां पौर्णमास्यां सूर्य नक्षत्रयोगमाह**'तं समयं च णं'** इत्यादि, गौतमः पृच्छति–**'तं समयं च णं'** तस्मिन् समये चन्द्रयोगसमये च खलु **'सूरिए'** सूर्यः **'केणं णक्खत्तेणं'** केन नक्षत्रेण सह योगं कुर्वन् द्वादशीं पौर्णमासीं **'जोएइ'** युनक्ति परिसमापयति ? भगवानाह–**'ता पुणव्वसुणा'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **'पुणव्वसुणा'** पुनर्वसुना सह योगं युञ्जन् सूर्यो द्वादशीं पौर्णमासीं परिसमापयति तदेव स्पष्टयति**'पुणव्वसुस्स'** इत्यादि, **'पुणव्वसुस्स'**पुनर्वसोः पुनर्वसुनक्षत्रस्य **'सोलसमुहुत्ता'** षोडशमुहूर्त्ताः, **'अट्ठ य बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स'** अष्ट च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, **'बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता'** द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा विभज्य **'वीसं चुण्णियाभागा'** सप्तषष्टिभाग सम्बन्धिनो विंशतिश्चूर्णिकाभागाः (१६–$\frac{८}{६२}$|$\frac{२०}{६७}$) यदा **'सेसा'** शेषा-शेषी भूतास्तिष्ठन्ति तदा सूर्यो द्वादशीं पौर्णमासीं परिसमापयतीति भावः तथाहि स एव ६६।५।१। ध्रुवराशिर्द्वादश पौर्णमासी चिन्तायां द्वादशभिर्गुण्यते जातानि द्विनवत्यधिकानि सप्तशतानि मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षष्टिर्द्वाषष्टि भागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वादशसप्तषष्टिभागाः (७९२–$\frac{६०}{६२}$ । $\frac{१२}{६७}$ । तत एतस्माद् राशेः पुष्यशोधनकम्–एकोनविंशति मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशत् सप्तषष्टिभागाः (१९$\frac{४३}{६२}$ । $\frac{३३}{६७}$ एतावत्परिमितं पूर्वोक्तप्रकारेण शोध्यते, स्थितानि पश्चात् त्रिसप्तत्यधिकानि सप्तशतानि, मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षोडश द्वाषष्टिभागाः, एकस्यच द्वाषष्टिभागस्य षट् चत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागा. (७७३– $\frac{१६}{६२}$ । $\frac{४६}{६७}$ । तत एतस्माद् राशेः–चतुश्चत्वारिंशदधिकसप्तशतमुहूर्त्तैः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैः (७४४– $\frac{२४}{६२}$– $\frac{६६}{६७}$) अश्लेषात आरभ्य आर्द्रापर्यन्तानि नक्षत्राणि शोध्यानि, पश्चादवतिष्ठन्ते अष्टाविंशतिर्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिपञ्चाशद् द्वाषष्टिभागा, एकस्य च द्वाषष्टिभाग-

स्य सप्तचत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः (२८-$\frac{५३}{६२}$ । $\frac{४७}{६७}$) ततः पुनर्वसुनक्षत्रस्य पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्तात्मकत्वात्पुनर्वसु नक्षत्रस्य षोडशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य विंशतौ सप्तषष्टिभागेषु (१६ $\frac{८}{६२}$|$\frac{२०}{६७}$) शेषेषु सूर्यो द्वादशीं पौर्णमासीं परिसमापयतीति ।

अथ युगस्य पर्यन्तवर्त्तिन्यां चरमायां द्वाषष्टितमायां पौर्णमास्यां चन्द्रनक्षत्रयोगमाह-'ता 'एएसि णं' इत्यादि, गौतमः पृच्छति 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां खलु 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणं मध्ये 'चरमं' 'चरमां' युगपर्यन्तवर्त्तिनी 'बावट्ठिं' द्वाषष्टिं-द्वाषष्टितमां 'पुण्णमासिणिं' पौर्णमासीं 'चंदे' चन्द्रः 'केणं णक्खत्तेणं' केन नक्षत्रेणायुक्तः सन् 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति ? भगवानाह-'उत्तरासाढाहिं' उत्तराषाढाभ्याम् अत्राप्यस्य द्वितारकत्वाद् द्विवचनम् उत्तराषाढानक्षत्रेण सह योगं युञ्जन् चन्द्रः चरमां द्वाषष्टितमां पौर्णमासीं समापयतीति भावः । तदेव स्पष्टयति 'उत्तरासाढाणं' उत्तराषाढयोः उत्तराषाढानक्षत्रस्य 'चरमसमए' चरम समये सर्वान्तिमवेलायां चन्द्रश्चरमां द्वाषष्टितमां द्वाषष्टितमां पौर्णमासीं परिसमापयतीति तदेव दर्शयति-स एव ध्रुवराशिः ६६ । ५ । १ । चरमद्वाषष्टितमपौर्णमास्या श्चिन्त्यमानत्वात् द्वाषष्ट्या गुण्यते, जाता द्विनवत्यधिकचत्वारिंशच्छतमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य दशोत्तरत्रिशतसंख्यका द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य द्वाषष्टिः सप्तषष्टिभागाः (४०९२-$\frac{३१०}{६२}$ । $\frac{६२}{६७}$)

तत एतस्माद् 'अट्ठसयउगुणवीसा, सोहणगं उत्तराणसाढाणं । चउवीसं खलु भागा छावट्ठी चुण्णियाओ य ॥१॥ अष्टशतानि एकोनविंशानि । एकोनविंशत्यधिकाष्टशतानि (८१९) शोधनकम् उत्तराणामाषाढानाम् चतुर्विंशतिः खलु भागाः, षट्षष्टि श्चूर्णिकाश्च ॥ इतिच्छाया । तत्र एकोनविंशत्यधिकाष्टशतमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वाषिष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट् षष्टिः सप्तषष्टिभागाः (१९-$\frac{२४}{६२}$ । $\frac{६६}{६७}$ । इत्येवं प्रमाणमेकं सकल नक्षत्रपर्यायशोधनकं पञ्चभि र्गुणयित्वा शोध्यते, पूर्वोक्तप्रकारेण शोध्यमानं च तत् परिपूर्णं शुद्धिमुपैतीति न किञ्चिदवशिष्यते तत आगतम्-उत्तराषाढानक्षत्रं परिपूर्णं चन्द्रेण सह योगं युञ्जन् चरमसमये चरमां द्वाषष्टितमां पौर्णमासीं परिसमापयतीति ।

साम्प्रतमस्यामेव चरमायां द्वाषष्टितमायां पौर्णमास्यां सूर्यनक्षत्रयोगमाह-'तं समयं च णं' इत्यादि, गौतमः पृच्छति-यस्मिन् समये चन्द्रश्चरमद्वाषष्टितमपौर्णमासीं परिसमापयति 'तं स

च णं' तस्मिन् समये च खलु **'सूरिए'** सूर्यः **'केणं णक्खत्तेणं'** केन नक्षत्रेण सह युक्तः सन् चरमद्वाषष्टितमां पौर्णमासीं परिसमापयति ? भगवानाह-**'ता पुस्सेणं'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **'पुस्सेण'** पुष्येण पुष्यनक्षत्रेण सह योगं युञ्जन् सूर्यश्चरमां द्वाषष्टितमां पौर्णमासीं परिसमापयतीति भावः। तदेव स्पष्टयति-**'पुस्सस्स'** पुष्यस्य पुष्यनक्षत्रस्य **'एगूणवीसं मुहुत्ता'** एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः, **'तेतालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स'** त्रिचत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, **'बावट्ठिभागं च'** द्वाषष्टिभागं च **'सत्तट्ठिहा छित्ता'** सप्तषष्टिधा छित्वा विभज्य **'तेत्तीसं-चुण्णिया भागा'** त्रयस्त्रिंशच्चूर्णिका भागाः (१९-$\frac{४३}{६२}$ । $\frac{३३}{६७}$)। **'सेसा'** शेषा अवशिष्टास्तिष्ठेयुस्तदा सूर्यश्चरमां द्वाषष्टितमां पौर्णमासीं परिसमापयतीति भावः। कथमेतदवसीयते ? इत्यत्राह-स एव ध्रुवराशिः ६६ । ५ । १ । द्वाषष्टि पौर्णमासी चिन्तायां द्वाषष्ट्या गुण्यते जातानि द्विनवत्यधिकानि चत्वारिंशच्छतानि मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य दशोत्तराणि त्रीणि शतानि द्वाषष्टि भागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाषष्टिः सप्तषष्टिभागाः (४०९२-$\frac{३१०}{६२}$ । $\frac{६२}{६७}$)। अत्र पुष्यस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वा दशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टादशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु १० । १८ । ३४ । अतिक्रान्तेषु पाश्चात्ययुगं परिसमाप्तिमेति, तदनन्तरमन्यद् युग प्रवर्त्तते। पुष्यस्यापि च तावन्मात्रादतिक्रान्तात् परतो यावद् भूयोऽपि तावन्मात्रस्य पुष्यस्यातिक्रमो भवेत्तावत्प्रमाण एकः परिपूर्णो नक्षत्रपर्यायो जायते, तस्य च प्रमाणम्-एकोनविंशत्यधिकानि अष्टौ शतानि मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः (८१९ $\frac{२४}{६२}$ । $\frac{६६}{६७}$)। एतच्च पञ्चभिर्गुणयित्वा प्रागुक्तात् ध्रुवराशेः (६६ । ५ । १ ।) द्वाषष्टिगुणितात् (४०९२ । ३१० । ६२) शोध्यते, तच्च परिपूर्णं शुद्ध्यति, पश्चाच्च राशि निर्लेपो जायते, ततः पुष्यस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात्तस्य सूर्येण युक्तस्य दशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टादशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु अतिक्रान्तेषु (१०-$\frac{१८}{६२}$ । $\frac{३४}{६७}$), तथा एकोनविंशतौ च मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशति सप्तषष्टि भागेषु (१९$\frac{४३}{६२}$ । $\frac{३३}{६७}$) शेषेषु चरमां द्वाषष्टितमां पौर्णमासीं परिसमाप्तिं प्राप्तवानिति। सूत्र ॥८॥

तदेवमुक्त; पौर्णमासींविषय श्चन्द्रनक्षत्रयोगः सूर्यनक्षत्रयोगश्च । साम्प्रत ममाऽवास्याविषयं चन्द्रनक्षत्रयोग सूर्यनक्षत्रयोगं च प्रतिपादयन् प्रथमं प्रथमाममावास्याविषयं सूत्रमाह–'एएसि णं' इत्यादि ।

मूलम्—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं अमावासं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोइए ? ता अस्सेसाहिं अस्सेसाणं एक्को मुहुत्तो चत्तालीसं च वावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, वावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छावट्ठी चुण्णियाभागा सेसा । तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोइए ? ता अस्सेसाहि चेव, अस्सेसाणं एक्को मुहुत्तो, चत्तालीसं च वावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, वाव ट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता छावट्ठी चुण्णियाभागा सेसा । ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं अमावासं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोइए ? ता उत्तराफग्गुणीहिं, उत्तराफग्गुणीणं चत्तालीसं मुहुत्ता, पणतीसं वावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, वावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता पण्णट्ठी चुण्णियाभागा सेसा । तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता उत्तराफग्गुणीहिं, चेव उत्तराफग्गुणीणं जहेव चंदस्स । ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं अमावासं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता हत्थेहिं, हत्थाणं चत्तारि मुहुत्ता तीसं च वावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, वावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता वावट्ठी चुण्णिया भागा सेसा । तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता हत्थेहिं चेव हत्थाणं जहा चंदस्स । ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं दुवालसमं अमावासं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? अद्दाए, अद्दाए चत्तारिमुहुत्ता, दसय वावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, वावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता चउपण्णं चुण्णिया भागा सेसा । तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता अद्दाए चेव, अद्दाए जहा चंदस्स । ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं चरमं वावट्ठिं अमावासं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता पुणव्वसुहिं, पुणव्वसूणं वावीसं मुहुत्ता छायालीसं च वावट्ठिभागा मुहुत्तस्स सेसा । तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता पुणव्वसुहिं चेव पुणव्वसूणं जहा चंदस्स सू० ९ ॥

छाया—तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां प्रथमाममावास्यां चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् अश्लेलाभिः, अश्लेषाणामेको मुहूर्त्तः चतुश्चत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा षट्षष्टि श्चूर्णिका भागाः शेषाः । तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रैण युनक्ति ? तावत् अश्लेषाभिरेव, अश्लेषाणां च एको मुहूर्त्तः, चतुश्चत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा षट्षष्टिश्चूर्णिका भागाः शेषाः। तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां द्वितीयाममावास्यां चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् उत्तराफाल्गुनीभ्याम्, उत्तराफाल्गुन्यो श्चतुश्चत्वा-

रिंशन्मुहूर्त्ताः, पञ्चत्रिंशद् द्वापष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वापष्टिभागं च सप्तपष्टिधा छित्वा पञ्च-पष्टिश्चूर्णिका भागाः शेषाः तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् उत्तरा-फल्गुनीभ्यामेव, उत्तराफाल्गुन्योः यथैव चन्द्रस्य । तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये तृतीयाममावास्यां चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ?, तावत् हस्तैः, हस्तानां चत्वारो मुहूर्त्ताः, त्रिंशच्च द्वापष्टि भागा मुहूर्त्तस्य द्वापष्टिभागं च सप्तपष्टिधा छित्वा द्वापष्टिश्चूर्णिका भागाः शेषाः । तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् हस्तैरेव, हस्तानां यथा चन्द्रस्य । तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्स-राणां द्वादशीममावास्यां चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? आर्द्रया, आर्द्रायाश्चत्वारो मुहूर्त्ताः, दश च द्वापष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वापष्टिभागं च सप्तपष्टिधा छित्वा चतुष्पञ्चाशत्-चूर्णिका भागाः शेषाः । तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् आर्द्रयैव आर्द्राया यथा चन्द्रस्य तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां चरमां द्वापष्टिममावास्यां चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् पुनर्वसुभिः पुनर्वसूनां द्वाविंशति मुहूर्त्ताः, पट्चत्वारिंशच्च द्वापष्टिभागा मुहूर्त्तस्य शेषाः । तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण युनक्ति ?, तावत् पुनर्वसुभिरेव, पुनर्वसूनां खलु यथा चन्द्रस्य । सूत्र ॥ ९ ॥

व्याख्या—'ता एएसि णं' इति, गौतमः पृच्छति—'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां खलु 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणां—मध्ये 'पढमं' प्रथमां युगस्यादिसमयवर्त्तिनीम् 'अमावासं' अमावास्यां 'चंदे' चन्द्रः 'केणं णक्खत्तेणं' केन नक्षत्रेण युक्तः 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति ? भगवानाह—'ता अस्सेसाहिं' तावत् अश्लेपाभिः सह युक्तश्चन्द्रः प्रथमाममावा-स्यां परिसमापयतीति भावः ! 'अस्सेसाहिं' इति—अश्लेपानक्षत्रस्य पट्तारकत्वात्तदपेक्षया बहु-वचनम् ! प्रथमाममावास्या परिसमाप्तिसमये 'अस्सेसाणं' अश्लेपानाम्—अश्लेपानक्षत्रस्य 'एक्को-मुहुत्तो' एको मुहूर्त्तः 'चत्तालीसं' च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स' चत्वारिंशच्च द्वापष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, 'बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता' द्वापष्टिभागं च सप्तपष्टिधा छित्वा विभज्य 'छावट्ठि' पट्पष्टिः 'चुण्णिया भागा' चूर्णिकाभागाः $(1-\frac{40}{62}\big|\frac{66}{67})$ 'सेसा' शेषा अवशिष्टा भवेयुस्तदा चन्द्रः प्रथमाममावास्यां परिसमापयतीतिभावः । तत्कथमित्याह सएव ध्रुवराशिः ६६ । ५ । १ अत्र प्रथमामावास्या चिन्त्यतेऽतो सौ एकेन गुण्यते, एकेन गुणितं तदेव ६६ । ५ । १ भवतीति, ततस्तस्मात्—'बावीसं च मुहुत्ता, छायालीसं बिसट्ठिभागा य एयं पुणव्वसुस्स य, सोहेयव्वं हवइ पुण्णं' ॥ १ ॥ छाया—"द्वाविंशति र्मुहूर्त्ता, पट्चत्वारिंशद् द्विपष्टिभागाश्च । एतत् पुनर्व-सोश्च शोधयित्वा भवति पूर्णम्" इति वचनाद् द्वाविंशति मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पट्च-त्वारिंशद् द्वापष्टि भागाः ($22-\frac{46}{62}$) इत्येतत्प्रमाणं पुनर्वसोः शोधनकं शोध्यते, तत्र पट्-

षष्टे मुहूर्त्तेभ्यो द्वाविंशति र्मुहूर्त्ताः शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चाच्चतुश्चत्वारिंशत् (४४) तेभ्य एकं मुहूर्त्तं गृहीत्वा तस्य द्वापष्टिभागाः क्रियन्ते, ते च द्वाषष्टिभागराशौ पञ्चकरूपे प्रक्षिप्यन्ते, जाताः सप्तषष्टिः (६७) एतेभ्य पट्चत्वारिंशत् शोध्यन्ते, तिष्ठन्ति शेषा एकविंशतिः, तृतीयो राशिः स एव एककरूपः (४३–२१–१), अत्र त्रिचत्वारिंशन्मुहूर्त्तेभ्यस्त्रिशन्मुहूर्त्ताः पुष्यस्य शोध्याः, स्थिता पश्चात् त्रयोदशमुहूर्ताः, अश्लेपानक्षत्रं चार्धक्षेत्रत्वात् पञ्चदशमुहूर्तात्मकम्, तत आगतम्–अश्लेपानक्षत्रस्य एकस्मिन् मुहूर्त्ते, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेपु, एकं च द्वापष्टिभागं सप्तपष्टिधा छित्वा तत्सम्बन्धिपु पट्षष्टिभागेपु शेपेपु चन्द्रः प्रथमाममावास्यां परिसमापयतीति। अथामावास्यया सह सूर्यनक्षत्रयोगमाह–'**तं समयं च णं**' इत्यादि, '**तं समयं च णं**' तस्मिन् समये च खलु यदा चन्द्रः प्रथमाममावास्यां परिसमापयति तदेत्यर्थः, '**सूरिए**' सूर्यः '**के णं णक्खत्तेणं**' केन नक्षत्रेण युक्तः सन् '**जोएइ**' युनक्ति–परिसमापयति ? भगवानाह—'**ता अस्सेसाहिं**' इत्यादि, '**ता**' तावत् '**अस्सेसाहिं चेव**' अश्लेषाभिरेव अश्लेषानक्षत्रणैव सह योगं कुर्वन् सूर्य : प्रथमाममावास्यां परिसमापयति। तदेव स्पष्टयति '**अस्सेसाणं**' अश्लेपानाम्–अश्लेपानक्षत्रस्य '**एक्को मुहुत्तो**' एको मुहूर्त्तः '**चत्तालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स**' चत्वारिंशच्च द्वापष्टिभागा मुहूर्त्तस्य' '**बावट्ठिभागं**' द्वापष्टिभागं '**सत्तट्ठिहा छित्ता**' सप्तपष्टिधा छित्वा–विभज्य '**छावट्ठी चुणियाभागा**' पट्षष्टिश्चूर्णिकाभागाः ($१-\frac{४०}{६२}|\frac{६६}{६७}$) '**सेसा**' शेपा अवशिष्टास्तिष्ठेयुस्तदा सूर्योऽपि प्रथमाममावास्यां परिसमापयति।

गौतमः पृच्छति––'**ता एससिणं**' इत्यादि, '**ता**' तावत् '**एएसिणं**' एतेपां '**पंचण्हं संवच्छराणं**' पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये '**दोच्चं अमावासं**' द्वितीयाममावास्यां '**चंदे**' चन्द्रः '**केणं णक्खत्तेणं जोएइ**' केन नक्षत्रेण सह योगं कुर्वन् युनक्ति परिसमापयति ? भगवानाह–'**ता उत्तराफग्गुणीहिं**' इत्यादि '**ता**' '**तावत् उत्तराफाग्गुणीहि**' उत्तराफाल्गुनीभ्याम् सूत्रे प्राकृतत्वाद् द्विवचनस्थाने वहुवचनम् उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रेण युक्तः सन् चन्द्रः द्वितीयाममावास्यां परिसमापयति। तदेव स्पष्टयति–**उत्तराफग्गुणीणं**' उत्तराफल्गुन्योः '**चत्तालीसं मुहुत्ता**' चत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः, '**पणतीसं बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स**' पञ्चत्रिशद्द्वापष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, '**बावट्ठिभागं च**' द्वापष्टिभागं च '**सत्तट्ठिहा छित्ता**' सप्तषष्टिधा छित्त्वा '**पणट्ठीचुणिया भागा**' पञ्चषष्टिश्चूर्णिकाभागाः ($४०-\frac{३५}{६२}|\frac{६५}{६७}$) '**सेसा**' शेषाः अवशिष्टा भवेयुस्तदा चन्द्रो द्वितीयामावास्यां परिसमापयतीति भावः तथाहि—स एव ध्रुवराशिः ६६ । ५ । १ । द्वितयाममावास्याश्चिन्त्यमानत्वाद् द्वाभ्यां गुण्यते, जातं द्विगुणम्–द्वात्रिंशदधिकं मुहूर्त्तशतम् एकस्य च मुहूर्त्तस्य दश द्वापष्टिभागाः,

एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिधा विभक्तस्य द्वौ चूर्णिकाभागौ (१३२-$\frac{१०}{६२}$|$\frac{२}{६७}$ अस्मात् प्रथम पुनर्वसु शोधनकं शोध्यते, तथाहि द्वत्रिंशदधिका मुहूर्त्तशतात् द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः शोध्यन्ते, स्थितं पश्चाद्दशोत्तरं शतधिकम्, अस्मात् एक रूपं गृहीत्वा तस्य द्वाषष्टिभागाः क्रियन्ते, ते च द्वाषष्टिभागाः दशकरूपे द्वाषष्टिभागराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जाता द्विसप्ततिर्द्वाषष्टिभागाः, तेभ्यः षट्चत्वरिंशत् शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चात षड्विंशतिः, नवोत्तरात मुहूर्त्तशतात् त्रिंशन्मुहूर्त्ताः पुष्यस्य शोध्यन्ते, स्थिता पश्चादेकोनाशीतिः, अस्मादपि राशेः पञ्चदशमुहूर्त्ता अश्लेषायाः शोध्यन्ते, स्थिता पश्चाच्चतुष्षष्टिः, ततोऽपि त्रिंशन्मुहूर्त्ताः मघाया शोध्यन्ते स्थिताश्चतुस्त्रिंशत् पुनरपि ततस्त्रिशन्मुहूर्त्ताः पूर्वाफाल्गुन्याः, शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चाच्चत्वारो मुहूर्त्ताः । ४ । २६ । २ तत उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रं द्व्यर्धक्षेत्रमिति पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकम्, तत इदमागतम्- उत्तराफल्गुनीनक्षत्रं चन्द्रयोगयुक्तं स्वस्य चत्वारिंशतिमुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चत्रिंशतिर्द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य सप्तषष्टिधा विभक्तस्य पञ्चषष्टौ चूर्णिकाभागेषु (४०-$\frac{३५}{६२}$|$\frac{६५}{६७}$ शेषेषु द्वितीयाममावास्यां परिसमापयतीति ।

साम्प्रतमस्यामेव द्वितीयस्याममावास्याया सूर्यनक्षत्रयोगमाह—गौतमः पृच्छति-'तं समयं च णं' इत्यादि, 'तं समयं च णं' तस्मिन् समये च खलु द्वितीयाममावास्यायां चन्द्रयोगसमये 'सूरिए' सूर्यस्तां द्वितीयाममावास्यां 'केणं णक्खत्तेणं' केन नक्षत्रेण सार्धं भूत्वा 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति ? । भगवानाह-'उत्तराफग्गुणीहिं चेव' उत्तराफाल्गुनीभ्यामेव सह योगं कुर्वन् सूर्यो द्वितीयाममावास्यां परिसमापयतीति-उत्तराफग्गुणीणं' उत्तराफल्गुन्योः 'जहेव चंदस्स' यथैव चन्द्रस्य यथा द्वितीयाममावास्यायामुत्तराफाल्गुनीनक्षत्रेण सह चन्द्रयोगविषये मुहूर्त्तादिकं प्रतिपादितं तथैवात्रापि द्वितीयाममावास्यायां सूर्ययोगविषयेऽपि वक्तव्यम् यथा उत्तराफाल्गुनीनक्षत्रस्य चत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चषष्टिश्चूर्णिकाभागा (४०।३५।६५) यदा शेषा भवेयुस्तदा द्वितीयाममावास्यां सूर्योऽपि परिसमापयति । अत्रामावास्याप्रकरणे चन्द्रयोगसदृशमेव सूर्ययोगविषयेऽपि सर्वं वक्तव्यम् करणस्य समानत्वात्, एवमग्रेऽपि ज्ञातव्यमिति ।२।

अथ तृतीयाममावास्याविषयकं सूत्रमाह—'ता एएसिणं' इत्यादि, गौतमः पृच्छति- 'ता' तावत् 'एएसिणं' एतेषां खलु 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये 'तच्चं अमावासं' तृतीयाममावास्यां 'चंदे' चन्द्रः 'केणं णक्खत्तेणं' केन नक्षत्रेण युक्तः सन् 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति ? भगवानाह-'ता हत्थेहिं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'हत्थेहिं' हस्तैः पञ्चतारकात्मकेन

हस्तनक्षत्रेण सह युक्तश्चन्द्रस्तृतीयाममावास्यां परिसमापयति । तदेव स्पष्टयति--'हत्थस्स' इत्यादि 'हत्थस्स' हस्तनक्षत्रस्य 'चत्तारि मुहुत्ता' चत्वारो मुहूर्त्ताः 'तीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स' त्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, तथा 'बावट्ठिभागं च' द्वाषष्टिभागं च 'सत्तट्ठिहा छित्ता' सप्तषष्टिधा सप्तषष्टिभागैः छित्वा विभज्य तत्सम्बन्धिनः 'बावट्ठीचुण्णियाभागा' द्वाषष्टिश्चूर्णिकाभागाः $(४-\frac{३०}{६२}\Big|\frac{६२}{६७})$यदा 'सेसा' शेषा अवशिष्टास्तिष्ठेयुस्तदा चन्द्र स्तृतीयाममावास्यां परिसमापयति । तथाहि--स एव ध्रुवराशिः ६६।५।१। तृतीयाममावास्याऽ चिन्त्यतेऽतस्त्रिभिर्गुण्यते तदा जातम्--अष्टानवत्यधिकं मुहूर्त्तशतम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चदशद्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयः सप्तषष्टिभागाः (१९८।१५।३), एतस्माच्च राशेः द्विसप्तत्यधिकेन मुहूर्त्तशतेन, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशता द्वाषष्टिभागैः (१७२ -४६) अश्लेषात आरभ्य उत्तराफाल्गुनी पर्यन्तानि चत्वारि नक्षत्राणि शोध्यन्ते, शोधिते च पश्चादवतिष्ठन्ते पञ्चविंशतिर्मुहूर्त्ताः, एकस्य मुहूर्त्तस्य एकत्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयः सप्तषष्टिभागाः (२५।३१।३) तत आगतम् हस्तनक्षत्रं चन्द्रेण सह योगं युञ्जन् सत् स्वस्य त्रिंशन्मुहूर्तात्मकत्वात् चतुर्षु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुःषष्टौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु (४।३०।६४) तृतीयाममावास्यां परिसमापयतीति ।

अथ सूर्येण सह नक्षत्र योगमाह--'तं समयं च णं' इत्यादि 'तं समयं च णं' तस्मिन् समये च खलु चन्द्रस्य तृतीयाममावास्या परिसमाप्तिवेलायां 'सूरिए' सूर्यः 'केणं णक्खत्तेणं' केन नक्षत्रेण युक्तो भूत्वा तृतीयाममावास्यां 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति ? भगवानाह-- 'ता हत्थेणं चेव' तावत् हस्तेनैव, सूर्योऽपि चन्द्रवत् हस्तनक्षत्रेणैव युक्तो भूत्वा तृतीयाममावास्यां परिसमापयति । तदेवाह--'हत्थस्स' हस्तस्य हस्तनक्षत्रस्य इत्यादि सर्वं 'जहा चंदस्स' यथा चन्द्रस्य कथितं तथैवात्राप्यवसेयमिति यत उभयोरपि चन्द्रसूर्ययोः करणस्यात्र समानार्थत्वमिति ।

अथ द्वादश्या अमावास्याया विषये चन्द्रसूर्यनक्षत्रयोगसूत्रमाह-'ता एएसिणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसिणं' एतेषां खलु 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये 'दुवालसं' द्वादशीम् 'अमावासं' अमावास्यां 'चंदे' चन्द्रः 'केणं णक्खत्तेणं' केन नक्षत्रेण युक्तः सन् 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति ? भगवानाह--'अद्दा' आर्द्रया आर्द्रानक्षत्रेण सह युक्तो भूत्वा चन्द्रो द्वादशीममवास्यां परिसमापयति । तदेव स्पष्टयति--'अद्दाए' आर्द्रायाः 'चत्तारि मुहुत्ता' चत्वारो मुहूर्त्ता, 'दस य बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स' दश च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य 'बावट्ठिभागं च' द्वाषष्टिभागं च 'सत्तट्ठिहा छित्ता' सप्तषष्टिधा छित्वा विभज्य तत्सम्बन्धिनः 'चउप्पण्णं चुण्णियाभागा' चतुष्पञ्चाशच्चूर्णिकाभागाः $(४-\frac{१०}{६२}\Big|\frac{५४}{६७})$यदा 'सेसा' शेषा अवशिष्टा भवेयुस्तदा चन्द्रो द्वादशीममावा-

स्यां परिसमापयतीति भावः तथाहि--अत्रापि स एव ध्रुवराशिः--६६।५।१। द्वादश्यमावास्यायाश्चिन्त्यमानत्वाद् द्वादशभिर्गुण्यते जातानि द्विनवत्यधिकानि मुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागा (७९२-$\frac{६०}{६२}$|$\frac{१२}{६७}$)एतस्माद् राशेः द्विचत्वारिंशदधिकानि चत्वारि मुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पट्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः (४४२-४६) अश्लेषात आरम्य उत्तराषाढापर्यन्तानां त्रयोदशानां नक्षत्राणां शोध्यन्ते, स्थितानि पश्चात् पञ्चाशदधिकानि त्रीणि मुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्दश द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वादश सप्तषष्टि भागाः (३५०|$\frac{१४}{६२}$|$\frac{१२}{६७}$) पुनरेतस्माद् राशेः नवोतराणित्रीणि मुहूर्त्तशतानि, एकस्य मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वाषष्टि भागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः (३०९|$\frac{२४}{६२}$|$\frac{६६}{६७}$|) अभिजितं आरभ्य रोहिणी पर्यन्तानामेकादशानां नक्षत्राणां शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चात् चत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकपञ्चाशद् द्वाषष्टि भागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयोदश सप्तषष्टि भागाः(४०$\frac{५१}{६२}$|$\frac{१३}{६७}$) एतस्मात्-मृगशीर्षस्य त्रिंशन्मुहूर्त्ताः शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चाद् दश मुहूर्त्ताः शेषास्त एवेति (१०$\frac{५१}{६२}$|$\frac{१३}{६७}$) तत आर्द्रानक्षत्रस्य पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकत्वात्तस्य चन्द्रेण सह युक्तस्य चतुर्षु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य दशसु द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुष्पञ्चाशति सप्तषष्टि भागेषु (४$\frac{१०}{६२}$|$\frac{५४}{६७}$) शेषेषु द्वदशी अमावास्या परिसमाप्तिमुपयातीति ।

अथ सूर्यनक्षत्रयोगमाह-'तं समयं च णं' इत्यादि,' तं समयं च णं' तस्मिन् समये च द्वादशामावास्या चन्द्रयोगसमये खलु **'सूरिए'** सूर्यः **'केणं णक्खत्तेणं'** केन नक्षत्रेण युक्तः सन् दादशीममावास्यां 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति ? भवगवानाह**'ता अद्दाए चेव'** इत्यादि, **'ता'** तावत् 'अद्दाए चेव' आर्द्रयैव सूर्योऽपि आर्द्रानक्षत्रेणैव युक्तो भूत्वा चन्द्रवत् द्वादशीममावास्यां परिसमापयति । तदेवाह-'अद्दाए' आर्द्रायाः, इत्यादि सर्वं मुहूर्त्तादि प्रमाणं **'जहा'** यथा येन प्रकारेण 'चंदस्स' चन्द्रस्य चन्द्रसूत्रे कथितं तथैवात्रापि विज्ञेय मिति ।

अथ चरमद्वाषष्टितमाममावास्याविषयं सूत्रमाह-**'ता एएसिणं'** इत्यादि, गौतमः पृच्छति 'ता' तावत् 'एएसिणं' एतेषां खलु **'पंचण्हं संवच्छाराणं'** पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये **'चरिमं'** चरमां युगपर्यन्तवर्तिनीं **'बावट्ठिं अमावासं'** द्वाषष्टि द्वाषष्टितमाममावास्यां 'चंदे' चन्द्रः **'केण णक्ख-**

त्रेणं' केन नक्षत्रेण युक्तो भूत्वा 'जोएइ' युनक्ति परिसमापयति ? भगवानाह—'ता पुणव्वसुहिं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'पुणव्वसुहिं' पुनर्वसुभिः पञ्चतारकत्वाद्बहुवचनम् पुनर्वसु नक्षत्रेण सह योगं कुर्वन् चन्द्रश्चरमां द्वाषष्टितमाममावास्यां परिसमापयति। तदेव स्पष्टयति—'पुणव्वसूणं' इत्यादि, 'पुणव्वसूणं' पुनर्वसूनां पुनर्वसुनक्षत्रस्य' बावीसं मुहुत्ता' द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः 'छायालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स' षट्चत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य $\left(२२-\frac{४६}{६२}\right|$ 'सेसा' शेषा अवशिष्टा-भवेयुस्तदा चन्द्रः पुनर्वसुनक्षत्रस्य पूर्वोक्त शेषभागयुक्तः सन् चरमां द्वाषष्टितमाममावास्यां परिसमापयति। तथा च स एव ध्रुवराशिः ६६।५।१। द्वाषष्टितमाऽमावास्याचिन्तायां द्वाषष्ट्या गुण्यते, जातानि द्विनवत्यधिकानि चत्वारिंशन्मुहूर्त्तानि, एकस्य मुहूर्त्तस्य दशोत्तराणि त्रीणि शतानि द्वाषष्टि भागानाम् एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य द्वाषष्टिः सप्तषष्टि भागाः $\left(४०९२\frac{३१०}{६२}\right|\frac{६२}{६७})$। तत एतस्मात् चतुर्भिः शतैर्द्विचत्वारिंशदधिकै र्मुहूर्त्तानाम् एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशताद्वाषष्टि भागैः $(४४२-\frac{४६}{६२})$ प्रथमं शोधनकं शोध्यते, स्थितानि पञ्चाशदधिकानि षट्त्रिंशन्मुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुष्षष्ट्यधिके द्वे शते द्वाषष्टि भागानाम्, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाषष्टिः सप्तषष्टिभागाः $\left(३६५०\left|\frac{२६४}{६२}\right|\frac{६२}{६७}\right|)$ ततोऽभिजित आरभ्योत्तराषाढापर्यन्त सकलनक्षत्रपर्यायविषयं शोधनकम् एकोनविंशत्यधिकानि अष्ट मुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः (८१९। २४। ६६।), इत्येवं प्रमाणं चतुर्भिर्गुणयित्वा शोध्यते, स्थितानि पश्चात् चतुः सप्तत्यधिकानि त्रीणि शतानि मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुष्षष्ट्यधिकमेकशतं द्वाषष्टिभागानाम्, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः (३७४। १६४। ६६) ततो भूयोऽपि नवोत्तरै स्त्रिभिर्मुहूर्त्तशतैः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्या द्वाषष्टिभागैः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्ट्या सप्तषष्टिभागैः, $(३०९।\frac{२४}{६२}|\frac{६६}{६७})$ अभिजित आरभ्य रोहिणी पर्यन्तान्येकादश नक्षत्राणि शोध्यानि, स्थिताः पश्चात् सप्तषष्टि मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षोडश द्वाषष्टि भागाः, (६७। १६), तत स्त्रिंशन्मुहूर्त्ता मृगशिरसः, पञ्चदश च आर्द्राया इति पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः

ज्ञोध्यन्ते, स्थिताः पश्चाद् द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य षोडश द्वाषष्टि भागाः (२२। १६)। तत आगतम्–पुनर्वसुनक्षत्रं पञ्च चत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकं, ततस्तस्मात् द्वाविंशति मुहूर्त्तेषु-तत्सम्बन्धिषु षोडशसु द्वाषष्टिभागेषु (२२। १६), व्यतिक्रान्तेषु, तथा द्वाविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य मुहूर्त्तस्य च षट्चत्वारिंशति द्वाषष्टि भागेषु (२२। ४६। शेषेषु पुनर्वसुनक्षत्रं चन्द्रेण युक्तं सत् चरमा द्वाषष्टितमाममावास्यां परिसमापयतीति ।

एतदेव सूर्यविषयं सूत्रमाह–**'तं समयं च णं'** इत्यादि, गौतमः पृच्छति **'तं समयं च णं'** तस्मिन् चन्द्रस्य द्वाषष्टितमाऽमावास्यापरिसमाप्तिसमये च खलु **'सूरिए'** सूर्यः **'केणं णक्खत्तेणं'** केन नक्षत्रेण सह युक्तो भूत्वा **'जोएइ'** युनक्ति परिसमापयति ? भगवानाह–**'ता पुणव्वसुहिं चेव'** तावत् पुनर्वसु नक्षत्रेणैव युक्तो भूत्वा सूर्यो द्वाषष्टितमां चरमाममावास्यां परिसमापयतीति भावः । कथमित्याह–**'पुणव्वसूणं'** पुनर्वसूनां पुनर्वसुनक्षत्रस्य खलु, इत्यादि मुहूर्त्तादिकं सर्व **'जहा चंदस्स'** यथा चन्द्रस्य शेषत्वेन प्रोक्तं तथैव वाच्य मिति । सूत्रम् ॥९॥

तदेवं चन्द्रसूर्ययोरमावास्या परिसमाप्तिविषयकं प्रकरणं प्रोक्तम्, साम्प्रतं यन्नक्षत्रं तादृशनामकं, तदेव वा, तस्मिन्नेव देशेऽन्यस्मिन् वा देशे यावत्परिमितकालमाश्रित्य पुनश्चन्द्रेण-सह योगं युनक्ति तावन्त कालं निर्दिशन्नाह–**'ता जे णं अज्जनक्खत्तेणं'** इत्यादि ।

मूलम्—ता जे णं अज्ज णक्खत्तेणं चंदे जोयं जोएइ, जंसि देसंसि से णं इमाणि अट्ठ एगूणवीसाइं मुहुत्तसयाइं, चउवीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता छावट्ठिं च चुण्णिया भागे उवाइणावित्ता पुणरवि से चंदे अण्णेणं सरिसएणं चेव णक्खत्तेणं जोयं जोएइ अण्णंसि देसंसि । ता जे णं अज्ज णक्खत्तेणं चंदे जोयं जोएइ जंसि देसंसि से ण इमाइं सोलसअट्ठतीसाइं मुहुत्तसयाइं अउणापण्णं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता पण्णट्ठिं चुण्णियाभागे उवाइणा-वित्ता पुणरवि से णं चंदे ते णं चेव णक्खत्तेणं जोएइ अण्णंसि देसंसि । ता जे णं अज्ज-णक्खत्तेणं चंदे जोयं जोएइ जंसि देसंसि से णं इमाइं चउप्पण्णमुहुत्तसहस्साइं णव य मुहुत्त सयाइं उवाइणावित्ता पुणरवि से चंदे अण्णेणं तारिसएणं चेव णक्खत्तेणं जोयं जोएइ तंसि देसंसि । ता जे णं अज्ज णक्खत्तेणं चंदे जोयं जोएइ जंसि देसंसि से णं इमाइं एगं मुहुत्तसयसहस्सं अट्ठाणउइं च मुहुत्तसयाइं उवाइणावित्ता पुणरवि से चंदे ते णं चेव णक्खत्तेणं जोयं जोएइ तंसि देसंसि । ता जे णं अज्ज णक्खत्तेणं सूरिए जोयं जोएइ जंसि देसंसि से णं इमाइं तिण्णि छावट्ठाइं राइंदियसयाइं उवाइणावित्ता पुणरवि से सूरिए अण्णेणं तारिसएणं चेव णक्खत्तेणं जोयं जोएइ तंसि देसंसि । ता जे णं अज्ज नक्खत्तेणं सूरिए जोयं जोएइ जंसि देसंसि से णं इमाइं सत्त दुव्वीसाइं राइं-

दियसयाइं उवाइणावित्ता पुणरवि से सूरिए तेणं चेव णक्खत्तेणं जोयं जोएइ तंसि देसंसि । ता जेणं अज्ज णक्खत्तेणं सूरिए जोयं जोएइ जंसि देसंसि से णं इमाइं अट्ठारसतीसाइं राइंदियसयाइं उवाइणावित्ता पुणरवि सूरिए अण्णेणं तारिसएणं चेव णक्खत्तेणं जोयं जोएइ तंसि देसंसि । ता जेणं अज्ज णक्खत्तेणं सूरिए जोयं जोएइ जंसि देसंसि से णं इमाइं छत्तीसं सट्ठाइं राइंदियसयाइं उवाइणावित्ता पुणरवि से सूरिए तेणं णक्खत्तेणं जोयं जोएइ तंसि देसंसि सू० ॥१०॥

छाया – तावत् येन अद्य नक्षत्रेण चन्द्रः योगं युनक्ति यस्मिन् देशे स खलु इमानि अष्ट एकोनविंशानि मुहूर्त्तशतानि, चतुर्विंशतिं च द्वाषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा षट्षष्टिं चूर्णिकाभागान् उपादाय पुनरपि स चन्द्रः अन्येन सदृशकेनैव नक्षत्रेण योगं युनक्ति अन्यस्मिन् देशे । तावत् येन अद्यनक्षत्रेण चन्द्रः योगं युनक्ति यस्मिन् देशे स खलु इमानि षोडश अष्टत्रिंशानि मुहूर्त्तशतानि एकोनपञ्चाशच्च द्वाषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा पञ्चषष्टिं चूर्णिकाभागान् उपादाय पुनरपि स खलु चन्द्रः तेनैव नक्षत्रेण योगं युनक्ति अन्यस्मिन् देशे । तावत् येन अद्यनक्षत्रेण चन्द्रः युनक्ति यस्मिन् देशे स खलु इमानि चतुष्पञ्चाशन्मुहूर्त्त-सहस्राणि नव च मुहूर्त्तशतानि उपादाय पुनरपि स चन्द्रः अन्येन तादृशेनैव नक्षत्रेण योगं युनक्ति तस्मिन् देशे । तावत् येन अद्यनक्षत्रेण चन्द्रः योगं युनक्ति तस्मिन् देशे स खलु इमानि एकं मुहूर्त्तशतसहस्रम् अष्टानवतिं च मुहूर्त्तशतानि उपादाय पुनरपि स चन्द्रः तेनैव नक्षत्रेण योगं युनक्ति तस्मिन् देशे तावत् येन अद्य नक्षत्रेण सूर्य योगं युनक्ति यस्मिन्देशे स खलु इमानि त्रीणि षट्षष्ठानि रात्रिन्दिवशतानि उपादाय पुनरपि स सूर्यः अन्येन तादृशेनैव नक्षत्रेण योगं युनक्ति तस्मिन् देशे । तावत् येन अद्यनक्षत्रेण सूर्यः योगं युनक्ति तस्मिन्देशे स खलु इमानि सप्तद्वाविंशानि रात्रिन्दिवशतानि उपादाय पुनरपि स सूर्यः तेनैव नक्षत्रेण योगं युनक्ति तस्मिन् देशे येन अद्यनक्षत्रेण सूर्यः योगं युनक्ति यस्मिन् देशे स खलु इमानि अष्टादश त्रिंशानि रात्रिन्दिवशतानि उपादय पुनरपि सूर्यः अन्येनैव नक्षत्रेण योगं युनक्ति तस्मिन् देशे । तावत् येन अद्य नक्षत्रेण सूर्यः योगं युनक्ति यस्मिन् देशे स खलु इमानि षट्त्रिंशत् षष्ठानि रात्रिन्दिवशतानि उपादाय पुनरपि स सूर्यः तेनैव नक्षत्रेण योगं युनक्ति तस्मिन् देशे ॥सू० १०॥

व्याख्या–'ता जे णं' इति, 'ता' तावत् 'जे णं अज्ज णक्खत्तेणं' येन नक्षत्रेण अद्य विवक्षिते दिने 'चंदे' चन्द्रः 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति करोति 'जंसि देसंसि' यस्मिन् देशे 'से णं' स खलु चन्द्रः 'इमाइं' इमानि वक्ष्यमाणसंख्यकानि कियत्संख्यकानीत्याह–अट्ठएगूण-वीसाइं मुहुत्तसयाइं' एकोनविंशत्यधिकानि अष्टौ मुहूर्त्तशतानि 'मुहुत्तस्स' एकस्य च मुहूर्त्तस्य 'चउवीसे बावट्ठिभागे' चतुर्विंशतिं द्वाषष्टिभागान् 'बावट्ठिभागं च' एकं द्वाषष्टिभागं च 'सत्तट्ठिहा छित्ता' सप्तषष्टिधा सप्तषष्टिविभागैः छित्वा–विभज्य तत्सम्बन्धिनः 'छावट्ठिं च चुण्णियाभागे' षट्षष्टिं च चूर्णिकाभागान् सप्तषष्टिभागान् 'उवाइणावित्ता' उपादाय–गृहीत्वा अतिक्रम्येत्यर्थः

'पुणरवि से चंदे' पुनरपि स चन्द्रः 'अण्णेणं सरिसएणं चेव णक्खत्तेणं' अन्येन अपरेण सदृश केनैव सदृशनामकेन नक्षत्रेण 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति-करोति, कुत्रेत्याह 'अण्णंसि देसंसि' अन्यस्मिन् देशे, न तु तत्रैवेति । अत्रेयं भावना-इह चन्द्र-सूर्य-नक्षत्राणां मध्ये नक्षत्राणि सर्वे शीघ्र-गतीनि, तेभ्यः सूर्या मन्दगतयः, तेभ्योऽपि चन्द्रामन्दगतयः, एतच्चाग्रे सूत्रकारः स्वयमेव वक्षति षट् पञ्चाशन्नक्षत्राणि प्रतिनियतापान्तरालदेशस्थितानि चक्रवालमण्डलतया व्यवस्थितानि सदाकाल-मेकरूपतया परिभ्रमन्ति तत्राष्टाविंशतिनक्षत्रेपु किल युगस्यादौ चन्द्रोऽभिजिन्नक्षत्रेण सह योगं प्राप्नोति स च चन्द्रोऽभिजिन्नक्षत्रयोगमुपागतः सन् शनैः शनैः पश्चादवष्वष्कते अपसरति तस्य नक्षत्रे-भ्योऽतीवमन्दगतित्वात, ततो नवानां मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वापष्टि भागा-नाम् एकस्य च द्वापष्टिभागस्य पट्षष्टिसप्तपष्टिभागानाम् ($९-\frac{२४}{६२}|\frac{६६}{६७}$) अतिक्रमे पुरतः श्रवणेन सह योगमुपगच्छति ततस्ततोऽपि शनैः शनैः पश्चादवष्वष्कमान त्रिंशता मुहूर्त्तैः श्रवणेन सह योगं समाप्य पुरतो धनिष्ठया सह योगं करोति । एवं नक्षत्राणां स्वं स्वं मुहूर्त्तस्थितिकालमाचक्ष्य सर्वैरपि नक्षत्रैः सह योगकारणं वक्तव्यं यावत्-उत्तरापाढानक्षत्रेण सह योगं करोति । एतावता च कालेनाष्टौ शतानि एकोनविंशत्यधिकानि मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वापष्टिभागपट्षष्टिः सप्तपष्टिभागाः ($८१९-\frac{२४}{६२}|\frac{६६}{६७}$) भवन्ति, तथाहि—

तत्राष्टाविंशतिनक्षत्रेपु उत्तरा भाद्रपदा १, रोहिणि २, पुनर्वसुः ३, उत्तराफाल्गुनी ४, विशाखा ५, उत्तरापाढा ६ चेति पड् नक्षत्राणि पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकानीत्येते षट्, पञ्च-चत्वारिंशता गुण्यन्ते जाते सप्तत्यधिके द्वे शते (२७०), मुहूर्त्तानाम्, तथा शतभिषक् १, भरणी २, आर्द्रा ३, अश्लेषा ४, स्वातिः ५, ज्येष्ठा ६ चेति षड् नक्षत्राणि पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकानीति षट्, पञ्चदशभिर्गुण्यन्ते जाता नवतिमुहूर्त्तानाम (९०) । तथा-श्रवणः १, धनिष्ठा २, पूर्वभाद्रपदा ३, रेवती ४, अश्विनी ५, कृत्तिका ६, मृगशिरः ७, पुष्यः ८, मघा ९, पूर्वाफाल्गुनी १०, हस्तः ११, चित्रा १२, अनुराधा १३, मूलम् १४, पूर्वापाढा १५, चेति पञ्चदशनक्षत्राणि त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकानीति पञ्चदश, त्रिंशता गुण्यन्ते जातानि पञ्चाशदधिकानि चत्वारि शतानि (४५०) मुहूर्त्तानाम् । तथा शेपमेकमभिजिन्नक्षत्रं, तच्च चतुर्विंशति द्वापष्टिभाग-पट् पष्टि सप्तपष्टिभाग युक्त नव मुहूर्त्तात्मकम् ($९\frac{२४}{६२}|\frac{६६}{६७}$), तत एकस्यैतत्प्रमितेन गुणने जातं तदेव (९|२४|६६)

एवं सर्वेषामष्टाविंशतिनक्षत्रमुहूर्त्तानामेकत्रमीलने यथोक्ता ($८१९-\frac{२४}{६२}|\frac{६६}{६७}$) मुहूर्त्तसंख्या । एप

एतावत्परिमितो नक्षत्रमासः । तत एतद् योगपरिसमाप्त्यनन्तरं यद् अभिजिन्नक्षत्रमतिक्रान्तं तदपरेण द्वितीयेनाभिजिन्नक्षत्रेण सह नवमुहूर्त्तादिकालं चन्द्रो भोगमुपागच्छति ततः परमपरेण द्वितीयेनाष्टाविंशतिनक्षत्रसम्बन्धिना श्रवणनक्षत्रेण सह चन्द्रो योगमश्नुते, एवं पूर्ववदेव तावद् वाच्यं यावदुत्तराषाढानक्षत्रम् । तदनन्तरं भूयः प्रथमेनैवाभिजिन्नक्षत्रेण सह योगमुपागच्छति । ततः प्रागुक्तक्रमेण श्रवणादिभिः एवं सकलकालमपि विज्ञेयम् ततो विवक्षिते दिने यस्मित् देशे येन नक्षत्रेण सह चन्द्रो योगमगच्छत्, स यथोक्त-मुहूर्त्तसंख्यातिक्रमे पुनस्तादृशेनैवापरेण नक्षत्रेण सह अन्यस्मिन् देशे योगमश्नुते किन्तु न तेनैव नापि च तस्मिन् देशे इति पुनरप्याह-'ता जेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'अज्ज' अथविवक्षिते दिने 'जेणं णक्खत्तेणं' येन नक्षत्रेण सह 'चंदे' चन्द्रः 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति-करोति 'जंसि देसंसि' यस्मिन् देशे 'से णं' स खलु चन्द्रः 'इमाइं' इमानि वक्ष्यमाणानि, तान्येवाह-'सोलसअट्ठतिसाइं मुहुत्तसयाइं' षोडश अष्टत्रिंशानि अष्टत्रिंशदधिकानि षोडश मुहूर्त्तशतानि 'अउणापण्णं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स' एकोनपञ्चाशतं च द्वाषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य, तथा 'बावट्ठिभागं च' एकं द्वाषष्टिभागं च 'सत्तट्ठिहा छित्ता' सप्तषष्टिधा छित्वा-विभज्य तत्सम्बन्धिनः 'पण्णट्ठिं चुण्णिया भागे' पञ्चषष्टिं चूर्णिकाभागान् ($१६३८-\frac{४९}{६२}\Big|\frac{६५}{६७}$) 'उवाइणावित्ता' उपादाय गृहीत्वा अतिक्रम्येत्यर्थः 'पुनरवि' पुनरपि 'से णं चंदे' स खलु चन्द्रः 'ते णं चेव णक्खत्तेणं' तेनैव नक्षत्रेण 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति, कुत्रेत्याह-'अण्णंसि-देसंसि' अन्यस्मिन् देशे, किन्तु न तस्मिन्नेव देशे । कुतः ? इत्याह इह पुनस्तस्मिन्नेव तेनैव नक्षत्रेण सह योगो युगद्वयकालातिक्रमे यथार्थः केवल वेदसा ज्योतिश्चक्रगते रुपलब्धः । जम्बूद्वीपे च षट्पञ्चाशदेव नक्षत्राणि, ततो विवक्षितनक्षत्रयोगे सति तत आरभ्य षट्पञ्चाशन्नक्षत्रातिक्रमे तेन नक्षत्रेण सह योगमश्नुते । षट्पञ्चाशन्नक्षत्रातिक्रमश्च प्रागुक्ताष्टाविंशतिनक्षत्रमुहूर्त्तसंख्याद्विगुणसंख्यया भवति, अष्टाविंशति नक्षत्रमुहूर्त्तसंख्या च एकोनविंशत्यधिकानि अष्टमुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट् षष्टिः सप्तषष्टिभागाः ($८१९-\frac{२४}{६२}\Big|\frac{६६}{२७}$) इति प्राक्प्रदर्शितमेव, तद्द्विगुणा यथोक्ता संख्या भवति, तत उक्तम् 'सोलस अट्ठतीसाइं मुहुत्तसयाइं' इत्यादि ।

तदेवं तादृशेन तेन वा-नक्षत्रेण सह अन्यस्मिन् यावता कालेण पुनरपि योगः समुपजायते तावान् कालविशेषः प्रतिपादितः, साम्प्रतं तस्मिन्नेव देशे तादृशे तेन वा नक्षत्रेण सह पुनरपि यावता कालेन योगो भवति तावन्तं कालविशेषं प्रतिपादयन्नाह-'ता जेणं अज्ज णक्खत्तेणं'

इत्यादि, 'ता' तावत् 'जज्ज' अद्य विवक्षिते दिने 'जेणं णक्खत्तेणं' येन नक्षत्रेण 'चंदे' चन्द्रः 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति 'जंसि देसंसि' यस्मिन् देशे 'से णं' स खलु चन्द्रः 'इमाइं' इमानि, वक्ष्यमाणसंख्यकानि, तान्येवाह–'चउप्पण्णमुहुत्तसहस्साइं' चतुष्पञ्चाशन्मुहूर्त्तसहस्राणि 'णवयमुहुत्तसयाइं' नव च मुहूर्त्तशतानि (५४९००) 'उवाइणावित्ता' उपादाय अतिक्रम्य 'पुनरवि' पुनरपि भूयोऽपि 'से चंदे' स चन्द्र 'अण्णेणं तारिसएणं चेव णक्खत्तेणं' अन्येन तादृशेनैव नक्षत्रेण 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति करोति, कुत्रेत्याह–'तंसि देसंसि' तस्मिन्नैव देशे, इति। अत्र भावना चेत्थम्–विवक्षिते युगे विवक्षितानामष्टाविंशति नक्षत्राणां मध्ये येन नक्षत्रेण सह यस्मिन् देशे यदा चन्द्रस्य योगो जातस्ततो भूयस्तस्मिन्नेव देशे तदैव तेनैव नक्षत्रेण सह योगो विवक्षितयुगादारभ्य-तृतीये युगे भवति, न तु द्वितीये, कुतः ? इत्याह–इह युगादित आरभ्य प्रथमे नक्षत्रमासे एकानि अष्टाविंशतिनक्षत्राणि समतिक्रान्तानि, द्वितीयेन नक्षत्रमासेन तेभ्योऽपराणि द्वितीयानि, ततो भूयस्तृतीयेन नक्षत्रमासेन तान्येव प्रथमान्यष्टाविंशति नक्षत्राणि, चतुर्थेन भूयस्तान्येव द्वितीयानि अष्टाविंशति नक्षत्राणि समतिक्रान्तानीति। एवं सकलकालम्। युगे च नक्षत्रमासाः सप्तषष्टिः। सा च सप्तषष्टिसंख्या विषमेति विवक्षितयुगपरिसमाप्तिकालेऽन्यस्य युगस्य प्रारम्भे यानि विवक्षितयुगस्यादौ भुक्तानि नक्षत्राणि सन्ति तेभ्योऽपरान्येव द्वितीयानि नक्षत्राणि भोगमुपयान्ति, किन्तु न तान्येव युगद्वये च चतुस्त्रिंशदधिकमेकं शतं (१३४) मासानां भवति। सा च चतुस्त्रिंशदधिकशतसंख्या नक्षत्रमासानां समेति द्वितीय युगपरिसमाप्तिकाले षट्पञ्चाशदपि नक्षत्राणि समाप्तिमुपगच्छन्ति, ततो विवक्षितयुगादारभ्य तृतीये युगे तेनैव नक्षत्रेण तस्मिन्नेव देशे तदा चन्द्रस्य-योगो भवति। युगे चाहोरात्राणामष्टादशशतानि त्रिंशदधिकानि (१८३०) एकैकस्मिंश्चाहोरात्रे मुहूर्त्तास्त्रिंशद् भवन्तीत्यतस्त्रिंशदधिकानामष्टादशशतानां (१८३०) त्रिंशता गुणने भवति यथोक्तासंख्या चतुष्पञ्चाशद् मुहूर्त्तसहस्राणि नवशताधिकानि (५४९००), इति। यथोक्तमुहूर्त्तसंख्यातिक्रमे च तादृशेनैव अन्येन नक्षत्रेण सह चन्द्रस्य योगस्तस्मिन्नेव देशे भवति, किन्तु न तेन नक्षत्रेण नान्यस्मिन् वा देशे, इति। पुनरप्याह–'ता जे णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'अज्ज' अद्य 'जे णं णक्खत्तेणं' येन नक्षत्रेण 'चंदे' चन्द्रः 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति 'जंसि देसंसि' यस्मिन् देशे 'से णं' स खलु चन्द्रः 'इमाइं' इमानि वक्ष्यमाणसंख्यकानि, तान्येव 'प्रदर्श्यन्ते– 'एगं मुहुत्तसयसहस्सं' एकं मुहूर्त्तशतसहस्रम् 'अट्ठाणउइं च मुहुत्तसयाइं' अष्टनवति च मुहूर्त्तशतानि, अर्थात् एकं लक्ष, नवसहस्राणि अष्ट शतानि मुहूर्त्तानाम् (१०९८००) 'उवाइणावित्ता' उपादाय-अतिक्रम्य, 'पुनरवि' पुनरपि 'से चंदे' स चन्द्र. 'ते णं णक्खत्तेणं' तेन नक्षत्रेण 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति 'तंसि देसंसि' तस्मिन् देशे। भावनापूर्ववदेव, विशेषस्त्वेतावानेव–अत्र युगद्वयकाल.–षष्ट्यधिक षट्त्रिंशच्छत (३६६०) प्रमिताऽहोरात्राणामस्ति, तत एष राशिरेकैक-

स्मिन्नहोरात्रे त्रिंशन्मुहूर्त्ता भवन्तीति त्रिंशता गुण्यते, गुणिते च जायन्ते यथोक्तम्—एकं लक्षम् नवसहस्राणि, अष्ट च शतानि (१०९८००) मुहूर्त्तानामिति ।

एवं तादृशेन तेन वा नक्षत्रेण सह तस्मिन् देशे, अन्यस्मिन् वा देशे चन्द्रस्य योगकालप्रमाणमभिहितम्, साम्प्रतं सूर्यविषये तदेवाह—'ता जे णं' इत्यादि ।

'ता जे णं' इति 'ता' तावत् 'अज्ज' अद्य विवक्षिते दिवसे 'जे णं णक्खत्तेणं' येन नक्षत्रेण सह 'सूरिए' सूर्य. 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति 'जंसि देसंसि' यस्मिन् देशे, 'से णं' स खलु—स एव सूर्यः 'इमाइं' इमानि वक्ष्यमाणसंख्यकानि रात्रिन्दिवानि तान्येवाह—'तिण्णि छावट्ठाइं राइंदियसयाइं' त्रीणि षट्षष्ट्यधिकानि रात्रिन्दिवशतानि (३६६) षट्षष्ट्यधिक त्रिशत संख्यकाहोरात्राणि 'उवाइणावित्ता' उपादाय—अतिक्रम्य 'पुणरवि से सूरिए' पुनरपि स सूर्यः 'अण्णेणं तारिसएणं चेव णक्खत्तेणं' अन्येन तादृशेनैव तत्सदृशेणैव नक्षत्रेण सह 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति किन्तु न तेनैव पूर्वमुक्तेन नक्षत्रेण सह योगं युनक्ति, कुत्र देशे ? इत्याह—'तंसि देसंसि' तस्मिन्नेव देशे, नान्यस्मिन् देशे इति भावः । कथमिति चेदाह इह चन्द्र एकेन नक्षत्रमासेनाष्टविंशति नक्षत्राणि भुङ्क्ते, सूर्यस्तु षट्षष्ट्यधिकैस्त्रिभिरहोरात्रशतैरष्टाविंशतिं नक्षत्राणि भुङ्क्तेऽतः षट्षष्ट्यधिकत्रिशताहोरात्रप्रमित एकः सूर्यसंवत्सरो भवति, एवं षट्षष्ट्यधिकैस्त्रिभिरहोरात्रशतैरन्यान्यपि द्वितीयान्यष्टाविंशतिं नक्षत्राणि सूर्यः परिभुङ्क्ते । तत्पश्चाद् भूयोऽपि तान्येव प्रथमान्यष्टाविंशतिं नक्षत्राणि तावद्भिरेवाहोरात्रैः क्रमेण सूर्यो योगं युनक्ति, एवं षट्षष्ट्यधिकैस्त्रिभिशतैरहोरात्रैरतिक्रान्तैः सूर्यस्य तस्मिन्नेव देशे तादृशेनैवापरेण नक्षत्रेण सह योगो भवति किन्तु न तेनैव नक्षत्रेणेति । 'ता जेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'अज्ज' अद्य विवक्षितदिने 'जे णं नक्खत्तेणं' येन नक्षत्रेण सह 'सूरिए' सूर्यः 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति 'तंसि देसंसि' तस्मिन् देशे 'से णं स खलु सूर्यः 'इमाइं' इमानि वक्ष्यमाणानि, तान्येवाह—'सत्तदुत्तीसाइं-राइंदियसयाइं' द्वात्रिंशदधिकानि सप्तरात्रिन्दिवशतानि (७३२) 'उवाइणावित्ता' उपादाय—अतिक्रम्य 'पुणरवि' पुनरपि भूयोऽपि 'से सूरिए' स सूर्यः 'ते णं चेव णक्खत्तेणं' तेनैव नक्षत्रेण सह 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति 'तंसि देसंसि' तस्मिन् देशे । भावना प्राक्कृता, तदनुसारेणात्रापि कर्त्तव्येति । 'ता जेणं' इत्यादि 'ता' तावत् 'अज्ज' अद्य विवक्षितदिने 'जे णं णक्खत्तेणं' येन नक्षत्रेण सह 'सूरिए' सूर्यः 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति कुत्रेत्याह—जंसि देसंसि' यस्मिन् देशे 'से णं' स खलु सूर्यः 'इमाइं' इमानि—वक्ष्यमाणानि, कतिसंख्यानीत्याह—'अट्ठारसतीसाइं-राइंदियसयाइं' त्रिंशदधिकानि अष्टादशरात्रिन्दिवशतानि त्रिंशदधिकाष्टादशशत (१८३०) संख्यकाहोरात्रान् 'उवाइणावित्ता' उपादाय व्यतिक्रम्य पुणरवि पुनरपि भूयोऽपि 'से सूरिए' स सूर्यः 'अण्णेणं तारिसेणं चेव णक्खत्तेणं' अन्येन—अपरेण तादृशेनैव नक्षत्रेण 'जोयं जोएइ'

योगं युनक्ति न तु तेनैव, कुत्रेत्याह—'तंसि देसंसि' तस्मिन्नेव देशे यत्र देशे सूर्येण पूर्वं योगो योजितस्तत्र योग युनक्तीत्यर्थः । कथमिति चे दुच्यते इह युगे त्रिंशदधिकानि अष्टादशशतानि रात्रिन्दिवानां भवन्ति, तत्र सूर्यो विविक्षितदिनादारभ्य तृतीयसंवत्सरे तस्मिन्नेवदेशे तस्मिन्नेव दिवसे तेनैव नक्षत्रेण सह योग युनक्ति । युगे च सूर्यवर्षाणि पञ्च भवन्ति, तत स्तृतीये पञ्चमे वा सूर्यसंवत्सरे सूर्यस्य तेनैव नक्षत्रेण तस्मिन्नेव काले योगो भवति, नतु युगातिक्रमे षष्ठे वर्षे, अत एवोक्तम् 'सूरे अण्णेणं चेव णक्खत्तेणं जोयं जोएइ' इति । 'ता जेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'अज्ज' अद्य विवक्षितदिने 'जेणं णक्खत्तेणं' येन नक्षत्रेण सह 'सूरिए' सूर्यः 'जोयं जोएइ' योग युनक्ति 'जंसि देसंसि' यस्मिन् देशे 'से णं' स खलु सूर्य' इमानि वक्ष्यमाणानि, तान्येवाह—'छत्तीसं सट्ठाइं राइंदियसयाइं' षट्त्रिंशत् षष्ट्यधिकानि रात्रिन्दिवशतानि षष्ट्यधिक षट्त्रिंशच्छतानि (३६६०) रात्रिन्दिवानां भवन्तीति, तानि 'उवाइणाविता' उपादाय—अतिक्रम्य 'पुणरवि' पुनरपि भूयोऽपि 'से सूरिए' स सूर्यः 'तेणं चेव णक्खत्तेणं' तेनैव नक्षत्रेण सह 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति, कुत्रेत्याह—'तंसि देसंसि' तस्मिन्नेव देशे योगः समुत्पद्यते इति भावः । अयमाशयः—युगद्वये षष्ट्यधिकानि षट्त्रिंशच्छतानि रात्रिन्दिवानां भवन्ति, युगद्वये च दश सूर्यवर्षाणि भवन्ति तत एव युगद्वयातिक्रमे एकादशे वर्षे सूर्यस्य तेनैव नक्षत्रेण सह तस्मिन्नेव-देशे योगः समागच्छतीति ॥सूत्र १०॥

अथेह जम्बूद्वीपे द्वौ चन्द्रौ द्वौ सूर्यौ, एकैकस्य चन्द्रस्य ग्रहादिपरिवारो भिन्न एव भवतीति श्रुत्वा कश्चिदेवमपि मन्यते यत् मण्डलेषु चन्द्रादीनां गतिर्भिन्नकालिकी भिन्नकालिकश्च तेषां नक्षत्रादिभिः सह योग भवितुमर्हेत् ? इति ततस्तदाशङ्कापनोदार्थमिदमाह—'ता जयाणं इमे चंदे' इत्यादि—

मूलम्—ता जया णं इमे चंदे गइसमावण्णए भवइ तया णं इयरेवि चंदे गइ समावण्णए भवइ । जया णं इयरेवि चंदे गइसमावण्णए भवइ तया णं इमे वि चंदे गइ समावण्णए भवइ । ता जया णं इमे सूरिए गइसमावण्णए भवइ तया णं इयरेवि सूरिए गइ समावण्णए भवइ । जया ण इयरे सूरिए गइ समावण्णए भवइ तया णं इमेवि सूरिए गइ समावण्णए भवइ । एवं गहावि, णक्खत्तावि । ता जया णं इमे चंदे जुत्ते जोएणं भवइ तया णं इयरेवि चंदे जुत्ते जोएणं भवइ । जया णं इयरे चंदे जुत्ते जोएणं भवइ तयाणं इमेवि चंदे जुत्ते जोएणं भवइ । एवं सूरेवि, गहावि णक्खत्तावि । सयावि णं चंदा जुत्ता जोएहिं सयावि णं सूरिया जुत्ता जोएहिं, सयावि णं गहा जुत्ता जोएहिं, सयावि णं णक्खत्ता जुत्ता जोएहिं, दुहओ वि णं सूरा जुत्ता जोएहिं दुहओ वि णं गहा जुत्ता जोएहिं

दुहओ वि णं णक्खत्ता जुत्ता जोएहिं । मंडलं सयसहस्सेणं अट्ठाणउयाए सएहिं छित्ता इच्चेस णक्खत्त खेत्तपरिभागे णक्खत्तविजए पाहुडेत्ति आहिए त्तिबेमि ॥सूत्रम्॥११॥

"दसमस्स पाहुडस्स वावीसइम पाहुडपाहुडं समत्तं" १०-२२

दसमं पाहुडं समत्तं ॥१०॥

छाया—तावत् यदा खलु अयं चन्द्रः गतिसमापन्नको भवति तदा खलु इतरोऽपि चन्द्रः गतिःसमापन्नको भवति । यदा खलु इतरोऽपि चन्द्रः गतिसमापन्नको भवति तदा खलु अयमपि चन्द्रः गतिसमापन्नको भवति । तावत् यथा खलु अयं सूर्यः गति समापन्न को भवति तदा खलु इतरोऽपि सूर्यः गतिसमापन्नको भवति । यदा खलुइतरः सूर्यः गति-समापन्नको भवति तदा खलु अयमपि सूर्यः गतिसमापन्नको भवति । एवं ग्रहा अपि, नक्षत्राण्यपि । तावत् यदा खलु अयं चन्द्रः युक्तः योगेन भवति तदा खलु इतरोऽपि चन्द्रः युक्तः योगेन भवति । यदा खलु इतरः चन्द्रः युक्तः योगेन भवति तदा खलु अयमपि चन्द्रः युक्त· योगेन भवति । एवं सूर्योऽपि ग्रहा अपि नक्षत्राण्यपि । सदाऽपि खलु चन्द्रौ युक्तौ योगै· सदापि खलु सूर्यौ युक्तौ योगैः, सदापि खलु ग्रहाः युक्ता योगैः सदापि खलु नक्षत्राणि युक्तानि योगैः, उभयतोऽपि खलु चन्द्रौ युक्तौ योगैः, उभयतोऽपि खलु सूर्यौ युक्तौ योगैः उभयतोपि खलु ग्रहाः युक्ताः योगैः, उभयतोपि खलु नक्षत्राणि युक्तानि योगैः, । मण्डलं शतसहस्रेण अष्टानवत्यशतैः छित्त्वा इत्येष नक्षत्रक्षेत्रपरिभागः नक्षत्र विचये प्राभृतमिति आख्यातः, इति ब्रवीमि ॥ सूत्रम् ११॥

"दशमस्य प्राभृतस्य द्वाविंशतितमं प्राभृतप्राभृतं समाप्तम्

दशमं प्राभृतं समाप्तम् । १०॥

व्याख्या—'ता जया णं' इति 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'इमे' अयं यस्मिन् काले यः प्रत्यक्षत उपलभ्यमानो भरतक्षेत्रप्रकाशको विवक्षितः 'चंदे' चन्द्रः विवक्षिते मण्डले 'गइसमावण्णए भवइ' गतिसमापन्नकः गतिमान् भवति 'तया णं' तदा खलु तस्मिन् काले 'इयरे वि चंदे' इतरोऽपि य ऐरवतक्षेत्रं प्रकाशयति स विवक्षितश्चन्द्रः 'गइसमावण्णए' गति समापन्न को गति युक्तः 'भवइ' भवति । 'जया णं' यदा खलु 'इयरे वि चंदे' इतरोऽपि ऐरवतक्षेत्र प्रकाशकश्चन्द्रः तस्मिन्नेव विवक्षिते मण्डले 'गइसमावण्णए भवइ' गति समापन्नकः गतियुक्तो भवति 'तया णं' तदा 'खलु 'इमे वि चंदे' अयमपि भरतक्षेत्रप्रकाशकश्चन्द्रोऽपि 'गइसमावण्णए भवइ' गतिसमापन्नको भवति भरतक्षेत्रप्रकाशकश्चन्द्रः ऐरवतक्षेत्रप्रकाशकश्चन्द्रश्चेत्युभावपि चन्द्रौ स्वस्वविवक्षितमण्डले समकालमेव गतियुक्तौ भवत इति भावः ।

अथ सूर्यविषये तदेवाह—'ता जया णं इमे सूरिए' इत्यादि 'ता' तावत् 'जया णं' यदा यस्मिन् काले खलु 'इमे' अयं भरतक्षेत्रप्रकाशकः 'सूरिए' सूर्यः 'गइसमावण्णए भवइ' गति समापन्नकः गतिमान् भवति 'तया णं' तदा तस्मिन्नेव काले खलु 'इयरेवि सूरिए' इतरोऽपि

ऐरवतक्षेत्रप्रकाशकोऽपि सूर्यः 'गइसमावण्णए भवइ' गतिसमापन्नको गतियुक्तो भवति । 'जया णं' यदा खलु 'इयरे सूरिए' इतरः ऐरावतक्षेत्रप्रकाशकारी सूर्यः 'गइसमावण्णए भवइ' गतिसमापन्नको गतियुक्तो भवति 'तया णं' तदा तस्मिन् काले खलु विवक्षिते मण्डले 'इमे वि सूरिए' अयमपि भरतक्षेत्रप्रकाशकोऽपि सूर्यः 'गइसमावण्णए भवइ' गतिसमापन्नकः गतिमान् भवति । भरतक्षेत्रसूर्य. ऐरवतक्षेत्रसूर्यश्चेत्युभावपि सूर्यौ स्वस्व क्षेत्रे स्व स्व विवक्षितमण्डले समकालमेव चारं चरत इति भावः । एवं गहावि, एवम्—अनेनैव रीत्या ग्रहा अपि भरतक्षेत्रचारिणः ऐरवतक्षेत्र चारिणश्चे त्युभयेपि ग्रहाः परस्परं समकालमेव स्व स्व क्षेत्रे विवक्षितमण्डले चारं चरन्ति, इति-भावः । तथा एवमेव 'नक्खत्तावि' नक्षत्राण्यपि भरतक्षेत्रचारीणि ऐरवतक्षेत्रचारीणि चेत्युभयान्यपि नक्षत्राणि परस्परं स्व स्व विवक्षितमण्डले गतियुक्तानि भवन्ति, इति भावः । अथैतेषामेव योगविषये प्राह—'ता जया णं इमे चंदे जुत्ते जोगेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जया णं' यदा यस्मिन्न काले खलु 'इमे चंदे' अयं भरतक्षेत्रचारी चन्द्रः जुत्ते' जोगेणं' येन योगेन युक्तो भवति 'तया णं' तदा तस्मिन् काले खलु 'इयरे वि चंदे' इतरोऽपि ऐरवतक्षेत्रस्थोऽपि चन्द्रः 'जुत्ते जोगेणं भवइ' तेनैव योगेन युक्तो भवति । 'जया णं' यदा यस्मिन् काले खलु 'इयरे चंदे' इतरः ऐरवतक्षेत्रस्थश्चन्द्रः 'जुत्ते जोगेणं भवइ' येन योगेन युक्तो भवति 'तया णं' तदा तस्मिन् काले खलु 'इमे वि चंदे' अयमपि भरतक्षेत्रस्थश्चन्द्रः 'जुत्ते जोगेणं भवइ' तेनैव योगेन युक्तो भवति । भरतक्षेत्रस्थश्चन्द्रः ऐरवतक्षेत्र स्थश्चन्द्रश्चेत्युभावपि चन्द्रौ समकालमेव स्व-स्वक्षेत्रे स्व स्व मण्डले समयेषु युक्तौ भवत इति भावः । 'एवं' एवम्—अनेनैव रीत्या 'सूरे वि सूर्योऽपि 'गहावि' ग्रहा अपि 'णक्खत्तावि' नक्षत्राण्यपि सूर्यग्रहनक्षत्राण्यपि भरतैरवतक्षेत्र-चारीणि परस्परं स्वक्षेत्रे स्व स्व मण्डले समकालं समानयोगयुक्तान्येव भवन्तीति तात्पर्यम् । अथोपसहरन् सदाकालविषये प्राह—'सया वि णं' इत्यादि, 'सया वि णं' सदापि सर्वकालेऽपि खलु 'चंदा' चन्द्रौ भरतैरवतक्षेत्रवर्त्तिनौ द्वावपि चन्द्रौ 'जुत्ता जोएहिं' युक्तौ योगैः समचार चारिणौ भवतः । एवं 'सया वि णं' सदापि खलु 'सूरिया' सूर्यौ 'जुत्ता जोगेहिं' योगै युक्तौ समरूपावेव भवतः । 'सयावि णं' सदापि खलु 'गहा' ग्रहाः जुत्ता जोगेहिं' योगैर्युक्ता समरूपा एव भवन्ति । 'सयावि णं' सदापि खलु 'णक्खत्ता' नक्षत्राणि 'जुत्ताजोगेहिं' योगैर्युक्तानि समरूपाण्येव भवन्ति । अथ दिशमाश्रित्य प्राह—'दुहओ वि णं' इत्यादि, 'दुहओ वि णं' उभयतोऽपि दक्षिणोत्तरयो. पूर्वपश्चिमयोर्वा खलु 'चंदा' चन्द्रौ 'जुत्ता जोगेहिं' योगैर्युक्तौ समरूपेणैव भवत. । एवम् 'दुहओ वि णं' उभयतोऽपि दक्षिणोत्तरयो पूर्वपश्चिमयोर्वा 'सूरिया' सूर्यौ 'जुत्ता जोगेहिं' योगैर्युक्तौ समरूपेणैव भवतः । 'दुहओ वि णं' उभयतोऽपि खलु 'गहा' ग्रहाः 'जुत्ताजोगेहिं' योगैर्युक्ता समरूपेणैव भवन्ति दुहओ वि णं' उभयतोऽपि खलु 'णक्खत्ता' नक्ष

त्राणि 'जुत्ता जोगेहिं' योगैर्युक्तानि समरूपेणैव भवन्ति । अथ प्राभृतोपसंहारमाह—'मंडलं' इत्यादि 'णक्खत्तविचए' अस्मिन् नक्षत्रविचये नक्षत्रविचयनाम्नि दशमस्य प्राभृतस्य 'पाहुडेत्ति' द्वाविंशतितमे प्राभृतप्राभृते 'इच्चेस' इत्येषः पूर्वं प्रतिपादितः 'णक्खत्तखेत्तपरिभागे' नक्षत्रक्षेत्र परिभागः उपलक्षणात् चन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्रक्षेत्रपरिभागः 'आहिए' आख्यातः कथितः कथमित्याह— 'मंडलं' मण्डलं चन्द्रादिमण्डलं स्वेन स्वेन क्षेत्रद्वयसंमिलितैः षट् पञ्चाशता नक्षत्रै र्यावन्मात्रं क्षेत्रं व्याप्यमानं संभाव्यते तावन्मात्रं क्षेत्रं बुद्धिपरिकल्पितं 'सयमहस्सेणं अट्ठाणउयाए सएहिं' शत सहस्रेण—लक्षेण-अष्टानवत्याच शतैः अष्टानवतिशताधिकेन लक्षेण एकेन लक्षेण नव सहस्रैः अष्टशतैः नव सहस्राधिकाष्टाशतोत्तरेणैकेन लक्षेणेत्यर्थः (१०९८००) 'छित्ता' छित्वा विभज्य व्याख्यातः, एष नक्षत्रक्षेत्रपरिभागः नक्षत्रवियचनामकं प्राभृतप्राभृतमस्तीति ख्यातमिति भावः । 'तिवेमि' इति ब्रवीमि, इति—एतदनन्तरोक्तं सर्वं ब्रवीमि यथा भगवन्मुखाच्छ्रुतं तथैव कथयामीति सुधर्मस्वामिवचनमेतत् । अथवा शिष्याणां विश्वासदार्ढ्योत्पादनार्थं कथयति—एतद् भवगद्वचनं ततः सर्वं सत्यमेवेति ब्रवीमि ततो भवद्भिः सर्वं सत्यमिति प्रत्येतव्यमेवेति ॥ सूत्रम् ११॥

दशमस्य प्राभृतस्य द्वाविंशतितमं प्राभृत प्राभृतं समाप्तम् ॥१०।२२॥

इति श्री—विश्वविख्यात—जगद्वल्लभ—प्रसिद्धवाचक पञ्चदशभाषाकलितललितकलापालापक—
प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक—वादि—मानमर्दक—श्रीशाहुच्छत्रपति
कोल्हापुरराजप्रदत्त 'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित कोल्हा-
पुरराजगुरु बालब्रह्मचारि—जैनशास्त्राचार्य—जैन-
धर्मदिवाकर श्रीघासीलाल व्रतिविरचितायां
'चन्द्रप्रज्ञप्ति' सूत्रस्य चन्द्रज्ञप्ति
प्रकाशिकाख्यायां व्याख्यायाम्
दशमं प्राभृतं समाप्तम् ॥१०॥

"अथैकादशं प्राभृतम्"

गतं दशमं प्राभृतम्, तत्र चन्द्रसूर्यैः सह नक्षत्राणां योगः प्रोक्तः अधुनैकादशं प्राभृतं प्रारभ्यते, अत्र--पूर्वं यत् 'कहं संवच्छराणामाई' कथं संवत्सराणामादि, इति प्रतिज्ञातं तदत्र वर्णयिष्यते इति सम्बन्धेनायातस्यास्यैकादशस्य प्राभृतस्येदमादिसूत्रम्—'ता कहं ते संवच्छरोणामाई' इत्यादि।

मूलम्—ता कहं ते संवच्छराणामाई आहिएति वएज्जा। तत्थ खलु इमे पंच संवच्छरा पण्णत्ता,तं जहा—चंदे १, चंदे २, अभिवड्ढिए ३, चंदे ४, अभिवड्ढिए ५। ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमस्स चंदस्स संवच्छरस्स के आई आहिएति वएज्जा। ता जे णं पंचमस्स अभिवड्ढीयसंवच्छरस्स पज्जवसाणं से णं पढमस्स चंदसंवच्छरस्स आई अणंतरपुरक्खडे समए, ता से णं किं पज्जवसिए आहिए ति वएज्जा? ता जे णं दोच्चस्स संवच्छरस्स आई से णं पढमस्स चंदसंवच्छरस्स पज्जवसाणे अणंतरपच्छाकडे समए। तं समयं च णं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोयं जोएइ? ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं छव्वीसं मुहुत्ता, छव्वीसं च वावट्ठिभागा मुहुत्तस्स वावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता चउप्पण्णं चुण्णिया भागा सेसा, तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोयं जोएइ?। ता पुणव्वसुणा, पुणव्वसुस्स सोलसमुहुत्ता, अट्ठ य वोवट्ठिभागा मुहुत्तस्स, वावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता वीसं चुण्णिया भागा सेसा। ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चस्स चंदसंवच्छरस्स के आई आहिएति वएज्जा? ता जे णं पढमस्स चंदसंवच्छरस्स पज्जवसाणे से णं दोच्चस्स चंदसंवच्छरस्स आई अणंतरपुरक्खडे समए, ता से णं किं पज्जवसिए आहिए? ति वएज्जा। ता जे णं तच्चस्स अभिवड्ढिय संवच्छरस्स आई से णं दोच्चस्स चंद संवच्छरस्स पज्जवसाणे अणंतरपच्छाकडे समए तं समयं च णं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोयं जोइए?, ता पुव्वाहिं आसाढाहिं, पुव्वाणं आसाढाणं सत्तमुहुत्ता, तेवण्णं च वावट्ठिभागा मुहुत्तस्स वावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता इगतालीं संचुण्णियाभागा सेसा, तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोयं जोएइ?, ता पुणव्वसुणा, पुणव्वसुस्स णं वायालीसं मुहुत्ता, पणतीसं च वावट्ठिभागा-मुहुत्तस्स, वावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता सत्तचुण्णियाभागा सेसा। ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चस्स अभिवड्ढियसंवच्छरस्स के आई आहिए ति वएज्जा, ता जेणं दोच्चस्स चंद संवच्छरस्स पज्जवसाणे सेणं तच्चस्स अभिवड्ढियसंवच्छरस्स आई अणंतर पुरक्खडे समए, ता सेणं किं पज्जवसिए आहिएति वएज्जा?, ता जेणं चउत्थस्स चंद संवच्छरस्स आई सेणं तच्चस्स अभिवड्ढीय संवच्छरस्स पज्जवसाणे अणंतरपच्छाकडे समए, तं समयं च णं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोयं जोइए?, ता उत्तराहिं आसाढाहिं उत्त

राणं आसाढाणं तेरस मुहुत्ता, तेरस य बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता सत्तावीसं चुण्णिया भागा सेसा तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोयं जोएइ?, ता पुणव्वसुणा, पुणव्वसुस्स दो मुहुत्ता, छप्पण्णं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता सट्ठी चुण्णिया भागा सेसा । ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं चउत्थस्स चंद संवच्छरस्स के आई आहिएति वएज्जा, ता जेणं तच्चस्स अभिवड्ढिय संवच्छरस्स पज्जवसाणे सेणं चउत्थस्स चंदसंवच्छरस्स आई अणंतरपुरक्खडे समए, ता सेणं किं पज्जवसिए आहिएति वएज्जा ? ता जे णं चरिमस्स अभिवड्ढियसंवच्छरस्स आई से णं चउत्थस्स चंदसंवच्छरस्स पज्जवसाणे अणंतरपच्छाकडे समए, तं समयं च णं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोयं जोएइ ?, ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं उणयालीसं मुहुत्ता, चालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं चं सत्तट्ठिहा छित्ता चउद्दस चुण्णियाभागा सेसा । तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोयं जोएइ ? ता पुणव्वसुणा, पुणव्वसुस्स अउणतीसं मुहुत्ता, एक्कवीसं बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता सीयालीसं चुण्णियाभागा सेसा । ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पंचमस्स अभिवड्ढियसंवच्छरस्स के आई आहिएति वएज्जा, ता जे णं चउत्थस्स चंद संवच्छरस्स पज्जवसाणे से णं पंचमस्स अभिवड्ढियसंवच्छरस्स आई अणंतरपुरक्खडे समए, ता से णं किं पज्जवसिए आहिएति वएज्जा, ता जे णं पढमस्स चंदसंवच्छरस्स आई सेणं पंचमस्स अभिवड्ढिय संवच्छरस्स पज्जवसाणे अणंतरपच्छाकडे समए, तं समयं च णं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोयं जोएइ ? ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं चरमसमए, तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोयं जोएइ ?, ता पुस्सेणं पुस्सस्स णं एगूणवीसं मुहुत्ता तेयालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता तेत्तीसं चुण्णिया भागा सेसा ॥ सूत्रम् १ ॥

॥ एक्कारसमं पाहुडं समत्त ॥११॥

छाया—तावत् कथं ते संवत्सराणामादिः आख्यातः ? इति वदेत्, तत्र खलु इमे पञ्चसंवत्सराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा— चान्द्रः १, चान्द्रः २, अभिवर्द्धितः ३, चान्द्रः ४, अभिवर्द्धितः ५ । तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां प्रथमस्य चान्द्रसंवत्सरस्य क आदि आख्यातः ? इति वदेत्, तावत् यत् खलु पञ्चमस्य अभिवर्द्धित संवत्सरस्य पर्यवसानं तत् खलु प्रथमस्य चान्द्रसंवत्सरस्य आदिः अनन्तरपुरस्कृतः समयः, तावत् स खलु किं पर्यवसितः आख्यात इति वदेत् यः खलु द्वितीयस्य चान्द्रसंवत्सरस्य आदिः स खलु प्रथमस्य चान्द्रसंवत्सरस्य पर्यवसान अनन्तरपुरस्कृतसमयः तस्मिन् समये च खलु चन्द्रः केन नक्षत्रेण योगं युनक्ति ?, तावत् उत्तराभिराषाढाभिः उत्तराणामाषाढानां षड्विंशतिर्मुहूर्त्ताः षड्विंशतिश्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च [illegible] छित्वा चतु-

पञ्चाशद् चूर्णिका भागाः शेषाः । तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण योगं युनक्ति तावत् पुनर्वसुना, पुनर्वसोः षोडश मुहूर्ताः अष्ट च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा विंशतिश्चूर्णिकाभागाः शेषाः । तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां द्वितीयस्य चान्द्रसंवत्सरस्य क आदिः आख्यातः ? इति वदेत्, तावत् यत् खलु प्रथमस्य चान्द्रसंवत्सरस्य पर्यवसानं तत् खलु द्वितीयस्य चान्द्रसंवत्सरस्य आदिः अनन्तरपुरस्कृतसमयः, तावत् स खलु किं पर्यवसितः आख्यातः ? इति वदेत् । तावत् यः खलु तृतीयस्य अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य आदिः स खलु द्वितीयस्य चान्द्रसंवत्सरस्य पर्यवसानम् अनन्तरपश्चात्कृतः समयः । तस्मिन् समये च खलु चन्द्रः केन नक्षत्रेण योगं युनक्ति ? तावत् पूर्वाभिराषाढाभिः पूर्वाणामाषाढानां सप्तमुहूर्त्ताः, त्रिपञ्चाशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा एकचत्वारिंशत् चूर्णिका भागाः शेषाः, तस्मिन् समये च खलु सूर्य केन नक्षत्रेण योगं युनक्ति ? तावत् पुनर्वसुना, पुनर्वसोः खलु द्विचत्वारिंशद् मुहूर्त्ताः, पञ्चत्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा सप्त चूर्णिकाभागाः शेषाः । तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणं तृतीयस्य अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य क आदिः आख्यातः ? इति वदेत्, तावत् यत् खलु द्वितीयस्य चान्द्र संवत्सस्य पर्यवसानम् तत् खलु तृतीयस्य अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य आदिः अनन्तरपुरस्कृतः समयः, तावत् स खलु किं पर्यवसितः आख्यातः इति वदेत् तावत् । यः खलु चतुर्थस्य चान्द्रसंवत्सरस्य आदिः स खलु तृतीयस्य अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य पर्यवसानम् अनन्तरपश्चात्कृतः समयः । तस्मिन् समये च खलु चन्द्रः केन नक्षत्रेण योगं युनक्ति ? तावत् उत्तराभिराषाढाभिः । उत्तराणामाषाढानाम् त्रयोदशमुहूर्त्ताः, त्रयोदश च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा सप्तविंशतिश्चूर्णिका भागाः शेषाः । तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण योगं युनक्ति ? तावत् पुनर्वसुना, पुनर्वसोः द्वौ मुहूर्त्तौ, षट्पञ्चाशद् द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा षष्टिश्चूर्णिकाभागाः शेषाः । तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां चतुर्थस्य च चान्द्रसंवत्सरस्य क आदिराख्यातः ? इति वदेत्, तावत् यत् खलु तृतीयस्य अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य पर्यवसानं तत् खलु चतुर्थस्य चान्द्रसंवत्सरस्य आदिः अनन्तरपुरस्कृतः समयः । तावत् स खलु किं पर्यवसितः आख्यातः ? इति वदेत्, तावत् यः खलु चरमस्य अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य आदिः स खलु चतुर्थस्य चान्द्रसंवत्सरस्य पर्यवसानम् अनन्तरपश्चात्कृतः समयः । तस्मिन् समये च खलु चन्द्रःकेन नक्षत्रेण योगं युनक्ति ? तावत् उत्तराभिराषाढाभिः उत्तराषाढानाम् एकोनचत्वारिंशद् मुहूर्त्ताः, चत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा चतुर्दशचूर्णिका भागाः शेषा । तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण योगं युनक्ति ?, तावत् पुनर्वसुना, पुनर्वसोः एकोनत्रिंशद् मुहूर्त्ताः एकविंशतिर्द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा सप्तचत्वारिंशच्चूर्णिका भागाः शेषाः । तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां पञ्चमस्य अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य क आदिराख्यातः ? इति वदेत् तावत् यत् खलु चतुर्थस्य चान्द्रसंवत्सरस्य पर्यवसानं तत खलु पञ्चमस्य अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य आदिः अनन्तरपुरस्कृतः समयः तावत् स खलु किं पर्यवसितः आख्यातः इति वदेत्, तावत् यः खलु प्रथमस्य चान्द्रसंवत्सरस्यादिः स खलुः पञ्चमस्य अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य पर्यवसानम् अनन्तरपश्चात्कृतः समयः । तस्मिन्

समये च खलु चन्द्रः केन नक्षत्रेण योगं युनक्ति ?, तावत् उत्तराभिराषाढाभि उत्तराणामाषाढानां चरमसमये, तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण योगं युनक्ति, तावत् पुष्येण, पुष्यस्य खलु एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः, त्रिचत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागाः मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्त्वा त्रयस्त्रिंशच्चूर्णिकाभागा शेषाः ॥सू. ११॥

एकादशं प्राभृतं समाप्तम् ॥ ११ ॥

व्याख्या—'ता कहं ते' इति 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण हे भगवन्' 'ते' त्वया 'संवच्छराणामाई' संवत्सराणामादि 'आहिए' आख्यातः ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु । भगवानाह—'तत्थ खलु' इत्यादि, 'तत्थ खलु' तत्र संवत्सराणामादि विषये खलु—निश्चयेन 'इमे' इमेऽग्रे वक्ष्यमाणाः 'पंच संवच्छरा' पञ्च संवत्सराः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ताः कथिताः 'तं जहा' तद्यथा ते इमे यथा—'चंदे' चान्द्रः चान्द्रः संवत्सर प्रथम ? 'चंदे' चान्द्र. पुनरपि चान्द्रसंवत्सरो द्वितीयः २, 'अभिवड्ढिए' अभिवर्द्धितः अभिवर्द्धित संवत्सरस्तृतीया. ३, 'चंदे' चान्द्रः पुनश्च चान्द्रः संवत्सरश्चतुर्थ ४, 'अभिवड्ढिए' अभिवर्द्धितः अभिवर्द्धितसंवत्सरः पञ्चम ५. एते पञ्चसंवत्सरा कथिताः । एतेषां स्वरूपं पूर्वं प्रदर्शित मेवेति । अथ संवत्सराणामादि पृच्छति— 'ता एएसिणं' इत्यादि, 'ता' तावत 'एएसिणं' एतेषां पूर्वोक्तानां खलु 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणा मध्ये 'पढमस्स' प्रथमस्य 'चंदसंवच्छरस्स' चान्द्रसंवत्सरस्य चान्द्राभिधसवत्सरस्य 'के आई' क आदिः 'आहिए' आख्यात ?, 'तिवएज्जा' इति वदेत् कथयतु हे भगवन् ? भगवानाह—'ता जेणं' इत्यादि 'ता' तावत् 'जे णं' यत् खलु पाश्चात्ययुगवर्त्तिन पञ्चमस्याभिवर्द्धितसंवत्सरस्य 'पज्जवसाणे' पर्यवसानम् अन्तिमसमयः 'से णं' स खलु समयः 'पढमस्स चंदसंवच्छरस्स' प्रथमस्य चान्द्रसंवत्सरस्य 'आई' आदिरस्ति, स कीदृशः समयः ? इत्याह—'अणंतरपुरक्खडे समए' अनन्तरपुरस्कृतः समयः पाश्चात्ययुगवर्तिपञ्चमाभिवर्द्धितः संवत्सरादन्तररहित आगामी यः समयः स इति । अयं प्रथमसंवत्सरस्यादिः कथितः, साम्प्रतं पर्यवसानसमयविषये प्रश्नोत्तरमाह—'ता से णं' इत्यादि, 'ता से णं' तावत् स खलु प्रथमश्चान्द्रसंवत्सरः किं पर्यवसितः कि पर्यवसानवान् 'आहिए' आख्यातः ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु । उत्तरमाह—'ता जे णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जे णं' यः खलु 'दोच्चस्स चंदसंवच्छरस्स' द्वितीयस्य चान्द्रसंवत्सरस्य 'आई' आदिः 'से णं' स खलु 'पढमस्स चंदसंवच्छरस्स' प्रथमस्य चान्द्रसवत्सरस्य 'पज्जवसाणे' पर्यवसानम् अन्तिमसमयः, कीदृशः 'अणंतरपच्छाकडे समए' अनन्तरपश्चात्कृतः, अनन्तर अन्तररहितः य पश्चात्कृतः अतीतः समयः स इति । अथ तत्समये चन्द्रयोगं पृच्छति 'तं समयं च णं' इत्यादि, 'तं समयं च णं' तस्मिन् सवत्सरपर्यवसानभूते समये खलु चंदे चन्द्रः 'केणं णक्खत्तेणं जोयं जोएइ' केन नक्षत्रेण सह योगं युनक्ति योगं करोति ? इति प्रश्नः । इह

द्वादशभिः पौर्णमासीभिश्चान्द्रः संवत्सरो भवति, ततो यदेव प्राक् दशमप्राभृतस्य द्वाविंशतितमे द्वादश्यां पौर्णमास्यां चन्द्रनक्षत्रयोगपरिमाणं सूर्यनक्षत्रयोगपरिमाणं च प्रोक्तं तदेव अन्यूनातिरिक्तं परिपूर्णमत्रापि ज्ञातव्यम्, गणिभावनाऽपि सैवकर्त्तव्या, तदेवाह सूत्रकारः 'ता उत्तराहिं' इत्यादि 'ता' तावत् 'उत्तराहिं आसाढाहिं' उत्तराभिरापाढाभिः उत्तरापाढानक्षत्रस्य चतुस्तारकत्वाद बहुवचनम् उत्तरापाढानक्षत्रेण सह चन्द्रो योगं युनक्ति, तत्रापि कति मुहूर्त्तान् यावत् चन्द्रो-योगं युनक्ति ? इत्यत्राह- 'उत्तराणं' इत्यादि, 'उत्तराणं आसाढाणं' उत्तराणामापाढानां उत्तरापाढा नक्षत्रस्य 'छव्वीसं मुहुत्ता' षड्विंशतिर्मुहूर्त्ताः, 'मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्य च 'छव्वीसं बावट्ठिभागा' षड्विंशतिर्द्वापष्टिभागाः, 'बावट्ठिभागं च' तं द्वापष्टिभागं च 'सत्तट्ठिहा छित्ता' सप्तपष्टिधा विभज्य तेभ्यः 'चउपण्णं' चतुष्पञ्चाशत 'चुण्णियाभागा' चूर्णिका भागाः (२६–$\frac{२६}{६२}$|$\frac{५४}{६७}$) 'सेसा' शेषाः अवशिष्टा भवेयुः तावत्पर्यन्तं चन्द्र उत्तरापाढानक्षत्रेण सह योगं युनक्तीति भावः। एवं शेषसंवत्सरगतानामादि पर्यवसानसूत्राणां प्राभृतपरिसमाप्तिपर्यन्तं गणितभावना कर्त्तव्या, तथाहि—सा एव ध्रुवराशिः ६६।५।१।) एकस्य चान्द्रसंवत्सरस्य द्वादशपौर्णमास्यो भवन्तीति द्वादशभिर्गुण्यते जातानि सप्तशतानि द्विनवत्यधिकानि मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षष्टिर्द्वापष्टिभागाः, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य द्वादशसप्तपष्टिभागाः (७९२–$\frac{६०}{६२}$|$\frac{१२}{६७}$) तत एतस्मात् "मूले सत्तेव चोयाला" इत्यादि करणगाथावचनात् चतुश्चत्वारिंशदधिकसप्तशतमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वापष्टिभागाः, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तपष्टिभागाः (७४४–$\frac{२४}{६२}$|$\frac{६६}{६७}$) अभिजित आरभ्य मूलपर्यन्तनक्षत्राणां शोध्याः, तत स्त्रिंशन्मुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चत्रिंशद् द्वापष्टिभागाः एकस्य च द्वापष्टिभागस्य त्रयोदशसप्तपष्टिभागाः (१८–$\frac{३५}{६२}$|$\frac{१३}{६७}$) तत आगतं प्रथमचान्द्रसंवत्सरस्य पर्यवसानसमये उत्तरापाढानक्षत्रस्य पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात तिष्टन्ति शेषा. षड्विंशतिर्मुहूर्त्ताः षड्विंशतिर्द्वापष्टिभागाः एकस्य च द्वापष्टिभागस्य चतुःपञ्चाशत्सप्तपष्टिःचूर्णिका भागाः (२६ $\frac{२६}{६२}$|$\frac{५४}{६७}$) अथ सूर्यस्य नक्षत्रयोगमाह—'तं समयं च णं' इत्यादि, 'तं समयं च णं तस्मिन् समये च खलु 'सूरिए' सूर्यः केणं णक्खत्तेणं जोयं जोएइ' केन नक्षत्रेण सह योगं युनक्ति ? उत्तरमाह—'ता पुणव्वसुणा' इत्यदि, 'ता' तावत् पुणव्वसुणा' पुनर्वसुना पुनर्वसुनक्षत्रेण सह सूर्यो योगं युनक्तीति भावः। पुनर्वसोः कतिमुहूर्त्तादिपु

शेषेषु सूर्यो योगं युनक्तीत्याह-'पुणव्वसुस्स' इत्यादि, पुणव्वसुस्स' पुनर्वसोर्नक्षत्रस्य 'सोलस-मुहुत्ता' षोडशमुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य 'अट्ठय बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स' अष्ट च द्वाषष्टि भागा मुहूर्त्तस्य 'बावट्ठिभागं च' द्वापष्टिभागं च 'सत्तट्ठिहा छित्ता' सप्तषष्टिधा छित्वा तेषु 'वीसं चुण्णियाभागा' विंशतिश्चूर्णिका भागाः (१६-$\frac{८}{६२}$|$\frac{२०}{६७}$) 'सेसा' शेषाः अवशिष्टा भवेयुस्त-त्पर्यन्तं सूर्यः पुनर्वसुनक्षत्रेण सह योगं युनक्ति। अत्रापि स एव ध्रुवराशिः ६६।५।१। द्वादशभिर्गुण्यते, जातानि द्विनवत्यधिकानि सप्तशतानि मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षष्टिर्द्वाषष्टि भागाः, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य द्वादश सप्तपष्टि भागाः (७९२ $\frac{६०}{६२}$|$\frac{१२}{६७}$), एतस्मात् पुष्य शोधनकम्-एकोनविंशतिमुहूर्त्ताः, त्रिचत्वारिंशद् द्वापष्टिभागाः, त्रयस्त्रिंशच्च सप्तषष्टिभागाः (१९ $\frac{४३}{६२}$|$\frac{३३}{६७}$), इत्येतत्प्रमाणं पूर्वोक्तरीत्या शोध्यन्ते, स्थितानि शेषाणि त्रिसप्तत्यधिकानि सप्तशता-नि मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षोडश द्वापष्टिभागाः, एकस्य च द्वापष्टि भागस्य षट्चत्वारिंशत् सप्तपष्टि भागाः (७७३ $\frac{१६}{६२}$|$\frac{४६}{६७}$) तत एतस्माद्राशेश्चत्वारिंशदधिकसप्तशत मुहूर्त्ताः, एकस्य मुहूर्त्त-स्य च चतुर्विंशतिर्द्वापष्टिभागाः, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः (७४४- $\frac{२४}{६२}$|$\frac{६६}{६७}$) अश्लेषात आरभ्य आर्द्रापर्यन्तानां नक्षत्राणां शुद्धाः, ततस्तिष्ठन्ति शेषाः- अष्टाविंशतिं मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिपञ्चाशद् द्वापष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य सप्तचत्वारिंशत् सप्तपष्टिभागाः (२८$\frac{५३}{६२}$|$\frac{४७}{६७}$) पुनर्वसुनक्षत्रगताः। तत आगतं पुन-र्वसुनक्षत्रस्य पञ्च चत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् तस्य षोडशसु मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्ट द्वापष्टिभागेषु, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य विंशतौ सप्तषष्टिभागेषु (१६ $\frac{८}{६२}$|$\frac{२०}{६७}$) शेषेषु सूर्यः पुनर्वसु नक्षत्रेण सह योगं युनक्तीति। अथ द्वितीय चान्द्रसंवत्सरस्यादि पर्यवसानविषये प्राह- 'ता एएसिणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसिणं' एतेषां वक्ष्यमाणानां खलु 'पंचण्हं संवच्छ-राणं' पञ्चानां सवत्सराणं मध्ये 'दोच्चस्स चंदसंवच्छरस्स' द्वितीयस्य चान्द्रसंवत्सरस्य 'आई' आदिः 'के आहिए' कः आख्यातः कुत्र कथितः? 'तिवएज्जा' इति वदेत्। भगवानाह-'ता जे णं' इत्याद, 'ता' तावत् 'जे णं' यत् खलु 'पढमस्स चंदसंवच्छरस्स'

प्रथमस्य चान्द्रसंवत्सरस्य **'पज्जवसाणे'** पर्यवसानम्—अन्तभाग. **'से णं'** तत खलु **'दोच्चस्स चंदसंवच्छरस्स'** द्वितीयस्य चान्द्रसवत्सरस्य **'आई'** आदिराख्यातः, कीदृशः ? **'अणंतरपुरक्खडे-समए'** अन्तरपुरस्कृतसमयः पूर्वसंवत्सराद् अन्तररहितः अनागत संवत्सरात्पूर्वभागस्थितः समय इति । अथ पर्यवसान समय माह—**'तासेणं'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **'सेणं'** स खलु समयः **''किं पज्जवसिए'** किं पर्यवसितः किं पर्यवसानवान् **'आहिए'** आख्यात कथितः ? **'ति वएज्जा'** इति वदेत वदतु भगवन् । उत्तरमाह—**'ता जे णं'** इत्यादि **'ता'** तावत् **'जे णं'** यः खलु **'तच्चस्स'** तृतीयस्य **'अभिवड्ढियसंवच्छरस्स'** अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य **'आई'** आदि समयः **'से णं'** स खलु **'दोच्चस्स संवच्छरस्स'** द्वितीयस्य चान्द्राभिधानस्य संवत्सरस्य **'पज्जवसाणे'** पर्यवसानं भवति, तद्गतसमयः कीदृशः ? इत्याह **'अणंतरपच्चाकडे** अनन्तर पश्चाकृतः द्वितीय चान्द्रवसवत्सरादन्तररहितः पश्चात्कृतः पश्चाद्भागः अतीतभागरूपः **'समए'** समय इति । **'तं समयं च णं'** तस्मिन् समये च खलु **'चंदे'** चन्द्रः **'केणं णक्खत्तेणं जोयं जोएइ'** केन नक्षत्रेण सह योगं युनक्ति ? उत्तरमाह—**'ता पुव्वाहिं आसाढाहिं'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **'पुव्वाहिं आसाढाहिं'** पूर्वाभिराषाढाभिः पूर्वाषाढानक्षत्रेणेत्यर्थः । तत्रापि कतिषु मुहूर्त्तेषु शेषेषु चन्द्रः पूर्वाषाढानक्षत्रेण सह योग युनक्ति ? तदाह**'पुव्वाणं आसाढाणं'** पूर्वाणामाषाढानां पूर्वाषाढानक्षत्रस्य चतुस्तारकत्वाद् बहुवचनम्, तत पूर्वाषाढानक्षत्रस्य **'सत्तमुहुत्ता'** सप्त मुहूर्त्ताः, **'मुहुत्तस्स'** एकस्य मुहूर्त्तस्य **'तेवण्णं च बावट्ठिभागा'** त्रिपञ्चाशच्च द्वाषष्टि भागाः, तथा **'बावट्ठिभागं च'** एकं द्वाषष्टिभागं च **'सत्तट्ठिहा छित्ता'** सप्तषष्टिधा छित्वा विभज्य तद्गताः **'इगतालीसं'** एकचत्वारिंशत् **'चुण्णियाभागा'** चूर्णिका भागाः सप्तषष्टिभागा इत्यर्थः (७—$\frac{५३}{६२}\Big|\frac{४१}{६७}$) इत्येतावत्प्रमाणा मुहूर्त्ता पूर्वाषाढा नक्षत्रस्य यदा **'सेसा'** शेषाः अवशिष्टास्तिष्ठेयुस्तावत्परिमितं समयं यावत् चन्द्रः पूर्वाषाढानक्षत्रेण सह योगं युनक्तीति भावः अथास्य गणितप्रकारः प्रदर्श्यते द्वितीय चान्द्रसंवत्सरपरिसमाप्तिश्चतुर्विंशत्या पौर्णमासीभिर्भवतीति पूर्वोक्तः स एव (६६ । ५ । १) ध्रुवराशिश्चतुर्विंशत्या गुण्यते, जातानि—चतुरशीत्यधिकानि पञ्चदशशतानि मुहूर्त्तानां, तद्गता विंशत्युत्तरशतसंख्यका द्वाषष्टि भागाः एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य सम्बन्धिनश्चतुर्विंशतिः सप्तषष्टिभागाः (१५८४—$\frac{१२०}{६२}\Big|\frac{२४}{६७}$) एतस्मात् राशेः एकोनविंशत्यधिकाष्टशत मुहूर्त्ता. एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिभागाः (८१९—$\frac{२४}{६२}\Big|\frac{६६}{६७}$) एकस्य परिपूर्णनक्षत्रपर्यायस्य शोध्यन्ते तत पश्चात् स्थितानि मुहूर्त्तानां सप्तशतानि पञ्चषष्ट्यधिकानि, तद्गताः पञ्चनवति

द्वाषष्टिभागाः, एकस्य द्वाषष्टिभागस्य पञ्चविंशतिः सप्तषष्टिभागाः, (७६५ $\frac{१५}{६२}$|$\frac{२५}{६७}$) ततः 'मूले सत्तेव चोयाला' इत्यादि–करणवचनात् चतुश्चत्वारिंशदधिकसप्तशतमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः (७४४ $\frac{२४}{६२}$|$\frac{६६}{६७}$) अभिजिदादि मूलपर्यन्तानां नक्षत्राणां शुद्धाः, ततः स्थिताः शेषा द्वाविंशतिर्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टौ द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षड्विंशतिः सप्तषष्टिभागाः– (२२|$\frac{८}{६२}$|$\frac{२६}{६७}$) गताः । तत आगतम्–द्वितीय चन्द्रसंवत्सरस्य पर्यवसानसमये पूर्वाषाढानक्षत्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् तस्य सप्त मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिपञ्चाशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य द्वाषष्टिभागस्य च एकचत्वारिंशत् सप्तषष्टि भागाः (७|$\frac{५३}{६२}$|$\frac{४१}{६७}$), शेषास्तिष्ठन्ति, इत्येतत्प्रमाणेषु मुहूर्त्तादिषु शेषेषु सत्सु चन्द्रः पूर्वाषाढानक्षत्रेण सह योगं युनक्तीति । अथ सूर्येण सह नक्षत्रयोगमाह–'**तं समयं च णं सूरिए**' इत्याति, '**तं समयं च णं**' तस्मिन् चन्द्रस्य पूर्वाषाढानक्षत्रयोगरूपे समये च खलु '**सूरिए**' सूर्यः '**के णं णक्खत्तेणं**' केन नक्षत्रेण सह '**जोयं जोएइ**' योगं युनक्ति ? उत्तरमाह–'**ता पुणव्वसुणा**' इत्यादि, '**ता**' तावत् '**पुणव्वसुणा**' पुनर्वसुना सह सूर्यः योगं युनक्ति । तत्रापि मुहूर्त्तादिकमाह–'**पुणव्वसुस्स णं**' पुनर्वसोः पुनर्वसुनक्षत्रस्य खलु '**बायालीसं मुहुत्ता**' द्विचत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः, '**मुहुत्तस्स**' एकस्य मुहूर्त्तस्य '**पणतीसं च बावट्ठिभागा**' पञ्चत्रिंशच्च द्वाषष्टि भागाः, '**बावट्ठिभागं च**' तद्गतमेकं द्वाषष्टिभागं च '**सत्तट्ठिहा छित्ता**' सप्तषष्टिधा छित्वा विभज्य तत्सम्बन्धिनः '**सत्त चुण्णिया भागा**' सप्त चूर्णिकाभागाः सप्तषष्टि भागाः (४२|$\frac{३५}{६२}$|$\frac{७}{६७}$) '**सेसा**' शेषाः अवशिष्टास्तिष्ठेयुस्तत्समये सूर्यः पुनर्वसुनक्षत्रेण सह योगं युनक्तीति भावः । अस्य गणितप्रकारः प्रदर्शते–अत्रापि स एव ध्रुवराशिः (६६|५|१|) चतुर्विंशत्या गुण्यते, जातानि चतुरशीत्यधिकानि पञ्चदशशतानि मुहूर्त्तानाम्, तद्गताः विंशत्युत्तरशतसंख्यका द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्विंशतिः सप्तषष्टि भागाः (१५८४|१२०|२४|, तत एतस्माद् राशेः एकोनविंशत्यधिकाष्टशतमुहूर्त्ताः एकस्य मुहूर्त्तस्य च चतुर्विंशति द्वाषष्टि भागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टि भागाः (८१९|$\frac{२४}{६२}$|$\frac{६६}{६७}$), एतावत्प्रमाणः परिपूर्णो नक्षत्र

पर्यायः शोध्यते, तिष्ठन्ति पश्चात् पञ्चषष्ट्यधिकानि सप्तशतानि मुहूर्त्तानाम्, एक मुहूर्त्तसम्बन्धिनश्च पञ्चनवतिर्द्वाषष्टिभागाः, एकस्य द्वाषष्टिभगस्य च पञ्चविंशति सप्तषष्टिभागाः, (७६५|९५/६२|२५/६७)। तत एतेभ्य एकोनविंशति मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशत् सप्तषष्टिभागाः (१९+४३।३३) पुष्यस्य शुद्धाः स्थितानि पश्चात् षट्चत्वारिंशदधिकानि सप्तशतानि मुहूर्त्तानाम् एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकपञ्चाशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकोनषष्टिः सप्तषष्टि भागाश्च (७४६|५१/६२|५९/६७)। ततः पुनरपि एतस्माद् राशेः चतुश्चत्वारिंशदधिकसप्तशतमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टि सप्तषष्टिभागाः (७४४|२४/६२|६६/६७) अश्लेषाद्यार्द्रापर्यन्तानां नक्षत्राणां शोध्यन्ते, स्थितौ पश्चात् द्वौ मुहूर्त्तौ, एकस्य च मूहूर्त्तस्य षड्विंशति द्वाषष्टि भागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षष्टिः सप्तषष्टि भागाः (२।२६।६०), एतावत्परिमितेषु मुहूर्त्तादिषु पुनर्वसुनक्षत्रस्य पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकस्य गतेषु सत्सु, तथा द्विचत्वारिंशन्मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चत्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तसु सप्तषष्टिभागेषु (४२।३५।७।) शेषेषु सत्सु द्वितीयचान्द्रसंवत्सरस्य पर्यवसानसमये सूर्यः पुनर्वसुनक्षत्रेण सह योगं युनक्तीति। अथ तृतीयाभिवर्द्धितसंवत्सरविषये प्राह—'**ता एएसिणं**' इत्यादि, '**ता**' तावत '**एएसिण**' एतेषां पूर्वोक्तानां '**पचण्हं संवच्छराणं**' पञ्चानां चन्द्रादि संवत्सराणां मध्ये '**तच्चस्स अभिवड्ढियसंवच्छरस्स**' तृतीयस्याभिवर्द्धितसंवत्सरस्य '**के आई आहिए**' क आदिराख्यातः? '**तिवएज्जा**' इति वदेत् वदतु कथयतु। भगवानाह—'**ता जे णं**' इत्यादि, '**ता**' तावत् '**जे णं**' यत् खलु '**दोच्चस्स चंदसंवच्छरस्स**' द्वितीयस्य चान्द्रसंवत्सरस्य '**पज्जवसाणे**' पर्यवसानं '**से णं**' तत् खलु '**तच्चस्स अभिवड्ढिय संवच्छरस्स**' तृतीयस्याभिवर्द्धितसंवत्सरस्य '**आई**' आदिर्भवति, कीदृशः? इत्याह—'**अणंतर पुरक्खडे समए**' अनन्तरपुरस्कृतः समयः, अनन्तरः द्वितीयचान्द्रसंवत्सराद अन्तररहितः पुरस्कृत तृतीयाभिवर्द्धितसंवत्सरस्य पूर्वगतः समय इति। अथ पर्यवसानविषये आह—'**ता से णं किं पज्जवसिए**' इत्यादि, '**ता**' तावत् '**से णं**' स पूर्वोक्त स्तृतयोऽभिवर्द्धितसवत्सरः '**किं पज्जवसिए**' किं पर्यवसितः कीदृक् पर्यवसानवान् '**आहिए**' आख्यातः? '**तिवएज्जा**' इति वदेत्। भगवानाह—'**ता जेणं**' इत्यादि, '**ता**' तावत् '**जे णं**' यः खलु '**चउत्थस्स**' चतुर्थस्य '**चंदसंवच्छरस्स**' चान्द्रसंवत्सरस्य '**आई**' आदिः आदिसमयः '**से णं**' स खलु समयः '**तच्चस्स**

अभिवड्ढिय संवच्छरस्स' तृतीयस्याभिवर्द्धितसंवत्सरस्य. 'पज्जवसाणे' पर्यवसानम्—अन्तः, स कीदृशः समयः इत्याह—'अणंतरपच्छा कडे समए' अनन्तरपश्चात्कृतः—अन्तररहितो पश्चाद् भागरूपः समयः अथ चन्द्रयोगमाह—'तं समयं च णं' इत्यादि, 'तं समयं च णं' तस्मिन् तृतीयाभिवर्द्धिसंवत्सरस्य पर्यवसानरूपे समये च खलु 'चंदे' चन्द्रः 'केणं णक्खत्तेणं' केन नक्षत्रेण सह 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति ?। भगवानाह—'ता उत्तराहिं' इत्यादि 'ता' तावत् 'उत्तराहि आसाढाहिं' उत्तराभिराषाढाभिः, उत्तराषाढानक्षत्रेण सह चन्द्रो योगं युनक्ति । तत्रापि मुहूर्त्तादिकमाह—'उत्तराणं' इत्यादि, 'उत्तराणं आसाढाणं' उत्तराणामाषाढानाम् उत्तराषाढानक्षत्रस्य 'तेरस मुहुत्ता ।' त्रयोदश मुहूर्त्ताः 'मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्य 'तेरस य बावट्ठिभागा' त्रयोदश च द्वाषष्टिभागाः, 'बावट्ठिभागं च' द्वाषष्टि भागं च 'सत्तट्ठिहा छित्ता' सप्तषष्टिधा छित्वा विभज्य 'सत्तावीसं चुण्णिया भागा' सप्तविंशतिश्चूर्णिका भागा (१३।१३।२७) 'सेसा' शेषा अवशिष्टाः तिष्ठेयुस्तदा चन्द्र उत्तराषाढानक्षत्रेण सह योगं युनक्तीति भावः । अस्य गणितप्रकारः प्रदर्श्यते— तृतीयाभिवर्द्धितसंवत्सरस्य परिसमाप्तिः सप्तत्रिंशता पौर्णमासी भिर्भवतीति स एव ध्रुवराशिः— (६६।५।११) सप्तत्रिंशता गुणनीयः, ततो जातानि द्वाचत्वारिंशदधिकानि चतुर्विंशतिमुहूर्त्तशतानि; एकस्य मुहूर्त्तस्य पञ्चाशीत्यधिकशतसंख्यका द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तत्रिंशत् सप्तषष्टिभागाः (२४४२।१८५।३७) । तत एतस्माद्राशेः एकोन विंशत्यधिकानि अष्टौ मुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वाषष्टि भागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टि भागाः (८१९।२४।६६) इति सकलनक्षत्रपर्यायपरिमाणं द्वाभ्यां गुणयित्वा शोध्यते; ततो द्वाभ्यां गुणितो जातो राशिः—अष्टत्रिंशदधिकानि षोडश शतानि मुहूर्त्तानाम् एकस्य मुहूर्त्तस्य एकोन पञ्चाशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्चषष्टिः सप्तषष्टिभागाः (१६३८। ४९। ६५)। एष राशिः पूर्वप्रदर्शितराशेः (२४४२।१८५।३७।) शोध्यते, शोधिते च स्थितः पश्चाद् राशिः— चतुरधिकानि अष्टौ मुहूर्त्तशतानि, तत् सम्बन्धिनः पञ्चत्रिंशदधिकमेकं शतं द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकोनचत्वारिंशतत्सप्तषष्टिभागाः (८०४।१३५।३९) एतावद्रूपः । तत एतस्माद्राशेः चतुः सप्तत्यधिकसप्तशतमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति—द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टि भागाः (७७४।२४।६६) अभिजित आरभ्य पूर्वाषाढा पर्यन्तानां नक्षत्राणां शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चाद्-एकत्रिंशन्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः (३१।४८।४०) तत आगतम्—तृतीयाभिवर्द्धितसंवत्सर पर्यवसानसमये उत्तराषाढानक्षत्रस्य पञ्च चत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात्तस्य त्रयोदश मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोदश द्वाषष्टि भागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागाः (१३।

१३।२७) इति । अथ सूर्येण सह नक्षत्रयोगमाह—'तं समयं च णं' इत्यादि, 'तं समयं च णं' तस्मिन् चन्द्रस्य पूर्वोक्तनक्षत्रयोगरूपे समये च खलु 'सूरिए, सूर्यः 'केणं णक्खत्तेणं' केन नक्षत्रेण सह 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति ?''—भगवानाह—'ता पुणव्वसुणा' इत्यादि, 'ता' तावत् 'पुणव्वसुणा' पुनर्वसुना पुनर्वसुनक्षत्रेण सह योगं युनक्ति । अथ पुनर्वसोर्मुहूर्त्तादिक प्रदर्शयति 'पुणव्वसुस्स' इत्यादि, 'पुणव्वसुस्स' पुनर्वसुनक्षत्रस्य 'दो मुहूत्ता' द्वौ मुहूर्त्तौ, 'छप्पण्णं च बावट्ठिभागा मुहूत्तस्स' षट् पञ्चाशच्च द्वाषष्टि भागाः मुहूर्त्तस्य, तथा 'बावट्ठिभागं च' द्वाषष्टिभागं च 'सत्तट्ठिहा छित्ता' सप्तषष्टिधा छित्वा-विभज्य तत्सम्बन्धिनः 'सट्ठी' षष्टिः 'चुण्णियाभागा' चूर्णिका भागाः सप्तषष्टि भागाः (२।५६।६०) 'सेसा' शेषा अवशिष्टास्तिष्ठन्ति तस्मिन् समये सूर्यः पुनर्वसुनक्षत्रेण सह योगं युनक्तीति । कथमिति, गणितं प्रदर्श्यते—अत्रापि स एव ध्रुवराशिः (६६।५।१) पूर्ववदेव सप्तत्रिंशता गुण्यते, जातानि पूर्ववदेव द्वाचत्वारिंशदधिकचतुर्विंशतिशतमुहूर्ताः, पञ्चाशीत्यधिकशत द्वाषष्टिभागाः, सप्तत्रिंशच्च सप्त षष्टिभागाः (२४४२।१८५।३७) । तत एतेभ्यः पूर्वोक्त चन्द्रनक्षत्रयोगवत् सकलनक्षत्रपर्यायपरिमाणं (८१९।२४।६६) द्विगुणं (१६३८। ४९।६५) कृत्वा शोध्यते, स्थितानि पश्चात् चन्द्रनक्षत्रयोगसदृशान्येव चतुरुत्तराणि अष्टौ मुहूर्त्त शतानि, तत्सम्बन्धिनः पञ्चत्रिंशदधिकं शतं द्वाषष्टि भागाः, एकोनचत्वारिंशच्च सप्तषष्टिभागाः (८०४।१३५।३९) । तत एतेभ्यः पुनरपि एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः, त्रिचत्वारिंशद द्वाषष्टिभागाः, त्रयस्त्रिंशत् सप्तषष्टि भागाश्च (१९।४३।३३।) पुष्यनक्षत्रस्य शुद्धा', स्थितानि पश्चात्—पञ्चाशीत्य धिकसप्तशतमुहूर्त्ताः, एकस्य मुहूर्त्तस्य च द्विनवति द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य षट् सप्तषष्टि भागाः (७८५।९२।६)। ततो भूयोऽप्येतेभ्यः चतुश्चत्वारिंशदधिकानि सप्त मुहूर्त्तश-तानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टि भागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टि भागाः (७४४।२४।६६) अश्लेषादीनां आर्द्रापर्यन्तानां नक्षत्राणां शुद्धाः, स्थिताः पश्चात्—द्वाचत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चद्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्त सप्तषष्टिभागाः (४२।५।७।) गताः तत अगतम् — तृतीयाभिवर्द्धितसंवत्सरपर्यवसानसमये सूर्यः पुनर्वसुनक्षत्रस्य पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात्तस्य द्वौ मुहूर्त्तौ, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट् पञ्चाशद द्वाषष्टि भागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षष्टिश्चूर्णिकाभागाः (२।५६।६०), एतावत्परिमितेषु मुहूर्त्तादिषु शेषेषु सत्सु सूर्यः पुनर्वसुनक्षत्रेण सह योगं करोतीति । अथ चतुर्थचान्द्रसंवत्सरविषये प्राह— 'ता एएसिणं' इत्यादि 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां पूर्वोक्तानां चन्द्रादीनां 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चाना संवत्सराणां मध्ये 'चउत्थस्स' चतु-र्थस्य 'चंदसंवच्छरस्स' चान्द्रसंवत्सरस्य 'के आई.आहिए' क आदिराख्यातः ? 'तिवए-

ज्जा' इति वदेत् वदतु हे भगवन् ! भगवानाह—'ता जेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जे णं' यत्खलु 'तच्चस्स अभिवड्ढियसंवच्छरस्स' तृतीयस्याभिवर्द्धितसंवत्सरस्य 'पज्जवसाणे' पर्यवसानं 'से णं' तत्खलु 'चउत्थस्स चंदसंवच्छरस्स' चतुर्थस्य चान्द्रसंवत्सरस्य 'आई' आदिः कीदृक् समयः ? इत्याह— 'अणंतरपुरक्खडे समए' अनन्तरपुरस्कृतः पुरोभागरूपः समयः अनन्तरः अन्तररहितः पुरस्कृतः पुरोभागरूपः समयः। पर्यवसानसमयं पृच्छति— 'ता से णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'से णं' स खलु चतुर्थश्चान्द्रसंवत्सरः 'किं पज्जवसिए' किं पर्यवसितः। कीदृक् पर्यवसानवान् 'आहिए' आख्यातः ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु हे भगवान् ! भगवानाह— 'ता जेणं' इत्यादि 'ता' तावत् 'जे णं' यः खलु 'चरिमस्स' चरमस्य पञ्चमस्य 'अभिवड्ढियसंवच्छरस्स' अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य 'आई' आदिः 'सेणं' स खलु 'चउत्थस्स चंदसंवच्छरस्स' चतुर्थस्य चान्द्रसवत्सरस्य 'पज्जवसाणे' पर्यवसानं भवति, स कीदृक् समयः ? इत्याह— 'अणंतरपच्छाकडे समए' अनन्तर श्चात्कृतः अनन्तरः अन्तररहितः पश्चात्कृतः चतुर्थसंवत्सरस्यान्तभागरूपः समयः। अथ चन्द्रस्य नक्षत्रयोगमाह— 'तं समयं च णं' इत्यादि, 'तं समयं च णं' तस्मिन् चतुर्थचान्द्रसंवत्सरपर्यवसानभूते समये च खलु 'चंदे' चन्द्रः 'केणं णक्खत्तेणं' केन नक्षत्रेण सह 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति ? भगवानाह—'ता उत्तराहिं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'उत्तराहिं आसाढाहिं' उत्तराभिरापाढाभिः उत्तरापाढानक्षत्रेण सह योगं युनक्ति। अथास्य मुहूर्त्तादिकमाह—'उत्तराणं' इत्यादि, 'उत्तराणं आसाढाणं' उत्तराणामापाढानां नक्षत्रस्य 'उणयालीसं मुहुत्ता' एकोनचत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः, 'मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्य 'चत्तालीसं च बावट्ठिभागा' चत्वारिंशच्च द्वापष्टिभागाः, तद्गतं 'बावट्ठिभागं च' द्वापष्टिभागं च 'सत्तट्ठिहा छित्ता' सप्तपष्टिधा छित्वा विभज्य तत्सम्बन्धिनः 'चउद्दस' चतुर्दश 'चुण्णियाभागा' चूर्णिका भागाः सप्तषष्टि भागाः(३९।४०।१४) 'सेसा' शेषा अवशिष्टास्तिष्ठेयुस्तदा चन्द्रः उत्तराषाढानक्षत्रेण सह योगं युनक्तीति। कथमिति गणितं प्रदर्श्यते— चतुर्थचान्द्रसंवत्सरपर्यवसानमेकोनपञ्चाशत्तमपौर्णमासीभिर्भवतीति स एव ध्रुवराशिः (६६।५।१) एकोनपञ्चाशता गुण्यते, जातानि चतुस्त्रिंशदधिकानि द्वात्रिंशन्मुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चचत्वारिंशदधिके द्वे शते द्वापष्टि भागानाम्, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य एकोनपञ्चाशत् सप्तषष्टिभागाः (३२३४।२४५।४९) तत एतस्मात् प्रागुक्तं सकलनक्षत्रपर्यायपरिमाणं (८१९।२४।६६) त्रिभिर्गुणितम् (२४५७।७२।१९८) पूर्वस्माद्राशेः (३२३४।२४५।४९) शोधिते पश्चात् स्थितानि सप्तसप्तत्यधिकानि सप्तशतानि मुहूर्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तत्यधिकमेकं शतं द्वाषष्टि भागानाम्, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्विपञ्चाशत् सप्तषष्टिभागाः (७७७।१७०।५२) एतस्माद् राशेः चतुः सप्तत्यधिकसप्तशतमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वाषष्टिभागाः, एकस्य

च द्वापष्टिभागस्य षट्षष्टि. सप्तषष्टिभागाः (७७४।२४।६६) भूयोऽप्यभिजिदादि र्वापाढापर्य-न्तानां नक्षत्राणां शोध्यन्ते स्थिताः पश्चात् पञ्च मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकविंशतिर्द्वापष्टि भागाः, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य त्रिपञ्चाशत्, सप्तषष्टि भागाः (५।२१।५३) गताः । तत आगतम्—चतुर्थचान्द्रसंवत्सरपर्यवसानसमये उत्तराषाढानक्षत्रस्य पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मक-भागस्य एकोन विंशतिः सप्तषष्टिभागाः (७५८।१२७।१९) ततश्चतुश्चत्वारिंशदधिकसप्तशतमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वीपष्टिभागाः, एकस्य च द्वापष्टि भागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः (७४४।२४।६६) अश्लेपादीनामा र्द्रापर्यन्तानां नक्षत्राणां शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चात् पञ्चदशमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चत्वारिंशद् द्वापष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य विंशतिः सप्तषष्टिभागाः (१५।४०।२०) पुनर्वसुनक्षत्रस्य गताः, तत आगतम् पुनवसोर्नक्षत्रस्य पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मक-त्वात्तस्य चतुर्थचान्द्रसवत्सरपर्यवसानसमये एकोन त्रिंशन्मुहूर्तेपु एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकविंशतौ द्वापष्टिभागेपु, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य सप्तचत्वारिंशति सप्तषष्टि भागेषु (२९।२१।४७) शेषेषु सूर्यः पुनर्वसुनक्षत्रेण सह योगं करोतीति सिद्धम् । अथ पञ्चमाभिवर्द्धितसंवत्सरविषये प्राह- 'ता-एएसिणं' इत्यादि 'ता' तावत् 'एएसिणं' एतेषां चन्द्रादीनां 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चाना सवत्सराणां मध्ये 'पंचमस्स अभिवड्ढियसंवच्छरस्स' पञ्चमस्याभिवर्द्धितसंवत्सरस्य 'के आई' क आदिः 'आहिए' आख्यातः कथितः ? तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु हे भगवन् ! भगवानाह- 'ता जे णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जे णं' यत्खलु 'चउत्थस्स चंदसंवच्छरस्स' चतुर्थस्य चान्द्र सवत्सरस्य 'पज्जवसाणे' पर्यवसानं 'से णं' तत्खलु 'पंचमस्स अभिवड्ढियसंवच्छरस्स' पञ्चमस्याभिवर्द्धितसवत्सरस्य 'आई' आदिरस्ति स कीदृक् समयः ? इत्याह—'अणंतरपुरक्खडे' अनन्तरपुरस्कृत अनन्तरः अन्तररहितः पुरस्कृतः पुरोवर्त्ती भावी 'समए' समयः । अथ पर्यवसान माह--'ता से णं' इत्यादि 'ता' तावत् 'से णं' स खलु पञ्चमाभिर्द्धितसंवत्सरः 'किं पज्जवसिए' किं पर्यवसित किं पर्यवसानवान् 'आहिए' आख्यातः ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु हे भग-वन । भगवानाह— 'ता जेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जे णं' यः खलु—'पढमस्स' प्रथमस्य पुरोवर्त्ति युगस्य य· प्रथमस्तस्य 'चंदसंवच्छरस्स' चान्द्रसवत्सरस्य 'आई' आदिः 'से णं' स खलु 'पंच-मस्स' पञ्चमस्य वर्त्तमानयुगसम्बन्धिनः 'अभिवड्ढियसंवच्छरस्स' अभिवर्द्धितसंवत्सरस्य 'पज्जवसाणे' पर्यवसानम्—अन्तिमः समयः, कीदृशः ? इत्याह—'अणंतर पच्छाकडे समए' अन-न्तरपश्चात्कृत' समय. अनन्तरः अन्तररहितः पश्चात्कृतः अतीतः समयः । चन्द्रेण सह नक्षत्र-योगमाह—'तं समयं च णं' इत्यादि, 'तं समयं च णं' तस्मिन् समये पञ्चमाभिवर्द्धितसंव-त्सरपर्यवसानसमये च खलु 'चंदे' चन्द्रः 'केणं णक्खत्तेणं जोयं जोएइ' केन नक्षत्रेण सह योगं युनक्ति ? उत्तरमाह—'ता उत्तराहिं' इत्यादि, 'ता' तावत् "उत्तराहिं आसाढाहिं' उत्त-राभिरषाढाभिः उत्तराषाढानक्षत्रेण सह योगं युनक्ति । तस्य मुहूर्त्तादिकमाह—'उत्तराणं' इत्यादि

'उत्तराणं आसाढाणं' उत्तराणामाषाढानां उत्तराषाढानक्षत्रस्य 'चरमसमए' चरमसमये अन्तिम भागे चन्द्र उत्तराषाढानक्षत्रेण सह योगं युनक्ति । अस्य गणितप्रकारः—प्रदर्श्यते पञ्चमाभिवर्द्धित संवत्सरपर्यवसानं द्वाषष्टितमपौर्णमासीभिर्भवतीति स एव ध्रुवराशिः (६६।५।१) द्वाषष्टया गुण्यते, जातानि द्विनवत्यधिकानि चत्वारिंशन्मुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य दशोत्तराणि त्रीणि शतानि द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाषष्टिः सप्तषष्टिभागाः (४०९२।३१०।६२), तत एतस्माद्राशेः 'अट्ठसय उगुणवीसा सोहणगं उत्तराणसाढाणं । चउवीसं खलु भागा, छावट्ठी चुण्णियाओ य ॥१॥" इति वचनात् एकोनविंशत्यधिकानि अष्टमुहूर्त्तशतानि एकस्य मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिश्चूर्णिका भागाः (८१९।२४।६६) इत्येतत्परिमितं सकलनक्षत्रपर्यायपरिमाणमत्र पञ्चभिर्गुण्यते, जातानि पञ्चनवत्यधिकानि चत्वारिंशच्छतानि, विंशत्युत्तरं शतं द्वाषष्टिभागाः, त्रिंशदुत्तराणि त्रीणि शतानि सप्तषष्टिभागाः (४०९५।१२०।३३०) एष राशिः शोध्यते, द्वयोः राश्योर्मुहूर्त्तादिकं कृत्वा पूर्वोक्तप्रकारेण शोधने जायते परिपूर्णो राशिः, न किञ्चित्तत्पश्चादवतिष्ठते तत आयाति—उत्तराषाढानक्षत्रचन्द्रयोगस्य चरमसमये द्वाषष्टितमपौर्णमासी परिसमाप्तिकाले पञ्चमाभिवर्द्धितसंवत्सरस्य पर्यवसानं भवतीति । अथ सूर्य नक्षत्रयोगमाह—'तं समयं च णं' इत्यादि, 'तं समयं च णं' तस्मिन् उत्तराषाढानक्षत्रचरम समयचन्द्रयोगरूपे समये च खलु 'सूरिए' सूर्यः 'केणं णक्खत्तेणं' केन नक्षत्रेण सह 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति ? भगवानाह—'ता पुस्सेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् पुस्सेणं' पुष्येण सह योगं युनक्ति । अस्य मुहूर्त्तादिकमाह—'पुस्सस्स णं इत्यादि, 'पुस्सस्स णं' पुष्यस्य पुष्यनक्षत्रस्य खलु 'एगूणवीसं मुहुत्ता' एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः 'मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्य च 'तेयालीसं च बावट्ठिभागा' त्रिचत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागाः, 'बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता' द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा 'तेत्तीसं चुण्णिया भागा' त्रयस्त्रिंशत् चूर्णिकाभागाः सप्तषष्टिभागाः (१९।४३।३३) 'सेसा' शेषाः अवशिष्टास्तिष्ठेयुस्तदा सूर्यः पुष्यनक्षत्रेण सह योगं युनक्तीति । एतदेव गणितेन प्रदर्श्यते—अत्रापि स एव ध्रुवराशिः (६६।५।१) द्वाषष्टया गुण्यते, जातानि द्विनवत्यधिकानि चत्वारिंशन्मुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य दशोत्तराणि त्रीणि शतानि द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वाषष्टिः सप्तषष्टिभागाः (४०९२।३१०।६२) । अत्र च पाश्चात्ययुगस्य परिसमाप्तिः पुष्यस्य दशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टादशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु (१०।१८।३४) अतिक्रान्तेषु भवति, तदनन्तरमन्यद् वर्तमानं युगं प्रवर्त्तते, तत एतदपि युगं भूयोऽपि पुष्यस्य तावन्मात्रेष्वेव मुहूर्त्तादिष्वतिक्रान्तेषु परिसमाप्तिमेति तत एतावत्प्रमाण एकः परिपूर्णो नक्षत्रपर्यायो भवति स च—एकोनविंशत्यधिकानि अष्टौ मुहूर्त्तशतानि एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्त

षष्टिभागाः (८१९।२४।६६) एतावत्परिमित एकः सकलनक्षत्रपर्यायो भवतीति पूर्वमपि च प्रदर्शितः। तत एष सकलनक्षत्रपर्यायः पञ्चभिर्गुणयित्वा प्रागुक्तात् द्वाषष्टि गुणिताद् ध्रुवराशेः शोध्यते तथाहि—पञ्चभिर्गुणितः सकलनक्षत्रपर्यायो जायते—पञ्चनवत्यधिकानि चत्वारिंशन्मुहूर्त्तशतानि, एकस्य मुहूर्त्तस्य दशोत्तरमेकं शतं द्वाषष्टिभागानाम् एकस्य द्वाषष्टिभागस्य त्रिंशदधिकानि त्रीणि शतानि सप्तषष्टिभागाः (४०९।११०।३३०)। एष राशिः पूर्वप्रदर्शितात् द्वाषष्टिगुणिताद् ध्रुवराशेः (४०९२।३१०।६२) पूर्वोक्तेन शोधनकप्रकारेण शोध्यते च परिपूर्णं शुद्धचति, न किञ्चित्पश्चादवतिष्ठते स राशिर्निर्लेपो जायते, तत आगतम्—पुष्यस्य दशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य मुहूर्त्तस्य चाष्टादशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु (१९।४३।३३) पुष्यस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वा देतावत्सु शेषेषु द्वाषष्टितम पौर्णमासी परिसमाप्तिसमये वर्तमान युग परिसमाप्ति समये च सूर्यः पुष्यनक्षत्रेण सह योगं युनक्तीति "ता कहं ते संवच्छराणं आई आहिए" तावत् कथं ते संवत्सराणामादिराख्यातः, इति ॥सूत्रम् १॥

इति श्रीजैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर घासीलाल व्रति विरचितायां
चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिकाख्यायां
व्याख्यायां—एकादशं प्राभृतं
समाप्तम् ॥११॥

। अथ द्वादशं प्राभृतम् ।

गतमेकादशं प्राभृतम्, तत्र संवत्सराणामादिः पर्यवसानं च प्रदर्शितम् । अथ द्वादशं प्राभृतं प्रारभ्यते, तत्र 'कइ संवच्छराआहिया' । कतिसंवत्सरा इति, संवत्सराः कति भवन्तीति नक्षत्रादि संवत्सराणां संख्या, तेषां रात्रिन्दिवाः, मुहूर्त्ताग्राणि च प्रदर्शयिष्यते, इति सम्बन्धेनायातस्यास्य द्वादशस्य प्राभृतस्येदमादिसूत्रम्—'ता कइ णं संवच्छरा आहिया' इत्यादि ।

मूलम्—ता कइणं संवच्छरा आहिया ? तिवएज्जा, तत्थ खलु इमे पंच संवच्छरा पण्णत्ता, तं जहा-णक्खत्ते १ चंदे २, उ ऊ ३, आइच्चे ४, अभिवड्ढिए ५। ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमस्स णक्खत्तसंवच्छरस्स णक्खत्ते मासे तीसइ तीसइ मुहुत्तेणं अहोरत्तेणं गणिज्जमाणे केवइए राइं दियग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा, ता सत्तावीसं राइंदियाइं एक्कवीसं च सत्तट्ठिभागा राइंदियस्स राइंदियग्गेणं आहिए तिवएज्जा । ता से णं केवइए मुहुत्तग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा, ता अट्ठ सयाइं एगूणवीसाइं मुहुत्ताणं, सत्तावीसं च सत्तट्ठि भागा मुहुत्तग्गेणं आहिए तिवएज्जा । ता एस णं अद्धा दुवालसक्खुत्तकडा णक्खत्ते संवच्छरे ता से णं केवइए राइंदियग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा, ता तिण्णि सत्तावीसाइं राइं दियसयाइं अक्कावन्नं च सत्तट्ठिभागा राइंदियस्स राइंदियग्गेणं आहिए तिवएज्जा । ता से णं केवइए मुहुत्तग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा, ता णव मुहुत्तसहस्सा, अट्ठय वत्तीसाइं मुहुत्तसयाइं, छप्पन्नं च सत्तट्ठिभागा मुहुत्तस्स मुहुत्तग्गेणं आहिए तिवएज्जा ? ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चस्स चंदसंवच्छरस्स चंदे मासे तीसइ तीसइ मुहुत्ते णं अहोरत्तेणं गणिज्जमाणे केवइए राइंदियग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा, ता एगूणतीसं राइंदियाइं, वत्तीसं वावट्ठिभागा राइंदियस्स राइंदिग्गेणं आहिए तिवएज्ज, ता से णं केवइए मुहुत्तग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा, ता अट्ठपंचासीयाइं मुहुत्तसयाइं तीसं च वावट्ठिभागा मुहुत्तस्स मुहुत्तग्गेणं आहिए ति वएज्जा, ता एस णं अद्धा दुवालसखुत्तकडा चंदे संवच्छरे, ता सेणं केवइए राइं दियग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा, ता तिण्णिचउप्पन्नाइं राइंदियसयाइं दुवालस य वावट्ठिभागा राइंदियस्स राइं दियग्गेणं आहिए तिवएज्जा, ता से णं केवइए मुहुत्तग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा, ता दस मुहुत्तसहस्साइं छच्च पणवीसाइं मुहुत्तसयाइं पण्णासं च वावट्ठिभागा मुहुत्तस्स मुहुत्तग्गेणं आहिए ति वएज्जा । ता एससिणं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चस्स उउ संवच्छरस्स उऊमासे तीसइ तीसइ मुहुत्तेण अहोरत्तेणं गणिज्जमाणे केवइए राइ दियग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा, ता तीसं राइंदियाणं राइंदियग्गेणं आहिए ति वएज्जा, ता से णं केवइए मुहुत्तग्गेणं आहिए ? ति वएज्जा, ता णव मुहुत्त-

सयाइं मुहुत्तग्गेणं आहिए तिवएज्जा, ता एस अद्धा दुवालस खुत्तकडा उऊ संवच्छरे, ता से णं केवइए राइं दियग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा, ता तिण्णि सट्ठाइं राइंदियसयाइं राइंदियग्गेणं आहिए तिवएज्जा, ता से णं केवइए मुहुत्तग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा दस मुहुत्तसहस्साइं अट्ठय सयाइं मुहुत्तग्गेणं आहिए तिवएज्जा ।३। ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं चउत्थस्स आइच्चे मासे तीसइ तीसइ मुहुत्तेणं अहोरत्तेणं गणिज्जमाणे केवइए राइंदियग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा, ता तीसं राइंदियाइं अवड्ढभागं च राइंदियस्स राइंदियग्गेणं आहिए तिवएवज्जा, ता से णं केवइए मुहुत्तग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा, ता णव पण्णरसाइं मुहुत्तसयाइं मुहुत्तग्गेणं आहिए तिवएज्जा, ता एसणं अद्धा दुवालसखुत्तकडा आइच्चे संवच्छरे, ता से णं केवइए राइंदियग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा, ता तिन्नि छावट्ठाइं राइंदियसयाइं राइंदियग्गेणं आहिए तिवएज्जा, ता से णं केवइए मुहुत्तग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा, ता दस मुहुत्तसहस्साइं णव य असीयाइं मुहुत्तसयाइं मुहुत्तग्गेणं आहिए तिवएज्जा ।४। ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं पंचमस्स अभिवड्ढियसंवच्छरस्स अभिवड्ढिए मासे तीसइ तीसइ मुहुत्तेणं अहोरत्तेणं गणिज्जमाणे केवइए राइंदियग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा, ता एक्कतीसं राइंदियाइं, एगूणतीसं च मुहुत्ता, सत्तरस बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स राइंदियग्गेणं आहिए तिवएज्जा, ता से णं केवइए मुहुत्तग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा ता णं णव एगूणसट्ठाइं मुहुत्तसयाइं, सत्तरस बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स मुहुत्तग्गेणं आहिए तिवएज्जा, ता एसणं अद्धा दुवालसखुत्तकडा अभिवड्ढिए संवच्छरे, ता से णं केवइए राइंदियग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा ता तिण्णि तेसीयाइं राइंदियसयाइं, एक्कतीसं च मुहुत्ता अट्ठारस बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स राइंदियग्गेणं आहिए तिवएज्जा, ता से णं केवइए मुहुत्तग्गेणं आहिए ? तिवएज्जा ? ता एक्कारस मुहुत्तसहस्साइं पंच य एक्कारसाइं मुहुत्तसयाइं, अट्ठारस य बावट्ठिभागामुहुत्तस्स मुहुत्तग्गेणं आहिए तिवएज्जा ॥ सूत्रम् १॥

छाया—तावत् कति खलु संवत्सरा आख्याताः ? इति वदेत् तत्र खलु इमे पञ्च संवत्सराः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा नाक्षत्रः १ चान्द्रः २, आर्त्तवः ३, आदित्यः ४ अभिवर्द्धितः ५। तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां प्रथमस्य नाक्षत्रसंवत्सरस्य नाक्षत्रोमासः त्रिंशत्त्रिंशन्मुहूर्त्तकेन अहोरात्रेण गण्यमानः कियत्कः रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातः ? इति वदेत् तावत् सप्तविंशतिः रात्रिन्दिवानि, एकविंशतिश्च सप्तषष्टिभागा रात्रिन्दिवस्य रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यात इति वदेत्। तावत् स खलु कियत्कः मुहूर्त्ताग्रेण आख्यातः ? इति वदेत् तावत् अष्ट शतानि एकोनविंशानि मुहूर्त्तानाम् सप्तविंशतिश्च सप्तषष्टि भागा मुहूर्त्तस्य मुहूर्त्ताग्रेण आख्यात इति वदेत । तावत् एषा खलु अद्धा द्वादशकृत्वः कृता नाक्षत्र संवत्सरः, तावत् स खलु कियत्कः रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातः ? इति वदेत्, तवात् त्रीणि सप्तविंशानि रात्रिन्दिवशतानि, एक पञ्चाशच्च सप्तषष्टिभागा रात्रिन्दिवस्य रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यात इति वदेत्, तावत् स खलु कियत्कः मुहूर्त्ताग्रेण आख्यातः ? इति वदेत् तावत्

नवमुहूर्त्तसहस्राणि अष्ट च द्वात्रिंशानि मुहूर्त्तशतानि, षट्पञ्चाशच्च सप्तषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य मुहूर्त्ताग्रेण आख्यात इति वदेत् १। तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां द्वितीयस्य चन्द्रसंवत्सरस्य चान्द्रो मासः त्रिंशत् त्रिंशन्मुहूर्त्तकेन अहोरात्रेण गण्यमानः कियत्कः रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातः ? इति वदेत्, तावत् एकोनत्रिंशद् रात्रिन्दिवानि द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा रात्रिन्दिवस्य रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातः इति वदेत् तावत् स खलु कियत्कः मुहूर्त्ताग्रेण आख्यातः ? इति वदेत् अष्टौ पञ्चाशीतानि मुहूर्त्तशतानि, त्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य मुहूर्त्ताग्रेण आख्यात इति वदेत् तावत् एषा खलु अद्धा द्वादश कृत्वः कृता चान्द्रः संवत्सरः, तावत् स खलु कियत्कः रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातः ? इति वदेत्, तावत् त्रीणि चतुष्पञ्चाशानि रात्रिन्दिवशतानि, द्वादश च द्वाषष्टिभागा रात्रिन्दिवस्य रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यात इति वदेत्, तावत् स खलु कियत्कः मुहूर्त्ताग्रेण आख्यातः ? इति वदेत् तावत् दशमुहूर्त्तसहस्राणि, षट् च पञ्चविंशानि मुहूर्त्तशतानि, पञ्चाशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य मुहूर्त्ताग्रेण आख्यात इति वदेत् ।२। तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां तृतीयस्य आर्त्तवसंवत्सरस्य आर्त्तवो मासः त्रिंशत् त्रिंशन्मुहूर्त्तकेन अहोरात्रेण गण्यमानः कियत्कः रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातः ? इति वदेत्, तावत् त्रिंशद् रात्रिन्दिवानां रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यात इति वदेत्, तावत् स खलु कियत्कः मुहूर्त्ताग्रेण आख्यात ? इति वदेत्, तावत् नव मुहूर्त्तशतानि मुहूर्त्ताग्रेण आख्यातः इति वदेत्, तावत् एषा खलु अद्धा द्वादशकृत्वः कृत्वः कृता आर्त्तवः संवत्सरः, तावत् स खलु कियत्कः रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातः ? इति वदेत्, तावत् त्रीणि षष्ट्यधिकानि रात्रिन्दिवशतानि रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यात इति वदेत्, तावत् स खलु कियत्कः मुहूर्त्ताग्रेण आख्यातः ? इति वदेत् तावत् दशमुहूर्त्तसहस्राणि, अष्ट च शतानि मुहूर्त्ताग्रेण आख्यातः इति वदेत् । ३। तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां चतुर्थस्य आदित्य संवत्सरस्य आदित्यो मासः त्रिंशत् त्रिंशन्मुहूर्त्तकेन अहोरात्रेण गण्यमानः कियत्कः रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातः ? इति वदेत्, तावत् त्रिंशद्रात्रिन्दिवानि अपार्द्धभागश्च रात्रिन्दिवस्य रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातः इति वदेत्, तावत् स खलु कियत्कः मुहूर्त्ताग्रेण आख्यातः ? इति वदेत्, तावत् नव पञ्चदशानि मुहूर्त्तशतानि मुहूर्त्ताग्रेण आख्यात इति वदेत्, तावत् एषा खलु अद्धा द्वादशकृत्वः कृता आदित्यः संवत्सरः तावत् स खलु कियत्कः रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातः ? इति वदेत्, तावत् त्रीणि षट्षष्टानि रात्रिन्दिवशतानि रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यात इति वदेत तावत् स खलु कियत्कः मुहूर्त्ताग्रेण आख्यात इति वदेत् ।४। तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां पञ्चमस्य अभिवर्द्धित संवत्सरस्य अभिवर्द्धितो मासः त्रिंशत् त्रिंशन्मुहूर्त्तकेन अहोरात्रेण गण्यमानः कियत्कः रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातः ? इति वदेत्, तावत् एकत्रिंशद् रात्रिन्दिवानि, एकोनत्रिंशच्च मुहूर्त्ताः, सप्तदश द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातः इति वदेत्, तावत् स खलु कियत्क मुहूर्त्ताग्रेण आख्यात ? इति वदेत्, तावत् नव एकोन षष्टानि मुहूर्त्तशतानि सप्तदशद्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य मुहूर्त्ताग्रेण आख्यात इति वदेत्, तावत् एषा खलु अद्धा द्वादशकृत्वः कृता अभिवर्द्धित संवत्सरः । तावत् स खलु कियत्कः रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातः ? इति वदेत्, तावत् त्रीणि त्र्यशीतानि रात्रिन्दिवशतानि, एकविंशतिश्च मुहूर्त्ताः, अष्टादश द्वाषष्टिभागा, मुहूर्त्तस्य रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यात इति वदेत्, तावत् स खलु कियत्कः

मुहूर्त्ताग्रेण आख्यातः ? इति वदेत्, तावत् एकादश मुहूर्त्तसहस्राणि, पञ्चएकादशानि मुहूर्त्तशतानि, अष्टादश च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्ताग्रेण आख्यात इति वदेत् ॥सू. १ ॥

व्याख्या—गौतमः पृच्छति—'ता कइ णं संवच्छरा'इति, 'ता' तावत् 'कइ णं' कति कियत्संख्यकाः खलु 'संवच्छरा' संवत्सराः, 'आहिया'आख्याताः 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् ? गौतमेन एवं पृष्टे भगवानाह—'तत्थ खलु' इत्यादि, 'तत्थ खलु' तत्र संवत्सरविषये खलु 'इमे' इमे-वक्ष्यमाणाः 'पंचसंवच्छरा पण्णत्ता' पञ्च संवत्सराः प्रज्ञप्ता, तद्यथा-'णक्खत्ते' नाक्षत्रः नक्षत्रचारसम्बन्धी 'संवच्छरे' सवत्सरः प्रथमः १, 'चंदे' चान्द्रः चन्द्रचारसम्बन्धी 'संवच्छरे' संवत्सरो द्वितीयः २, 'उऊ' आर्त्तवः ऋतु सम्बन्धी ऋतुजन्यः 'संवच्छरे' संवत्सरस्तृतीय ३, 'आइच्चे' आदित्यः-आदित्यचारजन्यः 'संवच्छरे' संवत्सरश्चतुर्थः ४, 'अभिवड्ढिए' अभिवर्द्धितः यत्र संवत्सरेऽधिको मासः स तादृशः अभिवर्द्धितः 'संवच्छरे' सवत्सरः पञ्चम. एते पञ्च सवत्सरा आख्याता इति । तत्र पञ्चानामपि संवत्सराणां मास मुहूर्त्तादिकमाह—'ता एएसिणं' इत्यादि, 'ता' तावत 'एएसि णं' एतेषां नाक्षत्रादीनां 'पंचण्हं' पञ्चाना 'संवच्छराणं' संवत्सराणां मध्ये 'पढमस्स' प्रथमस्य 'णक्खत्त संवच्छरस्स' नाक्षत्र संवत्सरस्य संबंधी यो 'णक्खत्ते मासे' नाक्षत्रो मासः 'तीसइ तीसइ मुहुत्तेणं' त्रिंशत् त्रिंशन्मुहूर्त्तकेन त्रिंशत् त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकेन 'अहोरत्तेणं' अहोरात्रेण रात्रिन्दिवेन अहोरात्रस्य सर्वदा त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् 'गणिज्जमाणे' गण्यमानः नक्षत्रमासः 'केवइए' कियत्कः कियत्सख्यकाहोरात्रकः कियदहोरात्रवान् एकस्मिन् नक्षत्रमासे कियन्तोऽहोरात्रा इत्यर्थः 'राइंदियग्गेणं' रात्रिन्दिवाग्रेण रात्रिन्दिवपरिमाणेन अहोरात्रप्रमाणेन 'आहिए' आख्यातः ? 'तिवएज्जा' इति एतत्परिमाणं वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् ? । एवं गौतमेन पृष्टे तत्प्रमाणं भगवानाह—'ता सत्तावीसं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'सत्तावीसं राइंदियाइं' सप्तविंशतिः रात्रिन्दिवानि 'राइंदियस्स' एकस्य रात्रिन्दिवस्य 'एक्कवीसं च सत्तट्ठिभागा' ऐकविंशतिश्च सप्तषष्टिभागाः ($२७\frac{२१}{६७}$) 'राइंदियग्गेणं' रात्रिन्दिवाग्रेण अहोरात्रपरिमाणेन 'आहिए' आख्यातः कथितो नक्षत्रमासः, 'तिवएज्जा' इति एवं वदतु कथयतु हे गौतम ! स्वशिष्येभ्यः इति । अथ नक्षत्रमासस्य रात्रिन्दिवपरिमाणे गणित प्रदर्श्यते-युगे हि नक्षत्रमासाः सप्तषष्टिरिति पूर्वं प्रदर्शितमेव । युगे चाहोरात्राः—त्रिंशदधिकानि अष्टादशशतानि (१८३०) तत एषा युगगत नक्षत्रमाससंख्यया सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धाः सप्तविंशतिरहोरात्राः एकस्य चाहोरात्रस्य एकविंशति सप्तषष्टि भागा. ($२७\frac{२१}{६७}$) सूत्रोक्ता आगता इति । अथ नक्षत्रमासस्य मुहूर्त्तपरिमाणं पृच्छति—'ता सेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'से णं' स खलु नक्षत्रमास 'केवइए' कियत्कः कियत्परिमितः 'मुहुत्तग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण मुहूर्त्तपरिमाणेन, एकस्य नक्षत्रमासस्य कियन्तो

मुहूर्त्ता इत्यर्थः 'आहिए' आख्यातः कथितः 'ति वएज्जा' इति वदेत् कथयतु हे भगवन् ! । भगवानाह–'ता अट्ठसयाइं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'अट्ठसयाइं' अष्टशतानि 'एगूणवीसाइं' एकोन विंशानि एकोनविंशत्यधिकानि 'मुहुत्ताणं' मुहूर्त्तानाम्, एकोन विंशत्यधिकाष्टशतमुहूर्त्ताः, 'मुहुत्तस्स' एकस्य च मुहूर्त्तस्य 'सत्तावीसं च सत्तट्ठिभागा' सप्तविंशतिश्च सप्तषष्टिभागाः ($८१९\left|\frac{२७}{६७}\right.$) 'मुहुत्तग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण मुहूर्त्तपरिमाणेन नक्षत्रमास. 'आहिए' आख्यातः कथितः 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु स्वशिष्येभ्य इति । तथाहि-नक्षत्रमासपरिमाणं सप्तविंशतिरहो–रात्राः, एकस्य चाहोरात्रस्य एकविंशतिः सप्तषष्टि भागाः ($२७\frac{२१}{६७}$) इति पूर्व प्रदर्शितम् तत एते सप्तविंशतिरहोरात्राः सवर्णनार्थं सप्तषष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि नवाधिकानि अष्टादशशतानि (१८०९), एषु चोपरितना एकविंशति सप्तषष्टिभागाः प्रक्षिप्यन्ते, जातानि त्रिंशदधिकानि अष्टादशशतानि (१८३०) सप्तषष्टिभागाः, एते मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते जाताः चतुष्पञ्चाशत्सहस्राणि नवशतानि (५४९००) मुहूर्त्तगतसप्तषष्टिभागाः, तत एतेषां सप्तषष्ट्या भागे हृते-लब्धानि–एकोनविंशत्यधिकानि अष्टौ शतानि मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तविंशतिः सप्तषष्टि भागाः ($८१९\left|\frac{२७}{६७}\right.$) सूत्रोक्ता लभ्यन्ते इति । 'ता' तावत् 'एस णं' एषा खलु 'अद्धा' अद्धा–काल एव 'दुवालसखुत्तकडा' द्वादश कृत्वः कृता अत्र संवत्सरमासानां द्वादशात्मकत्वाद् द्वादशवारं कृता सती अद्धा 'णक्खत्ते संवच्छरे' एको नाक्षत्रः सवत्सरो भवति । अस्य रात्रिन्दिवानि पृच्छति–'ता से णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'से णं' स खलु नक्षत्रसंवत्सरः 'केवइए' कियत्कः कियत्परिमितः 'राइंदियग्गेणं' रात्रिन्दिवाग्रेण रात्रिन्दिवपरिमाणेन अस्य नक्षत्रसंवत्सरस्य कियन्तिरात्रिन्दिवानि भवन्तीत्यर्थः 'आहिए' आख्यातः 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु । भगवानाह–ता 'तिण्णि सत्तावीसाइ राइंदियसयाइं' त्रीणि सप्तविंशानि सप्तविंशत्यधिकानि रात्रिन्दिवशतानि, 'एक्कावन्नं च सत्तट्ठिभागा' एक पञ्चाशच्च सप्तषष्टि भागाः ($३२७\left|\frac{५१}{६७}\right.$) 'राइंदियस्स' एकस्य रात्रिन्दिवस्य, 'राइंदियग्गेणं' रात्रिन्दिवाग्रेण 'आहिए' आख्यातः 'तिवएज्जा' इति वदेत् । अत्र नक्षत्रमासरात्रिन्दिवपरिमाणं द्वादशभिर्गुणितं यथोक्तम् ($३२७\left|\frac{५१}{६७}\right.$) नक्षत्रमासस्य रात्रिन्दिवानां परिमाणं भवतीति । अथास्य मुहूर्त्तसख्यां पृच्छति–'ता से णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'से णं' सः नक्षत्रसंवत्सरः खलु 'केवइए' कियत्कः कियत्परिमितः 'मुहुत्तग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण मुहूर्त्तपरिमा-

णेन 'आहिए' आख्यातः नक्षत्रसंवत्सरस्य कियन्तो मुहूर्त्ता भवन्तीतिभावः 'तिवएज्जा' इति वदेत्, उत्तरमाह—'ता' तावत् 'णव मुहुत्तसहस्सा' नवमुहूर्त्तसहस्राणि 'अट्ठ य बत्तीसाइं मुहुत्तसयाइं' अष्ट च द्वात्रिंशानि द्वात्रिंशदधिकानि मुहूर्त्तशतानि, 'छप्पन्नं च सत्तट्ठिभागा' षट्पञ्चाशच्च सप्तषष्टि भागाः 'मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्य (९८३२।$\frac{५६}{६७}$) 'मुहुत्तग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण मुहूर्त्तपरिमाणेन 'आहिए' आख्यात 'तिवएज्जा' इति वदेत्। अत्र नक्षत्रमासमुहूर्त्तपरिमाणं द्वादशभिर्गुणितं यथोक्तम् (९८३२।$\frac{५६}{६७}$)नक्षत्रमासस्य मुहूर्त्तपरिमाणं भवतीति। १। अथ द्वितीयचान्द्रसंवत्सरविषये प्रश्ननिर्वचनसूत्राण्याह—'ता एएसिणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां नक्षत्रादीनां 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये 'दोच्चस्स चंदसंवच्छरस्स' द्वितीयस्य चान्द्र संवत्सरस्य 'चंदे मासे' चान्द्रः चन्द्रसम्बन्धोमासः 'तीसइ तीसइमुहुत्तेणं' त्रिंशत् त्रिंशन्मुहूर्त्तकेन 'अहोरत्तेणं' एकैकाहोरात्रेण 'गणिज्जमाणे' गण्यमानः 'केवइए' कियत्कः कियत्परिमितः 'राइंदियग्गेणं' रात्रिन्दिवाग्रेण रात्रिन्दिवपरिमाणेन 'आहिए' आख्यातः कथितः 'तिवएज्जा' इति वदेत्। उत्तरमाह—ता एगूणतीसं इत्यादि, 'ता' तावत् 'एगूणतीसं राइंदियाइं' एकोनत्रिंशद् रात्रिन्दिवानि 'बत्तीसं च बावट्ठिभागा' द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागाः 'राइंदियस्स' एकस्य रात्रिन्दिवस्य (२९।$\frac{३२}{६२}$) 'राइंदियग्गेणं' रात्रिन्दिवाग्रेण रात्रिन्दिवपरिमाणेन 'आहिए' आख्यातः कथित 'तिवएज्जा' इति वदेत्। तथाहि—युगे द्वाषष्टिश्चन्द्रमासा भवन्तीति युगसम्बन्धिनां त्रिंशदधिकाष्टादशशतानां द्वाषष्ट्या भागो हरणीय., हृते च भागे लब्धा यथोक्ता एकोनत्रिंशदहोरात्राः, एकस्य चाहोरात्रस्य द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः (२९।$\frac{३२}{६२}$) इति। अथास्य मुहूर्त्तसंख्यां पृच्छति—'ता से णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'से णं' खलु द्वितीयचन्द्रमासः 'केवइए, कियत्कः कियत्परिमितः 'मुहुत्तग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण मुहूर्त्तपरिमाणेन 'आहिए' आख्यातः कथितः? 'ति वएज्जा' इतिवदेत्। उत्तरमाह— 'ता अट्ठपंचासीयाइं' इत्यादि 'ता' तावत् 'अट्ठ पंचासीयाइं' मुहुत्तसयाइं' अष्ट, पंञ्चाशीतानि पञ्चाशीत्यधिकानि मुहूर्त्तशतानि 'तीसं च बावट्ठिभागा' त्रिंशच्च द्वाषष्टिभागाः 'मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्य (८८५$\frac{३०}{६२}$) 'मुहुत्तग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण मुहूर्त्त परिमाणेन 'आहिए' आख्यातः कथित. 'तिवएज्जा' इतिवदेत्। तथाहि चन्द्रमासपरिमाणमेकोनत्रिंशदहोरात्रा', एकस्य चाहोरात्रस्य द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः (२९$\frac{३२}{६२}$), तत्र सवर्णनार्थमे-

कोनत्रिंशदहोरात्रान् द्वापष्ट्या गुणयित्वा उपरितना द्वात्रिंशद्द्वाषष्टिभागास्तेषु प्रक्षेपणीयाः, जातानि त्रिंशदधिकानि अष्टादशशतानि (१८३०) तत एतानि-त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि-चतुष्पञ्चाशत् सहस्राणि, तदुपरि नव च शतानि मुहूर्त्तगत द्वापष्टिभागाः (५४९००) तत एतेषां द्वापष्ट्या भागे हृते लब्धानि यथोक्तानि अष्टौ शतानि पञ्चाशीत्यधिकानि मुहूर्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिशद द्वापष्टि भागाः (८८५ $\frac{३०}{६२}$) इत्येतत्परिमिता द्वितीयचन्द्रमासस्य मुहूर्त्तसंख्या भवतीति सिद्धम् । अथास्य चान्द्रसंवत्सरस्य कालमानमाह—**'ता एस णं'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **'एसणं'** एषा खलु **'अद्धा'** अद्धा चान्द्रमासकालरूपा **'दुवालस खुत्तकडा'** द्वादशकृत्वः द्वादशवारैः कृता **'चंदे संवच्छरे'** एकश्चान्द्रः संवत्सरो भवति । अस्य रात्रिन्दिवानि पृच्छति **'ता से णं'** तावत् स खलु चान्द्रः संवत्सरः **'केवइए'** कियत्कः कियत्परिमितः **'राइंदियग्गेणं'** रात्रिन्दिवाग्रेण **'आहिए'** आख्यातः कथितः ! **'ति वएज्जा'** इति वदेत् वदतु । भगवानाह— **'ता तिन्नि'** इत्यादि **'ता'** तावत् **'तिन्नि चउप्पन्नाइं राइंदियसयाइं'** त्रीणि चतुष्पञ्चाशानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि रात्रिन्दिवशतानि **'राइंदियस्स'** एकस्य रात्रिन्दिवस्य **'दुवालसय'** द्वादश च **'ववट्ठिभागा'** द्वाषष्टिभागाः (३५४ $\frac{१२}{६२}$) **'राइंदियग्गेणं'** रात्रिन्दिवाग्रेण रात्रिन्दिवपरिमाणेन **'आहिए'** अख्यातः कथितः **'तिवएज्जा'** इति वदेत् स्वशिष्येभ्य । चन्द्रमासस्य रात्रिन्दिवपरिमाणं द्वादशभिर्गुणितं यथोक्तं चन्द्रसंवत्सररात्रिन्दिवपरिमाणं भवतीति भावः । अथास्य मुहूर्त्तसंख्यां पृच्छति—**ता से णं'** इत्यादि, **'ता'** तावत **'से णं'** स खलु चन्द्रसंवत्सरः **'केवइए'** कियत्कः कियत्परिमितः **'मुहुत्तग्गेणं'** मुहूर्त्ताग्रेण मुहूर्त्तपरिमाणेन **'आहिए'** आख्यातः ? **'तिवएज्जा'** इतिवदेत् वदतु । भगवानाह—**'ता दस'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **'दसमुहुत्तसहस्साइं'** दशमुहूर्त्तसहस्राणि **'पणवीसं च मुहुत्तसयं'** पञ्चविंशत्यधिकं मुहूर्त्तशतम् **'मुहुत्तस्स'** एकस्य मुहूर्त्तस्य **'पण्णासं च वावट्ठिभागा'** पञ्चाशच्च द्वापष्टिभागाः (१०१२५ $\frac{५०}{६२}$) **'मुहुत्तग्गेणं'** मुहूर्त्ताग्रेण मुहूर्त्तपरिमाणेन **'आहिए'** आख्यातः कथितः **'तिवएज्जा'** इतिवदेत् कथयेत् स्वशिष्येभ्यः । अत्र चन्द्रमासमुहूर्त्तपरिमाणं द्वादशभिर्गुणितं यथोक्तं चान्द्रसवत्सरमुहूर्त्तपरिमाणं भवतीति २ । अथ तृतीयस्य ऋतु संवत्सरस्य विषये प्रश्ननिर्वचनसूत्राण्याह **'ता एएसिणं'** इत्यादि **'ता'** तावत् **'एएसि णं'** एतेषां नक्षत्रादीनां खलु **'पचण्हं संवच्छराणं'** पञ्चानां सवत्सराणां मध्ये **'तच्चस्स'** तृतीयस्य **'उउसंवच्छरस्स'** ऋतुसवत्सरस्य **'उऊमासे'** आर्त्तवः ऋतु सम्बन्धी मासः **'तीसइ तीसइमुहुत्तेणं'** त्रिंशत् त्रिंशन्मुहूर्त्तकेन **'राइंदिएणं'** रात्रिन्दिवेन

'गणिज्जमाणे' गण्यमानः 'केवइए' कियत्कः कियत्परिमितः 'राइंदियग्गेणं' रात्रिन्दिवाग्रेण रात्रिन्दिवपरिमाणेन, 'आहिए' आख्यातः 'ता तीसं' इत्यादि 'ता तावत् 'तीसं' त्रिंशत् 'राइंदियाणं' रात्रिन्दिवानां 'राइंदियग्गेणं रात्रिन्दिवाग्रेण रात्रिन्दिवपरिमाणेन 'आहिए' आख्यातः त्रिंशद्रात्रिन्दिवप्रमाणो ऋतुमासो भवतीति कथितः। 'तिवएज्जा' इतिः वदेत् स्वशिष्येभ्य इति। तथाहि ऋतु मासा युगे एकषष्टि र्भवन्ति ततो युगगतानां त्रिंशदधिकाष्टादशशतानाम् अहोरात्राणाम (१८३०) एकषष्टया भागो ह्रियते, लब्धास्त्रिंशदहोरात्रा यथोक्ता इति। अथ ऋतुमासस्य मुहूर्त्तसंख्यां पृच्छति 'ता से णं' इत्याति, 'ता' तावत् 'से णं' स खलु ऋतुमासः 'केवइए' कियत्कः कियत्परिमितः 'मुहुत्तग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण मुहूर्त्तपरिमाणेन 'आहिए' आख्यातः कथितः 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु हे भगवान्—'ता णव' इत्यादि 'ता' तावत् 'णव मुहुत्तसयाइं' नवमुहूर्त्तशतानि 'मुहुत्तग्गेण' मुहूर्त्ताग्रेण 'आहिए' आख्यातः कथितः 'ति वएज्जा' इति वदेत् स्वशिष्याय। तथाहि—त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं रात्रिन्दिवम्, त्रिंशद्रात्रिन्दिवात्मकश्चैकऋतुमास इति त्रिंशत् त्रिंशता गुण्यते जातानि यथोक्तानि नव मुहूर्त्तशतानीति। 'ता' तावत् 'एस णं' एषा खलु 'अद्धा' अद्धा त्रिंशद्रात्रिन्दिवात्मकः नवशत मुहूर्त्तात्मकश्च कालः 'दुवालस खुत्तकडा' द्वादशकृत्वः कृता द्वादशभिर्गुणिता 'उ उसंवच्छरे' आर्त्तवः ऋतु सम्बन्धी सवत्सरो भवतीति। अथास्य ऋतु सवत्सरस्य रात्रिन्दिवपरिमाणं पृच्छति—'ता से णं' इत्यादि. 'ता' तवत् 'से णं' स खलु ऋतुसंवत्सरः 'केवइए' कियत्कः 'राइंदियग्गेणं' रात्रिन्दिवाग्रेण रात्रिन्दिवपरिमाणेन 'आहिए' आख्यातः ऋतुसंवत्सरस्य कति रात्रिन्दिवानि कथितानि ? 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु। भगवानाह—'ता तिण्णि' इत्यादि, 'ता' तावत् 'तिण्णि सट्ठाइं राइंदियसयाइं' त्रीणि षष्टानि षष्टयधिकानि रत्रिन्दिवशतानि (३६०) 'राइंदियग्गेणं' रत्रिन्दिवाग्रेण 'आहिए' आख्यातः 'तिवएज्जा' इति वदेत् स्वशिष्येभ्यः। तथाहि—एकस्मिन् ऋतुमासे त्रिंशद् रात्रिन्दिवानि ते च मासा एकस्मिन् ऋतुसंवत्सरे द्वादशेति त्रिंशतो द्वादशभिर्गुणने भवन्ति यथोक्तानि षष्टयधिकानि त्रीणि शतानि रात्रिन्दिवानीति। अथास्य मुहूर्त्तसंख्यां पृच्छति— 'ता से णं' इत्यादिना, 'ता' तावत् 'से णं' स खलु ऋतुसंवत्सरः 'केवइए' कियत्कः कियत्परिमितः 'मुहुत्तग्गेणं' आख्यातः कथितः एकस्य ऋतुसंवत्सरस्य कति मुहूर्त्ता भवन्ति ? 'ति वएज्जा' इति वदेत वदतु-हे भगवान्! भगवानाह 'ता दस' इत्यादि 'ता' तावत् 'दसमुहुत्तसहस्साइं' दशमुहूर्त्तसहस्राणि 'अट्ठ य सयाइं' अष्ट च शतानि (१०८००) 'मुहुत्तग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण 'आहिए' आख्यातः कथितः 'ति वएज्जा' इति वदेत् स्वशिष्येभ्य.। तथाहि—एकस्य ऋतुमासस्य नवमुहूर्त्तशतानि भवन्तीति तानि द्वादशभिर्मासै र्गुणने भवति यथोक्ता संख्येति ३। अथ चतुर्थादित्यसंवत्सरविषये प्रश्ननिर्वचनसूत्राण्याह—'ता एए सि णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां नाक्षत्रादीनां मध्ये 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये 'चउत्थस्स' चतुर्थस्य 'आइच्चसंवच्छ-

रस्स' आदित्य संवत्सरस्य **'आइच्चे मासे'** आदित्यः आदित्यसम्बन्धी मासः **'तीसइ तीसइ मुहुत्तेणं'** त्रिशत् त्रिशन्मुहूर्त्तकेन **'अहोरत्तेणं'** अहोरात्रेण **'गणिज्जमाणे'** गण्यमानः **'केवइए'** कियत्कः कियत्परिमितः **'राइंदियग्गेणं'** रात्रिन्दिवाग्रेण रात्रिन्दिवपरिमाणेन **'आहिए'** आख्यातः कथितः **'तिवएज्ज'** इति वदेत् वदतु हे भगवान्–**'ता तीसं'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **'तीसं'** त्रिशद् **'राइंदियाइं'** रात्रिन्दिवानि **'राइंदियस्स'** एकस्य रात्रिन्दिवस्य **'अवड्ढभागो य'** अपार्धभागश्च, अपगतः अर्द्धः अपार्द्धः, सचासौ भागश्च अपार्द्धभागः अर्द्धभागः पञ्चदश- मुहूर्त्तात्मकः सार्द्धत्रिंश द्रात्रिन्दिवात्मकः आदित्यो मासो भवतीति सार्द्धत्रिंशद्रात्रिद्रिवानि **'राइंदियग्गेणं'** रात्रिन्दिवाग्रेण रात्रिन्दिवपरिमाणेन **'आहिए'** आख्यातः कथितः **'ति वएज्जा'** इति वदतु। तथाहि–सूर्यमासा युगे षष्टिः. ततो युगसम्वन्धिनां त्रिंशदधिकाष्टादश शतसंख्यानामहो-रात्राणां षष्ट्यभागे हृते लभ्यन्ते सार्द्धात्रिंशदहोरात्रा इति। अथास्य मुहूर्त्तान् पृच्छति– **'ता से णं'** इत्यादि **'ता'** तावत **'से णं'** सः आदित्यो मासः खलु **'केवइए'** कियत्कः कियत्परिमितः **'मुहुत्तग्गेणं'** मुहूर्त्ताग्रेण मुहूर्त्तपरिमाणेन **'आहिए'** आख्यातः कथितः **'तिवएज्जा'** इति वदेत् वदतु हे भगवन्! भगवानाह–**'ता णव'** इत्यादि **'ता'** तावत् **'णव पण्णरसाइं मुहुत्तसयाइं'** नव पञ्चदशानि पञ्चदशाधिकानि नव मुहूर्त्तशतानि (९१५) **'मुहुत्ताग्गेणं'** मुहूर्त्तपरिमाणेन **'आहिए'** आख्यातः कथितः **'तिवएज्जा'** इति वदेत् स्व-शिष्येभ्यः। तथाहि–सूर्यमासे परिमाणं सार्द्धत्रिंशदहोरात्रकम्, तच्चाहोरात्रस्य त्रिशन्मुहूर्त्तात्म कत्वात् त्रिशता गुण्यते, जायन्ते पञ्चदशाधिकानि नव मुहूर्त्तशतानीति। अथादित्यसंवत्सर-स्य सर्वाद्धां प्रदर्शयति–**'ता एस णं'** इत्यादि. **'ता'** तावत् **'एस णं'** एषा सर्वरात्रिन्दिवरूपा सर्वमुहूर्त्तरूपा च **'अद्धा'** अद्धा–कालः **'दुवालसखुत्तकडा'** द्वादशकृत्वः द्वादशवारैर्गुणिता **'आइच्चे संवच्छरे'** एक आदित्यः संवत्सरो जायते। अथास्य रात्रिन्दिवानि पृच्छति–**'ता से णं'** इत्यादि. **'ता'** तावत् **'से णं'** स खलु आदित्यः संवत्सरः **'केवइए'** कियत्कः कियत्परिमितः **'राइंदियग्गेणं'** रात्रिन्दिवाग्रेण रात्रिन्दिवपरिमाणेन **'आहिए'** आख्यातः **'ति वएज्जा'** इति वदेत् वदतु हे भगवान्!। भगवानाह–**'ता तिन्नि'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **'तिन्नि छावट्ठाइं राइंदियसयाइं'** त्रीणि षट्षष्टानि षट्षष्ट्यधिकानि रात्रिन्दिवशतानि (३६६) **'राइंदिय ग्गेणं'** रात्रिन्दिवाग्रेण रात्रिन्दिवपरिमाणेन **'आहिए** आख्यातः कथितः **'ति वएज्जा'** इति वदेत् स्वशिष्येभ्यः। तथाहि–आदित्यो मासः सार्द्धत्रिंशद्रात्रिन्दिवात्मकः- ते च मासा एकस्मिन् संवत्सरे द्वादशेति सार्द्धत्रिंशद्द्वादशभिर्गुण्यन्ते जाता यथोक्ता संख्या एकस्यादित्यसंवत्सरस्य रात्रिन्दिवानामिति। अथास्य मुहूर्त्तसंख्या पृच्छति **'ता से णं'** इत्यादि. **'ता'** तावत् **'से णं'**

स खलु आदित्यः संवत्सरः 'केवइए' कियत्कः कियत्परिमितः 'मुहुत्त-ग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण मुहूर्त्त परिमाणेन 'आहिए' आख्यातः कथितः एकस्यादित्यसंवत्सरस्य कति मुहूर्त्ता भवन्ति ? 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवान् ? भगवानाह 'ता दस' इत्यादि, 'ता' तावत् 'दसमुहुत्तसहस्साइं' दशमुहूर्त्तसहस्राणि 'नवअसीयाइं मुहुत्तसयाइं' नव अशीतानि अशीत्यधिकानि नव मुहूर्त्तशतानि (१०९८०) 'मुहुत्तग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण मुहूर्त्तपरिमाणेन 'आहिए' आख्यातः कथितः 'तिवएज्जा' इति वदेत् कथयतु स्वशिष्येभ्यः। तथाहि—एकस्यादित्यमासस्य पञ्चदशाधिकानि नवमुहूर्त्तशतानि (९१५) भवन्ति एकस्यादित्यसंवत्सरस्य द्वादश मासा भवन्तीति पञ्चदशाधिकनवशतमुहूर्त्ता द्वादशभिर्गुण्यन्ते जाता यथोक्ता मुहूर्त्तसंख्येति ।४।

अथ पञ्चमाभिवर्द्धितसंवत्सरविषये प्राह—'ता एएसिणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसिणं' एतेषां खलु नाक्षत्रादीनां 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये पंचमस्स अभिवड्ढिय-संवच्छरस्स' पञ्चमस्याभिवर्द्धितसंवत्सरस्य 'अभिवड्ढिए मासे' अभिवर्द्धितो मासः 'तीसइ-तीसइ मुहुत्तेणं' त्रिंशत्त्रिंशन्मुहूर्त्तकेन 'गणिज्जमाणे' गण्यमानः 'केवइए' कियत्कः कियत्परिमितः 'राइंदियग्गेणं' रात्रिन्दिवाग्रेण रात्रिन्दिवपरिमाणेन 'आहिए' आख्यातः कथितः 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु हे भगवन्। भगवानाह-'ता एक्कतीसं राइंदियाइं' एकत्रिंशद्रात्रिन्दिवानि, 'एगूणतीसं च मुहुत्ता' एकोनत्रिंशच्च मुहूर्त्ताः, 'मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्य 'सत्तरसबावट्ठिभागा' सप्तदश द्वाषष्टि भागाः $\left(\frac{\text{रा.}}{३१}\Big|\frac{\text{मु.}}{२९}\Big|\frac{१७}{६२}\right)$ 'राइंदिग्गेणं' रात्रिन्दिवाग्रेण रात्रिन्दिवपरिमाणेन 'आहिए' आख्यातः कथितः 'ति वएज्जा' इति वदेत् स्वशिष्येभ्यः। तथाहि—अभिवर्द्धितसंवत्सरश्च त्रयोदशभिश्चान्द्रमासैर्भवति, चान्द्रमासपरिमाणम्—एकोनत्रिंशद् रात्रिन्दिवानि एकस्य च रात्रिन्दिवस्य द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागा $\left(२९\Big|\frac{३२}{६२}\right)$ एष राशिरभिवर्द्धितसंवत्सरस्य त्रयोदश-मासात्मकत्वात् त्रयोदश भिर्गुण्यते, ततो यथासंभवं द्वाषष्टिभागै रात्रिन्दिवेषु जातेषु जातमिदम् त्र्यशीत्यधिकानि त्रीण्यहोरात्रशतानि, एकस्याहोरात्रस्य च चतुश्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः $\left(३८३\Big|\frac{४४}{६२}\right)$ अभिवर्द्धितसंवत्सरपरिमाणम्। तत एतस्य राशे र्द्वादशभिर्भागो ह्रियते, तत्र प्रथमं त्र्यशीत्यधिकत्रिशताहोरात्राणां द्वादशभिर्भागो ह्रियते लब्धा एकत्रिंशदहोरात्राः (३१), शेषा स्तिष्ठन्ति—एकादश, ते च मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते जातानि त्रिंशदधिकानि त्रीणि शतानि (३३०) येऽपिनोपरितनाश्चत्वारिंशद् द्वाषष्टि भागा रात्रिन्दिवस्य, तेऽपि मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि विंशत्यधिकानि त्रयोदश शतानि (१३२०) एषां द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा एकविंशति

मुहूर्त्ताः, शेषास्तिष्ठन्त्येकादश, तत्रैकविंशति र्मुहूर्त्ताः पूर्वोक्ते त्रिंशदधिक त्रिशतरूपे (३३०) मुहूर्त्तराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जातास्ते एक पञ्चाशदधिकत्रिशतमुहूर्त्ताः (३५१), एषां द्वादशभिर्भागे हृते लब्धा एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ताः (२९), शेषा स्तिष्ठन्ति त्रयः, ते च द्वाषष्टिभागानयनार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, जातं षडशीत्यधिकमेकं शतम् (१८६) अस्मिन् राशौ ये प्रागुक्ताः शेषीभूता मुहूर्त्तस्याष्टादशद्वाषष्टि भागास्ते प्रक्षिप्यन्ते जाते चतुरुत्तरे द्वे शते (२०४) अस्य राशे र्द्वादशभिर्भागो ह्रियते लब्धा एकस्य मुहूर्त्तस्य सप्तदश द्वाषष्टि भागाः (१७) तत आगतं यथोक्तमभिवर्द्धितमासस्य रात्रिन्दिवपरिमाणम् (रा. ३१ | मु. २९ | $\frac{१७}{६२}$) इति । अथास्य मुहूर्त्तान् पृच्छति 'ता से णं' इत्यादि, 'ता' तावत् "से णं" स खलु अभिवर्द्धितमास· 'केवइए' कियत्क· कियत्परिमितः 'मुहुत्तग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण मुहूर्त्त परिमाणेन 'आहिए' आख्यातः कथितः 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु हे भगवन् । भगवानाह 'ता णव' इत्यादि 'ता' तावत् 'णव एगूणसट्ठाइं मुहुत्तसयाइं' नव एकोनषष्टानि एकोन षष्ट्यधिकानि मुहूर्त्तशतानि 'सत्तरसबावट्ठिभागा' सप्तदशद्वाषष्टिभागाः 'मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्य (९५९ | $\frac{१७}{६२}$) 'मुहुत्तग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण मुहूर्त्तपरिमाणेन 'आहिए' आख्यातः 'तिवएज्जा' इति वेदत् स्वशिष्येभ्यः । तथाहि—अभिवर्द्धितमासस्य रात्रिन्दिवपरिमाणम् (रा. ३१ | मु. २९ | $\frac{१७}{६२}$) एकस्य रात्रिन्दिवस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् त्रिंशता गुण्यते, तत्र पूर्वमेकत्रिंशद् रात्रिन्दिवानि त्रिंशता गुण्यते जातानि त्रिंशदधिकानि नवशतानि (९३०) मुहूर्त्तानाम्, अत्रोपरितना ये एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्तास्ते प्रक्षिप्यन्ते जाता एकोनषष्ट्यधिकनवशतमुहूर्त्ताः (९५९), ये उपरितनाः सप्तदश सप्तषष्टिभागाः ($\frac{१७}{६७}$) ते तथैव स्थिता इति समागताऽभिवर्द्धितमासस्य यथोक्ता (९५९ | $\frac{१७}{६७}$) मुहूर्त्तसंख्येति । अथाभिवर्द्धितसवत्सरस्य कालमानमाह—'ता एस णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एस णं' एषा खलु रात्रिन्दिवरूपा मुहूर्त्तरूपा च 'अद्धा' अद्धा कालः 'दुवालसखुत्तकडा' द्वादशकृत्वः कृता द्वादशवारैर्गुणिता 'अभिवड्ढिए संवच्छरे' एकः अभिवर्द्धितः अभिवर्द्धिताभिधः संवत्सरो भवतीति । अथास्य रात्रिन्दिवानि पृच्छति—'ता से णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'से णं' स खलु अभिवर्द्धितसंवत्सरः 'केवइए' कियत्कः कियत्परिमितः 'राइंदियग्गेणं' रात्रिन्दिवाग्रेण रात्रिन्दिवपरिमाणेन 'आहिए' आख्यातः कथितः 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु हे भगवन् ! भगवानाह— 'ता तिण्णि' इत्यादि, 'ता' तावत् 'तिण्णि तेसीयाइं राइं

दियसयाइं' त्रीणि त्र्यशीतानि त्र्यशीत्यधिकानित्रीणि रत्रिन्दिवशतानि, 'एक्कवीसं च मुहुत्ता' एक विंशतिश्च मुहूर्त्ताः, 'अट्ठारसबावट्ठिभागा' अष्टादशद्वाषष्टिभागाः 'मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्य (रा. मु. ३८३।२१। $\frac{१८}{६२}$) 'राइंदियग्गेणं' रात्रिन्दिवाग्रेण रात्रिन्दिवपरिमाणेन 'आहिए' आख्यातः 'तिवएज्जा' इति वदेत् स्वशिष्येभ्यः । तथाहि—अभिवर्द्धितमासस्य परिमाणं (३१।२९। $\frac{१७}{६२}$) सवत्सरस्य द्वादशसौरमासात्मकत्वाद् द्वादशभिर्गुण्यते, तत्र प्रथममेकत्रिंशदहोरात्रा द्वादशभिर्गुण्यन्ते जातानि द्विसप्तत्यधिकानि त्रीणि शतानि (३७२) अहोरात्राणाम्, तत एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ता द्वादशभिर्गुण्यन्ते, जातानि अष्टचत्वारिंशदधिकानि त्रीणि शतानि (३४८) मुहूर्त्तानाम्, तत एकस्याहोरात्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वा दहोरात्रानयनार्थमेषां त्रिंशता भागो ह्रियते, लब्धा एकादश अहोरात्राः एते पूर्वोक्तायाम् (३७२) अहोरात्रसख्यायां प्रक्षिप्यन्ते जातं त्र्यशीत्यधिकं शतत्रयमहोरात्राणाम् (३८३), पूर्वं त्रिंशता भागे हृते शेषाः स्थिता अष्टादश मुहूर्त्ताः, अथ च ये सप्तदश द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, तेऽपि द्वादशभिर्गुण्यते, जाते चतुरुत्तरे द्वे शते (२०४), एतस्य राशे र्द्वाषष्ट्या भागो हरणीयः, हृते च भागे लब्धास्त्रयो मुहूर्त्ताः, ते प्राक्तनेषु शेषत्वेन स्थितेषु अष्टादशसु प्रक्षिप्यन्ते, तेन जाता एकविंशतिर्मुहूर्त्ताः (२१), द्वाषष्ट्या भागे हृते ये शेषा अष्टादश ते (१८) एकस्य मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागाः सन्ति, तत आगता यथोक्ता (३८३।२१। $\frac{१८}{६२}$) अभिवर्द्धितसवत्सरस्य रात्रिन्दिवानां संख्येति । अथास्य मुहूर्त्तान् पृच्छति 'ता से णं' इत्यादि 'ता' तावत् 'से णं' स खलु अभिर्द्धितसवत्सरः 'केवइए' कियत्कः कियत्परिमितः 'मुहुत्तग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण मुहूर्त्तपरिमाणेन 'आहिए' आख्यातः ; 'तिवएज्जा इति वदेत् वदतु हे भगवन् ? । भगवानाह—'ता एक्कारस' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एक्कारस मुहुत्तसहस्साइं' एकादश मुहूर्त्त सहस्राणि, 'पंच य एक्कारसाइं मुहुत्तसयाइं' पञ्च च एकादशानि एकादशाधिकानि पञ्च मुहूर्त्तशतानि, 'अट्ठारसबावट्ठिभागा' अष्टादश द्वाषष्टि भागाः 'मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्य(११५११ $\frac{१८}{६२}$) 'मुहुत्तग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण 'आहिए' आख्यातः कथितः 'तिवएज्जा' इति वदेत् स्वशिष्येभ्यः । तथाहि—अभिवर्द्धितसंवत्सरस्याहोरात्रादिपरिमाणम् (३८३।२१। $\frac{१८}{६२}$) एकस्याहोरात्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् त्र्यशीत्यधिकं शतत्रयं त्रिंशता गुण्यते गुणयित्वा चोपरितना एकविंशति र्मुहूर्त्ता स्तत्र प्रक्षिप्यन्ते, ततो जायते यथोक्ता (११५११ $\frac{१८}{६२}$) मुहूर्त्तसंख्येति ॥ सूत्रम् १ ॥

तदेव मुक्तं नाक्षत्रादिपञ्चसंवत्सरसत्कानां रात्रिन्दिवानां मुहूर्त्तानां च परिमाणम्, साम्प्रतम्-एते पञ्च संवत्सरा एकत्र समिलिता यावत्प्रमाणा रात्रिन्दिवपरिमाणेन भवन्ति तावतो निर्दिशन्नाह-'ता केवइयं ते नोजुगे' इत्यादि ।

मूलम्—ता केवइं ते नोजुगे राइंदियग्गेणं आहिए ? ति वएज्जा, ता सत्तरस एकाणउयाइं राइंदियसयाइं एगूणवीसं च मुहुत्ता, सत्तावण्णं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता पणपण्णं चुण्णिया भागा राइंदियग्गेणं आहिया ति वएज्जा ता से णं केवइए मुहुत्तग्गेणं आहिए ? ति वएज्जा, ता तेपण्णं मुहुत्तसहस्साइं, सत्त य एगूणपन्नाइं मुहुत्तसयाइं सत्तावण्णं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता पणपण्णं चुण्णियाभागा मुहुत्तग्गेणं आहिया ति वएज्जा । ता केवइए णं ते जुगप्पत्ते राइंदियग्गेणं आहिए ? ति वएज्जा । ता अट्ठतीसं राइंदियाइं दस य मुहुत्ता चत्तारि य बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स; बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता दुवालसचुण्णिया भागा राइंदियग्गेणं आहिया ति वएज्जा । ता से णं केवइए मुहुत्तग्गेणं आहिए ? ति वएज्जा, ता एक्कारस पण्णासाइं मुहुत्तसयाइं चत्तारिय बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता दुवालसचुण्णियाभागा मुहुत्तग्गेणं आहिया ति वएज्जा । ता केवइए जुगे राइंदियग्गेणं आहिए ? ति वएज्जा, ता चउपण्णं मुहुत्तसहस्साइं णव य मुहुत्तसयाइं मुहुत्तग्गेणं आहिए ? ति वएज्जा, ता चउत्तीसं सयसहस्सयाइं अट्ठतीसं च बावट्ठिभागमुहुत्तसयाइं बावट्ठिभागमुहुत्तग्गेणं आहिए ति वएज्जा ॥ सूत्रम् २ ॥

छाया—तावत् कियत्कं ते नोयुगं रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातम् ? इति वदेत्, तावत् सप्तदश एकनवतानि रात्रिन्दिवशतानि, एकोनविंशतिश्च मुहूर्त्ताः सप्तपञ्चाशद् द्वाषष्टिभागाः, मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा पञ्चपञ्चाशच्चूर्णिका भागा रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातम्, इति वदेत् । तावत् तत् खलु कियत्कं मुहूर्त्ताग्रेण आख्यातम् ? इति वदेत्, तावत् त्रिपञ्चाशद् मुहूर्त्तसहस्राणि सप्तच एकोनपञ्चाशानि मुहूर्त्तशतानि सप्तपञ्चाशद् द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा पञ्च पञ्चाशच्चूर्णिका भागा मुहूर्त्ताग्रेण आख्यातम् इति वदेत् । तावत् कियत्कं खलु तद् युगप्राप्तं रात्रिन्दिवाग्रेन अख्यातम् ? इति वदेत् तावत् अष्टात्रिंशद् रात्रिन्दिवानि दश च मुहूर्त्ताः चत्वारश्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा द्वादश चूर्णिका भागा रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातम् इति वदेत् । तावत् तत् खलु कियत्कं मुहूर्त्ताग्रेण आख्यातम् ? इति वदेत् तावत् एकादश पञ्चाशतानि मुहूर्त्तशतानि, चत्वारश्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य. द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा द्वादश चूर्णिका भागा मुहूर्त्ताग्रेण अख्यातम् इति वदेत् । तावत् कियत्कं युगं रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातम् ? इति वदेत् । तावत् अष्टादश त्रिंशानि रात्रिन्दिवशतानि रात्रिदिवाग्रेण आख्यातम् इति वदेत् । तावत् तत् खलु कियत्कं मुहूर्त्ताग्रेण आख्यातम् ? इति वदेत्, तावत् चतुस्त्रिंशत् शतसहस्राणि अष्टत्रिंशच्च द्वाषष्टिभाग मुहूर्त्तशतानि द्वाषष्टिभागमुहूर्त्ताग्रेण अख्यातमिति वदेत् ॥ सूत्र २॥

व्याख्या—'ता केवइ ते नो जुगे' इति 'ता' तावत् 'केवइए' कियत्कं कियत्प्रमाणं 'ते' त्वया 'नोजुगे' नोयुगमिति,—नो शब्दोऽत्र देशतो निषेधवाचक इति किञ्चिन्न्यूनं युगमित्यर्थं 'राइंदियग्गेणं' रात्रिन्दिवाग्रेण अहोरात्रप्रमाणेन 'आहियं' आख्यातम् ? नो युगस्य कियन्ति रात्रिन्दिवानि भवन्ति ? इति भावः। 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् ? भगवानाह—'ता सत्तरस' इत्यादि, 'ता' तावत् 'सत्तरस एकाणउयाइं राइंदियसयाइं' सप्तदश एकनवतानि एकनवत्यधिकानि—रात्रिन्दिवशतानि 'एगूणवीसं च मुहुत्ता' एकोनविंशतिश्च मुहूर्त्ताः 'मुहुत्तस्स' एकस्य च मुहूर्त्तस्य 'सत्तावण्णं बावट्ठिभागा' सप्तपञ्चाशद् द्वाषष्टिभागा तथा 'बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता' द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा विभज्य तन्मध्यात् 'पणपण्णं' पञ्च पञ्चाशत् 'चुण्णिया भागा' चूर्णिका भागा ($\frac{\text{रात्रिन्दि.}}{१७९१}\Big|\frac{\text{मु.}}{१९}\Big|\frac{५७}{६२}\Big|\frac{५५}{६७}$) 'राइंदियग्गेणं' रात्रिन्दिवाग्रेण अहोरात्रप्रमाणेन 'आहियं' आख्यातम् 'ति वएज्जा' इति वदेत्। नो युगं हि नाक्षत्रादि पञ्चसंवत्सरानधिकृत्य नाक्षत्रादि पञ्च संवत्सर गतरात्रिन्दिवपरिमाणानामेकत्रमीलने यथोक्ता नोयुगस्य रात्रिन्दिवसंख्या जायते, तथाहि नाक्षत्रादिपञ्चसंवत्सराणा परिमाणम् तत्र—नाक्षत्रसंवत्सरस्य परिमाणम्—सप्तविंशत्यधिकानि त्रीणि रात्रिन्दिवशतानि, एकस्य च रात्रिन्दिवस्य एकपञ्चाशत् सप्तषष्टिभागाः (३२७$\frac{५१}{६७}$ (१) चान्द्रसंवत्सरस्य चतुष्पञ्चाशदधिकानि त्रीणि रात्रिन्दिवशतानि, द्वादश च द्वाषष्टिभागा एकस्य रात्रिन्दिवस्य (३५४$\frac{१२}{६२}$) (२) ऋतुसंवत्सरस्य—षष्ट्यधिकानि त्रीणि रात्रिन्दिवशतानि (३६०) ।३। सूर्यसंवत्सरस्य—षट्षष्ट्यधिकानि त्रीणि रात्रिन्दिवशतानि (३६६) ।४। पञ्चमस्याभिवर्द्धितसंवत्सरस्य—त्र्यशीत्यधिकानि त्रीणि शतानि रात्रिन्दिवानाम् एकविंशतिश्च मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टादश द्वाषष्टिभागा. ($\frac{\text{रात्रि.}}{३८३}\Big|\frac{\text{मु.}}{२१}\Big|\frac{१८}{६२}$), तत्र सर्वेषा रात्रिन्दिवानामेकत्र संमीलने जातानि नवत्यधिकानि सप्तदशशतानि (१७९०) । ये च एकस्य रात्रिन्दिवस्य एकपञ्चाशत् सप्तषष्टिभागास्ते मुहूर्त्तकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि त्रिंशदधिकानि पञ्चदशशतानि (१५३०) तेषां सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धा द्वाविंशति मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्पञ्चाशत् सप्तषष्टिभागाः (२२ $\frac{५६}{६७}$) । लब्धाः, ये द्वाविंशति

मुहूर्त्तास्तेऽभिवर्द्धितसंवत्सरसम्बन्धिषु एकविंशतौ मुहूर्त्तेषु प्रक्षिप्यन्ते, प्रक्षिप्तेषु च एकविंशतिमुहूर्त्तेषु जातास्त्रिचत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः (४३) अत्र त्रिंशता मुहूर्त्तैरेकोऽहोरात्रो लब्धः, स पूर्वोक्तेष्वहोरात्रेषु प्रक्षिप्यते जातानि एकनवत्यधिकानि सप्तदश शतानि (१७९१), शेषाः ये स्थितास्त्रयोदश मुहूर्त्ताः (१३) येऽपि चाहोरात्रस्य द्वादश द्वाषष्टि भागाः ($\frac{१२}{६२}$) तेऽपि मुहूर्त्तानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि षष्ट्यधिकानि त्रीणि शतानि (३६०), एषां द्वाषष्ट्या भागे हृते लब्धाः पञ्च मुहूर्त्तास्ते प्रागुक्तेषु त्रयोदशसु मुहूर्त्तेषु प्रक्षिप्यन्ते, जाता अष्टादश मुहूर्त्ताः, शेषास्तिष्ठन्ति मुहूर्त्तस्य पञ्चाशद् द्वाषष्टि भागाः ($\frac{५०}{६२}$), ततो येऽपि च मुहूर्त्तस्य षट् पञ्चाशत् सप्तषष्ठि भागाः ($\frac{५६}{६७}$) ते त्रैराशिकगणितेन द्वाषष्टिभागाः क्रियन्ते, तथाहि यदि सप्तषष्ट्या सप्तषष्टिभागै र्द्वाषष्टि र्द्वाषष्टि भागा लभ्यन्ते तदा षट् पञ्चाशता सप्तषष्टिभागै र्द्वाषष्टिभागाः कियन्तो लभ्यन्ते, अत्र राशित्रयस्थापना क्रियते, ६७।६२।५६। अत्रान्तिमराशिना मध्यराशिर्गुण्यते, जातानि चतुस्त्रिंशच्छतानि द्वासप्तत्यधिकानि (३४७२) एषामादिराशिना सप्तषष्टिरूपेण भागो ह्रियते, लब्धा एक पञ्चाशद् द्वाषष्टिभागाः (५१) ते च पूर्वोक्तेषु शेषी भूतेषु पञ्चाशति द्वाषष्टि भागेषु प्रक्षिप्यन्ते, जातमेकोत्तरं शतम् (१०१), ततस्तन्मध्येऽभिवर्द्धितसंवत्सरसम्बन्धिन उपरितना अष्टादश द्वाषष्टि भागाः प्रक्षिप्यन्ते जातं शतमेक मेकोनविंशत्यधिकम् (११९) द्वाषष्टि भागानाम्, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य पञ्च पञ्चाशत् सप्तषष्टिभागाः ($\frac{५५}{६७}$) पूर्वोक्तेषु एकोनविंशत्यधिकशत (११९) संख्यकेषु द्वाषष्टिभागेषु द्वाषष्ट्या द्वाषष्टिभागैरेको मुहूर्त्तो लभ्यते स च प्रागुक्तेष्वष्टादशसु मुहूर्त्तेषु प्रक्षिप्यते, जातास्ते एकोनविंशति र्मुहूर्त्ताः (१९) शेषास्तिष्ठन्ति सप्त पञ्चाशद् द्वाषष्टि भागाः (५७) तत आगतं यथोक्तं नो युगस्य रात्रिन्दिवपरिमाणम् ($\frac{\text{रात्रि दिव}}{१७९१}$ | $\frac{\text{मु.}}{१९}$ | $\frac{५७}{६२}$ | $\frac{५५}{६७}$)।

अथ नोयुगस्य मुहूर्त्तान् पृच्छति–'**ता से णं**' इत्यादि, 'ता' तावत् '**से णं**' तत् खलु नोयुगं '**केवइए**' कियत्कं कियत्परिमितं '**मुहुत्तग्गेणं**' मुहूर्त्ताग्रेण '**आहियं**' आख्यातम् ? '**ति वएज्जा**, इति वदेत् वदतु हे भगवन् ! भगवानाह–'**ता तेवण्णं**' इत्यादि, '**ता**' तावत् '**तेवण्णं मुहुत्तसहस्साइं**' त्रिपञ्चाशद् मुहूर्त्तसहस्राणि '**सत्त य अउणापन्नाइं मुहुत्तसयाइं**' सप्त च एकोन पञ्चाशानि एकोन पञ्चाशदधिकानि मुहूर्त्तशतानि, '**सत्तावण्णं बावट्ठिभागा**' सप्तपञ्चाशद् द्वाषष्टि

भागाः 'मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्य, तथा 'बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता' द्वाषष्टि भागं च सप्तषष्टिधा छित्वा विभज्य 'पणपण्णंचुण्णिया भागा' पञ्चपञ्चाशत् चूर्णिका भागाः सप्तषष्टिभागाः (५३७४९ $\frac{५७}{६२}|\frac{५५}{६७}$) 'मुहुत्तग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण 'आहियं' आख्यातम् 'ति वएज्जा' इति वदेत् स्वशिष्येभ्य इति। तथाहि अत्र पूर्वोक्तं रात्रिन्दिवपरिमाणं (१७९१) एकस्य रात्रिन्दिवस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् त्रिंशता गुणयित्वा तस्मिन् तदुपरिस्थाः शेषमुहूर्त्ता एकोनविंशतिः (१९) प्रक्षिप्यन्ते, शेषाः द्वाषष्टि भागाः ($\frac{५७}{६२}$) सप्तषष्टिभागाश्च ($\frac{५५}{६७}$) ते एव स्थापनीयास्तत आगच्छति यथोक्तं युगस्य मुहूर्त्तपरिमाणम् (५३७४९ $\frac{५७}{६२}|\frac{५५}{६७}$) इति।

अथ परिपूर्णयुगविषये पृच्छति–'ता केवइएणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'केवइएणं' कियत्कं खलु 'ते' ते तव मते 'जुगप्पत्ते' युगप्राप्तं परिपूर्णं युगं 'राइंदियग्गेणं' रात्रिन्दिवाग्रेण रात्रिन्दिवपरिमाणेन 'आहिए' आख्यातं कथितम्? कियद्रात्रिन्दिवप्रक्षेपणेन तदेव नोयुगं परिपूर्णं, युगं भवतीति भाव. 'ति वएज्जा' इति वदेत्, इति कथयतु हे भगवन्! भगवानाह– 'ता-अट्ठतीसं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'अट्ठतीसं राइंदियाइं' अष्टत्रिंशद् रात्रिन्दिवानि 'दस य मुहुत्ता' दश च मुहूर्त्ताः 'मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्य चत्तारि य बावट्ठिभागा' चत्वारश्च द्वाषष्टिभागाः तथा 'बावट्ठिभागं च' एकं द्वाषष्टिभाग च 'सत्तट्ठिहा छित्ता' सप्तषष्टिधा छित्वा विभज्य तत्सम्बन्धिन 'दुवालसचुण्णिया भागा' द्वादशचूर्णिका भागाः सप्तषष्टिभागाः ($\frac{\text{रात्रि}}{३८}|\frac{\text{मु०}}{१०}|\frac{४}{६२}|\frac{१२}{६७}$) 'राइंदियग्गेणं' रात्रिन्दिवाग्रेण एतावद् रात्रिन्दिवानां संमेलनेन 'आहिए' आख्यातम् पूर्वोक्ते नो युगपरिमाणे एतावद्रात्रिन्दिवादिप्रक्षेपणेन परिपूर्णं त्रिंशदधिकाष्टादशशतरात्रिन्दिवात्मकं (१८३०) युगं भवतीति भावः 'ति वएज्जा' इति वदेत् कथयेत् स्व शिष्येभ्य इति।

अथ नो युगे कियत्परिमित मुहूर्त्तप्रक्षेपणेन परिपूर्णं युगं मुहूर्त्तपरिमाणेन भवति? इति पृच्छति–'ता से णं' इत्यादि 'ता' तावत् 'से णं' तत् खलु परिपूर्णं युगं 'केवइए' कियत्कं कियत्परिमितं 'मुहुत्तग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण 'आहिए' आख्यातम्? परिपूर्णयुगस्य कियन्तो मुहूर्त्ता भवन्ति? 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु हे भगवन्! भगवानाह–'ता एक्कारस' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एक्कारसपण्णासाइं मुहुत्तसयाइं' एकादश पञ्चाशानि पञ्चाशदधिकानि एकादश मुहूर्त्तशतानि (११५०) 'चत्तारिय बावट्ठिभागा' चत्वारश्च द्वाषष्टिभागाः ($\frac{४}{६२}$) 'मुहुत्तस्स' एकस्य

मुहूर्त्तस्य, तथा 'बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता' एकं च द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा छित्वा— विभज्य तत्सत्काः 'दुवालस चुण्णिया भागा' द्वादश चूर्णिका भागाः ($\frac{१२}{६७}$) सप्तषष्टिभागाः (११५० $\left|\frac{४}{६२}\right|\frac{१२}{६७}$) 'मुहुत्तग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण प्रक्षेप्य मुहूर्त्तपरिमाणेन 'आहिए' आख्यातं— कथितम् नो युगमुहूर्त्तादिषु एतावन्मुहूर्त्तादि प्रक्षेपणेन परिपूर्णं युगं मुहूर्त्तपरिमाणेन भवति। तथाहि—नोयुगप्रक्षेप्याणामष्टात्रिंशतो रात्रिन्दिवानां रात्रिन्दिवस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् त्रिंशता गुणने शेषमुहूर्त्तादिप्रक्षेपे च यथोक्तं (११५० $\frac{४}{६२}\Big|\frac{१२}{६७}$) नोयुगम् प्रक्षेप्य मुहूर्त्तादिपरिमाण भवति। एतेषां (११५०+४।१२) नोयुगमुहूर्त्तादिपरिमाणे (५३७४९ $\frac{५७}{४}\Big|\frac{५५}{१२}$) प्रक्षेपणेन परिपूर्ण युगस्य मुहूर्त्तस्य परिमाणं नवशताधिकानि चतुष्पञ्चाशत्सहस्राणि (५४९००) मुहूर्त्तानां भवति। एषामेकस्य रात्रिन्दिवस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् त्रिंशता भागहरणे यथोक्तं परिपूर्णयुगरात्रिन्दिव-परिमाणं (१८३०) जायते, इति। तदेव सूत्रकारः प्रदर्शयति— 'ता केवइयं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'केवइयं' कियत्कं कियत्परिमितं 'जुगे' युगं परिपूर्णं युगं 'राइंदियग्गेणं' रात्रि-न्दिवाग्रेण रात्रिन्दिव परिमाणेन 'आहिए' आख्यातम् 'ति वएज्जा' इति वदेत् कथयतु हे भगवन् ?। भगवानाह—'ता अट्ठारस' इत्यादि 'ता' तावत् 'अट्ठारसतीसाइं राइंदियसयाइं' अष्टादश त्रिंशानि त्रिंशदधिकानि अष्टादश रात्रिन्दिवशतानि (१८३०) 'राइंदियग्गेणं' रात्रिन्दिवाग्रेण परिपूर्णं युगं 'आहिए' आख्यात कथितम् 'ति वएज्जा' इति वदेत् कथयेत् स्वशिष्येभ्य इति।

अथ परिपूर्णयुगस्य मुहूर्त्तपरिमाणविषयकं प्रश्ननिर्वचनसूत्रमाह—'ता से णं केवइए' इत्यादि, 'ता' तावत् 'से णं' तत्खलु परिपूर्णं युगं 'केवइए' कियत्कं कियत्परिमितं 'मुहुत्तग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण 'आहियं' आख्यातं 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु हे भगवन् ! भगवानाह— 'ता चउप्पण्णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'चउप्पण्णं मुहुत्तसहस्साइं' चतुष्पञ्चाशन्मुहूर्त्तसहस्राणि 'णवयमुहुत्तसयाइं' नव च मुहूर्त्तशतानि (५४९००) 'मुहुत्तग्गेणं' मुहूर्त्ताग्रेण 'आहिए' आख्यातम् 'ति वएज्जा इति वदेत् स्वशिष्येभ्य इति।

एतत्कोष्ठकम्—

युगनाम	रात्रिन्दिवमुहूर्त्तादि परिमाणम्	मुहूर्तपरिमाणम्
नोयुगे	रात्रिन्दिवानि मुहूर्त्ता: भागा १७९१ १९ ५७/६२ ५५/६७	५३७४९ ५७/६२ ५५/६७
परिपूर्णे युगे	नो युगे प्रक्षेप्याः रात्रिन्दिवादिभागा रात्रिः मु० ४/७२ १२/६७ ३८ १०	नोयुगमुहूर्त्तेषु प्रक्षेप्यमुहूर्त्तादि ११५० ४/६२ १२/६७
	सम्पूर्णानि रात्रिन्दिवानि १८३०	सम्पूर्णा मुहूर्त्ता· ५४९००

साम्प्रतं परिपूर्णयुगविपयकमेव मुहूर्त्तगत द्वापष्टिभागपरिमाणपरिज्ञानविपयकं सूत्रमाह—'ता से णं केवइए' इत्यादि, 'ता' तावत् 'से णं' तत्खलु परिपूर्णं युगं 'केवइए' कियत्कं 'वावट्ठिभागमुहुत्तग्गेणं' द्वापष्टिभागमुहूर्त्ताग्रेण मुहूर्त्तगतद्वाषष्टिभागपरिमाणेन 'आहिए' आख्यातम् ? 'ति वएज्जा' इति वदेत् कथयतु हे भगवन् ! भगवानाह— 'ता चउत्तीसं' इत्यादि 'ता' तावत् 'चउतीसं सयसहस्साइं' चतुस्त्रिंशच्छतसहस्राणि चतुस्त्रिंशल्लक्षाणि 'अट्ठतीसं च वावट्ठिभागमुहुत्तसयाइं' अष्टत्रिशच्च द्वापष्टिभागमुहूर्त्तगतानि त्रीणि सहस्राणि अष्टशतानि चेत्यर्थः (३४३८००) 'वावट्ठिभागमुहुत्तग्गेणं' द्वापष्टिभागमुहूर्त्ताग्रेण 'आहिए' आख्यातम् 'ति वएज्जा' इति वदतु स्वशिष्येभ्य· । अयं भावः—नवशताधिक चतुष्पञ्चाशन्मुहूर्त्तसहस्राणाम् (५४९००) द्वापष्ट्या गुणने भवति यथोक्ता परिपूर्णयुगस्य द्वापष्टिभागसंख्येति ॥सूत्रम् २॥

पूर्वं नोयुगस्य परिपूर्ण युगस्य च रात्रिन्दिवादिपरिमाणं प्रदर्शितम्, साम्प्रतमादित्य-चन्द्रादिसंवत्सराः कदा समादिकाः समपर्यवसानाश्च भवन्ति ? इति प्रदर्शयन्नाह—'ता कयाणं एए' इत्यादि ।

मूलम् —ता कया णं एए आइच्चचंदसंवच्छरा समादिया समपज्जवसिया आहिया ? ति वएज्जा । ता सट्ठी एए आइच्चमासा वावट्ठी एए चंदमासा, एस णं अद्धा छखुत्तकडा· दुवालसभइया तीसं एए आइच्चसंवच्छरा, एक्कतीसं एए चंदसंवच्छरा समादिया समपज्जवसिया आहिया तिवएज्जा । ता कयाणं एए आइच्च उउचंदणक्खत्ता संवच्छरा समादिया समपज्जवसिया आहिया । ति वएज्जा, ता सट्ठी एए आइच्चमासा, एगट्ठी एए उउमासा, वावट्ठि एए चंदमासा सत्तट्ठी एए नक्खत्तमासा एस णं अद्धा दुवालसखुत्तकडा दुवालसभइया सट्ठि एए आइच्चा संवच्छरा, एगट्ठी एए उउसंवच्छरा, वावट्ठी एए चंदा संवच्छरा, सत्तट्ठी एए नक्खत्ता संवच्छरा, तया णं, एए आइच्च उउचंद नक्खत्तसंवच्छरा समादिया समपज्जवसिया आहिया ति वएज्जा ।

ता कयाणं एए अभिवड्ढियआइच्च–उउ–चंद–णक्खत्तसंवच्छरा समादिया सम-पज्जवसिया अहिया ? ति वएज्जा । ता सत्तावण्णं मासा सत्तय अहोरत्ता, एक्कारस य मुहुत्ता, तेवीसं बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स (५७।७।११|$\frac{२३}{६२}$ एए अभिवड्ढियमासा सट्ठी एए आदिच्चमासा, एगट्ठी एए उउमासा, बावट्ठी एए चंदमासा, सत्तट्ठी एए नक्खत्तमासा, एस णं अद्धा छप्पणसयखुत्तकडा दुवालसभइया सत्तसया चोयाला, एएणं अभिवड्ढिय संवच्छरा, सत्तसया असीया, एएणं आइच्च संवच्छरा, सत्तसया ते णउया एएणं उउसंवच्छरा, अट्ठसया छलुत्तरा, एएणं चंदसंवच्छरा, एगसत्तरी अट्ठसया, एएणं नक्खत्तसंवच्छरा, तयाणं एए अभिवड्ढिय–आइच्च–उउ–चंदनक्खत्तसंवच्छरा समादिया समपज्जवसिया आहिया ति वएज्जा । ता णयट्ठयाए णं चंदे संवच्छरे तिण्णि-चउप्पण्णाइंदियसयाइं दुवालस य बावट्ठिभागा राइंदियस्स आहिया ति वएज्जा ता अहा-तच्चेणं चंदे सवच्छरे तिण्णि चउप्पणाइं दियसयाइं पंच य मुहुत्ता, पण्णासंच बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स आहिया तिवएज्जा ॥ सू० ३ ॥

छाया—तावत् कदा खलु एते आदित्यचन्द्रसंवत्सराः समादिकाः समपर्यवसिता आख्याताः ? इति वदेत् । तावत् षष्टिः एते आदित्यमासाः, द्वाषष्टिः एते चन्द्रमासाः, एषा खलु अद्धा षट्कृत्वः कृता द्वादशभक्ताः त्रिंशद् एते आदित्यसंवच्छराः एकत्रिंशद् एते चन्द्रसंवच्छरा, तदा खलु एते आदित्यचन्द्रसंवच्छरा समादिकाः समपर्यवसिता आख्याता इति वदेत् । तावत् कदा खलु एते आदित्य ऋतु चन्द्रनक्षत्रसंवत्सराः समादिकाः समपर्यवसिता आख्याताः ? इति वदेत् । तावत् षष्टिः एते आदित्यमासाः, एकषष्टिः एते ऋतुमासाः, द्वाषष्टिः एते चन्द्रमासाः, सप्तषष्टिः एते नक्षत्रमासाः, एषा खलु अद्धा द्वादशकृत्वः कृता द्वादशभक्ताः षष्टिः आदित्याः संवत्सराः, एकषष्टिः एते ऋतु संवत्सराः, द्वाषष्टिः एते चान्द्राः संवत्सराः सप्तषष्टिः एते नाक्षत्राः संवत्सराः, तदा खलु एते आदित्य ऋतु चन्द्र नक्षत्रसंवत्सराः समादिकाः समपर्यवसिता इति वदेत् । तावत् कदा खलु एते अभिवर्द्धिता—ऽऽदित्य–ऋतु–चन्द्र नक्षत्रसंवत्सराः समादिकाः समपर्यवसिता आख्याताः ? इति वदेत् तावत् सप्तपञ्चाशद् मासाः, सप्त च अहोरात्राः, एकादश च मुहूर्त्ताः, त्रयोविंशति द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, एते अभिवर्द्धितमासाः षष्टिः, एते आदित्यमासा, एकषष्टिः, एते ऋतुमासाः, द्वाषष्टिः, एते चन्द्रमासाः, सप्तषष्टिः एते नक्षत्रमासाः, एषा खलु अद्धा षट् पञ्चाशच्छतकृत्वः कृता द्वादशभक्ता सप्तशतानि चतुश्चत्वारिंशानि, एते खलु अभिवर्द्धितसंवत्सराः, सप्तशतानि त्रिनवतानि, एते खलु ऋतु संवत्सराः, अष्ट शतानि षडुत्तराणि, एते खलु चन्द्रसंवत्सराः एकसप्ततानि अष्टशतानि, एते खलु नक्षत्रसंवत्सरा तदा खलु एते अभिवर्द्धिता–ऽऽदित्य–ऋतु–चन्द्र–नक्षत्रसंवत्सराः समादिकाः समपर्यवसिता आख्याता इति वदेत् । तावत् नयार्थतया खलु चान्द्रः संवत्सरः त्रीणि चतुष्पञ्चाशानि रात्रिन्दिव

शतानि, द्वादश द्वाषष्टिभागा रात्रिन्दिवस्य आख्याता इति वदेत्। तावत् याथातथ्येन चान्द्रः संवत्सरः त्रीणि चतुष्पञ्चाशानि रात्रिन्दिवशतानि, पञ्चच मुहूर्त्ताः, पञ्चाशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य आख्याता इति वदेत् ॥ सूत्रम् ३॥

व्याख्या—'ता कया णं एए' इति 'ता' तावत् 'कया णं' कदा कस्मिन् काले खलु 'आइच्चचंदसंवच्छरा' आदित्यचन्द्रसंवत्सरा 'समादिया' समादिकाः समप्रारम्भाः 'समपज्जवसिया' समपर्यवसिताः समानपर्यवसानवन्तः 'आहिया' आख्याताः कथिताः? 'त्ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन्? भगवनाह —'ता सट्ठी' इत्यादि 'ता' तावत् 'सट्ठी' षष्टिः, 'एए' एते पूर्वोक्ताः षष्टि संख्यका एक युगान्तर्वर्त्तिनः 'आइच्चमासा' आदित्यमासाः भवन्ति, तथा 'बावट्ठी' द्वाषष्टिः, 'एए' एते पूर्वोक्ताः द्वाषष्टिसंख्यका एक युगान्तर्वर्त्तिनः 'चंदमासा' चन्द्रमासा भवन्ति। ततः 'एस णं' एषा खलु प्रत्येकं 'अद्धा' अद्धा-कालः 'छखुत्तकडा' षट्कृत्वः कृता षड्वारं कृता अत्र षण्णां युगाना विवक्षा, इह षड्सु युगेषु समानपर्यसानसद्भावात्, अतः षड्भिर्गुणिता ततः 'दुवालसभइया' द्वादशभक्ता द्वादशभागहृता द्वादशभिर्भागे हृते 'तीसं एए' त्रिंशदेते (३०) 'आइच्च संवच्छरा' आदित्य संवत्सरा भवन्ति 'एक्कतीसं एए' एकत्रिंशच्च (३१) एते 'चंद संवच्छरा' चन्द्र सवत्सरा भवन्ति। सूर्यस्य त्रिंशत्संवत्सरपरिपूर्णकाले चन्द्रस्य एकत्रिंशत् संवत्सराः परिपूर्णा भवन्तीत्यतआह—'तया णं' इत्यादि 'ता' तावत् 'तया णं' तदा तस्मिन् एतावतिकालेऽतिक्रान्ते खलु 'एए' एते 'आइच्चचंदसंवच्छरा' आदित्यचन्द्रसंवत्सराः 'समादिया' समादिकाः समं समानः आदिः प्रारम्भो येषां ते समादिकाः समानादिमन्तः तथा 'समपज्जवसिया' समपर्यवसिताः समपर्यवसानवन्तो भवन्ति। अयं भावः—एते आदित्यचन्द्रसंवत्सरा विवक्षितस्य युगस्यादौ समप्रारम्भ प्रारब्धा सन्तस्तत आरभ्य षष्ठयुगपर्यवसाने समपर्यवसानवन्तो भवन्ति। तथाहि—एकस्मिन् युगे त्रयश्चन्द्रसंवत्सराः, द्वौ चाभिवर्द्धितसंवत्सरौ, तौ च प्रत्येकं त्रयोदश मासात्मकौ, ततः प्रथमयुगे पञ्च चन्द्रसंवत्सराः, द्वौ च चन्द्रमासौ, द्वितीये युगे दशचन्द्रसंवत्सराः, चत्वारश्च चन्द्रमासाः, एवं प्रतियुगं मास द्विकवृद्धया षष्ठे युगे द्वादशमासात्मक एकः संवत्सरो वर्धते तेन षष्ठयुगपर्यन्ते परिपूर्णा एकत्रिंशच्चन्द्रसंवत्सरा लभ्यन्ते। तथाहि—एकस्मिन् युगे आदित्यमासाः षष्टिः प्रोक्ताः तेषां षड्भिर्गुणने जातानि षष्ट्यधिकानि त्रीणि शतानि (३६०) मासानाम्। एषां द्वादशमासैरेकः संवत्सरो भवतीति, द्वादशभिर्भागे हृते त्रिंशत् सवत्सरा लभ्यन्ते। ननु एकस्यादित्यसंवत्सरस्य षट्षष्ट्यधिकानि त्रीणि शतानि (३६६) दिनानि भवन्तीत्यत एषां त्रिंशता गुणने जायन्ते दशसहस्राणि अशीत्यधिकानि नवशतानि (१०९८०) दिनानामिति। तथा चन्द्रमासा द्वाषष्टि (६२), एते षड्भिर्गुण्यन्ते जाता द्वासप्तत्यधिक शतत्रयमासा. (३७२) एषां संवत्सरानयनार्थं द्वादशभिर्भागो ह्रियते लब्धा एकत्रिंशत् (३१) संवत्सराः। एकस्य

चन्द्रसंवत्सरस्य दिनानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि त्रिशतानि एकस्य दिनस्य द्वादश द्वाषष्टिभागा (३५४। $\frac{१२}{६२}$) एषामेकत्रिंशता गुणने जायन्ते दशसहस्राणि अशीत्यधिकानि नवशतानि दिनानाम् (१०९८०) एवं जाता आदित्यचन्द्रसंवत्सरयोर्दिवसानां समानता । इयत्सु दिवसेषु व्यतिक्रान्तेषु द्विप्रकाराणां संवत्सराणां पर्यवसानं भवतीति ते समपर्यवसिता भवन्तीति । अथादित्यऋतु चन्द्रनक्षत्रेति संवत्सरचतुष्टयविषये पृच्छति–'**ता कयाणं एए आइच्च**' इत्यादि '**ता**' तावत् '**कयाण**' कदा खलु '**एए**' एते वक्ष्यमाणा '**आइच्च-उउ-चंद-णक्खत्तसंवच्छरा**' आदित्य ऋतुचन्द्रनक्षत्रसवत्सराः चत्वारोऽपि '**समादिया**' समादिकाः समानादिमन्तः '**समपज्जवसिया**' समपर्यवसिताः समानपर्यवसानवन्त '**आहिया**' आख्याताः ? '**तिवएज्जा**' इति वदेत् वदतु हे भगवन् ? । भगवानाह–'**ता सट्ठि**' इत्यादि, '**ता**' तावत् '**सट्ठी**' षष्टिः (६०) '**एए**' एते एकयुगान्तर्वर्तिन '**आइच्चमासा**' आदित्यमासाः । '**एगट्ठि**' एकषष्टिः (६१) '**एए**' एते एकयुगान्तर्वर्त्तिनः '**उउमासा**' ऋतुमासाः । '**बावट्ठी**' द्वाषष्टिः (६२) एते एकयुगान्तर्वर्त्तिनः '**चंदमासा**' चन्द्रमासाः '**सत्तट्ठि**' सप्तषष्टिः (६७) ६०-षष्टिरादित्यमासा । ६१-एकषष्टि ऋतुमासाः । ६२-द्वाषष्टिश्चन्द्रमासाः । ६७-सप्तषष्टिनक्षत्रमासाः । '**एए**' एते एकयुगान्तर्वर्त्तिन '**नक्खत्तमासा**' नक्षत्रमासाः '**एसणं**' एषा प्रत्येकं खलु अद्धाकालरूपा '**दुवालसक्खुत्तकडा**' द्वादशकृत्वः कृता अत्र द्वादशभिर्युगैः समानपर्यवसानसद्भावात् द्वादशभिर्गुणितेत्यर्थः, ततश्च '**दुवालसभइया**' द्वादशभक्ता द्वादशभागहृता '**सट्ठी**' षष्टिः षष्टिसंख्यकाः '**एए**' एते द्वादशयुगसम्बन्धिनः '**आइच्च संवच्छरा**' आदित्यसंवत्सराः । एवं '**एगट्ठि**' एकषष्टिः '**एए**' एते '**उउसंवच्छरा**' ऋतुसंवत्सराः । एवं '**बावट्ठी**' द्वाषष्टिः '**एए**' एते '**चंदसंवच्छरा**' चन्द्रसंवच्छरा । '**सत्तट्ठी**' सप्तषष्टिः '**एए**' एते '**नक्खत्तसंवच्छरा**' नक्षत्रसंवत्सराः एषा सवत्सरसंख्या प्रत्येकं द्वादशयुगातिक्रमे भवतीत्यर्थः । अयं भावः–एते चत्वारोऽपि सवत्सराः विवक्षित युगस्यादौ समादिकाः समारब्धप्रारम्भाः सन्तस्तत आरभ्य द्वादशयुगपर्यन्ते समपर्यवासाना भवन्ति, द्वादशयुगेभ्योऽर्वाक् एषां चतुर्णां सवत्सराणां मध्यादन्यतमस्य कतिपयमासानामधिक तयाऽवश्यम्भावेन सर्वेषां युगपत् समपर्यवसानत्वासंभवात् । अथैषां प्रत्येकं दिनसमानता गणितेन प्रदर्श्यते –पूर्वं चतुर्णा सवत्सराणामेक युगान्तर्वर्त्तिमाससंख्याप्रदर्शिता एषा प्रत्येकमाससंख्या द्वादशभिर्गुणिता पुनश्च द्वादशभिर्विभक्ता क्रियते ततः संवत्सरा आयान्ति, तत्र द्वादशसु युगेषु षष्टिरादित्य संवत्सराः (६०), एकषष्टि ऋतुसंवत्सराः (६१), द्वाषष्टिश्चन्द्रसंवत्सराः (६२) सप्तषष्टिश्चनक्षत्रसवत्सराः (६७) लभ्यन्ते । तत्रैकस्मिन् युगे आदित्यमासाः षष्टिः (६०), एषा द्वादशभिर्गुणने विंशत्यधिकानि सप्तशतानि (७२०), एषां द्वादशभिर्भागे हृते द्वादशसु युगेषु षष्टिरादित्यसवत्सराः (६०) लब्धाः । तत एकस्यादित्यसवत्सरस्य षट्षष्टयधिकानि त्रीणि-

शतानि (३६६) दिनानां भवन्ति, एते द्वादशयुगसम्बन्धिनः षष्टिरादित्यसंवत्सरा इति षष्ट्या गुण्यन्ते, गुणिते च लभ्यन्ते—एकविंशतिः सहस्राणि, नवशतानि, षष्ट्यधिकानि (२१९६०) आदित्यसंवत्सरदिनानीति । एवं द्वादशसु युगेषु ऋतु संवत्सरा एकषष्टिः, एकस्य ऋतुसंवत्सरस्य षष्ट्यधिकानि त्रीणि शतानि (३६०) दिनानि भवन्ति, एषामेक षष्ट्या-(६१) गुणने कृते लभ्यन्ते तान्येव (२१९६०) ऋतुसंवत्सरदिनानीति एवं द्वादशसु युगेषु चन्द्रसंवत्सरा द्वाषष्टि (६२), एकस्य चन्द्रसंवत्सरस्य चतुष्पञ्चाशदधिकानि त्रीणि शतानि दिनानि, एकस्य दिनस्य च द्वादश द्वाषष्टि भागाः ($३५४\frac{१२}{६२}$), एषां द्वाषष्ट्या गुणने लभ्यन्ते पूर्वोक्त तुल्यानि (२१९६०) चन्द्रसंवत्सरदिनानीति । एवं द्वादशसु युगेषु सप्तषष्टि (६७) नक्षत्रसंवत्सराः, एकस्य नक्षत्रसंवत्सरस्य सप्तविंशत्यधिकानि त्रीणि शतानि दिनानाम् एकस्य च दिनस्य एकपञ्चाशत् सप्तषष्टि भागाः ($३२७\frac{५१}{६७}$), एषा सप्तषष्ट्या गुणने जायन्ते तान्येव (२१९६०) नक्षत्रसंवत्सरदिनानीति । इयत्सु समानेषु दिवसेषु व्यतिक्रान्तेषु चतुर्णामपि संवत्सराणां समानत्वेन पर्यवसानं भवतीति ।

अथाभिवर्द्धितादि पञ्चसंवत्सरविषये गौतमः पृच्छति—'ता कयाणं' इत्यादि 'ता' तावत 'कया णं' कदा खलु 'एए' एते पञ्च वक्ष्यमाणाः 'अभिवड्ढिय आइच्च—चंद—णक्खत्त-संवच्छरा' अभिवर्द्धितादित्य—ऋतु——चन्द्र—नक्षत्रसंवत्सरा· 'समादिया' समादिकाः समानादि-मन्त. 'समपज्जवसिया' समपर्यवसिताः समानपर्यवसानवन्त· 'आहिया' आख्याताः कथिताः ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् ! । एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह—'ता—सत्तावण्णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'सत्तावण्णं मासा' सप्तपञ्चाशत् मासाः 'सत्त य अहोरत्ता' सप्तचाहोरात्रा, 'एक्कारस य मुहुत्ता' एकादश च मुहूर्त्ता. 'तेवीसं बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स' एक-स्यमुहूर्त्तस्य त्रयोविंशति द्वाषष्टिभागाः ($५७।७।११।\frac{२३}{६२}$) 'एए' एते अनुपदं प्रदर्शिताः 'अभिवड्ढियमासा' अभिवर्द्धितमासा एक युगान्तर्वर्तिन. सन्ति । 'सट्ठी' षष्टि षष्टि सङ्ख्यका (६०) 'एए' एते 'आइच्चमासा' आदित्यमासा· । 'एगट्ठि' एकषष्टि. (६१) 'एए' एते 'उउमासा' ऋतुमासा· । 'बावट्ठी' द्वाषष्टि· (६२) 'एए' एते 'चंदमासा' चन्द्रमासाः । 'सत्तट्ठी' सप्तषष्टि· (६७) 'एए' एते 'णक्खत्तमासा' नक्षत्रमासाः एते एक युगान्तर्वर्तिनोऽभिवर्द्धितादित्य ऋतुचन्द्रनक्षत्रमासा. प्रत्येकं प्रोक्ताः, साम्प्रतमेषां प्रत्येकं समादिसमपर्यवसान सवत्सरनयनविधि प्रदर्शयति—'एस णं' इत्यादि, 'एस णं' एषा पूर्वप्रदर्शिता 'अद्धा' अद्धा प्रत्येकस्य एक युगान्तर्वर्त्तिमासरूपः कालः प्रत्येकस्य मासा

इत्यर्थः 'छप्पणसयखुत्तकडा' पट्पञ्चाशच्छतकृत्वः कृता पट्पञ्चाशच्छतगुणिता 'दुवालसभइया' द्वादशभिर्हृतभागा, पट्पञ्चाशदधिकशतेन गुणितानामभिवर्द्धितादिमासानां द्वादशभिर्भागे हृते या या संख्या लभ्यते सा सा संख्या अभिवर्द्धितादिसंवत्सराणां प्रत्येकस्य संख्या भवति। तामेव संख्यां प्रदर्शयति–'सत्तसया चोयाला' सप्तशतानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि संवत्सराणाम्, 'एएणं' एते (७४४) खलु 'अभिवड्ढियसंवच्छरा' अभिवर्द्धितसंवत्सरा भवन्तीति। आदित्य सवत्सरानाह–'सत्तसया असीया' सप्तशतानि अशीत्यधिकानि (७८०) 'एएणं' एते खलु 'आइच्चसंवच्छरा' आदित्य संवत्सरा भवन्ति। ऋतुसंवत्सरानाह–'सत्तसया तेणउया' सप्तशतानि त्रिनवत्यधिकानि (७९३), 'एए णं' एते खलु 'उउसंवच्छरा' ऋतुसंवत्सरा भवन्ति। चन्द्रसंवत्सरानाह–'अट्ठसया छलुत्तरा' अष्टशतानि षडुत्तराणि (८०६) 'एएणं' एते खलु 'चंदसवच्छरा' चन्द्रसंवत्सरा भवन्ति। नक्षत्रसंवत्सरानाह–'एगसत्तरी-अट्ठसया' एकसप्तत्यधिकानि अष्टशतानि-(८७२) 'एए णं' एते खलु 'नक्खत्तसंवच्छरा' नक्षत्रसंवत्सरा भवन्ति। एते पञ्चापि संवत्सराः स्वस्व प्रमाणमाश्रित्य यदा परिपूर्णा भवेयुः, 'तया णं' तदा खलु 'एए' एते 'अभिवड्ढिय–आइच्च–उउचंद–णक्खत्तसंवच्छरा' अभिवर्द्धितादित्य ऋतुचन्द्रनक्षत्रसंवत्सराः 'समादिया–समपज्जवसाणा' समादिकाः समपर्यवसानाः एक कालिकादिपर्यवसानवन्तः 'आहिया' आख्याताः एते कालसाम्यमाश्रित्य षट्पञ्चाशदधिकशत (१५६) संख्यकेषु युगेषु परिपूर्णेषु सत्सु परिपूर्णा भवन्तीति विवेकः। 'तिवएज्जा' इति वदेत् स्वशिष्येभ्य इति एषां पञ्चानां सवत्सराणां मध्यात् एकैकयुगसम्बन्धिनो मासान् सूत्रोक्तविधिना पट्पञ्चाशदधिकशतेन गुणयित्वा द्वादशभिर्भागे हृते पट्पञ्चाशदधिकशतसंख्यकयुगसम्बन्धिनः प्रत्येकस्य सवत्सरा समायान्ति। षट्पञ्चाशदधिकशतसंख्यकैर्युगैरव पूर्वोक्ताभिवर्द्धितादिसंवत्सराणां समादि समपर्यवसानसद्भावादिति। अथैषां संवत्सर संख्या गणितेन प्रदर्श्यते तद्विधिर्यथा—

एकयुगवर्त्तिनोऽभिवर्द्धितमासाः सूत्रोक्ताः सप्तपञ्चाशत्–अहोरात्राः, एकादश मुहूर्त्ताः, त्रयोविंशतिश्च द्वाषष्टि भागाः (५७–७–११–$\frac{२३}{६२}$)। एते षट्पञ्चाशदधिकशतेन (१५६) गुणनीया भवन्ति, तत्र–प्रथमं सप्तपञ्चाशत् पट्पञ्चाशदधिकेन शतेन गुन्यन्ते, जायन्ते–अष्टसहस्राणि–अष्टशतानि द्विनवत्यधिकानि–८८९२ एते मासा जाताः। ततः सप्तअहोरात्राः षट्पञ्चाशदधिक शतेन गुण्यन्ते, जातानि द्विनवत्यधिकानि दश शतानि–१०९२, एतेऽहोरात्रा जाताः। तत एकादश मुहूर्त्ताः पट्पञ्चाशदधिकशतेन गुण्यन्ते जातानि–षोडशाधिकानि सप्तदश–शतानि–१७१६ एते मुहूर्त्ता जाताः। ततः त्रयोविंशतिः द्वाषष्टिभागाः षट्पञ्चाशदधिक शतेन गुण्यन्ते, जातानि

पञ्चत्रिंशच्छतानि अष्टाशीत्यधिकानि-३५८८, एते द्वाषष्टिभागाः जाताः-यथा-मासा / ८८९२

अहोरात्रा	मुहूर्त्ताः	द्वाषष्टिभागाः
१०९२	१७१६	३५८८

प्रथमं द्वाषष्टि भागानां (३५८८) मुहूर्त्तानयनार्थं द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धाः सप्तपञ्चाशत् (५७), एते मुहूर्त्तराशौ (१७१६) प्रक्षिप्यन्ते जाता मुहूर्त्ताः सप्तदशशतानि त्रिसप्तत्यधिकानि (१७७३) मुहूर्त्ताः भवन्ति, शेषा ये चतुष्पञ्चाशत् (५४) तेऽधुना स्थाप्या। एषां मुहूर्त्तानां (१७७३) अहो रात्रानयनार्थं त्रिंशता (३०) भागो ह्रियते लब्धाः एकोनषष्टिः (५९) अहोरात्राः, एतेऽहोरात्रसंख्यायां (१०९२) प्रक्षिप्यन्ते जातानि-एकादश शतानि एक पञ्चाशदधिकानि (११५१) अहोरात्राः, शेषीभूता ये त्रयास्ते एकत्रस्थाप्याः। एषां मासानयनार्थम्-अभिवर्द्धितमासा द्वात्रिंशद्दिवसात्मको भवति ततो द्वात्रिंशता भागो ह्रियते, लब्धाः पञ्चत्रिंशत् (३५। एषां स्थापना-(मा./३५ दि./३१ | मु./३ | द्वा./५४) । वस्तुतोऽभिवर्द्धितमासस्य दिवसाः-एकत्रिंशत् सार्द्धा षष्टिश्च द्वाषष्टिभागाः (३१-६०॥/६२) भवन्ति। अथवा-एकत्रिंशद्दिनानि-एकविंशत्यधिकशत भागाश्चतुर्विंशत्यधिकशत भागानाम् (३१ १२१/१२४) एषाऽपि संख्या भवति-अभिवर्द्धितमासस्य दिवसानाम्। पूर्वमहोरात्राणां द्वात्रिंशता भागो हृत. अतः प्रतिमासं सार्द्धैको भागो निष्कास्यते, ततः पञ्चत्रिंशन्मासानां प्रत्येकं सार्द्धैकस्मिन् भागे निष्काशिते निष्काशिता भागा लभ्यन्ते-सार्द्धा द्विपञ्चाशद्भागाः (५२॥) एकस्य दिनस्य। ततो मुहूर्त्तानां त्रिंशता भागे हृते ये शेषा त्रयः स्थापिता स्तेषां द्वाषष्टिभागकरणार्थं ते द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते, जातं षडशीत्यधिकं शतम् (१८६)। ततश्चतुष्पञ्चाशद् (५४) द्वाषष्टि भागा ये पूर्वे शेषाः स्थितास्तेऽत्र षडशीत्यधिके शते प्रक्षिप्यन्ते जाते चत्वारिंशदधिके द्वे शते (२४०) एते एकस्य मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टि भागाः सन्ति तत एषां त्रिंशता भागो ह्रियते, लब्धा अष्टौ (८) एते दिवसस्य द्वाषष्टि भागाः सन्ति। तत एते (८) उपरि ये पञ्चत्रिंशन्मासेभ्यः प्रत्येकं सार्द्धैकभागे निष्कासिते ये लब्धा निष्कासिता भागाः सार्द्धाद्विपञ्चाशत् (५२॥) एषु तेऽष्टौ भागाः प्रक्षिप्यन्ते जाता सार्द्धषष्टि (६०॥) एकस्य दिनस्य। ततो ये एकत्रिंशद्दिवसाः (३१) शेषी भूता आसन् तैः सह संयोज्यन्ते ततो जाता एकस्याभिवर्द्धितमासस्य दिवसाः (३१ ६०॥/६२) इय दिवसात्मक एकोऽभिवर्द्धितमासः (१) एष एको मासः उपर्युक्तेषु पञ्चत्रिंशन्मासेषु प्रक्षिप्यते जाताः षट्त्रिंशन्मासाः (३६) एते एकस्य युगस्य

सप्तपञ्चाशद् मासाः षट्पञ्चाशदधिकशतेन गुणिताः ये अष्ट सहस्राणि अष्टशतानि द्विनवत्यधिकानि (८८९२) मासानां जातास्तेषु प्रक्षिप्यन्ते जायन्ते अष्टसहस्राणि नव शतानि अष्टाविंशत्यधिकानि (८९२८) द्वादशभिर्भागे हृते जायन्ते, सूत्रोक्ताः **'सत्तसया चोयाला'** चतुश्चत्वारिंशदधिकानि सप्तशतानि (७४४) अभिवर्द्धितसंवत्सरा षट्पञ्चाशदधिकशतसंख्यकेषु (१५६) युगेषु इति।

अथवाऽन्यत्र–एक युगवर्त्तिनोऽभिवर्द्धितमासाः सप्तपञ्चाशत् एकस्य च मासस्य त्रयस्त्रयोदशभागाः–(५७ $\left|\frac{३}{१३}\right.$)। एतावत्प्रमाणं लभ्यते, तथाहि–**"सत्तावण्णं मासा मासस्स य तिन्नि तेरसभागा"** इति। तत एतदनुसारेणापि गणितं प्रदर्श्यते, तथाहि–सप्तपञ्चाशन्मासाः, त्रयस्त्रयोदशभागाः (५७ $\left|\frac{३}{१३}\right.$)। एते षट्पञ्चाशदधिकशतेन गुण्यन्ते, तत्र पूर्वं सप्तपञ्चाशत् षट्पञ्चाशदधिकशतेन गुण्यन्ते, जातानि-अष्ट सहस्राणि अष्टशतानि द्विनवत्यधिकानि (८८९२) ततस्त्रयस्त्रयोदशभागाः षट्पञ्चाशदधिकशतेन गुण्यन्ते, जातानि चत्वारि शतानि अष्टषष्ट्यधिकानि (४६८), एषां मासानयनार्थं त्रयोदशभिर्भागो ह्रियते, लभ्यन्ते षट्त्रिंशन्मासाः (३६), एते पूर्वोक्तमासराशौ (८८९२) प्रक्षिप्यन्ते जातानि–अष्टसहस्राणि नवशतानि अष्टाविंशत्यधिकानि (८९२८)। एषा द्वादशभिर्भागो ह्रियते लभ्यन्ते यथोक्ताश्चतुश्चत्वारिंशदधिकसप्तसंख्यकाः (७४४) संवत्सराः षट्पञ्चाशदधिकशत (१५६) युगानाम्।

अथादित्यसंवत्सराः प्रदर्श्यन्ते–एकस्य युगस्यादित्यमासाः षष्टिः (६०) एते षट्पञ्चाशदधिकशतेन गुण्यन्ते–जातानि नव सहस्राणि त्रीणि शतानि षष्ट्यधिकानि (९३६०) एषां द्वादशभिर्भागे हृते लभ्यन्ते–सूत्रोक्ताः **'सत्तसया असीया'** अशीत्यधिकानि सप्तशतानि (७८०) षट्पञ्चाशच्छतयुगेषु आदित्यसवत्सरा इति। ऋतुसंवत्सराः प्रदर्श्यन्ते–एकयुगान्तर्वर्त्तिन ऋतुमासाः एकषष्टिः (६१) एते षट्पञ्चाशदधिकेन शतेन गुण्यन्ते, जातानि नवसहस्राणि पञ्चशतानि षोडशाधिकानि (९५१६)। एषां द्वादशभिर्भागे हृते लभ्यन्ते सूत्रोक्ताः, **'सत्तसया तेणउया'** सप्तशतानि त्रिनवत्यधिकानि (७९३) ऋतुसवत्सरा इति। चन्द्रसंवत्सरानाह–एकयुगान्तर्वर्तिनश्चन्द्रमासाः द्वाषष्टिः (६२), एते षट्पञ्चाशदधिकशतेन गुण्यन्ते, जातानि–नवसहस्राणि षट्शतानि द्वासप्तत्यधिकानि (९६७२), एषां द्वादशभिर्भागे हृते लभ्यन्ते सूत्रोक्ताः **'अट्ठसया छलुत्तरा'** अष्टशतानि षडुत्तराणि (८०६) चन्द्रसंवत्सरा इति। नक्षत्रसंवत्सरानाह–एकस्मिन् युगे नक्षत्रमासाः सप्तषष्टिः (६७), एते षट्पञ्चाशदधिकशतेन गुण्यन्ते, जातानि दशसहस्राणि, चत्वारि शतानि

द्विपञ्चाशदधिकानि (१०४५२), एषां द्वादशभिर्भागे हृते लभ्यन्ते सूत्रोक्ताः 'एगसत्तरी अट्ठसया' एकसप्तत्यधिकानि अष्टशतानि (८७१) नक्षत्रसंवत्सरा इति । ऐतेऽभिवर्द्धितादयः संवत्सराः षट्त्रिंशदधिकशतेषु युगेषु समादिका समपर्यवसाना भवन्तीति । अथैतेषामभिवर्द्धितादि संवत्सराणां दिनानि समानत्वेन प्रदर्श्यन्ते—

एकस्याभिवर्द्धितसंवत्सरस्य त्र्यशीत्यधिकानि त्रीणि शतानि दिनानाम्, एकस्य च दिनस्य एकविंशतिर्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टादश द्वाषष्टिभागाः (३८३।२१।$\frac{१८}{६२}$) । एष राशिः चतुश्चत्वारिंशदधिक सप्तशतैः (७४४) गुणने जातानि अभिवर्द्धितसंवत्सराणां दिनानि—द्वे लक्षे, पञ्चाशीतिः सहस्राणि, चत्वारि शतानि अशीत्यधिकानि (२८५४८०) (१) एवमादित्य संवत्सराः अशीत्यधिक सप्तशतसंख्यका (७८०) तत्रैकस्यादित्यसंवत्सरस्य षट् षष्ट्यधिकानि त्रीणि शतानि (३६६) दिनानां भवन्ति, एषामशीत्यधिकसप्तशतैर्गुणने जायन्ते यथोक्तानि (२८५४८०) दिनानि । एवं त्रिनवत्यधिकानि सप्तशतानि ऋतुसंवत्सराणां (७९३) भवन्ति । एकस्य च ऋतुसंवत्सरस्य षष्ठ्यधिकत्रिशतसंख्यकानि (३६०) दिनानि भवन्ति, एषां त्रिनवत्यधिकसप्तशतैः गुणने जायन्ते यथोक्तानि (२८५४८०) दिनानि (३) एवं चन्द्रसंवत्सराः षडुत्तराष्टशतसंख्यका (८०६) भवन्ति, एकस्य चन्द्रसंवत्सरस्य चतुष्पञ्चाशदधिकानि त्रीणि शतानि दिनानाम्, एकस्य च दिनस्य द्वादश द्वाषष्टि भागाः (३५४।$\frac{१२}{६२}$) एषां षडुत्तराष्टशत—(८०६) संख्यया गुणने जायन्ते यथोक्ता (२८५४८०) संख्या दिनानामिति (४) एवं नक्षत्रसंवत्सराः एक सप्तत्यधिकाष्टशतसंख्यका (८७१) एकस्य च नक्षत्रसंवत्सरस्य सप्तविंशत्यधिकशतत्रयसंख्यका दिवसाः, एकपञ्चाशच्च सप्तषष्टि भागाः (३२७।$\frac{५१}{६७}$) एषामेकसप्तत्यधिकाष्टशत—(८७१) गुणने कृते लभ्यन्ते नक्षत्रसंवत्सरदिनानि यथोक्तानि (२८५४८०) इति (५) । एषां पञ्चानामपि संवत्सराणामियत्परिमितेषु (२८५४८०) समानेषु दिवसेषु व्यतिक्रान्तेषु समादिः समपर्यवसानं च भवतीति ।

अथ पूर्वक्रमेणैव चन्द्रसंवत्सरपरिमाणं गणितभेदमाश्रित्य प्रकारद्वयेन प्रदर्शयति 'ता' णक्खत्ताणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'णक्खत्ताए' नयार्थतया अन्यनयापेक्षया, परतीर्थिकसंमतनयमतेनेत्यर्थः 'चंदसंवच्छरे' चान्द्र संवत्सरः 'तिण्णि चउप्पण्णाइं राइंदियसयाइं' त्रीणि चतुष्पञ्चाशानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि त्रीणि रात्रिन्दिवशतानि, 'राइंदियस्स' एकस्य रात्रिन्दिवस्य

'दुवालस य वासट्ठिभागा' द्वादश च द्वापष्टिभागाः(३५४ $\frac{१२}{६२}$) एतत्परिमितः 'आहिए' आख्यातः 'तिवएज्जा' इति वदेत् स्वशिष्येभ्य । अथ भगवान् भाषामाश्रित्य यथार्थतां प्रदर्शयति 'ता अहातच्चे णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'अहातच्चेणं' याथातथ्येन यथार्थतया आगमभाषया 'चंदे संवच्छरे' चान्द्रः संवत्सरः 'तिण्णि चउप्पण्णाई राइंदियसयाइं' त्रीणि चतुष्पञ्चाशानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि त्रीणि रात्रिन्दिवशतानि, 'पंच य मुहुत्ता' पञ्च च मुहूर्ताः 'पण्णासं च वासट्ठिभागा मुहुत्तस्स' पञ्चाशच्च द्वापष्टिभागा एकस्य मुहूर्त्तस्य (दि. ३५४ मु. ५ $\frac{५०}{६२}$), एतावत्परिमितश्चन्द्रसंवत्सरः 'आहिए' आख्यातः आगमभाषया कथितः "तिवएज्जा" इति—एवं वदेत् कथयेत् स्वशिष्येभ्यः इति । यद्यपि चन्द्रसंवत्सरस्य द्वयमपि परिमाणं समानमेव तथापि भाषाभेदोऽत्र प्रदर्शितः । प्रथम परिमाणमन्यतीर्थिकभाषया वर्त्तते, इदं परिमाणं तु आगमभाषया विज्ञेयमिति । तथाहि—अहोरात्रपरिमाणं चतुष्पञ्चाशदधिकशतत्रयरूपं (३५४) तु तावदेकरूपमेव, ये तूपरितना द्वादशद्वापष्टि भागास्ते एकस्याहोरात्रस्य कथिता । तेषां मुहूर्त्ता अहोरात्रस्य क्रियन्ते तदा मुहूर्त्तानयनार्थं द्वादश त्रिंशता गुण्यन्ते जायन्ते षष्ट्यधिकानि त्रीणि शतानि (३६०), एषां मुहूर्त्तकरणार्थं द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धाः पञ्च मुहूर्त्ता (५) शेषास्तिष्ठन्ति मुहूर्त्तस्य पञ्चाशद् (५०) द्वापष्टिभागाः (३५४।५ $\frac{५०}{६२}$) । एवमुभयोः समात्वमेव सिद्ध्यतीति । सू०३ ॥

पूर्वमुक्ता सप्रपञ्चं सवत्सरवक्तव्यता, अथ ऋतुवक्तव्यतामाह—'तत्थ खलु इमे छ उऊ' इत्यादि ।

मूलम्— तत्थ खलु इमे छ उऊ पण्णत्ता, 'तं जहा-पाउसे १, वरिसारत्ते २, सरए ३, हेमंते ४, वसंते ५, गिम्हे ६. । ता सव्वे वि णं एए चंदउऊउवे २ मासा तिचउप्पण्णेणं २, आदाणेणं गणिज्जमाणा साइरेगाइं एगूणसट्ठी २, राइंदियाइं राइंदियग्गेणं आहिए ति वएज्जा । तत्थ खलु इमे छ ओमरत्ता पण्णत्ता, तं जहा—तइए पव्वे १ सत्तमे पव्वे २, एक्कारसमे पव्वे ३, पण्णरसमे पव्वे ४, एगूणवीसइमे पव्वे ५, तेवीसइमे पव्वे ६, तत्थ खलु इमे छ अतिरत्ता पण्णत्ता तं जहा—चउत्थे पव्वे १, अट्ठमे पव्वे २, बारसमे पव्वे ३, सोलसमे पव्वे ४, वीसइमे पव्वे ५, चउवीसइमे पव्वे ६, गाहा—" छच्चेव य अइरत्ता, आइच्चाओ हवंति जाणाहि । छच्चेव ओमरत्ता, हवंति जाणाहि" ॥ १ ॥ सूत्रम् ॥ ४ ॥

छाया—तत्र खलु एते षड् ऋतवः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-प्रावृट् १, वर्षारात्रः २, शरत् ३, हेमन्तः ४, वसन्तः ५, ग्रीष्मः ६, । तावत् सर्वेऽपि खलु एते चन्द्र ऋतवः द्वौ द्वौ मासौ त्रिचतुष्पञ्चाशता २ आदानेन गण्यमानौ सातिरेकाणि एकोनषष्टिः २ रात्रिन्दिवानि रात्रिन्दिवाग्रेण आख्यातौ इति वदेत् । तत्र खलु इमे षड् अवमरात्राः प्रज्ञप्ताः तद्यथा—तृतीये पर्वणि १, सप्तमे पर्वणि २, एकादशे पर्वणि ३, पञ्चदशे पर्वणि ४, एकोन विंशतितमे पर्वणि ५, त्रयो विंशतितमे पर्वणि ६, तत्र खलु इमे षड् अतिरात्राः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—चतुर्थे पर्वणि १, अष्टमे पर्वणि द्वादशे पर्वणि ३, षोडशे पर्वणि ४, विंशतितमे पर्वणि ५, चतुर्विंशतितमे पर्वणि ६ । गाथा—"षडेव च अतिरात्राः आदित्याद् भवन्ति जानीहि । षडेव अवमरात्राः चन्द्राद् भवन्ति जानीहि ,, ॥१॥ सूत्र ॥४॥

व्याख्या—'तत्थ खलु' इति, 'तत्थ' तत्रेति अस्मिन् मनुष्यलोके प्रति सूर्यायनं प्रति-चन्द्रायनं चाश्रित्य खलु 'इमे' इमे वक्ष्यमाणाः 'छ उऊ पण्णत्ता' षड् ऋतवः प्रज्ञप्ताः, 'तं जहा' तद्यथा—ते यथा— 'पाउसे' प्रावृट् १, 'वरिसारत्ते' वर्षारात्रः २, 'सरए' शरत् ३, 'हेमंते' हेमन्तः ४, 'वसंते' वसन्तः ५, 'गिम्हे' ग्रीष्म ऋतुरिति ६, । लोके तु अन्यथाभिधाना ऋतवः प्रसिद्धाः, तथाहि—प्रावृट् १, शरद् २, हेमन्त ३, शिशिरः ४, वसन्तः ५, ग्रीष्मश्चेति ६, । लोकोत्तरे जिनमते तु यथोक्ताभिधाना एव ऋतवः उक्तञ्च—

'पाउसवासारत्ते, सरओ हेमंत वसंत गिम्हो य ।
एए खलु छप्पि उऊ जिणवरदिट्ठायए सिट्ठा ॥१॥"

छाया—प्रावृट् वर्षारात्रः शरद् हेमन्तः वसन्तः ग्रीष्मश्च ।
एते खलु षडपि ऋतवः, जिनवरदृष्टा मया शिष्टाः कथिताः ॥१॥ इति ।

ऋतवो हि द्विधा—सूर्यर्त्तवश्चन्द्रर्त्तवश्च । तत्र प्रथमं सूर्यर्तुवक्तव्यता प्रस्तूयते—तत्र एकैकस्य सूर्यर्त्तोः परिमाणं सूर्यमासस्य सार्द्धत्रिंशदहोरात्रात्मकत्वात् द्वौ सूर्यमासौ एक षष्ट्यहोरात्रात्मको उक्तञ्च—

"वे आइच्च मासा, एगट्ठी ते भवंतहोरत्ता ।
एयं उ उ परिमाणं, अवगयमाणा जिणा विंति" ॥१॥

छाया—द्वौ आदित्यौ मासौ, एक षष्टिस्ते भवन्त्यहोरात्राः ।
एतद् ऋतु परिमाणं, अवगतमाना जिना वदन्ति ॥१॥ इति

इहेप्सितसूर्यार्त्तवानयने वृद्धोक्ता करण गाथाः प्रदर्श्यन्ते
"सूर उउस्साणयणे, पव्वं पण्णरससंगुणं नियमा ।
तहिं संखित्तं संतं, बावट्ठी भाग परिहीणं ॥१॥
दुगुणेगट्ठीइजुयं, बावीससएण भाइए नियमा—

जं लद्धं तस्स पुणो, छहिं हिय सेसं उऊ होइ ॥२॥
सेसाणं अंसाणं, वहिउ भागेहिं तेसिं जं लद्धं ।
ते दिवसा नायव्वा, होंति पवत्तस्स अयणस्स ॥३॥"

छाया–सूर्यर्त्तोरानयने पर्व पञ्चदश संगुणं नियमात् ।
तत्र संक्षिप्तं सत द्वाषष्टि भागपरिहीनम् ॥१॥
द्विगुणम् एकषष्टियुतं, द्वाविंशशतेन भाजिते नियमात् ।
यल्लब्धं तस्य पुनः षड्भिर्हृते शेष ऋतुर्भवति ॥२॥
शेषाणा मंशानां द्वाभ्यां तु भागाभ्यां तेषां यल्लब्धम् ।
ते दिवसा ज्ञातव्या., भवन्ति प्रवृत्तस्यायनस्य ॥३॥ इति ।

आसां व्याख्या क्रियते--'**सूरउउस्सा.**' इत्यादि, '**सूरउउस्साणयणे**' सूर्यर्त्तोः सूर्यसम्बन्धिन ऋतोरानयने '**पव्वं**' सर्व–पर्व संख्यान '**नियमा**' नियमात् '**पण्णरसं गुणं**' पञ्चदशसंगुणं पञ्चदशभिर्गुणितं कर्त्तव्यम पर्वाणां पञ्चदशतिथ्यात्मकत्वात् । अत्रेय भावना—यद्यपि ऋतव आषाढादि प्रभवास्तथापि युगं श्रावण–कृष्णपक्ष प्रतिपदात आरभ्य प्रवर्त्तते ततो युगादितः प्रवृत्तानि यानि पर्वाणि भवन्ति तेषां संख्याऽत्र गृह्यते, सा सख्याऽत्र पञ्चदशभिर्गुण्यते इति । तां संख्यां गुणयित्वा च पर्वाणामुपरि विवक्षितं दिनमभिव्याप्य या तिथयस्ताः '**तहिं संखित्तं**' तत्र–पञ्चदशभिर्गुणिते राशौ संक्षिप्यन्ते इत्यर्थ. तदेवाह–'**संखित्तं संतं**' सक्षिप्तं सत् '**बावट्ठि-भागपरिहीणं**' द्वाषष्टिभागपरिहीनं कर्त्तव्यम् । अयं भावः–प्रत्यहोरात्रमेकैकेन द्वाषष्टिभागेन परिहीयमाणे ये निष्पन्ना अवमरात्रा न्यूनदिवस रात्रिरूपास्तेऽप्युपचाराद् द्वाषष्टिभागाः कथ्यन्ते, तैः परिहीनं पर्वसख्यानं कर्त्तव्यमिति ॥१॥ '**दुगुणे**' इत्यादि, '**दुगुणेगट्ठीए जुयं**' द्विगुणमेकषष्ट्यायुत पूर्वोक्तं द्वाषष्टिभागपरिहीनं संख्यानं द्विगुणित कृत्वा एकषष्टया युक्तं क्रियते ततः '**बावीससएण भाइए**' द्वाविंशशतेन द्वाविंशत्यधिकेन. शतेन भाजिते सति '**नियमा**' नियमात् '**जं लद्धं**' यल्लब्ध '**तस्स पुणो छहिं हिय**' तस्य पुनः षड्भिर्हृते षड्भिर्भागे हृते '**सेसं**' यच्छेषं सः अनन्तरातीतः '**उऊहोइ**' ऋतुर्भवति ॥२॥ '**सेसाणं**' इत्यादि '**सेसाणं अंसाणं**' येऽपिचाशाः शेषा उद्धारितास्तेषां '**वेहिउभागेहिं**' द्वाभ्यां भागो हृते '**तेसिं जं लद्धं**' तेषां तत्सम्बन्धिनां यल्लब्धं, '**ते दिवसा नायव्वा होंति**' त दिवसा ज्ञातव्या भवन्ति, कस्येत्याह–'**पवत्तस्स अयणस्स**' प्रवृत्तस्य प्रवर्त्तमानस्य अयनस्य ऋतोर्ज्ञातव्या इति ॥३॥

एष करणगाथा त्रयस्याक्षरार्थः ॥ सम्प्रत्यासां भावना क्रियते–तस्मिन् युगे प्रथमे दीपोत्सवे केनापि पृष्टम्–अद्यतोऽनन्तरं गतकाले कः सूर्यर्तुरतीतः ? को वा साम्प्रतं वर्त्तते ? इति प्रश्ने यत् क्रियते तदाह–तत्र युगादितः सप्त पर्वाणि व्यतीतानीति सप्त स्थाप्यन्ते, तानि '**पण्णरसगुणं**'

इतिवचनात् पञ्चदशभिर्गुण्यन्ते. जातं पञ्चोत्तरं शतम् (१०५) एतावतिकाले च 'तइए पव्वे सत्तमे पव्वे' इत्यादि वक्ष्यमाणसूत्रवचनात् द्वाववमरात्रौ उपचाराद् द्वाषष्टिभागौ द्वौ अमूनामिति 'बावट्ठीभागा परिहीणं' इति वचनात् द्वौ तस्माद्राशेः पात्येते स्थितं पश्चात् त्र्युत्तरं शतम् (१०३) तत 'दुगुणं' इति द्वाभ्यां गुण्यते जाते षडुत्तरे द्वे शते (२०६) ततः 'एगट्ठीउजुयं' एकषष्ट्या युत मिति तत्रैकषष्टिः प्रक्षिप्यते जाते द्वे शते सप्त–षष्ट्यधिके (२६७) तत एषां 'बावीससएण भाइए' इति वचनात् द्वाविंशत्यधिकेन शतेन भागो ह्रियते लब्धौ द्वौ 'छहिं हियसेसं' इति वचनात् ऋतुनां षडात्मकत्वाद यदि षड्भिरधिका संख्याभवेत्तदा षड्भिर्विभज्यते, इमौ द्वौ तु षड्भिर्भागं न सहेते इति न तयोः षड्भिर्भागहारः प्रसज्यते ततो द्वावेवर्तू स्थितौ पूर्वं भागे हृते ये शेषास्त्रयोविंशतिरंशा उद्धृतास्तेषां 'सेसाणं अंसाणं बेहिउभागेहिं' इति वचनात् द्वाभ्यां भागे हृते तेषामर्द्धे कृते जाता सार्द्धा एकादश (११॥) 'जेसिं ज लद्धं ते दिवसा नायव्वा' इत्यादि वचनात् ते प्रवर्त्तमानस्य ऋतो दिवसा ज्ञातव्या इति. सर्वत्राप्याषाढादिकं तत आगतम्– द्वौ ऋतू अतिक्रान्तौ, तृतीयश्च ऋतुः सम्प्रति वर्त्तते, तस्य च प्रवर्त्तमानस्य ऋतो एकादश दिवसाः परिपूर्णा व्यतिक्रान्ताः, तदुपरि यदर्धं तेन द्वादशो दिवसो वर्त्तते इति ॥१॥

अथ युगे प्रथमाया मक्षयतृतीयायां केनापि पृष्टम्-अद्य प्रभृति के ऋतवः पूर्वमतिक्रान्ताः? को वा सम्प्रति वर्त्तते? इति प्रश्ने प्रत्याह—तत्र प्रथमाया अक्षयतृतीयायाः प्राक् युगस्यादित आरभ्य एकोनविंशतिः पर्वाणि व्यतिक्रान्तानि तत एकोनविंशति स्थापयित्वा सा पूर्वोक्तरीत्या पञ्चदशभि र्गुण्यते, जाते पञ्चाशीत्यधिके द्वे शते (२८५) अक्षयतृतीयायां किल पृष्टमिति पर्वणो मुपरि उपचारा द द्वाषष्टिभागसंज्ञत्वेन कथिता स्तिस्रस्तिथय प्रक्षिप्यन्ते जाते अष्टाशीत्यधिके द्वे शते (२८८), एतावति च काले एकोनविंशतिपर्वरूपे 'तइए पव्वे' इत्यारभ्य 'एगूणवीसइमे पव्वे' इत्यादि, वक्ष्यमाणसूत्रवचनात् अवमरात्राः पञ्च भवन्तीत्यतः 'बावट्ठी भागपरिहीणं' इति वचनात तस्माद् राशेः पञ्च पात्यन्ते जाते त्र्यशीत्यधिके द्वे शते (२८३) ते 'दुगुणं' इति वचनात द्वाभ्यां गुण्येते. जातानि षट् षष्ट्यधिकानि पञ्च शतानि (५६६). तानि 'एगट्ठीए जुय' इति वचनात एकषष्टि सहितानि क्रियन्ते जातानि सप्तविंशत्यधिकानि षट्शतानि (६२७) तेषां 'बावीससएण भाइए' इति वचनात् द्वाविंशत्यधिकेन शतेन (१२२) भागो ह्रियते लब्धाः पञ्च, ते च ऋतूनां षडात्मकत्वात् 'छहिहिय' इति वचनात षड्भिर्भागहरणं प्राप्यते, तच्चेते, न सहन्ते इति न तेषां षड्भिर्भागहारस्ततः पञ्चैव स्थिता इति पञ्च 'उऊ होइ' इति ऋतवो व्यतिक्रान्ता इति सिद्धम्। 'सेसाणं अंसाणं बेहिउ भागेहिं' इति वचनात् तेषां शेषाणां सप्तदशानामंशानां द्वाभ्यां भागे हृते तेषामर्द्धे कृते इत्यर्थः

'तेसिं जं लद्धं' इति तेभ्यो ये लब्धाः सार्द्धा अष्टौ (८॥), तत आगतम्—पञ्चऋतवोऽतिक्रान्ताः षष्ठस्य च ऋतोः प्रवर्त्तमानस्याष्टौ दिवसा गताः, तदुपरि अर्द्धत्वेन नवमो दिवसो वर्त्तते इति ।२।

अथ युगे द्वितीये दीपोत्सवे केनापि पृष्टम्—कियन्त ऋतवोऽतिक्रान्ताः ? को वा संप्रति वर्त्तते ? तत्राह—एतावतिकाले एकत्रिंशत् पर्वाण्यतिक्रान्तानि, तानि ध्रियन्ते पञ्चदशभिर्गुण्यते, जातानि पञ्चषष्ट्यधिकानि चत्वारि शतानि (४६५) । अवमरात्राश्चैतावतिकालेऽष्टौ व्यतिक्रान्तास्ततोऽष्टौ तेभ्यः पात्यन्ते, स्थितानि शेषाणि सप्तपञ्चाशदधिकानि चत्वारि शतानि (४५७), तानि द्विगुणितानि जातानि चतुर्दशोत्तराणि नवशतानि (९१४) । एषु एकषष्टिभागप्रक्षेपे जातानि पञ्चसप्तत्यधिकानि नव शतानि (९७५) । एषां द्वाविंशत्यधिकेन शतेन भागे हृते लब्धाः सप्त ऋतवः, उपरिष्टादंशा एकविंशत्यधिकशतसंख्यका (१२१) उद्वरन्ति, एषां द्वाभ्यां भागे हृते अर्द्धे कृते इत्यर्थः लब्धा सार्धषष्टिः (६०॥), सप्तानां च ऋतूनां षड्भिर्भागो ह्रियते, लब्ध एकः, अवशिष्टउपरिष्टादेकस्तिष्ठति, तत आगतम् एकः संवत्सरो व्यतिक्रान्तः सवत्सर ऋतूनां षडात्मकत्वात्, एकस्य च संवत्सरस्योपरि एक इति प्रथमऋतुः प्रावृड् नाम व्यतीतः, द्वितीयस्य च ऋतोः षष्टिर्दिनानि व्यतिक्रान्तानि, तदुपरि अर्द्धमिति एकषष्टितमं दिनं वर्त्तते इति ।३।

एवमन्यत्रापि भावना भावनीयेति ।

अथैतेषां ऋतूनां मध्ये क ऋतुः कस्या तिथौ समाप्तिमेतीति ? परस्य प्रश्नावकाशमाशङ्कय तत्परिज्ञानाय वृद्धैः करणगाथा प्रतिपादिता, सा चेयम्—

'इच्छा उ ऊ विगुणिओ' रूवूणो विगुणिओ उ पव्वाणि ।
तस्सद्धं होइ तिही, जत्थ समत्ता उऊ तीसं ॥१॥"

इच्छर्त्तुः द्विगुणितः रूपोनो द्वि गुणितस्तु पर्वाणि ।
तस्यार्द्धं भवति तिथिः यत्र समाप्ता ऋतव-स्त्रिंशत् ॥१॥ इतिच्छाया ।

अस्या व्याख्या—'इच्छा उऊ' इच्छर्त्तुः यस्मिन् ऋतौ ज्ञातुमिच्छा वर्त्तते स ऋतुः 'विगुणिओ' द्विगुणितः क्रियते द्वाभ्यां गुण्यते द्विगुणितः सन् 'रूवूणो' रूपोनः एक ऊनः क्रियते ततः पुनरपि सः 'विगुणिओउ' द्विगुणित स्तु द्वाभ्यां गुण्यते, गुणयित्वा च प्रतिराश्यते, गुणितश्च सन् यावत्परिमितो भवति तावन्ति 'पव्वाणि' पर्वाणि विज्ञेयानि । 'तस्स' तस्य द्विगुणीकृतस्य प्रतिराशितस्य यत् 'अद्धं' अर्द्धं यावत्परिमितं भवति तावत्परिमिताः 'तिही' तिथयो ज्ञातव्याः 'जत्थ' यत्र यासु तिथिषु 'तीसं' त्रिंशत् युगभाविन स्त्रिंशदपि 'उऊ समत्ता' ऋतवः समाप्ताः समाप्तिं प्राप्नुयुः ॥१॥ इति कारण गाथा ऽक्षरार्थः ।

साम्प्रतं भावना क्रियते—अथ कोऽपि युगस्य प्रथममृतुं ज्ञातुमिच्छेत् यथा युगे कस्यां

तिथौ प्रथमः प्रावृड् लक्षण ऋतुः समाप्तिमेति ? इति, तत्र तस्य इच्छर्त्तु रेक इति एकः स्थाप्यते, स 'विगुणिओ' द्विगुणितः क्रियते जाते द्वे रूपे, ते द्वे 'रूवूणो' इति रूपोने एकेन रूपेण ऊने क्रियते जात एककः स एव च पुनरपि 'विगुणिओ' द्विगुणितः क्रियते द्वाभ्यां गुण्यते जाते द्वे रूपे, ते द्वे प्रतिराश्यते तत्प्रति रूपे द्वे पुनः क्रियते. द्वे द्वे रूपे द्विवारं स्थाप्यते इत्यर्थः (२-२) तयोरेकं द्विकं 'पव्वाणि' पर्वसंख्यानं भवति (२) 'तस्सद्धं' तयो एकस्य द्विकस्यार्द्धं क्रियते जात मेकं रूपम् । तत्संख्यका 'तिही होइ' तिथिर्भवति । तत आगतम्-युगादौ द्वे पर्वणी अतिक्रम्य प्रथमायां तिथौ प्रतिपदि प्रथम ऋतुः प्रावृड् नामा समाप्तिमगमदिति । तथा द्वितीये ऋतौ ज्ञातु मिच्छेत् तदा द्वौ स्थाप्यते, तयो र्द्वाभ्यां गुणने जायन्ते चत्वारः, ते रूपोनाः क्रियन्ते जातास्त्रयः, ते पुनरपि द्वाभ्यां गुण्यन्ते जातः षट् ते प्रतिराश्यन्ते-षट्कं षट्कम् इति स्थानद्वये स्थाप्यते तयो द्वितीयस्य प्रतिराशितस्य षट्कस्यार्द्धं क्रियते जातास्त्रयः, तत आगतम्-युगादितः षट् पर्वाण्यतिक्रम्य तृतीया तिथिरिति तृतीयायां तीथौ द्वितीय ऋतु समाप्तिमगमत् ॥ एवं यदि तृतीये ऋतौ ज्ञातु मिच्छेत्तदा त्रयः स्थाप्यन्ते, ते द्वाभ्यां गुण्यन्ते जाताः षट् ६, ते रूपोनाः क्रियन्ते जाता दश ते प्रतिराश्यन्ते द्विधा स्थाप्यन्ते दश दशेति । तत्रैकस्य द्वितीयस्य दशकस्यार्द्धं पञ्च भवन्ति, तत आगतम्-युगादितो दशसु पर्वसु व्यतिक्रान्तेषु पञ्चम्यां तिथौ तृतीय ऋतुः समाप्तिमगच्छत् । तथा यदि षष्टे ऋतौ ज्ञातु मिच्छा भवेत्तदा षड् ध्रियन्ते, ते द्वाभ्यां गुण्यन्ते जाता द्वादश, ते रूपोनकरणा ज्जाता एकादश, ते द्वाभ्यां गुणने जाता द्वाविंशतिः सा प्रतिराश्यते स्थानद्वये स्थाप्यते तत्रैकस्याः प्रतिराशीताया अर्द्धं क्रियते जाता एकादश तत आगतम् युगादित आरभ्य द्वाविंशति पर्वातिक्रमे एकादश्यां तिथौ षष्ठ ऋतु समाप्तं प्राप । तथा नवमे ऋतौ ज्ञातु मिच्छेत्तदा नव ध्रियन्ते, ते द्वाभ्यां गुणयित्वा रूपोनाः क्रियन्ते जाताः सप्तदश, ते भूयोऽपि द्वाभ्यां गुणने जाताश्चतुस्त्रिंशत् ते प्रतिराश्यन्ते, प्रतिराश्य चैकस्यार्द्धं क्रियते जाता सप्तदश तत आगतम्- युगादितोऽद्यप्रभृति चतुस्त्रिंशत् पर्वाण्यतिगतानि सप्तदश्यां तिथौ इति द्वितीये सवत्सरे पौषमासे शुक्लपक्षे द्वितीयां तिथौ नवम ऋतुः परिसमाप्ति मियाय । त्रिंशत्तमे ऋतौ जिज्ञासा भवेत्तदा त्रिंशत् स्थाप्यन्ते, ते द्वाभ्यां गुण्यन्ते जाताः षष्टि., सा रूपोना क्रियते जाता एकोनषष्टिः (५९) तस्या भूयोऽपि द्वाभ्यां गुणने कृते जायतेऽष्टादशोत्तरं शतम् (११८), तत् प्रतिराश्यते (११८-११८), प्रतिराश्य चैकस्य प्रतिराशितस्यार्द्धं क्रियते जातैकोनषष्टि', तत आगतम्-युगादितोऽष्टादशोत्तरं पर्वशतमतिक्रम्य एकोन षष्टितमायां तिथौ त्रिंशत्तमऋतुर्व्यतिक्रान्तोऽभवत् । अयमाशयः-पञ्चमे संवत्सरे प्रथमे आषाढ मासे शुक्लपक्षे चतुर्दश्यां तिथौ त्रिंशत्तम ऋतुः समाप्तिं गतः, व्यवहारतः प्रथमाषाढपर्यन्ते इत्यर्थः एतस्यैवार्थस्य सुखप्रतिपत्त्यर्थमियं वृद्धोक्ता गाथा प्रदर्श्यते—

एक्कंतरियामासा, तिहीय जासु ता उऊ समप्पंति।
आसाढाईमासा, भद्दवयाई तिही नेया ॥ १ ॥

छाया—एकान्तरिताः मासाः तिथयश्च यासु ते ऋतवः समाप्नुवन्ति ।
आषाढादयो मासाः, भाद्रपदादिकास्तिथयो ज्ञेयाः ॥१॥" इति

अस्या व्याख्या—इह सूर्यर्तुचिन्तायां मासा आषाढादयो विज्ञेयाः, आषाढमासादारभ्य ऋतूनां प्रथमतः प्रवर्त्तमानत्वात् । तिथयः सर्वा अपि भाद्रपदाद्याः भाद्रपदादिषु मासेषु प्रथमादीनामृतूनां परिसमाप्तत्वात् । तत्र येषु मासेषु यासु च तिथिषु ऋतवः प्रावृडादयः सूर्यसम्बन्धिनः परिसमाप्नुवन्ति ते आषाढादयो मासाः, ताश्च तिथयो भाद्रपदाद्याः भाद्रपदादिमासानुगताः सर्वा अप्येकान्तरिता ज्ञातव्याः, तथाहि—प्रथम ऋतुर्भाद्रपदमासे समाप्तिमेति, तत एकं मासमश्वयुग् लक्षणमवान्तराले मुक्त्वा कार्त्तिके मासे द्वितीय ऋतुः परिसमाप्तिमेति । एवं तृतीयः पौषमासे, चतुर्थः फाल्गुने मासे, पञ्चमो वैशाखे मासे, षष्ठ आषाढे मासे । एवं शेषा अपि ऋतव एष्वेव षट्सु मासेषु एकान्तरितेषु व्यवहारतः परिसमाप्तिमाप्नुवन्ति, न शेषेषु मासेषु । तथा तिथिमधिकृत्य प्रथमऋतुः प्रतिपदिसमाप्तिमेति, द्वितीयस्तृतीयायाम्, तृतीयः पञ्चम्याम्, चतुर्थः सप्तम्याम् पञ्चमी नवम्याम्, षष्ठ एकादश्याम्, सप्तमस्त्रयोदश्याम् अष्टमः पञ्चदश्याम् एते सर्वेऽपि ऋतवो बहुलपक्षे । ततो नवम ऋतुः शुक्लपक्षे द्वितीयायाम्, दशमश्चतुर्थ्याम्, एकादशः षष्ठ्याम्, द्वादश्योऽष्टम्याम् त्रयोदशो दशम्याम् चतुर्दशो द्वादश्याम् पञ्चदशश्चतुर्दश्याम् । एते सप्तऋतवः शुक्लपक्षे । एते कृष्णशुक्लपक्षभाविनः पञ्चदशापि ऋतवो युगस्यार्द्धे भवन्ति । तत उक्तक्रमेणैव शेषा अपि पञ्चदश ऋतवो द्वितीये युगार्द्धे भवन्ति, तथाहि—षोडशऋतुर्बहुलपक्षे प्रतिपदि, सप्तदशस्तृतीयायाम्, अष्टादश पञ्चम्याम् एकोनविंशतितमः सप्तम्याम् विंशतितमो नवम्याम् एकविंशतितम एकादश्याम् द्वाविंशतितमस्त्रयोदश्याम्, त्रयोविंशतितमः पञ्चदश्याम् । एते षोडशादयस्त्रयोविंशति पर्यन्ता अष्टौ बहुलपक्षे ततश्चतुर्विंशतितमः शुक्लपक्षे द्वितीयायाम्, पञ्चविंशतितमश्चतुर्थ्याम् षड्विंशतितमः षष्ठ्याम् सप्तविंशतमो द्वादश्याम्, त्रिंशत्तमश्चतुर्दश्याम् । तदेवमेते सर्वेऽपि ऋतवो युगे मासेष्वेकान्तरितेषु एवं तिथिष्वपि चैकान्तासु समाप्ता भवन्ति । एतेषां च ऋतूनां चन्द्रनक्षत्रयोगपरिज्ञानार्थं सूर्यनक्षत्रयोगपरिज्ञानार्थं च वृद्धैः करणगाथात्रयं प्रोक्तं तत् प्रदर्श्यते—

"तिन्नि सया पंचहिगा, अंसा छेओ सयं च चोत्तीसं—
एगाइबिउत्तरगुणो धुवरासी होइ नायव्वो ॥१॥
सत्तट्ठी अद्धखिचे दुगतिगगुणिया समे वियढखेत्ते ।
अट्ठासीई पुस्से, सोम अभिइम्मि बायाला ॥२॥
एयाणि सोहइत्ता, जं सेसं तं तु होइ नक्खत्तं ।
रवि सोमाणं नियमा तीसाबि उउ समत्तीसु ॥३॥

आसां छाया—त्रीणि शतानि पञ्चाधिकानि अंशाः, छेदः शतं च चतुस्त्रिंशम् ।
एकादि द्व्युत्तरगुणो ध्रुवराशिर्भवति ज्ञातव्यः ॥१॥
सप्तषष्टिरर्द्धक्षेत्रे, द्विकत्रिक गुणिता समे द्व्यर्धक्षेत्रे ।
अष्टाशीतिः पुष्ये शोध्या अभिजित् द्विचत्वारिंशत् ॥२॥
एतानि शोधयित्वा यत्शेषं तत्तु भवति नक्षत्रम् ।
रविसोमयोर्नियमात् त्रिंशत्यपि ऋतुसमाप्तिषु ॥३॥

आसां व्याख्या—'तिन्नि सया पंचहिगा अंसा' त्रीणि शतानि पञ्चोत्तराणि (३०५) 'अंसा' अंशाः विभागाः एते किं रूपच्छेदकृताः ? इति चेदाह—'छेओ सयंच चोत्तीसं' छेदः शतं च चतुस्त्रिंशम् । छेदोऽत्र चतुस्त्रिंशदधिकशतरूपः, तेन छिन्नं यदहोरात्रं तत्सम्बन्धीनि पञ्चोत्तराणि त्रीणि शतानि (३०५) अंशानामिति । अयमत्र ध्रुवराशिः स्थाप्यः एष ध्रुवराशिः 'एगाइ बिउत्तरगुणो धुवरासीहोइ नायव्यो' एकादिद्व्युत्तर गुण.—ईप्सितेन ऋतुना एकादिना त्रिंशत्पर्यन्तेन द्व्युत्तरेण एकस्मादारभ्य तत ऊर्ध्वं द्व्युत्तरवृद्धेन गुणः गुणितः क्रियते गुण्यते इत्यर्थः । एष ध्रुवराशिर्ज्ञातव्यो भवति ॥१॥ तत एतस्मात् द्व्युत्तरवृद्धेन गुणितात् शोधनकानि शोधयितव्यानीति शोधनक प्रतिपादिकां द्वितीयां गाथामाह—'सत्तट्ठी' इत्यादि 'सत्तट्ठी अद्धखेत्ते' यन्नक्षत्रमर्द्धक्षेत्रं पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकं तत्र सप्तषष्टिः शोधनकं भवतीति सप्तषष्ठ्या शोध्यते, 'दुगतिगगुणिया समे-वियड्ढखेत्ते' द्विकत्रिकगुणिता समे द्व्यर्धक्षेत्रे, तत्र यन्नक्षत्रं समक्षेत्रं त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकं तत्द्विगुणितया-सप्तषष्ट्या चतुस्त्रिंशेन शतेनेत्यर्थः शोध्यते यत्पुनर्नक्षत्र द्व्यर्धक्षेत्रं पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकं तत् त्रिगुणितया सप्तषष्ट्या एकोत्तरशतद्वयेनेत्यर्थः शोध्यते । इह सूर्यस्य पुष्यादीनि नक्षत्राणि शोध्यानि, चन्द्रस्याभिजिदादीनि, तत्रैषां शोधनकान्याह—'अट्ठासीई पुस्से' अष्टाशीतिः पुष्ये सूर्य-नक्षत्रयोगचिन्तायां पुष्ये पुष्यनक्षत्रविषयाष्टाशीतिः 'सोज्झा' शोध्या । तथा 'अभिइम्मि-बायाला' अभिजिति द्वाचत्वारिंशत्—चन्द्रनक्षत्रयोगचिन्तायाम् अभिजिन्नक्षत्रे द्वाचत्वारिंशत् शोध्या. ॥२॥ ततः किमिति तृतीयगाथया प्रदर्श्यते—'एयाणि' इत्यादि, 'एयाणि' एतानि शोधनकानि अर्द्धसमद्व्यर्द्धक्षेत्रविषयाणि 'सोहइत्ता' शोधयित्वा उक्तप्रकारेण शोधिते सति 'जं सेसं' यन्नक्षत्रं शेषं सङ्ख्यामधिकृत्य भवति न सर्वात्मना शुद्धिमश्नुते 'तं तु होइ नक्खत्तं' तन्नक्षत्रं 'रविसोमाणं नियमा' रविसोमयोः सूर्यस्य चन्द्रस्य च नियमात् भवति कुत्रेत्याह—'तीसइ उउसमत्तीसु' त्रिंशत्यपि ऋतु समाप्तिषु युगस्य त्रिंशतोऽपि ऋतूनां समाप्तौ ॥३॥ इति करण-गाथात्रयाक्षरार्थः । सम्प्रत्यासां भावना क्रियते—अथात्र कोऽपि पृच्छति—प्रथमऋतु कस्मिन् चन्द्रनक्षत्रे समाप्तिमियर्त्ति ? इति जिज्ञासाया पूर्वप्रदर्शितो ध्रुवराशिः पञ्चोत्तरत्रिशतात्मको ध्रियते, स एकेन गुण्यते 'एकेन गुणितं तदेव भवति' इति तावानेव ध्रुवराशिः (३०५) जातः ।

तत्र 'सोज्झा अभिइम्मि वायाला' इति वचनात् अभिजितो द्वाचत्वारिंशत् शोध्यते, शोधिते च स्थिते पश्चात् त्रिषट्यधिके द्वेशते (२६३) ततश्चतुस्त्रिंशदधिकेन शतेन (१३४) श्रवणः शोध्यते, स्थितं शेषमेकोन त्रिंशदधिकं शतम् (१२९) एभ्यश्च धनिष्ठा न शुद्धयति ततः 'छेओ सयं च चोत्तीसं' इति वचनात् चतुस्त्रिंशदधिकशत (१३४) भागना मेकोनत्रिंशं शतं धनिष्ठासत्कमवगाह्य चन्द्रः प्रथमं सूर्यर्तु परिसमापयति, चतुस्त्रिंशदधिकशतभागेषु धनिष्ठा नक्षत्रस्य एकोनत्रिंशदधिकशतभागातिक्रमणानन्तरं चन्द्रःप्रथमसूर्यर्तुपरिसमापको भवतीति भावः। यदि द्वितीय सूर्यर्तुजिज्ञासा भवेत्तदा स एव पञ्चोत्तर शतत्रयप्रमाणो ध्रुवराशिस्त्रिभिर्गुण्यते अयं भावः— 'एगाइबिउत्तरगुणो' इति वचनात् एकआरभ्य तत उर्ध्वं द्व्युत्तरवृद्धया, इति प्रथमसूर्यर्तु प्रकरणे एकेन ध्रुवराशिःगुणितः अत्र द्वितीयसूर्यर्तुजिज्ञासायामुत्तरोत्तरद्विकवृद्धया ध्रुवराशिस्त्रिभिर्गुण्यते इति । त्रिभिर्गुणितो ध्रुवराशिजायते पञ्चदशोत्तरनवशतसंख्यकः (९१५) तत्राभिजितो द्वाचत्वारिंशच्छुद्धया स्थितानि शेषाणि—अष्टौ शतानि त्रिसप्तत्यधिकानि (८७३) ततश्चतुस्त्रिंशेन शतेन श्रवणे शोधिते स्थितानि शेषाणि एकोनचत्वारिंशदधिकानि सप्तशतानि (७३९), अत्र धनिष्ठा शुद्धयते इति तस्माद् राशेर्धनिष्ठानक्षत्रस्य चतुस्त्रिंशधिकशतसंख्यका भागाः शोध्यन्ते स्थितानि-शेषाणि पञ्चोत्तराणि षट् शतानि (६०५) एतस्माद्राशेरपि सप्तषष्टिः शत भिषजः शोध्यते, स्थितानि अष्टात्रिंशदधिकानि पञ्च शतानि (५३८), एभ्योऽपि चतुस्त्रिंशदधिकं शतं (१३४) पूर्वभाद्रपदायाः शोध्यते, स्थितानि चतुरधिकानि चत्वारिशतानि (४०४), एभ्योऽपि एकोत्तरशतद्वयेन (२०१) उत्तरभाद्रपदा शोध्यते, स्थिते शेषे त्र्युत्तरे द्वे शते (२०३), एतस्माद्राशेश्चतुस्त्रिंशदधिकं शतं (१३४) रेवत्याः शोध्यते, स्थिता पश्चादेकोनसप्ततिः (६९)। तत आगतम्— अश्विनीनक्षत्रस्येकोनसप्तति भागान् चतुस्त्रिंशदधिकशत भागानामवगाह्य चन्द्रो द्वितीयं सूर्यर्तु परिसमापयतीति एवं शेषेष्वपि ऋतुषु भावना कार्येति । अथान्तिमत्रिंशत्तमसूर्यर्तु जिज्ञासायां स एव ध्रुवराशिः (३०५) एकोनषष्टया गुण्यते, जातानि सप्तदश सहस्राणि, पञ्चनवत्यधिकानि नवशतानि (१७९९५), तत्र षष्टयधिकैः षट् त्रिंशच्छतैः (३६६०) एको नक्षत्रपर्यायः शुद्धयति, ततः षष्टयधिकानि षट्त्रिंशच्छतानि चतुर्भिर्गुणयित्वा तत शोध्यन्ते, एष नक्षत्रपर्यायश्चतुर्भिगुणने जायन्ते—चतुर्दश सहस्राणि चत्वारिशदधिकानि षट् शतानि च (१४६४०) तत एकोनषष्टया गुणिताया ध्रुवराशि संख्यायाः (१७९९५) चतुर्भिगुणितोनक्षत्रपर्यायः (१४४६०४) शोध्यते स्थितानि पश्चात् पञ्च पञ्चाशदधिकानि त्रयस्त्रिंशच्छतानि (३३५५)। एभ्यः पञ्चविंशत्यधिकैर्द्वात्रिंशच्छतैः (३२२५) अभिजिदादीनि मूलपर्यन्तानि नक्षत्राणि शोध्यन्ते, स्थितं पश्चात् त्रिंशदधिकमेकं शतम् (१३०) तेन च पूर्वाषाढा न शुद्धयति, तत आगतम्—त्रिंशदधिक शतं चतुस्त्रिंशदधिकशतभागानां पूर्वाषाढासत्कमवगाह्य चन्द्रस्त्रिंशत्तमं सूर्यर्तु परिसमापयतीति ।

साम्प्रतं सूर्यनक्षत्रयोग भावना क्रियते—स एव ध्रुवराशिः पञ्चोतरशतत्रयप्रमाणः (३०५) प्रथम सूर्यर्त्तुजिज्ञासाया मेकेन गुण्यते जातस्तावानेव ततः 'अट्ठासीई पुस्सो' इति वचनात् तस्मात् अष्टाशीतिः (पुष्यभागाः) शोध्यन्ते, स्थिते शेषे सप्तदशोत्तरे द्वे शते (२१७) ततः सप्तषष्टिः (६७ अश्लेषायाः शोध्यते स्थितं शेषं सार्द्धशतम् (१५०) ततः चतुस्त्रिंशदधिकं शतं (१३४) मघायाः शोध्यते, स्थिता. पश्चात् षोडश (१६), तत आगतम्- पूर्वफाल्गुनीनक्षत्रस्य चतुस्त्रिंशदधिकशतसत्कान् षोडश भागानवगाह्य सूर्य प्रथमं स्वकीयमृतुं परिसमापयति । एवं द्वितीय सूर्यर्त्तु जिज्ञासायामपि स एव पञ्चोत्तरशतत्रयप्रमाणो ध्रुवराशिः द्व्युत्तरवृद्धयाऽत्र त्रिभिर्गुण्यते, जातानि नव शतानि पञ्चदशोत्तराणि (९१५) ततोऽष्टाशीतौ पुष्यस्य शोधितायां स्थितानि पश्चात् सप्तविंशत्यधिकानि अष्टौ शतानि (८२७), एभ्यः सप्तषष्टिरश्लेषायाः शोध्यते, स्थितानि शेषाणि षष्ट्यधिकानि सप्तशतानि (७६०) एभ्यश्चतुस्त्रिंशदधिकं शतं मघायाः शोध्यते, स्थितानि शेषाणि षड् विंशत्यधिकानि षट् शतानि, (६२६), एभ्यश्चतुस्त्रिंशदधिकं शतं पूर्वफाल्गुन्याः शोध्यते, स्थितानि शेषाणि द्विनवत्यधिकानि चत्वारि शतानि (४९२), एभ्योऽपि एकोत्तरं शतद्वय (२०१) मुत्तरफाल्गुन्याः शोध्यते स्थिते शेषे एकनवत्यधिके द्वे शते (२९१) पुनरप्येभ्य. श्चतुस्त्रिंशदधिकं शतं (१३४) हस्तस्य शोध्यते, स्थितं सप्तपञ्चाशदधिकं शतम् (१५७), एभ्योऽपि चतुस्त्रिंशदधिकं शतं (१३४) चित्रायाः शोध्यते, स्थिताः शेषास्त्रयोविंशतिर्भागाः (२३) तत आगतम् चतुस्त्रिंशदधिकशतभागानां स्वातेस्त्रयोविंशति सप्तषष्टि भागानवगाह्य सूर्यो द्वितीयं स्वकीयमृतुं— परिसमापयतीति एवं शेषेष्वपि तृतीय सूर्यर्त्तु मारभ्य एकोनत्रिंशत्तम सूर्यर्त्तुपर्यन्तेषु भावना कर्त्तव्या। अथान्तिमत्रिंशत्तम सूर्यर्त्तुजिज्ञासायामाह—अत्रापि स एव पञ्चोत्तरशतत्रयप्रमाणो ध्रुवराशिर्द्व्युत्तर वृद्धिक्रमेण त्रिंशत्तमे सूर्यर्त्तौ एकोनषष्ट्या गुण्यते, जातानि सप्तदशसहस्राणि नवशतानि तदुपरि पञ्चनवतिश्च (१७९९५)। एभ्यश्चतुर्दशसहस्राणि, षट् शतानि चत्वारिंशदधिकानि (१४६४०) एतावत्परिमितै शोधनकैश्चत्वारः परिपूर्णा युगस्य संवत्सरचतुष्कसम्बन्धि चतुर्विंशति सूर्यर्त्तु सत्का नक्षत्रपर्यायाः शोध्यन्ते स्थितानि पश्चात् पञ्च पञ्चाशदधिकानि त्रयस्त्रिंशच्छतानि (३३५५), अथ युगस्य पञ्चसंवत्सरसत्कानि पञ्चविंशतितमसूर्यर्त्तुत आरभ्य त्रिंशत्तम सूर्यर्त्तुपर्यन्तकानि शोधनकान्याह ततस्तेभ्यः पूर्वोक्तेभ्यः (३३५५) अष्टाशीतिः पुष्यस्य शोध्यते, स्थितानि पश्चात् सप्तषष्ट्यधिकानि द्वात्रिंशच्छतानि (३२६७) एभ्योऽष्टपञ्चाशदधिकानि द्वात्रिंशच्छतानि (३२५८) अश्लेषातो मृगशीर्षपर्यन्तानां नक्षत्राणां शोध्यन्ते, स्थिता. शेषा नव (९) एभिरार्द्रा न शुद्धयति, तत आगतम नवचतुस्त्रिंशदधिकशतभागान् आर्द्रासत्कानवगाह्य सूर्यस्त्रिंशत्तमं स्वकीय मृतुं परिसमापयतीति । इति सूर्यर्त्तवः समाप्ताः । साम्प्रतं चन्द्रर्त्तून् प्रतिपादयति-तत्र चन्द्रर्त्तूनां चत्वारिंशन्नानि द्व्युत्तराणि (४०२) भवन्ति, तथाहि— एकस्मिन्नक्षत्रपर्याये चन्द्रस्य षड् ऋतवो भवन्ति, चन्द्रस्य नक्षत्रपर्यायाश्च एकस्मिन् युगे सप्तषष्टि संख्यका भवन्तीतिसप्तषष्टिः षड्भिर्गुण्यते,

जायन्ते चत्वारि शतानि द्वयुत्तराणीति (४०२) एतावन्तो युगे चन्द्रस्य ऋतवो भवन्ति, उक्तञ्च "चत्तारि उउ सयाइं वि उत्तराइं जुगम्मि चंदस्स" इति। एकैकस्य चन्द्रर्त्तोः परिमाणं परिपूर्णाश्चत्वारोऽहोरात्रा, पञ्चमस्याहोरात्रस्य सप्तत्रिंशत् सप्तषष्टि भागा', उक्तञ्च—

चंदस्स उ परिमाणं, चत्तारि य केवला अहोरत्ता।
सत्त त्तीसं अंसा सत्त ट्ठिकएण छेएण" ॥१॥
चन्द्रस्य ऋतु परिमाणं चत्वारश्च केवला अहोरात्राः।
सप्तत्रिंशद् अंशाः, सप्तषष्टि कृतेन छेदेन ॥१॥ इतिच्छाया।

कथमेतदित्याह—इहैकस्मिन् नक्षत्रपर्याये षड् ऋतव इति प्रागेवोक्तम् चन्द्रविषयक नक्षत्रपर्यायस्य परिमाणं सप्तविंशतिरहोरात्रा., एकस्य चाहोरात्रस्य एकविंशतिः सप्तषष्टि भागाः, तत्राहोरात्राणां षड्भिर्भागो ह्रियते लब्धाश्चात्वारोऽहोरात्राः शेषास्तिष्ठन्ति त्रय', ते सप्त-षष्टि भागकरणार्थं सप्तषष्ट्या गुण्यन्ते जाते एकोत्तरे द्वे शते (२०१) तत उपरितना एक-विंशतिः सप्तषष्टिभागाः प्रक्षिप्यन्ते जाते द्वाविंशत्यधिके द्वे शते (२२२), तेषां षड्भिर्भागे हृते लब्धाः सप्तत्रिंशत् सप्तषष्टिभागा इति ($४-\frac{३७}{६७}$)। तेषां चन्द्रर्त्वानयनार्थमत्र वृद्धोक्ते द्वे गाथे तथाहि—

"चंद उउ आणयणे, पव्वं पण्णरससंगुणं नियमा।
तिहि संखित्तं संतं, बावट्ठी भागपरिहीणम् ॥१॥
चोत्तीससयाभिहयं, पंचुत्तरतिसयसंजुयं विभए।
छहिं उ दसुत्तरेहिय, सएहिं लद्धा उऊ होइ ॥२॥"

छाया—चन्द्रर्त्वानयने पर्व पञ्चदशसंगुणं नियमात्।
तिथि संक्षिप्तं सत्, द्वाषष्टिभागपरिहीनम् ॥१॥
चतुस्त्रिंशच्छताभिहतं, पञ्चोत्तरत्रिशतसंयुतं विभजेद्।
षड्भिस्तु दशोत्तरैश्च शतै. लब्धा ऋतवो भवन्ति ॥२॥

अनयोर्व्याख्या 'चंद उउ आणयणे' इति विवक्षितस्य चन्द्रर्त्तोरानयने कर्त्तव्ये 'पव्वं' युगा-दितो यत पर्व पर्वसख्यानमतिसक्रान्तं तत् 'पण्णरससंगुणं नियमा' पञ्चदशभिर्गुणितं नियमात् कर्त्तव्यम्, तत स्तत् 'तिहिसंखित्तं संतं' तिथिसंक्षिप्त सदिति यास्तिथयः पर्वाणामुपरि विवक्षिता दिनात् प्रागतिक्रान्तास्तास्तत्र सक्षिप्यन्ते पात्यन्ते इति भावः, ततस्तत 'बावट्ठिभागपरिहीणं' द्वाषष्टिभागपरिहीनं कुर्यात् द्वाषष्टिभागैः, द्वाषष्टिभागनिष्पन्ना अवमरात्रा उपचाराद् द्वाषष्टिभाग शब्देन कथ्यन्ते, ततस्तैर्द्वाषष्टिभाग संज्ञकैरवमरात्रैः परिहीनं कर्त्तव्यम तत एवम्भूतं तत् 'चोत्ती-

ससयाभिहयं' चतुस्त्रिंशदधिकशतेनाभिहतं–गुणितं तत् 'पंचुत्तरतिसयसंजुयं' पञ्चोत्तरत्रिशत सयुतं कृत्वा 'विभए' विभजेत् तस्य भागं हरेत्, कैर्भागं हरेदित्याह–'छहिं उ दसुत्तरेहिय सएहिं' दशोत्तरैः षड्भिःशतैः (६१०) इति । हृते च भागे 'लद्धा' ये लब्धा अङ्कास्ते 'उऊहोइ' ऋतवो भवन्ति ऋतवो ज्ञातव्या इत्यर्थः ॥२॥ एष करणगाथा द्वयार्थः ।

साम्प्रतमनयो र्भावना भाव्यते–अथ कोऽपि पृच्छेत्–यत् युगादितः प्रथमे पर्वणि पञ्चम्यां कश्चन्द्र र्तुर्वर्तते ? इति । तत्राह–तत्रैकमपि पर्वपरिपूर्णमिह नाद्याप्यभूदिति युगादितो दिवसा रूपोनाः स्थाप्यन्ते, ते च चत्वारः, ततस्ते चतुस्त्रिंशदधिकेन शतेन गुण्यन्ते, जातानि षट्त्रिंशदधिकानि पञ्चशतानि (५३६), ततो भूयः पञ्चोत्तराणि त्रीणि शतानि–प्रक्षिप्यन्ते, जातानि एकचत्वारिंशदधिकानि अष्टौ शतानि (८४१) तेषां 'विभए छहिं उ दसुत्तरेहिय सएहिं' इति वचनात् दशोत्तरैः षड्भिः शतैः (६१०) भागो ह्रियते, लब्धः प्रथम ऋतुः अंशा उद्धरन्ति एकत्रिंशदधिके द्वे शते (२३१), तेषां चतुस्त्रिंशदधिकेन शतेन (१३४) भागो ह्रियते, लब्ध एकः, उद्धृताः शेषा अंशाः सप्तनवतिः (९७) । चतुस्त्रिंशदधिकेन शतेन भागे हृते येऽङ्का लभ्यन्ते ते दिवसा ज्ञातव्याः, अत्र तु लब्ध एक–इति एको दिवसः । ततः शेषी भूताः सप्तनवतिरंशास्तेषां द्विकेनापवर्त्तना क्रियते, अपवर्त्तिते च चत्वारिंशत् लब्धाः सार्द्धा अष्ट चत्वारिंशत् $\left(\frac{४८॥}{६७}\right)$ सप्तषष्टिभागाः । तत आगतम्–युगादितः पञ्चम्यां प्रथमः ऋतुः प्रावृड्लक्षणोऽतिक्रान्तः, द्वितीयस्य ऋतोरेको दिवसो गतः द्वितीयस्य च दिवसस्य सार्द्धा अष्टचत्वारिंशत् सप्तषष्टि भागाः (ऋ. १। दि. १। भा. $\frac{४८॥}{६७}$) इति ।

अथ कोऽपि पृच्छेत्-युगादितो द्वितीये पर्वणि एकादश्यां कश्चन्द्रर्त्तुः ? इति । तत्रैकं पर्व अतिक्रान्तमित्येको ध्रियते तस्मिन् पञ्चदशभिर्गुणिते जाताः पञ्चदश । एकादश्यां पृष्टमिति तस्याः पाश्चात्या दश ये दिवसास्ते प्रक्षिप्यन्ते जाताः पञ्चविंशतिर्दिवसाः, ते चतुस्त्रिंशदधिकेन शतेन गुण्यन्ते, जातानि पञ्चाशदधिकानि त्रयस्त्रिंशच्छतानि (३३५०) तेषु पञ्चोत्तराणि त्रीणि शतानि प्रक्षिप्यन्ते, जातानि पञ्च पञ्चाशदधिकानि षट्त्रिंशच्छतानि (३६५५), तेषां दशोत्तरैः षड्भिः शतैः (६१०) भागे हृते लब्धाः पञ्च (५), शेषातिष्ठन्त्यंशाः पञ्चोत्तर षट्शतसंख्यकाः (६०५), तेषां चतुस्त्रिंशदधिकेन शतेन भागो ह्रियते लब्धाश्चत्वारो दिवसाः (४), उद्धृता शेषा अंशा एकोनसप्तति (६९), तस्य द्विकेनापवर्त्तनाया कृतायां लब्धाः सार्द्धाश्चतुस्त्रिंशत् (३४॥) सप्तषष्टि भागाः । तत आगतम्–पञ्च ऋतवोऽतिक्रान्ताः, षष्ठस्य च ऋतोश्चत्वारो दिवसाः, पञ्चमस्य दिव-

सस्य सार्द्धाश्चतुस्त्रिंशत् सप्तषष्टि भागा (ऋ. दि. ५।४। भा. ३४।।/०६७) एव मन्यस्मिन्नपि दिवसे चन्द्रर्त्तुरवसेयः। साम्प्रतं चन्द्रर्त्तु परिसमाप्ति दिवसानयनार्थं यद् वृद्धैः करणमुक्तं तदभिधीयते—

"पुव्वंपिव धुवरासी, गुणिए भइए सगेण छेएणं।
जं लद्धं सो दिवसो, सोमस्स उउसमत्तीए ॥१॥

छाया --पूर्वं मिव ध्रुवराशौ गुणिते भक्ते स्वकेन छेदेन।
यल्लब्धं स दिवसः सोमस्य ऋतुसमाप्तौ ॥१॥ इति।

अस्य व्याख्या—इह यः पूर्वं सूर्यर्त्तुप्रतिपादने ध्रुवराशिः पञ्चोत्तर शतत्रयरूपोऽभिहितश्चतुस्त्रिंशदधिकशतभागानाम्, तस्मिन् पूर्वं मिव गुणिते, तत्किमित्याह—ईप्सितेन एकादिना द्व्युत्तर चतुःशततम (४०२) पर्यन्तेन द्व्युत्तरवृद्धेन, एकस्मादारभ्य तत ऊर्ध्वं द्व्युत्तरवृद्धया प्रवर्द्धमानेन गुणिते 'भइए सगेण छेएणं' इति वचनात् स्वकीयेन छेदेन चतुस्त्रिंशदधिकशतरूपेण भक्ते सति यल्लब्धं स सोमस्य चन्द्रस्य ऋतोः समाप्तौ ज्ञातव्यः॥ १॥ इति करणगाथाक्षरार्थः। यथा केनापि पृच्छयते यत् चन्द्रस्य प्रथमः ऋतुः कस्यां तिथौ समाप्तिमेति ? इति तत्र पूर्वोक्तो ध्रुवराशिः (३०५) ध्रियते, अत्र प्रथमर्त्तोः प्रश्नत्वादेकेन गुण्यते जातस्तावानेव (३०५) ध्रुवराशि, तस्य स्वकीयेन चतुस्त्रिंशदधिकशतप्रमाणेन छेदेन भागे हृते लब्धौ द्वौ शेषास्तिष्ठन्ति सप्तत्रिंशत् (३७) एषां द्विकेनापवर्त्तनायां जाताः सार्द्धा अष्टादश (१८।।) सप्तषष्टिभागाः। तत आगतम्—युगादितो द्वौ दिवसौ, तृतीयस्य च दिवसस्य सार्द्धान् अष्टादश सप्तषष्टिभागानतिक्रम्य प्रथमश्चन्द्रर्त्तः परिसमाप्तिमेति द्वितीयचन्द्रर्त्तु जिज्ञासायां स एव ध्रुवराशिः (३०५) द्व्युत्तरवृद्धिक्रमेण त्रिभिर्गुण्यते, जायन्ते पञ्चदशोत्तराणि नवशतानि (९१५), एषां चतुस्त्रिंशदधिकशतेन भागे हृते लब्धाः षट्। उद्धरति शेषमेकादशोत्तारं शतम् (१११), तस्य द्विकेनापवर्त्तनायां लब्धाः सार्द्धाः पञ्च पञ्चाशत् (५५।।) सप्तषष्टिभागाः। तत आगतम्—युगादितः षड्दिवसा अतिक्रान्ताः, सप्तमस्य दिवसस्य च सार्द्धेषु पञ्चपञ्चाशत्संख्यकेषु सप्तषष्टि भागेषु गतेषु द्वितीयश्चन्द्रर्त्तुः समाप्नोतीति। अथान्तिम द्व्युत्तर चतुः शततमर्त्तुः जिज्ञासायां स एव ध्रवराशिः पञ्चोत्तरशतत्रयप्रमाणः (३०५) द्व्युत्तर द्व्युत्तर वृद्धिक्रमेण द्व्युत्तरचतुः शततमे ऋतौ त्र्युत्तराष्टशतप्रमाणः (८०३) एव राशिर्भवतीति त्र्युत्तरैरष्टभिः शतैः (८०३) गुण्यते। तथाहि यस्य एकस्मादूर्ध्वं द्व्युत्तरवृद्धया राशिश्चिन्त्यते—

तस्य द्विगुणो रूपोनो भवति, यथा—द्विकस्य त्रीणि, त्रिकस्य पञ्च, चतुष्कस्य सप्त, पञ्चकस्य नव, एवं क्रमेऽणात्रापि द्व्युत्तरचतुःशतप्रमाणस्य राशे द्व्युत्तर द्व्युत्तर वृद्धया राशिश्चिन्त्यते तदा त्र्युत्तराणि अष्टौशतानि (८०३) भवन्तीति, एवं भूतेन च राशिना (८०३) ध्रुवराशेः

(३०५) गुणने कृते जायन्ते द्वे लक्षे, चतुश्चत्वारिंशत् सहस्राणि, पञ्चदशोत्तराणि नवशतानि (२४४९१५) । एषां चतुस्त्रिंशदधिकेन शतेन (१३४) भागो हियते, लब्धानि सप्तविंशत्यधिकान्यष्टादशशतानि (१८२७) । शेषास्तिष्ठन्त्यंशाः सप्तनवतिः (९७) अस्या द्विकेनापवर्त्तनायां जाताः सार्द्धा अष्टचत्वारिंशत् (४८।।) सप्तषष्टिभागाः($\frac{४८।।}{६७}$) । तत आगतम्-युगादितः सप्तविंशत्यधिकेषु अष्टादशसु शतेषु (१८२७) दिवसानामतिक्रान्तेषु, ततः परस्य अष्टाविंशत्यधिकाष्टादशशततमस्य (१८२८) दिवसस्य सार्द्धेष्वष्टचत्वारिंशत्संख्यकेषु (४८।।) सप्तषष्टिभागेषु गतेषु सत्सु द्व्युत्तरचतुःशततमस्य (४०२) चन्द्रर्त्तोः परिसमाप्तिर्भवतीति एतेषु च चन्द्रर्त्तुषु चन्द्रः नक्षत्रयोगपरिज्ञानार्थं वृद्धैः करणगाथा प्रोक्ता, तथाहि—

"सो चेव धुवो रासि, गुणरासोवि य हवंति ते चेव ।
नक्खत्त सोहणाणि य, परिजाणिसु पुव्वभणियाणि ।।१।।

छाया – स एव ध्रुवो राशिः गुणराशयोऽपि च भवति ते एव ।
नक्षत्रशोधनानि, परिजानीहि पूर्वभणितानि ।।१।। इति !

अस्या व्याख्या—चन्द्रर्तूनां चन्द्रनक्षत्रयोगार्थं 'सो चेव धुवो रासी' इति स एव पञ्चोत्तरशतत्रयप्रमाणो ध्रुवराशिर्ज्ञातव्यः । तथा 'गुणरासीवि हवंति ते चेव' गुणराशयोऽपि गुणकार राशयोऽपि एकादिका द्व्युत्तरवृद्धास्ते एव भवन्ति ये पूर्वप्रदर्शिताः, 'नक्खत्त सोहणाणि' नक्षत्रशोधनकान्यपि 'पुव्वभणियाणि' पूर्वभणितानि 'अभिइम्मि बायाला' इत्यादिवचनाद् द्वाचत्वारिंशत्प्रभृतीनि 'परिजाणसु' परिजानीहि । एवं कृते विवक्षिते चन्द्रर्त्तौ नियतो नक्षत्रयोगः समागच्छतीति करणगाथाक्षरार्थः । अथात्रकोऽपि पृच्छेत् यत् प्रथमे चन्द्रर्त्तौ कश्चन्द्रनक्षत्रयोगः ? इति, तत्र स एव ध्रुवराशिः पञ्चोत्तरशतत्रयप्रमाणः (३०५) स्थाप्यते, स एव प्रथमचन्द्रर्त्तोः पृष्टत्वाद एकेन गुण्यते जातस्तावानेव (३०५) ततः 'अभिइम्मि बायाला' इति वचनात् अभिजितो द्वाचत्वारिंशत् शोध्यते, शेषे तिष्ठतः त्रिषष्ठ्यधिके द्वे शते (२६३) ततश्चतुस्त्रिंशदधिकेन शतेन (१३४) श्रवण शुद्धः, स्थितं पश्चादेकोनत्रिंशदधिकं शतम् (१२९), तस्य द्विकेनापवर्त्तना क्रियते जाताः सार्द्धाश्चतुः षष्टिः (६४।।) सप्तषष्टिभागाः । तत आगतम्—अभिजितः श्रवणस्य च परिभोगानन्तरं धनिष्ठायाः सार्द्धचतुष्षष्टिसंख्यकान् सप्तषष्टिभागानवगाह्य चन्द्रः स्वकीयमृतुं परिसमापयतीति । द्वितीयचन्द्रर्तु जिज्ञासायां स एव ध्रुवराशिः (३०५) द्व्युत्तरवृद्धिक्रमेण त्रिभिर्गुण्यते जायन्ते पञ्चदशोत्तराणि नवशतानि (९१५), तत्राभिजितो द्विचत्वारिंशत् शोध्यन्ते, स्थितानि पश्चात् त्रिसप्तत्यधिकानि अष्टौ शतानि (८७३), ततश्चतुस्त्रिंशदधिकं शतं (१३४) श्रवणस्य शोध्यते स्थितानि पश्चात् एकोनचत्वारिंशदधिकानि सप्तशतानि (७३९) एतस्मात् चतुस्त्रिंशदधिकं शतं (१३४) धनिष्ठायाः शोध्यते, जातानि पञ्चोत्तराणि षट् शतानि (६०५) एतस्मादपि सप्तषष्टि शतभिषजः

शोध्यते स्थित नि पश्चात् अष्टत्रिंशदधिकानि पञ्चशतानि (५३८), एतेभ्योऽपि चतुस्त्रिंशदधिकं शतं (१३४) पूर्वभाद्रपदाया शोध्यते, स्थितानि पश्चात् चतुरधिकानि चत्वारि शतानि (४०४)एतेभ्योऽपि एकोत्तरं शतद्वयं (२०१) उत्तराभाद्रपदायाः शोध्यते, स्थितं त्र्युत्तरं शतद्वयम् (२०३) अस्मादपि चतुस्त्रिंशदधिकं शतं (१३४) रेवत्याः शोध्यते, स्थिता पश्चादेकोनसप्तति· (६९) तत आगतम्—अश्विनीनक्षत्रस्यैकोनसप्ततिभागान् (६९) चतुस्त्रिंशदधिकशत भागा सत्कान् अवगाह्य चन्द्रो द्वितीयं स्वकीयमृतुं परिसमापयतीति । अथान्तिमद्व्युत्तरचतुःशततम (४०२) चन्द्रर्तुविषयप्रश्नेऽपि स एव पञ्चोत्तरशतत्रयप्रमाणो ध्रुवराशिः स्थाप्यते, ततः प्रत्येकचन्द्रर्तौ द्व्युत्तरद्व्युत्तरवृद्धिक्रमेण द्व्युत्तरचतुःशततमे चन्द्रर्तौ त्र्युत्तराणि अष्टौशतानि (८०३) समायान्ति तत स्त्र्युत्तरैरष्टभि शतैः (८०३) ध्रुवराशिर्गुण्यते, जातानि द्वे लक्षे, चतुश्चत्वारिंशत् सहस्राणि, नवशतानि पञ्चदशोत्तराणि (२४४९१५), अत्र एकनक्षत्रपर्यायपरिमाणं—षष्ट्यधिकानि षट्त्रिंशच्छतानि (३६६०), एतावत्प्रमाणं भवति, तदेव प्रदर्श्यते—षट्सु अर्द्धक्षेत्रेषु प्रत्येकं सप्तषष्टिरंशाः (६७), षट्सु द्व्यर्धक्षेत्रेषु प्रत्येक मेकोत्तरं शतद्वयम् (२०१) अंशानाम्, शेषेषु पञ्चदशसु समक्षेत्रेषु नक्षत्रेषु प्रत्येक चतुस्त्रिंशदधिकं शतम् (१३४) इति । तत्र षड् अर्द्धक्षेत्राणि नक्षत्राणीति तेषां प्रत्येकं सप्तषष्ट्यांशात्मकत्वात् षट् सप्तषष्ट्या गुण्यन्ते जातानि द्व्युत्तराणि चत्वारिंशतानि (४०२) एते षण्णां समक्षेत्राणामंशाः । तथा षट् द्व्यर्द्धक्षेत्राणि नक्षत्राणीति तेषां प्रत्येकमेकोत्तरद्विशतांशात्मकत्वात् षड् एकोत्तरशतद्वयेन (२०१) गुण्यन्ते, जातानि षडुत्तराणि द्वादश शतानि (१२०६) एते षण्णां द्व्यर्धक्षेत्रनक्षत्राणामंशाः । तथा शेषाणि पञ्चदश नक्षत्राणि समक्षेत्राणीति तेषां प्रत्येकं चतुस्त्रिंशदधिकशतांशात्मकत्वात् पञ्चदश चतुस्त्रिंशदधिकेन शतेन (१३४) गुण्यन्ते जातानि दशोत्तराणि विंशतिशतानि (२०१०), एते पञ्चदशानां समक्षेत्रनक्षत्राणामंशा इति । एते त्रयोऽपि राशय एकत्र मील्यन्ते, जातानि अष्टादशाधिकानि षट् त्रिंशच्छतानि (३६१८), एषु शेषस्याष्टाविंशतितमस्याभिजिन्नक्षत्रस्य द्विचत्वारिंशत् (४२) प्रक्षिप्यन्ते, जातानि—षष्ट्यधिकानि षट्त्रिंशच्छतानि (३६६०) इति

अंशानां कोष्ठकम्

षण्णामर्धक्षेत्राणामंशाः	४०२
षण्णांद्व्यर्धक्षेत्राणामंशाः	१२०६
पञ्चदशानां समक्षेत्राणामंशाः	२०१०
अभिजिन्नक्षत्रस्यांशाः	४२
सर्व योग	३६६०

एतावता—एकेन नक्षत्रपर्यायपरिमाणेन पूर्व राशेः (२४४९१५) भागो ह्रियते, लब्धा षट्षष्टिः (६६) नक्षत्रपर्यायाः, पश्चादवतिष्ठन्ते—पञ्च पञ्चाशदधिकानि त्रयस्त्रिंशच्छतानि (३३५५)। एभ्योऽभिजितो द्वाचत्वारिंशत् शोध्यते, स्थितानि शेषाणि त्रयोदशाधिकानि त्रयस्त्रिंशच्छतानि (३३१३), एभ्यो द्व्य-

शीत्यधिकानि त्रिंशच्छतानि (३०८२) श्रवणत आरभ्यानुराधापर्यन्तानां त्रयोविंशतिनक्षत्राणां शोधनकानि शोध्यंते स्थिते—एकत्रिंशदधिके द्वे शते (२३१) एभ्यः सप्तषष्टि (६७) ज्येष्ठायाः शोध्यते, स्थित चतुष्पष्टयधिकं शतम् (१६४), अस्मात् चतुस्त्रिंशदधिकं शतं (१३४) मूलनक्षत्रस्य शोध्यते, स्थिताः पश्चात् त्रिंशत् (३०), तत आगतम्—पूर्वाषाढानक्षत्रस्य त्रिंशतं चतुस्त्रिंशदधिकशतभागानामभ्यादवगाह्य चन्द्रो द्वयुत्तरचतुःशततमं (४०२) स्वकीयमृतुं परिसमापयतीति।

तदेवं सूर्यर्तुपरिमाणं चन्द्रर्तुपरिमाणं च प्रोक्तम्, साम्प्रतं सूत्रमनुसरामः, तत्र लोकरूढ्या यावत्कमेकैकस्य चन्द्रर्तोः परिमाणं भवति तावत्कं परिमाणं प्रदर्शयति—'ता सव्वे-विणं' इत्यादि ।

'ता सव्वे वि णं' इति 'ता' तावत् 'सव्वे वि णं' सर्वेऽपि षट्संख्याकाः प्रावृडादाय ऋतुवः 'एए' एते पूर्वोक्ताः 'चंदउऊ' चन्द्रर्त्तवः 'दुवे२मासा' द्वौ द्वौ मासौ प्रत्येकं द्वि द्वि मासप्रमाणाः सन्ति । तत्र 'ति चउप्पण्णेणं२' इति त्रीणि शतानि चतुष्पञ्चाशदधिकानि रात्रिन्दिवानाम्, तथा एकस्य रात्रिन्दिवस्य द्वादश च द्वाषष्टि भागाः (३५४–१२/६२), इति चन्द्रसंवत्सररात्रिन्दिवप्रमाणम्, इत्येवं रूपेण 'आदाणेणं' आदानेन इत्येवंरूपसंवत्सरप्रमाणग्रहणेन 'गणिज्जमाणा' गण्यमानौ मासौ 'साइरेगाइं एगूणसट्ठीर राइंदियाइं' एकोनषष्टिरेकोनषष्टिः रात्रिन्दिवानि सातिरेकाणि किञ्चिदाधिकच्ययुक्तानि 'राइंदियग्गेणं' रात्रिन्दिवाग्रेण रात्रिन्दिव परिमाणेन 'आहिया' आख्यातौ, चन्द्रर्तुसत्कं मासद्वयं किञ्चिदधिकैकोनषष्टिरात्रिन्दिवपरि परिमितं भवति 'तिवएज्जा' इति वदेत् कथयेत् स्वशिष्येभ्यः। तथाहि—द्वि द्वि मासप्रमाणाः षड्ऋतव इति चतुष्पञ्चाशदधिकानां त्रयाणां रात्रिन्दिवशतानां (३५४) षड्भिर्भागे हृते लब्धा एकोनषष्टिरहोरात्रा., द्वादशानां द्वाषष्टिभागानां षड्भिर्भागे हृते लब्धौ द्वौ द्वाषष्टिभागौ इति—तयोः सातिरेकत्वमिति । एवं च सति कर्ममासापेक्षया एकैकस्मिन् ऋतौ लौकिकमेकैकं चन्द्रर्तुम्—अधिकृत्य व्यवहारत एकैकोऽवमरात्रो भवति, एवं सकले कर्मसंवत्सरे षड्अवमरात्रा भवन्ति, तदेव सूत्रकारः प्रदर्शयति—'तत्थ खलु' इत्यादि, 'तत्थ' तत्र तस्मिन् कर्मसंवत्सरे चन्द्रसंवत्सरमाश्रित्य व्यवहारतः 'खलु' निश्चयेन 'इमे' वक्ष्यमाणाः 'छ ओमरत्ता पण्णत्ता' षड् अवमरात्राः प्रज्ञप्ताः 'तं जहा' तद्यथा--'तइए पव्वे' तृतीये पर्वणि प्रथमः १ । 'सत्तमे पव्वे' सप्तमे पर्वणि द्वितीयः २ । 'एक्कारसमे पव्वे' एकादशे पर्वणि तृतीयः ३ । 'पण्णरसमे पव्वे' पञ्चदशे पर्वणि चतुर्थः ४ । 'एगूणवीसइमे पव्वे' एकोनविंशतितमे पर्वणि पञ्चमः ५ । 'तेवीसमे पव्वे' त्रयोविंशतितमे पर्वणि षष्ठः ६ । एते षड् अवमरात्राः प्रज्ञप्ताः चन्द्रसंवत्सरे इति । अत्रेयं भावना—इह कालस्य सूर्यादि क्रियोपलक्षितस्यानादिप्रवाहपतित प्रति नियत स्वभावस्य

न स्वरूपतः काऽपि हानिः, नापि च कश्चित् स्वरूपे उपचयः यत्त्विदं चन्द्रर्तुमाश्रित्यावमरात्रप्रतिपादनं, सूर्यर्त्तुमाश्रित्यातिरात्रप्रतिपादनं तत् सूर्यचन्द्रयोः परस्परं मासचिन्ता पेक्षयाऽवगन्तव्यम् । तथाहि—कर्ममासमपेक्ष्य चन्द्रमासश्चिन्त्यते तदाऽवमरात्रसम्भवः, अयं परस्परमासचिन्तायां भेदः, तथा चोक्तम्—

"कालस्स नेवहाणी, नविवुड्ढीवा अवट्ठियो कालो ।
जायइ वड्ढोवड्ढी, मासाणं—एक्कमेकाओ ॥ १ ॥

छाया—कालस्य नैवहानिः, नाभि वृद्धि (किन्तु) अवस्थितः कालः ।
जायेते (यत्) वृद्ध्यपवृद्धी (ते) मासयोरे कैकस्मात् ॥ १ ॥ इति ॥

सूर्यचन्द्रमासयोरेकैका पेक्षयेत्यर्थः । तत्रावमरात्रभावना करणार्थं वृद्धोक्ते इमे द्वेगाथे प्रदर्श्येते—

"चंद उ उ मासाणां, अंसा जे दिस्सए विसेसम्मि ।
ते ओमरत्त भागा, भवंति मासस्स नायव्वा ॥ १ ॥
बावट्ठि भाग मेगं, दिवसे संजाए ओमरत्तस्स ।
बावट्ठीए दिवसेहिं, ओमरत्तं ताओ हवइ ॥ २ ॥

छाया—चन्द्रर्तुमासयोः अंशा ये दृश्यन्ते विश्लेषे ।
ते अवमरात्रभागाः भवन्ति मासस्य ज्ञातव्याः ।
द्वाषष्टि भाग एकः दिवसे संजायते अवमरात्रस्य ।
द्वाषष्ट्या दिवसैः, अवमरात्रस्ततो—भवति ॥२॥ इति

अनयोरर्थः — कर्ममासः परिपूर्णत्रिंशदहोरात्रप्रमाणः, चन्द्रमासः — एकोनत्रिंशदहोरात्राः, एकस्य चाहोरात्रस्य द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः $(२९\frac{३२}{६२})$ एतावत्परिमितो भवतीति 'चंदउउमासाणं' चन्द्रर्तुमासयोः चन्द्रमासपरिमाणस्य ऋतुमासपरिमाणस्येति कर्ममासपरिमाणस्य कर्ममासपरिमाणस्य च, अनयोर्द्वयोः 'विसेसम्मि' विश्लेषे कृते सति 'जे अंसा' ये अंशा उद्धृताः 'दिस्सए' दृश्यन्ते त्रिंशत्द्वाषष्टिभागरूपाः 'ते ओमरत्तभागा' ते अवमरात्रस्य भागाः 'मासस्स' एकस्य मासस्य भवन्तीति 'नायव्वा' ज्ञातव्याः, सोऽवमरात्रश्च मासद्वयस्य पर्यन्ते परिपूर्णो भवति ततस्तस्य सम्बन्धिनस्ते भागा मासस्यावसाने द्रष्टव्या इति भावः । तदेव गणितेन प्रदर्श्यते—यदि त्रिंशति दिवसेषु त्रिंशद् द्वाषष्टिभागा अवमरात्रस्य लभ्यन्ते तदा एकस्मिन् दिवसे कति भागा लभ्यते ? इति राशित्रयं स्थाप्यते—३०।३०।१। अत्र गणितक्रममधिकृत्यान्त्येन राशिना एककलक्षणेन मध्यमो राशि स्त्रिंशल्लक्षणो गुण्यते, जातस्तावानेव (३०), अस्य राशे रादिराशिना त्रिंशद्रूपेण भागो ह्रियते, लब्ध एकः परिपूर्णोऽङ्कः, न किञ्चिदवशिष्टम् , तत आगतम्—प्रति

दिवसमेकैको द्वाषष्टि भागा लभ्यते तत आह **'बावट्ठिभागमेगं दिवसं'** इति द्वाषष्टि भाग एकैको दिवसे दिवसे **'संजाइ'** संजायते कस्येत्याह–**'ओमरत्तस्स'** अवमरात्रस्य जायते । गाथायामेक शब्दो दिवसशब्दश्चागृहीतवोप्सोऽपि व्याख्यानसामर्थ्याद् वीप्सां प्रापयति, **'बावट्ठिभागमेगं'** इत्यत्र नपुंसकनिर्देशश्च प्राकृतत्वात् । तदेवं यदा एकैकस्मिन् दिवसे एकैको द्वाषष्टिभागोऽवमरात्रसम्बन्धी लभ्यते तदा द्वाषष्ट्या दिवसैरेकः परिपूर्णोऽवमरात्रो भवति । कथमित्याह–दिवसे दिवसे ऽवमरात्रसत्कैकैकद्वाषष्टिभागवृद्धया संजायमान· द्वाषष्टितमो भागो द्वाषष्टितमदिवसे प्रारम्भत एव त्रिषष्टितमा तिथिः प्रवर्त्तते, इति, एवं च सति य एकषष्टितमोऽहोरात्रो भवति तस्मिन्नहोरात्रे एकषष्टितमा द्वाषष्टितमा च तिथिर्निधनमुपगतेति लोके द्वाषष्टितमा तिथिः पतितेति व्यवह्रियते, उक्तञ्च —

> "एक्कंसि अहोरत्ते, दो वि तिही जत्थ निहणमेज्जासु ।
> सोऽत्थ तिही परिहायइ"

एकस्मिन्नहोरात्रे द्वे अपि तिथी अत्र निधनमियास्ताम् साऽत्र तिथिः परिहीयते, इतिच्छाया, एवं वर्षाकालस्य चतुर्मासप्रमाणस्य श्रावणादेस्तृतीये पर्वणि सति प्रथमोऽवमरात्रो भवतीति । एवं तस्यैव वर्षाकालस्य सम्बन्धिनि सप्तमे पर्वणि सति द्वितीयोऽवमरात्रो भवति २। तथा शीतकालस्य तृतीये पर्वणि मूलत एकादशे पर्वणि तृतयोऽवमरात्रो भवति ३। तस्यैव शीतकालस्य सप्तमे पर्वणि, मूलतः पञ्चदशे पर्वणि चतुर्थोऽवमरात्रः ४। तदनन्तरं ग्रीष्मकालस्य तृतीये पर्वणि, मूलत एकोनविंशतितमे पर्वणि पञ्चमोऽवमरात्रः ५। तस्यैव ग्रीष्मकालस्य सप्तमे पर्वणि मूलतस्त्रयोविंशतितमे पर्वणि षष्ठोऽवमरात्रः ६। उक्तञ्च–

> "तइयम्मि ओमरत्तं, कायव्वं सत्तमम्मि पव्वम्मि ।
> वास–हिम–गिम्ह–काले, चाउम्मासे विधीयंते ॥१॥

> तृतीये अवमरात्रं कर्त्तव्यं सप्तमे पर्वणि ।
> (एवं क्रमेण) वर्षा हिम–ग्रीष्मकाले चातुर्मासे विधीयन्ते ॥१॥ इतिछाया ।

इहाषाढाद्याकलनतो लोके प्रसिद्धिं प्राप्ता., ततो लौकिकव्यवहारापेक्षया आषाढादारभ्य प्रति दिवसमेकैक द्वाषष्टिभागहान्या वर्षाकालादि गतेषु तृतीयादिषु षट्सु पर्वसु यथोक्ताः षड् अवमरात्राः प्रतिपाद्यन्ते, वस्तुतः पुन. श्रावण बहुलपक्षप्रतिपल्लक्षणात् युगादित आरभ्य चतुश्चतुः पर्वातिक्रमेऽवमरात्रा वेदितव्या । अथ युगादितः कति पर्वातिक्रमे कस्यामवमरात्रीभूतायां तिथौ तया सह का तिथिः परिसमाप्यति ? इति जिज्ञासायां वृद्धाक्ता. प्रश्ननिर्वचनगर्भितास्तिस्रो गाथाः प्रदर्श्यन्ते—

"पाडिवय ओमरत्ते, कइया विइया समप्पिहीइतिही ।
विइया एवा तइया, तइया-एवा चउत्थीउ ॥१॥
सेसासु चेवकाहिइ, तिहिसु ववहार गणियदिट्ठासु ।
सुहुमेण परिल्लतिही, संजायइकम्मि पव्वम्मि ॥२॥
रूवहिगा उ ओया विगुणा पव्वा हवंति कायव्वा ।
एमेव हवइ जुम्मे, एक्कतीसा जुया पव्वा ॥३॥

छाया—प्रतिपदि अवमरात्रे कदा द्वितीया समापयति तिथिः ।
द्वितीयायां वा तृतीया, तृतीयायां वा चतुर्थी तु ॥१॥
शेषासु चैव करिष्यति तिथिषु व्यवहारेगणितदृष्टासु ।
सूक्ष्मेण पर तिथिः, संजायते कस्मिन् पर्वणि ॥२॥
रूपाधिकास्तु ओजस्यः, द्विगुणानि पर्वाणि भवन्ति कर्त्तव्यानि ।
एव मेव भवति युग्मायाम् एकत्रिंशद्युता पर्वाणि ॥३॥ इति ।

व्याख्या चैषाम्—'पाडिवयओमरत्ते' प्रातिपदि प्रतिपत् सम्बन्धिनि अवमरात्रे इति अवमरात्रीभूतायां प्रतिपदायां सत्यां 'कइया' कदा कस्मिन् पर्वणि पक्षे 'विइया समप्पिही तिही' द्वितीया तिथिः समाप्स्यति ? प्रतिपदया सह द्वितीया तिथिरेकस्मिन्नहोरात्रे कदा समाप्तिमेष्यति ? इति प्रश्नः । एवम्—'विइया एवा तइया' द्वितीयायामवमरात्रीभूतायां वा तृतीया तिथिः कदा-कस्मिन् पर्वणि ? 'तइयाए चउत्थीउ, तृतीयायामवरात्रीभूतायां चतुर्थी तिथिः कस्मिन् पर्वणि समाप्स्यति ? ॥१॥ एवम्—'सेसासु चेव कहिइ तिहीसु ववहारगणियदिट्ठासु' व्यवहार-गणितदृष्टासु लोकप्रसिद्धगणितेन परिभवितासु शेषासु चतुर्थ्यादितिथिषु अवमरात्री भूतासु पञ्चम्यादितिथयः कस्मिन् कम्मिन् पर्वणि समप्तिमेष्यतीति प्रश्नं शिष्यः 'काहिइ' इति करिष्यति, तथाहि—चतुर्थ्यो पञ्चमी, पञ्चम्यां षष्ठी, षष्ठ्यां सप्तमी, सप्तम्यामष्टमी, अष्टम्यां नवमी, नवम्यां दशमी, दशम्यामेकादशी, एकादश्यां द्वादशी द्वादश्यां त्रयोदशी, त्रयोदश्यां चतुर्दशी चतुर्दश्यां—पञ्चदशी पञ्चदश्यामवमरात्रीभूतायां प्रतिपदा तिथिः कस्मिन् पर्वणि समाप्स्यतीति शिष्यः प्रश्नं करिष्यतीतिभावः । यथा—'सुहुमेण' सूक्ष्मेण श्लक्ष्णेन प्रतिदिवस-मेकैकद्वाषष्टिभागरूपेण भागेन परिहीयमानायां तिथौ 'परिल्लतिही' पूर्वस्या अवमरात्री भूता-यास्तिथे रव्यवहिततया परा परातिथिः 'संजायइ कम्मि पव्वम्मि' कस्मिन् पर्वणि समाप्ता संजायते ? इति प्रश्नस्वरूपम् ॥२॥ अत्राचार्य आह—'रूवाहिगाउ' इत्यादि, 'रूवाहिगाउ' रूपा-धिकास्तु—इह यास्तिथयः पृष्टास्ता द्विविधा भवन्ति—ओजो रूपा, युग्मरूपाश्च,—तत्र ओज इति विषमं, युग्ममिति समम् । तत्र यास्तिथयः 'ओया' ओजस्यः ओजोरूपा विषमा इत्यर्थः

ता प्रथमं रूपाधिकाः क्रियन्ते, ओजोरूपासु तिथिषु एकं रूपं प्रक्षिप्यते इति भावः, ता रूपाधिका ओजोरूपास्तिथय. 'विगुणा कायव्वा' द्विगुणाः कर्तव्या. एवं करणे तस्यास्तस्यास्तिथेः 'पव्वा हवंति' पर्वाणि युग्मपर्वाणि भवन्ति, तावत्परिमितानि पर्वाणि समागतानीति परिभावनीयमित्युत्तरम् । 'एमेवहवइ जुम्मे' एवमेव अनेनैव प्रकारेण एकरूपप्रक्षेपणरूपेण युग्मरूपासु तिथिष्वपि विज्ञेयम्, तथाहि—युग्मरूपासु तिथिषु एकं रूपं प्रक्षिप्य तास्तिथयो द्विगुणी क्रियन्ते, विशेषस्त्वयम्—द्विगुणीकृता एतास्तिथय· 'एक्कतीसाजुया' एकत्रिंशद्युत्ताः कर्त्तव्याः, आसु एकत्रिंशत् प्रक्षिप्यन्ते, तदनन्तरं या संख्या समायाति तत्परिमितानि 'पव्वा' पर्वाणि—भवन्तीत्युत्तरं युग्मतिथिविषयकमिति ॥३॥ इति गाथात्रयस्य व्याख्या । अथात्र भावना क्रियते—अत्रायं प्रश्नः—यत् कस्मिन् पर्वणि—अवमरात्रीभूतायां प्रतिपदायां द्वितीया समाप्नोतीति, अत्र किल प्रतिपदुद्दिष्टा, सा च प्रथमातिथिरित्येकः स्थाप्यते, अस्या ओजोरूपत्वादेको रूपाधिकः क्रियते 'रूवाहिया उ ओया'' इति वचनात्, रूपाधिके कृते जाते द्वे, ते अपि 'विगुणा कायव्वा' इति वचनात द्विगुणी क्रियते, जाताश्चत्वारः 'पव्वा हवंति' इति वचनात आगतानि चत्वारि पर्वाणि ततोऽयमर्थः—युगादितश्चतुर्थे पर्वणि प्रतिपदायामवरात्रीभूतायां द्वितीया तिथिः समाप्तिमेतीति । युक्ति युक्तमेतत्, तथाहि—प्रतिपदायामुद्दिष्टायां चत्वारि पर्वाणि समागतानि, पर्व च पञ्चदशतिथ्यात्मकं भवति ततः पञ्चदशानां चतुर्भिर्गुणने जायते षष्टिः ।(६०) प्रतिपदायां द्वितीया समाप्नोतीति द्वे रूपे तत्राधिके प्रक्षेप्तव्ये ततो जाता द्वाषष्टिः, सा च द्वाषष्ट्या भज्यमाना निरंशभागा भवति न किमपि शेषमवतिष्ठते, लब्धश्चैककः, इत्यागतः प्रथमोऽवमरात्र इत्यविसंवादिकरणमिति । अथ कोऽपि पृच्छेत् कस्मिन् पर्वणि द्वितीयायामवमरात्रीभूतायां तृतीया समाप्तिमेति ? इति तदा द्वितीयाया उद्दिष्टत्वेन द्विकः स्थाप्यते, ततश्च-'एमेव हवइ जुम्मे' इति वचनात् अस्य द्विकस्य रूपाधिककरणे जातानि त्रीणि रूपाणि, तानि द्विगुणी क्रियते जाताः षट्, द्वितीयातिथिश्च समेति 'एक्कतीसजुया पव्वा' इति वचनात् ते षडेकत्रिंशद् युता· क्रियन्ते जाताः सप्तत्रिंशत् (३७), तत् आगतानि सप्तत्रिंशत् पर्वाणि ततो युगादित· सप्तत्रिंशत्तमे पर्वणि गते द्वितीयायामवमरात्रीभूतायां तृतीयातिथिः समाप्तिमेतीति, इदमपि करणमविसंवादि, तथाहि—पर्वकिल पञ्चदश सप्तत्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि पञ्च पञ्चाशदधिकानि पञ्चशतानि (५५५) द्वितीयाऽवमरात्रिरिति द्वितीया नष्टा तृतीया जातेति त्रीणि रूपाणि तत्र प्रक्षिप्यन्ते जातानि अष्टपञ्चाशदधिकानि पञ्चशतानि, (५५८) पूर्ववदेषोऽपि राशिर्द्वाषष्ट्या भज्यमानो निरंशतां प्राप्नोति, लब्धाश्च नव ? ततआगतो नवमोऽमरात्र इति युग्मतिथिविषयकमपि करणं समीचीनमिति । एवमग्रेऽपि सर्वास्वपि तिथिषु करणभावना, करणसमीचीनता अवमरात्रि संख्या च स्वयमूहनीयेति । अत्राग्रेतनानां पर्वणां निर्देशमात्रं क्रियते, तथाहि—तृतीयायां

चतुर्थी समाप्नोति अष्टमे पर्वणि गते, चतुर्थ्यां पञ्चमी एकचत्वारिंशत्तमे पर्वणि गते समाप्नोति-पञ्चम्यां षष्ठी द्वादशे पर्वणि गते, षष्ठ्यां सप्तमी पञ्चचत्वारिंशत्तमे पर्वणि गते, एवं सप्तम्यामष्टमी षोडशे, अष्टम्यां नवमी एकोनपञ्चाशत्तमे, नवम्यां दशमी विंशतितमे, दशम्यामेकादशी त्रिपञ्चाशत्तमे, एकादश्यां द्वादशी चतुर्विंशतितमे, द्वादश्यां त्रयोदशी सप्तपञ्चाशत्तमे, त्रयोदश्यां चतुर्दशी अष्टाविंशतितमे, चतुर्दश्यां पञ्चदशी एकषष्टितमे, पञ्चदश्यां प्रतिपदा द्वात्रिंशत्तमे पर्वणि गते समाप्नोतीति । एवमेतायुगस्य पूर्वार्द्धे विज्ञेयाः एवं युगस्य उत्तरार्द्धेऽपि स्वयमूहनीयाः ।

तदेवमवमरात्राः प्रोक्ताः साम्प्रतमतिरात्रान् प्रदर्शयति **'तत्थ खलु'** इत्यादि, **'तत्थ खलु'** तत्र एकैकस्मिन् संवत्सरे खलु **'इमे'** इमे-वक्ष्यमाणाः **'छ अइरत्ता पण्णत्ता'** षड् अतिरात्राः तिथि वृद्धिरूपाः कथिता **'तं जहा'** तद्यथा–ते यथा–**'चउत्थे पव्वे'** इत्यादि, **'चउत्थे पव्वे'** चतुर्थे पर्वणि गते एकः प्रथमोऽहोरात्रोऽधिको भवति । इह कर्ममासापेक्षया सूर्यमासा चिन्तायामेकैकसूर्यर्त्तुपरिसमाप्तौ एकैकोऽहोरात्रो लभ्यते तथाहि–त्रिंशदहोरात्रैरेकः कर्ममासो भवति, सार्द्ध त्रिंशदहोरात्रैश्चैकः सूर्यमासो भवति, ऋतुश्च मास द्वयात्मकस्तत एकस्य सूर्यर्त्तोः परिसमाप्तौ कर्ममासद्वयापेक्षया एकोऽधिकोऽहोरात्रो लभ्यते । सूर्यर्त्तुश्च आषाढादिकः, तत आषाढादारभ्य चतुर्थे पर्वणि गते एकोऽधिको ऽहोरात्रो भवतीत्यतः प्रोक्तम्–**'चउत्थे पव्वे'** इति द्वितोयादिकोऽतिरात्रः कियति कियति पर्वणि गते भवतीत्युच्यते–**'अट्ठमे पव्वे'** इत्यादि, **'अट्ठमे पव्वे'** अष्टमे पर्वणि गते द्वितीयः, **'बारसमे पव्वे'** द्वादशे पर्वणि गते तृतीयः, **'सोलसमे पव्वे'** षोडशे पर्वणि गते चतुर्थः, **'वीसइमे पव्वे'** विंशतितमे पर्वणि गते पञ्चमः, **'चउवीसइमे पव्वे'** चतुर्विंशतितमे पर्वणि गते षष्ठोऽतिरात्रो भवतीति षड् अतिरात्रा भवन्तीति । एतदेव सूत्रकारो गाथया प्रदर्शयति–**'छच्चेव य'**इत्यादि **'छच्चेवय अइरत्ता आइच्चाउ हवंति'** एते षड् अतिरात्रा आदित्यात् भवन्ति, आदित्यमधिकृत्य प्रति कर्ममासद्वयेऽतिरात्रो भवति, एकस्मिन् कर्ममासे च पर्वद्वयं भवतीति प्रतिचतुर्थे पर्वणि अतिरात्रो लभ्यते ततः प्रतिवर्षं षड् अतिरात्रा भवन्तीति **'माणाहि'** जानीहि । तथा एवम् **'छच्चेव ओमरत्ता'** षडेव अवमरात्राः **'चंदा उ हवंति'** चन्द्राद् भवन्ति चन्द्रमासानधिकृत्य कर्ममासचिन्तायां प्रति संवत्सरं षड् अवमरात्रा भवन्ति, तथाहि-कर्ममास त्रिंशदहोरात्रात्मकः, चन्द्रमासस्तु द्वात्रिंशद् द्वाषष्टि भागा युक्त एकोनत्रिंशदिनात्मकः (२९। $\frac{३२}{६२}$) स्थूलतया सार्द्धैकोनत्रिंशदहोरात्रात्मक इति प्रतिमासमर्द्धोऽहोरात्रः कर्ममासाच्चन्द्रमास न्यून आयाति ततो मासद्वये चतुः पर्वात्मके एकोऽहोरात्रोऽवमरात्रतया भवति, तेन प्रत्येकस्मिन् वर्षे षड् अवमरात्रा भवन्तीत्यत उक्तम्–**'छ ओमरत्ता पण्णत्ता'** इति **'माणाहि'** जानीहि, इति गाथार्थः ॥१॥ सू० ॥४॥

तदेव यत् प्रथमायाम् २। एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां तृतीयां वार्षिकीं आवृत्तिं चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् विशाखाभिः विशाखानां त्रयोदशमुहूर्त्ताः चतुष्पञ्चाशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा चत्वारिंशत् चूर्णिकाभागाः शेषाः तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् पुष्येण, पुष्यस्य तदेव ३। तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां चतुर्थीं वार्षिकीं आवृत्तिं चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् रेवतीभिः, रेवतीनां पञ्चविंशति मुहूर्त्ताः, द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागाः मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा षड्विंशति श्चूर्णिकाभागाः शेषाः। तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् पुष्येण, पुष्यस्य तदेव ४। तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां पञ्चमीं वार्षिकीम् आवृत्तिं चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् पूर्वाफाल्गुनीभिः पूर्वाफाल्गुनीनां द्वादश मूहूर्त्ताः, सप्तचत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा त्रयोदशचूर्णिका भागाः शेषाः। तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? ता पुष्येण पुष्यस्य तदेव ॥सू० ५।

व्याख्या—'तत्थ खलु' इति 'तत्थ' तत्र युगे खलु 'इमाओ' इमा वक्ष्यमाणलक्षणाः 'पंचेति' पञ्चसंख्यकाः 'वासिक्कीओ' वार्षिक्यः वर्षाकालभाविन्यः, तथा 'पंचे'ति पञ्चसंख्यकाः 'हेमंताओ' हैमन्त्यः शीतकालभाविन्यः एवं सर्वसंकलनया दश 'आउट्टीओ' आवृत्तयः पुनः पुनर्दक्षिणोत्तरगमनरूपाः दक्षिणादुत्तरे, उत्तराद्दक्षिणे गमनरूपाः सूर्यस्य 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ताः कथिता इति। अत्रेयं भावना—ताश्चावृत्तयः सूर्यस्य चन्द्रस्येति द्विविधाः भवन्ति। तत्रैकस्मिन् युगे सूर्यस्यावृत्तयो दश भवन्ति एकस्मिन् वर्षे दक्षिणोत्तरायणभेदेन द्विद्वित्वस्य भावात्। चन्द्रस्य चैकस्मिन् युगे चतुस्त्रिंशदधिकशतसंख्यका (१३४) आवृत्तयो भवन्ति। उक्तं च—

सूरस्स य अयणसमा, आउट्टीओ जुगम्मि दस होंति।
चंदस्स य आउट्टी, सयं च चोत्तीसयं चेव ॥ १ ॥

छाया---सूर्यस्य च अयनसमा आवृत्तयो युगे दश भवन्ति।
चन्द्रस्य च आवृत्तयः शतं च चतुस्त्रिंशम् ॥ १ ॥ इति।

अथ सूर्यस्यावृत्तयो युगे दश, चन्द्रस्य च चतुस्त्रिंशदधिकं शतमिति कथं ज्ञायते ? इति गणितेन प्रदर्श्यते आवृत्तयो नाम पुनः पुनर्दक्षिणोत्तरगमनरूपा इति तु पूर्वं प्रदर्शितमेव। यस्य यावन्ति अयनानि भवन्ति तस्य तावत्य आवृत्तयो भवन्ति। प्रथमं सूर्यस्य दशआवृत्तयो भवन्तीति तास्त्रैराशिकगणितेन प्रदर्श्यन्ते सूर्यमासस्य सार्धत्रिंशदहोरात्रात्मकत्वेन एकस्य संवत्सरस्य षट्षष्ट्यधिकानि त्रीणि शतानि (३६६) अहोरात्राणां लभ्यन्ते, तेन एकस्मिन् युगे पञ्चसंवत्सरात्मके त्रिंशदधिकानि अष्टादश शतानि (१८३०) अहोरात्राणां भवन्ति, एकस्मिन्नयने षण्मासात्मके त्र्यशीत्यधिकं शतम् (१८३) अहोरात्राणां लभ्यते। ततस्त्रैराशिकगणितं,

क्रियते, तथाहि—यदि त्र्यशीत्यधिकशतसंख्यकैर्दिवसैरेकमयनं भवति तदा त्रिंशदधिकाष्टादशशत- संख्यकैर्दिवसैः कति अयनानि लभ्यन्ते ? इति राशित्रयस्थापना—१८३।१।१८३० । अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशेरेककस्य गुणनं क्रियते जातानि तान्येवं त्रिंशदधिकानि अष्टादशशतानि (१८३०)। एषामाद्येन राशिना त्र्यशीत्यधिकशतप्रमाणेन भागो ह्रियते हृते च भागे लभ्यन्ते परिपूर्णा दश, तत आगतम्—युगस्य मध्ये सूर्यस्य दशअयनानीत्यावृत्तयोऽपि दशेति ।

अथ चन्द्रस्यावृत्तयः प्रदर्श्यन्ते—चन्द्रस्यायनं त्रयोदशभिर्दिवसैः, एकस्य च दिवसस्य चतुश्चत्वारिंशत्सप्तषष्टिभागैः ($१३|\frac{४४}{६७}$) भवति ततो यदि चतुश्चत्वारिंशत्सप्तषष्टि भागयुतैस्त्रयोदशभिर्दिवसैरेकं चन्द्रस्यायनं भवति तदा त्रिंशदधिकैरष्टादशशतैः (१८३०) दिवसैः कति चन्द्रायनानि लभ्यन्ते ? राशित्रयस्थापना— $\frac{१३}{\frac{४४}{६७}}$।१।१८३०। तत्र सवर्णनाकरणार्थमाद्यन्तरूपं राशिद्वयमपि सप्तषष्ट्या गुण्यते, तत्र प्रथमं त्रयोदशदिनानि सप्तषष्ट्या गुण्यन्ते जातानि एकसप्तत्यधिकानि अष्टाशतानि (८७१), एषु ये उपरितनाश्चतुश्चत्वारिंशत् (४४) सप्तषष्टिभागास्ते प्रक्षिप्यन्ते, जातानि पञ्चदशाधिकानि नवशतानि (९१५)। ततो यानि त्रिंशदधिकानि अष्टादशशतानि (१८३०) तान्यपि सवर्णनार्थं सप्तषष्ट्या गुण्यन्ते, जातानि एकं लक्षम्, द्वाविंशतिसहस्राणि षट्शतानि दशोत्तराणि (१२२६१०) एष राशिर्मध्यमकेन राशिना एककरूपेण गुण्यते, एकेन गुणने च जातस्तावानेव राशिः (१२२६१०) अस्य आद्येन राशिना पञ्चदशाधिकनवशतरूपेण (९१५) भागो ह्रियते लब्धं चतुस्त्रिंशदधिकमेकं शतम् (१३४), तत आगतम्—एकस्मिन् युगे चतुस्त्रिंशदधिकशतसंख्यकानि (१३४) चन्द्रायणानि भवन्ति, तत एतावत्यश्चन्द्रस्य आवृत्तयो जायन्ते इति प्रतिपादिताः सूर्यचन्द्रयोरावृत्तयः । साम्प्रतं 'का सूर्यस्यावृत्तिः कस्यां तिथौ भवतीति' जिज्ञासायां वृद्धोक्तकरणगाथाद्वयमत्र प्रदर्श्यते—

"आउट्टीहिं एगूणियाहिं गुणियं सयं तु तेसीयं।
जेणा गुणं तं तिगुणं, रूवहियं पक्खिवे तत्थ ॥१॥
पण्णरसभाइयम्मि उ, जं लद्धं तं तइसु होइ पव्वेसु ।
जे अंसा ते दिवसा, आउट्टी तत्थ बोद्धव्वा ॥२॥

छाया—आवृत्तिभिरेकोनिकाभिः, गुणितं शतं तु त्र्यशीतम् ।
येन गुणितं तत् त्रिगुणं रूपाधिकं प्रक्षिपेत् तत्र ॥१॥
पञ्चदशभाजिते तु यद्लब्धं तत् तावत्सु भवति पर्वसु ।
ये अंशाः ते दिवसाः, आवृत्तिस्तत्र बोद्धव्या ॥२॥ इति ।

अनयोर्व्याख्या–'आउट्टीहि एगूणियाहिं' आवृत्तिभिरेकोनिकाभिरिति–यामावृत्तिं विशिष्टतिथियुक्ताज्ञातुमिच्छेत् तस्याः संख्या एकेन हीना क्रियते, ततस्तत्संख्यया 'गुणियं सयं तु तेसीयं' त्र्यशीत्यकं शतं गुणितं कुर्यात् गुणयेदित्यर्थः, ततः पश्चात् 'जेण गुणं' यया संख्यया त्र्यशीत्यधिकं शतं गुणितं 'तं तिगुणं' तदङ्कस्थानं त्रिगुणं त्रिगुणितं कृत्वा तत् 'तत्थ' तस्मिन् पूर्वराशौ 'पक्खिवे' प्रक्षिपेत् ॥१॥ ततो यः प्रक्षिप्तोराशिस्तस्मिन् 'पण्णरसभाइयम्मि उ' पञ्चदशभिर्भाजिते सति 'जं लद्धं' यल्लब्धं 'तइसु पव्वेसु' तावत्सु तावत्संख्यकेपु पर्वसु अतिक्रान्तेषु सत्सु 'होइ' भवति विवक्षिता आवृत्तिरिति । अथ च 'जे अंसा' ये अंशाः भागे हृते उद्धरिताः 'ते दिवसा' ते दिवसा विज्ञेयाः । 'तत्थ' तत्र तेपु दिवसेपु तन्मध्ये चरमदिवसे इत्यर्थः 'आउट्टी' आवृत्तिः 'वोद्धव्वा' वोद्धव्या ज्ञातव्या, इति करणगाथा द्वयस्यार्थः । आवृत्तिश्च युगे श्रावणमासे माघमासे च भवति ततः प्रथमा आवृत्तिः श्रावणे मासे, द्वितीया च माघमासे भवति तृतीया पुनः श्रावणमासे चतुर्थी माघमासे, भूयोऽपि पञ्चमी श्रावणमासे पष्ठी माघमासे, इति कृत्वा पञ्चवर्षात्मके युगे सूर्यस्य दश आवृत्तयो भवन्तीति । अत्र कोऽपि पृच्छेत् यत् प्रथमा किल सूर्यस्यावृत्तिः कस्यां तिथौ भवतीति,–तदा प्रथमवृत्तेः प्रश्नत्वादत्र एकोऽङ्कः स्थाप्यते, स च 'एगूणियाहिं' इति वचनात् रूपोनः क्रियते तदा पश्चात् न किमपि रूपं लभ्यते ततः पश्चात्य युगभाविनो या दशमी आवृत्तिस्तत्संख्यादशकरूपा गृह्यते, तेन दशकेन च 'गुणियं सयं तु तेसीयं' इतिवचनात् त्र्यशीत्यधिकं शतं (१८३) गुण्यते, जातानि त्रिंशदधिकानि अष्टादशशतानि (१८३०) ततः 'जेण गुणं तं तिगुणं' इति वचनात् दशकेन गुणितमिति ते दशत्रिगुणी क्रियन्ते जातास्त्रिंशत् (३०) ते 'रूवहियं' इति वचनात् रूपाधिकं कुर्यात् जाता एकत्रिंशत् (३१) ततः 'पक्खिवे तत्थ' इति वचनात् ते पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जातानि एक षष्ट्यधिकानि अष्टादशशतानि (१८६१) ततः 'पण्णरसभाइयम्मि' इति वचनात् पञ्चदशभिरेष राशिर्विभज्यते, हृते च भागे लब्धं चतुर्विंशत्यधिकं शतम् (१२४) तिष्ठति शेषमेकं रूपम्, तत आगतम्–चतुर्विंशत्यधिकपर्वशतात्मके पाश्चात्ये युगे व्यतिक्रान्तेऽभिनवे युगे प्रवर्त्तमाने प्रथमा आवृत्तिः प्रथमायां तिथौ प्रतिपदि भवतीति । एपा प्रथमा आवृत्तिः श्रावणमासभाविनी समायाता १।

अथ च द्वितीया माघमासभाविनी आवृत्तिः कस्यां तिथौ भवतीति प्रश्नेऽत्र द्विकं ध्रियते, तद्रूपोनं कृतमिति जातमेककम् तेन त्र्यशीत्यधिकं शतं गुण्यते जातं तदेव त्र्यशीत्यधिकं शतम् (१८३) । अत्र एकेन गुणितमिति एककं त्रिगुणं क्रियते जातं त्रिकम् तद्रूपाधिकं करणीयमिति जातं चतुष्कम् (४), तत् पूर्वराशौ त्र्यशीत्यधिकशतरूपे प्रक्षिप्यते, जातं सप्ताशीत्यधिकं शतम् (१८७) तस्य पञ्चदशभिर्भागे हृते लब्धा द्वादश (१२) तिष्ठन्ति शेषाः सप्त (७) तत आगतम्–युगे द्वादशसु पर्वसु गतेषु माघमासे बहुलपक्षे सप्तम्यां तिथौ द्वितीया माघमास भाविनीना च मध्ये प्रथमा आवृत्तिर्भवतीति २। एवं तृतीया आवृत्तिः श्रावणमास भाविनी कस्यां

तिथौ भवतीति प्रश्ने त्रिकं ध्रियते, तस्मिन् रूपोने कृते जातं द्विकम्, तेन त्र्यशीत्यधिकं शतं गुण्यते, जातानि षट्षष्ट्यधिकानि त्रीणि शतानि (३६६) अत्र द्विकेन त्र्यशीत्यधिकं शतं गुणित मिति द्विकं त्रिभिर्गुणनीयं जाताः षट्, ते रूपाधिकाः क्रियन्ते जाताः सप्त ते पूर्वराशौ प्रक्षिप्यन्ते, जातानि त्रिसप्तत्यधिकानि त्रीणि शतानि (३७३), एषां पञ्चदशभिर्भागे हृते लब्धा चतुर्विंशतिः (२४) शेषास्तिष्ठन्ति त्रयोदश । तत आगतम्—युगे तृतीया आवृत्तिः श्रावणमास भाविनीनां मध्ये तु द्वितीया चतुर्विंशति पर्वात्मके प्रथमे सवत्सरे व्यतिक्रान्ते श्रावणमासे बहुलपक्षे त्रयोदश्यां तिथौ भवतीति ३।एव मग्रेऽपि अन्यासु आवृत्तिषु करणवशाद् विवक्षितास्तिथय आनेतव्याः । ताश्चेमाः—युगे चतुर्थी माघमासभाविनीनां मध्ये तु द्वितीया माघमासे शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तिथौ भवति ४। पञ्चमी श्रावणमासभाविनीनां मध्ये तु तृतीया श्रावणमासे शुक्ल पक्षे दशम्यां तिथौ ५। षष्ठीमाघमासभाविनीनां मध्ये तु तृतीया माघमासे बहुलपक्षे प्रतिपदि ६। सप्तमी श्रावणमासभाविनीनां मध्ये तु चतुर्थीश्रावणमासे बहुलसप्तम्यां तिथौ ७, अष्टमी माघ-मासभाविनीनां मध्ये तु चतुर्थी माघमासे बहुलपक्षे त्रयोदश्यां तिथौ ८, नवमी श्रावणमास भाविनीनां मध्ये तु पञ्चमी श्रावणमासे शुक्लपक्षे चतुर्थ्यां तिथौ ९, दशमीचावृत्तिः श्रावणमास भाविनीनां मध्ये तु पञ्चमी माघमासे शुक्लपक्षे दशम्यां तिथौ भवतीति १०। एताश्चतुर्थीत आरभ्य दशमी पर्यन्ता आवृत्तयः संग्रहरूपे प्रदर्शिताः । अथैतेषां पञ्चानां श्रावणमास-भाविनीनां, पञ्चाना तु माघमासभाविनीनामावृत्तीनां तिथयश्चतसृभिर्गाथाभिः प्रदर्श्यन्ते—

"पढमा बहुलपडिवए १, बिइया बहुलस्स तेरसी दिवसे २,
सुद्धस्स य दसमीए ३, बहुलस्स य सत्तमीए ४ उ ॥१॥
सुद्धस्स चउत्थीए' पवत्तए पंचमी उ आउट्टी ५ ।
एया आउट्टीओ सव्वाओ सावणे मासे ॥२॥
बहुलस्स सत्तमीए १, पढमा सुद्धस्स तो चउत्थीए २,
बहुलस्स य पाडिवए३, बहुलस्स य तेरसीदिवसे ४ ॥३॥
सुद्धस्स य दसमीए, पवत्तए पंचमी उ.आउट्टी ५।
एया आउट्टीओ, सव्वाओ माहमासम्मि ॥४॥

छायाः—प्रथमा बहुलप्रतिपदि, द्वितीया बहुलस्य त्रयोदशी दिवसे २।
शुद्धस्य दशम्यां ३, बहुलस्य च सप्तम्यां तु ४ ॥१॥
शुद्धस्य चतुर्थ्यां ५, प्रवर्त्तते पञ्चमी तु आवृत्तिः ।
एता आवृत्तयः सर्वा श्रावणे मासे ॥२॥
बहुलस्य सप्तम्यां प्रथमा १, शुद्धस्य ततश्चतुर्थ्याम् २।
बहुलस्य च प्रतिपदि ३, बहुलस्य च त्रयोदशी दिवसे ४॥३॥

शुद्धस्य च दशम्यां, प्रवर्त्तते पञ्चमी तु आवृत्तिः ५ ।
एता आवृत्तयः, सर्वा माघमासे ॥४॥

पूर्वं सूर्यस्य दश आवृत्तयः प्रदर्शिताः, अथैतासु दशसु सूर्यावृत्तिषु प्रथमायां वार्षिक्यामावृत्तौ चन्द्रनक्षत्रयोगं प्रदर्शयन् सूत्रमाह–'ता एएसिणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसीणं' एतेषां खलु 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये 'पढमं वासिक्किं' प्रथमां वार्षिकीं वर्षाकाल सम्बन्धिनीं श्रावणमासभाविनीमित्यर्थः 'आउट्टिं' आवृत्तिं सूर्यावृत्तिं 'चंदे' चन्द्रः 'केण णवखत्तेणं' २ केन नक्षत्रेण सह स्थितः सन् 'जोएइ' युनक्ति प्रथमायां वार्षिक्यामावृत्तिं प्रवर्त्तयतीत्यर्थः । इति गौतमेन पृष्टे भगवानाह––'ता' तावत् 'अभिइणा' अभिजिता अभिजिन्नक्षत्रेण सह स्थितः सन् युनक्तीति भावः । तत्किं परिपूर्णे अभिजिति न्यूने वा योगं युनक्तीति विशिनष्टि–'अभिइस्स, इत्यादि 'अभिइस्स, अभिजिन्नक्षत्रस्य 'पढमसमएणं' प्रथमसमये 'णं' इति वाक्यालङ्कारे ।

एतत् कथमवसीयते ? इति चन्द्रनक्षत्रयोगपरिज्ञानार्थं वृद्धोक्ताः सप्त करणगाथाः प्रदर्श्यन्ते—

"पंचसया पडिपुण्णा, तिसत्तरा नियमसो मुहुत्ताणं ।
छत्तीस विसट्ठिभागा, छच्चेव य चुण्णिया भागा ॥१॥
आउट्टीहिं एगूणियाहिं गुणिओ हविज्ज धुवरासी ।
एयं मुहुत्तगणियं, एत्तो वोच्छामि सोहणगं ॥२॥
अभिइस्स नव मुहुत्ता, विसट्ठिभागा य होंति चउवीसं ।
छावट्ठीय समग्गा, भागा सत्तट्ठि छेयकया ॥३॥
उगुणट्ठं पोट्ठवया, तिसु चेव नवुत्तरेसु रोहिणिया ।
तिसु नवनउइएसु, भवे पुणव्वसूत्तरा फग्गू ॥४॥
पंचेव अउणपन्ना, समाइंउगुणत्तराइं छच्चेव
सोज्झाहि विसाहासु, मूले सत्तेव चोयाला ॥५॥
अट्ठसयमुगुणवीसा, सोहणगं उत्तरा असाढाणं ।
चउवीसं खलु भागा, छावट्ठी चुण्णीया भागा ॥६॥
एयाइं सोहइत्ता, जं सेसं तं हवेज्ज नक्खत्तं ।
चंदेण समाउत्तं, आउट्टीए उ वोद्धव्वं ॥७॥" इति ।

छाया — पंचशतानि परिपूर्णानि त्रिसप्ततानि नियमशो मुहूर्त्तानाम् ।
षट्त्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः, षडेव च चूर्णिका भागाः ॥१॥

[illegible] , सूर्यतो भवेत् ध्रुवराशिः ।
[illegible], [illegible] वक्ष्यामि शोधनकम् ॥२॥
[illegible] मुहूर्तानां, त्रिषष्टिभागाश्च भवन्ति चतुर्विंशतिः ।
[illegible] भागाः सप्तषष्टि छेदकृताः ॥३॥
[illegible] चवन्तरेषु रोहिणिका ।
[illegible] भवेत् पुनर्वसु उत्तरा फल्गु ॥४॥
[illegible] एकोनसप्ततानि पदेव ।
[illegible], मूले सर्वेषु चतुरन्वास्विज्ञानि ॥५॥
[illegible], शोधनकमुत्तराषाढानाम ।
[illegible] भागाः , षट्षष्टि स्चूर्णिका भागाः ॥६॥
[illegible], यत् शेषं तत् भवेत् नक्षत्रम् ।
[illegible], आवृत्तौ तु बोद्धव्यम् ॥७॥ इति ।

[illegible] 'पंचमया' इत्यादि । पंचमया पडिपुण्णा तिसनरा मुहुत्ताणं, त्रिसप्तत्युत्त [illegible] मुहूर्तानाम् [illegible] च 'छत्तीसविसट्ठिभागाः' षट्त्रिंशत् द्वाषष्टिभागाः [illegible] 'छच्चेवय चुण्णिगया भागा' षट् च चूर्णिका भागाः सप्तषष्टिभागाः

[illegible] $\frac{36}{62}\,|\,\frac{6}{67}$ [illegible] ध्रुवराशिर्भिधवते । अस्य ध्रुवराशेः कथमुत्पत्तिः ? इति प्रथमं ध्रुव-

[illegible] सूर्यायने [illegible] लभ्यन्ते तदा एकेन सूर्यायनेन [illegible] । अत्र गणितं स्थाप्यते, यथाहि—१०।६७।१। अत्रान्त्येन राशिना [illegible] तावानेव सप्तषष्टिः (६७), अस्य दशभिर्भागे हृते लब्धा

[illegible] (६।$\frac{7}{10}$) ततनमुहूर्तपरिमाणमस्यागमिगत

[illegible], षट्त्रिंशत् द्वाषष्टिभागाः षट् च सप्त षष्टिभागाः

[illegible] $\frac{36}{62}\,\frac{6}{67}$ [illegible] । इति स्पष्टार्थं त्रैराशिकगणितं प्रदर्श्यते—

[illegible], [illegible] सप्तषष्टिभागा लभ्यन्ते

[illegible] १।१२।३। $\frac{31}{67}$ ।३।) अत्रान्त्येन राशिना-

[illegible], पूर्वोक्तशिरस्करितनिसिमिः, मेन

पूर्वं सप्तविंशतिर्गुण्यतेऽन्त्यराशिना सप्तकेन, जातं नवाशीत्यधिकमेकं शतम् (१८९) तस्याद्येन राशिना दशकलक्षणेन भागो ह्रियते लब्धा अष्टादश दिवसाः एकस्य दिवसस्य त्रिंशन्मुहूर्त्ता भवन्तीति मुहूर्त्तानयनार्थं अष्टादशत्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि चत्वारिंशदधिकानि पञ्चशतानि (५४०) दशभिर्भागे हृते स्थिताः शेषा ये नव तेऽपि मुहूर्त्तकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जाते सप्तत्यधिके द्वे शते (२७०), ततो दशभिर्भागे हृते लब्धाः परिपूर्णाः सप्तविंशतिर्मुहूर्त्ताः (२७), एते पूर्वमागते चत्वारिंशदधिकपञ्चशतसंख्यके (५४०) मुहूर्त्तराशौ प्रक्षिप्यन्ते प्रक्षिप्ते च जातानि सप्तषष्ट्यधिकानि पञ्चशतानि (५६७)। एते मुहूर्त्ताः स्थाप्याः। ततो येऽपि च एकविंशतिः सप्तषष्टिभागा मध्यराशिगतास्तेऽपि मुहूर्त्तभागानयनार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि त्रिंशदधिकानि षट्शतानि (६३०) एतानि अन्त्यराशिना सप्तकेन गुण्यन्ते, जातानि दशोत्तराणि चतुश्चत्वारिंशच्छतानि (४४१०), एषामाद्यराशिना दशकेन भागो हरणीयः, हृते च भागे लब्धानि—एकचत्वारिंशदधिकानि चत्वारि शतानि (४४१), एते जाताः सप्तषष्टिभागा इति मुहूर्त्तानयनार्थं सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धाः षड्मुहूर्त्ताः ते पूर्वस्थापित मुहूर्त्तराशौ सप्तषष्ट्यधिक पञ्चशतरूपे (५६७) प्रक्षिप्यन्ते, जातानि सर्वसंख्यया त्रिसप्तत्यधिक पञ्चशतसंख्यका (५७३) मुहूर्त्ताः। तत एकचत्वारिंशदधिकचतुःशतानां सप्तषष्ट्या भागे हृते ये उद्धरिता एकोनचत्वारिंशत् (३९) तेऽपि द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते जातानि अष्टादशाधिकानि चतुर्विंशतिःशतानि (२४१८) एषामपि सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धाः षट्त्रिंशत् (३६) द्वाषष्टिभागाः, शेषास्तिष्ठन्ति षट्, तेज एकस्य द्वाषष्टिभागस्य सम्बन्धिनः सप्तषष्टिभागाः चूर्णिका भागा इत्यर्थः, एतेऽपि श्लक्ष्णरूपत्वेन चूर्णिकाभागा इति कथ्यन्ते। तत आगतम्, त्रि सप्तत्यधिकानि पञ्चशतानि मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट् त्रिंशद्द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट् सप्तषष्टिभागाः (५७३ $\frac{३६}{६२}$ | $\frac{६}{६७}$)।

एष ध्रुवराशिर्निष्पन्नः ॥ १ ॥

एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति र्द्वाष्टषिभागाः, एकस्य द्वाषष्टिभागस्य समग्राः परिपूर्णाः षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः (९–$\frac{२४}{६२}$ | $\frac{६६}{६७}$), एतत्परिमितमभिजिन्नक्षत्रस्य शोधनकं भवति।

एतस्य कथमुत्पत्तिः? इति चेदुच्यते—इहाभिजिन्नक्षत्रस्य अहोरात्रसम्बन्धिनः एकविंशति सप्तषष्टिभागान् यावत् चन्द्रेण सह योगो भवति, एकस्मिन्नहोरात्रे च त्रिंशन्मुहूर्त्ता भवन्तीति मुहूर्त्तभागानयनार्थमेकविंशति स्त्रिंशता गुण्यते, जातानि षट् शतानि त्रिंशदधिकानि (६३०) एषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धा नवमुहूर्त्ता (९) शेषाः स्थिताः सप्तविंशतिः, ते द्वाषष्टिभागकरणार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यन्ते जातानि चतुःसप्तत्यधिकानि षोडशशतानि (१६७४), एषां

सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा श्चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागाः ($\frac{२४}{६२}$) शेषास्तिष्ठन्ति षट्षष्टिः ते च एकस्य द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिभागाः ($\frac{६६}{६७}$) तत आगतं यथोक्तमभिजिन्नक्षत्रस्य शोधनक प्रमाणम् (९–$\frac{२४}{६२}$|$\frac{६६}{६७}$) इति तृतीयगाथार्थः ॥३॥

साम्प्रतं शेषनक्षत्राणां शोधनकानि प्रदर्श्यन्ते—**'उगुणट्ठं'** इत्यादि गाथात्रयेण । **'उगुणट्ठं'** एकोनषष्ठम् एकोनषष्ट्यधिकं शतं (१५९) **'पोट्ठवया'** प्रोष्ठपदा उत्तरभाद्रपदा एकोन षष्ट्य धिकं शतं मुहूर्त्तानामभिजित आरम्य उत्तरभाद्रपदा पर्यन्तानां नक्षत्राणां शोधनकमिति भावः । तथाहि—नवमुहूर्त्ता अभिजिन्नक्षत्रस्य ? त्रिंशन्मुहूर्त्ताः श्रवणस्य ३०, त्रिंशद् धनिष्ठायाः ३०, पञ्चदश शतभिषजः १५, त्रिंशत् पूर्वभाद्रपदायाः ३०, पञ्चचत्वारिंशद् उत्तरभाद्रपदायाः ४५, सर्वसंकलनया जातम्—एकोनषष्ट्यधिकं शतं (१५९) मुहूर्त्तानामभिजितः आरम्योत्तर-भाद्रपदा नक्षत्रपर्यन्तं शोधनकमिति । तथा **'तिसु चेव नवोत्तरेसु रोहिणिया'** त्रिपु चैव नवो-त्तरेषु शतेपु रोहिणिका रोहिणी पर्यन्तमित्यर्थः शुद्ध्यति, अयं भावः—त्रिभिः शतैर्नवोत्तरैः (३०९) रेवतीत आरम्य रोहिणी पर्यन्तानि नक्षत्राणि शोध्यन्ते—तथाहि—रेवत्यास्त्रिंशत् ३०, अश्विन्यास्त्रि-शत्३०,भरण्याः पञ्चदश१५,कृत्तिकायास्त्रिशत् ३०,रोहिण्याः पञ्चचत्वारिंशत् ४५। सर्वसंकलनया जातं पञ्चाशदधिकं शतम्(१५०), एषु पूर्वोक्तस्य एकोनषष्ट्यधिकशतस्य (१५९ समेलने भवन्ति नवोत्तराणि त्रीणि शतानि (३०९) अभिजित आरम्य रोहिणी पर्यन्तानां नक्षत्राणां शोधनका-नीति । ततः **'तिसु नवनउइसु भवे पुणव्वसू'** त्रिपु नवनवत्यधिकेपु शतेपु (३९९) पुनर्वसुः पुनर्वसु पर्यन्त मित्यर्थः । अत्रायं भावः–रोहिण्या अनन्तरं प्राप्तस्य मृगशिरस–स्त्रिंशत् ३०, आर्द्रायाः पञ्चदश १५, पुनर्वसोः पञ्चचत्वारिंशत् ४५, जाता सर्वसकलनया नवतिः (९०) एषा संख्या पूर्वोक्तसंख्यायां नवोत्तर त्रिशतरूपायां संमेल्यते, जायन्ते नव नवत्यधिकानि त्रीणि शतानि (३९९), एतानि अभिजित आरम्य पुनर्वसु पर्यन्तानां नक्षत्राणां शोधनकानि जातानि । ततः **'उत्तराफग्गू–पंचेव अउणपन्ना'** उत्तराफाल्गुनी पञ्चैव एकोनपञ्चाशानि शतानि, एकोन पञ्चाशदधिकानि पञ्चशतानि (५४९) पुण्यत आरम्य उत्तराफाल्गुनी पर्यन्तानां नक्षत्राणां शोधनकानि, अयं भावः-पुष्यस्य त्रिंशत् ३०, अश्लेषायाः पञ्चदश १५, मघायास्त्रिंशत् ३०, पूर्वाफाल्गुन्यास्त्रिंशत् ३०, उत्तराफाल्गुन्याः पञ्च चत्वारिंशत् ४५ । जातं सर्वसंकलनया पञ्चाशदधिकं शतम् (१५०), एतत् पुण्यत आरम्योत्तराफाल्गुनीपर्यन्तानां नक्षत्राणां शोधन-कम् । एषा संख्या पूर्वसंख्यायां नवनवत्यधिकत्रिशतरूपायां (३९९) संमेल्यते, जायन्ते एकोन पञ्चाशदधिकानि पञ्चशतानि मुहूर्त्तानामभिजित आरम्य उत्तराफाल्गुनी पर्यन्तानां नक्षत्राणां

शोधनकानि (५४९)। ततः **'समाइं उगुणुत्तराइं छच्चेवय सोज्झाहि विसाहासु'** समानि समग्राणि एकोनसप्तत्याधिकानि षट्शतानि विशाखासु विशाखापर्यन्तेषु नक्षत्रेषु शोधय, हस्तनक्षत्रादारभ्य विशाखा पर्यन्तानां नक्षत्राणां शोधनकसंमेलनेन–एकोनसप्तत्यधिकानि षट्शतानि (६६९) शोधनकानि भवन्ति। तथाहि–हस्तस्य त्रिंशत् ३०, चित्रायास्त्रिंशत् ३०, स्वातेः पञ्चदश १५ विशाखाया पञ्चचत्वारिंशत् ४५, सर्वसकलनया जातं विंशत्यधिकं शतम् (१२०) एतत् पूर्वोक्तसंख्यायामेकोनपञ्चाशदधिकपञ्चशतरूपायां (५४९) प्रक्षिप्यते तत आयान्ति शोधनकानि यथोक्तानि–एकोनसप्तत्यधिकानि षट्शतानि (६६९) ततः **'मूले सत्तेव चोयाला'** मूले मूलनक्षत्रे मूलनक्षत्रपर्यन्तमित्यर्थः चतुश्चत्वारिंशदधिकानि सप्तशतानि (७४४)। अयं भावः–विशाखाया अनन्तरमनुराधेति', अनुराधाया स्त्रिंशत् ३०, ज्येष्ठाया' पञ्चदश १५, मूलस्य त्रिंशत् ३०, जाता पञ्चसप्ततिः ७५, अस्याः पूर्वराशौ एकोनसप्तत्यधिकषट्शतरूपे (६६९) संमेलनेन भवन्ति यथोक्तानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि सप्तशतानि (७४४) अभिजित आरभ्य मूलनक्षत्रपर्यन्तानां नक्षत्राणां शोधनकानीति। **'सोहणगं उत्तरा आसाढाणं'** उत्तराषाढानाम् उत्तराषाढापर्यन्ताना नक्षत्राणां शोधनकम्, तथाहि—**'अट्ठसयमुगुणवीसा'** अष्टौशतानि एकोनविंशत्यधिकानि (८१९) इति। अयं भावः मूलनक्षत्रादनन्तरं पूर्वाषाढेति पूर्वाषाढानक्षत्रस्य त्रिंशत् ३० उत्तराषाढानक्षत्रस्य पञ्चचत्वारिंशत् ४५ इति जाता पञ्चसप्ततिः ७५, एष राशि. ७५ अभिजित आरभ्य मूलपर्यन्तशोधनकेषु चतुश्चत्वारिंशदधिक सप्तशतरूपेषु (७४४) समेल्यते, जायन्ते यथोक्तानि–एकोनविंशत्यधिकानि अष्टशतानि (८१९) एतानि शोधनकानि अभिजित आरभ्य उत्तराषाढा पर्यन्तानां नक्षत्राणामिति। तत एतेषां सर्वेषामपि शोधनकानामुपरि अभिजिन्नक्षत्रस्य नवमुहूर्त्तोपरि ये भागास्तान् दर्शयति **'चउवीसं'** इत्यादि, **चउवीसं खलु भागा–छावट्ठी चुण्णिया भागा'** चतुर्विंशतिः खलु भागाः। द्वाषष्टिभागाः, षट्षष्टिश्चूर्णिकाभागाः सप्तषष्टिभागाः ($\frac{२४}{६२} \Big| \frac{६६}{६७}$), एते अभिजित्सम्बन्धिनो भागाः पूर्वोक्तसर्वसंख्योपरि विज्ञेया इति। तत आगतम्—अभिजित आरभ्य उत्तराषाढापर्यन्तस्य अष्टाविंशति नक्षत्रगर्भितस्य परिपूर्णनक्षत्रपर्यायस्य एकोनविंशत्यधिकानि अष्टशतानि मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिर्द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टि भागाः (८१९ $\frac{२४}{६२} \Big| \frac{६६}{६७}$) एतावत्परिमिताः सर्वे मुहूर्त्ता भवन्ति, एते शोधनकानीत्युच्यते। इति षष्ठगाथार्थः ॥ ६ ॥ ततः किम् ? इत्याह–**'एयाइं'** इत्यादि, **'एयाइं'** एतानि पूर्वप्रदर्शितानि

शोधनकानि यथासंभवं **'सोहइत्ता'** शोधयित्वा तदनन्तरं **'जं सेसं'** यत् शेषमुद्धरति **'तं नक्खत्तं हवेज्ज आउट्टीए समाउत्तं'** तन्नक्षत्रं भवेत् विवक्षितायामावृत्तौ तु चन्द्रेण समायुक्तं भवति तदा विवक्षितावृत्तौ तेन नक्षत्रेण सह चन्द्रो योगं युनक्तीति **'बोद्धव्वं'** बोद्धव्यं ज्ञातव्यं गणितज्ञैरिति गाथासप्तकार्थः ॥ ७ ॥

अथ भावना क्रियते—कोऽपि पृच्छेत्-प्रथमायामावृत्तौ प्रथमतः प्रवर्त्तमानाया चन्द्रः केन-नक्षत्रेण सह योगं युनक्ति ? इति जिज्ञासायामत्र प्रथमावृत्तिविषयकः प्रश्न इति एकको ध्रियते, स रूपोनः क्रियते, एकस्मिन् रूपे एकोने कृते न किमपि रूपं पश्चादवतिष्ठते, ततः पाश्चात्य युगभाविनीनामावृत्तीनां मध्ये या चरमा दशमी आवृत्तिस्तत्संख्या दशकरूपाऽत्र ध्रियते, एतेन दशकेन प्राचीनः समग्रोऽपि ध्रुवराशिः **'पंचसया पडिपुण्णा'** इत्यादि प्रथमगाथोक्तः—त्रिसप्तत्यधिकानि पञ्चशतानि (५७३) मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्त्रिंशत् (३६) द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट् (६) सप्तषष्टिभागाः चूर्णिका भागाः (५७३ $\frac{३६}{६२}\Big|\frac{६}{६७}$) एतावत्परिमितो गुण्यते, तत्र पूर्वं मुहूर्त्तराशिर्दशकेन गुण्यते, जातानि त्रिंशदधिकानि सप्तपञ्चाशच्छतानि (५७३०), तत्पश्चात् ये षट्त्रिंशद् द्वाषष्टि भागास्तेऽपि दशकेन गुण्यते, जातानि षष्ट्यधिकानि त्रीणी शतानि (३६०), एषां मुहूर्त्तकरणार्थं द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा पञ्च मुहूर्त्ताः (५) एते पूर्वस्थिते मुहूर्त्तराशौ (५७३०) प्रक्षिप्यन्ते, जातः पूर्वराशिः पञ्चत्रिंशदधिकसप्तपञ्चाशच्छतसंख्यकः (५७३५), भागे हृते तिष्ठन्ति पञ्चाशद् द्वाषष्टि भागाः (५०) तदन्तरं ये षट् चूर्णिका भागा आसन् तेऽपि दशकेन गुणिता जाता षष्टिः, एते चूर्णिका भागाः सन्ति, अङ्कतः (५७३५ $\frac{५०}{६२}\Big|\frac{६०}{६७}$) इति । एतस्माद्राशे शोधनकानि शोध्यन्ते, तत्राभिजित आरभ्योत्तराषाढा पर्यन्तानामष्टाविंशतेर्नक्षत्राणां शोधनकम्—एकोनविंशत्यधिकानि अष्टौ शतानि (८१९), एतानि किल यथोक्तराशौ सप्तकृत्वः शुद्धिं प्राप्नुवन्तीति सप्तभिर्गुण्यन्ते, जातानि—त्रयस्त्रिंशदधिकानि सप्त पञ्चाशच्छतानि (५७३३), तानि पञ्चत्रिंशदधिकेभ्यः सप्तपञ्चाशच्छतेभ्यः शोध्यन्ते. स्थितौ पश्चात् द्वौ मुहूर्त्तौ, तौ द्वापष्टि भागानयनार्थं द्वापष्ट्या गुण्येते, जातं चतुर्विंशत्यधिकमेक शतम् (१२४) एते द्वापष्टिभागाः सन्ति, एते प्राक्तने पञ्चाशति द्वाषष्टि भागराशौ प्रक्षिप्यन्ते जातं चतुः सप्तत्यधिकं शतम् (१७४) द्वापष्टि भागानाम् । तथा ततो येऽभिजित्सम्बन्धिनश्चतुर्विंशतिर्द्वापष्टिभागा. शोध्या. सन्ति तेऽपि 'सप्तकृत्वः शुद्धिमाप्नुवन्ति इति न्यायात् सप्तभिर्गुण्यन्ते जातमष्टषष्ट्यधिकं शतम् (१६८) एतत् चतु सप्तत्यधिकात् शतात् (१७४) शोध्यते, स्थिता षट् द्वापष्टि भागाः, ते चूर्णिका भागानयनार्थं सप्तषष्ट्या गुण्यन्ते जातानि द्व्यधि-

कानि चत्वारिंशतानि (४०२), ततो ये प्राक्तनाः षष्टिः सप्तषष्टि भागास्तेऽत्र प्रक्षिप्यन्ते, जातानि द्वाषष्टयधिकानि चत्वारिंशतानि (४६२) ततो येऽभिजितः सम्बन्धिनः षट् षष्टिश्चूर्णिका भागा शोध्याः सन्ति तेऽपि पूर्वोक्तन्यायेन सप्तभिर्गुणयित्वा शोध्या भवन्तीति सप्तभिर्गुण्यन्ते, जातानि द्वाषष्ट्यधिकानि चत्वारिंशतानि (४६२) एतानि अनन्तरोदितराशेर्द्वाषष्टयधिक चतुःशत (४६२) रूपात् शोध्यन्ते, द्वयोः राश्योः समानत्वान्न किञ्चिदवशिष्यते, स्थितं पश्चात् शून्यम्, तत आगतम्---उत्तराषाढानक्षत्रे परिपूर्णे चन्द्रेण भुक्ते सति तदनन्तरं युगेऽभिजितो नक्षत्रस्य प्रथम समये प्रथमा आवृत्तिः प्रवर्त्तते, अत एवोक्तं सूत्रकारेण **'अभिइस्स ' ढमसमएणं'** इति ।

अथ चन्द्रनक्षत्रयोगसमये सूर्यनक्षत्रयोगं प्रदर्शयति—**'तं समयं च णं'** इत्यादि । **'तं समयं च णं'** तस्मिन् समये चन्द्रयोगसमये च खलु **'सूरिए'** सूर्यः **'केणं नक्खत्तेणं जोएइ'** केन नक्षत्रेण युनक्ति योगं करोति ? केन नक्षत्रेन सह योगयुक्तो भूत्वा युगस्य प्रथमामावृत्तिं प्रवर्तयतीति प्रश्नः । भगवानाह—**'ता पूसेणं'** तावत् पुष्येण पुष्यनक्षत्रेण सह योगमुपागतः सन् सूर्य. प्रथमामावृत्ति प्रवर्तयतीति सामान्येन प्रोक्तम्, अथ विशेष माह—**'पूसस्स'** इत्यादि, **'पूसस्स'** पुष्यस्य पुष्यनक्षत्रस्य **'एगूणवीसं मुहुत्ता'** एकोनविंशति मुहूर्त्ताः **'तेत्तालीसं च बावट्ठीभागा'** त्रिचत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा **'मुहुत्तस्स'** एकस्य मुहूर्त्तस्य, तथा **'बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता'** द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा-- विभज्य तत्सम्बन्धिनः **'तेत्तीसं चुण्णिया भागा'** त्रयस्त्रिंशत् चूर्णिकाभागाः सप्तषष्टिभागा इत्यर्थः ($१९-\frac{४३}{६२}\Big|\frac{३३}{६७}$) एतावन्तो भागाः पुष्यष्य **'सेसा'** इति शेषा अवशिष्टास्तिष्ठेयुस्तदा, तथा पुष्यस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात्--दशमुहूर्त्ताः अष्टदश द्वाषष्टिभागाः, चतुस्त्रिंशच्च सप्तषष्टिभागाः ($१०-\frac{१८}{६२}\Big|\frac{३४}{६७}$) अतिक्रान्ता भवेयुस्तदा सूर्यो युगे प्रथमा मावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति भावः ।

एतन्मुहूर्त्तादिकं कथं ज्ञायते ! इति तद् गणितेन प्रदर्श्यते— अत्रापि त्रैराशिकं कर्त्तव्यम्, तथाहि—यदि दशभिः सूर्यायनैः सूर्यकृता पञ्च नक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते तदा एकेनायनेन कति सूर्यकृतनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते ? राशित्रयस्थापना—१०।५।२। अत्रान्त्येन राशिना एकक-रूपेण मध्यराशिः पञ्चकरूपो गुण्यते जातास्त एवेति पञ्चैव, तेषामाद्यराशिना दशकरूपेण भागो ह्रियते लब्धमर्द्धं नक्षत्रपर्यायस्य । तत्र परिपूर्णो नक्षत्रपर्यायस्त्रिंशदधिकाष्टादश शत (१८३०) सप्तषष्टिभागरूपो भवतीति तदर्धं पञ्चदशाधिक नवशत रूपः (९१५) पूर्वोक्तानां (१८३०) सप्तषष्टिभागानामर्द्धः सप्तषष्टिभागरूपो नक्षत्रपर्यायो भवति । तत्कथमिति प्रथमं त्रिंशदधिकाष्टादशशतरूपः परिपूर्णः सप्तषष्टिभागरूपो नक्षत्रपर्यायः प्रदर्श्यते—षड् नक्षत्राणि

शतभिषक् प्रभृतीनि अर्द्धक्षेत्राणि ततस्तेषां मध्ये एकैकस्य नक्षत्रस्य सार्द्धास्त्रयस्त्रिंशत् त्रयस्त्रिंशत् (३३॥) सप्तषष्टिभागा भवन्ति सप्तषष्टेरर्धकरणात्, ततस्ते सार्द्धास्त्रयस्त्रिंशत् (३३॥) भागाः षड्भिर्गुण्यन्ते जाते एकोत्तरे द्वे शते (२०१)। षड् नक्षत्राणि उत्तरभाद्रपदादीनि द्व्यर्ध क्षेत्राणि, तानीमानि—उत्तरभाद्रपदा १, रोहिणी २, पुनर्वसुः, ३, उत्तरफाल्गुनी ४, विशाखा ५, उत्तराषाढा ६, एतानि षड्नक्षत्राणि पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वाद् द्व्यर्धक्षेत्राणीति । ततस्तेषां मध्ये प्रत्येकस्य च सप्तषष्टिभागस्यार्द्धम् (१००॥) सप्तषष्टे द्व्यर्धेन (१॥) गुणनात्, एतत् षड्भिर्गुण्यते, जातानि त्र्युत्तराणि षट् शतानि (६०३)। शेषाणि एतद्व्यतिरिक्तानि पञ्चदश नक्षत्राणि श्रवणादीनि त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् समक्षेत्राणि, तेषां प्रत्येकस्य सप्तषष्टिभागा एव, ततः सप्तषष्टिः पञ्चदशभिर्गुण्यते, जातं पञ्चोत्तरं सहस्रम् (१००५) ततोऽभिजित एकविंशतिः (२१) सप्तषष्टिभागाः, एतेषां सर्वेषाम्–(२०१=६०३=१००५=२१) मीलने भवन्ति सप्तषष्टि भागानाम्—त्रिंशदधिकानि अष्टादश शतानि (१८३०)। एष परिपूर्णः सप्तषष्टि भागात्मको नक्षत्रपर्यायः एतस्यार्धे कृते भवन्ति यथोक्तानि पञ्चदशोत्तराणि नवशतानि (९१५)। एभ्योऽभिजित सम्बन्धिनी एकविंशतिः शोध्यते, तिष्ठन्ति शेषाणि—अष्टौशतानि चतुर्नवत्यधिकानि (८९४)। एषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धास्त्रयोदश (१३), शेषास्तिष्ठन्ति त्रयोविंशतिर्भागाः (२३) त्रयोदशभिश्च पुनर्वसु पर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि, ये च त्रयोविंशति भागाः शेषीभूतास्तिष्ठन्ति ते मुहूर्त्तकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि नवत्यधिकानि षट् शतानि (६९०), तेषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धाः दश मूहूर्त्ताः (१०), शेषातिष्टन्ति विंशतिः, सा द्वाषष्टि भागकरणार्थं द्वाषष्ट्या गुण्यते जातानि चत्वारिंशदधिकानि द्वादशशतानि (१२४०), एषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा अष्टादश द्वाषष्टि भागाः, शेषास्तिष्ठन्ति चतुस्त्रिंशत् ते च एकस्य द्वाषष्टिभागस्य चतुस्त्रिंशत् सप्तषष्टिभागाः, तत आगतम्—पुष्यस्य दशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टादशसु द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य चतुस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु ($१० \frac{१८}{६२} \Big| \frac{३४}{६७}$) गतेषु, तथा पुष्यस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात्—एकोनविंशतौ मुहूर्त्तेषु एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशति सप्तषष्टिभागेषु ($१९ \frac{४३}{६२} \Big| \frac{३३}{६७}$) सूत्रोक्तेषु शेषेषु प्रथमा श्रावणमासभाविनी सूर्यावृत्तिः प्रवर्त्तते, इति ।

अथ द्वितीया श्रावणमासभाविनीमावृत्ति प्रदर्शयति—'ता एएसि णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां प्रसिद्धानां 'पंचण्ह' पञ्चानां 'संवच्छराणं' चान्द्रादिसंवत्सराणां मध्ये 'दोच्चं' द्वितीयां 'वासिक्किं' वार्षिकीं वर्षाकालभाविनीम् 'आउट्टिं' आवृत्ति सूर्यावृत्ति

'चंदे' चन्द्रः 'केणं णक्खत्तेणं' केन नक्षत्रेण सह योगमुपागतः सन् 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति प्रवर्त्तयतीत्यर्थः । भगवानाह—'संठाणाहिं' संस्थानाभिः, संस्थानशब्देनात्र मृगशिरानक्षत्रं गृह्यते प्रवचने तथा प्रसिद्धत्वात्, बहुवचनं च त्रितारकत्वात्, ततो मृगशिरसा मृगशिरो नक्षत्रेण सह योगमुपागतश्चन्द्रो द्वितीयामावृत्तिं प्रवर्त्तयति । मृगशिरसः कियत्पर्यामितेषु मुहूर्त्तादिषु शेषेषु गतेषु वेति प्रश्ने प्राह—'संठाणाणं' इत्यादि, संस्थानानां मृगशिरो नक्षत्रस्य 'एक्कारस मुहुत्ता' एकादशमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य 'ऊणतालीसं च बावट्ठिभागा' एकोनचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः, एकं 'बावट्ठिभागं च' द्वाषष्टिभागं च, 'सत्तट्ठिहा छेत्ता' सप्तषष्टिधा छित्वा विभज्य एकस्य द्वाषष्टिभागस्य सप्तषष्टिभागान् कृत्वा तद्गताः 'तेवण्णं चुण्णिया भागा' त्रिपञ्चाशत् चूर्णिका भागा इति । सप्तषष्टिभागाः (११ $\frac{३९}{६२}$ | $\frac{५३}{६७}$) यदा 'सेसा' शेषा अवशिष्टा मृगशिरो नक्षत्रस्य भवेयुस्तदा, तथा अस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् अष्टादश मुहूर्त्ताः एकस्य मुहूर्त्तस्य द्वाविंशतिश्च द्वाषष्टि भागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्दश सप्तषष्टि भागाः (१८ $\frac{२२}{६२}$ | $\frac{१४}{६७}$) अतिक्रान्ता भवेयुस्तदा चन्द्रो द्वितीयां वार्षिकीमावृत्तिं प्रवर्तयतीति । तत्कथमवसीयते ? गणितबलात्, इति गणितं प्रदर्श्यते—

इह या द्वितीया श्रावणमासभाविनी आवृत्तिरस्ति सा पूर्वप्रदर्शितक्रमापेक्षया तृतीया भवति ततस्तत्स्थाने त्रिकं स्थाप्यते, तद्रूपोनं क्रियते, जातं द्विकं, तेन प्राक्तनो ध्रुवराशिः षट्त्रिंशत्सख्यकद्वाषष्टिभाग—षट् सख्यकसप्तषष्टिभागयुक्तः त्रिसप्तत्यधिक पञ्चशतरूपः (५७३ | $\frac{३६}{६२}$ | $\frac{६}{६७}$) गुण्यते, जातानि—एकादश शतानि षट् चत्वारिंशदधिकानि मुहूर्त्तानाम्, एकस्य मुहूर्त्तस्य च द्वासप्ततिर्द्वाषष्टि भागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वादश सप्तषष्टिभागा (११४६ $\frac{७२}{६२}$ | $\frac{१२}{६७}$) तत एतेभ्य एकोनविंशत्यधिकाष्टशतसख्यका मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वाषष्टि भागाः एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः, (८१९ $\frac{२४}{६२}$ | $\frac{६६}{६७}$) परिपूर्णनक्षत्रपर्यायस्य शोध्यन्ते, स्थितानि पश्चात्—सप्तविंशत्यधिकानि त्रीणि शतानि मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः (३२७ $\frac{४७}{६२}$ | $\frac{१३}{६७}$) तत एतेभ्यः 'तिसुचेव नवुत्तरेसु-

रोहिणिया' इति चतुर्थकरणगाथावचनात् नवोत्तराणि त्रीणि मुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागा (३०९ $\frac{२४}{६२}$|$\frac{६६}{६७}$) अभिजित आरभ्य रोहिणी पर्यन्ताना नक्षत्राणां शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चात् अष्टादश मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्वाविंशति द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्दशसप्तषष्टिभागा (१८ $\frac{२२}{६२}$|$\frac{१४}{६७}$)। एतावता मृगशिरो न शुद्धयति, तत एतावन्तो मुहूर्त्तादिका मृगशिरो नक्षत्रस्यातिक्रान्तास्ततो मृगशिरो नक्षत्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् तस्य एकादशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिपञ्चाशति सप्तषष्टि भागेषु (११ $\frac{३९}{६२}$|$\frac{५३}{६७}$) सूत्रोक्तेषु शेषेषु द्वितीयां श्रावणमासभाविनीमावृत्तिं चन्द्रः प्रवर्त्तयतीति २।

साम्प्रतं चन्द्रनक्षत्रयोगसमयभाविनं सूर्यनक्षत्रयोगमाह–**'तं समयं च णं'** इत्यादि; **'तं समयं च णं'** तस्मिन् समये चन्द्रनक्षत्रयोगकाले च खलु **'सूरिए'** सूर्यः **'केणं णक्खत्तेणं'** केन नक्षत्रेण सहगतः सन् द्वितीयां श्रावणमासभाविनीमावृत्ति **'जोएइ'** युनक्ति प्रवर्त्तयतीत्यर्थ। भगवानाह—**'ता पूसेणं'** इत्यादि **'ता पूसेणं'** तावत् पुष्येण पुष्यनक्षत्रेण सहगतो भूत्वा द्वितीया श्राविणीमावृत्ति प्रवर्त्तयति। तत्र–विशेषमाह–**'पूसस्स णं'** इत्यादि, **'पूसस्स णं'** पुष्यस्य खलु **'तं चेव जं पढमाए'** तदेव यत् प्रथमायाम्, अत्र तदेव वक्तव्यं यत्प्रथमायां श्रावणमासभाविन्यामावृत्तौ प्रोक्तम् तथाहि—पुष्यस्य एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ता, एकस्य च-मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशत् चूर्णिका भागाः (१९ $\frac{४३}{६२}$|$\frac{३३}{६७}$) शेषा अवतिष्ठेयुस्तदा सूर्यो द्वितीयां श्राविणीमावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति भावः।

इह सूर्यस्य दशभिरयनैः पञ्च सूर्यनक्षत्रपर्याया लभ्यन्ते, द्वाभ्यामयनाभ्यां चैको नक्षत्रपर्यायो लभ्यते, तत्र सूर्य उत्तरायण कुर्वन् सर्वदैव अभिजिन्नक्षत्रेण सहगतो भूत्वा योगमुपागच्छति दक्षिणायनं कुर्वश्च पुष्येण सहगतः सन् युनक्ति उक्तञ्च—

अब्भिंतराहि निंतो, आइच्चो पुस्सजोगमुवगयस्स ।
सव्वा आउट्टीओ, करेइ सो सावणे मासे ॥१॥

छाया—आभ्यन्तराभ्यः (आवृत्तिभ्यः) नयन् बाह्या आवृत्तीः प्राप्नुवन् आदित्यः पुष्ययोगमुपगतः।

सर्वा आवृत्तीः करोति तस्य (युगस्य) श्रावणे मासे ॥१॥ इति
अत एव सूत्रकारेण **'पुस्सेणं'** इत्याद्युक्तम् २ ।

अथ तृतीयां श्रावणमासभाविनीमावृत्तिं प्रदर्शयति—**'ता एएसि णं'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **'एएसि णं'** एतेषां खलु **'पंचण्हं संवच्छराणं'** पञ्चानां सवत्सराणां मध्ये **'तच्चं'** तृतीयां **'वासिक्किं'** वार्षिकीं वर्षाकालभाविनीं श्रावणमासभाविनी मित्यर्थः **'आउट्टिं'** आवृत्तिं **'चंदे'** चन्द्रः **'केणं नक्खत्तेणं'** केन नक्षत्रेण सह योगमुपागतः सन **'जोएइ'** युनक्ति प्रवर्त्तयति ? भगवानाह—**'ता विसाहाहिं'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **'विसाहाहिं'** विशाखाभिः पञ्चतारकत्वाद् बहुवचनम्, विशाखा नक्षत्रेण सह योगं कृत्वा चन्द्रस्तृतीयां श्राविणीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति । विशाखानक्षत्रस्य मुहूर्त्तादिकमाह—**'विसाहाणं'** इत्यादि, **'विसाहाणं'** विशाखानां विशाखानक्षत्रस्य **'तेरसमुहुत्ता'** त्रयोदश मुहूर्त्ताः, **'चउप्पण्णं च बावट्ठिभागा'** चतुष्पञ्चाशच्च द्वाषष्टिभागा **'मुहुत्तस्स** एकस्य मुहूर्त्तस्य, तथा **'बावट्ठिभागं च'** द्वाषष्टिभागं च मुहूर्त्तस्य **'सत्तट्ठिहा छित्ता** सप्तषष्टिधा छित्त्वा विभज्य एकस्य द्वाषष्टिभागस्य, सप्तषष्टिभागान् कृत्वा तेभ्यः **'चत्तालीसं चुण्णिया भागा'** चत्वारिंशत् चूर्णिकाः अतिश्लक्ष्णत्वेन चूर्णिका इव चूर्णिका भागाः सप्तषष्टि भागाः (१३ $\frac{५४}{६२}$ | $\frac{४०}{६७}$) यदि **'सेसा'** शेषा अवशिष्टा भवेयुस्तदा, तथा अस्य पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् एक त्रिंशन्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तद्वाषष्टि भागाः, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागाः (३१—७—२७) यदा अतिक्रान्ता भवेयुस्तत्समये चन्द्रस्तृतीयामावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति । तदेव प्रदर्श्यते इयं तृतीया आवृत्तिः पूर्वप्रदर्शितक्रमापेक्षया पञ्चमी भवति ततस्तत्स्थाने पञ्चकं ध्रियते तद् रूपोनं क्रियते जातं चतुष्कम्, तेन प्राक्तनो ध्रुवराशिः (५७३ $\frac{३६}{६२}$ | $\frac{६}{६७}$) गुण्यते, जातानि द्विनवत्यधिकानि द्वाविंशतिः शतानि मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुश्चत्वारिंशदधिकं शतं द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुर्विंशति सप्तषष्टिभागाः (२२९२ | $\frac{१४४}{६२}$ | $\frac{२४}{६७}$) तत एतेभ्यः अष्टात्रिंशदधिकानि षोडश मुहूर्त्तशतानि एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वात्रिंशदधिकं शतं सप्तषष्टिभागाः (१६३८ | $\frac{४८}{६२}$ | $\frac{१३२}{६७}$) परिपूर्णनक्षत्रपर्यायद्वयस्य शोध्यन्ते, स्थितानि पश्चात् चतुष्पञ्चाशदधिकानि षड् मुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्नवतिद्वाषष्टिभागाः,

एकस्य च द्वापष्टिभागस्य षड्विंशति सप्तषष्टिभागाः (६५४|१४/६२|२६/६७), तत एभ्य एकोन पञ्चाशदधिकानि पञ्चमुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य विंशतिर्द्वापष्टि भागाः, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य पट्षष्टिः सप्तषष्टि भागा (५४९|२०/६२|६६/६७) अभिजित आरभ्य उत्तरफाल्गुनी पर्यन्तानां नक्षत्राणां शोध्यन्ते, स्थितं पश्चात् पञ्चोत्तरं मुहूर्त्तशतं, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोन सप्तति द्वाषष्टि भागाः, एकस्य च द्वापष्टिभागस्य सप्तविंशति. सप्तषष्टिभागाः (१०५|६९/६२|२७/६७ अत्र स्थितेभ्य एकोनषष्टि द्वापष्टिभागेभ्यो द्वाषष्ट्या द्वाषष्टिभागैरेको मुहूर्त्तो लभ्यते, स च पूर्व-स्थिते पञ्चोत्तरशतरूपे मुहूर्त्तराशौ प्रक्षिप्यते, जातः स मुहूर्त्तराशिः षडुत्तरं शतम्, स्थिता पश्चात् सप्तद्वापष्टिभागाः, तेन जात एष राशिः षडुत्तर मुहूर्त्तशतम् एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तद्वाषष्टि भागा., एकस्य च द्वापष्टिभागस्य सप्तविंशतिः सप्तषष्टिभागाः (१०६|७/६२|२७/६७)। तत एतेभ्यो मुहूर्त्तेभ्यः पञ्चसप्ततिर्मुहूर्त्ताः (७५) हस्तादि स्वातिपर्यन्तानां त्रयाणा नक्षत्राणां शोध्या., स्थिताः शेषा एकत्रिंशन्मुहूर्त्ताः, सप्त द्वापष्टिभागाः सप्तविंशति. सप्तषष्टिभागाः (३१|७/६२|२७/६७), एतेषु मुहूर्त्तादिषु विशाखानक्षत्रस्यातिक्रान्तेषु ततो विशाखा नक्षत्रस्य पञ्चचत्वारिं-शन्मुहूर्त्तात्मकत्वात्तस्य त्रयोदशसु मुहूर्त्तेषु, चतुष्पञ्चाशतिद्वापष्टिभागेषु चत्वारिंशति सप्तषष्टि भागेषु (१३।५४।४०) शेषेषु चन्द्रस्तृतीयां श्राविणीमावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति ३।

साम्प्रतं तत्समयगत सूर्यनक्षत्रयोगं प्रदर्शयति **'तं समयं च णं'** इत्यादि, **'तं समयं च णं'** तस्मिन् समये चन्द्रनक्षत्रयोगकाले च खलु **'सूरिए'** सूर्यः **'केणं नक्खत्तेणं'** केन नक्षत्रेण सह गतः सन् **'जोएइ'** युनक्ति तृतीयां श्राविणीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति ? भगवानाह **'ता पूसेणं'** इत्यादि **'ता'** तावत् **'पूसेणं'** पुष्येण सहगतः सन् तृतीयां श्रावणीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति तस्य मुहूर्त्तादिकमाह—**'पूसस्स'** पुष्यस्य **'तं चेव'** तदेव प्रथमावृत्तिप्रदर्शितवदेव मुहूर्त्तादिकं विज्ञेयम्, तथाहि—पुष्यस्य एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः, त्रिचत्वारिंशद् द्वापष्टिभागाः, त्रयस्त्रिंशत् सप्तषष्टि भागाः (१९|४३/६२|३३/६७) शेषास्तिष्ठेयुस्तदा सूर्यः पुष्येण सहगतो भूत्वा तृतीया श्राविणीमावृत्तिं प्रवर्त्तय-तीति भावः ।

अथ चतुर्थीमावृत्तिं प्रदर्शयति—'ता एएसिणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसिणं' एतेषां खलु 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये 'चउत्थिं' चतुर्थी 'वासिक्किं' वार्षिकीं वर्षाकालभाविनीं श्रावणमासभाविनीमित्यर्थः 'आउट्टिं' आवृत्तिं 'चंदे' चन्द्रः 'केणं णक्खत्तेणं' केन नक्षत्रेण योगमुपागतः सन् 'जोएइ' युनक्ति प्रवर्त्तयति ? भगवानाह— 'रेवईहिं' रेवतीभिः अस्या द्वात्रिंशत्तारकात्मकत्वाद् बहुवचनम्, रेवतीनक्षत्रेण सह युक्तश्चन्द्रश्चतुर्थी श्रावणीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति। अस्या मुहूर्त्तादिकमाह—'रेवईणं' इत्यादि, 'रेवईणं' रेवतीनां रेवतीनक्षत्रस्य 'पणवीसं मुहुत्ता' पञ्चविंशतिर्मुहूर्त्ताः 'बत्तीसं च बावट्ठिभागा' द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा 'मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्य, तथा 'बावट्ठिभागं च' एकं द्वाषष्टिभागं च 'सत्तट्ठिहा छित्ता' सप्तषष्टिधा छित्वा एकस्य द्वाषष्टि भागस्य सप्तषष्टि भागान् कृत्वा तन्मध्यात् 'छव्वीसं चुण्णिया भागा' षड् विंशतिश्चूर्णिका भागाः सप्तषष्टि भागाः (२५$\frac{३२}{६२}\Big|\frac{२६}{६७}$) यदि शेषास्तिष्ठेयुस्तदा चन्द्रश्चतुर्थी श्राविणीमावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति। तत्कथं भवेदित्याह—प्राक् प्रदर्शित क्रमापेक्षया श्रावणमासभाविनी चतुर्थी आवृत्तिः सप्तमी भवति ततः सप्तकोऽङ्को ध्रियते, तस्मिन् रूपोने कृते जातः षट्कः, तेन प्राक्तनो ध्रुवराशिः (५७३–३६।६) गुण्यते जातानि अष्टात्रिंशदधिकानि चतुस्त्रिंशच्छतानि (३४३८) मुहूर्त्तानाम् एकस्य च मुहूर्त्तस्य षोडशोत्तरे द्वे शते (२१६ द्वाषष्टिभागानाम्, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य षट् त्रिंशत् (३६) सप्तषष्टिभागाः (३४३८$\frac{२१६}{६२}\Big|\frac{३६}{६७}$) तत एतेभ्यः षट् सप्तत्यधिकद्वात्रिंशच्छतमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षण्णवति द्वाषष्टि भागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुष्षष्ट्यधिकद्विशतसंख्यकाः सप्तषष्टि भागाः (३२७६।$\frac{९६}{६२}\Big|\frac{२६४}{६७}$) चतुर्णां नक्षत्रपर्यायाणां शोध्यन्ते, स्थितं पश्चाद् द्वाषष्ट्यधिकं मुहूर्त्तस्य शतम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षोडशाधिकं द्वाषष्टिभागशतम्, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य चत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः (१६२$\Big|\frac{११६}{६२}\Big|\frac{४०}{६७}$), तत एतेभ्यः एकोनषष्ट्यधिकं मुहूर्त्तशतम् एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षष्टिः सप्तषष्टि भागाः (१५९$\Big|\frac{२४}{६२}\Big|\frac{६६}{६७}$) अभिजिदादीनामुत्तरभाद्रपदा पर्यन्तानां नक्षत्राणां शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चात् त्रयोमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकनवति द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टि

भागस्य एकचत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः ($3\left|\frac{91}{41}\right|\frac{41}{67}$), तत्र एकनवति द्वाषष्टिभागेभ्यो द्वाषष्ट्या द्वाषष्टिभागैरेको मुहूर्त्तो लब्धः स च पूर्वस्थिते त्रिकरूपे मुहूर्त्तराशौ क्षिप्यते, जातास्ते चत्वारो मुहूर्त्ताः, शेषाः स्थिताः एकोनत्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः, ततो जायन्ते चत्वारो मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनत्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकचत्वारिंशत् सप्तषष्टि भागाः ($4\left|\frac{29}{62}\right|\frac{41}{67}$) एते च मुहूर्त्तादिकाः रेवती नक्षत्रस्यातिक्रान्तास्तत आगतम्—रेवती नक्षत्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् तस्य पञ्चविंशतौ मुहूर्त्तेषु द्वात्रिंशति द्वाषष्टिभागेषु षड्विंशतौ सप्तषष्टिभागेषु ($25\left|\frac{32}{62}\right|\frac{26}{66}$) सूत्रोक्तेषु शेषेषु सत्सु चन्द्रश्चतुर्थीं श्राविणीमावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति सिद्धम् ४ ।

सम्प्रति तत्समयगतं सूर्यनक्षत्रयोगं प्रदर्शयति–'**तं समयं च णं**' इत्यादि, '**तं समयं च णं**' तस्मिन् चन्द्रनक्षत्रयोगरूपे समये च खलु '**सूरिए**' सूर्यः '**केणं णक्खत्तेणं**' केन नक्षत्रेण सह गतः सन् चतुर्थी श्रावणीमावृत्तिं '**जोएइ**' 'युनक्ति प्रवर्त्तयति ? भगवानाह— '**ता पूसेणं**' तावत् पुष्येण सहगतो भूत्वा प्रवर्त्तयति । अत्र विशेषमाह—'**पूसस्स**' पुष्यस्य पुष्यनक्षत्रस्य '**तं चेव**' इति तदेव प्रथमावृत्ति प्रकरणोक्तवदेव विज्ञेयम्–पुष्यस्य एकोनविंशति मुहूर्त्ताः, त्रिचत्वारिंशद् द्वाषष्टि भागाः, त्रयस्त्रिंशत् चूर्णिका भागाः ($19\left|\frac{43}{62}\right|\frac{33}{67}$) यदि शेषा भवेयुस्तदा सूर्यश्चतुर्थीं श्राविणीमावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति भावः ॥४॥

अधुना पञ्चमीमावृत्तिं प्रदर्शयति—'**ता एएसि णं**' इत्यादि, '**ता** तावत् '**एएसि णं**' एतेषां खलु '**पंचण्हं संवच्छराणं**' पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये '**पंचमं**' पञ्चमीं '**वासिक्किं**' वार्षिकीं वर्षाकालभाविनीम् '**आउट्टिं**' आवृत्तिं '**चंदे**' चन्द्रः '**केणं णक्खत्तेणं**' केन नक्षत्रेण सह योगमुपागतः सन् '**जोएइ**' युनक्ति–प्रवर्त्तयतीति प्रश्नः । भगवानाह–'**ता पुव्वाहिं**' इत्यादि, '**ता**' तावत् '**पुव्वाहिं फग्गुणीहिं**' पूर्वाभ्यां फाल्गुनीभ्याम् द्वितारकत्वाद् द्विवचनं कृतं, प्राकृते द्विवचनाभावात् सूत्रे बहुवचनम्, पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रेण योगं कुर्वन् चन्द्रः पञ्चमीं वार्षिकीमावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति भावः अथास्य मुहूर्त्तादिकं प्रदर्शयति–'**पुव्वाफग्गुणीणं**' पूर्वाफाल्गुन्योः पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रस्येत्यर्थः '**बारसमुहुत्ता**' द्वादशमुहूर्त्ताः, '**सत्तालीसं च बावट्ठिभागा**' सप्तचत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागाः, '**मुहुत्तस्स**' एकस्य मुहूर्त्तस्य, तथा '**बावट्ठिभागं सत्तट्ठिहा छित्ता**' द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्वा विभज्य एकं द्वाषष्टिभागं सप्तषष्टिधा कृत्वा तत्सम्बन्धिन. '**तेरसचुण्णिया भागा**' त्रयोदश चूर्णिका

भागाः (१२–४७/६२ | १३/६७) यदा 'सेसा' शेषा अवशिष्टास्तिष्ठेयुस्तदा चन्द्रः पञ्चमीं वार्षिकी मावृत्तिं श्रावणमासभाविनीं प्रवर्त्तयतीति । तथाहि पञ्चमी श्रावणी आवृत्तिः प्राक् प्रदर्शितक्रमापेक्षया नवमी भवति ततोऽत्र नवकोऽङ्को ध्रियते, तस्मिन् रूपोने कृते जाता अष्ट, एभिरष्टभिश्च प्रागुक्तो ध्रुवराशिः—५७३ ३६/६२ | ६/६७) गुण्यते, जाताश्चतुरशीत्यधिकानि पञ्चचत्वारिंशच्छतानि (४५८४) मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टाशीत्यधिके द्वे द्वाषष्टि भागशते (२८८), एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य अष्टचत्वारिंशद् (४८) सप्तषष्टिभागाः (४५८४ | २८८/६२ | ४८/६७) । तत एभ्यश्चत्वारिंशन्मुहूर्त्तशतानि पञ्चनवत्यधिकानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य विंशत्यधिकं शतं द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिंशदधिकानि त्रीणि शतानि सप्तषष्टिभागाः ४०९५ | १२०/६२ | ३३०/६७) पञ्चनक्षत्रपर्यायाणां शोध्यन्ते, स्थितानि पश्चात् चत्वारि मुहूर्त्तशतानि एकोननवत्यधिकानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिषष्ट्यधिकं शतं द्वाष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिपञ्चाशत् सप्तषष्टि भागाः (४८९ | १६३/६२ | ५३/६७) पुनरेतेभ्यो नवत्यधिकानि त्रीणि मुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशतिद्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः (३९० | २४/६२ | ६६/६७) अभिजित आरभ्य पुनर्वसु पर्यन्तानां नक्षत्राणां शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चात् नवतिमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्ट त्रिंशदधिकं शतं द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुष्पञ्चाशद् सप्तषष्टिभागाः (९० १३८/६२ | ५४/६७) । ततोऽष्टत्रिंशदधिकशतद्वाषष्टि भागेभ्यश्चतुर्विंशत्यधिक शत द्वाषष्टि भागै द्वौ मुहूर्त्तौ लब्धौ, तौ च पश्चात्स्थिते नवति रूपे मुहूर्त्तराशौ प्रक्षिप्येते, जाता द्विनवति मुहूर्त्ताः (९२), स्थिताः शेषा ये चतुर्दश, ते चतुर्दश द्वाषष्टिभागाः, तत आगताः—द्विनवतिर्मुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्दश द्वाषष्टि भागा, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य चतुष्पञ्चाशत् सप्तषष्टि भागाः (९२ १४/६२ | ५४/६७) । तत एतद्गत मुहूर्त्तराशेः पञ्चसप्ततिः (७५) मुहूर्त्ताः पुष्यादिमघा पर्यन्तानां नक्षत्राणां शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चात् सप्तदश मुहूर्त्ताः (१७), शेषा द्वाषष्टि भागाः सप्त-

षष्टिभागाश्च ते एव १४/६२ | ५४/६७), एतावता राशिना पूर्व फाल्गुनी न शुद्धयति, ततो ज्ञातव्यम् पूर्व-फाल्गुनी नक्षत्रस्य सप्तदशमुहूर्त्ताः, चतुर्दश द्वाषष्टिभागाः, चतुष्पञ्चाशत् सप्तषष्टिभागाः (१७ १४/६२ ५४/६७) अतिक्रान्ताः, ततोऽस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् पूर्वफाल्गुनी नक्षत्रस्य द्वादशसु मुहूर्त्तेषु सप्तचत्वारिंशति द्वाषष्टि भागेषु त्रयोदशसु सप्तषष्टिभागेषु (१२ | ४७/६२ | १३/६७) सूत्रोक्तेषु शेषेषु सत्सु चन्द्रः पञ्चमींश्राविणीमावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति सिद्धम् ॥५॥

अथ सूर्यनक्षत्रविषयं प्रश्नोत्तरमाह—'तं समयं च णं इत्यादि, 'तं समयं च णं तस्मिन् चन्द्रनक्षत्रयोगरूपे समये च खलु 'सूरिए' सूर्य 'केणं णक्खत्तेणं' केन नक्षत्रेण युक्तः सन् पञ्चमीं श्राविणीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति ? भगवानाह-'ता पूसेण' इत्यादि, 'ता' तावत् 'पूसेण' पुष्येण सहगतः सूर्यः पञ्चमीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति। 'पूसस्स' पुष्यस्य 'तं चेव' तदेव प्रथमश्रावण्यावृत्ति प्रकरणोक्त मुहूर्त्तादिपरिमाणवदेव विज्ञेयम्, तथाहि—पुष्यस्य एकोनविंशति मुहूर्त्तेषु त्रिचत्वारिंशद्द्वाषष्टिभागेषु त्रयस्त्रिंशच्चूर्णिका भागेषु (१९।४३।३३) शेषेषु सूर्यः पञ्चमीं श्रावणमासभाविनीमावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति भावः ।सूत्रम् ॥५॥

तदेवं प्रोक्ताश्चन्द्रनक्षत्रयोगविषयाः सूर्यनक्षत्रयोगविषयाश्च वार्षिक्यः पञ्च आवृत्तयः, साम्प्रतं हैमन्तीरावृत्तीः प्रतिपादयन्नाह—'ता एएसिणं इत्यादि ।

मूलम्—ता एएसि णं पंचण्हं संवच्छराणं पढमं हेमंति आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता हत्थेणं, हत्थस्स णं पंचमुहुत्ता, पण्णासं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता सट्ठीचुण्णिया भागा सेसा। तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं चरमसमए। ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं दोच्चं हेमंतिं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ?, ता सयभिसयाणं दुन्नि मुहुत्ता, अट्ठावीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता छत्तालीसं चुण्णिया भागा सेसा। तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं चरमसमए २। ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं तच्चं हेमंति आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता पूसेणं, पूसस्स एगूणवीसं मुहुत्ता तेतालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता तेत्तीसं चुण्णियाभागा सेसा तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता उत्तराहिं आसाढाहिं, उत्तराणं आसाढाणं चरम समए ३।—

ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं चउत्थि हेमंति आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता मूलेणं, मूलस्स छ मुहुत्ता, अट्ठावन्नं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स, बावट्ठिभागं च सत्तट्ठिहा छित्ता वीसं चुण्णिया भागा सेसा। तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता उत्तराहिं असाढाहिं उत्तराणं आसाढाणं चरमसमए ४। ता एएसिणं पंचण्हं संवच्छराणं पंचमं हेमंतिं आउट्टिं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? कत्तियाहिं, कत्तियाणं अट्ठारसमुहुत्ता, सत्तट्ठिहा छित्ता छ चुण्णिया भागा सेसा। तं समयं च णं सूरिए केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता उत्तराहि आसाढाहिं उत्तराणं आसाढाणं चरमसमए ॥ सूत्रम् ॥ ६ ॥

छाया—तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां प्रथमां हैमन्तीम् आवृत्ति चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् हस्तेन, हस्तस्य खलु पञ्चमुहूर्त्ताः पञ्चाशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टि भागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा षष्टिः चूर्णिका भागाः शेषाः तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् उत्तराभिराषाढाभिः, उत्तराणामाषाढानां-चरमसमये १। तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां द्वितीयां हैमन्तीम् आवृत्तिं चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् शतभिषग्भिः, शतभिषजां द्वौ मुहूर्त्तौ अष्टाविंशतिश्च द्वाषष्टि भागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा षट् चत्वारिंशत् चूर्णिका भागाः शेषाः। तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् उत्तराभिराषाढाभिः, उत्तराणामाषाढानां चरमसमये २। तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां तृतीयां हैमन्तीम् आवृत्ति चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् पुष्येण, पुष्यस्य एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः त्रिचत्वारिंशच्च द्वाषष्टि भागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा त्रयस्त्रिंशत् चूर्णिका भागाः शेषाः। तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् उत्तराभिराषाढाभिः, उत्तराणामाषाढानां चरमसमये ३। तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां चतुर्थी हैमन्तीमावृत्ति चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् मूलेन, मूलस्य षड्मुहूर्त्ता, अष्ट पञ्चाशच्च द्वाषष्टि भागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च सप्तषष्टिधा छित्त्वा विंशतिश्चूर्णिका भागाः शेषाः। तस्मिन् समये सूर्यः केन नक्षत्रेण योगं युनक्ति ? तावत् उत्तराभिराषाढाभिः, उत्तराणामाषाढानां चरमसमये ४। तावत् एतेषां खलु पञ्चानां संवत्सराणां पञ्चमीं हैमन्तीम् आवृत्ति चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् कृत्तिकाभिः, कृत्तिकाणाम् अष्टादशमुहूर्त्ताः, षट्त्रिंशच्च द्वाषष्टिभागा मुहूर्त्तस्य, द्वाषष्टिभागं च मुहूर्त्तस्य सप्तषष्टिधा छित्त्वा षट् चूर्णिका भागाः शेषाः। तस्मिन् समये च खलु सूर्यः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् उत्तराभिराषाढाभिः, उत्तराणामाषाढानां चरमसमये। सूत्रम् ॥ ६ ॥

व्याख्या—'ता एएसि णं इति, 'ता तावत् 'एएसि णं' एतेषां खलु 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणां चन्द्रादीनां मध्ये 'पढमं' प्रथमां 'हेमंति' हैमन्तीं शीतकालभाविनी माघमासभाविनीमित्यर्थः 'आउट्टिं' आवृत्तिं 'चंदे' चन्द्रः 'केण णक्खत्तणं जोएइ' केन नक्षत्रेण सह योग-

अन्त्येन राशिना एककलक्षणेन गुणिता मध्यराशिः पञ्च तेन जाताः पञ्चैव, तेषां दशभिर्भागेहृते लभ्यते अर्द्धं पर्यायस्य, त्रिंशदधिकाष्टादशशत (१८३०) परिमितपरिपूर्णपर्यायस्यार्द्धं भवति पञ्चदशोत्तरं शतनवकम् (९१५), तत्र ये विंशतिः सप्तषष्टिभागाः पाश्चात्येऽयने पुष्यस्य गताः, शेषा ये स्थिताश्चतुश्चत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागास्ते साम्प्रतमस्माद् राशेः शोध्यन्ते, स्थितानि शेषाणि एकसप्तत्यधिकानि अष्टौशतानि (८७१) तेषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धास्त्रयोदश, पश्चान्न किमपि तिष्ठति । एभिस्त्रयोदशभिश्चाश्लेषादीनि उत्तराषाढापर्यन्तानि नक्षत्राणि शोध्यन्ते तत आगतम्—अभिजिन्नक्षत्रस्य प्रथमसमये हैमन्ती प्रथमा अवृत्तिः प्रवर्त्तते । उत्तराषाढानक्षत्रस्य परिपूर्ण उपभोगो जातस्तत उक्तम्—'उत्तराषाढानक्षत्रस्य चरमसमये' इति । एवं सर्वा अपि हेमन्तकालसम्बन्धिनो माघमासभाविन्यः सर्वाः अपि आवृत्तयः सूर्यनक्षत्रमाश्रित्य उत्तराषाढानक्षत्रे परिपूर्णे भुक्ते सति अभिजिन्नक्षत्रस्य प्रथमसमये प्रवृत्ता भवन्तीति ज्ञातव्यम् । उक्तञ्च—

"बाहिरओ पविसंतो, आइच्चो अभिइजोगमुवगम्म ।
सव्वा आउट्टीओ, करेइ सो माघमासम्मि" ॥१॥

छाया——बाह्यतः—बाह्यमण्डलात्—अन्तः प्रविशन् आदित्यः अभिजिद् योगमुपगम्य । सर्वा आवृत्तीः करोति स माघमासे ॥ इति

अथ द्वितीय हैमन्त्यावृत्तिविषयकं सूत्रमाह—'ता एएसि णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां प्रसिद्धानां खलु 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां सवत्सराणां मध्ये 'दोच्चं हेमंतिं' द्वितीयां हैमन्तीम्—हेमन्तर्तुव्यापिनीं माघमासभाविनीम् 'आउट्टिं' आवृत्तिं 'चंदे' चन्द्रः 'केणं नक्खत्तेणं' केन नक्षत्रेण सह योगमुपागतः सन् 'जोएइ' युनक्ति प्रवर्त्तयति ? । भगवानाह——'ता सयभिसयाहिं' इत्यादि 'ता' तावत् 'सयभिसयाहिं' शतभिषग्भिः शतभिषगूनक्षत्रेण युक्तः सन् द्वितीयां हैमन्तीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति किं प्रमाणै मुहूर्त्तादिभिः शेषैः प्रवर्त्तयति ? इति प्रदर्शयति—'सयभिसयाणं' इत्यादि, 'सयभिसयाणं' शतभिषजा शतभिगूनक्षत्रस्य 'दुन्निमुहुत्ता' द्वौ मुहूर्त्तौ, अट्ठावीसं च बावट्ठि भागा मुहुत्तस्स' एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टाविंशति द्वाषष्टिभागाः 'बावट्ठिभागं च' द्वाषष्टिभागं च 'सत्तट्ठिहा छित्ता' सप्तषष्टिधा छित्वा विभज्य तद्गताः 'छत्तालीसं' षट्चत्वारिंशत् 'चुण्णिया भागा' चूर्णिका भागाः सप्तषष्टिभागाः 'सेसा' शेषा अवशिष्टास्तिष्ठेयुस्तदा चन्द्रः द्वितीयां हैमन्तीमावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति । तदेव गणितेन स्पष्टयति—प्रागुपदर्शितक्रमापेक्षया द्वितीया माघमास भाविनी आवृत्तिश्चतुर्थी भवतीति चतुष्कोऽङ्कोध्रियते, रूपोने कृते जातस्त्रिकः, अनेन प्राक्तनो ध्रुवराशिः (५७३।३६।६) गुण्यते, जातानि सप्तदश शतानि एकोनविंशत्यधिकानि मुहूर्त्तानाम्,

एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टोत्तरं शतद्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य अष्टादश सप्तषष्टिभागाः (१७१९ | १०८/६२ | १८/६७) । तत एभ्यः अष्टात्रिंशदधिकानि षोडशशतानि मुहूर्त्तानाम्, एकस्य च मुहूर्त्तस्याष्टचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्वात्रिंशदधिकं शतं सप्तषष्टिभागानाम् (१६३८ | ४८/६२ | १३२/६७) द्वयोर्नक्षत्रपर्याययोः शोध्यन्ते स्थिताः पश्चात्—एकाशीतिर्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टपञ्चाशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य विंशतिः सप्तषष्टिभागाः (८१ | ५८/६२ | २०/६७) । अस्माद्राशेर्भूयोऽपि नव मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टि सप्तषष्टिभागाः, (९ | २४/६२ | ६६/६७) अभिजिन्नक्षत्रस्य शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चात् द्वासप्ततिर्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयस्त्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य एकविंशतिः सप्तषष्टिभागाः (७२ | ३३/६२ | २१/६७) । पुनरेतस्मात् त्रिंशन्मुहूर्त्ता श्रवणस्य पुनस्त्रिंशद् धनिष्ठायाः शोध्याः, अवतिष्ठन्ते पश्चात् द्वादश मुहूर्त्ताः एते द्वादश मुहूर्त्ता शतभिजो व्यतिक्रान्ताः ततः शतभिषग्नक्षत्रं चार्द्धनक्षत्रम् पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकत्वात्, तत आगतम्—शतभिषग्नक्षत्रस्य द्वयोर्मुहूर्त्तयोः शेषयोः सतोः, तथा एकस्य च मुहूर्त्तस्य अष्टाविंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्चत्वारिंशति सप्तषष्टिभागेषु (२ २८/६२ | ४६/६७) शेषेषु चन्द्रो द्वितीयां हैमन्तीमावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति सिद्धम् । अथ सूर्यनक्षत्रयोगमाह—'तं समयं च णं' इत्यादि, 'तं समयं च णं' तस्मिन् समये च खलु 'सूरिए' सूर्यः 'केणं नक्खत्तेणं जोएइ' केन नक्षत्रेण सह योगमुपागतो द्वितीया हैमन्तीमावृत्ति प्रवर्त्तयतीति प्रश्नः । भगवानाह—'उत्तराहि आसाढाहिं' इत्याद्युत्तरम्, तथाहि—उत्तराषाढानक्षत्रेण, तस्योत्तराषाढानक्षत्रस्य चरम समये अभिजितः प्रथम समये, इति पूर्वं प्रदर्शितमेव. सूर्यस्य सर्वत्राभिजितः प्रथम समय एव हैमन्त्यावृत्तीनां प्रवर्त्तकत्वात् ।

अथ तृतीय हैमन्त्यावृत्तिविषयं सूत्रमाह—'ता एएसि णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां खलु 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये 'तच्चं हेमंतिं' तृतीयां हैमन्तीं माघमासभाविनीम् 'आउट्टिं' आवृत्ति 'चंदे' चन्द्रः 'केणं णक्खत्तेणं जोएइ' केन नक्षत्रेण सह युक्तो भूत्वा युनक्ति ? प्रवर्त्तयति ? भगवानाह—'ता पूसेणं' इत्यादि, 'ता' तावत्

'पूसेणं' पुष्येण पुष्यनक्षत्रेण सह योगमुपागतः सन् तृतीयां हैमन्तीं आवृत्तिं प्रवर्त्तयति। अस्य मुहूर्त्तादीनाह—'पूसस्स' इत्यादि, 'पूसस्स' पुष्यस्य पुष्यनक्षत्रस्य, 'एगूणवीसं मुहुत्ता' एकोनविंशतिर्मुहूर्त्ताः 'तेतालीसं च बावट्ठिभागा मुहुत्तस्स' त्रिचत्वारिंशच्च द्वाषष्टिभागा, एकस्य मुहूर्त्तस्य, 'बावट्ठिभागं च' द्वाषष्टिभागं च 'सत्तट्ठिहा छित्ता' सप्तषष्टिधा छित्वा विभज्य तद्गताः 'तेत्तीसं चुण्णिया भागा' त्रयस्त्रिंशत् चूर्णिकाभागाः सप्तषष्टिभागाः, ($१९-\frac{४३}{६२}\Big|\frac{३३}{६७}$) 'सेसा' शेषा अवशिष्टास्तिष्ठन्ति तदा चन्द्रस्तृतीया हैमन्तीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति।

तत्कथमिति प्रदर्श्यते—एषा तृतीयाऽऽवृत्तिः पूर्वप्रदर्शितक्रमापेक्षया षष्ठीभवति ततस्तस्याः स्थाने षट्कोऽङ्कोध्रियते, स रूपोनः क्रियते जातः पञ्चकः, अनेन प्राक्तनो ध्रुवराशि (५७३।३६।६) गुण्यते जातानि पञ्चषष्टयधिकानि अष्टाविंशति मुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य अशीत्यधिकं शतं द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रिंशत् सप्तषष्टिभागाः ($२८६५\Big|\frac{१८०}{६२}\Big|\frac{३०}{६७}$) तत एभ्यः सप्त पञ्चाशदधिकानि चतुर्विंशति मुहूर्त्तशतानि, एकस्य मुहूर्त्तस्य च द्विसप्ततिर्द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्याष्टानवत्यधिकं शतं सप्तषष्टि भागाः ($२४५७\Big|\frac{७२}{६२}\Big|\frac{१९८}{६७}$) त्रयाणां नक्षत्रपर्यायाणां शोध्यन्ते, स्थितानि पश्चात् अष्टोत्तराणि चत्वारि मुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य पञ्चोत्तरं शत द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशत् सप्तषष्टिभागाः ($४०८\Big|\frac{१०५}{६२}\Big|\frac{३३}{६७}$) तत एभ्यः नवनवत्यधिकानि त्रीणि मुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वाषष्टिभागा, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः ($३९९\Big|\frac{२४}{६२}\Big|\frac{६६}{६७}$) अभिजित आरम्य पुनर्वसु पर्यन्तानां नक्षत्राणां शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चात् नवमुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य अशीति द्वाषष्टि भागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुस्त्रिंशत् सप्तषष्टिभागाः ($९\Big|\frac{८०}{६२}\Big|\frac{३४}{६७}$) अत्र द्वाषष्टया द्वाषष्टिभागैरेको मुहूर्त्तो लब्धः, तस्य मुहूर्त्तराशौ नवकरूपे प्रक्षेपणात् जाता दश मुहूर्त्ताः, स्थिताः पश्चाद् अष्टादशद्वाषष्टि भागाः (१०।१८।३४) एते पुष्यस्य मुहूर्त्ताः व्यतिक्रान्ताः, तत आगतम्—पुष्यस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात्तस्य एकोनविंशतौ मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रिचत्वारिंशति द्वाषष्टिभागेषु एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य त्रयस्त्रिंशति सप्तषष्टि भागेषु (१९।४३।३३) सूत्रोक्तेषु शेषेषु सत्सु चन्द्रस्तृतीयां हैमन्तीमावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति सिद्धम्।

सूर्यनक्षत्रयोगमाह--'तं समयं च णं' इत्यादि, 'तं समयं च णं' तस्मिन् समये चन्द्रनक्षत्रयोगसमये च खलु 'सूरिए' सूर्यः 'केणं णक्खत्तेणं जोएइ' केन नक्षत्रेण सहगतो भूत्वा तृतीयां हैमन्तीमावृत्तिं युनक्ति प्रवर्त्तयति ? भगवानाह--'उत्तराहिं आसाढाहिं' उत्तराभिराषाढाभिः उतराषाढानक्षत्रस्य चरमसमये अभिजितः प्रथमसमये तृतीयां हैमन्तीमावृत्तिं प्रवर्त्तयति ३ ।

अथ चतुर्थ्यावृत्ति विषये पृच्छति--'ता एएसिणं' इत्यादि 'ता' तावत् 'एएसिणं' एतेषां खलु 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये 'चउत्थिं हेमंतिं आउट्टिं' चतुर्थी हैमन्तीमावृत्तिं 'चंदे' चन्द्रः 'केणं णक्खत्तेणं जोएइ' केन नक्षत्रेण सहयोगं प्राप्तः सन् युनक्ति प्रवर्त्तयति ? भगवानाह--'ता मूलेणं' इत्यादि 'ता' तावत् 'मूलेणं' मूलेन मूलनक्षत्रेण सहगतः प्रवर्त्तयति । अस्य मुहूर्त्तादीन् प्रदर्शयति--'मूलस्स' इत्यादि 'मूलस्स' मूलस्य 'छ मुहुत्ता' षड्मुहूर्त्ता 'मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्य 'अट्ठावन्नं च बावट्ठिभागा' अष्टपञ्चाशच्च द्वाषष्टिभागाः तेषु 'बावट्ठिभागं च' एकं द्वाषष्टिभागं च 'सत्तट्ठिहा छित्ता' सप्तषष्टिधा छित्त्वा विभज्य तद्गताः 'वीसं चुण्णिया भागा' विंशतिश्चूर्णिकाभागाः($6\frac{58}{62}\Big|\frac{20}{67}$) सेसा' शेषा अवशिष्टास्तिष्ठेयुस्तदा चन्द्रश्चतुर्थी हैमन्तीमावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति । तदेव गणितेन स्पष्टयति--इयं चतुर्थी हैमन्ती आवृत्तिः पूर्वप्रदर्शितक्रमापेक्षया अष्टमीति तस्याः स्थानेऽष्टकोऽङ्को ध्रियते स रूपोनः क्रियते जातः सप्तकः, अनेन स प्राक्तनो ध्रुवराशिः (५७३।२६।६) गुण्यते, जातानि एकादशोत्तराणि चत्वारिंशच्छतानि मुहूर्त्तानाम् , एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्विपञ्चाशदधिके द्वेशते द्वाषष्टिभागानाम् एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य द्विचत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः ($4011\frac{252}{62}\Big|\frac{42}{67}$) । तत एतेभ्यः षट्सप्तत्यधिकानि द्वात्रिंशच्छतानि, मुहूर्त्तानाम् , एकस्य च मुहूर्त्तस्य षण्णवतिर्द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य अष्टषष्ट्यधिके द्वे शते सप्तषष्टिभागानाम् (३२७६।९६।२६७), एते मुहूर्त्तादिकाश्चतुर्णां नक्षत्रपर्यायाणां शोध्यन्ते स्थितानि पश्चात् पञ्चत्रिंशदधिकानि सप्तमुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य द्विपञ्चाशदधिकं शतं द्वाषष्टिभागानाम् , एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्चत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः ($735\frac{152}{62}\Big|\frac{46}{67}$) । तत एभ्यः पुनः--एकोन सप्तत्यधिकानि षट्मुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशति द्वाषष्टि भागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट् षष्टिः सप्तषष्टिभागाः ($669\Big|\frac{24}{62}\Big|\frac{66}{67}$) अभिजि-

दादि विशाखापर्यन्तानां नक्षत्राणां शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चात षट्षष्टिर्मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तविंशत्यधिकशतसंख्यका द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य सप्तचत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः (६६।१२७।४७), एतद्गत सप्तविंशत्यधिकशत द्वाषष्टिभागेभ्यः (१२७) चतुर्विंशत्यधिकशतद्वाषष्टिभागैः (१२४) द्वौ मुहूर्त्तौ लब्धौ तौ पूर्वस्थितमुहूर्त्तराशौ प्रक्षिप्येते जाता अष्टषष्टिमुहूर्त्ताः शेषास्तिष्ठन्ति त्रयो द्वाषष्टिभागाः, ततो जातोऽयं राशिः अष्टषष्टि मुहूर्त्ताः त्रयो द्वाषष्टिभागाः, सप्तचत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः (६८।३।४७)। इत्येवं रूपः। ततोस्माद् राशेः पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः (४५) अनुराधाज्येष्ठानक्षत्रयोः शोध्यन्ते, शोधितेषु तेषु स्थिताः पश्चात् त्रयोविंशतिमुहूर्त्तादिकाः (२३।३।४७)। मूलनक्षत्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तेभ्यो व्यतिक्रान्ताः, तत आगतम्—मूलनक्षत्रस्य षट्सु मुहूर्त्तेषु अष्टपञ्चाशति द्वाषष्टिभागेषु विंशतौ सप्तषष्टिभागेषु शेषेषु (६।५८।२०) चन्द्रश्चतुर्थी हैमन्तीमावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति सूत्रोक्तं सिद्धम् ॥

सूर्यनक्षत्रयोगमाह—'**तं समयं च णं**' इत्यादि स्पष्टमेव उत्तराषाढा नक्षत्रस्य चरम समये, अभिजिन्नक्षत्रस्य प्रथमसमये चतुर्थी हैमन्तीमावृत्तिं सूर्यः प्रवर्त्तयतीति भावः ४।

अथ पञ्चमीं हैमन्तीमावृत्तिमाह— '**ता एएसिणं**' इत्यादि। '**ता**' तावत् '**एएसिणं**' एतेषां प्रसिद्धानां खलु '**पंचण्हं संवच्छराणं**' पञ्चाना चन्द्रादिसंवत्सराणां मध्ये '**पंचमिं हेमंतिं**' पञ्चमीं हैमन्तीं माघमास भाविनीं '**आउट्टिं**' आवृत्तिं '**चंदे**' चन्द्रः '**केणं णक्खत्तेणं**' केन नक्षत्रेण सह योगमुपागतः सन् '**जोएइ**' युनक्ति प्रवर्त्तयति ?

भगवानाह—'**कत्तियाहिं**' कृत्तिकाभिः कृत्तिकानक्षत्रेण। कृत्तिकानां कतिषु मुहूर्त्तादिषु शेषेषु युनक्ति ? इत्यत्राह—'**कत्तियाणं**' इत्यादि '**कत्तियाणं**' कृत्तिकानां कृत्तिकानक्षत्रस्य '**अट्ठारस मुहुत्ता**' अष्टादश मुहूर्त्ताः, '**मुहुत्तस्स**' एकस्य मुहूर्त्तस्य '**छत्तीसं च बावट्ठिभागा**' षट्त्रिंशच्च द्वाषष्टिभागाः, '**बावट्ठिभागं च**' एकं द्वाषष्टि भागं च '**सत्तट्ठिहा छित्ता**' सप्तषष्टिधा छित्वा विभज्य सप्तषष्टि भागीकृत्य तद्गताः '**छ चुण्णियाभागा**' षट् चूर्णिकाभागाः सप्तषष्टिभागाः (१८। $\frac{36}{62}$ | $\frac{6}{67}$) '**सेसा**' शेषाः त्रिंशन्मुहूर्त्तेभ्यः अवशिष्टास्तिष्ठेयुस्तदा चन्द्रो हैमन्तीं माघमासभाविनीमावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति भावः। तदेव प्रदर्शयति—पञ्चमी हैमन्त्यावृत्तिश्च प्रागुक्तक्रमापेक्षया दशमोन्यत्र दशकोऽङ्को ध्रियते, स रूपोनः क्रियते जातो नवकः, तेन प्राक्तनो ध्रुवराशिः (५७३।३६।६) गुण्यते जातानि सप्त पञ्चाशदधिकानि एकपञ्चाशन्मुहूर्त्तशतानि एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंशत्यधिकानि त्रीणि द्वाषष्टिभागशतानि एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य चतुष्पञ्चाशत् सप्तषष्टिभागाः (५१५७ | $\frac{324}{62}$ | $\frac{54}{67}$) तत एभ्यः चतुर्दशाधिकानि एकोन पञ्चा-

शन्मुहूर्त्तगतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुश्चत्वारिंशदधिकशतसंख्यका द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षण्णवत्यधिकानि त्रीणि सप्तषष्टिभागशतानि (४९१४ | १४४/६२ | २९६/६७) षण्णां नक्षत्रपर्यायाणां शोध्यन्ते, स्थिताः पश्चात् त्रिचत्वारिंशदधिक द्विशतसंख्यका मुहूर्त्ताः, एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुःसप्तत्यधिकशतसंख्यका द्वाषष्टिभागाः एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षष्टिः सप्तषष्टिभागाः (२४३ | १७४/६२ | ६०/६७) तत एतेभ्यः एकोनषष्ट्यधिकं मुहूर्त्तशतम् एकस्य च मुहूर्त्तस्य चतुर्विंगति द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टिभागस्य षट्षष्टिः सप्तषष्टिभागाः (१५९ | २४/६२ ६६/६७) अभिजित आरभ्योत्तरभाद्रपदापर्यन्तानां नक्षत्राणां शोध्यन्ते स्थिताः पश्चात् चतुरशीतिर्मुहूर्त्ताः एकस्य च मुहूर्त्तस्य एकोनपञ्चाशदधिकशतसंख्यका द्वाषष्टिभागाः, एकस्य च द्वाषष्टि भागस्य एकषष्टिः सप्तषष्टिभागाः (८४ १४९/६२ | ६१/६७) तत एतद्गतद्वाषष्टिभागेभ्यः (१४९) चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन द्वौ मुहूर्त्तौ लब्धौ, तौ च पूर्वस्थितमुहूर्त्तराशौ प्रक्षिप्यते जाता षडशीतिर्मुहूर्त्ताः स्थिताः पश्चात् पञ्चविंशति द्वाषष्टिभागा, तथाहि षडशीतिर्मुहूर्त्ताः पञ्चविंशतिर्द्वाषष्टिभागाः, एकषष्टिः सप्तषष्टिभागाः (८६ | २५/६२ | ६१/६७) तत एभ्यः रेवत्यास्त्रिशन्मुहूर्त्ताः (३०) अश्विन्यास्त्रिशन्मुहूर्त्ताः (३०) भरण्याः पञ्चदशमुहूर्त्ता (१५), एवं पञ्च सप्ततिर्मुहूर्त्ता (७५) रेवत्यश्विनी भरणीनां शोध्यन्ते स्थिताः पश्चादेकादश मुहूर्त्ताः शेपास्ते एव तथाहि—एकादशमुहूर्त्ताः, पञ्चविंशति द्वाषष्टिभागाः, एकषष्टिः सप्तषष्टिभागाः (११ | २५/६२ | ६१/६७) एते मुहूर्त्तादिकाः कृत्तिका नक्षत्रस्य त्रिशन्मुहूर्त्तेभ्योऽतिक्रान्ताः तत आगतम्—कृत्तिका नक्षत्रस्याष्टादशसु मुहूर्त्तेषु, षट्त्रिंशति द्वाषष्टि भागेषु षट्सु सप्तषष्टि भागेषु (१८ | ३६/६२ | ६/६७) शेषेषु चन्द्र. पञ्चमीं हैमन्तीमावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति सूत्रोक्तं सिद्धम् ५ । सूर्यनक्षत्रयोगमाह—'तं समयं च णं' इत्यादि पूर्वं प्रदर्शितमेव, तथाहि—चन्द्रनक्षत्रयोगसमये सूर्य उत्तराषाढानक्षत्रस्य चरमसमये अभिजित प्रथमसमये पञ्चमीं हैमन्तीमावृत्तिं प्रवर्त्तयतीति भावः ।

तदेवमुक्ताश्चन्द्रसूर्यनक्षत्रयोगमधिकृत्य सूर्यस्य दशाप्यावृत्तयः, साम्प्रतं सूर्यावृत्तिप्रसङ्गाच्चन्द्रस्याप्यावृत्तयो वक्तव्याः, ताः कति ? इति पूर्वं करणगाथायामुक्तम्—"**चंदस्स य आउट्टी सयं**

च चोत्तीसयं चेव" चन्द्रस्य चावृत्तयः शतं च चतुस्त्रिंशकं चैवेतिच्छाया, चन्द्रस्यावृत्तय एकस्मिन् युगे चतुस्त्रिंशदधिकशत (१३४) सख्यका भवन्ति । तत्र यस्मिन्नेव नक्षत्रे वर्त्तमानः सूर्यो दक्षिणा उत्तरा वा आवृत्तिं करोति तस्मिन्नेव नक्षत्रे वर्त्तमानश्चन्द्रोऽपि दक्षिणा उत्तराश्चावृत्तीः करोति, ततो या उत्तराभिमुखा आवृत्तयो युगे चन्द्रस्य दृष्टास्ताः सर्वा अपि नियतमभिजिता नक्षत्रेण सह योगे द्रष्टव्याः, याश्च दक्षिणाभिमुखा आवृत्तयस्ताः सर्वाः पुष्यक्षत्रेण सहयोगे द्रष्टव्याः । उक्तञ्च—

"चंदस्स वि नायव्वा, आउट्टीओ जुगम्मि जा दिट्ठा ।
अभिएणं पुस्सेण य, नियमं नक्खत्त सेसे णं" ॥१॥

छायाः—चन्द्रस्यापि ज्ञातव्याः, आवृत्तयो युगे या दृष्टाः । अभिजिता पुष्येण च नियमं नक्षत्रशेषेण ॥१॥ इति ।

अत्र 'नक्खत्तसेसेणं' इति नक्षत्रार्द्धमासेनेति, शेषं सुगमत्वान्न व्याख्यायते । तत्र यदुक्तं पूर्वं चन्द्रस्य उत्तराभिमुखाः सर्वा अप्यावृत्तयोऽभिजिन्नक्षत्रयोगे भवन्तीति पूर्वं ता उत्तराभिमुखा आवृत्तयोऽत्र भाव्यन्ते—यदि चन्द्रस्य चतुस्त्रिंशदधिकेनायनशतेन सप्तषष्टिर्नक्षत्र पर्याया लभ्यन्ते तदा प्रथमेऽयने किं लभ्यते ? राशित्रयस्थापना—(१३४।६७।१) अत्रापि पूर्वोक्तैव रीतिः, यथा अन्त्येन राशिना मध्यराशिं गुणयित्वा आद्येन राशिना भागो ह्रियते, एषा त्रैराशिक गणितरीतिः, ततोऽन्त्यराशिना एकेन गुणितो मध्यराशिः सप्तषष्टि रूपस्तावानेव जातः सप्तषष्टिः (६७) अस्याः सप्तषष्टे राद्येन चतुस्त्रिंशदधिकशतरूपेण राशिना भागो ह्रियते, लब्धं पर्यायस्य एकमर्द्धम् । तस्मिंश्च पर्यायार्द्धे पञ्चदशोत्तराणि नवशतानि (९१५) सप्तषष्टि भागानाम् परिपूर्णनक्षत्रपर्यायस्य त्रिंशदधिकाष्टादशशत (१८३०) सप्तषष्टि भागात्मकत्वात्, तत्र पुष्यनक्षत्रस्य त्रयोविंशतौ (२३)सप्तषष्टिभागेषु भुक्तेषु सत्सु चन्द्रो दक्षिणायनं कृतवान् ततः शेषाश्चतुश्चत्वारिंशत् सप्तषष्टि भागाः (४४) स्थितास्ते अनन्तरोदितराशेः पञ्चदशोत्तरे नव शत (९१५) रूपान् शोध्यन्ते स्थितानि शेषाणि एकसप्तत्यधिकानि अष्टौ शतानि (८७१) एषां सप्तषष्ट्या भागो हरणीयः । इह कानिचिन्नक्षत्राणि अर्द्ध क्षेत्राणि (पञ्चदश मुहूर्त्तात्मकानि) तानि अर्ध क्षेत्रात्म कत्वेन सप्तषष्टे रर्द्धेकृते सार्द्धत्रयस्त्रिंशत्सप्तषष्टिभागप्रमाणानि (३३॥), कानिचित् समक्षेत्राणि (परिपूर्ण त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकानि), तानि परिपूर्णक्षेत्रात्मकत्वेन 'परिपूर्णसप्तषष्टिभागप्रमाणानि (६७) कानिचिच्च द्व्यर्धक्षेत्राणि (पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकानि) तानि परिपूर्णमेकं (६७) द्वितीयं चार्द्ध (३३॥) मिति सार्द्धैकक्षेत्रात्मकत्वेन अर्द्धभागाधिकशतसंख्यक सप्तषष्टिभागप्रमाणानि (१००॥) । गात्रं (८७१) त्वधिकृत्य सप्तषष्ट्या शुद्ध्यन्तीति सप्तषष्ट्याऽत्र भागहरणं कर्त्तव्यम्, सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धास्त्रयोदश, शेषं नैव किञ्चिदवतिष्ठते. तत उपरितनो राशि-

निर्लेपतः शुद्धः । तैश्च त्रयोदशभिरश्लेषात आरम्य उत्तराषाढा पर्यन्तानि नक्षत्राणि शुद्धानि तत आगतम् चन्द्र उत्तराषाढानक्षत्रं परिर्णमुपभुज्य अभिजिन्नक्षत्रस्य प्रथमसमये उत्तरायणं करोति । एवं सर्वाण्यपि चन्द्रस्योत्तरायणानि वेदितव्यानि । उक्तञ्च—

'पण्णरसे उ मुहुत्ते, जोइत्ता उत्तरा आसाढाओ ।
एक्कं च अहोरत्तं, पविसइ अब्भंतरे चंदो ॥१॥

छायाः—पञ्चदश तु मुहूर्त्तान् युक्त्वा उत्तराषाढातः । एकं चाहोरात्रं प्रविशति अभ्यन्तरे चन्द्रः ॥ इति ।

एकाहोरात्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्ताः, तदुपरि पञ्चदशेति जात पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्ताः, उत्तराषाढा नक्षत्रं पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मक मिति परिपूर्णं युक्तं भवतीति भावः ।

साम्प्रतं चन्द्रस्य दक्षिणा आवृत्तयः प्रदर्श्यन्ते, तथाहि यदि चतुस्त्रिंशदधिकेनायनशतेन (१३४) सप्तषष्टिश्चन्द्रस्य पर्याया लभ्यन्ते तत एकेनायनेन किं लभ्यते ? इति त्रैराशिकं क्रियते । राशित्रयस्थापना यथा–१३४।६७।१। अथापि पूर्वोक्तक्रमेण अन्त्येन एककेन मध्यो राशिः सप्तषष्टिरूपो गुण्यते जातस्तावानेव सप्तषष्टिरूप. । तस्याद्येन राशिना भागहरणं कर्त्तव्यम् हृते च भागे लब्धं पूर्ववदेवार्द्ध मेकपर्यायस्य, तच्चार्द्धं पञ्चदशोत्तर नवशतसप्तषष्टिभागरूपं भवति (९१५) अस्मात् अभिजित्सम्बन्धिन एकविंशतिः सप्तषष्टि भागाः शोध्यन्ते, स्थितानि पश्चात् चतुर्नवत्यधिकानि अष्टौ शतानि (८९४) एषां सप्तषष्ट्या भागे हृते लब्धास्त्रयोदश, अवशिष्टाः स्थिताः पश्चात् त्रयोविंशतिः (२३) सप्तषष्टिभागा एकस्याहोरात्रस्य, ततो मुहूर्त्त भागकरणार्थं त्रयोविंशतिः त्रिंशता गुण्यते, गुणिते, च जायन्ते नवत्यधिकानि षट् शतानि (६९०) एषां सप्तषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धा दश मुहूर्त्ताः, विंशतिश्च सप्तषष्टि भागाः शेषत्वेन स्थिताः ($१०\frac{२०}{६७}$) तत आगतम्—पुनर्वसु नक्षत्रं परिपूर्णमुपभुज्य चन्द्रः पुष्यस्य दशसु मुहूर्त्तेषु, एकस्य च मुहूर्त्तस्य विंशतौ सप्तषष्टि भागेषु ($१०\frac{२०}{६७}$) भुक्तेषु तदनन्तरं सर्वाभ्यन्तरमण्डला द्वहिर्निष्क्रामति । एवमेव सर्वाण्यपि दक्षिणायनानि विचारणीयानि । उक्तञ्च—

"दसय मुहुत्ते सगळे मुहुत्तभागे य वीसइं चेव ।
पुस्स विसयमभिगओ, बहिया अभिनिक्खमइ चंदो ॥१॥

छाया—दश च मुहूर्त्तान् सकलान् (परिपूर्णान्) मुहूर्त्तभागाश्च विंशति चैव ।
पुष्यविषयान अभिगतः (प्राप्त.) सन् बहिरभिनिष्क्रमति चन्द्रः ॥ १ ॥ अर्थस्तु स्पष्ट एव । सू० ६ ॥

पूर्वं नक्षत्रयोगमाश्रित्य सूर्यचन्द्रयोरावृत्तयः प्रोक्ताः, साम्प्रतं योगानां दश नामानि प्ररूप्य तन्मध्यात् छत्रातिछत्रं योगं कस्मिन् देशे चन्द्रो युनक्तीति प्रदर्शयति 'तत्थ खलु' इत्यादि ।

मूलम्—तत्थ खलु इमे दसविहे जोए पण्णत्ते, तं जहा–सभाणुजाए १, वेणुयाणुजाए २, मंचे ३, मंचाइमंचे ४, छेत्त ५, छत्ताइच्छत्ते ६, जुयणद्धे, ७, घणसंमद्दे ८, पीणिए ९, मंडूयप्पुए णामं दसमे १० । एएसिणं भंते पंचण्हं संवच्छराणं छत्ताइछत्तं जोगं चंदे कंसि देसंसि जोएइ ?, ता जंबुद्दीवस्स दीवस्स पाईण पडिणीयाययाए उदीणदाहिणाययाए जीवाए मंडलं चउव्वीसेणं सएणं छित्ता, दाहिणपुरत्थिमिल्लंसि चउब्भागमंडलं सत्तावीसं भागे उवाइणावित्ता अट्ठावीसइमं भागं वीसहा छित्ता अट्ठारसभागे उवाइणावित्ता तीहिं भागेहिं दोहिं कलाहिं दाहिणपुरत्थिमिल्लं चउब्भागमंडलं अपसंपत्ते, एत्थ णं से चंदे छत्ताइछत्तं जोयं जोएइ, तं जहा उप्पिचंदो मज्झे णक्खत्तं हेट्ठा आइच्चो । तं समयं च णं चंदे केणं णक्खत्तेणं जोएइ ? ता चित्ताए चित्ताए चरम समये ॥सू०७॥

चंदयन्नत्तीए वारसमं पाहुडं समत्तं ॥ १२ ॥

छाया—तत्र खलु अयं दशविधो योगः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—वृषभानुयोगः १, वेणुकानुयोगः २, मञ्चः ३, मञ्चातिमञ्चः ४, छत्रं ५, छत्रातिछत्रम् ६, युगनद्धः ७, घनसंमर्दः ८, प्रीणितः ९, माण्डूकप्लुतः, नाम दशमः १० । एतेषां खलु भदन्त । पञ्चानां संवत्सराणां छत्रातिच्छत्रं योगं चन्द्रः कस्मिन् देशे युनक्ति ? तावत् जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्य प्राचीप्रतिच्यायतया उदीचि दक्षिणायतया जीवया मण्डलं चतुर्विंशेन शतेन छित्त्वा दक्षिणपौरस्त्ये चतुर्भागमण्डले सप्तविंशति भागान् उपादाय अष्टाविंशतितमं भागविंशतिधा छित्त्वा अष्टादशभागान् उपादाय त्रिभिर्भागैः द्वाभ्यां कलाभ्यां दक्षिणपौरस्त्यं चतुर्भागमण्डलं असंप्राप्तः, अत्र खलु स चन्द्रः छत्रातिछत्रं योगं युनक्ति, तद्यथा—उपरि चन्द्रः, मध्ये नक्षत्रं, अधः आदित्यः । तस्मिन् -समये च खलु चन्द्रः केन नक्षत्रेण युनक्ति ? तावत् चित्रया, चित्रायाश्चरमसमये । सू० ॥ ७ ॥

॥ चन्द्रप्रज्ञप्त्यां द्वादश प्राभृतं समाप्तम् ॥ १२ ॥

व्याख्या—'तत्थ खलु' इति 'तत्थ' तत्र युगे खलु 'इमे' अयं वक्ष्यमाणः 'दसविहे जोए पण्णत्ते' दशविधो योगः प्रज्ञप्तः 'तं जहा' तद्यथा, तानेव दर्शयति–'वसभाणुजाए' इत्यादि, 'वसभाणुजाए' वृषभानुजातः, अत्र अणुजातशब्दः सदृशार्थकः, तेन वृषभानुजातः वृषभसदृशः, यस्मिन् योगे चन्द्रसूर्यनक्षत्राणि वृषभाकारेण तिष्ठन्ति स वृषभानुजातो योगः कथ्यते ? एवं सर्वत्रापि विज्ञेयम् । 'वेणुयाणुजाए' वेणुकानुजातः वेणु वंशस्तत्सदृशस्तदाकारो यो योगः स वेणुकानुजातः कथ्यते २ । 'मंचे' मञ्चः लोकप्रसिद्धः यो भूमिभागादुपरि निर्माप्यंते सः, मञ्चसदृशो योगो मञ्च इति कथ्यते २, । मंचाइमंचे' मञ्चातिमञ्चः–मञ्चात् लोकप्रसिद्धात् एकस्मात् मञ्चात् द्वित्रादि भूमिकात्वेनातिशायी मञ्चो मञ्चातिमञ्चः, तत्सदृशो योगोऽपि मञ्चातिमञ्चयोगः कथ्यते । ४ ।

'छत्ते' छत्रं लोकप्रसिद्धं, तदाकारो योगोऽपि छत्रशब्देन कथ्यते ५। 'छत्ताइछत्ते' छत्रातिछत्रम्-छत्रात् एकस्माच्छत्रात् सामान्यरूपात् उपरि अन्यान्य छत्रभावतोऽतिशायिछत्रं छत्रातिच्छत्रं, तदाकारो योगोऽपि छत्रातिछत्रयोगः कथ्यते ६। 'जुयणद्धे' युगनद्धः, यो युगमिव नद्धः बद्धः, यथा वृषभस्कन्धयोरारोपितं युगं वर्त्तते तत्सदृशो योगोऽपि युगनद्ध योगः कथ्यते ७। 'घणसंमद्दे' घनसमर्दः घनत्वेन समर्दः परस्परं संमिलितः, यस्मिन् योगे चन्द्रः सूर्यो वा ग्रहस्य नक्षत्रस्य वा मध्ये गच्छति स घनसंमर्दयोगः कथ्यते ८। 'पीणिए' प्रीणितः पुष्टः उपचयं नीतः यः प्रथमं चन्द्रसूर्ययोरेकतरस्य ग्रहेण नक्षत्रेण एकतरेण उपस्थितः, तदनन्तरं द्वितीयेन चन्द्रेण सूर्येण ग्रहेण नक्षत्रेण वा सहोपचयं नीतः स प्रीणितयोगः कथ्यते ९। 'मंडूयप्पुए' माण्डूकप्लुतो नाम दशमः, यो मण्डूकप्लुत्या मण्डूक कूर्दनाकारेण यो जातो योगः स मण्डूकप्लुतयोगः कथ्यते, अयं च केवलं ग्रहेणैव सह जायते, अन्यस्य मण्डूकप्लुतिगमनासभवात्। उक्तंचात्रविषये-"चन्द्रसूर्यनक्षत्राणि प्रतिनियतगतानि, ग्रहास्त्वनियतगतयः" इति १०। युगे च छत्रातिच्छत्रयोगवर्जा नवापि योगाः प्रायो बहुशो बहुषु च देशेषु भवन्ति, किन्त्वेष छत्रातिच्छत्रयोगः कदाचित् कस्मिंश्चिदेव देशे भवति ततस्तद्विषयं सूत्रमाह-'ता एएसिणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसि णं' एतेषां प्रसिद्धानां खलु 'भंते' हे भदन्त! 'पंचण्हं संवच्छराणं' पञ्चानां संवत्सराणां मध्ये-'छत्ताइछत्तं जोगं' छत्रातिच्छत्रं योगं 'चंदे' चन्द्रः 'कंसि देसंसि' कस्मिन् देशे 'जोएइ' युनक्ति-छत्रातिच्छत्रयोगेन सह चन्द्रः कस्मिन् देशे स्थितः सन् योगं करोति? भगवानाह-'ता' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जंबुद्दीवस्स दीवस्स' जम्बूद्वीपस्य द्वीपस्योपरि 'पाईण पडीणाययाए' प्राची प्रतीच्यायतया पूर्व पश्चिमविस्तृतया, 'उदीण दाहिणाययाए' उदीचीदक्षिणायतया उत्तरदक्षिणविस्तृतया च, चशब्दोऽत्रानुक्तोऽपि द्रष्टव्यः 'जीवाए' जीवया, जीवा प्रत्यञ्चा तत्सदृशत्वाज्जीवया दवरिकया 'मंडलं' मण्डलं 'चउव्वीसेणं सएणं' चतुर्विंशेन चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन (१२४) 'छित्ता' छित्वा विभज्य मण्डलस्य चतुर्विंशत्यधिकशतभागान् कृत्वा, इयमत्र भावना-एकया दवरिकया बुद्ध्या कल्पितया पूर्वापरायतया एकया च दक्षिणोत्तरायतया मण्डलं समकालं विभज्यते, विभक्तं च सत् चतुर्भागतया जातम्, तद्यथा-एको भाग उत्तरपूर्वस्याम्, एको भागो दक्षिणपूर्वस्याम् एको भागो दक्षिणापरस्याम् एको भागः पश्चिमोत्तरस्यामिति चतुर्विंशत्यधिकशतराशेश्चतुर्भिर्भक्ते एको भाग एकत्रिंशद्भागप्रमाणो जायते, तत एकत्रिंशत्प्रमाणान् चतुरो भागान् कृत्वा 'दाहिणपुरत्थिमिल्लंसि' दक्षिणपौरस्त्ये-दक्षिणपूर्वे दक्षिणपूर्वसम्बन्धिनि 'चउभाग मंडलंसि' चतुर्भागमण्डले मण्डलस्यैकस्मिन् एकत्रिंशद्भागरूपे एकत्रिंशद्भागेभ्य इत्यर्थः, 'सत्तावीसं भागे' सप्तविंशति भागान् 'उवाइणावित्ता' उपादाय गृहीत्वा आक्रम्येत्यर्थः तदमेतनं 'अट्ठावीसइमं भागं' अष्टाविंशतितमं भागं 'वीसहा छित्ता' विंशतिधा छित्वा अष्टाविंशति

तमस्य भागस्य विंशतिभागान् कृत्वा तन्मध्यात् 'अट्ठारसभागे' अष्टादशभागान् 'उवाइणावित्ता' उपादाय आक्रम्य 'तिहिं भगेहिं' एकत्रिंशद्भागस्य सप्तविंशतिभागाक्रमणानन्तरं शेषीभूतैस्त्रिभिरेकत्रिंशद्भागसम्बन्धिभिर्भागैः, 'दोहिं कलाहिं' द्वाभ्यां च कलाभ्याम्, एकस्य एकत्रिंशत्सम्बन्धिनो भागस्य सम्बन्धिभ्यां अष्टाविंशतितमभागस्य विंशतिधा विभक्तस्याष्टादशभागग्रहणानन्तरं शेषीभूताभ्यां कलारूपाभ्यां भागाभ्यां 'दाहिणपुरत्थिमिल्लं' दक्षिणपौरस्त्यं दक्षिण पश्चिमस्थितं 'चउब्भागमंडलं' चतुर्भागमण्डलं चतुर्विंशतिशतस्य चतुर्थभागरूपं मण्डलम् 'असंपत्ते' असंप्राप्तः दक्षिणपश्चिमस्थितं मण्डलचतुर्भागमसंप्राप्यैव, 'एत्थ णं' अत्र अस्मिन् देशे खलु 'चंदे' चन्द्रः 'छत्ताइछत्तं जोयं' छत्रातिच्छत्रं योगं 'जोएइ' युनक्ति छत्रातिच्छत्रयोगं करोति। एनमेव प्रदर्शयति—'तं जहा' इत्यादि, 'तं जहा' तद्यथा 'उप्पिं चंदो' उपरि चन्द्रः 'मज्झे णक्खत्ते' मध्ये नक्षत्रम् 'हेट्ठा आइच्चे' अध आदित्यः। इत्येवं छत्रातिच्छत्राकारको योगस्तदा भवति। इह मध्ये नक्षत्रमित्युक्तत्वेन नक्षत्रस्य विशेष प्रतिपत्त्यर्थं प्रश्न निर्वचनसूत्रमाह—'तं समयं च णं' इत्यादि, 'तं समयं च णं' तस्मिन् छत्रातिच्छत्रयोगसमये च खलु 'चंदे' चन्द्रः 'केणं णक्खत्तेणं' केन किं नामकेन मध्यस्थितेन नक्षत्रेण 'जोएइ' युनक्ति योगं करोति ? भगवानाह— 'चित्ताए' चित्रया चित्रानक्षत्रेण, चित्राया एकतारकत्वादेकवचनम् तत्रापि विशेषमाह— 'चित्ताए चरमसमए' चित्रायाः चित्रानक्षत्रस्य चरमसमये अन्तिमसमये चित्रानक्षत्रस्योपभोगान्तिम काले चन्द्रश्चित्रानक्षत्रेण सह योगं युनक्तीति भावः। सू० ॥ ७ ॥

इति जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्य श्री घासीलाल व्रति विरचितायां चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिकायां व्याख्यायां द्वादशं प्राभृतं समाप्तम् ॥ १२ ॥

॥ त्रयोदशं प्राभृतम् ॥

तदेवमुक्तं द्वादशं प्राभृतम् । तत्र पञ्चसंवत्सराणाम् तेषां मासदिनमुहूर्त्तानाम्, युगगतचन्द्रर्त्तुसूर्यर्त्तूनाम्, सूर्यनक्षत्रयोगसंमेलनस्य, वृषभानुजातादि दशविधयोगानाम्, तद्गतछत्रातिच्छत्रयोगस्य च विवरणं कृतम्, साम्प्रतं त्रयोदशे प्राभृते 'कहं चंदमसो वुड्ढी' इति पूर्वप्रतिज्ञातं चन्द्रमसो वृद्धयपवृद्धिप्रकरणं प्रस्तूयते 'ता कहंते चंदमसो वड्ढो वड्ढी' इत्यादि ।

मूलम् - ता कहं ते चंदमसो वड्ढोवड्ढी आहिए ति वएज्जा, ता अट्ठपंचासीयाइं मुहुत्तसयाइं, तीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स जाव आहिएति वएज्जा ता दोसिणापक्खओ अंधकारपक्खमयमाणे चंदे चत्तारि बायालाइं मुहुत्तसयाइं छत्तालीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स जाव, जाइं चंदे रज्जइ तं जहा–पढमाए पढमं भागं, विइयाए विइयं भागं-जाव पण्णरसीए पण्णरसमं भागं, चरिमसमए चंदे रत्ते भवइ अवसेसे समए चंदे रत्तेय-विरत्तेय भवइ, इयण्णं अमावासा, एत्थ णं पढमे पव्वे अमावासे । ता अंधयारपक्खाओणं दोसिणापक्खं अयमाणे चंदे चत्तारि बायालाइं मुहुत्तसयाइं छत्तालीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स जाव, जाइं चंदे विरज्जइ, तं जहा–पढमाए पढमं भागं, विइयाए विइयं भागं जाव पण्णरसीए पण्णरसमं भागं, चरिमे समए चंदे विरत्ते भवइ, अवसेसे समए चंदे रत्ते य विरत्ते य भवइ इयण्णं पुण्णमासिणी, एत्थ णं दोच्चे पव्वे पुण्णमासिणी ॥ सूत्र ॥ १ ॥

छाया—तावत् कथं ते चन्द्रमसो वृद्धयपवृद्धी आख्याते ? इति वदेत् तावत् अष्टपञ्चाशीतानि मुहूर्त्तशतानि, त्रिंशच्च द्वाषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य यावत् आख्याते इति वदेत् । तावत् ज्योत्स्ना पक्षात् अन्धकारपक्षमयन् चन्द्रः चत्वारि द्विचत्वारिंशतानि षट् चत्वारिंशतं च द्वाषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य यावत् यानि चन्द्रो रज्यते, तद्यथा—प्रथमायां प्रथमं भागम्, द्वितीयायां द्वितीयं भागम्, यावत् पञ्चदश्यां पञ्चदशं भागम्, चरमसमये चन्द्रः रक्तो भवति अवसेसे समये चन्द्रः रक्तश्च विरक्तश्च भवति, इयं खलु अमावास्या अत्र खलु प्रथमं पर्व अमावास्या । ततः अन्धकारपक्षात् खलु ज्योत्स्ना पक्षमयन् चन्द्र चत्वारि द्विचत्वारिंशानि मुहूर्त्तशतानि, षट् चत्वारिंशतं च द्वाषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य यावत्, यानि चन्द्रः विरज्यते, तद्यथा —प्रथमायां प्रथमं भागं द्वितीयायां द्वितीयं भागम्, यावत् पञ्चदश्यां पञ्चदशं भागम्, चरमे समये चन्द्रः विरक्तो भवति अवशेषे समये चन्द्रः रक्तश्च विरक्तश्च भवति,इयं खलु पूर्णमासी, अत्र खलु द्वितीयं पर्व पूर्णमासी ॥ सू० ॥ १ ॥

व्याख्या—'ता कहं ते' इति 'ता' तावत् 'ते' त्वया हे भगवन् 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'चंदमसो' चन्द्रमस. चन्द्रस्य 'वड्ढोवड्ढी' वृद्धयपवृद्धी वृद्धिश्च हानिश्च 'आहिए' आख्याते कथिते ' 'विवएज्जा' इति वदेत वदतु कथयतु । चन्द्रस्य कियत्कालं यावत्

वृद्धिः कियत्कालं यावत् अपवृद्धिस्त्वया कथिते ? इति प्रतिपादयतु, इति भावः । एवं गौतमेन पृष्टे भगवनाह—'ता अट्ठ' इत्यादि 'ता' तावत् 'अट्ठपंचासीयाइं मुहुत्तसयाइं' अष्ट पञ्चाशीतानि, मुहूर्त्तशतानि पञ्चाशीत्यधिकानि अष्टौ मुहूर्त्तशतानि, 'मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्स 'तीसं च बावट्ठिभागे जाव' त्रिंशच्च द्वाषष्टिभागान् यावत् मुहूर्त्तस्य त्रिंशद् द्वाषष्टिभागपर्यन्तं ($८८५\frac{३०}{६२}$) वृद्ध्यपवृद्धी 'आहिए' आख्याते 'तिवएज्जा' इति वदेत् कथयेत् स्वशिष्येभ्यः । तथाहि—एकस्य चन्द्रमासस्य मध्ये एकस्मिन् पक्षे शुक्लपक्षे वृद्धिः, एकस्मिश्चपक्षे कृष्णपक्षे अपवृद्धिर्भवति । चन्द्रमासस्य परिमाणम् एकोनत्रिंशदहोरात्राः एकस्य चाहोरात्रस्य द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागाः ($२९\frac{३२}{६२}$) अहोरात्राणां त्रिंशन्मुहूर्त्तकरणार्थे एकोनत्रिंशत् त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि—सप्तत्यधिकानि अष्टौ शतानि (८७०) मुहूर्त्तानाम् येऽपि चोपरितना द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभागास्तेऽपि मुहूर्त्तसत्कभागकरणार्थं त्रिंशता गुण्यन्ते जातानि षष्ट्यधिकानि नवशतानि (९६०) द्वाषष्टिभागानाम्, एषां मुहूर्त्तानयनार्थं द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते, लब्धा पञ्चदशमुहूर्त्ताः (१५), ते मुहूर्त्तराशौ सप्तत्यधिकाष्टशतरूपे प्रक्षिप्यन्ते, जातानि पञ्चाशीत्यधिकानि अष्टौ शतानि (८८५) शेषा येऽवतिष्ठन्ते त्रिंशत्, ते च त्रिंशत् एकस्य मुहूर्त्तस्य द्वाषष्टिभागाः ($८८५\frac{३०}{६२}$) एतदेव सूत्रकारः प्रतिविशेषाववोधार्थं पृथक् पृथक्त्वेन स्पष्टयति—

'ता जोसिणापक्खाओ' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जोसिणापक्खाओ' ज्योत्स्नापक्षात्—ज्योत्स्ना चन्द्रिका, तत्प्रधानः पक्षः ज्योत्स्ना पक्षः शुक्लपक्ष इत्यर्थः तस्मात् 'अंधकारपक्खमयमाणे' अन्धकारपक्षम्—अन्धकारप्रधानः पक्षः अन्धकारपक्षः कृष्णपक्ष इत्यर्थः, तम् अयन् प्राप्नुवन् अन्धकारपक्षे गच्छन् 'चंदे' चन्द्रः 'चत्तारि बायालाइं मुहुत्तसयाइं' चत्वारि द्विचत्वारिंशानि द्विचत्वारिंशदधिकानि मुहूर्त्तशतानि (४४२) 'छत्तालीसं च बावट्ठिभागे जाव' षट् चत्वारिंशत च द्वाषष्टिभागान् एकस्य मुहूर्त्तस्य यावत् एतावत्कालपर्यन्तम् अपवृद्धि प्राप्नोतीति भावः । 'जाइं' यानि—यथोक्तसंख्यकानि द्वाषष्टिभागसहितमुहूर्त्तशतानि ($८८५\frac{३०}{६२}$) यावत् 'चंदे' चन्द्रः 'रज्जइ' रज्यते राहुविमानप्रभया रक्तो भवति । कथमित्याह—'तं जहा' इत्यादि, 'तं जहा' तद्यथा—'पढमाए' प्रथमायां कृष्णपक्ष प्रतिपल्लक्षणायां तिथौ तत्परिसमाप्तिसमये 'पढमं भागं' प्रथमं भागं परिपूर्णं पञ्चदशं भागं यावद् राज्यते 'बिइयाए' द्वितीयायां तिथौ परिसमाप्ति प्राप्नुवत्यां सत्यां 'बिइयं भागं' द्वितीयं पञ्चदशं भागं यावत् रज्यते ।

'जाव' यावत्—यावत्पदेन तृतीयायां तृतीयं पञ्चदशं भागम् ३, चतुर्थ्यां चतुर्थं पञ्चदशं भागम् ४, पञ्चम्यां पञ्चमं पञ्चदशं भागम् ५, षष्ठ्यां षष्ठं पञ्चदशं भागम् ६, सप्तम्यां सप्तमं पञ्चदशं भागम् ७, अष्टम्यामष्टमं पञ्चदश भागम् ८, नवम्यां नवमं पञ्चदशं भागम् ९, दशम्यां दशमं पञ्चदशं भागम् १०, एकादश्यामेकादशं पञ्चदशं भागम् ११, द्वादश्यां द्वादशं पञ्चदशं भागम् १२, त्रयोदश्यां त्रयोदशं पञ्चदशं भागम् १३, चतुर्दश्यां चतुर्दशं पञ्चदशं भागम् १४, अग्रे सूत्रकार एवाह—'पण्णरसीए' इत्यादि, 'पण्णरसीए' पञ्चदश्याम्—अमावास्यायां समाप्नुवत्या मित्यर्थः 'पण्णरसमं भागं' पञ्चदशं परिपूर्णं पञ्चदशं भागं यावत् चन्द्रो रज्यते। तस्याश्च पञ्चदश्या अमावास्यारूपायास्तिथेः 'चरिमसमए' चरमसमये 'चंदे' चन्द्रः 'रत्ते भवइ' राहुविमानप्रभया सर्वात्मना परिपूर्णभावेन रक्तो भवति, किञ्चिन्मात्रोऽपि भागश्चन्द्रस्य न दृश्यते चन्द्रस्तिरोहितो भवतीति तात्पर्यार्थः। षोडशो भागो यो द्वाषष्टिभागद्वयात्मकः सदाऽनावृत्तस्तिष्ठति स स्तोकत्वेना दृश्यत्वान्न गण्यते। 'अवसेसे समए' अवशेषे पञ्चदश्यास्तिथेश्चरमसमयातिरिक्ते समये अन्धकारपक्षस्य प्रथमसमयादारभ्य शेषेषु पञ्चदशीतिथेश्चरमसमयात्पूर्वं पूर्वं ये समयास्तेषु सर्वेषु समयेषु 'चंदे' चन्द्रः 'रत्ते य विरत्ते-य भवइ' रक्तश्च विरक्तश्च भवति कियदंशानां राहुणा आवृतत्वात् कियदंशानां चानावृतत्वात्। अन्धकार पक्षवक्तव्यताया उपसंहार—'इयण्णं' इत्यादि, 'इयण्णं' इयं खलु इयम् अन्धकारपक्षे या पञ्चदशीतिथिः खलु 'अमावासा' अमावास्या कथ्यते। 'एत्थ णं' अत्र युगे खलु 'पढमे पव्वे अमावासा' प्रथमं पर्व अमावस्या, इयममावास्या, युगस्य प्रथमं पर्वसमस्ति मुख्यत्वेन अमावास्या पौर्णमास्योरेव पर्वशब्देनाभिधीयमानत्वात्। अथ कथं द्विचत्वारिंशदधिकानि चत्वारि मुहूर्त्तशतानि, एकस्य च मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशद् द्वाषष्टि भागाः? अत्रोच्यते—इह शुक्ल पक्षः कृष्णपक्षश्च चन्द्रमासस्यार्द्धमर्द्धम्, चन्द्रमास्य द्वात्रिंशद् द्वाषष्टिभाग युक्तैकोन त्रिंशद्रात्रिन्दिवात्मकत्वात्तस्य चन्द्रमासार्द्धस्य पक्षरूपस्य प्रमाणं—चतुर्दशरात्रिन्दिवानि, एकस्य च रात्रिन्दिवस्य सप्तचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः ($14\frac{47}{62}$) इत्येवं रूपं भवति, एकं रात्रिन्दिवं त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकमिति चतुर्दशत्रिंशता गुण्यते, जातानि विंशत्यधिकानि चत्वारि मुहूर्त्तशतानि (४२०) येऽपि चोपरितनाः सप्तचत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागाः (४७) तेऽपि मुहूर्त्तभागकरणार्थं त्रिशता गुण्यन्ते, जातानि दशोत्तराणि चतुर्दशशतानि (१४१०) एषां द्वाषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धा द्वाविंशति मुहूर्त्ताः, ते मुहूर्त्तराशौ विंशत्यधिक चतुःशतरूपे (४२०) प्रक्षिप्यन्ते, जातानि द्विचत्वारिंशदधिकानि चत्वारि मुहूर्त्तशतानि (४४२), शेषास्तिष्ठन्ति मुहूर्त्तस्य षट्चत्वारिंशद् (४६) द्वाषष्टिभागाः। तदेवमागतं सूत्रोक्तं प्रमाणम् ($442\frac{46}{62}$) इति।

तदेवं चन्द्रस्यापवृद्धिः प्रदर्शिता, साम्प्रतं तस्य वृद्धिमभिधित्सुराह–'ता अंधकारपक्खाओणं' इत्यादि 'ता' तावत् 'अंधकारपक्खाओणं' अन्धकारपक्षात् कृष्णपक्षात् खलु 'जोसिणा पक्खं' ज्योत्स्नापक्षं शुक्लपक्षम् 'अयमाणे' अयन् गच्छन् 'चंदे' चन्द्रः 'चत्तारि बा।लाइं मुहुत्तसयाइं' चत्वारि द्विचत्वारिंशानि द्विचत्वारिंशदधिकानि मुहूर्त्तशतानि 'मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्य 'छयालीस बावट्ठिभागे जाव' षट्चत्वारिंशतं द्वाषष्टिभागान् यावत् (४४२$\frac{४६}{६२}$) वृद्धिमुपगच्छतीति भावः। 'जाइं, यानि यथोक्तसंख्यकानि द्वाषष्टिभागसहितमुहूर्त्तशतानि यावत् 'चंदे' चन्द्रः 'विरज्जइ' विरज्यते विरक्तो भवति राहुविमानप्रभया शनैः शनैरनावृतो भवति। तत्प्रकारमाह–' तं जहा' इत्यादि 'तं जहा' तद्यथा–'पढमाए पढमं भागं प्रथमाया शुक्लपक्ष प्रतिपल्लक्षणायां तिथौ प्रथमं पञ्चदशं भागं यावत् चन्द्रो विरक्तो भवति १। 'विइयाए विइयं भागं' द्वितीयायां तिथौ द्वितीयं पञ्चदशं भागं यावत् विरक्तो भवति २। 'जाव' यावत् यावत्पदेनात्रापि अन्धकारपक्षगतरक्त प्रकरणवद् विरक्त प्रकारणोऽपि तृतीयातिथित आरभ्य चतुर्दश्यां तिथौ चतुर्दश पञ्चदशं भागं यावत्, इत्येतत्पर्यन्तं सर्वं वाच्यम्। पच्चदशी विषयं सूत्रकार एवाह–'पण्णरसीए' इत्यादि 'पण्णरसीए' पञ्चदश्यां तिथौ पूर्णिमायां तिथौ 'पण्णरसमं' पञ्चदशं–पञ्चदशं भागं यावत् चन्द्रो विरक्तो भवतीति। 'चरिमे समए' चरमे समये पञ्चदश्याश्चरमसमये 'चंदे' चन्द्रः 'विरत्ते भवइ' विरक्तो भवति सर्वात्मना राहु प्रभयाऽनावृत्तो भवति. अत्र चन्द्रस्य सर्वे भागा दृश्यन्ते यश्च षोडशो भागाः स तु सर्वदाऽनावृत एवावतिष्ठतेऽतो नास्य चर्चा कृता। 'अवसेसे समए' अवशेषे पञ्चदश्याश्चरमसमयातिरिक्ते समये शुक्लपक्षप्रथमसमयादारभ्य पञ्चदश्याश्चरमसमयात् पूर्वं पूर्वं ये समयास्तेषु सर्वेषु 'चंदे' चन्द्रः 'रत्ते य विरत्ते य भवइ' रक्तश्च विरक्तश्च भवति कियदंशानां राहुणाऽऽवृतत्वात्, कियदंशानां चानावृत त्वात्। मुहूर्त्तसंख्याभावना च कृष्णपक्षप्रकरणप्रदर्शितवदेवात्रापि कर्त्तव्या। अथ शुक्लपक्ष वक्तव्यताया उपसंहारमाह–'इयण्णं' इत्यादि, 'इयण्णं' इयम् अनन्तरोक्ता पञ्चदशी खलु तिथिः 'पुण्ण मासिणी' पौर्णमासी कथ्यते। 'एत्थ णं' अत्र युगे खलु 'दोच्चे पव्वे' द्वितीयं पर्व 'पुण्णमासिणी' पौर्णमासी भवति, अमावास्यापौर्णमास्योरेव पर्वत्वेन प्रसिद्धत्वात्। सू० । १ ॥

पूर्वं चन्द्रस्य वृद्ध्यपवृद्धी अधिकृत्य अमावास्या पौर्णमासी च प्रदर्शिता, साम्प्रतम्–एतादृश्योऽमावास्याः पौर्णमास्यश्च एकस्मिन् युगे कियन्त्यः कियन्त्यो भवन्ति ? इति तासां सर्व संख्यामाह––'तत्थ खलु इमाओ' इत्यादि।

मूलम्- तत्थ खलु इमाओ बावट्ठी पुण्णमासिणीओ बावट्ठी अमावासाओ पण्णत्ताओ। बावट्ठी एए कसिणा रागा बावट्ठी एए कसिणा विरागा। एए चउव्वीसे पव्वसए एए चउव्वीसे कसिणरागविरागसए। जावइयाणं पंचण्हं संवच्छराणं समया एगेणं चउवीसेणं समयसएण ऊणगा एवइया परित्ता असंखेज्जा देस राग विरागसया भवंतीति मक्खायं। ता अमावासाओ णं पुण्णमासिणी चत्तारिबायालाइं मुहुत्तसयाइं छत्तालीसं बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स आहिए तिवएज्जा। ता पुण्णमासिणीओणं अमावासा चत्तारि बयालाइं मुहुत्तसयाइं छत्तालीसं बावट्ठि भागे मुहुत्तस्स आहिए तिवएज्जा। ता पुण्णमासिणीओणं पुण्णमासिणी अट्ठ पंचासीयाइं मुहुत्तसयाइं आहिएतिवएज्जा, एस णं एवइए चंदे मासे, एसणं एवइए सगले जुगे ॥सू० २॥

छाया—तत्र खलु इमा द्वाषष्टिः पौर्णमास्यः, द्वाषष्टिरमावास्याः प्रज्ञप्ताः। द्वाषष्टिरेते कृत्स्ना रागाः, द्वाषष्टिरेते कृत्स्ना विरागाः। एते चतुर्विंशं पर्वशतम्। एते चतुर्विंशं कृत्स्नं रागविरागशतम्। यावत्काः पञ्चानां संवत्सराणां समयाः एकेन चतुर्विंशेन समयशतेन ऊनकाः, एतावत्काः परीता असंख्येया देशराग विरागसमया भवन्तीति आख्यातम्। तावत् अमावास्यातः खलु पौर्णमासी चत्वारि द्विचत्वारिंशानि मुहूर्त्तशतानि, षट्चत्वारिंशत द्वाषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य आख्यातम् इति वदेत्। तावत् पौर्णमासीत खलु अमावास्या चत्वारि द्विचत्वारिंशानि मुहूर्त्तशतानि, षट्चत्वारिंशतं द्वाषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य आख्याता इति—वदेत। तावत् अमावास्यातः खलु अमावास्या अष्ट पञ्चाशीतानि मुहूर्त्तशतानि, त्रिंशतं च द्वाषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य आख्यातम् इति वदेत्। तावत् पौर्णमासीतः खलु पौर्णमासी अष्ट पञ्चाशीतानि मुहूर्त्तशतानि, त्रिंशत च द्वाषष्टिभागान मुहूर्त्तस्य आख्याता इति वदेत्। एष खलु एतावत्कः चान्द्रः मासः। एष खलु एतावत्कं शकलं युगम्। सू०-२ ॥

व्याख्या—'तत्थ खलु' इति, 'तत्थ खलु' तत्रैकस्मिन् पञ्च संवत्सरात्मके युगे खलु 'इमाओ' इमाः पूर्वोक्ता एवं स्वरूपा 'बावट्ठी पुण्णमासिणीओ' द्वाषष्टिः पौर्णमास्यः तथा 'बावट्ठी अमावासाओ' द्वाषष्टिरमावास्या 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ताः कथिताः। तथा युगे चन्द्रमस 'एए' एते पूर्वोक्तस्वरूपाः 'बावट्ठी' द्वाषष्टि 'कसिणा रागा' कृत्स्ना परिपूर्णाः रागा, अमावस्यानां युगे द्वाषष्टिसंख्यकत्वात् तासु पौर्णमासीष्वेव च चन्द्रस्य परिपूर्णरागसंभवात्। 'एए' एते 'बावट्ठी द्वाषष्टि 'कसिणा' कृत्स्ना परिपूर्णा 'विरागा' विरागा सपूर्णत्वेन रागाभावाः, युगे पौर्णमासीनां द्वाषष्टिसंख्यकत्वात तास्वेव आमावास्यासु च चन्द्रस्य परिपूर्णविरागसंभवात। 'एए' एतानि 'चउव्वीसे पव्वसए' चतुर्विंशं चतुर्विंशत्यधिकं पर्वशतं (१२४) भवति। अमावास्या पौर्णमासीनामेव पर्वसंज्ञा वर्त्तते, ताश्च पृथक् २ द्वाषष्टि–द्वाषष्टि संख्यका भवन्तीति तेषां संमीलने चतुर्विंशत्यधिकशतसंख्यासद्भावात। एवमेव 'एए चउव्वीसे कसिणराग

विरागसए' एतत् चतुर्विंशत्यधिकं कृत्स्न रागविरागशतम् युगमध्ये कृत्स्नरागविरागयो र्द्वापष्टि द्वाषष्टि संख्यकत्वात् तयोः सम्मेलने भवति चतुर्विंशत्यधिकं कृत्स्नरागविराग-शतमिति । 'जावइयाणं' यावत्का-यावत्परिमिताः **पंचण्हं संवच्छराणं'** पञ्चानां संवत्सराणां **'समया'** समया भवन्ति ते **'एगेणं चउव्वीसेणं सएणं'** एकेन चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन **'ऊणगा'** ऊनका. न्यूनाः चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन ऊनी कृते यावन्तः समया भवन्ति **'एवइया'** एतावत्का· इयन्तः 'परित्ता' परीताः परिमिताः **असंखेज्जा'** असंख्येया **'देसरागविरागस-मया'** देशरागविरागसमया भवन्ति, एतेषु सर्वेष्वपि समयेषु चन्द्रस्य देशनो रागविराग-सद्भावात् । अत्र यत 'चतुर्विंशत्यधिकेन शतेन ऊना समया' इति कथितं तत् 'चतुर्विंशत्य-धिकशत समयानां मध्ये द्वापष्टि समयेषु पौर्णमासी सत्केषु कृत्स्नो विरागो भवतीत्यतस्त द्वर्जनमधिकृत्य ऊना', प्रोक्तम् । **'तिमक्खायं'** इति आख्यातं—भगवतेति ।

साम्प्रतम् अमावास्यातोऽनन्तरं पौर्णमासी, पौर्णमासीतोऽनन्तरं चामावास्या कियत्सु मुहूर्त्तेषु गतेषु सत्सु समायाति ? इत्यादि निरूपयन्नाह—**'ता अमावासाओणं'** इत्यादि सर्वं मूलसूत्रगम्यम्, तथाहि—'अमावास्यातोऽनन्तरं पौर्णमासो षट् चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभाग-युक्तद्विचत्वारिंशदधिकचतुः मुहूर्त्तान् (४४२। $\frac{४६}{६२}$ व्यतिक्रम्यायाति, एतावत एव मुहूर्त्तान् व्यतिक्रम्य पौर्णमासतोऽमावास्याऽऽयातीति भावः । अथामावास्यातोऽमावास्या, पौर्णमासीतः पौर्ण-मासी कियन्मुहूर्त्तानन्तरऽमायातीति प्रदर्शयति—**'ता अमावासाओणं'** इत्यादि, एतदपि सुगमम् । अय भावः—अमावास्यातोऽनन्तरं चन्द्रमासस्यार्द्धेन पौर्णमासी समागच्छति, पौर्णमासीतोऽनन्त-रमर्द्धेन चन्द्रमासेन अमावास्या समागच्छति । अमावास्यातोऽमावास्या, पौर्णमासीतश्च पौर्ण-मासीत्येदद्वयं परिपूर्णेन चन्द्रमासेन भवतोति अमावास्यातोऽमावास्या, पौर्णमासीचेत्येतद् द्वयमपि त्रिंशदद्वापष्टिभागयुक्त पञ्चाशीत्युत्तराष्टशतमुहूर्त्तानन्तरम् (८८५। $\frac{३०}{६२}$) परस्पर मेका मावास्यातो द्वितोयाऽमास्या, एक पौर्णमासीतो द्वितीया पौर्णमासी समायातीति । एतत्कथमि-त्याह—चन्द्रमासस्य एकोनत्रिंशद्दिनानि द्वात्रिंशच्च द्वाषष्टि भागाः (२९।३२।) भवन्ति । एकस्याहोरात्रस्य त्रिशन्मुहूर्त्ता इति पूर्वोक्तराशे स्त्रिशता गुणने समायति एकपूर्णिमातो द्वितीयपूर्णिमा-पर्यन्तकालस्य यथोक्ता 'मुहूर्त्तसंख्या (८८५। $\frac{३०}{६२}$) इति । उपसंहारमाह—**'एसणं'** इत्यादि **'एसणं'** एषः खलु पञ्चाशीत्यधिकानि अष्टौ मुहूर्त्तशतानि, एकस्य मुहूर्त्तस्य त्रिशच्च द्वाषष्टि-भागाः, इत्येतावान् **'एवइए'** एतावत्कः एतावन्मुहूर्त्तप्रमाणकः **'चंदे मासे'** चान्द्रो मासो

भवति । 'एस णं' एतत् प्रसिद्धं 'एवइए' एतावत्प्रमाणकं खलु 'सगले जुगे' शकलं खण्डरूपं युगं चन्द्रमासप्रमितं युगशकलमेतदित्यर्थः । अयं भावःचन्द्रमासप्रमितमिति द्वाषष्टि-चन्द्रमासात्मकम्, अतएव चतुर्विंशत्यधिकशतपर्वात्मकं खण्डरूपं युगं भवतीति ॥ सू० २॥

साम्प्रतं चन्द्रो यावत्सु मण्डलेपु चन्द्रार्धमासेन चारं चरति तन्निरूपयन्नाह—'ता चंदेणं' इत्यादि ।

मूलम्—ता चंदेणं अद्धमासेणं चंदे कइ मंडलाइं चरइ ? चोद्दस चउ०भागमंडलाइं चरइ एगंच चउव्वीसं सयभागं मंडलस्स । ता आइच्चेणं अद्धमासेणं चंदे कइ मंडलाइं चरइ ? ता सोलस मंडलाइं चरइ, सोलस मंडलचारीतया अवराइं खलु दुवे अट्ठगाइं चंदे केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविसिता २ चारं चरइ । कयराइं खलु दुवे अट्ठगा-इं जाइं चंदे केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविसित्ता २ चारं चरइ ? इमाइं खलु ते दुवे अट्ठगाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णगाइ सयमेव पविसित्ता २ चारं चरइ, तं जहा निक्खममाणे चेव अमावासं तेणं पविसमाणे चेव पुण्णमासिं तेणं, एयाइ खलु दूवे अट्ठगाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविसित्ता २ चारं चरइ । ता पढमा-यणगए चंदे दाहिणाए भागाए पविसमाणे सत्त अद्ध मंडलाइं जाइं चंदे दाहिणाए भागाए पविसमाणे चारं चरइ । कयराइं खलु ताइं सत्त अद्धमंडलाइं जाइं चंदे दाहिणाए भागाए पविसमाणे चारं चरइ । ? इमाइं खलु ताइं सत्त अद्धमंडलाइं जाइं चंदे दाहिणाए भागाए पविसमाणे चारं चरइ, तंजहा—बितिए अद्धमंडले चउत्थे अद्ध मंडले २ छट्ठे अद्धमंडले ३ अट्ठमे अद्धमंडले, ४ दसमे अद्धमंडले, ५ बारसमे अद्ध मंडले, ६ चउद्दसमे अद्धमंडले७ । एमाइं खलु ताइं सत्त अद्धमंडलाइं जाइं चंदे दाहिणाए भागाए पविसमाणे चारं चरइ । ता पढमायणगए चंदे उत्तराए भागाए पविस-माणे छ अद्धमंडलाइं, तेरस य सत्तट्ठिभागाइं अद्धमंलस्स जाइं चंदे उत्तराए भागाए पविसमाणे चारं चरइ । कयराइं खलु ताइं छ अद्ध-मंडलाइं, तेरस य सत्तट्ठिभागाइं अद्धमंडलस्स जाइं चंदे उत्तराए भागाए पविसमरणे चारं चरइ ? इमाइं खलु ताइं छ अद्धमंलाइं, तेरसय सत्तट्ठिभागाइं—अद्धमडलस्स जाइं चंदे उत्तराए भागाए पविसमाणे चारं चरइ तं जहा—तइए अद्धमं-डले, १ पंचमे अद्धमंडले, २ सत्तमे अद्धमंडले, ३ नवमे अद्धमंडले, ४ एक्कारसमे अद्धमंडले, ५ तेरसमे अद्धमंडले, ६ पन्नरसमंडलस्स तेरस सत्तट्ठिभागाइं, एयाइं खलु ताइं छ अद्धमण्डलाइं, तेरसय सत्तट्ठि भागाइं, अद्धमंडलस्स, जाइं चंदे उत्तराए भागाए पविसमाणे चारं चरइ । एयावया च पढमे चंदायणे समत्ते भवइ । ता णक्खत्ते

अद्धमासे नो चंदे अद्धमासे, ता चंदे अद्धमासे णो णक्खत्ते अद्धमासे । ता नक्खत्ताओ अद्धमासाओ से चंदे चंदेण अद्धमासेणं किमधियं चरइ ? ता एगं अद्धमंडलं चत्तारिय सत्तट्ठिभागाइं अद्धमंडलस्स, सत्तट्ठिभागं एक्कतीसाए छेत्ता णवभागाइं । ता दोच्चायणगए चंदे पुरत्थिमिल्लाए भागाए णिक्खममाणे सत्त चउप्पण्णाइं जाइं चंदे परस्स चिण्णं पडिचरइ सत्त तेरसगाइं जाइं चंदे अप्पणा चिण्णं चरइ ता दोच्चायणगए चंदे पच्चत्थिमाए भागाए निक्खममाणे छ चउप्पण्णाइं जाइं चंदे परस्स चिण्णं पडिचरइ–छ तेरसगाइं चंदे अप्पणो चिण्णं पडिचरइ, अवरगाइं खलु दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे केणइ असामन्नगाइं सयमेव पविसित्ता २ चारं चरइ । कयगाइं खलु ताइं दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविसित्ता २ चारं चरइ ? इमाइं खलु ताइं दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविसित्ता २ चारं चरइ तं जहा–सव्वब्भंतरे चेव मंडले, सव्ववाहिरे चेव मंडले । सव्व एयाइं खलु ताइं दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे केणइ जाव चारं चरइ । एयावया दोच्चे चंदायणे समत्ते भवइ । ता णक्खत्ते मासे नो चंदे मासे, चंदे मासे नो णक्खत्ते मासे । ता णक्खत्ताओ मासाओ चंदे चंदेणं मासेणं किमधियं चरइ ? ता दोअद्धमंडलाइं चरइ, अट्ठ य सत्तट्ठिभागाइं अद्धमंडलस्स, सत्तट्ठिभागं च एक्कतीसहा छेत्ता अट्ठारसभागाइं । ता तच्चायणगए चंदे पच्चत्थिमाए भागाए पविसमाणे वाहिराणंतरस्स पच्चत्थिमिल्लस्स अद्धमंडलस्स इगतालीसं सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स य चिण्णं पडियरइ, तेरससत्तट्ठि भागाइं जाइं चंदे परस्स चिण्णं पडिचरइ, तेरस सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स चिण्णं पडिचरइ । एयावया च वाहिराणंतरे पच्चत्थिमिल्ले अद्धमंडले समत्ते भवइ । ता तच्चायणगए चंदे पुरत्थिमाए भागाए पविसमाणे वाहिरतच्चस्स पुरत्थिमिल्लस्स अद्धमंडलस्स इगतालीसं सत्तट्ठि भागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स चिण्णं पडिचरइ, तेरस सत्तट्ठिभागाइं जाइं चंदे परस्स चिण्णं पडिचरइ, तेरस सत्तट्ठि भागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स य चिण्णं पडिचरइ, एतावताव वाहिरतच्चे पुरत्थिमिल्ले अद्धमंडले समत्ते भवइ । ता तच्चायणगए चंदे पच्चत्थिमाए भागाए पविसमाणे वाहिर चउत्थस्स पच्चत्थिमिल्लस्स अद्धमंडलस्स अट्ठसत्तट्ठिभागाइं सत्तट्ठिभागं च एक्कतीसहा छित्ता अट्ठारसभागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स य चिण्णं पडिचरइ । एतावता व वाहिरचउत्थ पच्चत्थिमिल्ले अद्धमंडले समत्ते भवइ । एवं खलु चंदेणं मासेणं चंदे तेरस चउप्पण्णगाइं दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे परस्स चिण्णं पडिचरइ, तेरस तेरसगाइं जाइं चंदे अप्पणो चिण्णं पडिचरइ, दुवे इगतालीसगाइं अट्ठ सत्तट्ठिभागाइं, सत्तट्ठिभागं च एक्कतीसधा छित्ता अट्ठारसभागाइं जाइं चंदे अप्पणो परस्स य चिण्णं पडिचरइ, अवराइं

खलु दुवे तेरसगाइं जाइं चंदे केणइ असामन्नगाइं सयमेवं पविसित्ता २ चारं चरइ। इच्चेसा चंदमसो अभिगमणणिक्खमण-वुड्ढि-निवुड्ढि अणवट्ठि य संठाणा संठिई-विउव्वणगिड्ढिपत्ते रूवी 'चंदे देवे, चंदे देवे' आहिएति वएज्जा। सूत्र ॥३॥

छाया—तावत् चान्द्रेण अर्द्धमासेन चन्द्रः कति मण्डलानि चरति? तावत् चतुर्दश सचतुर्भागमण्डलानि चरति, एकं च चतुर्विंशं शतभागं मण्डस्य। तावत् आदित्येन अर्द्धमासेन चन्द्रः कति मण्डलानि चरति? तावत् षोडश मण्डलानि चरति षोडशमण्डलचारी तदा अपरे खलु द्वे अष्टके ये चन्द्रः केनापि असामान्यके स्वयमेव प्रविश्य प्रविश्य चारं चरति। कतरे खलु द्वे अष्टके ये चन्द्रः केनापि असामान्यके स्वयमेव प्रविश्य चारं चरति? इमे खलु ते द्वे अष्टके ये चन्द्रः केनापि असामान्यके स्वयमेव प्रविश्य २ चारं चरति, तद्यथा निष्क्रामन् चैव अमावास्यान्तेन, प्रविशन् चैव पौर्णमास्यान्तेन, एते खलु द्वे अष्टके ये चन्द्रः केनापि असामान्यके स्वयमेव प्रविश्य २ चारं चरति। तावत् प्रथमायनगतश्चन्द्रो दक्षिणस्माद् भागात् प्रविशति, सप्त अर्द्ध मण्डलानि, यानि चन्द्रः दक्षिणस्माद् भागात् प्रविशन् चारं चरति। कतराणि खलु तानि सप्तअर्द्धमण्डलानि यानि चन्द्र· दक्षिणस्माद् भागात् प्रविशन् चारं चरति? इमानि खलु तानि सप्त अर्द्ध मण्डलानि यानि चन्द्रः दक्षिणस्माद् भागात् प्रविशन् चारं चरति, तद्यथा—द्वितीयमर्द्धमण्डलम् १, चतुर्थमर्द्धमण्डलम् २, षष्ठमर्द्धमण्डलम् ३, अष्टममर्द्धमण्डलम् ४, दशममर्द्धण्डलम् ५, द्वादशमर्द्धमण्डलम् ६, चतुर्दशमर्द्धमण्डलम् ७, एतानि खलु तानि सप्त अर्द्धमण्डलानि यानि चन्द्रः दक्षिणेन भागेन प्रविशन् चारं चरति। तावत् प्रथमायनगतः चन्द्र उत्तरेण भागेन प्रविशन् षड् अर्द्धमण्डलानि त्रयोदश सप्तषष्टिभागान् अर्द्धमण्डलस्य यानि चन्द्र उत्तरेण भागेन प्रविशन् चारं चरति। कतराणि खलु तानि षड् अर्द्धमण्डलानि त्रयोदशंच सप्तष्टिभागा अर्द्धमण्डलस्य, यानि चन्द्र उत्तरस्माद् भागात् प्रविशन् चारं चरति? इमानि खलु तानि षड् अर्द्धमण्डलानि त्रयोदश च सप्तषष्टिभागा अर्द्धमण्डलस्य यानि चन्द्र उत्तरस्माद् भागात् प्रविशन् चारं चरति, तद्यथा-तृतीयमर्धमण्डलम् १ पञ्चममर्धमण्डलम् २, सप्तममर्धमण्डलम् ३, नवममर्धमण्डलम् ४, एकादशमर्धमण्डलम् ५, त्रयोदशमर्धमण्डलम् ६, पञ्चदशमण्डलस्य त्रयोदशसप्तषष्टिभागाः। एतानि खलु तानि षड् अर्धमण्डलानि त्रयोदश च सप्तषष्टि भागाः अर्धमण्डलस्य यानि चन्द्र उत्तरस्माद भागात् प्रविशन् चारं चरति। एतावताच प्रथमं चान्द्रायणं समाप्त भवति। तावत् नाक्षत्रोऽर्धमासः नो चन्द्रोऽर्धमासः, तावत् चन्द्रोऽर्धमासः नो नाक्षत्रोऽर्धमासः। तावत् नाक्षत्रात् अर्धमासात् स चन्द्रः चान्द्रेण अर्धमासेन किमधिकं चरति, तावत् एकमर्द्धमण्डलं चरति, चतुरश्च सप्तषष्टिभागान् अर्धमण्डलस्य सप्तषष्टिभागं एकत्रिंशता छित्वा नवभागान्। तावत् द्वितीयायनगतः चन्द्रः पौरस्त्यात् भागात् निष्क्रामन् सप्तचतुष्पञ्चाशत्कानि यानि चन्द्रःपरस्य चीर्णानि प्रतिचरति सप्तत्रयोदशकानि यानि चन्द्रे आत्मना चीर्णानि चरति। तावत् द्वितीयायनगतश्चन्द्रः पाश्चात्यात् भागात् निष्क्रामन् षट् चतुष्पञ्चाशत्कानि यानि चन्द्रः परस्य चीर्णानि प्रतिचरति, षट् त्रयोदशकानि चन्द्र आत्मनो चीर्णानि प्रतिचरति, अपरे खलुते द्वे त्रयोदशके ये चन्द्रः केनापि असामान्यके स्वयमेव प्रविश्य २ चारं चरति?

कतरे खलु ते द्वे त्रयोदशके ये चन्द्रः केनापि असामान्यके स्वयमेव प्रविश्य चारं चरति ? इमे ते द्वे त्रयदशके ये चन्द्रः केनापि असामान्यके स्वयमेव प्रविश्य २ चारं चरति, तद्यथा –सर्वाभ्यन्तरं चैव मण्डलं, सर्ववाह्यं चैव मण्डलम् । एते खलु ते द्वे त्रयोदशके ये चन्द्रः केनापि यावत् चारं चरति । एतावता द्वितीयं चन्द्रायणं समाप्तं भवति तावत् नाक्षत्रो मासो नो चान्द्रो मासः, चान्द्रो मासो नो नाक्षत्रो मासः । तावत् नाक्षत्रात् मासात् चन्द्रः चान्द्रेण मासेन किमधिकं भवति ? तावत् द्वे अर्धमण्डले चरति अष्ट च सप्तषष्टि भागान् अर्द्धमण्डलस्य, सप्तषष्टिभागं च एकत्रिंशद्धा छित्वा अष्टादश भागान् । तावत् तृतीयायनगतः चन्द्र पाश्चात्येन भागेन प्रविशन् वाह्यानन्तरस्य पाश्चात्यस्य अर्द्धमण्डलस्य एक चत्वारिंशतं सप्तषष्टिभागान् यान् चन्द्र आत्मन परस्य चीर्णान् प्रतिचरति, त्रयोदश सप्तषष्टिभागान् यान् चन्द्र परस्य चिर्णान् प्रतिचरति, त्रयोदश सप्तषष्टि भागान् यान् चन्द्रः आत्मनः परस्य चीर्णान् प्रतिचरति । एतावता वाह्यान्तरं पाश्चात्यम् अर्द्धमण्डलं समाप्तं भवति । तावत् तृतीयायनगतः चन्द्र पौरस्त्येन भागेन प्रविशन् वाह्य तृतीयस्य पौरस्त्यस्य अर्धमण्डलस्य एकचत्वारिंशतं सप्तषष्टिभागान् यानि चन्द्रः आत्मनः परस्य चीर्णान् प्रतिचरति, त्रयोदश द्वाषष्टिभागान् यान् चन्द्रः परस्य चीर्णान् प्रतिचरति, त्रयोदशसप्तषष्ठिभागान् यान् चन्द्रः आत्मन परस्य च चीर्णान् प्रतिचरति । एतावता वाह्यतृतीयं पौरस्त्यम् अर्द्धमण्डलं समाप्त भवति । तावत् तृतीयायनगतः चन्द्रः पाश्चात्येन भागेन प्रविशन् वाह्यचतुर्थस्य पाश्चात्यस्य अर्द्धमण्डलस्य अष्ट सप्तषष्टिभागान्, सप्तषष्टी भागंच एकत्रिंशद्धा छित्वा अष्टादश भागान् यान् चन्द्रः आत्मनः परस्यच चीर्णान् प्रतिचरति । एतावता वाह्यचतुर्थपाश्चात्यम् अर्द्धमण्डलं समाप्त भवति । एवं खलु चान्द्रेण मासेन चन्द्रः त्रयोदश चतुष्पञ्चाशत्कानि द्वे त्रयोदशके यान् चन्द्रः परस्य चीर्णान् प्रतिचरति त्रयोदश त्रयोदशकान् यान् चन्द्रः आत्मनः चीर्णान् प्रतिचरति, द्वे एकचत्वारिंशत्के अष्टसप्तषष्टिभागान्, सप्तषष्टिभागं च एकत्रिंशद्धा छित्वा अष्टादशभागान् यान् चन्द्रः आत्मनः परस्य च चीर्णान् प्रतिचरति, अपरे खलु द्वे त्रयोदशके ये चन्द्रः केनापि असामान्यके स्वयमेव प्रविश्य २ चारं चरति । इत्येषा चन्द्रमसः अभिगमननिष्क्रमण वृद्धि निवृद्ध्यनवस्थितसंस्थाना संस्थितिः विकुर्वणक ऋद्धि प्राप्तः रूपी चन्द्रो देवः, चन्द्रो देवः आख्यातः, इति वदेत् । सू०३॥

॥त्रयोदशं प्राभृतं समाप्तम् ॥१३॥

व्याख्या—'ता चंदेणं अद्धमासेणं' इति, 'ता' तावत् 'चंदेणं अद्धमासेणं' चान्द्रेण अर्द्धमासेन चन्द्रसम्बन्धिमासार्द्धेन 'चंदे' चन्द्रः 'कइ मंडलाइं' कतिमण्डलानि 'चरइ' चरति ? । एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह—'ता चोद्दस' इत्यादि, 'ता' तावत् 'चोद्दस सचउब्भाग मंडलाइं' चतुर्दश सचतुर्भागमण्डलानि पञ्चदशस्य मण्डलस्य चतुर्भागसहितानि चतुर्दशमण्डलानि 'चरइ' चरति 'मंडलस्स' एकस्य च मण्डलस्य 'चउव्विसं सयभागं' चतुर्विंशत्यधिकं शतभागम् एकं मण्डलं चतुर्विंशत्यधिकशतभागपरिमितं (१२४) भवतीतिभावः, अयमाशयः—परिपूर्णानि चतुर्दश मण्डलानि, पञ्चदशस्य च मण्डलस्य चतुर्भागं चतुर्विंशत्यधिक

शतसत्कैकत्रिंशद्भागप्रमाणं (३१) भवति एकं च चतुर्विंशत्यधिकं शतभागं मण्डलस्य प्रमाणं भवति चतुर्भागात्किञ्चिदधिकचरणात् सर्वसंख्यया द्वात्रिंशतं पञ्चदशस्य मण्डलस्य चतुर्विंशत्यधिकशतभागान् चरतीति सिद्धयति । कथमेतदिति त्रैराशिकबलात्, तथाहि—एकस्मिन् युगे चन्द्र. अष्ट षष्ट्यधिकानि सप्तदश मण्डलशतानि (१७६८) चरति । युगे च—परिपूर्णाश्चन्द्रमासा द्वाषष्टि. (६२) ते द्विगुणिताः चन्द्रार्धमासा पूर्वरूपाश्चतुर्विंशत्यधिकशतसंख्यका (१२४) भवन्ति ततो यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन–अष्टषष्ट्यधिकानि सप्तदश मण्डलशतानि लभ्यन्ते तदा एकेन पर्वणा किं लभ्यते ? राशित्रयस्थापना–१२४ । १७६ । १ । अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशेर्गुणनात् जातस्तावानेव (१७६८) अत्राद्येन राशिना (१२४) भागो ह्रियते लब्धाश्चतुर्दश, शेषास्तिष्ठन्ति द्वात्रिंशच्चतुर्विंशत्यधिकशतभागाः (१४।$\frac{३२}{१२४}$) तत्र छेद्य छेदक राश्योः द्वात्रिंशतश्चतुर्विंशत्यधिकशतस्य चेति द्वयोर्द्विकेनापवर्त्तना क्रियते तत इदमायाति—चतुर्दश मण्डलानि, पञ्चदशस्य मण्डलस्य षोडश द्वाषष्टिभागाः। १४।$\frac{१६}{६२}$। उक्तंचान्यत्रापि—

"चोद्दस मंडलाइं, बिसट्ठिभागाय सोलस हविज्जा ।
मासद्धेण उडुवई एत्तियमित्तं चरइ खित्तं ॥१॥

चतुर्दश च मण्डलानि द्विषष्टि भागाश्च षोडश भवेयुः ।
मासार्द्धेन उडुपतिः, एतावन्मात्रं चरति क्षेत्रम्। इतिच्छाया ।

इत्येवं चान्द्रेण अर्द्धमासेन चन्द्रस्य चारः प्रदर्शितः, सम्प्रति आदित्येन अर्द्धमासेन चन्द्रस्य चारं प्रदर्शयति–"ता आइच्चेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् आइच्चेणं अद्धमासेणं' आदित्येन आदित्यसम्बन्धिना अर्द्धमासेन 'चंदे' चान्द्रः 'कइ मंडलाइं चरइ' कति, मण्डलानि चरति ? भगवानाह–'ता सोलस' इत्यादि, 'ता' तावत् 'सोलस मंडलाइं चरइ' षोडश मण्डलानि चरति परिपूर्णानि पञ्चदश मण्डलानि चरित्वा षोडशे मण्डले चरतीतिभावः 'सोलसमंडलचारी' षोडशमण्डलचारी षोडशमण्डलचरणशीलश्च, अत्र षोडश मण्डलचारी–पञ्चदश मण्डलानि पूर्णानि चरित्वा षोडशे मण्डले समागतस्ततः षोडशे मण्डल चरन् इत्यर्थः न तु परिपूर्ण षोडश मण्डल चारीति । अयं भावः–एकस्मिन् युगे सूर्यमण्डलानि त्रिंशदधिकानि अष्टादशशतानि (१८३०) भवन्ति, सूर्यार्द्धमासाश्च विंशत्यधिकशतसङ्ख्यका (१२०) भवन्ति युगस्य षष्टि सूर्यमासात्मकत्वात् ततस्त्रिंशदधिकाष्टादशशतराशेः (१८३०) विंशत्यधिकशतेन (१२०) भागो ह्रियते लब्धानि पञ्चदश मण्डलानि परिपूर्णानि, तदुपरि त्रिंशच्च विंशत्यधिकशत

भागाः ($१५\frac{३०}{१२०}$) तत आगतम्—चन्द्रः पञ्चदश मण्डानि परिपूर्णानि चरित्वा षोडश मण्डले त्रिंशतं त्रिंशत्यधिकशतभागान् आक्रम्य चारं चरति तत उक्तम्—षोडशमण्डलचारीति षोडशे मण्डले चारं चरन् चन्द्रः 'तया' तदा षोडशमण्डलचारसमये 'अवराइं खलु' अपरे अन्ये खलु 'दुवे अट्ठगाइं' द्वे अष्टके युगगतचन्द्रार्धमास चतुर्विंशत्याधिकशत सत्कभागाष्टकप्रमाणे 'जाइंचंदे ये द्वे चन्द्रः 'केणाइ असामण्णगाइं' केनापि सूर्येण चन्द्रेण वा असामान्यके अनाचीर्णपूर्वे तत्र 'सयमेव' स्वयमेव 'पविसित्ता' प्रविश्य 'चारं चरइ' चारं चरति । तदेव पृच्छति 'कयराइं' इत्यादि, 'कयराइं' कतरे के खलु 'दुवे अट्ठगाइं' द्वे अष्टके 'जाइं चंदे' ये चन्द्रः 'केणाइ असामण्णगाइ' केनापि असामान्यके अनाचीर्णपूर्वे तत्र चन्द्रः 'सयमेव' स्वयमेव 'पविसित्ता' प्रविश्य २ 'चारं चरइ' चारं चरति ? तदेव भगवान् दर्शयति—'इमाइं खलु' इत्यादि 'इमाइं' इमे वक्ष्यमाणे 'ते दुवे अट्ठगाइं' ते द्वे अष्टके जाइं चदे' ये चन्द्रः 'केणइअसामण्णगाइं' केनापि असामान्यके अनाचीर्णे तत्र 'पविसित्ता' प्रविश्य २, 'चारं चरइ' चारं चरति, 'तं जहा' तद्यथा—'निक्खममाणे चेव' निष्क्रामन्नेव सर्वाभ्यन्तरमण्डलाद्वहिर्निस्सरन्नेव 'अमावासंतेण' अमावास्यान्ते, 'पविसमाणे चेव पुण्णमासिं तेणं' प्रविशन् सर्ववाह्यमण्डलात् सर्वाभ्यन्तरमण्डलं गच्छन् पौर्णमास्यन्ते, अयं भावः सर्वाभ्यन्तरमण्डलाद्वहिर्निस्सरन् अमावास्याश्चरमभागे एकमष्टकं केनाप्यनाचीर्णं चन्द्रः प्रविश्य चारं चरति ? सर्ववाह्यमण्डलात्सर्वाभ्यन्तरमण्डल प्रविशन्नेव पूर्णिमायाश्चरमभागे द्वितीयमष्टकं प्रविश्य चन्द्रश्चारं चरतीति । उपसंहरति—'इमाइं' इत्यादि 'इमाइं' इमे अनुपदं प्रदर्शिते खलु 'दुवे अट्ठगे' द्वे अष्टकेस्त 'जाइं चंदे ये द्वे अष्टके चन्द्रः 'केणइ असामण्णगाइं' केनापि असामान्यके 'सयमेव' स्वयमेव 'पविसित्ता' प्रविश्य २, 'चारं चरइ' चारं चरतीति । अत्रायं विवेकः अत्र वस्तुतो द्वौ चन्द्रौ एकेन चान्द्रेणार्द्धमासेन चतुर्दश मण्डलानि, पञ्चदशस्य च मण्डलस्य द्वात्रिंशतं चतुर्विंशत्यधिकशतभागान् स्व स्वगत्या भ्रमणेन पूरयतः किन्तु लोकरूढ्या व्यक्तिभेदमनादृत्य केवलं जातिमेवाश्रित्य चन्द्रश्चतुर्दश मण्डलानि पञ्चदशस्य च मडलस्य द्वात्रिंशतं चतुर्विंशत्यधिकशतभागान् चरतीत्युक्तम् । साम्प्रतमेकश्चन्द्र एकस्मिन्नयने कति अर्द्धमण्डलानि दक्षिणभागे कति चोत्तरभागे भ्रमणेन पूरयतीति भगवान् प्रतिपादयितुमाह—'ता पढमायणगए चंदे' इत्यादि, 'ता' तावत् 'पढमायणगए चंदे' प्रथमायनगतः प्रथमायनस्थितः चन्द्रः 'दाहिणाए भागाए' दक्षिणस्माद् भागात् 'पविसमाणे' प्रविशन् सर्वाभ्यन्तरमण्डले प्रवेशं कुर्वन्निति 'सत्तअद्धमंडलाइं' सप्त अर्द्धमण्डलानि भवन्ति 'जाइं' यानि मण्डलानि 'चंदे' चन्द्रः 'दाहिणाए भागाए' दक्षिणस्माद् भागात् अभ्यन्तरं मण्डलं 'पविसमाणे' प्रविशन् आक्रम्य 'चारं चरइ' चारंचरति । अत्र पुनः पृच्छति 'कयराइं' इत्यादि 'कयराइं

कतराणि कानि खलु 'ताइं' तानि पूर्वोक्तानि 'सत्तअद्धमंडलाइं' सप्त अर्द्धमण्डलानि 'जाइं' यानि 'चंदे' चन्द्रः 'दाहिणाए भागाए पविसमाणे' दक्षिणस्माद् भागात् प्रविशन् 'चारं चरइ' चारं-चरति ? भगवानाह —'इमाइं खलु' इत्यादि, 'इमाइं' इमानि अग्रे वक्ष्यमाणानि खलु 'ताइं' तानि 'सत्त अद्धमंडलाइं' सप्त अर्द्धमण्डलानि सन्ति 'जाइं' यानि 'चंदे' चन्द्रः 'दाहिणाए भागाए' दक्षिणस्मात भागात् 'पविसमाणे' प्रविशन् 'चारं चरइ' चारं चरति, 'तं जहा' तद्यथा—'बितिए अद्धमंडले' द्वितीयमर्द्धमण्डलम् १, 'चउत्थे अद्धमंडले' चतुर्थमर्द्धमण्डलम् २, 'छट्ठे अद्धमंडले' षष्टमर्द्धमण्डलम् ३, 'अट्ठमे अद्धमंडले' अष्टममर्द्धमण्डलम् ४, 'दसमे अद्धमंडले' दशममर्द्धमण्डलम् ५, 'बारसमे अद्धमंडले' द्वादशमर्द्धमण्डलम् ६, 'चउद्दसमे अद्धमंडले' चतुर्दशमर्द्धमण्डलम् ७। उपसंहरति—'एयाइं' इत्यादि, 'एयाइं' एतानि पूर्वोक्तानि खलु 'ताइं' तानि सत्तअद्धमंडलाइं' सप्तअर्द्धमण्डलानि जाइं चंदे' यानि चन्द्रः 'दाहिणाए भागाए' दक्षिमस्माद भागात् 'पविसमाणे' प्रविशन 'चारं चरइ' चारं चरति।

तदेवं दक्षिणभागादभ्यन्तरप्रवेशे सप्त अर्द्धमण्डलानि प्रोक्तानि, साम्प्रतम् उत्तर भागादभ्यन्तरप्रवेशे यावन्ति अर्द्धमण्डलानि भवन्ति तावन्ति प्रदर्शयति—'ता पढमायणगए' इत्यादि, 'ता' तावत् 'पढमाणगए चंदे' प्रथमायनगतश्चन्द्रः 'उत्तराए भागाए' उत्तरस्माद भागात् 'पविसमाणे' प्रविशन् 'छ अद्धमंडलाइं' षड् अर्द्ध मण्डलानि 'तेरस य सत्तट्ठिभागाइं' त्रयोदश च सप्तषष्टिभागान् 'अद्धमंडलस्स' एकस्यार्द्धमण्डलस्येति 'जाइं चंदे' यानि चन्द्रः 'उत्तराए भागाए' उत्तरस्माद भागात् 'पविसमाणे' प्रविशन् चन्द्रः 'चारं चरइ' चारं चरति। तान्येव पृच्छति—'कयराइं' इत्यादि, 'कयराइं खलु' कतराणि कानि खलु 'ताइं' तानि 'अद्धमंडलाइ' षड् अर्द्ध मण्डलानि 'तेरस य सत्तट्ठि भागाइं' त्रयोदश च सप्तषष्टिभागाः 'अद्धमंडलस्स' एकस्यार्द्धमण्डलस्य, 'जाइं' यानि 'चंदे' चन्द्रः 'उत्तराए भागाए' उत्तरस्माद् भागात् 'पविसमाणे' प्रविशन् 'चारं चरइ' चारं चरति ? तन्येव प्रदर्शयति—'इमाइं' इत्यादि 'इमाइं खलु' इमानि वक्ष्यमाणानि खलु 'ताइं' तानि यानि पूर्वे कथितानि 'छ अद्धमंडलाइं' षड् अर्द्धमण्डलानि 'अद्धमंडलस्स' एकस्यार्द्धमण्डलस्य च 'तेरस य सत्तट्ठिभागाइं' त्रयोदश च सप्तषष्टि भागाः 'जाइं चंदे' यानि चन्द्रः 'उत्तराए भागाए' उत्तरस्माद् भागात् 'पविसमाणे' प्रविशन् 'चारं चरइ' चारं चरति 'तं जहा' तद्यथा—'तइए अद्धमंडले' तृतीयमर्द्धमंडलम् १, 'पंचमे अद्धमंडले' पञ्चममर्द्धमण्डलम् २, 'सत्तमे अद्धमंडले' सप्तममर्द्धमण्लम् ३, 'नवमे अद्धमंडले' नवममर्द्धमण्डलम् ४, 'एक्कारसमे अद्धमंडले' एकादशमर्द्धमण्डलम् ५, 'तेरसमे अद्धमंडले' त्रयोदशमर्द्धमण्डलम् ६, 'पन्नरस मंडलस्स' पञ्चदशमण्डलस्य 'तेरसं सत्तट्ठिभागाइं' त्रयोदशसप्तषष्टिभागाश्च, ७, उपसंहरति—'एयाइं' इत्यादि 'एयाइं' एतानि

पूर्वोक्तानि खलु 'ताइं' तानि 'छ अद्धमंडलाइं' षड्अर्द्धमण्डलानि 'अद्धमंडलस्स' एकस्य चार्द्ध मण्डलस्य 'तेरसत्तट्ठिभागाइं' त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः, 'जाइं चंदे' यानि चन्द्रः 'उत्तराए भागाए' उत्तरस्माद् भागात् 'पविसमाणे' प्रविशन् 'चारं चरइ' चारं चरति । दक्षिणभागादभ्यन्तरप्रवेशे, एवमुत्तरभागादभ्यन्तरप्रवेशे च यानि अर्द्धमण्डलानि प्रदर्शितानि तद्विषया-भावना चेत्थम्—

सर्ववाह्ये पञ्चदशे मण्डले परिभ्रमणेन पूरणमधिकृत्य परिपूर्णे पाश्चात्य युगपरिसमाप्ति भवति ततोऽपरयुगप्रथमायनप्रवृत्तौ प्रथमेऽहोरात्रे एकश्चन्द्रो दक्षिणभागादभ्यन्तरं प्रविशन् द्वितोयमण्डलमाक्रम्य चारं चरति, स च पाश्चात्य युगपरिसमाप्तिदिवसे उत्तरस्यां दिशि चारं चरितवान् सोऽत्र वेदितव्यः । ततः एतस्मात् द्वितीयात् मण्डलात् शनैः शनैरभ्यन्तरं प्रविशन् द्वितीयेऽहोरात्रे उत्तरस्यां दिशि सर्व वाह्यान्मण्डलादभ्यन्तरं तृतीयमर्द्धमण्डलमाक्रम्य चारं चरति । तृतीयेऽहोरात्रे दक्षिणस्यां दिशि चतुर्थमर्द्धमण्डलम्, चतुर्थेऽहोरात्रे उत्तरस्यां दिशि पञ्चममर्द्ध-मण्डलम्, पञ्चमेऽहो रात्रे दक्षिणायां दिशि षष्ठमर्द्धमण्डलम् षष्टेऽहोरात्रे उत्तरस्यां दिशि सप्तममर्द्ध-मण्डलम्, सप्तमेऽहोरात्रे दक्षिणस्यां दिशि अष्टममर्द्धमण्डलम्, अष्टमेऽहोरात्रे उत्तरस्यां दिशि नवममर्द्धमण्डलम्, नवमेऽहोरात्रे दक्षिणस्यां दिशि एकादशमर्द्धमण्डलम्, एकादशेऽहोरात्रे दक्षि-णस्यां दिशि द्वादशमर्द्धमण्डलम्, द्वादशेऽहोरात्रे उत्तरस्यां दिशि त्रयोदशमर्द्धमण्डलम् त्रयोदशेऽहो-रात्रे दक्षिणस्यांदिशि चतुर्दशमर्द्धमण्डलम्, चतुर्दशेऽहोरात्रे उत्तरस्यां दिशि पञ्चदशस्यार्द्ध-मण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागानाक्रम्य चारं चरति । ततः किमित्याह सूत्रकारः—'एयावया' इत्यादि, 'एयावयाच' एतावता च कालेन 'पढमे चंदायणे समत्ते भवइ' प्रथमं चन्द्रायणं समाप्तं भवति ।

चन्द्रायणं हि नक्षत्रार्द्धमासप्रमाणं भवति, ततश्च नाक्षत्रेण अर्द्धमासेन चन्द्रचारे त्रयोदश-मण्डलानि, चतुर्दशस्य च मण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागा. ($१३-\frac{१३}{६७}$) भवन्ति । तत्कथं लभ्यते ? त्रैराशिकगणितेन लभ्यते तथाहि—एकस्मिन् युगे चन्द्रमण्डलानि अष्ट षष्ट्यधिकानि सप्तदशशतानि (१७६८) भवन्ति, चन्द्रायणानि च चतुस्त्रिंशदधिकैशतसंख्यकानि (१३४) भवन्ति ततो यदि चतुस्त्रिंशदधिकेन अयनशतेन (१३४) सप्तदशशतानि अष्ट षष्ट्यधिकानि—(१३६८) मण्डलानि लभ्यन्ते तत एकेन अयनेन किं लभ्यते ? राशित्रयस्थापना—१३४।१७६८। १। ततोऽन्त्येन राशिना मध्यराशौ गुणिते सति जातस्तावानेव (१७६८) ततस्तस्याद्येन राशिना (१३४) भागो ह्रियते, लब्धास्त्रयोदश (१३) शेषास्तिष्ठन्ति षड्विंशति. (२६)ततश्छेद्यछेदक-

राश्योर्द्विकेनापवर्त्तनायां लब्धास्त्रयोदश सप्तषष्टिः (१३।$\frac{१३}{६७}$) । उक्तञ्च—

"तेरसय मंडलाणिय, तेरस सत्तट्ठि चेव भागाय ।
अयणेण चरइ सोमो; नक्खत्तेणऽद्धमासेणं ॥१॥

छाया—त्रयोदश च मण्डलानि च, त्रयोदश सप्तषष्टिश्चैव भागाश्च ।
अयनेन (एकेन) चरति सोमः, नक्षत्रेणार्द्धमासेन ॥ इति ।

एतच्च सामान्येन प्रोक्तं, विशेषविचारणायां तु एकस्य चन्द्रस्य युगगते प्रथमेऽयने पूर्वोक्तेन प्रकारेण दक्षिणभागादभ्यन्तरं प्रवेशे द्वितीयादीनि एकान्तरितानि चतुर्दशपर्यन्तानि सप्तअर्द्धमण्डलानि प्राप्यन्ते, एवम्—उत्तरभागादभ्यन्तरप्रवेशे च तृतीयादीनि एकान्तरितानि त्रयोदशपर्यन्तानि षड्मण्डलानि परिपूर्णानि अर्द्धमण्डलानि, सप्तमस्य तु पञ्चदश मण्डलगतस्य अर्द्धमण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः (१३।$\frac{१३}{६७}$) भवन्तीति सर्वं पूर्वं सविस्तरं प्रदर्शितमेवेति । यथा प्रथमे चन्द्रायणे एकस्य चन्द्रस्य यावन्ति दक्षिणभागाद् उत्तरभागाच्च अभ्यन्तर प्रवेशेऽर्द्धमण्डलानि साक्षात् प्रदर्शितानि तदनुसारेणैव द्वितीयस्यापि चन्द्रस्य तस्मिन्नेव प्रथमे चन्द्रायणेऽर्द्धमण्डलानि भवन्ति तथाहि—सपाश्चात्य युगपरिसमाप्तिचरमदिवसे दक्षिणदिग्भागे सर्ववाह्यमण्डले चारं चरित्वा अभिनवस्य युगस्य प्रथमेऽयने प्रथमेऽहोरात्रे उत्तरस्यां दिशि द्वितीयमर्द्धमण्डलं प्रविश्य चारं चरति, द्वितीयेऽहोरात्रे दक्षिणस्यां दिशि सर्ववाह्यात् मण्डलात् तृतीयमर्द्धमण्डलं प्रविश्य चारं चरति, तृतीयेऽहोरात्रे उत्तरस्या दिशि चतुर्थमर्द्धमण्डलं प्रविश्य चारं चरति, इत्यादि प्रागुक्तानुसारेणैव सकलमपि वक्तव्यम् । पूर्ववदस्यापि द्वितीयस्य चन्द्रस्य प्रथमेऽयने उत्तरभागादभ्यन्तरप्रवेशे द्वितीयादीनि एकान्तरितानि चतुर्दशपर्यन्तानि सप्त अर्द्धमण्डलानि भवन्ति, एवं दक्षिणभागादभ्यन्तरप्रवेशे च तृतीयादीनि एकान्तरितानि त्रयोदश पर्यन्तानि षड्अर्द्धमण्डलानि, तदुपरि पञ्चदशस्य चार्द्धमण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागा भवन्ति, तत आगतम्—त्रयोदशमण्डलानि परिपूर्णानि, चतुर्दशस्येति पञ्चदशस्य मण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः (१३|$\frac{१३}{६७}$) इति ।

एवं च सति च चन्द्रार्द्धमास-नाक्षत्रार्द्धमासयोर्न समानत्वमिति सूत्रकार. प्रदर्शयति—'ता णक्खत्ते' इत्यादि, 'ता' तावत् 'नक्खत्ते अद्धमासे' यः नाक्षत्रोऽर्द्धमासः 'नो चंदे अद्धमासे' नो चान्द्रोऽर्द्धमासो भवति । अत्र कश्चित् शङ्कते—नाक्षत्रोऽर्धमासश्चान्द्रोऽर्धमासो न भवति, इति मन्ये किन्तु यश्चान्द्रोऽर्धमासः सतु कदाचित् नाक्षत्रोऽप्यर्धमासो भवितुमर्हति

यथा "परमाणुप्रदेशः" इति कथने परमाणुरप्रदेश एव, यस्तु अप्रदेशः स परमाणुरपि भवति अपरमाणुरपि भवति क्षेत्रप्रदेशादिः इत्याशङ्कायामाह सूत्रकारः **'ता चंदे'** इत्यादि, **'ता चंदे अद्धमासे नो नक्खत्ते अद्धमासे'** यथा नाक्षत्रोऽर्द्धमासश्चान्द्रोऽर्द्धमासो न भवति तथैव चान्द्रोऽर्द्धमासोऽपि नाक्षत्रोऽर्द्धमासो न भवति, यतो नाक्षत्रार्द्धमासरूपे एकस्मिन्नयने सामान्यतश्चन्द्रस्य त्रयोदश मण्डलानि चतुर्दशस्य च मण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः (१३।$\frac{१३}{६७}$) भवन्ति, चान्द्रेऽर्द्धमासे च चतुर्दश मण्डलानि पञ्चदशस्य च मण्डलस्य चतुर्विंशत्यधिक शतभागसत्का द्वात्रिंशद्भागाः (१४। $\frac{३२}{१२४}$) भवन्ति ततो नाक्षत्रार्द्धमास—चान्द्रार्द्धमासयोः परस्परं न साम्यमिति। पुनर्गौतमः पृच्छति **'ता'** तावत् **'नक्खत्ताओ अद्धमासाओ'** नाक्षत्राद् अर्द्धमासात् **'से चंदे'** स चन्द्रः **'चंदेणं अद्धमासेणं'** चान्द्रेण अर्द्धमासेन **'किमधियं चरइ'** किमधिकं कियत्परिमितमधिकं चरति ? भगवानाह—**'ता एगं'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **'एगं अद्धमंडलं'** एकमर्द्धमण्डलं **'चरइ'** चरति, **'अद्धमंडलस्स'** द्वितीयस्य चार्द्धमण्डलस्य **'चत्तारि य सत्तट्ठिभागाइं'** चतुरः सप्तषष्टिभागान् पुनश्च **'सत्तट्ठिभागं'** एकं सप्तषष्टिभागं **'एगतीसाए छित्ता'** एकत्रिंशता छित्त्वा एकस्य सप्तषष्टिभागस्य एकत्रिंशतं भागान् कृत्वा तन्मध्यात् **'नवभागाइं'** नवभागान् नव एकत्रिंशद्भागान् (१$\frac{४}{६७}$|$\frac{९}{३१}$) । एतावत्परिमितं चन्द्रः नाक्षत्रार्द्धमासात् चान्द्रेण अर्द्धमासेन अधिकं चरतीति भावः । कथमेदिति प्रदर्श्य अत्रापि त्रैराशिकं कर्त्तव्यम् तथाहि—यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन अष्टषष्टयधिकानि सप्तदश मण्डलशतानि लभ्यन्ते तर्हि एकेन पर्वणा किं लभ्यते ? राशित्रयस्थापना—(१२४।१७६८।१।) अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशेर्गुणानात् जातस्तावानेव (१७६९) तत आद्येन राशिना (१२४) भागो हरणीयः, ततः छेद्यछेदकराश्योश्चतुष्केन अपवर्त्तना क्रियते, कथम् ? अत्र छेद्यराशिः अष्टषष्टयधिकानि सप्तदशशतानि (१७६८) अस्य चतुष्केन अपवर्त्तनेति चतुर्भिर्भागो ह्रियते लब्धानि द्विचत्वारिंशदधिकानि चत्वारिंशतानि (४४२) ततश्छेदकराशेश्चतुर्विंशत्यधिकशतरूपस्य (१२४) चतुष्केन अपवर्त्तनेति चतुर्भिर्भागो ह्रियते लब्धानि एकत्रिंशत् (३१) । ततोऽपवर्त्तितस्य छेद्यराशे द्विचत्वारिंशदधिक चतुः शतरूपस्य (४४२) अपवर्त्तितेन छेदकराशिना एकत्रिंशद्रूपेण (३१) भागो ह्रियते लब्धाश्चतुर्दश (१४) मण्डलानि, शेषास्तिष्ठन्ति अष्ट, ते चाष्ट एक त्रिंशद्भागाः (१४। $\frac{८}{३१}$) । तत एतस्माद् राशेर्नाक्षत्रार्द्धमासगम्यं क्षेत्रम्—त्रयोदश मण्डलानि, एकस्य च

मण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागा (१३|$\frac{१३}{६७}$) इत्येवं प्रमाणं शोध्यते, तत्र चतुर्दशेभ्यस्त्रयोदश मण्डलानि शुद्धानि स्थितं शेषमेकम् (१), ततः अष्टम्य एकत्रिंशद्भागेभ्यस्त्रयोदश सप्तषष्टिभागाः शोध्याः तथाहि—सप्तषष्टिरष्टभिर्गुण्यते, जातानि षट्त्रिंशदधिकानि पञ्चशतानि (५३६), त्रयोदश च एकत्रिंशता गुण्यन्ते जातानि त्र्युत्तराणि चत्वारिंशतानि (४०३) एतानि अष्ट सप्तषष्टि गुणन प्राप्तेभ्यः षट्त्रिंशदधिकपञ्चशतेभ्यः (५३६) शोध्यन्ते, स्थितं शेषं त्रयस्त्रिंशदधिकं शतम् (१३३), तत एतत् सप्तषष्टि भागानयनार्थं सप्तषष्ट्या गुण्यते, जातानि—एकादशाधिकानि नवाशीति शतानि (८९११) एष छेद्यराशिः, मौलश्छेदक राशिरेकत्रिंशत् स सप्तषष्ट्या गुण्यते जाते सप्त सप्तत्यधिके द्वे सहस्रे (२०७७) एष छेदकराशिः, ततश्छेद्यच्छेकराश्योः सप्तषष्ट्याऽपवर्त्तना क्रियते सप्तषष्ट्या कृतायामपवर्त्तनायामागतश्छेद्यराशिस्त्रयास्त्रिशदधिकमेकं शतम् (१३३), छेदकराशिश्चागत एकत्रिंशत् (३१) ततोऽनेन छेदकराशिना छेद्यराशेः (१३३) भागो ह्रियते लब्धाश्चत्वारः सप्तषष्टिभागाः, शेषास्तिष्ठन्ति—नवेति एकं त्रिंशच्छेदकृता नव एकत्रिंशद्भागाश्चूर्णिकाभागा (१|$\frac{४}{६७}$|$\frac{९}{३१}$) तत आगतम्— एकमर्द्धमण्डलम्, द्वितीयस्य चार्द्धमण्डलस्य चत्वारः सप्तषष्टिभागाः, एकस्य च सप्तषष्टिभागस्य नव एकत्रिंशद्भागाः। एतावत्परिमितं क्षेत्रं नाक्षत्रार्द्धमासात् चन्द्रश्चान्द्रेणार्द्धमासेन अधिकं चरतीति सिद्धम्। उक्तञ्च—

"एगं च मंडलं मंडलस्स सत्तट्ठिभागा चत्तारि ।
नव चेव चुण्णियाओ, इगतीसकएण छेएण ॥१॥"

छाया—एकं च मण्डलं (अर्द्धं मण्डलम्) मण्डलस्य (एकस्य चान्द्रमण्डस्य) सप्तषष्टिभागाश्चत्वारः ।

नव चैव चूर्णिकाः (भागाः) एकत्रिंशत् कृतेन छेदेन ॥इति ।

अत्र गणितप्रकरणे 'मण्डलं मण्डलं' इति कथितं तत्र सर्वत्र मण्डलशब्देन अर्द्ध मण्डलमिति वाच्यम् अत्रार्द्धमण्डलानामेव प्रकृतत्वादिति ।

तदेवमेकस्य चन्द्रायणस्य वक्तव्यता प्रोक्ता, साम्प्रतं द्वितीयचन्द्रायणवक्तव्यता प्रस्तूयते, तत्र यश्चन्द्रः प्रथमे चन्द्रायणे दक्षिणभागादभ्यन्तरं प्रविशन् सप्तार्धमण्डलानि, उत्तरभागादभ्यन्तरं प्रविशन् षड् अर्द्धमण्डलानि, सप्तमस्य चादितः पञ्चदशरूपस्यार्द्धमण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टि भागान् चरितवान्, तमधिकृत्य द्वितीयायनभावना करिष्यते, तत्रायनस्य मण्डलक्षेत्रपरिमाणं त्रयोदश अर्द्धमण्डलानि, चतुर्दशस्य चार्द्धमण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टिभागा इति । तत्र

प्राक्तनमयनमुत्तरस्यां दिशि सर्वाभ्यन्तरे मण्डले त्रयोदश सप्तषष्टिभागपर्यन्ते परिसमाप्तं भवति, तदनन्तरं द्वितीयायनप्रवेशे चतुः पञ्चाशता सप्तषष्टिभागैः सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं परिसमाप्य ततो द्वितीये मण्डले चारं चरति । तत्र त्रयोदशभागपर्यन्ते एकमर्द्धमण्डलं द्वितयस्यायनस्य परिसमाप्तं भवति । द्वितीयमर्द्धमण्डलमुरस्यां सर्वाभ्यन्तरात्तृतीयेऽर्द्धमण्डले त्रयोदशभागपर्यन्ते, तृतीयमर्द्धमण्डलं दक्षिणस्यां दिशि चतुर्थेऽर्द्धमण्डले, चतुर्थमर्द्धमण्डलमुत्तस्यां दिशि पञ्चमेऽर्द्धमण्डले, पञ्चममर्द्ध-मण्डलं दक्षिणस्यां दिशि षष्ठेऽर्द्धमण्डले, षष्ठमर्द्धमण्डलमुत्तरस्यां दिशि सप्तमेऽर्द्धमण्डले, सप्तममर्द्धमण्डलं दक्षिणस्यां दिशि अष्टमेऽर्द्धमण्डले, अष्टममर्द्धमण्डलमुत्तस्यां दिशि नवमेऽर्द्धमण्डले, नवममर्द्धमण्डलं दिक्षिणस्यां दिशि दशमेऽर्द्धमण्डले, दशममर्द्धमण्डलमुत्तस्यां दिशि एकादशेऽर्द्धमण्डले, एकादशमर्द्धमण्डलं, दक्षिणस्यां दिशि द्वादशेऽर्द्धमण्डले, द्वादशममर्द्धमण्डलमुत्तरस्यां दिशि त्रयो-दशेऽर्द्धमण्डले, त्रयोदशमर्द्धमण्डलं दक्षिणस्यां दिशि चतुर्दशेऽर्द्धमण्डले, चतुर्दशमर्द्धमण्डलं तच्च पञ्चदशस्यार्द्धमण्डलस्य त्रयोदशभागवर्यन्ते परिसमाप्तम् । तदनन्तरं त्रयोदश सप्तषष्टिभागान् अन्यान् पञ्चदशमण्डलसत्कान् चरति । एतावता द्वितीयमयनं परिसमाप्तं भवति । चतुर्दशे च मण्डले संक्रान्तः सन् चन्द्रः प्रथमक्षणादूर्ध्वं सर्ववाह्यमण्डलाभिमुखं चारं चरति, ततः परमार्थतः कतिपयभागातिक्रमे पञ्चदशे एव सर्ववाह्यमण्डले चन्द्रो वेदितव्यः । तदेकस्मिन्नयने पूर्वभागेन द्वितीयादीनि एकान्तरितानि चतुर्दशपर्यन्तानि सप्तअर्द्धमण्डानि चीर्णानि, पश्चिमभागे च तृतीया-दीनि एकान्तरितानि त्रयोदश पर्यन्तानि षड् अर्द्धमण्डलानि, तत्र पूर्वभागे पश्चिमभागे वा यत् प्रतिमण्डलं स्वयं चीर्णमचीर्णं वा मण्डलं चरति तत्प्रदर्शयति—**'ता दोच्चायणगए'** इत्यादि **'ता'** तावत् **'दोच्चायणगए चंदे'** द्वितीयायनगतश्चन्द्रः **'पुरत्थिमाए भागाए'** पौरस्त्याद् भागात् **'निक्खममाणे'** निष्क्रामन् **'सत्तचउप्पण्णाइं'** सप्तचतुष्पञ्चाशत्कानि सप्तषष्टि भागसत्कानि त्रयोदश भागाश्च प्रथमायने चीर्णत्वात् **'जाइं'** यानि **'चंदे'** चन्द्रः **'परस्स चिन्नं'** परस्य अत्र तृतीयार्थे षष्टीति परेण चिर्णानि मूले आर्षत्वादेकवचनम् **'पडिचरइ'** प्रतिचरति **'सत्ततेरसगाइं'** सप्तत्रयोदशकानि सप्तषष्टिभाग सत्कानि **'जाइं चंदे'** यानि चन्द्रः **'अप्पणा चिण्णं'** आत्मना चीर्णानि **'चरइ'** चरति । अत्रेयं भावना—मेरोः पूर्वस्यां दिशि यो भागः स पूर्व भागः, यश्चापरस्यां दिशि भागः स पश्चिमभागः कथ्यते । तत्र पूर्वभागे सप्तस्वपि द्वितीयादिषु एकान्तरितेषु चतुर्दशपर्यन्तेषु सप्तषष्टिभागप्रविभक्तेषु अर्द्धमण्डलेषु प्रत्येकं चतुष्पञ्चाशतं चतुष्पञ्चाशतं सप्तषष्टिभागान् चन्द्रः परेण सूर्यादिना चीर्णान् प्रतिचरति, तत्रैव द्वितीययुगे गतश्चन्द्रः सप्त च त्रयोदशत्रयोदश सप्तषष्टिभागान् स्वयं चीर्णान् चरतीति । **'ता दोच्चायणगए'** इत्यादि, **'ता'** इति, ततः **'दोच्चायणगए चंदे'** द्वितीयायनगतश्चन्द्रः **'पच्चत्थिमाए भागाए'** पाश्चात्याद् भागात् **'निक्खममाणे'** निष्क्रामन् पश्चिमभागान्निष्क्रमण

समये 'छ चउप्पण्णाइं' षट् चतुष्पञ्चाशत्कानि 'जाइं चंदे' यानि चन्द्रः 'परस्स चिण्णं' परेण सूर्यादिना चीर्णानि 'पडिचरइ' प्रतिचरति, 'छतेरसगाइं' षट् त्रयोदशकानि 'चंदे' चन्द्रः 'अप्पणो चिण्णं' आत्मना चीर्णानि 'पडिचरइ' प्रतिचरति । अत्रेयं भावना—पश्चिमे भागे षट्स्वपि तृतीयादिषु एकान्तरितेषु त्रयोदशपर्यन्तेषु अर्द्धमण्डलेषु सप्तषष्टिभागप्रविभक्तेषु प्रत्येकं चतुष्पञ्चाशत्कं सप्तषष्टिभागसत्कं सप्तषष्टिभागानित्यर्थः चरति, षट् च त्रयोदश सप्तषष्टि भागान् स्वयं चीर्णान् चरतीति । पुनश्च एकान्तरितत्वेन पञ्चदशस्य मण्डलस्य 'अवरगाइं' अपरके तदतिरिक्ते अन्ये 'दुवे तेरसगाइं' द्वे त्रयोदशके 'जाइं चंदे' ये चन्द्रः 'केणइ' केनापि सूर्यादिना 'असामण्णगाइं' असामान्यके अनाचीर्णपूर्वे 'सयमेव' स्वयमेव 'पविसित्ता' २ प्रविश्य २ 'चारं चरइ' चारं चरति । अत्र पृच्छति—'कयराइं' खलु इत्यादि, 'कयराइं' कतरे के खलु 'ताइं दुवे तेरसगाइं' ते द्वे त्रयोदशके 'जाइं चंदे' ये चन्द्रः 'केणइ असामण्णगाइं' केनापि असामान्यके अनाचीर्णपूर्वे 'सयमेव पविसियत्ता २ चारं चरइ' स्वयमेव प्रविश्य २, चारं चरति ? । अत्रोत्तरमाह—'इमाइं खलु' इत्यादि 'इमाइं खलु' इमानि वक्ष्यमाणानि खलु 'ताइं दुवे तेरसगाइं' ते द्वे त्रयोदशके 'जाइं चंदे केणइ असामण्णगाइं सयमेव पविसित्ता २ चारं चरइ' ये चन्द्रः केनापि असामान्यके स्वयमेव प्रविश्य २ चारं चरति । ते एव दर्शयति—'तं जहा' इत्यादि 'तं जहा' तद्यथा ते यथा—'सव्वब्भंतरे चेव मंडले १ सव्वबाहिरे चेव मंडले, सर्वाभ्यन्तरे चैव मण्डले सर्वबाह्ये चैव मण्डले २ उपसंहारमाह—'एयाणि' इत्यादि, 'एयाणि' एते अनुपदं प्रदर्शिते खलु 'ताणि दुवे तेरसगाइं' ते द्वे त्रयोदशके 'जाइं चंदे' ये चन्द्रः 'केणइ जाव चारं चरइ' केनापि असामान्यके स्वयमेव प्रविश्य २, चारं चरति । अत्र यत् द्वे त्रयोदशके कथिते तत्रैवं विज्ञेयम्—तत्र यदेकं त्रयोदशकं सर्वाभ्यन्तरे मण्डले तत् पाश्चात्यायनगतं पञ्चदशार्द्धमण्डलसत्कं वेदितव्यम्, तस्यैव सभवास्पदत्वात् द्वितीयं त्रयोदशकं सर्वबाह्ये मण्डले चरिष्यमाणं पर्यन्तवर्तिप्रतिपत्तव्यमिति ।

एषा एकं चन्द्रमधिकृत्य द्वितीयायनवक्तव्यता प्रोक्ता, ततो द्वितीयं चन्द्रमधिकृत्य द्वितीयायनवक्तव्यता एतदनुसारेणैव भावनीया । अत्रायं विशेषः तत्र प्रथमचन्द्रमाश्रित्य द्वितीयायने चन्द्रस्य प्रथमं पूर्वभागान्निष्क्रमणं प्रोक्तम् अत्र द्वितीयचन्द्रमाश्रित्य द्वितीयायने प्रथमपश्चिमभागात् ततः पूर्वभागात् एवं वैपरीत्येन चन्द्रस्य निष्क्रमणं वाच्यम् तत्र पूर्वे भागे षट् चतुष्पञ्चाशत्कानि परचीर्णानि, षट् त्रयोदशकानि च स्वयं चीर्णानि चरतीति वक्तव्यम् । शेषं सर्वं पूर्ववदेव ज्ञातव्यमिति । अथ द्वितीयायनपरिसमाप्तिमाह—'एयावया' इत्यादि, 'एयावया' एतावता एतावत्कालेन चन्द्र द्वयचरणरूपेण समयेन 'दोच्चे चंदायणे'

द्वितीयं चन्द्रायणं 'समत्ते भवइ' समाप्तं भवतीति ।२। यद्येवं द्वितीयमध्ययनमेतावत्प्रमाणं भवति ततो नाक्षत्रमासस्य चान्द्रमासस्य च किं साम्यमस्ति ? नेत्याह–'ता णक्खत्ते' इत्यादि 'ता' तावत् 'नक्खत्ते मासे' नाक्षत्रो मासः 'नो चंदे मासे' नो चान्द्रो मासो भवति एवं 'चंदे मासे' चान्द्रो मासः 'णो णक्खत्ते मासे' नो नाक्षत्रो मासः चान्द्रो मासो नाक्षत्रो मासो न भवतीत्यर्थः । एवं श्रुत्वा गौतमः पृच्छति–'ता णक्खत्ताओ' इत्यादि 'ता' तावत् 'णक्खत्ताओ' नाक्षत्रात् मासात् 'चंदे' चंद्रः 'चंदेणं मासेणं' चान्द्रेन मासेन 'किमधियं चरइ' किम् कियत्प्रमाणम् अधिकं चरति ? । एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह–'ता दो अद्धमंडलाइं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'दो अद्धमंडलाइं चरइ' द्वे अर्द्धमण्डले चरति, 'अट्ठयसत्तट्ठिभागाइं' अष्ट च सप्तषष्टिभागान् 'अद्धमंडलस्स' तृतीयस्यार्द्धमण्डलस्य, तथा 'सत्तट्ठिभागं' च एकं च सप्तषष्टिभागं 'एक्कतीसधा छित्ता' एकत्रिंशद्धा छित्वा एकस्य सप्तषष्टिभागस्य एकत्रिंशद् भागान् कृत्वा तन्मध्यात् 'अट्ठारसभागाइं' अष्टादश भागान् चरति–(२ $\frac{८}{६७}|\frac{१८}{३१}$) एतावत्परिमितं द्वितीये चन्द्रायणे चन्द्रश्चान्द्रेण मासेनाधिकं चरतीति भावः एतच्च प्रथमचन्द्रायणगताधिक्यात् द्विगुणं कृत्वा परिभावनीयम् ।

अथ यावता कालेन चान्द्रो मासः परिपूर्णो भवति तावन्मात्र तृतीयायनवक्तव्यतामाह–'ता तच्चायणगए चंदे' इत्यादि, अत्र पूर्वसम्बन्धः परिभावनीयः–इह द्वितीयायनपर्यन्ते चतुर्दशेऽर्द्धमण्डले षड्विंशति सङ्ख्यक सप्तषष्टि भागमात्रमाक्रान्तम्, तच्च परमार्थतः पञ्चदशमर्द्धमण्डलं वेदितव्यम्, तदभिमुखं वहुगतत्वात्, तदनन्तरं नीलवत्पर्वतप्रदेशे साक्षात् पञ्चदशमर्द्धमण्डलं प्रविष्टो भवति, तत्र प्रविष्टश्च प्रथमक्षणादूर्ध्वं सर्व बाह्यमण्डलानन्तरार्वाक्तनं (समीपस्थ) द्वितीयमण्डलाभिमुखं चरति, ततस्तस्मिन्नेव सर्वबाह्यमण्डलान्तरे अर्वाक्तने द्वितीयमण्डले चारं चरतश्चन्द्रस्यात्र विवक्षा वर्त्तते, ततोऽस्याधिकृतसूत्रत्रयस्य सम्बन्धो जायते–'ता' तावत् 'तच्चायणगए चंदे' तृतीयायनगतश्चन्द्रः 'पच्चत्थिमाए भागाए,' पाश्चात्याद् भागात् 'पविसमाणे' प्रविशन् 'बाहिराणंतरस्स' बाह्यानन्तरस्यार्वाग् भागवर्त्तिनः 'पच्चत्थिमिल्लस्स अद्धमंडलस्स' पाश्चात्यस्यार्द्धमण्डलस्य 'इगतालीसं सत्तट्ठिभागाइं' एकचत्वारिंशतं सप्तषष्टिभागान्, सप्तषष्टिसंख्यकभागानां मध्यात् षड् विंशति संख्यकसप्तषष्टिभागानां द्वितीयायनपर्यन्ते चतुर्दशेऽर्द्धमण्डले समाक्रान्तपूर्वत्वात् शेषान् एकचत्वारिंशतं सप्तषष्टिभागानिति भावः, 'जाइं चंदे' यान् चन्द्रः 'अप्पणो परस्स य चिण्णं पडिचरइ' आत्मना परेण वा सूर्यादिना चीर्णात् स्वपरभुक्तभागान् प्रतिचरति, 'तेरस सत्तट्ठि भागाइं' त्रयोदश सप्तषष्टि भागास्ते 'जाइं चंदे, यान् चन्द्रः–'परस्स चिण्णं पडिचरइ, परेण सूर्यादिना चीर्णान् प्रति-

चरति 'तेरस सत्तट्ठि भागाइं' अन्ये त्रयोदश सप्तषष्टिभागास्ते 'जाइं' यान् 'चंदे' चन्द्रः 'अप्पणो परस्स य चिण्णं' आत्मना परेण च चीर्णान् 'पडिचरइ' प्रतिचरति । 'एयावया' एतावता परिभ्रमणेन 'बाहिराणंतरे' बाह्यानन्तरमर्वाक्तनं 'पच्चत्थिमिल्ले अद्धमंडले' पाश्चात्यमर्द्धमण्डलं 'समत्ते भवइ' समाप्तं भवति । अथ पौरस्त्यार्द्धभागमाश्रित्याह– 'ता तच्चायणगए चंदे' तावत् तृतीयायनगतश्चन्द्रः 'पुरत्थिमिल्लाए भागाए' पौरस्त्याद् भागात् 'पविसमाणे' प्रविशन् 'बाहिर तच्चस्स' बाह्यतृतीयस्य सर्ववाह्यादर्वाक्तनस्य 'पुरत्थिमिल्लस्स अद्धमंडलस्स' पौरस्त्यस्यार्द्धमण्डलस्य 'इगतालीसं सत्तट्ठिभागाइं' एकचत्वारिंशतं सप्तषष्टिभागान् 'जाइं चंदो' यान् चन्द्रः 'अप्पणो परस्स य चिण्णं' आत्मना परेण च चीर्णान् 'पडिचरइ' प्रतिचरति ततः परं परचीर्ण त्रयोदशभाग-स्वपर चीर्णत्रयोदश भागे ति पड् विंशति भागान् पुनश्चरतीति प्रदर्श्यते–'तेरस सत्तट्ठि भागाइं' अन्ये ते त्रयोदश सप्तषष्टि भागाः सन्ति 'जाइं चंदे' यान् चन्द्रः 'परस्स चिण्णं पडिचरइ' परेण चीर्णान् प्रतिचरति, पुनरन्ये च ते–'तेरस सत्तट्ठि भागाइं' त्रयोदश सप्तषष्टिभागा सन्ति 'जाइं चंदे' यान् चन्द्रः 'अप्पणो परस्सय चिण्णं पडिचरइ' आत्मना परेण च चीर्णान् प्रतिचरति 'एयावया' एतावता 'बाहिरतच्चे' बाह्य तृतीयं सर्व बाह्यान्मण्डलादर्वाक्तनं तृतीयं 'पुरत्थिमिल्ले अद्धमंडले' पौरस्त्यमर्द्धमण्डलं 'समत्ते भवइ' समाप्तं भवति । सप्तषष्टे भागानां परिपूर्णजातत्वात् । अथ पाश्चात्यभागमाश्रित्य चन्द्रचारमाह–'ता तच्चायणगए' इत्यादि, 'ता' तावत् 'तच्चायणगए चंदे' तस्मिन्नेव तृतीयायने गतश्चन्द्रः 'पच्चत्थिमाए भागाए' पाश्चात्याद् भागात् 'पविसमाणे' प्रविशन् 'बाहिर चउत्थस्स' सर्व बाह्यान्मण्डलादर्वाक्तनस्य 'पच्चत्थिमिल्लस्स अद्धमंडलस्स' पाश्चात्यस्यार्द्धमण्डलस्य 'अद्धसत्तट्ठिभागाइं' अर्द्ध सप्तषष्टिभागान् तथा 'सत्तट्ठिभागंच' एकं च सप्तषष्टिभागं 'एक्कतीसधा छित्ता' एकत्रिंशद्धा छित्वा एकस्य सप्तषष्टिभागस्य एकत्रिंशतं भागान् कृत्वा तन्मध्यात् ते 'अट्ठारसभागाइं' अष्टादशभागाः 'जाइं चंदे' यान् चन्द्रः 'अप्पणो परस्स य चिण्णं' अत्मना परेण च चीर्णान् 'पडिचरइ' प्रतिचरति । 'एयावया' एतावता परिभ्रमणेन 'बाहिरचउत्थे' बाह्यचतुर्थं सर्ववाह्यान्मण्डलादर्वाक्तनं-चतुर्थं 'पच्चत्थिमिल्ले अद्धमंडले' पाश्चात्यमर्द्धमण्डलं 'समत्ते भवइ' समाप्तं भवति । एवं च तत्परिसमाप्तो चान्द्रो मासः परिपूर्णो जात इति । साम्प्रतं पूर्वोक्तमेव सर्वं प्रदर्शयन् चन्द्रमासगतमुपसंहारमाह–एवं खलु' इत्यादि एवं खलु' एवमुक्तेन प्रकारेण खलु निश्चितं 'चंदेणं मासेणं' चान्द्रेण मासेन चंदे' चन्द्रः 'तेरस चउप्पण्णगाइं' त्रयोदश–त्रयोदश संख्यकानि, चतुष्पञ्चाशत्कानि चतुष्पञ्चाशद्भागरूपाणि 'दुवे तेरसगाइं' द्वे त्रयोदशके के ते इत्यमाह– 'जाइं चंदे' ये चन्द्रः 'परस्स चिण्णं' परेण चीर्णे 'पडिचरइ' प्रतिचरति, वर्त्तमानकालनिर्देशः

सकलकालयुगस्य प्रथमे चान्द्रे मासे एवमेव चारसद्भावात् अत्रेयं भावना तत्र त्रयोदशापि चतुष्पञ्चाशत्कानि द्वितीयेऽयने, तत्रापि सप्त चतुष्पञ्चाशत्कानि पूर्वभागे षट् च पाश्चात्ये भागे, एवं त्रयोदश भवन्ति, ये च द्वे त्रयोदशके ते द्वितीयायनस्योपरि चान्द्रमासावधेरर्वाक् द्रष्टव्यम्, तत्र द्वयोस्त्रयोदशकयोर्मध्ये एकं त्रयोदशकं सर्वबाह्यादर्वाक्तने द्वितीये पाश्चात्येऽर्द्धमण्डले, द्वितीयं त्रयोदशकं च पौरस्त्ये तृतीयेऽर्द्धमण्डले विज्ञेयमिति । पुनश्च–'तेरस २ गाइं' इत्यादि, **'तेरस तेरसगाइं'** त्रयोदश त्रयोदशकानि **'जाइं चंदे'** यानि चन्द्रः **'अप्पणो चिण्णं पडिचरइ'** आत्मना चीर्णानि प्रतिचरति । एतानि च सर्वाण्यपि द्वितीयेऽयने वेदितव्यानि, तत्रापि सप्त त्रयोदशकानि पूर्वभागे, षट् च पश्चिमभागे इति विज्ञेयम् । तथा **'दुवे इगतालीसगाइं'** द्वे एकचत्वारिंशत्के **'अट्ठ सत्तट्ठि भागाइं'** अष्टौ सप्तषष्टिभागाः, **'सत्तट्ठिभागं च'** एकं च सप्तषष्टिभागं **'एक्कतीसधा छित्ता'** एकत्रिंशद्धा छित्वा एकस्य सप्तषष्टिभागस्य एकत्रिंशद्भागान् कृत्वा तन्मध्यात् **'अट्ठारस भागाइं'** अष्टादशभागान् **'जाइं'** यान् तान् **'चंदे'** चन्द्रः **'अप्पणो परस्स य चिण्णं'** आत्मना परेण च चीर्णान्–**'पडिचरइ'** प्रतिचरति । **'अवराइं खलु'** अपरे अन्ये खलु **'दुवे तेरसगाइं'** द्वे त्रयोदशके **'जाइं चंदे'** ये द्वे ते चन्द्रः **'केणइ असामण्णगाइं'** केनापि असामान्यके अनाचीर्णपूर्वे **'सयमेव'** स्वयमेव **'पविसित्ता२'** प्रविश्य प्रविश्य **'चारं चरइ'** चारं चरति । तत्र–एकम् एकचत्वारिंशत्कम्, एकं च त्रयोदशकं द्वितीयायनोपरि सर्वबाह्यात् मण्डलात् अर्वाक्तने द्वितीये पाश्चात्येऽर्द्धमण्डले, तथा–द्वितीयम् एकचत्वारिंशत्कम्, द्वितीयं च त्रयोदशकं सर्वबाह्यान्मण्डलादर्वाक्तने तृतीये पौरस्त्ये विज्ञेयम् । शेषाः ये अष्टषष्टिभागाः तत्सम्बन्धिनः अष्टादश एकत्रिंशद्भागा श्चूर्णिकाभागाः, एकस्य सप्तषष्टिभागस्य एकत्रिंशद्भागान् कृत्वा तन्मध्याद् ये अष्टादश भागास्ते चूर्णिका भागाः कथ्यन्ते, ते पाश्चात्ये सर्वबाह्यादर्वाक्तने चतुर्थेऽर्द्धमण्डले विज्ञेयाः । अथोपसंहरति–**'इच्चेसा'** इत्यादि, **'इच्चेसा'** इत्येषा पूर्वोक्तस्वरूपा **'चंदमसो'** चन्द्रमसः चन्द्रस्य संस्थिति रित्यग्रेण सम्बन्धः । कीदृशी सा? इत्याह **'अभिगमणणिक्खमणवुड्ढि–णिवुड्ढिअणवट्ठियसंठाणा'** अभिगमन–निष्क्रमण–वृद्धि–निर्वृद्ध्यनवस्थितसंस्थाना, तत्र–अभिगमनम्–सर्वबाह्यान्मण्डलादभ्यन्तरं प्रवेशनम्, निष्क्रमणम्–सर्वाभ्यन्तरान्मण्डला द्बहिर्गमनम्, वृद्धिः–कलावृद्धिः चन्द्रस्य प्राकट्योपचयः, निर्वृद्धिः–कलाहानिः चन्द्रस्य प्राकट्यापचयः एभिः प्रकारैः अनवस्थितम्–अवस्थितिरहितं समयमनेकधा दृश्यमानत्वात् एतादृशं सस्थानम् तत्र–अभिगमनं निष्क्रमणं चाधिकृत्यावस्थानं वृद्धी निर्वृद्धी अधिकृत्य च संस्थानम् आकारो यस्याः सा तथाभूता **'संठिई'** संस्थितिरस्ति । तथा **'विउव्वणगिड्ढिपत्ते'** विकुर्वणक ऋद्धिप्राप्तः रूपी अतिशयरूपवान् **'चंदे देवे चंदे देवे'** चन्द्रो देवः पूर्वोक्त विशेषणविशिष्ट श्चन्द्रो देवो वर्तते, नतु परिदृश्यमान विमानमात्रश्चन्द्रः किन्तु

तादृश विमानचारी चन्द्राभिधो देवोऽस्तीति 'आहिए' आख्यातो मया 'तिवएज्जा' इति वदेत् कथयेत् स्व शिष्येभ्यः ।। सू० ।।२।।

इति श्री जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्य श्री घासी
लाल व्रतिविरचितायां चद्रन्प्रज्ञप्तिसूत्रस्य
चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिकाख्यायां
व्यख्यायां त्रयोदशं प्राभृतं
समाप्तम् ।।१३।।

श्री रस्तु ।

।। चतुर्दशं प्राभृतम् ।।

गतं त्रयोदशं प्राभृतम्, तत्र चन्द्रस्य वृद्धिरपवृद्धिश्च प्रतिवादिता, साम्प्रतं तत्प्रसङ्गात् 'कया ते दोसिणा वहू' कदा ते ज्योत्स्नाबहुः, इति पूर्वमादौ संग्रहगाथायां प्रोक्तं तदनुसारेण इह चतुर्दशे प्राभृते ज्योत्स्नाया बहुत्वं प्रतिपादयिष्यते, इति सम्बन्धेनायातस्यास्य चतुर्दशस्य प्राभृतस्येदं सूत्रम्—'ता कया ते दोसिणा वहू' इत्यादि ।

मूलम्—ता कया ते दोसिणावहू आहिए ? ति वएज्जा, ता दोसिणा पक्खेणं दोसिणा वहू आहिए त्ति वएज्जा। ता कहं ते दोसिणा पक्खे दोसिणा वहू आहिए ति वएज्जा ता अंधयारपक्खाओ णं दोसिणपक्खे दोसिणा वहू आहिए ति वएज्जा ता कहं ते अंधयार पक्खाओ णं दोसिणा पक्खे दोसिणा वहू आहिए त्ति वएज्जा ? ता अंधयारपक्खाओ णं दोसिणापक्खं अयमाणे चंदे चत्तारि बायालाइं मुहुत्तसयाइं, छत्तालीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स जाइ चंदे विरज्जइ, तं जहा—पढमाए पढमं भागं, वितिआए वितियं भागं जाव पण्णरसीए पण्णरसं भागं, एवं खलु अंधयारपक्खाओ दोसिणा पक्खे दोसिणा वहू आहिए—तिवएज्जा । ता केवइया णं दोसिणा पक्खे दोसिणा वहू आहिए । ति ता परित्ता असंखेज्जा भागा। ता कया ते अंधयारे वहू आहिए ? ति वएज्जा ता अंधयारपक्खे णं अंधयारे वहू आहिए ति वएज्जा । ता कहं ते अंधयारपक्खे अंधयारे वहू आहिए। त्ति वएज्जा; ता दोसिणा पक्खाओ अंधयारपक्खे अंधयार बहू आहिए तिं वएज्जा । ता कहं ते दोसिणा पक्खाओ अंधयार पक्खे अंधयारे वहू आहिए ति वएज्जा, ता दोसिणा पक्खाओ णं अंधयारपक्खं अयमाणे चंदे चत्तारि बायालाइं मुहुत्त-सयाइं छायालीसं च बावट्ठिभागे मुहुत्तस्स, जाइं चंदे रज्जइ, तं जहा—पढमाए पढमं-भागं, वितियाए वितियं भागं जाव पण्णरसीए पण्णरसमं भागं। एवं खलु दोसिणा पक्खाओ अंधयारपक्खे अंधयारे वहू आहिएति वएज्जा। ता केवइएणं अंधयारपक्खे अंधयारे बहू आहिए ? त्तिवएज्जा परित्ता असंखेज्जा भागा ।। सू०१।।

चोद्दसमं पाहुडं समत्तम् ।।१४।।

छाया--तावत् कदा ते ज्योत्स्ना बहू राख्याता ? इति वदेत् तावत् ज्योत्स्नापक्षे खलु ज्योत्स्ना बहू राख्याता ? इति वदेत् तावत् कथं ते ज्योत्स्ना पक्षे ज्योत्ना बहु आख्याता ? इति वदेत् तावत् अन्धकारपक्षात् खलु ज्योत्स्ना पक्षे ज्योत्स्ना बहुराख्याता इति वदेत् । तावत् कथं ते अन्धकारपक्षात् ज्योत्स्ना पक्षे ज्योत्स्नाना बहुराख्याता ? इति वदेत् तावत् अन्धकारपक्षात् खलु ज्योत्स्नापक्षम् अयन् चन्द्र चत्वारि द्विचत्वारिंशानि मुहूर्तशतानि षट्चत्वारिंशतं च द्वाषष्टि भोगान् मुहूर्त्तस्य यान् चन्द्रः विरज्यते तद्यथा-प्रथमायां प्रथम भागम् ?, द्वितीयायां द्वितीयं भागम्, यावत् पञ्चदश्यां पञ्चदशंभागम् । एवं खलु अन्धकारपक्षात् ज्योत्स्नापक्षे ज्योत्स्ना बहुराख्याता, इतिवदेत् । तावत् कियत्का खलु ज्योत्स्ना पक्षे ज्योत्स्ना बहुराख्याता, ? इति वदेत्, तावत् परीता असंख्येया भागाः तावत् कदा ते अन्धकारः बहुराख्यातः इति वदेत् , तावत् अन्धकारपक्षे खलु अन्धकारो बहुराख्यात इतिवदेत् । तावत् कथं ते अन्धकारपक्षे अन्धकारो बहुः आख्यातः ? इतिवदेत् तावत् ज्योत्नापक्षात् अधकारणपक्षे अंधकारो बहु राख्यात इतिवदेत् । तावत् कथं ते ज्योत्स्नापक्षात् अन्धकारपक्षे अन्धकारो बहुराख्यात इतिवदेत् तावत् ज्योत्स्ना पक्षात् खलु अन्धकारपक्षमयन् चन्द्रः चत्वारि द्विचत्वारिंशानि मुहूर्त्तशतानि, षट् चत्वारिंशतं च द्वाषष्ठि भागान् मुहूर्त्तस्य यान् चन्द्रो रज्यते तद्यथा-प्रथमायां प्रथमं भगम् द्वितीयायां, द्विनोयं भागम्, यावत् पञ्च दश्यां पञ्चदशं भागम् । एवं खलु ज्योत्स्ना पक्षात् अन्धकार पक्षे अन्धकारो बहुराख्यातः इति वदेत् । तावत् कियत्कः खलु अन्धकारपक्षे अन्धकारो बहु राख्यातः ? इति वदेत, परीता असंख्येया भागाः सू० ॥१४॥

॥ चतुर्दशं प्राभृतं समाप्तम् ॥

व्याख्या--'ता कया ते' इति 'ता' तावत् 'कया' कदा कस्मिन् काले हे भगवन् 'ते' त्वया तवमते वा 'दोसिणा' ज्योत्स्ना 'बहू' बहुः प्रभृता 'आहिया' आख्याता ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु भगवानाह-'ता दोसिणा पक्खे' इत्यादि ता दोसिणा पक्खेणं' ज्योत्स्ना पक्षे शुक्लपक्षे खलु 'दोसिणा' ज्योत्स्ना चन्द्रिका 'बहू' बहुः प्रभृता 'आहिया' आख्यता 'तिवएज्जा' इति वदेत् कथयेत् स्वशिष्येभ्यः । पुनः पृच्छति-'ता कहंते' इत्यादिना 'ता' तावत् 'कहं' कथं कस्मात् 'ते' तवमते 'दोसिणा पक्खे' ज्योत्स्ना पक्षे शुक्लपक्षे 'दोसिणा' ज्योत्स्ना चन्द्रिका 'बहू' बहुः 'आहिया' आख्याता ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु । भगवानाह-'ता' तावत् 'अंधयारपक्खाओ णं' अन्धकारपक्षात् कृष्णपक्षमधिकृत्य खलु कृष्ण पक्षापेक्षयेत्यर्थः 'दोसिणा' ज्योत्स्ना 'बहू' बहुः 'आहिया' आख्याता 'तिवएज्जा' इति वदेत् कथयेत् । पुनः पृच्छति- 'ता कहंते इत्यादि' 'ता' तावत् 'कहं' कथं कस्मात्कारणात् 'ते' तवमते 'अंधयारपक्खाओ' अन्धकारपक्षात् अन्धकारपक्षापेक्षया 'दोसिणापक्खे' ज्योत्स्नापक्षे शुक्लपक्षे 'दोसिणा बहू आहिया' ज्योत्स्ना बहुराख्याता ? 'तिवएज्जा' इति वदतु । भगवान् तदेव दर्शयति 'ता अंधयारपक्खाओ' इत्यादि, 'ता' तावत् 'अंधयार-

पक्खाओ णं' अन्धकारपक्षात् खलु 'दोसिणा पक्खं' ज्योत्स्नापक्षम् 'अयमाणे' अयन् प्राप्नुवन 'चंदे' चन्द्र 'चत्तारि बायालाइं मुहुत्तसयाइं, चत्वारि द्वाचत्वारिंशानि द्वाचत्वारिंशदधिकानि मुहूर्त्तशतानि द्वाचत्वारिंशदधिकानि चतुर्मुहूर्त्तशतानि, "मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्य च 'छत्तालीसं च बावट्ठिभागे' पट्चत्वारिंशतं द्वाषष्टि भागान् यावत् ज्योत्स्ना निरन्तरं प्रवर्द्धते कानित्याह–'जाइं' यान् भागान् यावत् 'चन्दे' चन्द्रः 'विरज्जइ' विरज्यते विरक्तो भवति. राहु विमानेनानावृतो भवति पट्चत्वारिंशद् द्वाषष्टिभागसहितद्विचत्वारिंशदधिकचतुःशतभाग-
$(४४२-\frac{४२}{६२})$ पर्यन्तं ज्योत्स्ना वर्द्धते इति भावः। एतावत्कालपर्यन्तं चन्द्रः शनैः शनैः राहु विमानेनानावृतस्वरूपो भवन्नास्ते। मुहूर्त्तसंख्यागणितभावना पूर्वं प्रदर्शितैव तद्वत् कर्त्तव्या। चन्द्रो राहुविमानेन कथमनावृतो भवतीत्याह—'तं जहा' इत्यादि, 'तं जहा' तद्यथा–'पढमाए पढमं भागं' प्रथमायां प्रथमतिथौ प्रतिपदीत्यर्थः प्रथमं पञ्चदशं द्वाषष्टिभाग सम्बन्धि भागचतुष्टयप्रमाणं भागं यावदनावृतो भवति। 'विइयाए विइयं भागं' द्वितीयायां तिथौ द्वितीय भागं पूर्वोक्तलक्षणं यावत् अनावृतो भवति, एवं 'जाव' यावत्–यावत्पदेन तृतीयायां तृतीयं भागम् ३, चतुर्थ्यां चतुर्थं भागं, पञ्चम्यां पञ्चमं भागम् पष्ठयां पष्ठं भागम् ६, सप्तम्यां सप्तमं भागम् ७, अष्टम्यामष्ठमं भागम् ८, नवम्यां नवमं भागम् ९, दशम्यां दशमं भागम् १०, एकादश्यामेकादशं भागम् ११, द्वादश्यां द्वादशं भागम् १२, त्रयोदश्यां त्रयोदशं भागम् १३, चतुर्दश्यां चतुर्दशं भागम् १४, इत्येतत् संग्राह्यम्, अग्रे सूत्रकार एवाह–'पण्णरसीए पण्णरसं भागं' पञ्चदश्यां पूर्णिमायामित्यर्थः पञ्चदशं भागं यावद् अनावृतो भवति, तदा सर्वात्मना चन्द्रो राहु विमानेनानावृतो भवतीति भावः।

अथोपसंहरति 'एवं खलु' इत्यादि 'एवं' एवम् पूर्वोक्तरीत्या खलु 'अंधयारपक्खाओ' अन्धकारपक्षात् 'दोसिणा पक्खे' ज्योत्स्ना पक्षे शुक्लपक्षे 'दोसिणा बहू आहिया' ज्योत्स्ना बहुराख्याता 'तिवएज्जा' इति वदेत् कथयेत्। अथात्र भावना क्रियते-इह शुक्लपक्षे यथा प्रतिपत्प्रथमक्षणादारभ्य प्रति मुहूर्त्तं यावन्मात्रं शनैः २ चन्द्र प्रकटो भवति तथैव अन्धकार पक्षे प्रतिपत्प्रथमक्षणादारभ्य प्रतिमुहूर्त्तं तावन्मात्रं शनैः शनैश्चन्द्र आवृतो जायते, तत एवं सति यावत्येवान्धकार पक्षे ज्योत्स्ना भवति तावत्येव शुक्लपक्षेऽपि ज्योत्स्ना प्राप्यते, किन्तु शुक्लपक्षे या पूर्णिमायां ज्योत्स्ना भवति सा अन्धकारपक्षादधिका भवतीत्यतः अन्धकार पक्षात शुक्लपक्षे ज्योत्स्ना बहु. कथितेति।

अथ तत्प्रमाणविषये पृच्छति-'ता केवइया' इत्यादि 'ता' तावत् 'केवइया' कियत्का कियत्परिमिता 'णं' खलु 'दोसिणापक्खे' ज्योत्स्ना पक्षे 'बहू' बहु प्रभूता शुक्लपक्षे 'दोसिणा' ज्योत्स्ना चन्द्रिका

'आहिया' आख्याता ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् ! भगवानाह–'ता परित्ता' इत्यादि, 'ता' तावत् 'परित्ता' परीताश्च 'असंखेज्जा भागा' असंख्येया भागाः निर्विभागा इति । अथान्धकारविषये पृच्छति–'ता कया ते' इत्यादि 'ता' तावत् 'कया' कदा कस्मिन् काले 'ते' तवमते 'अंधयारे बहू आहिए' अन्धकारो बहूराख्यातः ? ति वएज्जा' इति वदतु कथयतु । भगवानाह–'ता अंधयार पक्खे णं' इत्यादि, 'ता' तावत्, 'अंधयारपक्खेणं' अन्धकारपक्षे खलु 'अंधयारे' अन्धकारः 'बहू आहिए' बहुराख्यातः 'तिवएज्जा' इति वदेत् कथयेत् स्वशिष्येभ्यः । पुनः पृच्छति–'ता कहंते' इत्यादि, 'ता' तावत् 'कथं' कस्मात् 'ते' तवमते 'अंधयारपक्खे' अन्धकारपक्षे 'अंधयारे' अन्धकारः 'बहू आहिए' बहुराख्यातः ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् कथयतु । भगवानाह–'ता दोसिणा पक्खाओ' इत्यादि 'ता' तावत् 'दोसिणा पक्खाओ' ज्योत्स्नापक्षात् शुक्लपक्षापेक्षयेत्यर्थः 'अंधयारपक्खे' अन्धकारपक्षे–'अंधयारे' अन्धकारः 'बहू आहिए' बहु आख्यातः 'तिवएज्जा' इति वदेत् । पुनर्गौतमः पृच्छति–'ता कहं ते' इत्यादि, 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'ते' तवमते 'दोसिणा पक्खाओ' ज्योत्स्नापक्षात् शुक्लपक्षात् 'अंधयारपक्खे' अन्धकारपक्षे 'अंधयारे बहूआहिए' अन्धकारो बहुराख्यातः ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु । भगवानाह–'ता' तावत् 'दोसिणा पक्खाओणं' ज्योत्स्नापक्षात् खलु शुक्लपक्ष मुक्त्वेत्यर्थः 'अंधयारपक्खं अयमाणे' अन्धकारपक्षमयन् प्राप्नुवन् अन्धकारपक्षे प्रविशन्नित्यर्थः 'चंदे' चन्द्रः 'चत्तारियबालाइं मुहूत्तसयाइं' चत्वारि द्विचत्वारिंशदधिकानि मुहूर्त्तशतानि, 'छायालिसंच बायट्ठिभागे' षट्चत्वारिंशतंच द्वाषष्टि भागान् 'मुहुत्तस्स' एकस्य मुहूर्त्तस्य ($442 \frac{46}{62}$) कानित्याह–'जाइं' यान् यावत् 'चंदे' चन्द्रः 'रज्जइ' रज्यते रक्तो भवति राहु विमानेनाऽऽवृतो भवति, 'तं जहा' तद्यथा–'पढमाए' प्रथमायां कृष्णप्रतिपल्लक्षणायां 'पढमं भागं' प्रथमं भागम्, 'वितियाए' द्वितीयायां वितियं' द्वितीयंभागम्, 'जाव' यावत् तृतयीयां तृतीयं भागम्, एवं क्रमेण चतुर्दश्यां चतुर्दशं भागं 'पण्णरसीए पञ्चदश्याममावास्यायां 'पण्णरसमं भागं' यावत् चन्द्रो राहुविमानेन आवृतो भवति सर्वात्मना अदृश्यों भवतीति भावः । उपसंहारमाह–'एवं खलु' इत्यादि, 'एवं' एवम् अनेन पूर्वोक्तप्रकारेण खलु 'दोसिणा पक्खाओ' ज्योत्स्नापक्षापेक्षया 'अंधयारपक्खे' अन्धकारपक्षे कृष्णपक्षे 'अंधयारे' अन्धकारः 'बहू आहिए' बहुः–अधिक आख्यातः । अयं भावः अन्धकारपक्षेऽमावास्यायां योऽन्धकारः स ज्योत्स्नापक्षादधिको भगवतीत्यतः ज्योत्स्ना पक्षादन्धकारपक्षेऽन्धकारः प्रभूत आख्यात. 'तिवएज्जा' इति वदेत्–कथयेत स्वशिष्येभ्यः पुनर्गौतमस्तदाधिक्य विषये पृच्छति–'ता केवइएणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'केवइएणं' कियत्कः कियत्परिमितः खलु 'अंध-

यारपक्खे' अन्धकारपक्षे 'अंधयारे' अन्धकारः 'बहूआहिए' बहुराख्यातः ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवान्! भगवानाह–'परित्ता' इत्यादि, 'परित्ता' परिताः परिमिता 'असंखेजा भागा' असंख्येया भागाः, सोऽन्धकारः परिमितः संख्येयभागपरिमितोऽधिको भवतीति भावः ॥सू० १॥

इति श्री जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्य श्री घासीलाल व्रति–
विरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रप्रज्ञप्तिप्रकाशिकाख्यायां
व्याख्यायां चतुर्दशं प्राभृतं
समाप्तम् ॥१४॥

॥ अथ पञ्चदशं प्राभृतम् ॥

व्याख्यातं चतुर्दशं प्राभृतम् साम्प्रतं पञ्चदशं प्रभृतं व्याख्यायते, अस्य पूर्व प्राभृतेनायं सम्बन्धः चतुर्दशे प्राभृते ज्योत्स्नाऽन्धकारयोः परस्परमाधिक्यं प्रतिपादितम्, तत्प्रसङ्गादत्रायमधिकारः–पूर्वमादौ विषयसंगृहप्रकरणे 'केय सिग्धगई वुत्ते' कः शीघ्रगतिरुक्तः, इति प्रोक्तमित्यत्र चन्द्रसूर्य ग्रहगणनक्षत्र ताराखपाणां मध्ये कः कस्मात् शीघ्रगतिरिति प्रतिपादयिपुः प्रथमं सूत्रमाह–'ता कहंते सिग्धगई' इत्यादि।

मूलम्—'ता कहं ते सिग्धगई वत्थू आहियं ! तिवएज्जा, ता एएसिणं चंदिम सूरिय गह गण णक्खत्त ताराख्वाणं चंदेहिंतो सूरिया सिग्धगई, सूरिएहिंतो गहा सिग्धगई गहेहिंतो णक्खत्ता सिग्धगई, णक्खत्तेहिंतो तारा सिग्धगई। सव्वप्पगई चंदा, सव्वसिग्ध गई तारा। ता एग मेगेणं मुहुत्तेणं चंदे केवइयाइं भागसयाइ गच्छइ ! ता जं जं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तस्स तस्स मंडलपरिक्खेवस्स सत्तरस अट्ठसट्ठि भागसयाइं गच्छइ, मंडलं सयसहस्सेणं अट्ठाणउइ सएहिं छेत्ता। ता एगमेगेणं मुहुत्तेणं-सूरिए केवइयाइं भागसयाइं गच्छइ। ता जं णं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तस्स तस्स मंडलपरिक्खेवस्स अट्ठारसतीसाइं भागासयाइं गच्छइ मंडलं सयसहस्सेणं अट्ठाणउइसएहिं छेत्ता। ता एगमेगेणं मुहुत्तेणं णक्खत्ते केवइयाइं मंडलसयाइं गच्छइ। ता जं जं मंडलं उवसंकमित्ता चारं चरइ तस्स तस्स मंडलपरिक्खेवस्स अट्ठारस पणतीसाइं भागसयाइं गच्छइ, मंडलं सयसहस्सेणं अट्ठाणउइ सएहिं छेत्ता ॥सू०१

छाया—तावत् कथं ते शीघ्रगतिर्वस्तु आख्यातम् ? इति वदेत्। तावत् एतेषां खलु चन्द्रसूर्यग्रहगणनक्षत्रताराख्पाणां चन्द्रेभ्य सूर्या शीघ्रगतयः, सूर्येभ्यो ग्रहा शीघ्रगतयः, ग्रहेभ्यो नक्षत्राणि शीघ्रगतीनि, नक्षत्रेभ्यस्ताराः शीघ्रगतयः, सर्वाल्पगतयश्चन्द्राः, सर्व शीघ्रगतयस्तारा तावत् एकैकेन मुहूर्त्तेन चन्द्रः कियन्ति भागशतानि गच्छति ? !

तावत् यद् यद् मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तस्य तस्य मण्डलपरिक्षेपस्य सप्तदश अष्ट षष्ठानि भागशतानि गच्छति, मण्डलं शतसहस्रेण अष्टानवति शतैश्छित्त्वा । तावत् एकैकेन मुहूर्त्तेन सूर्यः कियन्ति भागशतानि गच्छति ? तावत् यद् यद् मण्डलम् उपसंक्रम्य चारं चरति तस्य तस्य मण्डलपरिक्षेपस्य अष्टादश त्रिंशानि भागशतानि गच्छति मण्डलं शतसहस्रेण अष्टानवति शतैश्छित्त्वा । तावत् एकैकेन मुहूर्त्तेन नक्षत्रं कियन्ति भागशतानि गच्छति ? तावत् यद् यद् मण्डलमुपसंक्रम्य चारं चरति तस्य तस्य मण्डलपरिक्षेपस्य अष्टादश पञ्च त्रिंशानि भागशतानि गच्छति मण्डलं शतसहस्रेण अष्टानवतिशतैश्छित्त्वा । सूत्र १ ।

व्याख्या—'ता कहंते' इति, 'ता' तावत् 'कहं कथं केन प्रकारेण हे भगवन् 'ते' त्वया 'वत्थु' चन्द्रसूर्यादिवस्तु 'सिग्घगइ आहियं' शीघ्रगति आख्यातम् ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु । भगवानाह-'ता एएसिणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एएसिणं' एतेषां वक्ष्यमाणानां खलु 'चंद सूरियगहगणनक्खत्ततारारूवाणं' चन्द्रसूर्यग्रहगणनक्षत्रतारारूपाणां पञ्चानां ज्योतिष्काणा मध्ये 'चंदेहिंतो सूरिया सिग्घगई' चन्द्रेभ्यः चन्द्रापेक्षया सूर्याः शीघ्रगतयः सन्ति, 'सूरिएहितो गहा सिग्घगई' सूर्येभ्यो ग्रहाः शीघ्रगतयः सन्ति, 'गहेहिंतो णक्खत्ता सिग्घगई' ग्रहेभ्यो नक्षत्राणि शीघ्रगतीनि सन्ति, 'नक्खत्तेहितो तारा सिग्घगई' नक्षत्रेभ्यस्ताराः—शीघ्रगतयः सन्ति । एतेषां पञ्चानां ज्योतिष्काणां मध्ये केषा सर्वाल्पा गतिः केषां च सर्व शीघ्रा गतिः ? इत्याह—'सव्वप्पगई' इत्यादि, 'सव्वप्पगई चंदा' सर्वाल्पगतयश्चन्द्राः सन्ति, 'सव्वसिग्घगई तारा' सर्वशीघ्रगतयस्तारा इति । एतमेवार्थं स्पष्टीकरणार्थं पृच्छति—'ता एगमेगेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एगमेगेणं मुहुत्तेणं' एकैकेन मुहूर्त्तेन 'चंदे' चन्द्रः 'केवइयाइं भाग सयाइं' कियन्ति भागशतानि मण्डलस्य 'गच्छइ' गच्छति ? भगवानाह—'ता जं जं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जं जं मंडलं' यद् यद् मण्डलम् 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तस्स तस्स तस्य तस्य 'मंडलपरिक्खेवस्स' मण्डलसम्बन्धिनः परिक्षेपस्य परिधेः 'सत्तरस अट्ठसट्ठि भागसयाइं' सप्तदश अष्टषष्ठानि अष्टषष्ट्यधिकानि भागशतानि अष्टषष्ट्यधिकानि सप्तदश शतानि (१७६८) भागानि 'गच्छइ' गच्छति, 'मंडलं' मण्डलं मण्डलपरिक्षेपं च 'सयसहस्सेणं' शतसहस्रेण एकेन लक्षेण 'अट्ठाणउइसएहिं' अष्टनवतिशतैः अष्टनवतिशताधिकेन लक्षेण (१०९८००) 'छेत्ता' छित्त्वा विभज्येति । यस्मिन् मण्डले चन्द्रश्चारं चरति तस्य मण्डलस्य अष्टानवतिशताधिककलक्ष—(१०९८००) भागान् कृत्वा तन्मध्यात् अष्टषष्ट्यधिक सप्तदशशतभागान् (१७६८) अभिव्याप्य चन्द्रश्चारं चरतीति भावः ।

अत्रेयं भावना— इह प्रथमं चन्द्रस्य मण्डलकालो निरूपणीयः ततपश्चात् तदनुसारेण मुहूर्त्तगतिपरिमाणं परिभावनीयम् तत्र पूर्वं चन्द्रस्य मण्डलकालः परिभाव्यते—एकस्मिन् युगे चन्द्रः

कति मण्डलानि चरति ? इति प्रदर्श्यते—एकस्मिन्युगे त्रिंशदधिकानि अष्टादश शतानि (१८३०) अहोरात्राणां भवन्ति एषा मुहूर्त्तकरणार्थं मेते एकस्याहोरात्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् त्रिंशता गुण्यन्ते जातानि चतुष्पञ्चाशत्सहस्राणि नवशतानि च (५४९००), एष राशिः अष्टषष्टयधिक सप्तदशशतैः (१७६८) सकलयुगवर्त्यर्द्धमण्डलै गुण्यते जाताः—नव कोटयः, सप्तति लक्षाणि, त्रिषष्टिसहस्राणि, द्वे शते च (९७०६३२००) एतावन्तो भागाः, एषाम् अष्टनवति शताधिकेन लक्षेण (१०९८००) पूर्वप्रदर्शितेन मण्डलपरिक्षेपच्छेदकराशिना भागो ह्रियते, लब्धानि 'चतुरशीत्यधिकानि अष्टौ शतानि चद्रमण्डलानि भवन्ति एतानि मण्डलानि द्वौ चन्द्रौ संमील्य एकस्मिन् युगे चारं चरत. । एषामर्द्धमण्डलानि द्विगुणानि जायन्ते अष्टषष्टयधिकानि सप्तदशशतानि (१७६८) ततो मण्डलकालानयनार्थं त्रैराशिकं क्रियते, तथाहि—यदि अष्टषष्टयधिकैः सप्तदशभिः शतै सकल युगवर्त्तिभिरर्द्धमण्डलैरष्टादशशतानि त्रिंशदधिकानि अहोरात्राणां लभ्यन्ते ? राशित्रयस्थापना—(१७६८।१८३०।२) त्रैराशिकगणितरीत्याऽन्त्येन राशिना द्विकरूपेण मध्यो राशिस्त्रिंशदधिकाष्टादशशतरूपो गुण्यते, जातानि षष्टयधिकानि षट्त्रिंशत्सहस्राणि (३६६०) एषामाद्येन राशिना अष्टषष्टयधिकसप्तदशशतरूपेण भागो ह्रियते, लब्धौ द्वौ अहोरात्रौ, शेषं तिष्ठति चतुर्विंशत्यधिकं शतम् (१२४) । एष शेषभागः एकस्याहोरात्रस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वात् त्रिंशता गुण्यते, जातानि विंशत्यधिकानि सप्तत्रिंशच्छतानि (३७२०), एषामष्टषष्टयधिकसप्तदशशतरूपेण भाजकराशिना (१७६८) भागो ह्रियते, लब्धौ द्वौ मुहूर्त्तौ, शेषं तिष्ठति चतुरशीत्यधिकं शतम् (१८४), ततः शेषीभूतस्य छेदराशेः (१७४), छेदकराशेश्च (१७६८) अष्टकेनापवर्त्तना क्रियते, जातः छेद्यो राशिस्त्रयोविंशतिः (२३) छेदकराशिश्च एकविंशत्यधिके द्वे शते (२२१) तत आगतम् द्वौ अहोरात्रौ एकस्य चाहोरात्रस्य द्वौ मुहूर्त्तौ, एकस्य च मुहूर्त्तस्य त्रयोविंशति रेकविंशत्यधिकद्विशतभागाः $(२।२\left|\frac{२३}{२२१}\right.)$ । एतावता कालेन चन्द्रो द्वे अर्द्धमण्डले परिपूर्णे इति—एकं परिपूर्णं मण्डलं चरतीति । इत्येव मण्डलकालपरिज्ञानं कृतम्, साम्प्रतमेतदनुसारेण मुहूर्त्तगतिपरिमाणं विचार्यते तत्र मण्डलकाले यौ द्वौ अहोरात्रौ तौ मुहूर्त्तकरणार्थं त्रिंशता गुण्येते, जाताः षष्टि मुहूर्त्ताः (६०) तत एषु यौ उपरितनौ द्वौ मुहूर्त्तौ तौ प्रक्षिप्येते जाता द्वाषष्टिः (६२) मुहूर्त्ताः । एते सवर्णनार्थमेकविंशत्यधिकाभ्यां द्वाभ्यां शताभ्यां (२२१) गुण्यन्ते, जातानि द्व्युत्तरसप्तशताधिकानि त्रयोदश सहस्राणि (१३७०२), एषु चोपरितनास्त्रयोविंशतिभागा. प्रक्षिप्यन्ते, जातानि पञ्चविंशत्युत्तरसप्तशताधिकानि त्रयोदश सहस्राणि (१३७२५) । तत् एकमण्डलकालगतमुहूर्त्तसत्कैकविंशतिशतद्वयभागानां परिमाणम् । ततस्त्रैराशिकगणितावसर. प्राप्तः तथाहि—यदि पञ्चविंशत्युत्तर सप्त शताधिकैस्त्रयोदशभिः सहस्रैः—एक

विंशत्यधिकशतद्वयभागानां मण्डलभागाः अष्टनवति शताधिकैकलक्षप्रमिता लभ्यन्ते तदा एकेन मुहूर्त्तेन ते कति लभ्यन्ते ? राशि त्रयस्थापना– ।१३७२५।१०९८००।१॥ इह आद्यो राशि र्मुहूर्त्तगतैकविंशत्यधिकशतद्वयभागरूपः (२२१) ततः सवर्णनार्थमन्त्यो राशि रेकक-रूप एकविंशत्यधिकशतद्वयेन (२२१) गुण्यते जातास्तावानेव एकविंशत्यधिके द्वेशते (२२१) ताभ्यां मध्यो राशिर्गुण्यते, जाते द्वे कोटचौ, द्विचत्वारिंशल्लक्षाः, पञ्चषष्टिः सहस्राणि, अष्टौ शतानि (२४२६५८००) तेषामाद्येन राशिना पञ्चविंशत्युत्तर सप्तशताधिक त्रयोदश,सहस्ररूपेण (१३७२५) भागो ह्रियते, लब्धानि सप्तदशशतानि अष्टषष्टयधिकानि (१७६८), एता-वतो भागान् यत्र तत्र वा मण्डले चन्द्र एकेन मुहूर्तेन गच्छति। एतत् मन्डलकालानुसारेण मुहूर्त्तगति परिमाणं जातमिति ।

अथ सूर्यगतिसूत्रमाह–'ता एगमेगेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एगमेगेणं मुहुत्तेणं' एकैकेन मुहूर्त्तेन प्रतिमुहूर्त्तेन 'सूरिए' सूर्यः 'केवइयाइं' कियन्ति 'भागसयाइं' भागशतानि 'गच्छइ' गच्छति ? भगवानाह–'ता' जं जं' इत्यादि 'ता' तावत् सूर्यः जं जं मंडल' यद् यद् मण्डलं 'उवसंकमित्ता चारं चरइ' उपसंक्रम्य चारं चरति 'तस्स तस्स' तस्य तस्य 'मंडलपरिक्खेवस्स' तत्तन्मण्डलसम्बन्धिनः परिक्षेपस्य परिधेः 'अट्ठारसतीसाइं भागसयाइं' त्रिंशदधिकानि अष्टादश भागशतानि (१८३०) 'गच्छइ' गच्छति, तानि च 'मंडल' एकं मण्डलं 'सयसहस्सेणं अट्ठाणउइसएहिं' शतसहस्रेण लक्षेण अष्टानवतिशतैः (१०९८००) अष्टानवति शताधिकेन एकेन लक्षेणेत्यर्थः । 'छेत्ता' छित्वा विभज्य तत्सम्बन्धीनि विज्ञेयानि मण्डलस्य अष्टानवति शताधिकैकलक्षभागान् कृत्वा तन्मध्यात् त्रिंशदधिकानि अष्टादश शतानि (१८३०) भागानां सूर्यो गच्छतीति भावः । तदेव गणितेन प्रदर्श्यते, तथाहि– अत्रापि त्रैराशिकं कर्त्तव्यम् सूर्यश्चन्द्राभ्यां द्वे अर्द्धमण्डले इति एकं परिपूर्णमण्डलं गच्छति, ततो द्वयोर्दिनयोः षष्टि मुहूर्त्ता भवन्तीति यदि षष्टि मुहूर्त्तैः अष्टानवति शताधिकैकलक्षमण्डल भागा लभ्यन्ते तदा एकेन मुहूर्त्तेन कति भागा लभ्यन्ते ? राशित्रय स्थापना–६०।१०९८००।१। अत्रान्त्येन राशिना मध्य राशि र्गुण्यते जातस्तावानेव (१०९८००)। ततस्तस्याद्येन राशिना षष्टि लक्षणेन भागो ह्रियते, लब्धानि त्रिंशदधिकानि अष्टादश शतानि (१८३०) एतावतो भागान् मण्डलस्य सूर्य एकैकेन मुहूर्त्तेन गच्छति ।

अथ नक्षत्रगति सूत्रमाह–'ता एगमेगेणं इत्यादि, 'ता' तावत् 'एगमेगेणं मुहुत्तेणं' एकैकेन मुहूर्त्तेन 'णक्खत्ते' नक्षत्रं 'केवइयाइं भागसयाइं गच्छइ' कियन्ति भागशतानि गच्छति ? भगवानाह–'ता जं जं इत्यादि, 'ता तावत् 'जं जं मंडलं' यद् यद् मण्डलं 'उवसंक-मित्ता' उपसंक्रम्य नक्षत्रं 'चारं चरइ' चारं चरति 'तस्स तस्स मंडलपरिक्खेवस्स'

तत्तन्मण्डलसम्बन्धिनः परिक्षेपस्य परिधेः **'अट्ठारसपणतीसाई' 'भागसयाइं'** पञ्चत्रिंशदधिकानि अष्टादश भागशतानि (१८३५) **'गच्छइ'** गच्छति, कथम् ? **'मंडलं'** एकं मण्डलं **'सयसहस्सेणं अट्ठाणउइसएहिं'** शतसहस्रेण अष्टानवतिशतैः **'छित्ता'** छित्वा विभज्य तन्मध्यात् पूर्वोक्तानि भागशतानि नक्षत्रं गच्छति, । अत्रापि प्रथमं मण्डलकालो निरूपणीयो भवेत् येन तदनुसारेणैव मुहूर्त्तगतिगरिमाणभावना क्रियते । तत्र मण्डलकालप्रमाणविचारणायां त्रैराशिकं क्रियते, तथाहि-यदि पञ्चत्रिंशदधिकाष्टादशशतैः सकल युगभाविभिरर्द्धमण्डलैः त्रिंशदधिकानि अष्टादश रात्रिन्दिवशतानि सकल युगसम्बन्धीनि लभ्यते, तदा द्वाभ्यामर्द्ध मण्डलाभ्यामिति एकैकेन परिपूर्णेन मण्डलेन कति रात्रिन्दिवानि लभ्यते ? तदा राशित्रयस्थापना ।१८३५।१८३०।२। अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशेर्गुणने जायन्ते षष्ट्यधिकानि षट्त्रिंशच्छतानि (३६६०), तत आद्येन राशिना (१८३५) भागो ह्रियते, लब्ध मेकं रात्रिन्दिवम् (१) । तिष्ठन्ति शेषाणि पञ्चविंशत्यधिकानि अष्टादशशतानि (१८२५), ततो मुहूर्त्तकरणार्थ मेतानि त्रिंशता गुण्यन्ते, जातानि पञ्चाशदुत्तर सप्तशताधिकानि चतुष्पञ्चाशत्सहस्राणि (५४७५०), तेषां पुनस्तेनैव राशिना पञ्चत्रिंदशधिकाष्टादशशतरूपेण भागो ह्रियते, लब्धा एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्ताः (२९), ततः शेषच्छेद्यराशेः छेदकराशेश्च पञ्चकेनापवर्त्तना क्रियते जात उपरितनो राशिः सप्तोत्तराणि त्रीणि शतानि (३०७), छेदक राशिरधस्तनः सप्तषष्ट्यधिकानि त्रीणि शतानि (३६७) तत आगतम् एकं रात्रिन्दिवम्, एकस्य च रात्रिन्दिवस्य एको त्रिंशन्मुहूर्त्ता', एकस्य च मुहूर्त्तस्य सप्तोत्तराणि त्रीणि शतानि सप्तषट्यधिकत्रिंशत् भागानाम् (१।२९।$\frac{३०७}{३६७}$) । एतत् मण्डलकालप्रमाणं जातम् । अथैतदनुसारेणैव मुहूर्त्त गति परिमाणं परिभाव्यते—मण्डलकालपरिमाणस्य यो राशिरायातस्तत्र एकस्य दिनस्य त्रिंशन्मुहूर्त्ताः करणीयाः, तेषु ये उपरितना एकोनत्रिंशन्मुहूर्त्तास्ते प्रक्षिप्यन्ते जाता एकोनषष्टिर्मुहूर्त्ताः (५९) ततस्ते सवर्णनार्थमधः स्थितैः सप्तषष्ट्यधिकैः त्रिभिः शतैः गुण्यते, जातानि एकविंशति सहस्राणि त्रिपञ्चाशदधिकानि षट्शतानि (२१६५३), एषु चोपरितनानि सप्तोत्तराणि त्रीणि शतानि (३०७) प्रक्षिप्यन्ते, जातानि—एकविंशतिसहस्राणि षष्ट्यधिकानि नवशतानि (२१९६०) । ततस्त्रैराशिकं क्रियते यदि मुहूर्त्तगत सप्तषष्ट्यधिक त्रिशत भागानामेकविंशति सहस्रैः षष्ट्यधिकैर्नवभिः शतैरेकमष्टानवति शताधिकं शतसहस्रं मण्डलभागानां लभ्यते तदा एकेन मुहूर्त्तेन कति भागा लभ्यते ? राशित्रयस्थापना (२१९६०।१०९८००। अत्राद्यो राशिर्मुहूर्त्तगतसप्तषष्ट्यधिकत्रिशतभागैर्गुणनेन निष्पन्नस्ततोऽन्त्यस्य राशेरपि एभिर्गुणनं प्राप्यते ततः सप्तषष्ट्यधिकैः त्रिभिः शतैः (३६७), अन्त्यो राशि रेककरूपो गुण्यते जातानि तान्येव सप्तषष्ट्यधिकानि त्रीणि शतानि (३६७), अथ एभिः सप्तषष्ट्यधिकैः त्रिभिः शतैः

भ्यो राशिः (१०९८००) गुण्यते जाताश्चतस्त्रः कोटयः, द्वे लक्षे, षण्णवतिः सहस्राणि, षट्-शतानि (४०२९६६००), एपामाद्येन राशिना षष्ट्युत्तर नवशताधिकैकविंशति सहस्ररूपेण (२१९६०) भागो ह्रियते, लब्धानि यथोक्तानि अष्टादश शतानि पञ्च त्रिंशदधिकानि (१८३५) एतावतो भागान्नक्षत्रं प्रतिमुहूर्त्तं गच्छतीति सिद्धम्। तदेवमागतम्—चन्द्रो यत्र तत्र वा मंडले एकैकेन मुहूर्त्तेन मण्डलपरिक्षेपस्य अष्टषष्ट्यधिकानि सप्तदशशतानि (१७६८) भागानां गच्छति, सूर्य त्रिंशदधिकानि अष्टादशशतानि (१८३०) भागानां गच्छति, नक्षत्रं च पञ्च-त्रिंशदधिकानि अष्टादशशतानि (१८३५) भागानां गच्छति ततएव सूत्रे प्रोक्तम्—चन्द्रेभ्यः सूर्याः शीघ्रगतयः, सूर्येभ्यो नक्षत्राणि शीघ्रगतीनि । ग्रहास्तु वक्रत्वातिचारत्वमार्गित्वकारणैरनियत गति प्रस्थानस्ततो न तेषामुक्तप्रकारेण गतिप्रमाणप्ररूपणा कृता । ग्रहा यदि मार्गिणो भूत्वा गच्छन्ति तदा साधारणगत्या सूर्येभ्यः शीघ्रगतय एव भवन्ति सूत्रवाक्यप्रामाण्यात् । नक्षत्रेभ्यस्ताराः शीघ्रगतय इत्यपि सूत्रप्रामाण्याद् बोध्यम् । उक्तञ्च चन्द्रसूर्यनक्षत्रगतिविषये

"चंदेहिं सिग्घयरा सूरा सूरेहिं होंति नक्खत्ता ।
अणियय गइय पत्थाणा हवंति सेसा गहा सव्वे ॥१॥
अट्ठारस, पणतीसे भागसए गच्छइ मुहुत्तेण ।
नक्खत्तं चंदो पुण, सत्तरस सए उ अडसट्ठे ॥२॥
अट्ठारस भागसए, तीसे गच्छइ रवी मुहुत्तेणं ।
नक्खत्त सीम छेदो, सो चेव इहंपि नायव्वो ॥३॥

छाया—चन्द्रेभ्यः शीघ्रतरा सूर्याः सूर्येभ्यो भवन्ति नक्षत्राणि ।
अनियतगतिप्रस्थानाः भवन्ति शेषा ग्रहाः सर्वे ॥१॥
अष्टादश पञ्चत्रिंशानि भागशतानि गच्छति मुहूर्त्तेन ।
नक्षत्रं चन्द्रः पुनः सप्तदशशतानि तु अष्टषष्टानि ॥२॥
अष्टादशभागशतानि त्रिंशानि गच्छति रविर्मुहूर्त्तेन ।
नक्षत्रसीमाछेदः सएव इहापि ज्ञातव्यः ॥३॥ इति ।

अत्र पूर्वं नक्षत्रप्ररूपणा कृताऽतो नक्षत्रगतिपरिणामे यः सीमा छेदः अष्टानवति शताधिक शतसहस्ररूपः कथितः स एव इहापि चन्द्र सूर्यगति परिमाणेऽपि ज्ञातव्यः, पूर्वोक्तच्छेदराशिना चन्द्र सूर्यगति भागा अपि प्रविभक्ता इति भावार्थः । सू० ॥१॥

मण्डलकाल परिमाण—मुहूर्त्तगतिपरिमाणकोष्टकम्

नामानि	१०९८०० एषा भागाना मध्यात् चन्द्रादय कति भागान् गच्छन्ति	एकस्मिन् युगे चन्द्रादयः कति मण्डलानि परिपूरयन्ति परिपूर्णानि कुर्वंति,	एकस्मिन् युगेऽर्द्ध मण्डलानि कति भवन्ति	एकस्मिन् परिपूर्णे मण्डले अर्थात् अर्द्धमण्डल द्वये चन्द्रादीना कति समया भवन्ति,		
				दिनानि	मुहुर्त्ताः	मु. भा.
चन्द्रः	१७६८	८८४	१७६८	२	२	२३
सूर्य	१८३०	९१५	१८३०	२	०	२२१ ०
नक्षत्रम	१८३५	९१७ ॥	१८३५	१	२९	३०७ ३६७

तदेवं पूर्वं चन्द्रादीनां गति रुक्ता, साम्प्रतमुक्तस्वरूपमेव चन्द्रसूर्यनक्षत्राणां परस्परं मण्डलभागविषयं विशेषं निर्द्धारयति—'ता जयाणं चंदे' इत्यादि ।

मूलम्—जयाणं चंदं गइ समावण्णं सूरे गइ समावण्णे भवइ से णं गइ मायाए केवइयं विसेसेइ ? बावट्ठिभागे विसेसेइ । ता जयाणं चंदं गइ समावण्णं णक्खत्ते गइ समावण्णे भवइ से णं गइमायाए केवइयं विसेसेइ ? ता सत्तट्ठिं भागे विसेसेइ । ता जया णं सूरं गइ समावण्णं णक्खत्ते गइसमावण्णे भवइ से णं गइमायाए केवइयं विसेसेइ । ता पंचभागे विसेसेइ । ता जयाणं चंदं गइसमावण्णं अभीईणक्खत्ते गइसमावण्णे पुरत्थिमाए भागाए समासाएइ पुरत्थिमाए भागाए समासाइत्ता णव मुहुत्ते सत्तावीसं च सत्तट्ठिभागे मुहुत्तस्स चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ, जोयं अणुपरियट्टित्ता विप्पजहइ, विगय जोई यावि भवइ । ता जयाणं चंदं गइसमावण्णं सवणे णक्खत्ते गइसमावण्णे पुरत्थिमाए भागाए समासाएइ, पुर० समासाइत्ता तीसं मुहुत्ते चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ जोयं जोइत्ता अणुपरियट्टइ अणुपरियट्टित्ता विप्पजहइ विगयजोई भवइ । एवं एएणं अभिलावेणं णेयव्वं पण्णरसमुहुत्ताइं, तीसं मुहुत्ताइं, पणयालीसमुहुत्ताइं [जस्स जाइं मुहुत्ताइं तस्स ताइं] भाणियव्वाइं जाव उत्तरासाढा । ता जयाणं चंदं गइ समावण्णं गहे गइसमावण्णे पुरत्थिमाए भागाए समासाएइ, पुर० समासाइत्ता चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ, जोइत्ता जोयंअणुपरियट्टइ, अणुपरियट्टित्ता विप्पजहइ, विगयजोई यावि भवइ । ता जयाणं सूरियं गइसमावण्णं अभीईणक्खत्ते गइसमावण्णे पुरत्थिमाए भागाए समासाएइ, समासाइत्ता चत्तारि अहोरत्ते छच्च मुहुत्ते सूरिएणं सद्धिं जोयं जोएइ जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ, अणुपरियट्टित्ता विप्पजहइ विगय जोई यावि भवइ ।

एवं अहोरत्ता छ एक्कवीसं मुहुत्ता य, तेरस अहोरत्ता बारस मुहुत्ता य वीसं अहोरत्ता तिण्णि मुहुत्ता य सव्वे [जस्सजे तस्स ते] भणियव्वा जाव जयाणं सूरियं गइसमावण्णं उत्तरा साढाणक्खत्तं गइसमावण्णे पुरत्थिमाए भागाए समासाएइ समासाइत्ता वीसं अहोरत्ते तिण्णि य मुहुत्ते सूरिएण सद्धिं जोयं जोएइ जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टइ, अणुपरियट्टित्ता विप्पजहइ विगयजोई यावि भवइ। ता जयाणं सूरियं गइसमावण्णं गहे गइसमावण्णे पुरत्थिमाए भागाए समासाएइ, समासाइत्ता सूरिएण सद्धिं जोयं जोएइ, जोयं जोइत्ता जोयं अणुपरियट्टिइ, अणुपरियट्टित्ता विप्पजहइ विगयजोई यावि भवइ ॥ सूत्र ॥२॥

छाया—तावत् यदा खलु चन्द्र गतिसमापन्नं सूर्यः गतिसमापन्नो भवति स खलु गतिमात्रया कियत्कं विशेषयति ? द्वाषष्टि भागान् विशेषयति। तावत् यदा खलु चन्द्रं गतिसमापन्नं नक्षत्रं गतिसमापन्नं भवति तत् खलु गतिमात्रया कियत्कं विशेषयति ? तावत् सप्तषष्टिभागान् विशेषयति। तावत् यदा खलु सूर्य गतिसमापन्नं नक्षत्रं गतिसमापन्नं भवति स खलु गतिमात्रया कियत्कं विशेषयति ? तावत् पञ्च भागान् विशेषयति। तावत् यदा खलु चन्द्रं गतिसमापन्नं अभिजिन्नक्षत्रं गतिसमापन्नं पौरस्त्याद् भागात् समासादयति. पौरस्त्याद् भागात् समासाद्य नवमुहूर्त्तान् सप्तविंशतिं च सप्तषष्टिभागान् मुहूर्त्तस्य चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगं परिवर्त्तयति, योगं परिवर्त्य विप्रजहाति विगतयोगी चापि भवति। तावत् यदा खलु चन्द्रं गतिसमापन्नं श्रवणो नक्षत्रं गतिसमापन्नं पौरस्त्याद् भागात् समासादयति पौर० समासाद्य त्रिंशतं मुहूर्त्तान् चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा अनुपरिवर्त्तयति, अनुपरिवर्त्य विप्रजहाति विगतयोगी चापि भवति। एवम् एतेनाभिलापेन ज्ञातव्यं पञ्चदश मुहूर्त्तान् त्रिंशतं मुहूर्त्तान् पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तान् [यस्य ये मुहूर्त्ता तस्यते] भणितव्याः यावत् उत्तराषाढाः तावत् यदा खलु चन्द्रं गतिसमापन्नं ग्रहः गतिसमापन्नः पौरस्त्याद् भागात् समासादयति, पौर० समासाद्य चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति, युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति अनुपरिवर्त्य विप्रजहाति, विगत योगी चापि भवति। तावत् यदा खलु सूर्यं गतिसमापन्नम् अभिजिन्नक्षत्रं गतिसमापन्नं पौरस्त्याद् भागात् समासादयति, समासाद्य चतुरः अहोरात्रान् षट् च मुहूर्त्तान् सूर्येण सार्द्धं योगं युनक्ति, योगं युक्त्वा योगम् अनुपरिवर्त्तयति, अनुपरिवर्त्य विप्रजहाति विगतयोगी चापि भवति। एवम् अहोरात्रान् षट् एकविंशतिं मुहूर्त्तांश्च, त्रयोदश अहोरात्रान् द्वादश मुहूर्त्तांश्च विंशतिम् अहोरात्रान् त्रीन् मुहूर्त्तांश्च सर्वे [यस्य ये तस्य ते] भणितव्याः यावत् यदा खलु सूर्यं गतिसमापन्नम् उत्तराषाढानक्षत्रं गतिसमापन्नं पौरस्त्याद् भागात् समासादयति, समासाद्य विंशतिमहोरात्रान् त्रींश्चमुहूर्त्तान् सूर्येण सार्द्धं योगं युनक्ति, युक्त्वा योगमनुपरिवर्त्तयति, अनुपरिवर्त्य विप्रजहाति विगतयोगी चापि भवति। तावत् यदा खलु सूर्यं गतिसमापन्नं ग्रहः गति समापन्नः पौरस्त्याद् भागात् समासादयति, समासाद्य सूर्येण सार्द्धं योगं युनक्ति, योग युक्त्वा योगमनुपरिवर्त्तयति, अनुपरिवर्त्य विप्रजहाति विगतयोगी चापि भवति। सूत्र ॥२॥

व्याख्या—'ता जया णं' इति ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'चंदं गइसमावण्णं' चन्द्रं गतिसमापन्नं गतिप्राप्तमपेक्ष्य 'सूरिए' सूर्यः 'गइसमावण्णे भवइ' गतिसमापन्नो भवति

विवक्षितगतिप्राप्तो भवति–प्रतिमुहूर्त्तं चन्द्रगतिमपेक्ष्य यदा सूर्यगतिश्चिन्त्यते इति भावः तथा 'से णं' स खलु सूर्य 'गइमायाए' गतिमात्रया एक मुहूर्त्तगतिपरिमाणेन 'केवइयं' कियत्कं कियतो भागान् 'विसेसेइ' विशेषयति ? अयं भावः–एकेन मुहूर्त्तेन चन्द्राक्रान्तेभ्यो भागेभ्यः कियतोऽधिकान् भागान् सूर्य आक्रामतीति प्रश्नः। भगवानाह–**बावट्ठिभागे विसेसेइ** द्वाषष्टिभागान् विशेषयति, कथमित्याह–चन्द्र एकेन मुहूर्त्तेन अष्टषष्टयधिकानि सप्तदश भागशतानि (१७६८) गच्छति, सूर्यश्च त्रिंशदधिकानि अष्टदशशतानि (१८३०) गच्छति ततो भवति चन्द्रात् सूर्यस्य द्वाषष्टिभागप्रमितो गतिविषयो विशेष इति।

अथ चन्द्रमपेक्ष्य नक्षत्रगतिविषयं सूत्रमाह 'ता जया णं' इत्यादि 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु '**चंदं गइसमावण्ण**' चन्द्रं गति समापन्नमपेक्ष्य '**नक्खत्ते**' नक्षत्रं '**गइस-मावण्णे भवइ**' गतिसमापन्नं भवति प्रतिमुहूर्त्तं चन्द्रगतिमपेक्ष्य यदा नक्षत्रगतिर्विचार्यते तदा 'से णं' तत् खलु नक्षत्रं 'ग.मायाए' गतिमात्रया गतिप्रमाणेन 'केवइयं विसेसेइ' कियत्कं कियतो भागान् विशेषयति चन्द्रगतिपरिमाणान् नक्षत्रगति कियती विशेषाधिका भवतीतिभावः भगवानाह–'ता' तावत् '**सत्तट्ठिं भागे विसेसेइ**' सप्तषष्टिभागान् विशेषयति–चन्द्राक्रान्त-गतिभागपरिमाणात् नक्षत्रगतिभागपरिमाणं सप्तषष्टिभागप्रमितमधिकं भवतीति भावः। तथाहि-नक्षत्रं यद् एकेन मुहूर्त्तेन पञ्च त्रिंशदधिकानि अष्टादशभागशतानि (१८३५) गच्छति, चन्द्रस्तु अष्टषष्टयधिकानि सप्तदशभागशतान्येव (१७६८) गच्छतीति, ततः संपद्यते चन्द्रनक्षत्रयोः सप्तषष्टिभागकृतो विशेष इति।

अथ सूर्यमपेक्ष्य नक्षत्रगतिपरिमाणं चिन्त्यते–'ता जया णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु '**सूरियं गइसमावण्णं**' सूर्यं गतिसमापन्नमपेक्ष्य '**णक्खत्ते गइ समाण्णे भवइ**' नक्षत्रं गतिसमापन्नं भवति 'से णं' ततः खलु नक्षत्रं '**गइमायाए**' गतिमात्रया गति-परिमाणेन 'केवइयं' कियत्कं कियतो भागान् 'विसेसेइ' विशेषयति सूर्यगतिभागानपेक्ष्य नक्षत्रगतिभागाः कियन्तोऽधिका भवन्तीति भावः ? भगवानाह–'ता' **पंचभागे विसेसेइ** तावत् पञ्चभागान् विशेषयति सूर्याक्रान्तगतिभागेभ्यो नक्षत्राक्रान्तगतिभागाः पञ्च अधिका भवन्तीति भावः। कथमित्याह सूर्य एकेन मुहूर्त्तेन त्रिंशदधिकानि अष्टादशभागशतानि (१८३०) गच्छति, नक्षत्रं च पञ्चत्रिंशदधिकानि अष्टादशभागशतानि (१८३५) गच्छ-तीति भवति तयोः परस्परं पञ्चभागात्मको विशेष इति।

अथ चन्द्रेण सहाभिजिन्नक्षत्रस्य योगमाह–'ता जया णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु '**चदं गइसमावण्णं**' चन्द्रं गतिसमापन्नमपेक्ष्य '**अभिई णक्खत्ते**' अभिजिन्न-क्षत्रं '**गइसमावण्णे**' गतिसमापन्नं भवति तदा '**पुरत्थिमाए भागाए**' पौरस्त्याद भागात्, प्रथमतोऽभिजिन्नक्षत्रं चन्द्रं '**समासाएइ**' समासादयति, '**समासाइत्ता**' समासाद्य च 'णव

मुहुत्ते' नवमुहूर्त्तान् 'मुहूत्तस्स' एकस्य च मुहूर्त्तस्य 'सत्तावीसं च सत्तट्ठिभागे' सप्तविंशति च सप्तषष्टिभागान् यावत् 'चंदेण सद्धिं' चन्द्रेण सार्द्धं 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति—करोति । अस्य भावना प्रागेव कृता । एतावत्कालं 'जोयं जोयत्ता' योगं युक्त्वा योगं कृत्वा पर्यन्तसमये 'जोयं अणुपरियट्टइ' योगमनुपरिवर्त्तयति ततो निवर्त्त्य श्रवण नक्षत्रस्य योगं समर्पयतीति भावः । 'जोय अणुपरियट्टित्ता' योगमनुपरिवर्त्य 'विप्पजहाइ' विप्रजहाति स्वेन सह योगं परित्यजति, एतावदेव न किन्तु 'विगयजोई यावि भवइ' विगतयोगि चापि भवति तदा अभिजिन्नक्षत्रं चन्द्रयोगरहितं भवतीतिभावः 'ता जयाणं' इत्यादिना श्रवणेन सह चन्द्रस्य योगमाह—'ता' तावत् 'जयाणं' यदा खलु 'चंदं गइ समावण्णं' चन्द्रं गतिसमापन्नमपेक्ष्य 'सवणे णक्खत्ते' श्रवणनक्षत्रं 'गइ समावण्णे' गतिसमापन्नं गतिप्राप्तं सत् प्रथमतः 'पुरत्थिमाए भागाए' पौरस्त्याद् पूर्वभागेन चन्द्रं 'समासाएइ' समासादयति प्राप्नोति 'समासाएत्ता' चन्द्रं समासाद्य तत्र चन्द्रेण सह तीसं मुहुत्ते' त्रिंशतं मुहूर्त्तान् श्रवणस्य समक्षेत्रत्वेन त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मिकत्वात् त्रिंशन्मुहूर्त्तपर्यन्तं 'चंदेण सद्धिं जोयं जोएइ' चन्द्रेण सार्द्धं योगं युनक्ति—करोति 'जोयं जोइत्ता' त्रिंशन्मुहूर्त्तान् यावत् योगं कृत्वा 'जोयं अणुपरियट्टइ' योगमनुपरिवर्त्तयति श्रवणनक्षत्रं चन्द्रात्परावर्त्तते 'जोयं अणु परियट्टित्ता' योगमनुपरिवर्त्य श्रवणनक्षत्रं चन्द्रेण सह योगं विमुच्य 'विप्पजहाइ' विप्रजहति चन्द्रं त्यजति, एतावदेव न तदा श्रवणनक्षत्रं 'विगयजोई यावि भवइ' विगतयोगि-चन्द्रयोगरहितं चापि भवति धनिष्ठानक्षत्रस्य चन्द्रयोगं समर्पयतीतिभावः । अथाग्रेऽतिदेशमाह 'एवं' इत्यादि, 'एवं' एवम् पूर्वप्रदर्शितविधिवत् 'एएणं अभिलावेणं' एतेन पूर्वप्रदर्शितेन अभिलापेन सूत्रालापकेन 'णेयव्वं' ज्ञातव्यम् । नक्षत्राणि मुहूर्त्तानाश्रित्य त्रिप्रकारकाणि सन्तीति यानि नक्षत्राणि यावन्मुहूर्त्तात्मकानि तेषा तावन्मुहूर्त्तात्मको योगो वाच्यः, तथाहि—'पण्णरस मुहुत्ताइं' पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकानि शतभिषग्—भरण्यार्द्रा—ऽश्लेषा स्वाति—ज्येष्ठाख्यानि षड् नक्षत्राणि, एषां पञ्चदशमुहूर्त्तात्मिको योगश्चन्द्रेण सह वाच्यः । 'तीसइ मुहुत्ताइं' यानि च त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकानि—श्रवण—धनिष्ठा-पूर्वभाद्रपदा—रेवत्याश्विनि कृत्तिका—मृगशीर्ष-पुष्य मघा-पूर्वफाल्गुनी-हस्त-चित्रा-ऽनुराधा-मूल-पूर्वाषाढाख्यानि पञ्चदश नक्षत्राणि, तेषां त्रिशन्मुहूर्त्तात्मको योगश्चन्द्रेण सह वाच्यः । तथा 'पणयालीसमुहुत्ताइं' पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकानि-उत्तराभाद्रपदा-रोहिणि-पुनर्वसू-त्तराफाल्गुनी -विशाखो-त्तराषाढाख्यानि षड् नक्षत्राणि एषां पञ्च चत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मको योगश्चन्द्रेण सह वाच्यः । तत्राभिजिच्छ्रवणयोर्योगमुहूर्त्ताः पूर्वं सूत्रे एव प्रदर्शिताः । एवं सर्वाण्यपि नक्षत्राणि क्रमेण 'भाणियव्वाइं'

भणितव्यानि, आलापकप्रकारस्तु सुगमत्वात् स्वयमूहनीय इति । कियत्पर्यन्तमित्याह 'जाव उत्तरासाढा' यावत् उत्तराषाढानक्षत्रं तावद् भणितव्यानीति ।

अथ ग्रहमधिकृत्य योगविचारः क्रियते— 'ता' 'जया णं' इत्यादि 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'चंदं गइसमावण्णं' चन्द्रं गतिसमापन्नमपेक्ष्य 'गहे' ग्रहः 'गइ समावण्णे' गतिसमापन्नो भवति तदा स ग्रहः 'पुरत्थिमाए भागाए' पौरस्त्याद् भागात् पूर्वभागेन प्रथमतश्चन्द्रं 'समासाएइ' समासादयति 'समासाइत्ता' समासाद्य च 'चंदेणं सद्धिं' चन्द्रेण सार्द्धं जोयं जोएइ' यथा सम्भवं योगं युनक्ति 'जोयं जोइत्ता' योगं युक्त्वा 'जोयं अणुपरियट्टइ' योगमनुपरिवर्त्तयति चन्द्रयोगात् परावर्त्तते 'अणुपरियट्टित्ता' अनुपरिवर्त्य 'विप्पजहाइ' विप्रजहाति स्वेन सह योगं परित्यजति, किंबहुना 'विगय जोई यावि भवइ' विगतयोगी योगरहितश्चापि भवति २ ।

अथ सूर्यमधिकृत्य नक्षत्रयोगो विचार्यते—'ता जयाणं सूरियं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जयाणं' यदा खलु 'सूरियं' सूर्यं 'गइसमावण्णं' गतिसमापन्नमपेक्ष्य 'अभीईणक्खत्ते' अभिजिन्नक्षत्रं 'गइसमावण्णे' गतिसमापन्नं भवति तदा तदाभिजिन्नक्षत्र प्रथमतः 'पुरत्थिमाए-भागाए' पोरस्त्याद् भागात् पूर्वभागतः सूर्यं 'समासाएइ' समासादयति प्राप्नोति 'समासाइत्ता' समासाद्य 'चत्तारि अहोरत्ते' चतुरः परिपूर्णान् अहोरात्रान् पञ्चमस्य चाहोरात्रस्य 'छच्चमुहुत्ते' षट् मुहूर्त्तान् यावत् 'सूरिएण सद्धिं' सूर्येण सार्द्धं 'जोयं जोएइ' योगं युनक्ति एतावत्प्रमाण-कालपर्यन्तं सूर्येण सार्द्धमभिजिन्नक्षत्रं चारं चरतीतिभावः 'जोयं जोइत्ता' योगं युक्त्वा षण्मुहूर्त्ता-धिकचतुरहोरात्रपर्यन्तं सूर्येण सार्द्धं स्थित्वाऽन्तिमसमये 'जोयं अणुपरियट्टइ' योगमनुपरि-वर्त्तयति सूर्ययोगात् परावर्त्तते 'जोयं अणुपरियट्टित्ता' योगमनुपरिवर्त्य श्रवणनक्षत्रस्य योगं समर्प्य 'विप्पजहाइ' विप्रजहाति स्वेन सह योगं परित्यजति, एतावदेव न 'विगयजोईयावि भवइ' विगतयोगि योगरहित चापि भवति । 'एवं' एवम् अनेन प्रकारेण यस्य यावन्तोऽहोरात्रा-दिकास्तावन्तोऽत्र वाच्याः तथाहि—'अहोरत्ता छ एक्कवीसं मुहुत्ताय' अहोरात्राः षट् एक विंशतिश्च मुहूर्त्ता चन्द्रयोगमपेक्ष्य पञ्चदशमुहूर्त्तात्मकानां शतभिषग्-भरण्यार्द्रा ऽश्लेषा स्वाति—ज्येष्ठाख्यानां षण्णां नक्षत्राणां वाच्याः 'तेरस अहोरत्ता वारसमुहुत्ताय' त्रयोदशाहोरात्रा द्वादशमुहूर्त्ताश्च त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकानां श्रवण-धनिष्ठा-पूर्वभाद्रपदा-रेवत्यश्विनी-कृत्तिका-मृगशीर्ष-पुष्य-मघा—पूर्व फाल्गुनी-हस्त-चित्रा-ऽनुराधा-मूल-पूर्वाषाढाख्यानां पञ्चदशानां नक्षत्राणा वाच्याः । 'वीसं अहोरत्ता तिण्णिमुहुत्ताय' विंशतिरहोरात्राः त्रयो मुहूर्त्ताश्च पञ्चचत्वारिंशन्मुहूर्त्तात्मकानाम्–उत्तराभाद्रपदा-रोहिणी-पुनर्वसू-त्तराफाल्गुनी विशाखोत्तराषाढाख्याना षण्णां नक्षत्राणां वाच्याः । अभिजितस्तु अहोरात्रादिकाः पूर्वसूत्रे एव कथिताः । एवं 'सव्वे भाणियव्वा' सर्वाणि नक्षत्राणि सूर्ययोगमाश्रित्य क्रमेण भणितव्यानि 'जाव' यावत् यावत्पदेन उत्तराषाढापर्यन्तानि । तत्रोत्तरा-

षाढानक्षत्राभिलापं सूत्रकारः साक्षात् प्रदर्शयति-'ता जयाणं सूरियं' इत्यादि 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरियं' सूर्यं 'गइ समावण्णं' गतिसमापन्नमपेक्ष्य 'उत्तरासाढाणक्खत्ते उत्तराषाढानक्षत्रं 'गइसमावण्णे' गतिसमापन्नं भवति तदा 'पुरत्थिमाए भागाए' पौरस्त्याद् भागात् उत्तराषाढानक्षत्रं चन्द्रं 'समासाएइ' समासादयति, 'समासाइत्ता' समासाद्य 'वीसं अहोरत्ते' विंशतिमहोरात्रान् एकविंशतितमस्य चाहोरात्रस्य 'तिण्णियमुहुत्ते' त्रीन् मुहूर्त्तान् यावत् 'सूरिएण सद्धिं जोयं जोएइ' सूर्येण सार्द्धं योगं युनक्ति, 'जोयं जोइत्ता' योगं युक्त्वा 'जोयं अणुपरियट्टइ' योगमनुपरिवर्त्तयति 'जोयं अणुपरियट्टित्ता' योगमनुपरिवर्त्य 'विप्पजहाइ' विप्रजहाति सूर्यं परित्यजति, किंबहुना 'विगयजोई यावि भवइ' विगतयोगि चापि भवति योगरहितं भवति ।

अथ सूर्येण सह ग्रहयोगविचारः क्रियते—'ता जया णं' इत्यादि 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'सूरियं गइसमावण्णं' सूर्यं गति समापन्नमपेक्ष्य 'गहे गईसमावण्णे' ग्रहो गति समापन्नो भवति तदा' पुरत्थिमाए भागाए समासाएइ' पौरस्त्याद् भागात् सूर्यं समासादयति, समासाद्य योगं युक्त्वाऽनुपरिवर्त्य च विप्रजहाति सूर्यं त्यजति विगतयोगी चापि भवतीति स्पष्टम् । सू० ॥ २ ॥

पूर्वं चन्द्रसूर्याभ्यां सह नक्षत्रग्रहयोगोऽभिहितः साम्प्रतं चन्द्रादयो नाक्षत्रमासेन कति कति मण्डलानि चरन्तीति प्रतिपादयितुमाह— 'ता णक्खत्तेणं मासेणं इत्यादि ।

मूलम्—'ता णक्खत्तेणं मासेण चंदे कइ मंडलाइं चरइ ? ता तेरस मण्डलाइं चरइ, तेरस य सत्तट्ठिभागे मंडलस्स । ता णक्खत्तेणं मासेणं सूरिए कइ मंडलाइं चरइ ? ता तेरस मंडलाइं चरइ, चोयालीसं च सत्तट्ठिभागे मंडलस्स । ता णक्खत्तेणं मासेणं णक्खत्ते कईमंडलाइं चरइ ? ता तेरस मंडलाइं चरइ, अद्ध छीयालीसं च सत्तट्ठिभागे मंडलस्स । ता चंदेणं मासेण चंदे कइ मंडलाइं चरइ ? ता चोद्दस चउब्भागाइं मंडलाइं चरइ एगं च चउव्वीससयभागं मंडलस्स । ता चंदेणं सूरिए कइ मंडलाइं चरइ ? ता पण्णरसचउब्भागूणाइं मंडलाइं चरइ, एगं चउव्वीस सयभागं मंडलस्स । ता चंदेणं मासेणं णक्खत्ते कइ मंडलाइं चरइ ? ता पण्णरस चउब्भागूणाइं मंडलाइं चरइ छच्च चउव्वीससयभागे मंडलस्स । ता उउणा मासेणं चंदेकइमंडलाइं चरइ ? ता चोद्दस मंडलाइं चरइ, तीसं च एगट्ठि भागे मंडलस्स । ता उउणा मासेणं सूरिए कइमंडलाइं चरइ ? ता पण्णरस मंडलाइं चरइ । ता उउणा मासेणं णक्खत्ते कइ मंडलाइं चरइ ? ता पण्णरसमंडलाइं चरइ, पंचय वावीससयभागे मंडलस्स । ता आइच्चेणं मासेणं चंदे कइ मंडलाइं चरइ । ता चोद्दस मंडलाइं चरइ, एक्कारस पण्णरस य भागे मंडलस्स ।

ता आइच्चेणं मासेणं सूरिए कइ मंडलाइं चरइ । ता पण्णरस चउभागाहियाइं मंडलाइं चरइ । ता आइच्चेणं मासेणं णक्खत्ते कइ मंडलाइं चरइ । ता पण्णरस चउभागाहियाइं मंडलाइं पंच य वीससयभागे मंडलस्स चरइ । ता अभिवड्ढिएणं मासेणं सूरिए कइ मंडलाइं चरइ । ता सोलस मंडलाइं चरइ, तिहिं भागेहिं ऊणगाइं दोहिं अडयालेहिं सएहि मंडलं छित्ता । ता अभिवड्ढिएणं मासेणं णक्खत्ते कइ मंडलाइं चरइ । ता सोलस मंडलाइं चरइ सीतालीसेहि भागेहिं अहियाइं चोद्दसहिं अट्ठासीएहिं मंडलं छेत्ता । सू० ॥३॥

छाया—तावत् नाक्षत्रेण मासेन चन्द्रः कति मण्डलानि चरति ? तावत् त्रयोदश मण्डलानि चरति त्रयोदश सप्तषष्टिभागान् मण्डलस्य । तावत् नाक्षत्रेण मासेन सूर्यः कति मण्डलानि चरति ? तावत् त्रयोदश मण्डलानि चरति, चतुश्चत्वारिंशतं च सप्तषष्टिभागान् मण्डलस्य । तावत् नाक्षत्रेण मासेन नक्षत्रं कति मण्डलानि चरति ? तावत् त्रयोदश मण्डलानि चरति, अर्द्ध षट् चत्वारिंशतं च सप्तषष्टिभागान् मण्डलस्य । तावत् चान्द्रेण मासेन चन्द्रः कति मण्डलानि चरति ? चतुर्दश चतुर्भागानि मण्डलानि चरति एकं च चतुर्विंशशतभागं मण्डलस्य । तावत् चान्द्रेण मासेण सूर्यः कति मण्डलानि चरति? तावत् पञ्चदश चतुर्भागोनानि चरति, एकंच चतुर्विंशशतभागं मण्डलस्य । तावत् चान्द्रेण मासेन नक्षत्रं कति मण्डलानि चरति ? तावत् पञ्चदश चतुर्भागोनानि मण्डलानि चरति षट् च चतुर्विंशशतभागान् मण्डलस्य । तावत् ऋतुना मासेन चन्द्रः कति मण्डलानि चरति ? तावत् चतुर्दश मण्डलानि चरति, त्रिंशतं च एकषष्टि भागान् मण्डलस्य तावत् ऋतुना मासेन सूर्यः कति मण्डलानि चरति ? तावत् पञ्चदश मण्डलानि चरति । तावत् ऋतुना मासेन नक्षत्रं कति मण्डलानि चरति ? तावत् पञ्चदश मण्डलानि चरति पञ्च च द्वाविंशति भागान् मण्डलस्य । तावत् आदित्येन मासेन चन्द्रः कति मण्डलानि चरति ? तावत् चतुर्दश मण्डलानि चरति, एकादश च पञ्चदशभागान् मण्डलस्य । तावत् आदित्येन मासेन सूर्यः कति मण्डलानि चरति ? तावत् पञ्चदश चतुर्भागाधिकानि मण्डलानि चरति । तावत् आदित्येन मासेन नक्षत्रं कति मण्डलानि चरति ? तावत् पञ्चदश चतुर्भागाधिकानि मण्डलानि पञ्च च विंशशतभागान् मण्डलस्य चरति । तावत् अभिवर्द्धितेन मासेन चन्द्रः कति मण्डलानि चरति ? तावत् पञ्चदश मण्डलानि त्र्यशीति षडशीतिशतभागान् मण्डलस्य चरति । तावत् अभिवर्द्धितेन मासेन सूर्यः कति मण्डलानि चरति ? तावत् षोडश मण्डलानि चरति त्रिभिर्भागैरूनकानि द्वाभ्याम् अष्टचत्वारिंशाभ्यां शताभ्यां मण्डलं छित्वा । तावत् अभिवर्द्धितेन मासेन नक्षत्रं कति मण्डलानि चरति ? तावत् षोडश मण्डलानि चरति, सप्तचत्वारिंशता भागैरधिकानि चतुर्दशभिः अष्टाशीतैः शतैर्मण्डलं छित्वा ॥ सूत्र ॥३॥

व्याख्या—'ता णक्खत्तेणं' इति 'ता' तावत् 'णक्खत्तेणं मासेणं' नक्षत्रेण नक्षत्रसम्बन्धिना मासेन 'चंदे' चन्द्रः 'कइ मंडलाइं चरइ' कति मण्डलानि चरति कति मण्डलेषु चारं चरति ? भगवानाह— 'ता तेरस' इत्यादि, 'ता' तावत् 'तेरसमंडलाइं' त्रयोदश मण्ड-

लानि तथा 'मंडलस्स' चतुर्दशस्य मण्डलस्य 'तेरस य सत्तट्ठिभागे' त्रयोदश च सप्तषष्टि भागान् (१३|$\frac{१३}{६७}$) 'चरइ' चरति एतत् कथमवसीयते ? तत्राह एकस्मिन् युगे सप्तषष्टि नक्षत्रमासा भवन्ति, चन्द्रस्य च चतुरशीत्यधिकानि अष्टशतानि (८८४) मण्डलानि भवन्ति-ततो यावतां मासानां मण्डलानि ज्ञातुमिच्छेत् तावद्भिर्मासैश्चतुरशीत्यधिकानि अष्टशतानि गुण-यित्वा सप्तषष्टचा भागो ह्रियते, भागहरणेन यल्लभ्यते तत् मण्डलपरिमाणमायाति । अत्रतु प्रथममासस्य मण्डलानि ज्ञातुमिच्छा, ततएककमाश्रित्य त्रैराशिकं क्रियते, तथाहि-यदि सप्तष-ष्टया नक्षत्र मासैश्चतुरशीत्यधिकानि अष्टौ शतानि मण्डलानि लभ्यन्ते, तदा एकेन नक्षत्रमासेन कति मण्डलानि लभ्यन्ते, राशित्रय स्थापना ।६७।८८४।१। ततोऽन्त्येन राशिना एककरूपेण मध्यराशिर्गुण्यते जातस्तावानेव (८८४) अस्य सप्तषष्टया भागो हरणीयः, हृते च भागे लब्धानि त्रयोदश मण्डलानि, शेषास्त्रयोदश स्थिताः, ते च सप्तषष्टिभागाः, तत आगतम्—त्रयोदशमण्डलानि, चतुर्दशस्य मण्डलस्य त्रयोदश सप्तषष्टि भागाः (१३ $\frac{१३}{६७}$) अथ गौतमः सूर्यविषये प्रश्नं करोति- 'ता णक्खत्तेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'णक्खत्तेणं मासेणं' एकेन नाक्षत्रेण मासेन 'सूरिए' सूर्यः 'कइ मंडलाइं चरइ' कति मण्डलानि चरति ? एवं गौतमेन पृष्टे-भगवानाह- 'ता तेरस' इत्यादि, 'ता' तावत् 'तेरस मंडलाई' त्रयोदश मण्डलानि 'मंडलस्स' चतुर्दशस्य मण्डलस्य 'चोयालीसं च सत्तट्ठिभागे' चतुश्चत्वारिंशतं च सप्तषष्टिभागान् (१३|$\frac{४४}{६७}$) 'चरइ' चरति । एतदपि गणितेन लभ्यते, तथाहि—एकस्मिन् युगे नक्षत्रमासाः सप्तषष्टिरिति पूर्वमुक्तमेव । एकस्मिन् युगे सूर्यस्य पञ्चदशोत्तराणि नवशतानि मण्डलानि भवन्ति, सूर्य एतावत्सु मंण्डलेषु युगे चारं चरति, अत्रापि त्रैराशिकं क्रियते तथाहि—यदिसप्तषष्टचा नाक्षत्र मासैः पञ्चदशोत्तराणि नवशतानि मण्डलानि लभ्यन्ते तदा एकेन नाक्षत्रमासेन कति मण्डलानि लभ्यन्ते ? ततस्त्रैराशिकं स्थाप्यते-।६७।९१५।१। अत्रापि पूर्वोक्त एव विधिः क्रियते अन्त्येन राशिना मध्यो राशिर्गुणितो जातस्तावनेव (९१५) ततः सप्तषष्टचा भागो ह्रियते, लब्धानि त्रयोदश मण्डलानि शेषाश्चतुश्चत्वारिंशतस्थिताः, ते च सप्तषष्टिभागा इत्यागतम्—त्रयोदश मण्डलानि, चतुर्दशस्य मण्डलस्य च चतुश्चत्वारिंशतसप्तषष्टि भागाः (१३|$\frac{४४}{६७}$) इति ।

अथ नक्षत्रमासे नक्षत्रस्य मण्डलानि पृच्छति–'ता णक्खत्तेणं' इत्यादि 'ता' तावत् 'णक्खत्तेणं मासेणं' एकेन नाक्षत्रेण मासेन 'णक्खत्ते' नक्षत्रं 'कइ मंडलाइं चरइ' कति

मण्डलानि चरति ? भगवानाह–'ता तेरस' इत्यादि 'ता' तावत् 'तेरस मंडलाइं' त्रयोदश मण्डलानि 'अद्ध छीयालीसं च सत्तट्ठिभागे मंडलस्स' चतुर्दशस्य अर्द्धेन सहितान् षट्चत्वारिंशतं सप्तषष्टिभागान् $(१३\frac{४६॥}{६७})$ 'चरइ' चरति । कथमिति प्रदर्श्यते– नक्षत्रमासा युग सम्बन्धिनः सप्तषष्टिरेव, नक्षत्रमण्डलानि चैकस्मिन् युगे अर्द्धेन सहितानि सप्तदशोत्तराणि नव शतानि (९१७॥) भवन्ति ततस्त्रैराशिकं क्रियते यदि सप्तषष्ट्या नाक्षात्रमासैः सार्द्धानि सप्तदशोत्तराणि नवशतानि (९१७॥) नक्षत्रमण्डलानां लभ्यन्ते तदा एकेन नाक्षत्रमासेन कति मण्डलानि लभ्यन्ते ? राशि त्रयस्थापना ((६७।९१७॥–१) अत्राप्यन्त्येन राशिना मध्ये राशौ गुणिते जातस्तावानेव (९१७॥) ततः सप्तषष्ट्या भागहरणं क्रियते, लब्धानि त्रयोदश मण्डलानि शेषाः स्थिता सार्द्धाः षट् चत्वारिंशत्, ते च सप्तषष्टिभागास्तत आगतम्– त्रयोदश मण्डलानिचतुर्दशस्य मण्डलस्य सार्द्धा षट् चत्वारिंशत् सप्तषष्टिभागाः $(१३-\frac{४६॥}{६७})$ इति । अथ चन्द्रमास मधिकृत्य चन्द्रादीनां मण्डलानि प्रदर्श्यते–'ता चंदेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'चंदेणं मासेणं' चान्द्रेण मासेन 'चंदे' चन्द्रः 'कइ मंडलाइं चरइ' कति मण्डलानि चरति ? भगवानाह–'ता चोद्दस' इत्यादि, 'ता' तावत् 'चोद्दस' चउब्भागाइं मंडलाइं' चतुर्दश चतुर्भागानि चतुर्थभागेन एकत्रिंशद्रूपेण सहितानि मण्डलानि, 'मंडलस्स' एकस्य मण्डलस्य– 'एगं च चउवीससयभागं' एकं चतुर्विंशतभागम्, अयं भावः–परिपूर्णानि चतुर्दश मण्डलानि पञ्चदशस्य च मण्डलस्य चतुर्भागं–चतुर्विंशत्यधिकशत सत्कमेक त्रिंशद्भागप्रमाणम्, एकं च चतुर्विंशत्यधिकशतस्य भागं द्वात्रिंशतं पञ्चदशस्य मण्डलस्य चतुर्विंशत्यधिकशतभागान् 'चरइ' चरति, कथमित्याह–एकस्मिन् युगे द्वाषष्टिश्चन्द्रमासा भवन्ति, एकस्मिन् मासे पर्वद्वयमिति चतुर्विंशत्यधिकं शतं (१२४) पर्वणामेकस्मिन् युगे भवति । चन्द्रमण्डलानि च चतुरशीत्यधिकानि अष्टौ शतानि (८८४) भवन्ति पर्वद्वयविषया चात्र पृच्छा ततस्त्रैराशिकं क्रियते, तथाहि–यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन चतुरशीत्यधिकानि अष्टौ शतानि मण्डलानि लभ्यन्ते तत पर्वद्वयेन कति मण्डलानि लभ्यन्ते ? राशित्रयस्थापना–१२४।८८४।२। अत्रान्त्येन द्विकलक्षणेन राशिना मध्यो राशि. (८८४) गुण्यते, जातानि अष्टषष्ट्यधिकानि सप्तदशशतानि (१७६८), एषामाधराशिना चतुर्विंशत्यधिकशत–(१२४) रूपेण भागो ह्रियते, लब्धानि चतुर्दश मण्डलानि, शेषा द्वात्रिंशदिति पञ्चदशस्य मण्डलस्य द्वात्रिंशत् चतुर्विंशत्यधिक शतभागा $(१४\frac{३४}{१२४})$ इति।

अथ चन्द्रमासेन सूर्यचारमाह 'ता चंदेणं' इत्यादि, 'ता' तावत 'चंदेणं मासेणं' एकेन चान्द्रेण मासेण 'सूरिए' सूर्यः 'कइ मंडलाइं चरइ' कति मण्डलानि चरति ? भगवानाह–

'ता' तावत् **पण्णरस चउभागूणाइं मंडलाइं'** चतुर्भागोनानि पञ्चदश मण्डलानि चरति। अयं भावः—एकस्य मण्डलस्य चतुर्विंशत्यधिकशतभागरूपस्य चतुर्थो भाग एकत्रिंशद्रूपस्तेन उनानि पञ्चदश मण्डलानि, परिपूर्णानि चतुर्दश मण्डलानि पञ्चदशस्य मण्डलस्य च त्रयोभागश्चतुर्विंशत्यधिकशतसत्काः त्रिनवतिरूपाः (१४|$\frac{९३}{१२४}$) एतत्प्रमितान्, पुनश्च, **'एगं च चउवीससयभागं'** एकं च चतुर्विंशतिशतभागं चतुर्दशतमध्याद् **'एगं भागं'** एकं भागं चेति चतुर्नवति भागसहितानि चतुर्दशमण्डलानि (१४|$\frac{९४}{१२४}$) **'चरइ'** चरति तथाहि—एकस्मिन् युगे चर्तुविंशत्यधिकं पर्वशतं भवति सूर्यमण्डलानि च पञ्चदशाधिकानि नवशतानि (९१५) भवन्ति पर्वद्वयविषया च पृच्छा ततस्त्रैराशिकं क्रियते—यदि चर्तुविंशत्यधिकेन पर्वशतेन पञ्चदशोत्तरनवशतमण्डलानि लभ्यन्ते तदा द्वाभ्यां पर्वभ्यां कति मण्डलानि लभ्यन्ते ? राशित्रयस्थापना १२४। ९१५। २। अत्रापि पूर्वोक्त एव विधिः क्रियते—अन्त्येन राशिना मध्यराशिं गुणयित्वा आद्यराशिना भागहरणं कर्त्तव्यम्, तेन लभ्यन्ते चतुर्दश मण्डलानि पञ्चदशस्य च मण्डलस्य चतुर्नवतिश्चतुर्विंशत्यधिकशतभागाः (१४|$\frac{९४}{१२४}$) इति ।

अथ चन्द्रमासेन नक्षत्रचारः प्रदर्श्यते—**'ता चंदेणं'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **'चंदेणं मासेणं'** चान्द्रेण मासेन **'णक्खत्ते'** नक्षत्रं **'कइमंडलाइं चरइ'** कतिमण्डलानि चरति ? भगवानाह—**'ता'** तावत् **'पण्णरस चउभागूणाइं मंडलाइं'** पञ्चदश चतुर्भागोनानि मण्डलानि मण्डलस्य चतुर्थभागेन एकत्रिंशद्भागरूपेण न्यूनानि पञ्चदश मण्डलानि, अयं भावः—परिपूर्णानि चतुर्दशमण्डानि तथा पञ्चदशस्य च मण्डलस्य चतुर्विंशत्यधिकशतभागसत्कभागत्रयं त्रिनवति भागरूपंच (१४—$\frac{९३}{१२४}$ तथा **'छच्च चउवीससयभागे'** षट् चतुर्विंशतिशतसत्कभागान् चतुर्विंशतिशतभागेषु षट् भागान् **'मंडलस्स'** एकस्य मण्डलस्य (१४—$\frac{९९}{१२४}$ **'चरइ'** चरति। तद्यथा—एकस्मिन् युगे चन्द्रमासा द्वाषष्टि रिति चतुर्विंशत्यधिकशतं पर्वणां भवति, नक्षत्रमण्डलानि च एकस्मिन् युगे सार्द्ध सप्तदशाधिकानि नवशतसंख्यकानि (९१७॥)भवन्ति तेषामर्द्धमण्डलानि पञ्चत्रिंशदधिकानि अष्टादश शतानि (१८३५)भवन्ति पर्वद्वयविषया पृच्छेति त्रैराशिकं क्रियते—यदि चतुर्विंशत्यधिकेन पर्वशतेन पञ्चत्रिंशदधिकानि

अष्टादश शतानि अर्द्धमण्डलानां लभ्यन्ते तदा द्वाभ्यां पर्वभ्यां कति मण्डलानि लभ्यन्ते ?' राशित्रयस्थापना १२४ । १९३५ । २ । ततोऽन्त्येन राशिना द्विकरूपेण मध्यराशेर्गुणने जायन्ते सप्तत्यधिकानि षट् त्रिंशच्छतानि (३६७०) एषामाद्य राशिना चतुर्विंशत्यधिकशतरूपेण भागे हृते लब्धा एकोनत्रिंशत् (२९) शेषास्तिष्ठन्ति चतुस्सप्तति भागाः (७४)। इदं चा गतमर्द्धमण्डलानां परिमाणम्, द्वाभ्यामर्द्धमण्डलाभ्यामेकं परिपूर्णं मण्डलं जायते ततोऽनयोर्लब्धशेषरूपयोः राश्यो द्वाभ्यां भागो हरणीयः अथवाऽनयोरर्द्धं क्रियते द्वयमपि समान फलं भवति; तथाहि एकोनत्रिंशतो द्वाभ्यां भागे हृते लब्धानि चतुर्दश मण्डलानि शेषमेकमित्यस्य चतुर्विंशत्यधिक भागकरणार्थं चतुर्विंशत्यधिकशतेन एककं गुण्यते जातं चतुर्विंशत्यधिकं शतम् (१२४) तच्च पूर्वं शेषी भूतचतुः सप्ततौ प्रक्षिप्यन्ते जातम् अष्टनवत्यधिकं शतम् (१९८) अस्य द्वाभ्यां भागो ह्रियते लब्धा नव नवतिः (९९) तत आगतम् परिपूर्णानि चतुर्दश मण्डलानि पञ्चदशस्य च मण्डलस्य नव नवति श्चतुर्विंशत्यधिकशतभागाः ($14\frac{99}{124}$) इति ।

अथ ऋतुमासमधिकृत्य चन्द्रादीनां मण्डलनिरूपणा क्रियते **'उउणा मासेणं'** इत्यादि **'उउणा मासेणं'** ऋतुसम्बन्धिना मासेन कर्ममासेनेत्यर्थः **'चंदे'** चन्द्रः **'कइमंडलाइं चरइ'** कति मण्डलानि चरति ? भगवानाह—**'ता चोद्दस'** इत्यादि **'ता'** तावत् **चोद्दसमंडलाइं'** चतुर्दश मण्डलानि परिपूर्णानि **'मंडलस्स'** पञ्चदशस्य च मण्डलस्य **'तीसं च एगट्ठिभागे'** त्रिंशतं च एकषष्टि भागान् ($14\frac{30}{61}$) **'चरइ'** चरति । कथमित्याह—एकस्मिन् युगे एक षष्टिः ऋतुमासा इति कर्ममासा भवन्ति, चन्द्रश्चैकस्मिन् युगे चतुरशीत्यधिकाष्टशतमण्डानि चरतीति त्रैराशिकं क्रियते, तथाहि—यदि एक षष्टया कर्ममासैश्चतुरशीत्यधिकानि अष्टमण्डलशतानि लभ्यन्ते तदा एकेन कर्ममासेन कति मण्डलानि लभ्यन्ते ? राशित्रयस्थापना—६१।८८४।१। तत्रान्त्येन राशिना मध्यराशिर्गुणितो जातस्तावानेव (८८४) तत आद्येन राशिना एकषष्टिरूपेण भागो ह्रियते, लब्धानि परिपूर्णानि चतुर्दश मण्डलाणि पञ्चदशस्य च मण्डलस्य त्रिंशदेकषष्टिभागाः ($14\frac{30}{61}$) इति ।

अथ ऋतुमासेन सूर्यचारमाह—**'ता उउणा'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **उउणा मासेणं'** ऋतुना ऋतुसम्बन्धिना मासेन **'सूरिए'** सूर्यः **'कइ मंडलाइं चरइ'** कति मण्डानि चरति ? भगवानाह—**'ता'** तावत् **'पण्णरस मंडलाइं चरइ'** पञ्चदश मण्डलानि चरति तथाहि—एकषष्टिः ऋतुमासाः पञ्चदशाधिकानि नव मण्डलशतानि सूर्यस्य भवन्ति ततो यदि एकषष्टया

ऋतुमासैः पञ्चदशोत्तराणि नवशतानि सूर्यमण्डलानि लभ्यन्ते तदा एकेन ऋतुमासेन कति सूर्यमण्डलानि लभ्यन्ते ? राशित्रयस्थापना ६१।९१५।१ अत्रापि अन्त्येन राशिना मध्यमं राशिं पञ्चदशाधिकनवशतरूपं गुणयित्वा आद्यराशिना एकषष्टिरूपेण भागो ह्रियते, लभ्यन्ते परिपूर्णानि पञ्चदश मण्डलानि ।

अथ ऋतुमासेन नक्षत्रचारमाह—'ता उउणा' इत्यादि 'ता' तावत् उउणा मासेणं' ऋतुना ऋतुसम्बन्धिना मासेन 'नक्खत्ते' नक्षत्रं 'कइमंडलाइं चरइ' कतिमण्डलानि चरति ? भगवानाह—'ता' तावत् 'पण्णरस मंडलाइं' पञ्चदश मण्डलानि तथा 'मंडलस्स' षोडशस्य मण्डलस्य 'पंचय बावीस सयभागे' पञ्चचद्वाविंशति शतभागान् ($15\frac{5}{122}$) 'चरइ' चरति । कथमित्याह—एकस्मिन् युगे एकषष्टिः ऋतुमासा (६१) नक्षत्रमण्डलानि सार्द्ध-सप्तदशाधिकानि नव मण्डलशतानि (९१७॥) ततस्त्रैराशिकं क्रियते तथाहि—यदि एकषष्टि-मासैः सार्द्ध सप्तदशाधिकानि नव शतानि नक्षत्रमण्डलानां लभ्यन्ते तदा एकेन ऋतुमासेन कति मण्डलानि लभ्यन्ते ? राशित्रयस्थापना (६१।९१७।१) अत्रापि अन्त्यराशिना मध्यराशिं गुणयित्वा आद्यराशिना भागे हृते लभ्यन्ते पञ्चदश (१५) मण्डलानि शेषं सार्द्धे द्वे (२॥) अस्य सार्द्धद्विकस्य द्वाविंशत्यधिकशतभागकरणार्थं सार्द्ध द्विकं द्वाविंशत्यधिकशतेन गुण्यते, जातानि पञ्चोत्तराणि त्रीणि शतानि (३०५) तत एकषष्ट्या भागो ह्रियते लब्धाः पञ्च द्वाविंशत्यधिकशत भागाः ($15\frac{5}{122}$) इति ।

सम्प्रतं सूर्यमासमधिकृत्य चन्द्रादीनां मण्डलानि प्रदर्शयति—'ता आइच्चेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'आइच्चेणं मासेणं' आदित्येन मासेन 'चंदे' चन्द्रः 'कइमंडलाइं चरइ' कतिमण्डलानि चरति ? भगवानाह—'ता' तावत् 'चोद्दस मंडलाइं' चतुर्दश मण्डलानि, तदुपरि च 'मंडलस्स' पञ्चदशस्य मण्डलस्य 'एक्कारस पंचदसभागे' एकादश पञ्चदशभागान् ($14\frac{11}{15}$) 'चरइ' चरति । कथमित्याह—एकस्मिन् युगे आदित्य मासाः षष्टिः (६०), चन्द्रमण्डलानि चतुरशीत्यधिकानि अष्टौ शतानि (८८४), ततस्त्रैराशिकं क्रियते, तथाहि—यदि षष्ट्या आदित्य-मासैः चतुरशीत्यधिकानि अष्टौ मण्डलशतानि चन्द्रस्य लभ्यन्ते तदा एकेन आदित्यमासेन कति मण्डलानि लभ्यन्ते ? राशित्रयस्थापना—६०।८८४।१। अत्रान्त्येन राशिना मध्यो राशि गुणितो जातस्तावानेव (८८४), अस्याद्यराशिना भागो ह्रियते लब्धानि चतुर्दश मण्डलानि, तिष्ठन्ति शेषाश्चतुश्चत्वारिंशत् (४४) ततोऽस्य छेद्यराशेश्चतुश्चत्वारिंशद्रूपस्य छेदकराशेः षष्टिरूपस्य च

चतुष्केनापवर्त्तना क्रियते चतुष्केन भागहरणेनापहारः क्रियते इत्यर्थः, ततश्चतु श्चत्वारिंशतश्छेदराशेरपवर्त्तनायां लभ्यन्ते एकादश ११, षष्टिरूपस्य छेदकराशेरपवर्त्तनायां लभ्यन्ते पञ्चदशेति समागतम्-चतुर्दश मण्डलानि परिपूर्णानि पञ्चदशस्य मण्डलस्य चैकादश पञ्चदश भागाः (१४|$\frac{११}{१५}$)

अथादित्यमासेन सूर्यचारमाह-'ता आइच्चेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'आइच्चेण मासेणं' आदित्येन मासेन 'सूरिए' सूर्यः 'कइ मंडलाइं चरइ' कतिमण्डलानि चरति ? भगवानाह-'ता पण्णरस' इत्यादि, 'ता' तावत् 'पण्णरस मंडलाइं' पञ्चदश मण्डलानि 'चउब्भागाहियाइं' चतुर्भागाधिकानि चतुर्थ भागेन षोडशस्य च मण्डलस्य षष्टिभागा विभक्तस्य पञ्चदशभागात्मकेन अधिकानि। (१५|$\frac{१५}{६०}$) 'चरइ' चरति । तथाहि-यदि युगसम्बन्धिभिः षष्टि सूर्यमासैः पञ्चदशाधिकानि नव मण्डलशतानि सूर्यस्य लभ्यन्ते ? तदा एकेन मासेन कति मण्डलानि लभ्यन्ते राशित्रयस्थापना -६०।९१५।१ । राशिना मध्यराशिं गुणयित्वा षष्ट्या भागो ह्रियते लब्धानि परिपूर्णानि पञ्चदश मण्डलानि, षोडशस्य मण्डलस्य च पञ्चदश षष्टिभागाः (१५|$\frac{१५}{६०}$) सपाद पञ्चदश मण्डलानि चरतीति भावः। अथादित्यमासेन नक्षत्रचारमाह-'ता आइच्चेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'आइच्चेणं मासेणं' आदित्येन मासेन 'णक्खत्ते' नक्षत्रं 'कइ मंडलाइं चरइ' कति मण्डलानि चरति ? भगवानाह-'ता' तावत् 'पण्णरस चउब्भागाहियाइं मंडलाइं' पञ्चदश चतुर्भागाधिकानि मण्डलानि षोडश मण्डलसम्बन्धि चतुर्थ भागेनाधिकानि मण्डलानि सपाद पञ्चदश मण्डलानीत्यर्थः पुनश्च 'पंचय वीससयभागे मंडलस्स' पञ्च च विंशशतभागान् मण्डलस्य एकस्य मण्डलस्य पञ्च च विंशत्यधिक शत भागान् (१५|$\frac{५}{१२०}$) 'चरइ' चरति । किमुक्तं भवति-पञ्चदशपरिपूर्णानि मण्डलानि १५, षोडशस्य च मण्डलस्य चतुर्थो भागः विंशत्यधिकशतभागसत्कत्रिंशत्प्रमितः, पञ्च चान्ये सूत्रोक्ता विंशत्यधिक शत भागाः इति मिलित्वा जायन्ते पञ्चत्रिंशद्विंशत्यधिकशतभागाः (१५-$\frac{३५}{१२०}$) इति । कथमित्याह एकस्मिन् युगे आदित्यमासाः षष्टिः (६०), नक्षत्र मण्डलानि च सार्द्ध सप्तदशाधिकानि नवशतानि (९१७॥) इति त्रैराशिकं क्रियते-यदि षष्ट्या सूर्यमासैः सार्द्धसप्तदशाधिकानि

नवमण्डलशतानि नक्षत्रस्य लभ्यन्ते तदा एकेन सूर्यमासेन कति मण्डलानि लभ्यन्ते ? राशित्रयस्थापना–६०।९१७॥ । १) अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशिर्गुणितो जातस्तावानेव (९१७॥) अस्य आद्यराशिना षष्टिरूपेण भागो ह्रियते लब्धानि पञ्चदश मण्डलानि शेषास्तिष्ठन्ति सार्द्धाः सप्तदश (१७॥) एते विंशत्यधिकशतभागकरणार्थं विंशत्यधिकेन गुण्यन्ते जातानि एकविंशतिः शतानि (२१००), एषां षष्ट्या भागो ह्रियते लब्धाः पञ्चत्रिंशद् विंशत्यधिक शतभागाः, तत आगतम् पञ्चदश मण्डलानि परिपूर्णानि, षोडशस्य च मण्डलस्य पञ्चत्रिंशद् विंशत्यधिक शतभागाः (१५|$\frac{३५}{१२०}$) इति ।

अथाभिवर्द्धितमासमधिकृत्य चन्द्रादिमण्डलानि प्ररूपयति–'**ता अभिवड्ढिएणं**' इत्यादि । 'ता' तावत् '**अभिवड्ढीएणं मासेणं**' अभिवर्धितेन मासेन '**चंदे**' चन्द्रः '**कइ मंडलाइं चरइ**' कति मण्डलानि चरेति ? भगवानाह–'ता' तावत् '**पण्णरस मंडलाइं**' पञ्चदश मण्डलानि '**मंडलस्स**' षोडशस्य मण्डलस्य च '**तेसीइं छलसीइसयभागे**' त्र्यशीतिं षडशीतिशतभागान् (१५|$\frac{८३}{१८६}$) '**चरइ**' चरति । कथमेतदवसीयते ? इत्यत्राह–एकस्मिन् युगेऽभिवर्द्धितमासाः सप्तपञ्चाशत् त्रयश्च त्रयोदश भागाः (५७|$\frac{३}{१३}$) भवन्ति, ततोऽस्य राशेः त्रयोदशभागाः कर्त्तव्याः, ततस्त्रयोदश भागकरणार्थं सप्तपञ्चाशत् त्रयोदशभिर्गुण्यन्ते (५७×१३)जातानि एकचत्वारिंशदधिकानि सप्तशतानि (७४१) एषु ये उपरितनास्त्रयस्त्रयोदशभागास्ते क्षिप्यन्ते (७४१+३) जातानि चतुश्चत्वारिंशदधिकानि सप्तशतानि (७४४) अभिवर्द्धितमास सत्क त्रयोदश भागानाम् । ततो यावन्मासानां मण्डलानि ज्ञातु मिच्छेत् तावन्तो मासा अपि त्रयोदशभिर्गुण्यन्ते ततोऽत्रैकमासगतमण्डल जिज्ञासा वर्त्तते तत एकोऽङ्कस्त्रयो दशभिर्गुण्यन्ते जातास्त्रयोदशैव, ततस्त्रैराशिकं क्रियते तथाहि—

यदि–चतुश्चत्वारिंशदधिक सप्तशतैरभिवर्द्धितमाससत्कैस्त्रयोदशभागैः (७४४) चतुरशीत्यधिकानि अष्टशतानि (८८४) चन्द्रमण्डलानां लभ्यन्ते तदा एकाभिवर्द्धितमाससत्कैस्त्रयोदयभागैः कति मण्डलानि लभ्यन्ते, राशित्रयस्थापना–। ७४४ । ८८४ । १३ । अत्रान्त्येन राशिना त्रयोदशरूपेण मध्यो राशिः चतुरशीत्यधिकाष्टशतरूपो गुण्यते जायन्ते–एकादश सहस्राणि चत्वारिशतानि द्विनवत्यधिकानि (११४९२) ततोऽस्य राशेः आद्यराशिना चतुश्चत्वारिंशदधिकसप्तशतरूपेण भागो ह्रियते, लभ्यन्ते पञ्चदश मण्डलानि तिष्ठन्ति पश्चात् द्वात्रिंशदधिकानि त्रीणिशतानि (३३२), एष राशिः षडशीत्यधिकशतभागकरणार्थं

षडशीत्यधिकेन शतेन (१८६) गुण्यते जातानि-एक षष्टिः सहस्राणि सप्तशतानि द्विपञ्चाशदधिकानि (६१७५२), अस्य राशेरपि चतुश्चत्वारिंशदधिकसप्तशतराशिना (७४४), भागो ह्रियते लब्धास्त्र्यशीतिर्भागाः (८३) तत आगतम्-पञ्चदश मण्डलानि परिपूर्णानि षोडशस्य च मण्डलस्य त्र्यशीतिः षडशीतिशतभागाः $(१५\frac{८३}{१८६})$ एकेनाभिवर्द्धितमासेन चन्द्रमण्डलानां लभ्यन्ते, इति ।

अथाभिवर्द्धितमासेन सूर्यमण्डलविचारमाह-'ता अभिवड्ढिएणं' इत्यादि, 'ता' तावत् अभिवड्ढिएणं मासेणं' एकेन अभिवर्द्धितेन मासेन 'सूरिए' सूर्यः 'कइमंडलाइं चरइ' कति मण्डलानि चरति ? भगवानाह -'सोलसमंडलाइं' षोडशमण्डलानि 'तिहिं भागेहिं ऊणगाइं' त्रिभिर्भागैर्मण्डलसत्कैः ऊनकानि न्यूनानि, कथमित्याह-'दोहिं अडयालेहिं सएहिं मंडलं छित्ता' द्वाभ्यां शताभ्याम् अष्टचत्वारिंशदधिकाभ्यां (२४८) मण्डलं छित्वा एकस्य मण्डलस्य अष्टचत्वारिंशदधिके द्वेशते भागानां कृत्वा तन्मध्यात् त्रिभिर्भागैर्न्यूनानि षोडशमण्डलानि । किमुक्तं भवति-परिपूर्णानि पञ्चदशमण्डलानि, षोडशस्यच मण्डलस्य अष्टचत्वारिंशदधिक द्विशतभागसत्कभागत्रयन्यूनान्-इति पञ्चचत्वारिंशदधिकद्विशतभागान् $(१५\frac{२४५}{२४८})$ 'चरइ' चरति । कथमित्याह-एकस्मिन् युगे पूर्वप्रदर्शितरीत्याऽभिवर्द्धितमासस्य चतुश्चत्वारिंशदधिकानि सप्तशतानि (७४४) त्रयोदशभागाः भवन्ति, सूर्यश्चैकस्मिन् युगे पञ्चदशाधिकानि नव मण्डलशतानि (९१५) चरति, अत्रैकस्य मासस्य पृच्छा ततः एकं त्रयोदशभिर्गुणयित्वा त्रयोदश भागाः क्रियन्ते ततस्त्रैराशिकं क्रियते, तथाहि-यदि-चतुश्चत्वारिंशदधिकसप्तशतभागैः पञ्चदशाधिकानि नवशतानि सूर्यमण्डलानां लभ्यन्ते तदा एकाभिवर्द्धितमाससत्कत्रयोदशभागैः कति मण्डलानि लभ्यन्ते ? राशित्रयस्थापना (७४४ । ९१५ । १३) अत्रान्त्येन राशिना त्रयोदशलक्षणेन मध्यो राशिः पञ्चदशाधिकं नवशतरूपो गुण्यते जातानि एकादश सहस्राणि अष्टौ शतानि पञ्चनवत्यधिकानि (११८९५) अस्याद्येन राशिना चतुश्चत्वारिंशदधिक सप्तशतरूपेण (७४४) भागो ह्रियते, लब्धानि पञ्चदशमण्डलानि शेषाणि तिष्ठन्ति पञ्चत्रिंशदधिकानि सप्तशतानि (७३५) एतानि अष्टचत्वारिंशदधिक द्विशतभागकरणार्थं अष्ट चत्वारिंशदधिकाभ्यां द्वाभ्यां शताभ्यां गुण्यन्ते जातानि-एकं लक्षं, द्व्यशीति सहस्राणि, द्वेशते अशीत्यधिके (१८२२८०) अस्य राशेरपि चतुश्चत्वारिंशदधिके सप्तभिःशतैः (७४४) भागो ह्रियते, लब्धे, पञ्चचत्वारिंशदधिके द्वेशते (२४५), तत आगतम् परिपूर्णानि पञ्चदशमण्डलस्य पञ्च चत्वारिंशदधिकद्विशतसंख्यका

अष्ट चत्वारिंशदधिक द्विशतभागाः ($१५ \frac{२४५}{२४८}$) इति ।

अथाभिवर्धितमासेन नक्षत्रमण्डलान्याह–'ता अभिवड्ढियएणं' इत्यादि 'ता तावत् 'अभिवड्ढियएणं मासेण' अभिवर्द्धितेन मासेन 'णक्खत्ते' नक्षत्रं 'कइ मंडलाइं चरइ' कति मण्डलानि चरति ? भगवानाह– 'ता' तावत् 'सोलस मंडलाइं' षोडश मण्डलानि 'सीयालीसेहिं भागेहिं अहियाइं' सप्त चत्वारिंशता भागैरधिकानि 'चोद्दसहिं अट्ठासीएहिं सएहिं' अष्टाशीत्यधिकैश्चतुर्दशभिः शतैः (१४८८) 'मंडलं छित्ता' मण्डलं छित्वा । परिपूर्णानि षोडश मण्डलानि सप्तदशस्य च अष्टाशीत्यधिकचतुर्दशशतभागान् कृत्वा तन्मध्यात् सप्तचत्वारिंशतो भागान् ($१६ \frac{४७}{१४८८}$) 'चरइ' चरति । तथाहि–

एकस्मिन् युगे अभिवर्द्धितमासस्य चतुश्चत्वारिंशदधिकानि सप्त शतानि (७४४) त्रयोदश भागा भवन्ति । नक्षत्र मण्डलानि सार्द्धसप्तदशाधिकानि नवशतानि (९१७॥) भवन्ति, ततोऽयमपि राशिस्त्रयोदशभि–र्गुण्यते जातानि–एकादश सहस्राणि नवशतानि सार्द्धसप्तविंशत्यधिकानि (११९२७॥) । ततस्त्रैराशिकं क्रियते–यदि चतुश्चत्वारिंशदधिकैः सप्तभिः शतैः अभिवर्द्धितमासस्कत्रयोदशभागैः सार्द्धसप्तविंशत्यधिकनवशतोत्तराणि एकादश सहस्राणि (११९२७॥) नक्षत्रमण्डलानां त्रयोदश भागा लभ्यन्ते तदा एकेन अभिवर्द्धितमासेन कति मण्डलानि लभ्यन्ते ? राशित्रयस्थापना–(७४४ । ११९२७॥–१) अत्रान्त्येन राशिना एकक लक्षणेन मध्योराशिर्गुण्यते जातस्तावानेव (११९२७॥) ततोऽस्य राशेः आद्येन राशिना चतुश्चत्वारिंशदधिक सप्तशतरूपेण भागो ह्रियते। लब्धानि षोडश मण्डलानि (१६) शेषातिष्ठति सार्द्धा त्रयोविंशतिः (२३॥), अस्या अष्टाशीत्यधिक चतुर्दशशतभागकरणार्थम् अष्टाशीत्यधिक चतुर्दशशतै (१४८८) र्गुण्यते, जातानि चतुस्त्रिंशत् सहस्राणि नवशतानि अष्टषष्ट्यधिकानि (३४९६८), अस्य राशेरपि चतुश्चत्वारिंशदधिक सप्तशतैः (७४४), भागो ह्रियते, हृते च भागे लभ्यन्ते सप्तचत्वारिंशत् (४७) तत आगतम्–नक्षत्रं–परिपूर्णानि षोडश मण्डलानि, सप्तदशस्य मण्डलस्य च सप्तचत्वारिंशतम् अष्टाशीत्यधिकचतुर्दशशतभागान् ($१६ \frac{४७}{१४८८}$) एकेनाभिवर्द्धितमासेन चरति चन्द्रसूर्यनक्षत्रमण्डलानयनविधिरयम्–अत्र एकस्य मासस्य त्रयोदश भागा गृहीताः, एषु यावतां भागानां मण्डलजिज्ञासा भवेत् तावद्भिर्भागैश्चन्द्र–सूर्य–नक्षत्रमण्डलानि गुणयित्वा चतुश्चत्वारिंशदधिकसप्तशतैः (७४४) भागो हरणीयः भागे हृते यावन्ति लभ्यन्ते तानि मण्डलानि ज्ञातव्यानि । एव करणेन अभिवर्धितमासस्य प्रथमे एकस्मिन् भागे चन्द्रः

एकं मण्डलम् पञ्चत्रिंशतं च षडशीत्यधिकशतभागान्-(१$\frac{३५}{१८६}$) चरति। एवं सूर्यः-एकं मण्डलम् सप्तपञ्चाशतं च अष्टचत्वारिंशदधिकद्विशतभागान् (१$\frac{५७}{२४८}$) चरति। तथा नक्षत्रम् एकं मण्डलम् सप्त चत्वारिंशदधिकत्रिशत्संख्यकान् अष्टाशीत्यधिक चतुर्दश, शत-भागान् (१$\frac{३४७}{१४८८}$) चरति। यदि यस्य कस्यचित् परिपूर्णस्य एकस्य मासस्य मण्डलानि ज्ञातुमिच्छेत् तदा तत्सम्बन्धिनमत्रोक्तराशिं त्रयोदशभिर्गुणयेत् तदा सभागानि भविष्यन्ति चन्द्रादीनां तत्तन्मासगतमण्डलानीति। अत्राभिवर्द्धितमाससत्कचन्द्रमण्डलानामुदाहरणं प्रदर्श्यते, तथाहि-चन्द्रस्याभिवर्द्धितमाससत्कैकभागभुक्तमेकं मण्डल पञ्चत्रिंशच्च षडशीत्य-धिकशतभागाः (१$\frac{३५}{१८६}$) त्रयोदशभिर्गुण्यन्ते, तत्र प्रथममेकं मण्डलं त्रयोदश भिर्गुण्यते, जातास्त्रयोदश (१३) तत उपरितनाः पञ्चत्रिंशत् त्रयोदशभि र्गुण्यते, जातानि पञ्च पञ्चाशदधिकानि चत्वारिंशतानि (४५५) ततोऽस्य मण्डलानयनार्थं षडशीत्यधिकशतेन भागो ह्रियते लब्धे द्वे, ते च मण्डलसंख्यायां क्षिप्येते, जातानि पञ्चदश मण्डलानि, शेषास्त्र्यशीति षडशीत्यधिकशतभागाः, ततआगतो यथोक्तो राशिः (१५$\frac{८३}{१८६}$)। एवं सूर्यमण्डल नक्षत्रमण्डलविषयेऽपि विज्ञेयमिति ॥सू० ॥ ३ ॥

साम्प्रतमहोरात्राद्याश्रित्य चन्द्रादीनां प्रत्येकं मण्डलचारमाह-'ता एगमेगेणं अहो रत्तेणं चंदे' इत्यादि।

मूलम्— ता एगमेगेणं अहोरत्तेणं चंदे कइ मंडलाइं चरइ ? ता एगं अद्ध-मंडलं चरइ, एक्कतीसाए भागेहिं ऊणं नवहिं पण्णरसेहिं सएहिं अद्धमंडलम् छेत्ता। ता एगमेगेणं अहोरत्तेण सूरिए कइ मंडलाइं चरइ ? ता एगं अद्धमंडलं चरइ। ता एगमेगेणं अहोरत्तेणं सूरिए कइ मंडलाइं चरइ ? ता एगं अद्धमंडलं चरइ। ता एग-मेगेणं अहोरत्तेणं णक्खत्ते कइ मंडलाइं चरइ ? ता एगं अद्ध मंडलं चरइ दोहिं भागेहिं अहियं सत्तहिं बत्तीसेहिं सएहिं अद्धमंडलं छेत्ता। ता एगमेगं मंडलं चंदे कइहिं अहोरत्तेहिं चरइ ? ता दोहिं अहोरत्तेहिं चरइ एकतीसाए भागेहिं अहिएहिं चउहिं बा-याळेहिं सएहिं राइंदियं छेत्ता। ता एगमेगं मंडलं सूरिए कइहिं अहोरत्तेहिं चरइ ? ता दोहिं अहोरत्तेहिं चरइ। ता एगमेगं मंडलं णक्खत्ते कइहिं अहोरत्तेहिं चरइ ? ता

दोहिं अहोरत्तेहिं चरइ दोहिं भागेहिं ऊणेहिं तिहिं सत्तसट्ठेहिं सएहिं राइंदियं छेत्ता। ता जुगेण चंदे कइ मंडलाइं चरइ। ता अट्ठ चुलसीयाइं मंडलसयाइं चरइ। ता जुगेणं सूरिए कइ मंडलाइं चरइ? ता णव पण्णरस मंडलसयाइं चरइ। ता जुगेणं णक्खत्ते कइ मंडलाइं चरइ? ता अट्ठारस पणतीसाइं दुभागमंडलसयाइं चरइ। इच्चेसा मुहुत्त गई रिक्खाइ मासराइंदिय जुग मंडल पविभत्ती सिग्घ गइ वत्थु आहिएत्तिबेमि॥ सू० ४॥

पण्णरस्समं पाहुडं समत्तं ॥१५॥

छाया—तावत् एकैकेन अहोरात्रेण चन्द्रः कति मण्डलानि चरति? तावत् एकम् अर्द्धमण्डलं चरति एकत्रिंशता भागैः ऊनम् नवभिः पञ्चदशैः शतैः अर्द्धमण्डलं छित्त्वा। तावत् एकैकेन अहोरात्रेण सूर्यः कति मण्डलानि चरति? तावत् एकम् अर्द्ध-मण्डलं चरति। तावत् एकैकेन अहोरात्रेण नक्षत्रं कति मण्डलानि चरति? तावत् एकं मण्डलं चरति द्वाभ्यां भागाभ्यामधिकम् सप्तभिः द्वात्रिंशैः शतैः अर्द्धमण्डलं छित्त्वा। तावत् एकैकं मण्डलं चन्द्रः कतिभिरहोरात्रैः चरति? तावत् द्वाभ्याम् अहोरात्राभ्यां चरति एकत्रिंशता भागैरधिकाभ्यां चतुर्भिः द्विचत्वारिंशैः शतैः रात्रिन्दिवं छित्त्वा। तावत् एकैकं मण्डलं सूर्यः कतिभिरहोरात्रैः चरति? तावत् द्वाभ्याम् अहोरात्राभ्यां चरति। तावत् एकैकं मण्डलं नक्षत्रं कतिभिरहोरात्रैः चरति? तावत् द्वाभ्यामहोरात्राभ्यां चरति, द्वाभ्यां भागाभ्यामूनाभ्याम् त्रिभिः सप्तषष्टैःशतैः रात्रिन्दिवं छित्त्वा। तावत् युगेन चन्द्रः कति मण्डलानि चरति? तावत् अष्ट चतुरशीतानि मण्डलशतानि चरति। तावत् युगेन सूर्यः कति मण्डलानि चरति? तावत् नव पञ्चदशानि मण्डलशतानि चरति। तावत् युगेन नक्षत्रं कति मण्डलानि चरति? तावत् अष्टादश पञ्चत्रिंशानि द्विभाग मण्डलशतानि चरति। इत्येषामुहूर्त्त गतिः ऋक्षादिमास रात्रिन्दिव युग मण्डल प्रविभक्ति शीघ्रगतिवस्तु आख्यातम् इतिब्रवीमि॥ सूत्र ४॥

॥ पञ्चदशं प्राभृतं समाप्तम् ॥१५॥

व्याख्या---'ता एगमेगेणं' इति 'ता' तावत् 'एगमेगेणं अहोरत्तेणं' एकैकेन अहोरात्रेण 'चंदे' चन्द्रः 'कइमंडलाइं चरइ' कतिमण्डलानि चरति? भगवानाह 'ता' तावत् 'एगं-अद्धमंडलं' एकमर्द्धमण्डलं, तच्च 'एकतीसाए भागेहिं ऊणं' एकत्रिंशता भागैरूनं हीनम् कथम्—'णवहिं पण्णरसेहिं सएहिं' पञ्च दशाधिकैर्नवभिः शतैः (९१५) 'अद्धमंडलं छित्ता' अर्द्धमण्डलं छित्वा—एकस्यार्द्धमण्डलस्य पञ्चदशाधिकनवशतभागान् कृत्वा तन्मध्यात् एकत्रिंशद्भागैर्न्यूनमर्द्धमण्डलम् 'चरइ' चरति। तदेव दर्श्यते—एकस्मिन् युगे त्रिंशदधिकानि अष्टादशशतानि (१८३०) अहोरात्राणां भवन्ति चन्द्र मण्डलानि परिपूर्णानि चतुरशीत्यधिकान-अष्टशतानि (८८४) भवन्ति तेषामर्द्ध मण्डलानि अष्ट षष्टयधिकानि सप्तदशशतानि (१७६८) जायन्ते तत त्रैराशिकं क्रियते—यदि त्रिंशदधिकाष्टादश शतरात्रिन्दिवैः अष्टषष्टयधिकानि सप्त-दश शतानि चन्द्रस्यार्द्धमण्डलानां लभ्यन्ते तदा एकेन रात्रिन्दिवेन कति मण्डलानि लभ्यन्ते

राशित्रयस्थापना–(१८३०।१७६८।१। अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशिर्गुणितस्तावानेह (१७६८ अस्याद्यराशिना त्रिंशदधिकाष्टादशशतरूपेण भागो हरणीयः, ततो भाजकराशे र्भाज्य राशिर्न्यून इति भागं न लभते ततो भाज्यभाजकराश्यो र्द्विकेनापवर्त्तना करणे लभ्यन्ते चतुरशीत्यधिकानि अष्टशतानि (८८४) पञ्चोत्तर नवशत भाग सत्कानि $\frac{(८८४)}{९१५}$ तत आगतम्–चन्द्र एकेना होरात्रेण एकस्यार्द्धमण्डलस्य पञ्चदशोत्तरनवशतभागेभ्य श्चतुरशीत्यधिकाष्टशतभागान् चरतीति।

अथ सूर्य विषयकं सूत्रमाह–'ता एगमेगेणं' इत्यादि 'ता' तावत् एगमेगेणं अहोरत्तेणं एकैकेनाहोरात्रेण 'सूरिए' सूर्यः 'कइ मंडलाइं चरइ' कति मण्डलानि चरति ? भगवानाह 'ता' तावत्–'एगं अद्धमंडलं चरइ' एक मर्द्धमण्डलं चरति।

नक्षत्रसूत्रमाह 'ताएगमेगेणं' इत्यादि 'ता' तावत् 'एगमेगेणं अहोरत्तेण' एकैकेनाहोरात्रेण 'णक्खत्ते' नक्षत्र 'कइ मंडलाइं चरइ' कति मण्डलानि चरति ? भगवानाह 'ता' तावत् 'एगं मंडलं' एक मण्डलम् 'दोहिं भागेहिं अहियं' द्वाभ्यां भागाभ्यामधिकम् 'सत्तहिं-बत्तीसेहिं सएहिं' सप्तभिः द्वात्रिंशैः द्वात्रिंशदधिकैः शतैः (७३२) 'अद्ध मंडलं' छेत्ता, अर्द्धमण्डलं छित्वा एकस्यार्द्धमण्डलस्य द्वात्रिंशदधिकानि सप्त शतानि भागानां कृत्वा तन्म मध्याद् द्वौ भागौ 'चरइ' चरति।–तथाहि–एकस्मिन् युगे त्रिंशदधिकानि अष्टादशाहोरात्र शतानि (१८३०) भवन्ति नक्षत्रमण्डलानि सार्द्धसप्तदशाधिकानि नवशतानि (९१७॥) भवन्ति एषामर्द्धमण्डलानि द्विगुणानि पञ्चत्रिंशदधिकानि अष्टादश शतानि (१८३५) जायन्ते तत त्रैराशिकं क्रियते यदि त्रिंशदधिकाष्टादशशतै रहोरात्रैः पञ्चत्रिंशदधिकाष्टादशशतानि नक्षत्रमण्डलानि लभ्यन्ते तदा एकेनाहोरात्रेण कति मण्डलानि लभ्यन्ते ? राशित्रयस्थापना– १८३०।१८३५।१ अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशि गुणितो जात स्तावानेव पञ्चत्रिंशदधिकाष्टादश शतरूपः (१८३५) अस्य आद्येन राशिना त्रिंशदधिकाष्टादशशत रूपेण (१८३०) भागो ह्रियते लब्ध मेकमर्द्ध मण्डलम् शेषा स्तिष्ठन्ति पञ्च, ततः छेद्यराशेः (५) छेदकराशेश्च (१८३०) अर्द्ध तृतीयैः २॥ अपवर्तना क्रियते जाते द्वे द्वा त्रिंशदधिकसप्तशत भागे $\frac{(२)}{७३२}$

साम्प्रतम्–एकैकं परिपूर्णं मण्डलं चन्द्रादयः प्रत्येकं कतिभिरहोरात्रैश्चरन्ति ? इत्येतन्नि रूपयति,–तत्र प्रथमं चन्द्रचारमाह–'ता एगमेगं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एगमेगं मंडलं' एकैकं परिपूर्णं मण्डलं 'चंदे' चन्द्र 'कइहिं अहोरत्तेहिं चरइ' कतिभिरहोरात्रैश्चरति ? भगवानाह–'ता' तावत् 'दोहिं अहोरत्तेहिं' द्वाभ्यामहोरात्राभ्याम् 'एक्कतीसाए भागेहिं अहिएहिं' एकत्रिंशता भागैरधिकाभ्याम्, 'चउहिं बायालेहिं सएहिं' चतुर्भिः चत्वारिंशैः द्विचत्वारिंशदधिकैः शतैः रात्रिन्दिवं 'छेत्ता' छित्वा। एकस्याहोरात्रस्य द्विचत्वारिंशदधिकचतुः शतभागान्

कृत्वा तन्मध्यात् एकत्रिंशतं भागान् 'चरइ' चरति । त्रैराशिकं क्रियते, तथाहि—यदि चतुरशीत्यधिकाष्टाशतैश्चन्द्रमण्डलैः (८८४) त्रिंशदधिकाष्टादशशताहोरात्राणि (१८३०) लभ्यन्ते तदा एकेन मण्डलेन कति अहोरात्राणि लभ्यन्ते ? राशित्रयस्थापना—८८४।१८३०।१। अत्रापि अन्त्येन राशिना मध्यं राशिं गुणयित्वा आद्येन राशिना भागो हरणीयः, हृतेच भागे लब्धौ द्वावहोरात्रौ (२), शेषास्तिष्ठन्ति द्वाषष्टिः (६२) ततश्छेद्यछेदकराश्योः ($\frac{छेद्य}{६२}$|$\frac{छेदक}{८८४}$) द्विकेनापवर्त्तना क्रियते, लभ्यन्ते एकत्रिंशद् भागाः द्विचत्वारिंशदधिकचतुः शतभागसम्बन्धिनः ($\frac{३१}{४४२}$) । तत आगतम्-चन्द्र एकैकं मण्डलं द्विचत्वारिंशदधिकचतुःशतभागसत्कैकत्रिंशद्भागसहिताभ्यां द्वाभ्यामहोरात्राभ्यां चरतीति ।

अथ मण्डलविषयां सूर्यचाराहोरात्रसंख्यामाह— 'ता एगमेगं' इत्यादि, 'ता' तावत् **'एगमेगं मंडलं'** एकैकं मण्डलं **'सूरिए'** सूर्यः **'कइहिं अहोरत्तेहिं चरइ'** कतिभिरहोरात्रैश्चरति ? भगवानाह—**'दोहिं अहोरत्तेहिं'** द्वाभ्यामहोरात्राभ्यां **'चरइ'** चरति । यतो हि एकस्य युगस्य अहोरात्राणि त्रिंशदधिकाष्टादशशतानि (१८३०) सूर्य मण्डलानि च पञ्चदशोत्तर नव शतानि (९१५) इति युगाहोरात्रेभ्यः सूर्य मण्डला नामर्द्धत्वात् द्वाभ्यामहोरात्राभ्यामेकं मण्डलं चरतीति ।

अथ नक्षत्रस्य मण्डलविषयामहोरात्रसंख्यामाह— **'ता एगमेगं'** इत्यादि **'ता'** तावत् **'एगमेगं मंडलं'** एकैकं मण्डलं **'णक्खत्ते'** नक्षत्रं **'कइहिं अहोरत्तेहिं चरइ'** कतिभिरहोरात्रैश्चरति ? भगवानाह—**'ता'** तावत् **'दोहिं अहोरत्तेहिं'** द्वाभ्यामहोरात्राभ्याम् ? **'दोहिं भागेहिं ऊणेहिं'** द्वाभ्यां भागाभ्यां ऊनाभ्याम्, **'तिहि सत्त सट्ठेहिं सएहिं राइंदियं छेत्ता'** सप्तषष्ट्यधिकैस्त्रिभिः शतैः (३६७) रात्रिन्दिवं छित्वा, एकस्य रात्रिन्दिवस्य सप्तषष्ट्यधिकशतत्रयभागान् कृत्वा तन्मध्याद् द्वाभ्यां भागाभ्यां हीनाभ्यां द्वाभ्यामहोरात्राभ्यां ($१\frac{३६५}{३६७}$) **'चरइ'** चरति । तथाहि—एकस्मिन् युगे नक्षत्रमण्डलानि सार्द्धसप्तदशाधिकानि नव शतानि (९१७॥) एषामर्द्धमण्डलकरणार्थं तानि द्वाभ्यां गुण्यन्ते जातानि पञ्चत्रिंशदधिकानि—अष्टादश शतानि (१८३५), ततो युगाहोरात्राण्यपि द्वाभ्यां गुण्यन्ते, जातानि षष्ट्यधिकानि षट् त्रिंशच्छतानि (३६६०) ततस्त्रैराशिकं क्रियते, तथाहि—यदि पञ्चत्रिंशदधिकाष्टादश शतैर्नक्षत्रमण्डलैः षष्ट्यधिक षट् त्रिंशच्छतानि रात्रिन्दिवानी लभ्यन्ते तदा एकेन मण्डलेन कति रात्रिन्दिवानि लभ्यन्ते ? राशित्रयस्थापना—१८३५।३६६०।१। अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशिर्गुणितो जातस्तावानेव (३६६०), अस्य आद्येन राशिना (१८३५) भागो ह्रियते, लब्धमेकं रात्रिन्दिवम्, शेषाणि स्थितानि पञ्चविंशत्यधिकानि अष्टादशशतानि (१८२५) ततोऽयं

राशिः सप्त पष्टचधिकत्रिशत भागकरणार्थं सप्तषष्टयधिकैस्त्रिभिः शतैः (३६७) गुण्यते जातानि-षड् लक्षाणि, एकोनसप्ततिः सहस्राणि, सप्तशतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि (६६९७७५), ततश्छेदकराशिना पञ्चत्रिंशदधिकाष्टादशशतरूपेण (१८३५) भागो हियते, लभ्यन्ते पञ्च षष्टयधिकानि त्रीणि शतानि (३६५) अथवा छेद्यछेदकराश्योः पञ्चभिरपवर्त्तना क्रियते, तत्र छेद्यराशेः (१८२५) पञ्चभिरपवर्त्तना करणे लब्धानि पञ्चषष्टयधिकानि त्रीणि शतानि (३६५), छेदकराशेः (१८३५) पञ्चभिरपवर्त्तनाकरणे लब्धानि सप्तषष्टयधिकानि त्रीणि शतानि (३६७), तत आगतम् एकेन परिपूर्णेन रात्रिन्दिवेन द्वितीयस्य रात्रिन्दिवस्य च सप्तषष्टयधिक-त्रिशतभागविभक्तस्य मध्यात् द्वाभ्यां—भागाभ्यामूनाभ्याम् इति पञ्चषष्टयधिकत्रिशतभागौ ($\frac{१।३६५}{३६७}$) नक्षत्र मेकं मण्डलं चरतीति ।

साम्प्रतं चन्द्रादीनां युगविषयकं मण्डलचारमाह—तत्र प्रथमं चन्द्रस्य मण्डलचार माह—'ता जुगेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जुगेणं' एकेन युगेन एकं युगमधिकृत्य एक-स्मिन् युगे इत्यर्थः 'चंदे' चन्द्रः 'कइ मण्डलाइं चरइ' कति मण्डलानि चरति ? भगवा-नाह—'ता' तावत 'अट्ठचुलसीयाइं मंडलसयाइं' अष्ट चतुरशीतानि चतुरशीत्यधिकानि मण्डलशतानि चतुरशीत्यधिकानि अष्टशतानि (८८४) मण्डलानां 'चरइ' चरति । तथाहि—चन्द्रः अष्टानवतिशताधिकेन एकेन शतसहस्रेण (१०९८००) प्रविभक्तस्य मण्डलस्य अष्ट-षष्टयधिकसप्तदशशतसंख्यकान् (१७६८) भागान् एकेन मुहूर्त्तेन गच्छति त्रिंशदधिकाष्टा-दशशत (१८३०) दिवसात्मके युगे च दिवसस्य त्रिंशन्मुहूर्त्तात्मकत्वेन मुहूर्त्ताः सर्वे संख्यया नवशताधिकानि चतुष्पञ्चाशत्सहस्राणि (५४९००) भवन्ति, ततः अष्टषष्टयधिकानि सप्तदश शतानि (१७६८) नवशताधिकैश्चतुः पञ्चाशत्सहस्रैः (५४९००) गुण्यन्ते जायन्ते—नव कोटयः, सप्तनिर्लक्षा., त्रिषष्टिः सहस्राणि, द्वेशते (९७०६३२००), ततोऽस्य राशेः अष्टा-नवति शताधिकेन एकेन शतसहस्रेण (१०९८००) मण्डलानयनार्थं भागो हियते, लब्धानि चतुरशीत्यधिकानि अष्ट मण्डलशतानि (८८४) इति ।

अथ सूर्यस्य मण्डलचारमाह—'ता जुगेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जुगेणं' एकेन युगेन 'सूरिए' सूर्यः 'कइ मंडलाइं चरइ' कति मण्डलानि चरति ? भगवानाह—'ता' तावत णव पण्णरसमंडलसयाइं' नव पञ्चदशाधिकानि मण्डलशतानि (९१५) चरइ' चरति । तथाहि—यदि द्वाभ्यामहोरात्राभ्यामेकं सूर्यमण्डलं लभ्यते तदा सकल युग भाविभिस्त्रिंशदधि काष्टादशशतैरहोरात्रै कति मण्डलानि लभ्यन्ते ? राशित्रयस्थापना—२।१।१८३०। अत्रान्त्येन राशिना मध्यराशिर्गुणितो जातस्तावानेव (१८३०), आद्येन राशिना द्विकरूपेण भागे हृते लभ्यन्ते पञ्चदशाधिकानि नवशतानि (९१५) ।

साम्प्रतं नक्षत्रस्य मण्डलचारमाह—'ता जुगेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जुगेणं' एकेन युगेन 'णक्खत्ते' नक्षत्रं 'कइमंडालाइं चरइ' कति मण्डलानि चरति ? भगवानाह 'ता' तावत् 'अट्ठारस पणतीसाइं दुभाग मंडलसयाइं' अष्टादशपञ्चत्रिंशदधिकानि द्विभागमण्डलशतानि-द्वितीयभागमण्डलशतानि—एकस्य मण्डलस्य द्वौ भागौ अर्द्धार्द्धरूपौ कर्त्तव्यौ तयोर्मध्यात् एकमर्द्धभागं त्यक्त्वा द्वितीयोर्द्धभागोऽत्र गृह्यते ततो द्विभागमण्डलशतानीति-अर्द्धमण्डलशतानि पञ्चत्रिंशदधिकानि अष्टादश शतानि अर्द्धमण्डलानां (१८३५) 'चरइ' चरति । तथाहि—नक्षत्र मष्टानवतिशताधिकेन एकेन शतसहस्रेण (१०९८००) प्रविभक्तस्य मण्डलस्य सम्बन्धिनः पञ्चत्रिंशदधिकाष्टादशशतसख्यकान् (१८३५) भागान् एकेन मुहूर्त्तेन गच्छति, युगे च मुहूर्त्ताः सर्वे संख्यया नवशताधिकानि चतुष्पञ्चाशत्सहस्राणि (५४९००) भवन्ति, तत एतैर्नवशताधिकैश्चतुष्पञ्चाशत्सहस्रैः (५४९००) पञ्च त्रिंशदधिकाष्टादशशतानि (१८३५) गुण्यन्ते, जायन्ते-दश कोटयः सप्तलक्षाः एकचत्वारिंशत्सहस्राणि पञ्चशतानि (१००७४१५००) इह चार्द्धमण्डलानि ज्ञातुमिष्टानि ततः अष्टानवतिशताधिकस्य एकस्य शतसहस्रस्य (१०९८००) अर्द्धे कृते यानि नवशताधिकानि चतुष्पञ्चाशत्सहस्राणि (५४९००) भवन्ति तैर्भागो ह्रियते, हृते च भागे लभ्यन्ते—पञ्चत्रिंशदधिकानि-अष्टादशशतानि (१८३५) यथोक्तानि अर्द्धमण्डलानीति ।

साम्प्रतं सकल प्राभृतमुपसंहरन्नाह—'इच्चेसा मुहुत्तगई' इत्यादि 'इच्चेसा' इत्येषा-इति-एवमुक्तेन प्रकारेण एषा—अनन्तरोदिता 'मुहुत्तगई' मुहूर्त्तगतिः प्रतिमुहूर्त्तं चन्द्र सूर्य नक्षत्राणां गतिपरिमाणं, तथा 'रिक्खाइमासराइंदिय जुगमंडलपविभत्ता' ऋक्षादिमास रात्रिन्दिवयुगमण्डलप्रविभक्ता, तत्र ऋक्षादिमासान्-नक्षत्र-चन्द्र सूर्याभिवर्द्धितमासान्, तथा रात्रिन्दिवानि, तथा युगं चाधिकृत्य मण्डलाना प्रविभक्तिः पृथक् पृथक्त्वेन मण्डलसंख्या प्ररूपणा रूपः प्रविभागः, तथा 'सिग्घगईवत्थू' शीघ्र गतिरूपं वस्तु च इत्येतत् पञ्चदशे प्राभृते 'आहियं' आख्यातम् 'तिबेमि' इति ब्रवीमि, यथा भगवन्मुखात् श्रुतं तथा ब्रवीमि कथयामि, इति सुधर्मस्वामिवचनम् । इदं च भगवद्वचनमतः पूर्वोक्तं सर्वं सम्यक्तया श्रद्धेयमिति भावः ॥ सू० ४ ॥

इति श्री जैनाचार्य—जैनधर्मदिवाकर पूज्य श्रीघासीलालव्रतिविरचितायां-
श्री चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्रस्य चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिकायां व्याख्यायां पञ्च-
दशं प्राभृतं समाप्तम्॥ १५ ॥

। श्री रस्तु ।

। षोडशं प्राभृतम् ।

व्याख्यात पञ्चदशं प्राभृतम्, तत्र चन्द्रादीनां गति परिमाणं नक्षत्रादिमासान् रात्रिन्दिवं युगं चाधिकृत्य मण्डलसंख्या शीघ्रगतिरूपं च वस्तु प्ररूपितम्, अथ षोडशं प्राभृतं व्याख्यायते, अत्रायमर्थाधिकारः–पूर्वं द्वारगाथायां 'किं ते दोसिणलक्खणं' किं ते ज्योत्स्ना लक्षणम्–इति कथितं तदेवात्र प्रतिपादयिष्यते ततस्तत्स्वरूपमेवेदं सूत्रमाह–'ता कहं ते दोसिणा लक्खणं' इत्यादि ।

मूलम्—ता कहं ते दोसिणलक्खणं आहियं ? तिवएज्जा, ता चंद लेस्साइ य दोसिणाइय, दोसिणाइय चंद लेस्साइय के अट्ठे किं लक्खणे ? ता एगट्ठे एगलक्खणे । ता सूरियलेस्साइय आयवेइ य आयवेइय सूरियलेस्साइय के अट्ठे किं लक्खणे ? ता एगट्ठे एगलक्खणे । ता अंधयारेइय छायाइय, छायाइय अंधयारइय के अट्ठे कि लक्खणे ? ता एगट्ठे एगलक्खणे ॥ सू० १ ॥

॥ सोलसमं पाहुडं समत्तं ॥ १६ ॥

छाया – तावत् कथं ते ज्योत्स्ना लक्षणम् आख्यातम् ? इति वदेत् ! तावत् चन्द्रलेश्या इति च ज्योत्स्ना इति च, ज्योत्स्ना इति च चन्द्रलेश्या इति च कोऽर्थः, किं लक्षणः ? तावत् एकार्थः एकलक्षणः । तावत् सूर्यलेश्या इति च आतप इति च, आतप इति च सूर्यलेश्या इति च कोऽर्थः किं लक्षणः ? तावत् एकार्थः एकलक्षणः । तावत् अन्धकार इति च छाया इति च छाया इति च अन्धकार इति कोऽर्थः किं लक्षणः ? एकार्थः एकलक्षणः ॥ सू० १ ॥

॥ षोडशं प्राभृतं समाप्तम् ॥१६॥

व्याख्या—'ता कहं ते इति, 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण हे भगवन् 'ते' त्वया 'दोसिणलक्खणं' ज्योत्स्ना लक्षणं ज्योत्स्नायाः चन्द्रप्रकाशरूपाया लक्षणं 'आहियं' आख्यातम् ज्योत्स्ना किंलक्षणा भवता प्रतिपादितेति भावः 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु । एवं सामान्यतः प्रश्नं कृत्वा विशेषतः पृच्छति–'ता चंदलेस्सा इ य' इत्यादि, 'ता' तावत् 'चंदलेस्सा इ य' चन्द्रलेश्या इति च एवं 'दोसिणा इ य' ज्योत्स्ना इति च, अनयो र्द्वयोः पदयोः तथा 'दोसिणा ई य चंदलेस्सा इ य । ज्योत्स्ना इति च चन्द्रलेश्या इति च, अनयोर्द्वयोश्च पदयोः, अत्राक्षराणामानुपूर्वी भेदो लोके दृष्टः, यथा 'आगमो देवः इति, एवं पदानामपि चानुपूर्वी भेददर्शनादर्थभेदो दृश्यते, यथा शिष्यस्य गुरुः, गुरोः शिष्य इति एवमत्रापि कदाचिदानुपूर्वी भेदतोऽर्थभेदो भवेत् ? इत्याशङ्कामाश्रित्य 'चन्द्रलेश्या इति ज्योत्स्ना' इत्युक्त्वा ज्योत्स्ना इति चन्द्रलेश्या ? इति प्रश्नः कृत इति । चन्द्रलेश्या ज्योत्स्ना चेति द्वौ पदौ आनुपूर्व्या अनानुपूर्व्या वा यदि व्यवस्थितौ भवेतां तदाऽनयो 'के अट्ठे'

कोऽर्थः किं परस्परं भिन्नोऽर्थः उताभिन्नः ?, स चार्थः 'किंलक्खणे' किं लक्षणः किं स्वरूपोऽस्ति ? लक्ष्यते-तदन्यव्यवच्छेदेन ज्ञायते येन तत् लक्षणम् असाधारणं स्वरूपं किं लक्षणं यस्य स किं लक्षणः कीदृग्लक्षणवान् किं स्वरूपोऽयमर्थः ? इति प्रश्नः । भगवानाह-'ता एगट्ठे एगलक्खणे' तावत् एकार्थः एकलक्षणः चन्द्रलेश्या इति ज्योत्स्ना इति पदद्वयमपि एकार्थकम् एकलक्षणम् अस्ति, अनयोर्द्वयोः पदयोः आनुपूर्व्याऽनानुपूर्व्या वा यथा कथञ्चिदपि व्यवस्थितयोरेक एव अभिन्न एव अर्थो भवेत् न तु भिन्नः, चन्द्रलेश्या इति कथयतु, अथवा ज्योत्स्ना इति वा कथयतु नात्र कोऽपि भेद इति भावः । अथ सूर्य विषयं प्रश्नमाह-'ता सूरियलेस्सा इ य' इत्यादि, 'ता' तावत् 'सूरियलेस्सा इ य आयवे इ य, आयवे इ य सूरियस्लेसा ई य' सूर्यलेश्या इति च आतप इति च आतप इति च सूर्यलेश्या इति च, अनयोरपि चन्द्रलेश्या ज्योत्स्ना पदयोरिव एकोऽर्थः एकं लक्षणं चेत्युत्तरम् । एवं छायाऽन्धकाररूपयोः पदयोरपि एकार्थत्वमेकलक्षणत्वमपि भावनीयमिति स्पष्टार्थत्वान्न व्याख्यायते इति ॥सू० ॥१॥

इति श्री जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्य श्री घासीलाल व्रतिविरचितायां
चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिकायां व्याख्यायां
षोडशं प्राभृतं समाप्तम् ॥१६॥

। अथ सप्तदशं प्राभृतम् ।

व्याख्यातं षोडशं प्राभृतम् तत्र चन्द्रलेश्याज्योत्स्नायाश्च सूर्यस्य आतपस्य च अन्धकारस्य छायायाश्च परस्परमभेदः प्रतिपादितः । अथ सप्तदशं प्राभृतं व्याख्यायते, अस्य चायमर्थाधिकारः पूर्वं द्वारगाथासु 'चवणोववाए' इति च्यवनोपपातौ वक्तव्यौ इति कथितं तद्विषयकं पञ्चविंशतिप्रतिपत्त्याद्यात्मकं सूत्रमाह-'ता कहं ते चवणोववाया' इत्यादि ।

मूलम्-ता कहं ते चवणोववाया आहिया । ति वएज्जा, तत्थ खलु इमाओ पणवीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ । तं जहा-तत्थेगे एवमाहंसु ता अणुसमयमेव चंदिम सूरिया अण्णे चयंति अण्णे उववज्जंति एगे एवमाहंसु १ एगे पुण एवमाहंसु ता अणुमुहुत्तमेव चंदिम सूरिया अण्णे चयंति अण्णे उववज्जंति एगे एवमाहंसु २। एवं जहेव हेट्ठा तहेव जाव-ता एगे पुण एवमाहंसु-ता अणुओसप्पिणी उस्सप्पिणीमेव चंदियसूरिया अण्णे चयंति अण्णे उववज्जंति एगे एव माहंसु २५। वयं पुण एवं वयामो-ता चंदिमसूरियाणं देवा महिड्ढिया महाजुइया महाबला महाजसा महा-

सोक्खा महाणुभावा वरवत्थधरा वरमल्लधरा वर गंधधरा वराभरणधरा अवोच्छित्ति नयट्ठयाए काले अण्णे चयंति अण्णे उववज्जंति । सू. १

सत्तरसमं पाहुडं समत्तं ॥१७॥

छाया—तावत् कथं ते च्यवनोपपातौ आख्यातौ ? इति वदेत् तत्र खलु इमाः पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा तत्र एके एवमाहुः तावत् अनुसमयमेवचन्द्र सूर्या अन्ये च्यवन्ते अन्ये उपपद्यन्ते, एके एवमाहुः १। एके पुनरेवमाहुः तावत् अनुमुहूर्त्तमेव चन्द्रसूर्या अन्ये च्यवन्ते अन्ये उपपद्यन्ते, एके एवमाहुः२। एवं यथैव अधस्तात् तथैव यावत् तावत् एके पुनरेवमाहु अन्ववसर्पिणीमेव चन्द्रसूर्या अन्ये च्यवन्ते अन्ये उपपद्यन्ते एके एवमाहुः २५। वयं पुनरेवं वदामः तावत् चन्द्र सूर्याः खलु देवा महर्द्धिका महाद्युतिका, महाबला महायशसः महासौख्या महानुभावा वरवस्त्रधरा वरमाल्यधरा वरगन्धधरा वराभरणधरा अव्युच्छित्तिनयार्थतया काले अन्ये उपपद्यन्ते ॥ सूत्र ॥१॥

सप्तदशं प्राभृतं समाप्तम् ॥१७॥

व्याख्या—'ता कहं ते चवणोववाया' इति 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण, हे भगवान् 'ते' त्वया चन्द्रसूर्याणां 'चवणोववाया' च्यवनोपपातौ 'आहिया' आख्यातौ 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु । भगवानाह—'तत्थ खलु' तत्र चन्द्रसूर्यच्यवनोपपात विषये खलु 'इमाओ' इमाः वक्ष्यमाणाः 'पणवीसं' पञ्चविंशति 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः परतीर्थिकमतरूपाः 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ताः कथिताः तं जहा' तद्यथा ता यथा—'तत्थ' तत्र पञ्चविंशतिप्रतिपत्तिवादिषु 'एगे' एके प्रथमप्रतिपत्तिवादिनः 'एवमाहंसु' एवमाहुः वक्ष्यमाणप्रकारेण कथयन्ति । तदेव दर्शयति—'ता अणुसमयमेव' इत्यादि 'ता' तावत् 'अणुसमयमेव' अनुसमयमेव प्रतिसमयं—समये-समये 'चंदिमसूरिया' चन्द्रसूर्याः बहुवचनमत्र चन्द्र सूर्याणां जम्बूद्वीपे द्वि द्वि भावेन चतुः संख्यकत्वात् 'अण्णे' अन्ये पूर्वोपपन्नाः 'चयंति' च्यवन्ते स्वस्व विमानात् च्युता भवन्ति पूर्वोत्पन्नानां च्यवन भवतीत्यर्थः तदनन्तर 'अण्णे' अन्ये अपूर्वा 'उववज्जंति' उपपद्यन्ते उत्पन्ना भवन्ति अन्येषामपूर्वाणां तत्रोपपातो भवतीत्यर्थः उपसंहारमाह—'एगे' इत्यादि, 'एगे' एके पूर्वोक्ता प्रथमप्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' एवं पूर्वोक्त प्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति । एषा प्रथमा प्रतिपत्ति ।१। द्वितीयामाह—'एगे पुण' इत्यादि, 'एगे पुण' एके केचन द्वितीयप्रतिपत्तिवादिन. पुनः 'एवमाहंसु' एवमाहुः वक्ष्यमाणप्रकारेण कथयन्ति—'ता' तावत 'अणुमुहुत्तमेव' अनुमुहूर्त्तमेव प्रतिमुहूर्त्त मुहूर्त्ते मुहूर्त्ते-नत्वनुसमयम् 'चंदिमसूरिया' चन्द्रसूर्याः 'अण्णे चयंति 'अण्णे उववज्जंति' अन्ये पूर्वोत्पन्ना च्यवन्ते अन्येऽपूर्वा उपपद्यन्ते, उपसंहरति—'एगे एवमाहंसु एके पूर्वोक्ताः एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः कथयन्ति । इति द्वितीया प्रतिपत्ति. ।२। अथ तृतीयप्रतिपत्तित आरभ्य चतुर्विंशतिप्रतिपत्तिपर्यन्त पाठ प्राभृतातिदर्शनाह—'एवं जहेव' इत्यादि, 'एवं' एवम्

अनयैव रीत्या उक्तालापक रूपया 'जहेव हेट्ठा' यथैव अधस्तात्-षष्टे प्राभृते ओज संस्थिति प्रकरणे चिन्त्यमाणे पञ्चविंशति प्रतिपत्तयः अनुसमयमित्यारभ्य ,अनुसागरोपमशतसहस्रम्' इति पर्यन्तं चतुर्विंशति प्रतिपत्तयस्तत्र प्रोक्ताः 'तहेव' तथैव तेनैव रूपेण अत्र च्यवनोपपातविषयेऽपि वक्तव्या । कियत्पर्यन्तमित्याह-'जाव' यावत् पञ्चविंशतितमा प्रतिपत्तिरायाति तावत् वक्तव्याः । पञ्चविंशतितमा प्रतिपत्ति सूत्रकारः स्वयमेवाह-'ता' एगे पुण' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एगे पुण' एके पञ्चविंशतितम प्रतिपत्तिवादिनः पुनः 'एवं' एवम् वक्ष्यमाण प्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति-'ता' तावत् 'अणुओसप्पिणी उस्सप्पिणीमेव' अन्ववसर्पिण्युत्सर्पिणी 'चंदिमसूरिया चन्द्रसूर्याः 'अण्णे' चयंति अन्ये च्यवन्ते 'अण्णे उववज्जंति' अन्ये उत्पद्यन्ते उपसंहारमाह-'एगे' एवम् पूर्वोक्ता अन्तिमपञ्चविंशतितमप्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' एवम् -सर्वप्रदर्शितप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्तीति पञ्चविंशतितमा प्रतिपत्तिः ॥२५॥ अत्र प्रथमा द्वितीया पञ्चविंशतितमा च प्रतिपत्तिः सूत्रे एव प्रदर्शिता मध्यमा तृतीया प्रतिपत्तित आरभ्य चतुर्विंशति प्रतिपत्तिपर्यन्तं द्वाविंशतिः २२ प्रतिपत्तयो यावच्छब्द ग्राह्या षष्ठ प्राभृतस्थितौजः संस्थिति प्रकरणगताश्च संक्षेपेण प्रदर्श्यन्ते, तथाहि-तृतीया प्रतिपत्तिवादिन 'अणुराइंदियमेव' इति ३। चतुर्थाः 'अणुपक्खमेव' इति ४। पञ्चमाः 'अणुमासमेव' ५। 'षष्ठा 'अणुउउमेव' इति' सप्तमा 'अणुअयणमेव' इति ७। अष्टमाः 'अणुसंवच्छरमेव' इति ८। नवमाः 'अणुजुगमेव' इति ९। दशमाः 'अणुवाससयमेव' इति १०। एकादशाः 'अणुवाससहस्समेव' इति ११। द्वादशाः 'अणुवाससयसहस्समेव' इति १२। त्रयोदशा' 'अणुपुव्वमेव' इति १३ । चतुर्दशाः 'अणुपुव्वसयमेव' इति १४ । पञ्चदशाः 'अणुपुव्वसहस्समेव' इति १५ । षोडशाः 'अणुपुव्वसयसहस्समेव' इति १६ । सप्तदशाः 'अणुपल्लिओवममेव' इति १७ । अष्टादशाः 'अणुपलिओवमसयमेव' इति १८ एकोनविंशाः 'अणुपलिओवमसहस्समेव' इति १९ । विंशतितमाः 'अणुपलिओवमसयसहस्समेव' इति २०। एकविंशतितमाः 'अणुसागरोवममेव' इति २१ । द्वाविंशतितमाः 'अणुसागरोवमसयमेव' इति २२ । त्रयोविंशतितमाः 'अणुसागरोवमसहस्समेव' इति २३ । चतुर्विंशति तमाः 'अणुसागरोवम सयसहस्समेवय' इति २४ एतास्तृतीयप्रतिपत्तित आरभ्य चतुर्विंशतितम प्रतिपत्तिपर्यन्ता द्वाविंशति प्रतिपत्तयो यावच्छब्दग्राह्या अत्रावसेयाः । आसां सर्वासामालापकप्रकारः स्वयमूहनीयइति । इत्येवं प्रोक्ता अन्यतीर्थिकमतरूपाः पञ्चविंशतिः प्रतिपत्तयः, सर्वा अपि मिथ्या रूपा एव ततो भगवान् स्वमतं प्रदर्शयति-'वयं पुण' इत्यादि, 'वयं पुण' वयं पुनः वयं तु 'एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयामो' वदाम कथयामः 'ता' तावत् 'चंदिमसूरिया णं देवा' चन्द्रः सूर्या खलु देवाः महिड्ढिया महर्द्धिका विमानपरिवारादि संपन्नाः, 'महाजुइया'

महाद्युतिकाः शरीराभरणादि कान्तिमन्तः, 'महाबला' महाबलाः बलं शरीरसामर्थ्यं तद्वन्तः, 'महाजसा' महायशसः जगद्विस्तृतश्लाघा सम्पन्नाः, अत एव 'महासोक्खा' महासौख्याः भवनपतिव्यन्तरसुखेभ्यो विपुलसौख्यशालिनः 'महानुभावा' महानुभावाः—महान् अनुभाव प्रभावो वैक्रियकरणादि विषयकोऽचिन्त्य शक्ति विशेषो येषां ते तथा वैक्रियकरणादिविशिष्ट शक्ति सम्पन्नाः, 'वरवत्थधरा' वरवस्त्रधराः दिव्यवस्त्रधारिणः 'वरमल्लधरा' वरमाल्यधराः—दिव्य पुष्पमाला धारिणः, 'वरगंधधरा' वर गन्धधराः—घ्राण सुखद दिव्यगन्धधारिणः, 'वराभरणधरा' वराभरणधरा—श्रेष्ठदिव्य कटक कुण्डल केयूराद्याभूषणधारिणः, एतादृशास्ते चन्द्रसूर्याः 'अव्वोच्छित्तिनयट्ठयाए' अव्युच्छित्तिनयार्थतया द्रव्यार्थिकनयमतेन 'काले' काले वक्ष्यमाण स्व'वायुः क्षये 'अण्णे' अन्ये पूर्वोत्पन्नाः पूर्वं ये तत्रावस्थितास्ते 'चयंति' च्यवन्ते स्वस्व विमानाच्च्युता भवन्ति, तथा 'अण्णे' अन्ये तदितरे तथा जगत्स्वाभाव्यात् जघन्येन एक समयम् उत्कृष्टेन षण्मासावधि विरहकालसद्भावः इति षण्मासादारतो नियमात् 'उववज्जंति' उपपद्यन्ते, इत्यस्माकं केवलालोकेन दृष्टिगोचरीकृतं मतमिति । सू० १॥

॥ इति श्री जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्य श्री घासीलाल व्रति विरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रज्ञप्ति प्रकाशिकाख्यायां व्याख्यायां सप्तदशं प्राभृतं समाप्तम् ॥१७॥

॥ अथाष्टादशं प्राभृतम् ॥

गतं सप्तदशं प्राभृतम्, तत्र चन्द्रसूर्याणां च्यवनोपपातौ प्रदर्शितौ। अथाष्टादशं प्राभृतं व्याख्यायते, अत्रायमर्थाधिकारः-पूर्वद्वारगाथाया 'उच्चत्तं' इति, भूमितऊर्ध्वमुच्चत्व प्रमाणं वक्तव्यमिति तद्विषयकं सूत्रमाह-'ता कहंते उच्चत्ते' इत्यादि।

मूलम् - ता कहं ते उच्चत्ते आहिए? तिवएज्जा तत्थ खलु इमाओ पणवीसं पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-तत्थ एगे एवमाहंसु ता एगं जोयणसहस्सं सूरिए उड्ढं उच्चत्तेणं, दिवड्ढं चंदे एगे एवमाहंसु १। एगे पुण एवमाहंसु ता दो जोयणसहस्साइं सूरिए, उड्ढं उच्चत्तेणं, अड्ढाइज्जाइं चंदे, एगे एवमाहंसु २। एवं एएणं अभिलावेणं णेयव्वं तिन्नि जोयणसहस्साइं सूरिए अद्धट्ठाइं चंदे ३, चत्तारि जोयणसहस्साइं सूरिए, अद्धपचमाइं चंदे ४, पंच जोयणसहस्साइं सूरिए, अद्धछट्ठाइं चंदे ५, छ जोयणसहस्साइं सूरिए अद्धसत्तमाइं चंदे ६, सत्तजोयण सहस्साइं सूरिए अद्धट्ठमाइं चंदे ७, अट्ठजोयण सहस्साइं सूरिए अद्धनवमाइं चंदे ८, नव जोयणसहस्साइं सूरिए, अद्धदसमाइं चंदे ९ दस जोयण सहस्साइं सूरिए अद्धएक्कारस, चंदे १०। एक्कारस जोयण सहस्साइं सूरिए अद्ध बारस० चंदे ११। बारस० सूरिए अद्ध तेरस० चंदे १२। तेरस० सूरिए अद्ध चोद्दस० चंदे १३। चोद्दस० सूरे अद्ध पण्णरस० चंदे १४। पण्णरस० सूरे अद्ध सोलस० चंदे १५। सोलस० सूरिए अद्ध सत्तरस० चंदे १६। सत्तरस० सूरिए अद्ध अट्ठारस० चंदे १७। अट्ठारस० सूरिए अद्ध एगूणवीसं० चंदे १९। वीसं सूरिए अद्ध एक्कवीसं० चंदे २०। एक्कावीसं० सूरिए अद्ध वावीसं चंदे २१। वावीसं० सूरिए अद्धतेवीसं० चंदे २२। तेवीसं सूरिए अद्ध चउवीसं० चंदे २३। चउवीसं० सूरिए अद्धपणवीसं० चंदे, एगे एव माहंसु २४। एगे एव माहंसु पणवीसं जोयणसहस्साइं सूरिए उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्ध छव्वीसं० चदे, एगे एवमाहंसु २५। वयं पुण एवं वयामो ता इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहु समरमणिज्जाओ भूमिभागाओ सत्तणउयाइं उड्ढं अबाहाए हेट्ठिल्ले तारा रूवे चारं चरइ, अट्ठयोजणसयाइं उड्ढं अबाहाए सूरियविमाणे चारं चरइ, अट्ठअसीयाइं जोएणसयाइं उड्ढं अबाहाए उवरिल्ले तारा रूवे चारं चरइ,। हेट्ठिल्लाओ तारा रूवाओ दस जोयणाइं उड्ढं अबाहाए सूरियविमाणे चारं चरइ, नउइं जोयणाइं उड्ढं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरइ, दसोत्तरं जोयणसयं उड्ढं अबाहाए उवरिल्ले तारा रूवे चारं चरइ। ता सूरियविमाणाओ असीइं जोयणाइं उड्ढं अबाहाए चंदविमाणे चारं चरइ। जोयणसयं उड्ढं अबाहाए उवरिल्ले तारा रूवे चारं चरइ

ता चंदविमाणाओ णं वीसं जोयणाइं उड्ढं अबाहाए उवरिल्ले तारा रूवे चारं चरइ, एवामेव सपुव्वावरेणं दसुत्तर जोयणसय बाहल्ले तिरियमसंखेज्जे जोइसविसए जोइसं चारं चरइ आहिए तिवएज्जा । सू०॥१॥

छाया—तावत् कथं ते उच्चत्वं आख्यातम् ? इति वदेत्, तत्र खलु इमाः पञ्च विंशतिः प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ताः तद्यथा-तत्र एके एवमाहुः तावत् एकं योजनसहस्रं सूर्य ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, द्व्यर्द्धं चन्द्रः, एके एवमाहुः १। एके पुनरेवमाहुः-तावत् द्वे योजन सहस्रे सूर्य ऊर्ध्वमुच्चत्वेन, अर्द्ध तृतीयानि० चन्द्रः, एके एवमाहुः २। एवम् एतेन अभिलापेन ज्ञातव्यम् त्रीणि योजन सहस्राणि सूर्यः, सार्द्धचतुर्थानि चन्द्रः ३। चत्वारि योजनसहस्राणि सूर्यः; अर्द्धपञ्चमानि चन्द्रः ४। पञ्च योजनसहस्राणि सूर्यः अर्द्ध षष्ठानि चन्द्रः ५। षट् योजन सहस्राणि सूर्यः अर्द्धषष्ठानि चन्द्रः ५। षट् योजन सहस्राणि सूर्यः अर्द्ध सप्तमानि चन्द्रः ६। सप्त योजन सहस्राणि सूर्यः, अर्द्धाष्टमानि चन्द्रः ७। अष्ट योजनसहस्राणि सूर्यः, अर्द्ध नवमानि चन्द्रः ८। नव योजनसहस्राणि सूर्यः, अर्द्ध दशमानि चन्द्रः ९। दश योजन सहस्राणि सूर्यः, अर्द्धैकादशानि चन्द्रः १०। एकादश योजन सहस्राणि सूर्यः, अर्द्ध द्वादशानि चन्द्र. ११। द्वादशः सूर्यः, अर्द्ध त्रयोदश चन्द्रः १२। त्रयोदश० सूर्यः, अर्द्ध चतुर्दश० चन्द्रः १३। चतुर्दश सूर्यः अर्द्ध पञ्चदश० चन्द्रः १४। पञ्चदश० सूर्यः, अर्द्धषोडश० चन्द्रः १५। षोडश० सूर्यः, अर्द्ध सप्तदश० चन्द्रः १६। सप्तदश० सूर्यः अर्द्धाष्टादश० चन्द्रः १७। अष्टादश० सूर्यः, अर्द्धैकोनविंश० चन्द्रः १८। एकोनविंशति० सूर्यः, अर्द्धविंश० १९। विंशति० सूर्यः अर्द्धैकविंश० चन्द्रः २०। एकविंशति० सूर्यः, अर्द्ध द्वाविंश० चन्द्रः २१। द्वाविंशति० सूर्यः, अर्द्ध त्रयोविंश० चन्द्रः २२। त्रयोविंशति० सूर्यः अर्द्ध चतुर्विंश० चन्द्रः २३। चतुर्विंशति० सूर्यः, अर्द्धपञ्चविंश० चन्द्रः एके एवमाहुः २४। एके पुनरेवमाहुः-पञ्चविंशतियोजन सहस्राणि सूर्य ऊर्ध्वं मुच्चत्वेन, अर्द्धषड्विंशति० चन्द्र. एके एवमाहुः २५। वयं पुनरेवं वदामः-तावत् अस्या रत्नप्रभायाः पृथिव्याः बहु समरमणीयाद् भूमिभागात् सप्तनवतानि योजन शतानि ऊर्ध्वम् अबाधया अधस्तनं तारा रूपं चारं चरति, अष्ट योजन शतानि ऊर्ध्वमबाधया सूर्य विमानं चारं चरति, अष्ट अशीतानि योजन शतानि ऊर्ध्वमबाधया चन्द्र विमानं चारं चरति, नव योजन शतानि ऊर्ध्वमबाधया उपरितनं तारारूपं चारं चरति, अधस्तनात् तारारूपात् दश योजनानि ऊर्ध्वमबाधया सूर्यविमानं चारं चरति, नवति योजनानि ऊर्ध्वमबाधया चन्द्रविमानं चारं चरति, दशोत्तरं योजनशतं ऊर्ध्वमबाधया उपरितनं तारा रूपं चारं चरति, । तावत् सूर्य विमानात् अशीति योजनानि ऊर्ध्वमबाधया चन्द्रविमानं चारं चरति. योजनशतम् ऊर्ध्वमबाधया उपरितनं, तारारूपं चारं चरति । तावत् चन्द्रविमानात् खलु विंशति योजनानि ऊर्ध्वमबाधया उपरितनं तारारूपं चारं चरति। एवमेव सपूर्वापरेण दशोत्तरयोजनशतबाहल्ये तिर्यग्असंख्येये ज्योतिर्विषये ज्योतिषं चारं चरति, आख्यातमिति वदेत् । सू० ॥१॥

व्याख्या—'ता कहं ते' इति 'ता' तावत् 'कह' कथं केन प्रकारेण हे भगवन् ! ते त्वया 'उच्चत्ते' उच्चत्व भूमितऊर्ध्वं चन्द्रादीना मुच्चत्वं 'आहिये' आख्यातम् ? 'तिवएज्जा' इति

वदेत् वदतु कथयतु । एवं गौतमेन पृष्टे भगवान्–एतद्विषये परतीर्थिकानां प्रतिपत्तयो यावत्यः सन्ति ताः प्रदर्शयति–'तत्थ' इत्यादि, 'तत्थ' तत्र खलु चन्द्रादीनामुच्चत्वविषये 'इमाओ' इमाः वक्ष्यमाणाः 'पणवीसं' पञ्चविंशतिः 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्तयः परतीर्थिकमत रूपाः 'पण्णत्ता' प्रज्ञप्ताः कथिता 'तं जहा' तद्यथा–ता यथा–'तत्थ' इत्यादि 'तत्थ' तत्र पञ्च विंशति प्रतिपत्तिवादिषु मध्ये 'एगे' एके प्रथमाः प्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' एवम् वक्ष्य माणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति 'ता' तावत् 'एगं जोयणसहस्सं' एकं योजन सहस्रम् 'सूरिए' सूर्य 'उड्ढंउच्चत्तेणं' ऊर्ध्वम्–भूमितः उपरि उच्चत्वेन उच्चत्वमाश्रित्य चारं चरतीति योगः, तथा 'दिवड्ढं' द्व्यर्द्धं सार्धैकं योजनसहस्रम् 'चंदे' चन्द्रश्चारं चरति, उपसंहारेमाह–'एगे' एके प्रथमाः 'एवं' एवं पूर्वोक्त प्रकारेण आहंसु' आहुः कथयन्तीति प्रथमा प्रतिपत्तिः १ । 'एगे पुण' एके द्वितीयाः पुनः 'एवमाहंसु' एवं वक्ष्यमाण प्रकारेण आहुः कथयन्ति 'दो जोयणसहस्साइं सूरिए' द्वे योजनसहस्रे 'उड्ढं' भूमेरूर्ध्वं 'उच्चत्तेणं' उच्चत्वमाश्रित्य 'सूरिए' सूर्यश्चारं चरति, 'अड्ढाइज्जाइं' अर्द्धतृतीयानि सार्द्धे द्वे योजन सहस्रे इत्यर्थः 'चंदे' चन्द्रश्चारं चरति । 'एगे' एके द्वितीयाः 'एवमाहंसु' एवं पूर्वोक्त प्रकारेण आहुः कथयन्तीति द्वितीया प्रतिपत्तिः २ । 'एवं' पूर्वोक्तरूपेण 'एए णं' एतेन पूर्व-प्रदर्शितेन 'अभिलावेणं' अभिलापेन आलापकप्रकारेण 'णेयव्वं' ज्ञातव्यम् इतोऽग्रेऽपि सर्वासु प्रतिपत्तिषु एतत्सदृशा एव आलापकाः कर्त्तव्याः केवल मुच्चत्वपरिमाणं पृथक् सूत्रोक्तानु सारेण विज्ञातव्यम् । तदेव दर्शयति–'तिन्नि' इत्यादि 'तिन्नि जोयण सहस्साइं सूरिए' त्रीणि योजनसहस्राणि सूर्यः, 'अद्धट्ठाइं चंदे' अर्द्ध चतुर्थानि अर्द्धेन चतुर्थेन सहितानि सार्द्धानि त्रीणीत्यर्थः योजन सहस्राणि चन्द्रः ।३। 'चत्तारि जोयणसहस्साइं सूरिए' चत्वारि योजन सहस्राणि सूर्यः 'अद्धपञ्चमाइं चंदे' अर्द्ध पञ्चमानि पञ्चममर्द्धं यत्र तानि सार्द्धानि चत्वारि योजनसहस्राणि चन्द्रः ४ । 'पंचजोयणसहस्साइं सूरिए' पञ्च योजन सहस्राणि सूर्यः; 'अद्धछट्ठाइं चंदे' अर्द्ध षष्ठानि अर्द्धं षष्ठं यत्र तानि सार्द्धानि पञ्च योजन सहस्राणि चन्द्रः ५ । 'छ जोयणसहस्साइं सूरिए' षड् योजनसहस्राणि सूर्यः, 'अद्धसत्तमाइं चंदे' अर्द्ध सप्तमानि अर्द्धं सप्तमं यत्र तानि सार्द्धानि षड् योजनसहस्राणि चन्द्रः ६ । 'सत्तजोयणसहस्साइं सूरिए' सप्त योजनसहस्राणि सूर्यः, 'अद्धट्ठमाइं' अर्द्धा-ष्टमानि, अर्द्धं अष्टमं यत्र तानि सार्द्धाणि 'चंदे' चन्द्रः ।७। 'अट्ठजोयणसहस्साइं सूरिए' अष्ट योजनसहस्राणि सूर्यः, 'अद्धनवमाइं' अर्द्धनवमानि अर्द्धं नवमं यत्र तानि सार्द्धाणि अष्ट योजन सहस्राणि 'चदे' चन्द्रः ८ । 'नवजोयणसहस्साइं सूरिए' नवयोजनसहस्राणि सूर्यः 'अद्धदसमाइं' अर्द्धदशमानि अर्द्धं दशमं यत्र तानि नवयोजसहस्राणि 'चंदे' चन्द्रः ९ ।

'दसजोयणसहस्साइं सूरिए' दश योजनसहस्राणि सूर्यः, 'अद्धएक्कारसे०' अर्द्धैकादश० इति अर्द्धमेकादशं यत्र तानि सार्द्धानि दश योजन सहस्राणि 'चंदे' चन्द्रः १० । 'एक्कारस जोयण सहस्साइं सूरिए' एकादश योजनसहस्राणि सूर्यः, 'अद्धवारस०' अर्द्ध द्वादशइति अर्द्ध द्वादशं यत्र तानि सार्द्धानि एकादश योजनसहस्राणि 'चंदे' चन्द्रः, ११ । एवम् 'वारस सूरिए' द्वादश–द्वादश योजन सहस्राणि सूर्यः, अत्र योजन सहस्राणीति पदं योजनीयम् एवमग्रेऽपि सर्वत्र योज्यम् 'अद्ध तेरसे' अर्द्ध त्रयोदशानि अर्द्ध त्रयोदशं यत्र तानि सार्द्धानि द्वादश योजन सहस्राणि 'चंदे' चन्द्रः १२ । 'तेरस सूरिए' त्रयोदश योजन सहस्राणि सूर्यः, 'अद्ध चोद्दसे० अर्द्ध चतुर्दशइति अर्द्ध चतुर्दशं यत्र तानि सार्द्धानि त्रयोदशयोजन सहस्राणि 'चंदे' चन्द्रः १३ । 'चोद्दस० सूरिय' चतुर्दश योजन सहस्राणि सूर्यः, 'अद्ध पण्णरस०' अर्द्ध पञ्चदश०इति अर्द्ध पञ्चदशं यत्र तानि सार्द्धानि चतुर्दश योजन सहस्राणि 'चंदे' चन्द्रः १४ । 'पण्णरस० सूरे' पञ्चदश योजन सहस्राणि सूर्यः 'अद्धसोलस० चंदे' अर्द्ध षोडश० इति अर्द्ध षोडशं यत्र तानि सार्द्धानि पञ्चदश योजन सहस्राणि चन्द्र १५। 'सोलस० सूरिए' षोडश योजन सहस्राणि सूर्यः,— 'अद्धसत्तरसचंदे' अर्द्धसप्तदशइति अर्द्ध सप्तदशं यत्र तानि सार्द्धानि षोडशयोजनसहस्राणि-चन्द्र· १६। 'सत्तरस० सूरिए'–सप्तदश योजनसहस्राणि सूर्यः, 'अद्धअट्ठारस० चंदे' अर्द्धाष्टादश० इति अर्द्धमष्टादशं यत्र तानि सार्द्धानि सप्तदश योजनसहस्राणि चन्द्रः १७। 'अट्ठारस० सूरिए' अष्टादश योजनसहस्राणि सूर्यः, 'अद्धएगूणवीस चंदे' अर्द्धैकोनविंशइति अर्द्धम् एकोनविंशं यत्र तानि सार्द्धानि अष्टादश योजनसहस्राणि चन्द्रः १८। एगूणवीस० सूरिए' एकोनविंशति योजनसहस्राणि सूर्यः, 'अद्धवीसं० चंदे' अर्द्धविंशानि इति अर्द्ध विंशं यत्र तानि सार्द्धानि एकोनविंशति योजनसहस्राणि चन्द्रः १९। 'वीसं० सूरिए' विंशति योजनसहस्राणि सूर्यः, 'अद्धएक्कवीसं० चंदे' अर्द्धैकविंशानि अर्द्धम् एकविंशं यत्र तानि सार्द्धानि विंशति योजनसहस्राणि चन्द्रः २०। 'एक्कवीसं० सूरिए' एकविंशति योजन सहस्राणिसूर्यः 'अद्धवावीसं चंदे' अर्द्ध द्वाविंशानि अर्द्ध द्वाविंशं यत्र तानि सार्द्धानि एकविंशतियोजनसहस्राणि चन्द्रः २१। 'वावीसं० सूरिए' द्वाविंशति योजनसहस्राणि सूर्य·, 'अद्धतेवीसं० चंदे' अर्द्धत्रयोविंशानि, अर्द्ध त्रयोविंशं यत्र तानि सार्द्धानि द्वाविंशति–योजनसहस्राणि चन्द्रः २२। 'तेवीसं० सूरिए' त्रयोविंशानि योजनसहस्राणि सूर्यः 'अद्धचउवीसं चंदे' अर्द्धचतुर्विंशानि अर्द्धचतुर्विंशं यत्र तानि सार्द्धानि त्रयोविंशानि योजनसहस्राणि चन्द्रः २३। 'चउवीसं० सूरिए' चतुर्विंशति योजनसहस्राणि सूर्यः, 'अद्धपणवीसं चंदे' अर्द्धपञ्चविंशानि अर्द्ध पञ्चविंशं यत्र तानि सार्द्धानि चतुर्विंशति योजनसहस्राणि चन्द्र, उपसंहारमाह–एगे एवमाहंसु' एके चतुर्विंशतितमप्रतिपत्तिवादिनः,

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः ।२४। अथ पञ्चविंशतितमां प्रतिपत्तिं सूत्रकार एव साक्षादाह—**'एगे पुण'** इत्यादि—एके पञ्चविंशतितमप्रतिपत्तिवादिन. पुनः **'एवमाहंसु'** एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण आहुः—कथयन्ति—**'पणवीसं जोयणसहस्साइं'** पञ्चविंशति योजनसहस्राणि **'सूरिए** सूर्यः **'उड्ढं'** ऊर्ध्वं भूमिभागात् **'उच्चत्तेणं'** उच्चत्वेन उच्चत्वमाश्रित्य चारं चरति, **'अद्धछव्वीसं चंदे'** अर्द्धषड्विंशानि अर्द्धं षड्विंशं यत्र तानि सार्द्धानि पञ्चविंशति योजनसहस्राणि ऊर्ध्वमुच्चत्वेन चन्द्रश्चारं चरति । उपसंहारमाह—**'एगे'** एके पञ्चविंशतितमप्रतिपत्तिवादिनः **'एवं'** एवम्—पूर्वोक्त-प्रकारेण **'आहंसु'** आहु कथयन्ति २५। तदेवमुक्ताः पञ्चविंशतिः परतीर्थिकप्रतिपत्तयः । साम्प्रतं भगवान् स्वमतं प्रदर्शयति—**'वयं पुण'** इत्यादि, वयं पुनः वयं तु **'एवं'** एवं वक्ष्यमाण प्रकारेण **'वयामो'** वदामः कथयामः । तदेवाह—**'ता इमीसे'** इत्यादि, **'ता'** तावत् **'इमीसे'** अस्याः प्रसिद्धायाः **'रयणप्पभाए पुढवीए'** रत्नप्रभायाः पृथिव्याः **'वहुसमरमणिज्जाओ भूमिभागाओ'** वहुसमरमणीयात्—समतलरूपात् भूमिभागात् **'सत्तणउयाइं जोयणसयाइं'** सप्तनवतानि योजनशतानि नवत्यधिकानि सप्तशतानि (७९०) योजनानाम् **'उड्ढं'** उर्ध्वं भूमि भागात् **'अवाहाए** अवाधया अन्तरेण व्यवधानेन **'हेट्ठिल्ले ताराख्वे'** अधस्तनं तारा रूपं ज्योतिश्चक्रं **'चारं चरइ'** चारं चरति मण्डलगत्या परिभ्रमणं करोति । पूर्वोक्त भूमिभागात् नव-त्यधिकसप्तशत (९७०) योजनानि ऊर्ध्वं गत्वाऽत्रत एव ज्योतिश्चक्रं प्रारभते इति बोध्यम् । तथा—**'अट्ठजोयणसए'** अष्टौयोजनशतानि (८००) भूमिभागात् ऊर्ध्वमुत्प्लुत्य अधस्तनतारा-रूप ज्योतिश्चक्राद् दशयोजनानि गत्वेत्यर्थः **'अवाहाए'** अवाधया व्यवधानेन **'सूरियविमाणे चारं चरइ'** सूर्यविमानं चारं चरति । तथा अस्या एव रत्नप्रभापृथिव्या वहुसमरमणीयभूमि-भागात् **'अट्ठ असीयाइं जोयसयाइं'** अष्ट अशीतानि योजनशतानि अशीत्यधिकानि अष्टौ योजनशतानि (८८०) **'उड्ढ'** ऊर्ध्वं सूर्यविमानात् अशीतियोजनानि गत्वेत्यर्थः **'अवाहाए'** अवाधया अन्तरेण **'चंदविमाणे चारं चरइ'** चन्द्रविमानं चारं चरति । तथा **'णवजोयण-सयाइं'** नव योजनशतानि परिपूर्णानि नवशतयोजनानि **'उड्ढं'** ऊर्ध्वमुत्प्लुत्य चन्द्रविमानात् विंशतियोजनानि गत्वेत्यर्थ. **'अवाहाए'** अवाधया **'उवरिल्ले ताराख्वे'** उपरितनं ताराख्पं ज्योतिश्चक्रं चारं चरति । तत्र—चन्द्रविमानादूर्ध्वं चत्वारि योजनानि गत्वाऽत्र नक्षत्र विमानानि सन्ति ४, अत्रतोऽग्रे चत्वारि योजनानि गत्वाऽत्र बुधग्रहो वर्त्तते, ८ तत्रत ऊर्ध्वं त्रीणि योजनानि गत्वाऽत्र शुक्रग्रहो वर्त्तते ११, तत्रतस्त्रीणि योजनानि ऊर्ध्वं गत्वाऽत्र बृहस्पतिग्रहो वर्त्तते १४, तत्रतस्त्रीणि योजनानि ऊर्ध्वं गत्वाऽत्र मङ्गल ग्रहो वर्त्तते १७, तत्रतस्त्रीणि योजनानि गत्वाऽत्र शनैश्चर ग्रहो वर्त्तते २०, इत्येवं चन्द्रविमानाद् विंशति योजनपरिमिते क्षेत्रे बाहल्येन उपरितनं ताराख्पं

ज्योतिश्चक्रं चारं चरति, इत्येवं भूमिभागान्नवशतयोजनपर्यन्तक्षेत्रे परिपूर्णं ज्योतिश्चक्रं परिभ्रमति । ततः सर्वं ज्योतिश्चक्रं दशोत्तर शतयोजनप्रमाणकं बाहल्येन जातम् नवत्यधिकसप्तशत योजनत आरभ्य नवशतयोजनपर्यन्त दशोत्तरशतयोजनभावात् । एतच्चाग्रे सूत्रे एव प्रदर्शयिष्यते । पुनश्च–'हेट्ठिल्लाओ तारारूवाओ' अधस्तनात् तारारूपात् ज्योतिश्चक्रात् 'उड्ढं' ऊर्ध्वं 'अबाहाए' अबाधया अन्तरेण 'दस जोयणाइं' दशयोजनान्येव उपरिगत्वा अत्रान्तरे 'सूरियविमाणं चारं चरइ' सूर्यविमानं चारं चरति । तस्मादेवाधनस्तनात् तारारूपात् ज्योतिश्चक्रात् 'उड्ढं अबाहाए' ऊर्ध्वमबाधया 'णउइं जोयणाइं' नवतिं योजनान्येव गत्वा 'चंदविमाणे चारं चरइ' चन्द्रविमानं चारं चरति । एतस्मादेवाधस्तनात्तारारूपात् 'दसोत्तरं जोयणसयं' दशोत्तरं योजनशतं (११०) 'उड्ढं' ऊर्ध्वम् 'अबाहाए' अबाधया अन्तरं कृत्वा 'उवरिल्ले तारा रूवे' उपरितनं तारा रूपं ज्योतिश्चक्रं 'चारं चरइ' चारं चरति ।

अथ सूर्यविमानात् प्राह–'ता' तावत् 'सूरियविमाणाओ' सूर्यविमानात् 'असीइ जोयणाइं' अशीति योजनानि (८०) 'उड्ढं अबाहाए' ऊर्ध्वमबाधया 'चंदविमाणे चारं चरइ' चन्द्रविमानं चारं चरति । 'जोयणसयं' तस्मादेव सूर्यविमानात् योजनशतम् एकशतसंख्यकयोजनानि गत्वा 'उड्ढं अबाहाए' ऊर्ध्वमबाधया 'उवरिल्ले तारारूवे' उपरितनं तारा रूपं ज्योतिश्चक्रं 'चारं चरइ' चारं चरति । अथ चन्द्रविमानात् प्राह–ता चंदविमाणाओ' इत्यादि, 'ता' तावत् चंदविमाणाओ णं' चन्द्रविमानात् खलु 'वीसं जोयणाइं' विंशतिं योजनानि 'उड्ढं अबाहाए' ऊर्ध्वमबाधया 'उवरिल्ले तारारूवे' उपरितनं सर्वोपरितनं तारारूपं ज्योतिश्चक्रं 'चारं चरइ' चारं चरति । अथोपसंहरति–'एवामेव' इत्यादि, 'एवामेव' एवमेव उक्तेनैव प्रकारेण 'सपुव्वावरेणं' सपूर्वापरेण पूर्वेण अपरेण च सह पूर्वापरमीलनेनेत्यर्थः 'दसुत्तरजोयणसयबाहल्ले' दशोत्तर योजनशत बाहल्ये दशाधिक शत संख्यकयोजनपरिमिते बाहल्ये विस्तारे, तथाहि–सर्वाधस्तनात्तारारूपात् ज्योतिश्चक्रात् ऊर्ध्वं दशभिर्योजनैरूर्ध्वं गत्वा सूर्यविमानम्, ततोऽग्रे अशीतियोजनैरूर्ध्वं गत्वा चन्द्रविमानम्, ततोऽग्रे विंशत्या योजनैरूर्ध्वं गत्वा सर्वोपरितनं तारा रूपं ज्योतिश्चक्रम्–(१०=८०=२०+११०) इति सर्वसंमेलनेन ज्योतिश्चक्रचारविषयस्य भवति दशोत्तरं शतं योजनानां बाहल्यम्, तस्मिन् दशोत्तरयोजनशतबाहल्ये, कीदृशे तस्मिन् ? इत्याह–'तिरियमसंखेज्जे' तिर्यगसंख्येये तिर्यक्त्वमाश्रित्य असंख्येय कोटी कोटी योजनपरिमिते 'जोइसविसए' ज्योतिर्विषये ज्योतिश्चक्रविषयभूते क्षेत्रे 'जोइसं' ज्योतिषं मनुष्यक्षेत्रविषयं ज्योतिश्चक्रं 'चारं चरइ' चारं चरति मनुष्य क्षेत्राद्बहि ज्योतिषिकाणां पुनः स्थिरत्वम् । 'आहियं' आख्यातम्, 'तिवएज्जा' इति वदेत् प्रतिपादयेत् स्वशिष्येभ्य इति ॥सू० १॥

अथ तारारूपविमानाधिष्ठातृणां चन्द्रसूर्यापेक्षया द्युतिविभवादिकमधिकृत्याणुत्व तुल्यत्वमाह–'ता अत्थिणं,' इत्यादि ।

मूलम्—ता अत्थिणं चंदिमसूरिया णं देवाणं हिट्ठं पि तारा रूवा अणुंपि तुल्लावि? समंपि ताराख्वा अणुंपि तुल्लावि? उप्पिंपि ताराख्वा अणुंपि तुल्लावि? ता अत्थि। ता कहं ते चंदिमसूरियाणं देवाणं हिट्ठंपि ताराख्वा अणुंपि तुल्लावि समंपि ताराख्वा अणुंपि तुल्लावि, उप्पिंपि ताराख्वा अणुंपि तुल्लावि? ता जहा जहाणं तेसिणं देवाणं ताव णियम बंभचेराइं उस्सियाइं भवंति तहा तहाणं तेसिं देवाणं एवं भवइ, तं जहा-अणुत्ते वा तुल्लत्ते वा। ता एवं खलु चंदिम सूरियाणं देवाणं हि ट्ठंपि ताराख्वा अणुंपि तुल्लावि तहेव जाव उप्पिंपि तारा रूवा अणुंपि तुल्लावि। सू० २।

छाया—तावत् सन्ति खलु चन्द्रसूर्याणां देवानाम् अधस्तना अपि तारारूपाः अणवोऽपि तुल्या अपि? समा अपि तारारूपा अणवोऽपि तुल्या अपि? उपरितना अपि तारारूपा अणवोऽपि तुल्या अपि?। तावत् सन्ति। तावत् कथं ते चन्द्रसूर्याणां देवानामधस्तना अपि तारारूपा अणवोऽपि तुल्या अपि। समा अपि तारारूपा अणवोऽपि तुल्या अपि। उपरितना अपि तारारूपा अणवोऽपि तुल्या अपि? तावत् यथा यथा खलु तेषां देवानां तपो नियमब्रह्मचर्याणि उच्छ्रितानि भवन्ति तथा तथा खलु तेषां देवानां एवं भवति, तद्यथा-अणुत्व वा तुल्यत्वं वा। तावत् एव खलु चन्द्रसूर्याणां देवानाम् अधस्तना अपि तारारूपाः, अणवोऽपि तुल्या अपि तथैव यावत् उपरितना अपि तारा रूपा अणवोऽपि तुल्या अपि। सू०-२॥

व्याख्या—'ता अत्थिणं' इति, तावत् 'अत्थि ण' सन्ति खलु हे भगवन् 'चंदिमसूरियाणं देवाणं' चन्द्रसूर्याणां देवानां 'हिट्ठंपि' अधस्तना अपि क्षेत्रापेक्षया चन्द्रसूर्याणां देवानामधश्चारिणोऽपि 'ताराख्वा' तारारूपाः तारारूपविमानाधिष्ठातारो देवाः 'अणुंपि' अणवोऽपि द्युतिविभवलेश्याद्यपेक्षया लघवोऽपि हीना अपि भवन्ति किम्? तथा 'तुल्लावि' तुल्या अपि केचित् समानद्युतिविभवादियुक्ता अपि भवन्ति किम्? तथा 'समंपि' समा अपि क्षेत्रापेक्षया चन्द्रसूर्यविमानानां समश्रेण्या व्यवस्थिता अपि 'ताराख्वा' तारारूपाः तारा रूप विमानवासिनो देवाः 'अणुंपि तुल्लावि' अणवोऽपि तुल्या अपि भवन्ति किम्?। तथा 'उप्पिंपि' उपरितना अपि चन्द्र सूर्य विमानानामुपरि व्यवस्थिता देवा अपि 'अणुंवि-तुल्लावि' अणवोऽपि तुल्या अपि भवन्ति किम्। भगवानाह 'ता अत्थि' तावत् भवन्ति अणवोऽपि तुल्या अपि, इत्यादि हे गौतम! यथा त्वया पृष्टं तत्तथैवास्ति। पुन गौतमः पृच्छति-'ता कहंते' इत्यादि, 'ता' तावत् 'कहं' कथं कस्मात्कारणात् 'ते' तवमते 'चंदिम-सूरियाणं देवाणं' चन्द्रसूर्याणा देवानां 'हिट्ठंपि' अधस्तना अपि 'ताराख्वा' तारारूपाः ताराविमानस्थिता देवाः 'अणु वि, अणवोऽपि 'तुल्लंपि' तुल्या अपि सन्ति। तथा 'समंपि' समश्रेणि व्यवस्थिता अपि 'ताराख्वा' तारारूपाः 'अणुंपि' अणवोऽपि 'तुल्लावि' तुल्या अपि सन्ति। एवं 'उप्पिंपि' उपरितना अपि 'ताराख्वा' तारारूपाः 'अणुंपि'

अणवोऽपि 'तुल्लावि' तुल्या अपि सन्ति । हे भगवान् ! किं कारणमत्र यत् चन्द्रसूर्याणामधस्तनव्यवस्थिताः, समश्रेणि व्यवस्थिताः उपरिव्यस्थितास्त्रिविधा अपि तारारूपविमानाधिष्ठातारो देवाः अणवोऽपि द्युत्यादिना लघवोऽपि तुल्या अपि समान द्युत्यादिमन्तः ? इति कथयतु इति गौतमेन प्रश्ने कृते भगवान् गौतमाय अणुत्वतुल्यत्वविषयकं कारणं प्रदर्शयति–'ता जह–जह' इत्यादि 'ता' तावत् हे गौतम ! 'जहा-जहाणं' यथा यथा खलु 'देवाणं' तेषां देवानां 'तवणियमबंभचेराइं' तपोनियमब्रह्मचर्याभिप्राग्भवे तपः षष्ठाष्टमादिकं वाह्याभ्यन्तरभेदभिन्नं द्वादशविधं वा नियमः–अभिग्रहादिरूपः, ब्रह्मचर्यम् अब्रह्मत्यागः, देशतः सर्वतोवा 'उस्सियाइं' उच्छ्रितानि उत्कटानि उपलक्षणात् अनुत्कटानि वा येषां यादृशानि चारितानि आचरितानि पालितानि त्रिकरणत्रियोगादि प्रकारमाश्रित्य भवन्ति 'तहा तहाणं' तथा तथा तत्तत्प्रकारेण तपोनियमादिपालनानुसारेण खलु हे गौतम ! 'तेसिं देवाणं' तेषां देवानाम् 'एवं भवई' एवम् अनेन प्रकारेण अल्पद्युत्यादिकं तुल्यद्युत्यादिकं च 'भवइ' भवति । तदेवाह–'तं जहा' तद्यथा–'अणुत्तेवा तुल्लत्तेवा' अणुत्वं-वा तुल्यत्वं वेति, अयं भावः–यैः पूर्वभवे तपोनियमब्रह्मचर्याणि पालितानि त्ववश्यमेव तेन कारणेन देवत्वं प्राप्त किन्तु तानि तैश्चन्द्रसूर्यापेक्षया मन्दानि पालितानि ततस्ते तारारूप विमानाधिष्ठातारो देवो भूत्वा चन्द्रसूर्यदेवानां द्युतिविभवाद्यपेक्षया हीना जाताः । यैस्तु भावन्तरे तपो नियमब्रह्मचर्याणि चन्द्रसूर्याणां प्रायः सदृशान्युत्कटानि पालितानि ततस्ते तारारूप विमानाधिष्ठातारो भूत्वा चन्द्रसूर्याणां द्युतिविभवादिना तुल्या जाताः । उचितमेवैतत् दृश्यन्ते हि मनुष्यलोकेऽपि केचित्पूर्वभवसञ्चित पुण्यप्राग्भारा जना राजत्वं नापि प्राप्तास्तथापि राज्ञा सह तुल्य द्युतिविभवा भवन्तीति । 'ता' तस्मात् कारणात् 'एवं णं' एवं खलु 'चंदिमसूरियाणं देवाणं' चन्द्रसूर्याणां देवानां 'हिट्ठंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि' अधस्तना अपि तारारूपाः अणवोऽपि तुल्या अपि 'तहेव' तथैव पूर्वोक्त वदेवात्र वाच्यम्, कियत्पर्यन्तमित्याह–'जाव' इत्यादि, 'जाव' यावत् 'उप्पिंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि' उपरितना अपि तारारूपा अणवोऽपि तुल्या अपि । यावत्पदेन 'समंपि तारारूवा अणुंपि तुल्लावि' समश्रेणि व्यवस्थिता अपि तारारूपा अणवोऽपि तुल्या अपि सन्ति, इति, संग्राह्यम् ॥सू० २॥

अथ चन्द्रस्य परिवारं, मन्दरपर्वतात् लोकान्ताच्च कियदन्तरेण ज्योतिश्चक्रं चारं चरतीति च प्रदर्शयति–'ता एगमेगस्स णं' इत्यादि ।

मूलम्––ता एगमेगस्स णं चंदस्स देवस्स केवइया गहा परिवारो पण्णत्तो ? केवइया णक्खत्ता परिवारो पण्णत्तो ? केवइया तारा परिवारो पण्णत्तो, ? एगमेगस्स णं चंदस्स

देवस्स अट्ठासीई गहा परिवारो पण्णत्तो, अट्ठावीसं णक्खत्ता परिवारो पण्णत्तो, गाहा "छावट्ठि सहस्साइं, णवचेव सयाइं, पंचुत्तराइं पंचसयराइं एगससी परिवारो, तारा गण कोडिकोडीणं ।१। परिवारो पण्णत्तो ॥३॥

छाया—तावत् एकैकस्य खलु चन्द्रस्य देवस्य कियन्तो ग्रहाः परिवारः प्रज्ञप्तः ? कियन्ति नक्षत्राणि परिवारः प्रज्ञप्तः ?. कियन्त्यस्ताराः परिवारः प्रज्ञप्त. ? । तावत् एकैकस्य खलु चन्द्रस्य देवस्य अष्टाशीतिर्ग्रहाः परिवारः प्रज्ञप्तः, अष्टाविंशतिर्नक्षत्राणि परिवारः प्रज्ञप्तः, गाथा—षट् षष्टिः सहस्राणि, नव चैव शतानि पञ्चोत्तराणि (६६९०५) । एकशशि परिवारः, तारा गण कोटिकोटिनाम् ॥१॥ परिवारः प्रज्ञप्त ॥सू० ३॥

व्याख्या—'ता एगमेगस्स णं' इत्यादि चन्द्रपरिवारप्रतिपादकं सूत्रं सुगम मिति न व्याख्यायते, नवरं चन्द्रस्य तारापरिवारपरिमाणं—पञ्चोत्तरनवशताधिकषट्षष्टि सहस्रकोटीकोटी संख्यक मिति ॥सू०३॥

अथ मन्दरपर्वतात् ज्योतिश्चक्रस्यान्तरमाह—ता 'मंदरस्स णं' इत्यादि,

मूलम्—ता मंदरस्स णं पव्वयस्स केवइयं अवाहाए जोइसे चारं चरइ ? ता एक्कारस एक्कवीसाइं जोयणसयाइं अवाहाए जोइसे चारं चरइ । ता लोयंताओ णं केवइयं अवाहाए जोइसे पण्णत्ते ? ता एक्कारस एक्कादपइं जोयणसयाद्—अवाहाए जोइसे पण्णत्ते ॥ सू० ४ ॥

छाया—तावत् मन्दरस्य खलु पर्वतस्य कियत्या अवाधया ज्योतिषं चारं चरति ? तावत् एकादश एकविंशानि योजनशतानि अवाधया ज्योतिषं चारं चरति । तावत् लोकान्तात् खलु कियत्या अवाधया ज्योतिषं प्रज्ञप्तम् ? तावत् एकादश एकादशानि योजनशतानि अवाधया ज्योतिषं प्रज्ञप्तम् ॥सू० ॥४॥

व्याख्या—'ता मंदरस्स णं' इत्यादि मन्दरपर्वतविषयकज्योतिश्चक्रान्तरसूत्रमपि सुगममेव, नवरं ज्योतिश्चक्रं मेरोः सर्वतः सर्वदिक्षु एकविंशत्यधिकानि एकादश योजनशतानि मुक्त्वा तदनन्तर चक्रवालतया ज्योतिश्चक्रं चारं चरति । अथ लोकान्तात्तदेव प्रदर्श्यते 'ता लोयंताओ' इत्यादि 'ता' तावत् 'लोयंताओ' लोकान्तात अर्वाक् लोकान्तात्पूर्व मित्यर्थः इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमम् । भगवानाह 'ता एक्कारस' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एक्कारस एक्काराइं जोयणसयाइं' एकादश एकादशानि योजनशतानि एकादशाधिकानि एकादश योजनशतानि (११११) योजनानां 'अवाहाए' अबाधया—लोकान्तात्पूर्वमन्तरेण—लोकान्तभागात् लोकाभिमुखं एकादशाधिकैकादशशतयोजनानि आगत्यात्रान्तरे 'जोइसे' ज्योतिषं ज्योतिश्चक्रं 'पण्णत्ते' प्रज्ञप्तं भगवतेति । सू०॥४॥

अथाग्रे जीवाभिगमस्यातिदेशमाह—'एवं जहा जीवाभिगमे' इत्यादि ।

मूलम्—एवं जहेव जीवाभिगमे तहेव णेयव्वं-सव्वब्भितरिल्लं चारं, संठाणं, पमाणं, वहंति, सीहगई, इड्ढी तारंतरं, अग्गमहिसीओ, ठिई, अप्पा बहुयं जाव तारा-ओ संखेज्ज गुणा ॥सू०॥५॥

छाया—यथैव जीवाभिगमे तथैव ज्ञातव्यम्-सर्वाभ्यन्तरकश्चारः, संस्थानम्, प्रमाणम्, वहंति, शीघ्रगतिः, ऋद्धिः, तारान्तरम्, अग्रमहिष्यः, स्थितिः, अल्पबहुत्वम् यावत् ताराः संख्येयगुणाः ॥ सू०-५ ॥

व्याख्या-'जहेव जीवाभिगमे' इति, 'जहेव' यथैव येन प्रकारेण 'जीवाभिगमे' जीवाभिगमसूत्रे कथितं 'तहेव' तथैव तेनैव प्रकारेण तत्रोक्तानुसारेण 'णेयव्वं' ज्ञातव्यम् अवगन्तव्य पठितव्यमित्यर्थः । किं किं 'ज्ञातव्यमित्याह-सव्वब्भितरए' इत्यादि, 'सव्व-ब्भितरए चारं' सर्वाभ्यन्तरकश्चारः-नक्षत्राणां सर्वाभ्यन्तरचारप्रभृतिका वक्तव्यता वाच्या। तथा 'संठाणे' संस्थानम् चन्द्रादि विमानाना संस्थानम्-आकृति रूपं वक्तव्यम् । तदनन्तरं प्रमाणं चन्द्रादि विमानानामेव आयामादि प्रमाणं प्रतिपादयितव्यम् । तदनन्तरं 'वहंति' इति यावन्तः सिंहाद्याकृतयो देवा यं विमानं वहन्ति तद्विषया वक्तव्यता वाच्या । ततः 'सीहगई' शीघ्रगतिरिति कः कस्मात् शीघ्रगतिरिति वाच्यम् । तत्पश्चात् 'इड्ढी' ऋद्धिश्चन्द्रा-दीनां देवानां वक्तव्या । तदनन्तरं 'तारंतरं' तारान्तरम् ताराणां जघन्यत उत्कृष्टतश्चान्तरं कियत्कियत्परिमितमिति प्रतिवाच्यम् । तत्पश्चात् 'अग्गमहिसीओ' अग्रमहिष्यः चन्द्रादीनां मग्रमहिष्यो वक्तव्याः । ततः 'ठिई' स्थितिस्तेषामेव चन्द्रादीनां वाच्या । तदनन्तरम् 'अप्पा-बहुयं' अल्पबहुत्वं वक्तव्यम् तत् कियत्पर्यन्त मित्याह—'जाव' इत्यादि, 'जाव' यावत् "तारा संखेज्जगुणा" पूर्वोक्त परिमाणात् तारा. संख्येय गुणा; इति पर्यन्तं सर्वमत्र वक्तव्यं यावत् अष्टादशतमप्राभृतपरिसमाप्तिमिति भावः ॥सू०५॥

तदेवं पूर्वं जीवाभिगमस्यातिदेश. प्रोक्त, साम्प्रतं तदतिदेशप्रदर्शितानि सूत्राणि साक्षात् प्रदर्शयन् प्रथमे सर्वाभ्यन्तरादि चारसूत्रमाह-'ताजंबुद्दीवेणं' इत्यादि,

मूलम्—ता जंबुद्दीवेणं दीवे भंते कयरे णक्खत्ता सव्वब्भंतरिल्लं चारं चरति ? कयरे णक्खत्ता सव्ववाहिरिल्लं चारं चरंति ? कयरे णक्खत्ता सव्वुवरिल्लं चारं चरंति ? कयरे णक्खत्ता हिट्ठिल्लं चारं चरंति ? ता अभोई णक्खत्ते सव्वब्भितरिल्लं चारं चरइ, मूले णक्खत्ते सव्व बाहिरिल्लं चारं चरइ साई णक्खत्ते सव्वुवरिल्लं चारं चरइ भरणी णक्खत्ते सव्व हेट्ठिल्लं चारं चरइ । सू० ॥६॥

छाया—तावत् जम्बू द्वीपे खलु द्वीपे भदन्त ! कतमत् नक्षत्रं सर्वाभ्यन्तरकं चारं चरति ? कतमत् नक्षत्रं सर्वबाह्यकं चारं चरति ? कतमत् नक्षत्रं सर्वोपरितनं चारं चरति ? कतमत् नक्षत्रं सर्वाधस्तनं चारं चरति ? । अभिजिन्नक्षत्रं सर्वाभ्यन्तरं चारं चरति, मूलं नक्षत्रं सर्वबाह्यकं चारं चरति स्वातिनक्षत्रं सर्वोपरितनं चारं चरति, भरणीनक्षत्रं सर्वाधस्तनं चारं चरति ॥ सू० ६॥

व्याख्या—'ता जंबुद्दीवेणं दोवे' इत्यादि। प्रश्नसूत्रे जम्बूद्वीपे द्वीपे अष्टाविंशति नक्षत्राणां मध्यात् सर्वाभ्यन्तर सर्वबाह्यसर्वोपरि सर्वाधश्चारीणि कानि कानि नक्षत्राणि सन्ती ति पृच्छा सूत्रं सुगमम् भगवानाह—'ता' तावत् 'अभिईणक्खत्ते' अभिजिन्नक्षत्र सर्वाभ्यन्तरकं चारं चरति, एवं मूलनक्षत्रं सर्वबाह्यं चारं चरति, स्वातिनक्षत्रं सर्वोपरितनं चारं चरति भरणी नक्षत्रं सर्वाधस्तनं चारं चरती त्युत्तरम्। सू०॥६॥

मूलम् —ता चंदविमाणेणं भंते ? किं संठिए पण्णत्ते ? ता अद्ध कविट्ठसंठाणसंठिए सव्व फालियामए अब्भुग्गय मूसिय पहासिए विविहमणिरयणभत्तिचित्ते वाउद्धुय विजयवेजयंती पडागछत्ताइछत्तकलिए, तुंगे गगणतलमणुलिहंतसिहरे जालंतररयणपंजरमिलियव्व मणिकणगथूभियागे वियसियपत्तपुंडरीय तिलगरयणद्धचंद चित्ते अंतो वहिं सण्हे तवणिज्ज वालुया पत्थडे सुहफासे सस्सिरीयरूवे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे। एवं सूरियविमाणे, गहविमाणे, णक्खत्तविमाणे, तारा विमाणे ॥सू० ७॥

छाया—तावत् चन्द्रविमानं खलु भदन्त ? किं संस्थित प्रज्ञप्तम ? तावत् अर्द्ध कपित्थक संस्थान संस्थितं सर्व स्फटिकमयं अभ्युद्गतोच्छ्रितप्रहसितं विविधमणिरत्न भक्ति चित्रं वातोद्धुत विजय वैजयन्ती पताका छत्रातिच्छत्रकलितं तुङ्गं गगनतलमनुलिखच्छिखरं जालान्तररत्नपञ्जरमिलितवन्मणिकनकस्तू पिकाकं विकसित पत्र पुण्डरीक तिलक रत्नार्द्धचन्द्रचित्रं अन्तो वहिश्लक्ष्णं तपनीयवालुकाप्रस्तटं सुखस्पर्शं सश्रीकरूपं प्रासादीयं दर्शनीयं अभिरूपं प्रतिरूपम्। एवं सूर्यविमानम् गृहविमानम्, नक्षत्रविमानम्, तारा विमानम्। सू० ॥७॥

व्याख्या—'ता चंद विमाणेण' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमम्। भगवानाह—'अद्ध कविट्ठे' इत्यादि 'अद्ध कविट्ठसंठाणसंठिए अर्द्धकपित्थसंस्थानसंस्थितम्—उत्तानीकृतमर्द्धमात्रं यत् कपित्थं कपित्थाभिधं फलं तस्येव यत् संस्थानं। उत्तानीकृतार्द्धकपित्थसदृशं संस्थान तेन संस्थितं तत्सदृशसंस्थानसंस्थितं चन्द्रविमानं भवति ? अत्राह—यदि चन्द्रविमान मुत्तानीकृतार्द्धमात्रकपित्थफलसंस्थानकमस्ति तदा उदयास्तकाले, अथवा तिर्यक् परिभ्रमच्च तत् कथमर्द्ध कपित्थफलाकारं नोपलभ्यते, तत्तु शिरस उपरिवर्त्तमानं वर्त्तुलाकारमुपलभ्यते, अर्द्धकपित्थस्य उपरि दूरमवस्थापितस्य पर भागदर्शनतो वर्त्तुलाकारतया दृश्यमानत्वात् अत्रोच्यते—इहार्द्धकपित्थफलाकारं चन्द्रविमानं सामस्त्येन ज्ञातव्यम् किन्तु चन्द्रविमानस्य यत् पीठं तद् अर्द्धकपित्थसंस्थानसंस्थितं वर्त्तते तस्य च पीठस्योपरि चन्द्र देवस्य प्रासादः, स च प्रासादस्तथा कथञ्चनापि व्यवस्थितो यथा पीठेन सह भूयान् वर्त्तुलाकारो भवति, सच दूरभावादेकान्ततः समगोलाकारत्वेनात्रतो जनानां प्रतिभासते ऽतो न कश्चिद्दोषः उक्तञ्च।

"अद्ध कविट्ठागारा उदयत्थमाणम्मि कहं न दीसंति ?
ससिसूराण विमाणा, तिरियक्खेत्ता ट्ठियाणंच ॥१॥
उत्ताणद्धकविट्ठागारे पीढं तदुवरिं च पासाओ ।
वट्टालेखेण तओ समवट्टं दूर भावाओ ॥२॥,

छाया—अर्द्धकपित्थाकाराणि उदयास्तमने, कथं न दृश्यन्ते ?
शशिसूराणां विमानानि, तिर्यक् क्षेत्रस्थितानां च ॥१॥
उत्तानार्द्धकपित्थाकार पीठं तदुपरि च प्रासादः
वृत्तालेखेन ततः समवृत्तं दूर भावात् ॥२॥ इति

तत् चन्द्रविमानं च किं प्रकारकमिति तद् विशिनष्टि—'सव्व फालियामए' इत्यादि, 'सव्व फालियामए' सर्वस्फटिकमयं सर्वात्मना स्फटिकाभिधमणिस्वरूपम् । 'विजयवेजयंती पडागा छत्ताइ छत्तकलिए' वातोद्धूतविजयवैजयन्ती पताका छत्रातिच्छत्रकलिनम् तत्र वातोद्धूता वायुना कम्पिता विजयवैजयन्ती पताका विजयसूचिका वैजयन्त्यभिधाना या पताका, अथवा विजया इति वैजयन्तीनां पार्श्वकर्णिकाः कथ्यन्ते तत्प्रधाना वैजयन्त्यो विजयवैजयन्त्यः पताकाः ता एव विजयवर्जिता वैजयन्त्यः पताका उच्यन्ते, तथा छत्रातिछात्राणि—उपर्युपरिस्थितछत्राणि, ततः विजयवैजयन्तीभिः, पताकाभिः, छत्रातिच्छत्रैश्च कलितं युक्तं तत्तथा, 'तुंगे' तुङ्गम् उच्चम्, अत एव 'गगणतलमणुलिहंतसिहरे' गगन तलमनुलिखच्छिखरम्—गगनतलम् अनुलिखत् अभिलङ्घयत् शिखरम् उपरिभागः यस्य तत्तादृशम् 'जालंतररयण' जालान्तररत्नम्—जालकानि भवनभित्तिषु छिद्रसमूहरूपाणि लोके प्रसिद्धानि, तदन्तरेषु तेषां मध्य मध्य भागेषु रत्नानि विशिष्टशोभार्थं सन्ति यत्र तत् सूत्रे प्रथमैकवचनलोप आर्षत्वात् तथा 'पंजरमिलियव्व' पञ्जरमिलितमिव पञ्जरादुन्मीलितमिव चिरकालाद बाहिष्कृतमिव नूतनत्वात्, यथाहि किमपि वस्तु सपुटक निवेशितं धूल्यादिना असंस्पृष्टत्वेन नूतनवदेव तिष्ठति, तद् वस्तु यदि संपुटकादवहि र्निष्कास्यते तदा नूतनमिव प्रतिभासते, तथैव तद्विमानं नूतनम् अत्यन्ताविनष्टच्छविकत्वात् तथैव शोभते इति भावः, 'मणिकणगथूभियागे, वियसियसयपत्त पुंडरीयतिलयरयणद्धचंदचित्ते' मणिकनकस्तूपिकाकं विकसितशतपत्रपुण्डरीकतिलकरत्नार्द्धचन्द्रचित्र मिति तत्र 'मणिकनकस्तूपिकाकं' इति पृथक् पदम् मणिजटितकनकमयशिखरम्, विकसितानि प्रफुल्लितानि यानि शतपत्राणि, पुण्डरीकाणि च द्वारादौ प्रतिकृतित्वेन स्थितानि, तिलकाश्च भित्त्यादिषु पुण्ड्राणि, रत्नमयाश्चार्द्धचन्द्रा द्वारादिषु तैश्चित्रमिति । 'अंतोबहिं सण्हे' अन्तर्बहिः श्लक्ष्णम्—चिक्कणम 'तवणिज्ज वालुया पत्थडे' तपनीयवालुका प्रस्तटम्—तपनीयं-सुवर्णं तन्मयी या वालुका—सिकता, तस्याः प्रस्तटः प्रतरः तल भागो यस्य तत्तथा, 'सुहफासे' सुस—

स्पर्शे स्पर्शे सुखोत्पादकम्, 'सस्सिरीयरूवे' सश्रीकरूपम्—सश्रीकाणि शोभायुक्तानि रूपाणि नर युग्मादीनि यत्र तत् तथा 'पासाईए' प्रासादिकं मनः प्रसन्नता जनकम्, अत एव 'दंसणिज्जे' दर्शनीयं द्रष्टुं योग्यम् तद्दर्शने तृप्त्यसंभवात्, 'अभिरूवे' अभिरूपम्-सुन्दरम् 'पडिरूवे' प्रतिरूपम्—प्रतिविशिष्टम्-असाधारणं रूपं यस्य तत्तथा। एतादृशं चन्द्रविमानं वर्त्तते, इति। 'एवं सूरियविमाणं पि' एवम्-एतादृशमेव चन्द्रविमानसदृशमेव सूर्यविमानमपि विज्ञेयम्। एवमेव 'गहविमाणे' णक्खत्तविमाणे ताराविमाणे' ग्रह विमानमपि नक्षत्रविमानमपि ताराविमानमपि ज्ञातव्यमिति ॥ सू० ७ ॥

अथ विमानपरिमाणमाह—

मूलम्—चंद विमाणेणं भंते केवइयं आयामविक्खंभेणं? केवइयं परिक्खेवेणं? केवइयं बाहल्लेणं पण्णत्ते? ता छप्पण्णं एगट्ठिभागे जोयणस्स आयामविक्खंभेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिरयेणं, अट्ठावीसं एगट्ठि भागे जोयणस्स बाहल्लेणं पण्णत्ते। ता सूरिय विमाणेणं केवइं आयामविक्खंभेणं पुच्छा? ता अडयालीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स आयामविक्खंभेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिरएणं, चउव्वीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं पण्णत्ते। ता गहविमाणेणं केवइयं पुच्छा ता अद्ध जोयणं आयामविक्खंभेणं तं तिगुणं सविसेसं परिरएणं, कोसं बाहल्लेणं पण्णत्ते। ता णक्खत्तविमाणे णं केवइयं पुच्छा? ता कोसं आयामविक्खंभेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिरएणं, अद्धकोसं बाहल्लेणं पण्णत्ते। तारा विमाणेणं केवइयं पुच्छा। ता अद्धकोसं आयामविक्खंभेणं, तं तिगुणं सविसेसं परिरएणं पंच धणुसयाइं बाहल्लेणं पण्णत्ते ॥सू० ८॥

छाया—तावत् चन्द्रविमानं खलु भदन्त! कियत्कं आयामविष्कम्भेण? कियत्कं परिक्षेपेण, ? कियत्कं बाहल्येन प्रज्ञप्तम्? तावत् षट्पञ्चाशतमेकषष्टिभागान् योजनस्य आयामविष्कम्भेण, तत्त्रिगुणं सविशेषं परिरयेण, अष्टाविंशति मेकषष्टिभागान् योजनस्य बाहल्येन प्रज्ञप्तम्। तावत् सूर्यविमानं खलु कियत्कमायामविष्कम्भेण, पृच्छा तावत् अष्टचत्वारिंशतमेकषष्टिभागान् योजनस्य आयामविष्कम्भेण, तत् त्रिगुणं सविशेषं परिरयेण चतुर्विंशतिमेकषष्टिभागान् योजनस्य बाहल्येन प्रज्ञप्तम्। तावत् ग्रहविमानं खलु कियत्कं पृच्छा, तावत् अर्द्धं योजनमायमविष्कम्भेण, तत् त्रिगुणं सविशेष परिरयेण क्रोशं बाहल्येन प्रज्ञप्तम्। तावत् नक्षत्रविमान खलु कियत्कं पृच्छा, तावत् अर्द्धक्रोशं बाहल्येन प्रज्ञप्तम्। तावत् ताराविमान खलु कियत्कं पृच्छा, तावत् अर्द्धक्रोशम् आयामविष्कम्भेण तत् त्रिगुणं सविशेषं परिरयेण, पञ्च धनुः शतानि बाहल्येन प्रज्ञप्तम् ॥सू० ८॥

व्याख्या—अत्र चन्द्रादिविमानानां परिमाणविषये गौतमस्य प्रश्नः—तत् चन्द्रविमानं कियत्परिमितम्—आयामविष्कम्भेण, परिधिना, बाहल्येनेति प्रश्नसूत्रं सुगमम्। भगवा-

नाह-'ता' तावत् 'छप्पण्णं एगट्ठिभागे जोयणस्स' इति एकस्य योजनस्य षट् पञ्चाशद् एकषष्टिभागपरिमितमायामविष्कम्भाभ्यां चन्द्रविमानम् । 'त तिगुणं सविसेसं परिरयेणं' परिधिना चन्द्रविमानमायामविष्कम्भपरिमाणात् त्रिगुणं किञ्चिदधिकं विज्ञेयम् । 'अट्ठावीसं एगट्ठिभागे जोयणस्स बाहल्लेणं' बाहल्येन स्थूलत्वेन चन्द्रविमानम् एकस्य योजनस्य अष्टाविंशत्येकषष्टिभागपरिमित प्रज्ञप्तम् सूर्यविमानपृच्छासूत्रं वाच्यम् भगवानाह-'अडयालीसं एगसट्ठिभागे जोयणस्स' योजनस्य अष्टचत्वारिंशदेकषष्टिभागमायामविष्कम्भाभ्याम् परिधि परिमाणां पूर्ववदेवायामविष्कम्भपरिमाणात् किञ्चिदधिकं त्रिगुणम् । सूर्यविमानस्य बाहल्यम् 'चउव्वीस एगट्ठिभागे जोयणस्स' एकस्य योजनस्य चतुर्विंशत्येकषष्टिभागपरिमितं प्रज्ञप्तम् । ग्रहविमानं पृच्छा 'ता अद्धजोयणं आयामविक्खंभेणं, ग्रह विमानं अर्द्धयोजनपरिमितमायामविष्कम्भेण 'तं तिगुणं सविसेसं परिरएणं' आयामविष्कम्भपरिमाणात् किञ्चिद्विशेषाधिकं त्रिगुण 'परिरएणं' परिधिना, 'कोसं बाहल्लेणं' एकं क्रोशं बाहल्येन प्रज्ञप्तम् नक्षत्रविमानं पृच्छा-'ता कोसं आयामविक्खंभेणं' नक्षत्रविमानम् आयामविष्कम्भाभ्यां क्रोशपरिमितम् पूर्ववदेवायामविष्कम्भपरिमाणात् सविशेषं त्रिगुणा परिधिर्विज्ञेया । बाहल्येनार्द्धक्रोशं प्रज्ञप्तम् । तारा-विमानं पृच्छा-'ता अद्ध कोसं आयामविक्खंभेणं' तारा विमानमर्द्धक्रोशमायामविष्कम्भाभ्याम् । परिधिना पूर्ववदेव सविशेषं त्रिगुणम् । बाहल्येन 'पंचधणुसयाइं' पञ्चधनुः-शतन परिमितं ताराविमानं प्रज्ञप्तम् ॥सू० ८॥

अथ चन्द्रादिविमानवाहकदेवाना संख्यां रूपाणि च प्रदर्शयति 'ता चंदविमाणेणं' इत्यादि

मूलम्- ता चंदविमाणे णं भंते कइ देवसाहस्सीओ परिवहंति,! सोलस देव साहस्सीओ परिवहंति, तं जहा-पुरत्थिमेणं सीहरूवधारीणं चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवहंति दाहिणेणं गयरूवधारीणं चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवहंति, पच्चत्थिमेणं वसभरूवधारीणं चत्तारि देवसाहस्सीओ परीवहंति, उत्तरेणं तुरगरूवधारीणं चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवहंति एवं सूरियविमाणंपि । ता गहविमाणेणं भंते कइ देवसाहस्सीओ परिवहंति ? ता अट्ठदेवसाहस्सीओ परिवहंति, त जहा-पुरत्थिमेणं सिंहरूवधारीणं देवा णं दो देवसाहस्सीओ परिवहंति, एवं जाव उत्तरेणं तुरगरूवधारीणं देवाणं दो देव साहस्सीओ परिवहंति ? ता नक्खत्तविमाणेणं भंते कइ देवसाहस्सीओ परिवहंति ? ता चत्तारि देव साहस्सीओ परिवहंति, तं जहा-पुरत्थिमेणं सीहरूवधारीणं देवाणं एक्का देवसाहस्सी परिवहइ एवं जाव उत्तरेणं तुरगरूवधारीणं देवाणं एक्का देवसाहस्सी परिवहइ । ता ताराविमाणेणं भंते कइ देवसाहस्सीओ परिवहंति । ता दो देव साहस्सीओ परिवहंति तं जहा पुरत्थिमेणं सीहरूवधारीणं पंच देवसया परिवहंति, एवं जाव उत्तरेणं तुरगरूवधारीणं देवाणं पंच देवसया परिवहंति ॥सू० ९॥

छाया—तावत् चन्द्रविमानं खलु भदन्त ! कति देवसाहस्र्यः परिवहन्ति ? षोडश देवसाहस्र्यः परिवहन्ति, तद्यथा-पौरस्त्ये खलु सिंहरूपधारिणां चतस्रो देवसाहस्र्यः परिवहन्ति, दक्षिणे खलु गजरूपधारिणां चतस्रो देवसाहस्र्यः परिवहन्ति, पाश्चात्ये खलु वृषभरूपधारिणां चतस्रो देवसाहस्र्यः परिवहन्ति, उत्तरे खलु तुरग रूपधारिणां चतस्रो देवसाहस्र्यः परिवहन्ति । एवं सूर्यविमानमपि । तावत् ग्रह विमानं खलु भदन्त ? कति देवसाहस्र्यः परिवहन्ति ? तावत् अष्ट देवसाहस्र्यः परिवहन्ति, तं जहा-पौरस्त्ये खलु सिंहरूपधारिणां द्वे देवसाहस्र्यौ परिवहतः, एवं यावत् उत्तरे खलु तुरगरूपधारिणां द्वे देवसाहस्र्यौ परिवहतः । तावत् नक्षत्रविमानं खलु भदन्त ! कति देवसाहस्र्यः परिवहन्ति ? तावत् चतस्रो देवसाहस्र्यः परिवहन्ति, तद्यथा-पौरस्त्ये खलु सिंहरूपधारिणाम् एका देवसाहस्र्यः परिवहति, एवं जाव उत्तरे खलु तुरगरूपधारिणां एका देवसाहस्री परिवहति । तावत् ताराविमानं खलु भदन्त ! कति देवसाहस्र्यः परिवहन्ति ? तावत् द्वे देवसाहस्र्यौ परिवहतः तद्यथा-पौरस्त्ये खलु सिंहरूपधारिणां देवानां पञ्च शतानि परिवहन्ति, एवं यावत् उत्तरे खलु तुरग रूपधारिणां देवानां पञ्च शतानि परिवहन्ति ॥ सू० ९ ॥

व्याख्या—'चंदविमाणे णं भंते' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमम् । भगवानाह **'सोलसदेवसाहस्सीओ परिवहंति'** चन्द्रविमानं षोडशसहस्रदेवा परिवहन्ति चतुर्दिक्षु तदेवाह 'तं जहा' इत्यादि, 'तं जहा' तद्यथा—**'पुरत्थिमेणं सीहरूपधारीणं चत्तारि देवसाहस्सीओ परिवहंति'** पूर्वभागे चतुः सहस्रदेवाः सिंहरूपधारिणः परिवहन्ति । एवं दक्षिणे गजरूप धारिणश्चतु सहस्रदेवाः, पश्चिमे वृषभरूपधारिणश्चतुःसहस्रदेवाः, उत्तरे तुरगरूधारिणः श्चतु सहस्रदेवाः, एवं षोडश सहस्रदेवाश्चन्द्रविमानं परिवहन्तीति । **'एवं सूरियविमाणंपि'** चन्द्रविमानवदेव सूर्यविमानमपि तेनैव रूपेण तादृश रूपधारिण एव षोडशसहस्र देवाश्चतुर्दिक्षु परिवहन्ति । ग्रहविमानं पृच्छा—**'ता अट्ठसाहस्सीओ परिवहंति'** ग्रहविमानमष्ट सहस्रदेवाः, प्रत्येकं दिशि द्विद्विसहस्रसंख्यकाः पूर्वोक्तसदृशरूपधारिणः परिवहन्ति । नक्षत्र विमानं पृच्छा—**'ता चत्तारि देवसाहस्सीओ'** नक्षत्रविमानं प्रत्येकं दिशि एकैकसहस्रत्वेन चतुः सहस्रदेवाः पूर्वोक्तरूपधारिणः पूर्वप्रदर्शितरीत्यैव परिवहन्ति । ताराविमान पृच्छा—**'ता दो देवसाहस्सीओ।'** ताराविमानं प्रत्येकं दिशि पञ्चशतपञ्चशतत्वेन द्विसहस्रदेवाः पूर्ववदेव परिवहन्ति। चन्द्रादि विमानवाहकदेवानां संख्या प्रतिपादिके इमे द्वे गाथे जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिसूत्रे प्रोक्ते

"सोलसदेव सहस्सा वहंति चंदेसु चेव सूरेसु ।
अट्ठेव सहस्साइं, एक्केक्कंमि गहविमाणे ॥१॥
चत्तारि सहस्साइं, नक्खत्तंमि य हवंति एक्केक्के ।
दो चेव सहस्साइं, तारारूवेक्कमेक्कंमि ॥२॥ इति

छाया—षोडश सहस्राणि वहन्ति चन्द्रयोश्चैव सूर्ययोः ।
अष्टैव सहस्राणि एकैकस्मिन् ग्रहविमाने ॥१॥
चत्वारि सहस्राणि, नक्षत्रे च वहन्ति एकैकस्मिन् ।
द्वे चैव सहस्रे, तारारूपे एकैकस्मिन् ॥२॥ इति । सू० ॥९॥

अथ चन्द्रादीनां शीघ्रगति मन्दगति विषयं सूत्रमाह 'एए सिण' इत्यादि

मूलम्—एएसि णं चंदिमसूरियगहगणणक्खत्ततारारूवाणं भंते कयरे कयरेहिंतो सिग्घगई वा मंद गईवा ? ता चंदेहिंतो सूरा सिग्घगई सूरेहिंतो गहा सिग्घगई गहेहिंतो णक्खत्ता सिग्घगई । णक्खत्तेहिंतो तारा सिग्घगई ! सव्वप्पगई चंदा, सव्वसिग्घगई तारा ॥सू१०॥

छाया—एतेषां खलु भदन्त ! चन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्रतारारूपाणां कतमे कतमेभ्यः शीघ्रगतयो वा मन्दगतयो वा ? तावत् चन्द्राभ्यां सूर्यौ शीघ्रगती, सूर्याभ्यां ग्रहाः शीघ्रगतयः, ग्रहेभ्यो नक्षत्राणि शीघ्र गतीनि, नक्षत्रेभ्यः तारारूपाणि शिघ्रगतीनि । सर्वाल्पगती चन्द्रौ, सर्व शीघ्र गतयस्तारा ॥सू०१०॥

व्याख्या—'एएसिणं' इति एतेषां चन्द्रादीनां मध्ये के केभ्यः शीघ्रगतयो मन्दगतयश्च सन्तीति प्रश्नसूत्रं सुगमम् । भगवानाह—'ता चंदेहिंतो' इत्यादि, चन्द्राभ्यां सूर्यौ, शीघ्रगती, सूर्याभ्यां ग्रहाः शीघ्रगतयः, ग्रहेभ्यो नक्षत्राणि शीघ्रगतीनि, नक्षत्रेभ्यस्ताराः शीघ्रगतयः । एषु सर्वेभ्यो-ऽल्पगतिमन्तश्चन्द्राः, सर्वेभ्यः शीघ्रगतिमत्यस्ताराः । एतत् सूत्रं पूर्वमप्युक्तं परं विमान वहनप्रसङ्गात् पुनरप्यत्रोक्तमित्यदोषः ॥सू०१०॥

अथ चन्द्रादीनाम् ऋद्धिसूत्रमाह—'ता एएसिणं' इत्यादि ।

मूलम्—ता एएसि णं चंदिमसूरियगहगणणक्खत्ततारारूवाणं भंते ! कयरे कयरेहिंतो ! अप्पिड्ढिया वा महिड्ढियावा । ताराहिंता णक्खत्ता महिड्ढिया णक्खत्ते-हिंतो गहा महिड्ढिया, गहेहिंतो सूरिया महिड्ढिया, सूरिएहिंतो चंदा महिड्ढिया । सव्वप्पिड्ढिया तारा, सव्वमहिड्ढिया चंदा ॥सू०११॥

छाया—तावत् एतेषां खलु चन्द्रसूर्यग्रहगणनक्षत्रतारारूपाणां भदन्त ! कतमे कतमेभ्यः अल्पर्द्धिका वा महर्द्धिका वा ? ताराभ्यो नक्षत्राणि महार्द्धिकानि, नक्षत्रेभ्यो ग्रहा महर्द्धिकाः, ग्रहेभ्यः सूर्या महर्द्धिका सूर्येभ्यः चन्द्रा महर्द्धिकाः सर्वाल्पर्द्धिकास्ताराः, सर्वमहर्द्धिको चन्द्रो ॥सू० ११॥

व्याख्या—'ता एएसि णं' इति एतेषां चन्द्रसूर्यग्रहनक्षत्रताराणां मध्ये के ऽल्पर्द्धयः के महर्द्धय इति 'प्रश्नसूत्रं सुगमम्' । भगवानाह 'ता ताराहिंतो' इत्यादि, ताराभ्यः ताराविमानस्थितदेवेभ्यः तारादेवानामपेक्षया नक्षत्राणि नक्षत्रविमानस्थिता देवा महर्द्धिकाः । नक्षत्रेभ्यो ग्रहा महर्द्धिकाः । ग्रहेभ्य. सूर्या महर्द्धिकाः सूर्येभ्यश्चन्द्रा महर्द्धिकाः । सर्वेभ्योऽल्पर्द्धिकास्ताराः । सर्वेभ्यो महर्द्धिकाश्चन्द्रा इति ॥सू० ११॥

अथ ताराणां परस्परमन्तरविषयं सूत्रमाह 'ता जंबुद्दीवेणं' इत्यादि

मूलम्—ता जंबुद्दीवेणं दीवे भंते तारा रूवस्स य एस णं केवइए अबाहाए अंतरे पण्णत्ते? दुविहे अंतरे पण्णत्ते, तं जहा-वाघाइमे य । निव्वाघाइमेय तत्थ णं जे से वाघाइमे से णं जहण्णेणं दोण्णि छावट्ठाइ जोयणसयाइं उक्कोसेणं बारस जोयण सहस्साइं दोण्णि बायालाइं जोयणसयाइं ताराख्वस्स य ताराख्वस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते । तत्थ णं जे से णिव्वाघाइमे से जहण्णेणं पंच धणुसयाइं, उक्कोसेणं अद्ध जोयणं तारा रूवस्स य ताराख्वस्स य अबाहाए अंतरे पण्णत्ते ॥सू०१२॥

छाया—तावत् जम्बूद्वीपे खलु द्वीपे भदन्त ! ताराख्पस्य च एतत् खलु कियत्कम् अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् ? द्विविधमन्तरं प्रज्ञप्तं, तद्यथा-व्याघातिमं च निर्व्याघातिमं च । तत्र खलु यत्तद् व्याघातिमं तत् जघन्येन द्वे षट् षष्ठे (षट्षष्ट्यधिके) योजनशते, उत्कर्षेण द्वादश योजन सहस्राणि द्वे द्विचत्वारिंशे (द्विचत्वारिंशदधिके) योजनशते तारा रूपस्य तारा रूपस्य च अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् । तत्र खलु यत्तद् निर्व्याघातिमं तत् जघन्येन पञ्चधनुः शतानि उत्कर्षेण अर्द्धयोजनं ताराख्पस्य ताराख्पस्य च अबाधया अन्तरं प्रज्ञप्तम् ॥सू० १२॥

व्याख्या—'ता जम्बूद्दीवेणं' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमम्, अत्र मध्यजम्बूद्वीपे ताराणामन्तरं कियत्कं अबाधया प्रज्ञप्तम् भगवानाह—'दुविहे अंतरे पण्णत्ते' अन्तरं द्विविधं प्रज्ञप्तम् व्याघातिमं निर्व्याघातिमं चेति । तत्र यद् व्याघातिममन्तरं तत् जघन्येन 'दोन्नि छावट्ठाइं जोयणसयाइं' षट्षष्ट्यधिके द्वे योजनशते षट्षष्ट्यधिकद्विशतयोजनपरिमितमन्तरमबाधया अव्यवहितेन प्रोक्तम् । उत्कर्षेण च 'बारस जोयणसहस्साइं दोण्णि बायालाइं जोयणसयाइं' द्वादश योजनसहस्राणि द्वे योजनशते द्विचत्वारिंशदधिके (१२२४२) एतत्परिमितमन्तरमुत्कृष्टेन एकस्मात्ताराख्पाद् द्वितीयस्य ताराख्पस्य अबाधया व्यवधानेनान्तरं प्रोक्तम् । 'तत्थ णं' इत्यादि, तत्र खलु यद् निर्व्याघातिममन्तरं तत् 'जहण्णेणं पंचधणुसयाइं' जघन्येन पञ्चशतधनूंषि पञ्चशतधनुःपरिमितम् । 'उक्कोसेणं अद्धजोयणं' उत्कर्षेण अर्द्धयोजनपरिमितमन्तरं ताराख्पस्य ताराख्पस्य च एक द्वितीययोः परस्परमन्तरमबाधया प्रज्ञप्तम् ॥ अत्रेयं भावना-व्याघातिमनिर्व्याघातिमयोरयमर्थः व्याहननं

व्याघातः–पर्वतादिस्खलनं तेन निर्वृत्तं व्याघातिममुच्यते । व्याघातरहितं यत् स्वभाविकं तदन्तरं निर्व्याघातिमं प्रोच्यते । अत्र जघन्येन यत् पट् पट्‌त्यधिके द्वे योजनशते अन्तरं प्रोक्तं तत् निपधकूटादिकमपेक्ष्य वेदितव्यम् । तथाहि–निपधपर्वतः स्वभावतोऽपि चत्वारि योजन शतानि उच्चत्वेन वर्त्तते, तस्य चोपरि पञ्चशतयोजनोच्चानि कूटानि सन्ति, तानि च मूले पञ्च योजनशतानि आयामविष्कम्भाभ्याम्, मध्ये पञ्च सप्तत्यधिकानि त्रीणि योजनशतानि, उपरि च सार्द्धे द्वे योजनशते, तेषां चोपरितनभागसमश्रेणिप्रदेशे तथाविध जगत्स्वाभाव्याद् अष्टावष्टौ योजनान्युभयतोऽबाधया कृत्वा तत्र ताराविमानानि परिभ्रमन्ति, ततो जघन्येन व्याघातिममन्तरं (२५०=८=८+२६६) पट्‌पष्ट्यधिके द्वे योजनशते भवतः । उत्कर्षेण द्विचत्वारिंशदधिकद्विशतोत्तराणि द्वादशयोजनसहस्राणि (१२२४२) यद् व्याघातिममन्तरं प्रोक्तं तद् मेरुमपेक्ष्य ज्ञातव्यम्, तथाहि–मेरौ दश योजन सहस्राणि (१००००), मेरोश्चोभयतोऽबाधया एकादशैकादश योजनशतानि एक विंशत्येकविंशत्यधिकानि (२२४२), इत्येवं सर्व संकलनया जायन्ते द्वादश योजनसहस्राणि द्वे च शते द्विचत्वारिंशदधिके (१२२४२) इत्येवमुत्कृष्टतो व्याघातिममन्तर मायातीति । निर्व्याघातिममन्तरं तु सूत्रे स्पष्टं प्रोक्तमेवेति ॥ सू० १२॥

अथ चन्द्रसूर्याणामग्रमहिषीविषयं सूत्रमाह–'ता चंदस्स णं' इत्यादि,

मूलम्—ता चंदस्स णं भंते जोइसिंदस्स जोइसरण्णो कइअग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ ? ता चत्तारि अग्ग महिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा–चंदप्पभा १, दोसिणाभा २, अच्चिमाली ३, पभंकरा ४। तत्थ णं एगमेगाए देवीए चत्तारि चत्तारि देवी साहस्सीओ परिवारो पण्णत्तो । पभू णं ताओ एगमेग देवी अण्णाइं चत्तारि २ देवी सहस्साइं परिवारं विउव्वित्तए । एवामेव सपुव्वावरेणं सोलस देवी सहस्साइं, सेत्तं तुडिए । ता पभूणं चंदे जोइसिंदे जोइसराया चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए ? णो इणट्ठे संमट्ठे । ता कहं ते णो पभू चंदे जोइसिंदे जोइसराया चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए तुडिएणं सद्धिं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणं विहरित्तए ? ता चदस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरण्णो चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए माणवएसु चेइय खंभेसु वयरामएसु गोल वट्टसमुग्गएसु बहवजिण सकहा संणिक्खित्ता चिट्ठंति, ताओ णं चंदस्स जोइसिंदस्स जोइसरण्णो, अण्णेसिं च बहूणं जोइसियाणं देवाणय देवीण य अच्चणिज्जाओ वंदणिज्जाओ पूयणिज्जाओ सक्कारणिज्जाओ सम्माणणिज्जाओ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जाओ, एवं खलु णो पभू चंदे जोइसिंदे जोइसराया चंदवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए तुडिएण सद्धिं दिव्वाइं भोग भोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए । पभूणं चंदे जोइसिंदे जोइसराया चंदवडिंसए विमाणे सभाए

सुहम्माए चंदंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं, चउहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहिं तिहिं परिसाहिं, सत्तहिं अणीयाहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं सोल सहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं, अण्णेहि य बहूहिं जोइसिहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे महयाहयणट्टगीयवाइयतंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए केवलं परियारणिड्ढिए, णोचेव णं मेहु णवत्तियाए । ता सूरस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरण्णो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ । ता चत्तारि अग्ग महिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा-सूरप्पभा १, आतवा २, अच्चिमाला ३, पभंकरा ४, सेसं जहा चंदस्स, णवरं सूरवडिंसए विमाणे जाव णो चेव णं मेहुणवत्तियाए ॥सू०१३॥

छाया—तावत् चन्द्रस्य खलु भदन्त ! ज्योतिषेन्द्रस्य जौतिषराजस्य कति अग्र महिष्यः प्रज्ञप्ताः ? तावत् चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः । तद्यथा-चन्द्रप्रभा १, ज्योत्स्नाभा अर्चिर्मालिः ३ प्रभंकरा ४ तत्र खलु एकैकस्या देव्याः चतस्रश्चतस्रो देवी साहस्र्यः परि-वारः प्रज्ञप्तः । प्रभवः खलु ताः एकैका देवी अन्यानि चत्वारि चत्वारि देवी सहस्राणि परिवारं विकुर्वितुम् । । एवमेव सपूर्वापरेण षोडश देवी सहस्राणि, तदेतत् त्रुटिकम् । तावत् प्रभुः खलु भदन्त । चन्द्र जौतिषेन्द्रः ज्यौतिषराजः-चन्द्रावतंसके विमाणे सभायां सुधर्मायां त्रुटिकेन सार्द्धंदिव्यान् भोगभोगान् भुञ्जानो विहर्त्तुम् ? नायमर्थः समर्थः । तावत् कथं भदन्त ! स नो प्रभुः जोतिषेन्द्रो ज्यौतिषराजः चन्द्रावतंसके विमाने सभायां सुधर्मायां त्रुटिकेन सार्द्धं दिव्यान् भोगभोगान् भुञ्जानो विहर्त्तुम् ? तावत् चन्द्रस्य खलु ज्यौति-षेन्द्रस्य जौतिषराजस्य चन्द्रावतंसके विमाने सभायां सुधर्मायां माणवकेषु चैत्यस्तम्भेषु वज्रमयेषु गोलवृत्तसमुद्रकेषु बहूनि जिनसक्थीनि (जिनास्थिनि) संनिक्षिप्तानि तिष्ठन्ति, तानि खलु चन्द्रस्य जौतिषेन्द्रस्य ज्यौतिषराजस्य, अन्येषां च बहूनां ज्यौतिषिकाणां देवानां-च देवीनां च अर्चनीयानि वन्दनोयानि सत्करणीयानि सम्माननीयानि कल्याणानि माङ्गल्यानि दैवतानि चैत्यानि पर्युपासनीयानि. एवं खलु नो प्रभुश्चन्द्रः ज्यौतिषेन्द्रः ज्यौति-षराजः चन्द्रावतंसके विमाने सभायां सुधर्मायां त्रुटिकेन सार्द्धं दिव्यान् भोगभोगान् भुञ्जानो विहर्त्तुम् ॥ प्रभुः खलु चन्द्रः ज्योतिषेन्द्रः ज्योतिषराजः चन्द्रावतंसके विमाने सभायां सुधर्मायां चान्द्रे सिंहासने चतसृभि सामानिकसाहस्रीभिः चतसृभिः अग्रमहिषीभिः सपरिवाराभिः, तिसृभि पर्षद्भि, सप्तभि अनिकैः, सप्तभिः, अनीकाधिपतिभिः. षोडशिकाभि आत्मरक्षक देवसाहस्रीभिः, अन्यैश्च बहुभिः ज्यौतिषिकैः देवैः देवीभिश्च सार्द्धं संपरिवृतः महताऽहत नाट्यगीतवादित्र तन्त्री तलतालत्रुटितघनमृदङ्गपटुप्रवादिनरवेण दिव्यान् भोगभोगान् भुञ्जानो विहर्त्तुम् केवलं परीचारणऋद्धया, नो चैव मैथुनवृत्त्या । तावत् सूर्यस्य खलु भदन्त ! ज्यौतिषेन्द्रस्य ज्यौतिषराजस्य कति अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः ? तावत् चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा-सूर्यप्रभा १, आतपा २, अर्चिर्मालिः ३, प्रभङ्करा ४, शेषं यथा चन्द्रस्य नवरं सूर्यावतंसके विमाने यावत् नो चैव खलु मैथुन वृत्त्या ॥सू०१३॥

व्याख्या:—'ता चंदस्स णं' इत्यादि, । प्रश्नसूत्रं सुगमम् । भगवानाह—चन्द्रस्य खलु ज्यौति षेन्द्रस्य ज्यौतिषराजस्य चतस्रोऽग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः । **ता इमाः**—चन्द्रप्रभा १ ज्योत्स्नाभा २, अर्चिमाली, प्रभंकरा ४ इति । सुगमं सर्वमेतत्सूत्रं तथापि भाव रूपेण व्याख्यायते—**'तत्थ णं एगमेगाए'** इत्यादि, तत्र खलु तासु चतसृषु अग्रमहिषु एकैकस्या अग्रमहिष्याश्चत्वारिचत्वारि देवी सहस्राणि परिवारइति परिवारत्वेन प्रज्ञप्तः । **'पभूण ताओ'** इत्यादि प्रभवः समर्था खलु ताः सर्वा परिवार भूताः षोडश सहस्र देव्यः प्रत्येकम् एकैका देवी अपि अन्याः चतस्रश्चतस्रो देवीः विकुर्विंतुम् समर्थाऽस्ति । एवं परिवारभूतानां देवीनां सर्वासां पूर्वापरसंमेलनेन स्वाभाविकानि षोडश देवी सहस्राणि भवन्तीति । षोडश देवी सहस्रात्मकः समूहः त्रुटिक मिति कथ्यते । त्रुटिकमित्यन्तः पुरम् । ततः त्रुटिकेन सह चन्द्रावतंसके विमाने सुधर्मसभायां चन्द्रस्य दिव्यभोगभोगानां भोगसामर्थ्ये गौतमस्य प्रश्न । भगवतो निषेधात्मकमुत्तरम्—**'नायमट्ठे समट्ठे'** इति नायमर्थः समर्थः चन्द्रदेवस्य त्रुटिकेन सार्द्ध दिव्यभोगानां भोगे सामर्थ्य नास्तीति भावः । कथं न सामर्थ्यम् ? इति गौतमस्य प्रश्नः । भगवानाह—**'ता चंदस्स णं,** इत्यादि, चन्द्रस्य चन्द्रावतंसके विमाने सुधर्मायां सभायां माणवकनाम्नि चैत्यस्तम्भे स्थितेषु वज्रमयसिक्केषु वज्रमया गोलाकाराः समुद्गकाः सन्ति तेषु जिनसक्थीनि तिष्ठन्ति, तानि च ज्यौतिषिकाणं देवानां च अर्चनवन्दन संत्कार सम्मानयोग्यानि तथा कल्याणं मङ्गल्यं दैवतं चैत्यमिति कृत्वा पर्युपासनियानि इति ते देवा मन्यन्ते अतस्तत्र चन्द्रदेवस्त्रुटिकेन सार्द्धं दिव्यभोगभोगान् भोक्तुं न समर्थः । किन्तु स ज्यौतिषेन्द्रो ज्योषिराजश्चन्द्र देव चन्द्रावतंसके विमाने सभायां सुधर्मायां चान्द्रे सिंहासने चतुर्भि सामानिक देवसहस्रैः चतसृभि सपरिवाराभिरग्रमहिषीभिः, तिसृभिः पर्षद्भिः, सप्तभिरनीकैः सैन्यैः, सप्तभिरनीकाधिपतिभिः षोडशभिरात्मरक्षकदेवसाहस्रैः, अन्यैश्च बहुभिः ज्यौतिषिकै देवैः देवीभिश्च सार्द्धं संपरिवृतो भूत्वा, महताहतनाट्यगीतवादित्रतन्त्रीतलताल त्रुटित घन मृदङ्ग पटुप्रवादितरवेण, तत्र महता रवेण इत्यग्रेण सम्बन्धः, अथवा महत्त्वेन आहतानि अव्याहतानि नाट्यगीतवादित्राणि, तथा तन्त्री-वीणा, तलतालाः हस्ततालाः त्रुटितानि तूर्याणि, तथाध्वनि साधर्म्यात घनाकारो मृदङ्गः, स च पटुपुरुषेण प्रवादितः, एतेषां पदानां द्वन्द्वः, तेषां यो रवः शब्दस्तेन तच्छन्दपूर्वक मित्यर्थः दिव्यान् भोगयोग्यान् भोगान् शब्दश्रवणमात्रान् भुञ्जन् अनुभवन् विहर्तुं प्रभुः समर्थो भवति तत्तु **'परियारणिड्ढीए,** परिचारण ऋद्ध्यैव **'नो चेव णं मेहुणवत्तियाए'** न तु मैथुनवृत्तितया मैथुनवृत्त्या मैथुनबुद्धया भोक्तुं न समर्थ इति । अथ सूर्याग्रमहिषी विषय प्रश्नः । भगवानाह—सूर्यस्यापि चतस्रोऽग्रमहिष्यः, तद्यथा **सूरप्पभा'** इत्यादि सूर्यप्रभा १ आतपा २ अर्चिर्माली ३ प्रभंकरा ४ इति । **सेसं जहा चंदस्स** 'शेषं सर्वं यथा चन्द्रस्य तथाऽवसेयम् नवरं विशेषः केवल मेतावानेव अत्र 'सूर्यावतंसके

विमाने' इति पठनीयम्। शेषं जाव' यावत् 'नो चेव णं मेहुणवत्तियाए' इति पर्यन्तं सर्वं चन्द्रदेववर्णनवदेव वाच्यमिति ॥ सू० १३॥

ज्यौतिष्क देवदेवीनां स्थितिविषयं सूत्रमाह 'ता जोइसियाणं' इत्यादि ।

मूलम्—ता जोइसियाणं भंते देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता। जहण्णेणं अट्ठ भाग पलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं, वाससयसहस्समब्भहियं। ता जोइसिणीणं भंते! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता! ता जहण्णेणं अट्ठ भागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्ध पलिओवमं, पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं। ता चंदविमाणे णं भंते देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता। जहण्णेणं चउब्भागपलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं वास सयसहस्समब्भहियं। ता चंदविमाणेणं भंते! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? जहण्णे णं चउब्भागपलिओवमं उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं, पण्णासाए वाससहस्सेहिं अब्भहियं। ता सूर विमाणेणं भंते देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता। जहण्णेणं चउब्भाग पलिओवमं, उक्कोसेणं पलिओवमं वाससहस्समब्भहियं। ता सूरविमाणेणं भंते! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता। जहण्णेणं चउब्भागपलिओवमं, उक्को सेणं अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिं अब्भहियं। ता गहविमाणेणं भंते! देवाणं केवइं कालं ठिई पण्णत्ता। जहण्णेणं चउब्भागपलिओवमं उक्कोसेणं पलिओवमं। ता गहविमाणेणं भंते! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता! जहण्णेणं चउब्भागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्ध पलिओवमं। ता णक्खत्तविमाणेणं भंते देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? जहण्णेणं चउब्भागपलिओवमं, उक्कोसेणं अद्धपलिओवमं। ता णक्खत्तविमाणेणं भंते! देवीणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता? जहण्णेणं अट्ठभागपलिओवमं उक्कोसेणं चउब्भाग पलिओवमं ता ताराविमाणे णं भंते'! देवाणं पुच्छा, जहण्णे णं अट्ठभागपलिओवमं, उक्कोसेणं चउब्भागपलिओवमं। ता ताराविमाणेणं भंते! देवीणं पुच्छा, जहण्णेणं अट्ठभाग पलिओवमं उक्कोसेणं साइरेग अट्ठभागपलिओवमं ॥सू० १४॥

छाया—तावत् ज्योतिषिकाणां भदन्त! देवानां कियत्कं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता? जघन्येन अष्ट भागपल्योपमम्, उत्कर्षेण पल्योपमम् वर्षशतसहस्राभ्यधिकम्। तावत् ज्यौतिषिकीणां भदन्त! देवीनां कियत्कं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता? जघन्येन अष्ट भाग पल्योपमम् उत्कर्षेण अर्द्धं पल्योपमम् पञ्चाशता वर्ष सहस्रैरभ्यधिकम्। तावत् चन्द्रविमाने खलु भदन्त! देवानां कियत्कं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता जघन्येन चतुर्भाग पल्योपमम् उत्कर्षेण पल्योपमम् वर्षशतसहस्राभ्यधिकम् तावत् चन्द्रविमाने खलु भदन्त! देवीनां कियत्कं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता? जघन्येन चतुर्भागपल्योपमम् उत्कर्षेण अर्द्धपल्योपमं पञ्चाशता

वर्षसहस्रैरभ्यधिकम्। तावत् सूर्यविमाने खलु भदन्त! देवानां कियत्कं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता? जघन्येन चतुर्भागपल्योपमम्, उत्कर्षेण पल्योपम वर्षसहस्राभ्यधिकम् तावत् सूर्यविमाने खलु भदन्त! देवीनां कियत्कं काल स्थितिः प्रज्ञप्ता? जघन्येन चतुर्भाग पल्योपमम्, उत्कर्षेण अर्द्धपल्योपमं पञ्चभिर्वर्षशतैरभ्यधिकम् तावत् ग्रहविमाने खलु भदन्त! देवानां कियत्कं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता? जघन्येन चतुर्भागपल्योपमम् उत्कर्षेण पल्योपमम् तावत् ग्रहविमाने खलु भदन्त! देवीनां कियत्कं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता? जघन्येन चतुर्भागपल्योपमम्, उत्कर्षेण अर्द्धपल्योपमम्। तावत् नक्षत्र विमाने खलु भदन्त! देवानां कियत्कं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता? जघन्येन चतुर्भागपल्योपमम्, उत्कर्षेण पल्योपमम् तावत् नक्षत्रविमाने खलु भदन्त! देवीनां कियत्कं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता? जघन्येन अष्ट भागपल्योपमम् उत्कर्षेण चतुर्भागपल्योपमम् तावत् ताराविमाने खलु भदन्त! देवानां पृच्छा जघन्येन अष्ट भागपल्योपमम् उत्कर्षेण चतुर्भागपल्योपमम्। तावत् तारा विमाने खलु भदन्त। देवीनां कियत्कं कालं स्थितिः प्रज्ञप्ता? तावत् जघन्येन अष्ट भागपल्योपमम्, उत्कर्षेण सातिरेकाष्टभागपल्योपमम् ॥४॥

व्याख्या—अत्र ज्यौतिष्कदेवदेवीनां स्थितिकथनं वर्त्तते, तद्विषयकोऽत्र प्रश्नः—'ता जोइसियाणं' इत्यादि, सामान्य ज्यौतिष्कविषये पृच्छति भगवानाह—'जहण्णेणं, इत्यादि, ज्यौतिष्काणां स्थितिः जघन्येन अष्टभागपल्योपमा, पल्योपमस्याष्टमभागपरिमिता उत्कर्षेण शतसहस्रवर्षाधिकपल्योपमप्रमाणा लक्ष वर्षाधिकमेकं पल्योपमं स्थितिः। ज्यौतिष्कदेवीनां स्थितिः जघन्येन पूर्वोक्तैव अष्टभागपल्योपमा पल्योपमस्याष्टमभागपरिमिता, उत्कर्षेण पञ्चाशद्वर्षसहस्रैरधिकाऽर्द्धपल्योपमा। चन्द्रविमानस्थितदेवानां स्थितिर्जघन्येन चतुर्भागपल्योपमा पल्योपमस्य चतुर्थभागपरिमिता, उत्कर्षेण शतसहस्रवर्षैरधिका पल्योपमप्रमाणा लक्षवर्षाधिकं पल्योपमं स्थितिः। चन्द्र विमानगतदेवीनां च स्थिति र्जघन्येन चतुर्भागपल्योपमा, ऊत्कर्षेण पञ्चाशद्वर्षसहस्रैरधिकाऽर्द्धपल्योपमा। 'ता सूरविमाणेणं' इत्यादि, सूर्यविमानगत देवानां स्थितिर्जघन्येन चतुर्भागपल्योपमा, उत्कर्षेण सहस्रवर्षाधिक पल्योपमप्रमाणा। तद्वत देवीनां स्थितिर्जघन्येन चतुर्भागपल्योपमा, उत्कर्षेण पञ्चशत वर्षैरधिकाऽर्द्धपल्योपमप्रमाणा। 'ता गहविमाणेण' इत्यादि, ग्रहविमानगतदेवानां स्थितिर्जघन्येन चतुर्भागपल्योपमा, उत्कर्षेण पल्योपमपरिमिता। ग्रहविमानगतदेवीनां स्थितिर्जघन्येन चतुर्भाग पल्योपमा, उत्कर्षेणार्द्ध पल्योपमप्रमाणा। 'ता णक्खत्तविमाणेणं' इत्यादि, नक्षत्रविमानगतदेवानां स्थितिर्जघन्येन चतुर्भागपल्योपमा उत्कर्षेण अर्द्ध पल्योपमप्रमाणा, देवीनां अष्टभागपल्योपमा, पल्योपमस्याष्टमो भागः, उत्कर्षेण चतुर्भागपल्योपमप्रमाणा पल्योपमस्य चतुर्थभागः। 'ता तारा विमाणेणं' इत्यादि, तारा विमानगतदेवानां स्थितिर्जघन्येन अष्टभागपल्योपमा, उत्कर्षेण चतुर्भागपल्योपमप्रमाणा। तद्वतद्देवीनां स्थितिर्जघन्येन अष्टभागपल्योपमा, उत्कर्षेण सातिरेकेति किञ्चिदधिकाष्टभागपल्योपमप्रमाणेति ॥ सूत्र १४ ॥

अथ चन्द्रादीनामल्पबहुत्वविषयं सूत्रमाह—'ता एएसिणं' इत्यादि ।

मूलम्—ता एएसि णं चंदिमसूरियगहगणणक्खत्ततारारूवाणं भंते ! कयरे कयरेहिंतो अप्पा वा बहुया वा तुल्लावा विसेसाहिया वा। ता चंदा य सूराय एसणं दो वि तुल्ला सव्वत्थोवा, णक्खत्ता संखिज्ज गुणा, गहा संखिज्ज गुणा तारा संखिज्ज गुणा, ॥सू० १५॥

अट्ठरसमं पाहुडं समत्तं ॥१८॥

छाया—तावत् एतेषां खलु चन्द्रसूर्यग्रहगणनक्षत्रतारारूपाणां कतमे कतमेभ्यः अल्पा वा बहुका वा तुल्या वा विशेषाधिका वा ? तावत् चन्द्राश्च सूर्याश्च एते खलु द्वयेऽपि तुल्याः सर्वस्तोकाः, नक्षत्राणि संख्येय गुणानि, ग्रहाः संख्येयगुणाः, ताराः संख्येय गुणा ॥ सू० ॥१५॥

अष्टादशं प्राभृत समाप्तम् ॥१८॥

व्याख्या—चन्द्रादीनामल्पबहुत्वविषयः प्रश्नः । भगवानाह—'चंदाय सूराय' इत्यादि, चन्द्राश्च सूर्याश्च, एते उभयेऽपि परस्परं तुल्याः सर्वस्तोकाः, सर्वस्तोकत्वेन तुल्याः । नक्षत्राणि संख्येयगुणानि चन्द्र सूर्येभ्योऽधिकानि, ग्रहाः नक्षत्रेभ्यः संख्येयगुणा अधिकाः, ताराः संख्येयगुणा ग्रहेभ्योऽधिका इति ॥१५॥

॥ इति श्री जैनाचार्य जैनधर्मदिवाकर पूज्य श्री घासीलालव्रतिविरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रज्ञप्ति प्रकाशिकाख्यायां व्याख्याया मष्टादशं प्राभृतं समाप्तम् ॥ १८ ॥

॥ एकोनविंशतितमं प्राभृतम् ॥

व्याख्यातमष्टादशं प्राभृतम्, तत्र चन्द्रसूर्यादीनामुच्चत्वप्रतिपादनपूर्वकं तेषां परस्पर-मणुत्वतुल्यत्व–विमानसंस्थानतत्प्रमाण–विमानवाहक देव–शीघ्रगतिमन्दगति–तदृद्धि–तारा-न्तराग्रमहिषी–स्थिति–तदल्प बहुत्वानि प्ररूपितानि । अथैकोनविंशतितमं प्राभृतं व्याख्यायते, अत्रायमर्थाधिकारः–पूर्वं द्वारगाथायामुक्तम्–"सूरिया कइ आहिए" सूर्याः कति आख्याता इत्यत्र जम्बूद्वीपधातकी खण्डादौ चन्द्रसूर्यग्रहगणनक्षत्रताराख्याणां संख्यां प्रतिपादयन्निदमादिमं सूत्रमाह–'ता कइणं चंदिमसूरिया' इत्यादि ।

मूलम्—ता कइणं चंदिमसूरिया सव्वलोयं ओभासंति उज्जोवेंति तवेंति पभासेंति आहिएति वएज्जा, तत्थ खलु इमाओ दुवालसपडिवत्तीओ पण्णत्ताओ–तत्थेगे एवमाहंसु–ता एगे चंदे एगे सूरे सव्व लोयंसि ओभासेइ १ उज्जोवेइ २ तवेइ ३, पभासेइ ४, एगे एवमाहंसु १ । एगे पुण एवमाहंसु–ता तिण्णि चंदा तिण्णि सूरा सव्वलोयंसि ओभासेंति ४, एगे एवमाहंसु २ । एगे पुण एवमाहंसु–ता आउट्ठिं चंदा आउट्ठिं सूरा सव्वलोयंसि ओभासेंति ४, एगे एव माहंसु ३ । एवं एएणं अभिलावेणं जहा तइए पाहुडे दीव समुद्दाणं दुवालस पडिवत्तीओ ताओ चेव इहंपि चंदिमसूरियाणं णेयव्वा जाव वावत्तरं चंदसहस्सं वावत्तरं सूरसहस्सं सव्वलोयं ओभासेंति ४,

सत्तचंदा सत्त सूरा ४। दसचंदा दससूरा ५। वारसचंदा वारससूरा ६। वायालीसं चंदा वायालीसं सूरा ७। वावत्तरिं चंदा वावत्तरिं सूरा ८। वायालीसं चंदसयं वायालीसं सूरसयं ९। वावत्तरं चंदसयं वावत्तरं सूरसयं १०। वायालीसं चंदसहस्सं वायालीसं सूरसहस्सं ११। एगे पुण एवमाहंसु वावत्तरं चंदसहस्सं वावत्तरं सूरसहस्सं सव्वलोयंसि ओभासेंति उज्जोवेंति तवेंति पभासेंति, एगे एवमाहंसु १२)

वयं पुण एवं वयामो–ता अयण्णं जंबुद्दीवे दीवे जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ते ता जंबुद्दीवे दीवे दो चंदा पभासेंसु वा पभासेंति वा पभासिस्संति वा, जहा जीवाभिगमे जाव ताराओ,

दो सूरिया तविंसु वा तवेंति वा तविस्संतिवा । छप्पण्णं णक्खत्ता जोयं जोइंसु वा जोएंति वा जोइस्संतिवा । छावत्तरिं गहसयं चारं चरिंसु वा चरेइ चरिस्सइवा । एगं सयसहस्सं, तेत्तीसं सहस्सा, णव सया पण्णासा तारागण कोडीकोडीणं सोभं सोभिंसु वा सोभेंति वा सोभिस्संति वा। गाहाओ–"दो चंदा दो सूरा णक्खत्ता खलु हवंति छप्पण्णा । वावत्तरं गहसयं जंबुद्दीवे वियारीणं, ॥१॥ एगं च सयसहस्सं, तेत्तीसं खलु भवे सहस्साइ । णव य सया पण्णासा, तारागणा कोडिकोडीणं ॥२॥

ता जंबुद्दीवेणं दीवे लवणे नामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठइ । ता लवणेणं भंते समुद्दे किं समचक्कवालसंठाणसंठिए विसमचक्कवालसंठाणसंठिए ? ता लवणेणं समुद्दे समचक्कवालसंठाणसंठिए नो विसमचक्क-

वालसंठाणसंठिए । ता लवणे णं समुद्दे केवइए चक्कवालविक्खंभेण ? केवइए परिक्खेवेणं आहिए ? ति वएज्जा ? ता दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं, पण्णरस जोयणसयसहस्साइं एक्कासीइं च सहस्साइं सयं च उणयालं किंचि विसेसूणं परिक्खवेणं आहिएत्ति वएज्जा । ता लवणेणं समुद्दे केवइया चंदा पभासिसुवा ३ एवं पुच्छा जाव केवइयाओ तारागण कोडि कोडीओ सोभं सोभिसुवा ३ ? ता लवणेणं समुद्दे चत्तारि चंदा पभासिसुवा ३ जहा जीवाभिगमे जाव ताराओ

चत्तारि सूरिया तविंसुवा ३ वारस णक्खत्तसयं जोयं जोइंसुवा ३, तिण्णिवा वण्णा महग्गहसया चारं चरिसुवा ३ दो सयसहस्सा सत्तट्ठिं च सहस्सा णव य सया तारा गण कोडि कोडीणं सोभं सोभिसु वा गाहाओ--पण्णरस सय सहस्सा एक्कासीयं सयं चऊताले । किंचि विसेसेणूणा लवणोदहिणोपरि क्खेवा ॥१॥ चत्तारि चेव चंदा, चत्तारि य सूरिया लवणतोये । वारस णक्खत्तसयं, गहाण तिण्णेव वा वण्णा ॥२॥ दो चेव सय-सहस्सा, सत्तट्ठिं खलु भवे सहस्साइं । णव य सया लावण जले, तारागणकोडि कोडीणं ॥३॥"

ता लवणसमुद्दं धायईसंडे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ । ता धायई संडेणं दीवे किं समचक्कवालसंठिए विसमचक्कवालसंठिए ? ता समचक्कवालसंठिए णो विसमचक्कवालसंठिए । ता धायई संडे दीवे केवइए चक्कवालविक्खंभेणं, एवं विक्खंभो परिक्खेवो जोइसं जहा जीवाभिगमे जाव ताराओ–

केवइए परिक्खेणं आहिए तिवएज्जा ? ता चत्तारि जोयण सयसहस्साइं चक्क-वाल विक्खंभेणं उगतालीसं जोयण सयसहस्साइं दस य सहस्साइं णव य एगट्ठे जोयण सए किंचि विसेसूणे परिक्खेवेणं आहिए तिवएज्जा । धायईसंडेणं दीवे केवइया चंदा पभासिसु वा ३ पुच्छा तहेव, धायई संडेणं दीवे वारस चंदा पभासिसु वा ३ वारस सूरिया तवेंसु वा ३, तिण्णि छत्तीसा णक्खत सया जोयं जोइंसु वा ३ एगं छप्पण्णं महग्गहसहस्सं चारं चरिंसु वा ३, अट्ठसय सहस्सा तिण्णि सहस्साइं सत्त य सयाइं तारागण कोडि कोडीणं सोभं सोभिंसु वा ३ गाहाओ--"धायइसंडपरिरओ ईताल दसुत्तरा सय सहस्सा । णव य सया एगट्ठा, किंचि विसेसेण परिहीणा ॥१॥ चउवीसं ससिर-विणो, णक्खत्त सया य तिण्णि छत्तीसा एगं च गहसहस्सं, छप्पण्णं धायई संडे ॥२॥ अट्ठेव सयसहस्सा, तिण्णि सहस्साइं सत्तय सयाइं । धायइसंडे दीवे तारागण कोडि कोडीणं ॥३॥

ता धायइसंडं णं दीवं कालोएणं णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समता संपरिक्खित्ता णं चिट्ठइ । ता कालोए णं समुद्दे किं समचक्कवाल संठिए विसमचक्कवाल संठिए ? समचक्कवालसंठिए णो विसमचक्कवालसंठिए । एवं विक्खंभो परिक्खेवो जोइसं च जहा जीवाभिगमे तहा भाणियव्वं जाव ताराओ–

ता कालोएण समुद्दे केवइए चक्कवालविक्खंभेणं ? केवइए परिक्खेवेणं आहिए-तिवएज्जा ? ता कालोएणं समुद्दे अट्ठ जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं पण्णत्ते, एक्काणउइं जोयणसयसहस्साइं, सत्तरिं च सहस्साइं, छच्च पंचुत्तरे जोयणसए किंचि विसेसाहिए परिक्खेवेणं आहिए-ति वएज्जा। ता कालोएणं समुद्दे केवइया चंदा पभा-सिंसु वा ३ पुच्छा, ता कालोएणं समुद्दे बायालीसं चंदा पभासिंसु वा ३ बायालीसं सूरिया तविंसु ३, एक्कारस छावत्तरा णक्खत्तसया जोयं जाइंसु वा ३, तिन्नि सहस्सा छच्च छण्णउया महग्गहसया चारं चरिंसु वा ३ अट्ठावीसं च सयसहस्साइं बारस सहस्साइं नव य सयाइं पण्णासा तारागण कोडो कोडीओ सोभं सोभिंसु वा सोभंति वा सोभिस्संति वा, गाहाओ-"एक्काणउईसत्तराइं सहस्साइं परिरओ तस्स। अहियाइं छच्च पंचुत्तराइं कालोदहिवरस्स ॥१॥ बायालीसं चंदा, बायालीसं च दिणयरा दित्ता। कालोद-हिम्मि एए, चरंति संबद्धलेसागा ॥२॥ णक्खत्तसहस्सं एगमेव छावत्तरं च सयमण्णं। छच्चसया छण्णउया, महग्गहा तिण्णि य सहस्सा ॥३॥ अट्ठावीसं कालोदहिम्मि बारस य सहस्साइं। णव य सया पण्णासा तारागण कोडि कोडीणं ॥४॥"

ता कालो यं णं समुद्दं पुक्खरवरे णामं दिवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ। ता पुक्खरवरेणं दीवे किं समचक्कवाल संठिए विसमचक्कवालसंठिए ? ता समचक्कवालसंठिए नो विसमचक्कवालसंठिए। एवं विक्खंभो परिक्खेवो जोइसं जहा जीवाभिगमे जाव ताराओ ॥

ता पुक्खरवरेणं दीवे केवइए समचक्कवालविक्खंभेणं ? केवइए परिक्खेवेणं ? ता सोलस जोयण सयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं, एगा जोयण कोडी बाणउइं च सय-सहस्साइं अउणावन्नं च सहस्साइं अट्ठचउ णउयाइं जोयणसयाइं परिक्खेवेणं आहि-एतिवएज्जा। ता पुक्खरवरेणं दीवे केवइया चंदा पभासिंसु वा ३, पुच्छा तहेव। ता चोयाल चंदसयं पभासेंसु वा ३, चोयालं सूरियाणं सयं तविंसु वा ३ चत्तारि सहस्साइं बत्तीसं च णक्खत्ता जोयं जोइंसु वा ३, बारस सहस्साइं छच्च बोवत्तरा महग्गहसया चारं चरिंसु वा ३, छण्णउइं सयसहस्साइं चोयालीसं सहस्साइं चत्तारि य सयाइं तारागण कोडि कोडोओ सोभं सोभिंसु वा ३। गाहाओ-"कोडीबाणउई खलु, अउणाण-उइं भवे सहस्साइं। अट्ठसया चउणउया य परिरओ पोक्खरवरस्स ॥१॥ चोत्तालं चंदसयं, चोत्तालं चेव सूरियाण सयं। पोक्खरवर दीवम्मि च चरंति एए पभासंता ॥२॥ चत्तारि सहस्साइं, छत्तीसं चेव हुंति णक्खत्ता। छच्छसया बावत्तर, महग्गहा बारह सहस्सा ॥३॥ छण्णउइ सयसहस्सा, चोत्तालीसं खलु भवे सहस्साइं। चत्तारि य सया खलु, तारागण कोडि कोडीणं ॥४॥

ता पुक्खरवरस्स णं दीवस्स बहुमज्झदेसभाए माणुसुत्तरे णामं पव्वए वलयागारसंठाणसंठिए, जे णं पुक्खरवरदीवं दुहा विभयमाणे विभयमाणे चिट्ठइ, तं जहा—अब्भितरपुक्खरद्धं च, बाहिरपुक्खरद्धं च। ता अब्भितरपुक्खरद्धेणं किं समचक्कवालसंठिए विसमचक्कवालसंठिए ? ता समचक्कवाल संठिए णो विसमचक्कवाल-संठिए। एवं विक्खंभो, परिक्खेवो जोइसं जाव ताराओ—

ता अब्भितरपुक्खरद्धेणं केवइए चक्कवालविक्खंभेणं ? केवइए परिक्खेवेणं आहिए त्तिवएज्जा। ता अट्ठ जोयण सयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेण, "एक्का जोयण कोडी, बायालीसं च सयसहस्साइं। तीसं च सहस्साइं दो अउणापण्णे जोयणसए ॥१॥ परिक्खेवेणं आहिए त्तिवएज्जा। ता अब्भितरपुक्खरद्धेणं केवइया चं० २ पभासिंसु वा ३, केवइया सूरा तविंसु वा ३ पुच्छा, बावत्तरिं चंदा पभासिंसु वा ३, बावत्तरि सूरिया तविंसु वा ३, दोण्णि सोला नक्खत्त सहस्सा जोयं जोइंसु वा ३, छा महग्गह सहस्सा तिन्नि य छत्तीसा चारं चरिंसुवा ३ अडयालीसं सय सहस्सा बावीसं च सहस्सा दोण्णिय सया तारागण कोडि कोडीओ सोभं सोभिंसु वा ३)

ता मणुस्सखेत्तेणं केवइए आयामविक्खंभेणं ? एवं विक्खंभो, परिरओ जोइसं, ताराओ जाव एगससीपरिवारो तारागण कोडि कोडीणं ॥गा०४०॥

केवइए परिक्खेवेणं आहिए तिवएज्जा ? ता पणयालीसं जोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं एक्का जोयण कोडी, बायालीसं च सयसहस्साइं। दोण्णिय अउण्णा पण्णे, जोयणसए, परिक्खेवेणं आहिएत्ति वएज्जा। ता मणुस्सखेत्तेणं केवइया चंदा पभासिंसु वा ३ पुच्छा तहेव, ता बत्तीसं चंदसयं पभसिंसु वा ३ बत्तीसं सूरियाण सयं तवइंसु वा ३. तिण्णि सहस्सा छच्च छण्णउया णक्खत्तसया जोयं जोइंसुवा ३ एक्कारससहस्सा छच्च सोलस महग्गहसया चारं चरिंसुवा ३. अट्ठासीइं सयसहस्साइं चत्तालीसं च सहस्सा सत्त य सया तारागण कोडि कोडीओ सोभ सोभिंसु वा ३ गाहाओ–अट्ठेव सय सहस्सा अब्भितर पुक्खरवरस्स विक्खंभो। पणयाल सयसहस्सा, माणुसखेत्तस्स विक्खंभो ॥१॥ कोडीबायालीसं सहस्स दुसया य अउण पण्णासा। माणुसखेत्त परिरओ, एमेव य पुक्खर द्धस्स ॥२॥ बावत्तरिं च चंदा, बावत्तरिमेव दिणयरा दित्ता। पुक्खर दीवड्ढे, चरति एए पभासेंता ॥३॥ तिण्णिसया छत्तीसा, छच्च सहस्सा महग्गहाणं तु। णक्खत्ताणं तु भवे सोलाइं दुवे सहस्साइं ॥४॥ अडयाल सयसहस्सा, बावीसं खलु भवे सहस्साइं। दो य सय पुक्खरद्धे, तारागण कोडि कोडीणं ५ बत्तीसं चंदसयं. बत्तीसं चेव सूरियाण सया सयलं माणुसलोयं चरंति एते पभासेंता ६ एक्कारस य सहस्सा छप्पियसोला महग्गहाणं तु। छच्च सया छण्णउया, णक्खत्ता तिण्णि य सहस्सा ७ अट्ठसीइचत्ताइं सयसहस्साइं मणुयलोयंमि। सत्तय सया अणूणा तारागण कोडि कोडीणं ८ एसो तारापिंडो, सव्व समासेण मणुयलोयंमि। बहिया पण ताराओ, जिणेहिं भणिया असंखेज्जा ९ एवइयं तार-ग्गं, जं भणियं माणुसंमि लोयम्मि। चारं कलंबुया पुप्फसंठियं जोइसं चरइ १० रवि ससि गहणक्खत्ता, एवइया आहिया मणुयलोए जेसिं णामा गोत्तं न पागया पण्णवेहिंति ११ छावट्ठिपिडगाइं, चंदाइच्चाण मणुयलोयम्मि। दो चंदा दो सूरा हुंति एक्केक्कए पिडए ॥१२॥ छावट्ठि पिडगाइं, णक्खत्ताणं तु मणुयलोयंमि। छप्पण्णं णक्खत्ता, हुंति एक्केक्कए पिडए ॥१३॥ छावट्ठि पिडगाइं, महागहाणं तु मणुयलोयंमि। छावत्तरं गहसयं होई एक्केक्कए पिडए ॥१४॥ चत्तारिय पंतीओ, चंदाइच्चाण मणुयलोयंमि। छावट्ठि च होइ एक्किया पंती ॥१५॥ छप्पण्णं पंतीओ णक्खत्ताणं मणुयलोयंमि। छावट्ठि छावट्ठि हवंति एक्किक्किया पंती ॥१६॥ छावत्तरं गहाणं, पंतिसयं हवइ मणुयलोयम्मि। छावट्ठिं छावट्ठिं हवइ य एक्किक्किया पंती ॥१७॥ ते मेरुमणुचरंता, पयाहिणा वत्तमंडला सव्वे। अणवट्ठि य जोएहिं, चंदा सूरा

गहगणाय ॥१८॥ णक्खत्त तारगाणं, अवट्ठिया मंडला मुणेयव्वा । तेऽविय पयाहिण वत्तमेव मेरु अणु चरति ॥१९॥ रयणियरदिणयराणं, उड्ढं च अहेय संकमो नत्थि । मंडलसंकमणं पुण, सब्भितर बाहिरंतिरिए ॥२०॥ रयणियरदिणयराणं णक्खत्ताण मह गहाणं च, चारविसेसेण भवे, सुहदुक्ख विही मणुस्साणं ॥२१॥ तेसिं पविसंताणं तावक्खेत्त तु वड्ढए णियय । तेणेव कमेण पुणो, परिहायइ निक्खमं ताणं ॥२२॥ तेसिं कलंवुया पुप्फसंठिया हुंति तावक्खेत्त पहा अंतो य संकुडा बाहि वित्थंडा चंदसूराणं ॥२३॥ केणं वड्ढइ चंदो, परिहाणी केण होइ चंदस्स । कालो वा जोण्हो वा, केणणुभावेण चंदस्स ! ॥२४॥ किण्ह राहुविमाणं निच्च चंदेण होइ अविरहियं, चउरंगुलमसंपत्तं, हिच्चा चंदस्स तं चरइ ॥२५॥ बावट्ठिं बावट्ठिं दिवसे दिवसे उ सुक्कपक्खस्स । जं परिवड्ढइ चंदो खवेइ तं चेव कालेणं ॥२६॥ पण्णरसइभागेण य, चदं पण्णरसमेव तं वरइ पण्णरसभागेणय पुणो वि तं चेव वक्कमइ ॥२७॥ एवं वड्ढइ चंदो परिहाणी एव होइ चंदस्स कालो जुण्हो वा, एवणुभावेण चंदस्स ॥२८॥ अते मणुस्स खेत्ते हवंति चारोवगा उ उववण्णा । पंचविहा जोइसिया, चंदा सूरा गहगणाय ॥२९॥ तेण परं जे सेसा, चंदाइच्च गह तारणक्खत्ता । नत्थि गईणवि चारो, अवट्टिया ते मुणेयव्वा ॥३०॥ एवं जंबुद्दीवे, दुगुणा लवणे चउग्गुणा होंति लवणा य ति गुणिया, ससिसूरा धायई संडे ॥३१॥ दो चंदा इह दीवे, चत्तारि य सायरे लवण तोए । धायइसंडे दीवे बारस चंदा य सूरा य ॥३२॥ धायइसंडप्पभिइसु, उद्दिट्टा तिगुणिया भवे चंदा । आइल्ल चंदा सहिया, अणंतराणंतरे खेत्ते ॥३३॥ रिक्खग्गह तारग्गं, दीवसमुद्दे जइच्छसिणा उं । तस्स सीहिं तग्गुणियं, रिक्खग्गह तारग्गं तु ॥३४॥ बहिया उ माणुसनगस्स चंद सूराण वट्टिया जोण्हा । चंदा अभिई जुत्ता, सूरा पुण हुंति पुस्सेहिं ॥३५॥ चंदाओ सूरस्स य, सूरा चंदस्स अतरं होइ । पण्णास सहस्साइं तु जोयणाणं अणूणाइं ॥३६॥ सूरस्स य सूरस्स य ससिणो य अतरं होइ । बाहिं तु माणुसनगस्स जोयणाणं सयसहस्सं ॥३७॥ सूरंतरिया चंदा, चंदंतरिया य दिणयरा दित्ता । चित्तंतरलेसागा, सुहलेसा मंदलेसा य ॥३८॥ अट्ठासीइं च गहा, अट्ठावीसं च हुंति नक्खत्ता । एगससी परिवारो, एतो ताराण वोच्छामि ॥३९॥ छावट्ठि सहस्साइं णवचेव सयाइं पंच सतराइं । एगससी परिवारो तारागण कोडि कोडीणं ॥४०॥ सू०१॥

(जम्बूद्वीपा दारभ्य पुष्करार्द्ध द्वीप पर्यन्त ज्यौतिश्चक्रप्रतिपादकं प्रथमसूत्र मूलम् ॥)

छाया—तावत् कति खलु चन्द्र सूर्याः सर्वलोके अवभासयन्ति उद्द्योतयन्ति, तापयन्ति, प्रभासयन्ति ? आख्यातमिती वदेत् । तत्र खलु इमा द्वादश प्रतिपत्तयः प्रज्ञप्ता, तत्रैके एवमाहुः तावत् एकश्चन्द्र एक सूर्यः सर्वलोकम् अवभासते १ उद्द्योतयति २, तापयति ३, प्रभासयति ४, एके एवमाहुः ॥१॥ एके पुनरेव माहुः-तावत् त्रयश्चन्द्राः त्रयः सूर्याः सर्वलोके अवभासन्ते ४, एके एवमाहुः ॥२॥ एके पुनरेव माहुः-तावत् अर्द्धचतुर्थाश्चन्द्राः अर्द्धचतुर्थाः सूर्याः सर्वलोकं अवभासन्ते ४, एके एवमाहुः ।३। एवम् एतेन अभिलापेन यथा, तृतीये प्राभृते द्वीपसमुद्राणां द्वादश प्रतिप्रत्तयस्ता एव इहापि चन्द्रसूर्याणां ज्ञातव्याः यावत् द्वासप्ततं चन्द्रसहस्र द्वासप्ततं सूर्यसहस्र सर्वलोकम् अवभासन्ते ४ सप्त चन्द्राः सप्त सूर्याः ।४। दश चन्द्राः दश सूर्याः ५ द्वादश चन्द्राः द्वादश सूर्याः ।६। द्विचत्वारिंश चन्द्राः द्विचत्वारिंशत् सूर्याः ॥७॥ द्वासप्ततिश्चन्द्राः द्वासप्तति सूर्या ॥८॥ द्वि चत्वारिंशत्कं

चन्द्रशतं द्विचत्वारिंशत्कं सूर्यशतम् ॥९॥ द्वासप्ततं चन्द्रशतकं द्वासप्तकं सूर्यशतम् १० द्विचत्वारिंशं चन्द्रसहस्रं द्विचत्वारिंशं सूर्यसहस्रम् ।११। एके पुनरेव माहुः द्वा सप्ततं चन्द्र सहस्रं द्वा सप्ततं सूर्यसहस्रं सर्वलोकम् अवभासयन्ति उद्द्योतयन्ति तापयन्ति प्रभासयन्ति, एके एवमाहुः

वयं पुनरेवं वदामः-तावत् अयं खलु जम्बूद्वीपो यावत् परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः। तावत्जम्बूद्वीपे द्वीपे द्वौ चन्द्रो प्रभासयतां वा, प्रभासयतो वा, प्रभासयिष्यतो वा यथा जीवाभिगमे यावत् ताराः

द्वौ सूर्यौ अतापयतां वा, तापयतोवा तापयिष्यतोवा। षट् पञ्चाशत् नक्षत्राणि योगम् अयुञ्जन्वा, युञ्जन्ति वा, योक्ष्यन्तिवा षट् सप्तति ग्रहशत चारमचरत् वा चरतिवा, चरिष्यति वा एकं शतसहस्र, त्रयस्त्रिंशत् सहस्राणि, नवशतानि पञ्चाशानि तारागण कोटी कोटीनां शोभामशोभन्तवा, शोभन्ते वा, शोभिष्यन्ते वा। गाथे-द्वौ चन्द्रौ द्वौ सूर्यौ नक्षत्राणि खलु भवन्ति षट् पञ्चाशत् द्वा सप्ततिकं ग्रहशतं, जम्बूद्वीपे विचारिणाम् ॥१॥ एकं च शतसहस्रं, त्रयस्त्रिंशत् खलु भवन्ति सहस्राणि। नव च शतानि पञ्चाशानि, तारागण कोटी कोटीनाम् २॥

तावत् जम्बूद्वीपं खलु द्वीपं लवणो नाम समुद्रः वृत्तः वलयाकारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्य खलु तिष्ठति। तावत् लवणः खलु भदन्त ! समुद्रः किं समचक्रवालसंस्थानसंस्थितः विषमचक्रवालसंस्थानसंस्थितः ? तावत् लवणः खलु समुद्रः समचक्रवालसंस्थानसंस्थितः नो विषमचक्रवालसंस्थानसंस्थितः. तावत् लवणः खलु समुद्रः कियत्कः चक्रवालविष्कम्भेण ? कियत्कः परिक्षेपेण, आख्यातः ? इति वदेत्। तावत् योजनशतसहस्रे चक्रवालविष्कम्भेण, पञ्चदश योजनशत सहस्राणि एकाशीतिं च सहस्राणि शतं च एकोनचत्वारिंशं किञ्चिद्विशेषोनं परिक्षेपेण आख्यात इति वदेत्। तावत् लवणे खलु समुद्रे कियत्काश्चन्द्राः प्रभासयन् वा ३ एवं पृच्छा यावत् कियत्यः तारागण कोटी कोट्यः शोभा मशोभन्तवा३ तावत् लवणे खलु समुद्रे चत्वार श्चन्द्राः प्रभासयन्ति वा३ यथा जीवाभिगमे यावत् ताराः

चत्वारः सूर्याः आतापयन् वा३'द्वादशकं नक्षत्रशतं योगम अयुञ्जन्वा३ त्रीणि द्वा पञ्चाशानि महाग्रहशतानि चारम् अचरन् वा३ द्वे शतसहस्रे सप्तषष्टिश्च सहस्राणि नवच शतानि तारागण कोटी कोटीनां शोभाम् अशोभन्तवा ३ गाथाः-पञ्चदश शत सहस्राणि, एकाशीतिः शतानि च एकोनचत्वारिंशानि किञ्चिद्विशेषोनानि लवणोदधेः परिक्षेपः ॥१॥ चत्वार श्चैव चन्द्राः, चत्वारश्च सूर्या लवणतोये। द्वादशकं नक्षत्रशतं ग्रहाणां त्रीण्येव द्वा पञ्चाशानि ॥२। द्वे चैव शतसहस्रे, सप्तषष्टिः खलु भवन्ति सहस्राणि। नव च शतानि लवणजले, तारागणकोटीकोटीनाम् ॥३॥

तावत् लवणसमुद्रं धातकीषण्डो नाम द्वीपो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्य खलु तिष्ठति। तावत् धातकीषण्डः खलु द्वीपः किं सम चक्रवालसंस्थितः विषमचक्रवालसंस्थितः ? तावत् समचक्रवालसंस्थितः नो विषमचक्रवाल-

संस्थितः। तावत् धातकीषण्डः खलु द्वीपः कियत्कः चक्रवालविष्कम्भेण ? एवं विष्कम्भः परिक्षेपः ज्योतिषं यथा जीवाभिगमे यावत् ताराः

कियत्कः परिक्षेपेण आख्यातः ? इति वदेत्। तावत् चत्वारि योजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेण एकचत्वारिंशत योजनशतसहस्राणि, दश च सहस्राणि, नव च एक षष्टानि योजन शतानि किञ्चिद्विशेषोनानि परिक्षेपेण आख्यात इति वदेत्। धातकी षण्डे खलु द्वीपे कियत्का श्चन्द्राः प्रभासयन् वा ३ पृच्छा तथैव धातकीषण्डे खलु द्वीपे द्वादश चन्द्राः प्रभासयन् वा ३, द्वादश सूर्याः अतापयन् वा ३, त्रीणि षट् त्रिंशानि नक्षत्र-शतानि योगमयुञ्जन् वा ३ एकक षट् पञ्चाशं महाग्रहसहस्रं चारमचरन् वा ३, अष्ट शतसहस्राणि, त्रीणि सहस्राणि, सप्तच शतानि तारागणकोटीकोटीनां शोभामशोभन्त वा ३। गाथाः-"धातकीषण्डपरिरयः एक चत्वारिंशद् दशोत्तराणि शतसहस्राणि। नव च शतानि एक षष्टानि किञ्चिद्विशेषेण परिहीनानि ॥१॥ चतुर्विंशति शशिरवयः, नक्षत्र शतानि च त्रीणि षट् त्रिंशानि। एकं च शतसहस्रं, षट् पञ्चाशत् धातकी षण्डे ॥२॥ अष्टैव शतसहस्राणि, त्रीणि सहस्राणि, सप्त च शतानि धातकी षण्डे द्वीपे, तारा गण कोटि कोटीनाम् ॥३॥

तावत् धातकीषण्डं खलु द्वीप कालोदः खलु समुद्रो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसं-स्थितः सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्य तिष्ठति। तावत् कालोदः खलु समुद्रः किं समच-क्रवालसंस्थितः विषमचक्रवालसंस्थितः ? समचक्रवालसंस्थितः नो विषमचक्रवाल संस्थितः एवं विष्कम्भः परिक्षेपः ज्यौतिषं च यथा यथा जीवाभिगमे तथा भणितव्यं यावत्ताराः।

(तावत् कालोदः खलु समुद्रः कियत्कः चक्रवालविष्कम्भेण ? कियत्कः परिक्षेपेण आख्यात ? इति वदेत् तावत् कालोद खलु समुद्रः अष्ट योजनशतसहस्राणि चक्रवाल विष्कम्भेण प्रज्ञप्तः, एकनवति योजनशतसहस्राणि, सप्ततिश्च सहस्राणि षट् पञ्चो-त्तराणि योजनशतानि किञ्चिद्विशेषाधिकानि परिक्षेपेण आख्यात इति वदेत्। तावत् कालोदे खलु समुद्रे कियन्तः चन्द्राः प्राभासयन् वा इति पृच्छा, तावत् कालोदे खलु समुद्रे द्विचत्वारिंशत् चन्द्राः प्राभासयन् ३ द्विचत्वारिंशत् सूर्याः अतापयन् वा ३ एकादश षट् सप्ततानि नक्षत्रशतानि योगमयुञ्जन् ३, त्रीणि सहस्राणि षट् षण्णव-तानि चारमचरन् वा ३, अष्टाविंशतिश्च शतसहस्राणि, द्वादश सहस्राणि, नवचशतानि पञ्चाशत् तारागण कोटीकोट्यः शोभामशोभन् वा शोभन्ते वा शोभिष्यन्ति वा। गाथाः-"एकानवतिः सप्ततानि सहस्राणि परिरयस्तस्य। अधिकानि षट् पञ्चोत्तराणि कालोदधि वरस्य ॥१॥ द्विचत्वारिंशच्चन्द्राः, द्विचत्वारिंशच्च दिनकरा दीप्ताः। कालोदधौ एते, चरन्ति संबद्धलेश्याकाः ॥२॥ नक्षत्रसहस्रमेकमेव षट् सप्ततं च शतमन्यत्। षट् च शतानि षण्णवतानि महाग्रहाः त्रीणि च सहस्राणि ॥३॥ अष्टाविंशतिः कालोदधौ द्वादश च सहस्राणि नव च शतानि पञ्चाशतानि तारागण कोटि कोटीनाम् ॥४॥

तावत् कालोदं खलु समुद्रं पुष्करवरो नाम द्वीपो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्य तिष्ठति। तावत् पुष्करवरः खलु द्वीपः किं समचक्र-वालसंस्थित ? विषमचक्रवालसंस्थितः ? तावत् समचक्रवालसंस्थितः नो विषम चक्रवालसंस्थितः। एवं विष्कम्भः, परिक्षेपः, ज्यौतिषं यथा जीवाभिगमे यावत्ताराः।

तावत् पुष्करवरः खलु द्वीपः कियान् समचक्रवालविष्कम्भेण ? कियान् परिक्षेपेण ? तावत् पोडश योजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेण, एका योजन कोटी द्वानवतिश्च शतसहस्राणि, एकोनपञ्चाशच्च सहस्राणि अष्ट चतुर्नवतानि योजनशतानि परिक्षेपेण आख्यात इति वदेत् । तावत् पुष्करवरे खलु द्वीपे कियन्तश्चन्द्राः प्राभासयन् वा ३, पृच्छा तथैव, तावत् चतुश्चत्वारिंशं चन्द्रशतं प्राभासयन् वा ३, चतुश्चत्वारिंशं सूर्यशतमताप-यत् वा ३, चत्वारि सहस्राणि द्वात्रिंशच्च नक्षत्राणि योगमयुञ्जन् वा ३, द्वादश सह-स्राणि षट् च द्वासप्ततानि महाग्रहशतानि चारमचरन् वा, ३, पण्णवतिः शतसहस्राणि चतुश्चत्वारिंशत् सहस्राणि चत्वारि च शतानि तारागण कोटिकोट्यः शोभामशोभन्त वा ३, । गाथाः- "कोटीद्वानवतिः खलु एकोनपञ्चाशत् भवन्ति सहस्राणि, अष्ट शतानि चतुर्नवतानि च परिरयः पुष्करवरस्य ॥१॥ चतुश्चत्वारिंशं चन्द्रशतं चतुश्चत्वारिंशं च सूर्याणां शतम् । पुष्करवरद्वीपे च चरन्ति एते प्रभासयन्तः ॥२॥ चत्वारि सहस्राणि षट् त्रिंशच्चैव भवन्ति नक्षत्राणि । षट् च शतानि द्वा सप्ततानि, महाग्रहा द्वादशसहस्राणि ॥३॥ पण्णवतिः शतसहस्राणि चतुश्चत्वारिंशद् भवन्ति सहस्राणि । चत्वारि च शतानि खलु तारागण कोटिकोटीनाम् ॥४॥

तावत् पुष्करवरस्य खलु द्वीपस्य बहुमध्यदेशभागे मानुषोत्तरो नाम पर्वतः वलया-कारसंस्थानसंस्थितः, यः खलु पुष्करवरद्वीपं द्विधा विभजन् २ तिष्ठति, तद्यथा-अभ्यन्तरपुष्करार्द्धं च बाह्यपुष्करार्द्धं च । तावत् आभ्यन्तरपुष्करार्द्धं खलु किं समचक्र-वालसंस्थितं विषमचक्रवालसंस्थितम् ? तावत् समचक्रवालसंस्थितं नो विषमचक्रवाल संस्थितम् । एवं विष्कम्भः, परिक्षेपः ज्यौतिषं यावत् ताराः ।

(तावत् आभ्यन्तरपुष्करार्द्धं खलु कियत् चक्रवालविष्कम्भेण ? कियत् परिक्षेपेण आख्यातम् ? इतिवदेत् । तावत् अष्ट योजनशतसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेण, एका योजन कोटी, द्विचत्वारिंशच्च शतसहस्राणि त्रिंशच्च सहस्राणि द्वे एकोनपञ्चाशे योजनशते ॥१॥ परिक्षेपेण आख्यात इति वदेत् । तावत् आभ्यन्तर पुष्करार्द्धं खलु कियन्तश्चन्द्राः प्राभासयन् वा ३, कियन्तः सूर्या अतापयन् वा ३, ? पृच्छा, द्वासप्ततिश्चन्द्राः प्रभासयन् वा ३, द्वासप्ततिः सूर्या अतापयन् वा ३, द्वे पोडशे नक्षत्रसहस्रे योगमयुञ्जातां वा ३, षड् महाग्रह सहस्राणि, त्रीणि च षट्त्रिंशानि चारमचरन् वा, ३, अष्ट चत्वारिंशत् शत-सहस्राणि, द्वात्रिंशच्च सहस्राणि, द्वे च शते तारागणकोटिकोट्यः शोभामशोभन्त वा ३,)

तावत् मनुष्यक्षेत्रं खलु कियत् आयामविष्कम्भेण ? एवं विष्कम्भः परिरयः, ज्यौतिषं, ताराः-जाव एकशशिपरिवारः तारागण कोटि कोटीनाम् ॥गा०४०॥

(कियत् परिक्षेपेण आख्यातम् ? इति वदेत्, पञ्च चत्वारिंशत् योजनशतसहस्राणि आयामविष्कम्भेण एका योजन कोटी द्विचत्वारिंशच्च शत सहस्राणि, द्वे च एकोन पञ्चाशे योजन शते ॥१॥ परिक्षेपेण आख्यातम् इति वदेत् ! तावत् मनुष्यक्षेत्रे खलु कियन्तश्चन्द्राः प्राभासयन् वा ३, पृच्छा तथैव, तावत् द्वात्रिंशत्कं चन्द्रशतं प्राभासयन् वा ३, द्वात्रि-शत्कं सूर्याणां शतमतापयत् वा ३, त्रीणि सहस्राणि, षट् षण्णवतानि नक्षत्रशतानि योग-मयुञ्जन् वा ३, एकादश सहस्राणि षट् च षोडशानि महाग्रहशतानि चारमचरन् वा ३, अष्टाशीतिः शत सहस्राणि, चत्वारिंशच्च सहस्राणि, सप्त च शतानि तारागण कोटिकोट्यः

शोभाम शोभन्त वा ३, । गाथाः–"अष्टैव शतसहस्राणि, आभ्यन्तर पुष्करवरस्य विष्कम्भः । पञ्चाशत् शत सहस्राणि, मानुषक्षेत्रस्य विष्कम्भः ॥१॥ कोटिः द्विचत्वारिंशतसहस्राणि द्वेशते च एकोन पञ्चाशे । मानुषक्षेत्रपरिरयः, एवमेव च पुष्करार्द्धस्य ॥२॥ द्वासप्ततिश्च चन्द्राः, द्वासप्ततिरेव दिनकरा दीप्ताः । पुष्करवरद्वीपार्द्धे चरन्ति एते प्रभासयन्त ॥३॥ त्रीणि शतानि षट् त्रिंशत् षट् सहस्राणि महाग्रहाणां तु नक्षत्राणां तु भवन्ति षोडशे द्वे सहस्रे ।४॥ अष्ट चत्वारिंशत् शतसहस्राणि, द्वाविंशतिः खलु भवन्ति सहस्राणि, द्वे च शते पुष्करार्द्धे, तारागण कोटि कोटीनाम् ॥५॥ द्वात्रिंशत्कं चन्द्रशतं, द्वात्रिंशत्कं चैव सूर्याणां शतम् । सकलं मनुष्यलोकं, चरन्ति एते प्रभासयन्तः ॥६॥ एकादश च सहस्राणि, षडपि च षोडशानि महाग्रहाणां तु । षट् शतानि षण्णवतानि, नक्षत्राणि त्रीणि च सहस्राणि ॥७॥ अष्टाशीतिः चत्वारिंशानि शतसहस्राणि मनुजलोके । सप्त च शतानि अन्यूनानि, तारागण कोटि कोटीनाम् ॥८॥ एष तारा पिण्डः सर्वसमासेन मनुजलोके । बहिः पुनस्ताराः, जिनैर्भणिता असंख्येयाः ॥९॥ इयत्कं ताराग्रं, यद् भणितं मानुषे लोके । चार कलम्बुकपुष्प संस्थितं ज्यौतिषं चरति ॥१०॥ रवि शशि ग्रहनक्षत्राणि, इयन्ति आख्यातानि मनुजलोके । येषां नाम गोत्रं न प्राकृताः प्रज्ञपयिष्यन्ति ॥११॥ षट् षष्टिः पिटकानि, चन्द्रादित्यानां मनुजलोके । द्वौ चन्द्रौ द्वौ सूर्यौ च, भवत एकैकस्मिन् पिटके ।१२॥ षट् षष्टि पिटकानि, नक्षत्राणां तु मनुजलोके । षट् पञ्चाशद् नक्षत्राणि, भवन्ति एकैकस्मिन् पिटके ॥१३॥ षट् षष्टिः पिटकानि, महाग्रहाणां तु मनुजलोके । षट् सप्ततं ग्रहशतं, भवति एकैकस्मिन् पिटके ॥१४॥ चतस्रश्च पङ्क्तयः चन्द्रादित्यानां मनुजलोके । षट् षष्टिः षट्षष्टिश्च भवन्ति एकैकस्यां पंक्तौ ॥१५॥ षट् पञ्चाशत् पंक्तयः, नक्षत्राणां तु मनुजलोके । षट् षष्टिः षट् षष्टिः भवन्ति एकैकस्यां पङ्क्तौ ॥१६॥ षट् सप्ततं ग्रहाणां पङ्क्तिशतं भवति मनुजलोके । षट् षष्टिः षट् षष्टिः भवन्ति एकैकस्यां पंक्तौ ॥१७॥ ते मेरु मनुचरन्तः प्रदक्षिणावर्त्तमण्डलाः सर्वे । अनवस्थितयोगैः, चन्द्राः सूर्याः ग्रहगणाश्च ॥१८॥ नक्षत्र तारकाणाम्, अवस्थितानि मण्डलानि ज्ञातव्यानि । ते अपि च प्रदक्षिणावर्त्तमेव मेरुमनुचरन्ति ॥१९॥ रजनीकरदिनकराणां, ऊर्ध्वमधश्च संक्रमो नास्ति । मण्डलसंक्रमणं पुनः, साभ्यन्तर बाह्य तिर्यक् ॥२०॥ रजनीकरदिनकराणां, नक्षत्राणां महाग्रहाणां च । चारविशेषेण भवेत् सुख दुःख विधिर्मनुष्याणाम् ॥२१॥ तेषां प्रविशतां तापक्षेत्रं तु वर्द्धते नियतम् । तेनैव क्रमेण पुनः परिहीयते निष्क्रमताम् ॥२२॥ तेषां कलम्बुक (कदम्बक) पुष्पसंस्थिता भवन्ति तापक्षेत्र पथाः । अन्तश्च संकुचिता बहिर्विस्तृता चन्द्रसूर्याणाम् ॥२३॥ केन वर्द्धते चन्द्र, परिहानिः केन भवति चन्द्रस्य । कालो वा ज्योत्स्ना वा, केनानुभावेन चन्द्रस्य ॥२४॥ कृष्णं राहु विमानं, नित्यं चन्द्रेण भवति अविरहितम् । चतुरङ्गुलमसंप्राप्तं हित्वा चन्द्रस्य तत् चरति ॥२५॥ द्वाषष्टिं द्वाषष्टिं दिवसे दिवसे तु शुक्लपक्षस्य । यत् परिवर्द्धते चन्द्रः क्षपयति तेनैव कालेन ॥२६॥ पञ्चदश भागेन च चन्द्र पञ्चदशमेव तत् वृणुते । पञ्चदश भागेन च पुनरपि तदेव अपक्राम्यति ॥२७॥ एवं वर्द्धते चन्द्रः, परिहानिरेव भवति चन्द्रस्य । कालो वा ज्योत्स्ना वा, एवमनुभावेन चन्द्रस्य ॥२८॥ अन्तर्मनुष्यक्षेत्रे, भवन्ति चारोपगास्तु उपपन्ना । पञ्चविधा ज्योतिष्काः, चन्द्राः सूर्या ग्रहगणाश्च ॥२९॥ तेन परं यानि शेषाणि चन्द्रादित्य ग्रहतारानक्षत्राणि । नास्ति गतिर्नापि चारः, अवस्थितानि

तानि ज्ञातव्यानि ॥३०॥ एवं जम्बूद्वीपे, द्विगुणा लवणे चतुर्गुणा भवन्ति। लवणाच्च त्रिगुणिताः शशि सूर्या धातकी षण्डे ।३१॥ द्वौ चन्द्रौ इह द्वीपे, चत्वारश्च सागरे लवणतोये। धातकीषण्डे द्वीपे द्वादश चन्द्राश्च सूर्याश्च ॥३२॥ धातकी षण्ड प्रभृतिषु, उद्दिष्टास्त्रिगुणिता भवन्ति चन्द्राः । आद्यचन्द्रसहिता. अनन्तरानन्तरे क्षेत्रे ॥३३॥ ऋक्ष्य ग्रहताराग्रं, द्वीपसमुद्रे यदीच्छसि ज्ञातुम्। तच्छशिभिस्तद् गुणितं ऋक्षग्रहतारकाग्रं तु ॥३४॥ वहिस्तु मानुषनगस्य चन्द्रसूर्याणामवस्थिता ज्योत्स्ना। चन्द्रा अभिजिद् युक्ताः सूर्याः पुनर्भवन्ति पुष्यैः ॥३५॥ चन्द्रात् सूर्यस्य च सूर्यात् चन्द्रस्य अन्तरं भवति। पञ्चाशत्सहस्राणि तु योजनानामन्यूनानि ॥३६॥

सूर्यस्य च सूर्यस्य च शशिनः शशिनश्च अन्तरं भवति। वहिस्तु मानुषनगस्य, योजनानां शतसहस्रम् ॥३७॥ सूर्यान्तरिताश्चन्द्राः, चन्द्रान्तरिताश्च दिनकरा दीप्ताः। चित्रान्तरलेश्याकाः, शुभलेश्या मन्दलेश्याश्च ॥३८॥ अष्टाशीतिश्चग्रहा अष्टाविंशतिश्च भवन्ति नक्षत्राणि। एक शशि परिवारः इतस्ताराणां वक्ष्यामि ॥३९॥ षट्षष्टिः सहस्राणि, नव चैव शतानि पञ्च सप्ततानि एक शशि परिवारः, तारा गणकोटि कोटीनाम्॥४०॥सू० १॥

व्याख्या--'ता कइ णं' इत्यादि। 'ता' तावत् 'कइणं' कति खलु 'चंदिमसूरिया' चन्द्रसूर्याः 'सव्वलोयं' सर्वलोकम् 'ओभासेंति उज्जोवेंति' तवेंति पभासेंति' अव भासयन्ति, उद्योतयन्ति, तापयन्ति-प्रकाशयन्ति, प्रभासयन्ति, एतद्विषये भवता किम् 'आहियं' आख्यातम् ? कथितम्' ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन्। एवं गौतमेन पृष्टे भगवान् एतद्विषये या द्वादश प्रतिपत्तयः भवन्ति ताः प्रदर्शयति–'तत्थ खलु' इत्यादि, 'तत्थ' तत्र चन्द्र सूर्य संख्याविषये खलु 'इमाओ' इमाः वक्ष्यमाणस्वरूपाः 'बारस पडिवत्तीओ' द्वादश प्रतिपत्तयः परतीर्थिकमतरूपाः 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ताः । ता एवाह–'तत्थेगे' इत्यादि, 'तत्थ' तत्र द्वादश प्रतिपत्तिवादिनां मध्ये 'एगे' एके केचन परमतवादिनः 'एवं' एवम्–वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहु कथयन्ति, किमाहुरित्याह– 'ता एगे' इत्यादि, 'ता' तावत् 'एगे चंदे एगे सूरे सव्वलोयं' एकश्चन्द्रः एकः सूर्यः सर्वलोकम् 'ओभासेइ' इत्यादि, अवभासयति, उद्द्योतयति तापयति प्रभासयति, उपसहारमाह–'एगे' एके प्रथमप्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' एवम्-पूर्वोक्त प्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति ।१। द्वितीयप्रत्तिमाह–'एगे पुण' एके द्वितीयाः पुनः 'एवमाहंसु' एवमाहुः 'ता' तावत् 'तिण्णि चंदा तिण्णि सुरा सव्वलोयं ओभासंति ३' त्रयश्चन्द्राः त्रयः सूर्याः सर्वलोकम् अवभासयन्ति उद्द्योतयन्ति तापयन्ति प्रभासयन्ति 'एगे' एवमाहंसु एके एवमाहुः ॥२। तृतीयां प्रतिपत्तिमाह– 'एगे पुण एमाहंसु' एके तृतीया एवमाहुः–'ता' तावत् 'आउट्टिं चंदा आउट्टिं सूरा' अर्द्ध चतुर्थाःसार्द्धास्त्रयश्चन्द्राः अर्द्ध चतुर्था सार्द्धास्त्रयः सूर्याः 'ओभासंति ४' अवभासयन्ति ४, 'एगे एवमाहंसु' एके एवमाहुः ।३। अथाग्रेऽतिदेशमाह–

'एवं एएणं' इत्यादि, 'एवं' एवम् एवमेव अनेनैव प्रकारेण 'एएणं' एतेन पूर्वोक्त प्रतिपत्तित्रयोक्त सदृशेन 'अभिलावेणं' अभिलापेत आलापकेन 'जहा तइए पाहुडे' यथा तृतीये प्राभृते 'दीव-समुद्दाणं दुवालसपडिवत्तीओ' द्वीपसमुद्राणां द्वादश प्रतिपत्तयः प्रोक्ताः 'ताओ चेव इहंपि' ता एव इहापि एकोनविंशतितमे प्राभृते 'चंदिमसूराणं' चन्द्रसूर्याणाम् 'णेयव्वा' ज्ञातव्याः कियत्पर्यन्त-मित्याह–'जाव' इत्यादि, 'जाव' यावत् 'बावत्तरं चंदसहस्सं बावत्तरं सूरसहस्सं' द्वासप्ततिः चन्द्रसहस्राणि द्वासप्ततिः सूर्यसहस्राणि 'ओभासेंति ३' अवभासयन्ति – । तथाहि तत्पाठः–

'सत्तचंदा' इत्यादि, चतुर्थाः चतुर्थप्रतिपत्तिवादिनः–सप्तचन्द्रा सप्तसूर्या इति कथयन्ति ॥४॥ एव पञ्चमप्रतिपत्तिवादिनः दश चन्द्राः दश सूर्या इति ॥५॥ षष्ठ प्रतिपत्तिवादिनः द्वादश चन्द्राः द्वादश 'सूर्याः ।६। सप्तमप्रतिपत्तिवादिनः द्विचत्वारिंशच्चन्द्राः द्विचत्वारिंशत् सूर्याः ॥७॥ अष्टम प्रतिपत्तिवादिनः द्वासप्ततिश्चन्द्राः द्वासप्ततिः सूर्याः ॥८॥ नवमीं प्रतिपत्तिमाह द्विचत्वारिंशं द्विचत्वारिंशदधिकं चन्द्रशतं द्विचत्वारिंशं द्विचत्वारिंशदधिकं सूर्य शतम् ।९। दशमी माह द्विसप्तति द्विसप्तत्यधिकं चन्द्रशतं द्विसप्तति द्विसप्तत्यधिकं सूर्यशतम् ।१०। एकादशीमाह द्विचत्वा-रिंशं चन्द्रसहस्रं द्विचत्वारिंशं सूर्यसहस्रमिति कथयन्ति ।११। द्वादशीं प्रतिपत्ति माह– 'एगे पुण' इत्यादि, 'एगे पुण' एके द्वादश प्रतिपत्तिवादिनः पुनः 'एवमाहंसु' एवमाहुः–'ता' तावत् 'बावत्तरं चंदसहस्सं बावत्तरं सूरसहस्सं' द्वासप्ततं–द्वासप्तत्यधिकं चन्द्रसहस्रं द्वासप्ततं सूर्यसहस्रम् 'सव्वलोयं' सर्वलोकम् 'ओभासेंति' ४। अवभासयन्ति, उद्द्योतयन्ति तापयन्ति प्रभासयन्ति, उपसंहारमाह–'एगे' एके द्वादश प्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' एवम्–पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु'' आहुः कथयन्ति ।१२। एता द्वादशयोऽपि प्रतिपत्तयः सर्वथा मिथ्या० अतो भगवान् एताभ्यः सर्वाभ्यः पृथग्भूतं स्वमतं प्रदर्शयति–वयं पुण' इत्यादि 'वयं पुण' वयं तु एवं एवम्–वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयामो' वदामः कथयामः। तदेव प्रदर्श्यते–'ता अयण्णं' इत्यादिना 'ता' तावत् 'अयण्णं' अयं खलु शास्त्रप्रसिद्धः' जंबुद्दीवे दीवे' जम्बूद्वीपो द्वीपः मध्यजम्बूद्वीपः 'जाव परिक्खेवेणं पण्णत्ते' यावत् परिक्षेपेण प्रज्ञप्तः, यावत् पदेन जम्बूद्वीपवर्णनं सर्वमत्र वाच्यम्, अस्य व्याख्यानमपि तत्रोक्तवदेव कर्तव्यम् । भगवानाह–'ता' तावत् जंबूदीवे दीवे' जम्बूद्वीपे द्वीपे 'दो चंदा पभासेंसु वा पभासेंति वा पभासिस्संति वा' द्वौ चन्द्रौ प्राभासयतां वा प्रभासयतो वा प्रभासयिष्यतो वा, अथ जीवाभिगमस्यातिदेशमाह 'जहा' इत्यादि, 'जहा जीवाभिगमे' यथा जीवाभिगमे जम्बूद्वीपगत चन्द्रसूर्यग्रहगणनक्षत्रताराणां सख्या प्रोक्ता तथैव इहापि वाच्या, कियत्पर्यन्त मित्याह–'जाव' इत्यादि 'जाव ताराओ' यावत् ताराः सूर्य संख्यात आरभ्य यावत् ताराणां सख्या प्रोक्ता तावत्पर्यन्तमिति भावः । तथाहि तत्पाठः—

'दो सूरिया' इत्यादि, दो सूरिया तविंसुवा ३' जम्बूद्वीपे द्वौ सूर्यौ अतापयताम् तापयतोवा तापयिष्यतो वा 'छप्पण्णं णक्खत्ता जोयं जोइंसु वा' षट् पञ्चाशत्

जम्बूद्वीपे–एकैकस्य चन्द्रस्य अष्टाविंशतिरष्टाविंशति नक्षत्राणि परिवार इति मिलित्वा नक्षत्राणि चन्द्र सूर्याभ्यां सह योगमयुञ्जन् वा, युञ्जन्ति वा योक्ष्यन्ति वा । 'छावत्तरि गहसयं' षट् सप्ततं ग्रहशतं षट् सप्तत्यधिकमेकं शतं ग्रहाणाम्, एकैकस्य चन्द्रस्याष्टाशीतिरष्टाशीतिर्ग्रहाः परिवार इति चन्द्रस्य परिवारमिलने षट् सप्तत्यधिकशतसंख्यका ग्रहाः 'चारं चरिंसु वा ३' चारेमचरन् वा चरन्ति वा चरिष्यन्तिवा । 'एगं सयसहस्सं' इत्यादि तारा संख्या, तथाहि–एकं लक्षम् त्रयस्त्रिंशच्च सहस्राणि, नव शतानि पञ्चादशधिकानि (१३३९५०) 'तारा गण कोडीकोडीओ' तारागण कोटीकोव्यः 'सोभं सोभिंसु वा३' शोभाम् अशोभन्तवेति अकुर्वन् वा कुर्वन्ति वा करिष्यन्ति वा । अत्र जम्बूद्वीपे एकैकस्य चन्द्रस्य कोटी कोटीनाम् षट् षष्टि सहस्राणि, पञ्च सप्तत्यधिकानि नव शतानि (६६९७५) तारा परिवार इति द्वयोश्चन्द्रयोस्तारा परिवारः–एकं लक्षं त्रयस्त्रिंशत्सहस्राणि नव शतानि पञ्चाशदधिकानि कोटी कोटीनाम् (१३३९५०), एतत्परिमितो जायते । अत्र पूर्वोक्त जम्बूद्वीपगत चन्द्रादिसंख्या प्रतिपादिके द्वे संग्रहगाये प्रदर्श्येते–'दो चंदा दो सूरा' इत्यादि, अनयोरर्थः पूर्व मागत इति न पुनर्व्याख्यायते ॥२॥ इति । नवरं–'जंबुद्दीवे वियारीणं' इति 'वियारीणं' इत्यत्र 'णं' वाक्यालङ्कारे 'वियारी' विचारि, अत्र लिङ्ग विपरिणामेन नपुंसलिङ्गं वाच्यम्, तेन द्वासप्ततिकं ग्रहशतं विचारि चन्द्रसूर्यैः सह विचरणशीलं वर्त्तते इति व्याख्येयम् । इति जीवाभिगमोक्त पाठव्याख्या ।

इमं जम्बूद्वीपं को नाम समुद्रः परिवेष्टय स्थितः इति सूत्रकार आह–'ता जंबुद्दीवं णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जंबुद्दीवं णं दीवं' जम्बूद्वीपं द्वीपं 'लवणे नामं समुद्दे' लवणो नाम समुद्रः 'वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए' वृत्तः गोलाकारः वृत्तस्तु मध्य पूर्णोऽपि स्यात् यथा पूर्णिमायां चन्द्रमण्डलम् अतोऽत्र प्रश्नः स्यात्–किदृशो वृत्तः ? इत्याह–वलयाकारसंस्थानसंस्थितः वलये यथा अन्तः शुषिरः वहिर्गोलाकारः, तत्सदृशाकारकं यत्संस्थानं, तेन संस्थितः वलयाकारसंस्थानयुक्तः सः 'सव्वओ समंता' सर्वतः समन्तात् सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च 'संपरिक्खित्ताणं' संपरिक्षिप्य सम्यक्तया परिवेष्टच खलु 'चिट्ठइ' तिष्ठति–वर्त्तते इति एवं भगवता प्रतिपादिते श्रीगौतमो पुन र्लवणसमुद्रविषये पृच्छति–'ता लवणेणं' समुद्दे' इत्यादि 'ता' तावत् 'भंते' हे भदन्त ! 'लवणे णं समुद्दे' लवणः खलु समुद्रः 'किं समचक्कवालसंठाणसंठिए' किं समचक्रवालसंस्थानसंस्थितः समत्वेन चक्रवाल-संस्थानयुक्तः, अथवा किम् 'विसमचक्कवालसंठाणसंठिए' विषमचक्रवालसंस्थानसंस्थितः विषमत्वेन न्यूनाधिकत्वेन चक्रवालसंस्थानयुक्तो वर्त्तते ? एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह–'ता लवण-समुद्दे' इत्यादि, 'ता' तावत् 'लवणसमुद्दे' लवण समुद्रः 'समचक्कवालसंठाणसंठिए' समचक्र-वालसंस्थानसंस्थितः किन्तु 'नो विसमचक्कवालसंठाणसंठिए' नो विषमचक्रवालसंस्थानसं-

स्थितः । पुनर्गौतमः पृच्छति-'ता लवणसमुद्दे' इत्यादि स लवणसमुद्रश्चक्रवालविष्कम्भेण परिक्षेपेण च कियत्परिमितोऽस्ति ? इति प्रश्नः । भगवानाह- 'ता दो जोयणसयसहस्साइं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'दो जोयणसयसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं' स लवणसमुद्रः चक्रवाल विष्कम्भपरिमाणेन लक्ष द्वययोजनपरिमितो वर्त्तते, परिक्षेपेण च 'पण्णरस' इत्यादि, पञ्च-दश योजनलक्षाणि एकाऽशीतिश्च सहस्राणि एकोनचत्वारिंशदधिकं शतं च (१५८११३९) किञ्चिद्विशेषोनं किञ्चिन्न्यूनम्, एतावत्परिमितो वर्त्तते । तथाहि-लवणसमुद्रस्य चक्रवालविष्कम्भः एकतोऽपरतश्चेति द्विधातो द्वि द्वियोजन लक्षपरिमित इति जातानि चत्वारि लक्षाणि, पुनश्च तस्य सर्वमध्ये जम्बूद्वीपो वर्त्तते, स लक्षयोजनपरिमित इति सर्वसंमेलने जातानि पञ्च लक्षाणि (५०००००), एतेषां वर्गे कृते जायन्ते पञ्च विंशतिस्तदुपरि च दश शून्यानि (२५००००००-०००००), अस्य राशे र्दशभिर्गुणने जातानि पञ्चविंशते-रूपरि-एकादश शून्यानि (२५०००००००००००), एतस्य राशेर्वर्गमूलानयने लभ्यन्ते-पञ्चदश लक्षाणि, एकाशीति सहस्राणि, अष्टात्रिंशदधिकमेकं शतं च (१५८११३८) शेषमुद्धरति-षड् विंशतिर्लक्षाणि, चतुर्विंशतिः सहस्राणि, षट् पञ्चाशदधिकानि नव शतानि (२६२४९५६) छेदराशिरेकत्रिंशल्लक्षाणि, द्वाषष्टिः सहस्राणि, षट् सप्तत्यधिके द्वे शते (३१६२२७६), एतदपेक्षया योजनमेकमूनं लभ्यते तत उक्तम्- 'सयं च उणयालं किंचि विसेसूणं' इति चन्द्रादीनां विषये गौतमः पृच्छति-ता लवणेणं' इत्यादि, लवणसमुद्रे कति चन्द्राः प्राभासयन् ३, कति सूर्या अतापयन् ३, कति नक्षत्राणि योगमयुञ्जन् ३, कति ग्रहाश्चारमचरन् ३, कति ताराः शोभाम् अशोभन्त ३, इति प्रश्नः । भगवानाह-'ता लवणेणं' इत्यादि 'ता' तावत् 'लवणेणं समुद्दे' लवणे खलु समुद्रे 'चत्तारि चंदा' चत्वारश्चन्द्राः-प्राभासयन् वा ३, एवं चत्वारः सूर्या अतापयन् वा ३, द्वादशकं नक्षत्रशतं योगमयुङ् वा ३, त्रीणि शतानि द्विपञ्चाशदधिकानि ग्रहाश्चारमचरन् वा ३, द्वे लक्षे, सप्तषष्टिः सहस्राणि, नव शतानि तारागण कोटी कोटयः शोभामशोभन्त वा ३, । तथाहि-नक्षत्राणि अष्टाविंशति रेकैकस्य चन्द्रस्य परिवारत्वेन सन्ति, लवणे चत्वारश्चन्द्रा इति अष्टाविंशति श्चतुर्भिर्गुण्यते जातानि द्वादशोत्तर शत संख्यकानि (११२) नक्षत्राणि । ग्रहा अष्टाशीतिरिति चतुर्भि-र्गुणने द्विपञ्चाशदधिकानि त्रीणि शतानि (३५२) ग्रहाणां भवन्ति । तारा गण कोटी कोटीनां षट् षष्टिः सहस्राणि, नव शतानि पञ्च सप्तत्यधिकानि (६६९७५) चतुर्भिर्गुणने जायते यथोक्तं ताराप्रमाणम् । अत्र लवणसमुद्रस्य विक्षेपस्य चन्द्रदीनां च प्रमाणप्रतिपादिकास्तिस्रो गाथाः सुगमा इति न व्याख्यायन्ते, इति जीवभिगमोक्त पाठव्याख्या ।

अथ लवणसमुद्रं को द्वीपः परिवेष्ट्य तिष्ठतीत्याह —'ता लवणसमुद्दं' इत्यादि 'ता' तावत् 'लवणसमुद्दं' लवणसमुद्रं धातकीषण्डो नाम द्वीपो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात् परिक्षिप्य परिवेष्ट्य तिष्ठति अस्य संस्थानविषये गौतमः पृच्छति-'ता धायईसंडेणं दीवे'

इत्यादि, सुगमम् । भगवानाह समचक्रवालसंस्थानसंस्थितः न तु विषमचक्रवालसंस्थानसंस्थितः अथ विष्कम्भपरिधिविषये गौतमस्य प्रश्नः—'ता धायईसंडेणं दीवे' इत्यादि 'ता' तावत् 'धायईसडेणं दीवे' धातकी षण्डः खलु द्वीपः 'केवइए चक्कवालविक्खंभेणं' कियान् चक्रवाल-विष्कम्भेण 'एव विक्खंभो परिक्खेवो जोइसं' एवम्—अनेन प्रकारेण धातकीषण्डस्य विष्कम्भः-परिक्षेप ज्यौतिषं ज्योतिश्चक्रम् इतिसर्वं 'जहा जीवाभिगमे जाव ताराओ' यथा जीवाभिगमे तथा तारा पर्यन्तं वाच्यम् । तथाहि तत्पाठः

'केवइए परिक्खेवेणं'—इत्यादि, सुगमम् । भगवानाह—'ता चत्तारि' इत्यादि धातकी षण्डस्य चक्रवालविष्कम्भश्चतुर्लक्षयोजनपरिमितः परिधिमाह—'इगतालीसं' इत्यादि एकचत्वारिं-शद् योजनलक्षाणि दश च सहस्राणि एक षष्ट्यधिकानि नव योजनशतानि (४११०९६१) किञ्चिद्विशेषोनानि, एतावत्परिमितः परिक्षेपो धातकी षण्डस्येति । परिधिभावना यथा जम्बू-द्वीपविष्कम्भो लक्षयोजनपरिमितः, लवणसमुद्रस्य उभय पार्श्वतो द्वे द्वे योजनलक्षे इति तानि चत्वारि लक्षाणि धातकी षण्डस्योभयतश्चत्वारि चत्वारि लक्षाणि मिलितानि भवन्ति—अष्टौ, तत एकं, चत्वारि, अष्टौ चेति मिलित्वा सर्वसंख्यया जातानि त्रयोदश लक्षाणि (१३०००००) ततोऽस्य राशेर्वर्गे कृते जातो राशिः-एककः षट्को नवक', तदुपरि च दश शून्यानि (१६९००-०००००००००) पुनरपि दशभिरेश राशि गुंण्यते जातानि पूर्वोक्ताङ्कानामुपरि एकादश शून्या नि (१६९००००००००००००) एतेषां वर्गमूलानयने लब्धानि एकचत्वारिंशल्लक्षाणि, दश सहस्राणि नवशतानि एकषष्ट्यधिकानि (४११०९६१) यथोक्तानि योजनानामिति ।

अथ धातकीषण्डगत चन्द्रादिविषये गौतमस्य प्रश्नः—'ता धायईसंडेणं दीवे' इत्यादि सुगमम् भगवानाह 'धायईसंडेणं दीवे' धातकीषण्डे खलु द्वीपे 'वारस चंदा' द्वादशचन्द्राः प्राभासयन् वा ३ । द्वादशैव सूर्या अतपयन् वा ३ । अत्र नक्षत्राणि षड्त्रिंशदधिकानि त्रीणि शतानि (३३६) योगमयुञ्जन् वा ३ । महाग्रहाः षट् पञ्चाशदधिकैकसहस्रसंख्यका (१०५६) श्चारमचरन् वा । ताराश्च—अष्टौ लक्षाणि, त्रीणि सहस्राणि सप्तच शतानि (८०३७००) कोटी कोटीनां शोभाम् अशोभन्त—अकुर्वन् वा ३. तत्कथमिति प्रदर्श्यते अत्र चन्द्रा द्वादशेति नक्षत्रसंख्या अष्टाविंशति र्द्वादशभि र्गुण्यते जायन्ते षट्त्रिंशदधिकानि त्रीणि शतानि यथोक्तानि । एवमेकस्य चन्द्रस्य यो यो ग्रहपरिवारस्तारापरिवार श्चास्ति तस्य द्वादश भिर्गुणने यथोक्ता सख्या समागच्छतीति स्वयमवगन्तव्यम् अत्र परिधेः चन्द्रादीनां च प्रमाणप्रतिपादिका स्तिस्रो गाथाः सन्ति, ताश्च सुगमाः । इति जीवाभिगमपाठव्याख्या ।

अयं धातकी षण्डः केन समुद्रेण परिवेष्टितः ? इत्याह—'ता धायईसंडेणं' इत्यादि धातकीषण्डं द्वीपं कालोदः समुद्रः परिक्षिप्य परिवेष्ट्य तिष्ठति । अस्य संस्थानविषये गौतमस्य

पृच्छा । भगवानाह—'ता धायईसंडेणं' इत्यादि तावद् धातकी पण्डो द्वीपः समचक्रवालसंस्थानसंस्थितः, नो विषमचक्रवालसंस्थानसंस्थितः । 'एवं विक्खंभो परिक्खेवो जोइसंच' अनेन प्रकारेण कालोदसमुद्रस्य विष्कम्भः, परिक्षेपः, ज्यौतिषंच 'जहा जीवाभिगमे तहा भाणियव्वं' यथा जीवाभिगमे प्रोक्तं तथा भणितव्यम् । कियत्पर्यन्तमित्याह 'जाव' इत्यादि, 'जाव ताराओ' यावत् ताराः, तारा प्रमाणपर्यन्तं पठितव्यम् तथाहि तत्पाठः—

'ता कालोएणं' इत्यादि 'ता' तावत् 'कालोएणं समुद्दे' कोलोदः खलु समुद्रः कियान् चक्रवालविष्कम्भेण कियान् परिक्षेपेण आख्यातः ? इति प्रश्नः । भगवानाह—'ता कालोएणं' इत्यादि 'ता' तावत 'कालोएणं समुद्दे' कालोदः खलु समुद्रः अष्टलक्षयोजनपरिमितश्चक्रवालविष्कम्भेण प्रज्ञप्तः । अस्य परिक्षेपः—एकनवतिर्लक्षाणि, सप्ततिः सहस्राणि, पञ्चोत्तराणि षट् शतानि च (९१७०६०५) योजनानाम्, एतावत्परिमितः किञ्चिद्विशेषाधिकः प्रोक्तः । अथ चन्द्रादिविषये प्रश्नः—'ता कालोएणं समुद्दे केवइया चंदा' इत्यादि पृच्छा । भगवानाह—'ता कालोएणं' इत्यादि, 'ता तावत् 'कालोएणं समुद्दे' कालोदे खलु समुद्रे 'वायालीसं चंदा' द्वाचत्वारिंशत् चन्द्राः प्राभासयन् वा ३, द्वाचत्वारिंशत् सूर्या अतापयन् वा ३, द्वासप्तत्यधिकानि एकादश नक्षत्रशतानि (११७२) योगमयुञ्जन् वा ३, त्रीणि सहस्राणि षण्णवत्यधिकानि षट् शतानि (३६९६) महाग्रहाणां चारमचरन् वा ३, अष्टाविंशतिशतसहस्राणि लक्षाणि, द्वादश सहस्राणि पञ्चाशद धिकानि नवशतानि (२८१२९५०) कोटी कोट्यस्ताराः शोभामशोभन्त वा ३ । शोभन्ते वा शोभिष्यन्ते वा ॥ परिक्षेपस्य गणितभावना यथा कालोदसमुद्रस्य एकतोऽपरतश्चेति द्वयोः प्रत्येकमष्टावष्टौ योजन लक्षाणीति जायन्ते षोडश लक्षाणि, धातकीषण्डस्य उभयतश्चत्वारि लक्षाणि मिलित्वाऽष्टौ लक्षाणि, एवं लवणसमुद्रस्य उभयतो द्वि द्विलक्षसद्भावाच्चत्वारि लक्षाणि, तथा जम्बूद्वीपस्य एकं लक्षम् (१६=८=४=१।) इति मिलित्वा सर्वसंख्यया एकोनत्रिंशल्लक्षाणि (२९०००००) जातानि, एतेषां वर्गे कृते जायन्ते अष्टकः, चतुष्कः, एककः, तदुपरि दशशून्यानि (८४१०००००००००००) ततो दशभिर्गुणने पूर्वोक्ताङ्कोपरि जायन्ते एकादश शून्यानि (८४१०००००००००००) एषां वर्गमूलानयने लब्धं यथोक्तम्—(९१७०६०५) शेषं-त्रिको नवकस्त्रिकस्त्रिको नवकः सप्तकः पञ्चकः (३९३३९७५) इति यदवतिष्ठते तदपेक्षया विशेषाधिकत्वमुक्तम् । नक्षत्रादीनां भावना तु नक्षत्रग्रहताराणां स्व स्व संख्यायाश्चन्द्रसूर्याणां द्वाचत्वारिंशत्त्वेन द्वाचत्वारिंशता गुणने स्व स्व संख्या समागमिष्यतीति स्वयं परिभावनीयम् । अत्र पूर्वोक्तसंख्याप्रतिपादिकाश्चतस्रो गाथाः सन्ति, ताः सुगमाः ॥ इति जीवाभिगमपाठव्याख्या ।

कालोदः समुद्रः केन वेष्टित ? इत्यत्राह—'ता कालोयं णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'कालोयं ण समुद्दं' कालोदं खलु समुद्रम् 'पुक्खरवरे णामं दीवे' पुष्करवरो नाम द्वीपो वृत्तो वलया-

कारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात् परिक्षिप्य परिवेष्ट्य तिष्ठति । अथ पुष्करवरस्य संस्थानविषये पृच्छा-'ता पुक्खरवरेणं दोवे' इत्यादि, सुगमम् । भगवानाह-'ता समचक्कवालसंठाणसंठिए' इत्यादि, स पुष्करवरद्वीपः समचक्रवालसंस्थानसंस्थितः, न तु विषमचक्रवालसंस्थानसंस्थितः इत्युत्तरम् । 'एवं विक्खंभो परिक्खेवो जोइसं जहा जीवाभिगमे जाव ताराओ' इति पुष्करवरद्वीपस्य विष्कम्भादिकं तारापर्यन्तं सर्वं जीवाभिगमोक्तवदेव विज्ञेय मितिभाव । तथाहि तत्पाठः

'ता पुक्खरवरेणं' इत्यादि, संस्थानविषयकः प्रश्नः सुगमः । भगवानाह-'ता सोलस' इत्यादि, अस्य समचक्रवालविष्कम्भः षोडश लक्षयोजनपरिमितो वर्त्तते, 'एगा जोयणकोडी' इत्यादि. असौ एका योजनकोटी, द्विनवतिर्लक्षाणि, एकोनपञ्चाशत् सहस्राणि, चतुर्नवत्यधिकानि अष्ट योजनशतानि च—(१९२४९८९४) परिक्षेपेण आख्यातः । 'ति वएज्जा' इति वदेत् स्वशिष्येभ्यः । अथ चन्द्रादीनां विषये गौतमः पृच्छति 'ता पुक्खरवरेणं दीवे' 'ता' तावत् पुष्करवरे खलु द्वीपे कियन्तश्चन्द्राः प्राभासयन् वा ३, 'पुच्छा तहेव' पृच्छा तथैव पूर्ववदेव । भगवानाह- 'ता चोयालं चंदसयं' चतुश्चत्वारिंशं चन्द्रशतं चतुश्चत्वारिंशदधिकशतसंख्यकाः (१४४) चन्द्राः प्राभासयन् वा ३, एतावन्त एव (१४४) सूर्या अतापयन् वा ३, । 'चत्तारि सहस्साइं' चत्वारि सहस्राणि 'बत्तीसं च' द्वात्रिंशच्च द्वात्रिंशदधिकानि चत्वारि सहस्राणि(४०३२) नक्षत्राणि योगमयुञ्जन् वा । 'बारस' इत्यादि, द्वादशसहस्राणि द्वात्रिंशदधिकानि षड् महाग्रहशतानि (१२६३२) चारमचरन् वा ३, । 'छण्णउई' इत्यादि, षण्णवतिर्लक्षाणि, चतुश्चत्वारिंशत् सहस्राणि चत्वारि च शतानि (९६४४४००) तारागणकोटीकोटयः शोभामशोभन्त वा ३। पुष्करवरद्वीपस्य परिधेर्गणितभावना त्वियम्-पुष्करवरद्वीपस्य पूर्वापरतः षोडश षोडश लक्षाणीति जातानि द्वात्रिंशत् लक्षाणि (३२) कालोदधेः पूर्वापरतोऽष्टावष्टौ इति षोडशलक्षाणि १६, धातकीषण्डस्य पूर्वापरतश्चत्वारि चत्वारि लक्षाणीति जायन्तेऽष्टौ लक्षाणि ८, लवणसमुद्रस्य पूर्वापरतो द्वे द्वे लक्षे इति चत्वारि लक्षाणि ४, जम्बूद्वीपस्य चैकं लक्षम्-(३२=१६=८=४=१+६१) एवं सर्वसंकलनया जातानि-एक षष्टिर्लक्षाणि (६१०००००) एतस्य राशेर्वर्गे कृते जातानि त्रिकः, सप्तकः, द्विकः, एककः, तदुपरि च दश शून्यानि (३७२१००००००००००), अस्य राशेर्दशभिर्गुणने जातानि पूर्वोक्ताङ्कोपरि एकादश शून्यानि (३७२१०००००००००००) एतेषां वर्गमूलानयने लभ्यते यथोक्तं परिधिपरिमाणम् (१९२४९८९४) इति । नक्षत्रादिपरिमाणं च एकस्य चन्द्रस्य यावान् नक्षत्रपरिवारः यावान् ग्रहपरिवार यावांश्च तारापरिवारः स स्व स्व परिवारोऽत्रत्यचन्द्रसूर्यसंख्यया चतुश्चत्वारिंशदधिकशत (१४४) रूपया गुण्यते ततः समायाति नक्षत्रादीनां स्व स्व परिवारसंख्येति स्वयं करणीयमिति । अत्र परिधि चन्द्रसूर्यादि परिमाणप्रतिपादिकाश्चतस्रो गाथाः, सन्ति, तासां व्याख्या पूर्वं सूत्रोक्तानुसारेण स्वयमूहनीयेति (जीवाभिगमपाठ व्याख्या)

अथ पुष्करवरस्य विभागद्वयं प्रदर्शयति 'ता पुक्खरवरस्स णं' इत्यादि । 'ता, तावत् 'पुक्खरवरस्स णं दीवस्स' पुष्करवरस्य पूर्वप्रदर्शितस्वरूपस्य खलु द्वीपस्य 'बहुमज्झ-देसभाए' बहुमध्यदेशभागे बहुमध्यः अत्यन्त मध्यो यो देशः क्षेत्रं तस्य भागे तत्स्थाने 'माणुसोत्तरे णामं पव्वए' मानुषोत्तरो नाम पर्वतः, किं संस्थानकः ? इत्यत्राह–'वलयागारसंठाण संठिए' वलयवदन्तः शुषिरो वहिर्गोलाकारः, एतादृशं संस्थानम् आकृतिर्यस्य स तादृशो वर्त्तते, ततः किम् ? 'जे णं' इत्यादि यः खलु मानुषोत्तरपर्वतः 'पुक्खरवरं दीवं' पुष्करवरं द्वीपम् 'दुहा विभयमाणे २ चिट्ठइ' द्विधा विभजमानः विभजमान स्तिष्ठति स्थितोऽस्ति, 'तं जहा' तद्यथा– 'अब्भितरपुक्खरद्धं च बाहिरपुक्खरद्धं च' आभ्यन्तरपुष्करार्द्धं च बाह्यपुष्करार्द्धं च मानुषो-त्तरपर्वतमाश्रित्य पुष्करवरद्वीपस्य द्वौ विभागौ आभ्यन्तरबाह्यरूपौ जातौ मानुषोत्तरपर्वता दर्वाक् यत् पुष्करार्द्धं तद् आभ्यन्तरपुष्करार्द्धम्, यन्मानुषोत्तरपर्वतात्परतस्तद् बाह्य पुष्करार्द्धम्, इति भावः । तत्र आभ्यन्तरपुष्करार्द्धस्य संस्थानादिविषये श्रीगौतम पृच्छति– 'ता अब्भितरपुक्खरद्धेणं' इत्यादि, हे भगवान् ? आभ्यन्तरपुष्करार्द्धद्वीपः किं सम-चक्रवालसंस्थानसंस्थितः विषमचक्रवालसंस्थानसंस्थितो वर्त्तते ? श्रीभगवानाह–'ता सम-चक्कवालसंठाणसंठिए' इत्यादि, तावत् स समचक्रवालसंस्थानसंस्थितोऽस्ति न तु विषम-चक्रवालसंस्थानसंस्थितः । सम्प्रति विष्कम्भपरिधिविषये गौतमस्य प्रश्नः–'ता अब्भितर-पुक्खरद्धेणं' इत्यादि प्रश्नसूत्रं सुगमम् भगवानाह–'ता अट्ठ जोयणसयसहस्साइं' इत्यादि, तावत् आभ्यन्तरपुष्करार्द्धमष्ट लक्ष योजनपरिमितं चक्रवालविष्कम्भेण तथा 'एगा जोयणकोडी' इत्यादि, एका योजनकोटी, द्वि चत्वारिंशच्च लक्षाणि, त्रिंशच्च सहस्राणि, एकोनपञ्चाशदधिके द्वे योजनशते (१४२,३०,२४०), एतावत्परिमितं परिक्षेपेण परिधिना वर्तते । अथ तद्गतचन्द्रादि विषये पृच्छा सुगमा । भगवानाह–'ता बावत्तरिं चंदा' इत्यादि, आभ्यन्तरपुष्करार्द्धे द्वा सप्ततिश्चन्द्राः प्राभासयन् वा ३, द्वा सप्ततिरेव सूर्या अता-पयन् वा ३, षोडशाधिक द्वि सहस्रसंख्यकानि (२०१६) नक्षत्राणि योगमयुञ्जन् वा ३, महाग्रहा षट् सहस्राणि षट्त्रिंशदधिकानि त्रीणि शतानि च (६३३६) चारमचरन् वा, तथा–ताराश्च कोटी कोटीनामष्ट चत्वारिंशल्लक्षाणि, द्वाविंशतिः सहस्राणि, द्वे शते च (४८२२२००) एतावत्यः शोभामशोभन्त वा ३, अथ मनुष्यक्षेत्रस्य विष्कम्भादि विषये पृच्छति– 'ता मणुस्सखेत्तेणं' इत्यादि 'ता' तावत् मनुष्यक्षेत्रं खलु अस्य समयक्षेत्रमित्यपि नाम, अत्राहोरात्रादि समयसद्भावात्, 'केवइं आयामविक्खंभेणं' कियत्परिमितमायामविष्कम्भेण अत्र जीवाभिगमस्यातिदेशमाह–'एवं' इत्यादि,,, एवं जीवाभिगमोक्त वदेवात्र–'विक्खंभो परिरओ, जोइसं ताराओ' विष्कम्भः विष्कम्भपरिमाणं, परिरयः परिधिपरिमाणं, ज्योतिषं ज्योतिश्चक्रं चन्द्रसूर्यनक्षत्रग्रहगण रूपं, ताराश्चेति सर्वमत्र पठनीयम्, कियत्पर्यन्तं तारापाठः ? इत्याह

—'जाव' इत्यादि, यावत् 'एग ससी परिवारो तारा गण कोडी कोडीणं' एक शशिपरिवारः तारागण कोटी कोटीनाम्, इत्येतत्पर्यन्तं चत्वारिंशत्तम गाथावधिकं पठनीयमिति ।

अस्य—आयामविष्कम्भप्रश्नः सूत्रे एव आगतः, परिक्षेप प्रश्नादारभ्य जीवाभिगमोक्तः पाठः प्रदर्श्यते—'केवइए परिक्खेवेणं' इत्यादि, 'केवइए परिक्खेवेणं आहिए' कियत्कं परिक्षेपेण आख्यातम् ? 'तिवएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् ! एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह 'ता पणयालीसं' इत्यादि, इदं मनुष्यक्षेत्रं पञ्चचत्वारिंशल्लक्षयोजनपरिमित मायामविष्कम्भेण (४५०००००) आख्यातम्, तथा परिधिमाह—'एगा जोयण कोडी' इत्यादि, एका योजन कोटी, द्वि चत्वारिंशल्लक्षाणि ऐकोन पञ्चाशदधिके योजनशते—(१४२००२४९) एतावत्परिमितं मनुष्यक्षेत्रं परिक्षेपेण आख्यातमिति । अस्यायामविष्कम्भपरिमाणं पञ्च चत्वारिंशल्लक्षाणि यथा एकं लक्षं जम्बूद्वीपे ? ततो लवणसमुद्रे पूर्वापरतो द्वे द्वे लक्षे इति चत्वारि लक्षाणि, धातकी षण्डे एकतोऽपरतश्च चत्वारि चत्वारि लक्षाणीति अष्टौ लक्षाणि, कालोदसमुद्रे एकतोऽपरतश्च अष्टौ अष्टौ लक्षाणीति षोडश लक्षाणि, आभ्यन्तर पुष्करार्द्धेऽपि एकतोऽपरतश्च अष्टौ अष्टौ लक्षाणीति षोडश लक्षाणि (१.४-८=१६-१६—४५) इति सर्वसंख्या संमेलनेन जायन्ते पञ्चचत्वारिंशल्लक्षाणि (४५०००००) । परिधिगणितभावना तु-'विक्खंभवग्गह गुण;' इत्यादि करणवशात् स्वयं कर्त्तव्या । अथ चन्द्रादिविषये गौतमः पृच्छति—'ता मणुस्सखेत्तेणं' इत्यादि 'ता' तावत् 'मणुस्स खेत्तेणं' मनुष्यक्षेत्रे खलु 'केवइया चंदा पभासिंसुवा ३ 'कियन्तश्चन्द्राः प्रभासयन् वा ३, 'पृच्छा तहेव' पृच्छा तथैव तथाहि कियन्तः सूर्या अतापयन् वा ३ कियन्ति नक्षत्राणि योगमयुञ्जन् वा ३ कियन्तो महाग्रहाश्चारमचरन् वा, कियत्यस्तारा शोभामशोभन्तवा ३ ? इति प्रश्न; भगवानाह 'ता बत्तीसं चंदसयं' इत्यादि, तावत् द्वात्रिंशदधिकशत संख्यकाश्चन्द्राः प्राभासयन् वा ३ द्वा त्रिंशदधिकशतसंख्यका एव सूर्या अतापयन् वा ३, । नक्षत्राणि—'तिण्णि सहस्सा' इति षण्णवत्यधिक षट्शतोत्तरसहस्रत्रय (३६९६) संख्यकानि योगमयुञ्जन् वा ३ । महाग्रहाः—'एक्कारस सहस्सा' इति-षोडशोत्तर षट्शताधिकैकादशसहस्र (११६१६) संख्यका श्चारमचरन् वा ३, तारापरिमाणमाह—'अट्ठासीइं' इत्यादि, अष्टाशीतिः लक्षाणि चत्वारिंशच्च सहस्राणि सप्त च शतानि (८८४०७००) तारागण कोटीकोट्य. शोभामशोभन्त वा ३, । नक्षत्रादीना संख्या भावना-नक्षत्रग्रहताराणां स्वस्व परिवारसंख्याया अत्रत्य चन्द्रसंख्यया द्वात्रिंशदधिकशत (१३२) रूपया गुणने नक्षत्रादीनां संख्या समायातीति स्वयं करणीयम् । अत्र आभ्यन्तरपुष्करार्द्धमनुष्यक्षेत्रयोरेतयोर्द्वयोरपि आयामविष्कम्भ-परिधि-प्रमाण-चन्द्रादिसंख्या प्रतिपादिका 'अट्ठेव सयसहस्सा' इति गाथात आरभ्य 'सत्त य सया अणूणा तारागण कोडिकोडीणं' इति पर्यन्तमष्टौ गाथाः सन्ति, आसामर्थः,

सूत्रोक्तवदेवेति । अथ सकलमनुष्यलोकस्थित तारागणस्यैवोपसहारमाह—'एसो' इत्यादि, एषः- अनन्तरमनुपदगाथोक्तसंख्यकः 'तारापिंडो' तारापिण्डः ताराणां सर्वाग्ररूपः 'सव्व समासेण' सर्वसंख्यया 'मणुयलोयंमि' मनुजलोके वर्त्तते । 'वहिया पुण' बहिः पुनर्मनुष्यलोकाद्बहिस्तात् मनुष्यलोकाद्बहिर्भागे मानुषोत्तरपर्वतादनन्तरक्षेत्रे इत्यर्थः 'ताराओ' ताराः 'असंखेज्जाओ' असख्येयाः 'जिणेहिं' जिनैः अतीतवर्त्तमानकालतीर्थकरैः 'भणिया' भणिताः कथिताः द्वीप समुद्राणामसंख्यातत्वात् प्रतिद्वीपसमुद्रं यथा—योगं संख्येयानामसंख्येयानां च ताराणां सद्भावात् ॥९॥ साम्प्रतं मनुष्यलोकगतज्यौतिश्चक्रस्य संस्थानमाह—'एवइयं' इत्यादि, 'एवइयं' एतावत्क यदन्तरभणितमेतावत्संख्यकम् 'तारग्गं' ताराग्रं तारापरिमाणं 'माणुसम्मि लोयम्मि' मनुष्ये लोके 'जोइसं' जौतिषं ज्योतिश्चक्रं चन्द्रसूर्यनक्षत्रग्रहगणतारारूपात्मकं ज्योतिष्कदेवविमानरूपं तत् 'कलंबुया पुप्फसंठियं' कदम्बपुप्पसस्थितं कदम्बपुष्पवत् अधः सङ्कुचितमुपरि विस्तृतम्—उत्तानोकृतार्द्धकपित्थसस्थानसंस्थितमित्यर्थः 'चारं चरइ' चारं चरति परिभ्रमति तथाविधलोकस्वभावात् । गाथायां ताराग्रहणं चोपलक्षणं तेन चन्द्रसूर्यादयाऽपि यथोक्त संख्यका मनुष्यलोके तथाविधलोकस्वाभाव्याच्चारं चरन्तीति द्रष्टव्यम् ॥१० साम्प्रत मेतद्गतमेवोपसंहारमाह—'रवि ससि' इत्यादि, 'रविससिगहणक्खत्ता' रविशशिग्रहनक्षत्राणि उपलक्षणात्तारकाणि च 'एवइया' एतावत्कानि 'मणुयलोए' मनुजलोके 'आहिया' आख्यातानि कथितानि सर्वज्ञै । 'जेसिं' येषां चन्द्रसूर्यादीनां मनुष्यलोकचारिणां यथोक्त संख्यकानां चन्द्रसूर्यनक्षत्रग्रहगणतारारूपाणां प्रत्येकम् 'नामगोयं' नाम गोत्राणि, इहान्वर्थयुक्तं नामसिद्धान्त परिभाषया नामगोत्रमित्युच्यते, ततोऽयमर्थः नामगोत्राणि अन्वर्थ युक्तानि नामानि, अथवा नामानि च गोत्राणि चेति नामगोत्राणि 'पागया' प्राकृताः सामान्यानातिशयिनः पुरुषाः कदाचिदपि 'न पण्णवेहिंति' न प्रज्ञापयिष्यन्ति भविष्यति काले, किन्तु यदा तदापि प्रज्ञापयिष्यन्ति चेत् सर्वज्ञा एव प्रज्ञापयिष्यन्ति नेतरे, तस्मात्कारणात् इदं चन्द्रसूर्यादिसंख्यापरिमाणं प्राकृत पुरुषाऽगम्यं सर्वज्ञोपदिष्टं वर्त्तते, इति सम्यक्‌ श्रद्धेयमेवेति ॥११॥ साम्प्रतं चन्द्रसूर्यनक्षत्रग्रहाणां पिटकानि पङ्क्तिश्च प्रदर्शयति यद्गतसख्या ज्ञानेन मनुष्यलोकगतचन्द्रादीनां संख्याज्ञानं भवति—षट्षष्टिः पिटकानि 'चंदाइच्चाणमणुयलोयम्मि' मनुष्यलोके चन्द्रादित्यानां सन्ति, अत्र द्विचन्द्रद्विसूर्यात्मकं पिटकं भवति, इत्थम्भूतानि च चन्द्रादित्यानां सर्वसख्यया मनुष्यलोके षट्षष्टिः पिटकानि वर्त्तन्ते, अतः षट् षष्टे द्वाभ्यां गुणने लभ्यते द्वात्रिंशदधिकमेकं शतम् (१३२) प्रत्येकं चन्द्रसूर्याणां सख्यानामस्मिन् मनुष्यक्षेत्रे । तदेव स्पष्टयति-'दो चंदा दो सूरा' इति एकैकस्मिन् पिटके द्वौ चन्द्रौ द्वौ सूर्यौ भवत. ततः किमित्याह-द्वौ चन्द्रौ द्वौ सूर्यौ इत्येतावत्प्रमाणकमेकैकं पिटकं चन्द्रादित्यानामिति, एवं प्रमाणकं च पिटकं जम्बूद्वीपे एकम्, अत्र द्वयोरेव चन्द्रयोर्द्वयोरेव च सूर्ययो सद्भावात् ।१। द्वे पिटके लवणसमुद्रे तत्र चतुर्णां चन्द्रसूर्याणां सद्भावात् ।२।

एवं धातकी षण्डे षट् पिटकानि, तत्र द्वादश द्वादश चन्द्रसूर्याणां सद्भावात् ।६।। एकविंशतिः पिटकानि कालोदे समुद्रे, तत्र द्विचत्वारिंशद् द्विचत्वारिंशच्चन्द्रसूर्याणां सद्भावात् ।२१। षट्त्रिंशत् पिटकानि आभ्यन्तरपुष्करार्द्धे, तत्र द्वासप्ततेः द्वासप्ततेः चन्द्रसूर्याणां सद्भावात् ।३६। एवम् –(१=२=६=२१=३६=६६) सर्वसंकलनया चन्द्रादित्यानां षट्षष्टिः पिटकानीति मनुष्यक्षेत्रे द्वात्रिंशदधिकं शतमेकम् (१३२) प्रत्येकं चन्द्रसूर्याणां संख्या समायाति एकैकस्य द्विपिटकस्य द्वि चन्द्रसूर्यात्मकत्वादिति ॥१२॥ साम्प्रतं नक्षत्राणां पिटकान्याह–'**छावट्ठिं पिडगाइं णक्खत्ताणं**' इत्यादि, नक्षत्राणामपि षट्षष्टिरेव पिटकानि सर्वसख्यया मनुष्यलोके सन्ति, किन्तु अत्र नक्षत्रसम्बन्धीनि '**एक्केक्कए पिडए**' एकैकस्मिन् पिटके '**छप्पण्णं नक्खत्ता हुंति**' षट् पञ्चाशत् षट् पञ्चाशन्नक्षत्राणि भवन्ति । किमुक्तं भवति !–षट् पञ्चाशत्संख्यात्मकमेकैकं नक्षत्रपिटकमिति षट्षष्टि भावना चेत्थम् जम्बूद्वीपे एकम् ।१। लवणसमुद्रे द्वे ।२। धातकीषण्डे षट् ।६। कालोदे एकविंशतिः ।२१। आभ्यन्तर पुष्करार्द्धे षट्त्रिंशत् ।३६। (१=२=६=२१=३६+६६) एवं पूर्ववदेवात्रापि षट्षष्टिः पिटकानि भवन्ति, अतएव सर्वस्मिन् मनुष्यक्षेत्रे त्रीणि सहस्राणि षण्णवत्यधिक षट्शतोत्तराणि (३६९६) नक्षत्राणां भवन्ति षट्षष्टेः षट् पञ्चाशता गुणनादेतावत्प्रमाणलाभात् ॥१३॥ अथ महाग्रहाणां पिटकानि प्रदर्शयति–'**छावट्ठिं पिडगाइं महागहाणं**' इत्यादि, महाग्रहाणामपि मनुष्यक्षेत्रे षट्षष्टिरेव पिटकानि सन्ति, अत्रैकस्मिन् पिटके '**छावत्तरं गहसयं**' षट्सप्तत्यधिकमेकं शतं महाग्रहाणां वर्त्तते । पिटकानां षट्षष्टि संख्या भावना पूर्ववदेव कर्त्तव्या । अत्र ग्रहा अष्टाशीतिर्भवन्ति ततो द्वयोश्चन्द्रयो षट् सप्तत्यधिकं शतं ग्रहाणां परिवारो जायते ततः षट् षष्टिः षट् सप्तत्यधिकशतेन गुण्यते जायन्ते सर्वस्मिन् मनुष्यक्षेत्रे एकादश सहस्राणि षट् शतानि षोडशाधिकानि (११६१६) महाग्रहाणामिति ॥१४॥ साम्प्रतं चन्द्रादित्यानां पङ्क्तिः प्रदर्शयति–'**चत्तारि य पंतीओ**' इत्यादि, इह मनुष्य क्षेत्रे चन्द्रादित्यानां '**चत्तारि य पंतीओ**' चतस्रः पङ्क्तयो भवन्ति यथा-द्वे पङ्क्ती चन्द्राणां, द्वे च सूर्याणाम् एकैका च पङ्क्ति '**छावट्ठिं छावट्ठिं**' इति षट्षष्टि सूर्यादिसंख्यात्मका भवति, कथमिति तद्भावना चेत्थम्–एकः किल सूर्यो जम्बू द्वीपे मेरौ दक्षिणभागे चारं चरन् वर्त्तते, एक उत्तर भागे, एवमेकश्चन्द्रो मेरोः पूर्वभागे, तत्र यो मेरोर्दक्षिणभागे सूर्यश्चारं चरन् वर्त्तते तत्समश्रेणिस्थितौ द्वौ सूर्यौ दक्षिणभागे लवणसमुद्रे २, षड् धातकी षण्डे ६, एकविंशतिः कालोदे २१, षट्त्रिंशद आभ्यन्तरपुष्करार्द्धे वर्त्तते । अस्यापि समश्रेणिव्यवस्थितौ द्वौ सूर्यौ उत्तरभागे लवणसमुद्रे २, धातकीखण्डे षड् ६, कालोदे एकविंशतिः २१, आभ्यन्तरपुष्करार्द्धे षट्त्रिंशत्, ३६, इत्यस्यामपि द्वितीयायां पङ्क्तौ सर्वसंख्यया षट्षष्टिः सूर्या जाताः ।२। तथा यो मेरोः पूर्वभागे चन्द्रश्चारं चरन् वर्त्तते तत् समश्रेणिव्यवस्थितौ

द्वौ चन्द्रौ पूर्वभागे लवणसमुद्रे २, षड् चन्द्राः धातकीखण्डे, एकविंशतिः चन्द्राः कालोदे, षट्त्रिंशदाभ्यन्तरपुष्करार्द्धे, इत्यस्यां प्रथमायां चन्द्रपङ्क्तौ सर्वसंख्यया द्वा षष्टिश्चन्द्राः ।१। एवं यो मेरोरपरभागे चन्द्रस्तत्सम्बन्धिन्या मपि द्वितीयायां चन्द्रपङ्क्तौ षट् षष्टिश्चन्द्राः पूर्वोक्तरीत्यैव ज्ञातव्याः २। ॥१५॥ साम्प्रतं नक्षत्राणां पङ्क्ती राह–'छप्पन्नं पंतीओ' इत्यादि, इह मनुष्यलोके नक्षत्राणां षट्पञ्चाशत् पङ्क्तयः सन्ति । ताश्च–'छावट्ठि २, हवंति एक्किक्कका' षट् षष्टि षट्षष्टि नक्षत्रप्रमाणा एकैका पङ्क्ति र्भवति, तथा च तद्भावना-अस्मिन् किल जम्बूद्वीपे दक्षिणतोऽर्द्धभागे एकस्य चन्द्रस्य परिवारभूतानि अभिजिदादीनि अष्टाविंशतिर्नक्षत्राणि क्रमेण व्यवस्थितानि चारं चरन्ति, एवमुत्तरतोऽर्द्धभागे द्वितीयस्य चन्द्रस्य परिवारभूतानि अन्यानि अष्टाविंशति र्नक्षत्राणि अभिजिदादीन्येव क्रमेण व्यवस्थितानि योगं युञ्जन्ति । तत्र दक्षिणतोऽर्द्धभागे यद् अभिजिन्नक्षत्रं वर्त्तते तत्समश्रेणि व्यवस्थिते द्वे अभिजिन्नक्षत्रे लवणसमुद्रे २ षड् धातकी खण्डे,६ एकविंशतिः कालोदे२१, षट् त्रिंशदाभ्यन्तरपुष्करार्द्धे३६ इति सर्वसंख्यया षट् षष्टिरभिजिन्नक्षत्राणि पङ्क्त्या व्यवस्थितानि योगं युञ्जन्ति । एवं श्रवणादीन्यपि दक्षिणतोऽर्द्धभागे पङ्क्त्या व्यवस्थितानि षट् षष्टि सख्यकानि स्वयं भावनीयानि । उत्तरतोऽप्यर्द्धभागे यदभिजिन्नक्षत्रं वर्त्तते तत्समश्रेणिव्यवस्थिते उत्तरभागे एव द्वे अभिजिन्नक्षत्रे लवणसमुद्रे षड् धातकीखण्डे६, एक विंशतिः कालोदे२१, षट्त्रिंशत् आभ्यन्तरपुष्करार्द्धे३६; एवं षट्षष्टिसंख्यकानि अभिजिन्नक्षत्राणि ज्ञातव्यानि । एवं श्रवणादि पङ्क्तयोऽपि प्रत्येकं षट्षष्टि संख्यका अवसेया इति सर्वसंख्यया षट् पञ्चाशत् पङ्क्तयो नक्षत्राणां भवन्ति, एकैका च पङ्क्तिः षट् षष्टि संख्येति ॥१६॥ साम्प्रतं ग्रहाणां पङ्क्तीराह–'छावत्तरं गहाणं' इत्यादि, इह मनुष्यलोके ग्रहाणामङ्गारकादीनां सर्वसंख्यया षट् सप्तत्यधिकशतसख्यका' १६७ पङ्क्तयो भवन्ति । तासु 'एक्किक्किया पंती' एकैका पङ्क्तिः 'छावट्ठि २,' षट् षष्टि-षट् षष्टि संख्याका भवति । भावना चेत्थम्-इह जम्बूद्वीपे दक्षिणतोऽर्द्धभागे एकस्य चन्द्रस्य परिवारभूता अङ्गारकादयोऽष्टाशीतिर्ग्रहाः सन्ति १। उत्तरतोऽर्द्धभागे द्वितीयस्य चन्द्रस्य परिवारभूता अङ्गारकादयोऽष्टाशीतिरेव, तत्र दक्षिणतोऽर्द्धभागे योऽङ्गारको ग्रहश्चारं चरन् वर्त्तते तत्समश्रेणिव्यवस्थितो दक्षिणभागे एव द्वावङ्गारकौ लवणसमुद्रे२, षड् धातकी खण्डे६, एकविंशतिरङ्गारकाः कालोदे२१, षट् त्रिंशदाभ्यन्तरपुष्करार्द्धे३६ इति षट्षष्टिः एवं शेषा अपि सप्ताशीतिर्ग्रहाः पङ्क्त्या व्यवस्थिताः प्रत्येकं षट्षष्टि रङ्गारका रवसेया । एवमुत्तरतोऽप्यर्द्ध भागे अङ्गारकादीनामष्टाशीतेर्ग्रहाणां पङ्क्तयः प्रत्येकं षट्षष्टिसंख्याकाः परिभावनीया इति जायते सर्वे संख्यया ग्रहाणां षट्सप्तत्यधिकं पङ्क्ति शतम् (१७६) एकैका च पङ्क्ति षट् षष्टि संख्याकेति ॥१७॥ एते चन्द्रादयः ग्रहाः कुत्र चारं चरन्तीत्याह–'ते मेरु

मणुचरंता' इत्यादि, 'ते' इति ते मनुष्यलोकवर्त्तिनः 'चंदा सूरागह गणाय' सर्वे चन्द्राः, सर्वे सूर्याः सर्वे ग्रहगणाश्च "अणवट्टियजोगेहिं' अनवस्थितयोगैः यथायोगमन्यान्यैर्नक्षत्रेण सह योगै र्युक्ताः सन्तः 'पयाहिणावत्तमंडला' प्रदक्षिणावर्त्तमण्डला प्र प्रकर्षेण सर्वासु दिक्षु विदिक्षु च परिभ्रमतां चन्द्रादिग्रहाणां दक्षिणे मेरुर्भवति यस्मिन् आवर्त्तने मण्डलपरिभ्रमणरूपे सप्रदक्षिणाः, प्रदक्षिण आवर्त्तो येषां मण्डलानां तानि प्रदक्षिणावर्त्तानि एतादृशानि मण्डलानि येषां ते प्रदक्षिणावर्त्तमण्डलाः 'मेरुमणुचरंता' मेरुमनुलक्षीकृत्यचरन्तीति भावः। अनेनैतदुक्तं भवति सूर्यादयः समस्ता अपि मनुष्यलोकचारिणः प्रदक्षिणावर्त्तमण्डलगत्या परिभ्रमन्तीति न। इह चन्द्रादित्यग्रहाणां मण्डलानि अनवस्थितानि, नत्ववस्थितानि एकरूपेण न तिष्ठन्ति यथा योगमन्यस्मिन्नन्यस्मिन् मण्डले तेषां सञ्चरण शीलत्वात् अतएवोक्तम् 'अणवट्टिय जोगेहिं चंदा सूरा गहगणाय" इति ॥१८॥ नक्षत्राणां ताराणां तु मण्डलानि अवस्थितान्येव सन्ति तदेव प्रदर्शयति—'णक्खत्ततारगाणं' इत्यादि। 'णक्खत्ततारगाणं' नक्षत्राणां तारकाणां च 'मंडला' मण्डलानि 'अवट्ठिया' अवस्थितानि एकत्रैवस्थितानि 'मुणेयव्वा' ज्ञातव्यानि। अयं भावः नक्षत्राणां तारकाणां चैकैकं प्रत्येकं मण्डलम् 'आकालमिति सकलकालावधि' प्रतिनियतमेव भवति। अत्र अवस्थितमण्डलत्वकथने एवं न ज्ञातव्यं यदेतेषां गतिरेव न भवति, किन्तु गतिस्तु भवत्येवेत्यतः सूत्रकार आह—'ते विय' इत्यादि 'ते विय' तान्यपि नक्षत्राणि तारकाणि च 'पयाहिणावत्तमेव मेरुं अणुचरंति' चन्द्रसूर्यग्रहवदेव प्रदक्षिणावर्त्तमेव प्रदक्षिणावर्त्तगत्यैव मेरुमनुचरन्ति मेरुमनुलक्षीकृत्यैव परिभ्रमन्ति ॥१९॥ अथ चन्द्रादित्यानां संक्रमणं किमूर्ध्वमधस्तिर्यग् वा भवतीत्याशङ्कायामाह—'रयणियरदिणयराणं' इत्यादि, 'रयणियरदिणयराणं' रजनीकरदिनकराणां चन्द्रादित्यानाम् 'उड्ढं च अहे य संकमो नत्थि' संक्रमो नोर्ध्वं नाप्यधः संभवति 'तिरिए' तिर्यग् भवति। तेषाम् 'मंडलसंकमणं पुण' मण्डलसंक्रमणं पुनः 'सब्भिंतरबाहिरं' साभ्यन्तरबाह्यम् अभ्यन्तरेण बाह्येन च सहितं साभ्यन्तरबाह्यम् सर्वाभ्यन्तरमण्डलात् सर्वबाह्यमण्डलम्, सर्वबाह्यान्मण्डलात्सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं यावत् तिर्यक्त्वेन यातायातरूपं संक्रमणं भवति। अयं भावः—सर्वाभ्यन्तरमण्डलात्परतस्तावन्मण्डलेषु संक्रमणं स्यात् यावत्सर्वबाह्यमण्डलं परिपूर्णं चरितं भवेत् सर्वबाह्यमण्डलपर्यन्तं चारं चरतीत्यर्थः एवं सर्व बाह्यमण्डलादर्वाक् तावन्मण्डलेषु संक्रमणं स्यात् यावत् सर्वाभ्यन्तरं मण्डलं परिपूर्णं चरितं भवेत्। चन्द्रादित्यानां सर्वाभ्यन्तरमण्डलात्सर्वबाह्यमण्डलम्, सर्वबाह्यमण्डलात्सर्वाभ्यन्तर मण्डलमितीतस्तत एव संक्रमणं तिर्यक्त्वेन भवति तथाविधजगत्स्वाभाव्यादिति ॥२०॥ साम्प्रतं चन्द्रादित्यादीनां चारप्रभावेण मनुष्याणां सुखं दुःखं च भवतीत्याह—'रयणियरदि-

णयराणं' इत्यादि, 'रयणियरदिणयराणं' रजनीकरदिनकराणा चन्द्रादित्यानाम्, तथा 'नक्खत्ताणं महग्गहाणं च' नक्षत्राणां महाग्रहाणं च 'चारविसेसेण' चारविशेषेण गतिमाश्रित्येत्यर्थः 'मणुस्साणं सुहदुक्खविहीभवे' मनुष्याणां सुखदुःखविधिरिह मनुष्यलोके भवेत्। तथाहि मनुष्याणां कर्माणि द्विविधानि भवन्ति यथा-शुभवेद्यानि अशुभवेद्यानि च। कर्मणां विपाकहेतवस्तु सामान्यतः पञ्च भवन्ति यथा द्रव्यं, क्षेत्रं, कालो, भावो, भवश्चेति, उक्तञ्च—

"उदयक्खय खओवसमोवसमा जं य कम्मुणो भणिया।
दव्वं च खेत्तं कालं भवं भावं च संपप्प ॥१॥

उदयक्षयक्षयोपशमोपशमाः यच्च कर्मणो भणिताः।
द्रव्यं च क्षेत्रं कालं भवं च भावं च सम्प्राप्य ॥१॥ इतिच्छाया।

शुभकर्मणां—प्रायः शुभवेद्यानां कर्मणां शुभद्रव्यक्षेत्रकालभावभवरूपा सामग्री विपाक हेतुर्भवति, अशुभकर्मणाम् अशुभवेद्यानां कर्मणामशुभद्रव्यक्षेत्रकालभावभवरूपा सामग्री विपाकहेतुर्भवति ततो यदा येषां कृते चन्द्रादित्यादीनां चारो जन्म नक्षत्रादि विरोधी भवेत्तदो तेषां—प्रायो यान्यशुभवेद्यानि कर्माणि भवन्ति तानि तां तथाविधां विपाकसामग्रीं संप्राप्य उदयं प्राप्नुयुः, उदयप्राप्तानि कर्माणि शरीररोगोत्पादनेन धनहानिकरणतो वा, इष्टवियोगानिष्टसंयोगजननेन वा कलहसंपादनतोऽन्यप्रकारतो वा दुखमुत्पादयन्ति। यदा च एषां चन्द्रादित्यादीनां चारो जन्मनक्षत्राद्यनुकूलः स्यात्तदा तेषां प्रायो यानि शुभवेद्यानि कर्माणि उदयप्राप्तानि भवन्ति तानि तथाविधां विपाकसामग्रीं सप्राप्य शरीर नीरोगता संपादनतो धनादि वृद्धिकरणतो वा वैरोपशमनतः इष्ट सयोगानिष्टविप्रयोगसपादनतो वा, प्रारब्धाभीष्टप्रयोजनसिद्धिकरणतोऽन्यप्रकारतो वा सुखं संपादयन्ति अतएव विवेकिनो जना अल्पमपि प्रयोजन शुभतिथिनक्षत्रादि विलोक्यैव समारभन्ते न तु यथा कथञ्चन, अत एव प्रव्राजनादि कार्यमधिकृत्य परमविवेकिभिः शुभक्षेत्रे शुभां दिशमभिमुखीकृत्य शुभे तिथिनक्षत्रमुहूर्त्तादौ प्रव्राजनव्रतारोपणादि कार्यं कर्त्तव्यं नान्यथा, उक्तञ्च तद्विषयकग्रन्थे—

'एसा जिणाण माणा खित्ताईयाय कम्मुणे भणिया।
उदयाइ कारणं जं तम्हा सव्वत्थ जइयव्वं ॥१॥"

एषा जिनाना माज्ञा क्षेत्रादिकाश्च कर्मणो भणिताः।
उदयादि कारणं यत्, तस्मात् सर्वत्र यतितव्यम् ॥१॥ इतिछाया

अस्याः संक्षेपतो व्याख्या—'एसा' इत्यादि, क्षेत्राद्योऽपि कर्मण उदयादौ कारणो भूताः 'भणिया' भणिताः कथिता जिनेश्वरैः, तस्मात् 'सव्वत्थ' सर्वत्र प्रव्राजनव्रतारोपणादौ शुभ तिथिनक्षत्रमुहूर्त्ताद्यालोकने 'जइयव्वं' यतितव्यं यत्नो विधेयः 'एसा जिणाणमाणा' एषा

जिनानाम्—अतीतानागतवर्त्तमानकालभाविनां सर्वेषां जिनानामाज्ञाऽस्तीति भावनीयमिति । यद्येवं न कुर्यात् तदा अशुभद्रव्य क्षेत्रादि सामग्रीं प्राप्य कदाचिद शुभवेद्यानि कर्माणि विपाकमवलम्ब्य उदयमासादयेयुः, तदुदये च सती गृहीतव्रतेषु तद्भङ्गादि दोष प्रसङ्गः स्यात् । शुभ तिथिनक्षत्र-मुहूर्त्तादिबलेन च शुभद्रव्यक्षेत्रादि सामग्रीलाभो भवेत् तेन तथाविधसामग्र्यां तु प्रायोऽशुभ कर्मविपाकस्य न संभव इति प्रव्रज्यादि ग्राहकस्य निर्विघ्नं सामायिकपरिपालनादि भवेत्तस्माद् अवश्यं छद्मस्थेन सर्वत्र शुभक्षेत्रादौ शुभतिथिनक्षत्रमुहूर्त्तादि ग्रहणाय यतितव्य मिति गाथा भावार्थः अत्र केचिदाशङ्कन्ते—यद्येवं तर्हि यदर्हन्तो भगवन्तः शुभतिथिनक्षत्रमुहूर्त्तादिकमनपेक्ष्यैव व्रतानि गृह्णन्ति कथं तेषां व्रतादिपालनं भवति? तथा न च तेषां समीपे प्रव्रज्यार्थं समुपस्थितेषु ते भगवन्तो जगत्स्वामिनः शुभतिथिनक्षत्रमुहूर्त्तादि निरीक्षणं कृतवन्तः प्रत्युत कथितवन्तः **'जहासुहं देवाणुप्पिया मा पडिबंधं करेह'** यथासुखं देवानुप्रिय मा प्रतिबन्धं कुरु, इति श्रूयते? अत्राह—ते तु भगवन्तोऽर्हन्तोऽतिशयिनो भवेयुस्ततस्ते स्वातिशयबलादेव सविघ्नं निर्विघ्नं वा समधि-गच्छन्ति, न ते स्व प्रव्रज्यार्थं समुपस्थितानां प्रव्रज्यादाने च शुभ तिथिनक्षत्रमुहूर्त्तादिक मपेक्षन्ते तेषां तथाविधातिशयसामर्थ्यवत्त्वात्, इति न तन्मार्गानुसरणं छद्मस्थानां न्याय्यम् । ये चैवं शङ्कन्ते ते परममुनिपर्युपासितवचनविडम्बका अपरिमथितजिनशासना गुरुपरम्परागतनिरवद्यविशद-कालोचितसमाचारी परिपन्थिन. स्वच्छन्दमतिपरिकल्पितसामाचारीका विज्ञेयाः, तेषां यत्कथनम्—'प्रव्राजनादि धार्मिकशुभकार्येषु न शुभतिथिनक्षत्रमुहूर्त्तादि किमपि निरीक्षणीयम्, 'यदा विरज्येत तदा प्रव्रज्येत' यदा वैराग्य समुत्पद्यते तदैव प्रव्रज्यां गृह्णीयात् इति, तदसत्, मिथ्यात्वविजृम्भितं च तथाविधजिनाज्ञासद्भावात् **'आणाधम्मो'** इति जिनशासनस्य मौलिकनियमसद्भावाच्चेति ॥२१॥

साम्प्रतं सूर्यचन्द्राणां तापक्षेत्रमाह—**'तेसिं पविसंताणं'** इत्यादि, **'तेसिं'** तेषां सूर्यचन्द्राणां **'पविसंताणं'** प्रविशतां सर्वबाह्यमण्डलात् सर्वाभ्यन्तरमन्डले प्रवेशं कुर्वतां तदभिमुखं गच्छतामित्यर्थः **'तावक्खेत्तं तु'** तापक्षेत्रं सूर्यस्य, प्रकाशक्षेत्रं च चन्द्रस्य **'निययं'** नियत मायामतः प्रतिदिनं **'वड्ढए'** वर्द्धते । **'तेणेव कमेण'** तेनैव वर्द्धनक्रमेण **'निक्खमंताणं'** निष्क्रमतां सर्वाभ्यन्तर मण्डलात् सर्वबाह्यमण्डलाभिमुखं गच्छतां पुनः **'परिहायइ'** प्रतिहीयते प्रतिदिनं परि क्षीयते तापक्षेत्रं प्रकाशक्षेत्रं चाल्पमल्पं भवतीत्यर्थः। तथाहि—सर्वबाह्ये मण्डले चारं चरतां सूर्या चन्द्रमसां प्रत्येकं जम्बूद्वीपचक्रवालस्य दशधा विभक्तस्य द्वौ द्वौ भागौ तापक्षेत्रं भवति, सूर्यस्य सर्वाभ्यन्तरमण्डलं प्रति गच्छतः प्रतिमण्डलं षष्ट्यधिकषट्त्रिंशच्छतप्रविभक्तस्य द्वौ द्वौ भागौ तापक्षेत्रस्य वर्द्धते, चन्द्रस्य तु मण्डलेषु प्रत्येकं पौर्णमासी सम्भवे । क्रमेण प्रतिमण्डलं षड्विंशतिः षड्विंशति भागाः परिपूर्णाः सप्तविंशतितमस्य च एकः सप्त भाग इति वर्द्धते, एवं च क्रमेण प्रतिमण्डलमभिवृद्धौ यदा सर्वाभ्यन्तरे मण्डले चारं चरतस्तदा प्रत्येकं जम्बूद्वीपचक्रवालस्य त्रयः परिपूर्णा दश भागास्तापक्षेत्रं भवति, ततः पुनरपि सर्वाभ्यन्तरान्मण्डलाद्बहिः

निष्क्रमणे सूर्यस्य प्रतिमण्डलं षष्ट्यधिक षट्त्रिंशच्छतप्रविभक्तस्य जम्बूद्वीपचक्रवालस्य द्वौ द्वौ भागौ परिहीयेते । चन्द्रस्य तु मण्डलेषु प्रत्येकं पौर्णमासी संभवे क्रमेण प्रतिमण्डलं षड् विंशतिः षड्विंशतिर्भागाः परिपूर्णाः सप्तविंशतितमस्य च भागस्य एकः सप्तभागः परिहीयन्ते इति ॥२२॥ साम्प्रतं तेषां तापक्षेत्रस्य संस्थानमाह-'तेसिं' इत्यादि, 'तेसिं चंदसूराणं' तेषां चन्द्रसूर्यादीनाम् 'तावक्खेत्तपहा' तापक्षेत्रपथाः तापक्षेत्रमार्गाः 'कलंवुया पुप्फसंठिया हुंति' कदम्बकपुष्पसंस्थिताः नालिका पुष्पाकाराः 'हुंति' भवन्ति' तदेव विशिनष्टि 'अंतो य संकुडा' अन्तश्च संकुचिताः 'अन्तः' इति मेरुदिशि, 'वहिं वित्थडा' वहिर्विस्तृताः । अस्य भावना चतुर्थे प्राभृते प्रागेव कृतेति तत्र विलोकनीयम् ॥२३॥ साम्प्रतं गौतमश्चन्द्रस्य वृद्ध्यपवृद्धिविषये पृच्छति-'केणं वड्ढइ चंदो' इत्यादि 'केणं' केन कारणेन हे भगवन् 'वड्ढइ चंदो' चन्द्रो वर्धते ? इत्यादि प्रश्नसूत्रगाथा स्पष्टा, तथाहि-केन कारणेन चन्द्रः शुक्लपक्षे वर्द्धते कृष्णपक्षे च तस्य हानिर्भवति ? केन प्रभावेण चन्द्रस्य एकः पक्षः कालः-कृष्णः, तथा एकः पक्षश्च 'जोण्हो' ज्योत्स्नः शुक्लः ? इति प्रश्नः ॥२४॥ भगवान स्योत्तरमाह-'किण्हं राहु विमाणं' इत्यादि इह राहुर्द्विविधः प्रोक्तः-पर्वराहुर्नित्यराहुश्च, तत्र पर्वराहुः सः यः कदाचित्पूर्णिमायां समागत्य चन्द्रविमानं निजविमानेनाऽन्तरितं करोति, अन्तरिते कृते च लोके ग्रहणमिति प्रसिद्धिः किन्तु चन्द्रो न गृह्यते । यस्तु नित्यराहुः, तस्य विमानं कृष्णं भवति तदेवाह-'कण्हं राहुविमाणं' कृष्णं राहुविमानमिति, तच्च तथाविधजगत्स्वाभाव्यात् 'निच्चं चंदेण होइ अविरहियं' नित्यं सर्वकालं चन्द्रेण सह अविरहितं विरहरहितं चरति, तच्चाविरहितं किंचन्द्रेण संयुज्य चरति ? तत्राह-नहि, तद् राहु विमानं 'चंदस्स चउरंगुलमसंपत्तं' चतुर्भिरङ्गुलैरसंप्राप्तं सत् चन्द्रविमानादाधश्चतुरङ्गुलक्षेत्रं दूरतश्चरति परिभ्रमति ॥२५॥ 'वावट्ठिं' इत्यादि, 'वावट्ठिं वावट्ठिं' द्वाषष्टिं द्वाषष्टिम् ।

अयं भावः-इह चन्द्रमण्डलं द्वाषष्टि भागात्मकं भवति, पक्षस्य दिवसाः पञ्चदशेति द्वाषष्टेः पञ्चदशभिर्भागो ह्रियते लब्धाश्चत्वारः, शेषौ भागौ नित्यं राहुणाऽनावृतावेव तिष्ठतस्तत द्वौ भागौ उपरितनौ यौ पञ्चदशभिर्भागे हृते शेषी भूतौ तौ न गण्येते, तान् पञ्चदशभिर्भागहरणाल्लब्धान् चतुरश्चतुरो भागान् चन्द्रमण्डलस्य पञ्चदश भागरूपान् शुक्लप्रतिपदात आरभ्य दिवसे दिवसे राहुः प्रतिविमुञ्चति तस्मात् कारणात् 'परिवड्ढइ चंदो' परिवर्द्धते चन्द्रः । एवं क्रमेण पञ्चदशे दिवसे पूर्णिमायां सर्वभागानामनावृतत्वाच्चन्द्रः परिपूर्णप्रकाशवान् भवति । ततः कृष्णपक्षे प्रतिपदात् आरभ्य चन्द्रमण्डलस्य पूर्वक्रमेणैन चतुरश्चतुरो भागान् प्रतिदिनं राहुरावृणोति, एवं क्रमेण 'तं चेव कालेणं' तेनैव पञ्चदशदिवसात्मकेन कालेन 'चंदो खवेइ' चन्द्रः क्षीयते ततः पञ्चदशे दिवसेऽमावास्यायां अनावृतभागद्वयस्याल्पत्वात् सकलमपि चन्द्रमण्डलं कृष्णं भवत्यतो

न दृश्यते । सूत्रे 'बावट्ठिं बावट्ठिं' इति प्रोक्तं तेन 'द्वाषष्टि भागसत्कान् चतुरश्चतुरो भागान इत्यर्थो बोध्यः । शास्त्रभाषया सर्वत्र 'बावट्ठिं बावट्ठिं' इति लभ्यते, उक्तञ्च समवायाङ्गेऽपि "सुक्कपक्खस्स दिवसे दिवसे चंदो बावट्ठिं भागे परिवड्ढइ" इति, व्याख्यानं तु सर्वत्र पूर्ववदेव, एतस्यैव सङ्गतत्वात्, अत्रैतादृशस्यैव भगवद्भावस्य गर्भितत्वाच्चेति ॥२६॥ तदेव सूत्रकारो व्याचष्टे — 'पण्णरसभागेण' इत्यादि, कृष्णपक्षे राहुः 'पण्णरसभागेण य' पञ्चदशभागेन राहुविमानस्य षष्टिभागात्मकत्वेन स्वस्य विमानस्य पञ्चदशेन भागेन चतुर्भागात्मकेन 'चंदं पण्णरस मेव' चान्द्रं पञ्चदशं भागमेव चन्द्रसम्बन्धिनं पञ्चदशमेव भागं चतुर्भागात्मकम् 'वरइ' वृणुते-आच्छादयति । एवं शुक्लपक्षे च 'पुणोवि' पुनरपि 'पण्णरसभागेण य' स्वकीयविमानस्य पञ्चदशेन भागेन वा 'पुणोवि' पुनरपि 'तं चेव' तमेव वर्द्धनक्रममाश्रित्य प्रतिदिवस पञ्चदशं भागं चतुर्भागरूपं आत्मीयेन पञ्चदशेन भागेन चतुर्भागरूपेण 'वक्कमइ' अपक्रामति-पृथग्भवति मुञ्चतीत्यर्थः । अयं भावः कृष्णपक्षे प्रतिपदात आरभ्यात्मीयेन पञ्चदशेन भागेन चतुर्भागरूपेण प्रतिदिवसमेकैकं पञ्चदशं भागं चतुर्भागरूपमुपरितनभागादारभ्याच्छादयति । एवं शुक्लपक्षे प्रतिपदात आरभ्य तेनैव क्रमेण प्रतिदिवसं चन्द्रमण्डलस्य चतुर्भागरूपं पंचदशं भागं प्रकटीकरोति तेन जगति चन्द्रमण्डलस्य वृद्धि र्हानिश्च प्रतिभासते किन्तु स्वरूपतः पुनश्चन्द्रमण्डलस्य न वृद्धिर्न हानिः, तत्तु यथावस्थितमेव भवति ॥२७॥ अथास्योपसंहारमाह 'एव वड्ढइ चंदो' इत्यादि, 'एवम्' अनेन प्रकारेण नित्यराहुविमानेन प्रतिदिवसमनावृतरूपेण प्रकारेण 'वड्ढइ चंदो' शुक्लपक्षे चन्द्रो वर्द्धते वर्द्धमानः प्रतिभासते । एवमेव राहुविमानेन प्रतिदिवसं क्रमेणाऽऽवरणकरणतः कृष्णपक्षे 'परिहाणी होइ चदस्स' चन्द्रस्य परिहानिर्भवतीति भासते । 'एवणुभावेण' एवम् एतेनानुभावेन कारणेन 'चंदस्स' चन्द्रस्य पक्षः 'कालो वा जुण्होवा' कालोवा ज्योत्स्नोवा भवति एकः पक्ष कालः-कृष्णो भवति एकश्च ज्योत्स्नः ज्योत्स्नावान् शुल्क इत्यर्थः भवति ॥२८॥ अत्र मनुष्यक्षेत्रे चन्द्रादयश्चारिणः सन्ति, न तु स्थिरा इत्याह 'अंतो मणुस्स खेत्ते' इत्यादि, 'अंतो मणुस्स खेत्ते' मनुष्य क्षेत्रस्य मध्ये 'पंचविहा जोइसिया' पञ्चविधा ज्योतिष्काः के ते इत्याह 'चंदा सूरा गहगणाय' चन्द्राः सूर्या ग्रहगणाः च शब्दात् नक्षत्राणि तारकाश्च 'हवंति' भवन्ति । एते सर्वे चतुर्विधा अपि ज्योतिष्काः अत्र 'चारोवगा' चारोपकाः चारं चरन्तः 'उववन्ना' उपपन्नाः लब्धाः चारचारिणो लभ्यन्ते इति भावः ॥२९॥ मनुष्य क्षेत्रा द्बहिर्ज्योतिष्का अवस्थिता सन्तीत्याह-'तेण परं' इत्यादि, 'तेण परं' तेन परं ततः मनुष्य क्षेत्रात् परम्-अग्रे 'जे सेसा' यानि शेषाणि-बाह्य पुष्कारर्द्धादीनि क्षेत्राणि सन्ति तत्र 'चंदाइच्च गहगणतारणक्खत्ता' चन्द्रादित्यग्रहगणतारकनक्षत्राणि, इत्येते सर्वे पञ्चविधा ज्योतिष्का ये सन्ति तेषाम् 'नत्थि गई' नास्ति गतिः स्वस्मात्स्थानाच्चलनम्, तथा 'न वि चारो' नापि तेषां चारः मण्डलगत्या परिभ्रमणम् । तर्हि किमित्याह-'अवट्ठिया ते' अवस्थितास्ते 'मुणेयव्वा'

ज्ञातव्याः ॥३०॥ साम्प्रतं तेषां प्रतिद्वीपसम्बन्धिनीं संख्यां प्रदर्शयति—'एवं जंबुद्दीवे' इत्यादि एवं-सति 'जंबुदीवे दुगुणा' जम्बूद्वीपे द्विगुणौ एकश्चन्द्र एकः सूर्यः प्रतिखण्डमाश्रित्य द्विगुणौ भवतः द्वौ चन्द्रौ द्वौ सूर्यौ इत्यर्थः । 'लवणे चउग्गुणा हुंति' लवणे लवणसमुद्रे चन्द्रसूर्यौ चतुर्गुणौ भवतः चत्वारश्चन्द्राः चत्वार एव सूर्या लवणसमुद्रे सन्तीति । 'लावणगा य तिगुणिया' लावणकाः लवणसमुद्रगता श्चन्द्राः सूर्याश्च चतु श्चतुः संख्यकाः सन्ति ते त्रिगुणिताः यावन्तो भवन्ति तावन्त द्वादश द्वादशेत्यर्थः 'धायई संडे' धातकीषण्डे भवन्ति ॥३१॥ तानेव पृथक् प्रदर्शयति—'दो चंदा' इत्यादि सुगमम्, एतदर्थं एकत्रिंशत्तमगाथायामनुपद पूर्वमेव गतः ॥३२॥ साम्प्रतं धातकीषण्डाग्रेतन गत चन्द्रसूर्याणां संख्याकरणविधिमाह—'धायइसंडप्पभिइसु' इत्यादि 'धायइसंडप्पभिइसु' धातकीषण्डप्रभृतिषु धातकीषण्डप्रभृतिः आदिर्येषां ते धातकीषण्डप्रभृतयः, तेषु धातकीषण्डप्रभृतिषु—धातकीषण्डात् परात् परस्थितेषु द्वीपेषु समुद्रेषु च 'उद्दिट्ठा' उद्दिष्टाः कथिताः द्वादशादयः, यथा धातकीषण्डे द्वादश चन्द्रा उपलक्षणात्सूर्याश्च, एवमग्रेऽपि चन्द्रशब्देन चन्द्राः सूर्याश्चेति उभयेऽपि ग्राह्याः ते 'तिगुणिया' त्रिगुणिताः त्रिभिर्गुणिताः सन्तः 'आइल्लचंदसहिया' आदिमाः पूर्वगत तत्तद्वीपसमुद्रगता जम्बूद्वीपादारभ्य ये चन्द्राः सूर्याश्च भवन्ति तैः सहिताः सन्तो यावन्त श्चन्द्राः सूर्याश्च भवन्ति तावत् प्रमाणाश्चन्द्राः सूर्याश्च 'अणंतराणंतरे खेत्ते' अनन्तरानन्तरे तत्तद्वीपसमुद्रा दग्रेऽग्रे ये समुद्रा कालोदादयो द्वीपाश्च सन्ति तत्तत्क्षेत्रे भवन्तीति गाथाया अक्षरगमनिका भावना चेत्थम्—यथा धातकीषण्डे उद्दिष्टा श्चन्द्रा द्वादश ते त्रिभिर्गुणिता जाता षट्त्रिंशत्, ततः 'आइल्ल चंदसहिया' आदिमचन्द्रैः सहिताः कार्या इति आदिमाश्चन्द्राः षट् यथा द्वौ चन्द्रौ जम्बूद्वीपे, चत्वारो लवणसमुद्रे इति षट् एतैरादिमैः षड्भिश्चन्द्रैः सहिताः, जायन्ते द्वाचत्वारिंशत् इति कालोदे समुद्रे द्वाचत्वारिंशच्चन्द्रा, एतावन्त एव सूर्याश्च भवन्ति एवं कालोदे समुद्रे उद्दिष्टाश्चन्द्रा द्विचत्वारिंशत् ते त्रिभिर्गुणिताः जायन्ते षड्विंशत्यधिकं शतं चन्द्राणाम्, अत्रादिमचन्द्रा अष्टादश तथाहि—द्वौ जम्बूद्वीपे, चत्वारो वलवणसमुद्रे, द्वादश धातकीषण्डे, इति जाता अष्टादश, एतैरादिमचन्द्रैः सहितं षड्विंश शतं जातं चतुश्चत्वारिंशं शतम् (१४४), एतावन्तः पुष्करवर द्वीपे चन्द्रास्तत्साहचर्या त्सूर्याश्च भवन्ति । एवमग्रे द्वीपसमुद्रेषु अनेनैव विधिना चन्द्र सख्या सूर्यसख्या च वेदितव्या ॥३३॥ साम्प्रतं प्रतिद्वीप प्रतिसमुद्रस्थितानां, नक्षत्र ग्रह ताराणां परिमाणपरिज्ञानविधिं प्रदर्शयति—'रिक्खग्गहतारग्गं' इत्यादि 'रिक्खग्गहतारग्गं' ऋक्षग्रहताराणाम् अग्र परिमाणम् अग्रशब्दोऽत्र परिमाणवाचकः, 'दीवसमुद्दे' द्वीपसमुद्रे द्वीपे समुद्रे च स्थितानाम् 'जइच्छसी णाउं' यदि ज्ञातुमिच्छति तदा 'तस्स सिहिं' तत्तद्वीपसमुद्र सम्बन्धिभिः शशिभि चन्द्रैः एव सूर्यैश्च 'तग्गुणियरिक्खग्गहतारग्गं' तद्गुणितं तत्-एकस्य चन्द्रस्य परिवारभूतं नक्षत्रपरिमाणं ग्रहपरिमाणं तारापरिमाणं च यत् पूर्वं प्रदर्शितं

तद् गुणितं तत्तद्वीपसमुद्रस्थितचन्द्रपरिमाणेन गुणनं कर्त्तव्यम्, गुणनेन यावन्ति नक्षत्राणि यावन्तो ग्रहाः यावत्यश्च तारा लभ्यन्ते तावत्प्रमाणा नक्षत्रादयस्तत्र तत्र द्वीपे समुद्रे वा विज्ञातव्याः । तथाहि—यथा लवणसमुद्रे नक्षत्रादि परिमाणं ज्ञातुमिष्टं, लवणसमुद्रे च चत्वार श्चन्द्रा., तत एकस्य चन्द्रस्य परिवारभूतानि यान्यष्टाविंशतिर्नक्षत्राणि तानि चतुर्भिर्गुण्यन्ते जातं द्वादशोत्तरं शतम् (११२) एतावन्ति लवणसमुद्रे नक्षत्राणि भवन्ति । एवं ग्रहा अष्टाशीतिरेकस्य शशिनः परिवारभूतास्ततस्ते चतुर्भि गुणिता जायन्ते द्वि पञ्चाशदधिकानि त्रीणि शतानि (३५२), एतावन्तो लवणसमुद्रे ग्रहा भवन्ति । एवमेव एकस्य शशिनः परिवारभूता स्ताराः कोटी कोटीनां षट्षष्टिः सहस्राणि नवशतानि पञ्चसप्तत्यधिकानि (६६९७५) सन्ति, तानि चतुर्भिर्गुणिते-जातानि-कोटी कोटीना द्वे लक्षे, सप्तषष्टि सहस्राणि, नव शतानि (२, ६७, ९००, ००००००००, ००००००००) एतावत्यो लवणसमुद्रे तारागणा कोटी कोटयः, एवं रूपा च नक्षत्रादीनां संख्या प्राक् प्रोक्तैव । अनयैव रीत्या सर्वेष्वपि द्वीपसमुद्रेषु नक्षत्रादि संख्यापरिभावनीयेति ॥३४॥ साम्प्रतं मनुष्यक्षेत्रवहिर्गतानां चन्द्रादीनां वक्तव्यतामाह— **'वहिया ३'** इत्यादि, **'माणुसनगस्स वहिया ३'** मानुपनगस्य मानुपोत्तरपर्वतस्य वहिस्तु **'चंदसूराणं जोण्हा'** चन्द्रसूर्याणां ज्योत्स्ना तेजः **'अवट्ठिया'** अवस्थिता सदाकाले समाना भवति न तु न्यूनाधिकत्वं तस्याः । अयं भावः—सूर्यास्तत्र सदैवाऽनत्युष्णतेजसस्तिष्ठन्ति मनुष्यलोके सूर्या यथा ग्रीष्मकालेऽत्युष्णतेजसो भवन्ति न तथा तत्र जातुचिदपि अत्युष्णतेजसो भवन्ति । चन्द्रा अपि सदैवानतिशीतलेश्याकाः, यथा मनुष्यक्षेत्रे शिशिरकाले चन्द्रा अतिशीतप्रकाशा भवन्ति न तथा तत्र कदाचिदपि अतिशीतप्रकाशा भवन्ति किन्तु सर्वदा समान स्थितिका एव तिष्ठन्ति अत्र नक्षत्रयोगमाह—**'चंदा अभीईजुत्ता'** इत्यादि, तत्र मनुष्यक्षेत्राद्वहिः—सर्वेऽपि चन्द्रा' सर्वदैव **'अभीईजुत्ता'** अभिजिद्युक्ताः अभिजिन्नक्षत्रेण योग युञ्जाना एव तिष्ठन्ति । **'सूरा पुण हुंति पुस्सेहिं'** सूर्याः पुन भवन्ति पुष्यैः, तत्र सूर्याश्च सर्वे सर्वदैव पुष्यनक्षत्रैरेव युक्तास्तिष्ठन्ति, न तु तत्र तेषां कदाचनापि मण्डलगत्या भ्रमणं भवति, ते सदाऽवस्थिता एव तिष्ठन्तीति ॥३५॥ साम्प्रतं चन्द्रसूर्ययोः परस्परमन्तरमाह **'चंदाओ'** इत्यादि **'चंदाओ सूरस्स य'** चन्द्रात् सूर्यस्य, एव सूर्याच्चन्द्रस्य चान्तरम् **'पण्णास सहस्साइं तु जोयणाणं अणूणाइं'** पञ्चाशत्सहस्राणि (५००००) योजनानि अन्यूनानि परिपूर्णानि योजनानां परिपूर्ण पञ्चाशत्सहस्रयोजनपरिमितं चन्द्रसूर्ययोः परस्परमन्तरम् **'होइ'** भवतीति ॥३६॥ अथ सूर्य सूर्ययो श्चन्द्रचन्द्रयो श्चान्तरमाह—**'सूरस्स य सूरस्स य'** इत्यादि **'वहिं तु माणुसनगस्स'** मानुपोत्तरपर्वतस्य वहिः **'सूरस्स य सूरस्स य ससिणो ससिणो य'** सूर्यस्य सूर्यस्य परस्परं चन्द्रस्य चन्द्रस्य च परस्परमन्तरम् **'जोयणाणं सयसहस्सं'** योजनानां शतसहस्रं—लक्षयोजनपरिमित मन्तरं भवतीत्यर्थः । तथाहि-तत्र चन्द्रान्तरिताः सूर्याः सूर्यान्तरिताश्चन्द्राः व्यवस्थिताः, द्वयोश्चन्द्र

योर्मध्ये एकः सूर्यो वर्त्तते, द्वयोः सूर्ययोर्मध्ये एक श्चन्द्रो वर्त्तते ततश्चन्द्रसूर्ययोः परस्परमन्तरं पञ्चाशद् योजनसहस्राणि ततश्चन्द्रस्य चन्द्रस्य सूर्यस्य सूर्यस्य परस्परं लक्षयोजनपरिमित मन्तरं भवति, एकस्मात् सूर्यात् द्वितीयः सूर्यो लक्षयोजनव्यवधानेन व्यवस्थितः, एवमेकस्मा च्चन्द्राद् द्वितीयश्चन्द्रोऽपि लक्षयोजनव्यवधानेन व्यवस्थित इति ॥३७॥ तदेवाह—सूत्रकार **'सूरंतरिया चंदा'** इत्यादि स्पष्टम् पूर्वं व्याख्यातत्वात्, नवरं कथम्भूतास्ते चन्द्रसूर्याः ? तत्राह **'चित्तंतरलेसागा'** चित्रान्तरलेश्याकाः चन्द्रसूर्याः परस्परमन्तरिताः सन्तः चित्रलेश्याकाः भिन्नभिन्नलेश्यावन्तः चन्द्राणां शीतरश्मिकत्वात् सूर्याणां चोष्णरश्मिकत्वात् । लेश्याविशेषं प्रदर्शयन्नाह— **'सुहलेस्सा मंदलेस्साय'** सुखलेश्यामन्दलेश्याश्च, तत्र चन्द्राः सुखलेश्याः सुख-दलेश्यावन्तः न हि मनुष्यक्षेत्रस्थितचन्द्रवत् शीतकालेऽत्यन्तशीतरश्मयः सन्ति, एवं सूर्याः मन्द-लेश्याः, न हि मनुष्यक्षेत्रस्थितसूर्यवत् ग्रीष्मकाले एकान्तोष्णरश्मयः किन्तु साधारण तेजसः सन्ति ॥३८॥ इह पूर्वमुक्तम्-यत्र द्वीपे समुद्रवा ग्रहादिपरिमाणं ज्ञातुमिच्छेत् तदा एकशशिपरि-वारभूत ग्रहादि परिमाणं तत्तद्वीपसमुद्रगतसख्यया गुणयितव्यमिति, तत एकशशिपरिवारभूतानां ग्रहादीना संख्यामाह—**'अट्ठासीईगहा'** इत्यादि गाथाद्वयं पाठसिद्ध तथापि स्पष्टीक्रियते—एकस्य शशिनः परिवारभूता ग्रहा अष्टाशीति (८८), नक्षत्राणि अष्टा विंशतिः (२८) ताराश्च कोटी कोटीनां षट् षष्टिः सहस्राणि, नवशानि पञ्चसप्तत्यधिकानि (६६९७५) एतावान्-**'एगससीपरिवारो तारागण कोडिकोडीण'** एकशशिपरिवारः पूर्व प्रदर्शित-संख्यकः तारागण-कोटीकोटीनां प्रोक्तः ॥३९॥४०॥ इत्येतत्पर्यन्तं जीवाभिगमातिदेशेन प्रोक्तस्य यावच्छन्दग्राह्यस्य पाठस्य व्याख्या ॥सू०॥१॥

इहान्यान्यपि सूत्राणि प्रविरलपुस्तकेषु दृश्यन्ते, न सर्वेषु पुस्तकेषु तत स्तान्यपि उपयोगित्वाद् विनेयजनानुग्रहाय प्रदर्श्यन्ते **'अंतो मणुस्सखेत्ते'** इत्यादि ।

मूलम्—ता मणुस्सखेत्ते जे चंदिमसूरिय गहगण णक्खत्ततारारूवा ते णं देवा किं उड्ढो-ववन्नगा कप्पोववन्नगा विमाणोववण्णगा चारोववण्णगा, चारट्ठिइया गइसमावण्णगा । ता ते णं देवा णो उड्ढोववण्णगा, नो कप्पोववण्णगा, विमाणोववण्णगा, चारोववण्णगा, नो चारट्ठिइया, गइरइया गइसमावण्णगा, उड्ढमुहकलंबुयपुप्फसंठाणसंठिएहिं जोयण साहस्सिएहिं तावक्खेत्तेहिं साहस्सियाहिं वाहिराहिय वेउव्वियाहिं परिसाहिं महयाहय णट्टगीयवाइयतंतीतलतालतुडियघणमुइंगपडुप्पवाइ य रवेणं महया उक्किट्ठिसीहनाद बोलकलकलरवेणं अच्छं पव्वयरायं पयाहिणावत्तमंडलचारं मेरुं अणुपरियट्टंति । ता तेसि णं देवाणं जाहे इंदे चयइ से कहमियाणिं पकरेंति ? ता चत्तारि पंच सामाणिय देवा तं ठाणं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति जाव अण्णे इत्थ इंदे उववण्णे भवइ । ता

इंदट्ठाणे णं केवइएणं कालेणं विरहिए पण्णत्ते ? ता जहण्णेणं इक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासे ॥ ता वहियाणं मणुस्सखेत्ते जे चंदिमसूरियगहगणणक्खत्ततारारूवा ते णं देवा किं उड्ढोववण्णगा कप्पोववण्णगा विमाणोववण्णगा चारट्ठिइया गइरइया गइसमावण्णगा । ता ते णं देवा णो उड्ढोववण्णगा नो कप्पोववण्णगा, विमाणोववण्णगा, णो चारोववण्णगा चारट्ठिइया नो गइरइया, नो गइसमावण्णगा पक्किट्ठगसंठाणसंठिएहिं जोयणसयसाहस्सिएहिं तावक्खेत्तेहिं, सयसाहस्सिएहिं वाहिरियाहिं वेउव्वियाहिं परिसाहिं महयाहयनट्टगीय वाइय जाव रवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति सुहलेस्सा मंदलेस्सा मंदायलेस्सा चित्तंतरलेस्सा अण्णोण्णसमोगाढाहिं लेस्साहिं कूडा इव ठाणाट्ठिया ते पएसे सव्वओ समंता ओभासेंति उज्जोवेंति तवेंति पभासेंति । ता तेसिणं देवाणं जाहे इंदे चयइसे कहमियाणिं पकरेंति । ता चत्तारि पंच सामाणियदेवा तं ठाणं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति जाव अण्णे इत्थ इंदे उववण्णे भवइ । ता इंदट्ठाणे णं केवइएणं कालेणं विरहिए पण्णत्ते ता जहण्णेणं एक्कं समयं उक्कोसेणं छम्मासे ॥ सू० २ ॥

छाया—अतर्न्मनुष्यक्षेत्रे ये चन्द्रसूर्यग्रहगणनक्षत्रतारारूपाः ते खलु देवाः किम्-ऊर्ध्वोपपन्नकाः ? कल्पोपपन्नकाः ? विमानोपपन्नकाः ? चारोपपन्नकाः ? चारस्थितिका ? गतिरतिकाः ? गतिसमापन्नकाः ? तावत् ते खलु देवा नो ऊर्ध्वोपपन्नकाः, नो कल्पोपपन्नकाः, विमानोपपन्नकाः, चारोपपन्नकाः नो चारस्थितिकाः, गतिरतिकाः, गतिसमापन्नकाः ऊर्ध्वमुखकदम्बकपुष्पसंस्थानसंस्थितैः योजनसाहस्त्रिकैः तापक्षेत्रैः, साहस्त्रिकाभिर्वाह्याभिश्च वैकुर्विकाभिः पर्षद्भिः महताहतनाटयगीतवादित्रतन्त्रीतलताल त्रुटितघनमृदङ्ग पटुप्रवादितरवेण महता उत्कृष्टि सिंहनाद-वोलकलकलरवेण अच्छं पर्वतराजं प्रदक्षिणावर्त्त मण्डलचारं मेरु मणुपर्यटन्ति । तावत् तेषां खलु देवानां यदा इन्द्रश्चयवते अथ कथमिदानीं प्रकुर्वन्ति ? तावत् चत्वारः पञ्च सामानिकदेवाः तत् स्थानमुपसंपद्य खलु विहरंति यावत् अन्योऽत्र इन्द्र उपपन्नो भवति । तावत् इन्द्रस्थानं खलु कियता कालेन विरहितं प्रज्ञप्तम् ? तावत् जघन्येन एकं समयम् उत्कर्षेण षण्मासान् ॥ तावत् बहिः खलु मनुष्य क्षेत्रे ये चन्द्रसूर्यग्रहगणनक्षत्रतारारूपाः ते खलु देवाः किम्-ऊर्ध्वोपपन्नकाः ? कल्पोपपन्नकाः, विमानोपपन्नकाः ? चारस्थितिकाः ? गतिरतिकाः ? गतिसमापन्नगाः ? तावत् ते खलु देवाः नो ऊर्ध्वोपपन्नकाः नो कल्पोपपन्नकाः, विमानोपपन्नकाः, नो चारोपपन्नकाः चारस्थितिकाः, नो गतिरतिकाः, नो गतिसमापन्नकाः, पक्वेष्टिका संस्थानसंस्थितैः योजनशतसाहस्त्रिकैः तापक्षेत्रैः शतसाहस्त्रिकाभिर्वाह्यवैकुर्विकाभि पर्षद्भिः महताहतनाट्यगीतवादित्र यावद् रवेण दिव्यान् भोगभोगान् भुञ्जाना विहरन्ति, सुखलेश्याः, मन्दलेश्याः, मन्दातपलेश्याः, चित्रान्तरलेश्याः अन्योन्य समवगाढाभिर्लेश्याभिः कूटा इव

स्थानस्थिताः तान् प्रदेशान् सर्वतः समन्ताद् अवभासयन्ति, उद्द्योतयन्ति, तापयन्ति, प्रभासयन्ति । तावत् तेषां खलु देवानां यदा इन्द्रः च्यवते अथ कथमिदानीं प्रकुर्वन्ति? तावत् चत्वारः पञ्च सामानिकदेवा तत् स्थानमुपसंपद्य खलु विहरन्ति यावद् अन्योऽत्र इन्द्र उपपन्नो भवति । तावत् इन्द्रस्थानं खलु कियता कालेन विरहितं प्रज्ञप्तम्? तावद् जघन्येन एकं समयम् उत्कृष्टेन षण्मासान् (।।सू०२)।

व्याख्या—'अंतो मणुस्स खेते' इति, मनुष्यक्षेत्रमध्ये ये चन्द्रादयो देवास्ते किम् 'उड्ढोववन्नगा' इत्यादि, ऊर्ध्वोपपन्नकाः उर्ध्वं सौधर्मादि द्वादशकल्पेभ्य उपरि उपपन्नाः? किं कल्पोपपन्नकाः सौधर्मादिकल्पेषु उपपन्नाः? किं विमानोपपन्नाः सामान्यविमानेषु उपपन्नाः? किं चारोपपन्नकाः, चारो मण्डलगत्या परिभ्रमणं, तमुपपन्नाः तमाश्रिताः? किं चारस्थितिकाः-चारस्य स्थितिरभावो येषां ते तथा चारवर्जिताः? गतिरतिकाः गतौ रतिरासक्तिर्येषां ते तथा गतिप्रियाः अत्र गतौ रतिमात्रमुक्तम्, साम्प्रतं साक्षाद् गतिविषयं प्रश्नं करोति, 'किं गइ समावन्नगा' किं गतिसमापन्नकाः गतियुक्ताः? भगवानाह—'ता ते णं देवा' इत्यादि, तावत् ते चन्द्रसूर्यादयो देवा नो ऊर्ध्वोपपन्नकाः नापि कल्पोपपन्नकाः किन्तु विमानोपपन्नकाः विमानेष्वेव ज्योतिष्कविमानेष्वेव तेषामुत्पत्तिसद्भावात्, तथा चारोपपन्नकाः परिभ्रमणशीलाः किन्तु नो चारस्थितिका चाररहिता नेत्यर्थः, गतिरतिकाः स्वभावतोऽपि गतिप्रियास्ते देवाः, एतावदेव न किन्तु गतिसमापन्नकाः गतियुक्ता अपि सन्ति मनुष्यक्षेत्रान्तर्वर्त्तिनश्चन्द्रसूर्यग्रहगणनक्षत्रतारारूपा देवा इति । साम्प्रतमेषां तापक्षेत्रादिवक्तव्यतामाह—'उड्ढमुह' इत्यादि, ऊर्ध्वमुखीकृतकदम्बकपुष्पवत् संस्थानम् अन्तः संकुचितबहिर्विस्तृतत्वात्तादृशं संस्थानं तेन संस्थितैः तदाकारैः योजनसाहस्रिकैः अनेकसहस्रयोजनप्रमाणैस्तापक्षेत्रैः, साहस्रिकाभिः अनेक सहस्रसंख्याभिर्बाह्याभिः, अत्र बहुवचनं व्यक्त्यपेक्षया, वैकुर्विकाभिः विकुर्वितनानारूपधारिणीभिः पर्षद्भिः 'महयाहय०' इत्यादि तत्र महताहतानि महता रवेणेत्यग्रेण सम्बन्धः, अहतानि अक्षतानि अस्खलितानि यानि नाट्यानि गीतानि वादित्राणि च, याश्च तन्त्र्यो-वीणाः ये च तलतालाः हस्ततालाः, यानि च त्रुटितानि-शेषाणि तूर्याणि, ये च घनाः-घनाकाराः ध्वनिसाधर्म्यात् पटुना-निपुणपुरुषेण प्रवादिता मृदङ्गाः, तेषां महता रवेण, तथा 'महया उक्किट्ठिसीहनादकलकलरवेणं' उत्कृष्टितः स्वभावतो गतिरतिकैर्बाह्यपरिषदन्तर्गतैर्देवैर्वेगेन गच्छत्सु विमानेषु उत्कर्षवशात् ये मुच्यन्ते सिंहनादाः सिंहवद्गर्जनरूपाः शब्दाः, यश्च क्रियमाणो बोलः, बोलो नाम यत् मुखे हस्तं दत्वा महताशब्देन पूत्क्रियते सः, यश्च कलकलो व्याकुलः शब्दसमूहः, तद्रवेण, एतादृश शब्दपूर्वक मित्यर्थः 'अच्छं' अतीव स्वच्छम् अतिनिर्मलजाम्बूनदरत्नबहुलत्वात् पर्वतराजं पर्वतेन्द्रं 'पयाहिणावत्तमंडलचारं' प्रदक्षिणावर्त्तमण्डलगत्या प्र-प्रकर्षेण दिक्षु विदिक्षु च परिभ्रमतां चन्द्रादीनां मेरुर्दक्षिण एव भवति यस्मिन्नावर्त्ते मण्डलपरिभ्रमणरूपे स प्रदक्षिणः, एतादृशः, प्रदक्षिण आवर्त्तो येषां

मण्डलानां तानि तथा प्रदक्षिणावर्त्तानि मण्डलानि तेषां गत्या चारः परिभ्रमणं यत्र स तथा, तं तादृशं मेरुम् 'अणुपरियट्टंति' मेरुमनुलक्षीकृत्य पर्यटन्ति परिभ्रमन्ति । साम्प्रतं तत्रत्येन्द्रस्य-च्यवने ते किं कुर्वन्तीति पृच्छति–'ता तेसिणं देवाणं' इत्यादि, प्रश्नसूत्रं सुगमम्-तेषां देवानां यदा इन्द्रश्च्यवते तदा ते तदानीं किं प्रकुर्वन्तीतिभावः । भगवानाह–'ता चत्तारि' इत्यादि, तेषामिन्द्रो यदा च्यवते तदा चत्वारः पञ्च वा सामानिकदेवा मिलित्वा तदिन्द्रस्थानमुपसंपद्य-अधिकृत्य विहरन्ति तत्स्थानं परिपालयन्तीत्यर्थः, कियदवधि ? इत्याह– 'जाव अण्णे' इत्यादि, यावदन्यइन्द्रः अत्र इन्द्रस्थाने इन्द्रत्वेन उपपन्नो भवति तावदिति । अथ-इन्द्रस्थानस्य विरहकालं पृच्छति–'ता इंदट्ठाणेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् तदिन्द्रस्थानं कियता कालेन कियत्कालपर्यन्तम् 'विरहियं' विरहितम्-इन्द्ररहितं प्रज्ञप्तम् ? इति प्रश्नः भगवानाह–'ता जहण्णेणं एक्कं समयं' इत्यादि, तदिन्द्रस्थानं जघन्येन एकं समयं यावत्, उत्कर्षेण षण्मासान् यावत् इन्द्रस्थानमि-न्द्रेण रहितं तिष्ठति ततो नाधिकं कालम्, षण्मासान्ते तु तत्रेन्द्रस्यावश्यमुपपातसद्भावादिति । इति मनुष्यक्षेत्रवक्तव्यता ।

अथ मनुष्यक्षेत्राद्बहिर्वर्त्तिनां चन्द्रादीनां वक्तव्यतामाह –'ता वहियाणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'वहियाणं माणुस्सखेत्तस्स' मनुष्यक्षेत्रस्य बहिः, इत्यादि प्रश्नसूत्रं मनुष्यक्षेत्र वदेव । उत्तरमपि तद्वदेव, नवरमत्र गतिविषये १, तापक्षेत्रसंस्थानप्रमाणविषये २, बाह्य-पर्षत्संख्याविषये ३, दिव्यभोगविषये च ४, नानात्वं वर्त्तते, तथाहि–मनुष्यक्षेत्र वर्त्तिनश्चन्द्रा-दयः चारोपपन्नकाः न तु चारस्थितिकाः गतिरतिकाः गतिसमापन्नकाः प्रोक्ताः, अत्रत्या मनुष्यक्षेत्रबहिर्वर्त्तिनश्चन्द्रादयस्तु नो चारोपपन्नकाः किन्तु चारस्थितिकाः–चाररहिताः, नो गतिरतिकाः नो गतिसमापन्नकाः नो गतियुक्ता वर्त्तन्ते इत्येवं गतिविषयकं नानात्वम् मनुष्यक्षेत्रवर्त्तिनां तापक्षेत्रमूर्ध्वीकृतकदम्बकपुष्पसंस्थानसंस्थितं योजनसाहस्रिकं तापक्षेत्र मुक्तम्, अत्र मनुष्यक्षेत्राद्बहिः पक्वेष्टकासंस्थानसंस्थितं योजनशतसाहस्रिकं तापक्षेत्रम्, यथा पक्वा इष्टका आयामतो दीर्घा विस्तरतस्तु स्तोका चतुरस्रा च तथा तेषामपि मनुष्यक्षेत्रा द्बहिर्व्यव-स्थितानां चन्द्रसूर्याणामातपक्षेत्राण्यपि आयामतोऽनेकयोजनशतसहस्रप्रमाणानि, विस्तरत एक योजनशतसहस्राणि चतुरस्राणि चेति तापक्षेत्रसंस्थानप्रमाणविषयकं नानात्वम् । अन्तर्मनुष्यक्षेत्रे चन्द्रसूर्यादयः अनेकसहस्रसंख्याभिर्वैकुर्विकबाह्यपर्षद्भिः सार्द्धं नाट्यगीतवादित्रादिरवेण उत्कृष्टसिंह-नादबोलकलकलरवेण प्रदक्षिणावर्त्तमण्डलचारं मेरुमनुलक्षीकृत्य पर्यटन्ति, अत्र मनुष्यक्षेत्र बहि-र्वर्त्तिनश्चन्द्रादयस्तु अनेकशतसहस्रप्रमिताभिर्वैकुर्विकबाह्यपर्षद्भिः सार्द्धं नाटचगीतवादित्रादिरवेण दिव्यान् भोगभोगान् भुञ्जाना विहरन्तीति पर्षद् विषयकं दिव्यभोगभोगविषयनानात्वम् ॥

कथम्भूतास्ते मनुष्यक्षेत्रबहिर्वर्त्तिनश्चन्द्रसूर्याः ? इत्याह–'सुहलेस्सा' सुखलेश्याः एतद्विशेषणं

चन्द्राणां तेन तत्रत्याश्चन्द्राः नातिशीतप्रकाशाः किन्तु सुखोत्पादकहेतुपरमलेश्या युक्ताः सन्ति। मंदलेश्याः—एतद्विशेषणं सूर्याणाम् तेन तत्रत्याः सूर्याः नात्युष्णतेजसः, एतदेव व्याचष्टे—'मंदातवलेस्सा' मन्दातपलेश्याः, मन्दा अनत्युष्ण स्वभावा आतपरूपा लेश्या रश्मिसमूहो येषां ते तथा। पुनः कीदृशाश्चन्द्रादित्याः ? इत्याह—'चित्तंतरलेस्सा' चित्रान्तरलेश्याः चित्रं विचित्रम् अन्तरम्—अन्तरालं परस्परव्यवधानरूपं लेश्या च येषां ते, तथा, ते इत्थम्भूताश्चन्द्रादित्याः 'अण्णोण्णसमोगाढाहिं लेस्साहिं' अन्योन्यसमवगाढाभिः परस्परसंमिलिताभिः लेश्याभिः प्रभाभिः, तथाहि—चन्द्राणां सूर्याणां च प्रत्येकं लेश्या योजनशतसहस्रप्रमाणविस्ताराः, सूचि पङ्क्त्या व्यवस्थितानां च तेषां चन्द्रसूर्याणां परस्परमन्तरं पञ्चाशत् पञ्चाशद् योजनसहस्राणि, ततश्चन्द्रप्रभासंमिश्राः सूर्यप्रभाः, सूर्यप्रभासमिश्राश्च चन्द्रप्रभा इति, इत्थं परस्पर समवगाढाभिर्लेश्याभिः 'कूडाइव ठाणट्ठिया' कूटानीव पर्वतोपरिव्यवस्थितशिखराणीव स्थानस्थिताः स्थाने स्वस्थाने एव सदाकालं स्थिताः सन्तः 'ते पएसे' तान् स्वस्व प्रत्यासन्नान् प्रदेशान् 'सव्वओ समंता' सर्वतः समन्तात् दिक्षु—विदिक्षु 'ओभासंति' अवभासयन्ति—प्रकाशयन्ति, 'उज्जोवेंति' उद्द्योतयन्ति दीप्ति युक्तानि कुर्वन्ति, 'तावेंति' तापयन्ति सुखदतापयुक्तानि कुर्वन्ति ''पभासेंति' प्रभासयन्ति भासमानानि कुर्वन्ति। अन्यत्सर्वं मनुष्यक्षेत्रकथितवदेव व्याख्येयम्, तथाहि—इन्द्रच्यवने चतुः पञ्च सामानिकदेवद्वारा इन्द्रस्थानपरिरक्षणम्—तत्र—इन्द्रविरहकालो जघन्येन एकं समयं यावत्, उत्कृष्टेन षण्मासान् यावद् भवतीति भावः ॥सू० २॥

गता पुष्करवरद्वीपवक्तव्यता, साम्प्रतं तदग्रे स्थितानां द्वीपसमुद्राणां वक्तव्यतां प्रतिपादयन् प्रथमं पुष्करवरद्वीपं पुष्करोदः समुद्रः संपरिवेष्टच्य तिष्ठतीति तद्वक्तव्यतामाह—'ता पुक्खरवरं णं दीवं' इत्यादि।

मूलम्—ता पुक्खरवरं णं दीवं पुक्खरोदे णामं समुद्दे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए जाव चिट्ठइ, एवं विक्खंभो, परिक्खेवो जोइसं च भाणियव्वं जहा जीवाभिगमे जाव सयंभूरमणे ॥सू० ३॥

छाया—तावत् पुष्कारवरं खलु द्वीपं पुष्कारोदो नाम समुद्रः वृत्तः वलयाकार संस्थानसंस्थितः यावत् तिष्ठति, एवं विष्कम्भः, परिक्षेप, ज्योतिष्कंच भणितव्यं यथा जीवाभिगमे यावत् स्वयम्भूरमण। सू० ३॥

व्याख्या—'ता पुक्खरवरं णं दीवं' इति 'ता' तावत् 'पुक्खरवरं णं दीवं' पुष्करवरं खलु द्वीपम् 'पुक्खरोदे णामं समुद्दे' पुष्करोदो नाम समुद्रः, कीदृशः ? इत्याह—'वट्टे' इत्यादि, 'वट्टे' वृत्तः गोलाकारः, गोलाकारस्तु घनरूपेणापि स्यादत आह—'वलयागारसंठाण संठिए' वलयाकारम् अन्तः शुषिरत्वात्, तद्रूपं सस्थान माकारः, तेन संस्थितः वलयाकृति-

युक्त इत्यर्थः 'जाव' यावत् अत्र यावत् पदेन 'सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता णं' इति संग्राह्यम् स पुष्करोदः समुद्रः पुष्करवरं द्वीपं सर्वतः समन्तात् दिक्षु विदिक्षु च संपरिक्षिप्य परिवेष्ट्य तिष्ठतीति । अथाग्रेऽतिदेशमाह-'एवं' इत्यादि, एवम् अनेन प्रकारेण तस्य पुष्करोदसमुद्रस्य 'विक्खंभो' विष्कम्भः, दैर्ध्यविस्ताररूपः 'परिक्खेवो' परिक्षेपः परिधिः, 'जोइसं' ज्योतिष्कं ज्योतिश्चक्रं चन्द्रसूर्यनक्षत्रग्रहगणताराहरूपं च 'भाणियव्वं' भणितव्यं वक्तव्यम् । कथःमित्याह-'जहा जीवाभिगमे' यथा येन प्रकारेण जीवाभिगमसूत्रे कथितं तथैवात्रापि वाच्यम् । कियत्पर्यन्त मित्याह-'जाव सयंभूरमणे' यावत्स्वयम्भूरमणसमुद्रः पुष्करोदसमुद्रादारभ्य मध्यगतद्वीपसमुद्रान् सगृह्य स्वयम्भूरमणसमुद्रपर्यन्तं वक्तव्यता सर्वाऽत्र पठनीयेति ॥सू०३॥

सम्प्रतं जीवाभिगमसूत्रातिदेशेन प्रोक्त पाठः प्रदर्श्यते-'ता पुक्खरोदे णं समुद्दे' इत्यादि ।

मूलम्-ता पुक्खरोदेणं समुद्दे किं समचक्कवालसंठिए जाव णो विसमचक्कवाल संठिए। ता पुक्खरोदे णं समुद्दे केवइए चक्कवालविक्खंभेणं ? केवइए परिक्खेवेणं आहिए ? तिवएज्जा, ता संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं आयामविक्खंभेणं, संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं आहिए तिवएज्जा। ता पुक्खरोदे णं समुद्दे केवइया चंदा पभासिंसु ३ पुच्छा तहेव। ता पुक्खरोदे णं समुद्दे संखेज्जा चंदा पभासिंसु ३ जाव संखेज्जाओ तारागणकोडाकोडीओ सोभं सोभिंसुवा ३। एएणं अभिलावेणं वरुणवरे दीवे वरुणोदे समुद्दे ४, खीरवरे दीवे खीरोदे समुद्दे ५, घयवरे दीवे घयोदे समुद्दे ६, खोयवरे दीवे खोयोदे समुद्दे ७, णंदिस्सरवरे दीवे णंदिस्सरवरे समुद्दे ८, अरुणे दीवे अरुणोदे समुद्दे ९, अरुणवरे दीवे अरुणवरे समुद्दे १० अरुणवरोभासे दीवे अरुणवरोभासे समुद्दे ११, कुंडलदीवे कुंडलोदे समुद्दे १२, कुंडलवरे दीवे कुंडलवरोदे समुद्दे १३, कुंडलवरोभासे दीवे कुंडलवरोभासे समुद्दे १४, सव्वेसिं विक्खंभपरिक्खेवो जोइसाइं पुक्खरोदसागरसरिसाइं ॥सू ॥४॥

छाया—तावत् पुष्करवरोदः खलु समुद्र किं समचक्रवालसंस्थितः यावत् नो विषमचक्रवालसंस्थितः । तावत् पुष्करोदः खलु समुद्रः कियान् चक्रवालविष्कम्भेण ! कियान् परिक्षेपेण आख्यातः ? इति वदेत् । तावत् ॥२० ये यानि योजनसहस्राणि आयामविष्कम्भेण, संख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण आख्यात इति वदेत् । तावत् पुष्करोदे खलु समुद्रे कियन्त श्चन्द्राः प्राभासयन् वा ३ पृच्छा तथैव । तावत् पुष्करोदे खलु समुद्रे संख्येयाश्चन्द्राः प्राभासयन् वा ३ यावत् संख्येयास्तारागणकोटीकोटयः शोभामशोभन्त वा ३। एतेनाभिलापेन-वरुणवरो द्वीपः, वरुणोदः समुद्रः ४, क्षीरवरो द्वीपः क्षीरोदः समुद्रः ५, घृतवरो द्वीप घृतोदः समुद्रः ६, क्षोदवरो द्वीप खोदोदः समुद्रः ७, नन्दीश्वरवरो द्वीपः नन्दीश्वरवरः समुद्रः ८, अरुणो द्वीपः अरुणोदः समुद्रः ९, अरुणवरो

द्वीपः अरुणवरः समुद्रः १०, अरुणवरावभासो द्वीपः अरुणवरावभासः समुद्रः ११, कुण्डलो द्वीपः, कुण्डलोदः समुद्रः १२ कुण्डलवरो द्वीपः, कुण्डलवरोदः समुद्रः १३, कुण्डलवरावभासो द्वीपः कुण्डलवरावभासः समुद्रः १४, सर्वेषां विष्कम्भः परिक्षेपः ज्योतिष्काणि पुष्करोदसागरसदृशानि ॥सू०॥४॥

व्याख्या—'ता पुक्खरोदे णं समुद्दे' इत्यादि, 'ता' तावत् 'पुक्खरोदे णं समुद्दे' पुष्करोदः खलु समुद्रः यः पुष्करवरं द्वीपं सर्वतः समन्तात् परिवेष्टय स्थितः स समुद्रः 'किं समचक्कवालसंठिए' किं समचक्रवालसंस्थितः ? 'जाव' यावत् यावत्पदेन किं विषमचक्रवालसंस्थितः ? इति प्रश्नः, पुष्करवरोदः समुद्रोऽपि पूर्वोक्तान्यसमुद्रवत् समचक्रवालसंस्थितः किन्तु 'नो विसमचक्कवालसंठिए' विषमचक्रवालसंस्थितो न । तस्य चक्रवालविष्कम्भपरिक्षेप विषयकप्रश्नसूत्रं सुगमम् । उत्तरमाह– 'ता संखेज्जाइं जोयणसहस्साइं' संख्येय सहस्रयोजनपरिमितस्तस्यायामविष्कम्भः, संख्येयसहस्रयोजनपरिमितएकपरिधिरित्युत्तरम् । एवं ज्योतिष्कदेवानां चन्द्रसूर्यनक्षत्रग्रहगणतारा अपि संख्येया एव व्याख्येयाः । प्रश्नसूत्राणि उत्तरसूत्राणि च 'संख्येया' इति पदमधिकृत्य व्याख्येयानि, यथा–'ता पुक्खरोदे णं समुद्दे केवइया चंदा पभासिंसु वा, ३, इति प्रश्नसूत्रमुक्त्वा 'ता पुक्खरोदेणं समुद्दे संखेज्जा चंदा पभासिंसु वा, ३, एवमुत्तरसूत्रं वाच्यम् । एवमेव सूर्यनक्षत्रग्रहगणताराणामपि प्रश्नसूत्राणि उत्तरसूत्राणि च स्वयमूहनीयानि । अथाग्रेतनं चतुर्थं वरुणवरद्वीपमारम्य चतुर्दश कुण्डलवरावभाससमुद्रपर्यन्तानां द्वीपानां समुद्राणाम् आयामविष्कम्भः परिधिज्योतिष्कं च सर्वमपि संख्यात योजनसहस्रत्वेनैव व्याख्येयम् । सर्वेऽपि द्वीपा समुद्राश्च समचक्रवालसंस्थिता एव न तु विषमचक्रवालसंस्थिताः, इत्येवमधिकारमाश्रित्य चतुर्दशानां द्वीपानां चतुर्दशानां समुद्राणां चातिदेशेन नामान्याह–'एएणं अभिलावेणं' इत्यादि, 'एएणं अभिलावेणं' एतेन पुष्करवरद्वीपपुष्करोदसमुद्रसदृशेनैव अभिलापेन 'वरुणवरे दीवे वरुणोदे समुद्दे' वरुणवरो द्वीपः वरुणोदः समुद्रः इत्येवं चतुर्थद्वीपसमुद्रादारम्य चतुर्दश द्वीपसमुद्रपर्यन्तं सर्वं सुगमं' तत्सूत्रपाठादेवावगन्तव्यम् । तदेवाह सूत्रकारः–'सव्वेसिं' इत्यादि, 'सव्वेसिं विक्खंभपरिक्खेवो जोइसाइं पुक्खरोदसागरसरिसाइं' सर्वेषामेषां चतुर्थद्वीपसमुद्राच्चतुदर्श द्वीपसमुद्रपर्यन्तानां विष्कम्भपरिक्षेपः, ज्योतिष्काणि सर्वाणि पुष्करोदसमुद्रसदृशानि व्याख्येयानि । तथाहि–संख्येयसहस्रयोजनो विष्कम्भः संख्येयसहस्रयोजनः परिक्षेपः, संख्येया एव प्रत्येकं चन्द्रसूर्यनक्षत्रग्रहगणतारा वाच्या इति । साम्प्रतं द्वीपसमुद्रगतदेवानां समुद्रगतजलानां च भावना क्रियते–

पुष्करोदे च समुद्रे जलमतिस्वच्छं पथ्यं जात्यं तथ्यपरिणामं स्फटिकवर्णनिभं प्रकृत्या उदकरसम् । तत्र श्रीधरः श्रीप्रभश्चेति नामानौ द्वौ देवौ आधिपत्यं परिपालयतः, तत्र श्रीधरः पुष्करोदसमुद्रस्य पूर्वार्द्धाधिपतिः, श्रीप्रभश्चापरार्द्धाधिपतिरिति । अस्य पुष्करोदसमुद्रस्यायामो

विष्कम्भः ज्योतिश्चक्रं चेत्येषां व्याख्या सुगमा अथातिदेशमाह—'एएणं अभिलावेणं' इत्यादि, 'एएणं' एतेन पुष्करोदसमुद्रप्रोक्तेन अभिलापेन आलापकप्रकारेण 'अरुणवरे दीवे' इत्यादि. अरुणवरो द्वीपो वक्तव्यः, तदनन्तरं वरुणोदः समुद्रः ततः क्षीरवरो द्वीपः क्षीरोदः समुद्रः, इत्यादि, चतुर्दश द्वीपसमुद्रपर्यन्तं वाच्यम् । तत्र वरुणवरे द्वीपे च वरुण-वरुणप्रभौ द्वौ देवौ तत्स्वामिनौ, तयोराद्यो वरुणदेवः पूर्वार्द्धाधिपतिः, द्वितीयो वरुणप्रभश्चापरार्द्धाधिपतिः । एवमग्रेऽपि सर्वत्र भावनीयम् । वरुणोदे समुद्रे परम सुजातमृद्वीकानिष्पन्नरसादपीष्टतराऽऽस्वादयुक्तं जलं विद्यते । तत्र वारुणि—वारुणिप्रभौ देवौ ४ । क्षीरवरे द्वीपे पण्डरसुप्रदन्तौ द्वौ देवौ, क्षीरोदे समुद्रे जात्य पुण्ड्रेक्षुचारिणीनां गवां यत् क्षीरं, तदन्याभ्यो गोभ्यो दीयते, तासामपि क्षीरमन्याभ्यः, तासामप्यन्याभ्यः, एवं चतुर्थस्थानपर्यवसितस्य क्षीरस्य प्रयत्नतो मन्दाग्निना क्वथितस्य जात्येन खन्डेन मत्स्यण्डिकया सम्मिश्रस्य यादृशो रसो भवति तस्माद पीष्टतरस्वादं तत्कालविकसितश्वेतकर्णिकारपुष्पवर्णाभं च जलं वर्त्तते । विमल—विमलप्रभौ च तत्र देवौ ५ । घृतवरे द्वीपे कनक—कनकप्रभौ देवौ, घृतोदे समुद्रे सद्योविस्यन्दित गो घृतास्वादं तत्कालविकसितश्वेतकर्णिकारपुष्पवर्णाभं च जलं वर्त्तते । कान्तसुकान्त नामानौ तत्र देवौ ६ । क्षोदवरे द्वीपे क्षोदः—इक्षुः, सुप्रभमहाप्रभौ देवौ, क्षोदोदे जात्यवर पुण्ड्राणामिक्षूणामपनीतमूलोपरि त्रिभागानां विशिष्टगन्धद्रव्यपरिवासितानां यो रसः श्लक्ष्ण वस्त्रपरिपूतो यादृशास्वादयुक्तो भवेत्तस्मादपीष्टतरास्वादबहुलं जलं वर्त्तते । पूर्ण—पूर्णप्रभौ च तत्र देवौ ।७। नन्दीश्वरे द्वीपे कैलास—हस्तिवाहनौ देवौ, नन्दीश्वरे समुद्रे इक्षुरसास्वादं जलं, सुमनः सौमनसौ देवौ ८, एते अष्टावपि जम्बूद्वीपादारभ्य नन्दीश्वरद्वीपनन्दीश्वरसमुद्र पर्यन्ता द्वीपाः, समुद्राश्च एकप्रत्यवतारा एकैकरूपा यन्नामको द्वीपः तन्नामक एव समुद्रः, एवं रूपेण एकैकरूपा इत्यर्थः अत ऊर्ध्वंतु ये षड् द्वीपा ये षट् समुद्राश्च ते त्रिप्रत्यवताराः त्रयस्त्रयः सदृशनामानः, तथाहि—अरुणः, अरुणवरः अरुणावभासः, कुण्डलः कुण्डलवरः, कुण्डलावभासः, एते षड्द्वीपाः, एतन्नामान एव षट् समुद्रा इति । एवं जातानि द्वीपसमुद्राणां चतुर्दश युग्मानीति १४ । तत्र षट्सु द्वीपसमुद्रयुग्मेषु अरुणे द्वीपे अशोकवीतशोकौ देवौ, अरुणोदे समुद्रे सुभद्र—मनोभद्रौ देवौ ? अरुणवरे द्वीपे अरुणवरभद्रा—ऽरुणवरमहाभद्रौ अरुणवरे समुद्रे—अरुण वरभद्रा—ऽरुणवरमहाभद्रौ १०, अरुणवरावभासे द्वीपे अरुणवरावभासभद्रा—ऽरुणवरावभासमहाभद्रौ, अरुणवरावभासे समुद्रे—अरुणवरावभासवरा—ऽरुणवरावभासमहावरौ ११, कुण्डले द्वीपे कुण्डल—कुण्डलभद्रौ देवौ, कुण्डलसमुद्रे चक्षुः शुभ—चक्षुः कान्तौ १२, कुण्डलवरे द्वीपे कुण्डल-वरभद्र—कुण्डलवरमहाभद्रौ, कुण्डलवरे समुद्रे कुण्डलवर—कुण्डलमहावरौ १३, कुण्डलवरावभासे द्वीपे कुण्डलवरावभासभद्र—कुण्डलवरावभासमहाभद्रौ, कुण्डलवरावभासे समुद्रे कुण्डलवरावभासवर—कुण्डलवरावभासमहावरौ द्वौ देवौ स्तः, तत्र एकः पूर्वार्द्धाधिपतिरपरोऽपरार्द्धाधिपतिरस्तीति

१४ एवं चतुर्दश द्वीपाश्चतुर्दशैव समुद्राश्च तथा तेषामधिपतयो देवाश्च प्रतिपादिताः सूत्रोपात्ता एते सर्वे संख्यातसहस्रयोजनप्रमाणविष्कम्भपरिक्षेपसंख्येयज्योतिष्कवन्तश्च सन्तीति ॥४॥

पूर्वं पुष्करोदसमुद्रादारभ्य कुण्डलवरावभाससमुद्रपर्यन्ताश्चतुर्दश द्वीपाश्चतुर्दश समुद्राः संख्यातसहस्रयोजनप्रमाणविष्कम्भपरिक्षेपवन्तः संख्याताश्चन्द्रादयश्च प्रोक्ताः, साम्प्रतं ये असंख्यातयोजनसहस्रप्रमाणविष्कम्भपरिक्षेपवन्तः असंख्यातचन्द्रादिमन्तो द्वीपाः समुद्राश्च सन्ति तान् सूत्रकारः साक्षादेव प्रदर्शयति, तत्र प्रथमं यः कुण्डलवरावभासः समुद्रो वर्णितस्तं को द्वीपो परिवेष्ट्य तिष्ठति ? इत्यादि स्वयम्भूरमणद्वीपसमुद्रपर्यन्तानां द्वीपसमुद्राणां वक्तव्यता माह—'ता कुंडलवरोभासण्णं समुद्दं' इत्यादि

मूलम्—ता कुण्डलवरोभासण्णं समुद्दं रुयए दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ । ता रुयएणं दीवे किं समचक्कवालसंठिए विसमचक्कवालसंठिए ? । ता समचक्कवालसंठिए नो विसमचक्कवालसंठिए । ता रुयएणं दीवे केवइए विक्खंभेणं ? केवइए परिक्खेवेणं आहिए ? ति वएज्जा । ता असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं आहिए ति वएज्जा । ता रुयएणं दीवे केवइया चंदा पभासिंसुवा पुच्छा ता रुयगेणं दीवे असंखेज्जा चंदा पभासिंसु वा ३, जाव असंखेज्जा तारागणकोडिकोडीओ सोभं सोभिंसुवा ३। एवं रुयगोदे समुद्दे, रुयगवरे दीवे रुयगवरोदे समुद्दे रुयगवरोभासे दीवे रुयगवरोभासे समुद्दे । एवं तिपडोयारा णेयव्वा जाव सूरे दीवे सूरोदे समुद्दे, सूरवरे दीवे सूरवरोदे समुद्दे सूरवरोभासे दीवे सूरवरोभासोदे समुद्दे । सव्वेसिं विक्खंभपरिक्खेवजोइसाइं रुयगदीव सरिसाइं । ता सूरवरोभासोदण्णं समुद्दं देवे णामं दीवे वट्टे वलयागारसंठाणसंठिए सव्वओ दीवे समंता संपरिक्खित्ताणं चिट्ठइ जाव णो विसमचक्कवालसंठिए । ता देवेणं केवइए चक्कवालविक्खंभेणं ? केवइए परिक्खेवेणं आहिए । तिवएज्जा । ता असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं चक्कवालविक्खंभेणं, असंखेज्जाइं जोयणसहस्साइं परिक्खेवेणं आहिए ति वएज्जा । ता देवेणं दीवे केवइया चंदा पभासिंसुवा ३, । पुच्छा तहेव । ता देवेणं दीवे असंखेज्जा चंदा पभासिंसुवा ३, जाव असंखेज्जाओ तारागण कोडिकोडीओ सोभं सोभिंसुवा ३। एवं देवोदे समुद्दे, णागे दीवे णागोदे समुद्दे जक्खे दीवे जक्खोदे समुद्दे, भूते दीवे भूतोदे समुद्दे सयंभूरमणे दीवे सयंभूरमणे समुद्दे सव्वे देव दीवसरिसा ॥सू० ५॥

॥ एगूणवीसइमं पाहुडं समत्तं ॥१९॥

छाया—तावत् कुण्डलवरावभासं खलु समुद्रं रुचको द्वीपो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्य खलु तिष्ठति । तावत् रुचकः खलु द्वीपः

किं समचक्रवालसंस्थितः नो. विषमचक्रवालसंस्थितः ?। तावत् समचक्रवालसंस्थितः नो विषमचक्रवालसंस्थितः। तावत् रुचकः खलु द्वीपः कियान् विष्कम्भेण ? कियान्-परिक्षेपेण आख्यातः ? इति वदेत्। तावत् असंख्येयानि योजनसहस्राणि चक्रवाल विष्कम्भेण, असंख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण आख्यात इति वदेत्। तावत् रुचके खलु द्वीपे कियन्तश्चन्द्राः प्राभासयन् वा ३ पृच्छा। तावत् रुचके खलु द्वीपे असंख्येया श्चन्द्राः प्राभासयन् वा ३ यावत् असंख्येया स्तारागण कोटीकोटयः शोभामशोभन्त वा ३। एवं रुचकोदः समुद्रः रुचकवरो द्वीपः रुचकवरोदः समुद्रः रुचकवरावभासो द्वीपो रुचकवरावभासः समुद्रः। एवं त्रिप्रत्यवतारा ज्ञातव्याः, यावत् सूर्यो द्वीपः सूर्योदः समुद्रः सूर्यवरो द्वीपः सूर्यवरोदः समुद्रः सूर्यवरावभासो द्वीपः सूर्यवरावभासोदः समुद्रः! सर्वेषां विष्कम्भपरिक्षेप-ज्योतिष्काणि रुचकद्वीपसदृशानि। तावत् सूर्यवरावभासोदं खलु समुद्रं देवो नाम द्वीपो वृत्तो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्य खलु तिष्ठति यावत् नो विषमचक्रवालसंस्थितः। तावत् देवः खलु द्वीपः कियान् चक्रवालविष्कम्भेण ? कियान् परिक्षेपेण आख्यातः ? इति वदेत्। तावत् असंख्येयानि योजनसहस्राणि चक्रवालविष्कम्भेण असंख्येयानि योजनसहस्राणि परिक्षेपेण आख्यात इति वदेत्। तावत् देवे खलु द्वीपे कियन्तश्चन्द्राः प्राभासयन् वा ३ पृच्छा तथैव। तावत् देवे खलु द्वीपे असंख्येयाश्चन्द्रा प्राभासयन् वा ३, यावत् असंख्येयास्तारागणकोटी कोटयः शोभामशोभन्त वा ३। एवं देवोदः, समुद्रः, नागो द्वीपो नागोदः समुद्रः, यक्षो द्वीपः यक्षोदः समुद्रः, भूतो द्वीपः भूतोदः समुद्रः, स्वयम्भूरमणो द्वीपः स्वयम्भूरमणः समुद्रः, सर्वे देवद्वीपसदृशाः ॥सू०॥४॥

एकोनविंशतितमं प्राभृतं समाप्तम् ॥१९॥

व्याख्या—'कुंडलवरोभासण्णं समुद्दं' इति 'कुंडलवरोभासण्णं समुद्दं' कुण्डलवरावभास खलु समुद्रं रुचको द्वीपो वलयाकारसंस्थानसंस्थितः सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्य—परिवेष्ट्य खलु तिष्ठति, इत्यादि सुगमम् तथाहि—रुचको द्वीपः समचक्रवालसंस्थितः किन्तु विषमचक्रवालसंस्थितो न। अस्य विष्कम्भः परिक्षेपश्च असंख्येययोजनसहस्रप्रमाणः। अत्र चन्द्रसूर्यनक्षत्रग्रहगणतारा असंख्येया वर्त्तन्ते। 'एवं रुचगोदे समुद्दे' इत्यादि एवम्-अनेनैव प्रकारेण रुचकः समुद्रः, रुचकवरो द्वीपः, रुचकवरोदः समुद्रः रुचकवरावभासो द्वीपः रुचकवरावभासः समुद्रः 'एवं' इत्यादि, एवमनेन प्रकारेणैव 'तिपडोयारा' त्रिप्रत्यवताराः, त्रयः प्रत्यवताराः सदृशनामरूपा येषु येषां वा ते त्रिप्रत्यवतारा ज्ञातव्याः कियत्पर्यन्तमित्याह—'जाव' इत्यादि 'जाव' यावत् 'सूरे दीवे' इत्यादि, सूर्यसूर्यवरसूर्यावभासा द्वीपाः, एतन्नामान एव समुद्राश्च प्रत्येकद्वीपस्याग्रे ज्ञातव्याः एते सर्वे त्रिप्रत्यवतारा वर्त्तन्ते। 'सव्वेसिं' इत्यादि, सर्वेषामेतेषां रुचकसमुद्रप्रभृतीनां सूर्यवरावभाससमुद्रपर्यन्तानां विष्कम्भः, परिक्षेपः ज्योतिष्काणि च 'रुयगदीवसरिसाइं' रुचकद्वीपसदृशानि तथाच—असंख्येययोजनसहस्रप्रमाणो विष्कम्भः परिक्षेपश्च

प्रत्येकमसख्येयानि चन्द्रसूर्यग्रहगणनक्षत्राणि असंख्येयास्तारागणकोटीकोटय इति । अत ऊर्ध्वं देवादयः पञ्च पञ्चद्वीपाः समुद्राश्च एक प्रत्यवतारा: इति उक्तञ्च जीवाभिगमसूत्रे—

"देवे नागे जक्खे, भूयेय सयंभूरमणे य, एक्केक्के चेव भाणियव्वे तिपडोयारं नत्थि" इति । ते एव प्रदर्श्यन्ते— **'सूरवरोभासोदण्णं'** इत्यादि अत्र पूर्वोक्तमन्तिमं सूर्यवराव-भासोदं समुद्रम् **'देवे णामं दीवे'** देवो नाम द्वीपः वृत्तो वलयाकारसंस्थित. सर्वतः समन्तात् संपरिक्षिप्य तिष्ठति । अयं देवो द्वीपः समचक्रवालसंस्थितः किन्तु नो विषमचक्रवाल संस्थितः अस्य विष्कम्भः परिक्षेपश्च असंख्येययोजनसहस्रप्रमाणः चन्द्रादयश्चासंख्येया व्याख्येयाः **'एवं देवोदे'** इत्यादि, देवोदः समुद्रः १ नागो द्वीपो नागोदः समुद्रः २, यक्षो द्वीपो यक्षोदः समुद्रः ३, भूतो द्वीपो भूतोदः समुद्रः ४, स्वयम्भूरमणो द्वीपः स्वयम्भूरमणः समुद्रः । **'सव्वे'** इति सर्वे एते देवोदः समुद्रः, नागादयो द्वीपाः, नागोदादयः समुद्राश्चेति सर्वे **'देवदीवसरिसा'** देवद्वीपसदृशाः, अतो देवद्वीपवदेव व्याख्येयाः । देवादि द्वीपसमुद्रगतं देवानां भावना चेत्थम् देवे द्वीपे देवभद्र-देवमहाभद्रौ पूर्वापरार्द्ध भागस्वामिनौ स्तः, एवं देवे समुद्रे-देववर-देवमहावरौ, नागद्वीपे नागभद्र-नागमहाभद्रौ, नागे समुद्रे नागवर-नागमहावरौ, यक्षे द्वीपे यक्षभद्र-यक्षमहाभद्रौ, यक्षे समुद्रे यक्षवर-यक्षमहावरौ, भूते द्वीपे भूतभद्र भूत महाभद्रौ भूते समुद्रे भूतवर-भूतमहावरौ-स्वयम्भूरमणे समुद्रे स्वयम्भूवरस्वयम्भूमहावरौ देवौ स्वामित्वेन तिष्ठत इति । इह नन्दीश्वरादयः सर्वे समुद्राः भूतसमुद्रपर्यवसाना इक्षुरसोद (क्षोदोद) समुद्रसदृशोदकाः प्रतिपत्तव्याः । स्वयम्भूरमणसमुद्रस्य तु उदकं पुष्करोदसमुद्रोदकसदृशं ज्ञातव्यम् । तथा जम्बूद्वीप इति नामानोऽसंख्येया द्वीपाः लवण इति नामानोऽसंख्येयाः समुद्राः, एवं तावद् वाच्यं यावत् सूर्यवरावभासइति नाम्ना असंख्येया समुद्राः । ये तु पञ्चदेवादयो द्वीपाः, पञ्च देवोदादयः समुद्रास्ते एकैका एवावसेया न तु त्रिप्रत्यवताराः, उक्तञ्च जीवाभिगमे—

"केवइया णं भंते ! जंबूद्दीवा दीवा पन्नत्ता !। गोयमा ! असंखेज्जा पन्नत्ता । केवइयाणं भंते! देवदीवा पन्नत्ता ! गोयमा ! एगे देवदीवे पण्णत्ते । दसवि एगागारा" इति छाया— कियन्तः खलु भदन्त ! जम्बूद्वीपाः द्वीपा प्रज्ञप्ताः ? गौतम ! असख्येयाः प्रज्ञप्ताः । कियन्तः खलु भदन्त ! देवद्वीपाः प्रज्ञप्ताः ? गौतम ! एको देव द्वीपः प्रज्ञप्तः । दशापि एकाकाराः ॥इति । **'दशापि'** इति दश—देवे—नागे—यक्षे—भूते—स्वयम्भूरमणे तिनामानः पञ्च द्वीपाः, एतन्नामान एव पञ्चसमुद्रा इति दश एते दश एकाकाराः एकप्रत्यवताराः सन्तीति ॥ सू० ४ ॥

इति श्री—जैनाचार्यजैनधर्मदिवाकर पूज्य श्री घासीलालव्रति
विरचितायां चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिका-
ख्यायां व्याख्यायामेकोनविंशतितमं प्राभृतं
समाप्तम् ॥ १९ ॥

। अथ विंशतितमं प्राभृतम् ।

तदेव मुक्तमेकोनविंशतितमं प्राभृतम्, तत्र जम्बूद्वीपादारम्य स्वयम्भूरमणसमुद्रपर्यन्तानां द्वीपसमुद्राणां संस्थानविष्कम्भ-परिधिज्योतिश्चक्राणां वक्तव्यता प्रोक्ता । अथ विंशतितमं प्राभृतं व्याख्यायते, अत्रायमर्थाधिकारः—पूर्वमधिकारसंग्रहगाथायामुक्तम्—'अणुभावे केरिसे वुत्ते' अनुभावः कीदृश उक्त इति, अनेन सम्बन्धेनास्मिन् प्राभृते चन्द्रसूर्याणामनुभावः प्रदर्शयिष्यते इति तद्विषयं प्रथमं सूत्रमाह—'ता कहं ते अणुभावे' इत्यादि ।

मूलम्—ता कहं ते अणुभावे आहिए ? ति वएज्जा । तत्थ खलु इमाओ दो पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ तं जहा तत्थेगे एवमाहंसु-ता चंदिमसूरियाणं णो जीवा, अजीवा, णो घणा, झुसिरा, णो वादरबोंदिधरा, कलेवरा, नत्थि णं तेसिं उट्ठाणेइ वा, कम्मेइ वा, बलेइ वा, वीरिए इ वा, पुरिसक्कारपरक्कमे इ वा, ते णोविज्जुं लवंति, णो असणिं लवंति, णो थणियं लवंति,, अहेय णं वायरे वाउकाए संमुच्छइ, अहेय णं वायरे वाउकाए समुच्छित्ता विज्जंपि,, लवंति असणिंपि लवंति, थणियंपि लवंति, एगे एव माहंसु—ता चंदिमसूरियाणं जीवा, णो अजीवा, घणा, नो झुसिरा, वायरबोंदिधरा, नो कलेवरा, अत्थि णं तेसिं उट्ठाणे इ वा, कम्मे इ वा, बले इ वा, वीरिए इ वा, पुरिसक्कारपरक्कमे इ वा, ते विज्जुंपि लवंति, असणिंपि लवंति, थणियंपि लवंति, एगे एवमाहंसु ॥२॥ वयं पुण एवं वयामो—ता चंदिमसूरियाणं देवा महिड्ढिया महाजुइया महाबला महाजसा महासोक्खा महाणुभावा वरवत्थधरा वरमल्लधरा वराभरणधारी अव्वुच्छित्तिणयट्ठयाए अण्णे चयंति अण्णे उववज्जंति ।सू० १ ।

छाया—तावत् कथं ते अनुभावः आख्यातः ? इति वदेत् तत्र खलु इमे द्वे प्रतिपत्ती प्रज्ञप्ते, तद्यथा—तत्रैके एवमाहुः—तावत् चन्द्रसूर्याः खलु नो जीवाः, अजीवा नो घनाः, शुषिरा. नो वादरबोंदिधराः, कलेवराः, नास्ति खलु तेषाम् उत्थानमितिवा, कर्मेतिवा, बलमिति वा, वीर्यमिति वा पुरुषकारपराक्रम इतिवा, ते नो विद्युतं प्रवर्त्तयन्ति, नो अशनिं प्रवर्त्तयन्ति, नो स्तनितं प्रवर्त्तयन्ति, अधश्च खलु वादरो वायुकायः संमूर्च्छति, अधश्च खलु वादरो वायुकायः संमूर्छ्य विद्युतमपि प्रवर्तयन्ति, अशनिमपि प्रवर्त्तयन्ति, स्तनितमपि प्रवर्त्तयन्ति, एके एवमाहुः ॥१॥ एके पुनरेवमाहुः—तावत् चन्द्रसूर्याः खलु जीवाः, नो अजीवा, घना., नो शुषिराः, वादरबोंदिधराः नो कलेवरा., अस्ति खलु तेषाम् उत्थानमितिवा, कर्मेतिवा, बलमितिवा, वीर्यमितिवा पुरुषकारपराक्रम इतिवा, ते विद्युतमपि प्रवर्त्तयन्ति, अशनिमपि प्रवर्त्तयन्ति स्तनितमपि प्रवर्त्तयन्ति, एके एवमाहुः ॥२॥ वयं पुनरेवं वदामः तावत् चन्द्रसूर्याः खलु देवाः महर्द्धिकाः महाद्युतिकाः महाबला-महायशसः महा सौख्याः, महानुभावाः वरवस्त्रधराः वरमाल्यधराः, वराभरणधारिणः अव्युच्छित्तिनयार्थतया अन्ये च्यवन्ते अन्ये उपपद्यन्ते ॥सू०॥१॥

व्याख्या—'ता कहंते' इति 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'ते' त्वया 'अणुभावे' अनुभावः चन्द्रसूर्याणां स्वरूपविशेषः 'आहिए' आख्यातः कथितः ? ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् ! इति गौतमेन पृष्टे भगवानाह—'तत्थ खलु' इत्यादि, 'तत्थ णं' तत्र चन्द्रसूर्यानुभावविषये खलु 'इमाओ' इमे-वक्ष्यमाणे 'दो पडिवत्तीओ' द्वे प्रतिपत्ती 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ते, 'तं जहा' तद्यथा ते द्वे यथा— 'तत्थ' तत्र द्वयोर्मध्ये 'एगे' एके प्रथमप्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' अनेन वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति । किं कथयन्ति ? इत्याह—'ता चंदिमसूरियाणं' इत्यादि, 'ता' तावत् चंदिमसूरियाणं' चन्द्रसूर्याः चन्द्रमसः सूर्याश्च खलु 'णो जीवा' नो जीवाः जीवरूपा न, किन्तु 'अजीवा' अजीवाः जीववर्जिताः सन्ति, तथा 'णो घणा' नो घनाः निविडप्रदेशोपचया न, किन्तु 'झुसिरा' शुषिराः वलयवद् अन्तः प्रदेशरहिताः सन्ति, तथा 'णो वादरबोंदिधरा' नो वादरबोन्दिधराः, स्थूलशरीरधारकाः प्रधानसजीवसुव्यक्तावयवशरीरोपेता न, किन्तु 'कलेवरा' कलेवराः प्राण रहित केवलशरीररूपाः, तथा 'नत्थि णं तेसिं' नास्ति खलु तेषां चन्द्रसूर्याणाम् 'उट्ठाणे इवा' उत्थानमिति वा, उत्थानम्-ऊर्ध्वीभवनरूपम् 'इति' उपदर्शने 'वा' समुच्चये 'वि' विकल्पे वा, 'कम्मे इ वा' कर्मेति वा कर्म—उत्क्षेपणावक्षेपणरूपं कर्मापि तेषां नास्ति तथा 'बलेइवा' बलमिति वा बलं शरीरसमुद्भवप्राणरूपं तदपि तेषां नास्ति तथा 'वीरिए इवा' वीर्य मितिवा, वीर्यम्-आन्तरोत्साहरूपं, तदपि तेषां न । तथा 'पुरिसक्कारपरक्कमे इवा' पुरुषकारपराक्रममिति वा, तत्र पुरुषकारः पुरुषत्वसमुद्भूतगौरवरूपः , पराक्रमः साधितस्वाभिमतप्रयोजनरूपः स एव, एतौ द्वावपि तेषां नस्तः, अत एव ते न काञ्चन क्रियामपि कुर्वन्तीति प्रदर्शयति 'ते णो' इत्यादि, ते चन्द्रसूर्याः 'णो विज्जुं लवंति' नो विद्युतं प्रवर्त्तयन्ति कुर्वन्ति, 'वृतुवर्त्तने' इत्यस्य प्राकृते लवादेशसंभवात् प्रवर्त्तयन्तीति रूपम् । 'नो असणिं लवंति' नो अशनिं प्रवर्त्तयन्ति, अशनिमिति विशिष्टप्रकारा अतिविकटगर्जन सहिता विद्युदेव, 'नो थणियं लवंति' नो स्तनितं गर्जनं प्रवर्त्तयन्ति । तर्हि किमित्याह—'अहेय' इत्यादि, 'अहेय' अधश्च तेषां चन्द्रसूर्याणां 'वायरे वाउकाए' बादरः स्थूलो वायुकायः 'संमुच्छइ' संमूर्छते तथाविध भावाद् एवं समुद्भवति, 'अहेय णं बायरे वाउकाए' अधश्च खलु स बादरो वायुकायः 'संमुच्छित्ता' संमूर्छ्य संमूर्छितो भूत्वा 'विज्जुं पि लवंति' इत्यादि, विद्युतमशनिं स्तनितं च प्रवर्त्तयन्तीति उपसंहारमाह—'एगे पुण' इत्यादि, 'एगे' एके पूर्वोक्ताः प्रथमप्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' एवम् अनेन पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्तीति प्रथमा प्रतिपत्तिः ।१। अथ द्वितीयामाह—'एगे पुण 'इत्यादि, 'एगे' एके द्वितीयप्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' एवम् वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति । किमित्याह—'ता चंदि-

मसूरियाण' इत्यादि, 'ता' तावत् 'चंदिमसूरियाणं' चन्द्रसूर्याः खलु न पूर्वोक्तस्वरूपाः किन्तु ते 'जीवा' जीवाजीवरूपाः सन्ति किन्तु 'णो अजीवा' अजीव रूपा न । एवं ते घनाः सन्ति किन्तु शुषिरा न, बादरबोन्दिधराः सन्ति न तु कलेवर मात्रा, अस्ति तेषाम् उत्थानं कर्म, बलं, वीर्यं, पुरुषकारः पराक्रमश्च, तेन ते विद्युतम्, अशनिम्, स्तनितं चापि प्रवर्त्तयन्ति । उपसंहारमाह–'एगे' इत्यादि 'एगे' एके इमे द्वितीयप्रतिपत्तिवादिनः एवं पूर्वोक्तप्रकारेण कथयन्तीति द्वितीया प्रतिपत्तिः ।२। एते द्वे अपि प्रतिपत्तीमिथ्यात्वरूपे, अतो भगवान् स्वमतं प्रदर्शयति–'वयं पुण' इत्यादि 'वयं पुण' वयं तु 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'वयामो' वदामः कथयामः तदेवाह–'ता चंदिमसूरियाणं' इत्यादि 'ता' तावत 'चंदिमसूरियाणं' चन्द्रसूर्याः खलु 'देवा' देवा देवरूपाः सन्ति न तु सामान्यतो जीवमात्राः, ते पुनर्देवाः कीदृशाः ? इत्याह–'महिड्ढिया' इत्यादि, 'महिड्ढिया' महर्द्धिका विमानादिऋद्धिमन्तः 'महज्जुइया' महाद्युतिकाः शरीराभरणद्युतिमन्तः 'महाबला' महाबलाः शरीरबलसंपन्नाः 'महाजसा' महायशसः–महाख्यातिमन्तः 'महासोक्खा' ? महासौख्याः देव्यादि परिवारवत्त्वात् महासुखसंपन्नाः, 'महाणुभावा' विशिष्टवैक्रियकरणाद्यचिन्त्यशक्तिमत्त्वान्महाप्रभावशालिनः 'वरवत्थधरा' वरवस्त्रधराः विशिष्ट वर्णोपेत सुकुमालवस्त्रधारिणः 'वरमल्लधरा' वरमाल्यधराः श्रेष्ठमालाधारिणः 'वराभरणधरा' वराभरणधराः श्रेष्ठकटककेयूरादिभूषणधारिणः 'अव्वुच्छित्तिनयट्ठयाए' अव्युच्छित्तिनयार्थतया द्रव्यार्थिकनयमतेन 'अण्णे चयंति' अन्ये पूर्वोत्पन्ना. स्वायुर्भवस्थितिक्षये च्यवन्ते, ततस्तत्र 'अण्णे' अन्ये तादृश देवायुर्बन्धकास्तत्र जघन्यतोऽन्तर्मुहूर्त्तकालेन उत्कृष्टतः षण्मासकालव्यवधानेन 'उववज्जंति' उत्पद्यन्ते ॥सू० १॥

पूर्वं चन्द्रसूर्याणामनुभावः प्रोक्तः, साम्प्रतं चन्द्रसूर्यप्रसङ्गाद् राहु वक्तव्यतामाह–'ता कहं ते राहुकम्मे' इत्यादि ।

मूलम्—ता कहं ते राहुकम्मे आहिए ? तिवएज्जा, तत्थ खलु इमाओ दो पडिवत्तीओ पण्णत्ताओ तं जहा–तत्थेगे एवमाहंसु-अत्थिणं से राहुदेवे जे णं चंदं वा सूरं वा गिण्हइ, एगे एवमाहंसु ।१। एगे पुण एवमाहंसु–नत्थि णं से राहुदेवे जे णं चंदं वा सूरं वा गिण्हइ ।२। तत्थ जे ते एवमाहंसु ता अत्थिणं से राहुदेवे जे णं चंदं वा सूरं वा गिण्हइ ते एवमाहंसु–ता राहूणं देवे चंदं वा सूरं वा गेण्हमाणे बुद्धंतेणं गिण्हित्ता बुद्धंतेणं मुयइ २, मुद्धंतेणं गिण्हित्ता बुद्धंतेणं मुयइ ३, मुद्धंतेणं गिण्हित्ता मुद्धंतेणं मुयइ ४, वामभुयंतेणं गिण्हिता वामभुयंतेणं मुयइ ५, वामभुयंतेणं गिण्हिता दाहिणभुयंतेणं मुयइ ६, दाहिणभुयंतेणं गिण्हित्ता वामभुयंतेणं मुयइ ७, दाहिणभुयंतेणं गिण्हिता दाहिणभुयंतेणं मुयइ ८, ... जे ते एवमाहंसु–

ता नत्थि णं से राहु देवे जे णं चंदं वा सूरं वा गेण्हइ ते एवमाहंसु—तत्थ णं इमे पण्णरस कसिणपोग्गला पण्णत्ता तं जहा—सिंघाडए १' जडिलए २, खरए ३, खतए ४, अंजणे ५, खंजणे ६, सीयले ७, हिमसीयले ८, केलासे ९, अरुणाभे १०, पभंजणे ११, णभसूरए १२, कविलिए १३, पिंगलिए १४, राहू १५। ता जया णं एते पण्णरस कसिणा पोग्गला सया चंदस्स वा सूरस्स वा लेसाणुवद्ध चारिणो भवंति तया णं माणुसलोयंसि माणुसा एवं वदंति—एवं खलु राहू चंदं वा सूरं वा गेण्हइ एवं खलु राहू चंदं वा सूरं वा गेण्हइ । ता जयाणं एए पण्णरस कसिणा पोग्गला णो सया चंदस्स वा सूरस्स वा लेसाणुवद्धचारिणो भवंति तया मणुसलोगम्मि मणुस्सा एवं वयंति—एवं खलु राहू चंदं वा सूरं वा नो गेण्हइ, एते एवमाहंसु ।२। वयं पुण एवं वयामो ता राहू णं देवे महिड्ढिए जाव महाणुभावे वरवत्थधरे वरमल्लधरे वराभरणधारी । राहूस्स णं देवस्स णवनामधेज्जा पण्णत्ता, तं जहा—सिंघाडए १, जडिलए २, खरए ३, खत्तए ४' दद्दरे ५, मगरे ६, मच्छे ७, कच्छभे ८ कण्हसप्पे ९। ता राहुस्स णं देवस्स विमाना पंचवण्णा पण्णत्ता तं जहा—किण्हा १, नीला २, लोहिया ३, हालिद्दा ४, सुक्किल्ला ५। अत्थि कालए राहुविमाणे खंजणवण्णाभे पण्णत्ते १, अत्थि नीलए राहुविमाणे अलाउय वण्णाभे, पण्णत्ते २, अत्थि लोहिए राहुविमाणे मंजिट्ठावण्णाभे पण्णत्ते ३, अत्थि हालिद्दए राहुविमाणे हलिद्दा वण्णाभे पण्णत्ते ४, अत्थि सुक्किल्लए राहुविमाणे भासरासि वण्णाभे पण्णत्ते ५। ता जयाणं राहु देवेआगच्छमाणे वा, गच्छमाणे वा, विउव्वेमाणे वा, परियारेमाणे वा चंदस्स वा सूरस्स वा लेस्सं पुरत्थिमेणं आवरित्ता पच्चत्थिमेणं वीईवयइ, तया णं पुरत्थिमेणं चंदे वा सूरे वा उवदंसेइ पच्चत्थिमेणं राहू १ । जया णं राहुदेवे आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारेमाणेवा चंदस्स वा सूरस्स वा लेस्सं दाहिणेणं आवरित्ता उत्तरेणं वीईवयइ तया णं दाहिणेणं चंदे वा सूरे वा. उवदंसेइ उत्तरेणं राहू २, एतेणं अभिलावेणं पच्चत्थिमेणं आवरित्ता पुरत्थिमेणं वीईवयइ, उत्तरेणं आवरित्ता दाहिणेणं वीईवयइ । जया णं राहूदेवे आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारे माणे वा चंदस्स वा सूरस्स वा लेस्सं दाहिणपुरत्थिमेणं आवरित्ता उत्तरपच्चत्थिमेणं वीईवयइ तया णं दाहिणपुरत्थिमेणं चंदे वा सूरे वा उवदंसेइ, उत्तरपच्चत्थिमेणं राहू । जया णं राहूदेवे आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वमाणे वा परियारेमाणे वा चंदस्स वा सूरस्स वा लेस्सं दाहिणपच्चत्थिमेणं आवरित्ता उत्तरपुरत्थिमेणं वीईवयइ तया णं दाहिणपच्चत्थिमेणं चंदे वा सूरे वा उवदंसेइ उत्तरपुरित्थिमेणं राहू ।

एएणं अभिलावेणं उत्तरपच्चत्थिमेणं आवरेत्ता दाहिणपुरत्थिमेणं वीईवयइ उत्तर पुरत्थिमेणं आवरेत्ता दाहिणपच्चत्थिमेणं वीईवयइ । ता जया णं राहूदेवे आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वेमाणे वा परियारेमाणे वा चंदस्स वा सूरस्स वा लेस्सं आवरेत्ता वीईवयइ तया णं मणुस्सलोए मणुस्सा वयंति राहुणा चंदे सूरेवा गाहिए। ता जया णं राहु देवे आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वेमाणे वा परियारेमाणे वा चंदस्स वा सूरस्स वा लेस्सं आवरित्ता पासेणं वीईवयइ तया णं मणुस्सलोयम्मि मणुस्सा वयंति–चंदेण वा सूरेण वा राहुस्स कुच्छी भिण्णा । ता जयाणं राहूदेवे आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वेमाणे वा परियारेमाणे वा चंदस्स वा सूरस्स वा लेस्सं आवरेत्ता पच्चोसक्कइ तया णं मणुस्सलोए मणुस्सा एवं वयंति–राहुणा चंदेवा सूरे वा वंते राहुणा० २ । ता जया णं राहुदेवे आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वेमाणे वा परियारेमाणे वा चंदस्स वा सूरस्स वा लेस्सं आवरेत्ता मज्झं-मज्झेणं वीईवयइ तया णं मणुस्सलोयंसि मणुस्सा वयंति–राहुणा चंदे वा सूरे वा विइयरिए, राहुणा २ । ता जया णं राहू देवे आगच्छमाणे वा गच्छमाणे वा विउव्वेमाणे वा परियारेमाणेवा चंदस्स वा सूरस्स वा लेस्सं आवरित्ता अहे सपक्खिं सपडिदिसिं चिट्ठइ तया णं मणुस्सलोयंसि मणुस्सा वयंति–राहुणा चंदे वा सूरे वा घत्थे राहुणा०२ । कइविहे णं राहू पण्णत्ते ? दुविहे पण्णत्ते तं जहा–धुवराहू य पव्वराहू य, तत्थ णं जे से धुवराहू से णं वहुलपक्खस्स पडिवए पण्णरसइ भागेणं भागं चंदस्स लेस्सं आवरेमाणे आवरेमाणे चिट्ठइ, तं जहा–पढमाए पढमं भागं जाव पण्णरसमं भागं चरमे समए चंदे रत्ते भवई, अवसेसे समए चंदे रत्तेय विरत्तेय भवइ । तमेव सुक्कपक्खे उवदंसेमाणे उवदंसेमाणे चिट्ठइ, तं जहा–पढमाए पढमं भागं जाव चंदे विरत्ते य भवइ, अवसेसे समए चंदे रत्ते य विरत्ते य भवइ । तत्थ णं जे ते पव्वराहू से जहण्णेणं छण्हं मासाणं, उक्कोसेणं वायालीसाए मासाणं चंदस्स, अडयालीसाए संवच्छराणं सूरस्स ।सू० २॥

छाया—तावत् कथं ते राहुकर्म आख्यातम् ? इति वदेत्, तत्र खलु इमे द्वे प्रतिपत्ती प्रज्ञप्ते, तद्यथा–तत्र एके एवमाहुः–अस्ति खलु स राहुर्देवः यः खलु चन्द्रं वा सूर्यं वागृण्हाति एके एवमाहुः (१) एके पुनरेव माहुः–नास्ति खलु राहुर्देवः यः खलु चन्द्रं सूर्यं वा गृह्णाति ॥२॥ तत्र ये ते एवमाहुः-तावत् अस्ति खलु स राहुर्देवः यः खलु चन्द्रं वा सूर्यंवा गृह्णाति ते एवमाहुः–तावत् राहुः खलु देवः चन्द्रं वा सूर्यं वा गृह्णन् बुध्नान्तेन गृहीत्वा बुध्नान्तेन मुञ्चति–१, बुध्नान्तेन गृहीत्वा मूर्द्धान्तेन मुञ्चति २, मूर्द्धान्तेन गृहीत्वा बुध्नान्तेन मुञ्चति ३, मूर्द्धान्तेन गृहीत्वा मूर्द्धान्तेन मुञ्चति ४, वामभुजान्तेन गृहीत्वा वामभुजान्तेन मुञ्चति ५, वामभुजान्तेन गृहीत्वा दक्षिणभुजान्तेन [illegible] णभुजान्तेन गृहीत्वा

वामभुजान्तेन मुञ्चति, ७, दक्षिणभुजान्तेन गृहीत्वा दक्षिणभुजान्तेन मुञ्चति ८, ।१। तत्र ये ते एवमाहुः--तावत् नास्ति खलु स राहुर्देवः यः खलु चन्द्रं वा सूर्यं वा गृह्णाति ते एवमाहुः—तत्र खलु इमे पञ्चदश कृष्णाः पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—शृङ्गाटकः १, जटिलकः २, खरकः ३, क्षतकः, ४, अञ्जनः ५, खञ्जनः, ६, शीतल. ७, हिमशीतलः, ८, कैलाशः ९, अरुणाभः १०, प्रभञ्जनः ११, नभःसूरकः १२, कापिलिकः १३, पिङ्गलकः १४, राहुः १५, तावत् यदा खलु एते पञ्चदश कृष्णाः पुद्गलाः सदा चन्द्रस्य वा सूर्यस्य वा लेश्यानुवद्धचारिणो भवन्ति तदा खलु मानुषलोके मनुष्या एवं वदन्ति एवं खलु राहुश्चन्द्रं वा सूर्यं वा गृह्णाति एवं खलु. २। तावत् यदा खलु एते पञ्चदश कृष्णाः पुद्गला नो सदा चन्द्रस्य वा सूर्यस्य वा लेश्यानुवद्धचारिणो भवन्ति तदा मनुष्यलोके मनुष्या एवं वदन्ति—एवं खलु राहुश्चन्द्रं वा सूर्यं वा नो गृह्णाति एते एवमाहुः ॥२॥

वयं पुनरेवं वदामः—तावत् राहुः खलु देवो महर्द्धिको यावत् महानुभावः वरवस्त्रधरः वरमाल्यधरो वराभरणधारी। राहोः खलु देवस्य नव नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—शृङ्गाटकः १, जटिलकः २, खरकः ३ क्षतकः ४, दर्दुरः ५, मकरः ६, मत्स्यः ७, कच्छपः ८, कृष्णसर्पः ९। तावत् राहोः खलु देवस्य विमानानि पञ्चवर्णानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा—कृष्णानि १, नीलानि २, लोहितानि ३, हारिद्राणि ४, शुक्लानि ५। अस्ति कालकं राहुविमानं खञ्जनवर्णाभं प्रज्ञप्तम् १, अस्ति नीलकं राहुविमानम् अलावुकवर्णाभं प्रज्ञप्तम् २, अस्ति लोहितं राहुविमानं मञ्जिष्ठावर्णाभं प्रज्ञप्तम् ३, अस्ति हारिद्रं राहुविमानं हरिद्रावर्णाभं प्रज्ञप्तम् ४, अस्ति शुक्लं राहुविमानं भस्मराशिवर्णाभं प्रज्ञप्तम् ५; तावत् यदा खलु राहुर्देवः आगच्छन् वा गच्छन् वा विकुर्वन् वा परिचारयन् वा चन्द्रस्य वा सूर्यस्य वा लेश्यां पौरस्त्येन आवृत्य पाश्चात्येन व्यतिव्रजति तदा खलु पौरस्त्येन चन्द्रो वा सूर्यो वा उपदर्शयति पाश्चात्येन राहुः १। यदा खलु राहुर्देव आगच्छन् वा गच्छन् वा विकुर्वन् वा परिचारयन् वा चन्द्रस्य वा सूर्यस्य वा लेश्यां दक्षिणात्येन आवृत्य उत्तरेण व्यतिव्रजति तदा खलु दक्षिणात्येन चन्द्रोवा सूर्योवा (आत्मानं) उपदर्शयति, उत्तरेण राहुः २। एतेन अभिलापेन पाश्चात्येन आवृत्य पौरस्त्येन व्यतिव्रजति उत्तरेण आवृत्य दाक्षिणात्येन व्यतिव्रजति यदा खलु राहुर्देव आगच्छन् वा गच्छत् वा विकुर्वन् वा परिचारयन् वा चन्द्रस्य वा सूर्यस्य वा लेश्यां दक्षिणपौरस्त्येन आवृत्य उत्तरपाश्चात्येन व्यतिव्रजति तदा खलु दक्षिणपौरस्त्येन चन्द्रो वा सूर्योवा उपदर्शयति, उत्तरपाश्चात्येन राहुः। यदा खलु राहुर्देव आगच्छन् वा गच्छन् वा विकुर्वन् वा परिचारयन् वा चन्द्रस्य वा सूर्यस्य वा लेश्यां दक्षिणपाश्चात्येन आवृत्य उत्तरपौरस्त्येन व्यतिव्रजति तदा खलु दक्षिण पाश्चात्येन चन्द्रो वा सूर्यो वा उपदर्शयति उत्तरपौरस्त्येन राहुः। एतेन अभिलापेन उत्तर पाश्चात्येन आवृत्य दक्षिणपौरस्त्येन व्यतिव्रजति, उत्तरपौरस्त्येन आवृत्य दक्षिणपाश्चात्येन व्यतिव्रजति। तावत् यदा खलु राहुर्देव आगच्छन् वा ४, चन्द्रस्य वा सूर्यस्य वा लेश्याम् आवृत्य व्यतिव्रजति तदा खलु मनुष्यलोके मनुष्या वदन्ति राहुणा चन्द्रो वा सूर्यो वा गृहीतः। राहुणा०२ तावत् यदा खलु राहुर्देव आगच्छन् वा०४ चन्द्रस्य वा सूर्यस्य वा लेश्याम् आवृत्य पार्श्वेण व्यतिव्रजति तदा खलु मनुष्यलोके मनुष्या वदन्ति—चन्द्रेण वा सूर्येण वा

राहोः कुक्षिः भिन्ना २। तावत् यदा खलु राहुर्देव आगच्छन् वा० ४ चन्द्रस्य वा सूर्यस्य वा लेश्याम् आवृत्य प्रत्यवष्वष्कते तदा खलु मनुष्यलोके मनुष्या एवं वदन्ति-राहुणा चन्द्रो वा सूर्यो वा वान्तः, राहुणा० २। तावत् यदा खलु राहुर्देव आगच्छन् वा० ४ चन्द्रस्य वा सूर्यस्य वा लेश्याम् आवृत्य मध्यमध्येन व्यतिव्रजति तदा खलु मनुष्यलोके-मनुष्या वदन्ति-राहुणा चन्द्रो वा सूर्यो वा व्यतिचरितः राहुणा० २ तावत् यदा खलु राहुर्देव आगच्छन् वा ४ चन्द्रस्य वा सूर्यस्य वा लेश्याम् आवृत्य अधः सपक्षं सप्रति-दिशं तिष्ठति तदा खलु मनुष्यलोके मनुष्या वदन्ति—राहुणा चन्द्रो वा सूर्यो वा ग्रस्तः, राहुणा० २। कतिविधः खलु राहुः प्रज्ञप्तः ? द्विविधो राहुः प्रज्ञप्तः, तद्यथा—ध्रुवराहुश्च पर्वराहुश्च । तत्र खलु यः स खलु बहुलपक्षस्य प्रतिपदि पञ्चदशभागेन भागं चन्द्रस्य लेश्याम् आवृण्वन् २ तिष्ठति, तद्यथा—प्रथमायां प्रथमं भागम्, यावत् पञ्चदशं भागम्। चरमे समये चन्द्रो रक्तो भवति, अवशेषे समये चन्द्रो रक्तश्च विरक्तश्च भवति, तमेव शुक्लपक्षे उपदर्शयन् २ तिष्ठति, तद्यथा—प्रथमायां प्रथमं भागं यावत् चन्द्रो विरक्तश्च भवति अवशेषे समये चन्द्रो रक्तो विरक्तश्च भवति । तत्र खलु यः स पर्वराहुः स जघन्येन षण्णां मासानाम् (उपरि) उत्कर्षेण द्विचत्वारिंशतो मासानां चन्द्रस्य, अष्टचत्वारिंशतः संवत्सराणां सूर्यस्य ॥ सू० ॥ २ ॥

व्याख्या—'ता कहं ते' इति, 'ता' तावत् 'कहं' कथं—केन प्रकारेण 'ते' तवमते त्वया वा 'राहुकम्मे' राहुकर्म राहुक्रिया 'आहिए' आख्यातं-कथितम् ? 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु हे भगवन् ! भगवानाह—'तत्थ खलु' इत्यादि, 'तत्थ' तत्र राहुकर्म विषये खलु 'इमाओ' इमे वक्ष्यमाणे 'दो' द्वे 'पडिवत्तीओ' प्रतिपत्ती 'पण्णत्ताओ' प्रज्ञप्ते कथिते, 'तं जहा' तद्यथा—'तत्थ' तत्र द्वयोर्मध्ये 'एगे' एके प्रथमप्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' एवं वक्ष्यामाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः-कथयन्ति । किं कथयन्ति ? इत्याह—'अत्थि णं' इत्यादि, 'अत्थि णं' अस्ति खलु 'से राहुदेवे' स राहुर्देवः 'जे णं' यः खलु 'चंदं वा-सूरं वा' चन्द्रं वा सूर्यं वा 'गिण्हति' गृह्णाति ग्रसति । उपसंहारमाह—'एगे' एके प्रथमा एवं पूर्वोक्तप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति ।१। द्वितीयां प्रतिपत्तीमाह—'एगे पुण' इत्यादि, 'एगे पुण' एके केचन द्वितीयाः—प्रतिपत्तिवादिनः 'एवं' एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण 'आहंसु' आहुः कथयन्ति । किं कथयन्तीत्याह—'नत्थिणं' इत्यादि, 'नत्थि णं' नास्ति खलु 'से' स एतादृशः 'राहुदेवे' राहुर्देवः 'जे णं' यः खलु 'चंदं वा सूरं वा' चन्द्रं वा सूर्यं वा 'गिण्हइ' गृह्णाति ।२। तदेवं द्वे प्रतिपत्ती प्रदर्श्य भगवान् तयो र्भावनां प्रदर्शयति—'तत्थ-जे ते' इत्यादि, 'तत्थ' तत्र एतयो र्द्वयोः प्रतिपत्तिवादिनोर्मध्ये 'जे ते एव माहंसु' ये ते प्रथमप्रतिपत्तिवादिनः एवम् 'अत्थि णं से राहूदेवे' इत्यादिरूपेण आहुः—कथयन्ति तथाहि—'ता अत्थि णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'अत्थि णं' अस्ति खलु राहुर्देवश्चन्द्रं वा सूर्यं

वा गृह्णातीति कथयन्ति ते 'एवं' एवम् वक्ष्यमाणप्रकारमाश्रित्य 'आहंसु' कथयन्ति, तमेव प्रकारमाह—'ता राहूणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'राहूणं देवे' राहुः खलु देवः चन्द्रं वा सूर्यं वा गृह्णन् कदाचित् 'बुद्धंतेणं' बुध्नान्तेन अधोभागेन गृहीत्वा 'बुद्धंतेण मुयइ' बुध्नान्तेनैव मुञ्चति, बुध्नान्तेनेति अधो भागेन ।१। कदाचित् 'बुद्धंतेणं गिण्हित्ता मुद्धंतेण मुयइ' बुध्नान्तेन-अधो भागेन गृहीत्वा मूर्द्धान्तेन उपरि भागेन मुञ्चति स कदाचित् मूर्द्धान्तेन गृहीत्वा बुध्नान्तेन मुञ्चति ।३। कदाचित् 'मुद्धंतेणं गिण्हित्ता मुद्धंतेणं मुयइ' मूर्द्धान्तेन उपरि भागेन गृहीत्वा उपरि भागेनैव मुञ्चति ४। कदाचित्—'वामभुयंतेणं' इत्यादि, वामभुजान्तेन वामपार्श्वेन गृहीत्वा वामभुजान्तेनैव मुञ्चति ५। कदाचित्—'वामभुयंतेणं गिण्हित्ता दाहिणभुयंतेणं मुयइ' वामभुजान्तेन गृहीत्वा दक्षिणभुजान्तेन दक्षिणपार्श्वेन मुञ्चति ।६। एवं कदाचित् दक्षिणभुजान्तेन गृहीत्वा वामभुजान्तेन मुञ्चति ७। कदाचित्—दक्षिणभुजान्तेन गृहीत्वा दक्षिणभुजान्तेनैव मुञ्चति ८। इयं प्रथमप्रतिपत्तिभावना समाप्ता ।१। अथ द्वितीयप्रतिपत्तिभावना प्रदर्श्यते—'तत्थ जे ते' इत्यादि, 'तत्थ' तत्र प्रतिपत्तिद्वयमध्ये 'जे ते' ये ते द्वितीयप्रतिपत्तिवादिनः 'नत्थि णं' इत्यादि प्रतिपादकाः एवमाहुः, तथाहि—'ता नत्थि णं' इत्यादि, तावद् नास्ति खलु स राहुर्देवो यः खलु चन्द्रं वा सूर्यं वा गृह्णातीति 'ते एवमाहंसु' ते एवं वक्ष्यमाणप्रकारमाश्रित्य आहुः कथयन्ति, तदेवाह—'तत्थ णं' इत्यादि, 'तत्थ णं' तत्र राहुकर्मविषये खलु एवमस्ति, यथा-'इमे पण्णरस कसिणा पोग्गला' इमे-वक्ष्यमाणाः पञ्चदश कृष्णा पुद्गलाः कृष्णवर्णाः पुद्गलाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा ते यथा—'सिंघाडए' इत्यादि, शृङ्गाटकः १, जटिलकः २, खरकः ३, क्षतकः ४, अञ्जनः ५, खञ्जनः ६, शीतलः ७, हिमशीतलः ८, कैलाशः ९, अरुणाभः १०, प्रभञ्जनः ११, नभः सूरकः १२, कापिलकः १३, पिङ्गलकः १४, राहुः १५। ततः किम् ? इत्यादि—'ता जया णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'एए' एते अनन्तरोदिताः 'पण्णरस कसिणा पोग्गला' पञ्चदश कृष्णाः कृष्णवर्णाः पुद्गलाः 'सया' सदा सातत्येन चन्द्रस्य वा सूर्यस्य वा 'लेसाणुबद्धचारिणो' लेश्यानुबद्धचारिणः चन्द्रसूर्यबिम्बगतप्रभासम्बन्धेनानुचारिणः पश्चाद गामिनो भवन्ति 'तया णं' तदा खलु 'माणुसलोगंसि' मनुष्यलोके मनुष्या एवं वदन्ति एवं खलु राहुश्चन्द्रं वा सूर्यं वा गृह्णाति चन्द्रं वा सूर्यं वा ग्रसतीति । 'ता जया णं' इत्यादि, यदा खलु एते पञ्चदश कृष्णाः पुद्गला नो सदा चन्द्रस्य वा सूर्यस्य वा लेश्यानुबद्धचारिणो भवन्ति तदा मनुष्यलोके मनुष्या एवं वदन्ति एवं खलु राहुश्चन्द्रं वा सूर्यं वा नो गृह्णाति । एतद्विषये भगवानुपसंहारमाह—'एए एवमाहंसु' एते प्रथमद्वितीयप्रतिपत्तिवादिनः एव-पूर्वोक्तप्रकारेण आहुः कथयन्तीति ।२। इदं लौकिकं वाक्यं प्रतिपत्तव्यं, किन्तु न वस्तुतो राहुश्चन्द्रं वा सूर्यं वा गृह्णातीति द्वितीयप्रतिपत्तिवादिभावना दर्शिता ।२। एते द्वे अपि प्रति

पत्ती मिथ्यारूपे, तन्निराकरणार्थं भगवान् स्वमतं प्रदर्शयति–'वयं पुण' इत्यादि । 'वयं पुण' वयं तु 'एवं वयामो' एवं–वक्ष्यमाणप्रकारेण वदामः–कथयामः । तदेव श्रीवीतराग भगवन्स्वमतं प्रदर्श्यते 'ता राहू णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'राहू णं' राहुः खलु न प्रथमप्रतिपत्तिवादिप्रदर्शित स्वरूपो देवः, न च द्वितीयप्रतिपत्तिवादिप्रदर्शितं कृष्णपुद्गलमात्रम् किन्तु 'देवे' स देवोऽस्ति वक्ष्यमाणस्वरूपः, तत्स्वरूपमाह–'महिड्ढिए' इत्यादि, 'महिड्ढिए' महर्द्धिकः 'जाव महाणुभावे' इति महाद्युतिकः महायशाः महाबलः, महासौख्यः महानुभावश्च, अर्थः पूर्वमेव गतः पुनश्चः–'वरवत्थधरे' इत्यादि, वरवस्त्रधरः, वरमाल्यधरः, वराभरणधारी, अर्थः पूर्ववदेव राहुरेतादृशो देवो वर्त्तते । अस्य नामान्याह—'राहुस्स णं' इत्यादि, 'राहुस्स णं देवस्स' राहोः खलु देवस्य राहुदेवस्य 'णव णामधेज्जा' नव नामधेयानि प्रज्ञप्तानि, तद्यथा 'सिंघाडए' इत्यादि, शृङ्गाटकः १, जटिलकः २, खरकः ३, क्षतकः ४, दर्दुरः ५, मकरः ६, मत्स्यः ७, कच्छपः ८, कृष्णसर्पः ९, इति । अस्य विमानानां वर्णमाह–'ता राहुस्स णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'राहुस्स णं देवस्स' राहु देवस्य खलु विमानानि पञ्च भवन्ति, तानि पृथक् पृथग् वर्णयुक्तानि सन्ति, तदेवाह–'विमाणा पंचवण्णा' पञ्च विमानानि पञ्च वर्णानि प्रज्ञप्तानि तद्यथा–'किण्हा' इत्यादि, कृष्णानि १, नीलानि २, लोहितानि ३, हारिद्राणि ४, शुक्लानि ५। विमानानां कालादिवर्णा किं प्रकारका' भवन्तीति प्रदर्शयति 'अत्थि कालए' इत्यादि, कालकं राहुविमानम् 'खंजणवण्णाभे' खञ्जनवर्णाभम्, खञ्जनं–दीपमल्लिकामलः, शकटाक्षमलश्च, तत्सदृशं कालवर्णं विमानम् १, नीलं राहुविमानम् 'अलाउयवण्णाभे' अलाबु –आर्द्रतुम्बं तत्सदृशवर्णयुक्तम् २, 'लोहितं' राहुविमानं 'मंजिट्ठावण्णाभं' मंजिष्ठावर्णाभं मंजिष्ठा–औषधिविशेषः तद्वद्रक्तवर्णयुक्तम् ३, हारिद्र पीतवर्णं राहुविमानं 'हरिद्दावण्णाभे' हरिद्रा-वर्णाभं हरिद्रावर्णवत् पीतवर्णम् ४, शुक्लं राहुविमानं 'भासरासिवण्णाभे' भस्मराशिवर्णाभं रक्षा पुञ्जवत् श्वेतवर्णयुक्तम् ५। चन्द्रसूर्ययोः राहुकृतावरण तन्मोचनविषयक–दिग्विभा-गान् प्रदर्शति–'ता जया णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'जया णं' यदा खलु 'राहुदेवे' राहुदेवः 'आगच्छमाणेवा' कुतश्चित्स्थानादागच्छन् वा 'गच्छमाणे वा' क्वापि स्थाने गच्छन् वा, 'विकुव्वेमाणेवा' स्वेच्छया तां तां विकुर्वणां कुर्वन् वा 'परियारेमाणे वा' परिचारण बुद्ध्या इतस्ततो गच्छन् वा चन्द्रस्य वा सूर्यस्य वा 'लेस्सं' लेश्यां विमानगतधवलि-मारूपाम 'पुरत्थिमेणं आवरित्ता' पौरस्त्येन पूर्वदिग्भागेन अग्रभागेनेत्यर्थः आवृत्य 'पच्च-त्थिमेणं' पाश्चात्येन पश्चिमदिग्भागेन पश्चाद्भागेनेत्यर्थः 'वीईवयइ' व्यतिव्रजति–व्यतिक्रामति 'तया णं' तदा तस्मिन् समये खलु 'पुरत्थिमेणं' पौरस्त्येन–पूर्वभागेन चन्द्रो वा सूर्यो वा स्वात्मा-नम् 'उवदंसेइ' उपदर्शयति चन्द्रः सूर्योवा प्रकटो भवतीति भावः 'पच्चत्थिमेणं राहू' पाश्चात्येन पश्चिमभागेन राहु रुपलब्धो भवति, अयं भावः–तस्मिन् समये–मोक्षकाले चन्द्रः

सूर्यो वा पूर्वदिग्भागे प्रकटीभूत उपलभ्यते पश्चिमभागे अधस्ताच्च राहुरुपलभ्यते, इति १। एवं 'जया णं' यदा खलु राहुर्देव आगच्छन्वा ४ चन्द्रसूर्ययोर्लेश्यां दक्षिणभागेन आवृत्य उत्तरभागेन व्यतिव्रजति तदा दक्षिणभागे चन्द्रसूर्यौ आत्मानमुपदर्शयतः उत्तरभागे च राहुरिति २। 'एएणं अभिलावेणं' एतेन पूर्वोक्तेन अभिलापेन राहुदेवः पाश्चात्येन चन्द्रसूर्यलेश्यामाहत्य पूर्वभागेन व्यतिव्रजति ३, उत्तरभागेन आवर्त्य च दक्षिणभागेन व्यतिव्रजति २ इत्यपि सूत्रद्वयं भावनीयम् ४। अथ विदिशा विषयकं राहुचारमाह—'जया णं' इत्यादि. 'जया णं' यदा खलु राहुर्देवः आगच्छन् वा ४ चन्द्रसूर्यलेश्याम् 'दाहिणपुरत्थिमेणं' दक्षिपौरस्त्येन—आग्नेयकोणेन चन्द्रसूर्यलेश्यामावृत्य 'उत्तरपच्चत्थिमेणं वीईवयइ' उत्तरपाश्चात्येन वायव्यकोणेन व्यति व्रजति तदा खलु 'दाहिणपुरत्थिमेणं' दक्षिणपौरस्त्येन आग्नेयकोणेन चन्द्रः सूर्योवाऽत्मानमुपदर्शयति 'उत्तरपच्चत्थिमेणं राहू' उत्तरपाश्चात्येन वायव्यकोणेन राहुरूपलभ्यते ।१। यदा खलु राहुर्देवः 'आगच्छमाणे वा ४' आगच्छन् वा ४ चन्द्रसूर्यलेश्याम् 'दाहिणपच्चत्थिमेणं' दक्षिणपाश्चात्येन नैऋतकोणेन आवृत्य 'उत्तरपुरत्थिमेणं वीईवयइ' उत्तरपौरस्त्येन ईशानकोणेन व्यतिव्रजति तदा खलु 'दाहिणपच्चत्थिमेणं' दक्षिणपाश्चात्येन चन्द्रः सूर्यो वा उपदृश्यते 'उत्तरपुरत्थिमेणं राहू' उत्तरपौरस्त्येन ईशानकोणेन राहुर्दृश्यते ।२। 'एएणं अभिलावेणं' एतेन अभिलापेन यदा राहुः 'उत्तरपच्चत्थिमेणं' उत्तरपाश्चात्येन वायव्यकोणेन चन्द्रसूर्यलेश्यामावृत्य 'दाहिणपुरत्थिमेणं वीईवयइ' दक्षिणपौरस्त्येन आग्नेयकोणेन चन्द्रः सूर्योवा दृश्यते दक्षिणपौरस्त्येन आग्नेयकोणेन च राहुः ।३। एवं 'उत्तरपुरत्थिमेणं' उत्तर पौरस्त्येन ईशानकोणेन चन्द्रसूर्यलेश्यामावृत्य 'दाहिणपच्चत्थिमेणं वीईवयइ' दक्षिणपाश्चात्येन नैऋतकोणेन व्यतिव्रजति तदा उत्तरपौरस्त्येन चन्द्रः सूर्योवा दृश्यते दक्षिणपाश्चात्येन च रहुरिति ४। एवं स्थितौ मनुष्यलोके मनुष्याः किं वदन्ति ?-इति प्रदर्श्यते—'ता जया णं' इत्यादि, 'ता' तावत् यदा खलु राहुर्देवः 'आगच्छमाणे वा ४' आगच्छन्वा ४ चन्द्रस्य सूर्यस्य वा लेश्यामावृत्य व्यतिव्रजति राहुः स्थितो भवतीत्यर्थः तदा मनुष्यलोके मनुष्या वदन्ति 'राहुणा चंदे सूरे वा गहिए' राहुणा चन्द्रः सूर्योवा गृहीत इति। 'जया णं' इत्यादि, यदा खलु राहुर्देवः आगच्छन्वा ४ चन्द्रस्य सूर्यस्य वा लेश्यामावृत्य 'पासेणं वीईवयइ' पार्श्वेन पार्श्वभागेण व्यतिव्रजति तदा मनुष्या वदन्ति—'चंदेण वा सूरेण वा' चन्द्रेणवा सूर्येणवा 'राहुस्स कुच्छीभिण्णा' राहोः कुक्षिर्भिन्नेति-राहोः कुक्षिं भित्त्वा चन्द्रः सूर्योवा निर्गत इति। 'ता जया णं' इत्यादि, यदा राहु र्देव आगच्छन् वा० ४ चन्द्रस्य वा लेश्यामावृत्य 'पच्चोसक्कइ' प्रत्यवष्वष्कते—पश्चादपसर्पति तदा मनुष्या एवं वदन्ति 'राहुणा चंदे वा सूरेवा वंते' राहुणा चन्द्रोवा सूर्योवा वान्तः राहुणा ग्रस्तश्चन्द्रः सूर्यो वा पुनर्निष्कासित इति। 'ता जयाणं' इत्यादि, यदा राहुर्देव आगच्छन् वा० ४ चन्द्रस्य सूर्यस्य वा लेश्यामावृत्य 'मज्झं मज्झेणं वीईवयइ' मध्यमध्येन बहुमध्यदेशभागेन व्यतिव्रजति तदा

मनुष्याः कथयन्ति—'राहुणा चंदे वा सूरे वा विइयरिए' राहुणा चन्द्रः सूर्यो वा व्यतिचरितः— मध्यभागेन विभिन्नः द्विधाकृत इति। 'ता जया णं' इत्यादि, यदा राहुर्देव आगच्छन् वा०४ चन्द्रस्य वा सूर्यस्य वा लेश्यामावृत्य 'अहे सपक्खि सपडिदिसं चिट्ठइ' 'सपक्खि' इति सपक्षं पक्षैः सह सर्वेषु तथा 'सपडिदिसिं' सप्रतिदिशमिति प्रतिदिग्भिः सह सप्रतिदिक् सर्वासु विदिक्षु तिष्ठतिः लेश्यामावृत्याधस्तिष्ठति तदा मनुष्या वदन्ति—'राहुणा चंदे वा सूरेवा घत्थे' राहुणा चन्द्रो वा सूर्यो वा ग्रस्तः सर्वात्मना गृहीतः सर्वग्रासं ग्रसति इति। अत्रास्य वाक्यस्य द्विधा कथनं तद् बहूनां मनुष्याणां कथनापेक्षयाऽवगन्तव्यम्। अत्राह—चन्द्रविमानं पञ्चैक षष्टिभाग-$\left(\frac{५}{६१}\right)$ न्यून-योजनप्रमाणं, राहुविमानं च ग्रहविमानत्वेन अर्द्धयोजनप्रमाणं शास्त्रे प्रोक्तं तर्हि कथं चन्द्रविमानस्य राहुविमानेन सर्वात्मनाऽऽवरणसंभवः? अत्रोच्यते—राहुविमानस्य महान् बहलस्तमिस्ररश्मिसमूहो वर्त्तते तेन लघियसाऽपि राहुविमानेन महता बहलेन तमिस्ररश्मिजालेन प्रसरतां प्राप्तेन सकलमपि चन्द्रमण्डलमावृतं भवति इति न कश्चिद्दोषः॥ साम्प्रत कतिविधराहुरिति जिज्ञासायां गौतमः प्रश्नयति—'ता कइविहेणं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'कइविहेणं' कतिविधः खलु 'राहू पण्णत्ते' राहुः प्रज्ञप्तः? भगवानाह—'दुविहे पण्णत्ते' द्विविधः द्विप्रकारको राहुः प्रज्ञप्तः 'तं जहा' तद्यथा— 'धुवराहू य पव्वराहू य' ध्रुवराहुश्च पर्वराहुश्च। तत्र यः सदैव चन्द्रविमानस्य चतुरङ्गुलम संप्राप्तः सन्नधस्तात् संचरति स ध्रुवराहुः, यस्तु पर्वणि पौर्णमास्यां चन्द्रस्योपरागं करोति स पर्वराहुः कथ्यते। 'तत्थ णं' तत्र द्वयोर्मध्ये खलु 'जे से धुवराहू' यः स ध्रुवराहुः 'से णं' स खलु 'वहुलपक्खस्स' बहुलपक्षस्य 'पाडिवए' प्रतिपदि 'पण्णरसइभागेणं' पञ्चदशेन भागेन चन्द्रमण्डलस्य द्वाषष्टिभागात्मकत्वाच्चतुर्भागरूपेण 'भागं' भागं प्रथमं भागं चतुर्भागरूपं पञ्चदशं भागं प्रतितिथि चन्द्रस्य लेश्याम् 'आवरेमाणे २' आवृण्वन् आवृण्वन् 'चिट्ठइ' तिष्ठति 'तं जहा' तद्यथा— 'पढमाए पढमं भागं' प्रथमायां तिथौ प्रतिपद्रूपायां प्रथमं पञ्चदशं भागं चतुर्भागरूप मावृणुते, एवम् 'जाव पण्णरसमं भागं' यावत् पञ्चदशं भागम् अत्र यावत्पदेन द्वितीयायां द्वितीयं २, तृतीयायां तृतीयं ३, चतुर्थ्यां चतुर्थं ४, पञ्चम्यां पञ्चमं ५, षष्ठ्यां षष्ठं ६, सप्तम्यां सप्तमम् ७ अष्टम्यामष्टमं ८, नवम्यां नवमं ९, दशम्यां दशमम् १०, एकादश्यामेकादशं ११, द्वादश्यां द्वादशं १२, त्रयोदश्यां त्रयोदशं १३, चतुर्दश्यां चतुर्दशम् १४ इत्येवं ग्राह्यम, ततः पञ्चदश्याम्—अमावास्या रूपायां पञ्चदशं भागं चन्द्रमण्डलस्य राहुरावृणुते, ततः 'चरमे समये' पञ्चदश्याश्चरमे समये पञ्चदश्या अन्तिमे भागे 'चंदे रत्ते भवइ' चन्द्रो रक्तः राहुविमानेन उपरक्तः सर्वात्मनाऽऽच्छादितो भवति। 'अवसेसे समए' अवशेषे कृष्णप्रतिपदात आरभ्य पञ्चदशीचरमसमयात्पूर्वपूर्वकाले 'चंदे रत्ते य विरत्ते य भवइ' चन्द्रो रक्तश्च विरक्तश्च राहुविमानेन क्रमशः

आच्छादितो देशेन चानाच्छादितो भवति । 'सुक्क पक्खे' शुक्लपक्षे तमेव क्रममाश्रित्य प्रथमायां शुक्लप्रतिपल्लक्षाणां तिथौ 'उवदंसे माणे २' उपदर्शयन् उपदर्शयन् चन्द्रलेश्यां विमुञ्चन् विमुञ्चन् तिष्ठति–वर्त्तते । 'तं जहा' यद्यथा–'पढमाए पढमं भागं' प्रथमायां शुक्लप्रतिपत्तिथौ प्रथमं पञ्चदशं-भागं चतुर्भागरूपं विमुञ्चति एवं क्रमेण 'जाव' यावत् द्वितीयात आरभ्य पञ्चदश्यां तिथौ पूर्णिमायां पञ्चदशं पञ्चदशभागं राहुर्विमुञ्चति ततः पूर्णिमायाश्चरमे समये 'चंदे विरत्ते भवइ' चन्द्रो विरक्त राहुर्लेश्याया सर्वात्मना विरक्तः अनाच्छादितो भवति सर्वात्मना प्रकटितो भवतीत्यर्थः राहुविमानेन सर्वथाऽनाच्छादितत्वात् । अत्राह कश्चित्–शुक्लपक्षे कृष्णपक्षे च कतिपयान् दिवसान् यावत् राहु-विमानं वृत्तमुपलभ्यते यथा ग्रहणकाले पर्वराहुः, कतिपयांश्च दिवसान् यावत् न वृत्तमुपलभ्यते तत्र किं कारणम् ? इति अत्रोच्यते इह येषु दिवसेषु शशी तमसाऽतिशयेनाभिभूयते तेषु दिवसेषु तद् विमानं वृत्तमाभाति, चन्द्रप्रभाया बाहुल्येन प्रसराभावात् राहुविमानस्य च यथा-वस्थिततयोपलम्भात् । येषु दिवसेषु पुनश्चन्द्र आधिक्येन प्रकटो भवति तेषु दिवसेषु चन्द्रप्रभा राहुविमानेन नाभिभूयते किन्तु चन्द्रप्रभाया बाहुल्येन चन्द्रप्रभयैव राहुविमानप्रभाऽभिभूयते ततस्तदा न राहुविमानं वृत्ततयोपलभ्यते । पर्वराहुविमानं च ध्रुवराहुविमानादतीव तमो बहुलं भवति ततस्तस्य स्तोकस्यापि चन्द्रप्रभयाऽभिभवो न भवतीति तस्य स्तोकरूपस्यापि वृत्तत्वे-नोपलब्धिर्भवति । तथा चाह–

"वट्टच्छेओ कइवय दिवसे धुवराहुणो विमाणस्स ।
दीसइ परं न दीसइ जह गहणे पव्वराहुस्स ॥१॥"

छाया—वृत्तच्छेदः कतिपयदिवसे ध्रुवराहो विमानस्य ।
दृश्यते, पर न दृश्यते यथा ग्रहणे पर्वराहोः ? ॥१॥

इति शिष्यपृच्छा आचार्य उत्तरमाह–

"अच्चत्थं नहि तमसाऽभिभूयते जं ससी विमुंचंतो ।
तेणं वट्टच्छेओ गहणे उ तमो तमो वहुलो ॥२॥

छाया—अत्यर्थं नहि तमसाऽभिभूयते यत् शशी विमुच्यमानः ।
तेन वृत्तच्छेदः, ग्रहणे तु तमाः (राहुः) तमो बहुलः ॥२॥ इति ।

साम्प्रतं पर्वराहुः कियता कियता कालेन चन्द्रस्य सूर्यस्य वा उपरागं करोति ? इति प्रदर्श-यति–'तत्थ णं जे से पव्वराहू' इत्यादि, 'तत्थ णं' तत्र चन्द्रसूर्ययोरुपरागविषये 'जे से पव्व राहू' यः स पर्वराहु भवति 'से णं' स खलु पर्वराहुः 'जहण्णेणं छण्हं मासाणं' जघन्येन षण्णां मासा-नामुपरि चन्द्रस्य सूर्यस्य चोपरागं करोति न ततः पूर्वम् । 'उक्कोसेणं' उत्कर्षेण 'वायालीसाए मासाणं' द्विचत्वारिंशतो मासानामुपरि 'चंदस्स' चन्द्रस्योपरागं करोति तथा 'अडयालीसाए

संवच्छराणं' अष्टाचत्वारिंशतः सवत्सराणामुपरि 'सूरस्स' सूर्यस्योपरागं करोतीति भावः॥ सू२ ॥

साम्प्रतं चन्द्रस्य लोके 'ससी' इति सूर्यस्य सूर्य आदित्य इति च कथं नाम जातं, का तस्योऽन्वर्थ ता ? इति स प्रश्नं प्रदर्शयति सूत्रकारः– 'ता कहंते चंदे ससी' इत्यादि ।

मूलम्––ता कहं ते चंदे ससी चंदे ससी आहिए ? ति वएज्जा, ता चंदस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरण्णो मियंके विमाणे कंता देवा, कंताओ देवीओ, कंताइं आसण सयणखंभभंडमत्तोवगरणाइं अप्पणावि णं चंदे देवे जोइसिंदे जोइसराया सोम्मे कंते सुभगे पियदंसणे सुरूवे ता एवं खलु चंदे ससी चंदे ससी आहिएति वएज्जा ॥ ता कहं ते सूरे आइच्चे आहिए ? तिवएज्जा, ता सूराईया समयाइवा आवलियाइवा आणापाणूइ वा थोवेइवा जाव उस्सप्पिणी ओसप्पिणी इवा, एवं खलु सूरे आइच्चे २ आहिए तिवएज्जा ॥सू० ३॥

छाया––तावत् कथं ते-त्वया चन्द्रः शशी चन्द्रः शशी आख्यातः ? इति वदेत्, तावत् चन्द्रस्य खलु ज्योतिपेन्द्रस्य ज्योतिपराजस्य मृगाङ्कं विमानं, कान्ता देवाः, कान्ता देव्यः कान्तानि-आसनशयनस्तम्भभाण्डामत्रोपकरणानि आत्मनाऽपि खलु चन्द्रो देवः ज्योतिपेन्द्रः ज्योतिपराजः सौम्यः कान्तः सुभगः प्रियदर्शनः सुरूपः तावत् एवं खलु चन्द्रः शशीचन्द्रः शशीआख्यातः इति वदेत् । तावत् कथं ते (त्वया) सूर्य आदित्यः सूर्य आदित्यः आख्यातः ? इति वदेत् । तावत् सूर्यादिकाः समया इति वा आवलिका इति वा आनप्राणा इति वा स्तोक इति वा यावत् उत्सर्पिण्यवसर्पिणीति वा, एवं खलु सूर्य आदित्यः सूर्य आदित्य आख्यातः इति वदेत् ॥सू०॥ ३ ॥

व्याख्या––'ता कहंते चंदे' इति 'ता' तावत् 'कहं' कथं केन प्रकारेण 'ते' त्वया 'चंदे ससी' चन्द्रः शशी इति–'आहिए' आख्यात इति गौतमस्वामिन पृच्छा, हे भगवन् ? 'ति वएज्जा' इति वदेत् वदतु कथयतु । श्रीभगवानाह–'ता चंदस्स णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'चंदस्स णं' चन्द्रस्य खलु ज्यौतिपेन्द्रस्य ज्येतिषराजस्य 'मियंके विमाणे' मृगाङ्के मृगचिन्हे चन्द्रविमाने 'कंता देवा' कान्ताः कमनीयरूपा देवाः तथा 'कंताओ देवीओ' कान्ताः कमनीया देव्यश्च सन्ति । तथा 'कंताइं' कान्तानि-आसनशयनस्तम्भभाण्डामत्रोपकरणानि चन्द्रविमाने आसनानि शयनानि स्तम्भाः भाण्डाद्युपकरणानि च सर्वाणि सुन्दराकाराणि सन्ति, एतावदेव न किन्तु 'अप्पणावि णं' आत्मनाऽपि स्वयमपि खलु चन्द्रो देवो ज्यौतिषेन्द्रो ज्यौतिषराजः 'सोम्मे' सौम्यः सौम्याकारः अरौद्राकारत्वात्, कान्तः कन्तिमान्, सुभगः सौभाग्यशाली जनवल्लभत्वात्, 'पियदंसणे' प्रियदर्शनः जनमनआह्लादकत्वात् 'सुरूवे' सूरूपः अङ्गप्रत्यङ्गावयवानां शुभसंनिवेशवत्वात् 'ता' तावत् एवम् अनेन कारणेन खलु चन्द्रः शशी चन्द्रः शशीति 'आहिए' आख्यातः 'तिवएज्जा' इति–एवं वदेत् कथयतु स्वं शिष्येभ्यः । अयं भावः–यत् सर्वात्मना सुन्दरत्वलक्षणमन्वर्थमधिकृत्य चन्द्रः शशीति व्यपदिश्यते । कया व्युत्पत्त्याऽस्यान्वर्थता ? उच्यते–इह 'शश

क्रान्तौ' इति धातुरदन्तश्चौरादिको वर्त्तते, चुरादयोहि धातवोऽपरिमिताः सन्ति, न तु तेषामियत्ता, केवलं यथा लक्ष्यमनुसर्त्तव्याः अत एव चुरादिगणस्यापरिमिततया परमार्थतो यथा लक्ष्यमनुसरण मवगम्य द्वित्रानेव चुरादि धातून् पठितवान्, न भूयसः, ततोणिजन्तस्य—'शशनं शशः' इति घञ् प्रत्यये कृते शश इति सिद्धम् शशोऽस्यास्तीति शशी स्वविमानवास्तव्य देवदेवी शयनास-नादिभिः सह कमनीयकान्तिकलितः, अनेनान्वर्थेन चन्द्रः शशीति व्यपदिश्यते। यद्वा 'ससी' इत्यस्य 'सश्रीः' इति संस्कृतं भवति, ततः सह श्रिया वर्त्तते इति सश्री.। श्रिया शोभया सह वर्त्तित्वेनान्वर्थेन 'ससी' इति कथ्यते। साम्प्रतं सूर्यविषयकं सूत्रमाह-'ता कहं ते' इत्यादि प्रश्न सूत्रं सुगमम्। भगवानाह—'ता सूराईया' इत्यादि 'ता' तावत् हे गौतम! 'सूराइया समया तिवा' लोके—'समयाइवा' समया इति सर्वे समया अहोरात्रादिकालस्य निर्विभागा सूर्यादिकाः सूर्य आदिर्येषां ते सूर्यादिकाः सूर्यकारणाः सूर्यमाश्रित्यैव समयाः प्रवर्त्तन्ते यथा—सूर्योदयमवधिं कृत्वाऽहोरात्रारम्भकसमयो गण्यते नान्यथेति। एवम् 'आवलियाइवा' आवलिका इति वा, आवलिका—असङ्ख्येयसमयसमुदायात्मिकाऽऽवलिका भवति। 'आणापाणूति वा' आनप्राण इति वा—असंख्येयाऽऽवलिका समुदाय एक आनप्राणो भवति। द्विपञ्चाशदधिक त्रिचत्वारिंशच्छत संख्यकावलिकात्मकः (४३५२) एक आनप्राण इति वृद्धाः। उक्तञ्च—

"एगो आणा पाणू तेयालीसं सय उ बावन्ना।
आवलियपमाणेणं, अणंतनाणीहि निद्दिट्ठो" ॥१॥

एक आनप्राणः त्रिचत्वारिंशच्छतानि तु द्वि पञ्चाशानि।
आवलिका प्रमाणेन, अनन्तज्ञानिभिर्निर्दिष्टः ॥१॥ इतिच्छाया।

'थोवेइवा' स्तोक इति वा सप्तानप्राणप्रमाण एकः स्तोको भवति, 'जाव' इति यावत् यावत्पदेन उत्सर्पिण्या अर्वाक् स्तोकादूर्ध्वं मुहूर्त्ताहोरात्रपक्षमासवर्षयुगादयो द्रष्टव्याः उत्स-र्पिण्यवसर्पिणी पर्यन्तम् तदेवाह—'उस्सप्पिणिओसप्पिणी इवा' उत्सर्पिण्यवसर्पिणीति वा। 'एवं खलु' इत्यादि, एवम् अनेन प्रकारेण खलु निश्चयेन सूर्य आदित्य, सूर्य आदित्यः आदौ भव आदित्यः 'बहुलवचनात् त्यप्रत्ययः' सर्वेषां समयादिनामादिकारणत्वात् सूर्य आदित्यः कथ्यते, अत एव सूर्य आदित्य आख्यातः। 'तिवएज्जा' इति वदेत् स्वशिष्येभ्य इति ॥सू० ३॥

साम्प्रतं चन्द्र प्रस्तावाच्चन्द्राग्रमहिषीणां सूर्याग्रमहिषीणां च सख्यादि वर्णनं, ताभिः सह कामभोगसुखवर्णनं चाह—'ता चंदस्स णं' इत्यादि

मूलम्—ता चंदस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरण्णो कइ अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ? ता चंदस्स णं जोइसिंदस्स जोइसरण्णो चत्तारि अग्गमहिसीओ पण्णत्ताओ, तं जहा चंद-प्पभा १, दोसिणाभा २, अच्चिमाली ३, पभंकरा ४, जहा हेट्ठा तं चेव जाव णो चेव मेहुणवत्तियाए। एवं सूरस्स वि णेयव्वं। ता चंदिमसूरियाणं जोइसिंदा जोइसरायाणो

केरिसए कामभोगे पच्चणुब्भवमाणा विहरंति ? ता से जहा नामए केई पुरिसे पढम जोव्वणुट्ठाणबलसमत्थे पढमजोव्वणुट्ठाणबलसमत्थाए भारियाए सद्धिं अचिरवत्त विवाहे अत्थत्थी अत्थगवेसणयाए सोलसवासविप्पवसिए, से णं तओ लद्धट्ठे कयकज्जे अणह समग्गे पुणरवि णियगधरं हव्वमागए ण्हाए कयवलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सुद्धप्पा वेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे मणुण्णं थाली पागसुद्धं अट्ठारसवंजणाउलं भोयणं भुत्ते समाणे तंसि तारिसगंसी वासघरंसि अंतो सचित्तकम्मे वाहिरओ दूमियघट्ठमट्ठे विचित्त उल्लोय चिल्लियतले बहुसमसुविभत्त भूमि-भाए मणिकिरणपणासियंधयारे कालागुरुपवरकुंदुरक्क तुरुक्क धूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामे सुगंधवरगंधिए गंधवट्टिभूए, तंसि तारिसगंसि सयणिज्जंसि दुहओ उण्णए मज्झे णय-गंभिरे सालिंगणवट्टिए पण्णत्तगंडविब्बोयणसुरम्मे गंगापुलिणवालुया उद्दालसालिसए सुविरइयरयत्ताणे ओयवियखोमियखोमदुगूलपट्टपडिच्छायणे रत्तंसुयसंवुडे सुरम्मे आईणगरूयवूरणवणीय तूलफासे सुगंधवरकुसुमचुण्णसयणोवयारकलिए ताए तारिसाए भारियाए सद्धिं सिंगारागारचारुवेसाए संगयगयहसियभणियचिट्ठियसंलावविलासणि उणजुत्तोवयारकुसलाए अणुरत्ता विरत्ताए मणोणुकूलाए एगंतरइपसत्थे अण्णत्थ कत्थइ मणं अकुव्वमाणे इट्ठे सद्दफरिसरसरूवगंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुब्भवमाणे विहरिज्जा, ता से णं पुरिसे विउसमणकालसमयंसि केरिसयं साया सोक्खं पच्चणुब्भवमाणे विहरइ ? उरालं समणाउसो ! । ता तस्स णं पुरिसस्स कामभोगे-हिंतो एत्तो अणंतगुणविसिट्ठतराए चेव वाणमंतराणं देवाणं कामभोगा । वाणमंतराणं देवाणं कामभोगेहिंतो अणंतगुणविसिट्ठतराए चेव असुरिंदवज्जियाणं भवणवासीणं देवाणं कामभोगा । असुरिंदवज्जियाणं देवाणं कामभोगेहिंतो एत्तो अणंतगुणविसिट्ठ-तराए चेव असुरकुमाराणं इंदभूयाणं देवाणं कामभोगा । असुरकुमाराणं इंदभूयाणं काम-भोगेहिंतो अणंतगुणविसिट्ठतराए चेव गहगणणक्खत्तताराख्वाणं कामभोगा । गहगण-णक्खत्तताराख्वाणं कामभोगेहिंतो अणंतगुणविसिट्ठतराए चेव चंदिमसूरियाणं देवाणं कामभोगा । ता एरिसएणं चंदिमसूरिया जोइसिंदा जोइसरायाणो कामभोगे पच्चणु-भवमाणा विहरंति ॥सू० ४॥

छाया—तावत् चन्द्रस्य खलु ज्यौतिषेन्द्रस्य ज्योतिषराजस्य कति अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः ? तावत् चन्द्रस्य खलु ज्योतिषेन्द्रस्य ज्यौतिषराजस्य चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः तद्यथा–चन्द्रप्रभा १, ज्योत्स्नाभा २, अर्चिर्मालिः ३, प्रभङ्करा ४ । यथाऽधस्तात् तथैव यावत् नो चैव खलु मैथुनवृत्त्या । एवं सूर्यस्यापि ज्ञातव्यम् । तावत् चन्द्रसूर्याः खलु ज्यौतिषेन्द्रा ज्यौतिषराजाः कीदृशान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति ?, तावत्

स यथानामकः कोऽपि पुरुषः प्रथमयौवनोत्थानबलसमर्थः प्रथमयौवनोत्थानबलसमर्थया भार्यया सार्द्धम् अचिरवृत्तविवाहः अर्थार्थी अर्थगवेषणतायै षोडशवर्षविप्रोषितः, स खलु ततः लब्धार्थः कृतकार्यः अनघ समग्रः पुनरपि निजकगृहं हव्यमागतः स्नातः कृतबलिकर्मा कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः शुद्धप्रवेश्यानि मङ्गल्यानि वस्त्राणि प्रवरपरिहितः अल्पमहार्घाभरणालङ्कृतशरीरः मनोज्ञः स्थालीपाकशुद्धम् अष्टादशव्यञ्जनाकुलं भोजनं भुक्तः सन् तस्मिन् तादृशे वासगृहे अन्तः सचित्रकर्मणि बाह्यतो दूमितघृष्टमृष्टे विचित्रोल्लोचचिल्लिततले बहुसमसुविभक्तभूमिभागे मणिकिरणप्रणाशितान्धकारेकालागुरु प्रवरकुन्दुरुष्क तुरुष्क धूपमघमघायमानगन्धोद्धृताभिरामे सुगन्धवरगन्धिते गन्धवर्त्तीभूते, तस्मिन् तादृशे शयनीये उभयत उन्नते मध्ये नतगम्भीरे सालिङ्गनवर्तिके प्रज्ञात गण्ड बिब्बोयणसुरम्ये गङ्गापुलिनवालुकोद्दालसदृशके सुविरचितरजस्त्राणे ओयविय क्षौमिकक्षौमदुकूलपट्टप्रतिच्छादने रक्तांशुकसंवृते सुरम्ये आजिनकरूतवूरनवनीततूलस्पर्शे सुगन्धवरकुसुमचूर्णशयनोपचारकलिते तया तादृश्या भार्यया सार्द्धं शृङ्गारागारचारुवेषया संगतहसितभणितस्थितसंलापविलासनिपुणयुक्तोपचारकुशलया अनुरक्ता विरक्तया मनोऽनुकूलया एकान्तरतिप्रसक्तः अन्यत्र कुत्रापि मनोऽकुर्वन् इष्टान् शब्दस्पर्शरसरूपगन्धान् पञ्चविधान् मानुष्कान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन् विहरेत्, तदा स खलु पुरुषः व्युपशमनकालसमये कीदृशं शातासौख्यं प्रत्यनुभवन् विहरति ?, उदारं श्रमणायुष्मन् ! तावत् तस्य खलु पुरुषस्य कामभोगेभ्यः एभ्यः अनन्तगुणविशिष्टतरा एव वानव्यन्तराणां देवानां कामभोगाः। वानव्यन्तराणां देवानां कामभोगेभ्यः अनन्तगुणविशिष्टतरा एव असुरेन्द्रवर्जितानां भवनवासिनां देवानां कामभोगाः। असुरेन्द्रवर्जितानां देवानां कामभोगेभ्यः एभ्यः अनन्तगुणविशिष्टतरा एव असुरकुमाराणामिन्द्रभूतानां देवानां कामभोगाः। असुरकुमाराणामिन्द्रभूतानां देवानां कामभोगेभ्यः एभ्यः अनन्त गुणविशिष्टतरा एव ग्रहगणनक्षत्रतारारूपाणां कामभोगाः ग्रहगणनक्षत्रतारारूपाणां कामभोगेभ्यः अनन्तगुणविशिष्टतरा एव चन्द्रसूर्याणां देवानां कामभोगाः। तावद् ईदृशान् खलु चन्द्रसूर्या ज्योतिषेन्द्राः ज्योतिष राजाः कामभोगान् प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति ॥सू० ४

व्याख्या—'ता चंदस्स णं' इति, 'ता' तावद् 'चंदस्स णं' चन्द्रस्य खलु ज्यौतिषेन्द्रस्य ज्यौतिषराजस्य 'कइ' कति कियत्यः 'अग्गमहिसीओ' अग्रमहिष्यः पट्टराज्यः प्रज्ञप्ताः ? भगवानाह—'ता चंदस्स णं' इत्यादि, 'ता' तावत् 'चंदस्स णं, चन्द्रस्य खलु ज्यौतिषेन्द्रस्य ज्यौतिषराजस्य 'चत्तारि अग्गमहिसीओ' चतस्रः अग्रमहिष्यः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा—ता इमाः—'चंदप्पभा' इत्यादि, चन्द्रप्रभा १, ज्योत्स्नाभा २, अर्चिर्मालिः ३, प्रभङ्करा ४ इति 'जहा हेट्ठा तं चेव' यथा अधस्तात् इतः पूर्वमष्टादशे प्राभृते पञ्चमे सूत्रे प्रतिपादितं तदेव—तद्देवात्रापि सर्वं वाच्यम्। कियत्पर्यन्त मित्याह—'जाव णोचेव णं मेहुणवत्तियाए' यावत् यावत्पदेन अग्रमहिषीपरिवारादिवर्णन गीतनृत्यादिकं च वाच्यम् नैव खलु मैथुनवृत्त्येति। 'एवं सूरस्स वि णेयव्वं' एवम्—अनेनैव प्रकारेण सूर्यस्यापि सर्वा पठनीया विमानादि ऋद्धिः, भेदस्तावदेतावानेव यत् सूर्यस्य चतस्रोऽग्रमहिष्य इमा वाच्याः, तथाहि—सूर्यप्रभा १, आतपा २,

अर्चिर्मालि ३, प्रभङ्करा ४ इति । विमानं च सूर्यस्य सूर्यावतंसकमवसेयम् । अन्यत् सर्वं निरवशेषं चन्द्रवदेव पठनीयं, नान्यः कोऽपि भेदः । कथितस्यापि पुनरत्रकथनं चन्द्रसूर्यप्रसङ्गवशादिति न कश्चिद्दोप इति । साम्प्रतं चन्द्रसूर्याणां कामभोगानां शातासुखं कीदृगमिति प्रतिपादयति–'**ता चंदिमसूरियाणं**' इत्यादि '**ता**' तावत् '**चंदिमसूरियाणं**' चन्द्रसूर्याः खलु ज्यौतिपेन्द्रा ज्यौतिपराजाःकीदृशान् कामभोगान् प्रत्यनुभवन्तो विहरन्ति–तिष्ठन्ति ? । एवं गौतमेन पृष्टे भगवानाह–'**ता से जहानामए**' इत्यादि, '**ता**' तावत् सः यथा नामकः अनिर्दिष्टनामा '**केई पुरिसे**' कोऽपि पुरुषः कीदृशः ? इत्याह '**पढम**' इत्यादि '**पढमजोव्वणुट्ठाणवलसमत्थे**' प्रथमयौवनोत्थानबलसमर्थः प्रथमयौवनोत्थाने प्रथमयौवनोद्गमे यद्बलं शरीरसामर्थ्यं तेन समर्थः प्रथमेत्यादि तादृश्याः एव भार्यया सार्द्धमित्यग्रेणान्वयः '**अचिरवत्तवीवाहे**' अचिरवृत्तविवाहः तत्कालकृतपाणिग्रहः सन् '**अत्थत्थी**' अर्थार्थी धनार्थी अतएव '**अत्थगवेसणयाए**' अर्थगवेपणतायै धनोपार्जनार्थम् '**सोलसवासविप्पवसिए**' षोडश वर्षविप्रोषितः षोडशवर्षानि यावत् कृतदेशान्तरप्रवासः '**से णं**' स खलु पुरुष· '**तओ**' ततः देशान्तरात् '**लद्धट्ठे**' लब्धार्थः प्रातः प्रभूतार्थः, अतएव '**कयकज्जे**' कृतकार्यः कृतं सपादितं कार्यः धानोपार्जनरूपं येन स तथाभूतः, '**अणहसमग्गे**' अनघ समग्रः अनघम–अक्षतं न पुनरन्तराले केनापि चोरादिना लुण्टितं समग्रं–द्रव्यभाण्डोपकरणादि यस्य स तथा, एतादृशः सन् पुनरपि '**णियगघरं हव्वमागए**' निजकगृहं स्वगृहं हव्यं–शीघ्रं मार्गे कुत्रापि निवासमकुर्वन् आगतः–समागतः । सच '**ण्हाए**' स्नातः कृतस्नानः '**कयवलिकम्मे**' कृतबलिकर्मा कृतं बलिकर्म पशुपक्षिभ्योऽन्नप्रदानादि रूपं येन स तथा भूत·, कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तः–कृतं कौतुकं मषीतिलकादिकं मङ्गलं मङ्गलकारकं दध्यक्षतादिधारणं प्रायश्चितं दुःस्वप्नादि फलनिवारणार्थं देवगुरुनमस्काररूपं येन स तथाभूतः '**सुद्धप्पावेसाइं**' शुद्धानि पवित्राणि स्वच्छानि वा प्रावेश्यानि सभादि प्रवेशयोग्यानि यद्वा '**सुद्धप्पा**' इति पृथक् पदं तस्यायमर्थः शुद्धात्मा कृतकौतुकमङ्गलप्रायश्चित्तत्वेन शुद्धान्तःकरणः '**वेसाइं**' वेष्यानिवेपयोग्यानि '**मंगल्लाइं**' माङ्गल्यानि मङ्गलसूचकानि न तु शोकसूचक कालवर्णादि युक्तानि एतादृशानि '**वत्थाइं**' वस्त्राणि '**पवरपरिहिए**' प्रवरतया यथास्थान परिहितानि येन स प्रवरपरिहितः, पुनश्च '**अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे**' अल्पानि भारापेक्षयाऽल्पभारयुक्तानि महार्घाणि महामूल्यानि यानि आभरणानि, तैरलङ्कृतं शरीरं यस्य स तथाभूतः सन् '**मणुण्णं**' मनोज्ञं कलमोदनादि '**थालीपागसुद्धं**' स्थालीपाकशुद्धं स्थाली–पिठरी तस्यां पाको यस्य अन्यत्रहि पक्कमोदनादि न सु पक्कं भवति तत इदं स्थालीपाकेति विशेषणम्, अत एव शुद्धम् अपक्कादिदोपवर्जितं भक्तदोषवर्जितं वा '**अट्ठारसवंजणाउलं**' अष्टादशव्यञ्जनाकुलम् अष्टादशभिर्लोकप्रसिद्धैर्व्यञ्जनैः शालनकतक्रावलेहनिकादिभिराकुलं युक्तम, एतादृशं

'भोयणं' भोजनम् 'भुत्ते समाणे' भुक्तः सन् 'तंसि तारिसगंसि' तस्मिन् तादृशके वक्ष्यमाणविशेषणविशिष्टे 'वासघरंसि' वासगृहे शयनगृहे, अस्य विशेषणान्याह 'अंतो सचित्तकम्मे' अन्तः सचित्रकर्मणि अन्तः अभ्यन्तरे चित्र कर्मणि—सिंहशरभमृगादि चित्राणि, तैः सहिते 'बाहिरओ दूमियघट्ठमट्ठे' बाह्यतो बहिर्भागे दूमिते सुधापङ्किधवलिते घृष्टे चिक्कण पाषाणादिना घर्षिते ततो मृष्टे चिक्कणी कृते, 'विचित्तउल्लोयचिल्लियतले' विचित्रेण नानाविधचित्रयुक्तेन उल्लोचेन चन्द्रोदयेन 'चंद्रोवा' इति प्रसिद्धेन 'चिल्लितं' इति दीप्यमानं तलं वासगृहमध्यभागे उपरितनं तलं यस्य तत्तथा तस्मिन्, तथा 'बहुसमसुविभत्तभूमिभाए' बहुसमसुविभक्तभूमिभागे तत्र बहुसमः अत्यन्तसमः निम्नोन्नत वर्जितत्वात्, सुविभक्तः सुविच्छित्तिकः रेखादि न्यासप्रकारयुक्तो भूमिभागो भूमितलभागो यत्र तस्मिन् तथा 'मणिकिरणपणासियंधयारे' मणिकिरणप्रणाशितान्धकारे मणिकिरणैः प्रणाशितः दूरीकृतः अन्धकारो यत्र तस्मिन् चाकचिक्यमानमणिकिरणप्रकाशयुक्ते 'कालागुरुकुदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघेंतगंधुद्धुयाभिरामे' कालागुरु प्रभृतिगन्धद्रव्यसम्पादितस्य धूपस्य दह्यमानस्य मघमघायमानः अतिशयेन प्रसर्पमाणः यो गन्ध., तेन उद्धूतम् सर्वतो व्याप्तम् अत एव अभिरामं तत्रस्थितजनमनोह्लादकं तस्मिन् एतावदेव न 'सुगंधवरगंधिए' सुगंधवरगन्धिते पुष्पनिर्यासादेः 'अत्तर' इति प्रसिद्धस्य श्रेष्ठसुगन्धेन गन्धिते—सुगन्धिते 'गंधवट्टिभूए' गन्धवर्तीभूते गन्धद्रव्यगुटिकासदृशे, एतादृशे वासगृहे । अथ तद्गतशयनीयं वर्ण्यते 'तंसि' इत्यादि, तत्र पुनः 'तंसि तारिसगंसि' तस्मिन् तादृशे 'सयणिज्जंसि' शयनीये, किं विशिष्टे ? इत्याह—'दुहओ' इत्यादि, 'दुहओ उन्नए' उभयतः उभयोः पार्श्वयो रुन्नते 'मज्झे णयगंभीरे' मध्ये मध्यभागे नते नम्रीभूते अतएव गम्भीरे 'सालिंगणवट्टिए' आलिंगनवर्त्या शरीरप्रमाणोपधानेन सहिते 'पण्णत्तगंडविब्बोयणे सुरम्मे' प्रज्ञातगण्डविब्बोयणसुरम्ये प्रज्ञया विशिष्टकर्मविषयबुद्ध्या आप्ते—प्राप्ते—अतीव सुष्ठु परिकर्मिते इत्यर्थः 'विब्बोयणे' उभयतो गण्डोपधानके ताभ्यां सुरम्ये 'गंगापुलिणवालुया उद्दालसालिसए' गङ्गापुलिनवालुका—गङ्गातटगताया वालुका तस्या उद्दालः—अवदलनं पादादिन्यासेऽधोगमनं तेन सदृशे 'सुविरइयरयत्ताणे' सुविरचितरजस्त्राणे सुविरचितं सुष्ठुतया निवेशितं रजस्त्राणं रजो निवारकवस्त्रं यत्र तस्मिन् 'ओयवियखोमियखोमदुगुल्लपट्टपडिच्छायणे' ओयवियक्षौमदुकूलपट्टप्रतिच्छादने, तत्र ओयवियं—सुपरिकर्मितं क्षौमिकं क्षौमवस्त्रं क्षौमिति 'रेशम' इति प्रसिद्धं तद्वस्त्रं दुकूलं कार्पासिकमतसीमयं वा वस्त्रं तस्य पट्टः—युगल रूपः पट्टशाटकः स प्रतिच्छादनम्—आच्छादनं यस्य तत्तथा तस्मिन् 'रत्तंसुयसंवुडे' रक्तांशुकसंवृते रक्तांशुकेन रक्तवस्त्रनिर्मितमशकगृहाभिधानेन 'मच्छरधानी' इति प्रसिद्धेन संवृते सम्यक्तया समन्ततः परिवेष्टिते 'आईणगरूयवूरणवणीय तूलफासे' आजिनकरूतबूरनवनीततूलस्पर्शे, तत्र—

आजिनकं चिक्कणचर्ममयो वस्त्रविशेषः स्वभावतोऽतिकोमलत्वात्, रूतं—कार्पासपक्ष्म, बूरः सुकुमालवनस्पतिविशेषः, नवनीतम् 'मक्खन' इति प्रसिद्धं, तूलः अर्कतूलः एषां स्पर्श इव स्पर्शो यस्य स तथाभूते, 'सुगंधवर कुसुमचुण्णसयणोवयारकलिए' सुगन्धवर कुसुमचूर्ण शयनोप चारकलिते, तत्र सुगन्धानि सुष्ठुगन्धयुक्तानि यानि वरकुसुमानि पाटलचम्पकादि श्रेष्ठपुष्पाणि, तथा ये च सुगन्धाश्चूर्णाः कोष्ठपुटादि सुगन्धद्रव्य सम्पादिताः, तथा एतदतिरिक्तास्तथा विधाः शयनोपचाराः तैः कलिते युक्ते, एतादृशे शयनीये 'ताए तारिसाए भारियाए' तया तादृश्या वक्तुमशक्यरूपतया पुण्यशालिनां योग्यया भार्यया 'सद्धिं' सार्द्धम्, किं विशिष्टया ? इत्याह—'सिंगारागारचारुवेसाए' शृङ्गारागारचारूवेषया शृङ्गारस्य अगारं गृह शृङ्गाररस-पोषकत्वात् तथाभूतः चारुः सुन्दरो वेषः वस्त्रधारणविन्यासरूपो यस्याः सा तथा तया यद्वा 'शृङ्गाराकारचारुवेषया' इति च्छाया, ततोऽयमर्थः—शृङ्गारः शृङ्गाररसपोषक आकारः—सन्निवेशविशेषः यस्य स शृङ्गाराकारः इत्थम्भूतश्चारुः शोभनो वेषो यस्या सा तथाभूता तया, 'संगयहसियभणियचिट्ठियसंलाव विलासणिउणजुत्तोवयारकुसलाए' सगतहसितभणित चेष्टित संलापविलासनिपुणयुक्तोपचारकुशलया, तत्र सगतं हंसगतिवद् गमनं सविलास चङ्क्रमणं हसितं सप्रमोदं कपोलसूचितं मन्दं मन्दं हसनं, भणितं—कामोद्दीपकं विचित्रं वचनम्, चेष्टितं सकाममङ्गप्रत्यङ्गावयवप्रदर्शनपुरस्सरं प्रियस्य पुरतोऽवस्थानरूपं चेष्टाकरणम्, संलापः—प्रियेण सह सप्रमोदं सकामं परस्परं कामकथाकरणम्, एतेषां विलासेन शुभलीलया यो निपुणः सूक्ष्मबुद्धिगम्योऽत्यन्त कामविषयपरमनैपुण्योपेतः, युक्तः—देशकालोचितः उपचारः तदाकार व्यवस्थारूपः तेन तत्र वा कुशला तया 'अणुरत्ताविरत्ताए' अनुरक्ता विरक्तया—अनुरक्तया कदा-चिदप्यविरक्तया, अतएव 'मणोणुकूलाए' मनोऽनुकूलया पत्युर्मनसोऽनुकूलवर्तिन्या एतादृश्या भार्यया सार्द्धमिति पूर्वेण सम्बन्धः स पुरुषः कीदृशः ? इत्याह—'एगंतरइपसत्ते' एकान्तर-तिप्रसक्तः अतिशयेन तयासह रमणासक्तः गृहकार्यादौ अन्यस्त्रियां वा मनो न कुर्वन् अन्यत्र 'अण्णत्थकत्थइ मणं अकुव्वमाणे' अन्यत्र कुत्रापि मनोऽकुर्वन् अन्यत्र मनः करणे हि न यथावस्थिताभिष्टभार्यासमुत्पन्नं कामसुखमनुभूयते, एतादृशः सन् 'इट्ठे'—इष्टान्—मनोवाञ्छितान् 'सद्दफरिसरसरूवगंधे' शब्दस्पर्शरसरूपगन्धरूपान् 'पंचविहे' पञ्चविधान् 'माणुस्सए' मानुष्कान् मनुष्यभवसम्बन्धिनः 'कामभोगे' कामभोगान् 'पच्चणुब्भवमाणे' प्रत्यनुभवन् प्रति—आभिमुख्येन तदनुभवं कुर्वन् 'विहरेज्जा' विहरेत् अवतिष्ठेत्। एवं कथयित्वा भगवान् तत्समयगतकामभोगसुखविषये गौतमं पृच्छति— 'ता से णं' इत्यादि, 'ता' तावत् तावच्छब्दः क्रमार्थः, तेन—आस्तां तावदन्यदग्रेतनवक्तव्यं किन्तु तावदिदं कथ्यताम्—से णं पुरिसे' स खलु पुरुषः 'विउसमणकालसमयंसि' व्युपशमनकालसमये, व्युपशमनं—कामभोगावसानं तस्य काल समये—तथाविधकालेनोपलक्षिते समयेऽवसरे 'केरिसयं सायासोक्खं' कीदृशं तत्कामभोग-

जन्यं शातरूपम् आह्लादरूपं सौख्यं 'पच्चणुब्भवमाणे विहरइ' प्रत्यनुभवन् विहरति तिष्ठति ? एवं भगवता पृष्टो गौतम' प्राह—'ओरालं समणाउसो' हे श्रमण आयुष्मन् ? उदारम्—अत्यद्भुतं शातसौख्यं प्रत्यनुभवन् स विहरति । भगवान् एतद् दृष्टान्तेन व्यन्तरादीनां कामभोग सुखोपमाप्रदर्शनपूर्वकं चन्द्रसूर्यदेवाना कामभोगसुखानि प्रदर्शयति—'ता तस्स णं' इत्यादि 'ता' तावत् 'एत्तो' एतेभ्यः 'तस्स णं पुरिसस्स' तस्यानन्तरोदितस्य खलु पुरुषस्य सम्बन्धिभ्यः 'कामभोगेहिंतो' कामभोगेभ्यः 'अणंतगुणविसिट्ठतराए चेव' अनन्तगुणविशिष्टतरा एव अनन्तगुणतयाऽत्यन्त विशिष्टा एव 'वाणमंतराणं देवाणं कामभोगा' वानव्यन्तराणां देवानां कामभोगाः । एवं वानव्यन्तरदेवानां कामभोगेभ्यः असुरेन्द्रवर्जितानां भवनवासिदेवाना काम-भोगा अनन्तगुणविशिष्टतराः । असुरेन्द्रवर्जितभवनवासिदेवानां कामभोगेभ्योऽसुरकुमारा णामिन्द्रभूतानां देवानां कामभोगा अनन्तगुणविशिष्टतराः । इन्द्रभूतानामसुरकुमाराणां देवानां कामभोगेभ्यः ग्रहगणनक्षत्रताराारूपाणां कामभोगाः अनन्त गुणविशिष्टतरा भवन्ति । 'गहगण-णक्खत्ततारारूवाणं' ग्रहगणनक्षत्रतारारूपाणा कामभोगेभ्यः 'अणंतगुणविसिट्ठतराए चेव' अनन्तगुणविशिष्टाः 'चंदिमसूरियाणं देवाणं कामभोगा' चन्द्रसूर्याणां देवाना कामभोगाः भवन्ति । उपसहारमाह—'ता एरिसएणं' इत्यादि 'ता' तावत् 'एरिसएणं' एतादृशान् खलु 'कामभोगे' कामभोगान् 'चंदिमसूरिया' चन्द्रसूर्याः 'जोइसिंदा जोइसरायाणो' ज्यौतिषेन्द्राः ज्यौतिषराजाः 'पच्चणुब्भवमाणा' प्रत्यनुभवन्तः 'विहरंति' तिष्ठन्तीति सूत्रार्थः । सू० ४ ॥

साम्प्रतं पूर्वं यदष्टाशोतिर्ग्रहा उक्तास्तान् नामग्राह मुपदर्शयन्नाह—'तत्थ खलु इमे' इत्यादि ।

मूलम्—तत्थ खलु इमे अट्ठासीई महग्गहा पण्णत्ता तं जहा इंगालए १, वियालए २, लोहियंके ३, सणिच्छरे ४, आहुणिए ५, पाहुणिए ६, कणो ७, कणए ८, कणकणए ९, कणवियाणए १०, कणगसंताणे ११, सोमे १२, सहिए १३, अस्सासणे १४, कज्जोवए १५, कब्बरए १६, अयकरए १७, दुंदुभए १८, संखे १९, संखणाभे २०, संखवण्णाभे २१, कंसे २२, कंसणाभे २३, कंसवण्णाभे २४, णीले २५, णीलो-भासे २६, रुप्पी २७, रुप्पोभासे २८, भासे २९, भासरासी ३०, तिले ३१, तिल-पुप्फवण्णे ३२, दगे ३३, दगवण्णे ३४, काले ३५, वंधे ३६, इंदग्गी ३७, धूमकेऊ ३८, हरी ३९, पिंगलए ४०, बुहे ४१, सुक्के ४२, वहप्फई ४३, राहू ४४, अगत्थी ४५, माणवए ४६, कामफासे ४७, धुरए ४८, पमुहे ४९, वियडे ५०, विसंधिकप्पे ५१, पयल्ले ५२, जडियालए ५३, अरुणे ५४, अग्गिल्लए ५५, काले ५६, महा-काले ५७, सोत्थिए ५८, सोवत्थिए ५९, वद्धमाणगे ६०; पलंवे ६१, णिच्चालोए ६२, णिच्चुज्जोए ६३, सयंपभे ६४, ओभासे ६५, सेयंकरे ६६, खेमंकरे ६७,

आसंकरे ६८, पभंकरे ६९, अरए ७०,, विरए ७१, असोगे, वीय सोगेय ७२, विमले ७३, विपते ७४, विभत्थे ७५, विसाले ७६, साले ७७, सुव्वए ७८, अणियट्टी ७९ एगजडी ८०, विजडी ८१, करे ८१, करिए ८३, राए ८४, अग्गले ८५, पुप्फे ८६, भावे ८७, केऊ ८८ ॥ सू ५॥

छाया—तत्र खलु इमे अष्टाशीतिः महाग्रहाः प्रज्ञप्ताः, तद्यथा -अङ्गारकः १, विकालकः २, लोहिताङ्कः ३, शनैश्चरः ४, आधुनिकः ५, प्राधुनिक ६, कर्णः ७, कणकः ८ कणकणकः ९, कणवितानकः १०, कणसन्तानकः ११, सोमः १२, सहितः १३, आश्वासनः १४, कार्योपगः १५ कर्बुरकः १६, अजकरकः १७, दुन्दुभकः १८, शङ्खः १९, शङ्खनाभः २०, शङ्खवर्णाभः २१, कंस २२, कंसनाभः २३, कंसवर्णाभः २४, नीलः २५, नीलावभासः २६, रूप्पी २७, रूप्यवभासः २८, भस्म २९, भस्मराशिः ३०, तिलः ३१, तिलपुष्पवर्णक ३२, दकः ३३, दकवर्णः ३४, कालः ३५ वन्ध्यः ३६, इन्द्राग्निः ३७, धूमकेतु ३८, हरि· ३९, पिङ्गलक· ४०, बुध ४१, शुक्रः ४२, बृहस्पतिः ४३, राहु ४४, अगस्तिः ४५, माणवकः, ४६ कामस्पर्शः ४७, धुरकः ४८, प्रमुखः ४९, विकटः ५०, विसंधिकल्पः ५१, प्रकल्पः ५२, जटालक ५३, अरुण· ५४, अग्नि· ५५, कालः ५६, महाकालः ५७, स्वस्तिक ५८ सौवस्तिकः ५९, वर्धमानकः ६०, प्रलम्ब· ६१, नित्यालोकः ६२, नित्योद्द्योतः ६३, स्वयंप्रभः ६४, अवभासः ६५, श्रेयस्करः ६६, क्षेमङ्करः ६७, आभङ्कर· ६८, प्रभङ्करः ६९, अरजाः ७०, विरजा ७१, अशोकः ७२, वीतशोकः ७३, विमलः विवर्त्त· ७४, विवस्त्रः ७५, विशालः ७६, शाल ७७, सुव्रतः ७८, अनिवृत्तिः ७९, एकजटी ८०, द्विजटी ८१, करः ८२, करिकः ८३, राजः ८४, अर्गलः ८५, पुष्पः ८६, भाव ८७, केतुः ८८, ॥ सूत्र ॥ ५॥

व्याख्या—'तत्थ खलु' इति, 'तत्थ' तत्र चन्द्रसूर्यग्रहगणनक्षत्रतारारूपेषु मध्ये 'इमे' इमे ये पूर्वमष्टाशीतिर्ग्रहाः प्रज्ञप्ता· 'तं जहा' तद्यथा ते इमे 'इंगालए' इत्यादि सुगमम्—अष्टाशीतिर्ग्रहाणा नामानि सूत्रतोऽवगन्तव्यानि । एतेषां नाम्नां संग्राहिका नवगाथा सुखप्रतिपत्त्यर्थ मत्र प्रदर्श्यन्ते

"इंगाल–वियालो य, लोहियंके सणिच्छरे चेव ।
आहुणिए पाहुणिए कणग–सनामावि पंचेव ॥१॥
सोमे सहिए अस्सासणे य कज्जोवए य कब्बरए ।
अयकर दुंदुभए वि य, संख–सनामावि तिन्नेव ॥२॥
तिन्नेव कंसनामा, नीले रुप्पी य हुंति चत्तारि ।
भास तिल पुप्फवण्णे दगवण्णे कायवंधेय ॥३॥
इंदग्गिपुप्फकेऊ, हरि पिंगलए बुधे य सुक्के य ।
वहस्सइ राहु अगत्थी, माणवगे कामफासे य ॥४॥
धुरए पमुहे वियडे, विसंधिकप्पे तहा पइल्ले य ।

जडियालए य अरुणे अग्गिलकाले महाकाले ॥५॥
सोत्थिय सोवत्थियए, वद्धमाणग तहा पलंबे य ।
णिच्चालोए णिच्चुज्जोए, सयंपभे चेव ओभासे ॥६॥
सेयंकर खेमंकर, आभंकरपभंकरे य बोद्धव्वे ।
अरए विरए य तहा, असोगतह वीयसोगे य ॥७॥
विमले वितत विवत्थे, विसाल तह साल सुव्वए चेव ।
अणियट्टी एगजडी य होय वियडीय बोद्धव्वे ॥८॥
करकरिए रायग्गल, बोद्धव्वे पुप्फभावे केऊय ।
अट्ठासीइ गहा खलु, नायव्वा आणुपुव्वीए ॥९॥

एतेऽङ्गारकादयोऽष्टाशीतिर्ग्रहाः सर्वेऽपि प्रत्येकं चतुर्णां सामानिकसहस्राणां चतसृणा-मग्रमहिषीणां सपरिवाराणां, तिसृणां पर्षदां, सप्तानामनीकानां, सप्तानामनीकाधिपतीनां षोडशा-नामात्मरक्षकदेवसहस्राणाम् अन्येषां च स्वविमानवास्तव्यानां देवानां देवीनां चाधिपत्य-मनुभवन्तीति । सू० ।५।

अथ सकलशास्त्रोपसंहारमाह–'इय एस' इत्यादि,

मूलम्—इय एस पागडत्था, अभव्वजणहियय दुल्लहाइ णमो ।
उक्कित्तिया भगवया जोइसरायस्स पण्णत्ती ॥१॥
एस गहिया वि संता, थद्धेगार वियमाणि पडिणीए ।
अवहुस्सुए ण देया, तव्विवरीए भवे देया ॥२॥
सद्धाधिइउट्ठाणुच्छाह कम्मवलवीरिय पुरिसकारेहिं ।
जो सिक्खिओ वि संतो, अभायणे परि कहेज्जाहि ॥३॥
सो पवयणकुलगणसंघबाहिरो णाणविणय परिहीणो ।
अरहंतथेरगणहरमेरं किर होइ वोलीणो ॥४॥
तम्हा धिइउट्ठाणुच्छाह कम्मबलवीरियसिक्खियं नाणं ।
धारेयव्वं णियमा, णय अविणएसु दायव्वं ॥५॥
वीरवरस्स भगवओ, जरमरणकिलेसदोसरहियस्स ।
वंदामि विणयपणओ सोक्खुप्पाए सया पाए ॥६॥ सू० ६

वीसइमं पाहुडं समत्तं ॥२०॥

चंदपन्नत्ती समत्ता

छाया—इति एषा प्रकटार्था, अभव्यजन हृदयदुर्लभा इयम् ।
उत्कीर्तिता भगवता, ज्यौतिषराजस्य प्रज्ञप्ति ॥१॥

एषा गृहीऽतापिसती, स्तब्धाय गारवित मानि-प्रत्यनीकाय ।
अवहुश्रुताय न देया, तद्विपरीताय भवेद्देया ॥२॥
श्रद्धा धृत्युत्थानोत्साहकर्म वल वीर्यपुरुषकारैः ।
यः शिक्षितोऽपि सन् अभाजने परिकथयेत् ॥३॥
स प्रवचनकुलगणसंघवाह्यो ज्ञानविनयपरिहीनः ।
अर्हत्स्थवीरगणधरमर्यादां किल भवति व्यतिक्रान्तः ॥४॥
तस्मात् धृत्युत्थानोत्साह कर्मवलवीर्यं शिक्षितं ज्ञानम् ।
धर्त्तव्य नियमात् न च अविनयेषु दातव्यम् ॥५॥
वीरवरस्य भगवतो जरामरणक्लेशदोपरहितस्य ।
वन्दे विनयप्रणतः, सौख्योत्पादौ सदा पादौ ॥६॥ सू० ६ ॥

विंशतितमं प्राभृतं समाप्तम् ॥२०

चन्द्रप्रज्ञप्तिः समाप्ता ।

व्याख्या—'इयएस' इति—एवम् उक्तेन प्रकारेण 'एस' एषा अनन्तरोदितस्वरूपा 'पागडत्था' प्रकटार्था—जिनवचनतत्त्ववेदिनां स्पष्टार्था 'इणमो' इयं चेत्थं प्रकटार्थापि सती 'अभव्वजणहियपदुल्लहा' अभव्यजनहृदयदुर्लभा, अभव्यजनानां कृते हृदयेन—पारमार्थिकाभिप्रायेण दुर्लभा भावार्थमाश्रित्य ज्ञातुमशक्या, अभव्यत्वादेव तेपां जिनवचनस्य सम्यक्तया परिणतेरभावात् । 'उक्कित्तिया' उत्कीर्तिता कथिता, केनेत्याह—'भगवया' भगवता ज्ञानैश्वर्यादिसंपन्नेन श्रीवर्द्धमानस्वामिना 'जोइसरायस्स पण्णत्ती' ज्योतिपराजस्य चन्द्रस्य प्रज्ञप्तिः ॥१॥ 'एस' इत्यादि, 'एस' एपा ,गहियावि' गृहीताऽपि ग्रहणविपयीकृताऽपि थद्धे' स्तब्धाय स्वभावत एव मानप्रकृत्या विनयरहिताय 'थद्धे' इत्यत्र "व्यत्ययोऽप्यासाम्" इति वचनात् चतुर्थ्यर्थे सप्तमी, एवमग्रेऽपि बोध्यम् । 'गारविय—माणि पडिणीए' गारवितमाणि प्रत्यनीकाय गारवितश्च मानी च प्रत्यनीकश्चेति समाहारे गारवितमानिकप्रत्यनीकम्, तस्मै तत्र गौरवम् ऋद्धिरससातरूपं गौरवत्रयं, तत् संजातमस्येति गारवितस्तस्मै, ऋद्ध्यादि मदोपेतो हि अचिन्त्य चिन्तामणिकल्पमपीदं चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्र माचार्यादिकं च तद्वेत्तारमवज्ञया पश्यति, अवज्ञा च दुरन्तनरकादिप्रपातहेतुरतस्तस्मै दाननिषेधस्तदुपकारायैव जायते । तथा मानिने जात्यादि मदोपेताय प्रत्यनीकाय—दूरभव्यत्वेन अभव्यत्वेन वा सिद्धान्तवचनानादरकारिणे । पूर्वोक्ता भावनाऽत्रापि मानिप्रत्यनीकविपयेऽपि भावनीया । तथा 'अवहुस्सुए' अवहुश्रुताय अवगाढास्तोकशास्त्राय, सहि जिनवचनेपु असम्यग्भावितत्वात् शब्दार्थपर्यालोचनायामसमर्थत्वाच्च यथार्थतया कथ्यमानमपि न सम्यक्तया रुचि विषयी करोति अतएव पूर्वोक्तेभ्यः 'ण देया' न देया न शिक्षयितव्या । तर्हि कस्मै देया ? इत्याह—'तव्विवरीए' तद्विपरीताय पूर्वोक्तदोषवर्जिताय 'भवे देया' देया भवेत् दातव्या भवेत् । अत्र भवेदिति क्रियापदस्य सामर्थ्य

ल्ब्धावप्युपादानं दातव्यताया अवधारणार्थं तेन तद्विपरीतायावश्यं दातव्यैव, सर्वथा न दातव्येति नावधारणीयम् अन्यथा सर्वथा तद्दानाभावे शास्त्रव्यवच्छेदेन तीर्थव्यवच्छेदः प्रसज्यते ॥२॥

एतदेव व्यक्ती कुर्वन्नाह–'सद्धे' त्यादि गाथाद्वयम्–'सद्धाधिइउट्ठाणुच्छाहकम्मबलवीरियपुरिसकारेहिं' श्रद्धाधृत्युत्थानोत्साहकर्मबलवीर्यपुरुषकारैः तत्र श्रद्धा श्रवणं प्रतिरुचिः, धृतिः अत्र कथ्यमानं जिनवचनं सत्यमेव "तमेव सच्चं नीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं' इति बुद्धया मनसो दाढर्यम्, उत्थानं–श्रवणार्थं गुरुं प्रत्यभिमुखगमनम्, उत्साहः श्रवणविषये मनस औत्सुक्यं यदि मे पुण्यप्रकर्षात् सामग्री संपद्यते शृणोमि च ततः शोभनं भवतीति परिणामः सजायते, कर्मचन्दनबहुमानादिरूपम् बलम्–शारीरकस्तद्वचनादि विषयः प्राणः वीर्यम् अनुप्रेक्षायां सूक्ष्माति सूक्ष्मार्थोद्भावनशक्तिः, पुरुषकारः साधिताभिमतप्रयोजनं वीर्यमेव, एतैः-कारणैः यः स्वयं 'सिक्खिओ वि संतो'शिक्षितोऽपि गृहीतचन्द्रप्रज्ञप्तिः सूत्रार्थतदुभयोऽपि सन् यो यदि दाक्षिण्यादिना 'अभायणे' अभाजने अयोग्ये स्वान्तेवासिनि शिष्ये इति निजान्तेवासिने शिष्याय 'परिकहेज्जाहि' परिकथयेत् सूत्रतोऽर्थत उभयतो वा प्रतिपातयेत् तदा सो सः 'पवयणकुलगणसंघबाहिरो' प्रवचनकुलगणसङ्घबाह्यः तत्र प्रवचनं–भगवदाज्ञा, कुलम्–एकगुरुसमुदायः गणः एकसामाचारि समुदायः साधुसाध्वीश्राविकारूपश्चतुर्विधः, एभ्य सर्वेभ्य स बाह्यः बहिर्भूतो विज्ञेयः । तथा न 'णाणविणयपरिहीणो' ज्ञानविनयपरिहीनः पुनश्च सः 'अरहंतथेरगणहरमेरं' अर्हत्स्थवीरगणधरमर्यादां किल निश्चयेन 'वोलिणो' व्यतिक्रान्तः 'होइ' भवति, अत्र किलेति पदमाप्तवादसूचकम्, तेन इत्थमाप्तवचनं व्यवस्थितं यथा स किल–निश्चयेन भगवदर्हदादिव्यवस्थामतिक्रान्त इत्यर्थः, तदतिक्रमे च दीर्घ संसारिता भवतीति तृतीयचतुर्थगाथार्थः ।३।४।

ततः किमित्याह–'तम्हा' इत्यादि, 'तम्हा' तस्मात् कारणात् 'धिइउत्थाणुच्छाहकम्मबलवीरियसिक्खियं णाणं' धृत्युत्थानोत्साहकर्मबलवीर्यैः स्वयं मुमुक्षुणा सता यत् शिक्षितं ज्ञानं-चन्द्रप्रज्ञाप्त्यादि समुत्थं तत् 'नियमा' नियमादात्मन्येव 'धारेयव्वं' धारयितव्यं स्वयमेव तस्य ज्ञानस्य हृदये धारणा कर्त्तव्या किन्तु कदाचिदपि 'अविणएसु' अविनयेषु विनयहीनेषु शिष्यादिषु 'ण य दायव्वं' न च दातव्यं नैव देयम्, अविनयेभ्यो दाने आत्मपरयोर्दीर्घसंसारिता प्रसक्तेः । इयंच चन्द्रप्रज्ञप्तिरर्थतो भगवता श्री वर्द्धमानस्वामिना मिथिलायां नगर्यां साक्षादुक्ता, भगवांश्चास्य वर्त्तमानस्य तीर्थस्याधिपतिः तदर्थप्रणेतृत्वात् वर्त्तमानतीर्थाधिपतित्वाच्च शास्त्रसमाप्तौ मङ्गलार्थं तन्नमस्कारमाह–'वीरवरस्स' इत्यादि, 'वीरवरस्स' वीरवरस्य, वीरयतिस्मेति वीरः, वीरेषु वरः-प्रधानो वीरवरः वर्धमानस्वामी, तस्य भगवतः–अनुपमैश्वर्यादि युक्तस्य, वरग्रहणञ्चमेव वीरत्वं स्पष्टयति–कीदृशस्य वीरवरस्य ? इत्याह–'जरमरण' इत्या-

दि, 'जरमरणकिलेसदोसरहियस्स' जरामरणक्लेशदोषरहितस्य, तत्र जरा–वयोहानिरूपा, मरणं-प्राणत्यागरूपं. क्लेशाः-शरीरमानसोद्भवाः बाधारूपाः, दोषाः-रागादयः, तैः रहितस्य जरादि विप्रमुक्तस्य "पाए' पादौ-चरणौ, कथम्भूतौ ? 'सोक्खुप्पाए' सौख्योत्पादकौ तौ 'विणयपणओ' विनय प्रणतः–विनयेन नम्रीभूतो न तु स्तब्धी भूतः एतादृशः सन्नहम् 'सया' सदा निरन्तरम् 'वंदामि' वन्दे नमस्करोमि ॥६॥ सू०६॥

॥इति विंशतितमं प्राभृतं समाप्तम् ॥

चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्रे जिनवरकथितं भावमाश्रित्य सम्यग्,
चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशा सरलमतिमतां हेतवे निर्मितेयम् ।
घासीलालेन बुद्ध्वा निजतनुमतिना यत्र तत्र प्रदेशे,
जातं चेन्मानवीयं स्खलन मिह च यत् क्षम्यतां तद्धितज्ञैः ॥१॥

इति श्री विश्वविख्यात-जगद्वल्लभ प्रसिद्धवाचक पञ्चदश भाषाकलितललित
कलापाऽऽलापकप्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक—वादिमनमर्दक-श्रीशाहू
छपति कोल्हापुरराजप्रदत्त—"जैन शास्त्राचार्य" पदभूषित-कोल्हा
पुरराजगुरु-बालब्रह्मचारी-जैनाचार्य-जैनधर्म दिवाकरपूज्य
श्री घासीलालव्रति-विरचिता चन्द्रप्रज्ञप्तिसूत्रस्य
चन्द्रज्ञप्तिप्रकाशिता टीका समाप्ता ॥
॥ शुभं भूयात् ॥ श्री रस्तु ॥